ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

निखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं त्वतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुष्पैः।
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विशतु हृदयपद्मे सर्वसाक्षी चिदात्मा॥

गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०५६, श्रीकृष्ण-सं० ५२२५, जनवरी २०००ई०

पूर्ण संख्या ८७८

गरुडवाहन भगवान् विष्णुसे दर्शनकी प्रार्थना

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥
चक्रं सहस्रकरचारु करारविन्दे गुर्वी गदा दरवरश्च विभाति यस्य।
पक्षीन्द्रपृष्ठपरिरोपितपादपद्मो दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥
यस्यार्द्रदृष्टिवशतस्तु सुराः समृद्धिं कोपेक्षणेन दनुजा विलयं व्रजन्ति।
भीताश्चरन्ति च यतोऽर्कयमानिलाद्या दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥

जिन परमात्मासे यह ब्रह्मा आदिरूप जगत् प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत्‌के कारणभूत जिन परमेश्वरमें यह समस्त संसार स्थित है तथा अन्तकालमें यह समस्त जगत् जिनमें लीन हो जाता है, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें। जिनके करकमलमें सूर्यके समान प्रकाशमान चक्र, भारी गदा और श्रेष्ठ शंख शोभित हो रहा है, जो पक्षिराज (गरुड)-की पीठपर अपने चरणकमल रखे हुए हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें। जिनकी स्नेहदृष्टिसे देखे जानेके कारण देवता लोग ऐश्वर्य पाते हैं और कोपदृष्टिके द्वारा देखे जानेसे दानव लोग नष्ट हो जाते हैं तथा सूर्य, यम और वायु आदि जिनके भयसे भीत होकर अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं, वे दीनबन्धु भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें।

कल्याणकारी संकल्प

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जो जागते हुए पुरुषका दूर चला जाता है और सोते हुए पुरुषका वैसे ही निकट आ जाता है, जो परमात्माके साक्षात्कारका प्रधान साधन है, जो भूत, भविष्य, वर्तमान, संनिकृष्ट और व्यवहित पदार्थोंका एकमात्र ज्ञाता है और जो विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेवाले श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका एकमात्र प्रकाशक और प्रवर्तक है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान् जिसके द्वारा यज्ञिय पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करके यज्ञमें कर्मोंका विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियोंका पूर्वज अथवा आत्मस्वरूप है, जो पूज्य है और समस्त प्रजाके हृदयमें निवास करता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जो विशेष प्रकारके ज्ञानका कारण है, जो सामान्य ज्ञानका कारण है, जो धैर्यरूप है, जो समस्त प्रजाके हृदयमें रहकर उनकी समस्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है, जो स्थूल शरीरकी मृत्यु होनेपर भी अमर रहता है और जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जिस अमृतस्वरूप मनके द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्यत्सम्बन्धी सभी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं और जिसके द्वारा सात होताओंवाला अग्निष्टोम यज्ञ सम्पन्न होता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

जिस मनमें रथचक्रकी नाभिमें लगे अरोंके समान ऋग्वेद और सामवेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाका सब पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥

श्रेष्ठ सारथि जैसे घोड़ोंका संचालन और रासके द्वारा घोड़ोंका नियन्त्रण करता है, वैसे ही जो प्राणियोंका संचालन तथा नियन्त्रण करनेवाला है, जो हृदयमें रहता है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी संकल्पसे युक्त हो।

'ॐ असतो मा सद् गमय'

गरुडपुराणका माहात्म्य

विद्याकीर्तिप्रभालक्ष्मीजयारोग्यादिकारकम्। यः पठेच्छृणुयाद्रुद्र सर्ववित् स दिवं व्रजेत्॥

[**भगवान् हरिने कहा—**] हे रुद्र! यह गरुडमहापुराण विद्या, यश, सौन्दर्य, लक्ष्मी, विजय और आरोग्यादिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान जाता है और अन्तमें उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहितः।
संलिखेल्लेखयेद्वापि धारयेत् पुस्तकं ननु। धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्॥

जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस महापुराणका पाठ करता है, सुनता है अथवा सुनाता है, जो इसको लिखता है, लिखाता है या पुस्तकके ही रूपमें इसे अपने पास रखता है, वह यदि धर्मार्थी है तो उसे धर्मकी प्राप्ति होती है, यदि वह अर्थका अभिलाषी है तो अर्थ प्राप्त करता है।

गारुडं यस्य हस्ते तु तस्य हस्तगतो नयः। यः पठेच्छृणुयादेतद्भुक्तिं मुक्तिं समाप्नुयात्॥

जिस मनुष्यके हाथमें यह गरुडमहापुराण विद्यमान है, उसके हाथमें ही नीतियोंका कोश है। जो प्राणी इस पुराणका पाठ करता है या इसको सुनता है, वह भोग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त कर लेता है।

धर्मार्थकाममोक्षांश्च प्राप्नुयाच्छ्रवणादितः। पुत्रार्थी लभते पुत्रान् कामार्थी काममाप्नुयात्॥

इस महापुराणको पढ़ने एवं सुननेसे मनुष्यके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो जाती है। इस महापुराणका पाठ करके या इसको सुन करके पुत्र चाहनेवाला पुत्र प्राप्त करता है तथा कामनाका इच्छुक अपनी कामना-प्राप्तिमें सफलता प्राप्त कर लेता है।

विद्यार्थी लभते विद्यां जयार्थी लभते जयम्। ब्रह्महत्यादिना पापी पापशुद्धिमवाप्नुयात्॥

विद्यार्थीको विद्या, विजिगीषुको विजय, ब्रह्महत्यादिसे युक्त पापी पापसे विशुद्धिको प्राप्त होता है।

वन्ध्यापि लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम्। क्षेमार्थी लभते क्षेमं भोगार्थी भोगमाप्नुयात्॥

वन्ध्या स्त्री पुत्र, कन्या सज्जन पति, क्षेमार्थी क्षेम तथा भोग चाहनेवाला भोग प्राप्त करता है।

मङ्गलार्थी मङ्गलानि गुणार्थी गुणमाप्नुयात्। काव्यार्थी च कवित्वं च सारार्थी सारमाप्नुयात्॥

मङ्गलकी कामनावाला व्यक्ति अपना मङ्गल, गुणोंका इच्छुक व्यक्ति गुण, काव्य करनेका अभिलाषी मनुष्य कवित्वशक्ति और जीवनका सारतत्त्व चाहनेवाला व्यक्ति सारतत्त्व प्राप्त करता है।

ज्ञानार्थी लभते ज्ञानं सर्वसंसारमर्दनम्। इदं स्वस्त्ययनं धन्यं गारुडं गरुडेरितम्॥

ज्ञानार्थी सम्पूर्ण संसारका मर्दन करनेवाला ज्ञान प्राप्त करता है। [हे रुद्र!] पक्षिश्रेष्ठ गरुडके द्वारा कहा गया यह गारुडमहापुराण धन्य है। यह तो सबका कल्याण करनेवाला है।

नाकाले मरणं तस्य श्लोकमेकं तु यः पठेत्। श्लोकार्धपठनादस्य दुष्टशत्रुक्षयो ध्रुवम्॥

जो मनुष्य इस महापुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसकी अकाल-मृत्यु नहीं होती। इसके मात्र आधे श्लोकका पाठ करनेसे निश्चित ही दुष्ट शत्रुका क्षय हो जाता है।

अतो हि गारुडं मुख्यं पुराणं शास्त्रसम्मतम्। गारुडेन समं नास्ति विष्णुधर्मप्रदर्शने॥

इसलिये यह गरुडपुराण मुख्य और शास्त्रसम्मत पुराण है। विष्णुधर्मके प्रदर्शनमें गरुडपुराणके समान दूसरा कोई भी पुराण नहीं है।

यथा सुराणां प्रवरो जनार्दनो यथायुधानां प्रवरः सुदर्शनम्। तथा पुराणेषु च गारुडं च मुख्यं तदाहुर्हरितत्त्वदर्शने॥

जैसे देवोंमें जनार्दन श्रेष्ठ हैं और आयुधोंमें सुदर्शन श्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणोंमें यह गरुडपुराण हरिके तत्त्वनिरूपणमें मुख्य कहा गया है।

गारुडाख्यपुराणे तु प्रतिपाद्यो हरिः स्मृतः। अतो हरिर्नमस्कार्यो गम्यो योग्यो हरिः स्मृतः॥

इस गरुडपुराणमें हरि ही प्रतिपाद्य हैं, इसलिये हरि ही नमस्कार करने योग्य हैं, हरि ही शरण्य हैं और वे हरि ही सब प्रकारसे सेवा करने योग्य हैं।

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्। शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥
यश्चेदं शृणुयान्मर्त्यो यश्चापि परिकीर्तयेत्। विहाय यातनां घोरां धूतपापो दिवं व्रजेत्॥

यह गरुडमहापुराण बड़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये। जो मनुष्य इस महापुराणको सुनता या इसका पाठ करता है, वह निष्पाप होकर यमराजकी भयंकर यातनाओंको तोड़कर स्वर्गको प्राप्त करता है।

गरुडपुराण—सिंहावलोकन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनर-नारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणकी चर्चा करनी चाहिये।

पुराण वाङ्मयमें गरुडपुराणका महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मप्रभु साक्षात् भगवान् विष्णुने ब्रह्मादि देवताओंसहित देवदेवेश्वर भगवान् रुद्रदेवको सभी शास्त्रोंमें सारभूत तथा महान् अर्थ बतानेवाले इस 'गरुडमहापुराण'को सुनाया था।

एक बार तीर्थयात्राके प्रसंगमें सर्वशास्त्रपारंगत शान्तचित्त महात्मा सूतजी नैमिषारण्यमें पधारे, वहाँ शौनकादि ऋषि-मुनियोंने उनकी पूजा की और जिज्ञासारूपमें कुछ प्रश्न भी किये। प्रश्नोंके समाधानमें सूतजीने गरुडमहापुराणकी कथा उन ऋषि-महर्षियोंको सुनायी। सूतजीने यह कथा भगवान् व्यासजीसे सुनी थी, व्यासजीको यह कथा पितामह ब्रह्मासे प्राप्त हुई। वास्तवमें मूलरूपसे इस महापुराणको गरुडजीने कश्यप ऋषिको सुनाया था।

प्राचीनकालमें पृथ्वीपर पक्षिराज गरुडने तपस्याके द्वारा भगवान् विष्णुकी आराधना की, जिससे संतुष्ट होकर प्रभुने अभीष्ट वर माँगनेके लिये कहा। गरुडने भगवान्‌से निवेदन किया कि नागोंने मेरी माता विनताको दासी बना लिया है। हे देव! आप प्रसन्न होकर मुझे यह वरदान प्रदान करें कि मैं उनको जीतकर अमृत प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकूँ और माँको नागोंकी माता कद्रूकी दासतासे मुक्त करा सकूँ। मैं आपका वाहन बनूँ और नागोंको विदीर्ण करनेमें समर्थ हो सकूँ तथा जिस प्रकार पुराणसंहिताका रचनाकार हो सकूँ, वैसा ही करनेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीहरिने पक्षिराज गरुडको ये अभीष्ट वरदान प्रदान किये तथा कहा कि आप अत्यन्त शक्तिसम्पन्न होकर मेरे वाहन बनेंगे। विषोंके विनाशकी शक्ति भी आपको प्राप्त होगी, मेरी कृपासे आप मेरे ही माहात्म्यको कहनेवाली पुराणसंहिताका प्रणयन करेंगे। मेरा जैसा स्वरूप कहा गया है, वैसा ही आपमें भी प्रकट होगा। आपके द्वारा प्रणीत यह पुराणसंहिता, आपके 'गरुड' नामसे लोकमें प्रसिद्ध होगी।

'हे विनतासुत! जिस प्रकार देवदेवोंके मध्यमें मैं ऐश्वर्य और श्रीरूपमें विख्यात हूँ, उसी प्रकार हे गरुड! सभी पुराणोंमें यह गरुडमहापुराण भी ख्याति अर्जित करेगा। जैसे विश्वमें मेरा कीर्तन होता है, वैसे ही गरुड नामसे आपका भी संकीर्तन होगा। हे पक्षिश्रेष्ठ! आप मेरा ध्यान करके उस पुराणका प्रणयन करें'—

यथाहं देवदेवानां श्रीः ख्यातो विनतासुत।
तथा ख्यातिं पुराणेषु गारुडं गरुडैष्यति॥
यथाहं कीर्तनीयोऽथ तथा त्वं गरुडात्मना।
मां ध्यात्वा पक्षिमुख्येदं पुराणं गद गारुडम्॥
(१। २।५६-५७)

भगवान्‌के द्वारा यह वरदान दिये जानेके बाद, इसी सम्बन्धमें कश्यप ऋषिके द्वारा पूछे जानेपर गरुडने इसी पुराणको उन्हें सुनाया। कश्यपने इस गरुडमहापुराणका श्रवण करके 'गारुडी विद्या'के बलसे एक जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था। गरुडने स्वयं भी इसी विद्याके द्वारा अनेक प्राणियोंको जीवित किया था।

इस गरुडमहापुराणके प्रारम्भमें सर्ग-वर्णन किया गया है। तदनन्तर देवार्चनकी विधियाँ प्रस्तुत की गयी हैं, 'विष्णुपञ्जरस्तोत्र' कहा गया है, जो जीवोंके लिये अत्यन्त कल्याणकारी है। इसके बाद भोग और मोक्षको प्रदान करनेवाले ध्यानयोगका वर्णन हुआ है—

'मैं जगत्‌का साक्षी, जगत्‌का नियन्ता और परमानन्दस्वरूप हूँ। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन सभी अवस्थाओंमें जगत्‌का साक्षी होते हुए भी मैं इन अवस्थाओंसे रहित हूँ, मैं ही तुरीय ब्रह्म और विधाता हूँ। मैं दृग्रूप अर्थात् समस्त प्रपञ्चका द्रष्टा, दृश्य एवं दृष्टि हूँ। मैं ही निर्गुण, मुक्त, बुद्ध, शुद्ध-प्रबुद्ध, अजर, सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप एवं शिवस्वरूप परमात्मा हूँ।' इस प्रकार जो विद्वान् इन परमपद परमेश्वरका ध्यान करते हैं, वे निश्चय ही ईश्वरका सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं। यह स्वयं श्रीहरि भूतभावन भगवान् शङ्करसे कहते हैं कि हे सुव्रत शङ्कर! आपसे ही इस ध्यानयोगकी चर्चा मैंने की है। जो व्यक्ति सदैव इस ध्यानयोगका पाठ (मनन-चिन्तन) करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीरुद्र पूछते हैं—हे प्रभो! मनुष्य किस मन्त्रका जप करके इस अथाह संसार-सागरसे पार हो सकता

है? इसपर श्रीहरिने उत्तर दिया कि परब्रह्म परमात्मा, नित्य परमेश्वर भगवान् विष्णुकी सहस्रनामसे स्तुति करनेपर मनुष्य भवसागरको पार कर सकता है। इस क्रममें समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाले 'विष्णुसहस्रनामस्तोत्र' को भगवान्‌ने उन्हें सुनाया। यह विष्णुसहस्रनाम इस पुराणमें प्रस्तुत है, जो अन्य विष्णुसहस्रनामोंसे भिन्न है।

भगवान् विष्णुकी आराधनाके बाद भगवान् सूर्यकी पूजाका भी वर्णन मिलता है। तदनन्तर जीवोंका उद्धार करनेवाली पुण्यप्रदायिनी सर्वदेवमय मृत्युञ्जयपूजाका निरूपण हुआ है तथा मृत्युञ्जयजपकी महिमा भी प्रस्तुत की गयी है। यह मन्त्र मृत्यु और दरिद्रताका मर्दन करनेवाला है तथा शिव, विष्णु, सूर्य आदि सभी देवोंका कारणभूत है 'ॐ जूं सः'—यह महामन्त्र 'अमृतेश' के नामसे कहा जाता है। इस मन्त्रका जप करनेसे प्राणी सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता और मृत्युरहित हो जाता है। अर्थात् मृत्युके समान होनेवाले उसके कष्ट दूर हो जाते हैं।

भगवान् मृत्युञ्जय श्वेतकमलके ऊपर बैठे हुए वरदहस्त तथा अभयमुद्रा धारण किये रहते हैं। तात्पर्य यह है कि उनके एक हाथमें अभयमुद्रा है और एक हाथमें वरदमुद्रा। दो हाथोंमें अमृतकलश है। इस रूपमें अमृतेश्वरका ध्यान करनेके साथ ही भगवान्‌के वामाङ्गमें स्थित अमृतभाषिणी अमृतादेवीका भी ध्यान करना चाहिये। देवीके दायें हाथमें कलश और बायें हाथमें कमल सुशोभित रहता है।

इस महापुराणमें प्राणेश्वरी विद्याका निरूपण हुआ है। सर्पोंके विष हरनेके उपाय तथा दुष्ट उपद्रवोंको दूर करनेके मन्त्र दिये गये हैं। पञ्चवक्त्रपूजन, शिवार्चन-विधि, भगवती त्रिपुरा तथा गणेश आदि देवोंकी पूजाविधि प्रस्तुत की गयी है। भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली श्रीगोपालकी तथा भगवान् श्रीधरविष्णुकी पूजाका वर्णन भी किया गया है। इसके साथ ही श्रीधरविष्णुका ध्यान तथा उनकी स्तुति प्रस्तुत की गयी है। पञ्चतत्त्वार्चन-विधि, सुदर्शनचक्र-पूजाविधि, भगवान् हयग्रीवके पूजनकी विधि, देवी दुर्गाका स्वरूप, सूर्यध्यान तथा माहेश्वरीपूजन-विधि प्रस्तुत की गयी है।

तदनन्तर ब्रह्ममूर्तिके ध्यानका निरूपण किया गया है। 'हृदयकमलकी कर्णिकाके मध्य विराजमान रहनेवाले, शंख, चक्र, गदा और कमलसे सुशोभित तथा श्रीवत्स, कौस्तुभमणि, वनमाला एवं लक्ष्मीसे विभूषित नित्य-शुद्ध, ऐश्वर्यसम्पन्न, सत्य, परमानन्दस्वरूप, आत्मस्वरूप, परब्रह्म तथा परमज्योति स्वरूप हैं, ऐसे वे परमेश्वर ध्यानके योग्य हैं तथा पूजनीय हैं।' मैं भी वही हूँ—ऐसा समझना चाहिये।

इस प्रकार आत्मस्वरूप नारायणका यम-नियम इत्यादि योगके साधनोंसे एकाग्रचित्त होकर जो ध्यान करता है, वह मनोऽभिलषित इच्छाओंको प्राप्तकर देवस्वरूप हो जाता है। यदि निष्काम होकर उन हरिकी मूर्तिका ध्यान और स्तवन करे तो मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

इसके बाद विविध शालग्राम शिलाओंके लक्षण, वास्तुमण्डल-पूजाकी विधि तथा प्रासाद-लक्षण (वास्तुकी दृष्टिसे) प्रस्तुत किये गये हैं। देवप्रतिष्ठाकी भी सामान्य विधि बतायी गयी है। वर्ण एवं आश्रम-धर्मोंका निरूपण किया गया है। इसके साथ ही सदाचार एवं शौचाचारकी महत्ता बतायी गयी है। वर्णाश्रम-धर्मका निरूपण करते हुए ब्रह्माजीने व्यासजीसे कहा कि परमात्मप्रभु परमेश्वरकी पूजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंको अपने-अपने धर्मके अनुसार करनी चाहिये। उनके द्वारा पृथक्-पृथक् रूपसे ही उनके धर्मोंका वर्णन किया गया है।

यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन और अध्यापन—ये छः कर्म ब्राह्मणके धर्म बताये गये। दान, अध्ययन तथा यज्ञ—ये क्षत्रिय तथा वैश्यके साधारण धर्म हैं। शस्त्रोपजीवी होना तथा प्राणियोंकी रक्षा करना क्षत्रियोंका विशेष धर्म है। पशुपालन, कृषिकर्म तथा व्यापार—ये वैश्यवर्णकी वृत्ति कही गयी है। द्विजातिकी सेवा शूद्रका कर्तव्य माना गया है। शिल्पकारी उनकी आजीविका कही गयी है।

इसी प्रकार आश्रम-धर्मका भी वर्णन हुआ है। भिक्षाचरण, गुरुशुश्रूषा, स्वाध्याय तथा अग्निकार्य—ये ब्रह्मचारियोंके धर्म बताये गये हैं।

अग्निहोत्र-धर्मका पालन तथा कहे गये अपने विहित कर्मोंके अनुसार जीविकोपार्जन, पर्वरात्रिको छोड़कर अन्य रात्रियोंमें धर्मपत्नीका सहवास, देवता, पितर तथा अतिथिगणोंकी विधिवत् पूजामें संलग्न रहना और श्रुतियों एवं स्मृतियोंमें कहे गये धर्मोंके अनुसार अर्थोपार्जन करना—ये गृहस्थोंके धर्म कहे गये हैं। इसके साथ ही संस्कारोंका भी वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्तके संस्कार बताये गये हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालकोंके

लिये उपनयन-संस्कारकी अनिवार्यताका दिग्दर्शन कराया गया है।

गृहस्थाश्रमके धर्ममें स्त्रियोंके कर्तव्यका भी विवेचन हुआ है। स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये, यही उनका परम धर्म है। जिस घरमें पति-पत्नीके मध्य किसी प्रकारका विरोध नहीं होता, उस घरमें धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी अभिवृद्धि होती है। जो स्त्री पतिकी मृत्युके पश्चात् अथवा उसके जीवित रहते हुए अन्य पुरुषका आश्रय नहीं लेती, वह इस लोकमें यश प्राप्त करती है और अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे परलोकमें जाकर पार्वतीके साहचर्यमें आनन्द प्राप्त करती है।

अग्निहोत्रका पालन, पृथ्वीपर शयन, मृगचर्मका धारण, वनमें निवास, दूध, मूल, फल तथा निवारका भक्षण, निषिद्ध कर्मका परित्याग, त्रिकाल-संध्या, ब्रह्मचर्यका पालन और देवता तथा अतिथिकी पूजा—यह वानप्रस्थीका धर्म है।

सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग, भिक्षासे प्राप्त अन्नका भोजन, वृक्षकी छायामें निवास, अपरिग्रह, अद्रोह, सभी प्राणियोंमें समानभाव, प्रिय तथा अप्रियकी प्राप्तिमें एवं सुख और दु:खमें समान स्थिति, शरीरकी बाह्य और आन्तरिक शुद्धता, वाणीमें संयम, परमात्माका ध्यान, सभी इन्द्रियोंका निग्रह, धारणा तथा ध्यानमें तत्परता और भाव-शुद्धि—ये सभी परिव्राजक या संन्यासीके धर्म कहे गये हैं।

'इसके साथ ही अहिंसा, प्रिय और सत्य वचन, पवित्रता, क्षमा तथा दया—सभी आश्रमों और वर्णोंका सामान्य धर्म कहा गया है'—

अहिंसा सूनृता वाणी सत्यशौचे क्षमा दया।
वर्णिनां लिंगिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते॥

(१। २१३। २२)

सदाचार और शौचाचारका निरूपण करते हुए सूतजी शौनकादि ऋषियोंसे कहते हैं कि श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)-का भली प्रकारसे अध्ययन करके श्रुति-प्रतिपादित धर्मका पालन करना चाहिये, क्योंकि श्रुति ही सब कर्मोंका मूल है। श्रुतिमें कहा गया धर्म परम धर्म है। स्मृति और शास्त्रसे प्रतिपादित धर्म अपर धर्म है। यदि उपलब्ध श्रुतियोंमें कोई कर्म ज्ञात नहीं हो रहा है तो उसको स्मृतिशास्त्रके अनुसार जानकर करना चाहिये। क्योंकि स्मृतिशास्त्र भी श्रुतिमूलक होनेके कारण ही मर्मके बोधमें प्रमाण माने जाते हैं। कर्ममार्गका दर्शन करानेके लिये श्रुति और स्मृति ये नेत्रस्वरूप हैं। यदि इन दोनोंसे दिशा-निर्देश नहीं मिल पाता है तो सदाचार (शिष्टाचार)-धर्मका पालन करना चाहिये। इस प्रकार श्रुति, स्मृति और शिष्टाचारसे प्राप्त धर्म—ये तीन प्रकारके सनातन धर्म हैं।

सत्य, दान, दया, निर्लोभता, विद्या, यज्ञ, पूजा और इन्द्रिय-दमन—ये आठ शिष्टाचारके पवित्र लक्षण कहे गये हैं। यहाँ प्रात:काल जगनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक पालन करने योग्य गृहस्थके धर्मका वर्णन भी हुआ है। गृहस्थको ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परित्याग करके धर्म और अर्थका भलीभाँति चिन्तन करना चाहिये। शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त होकर दन्तधावन, स्नान करके समाहितचित्त होकर संध्योपासन, तर्पण, देवार्चन आदि नित्यक्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। शौचादि क्रियाओंकी शुद्धिका विस्तृत वर्णन यहाँ हुआ है।

शुद्धि दो प्रकारकी है—पहली बाह्य तथा दूसरी आभ्यन्तरिक। मिट्टी तथा जलसे की जानेवाली बाह्य शुद्धि और भावोंकी शुद्धि ही आभ्यन्तरिक शुद्धि मानी गयी है। आचमनको शुद्धिका प्रमुख अङ्ग माना गया है।

दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारका हित सम्पादन होनेके कारण प्रात:कालके स्नानकी अत्यधिक प्रशंसा की गयी है। शरीर अत्यन्त मलिन है। उसमें स्थित नव छिद्रोंसे सदैव मल निकलता ही रहता है। अत: प्रात:कालका स्नान शरीरकी शुद्धिका हेतु, मनको प्रसन्न रखनेवाला तथा रूप और सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला है। यह शोक और दु:खका विनाशक है। गङ्गास्नानकी विशेष महिमा है। गङ्गास्नानसे सर्वविध पापोंका नाश होता है।

शास्त्रोंमें तीन करोड़ मंदेह नामक राक्षस माने गये हैं। वे दुरात्मा राक्षस सदैव प्रात:काल उदित हो रहे सूर्यदेवको खा जानेकी इच्छा करते हैं। अत: सूर्योदयसे पूर्व स्नान करके संध्योपासनकर्म नहीं करना सूर्यदेवका ही घातक है। जो लोग यथाविधि स्नानकर यथाधिकार संध्योपासन करते हैं, वे मन्त्रसे पवित्र किये गये अनलरूपी अर्घ्य (जल)-से उन मंदेह नामक राक्षसोंको जला देते हैं। दिन और रातका जो संधिकाल है, वही संध्याकाल (४८ मिनट) होता है। यह संध्याकाल सूर्योदयसे पूर्व दो घड़ीपर्यन्त रहता है, जो उपासक प्रात:काल नित्य 'गायत्रीमन्त्र'का जप करता है, वह कमलपत्रकी भाँति पापसे संलिप्त नहीं होता।

इस संसारमें आठ मङ्गल हैं—ब्राह्मण, गौ, अग्नि,

हिरण्य (सोना), घृत, सूर्य, जल और राजा। सदैव इनका दर्शन और पूजन करना चाहिये तथा यथासाध्य अपने दाहिने करके ही चलना चाहिये।

'माता, पिता, गुरु, भ्राता, प्रजा, दीन, दुःखी, आश्रितजन, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये पोष्यवर्ग कहे गये हैं। पोष्यवर्गका भरण-पोषण करना स्वर्गका प्रशस्त साधन है। अतः मनुष्यको पोष्यवर्गका पालन-पोषण प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें उसी व्यक्तिका जीवन श्रेष्ठ है, जो बहुतोंके जीवनका साधक बनता है अर्थात् बहुतोंका पालन-पोषण करता है। जो मात्र अपने भरण-पोषणमें लगे रहते हैं, वे जीवित रहते हुए भी मरे हुएके समान हैं; क्योंकि अपना पेट कुत्ता भी पालता है'—

माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीनाः समाश्रिताः॥
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्गा उदाहृताः।
भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्॥
भरणं पोष्यवर्गस्य तस्माद् यत्नेन कारयेत्।
स जीवति वरश्चैको बहुभिर्योपजीव्यति॥
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः।
स्वकीयोदरपूर्तिश्च कुक्कुरस्यापि विद्यते॥

(१।२१३।७९—८२)

व्यवहारमें अर्थका अत्यधिक महत्त्व है। अर्थ उन्हें ही कहते हैं जो हमारे सभी कार्योंकी सम्पन्नतामें अनिवार्य रूपसे उपयोगी हों। इसी दृष्टिसे सभी रत्नोंकी निधि पृथ्वी, धान्य, पशु, स्त्रियाँ आदि अर्थ माने जाते हैं। इस तरह अर्थका महत्त्व होनेपर भी इसके उपार्जनमें संयम आवश्यक है। शास्त्रसम्मत विधिसे अर्जित धनके लाभांशसे सभी लोगोंको पितृगण, देवगण तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। ये संतुष्ट होकर धनोपार्जनमें अज्ञानवश हुए दोषको निःसंदेह शान्त कर देते हैं।

विद्या, शिल्प, वेतन, सेवा, गोरक्षा, व्यापार, कृषि, वृत्ति, भिक्षा और ब्याज—ये दस जीवनयापनके साधन हैं।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलापकर्षण, मार्जन, आचमन और अवगाहन—ये आठ प्रकारके स्नान बताये गये हैं। प्रातःकाल पूजा-पाठ आदि धार्मिक कृत्यके लिये जो स्नान किया जाता है उसीको नित्य स्नान कहा गया है। चाण्डाल, शव, विष्ठा तथा रजस्वला आदिके स्पर्शके बाद जो स्नान किया जाता है, वह नैमित्तिक कहलाता है। पुष्य आदि नक्षत्रोंमें जो स्नान किया जाता है, उसे काम्य स्नान कहते हैं। इन स्नानोंको तीर्थका अभाव होनेपर उष्ण जल अथवा किसी प्रकार प्राप्त कृत्रिम जलसे सम्पन्न कर लेना चाहिये।

भूमिसे निकला जल पवित्र होता है, इस जलकी अपेक्षा पर्वतसे निकलनेवाले झरनेका जल पवित्र होता है। इससे भी बढ़कर पवित्र जल सरोवरका है। उसकी अपेक्षा नदीका जल पवित्र है, नदीके जलसे तीर्थजल श्रेष्ठ है। 'इन सभी जलोंकी अपेक्षा गङ्गाका जल परम पवित्र है। गङ्गाके श्रेष्ठतम जलसे जीवनपर्यन्त किये गये पापोंका विनाश शीघ्र हो जाता है'—

तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यं तु सर्वतः॥
गाङ्गं पयः पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम्।

(१। २१३। ११७-११८)

मनुष्य आचार (सदाचार-शौचाचार)-से ही सब कुछ प्राप्त कर लेता है। संध्या, स्नान, जप, होम, देव और अतिथिपूजन—इन षट्कर्मोंको प्रतिदिन करना कर्तव्य है। पञ्चमहायज्ञोंमें—अध्ययन और अध्यापन ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देवयज्ञ, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ तथा अतिथिका पूजन मनुष्ययज्ञ है। गृहस्थको दिनका यथायोग्य पाँच विभाग करके पितृगण, देवगणकी अर्चा और मानवोचित कार्य करना चाहिये। जो मनुष्य अन्नदान करके सर्वप्रथम ब्राह्मणको भोजन कराकर अपने मित्रगणोंके साथ स्वयं भोजन करता है, वह देहत्यागके बाद स्वर्गलोकके सुखका अधिकारी बन जाता है।

अभक्ष्यभक्षण (शास्त्रनिषिद्ध भोजन), चोरी और अगम्यागमन करनेसे व्यक्तिका पतन हो जाता है। सदाचार एवं धर्मका पालन करनेवाला अधिकारी मनुष्य साक्षात् केशव (विष्णु) ही माना गया है।

कलियुगमें दानधर्मका विशेष महत्त्व है। सत्पात्रमें श्रद्धापूर्वक किये गये अर्थ (भोग्य वस्तु)-का प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है। इस लोकमें वह दान भोग तथा परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक अर्थका उपार्जन करे; क्योंकि न्यायपूर्वक उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है।

जलदानसे तृप्ति, अन्नदानसे अक्षय सुख, तिलदानसे अभीष्ट संतान, दीपदानसे उत्तमनेत्र, भूमिदानसे समस्त अभिलषित पदार्थ, सुवर्णदानसे दीर्घ आयु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है। वस्त्र प्रदान करनेसे चन्द्रलोक तथा अश्वदान करनेसे अश्विनीकुमारके लोककी प्राप्ति होती है। वृषभका दान देनेसे विपुल सम्पत्ति

और गोदानसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

यान और शय्याका दान करनेपर भार्या, भयभीतको अभय प्रदान करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धान्यदानसे शाश्वत अविनाशी सुख तथा वेदाध्यापन (वेदके दान)-से ब्रह्मका सांनिध्य-लाभ होता है। गायको घास देनेसे पापोंसे मुक्ति हो जाती है। ईंधनके लिये काष्ठ आदिका दान करनेसे व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोंके रोग-शान्तिके लिये औषधि, तेल आदि पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित, सुखी और दीर्घायु हो जाता है। जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उसे अपने लिये संसार या घरमें जो वस्तु सर्वाधिक प्रिय है, उस वस्तुका दान गुणवान् ब्राह्मणको करना चाहिये।

दानधर्मसे बढ़कर श्रेष्ठ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके लिये कोई दूसरा नहीं है। गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवोंको दिये जानेवाले दानसे जो मनुष्य मोहवश दूसरोंको रोकता है, वह पापी तिर्यक् (पक्षी)-की योनिको प्राप्त करता है।

दानधर्मके बाद प्रायश्चित्तका निरूपण किया गया है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, स्वर्णकी चोरी, और गुरुपत्नीगमन—ये चार महापाप कहे गये हैं। इन सभीका साथ करनेवाला पाँचवाँ महापातकी होता है। गोहत्या आदि जो अन्य पाप हैं, वे उपपातकमें माने गये हैं। इन सभी पापोंका प्रायश्चित्त-विधान यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

इसके अनन्तर भारतवर्षका वर्णन, तीर्थोंका वर्णन और उनकी महिमा प्रस्तुत की गयी है। ज्योतिश्चक्रमें वर्णित नक्षत्र, उनके देवता एवं कतिपय शुभ-अशुभ योगों तथा मुहूर्तोंका वर्णन, ग्रहदशा, यात्रा, शकुन, छींकका फल, ग्रहोंके शुभ एवं अशुभ स्थान तथा उनके अनुसार शुभाशुभ फलका विवेचन यहाँ प्रस्तुत है। इसी प्रकार लग्न-फल, राशियोंके चर-स्थिर आदि भेद, ग्रहोंका स्वभाव तथा सात वारोंमें किये जाने योग्य प्रशस्त कार्यका भी निरूपण किया गया है। सामुद्रिक शास्त्रके अनुसार स्त्री-पुरुषके शुभाशुभ लक्षण, मस्तक एवं हस्तरेखासे आयुका परिज्ञान भी यहाँ कराया गया है। स्वरोदय विज्ञानका निरूपण भी हुआ है। तिथि, नक्षत्र आदि व्रतोंका निरूपण, चातुर्मास्यव्रतका निरूपण, शिवरात्रिव्रत-कथा तथा व्रत-विधान, एकादशी-माहात्म्य आदि प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त सूर्यवंश-चन्द्रवंशका वर्णन, भविष्यके राजवंशका वर्णन किया गया है। रत्नोंके प्रादुर्भावका आख्यान, वज्र (हीरे)-की परीक्षा, पद्मराग, मरकतमणि, इन्द्रनीलमणि, वैदूर्यमणि, पुष्परागमणि, विद्रुममणि, स्फटिक, रुधिराक्षरत्न, पुलक, कर्केतनमणि, भीष्मकमणि तथा मुक्ता आदि रत्नोंके विविध भेद, लक्षण और परीक्षण-विधि बतायी गयी है।

गङ्गा आदि विविध तीर्थों—प्रयाग, वाराणसी, कुरुक्षेत्र, द्वारका, केदार, बदरिकाश्रम, श्वेतद्वीप, मायापुरी (हरिद्वार), नैमिषारण्य, पुष्कर, अयोध्या, चित्रकूट, काञ्चीपुरी, तुंगभद्रा, श्रीशैल, सेतुबन्ध-रामेश्वर, अमरकण्टक, उज्जयिनी, मथुरापुरी आदि स्थानोंको महातीर्थ कहा गया है। इन पवित्र तीर्थस्थलोंमें किया गया स्नान, दान, जप, पूजा, श्राद्ध तथा पिण्डदान आदि अक्षय होता है।

गयातीर्थका माहात्म्य तथा गयाक्षेत्रमें श्राद्धादि करनेका फल सविस्तार समारोहपूर्वक यहाँ प्रस्तुत हुआ है। गय नामक असुरकी उत्कट तपस्यासे संतप्त देवगणोंकी प्रार्थनापर भगवान् विष्णुकी गदासे वह असुर मारा गया। उस गयासुरके नामपर ही गयातीर्थ प्रसिद्ध हुआ। यहाँ गदाधर भगवान् विष्णु मुख्यदेवके रूपमें अवस्थित हैं।

गयामें श्राद्ध करनेसे पञ्चमहापापोंकी निवृत्ति तो होती ही है, इसके साथ ही अन्य सम्पूर्ण पापोंका भी विनाश होता है। जिनकी संस्काररहित दशामें मृत्यु हो जाती है अथवा जो मनुष्य पशु या चोरद्वारा मारे जाते हैं। जिनकी मृत्यु सर्पके काटनेसे होती है, वे सभी गयाश्राद्धके पुण्यसे उन्मुक्त होकर स्वर्ग चले जाते हैं। गयामें पिण्डदान करनेमात्रसे पितरोंको परम गति प्राप्त होती है।

गयातीर्थमें पितरोंके लिये पिण्डदान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, सौ करोड़ वर्षोंमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। यहाँतक कहा गया है कि गयागमनमात्रसे ही व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है—**'गयागमनमात्रेण पितृणामनृणं भवेत्।'** कहते हैं गयाक्षेत्रमें भगवान् विष्णु पितृदेवताके रूपमें विराजमान रहते हैं। पुण्डरीकाक्ष उन भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेपर मनुष्य अपने तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है।

गयाक्षेत्रमें कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँपर तीर्थ नहीं है। पाँच कोशके क्षेत्रफलमें स्थित गयाक्षेत्रमें जहाँ-तहाँ भी पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अक्षयफलको प्राप्तकर अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

प्राचीनकालमें रुचि नामक प्रजापति संसारके माया-

मोहको छोड़कर गृहस्थादिक आश्रमोंके नियमोंसे रहित हो इधर-उधर निरहंकार भावसे अकेले ही विचरण करने लगे। यह देखकर उनके पितृजनोंने उन्हें गृहस्थाश्रमकी महिमा बताते हुए पाणिग्रहण-संस्कारको स्वर्ग एवं मोक्षप्राप्तिका हेतु बताया। क्योंकि गृहस्थ समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और याचकोंकी पूजा करके उत्तम लोकको प्राप्त करता है। रुचिने भी पितरोंसे अपनी शंकाएँ प्रस्तुत कीं। इसका पितरोंने समुचित उत्तर देते हुए गृहस्थाश्रमके धर्मपालनके लिये रुचिसे आग्रह किया। रुचि भी दुविधामें आ गये और उन्होंने तपस्याद्वारा ब्रह्माको प्रसन्न किया। ब्रह्माके निर्देशसे ऋषि रुचिने नदीके एकान्त तटपर पितरोंका तर्पणकर उन्हें संतृप्त किया और पितरोंकी स्तुतियोंसे आराधना की। पितृजनोंने संतुष्ट हो प्रकट होकर रुचिको मनोरमा पत्नी तथा पुत्रादिकी प्राप्ति करनेका वरदान दिया और यह भी कहा कि जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तुतिसे[1] हम पितरोंको संतुष्ट करेगा, उससे प्रसन्न होकर हम लोग उसे उत्तम भोग, आत्मविषयक उत्तम ज्ञान, आयु, आरोग्य तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करेंगे। अतः कामनाओंकी पूर्ति चाहनेवाले श्रद्धालुओंको निरन्तर इस स्तोत्रसे पितरोंकी स्तुति करनी चाहिये।

तदनन्तर द्रव्यशुद्धि एवं कर्मविपाक, प्रायश्चित्त-विधान—सांतपन, कृच्छ्र, पराक तथा चान्द्रायणादि व्रतोंके विविध स्वरूपोंको दर्शाया गया है।

इसके साथ ही ऋषि-महर्षि तथा देवताओंद्वारा प्रतिपादित नीतिशास्त्रका विवेचन किया गया है, जो सभीके लिये हितकर तथा पुण्य, आयु एवं स्वर्गादिको प्रदान करनेवाला है।

जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ-चतुष्टयकी सिद्धि चाहता है, उसे सदैव सज्जनोंकी ही संगति करनी चाहिये। दुर्जनोंके साथ रहनेसे इस लोक तथा परलोकमें हित सम्भव नहीं है।

दूसरेकी निन्दा, दूसरेका धनग्रहण, परायी स्त्रीके साथ परिहास तथा पराये घरमें निवास कभी नहीं करना चाहिये।

'मनुष्यको दुर्जनोंके संगका परित्यागकर साधुजनोंकी संगति करनी चाहिये और दिन-रात पुण्यका संचय करते हुए नित्य अपनी अनित्यताको स्मरण रखना चाहिये'—

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥

(१।१०८।२६)

'नरकमें निवास करना अच्छा है, किंतु दुश्चरित्रके घरमें वास करना उचित नहीं है। नरकवासके कारण पाप विनष्ट हो जाते हैं, किंतु दुश्चरित्रके घरमें निवास करनेसे पाप विनष्ट नहीं होते'—

वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे।
नरकात् क्षीयते पापं कुगृहान्न निवर्तते॥

(१।१०९।३)

जो बाल्यावस्थामें विद्याध्ययन नहीं करते हैं, फिर युवावस्थामें कामातुर होकर यौवन तथा धनको नष्ट कर देते हैं, वे वृद्धावस्थामें चिन्तासे जलते हुए शिशिरकालमें कुहासेसे झुलसनेवाले कमलके समान संतप्त जीवन व्यतीत करते हैं।

इसके बाद राजनीतिका वर्णन किया गया है। राजाको सत्यपरायण तथा धर्मपरायण होना चाहिये। जो धार्मिक राजा गौ-ब्राह्मणके हितमें रत रहता है, वही जितेन्द्रिय राजा प्रजाके पालनमें समर्थ हो सकता है। 'जो राजा शास्त्रसम्मत तथा युक्तियुक्त सिद्धान्तोंका उल्लंघन करता है, वह निश्चित ही इस लोक तथा परलोक दोनोंमें नष्ट हो जाता है'—

लंघयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च।
स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च॥

(१।१११।२२)

'सत्यके पालनसे धर्मकी रक्षा होती है, सदा अभ्यास करनेसे विद्याकी रक्षा होती है, मार्जनके द्वारा पात्रकी रक्षा होती है और शीलके द्वारा कुलकी रक्षा होती है'—

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते पात्रं कुलं शीलेन रक्ष्यते॥

(१।११३।१०)

'सत्यपालनरूपी शुचिता, मनःशुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, सभी प्राणियोंमें दया और जलसे प्रक्षालन—ये पाँच प्रकारके शौच माने गये हैं। जिसमें सत्यपालनकी शुचिता है, उसके लिये स्वर्गकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। जो मनुष्य सत्य-सम्भाषण ही करता है, वह अश्वमेधयज्ञ करनेवाले व्यक्तिसे बढ़कर है'—

सत्यशौचं मनःशौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूते दयाशौचं जलशौचं च पञ्चमम्॥
यस्य सत्यं च शौचं च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः।
सत्यं हि वचनं यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते॥

(१।११३।३८-३९)

१-यह स्तोत्र इसी अङ्कमें पृ० सं० १२८ में दिया गया है।

जिस व्यक्तिने एक बार भी 'हरि' इन दो अक्षरोंसे युक्त शब्दका उच्चारण कर लिया है, वह अपने कटिप्रदेशमें परिकर (फेंटा) बाँधकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तैयार रहता है। ऐसा मनुष्य मोक्षका अधिकारी होता है।

इस प्रकार मनुष्यको उन्नतिके पथपर ले जानेवाले नीतिसे युक्त कल्याणकारी वचनोंका संग्रह इस महापुराणमें प्राप्त होता है, जिसे ग्रहणकर मानव शाश्वत सुखानुभूतिसे लाभान्वित हो सकता है।

तदनन्तर भगवान्के विभिन्न अवतारोंकी कथा तथा पतिव्रता-माहात्म्यमें ब्राह्मणपत्नी, अनसूया एवं भगवती सीताके पातिव्रतका आख्यान मिलता है। रामचरितवर्णन (रामायणकथा), हरिवंशवर्णन (श्रीकृष्णकथा) तथा महाभारतकी कथा और बुद्ध आदि अवतारोंकी कथाका वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है।

इसके बाद आयुर्वेदका प्रकरण प्रारम्भ होता है। भगवान् धन्वन्तरिप्रोक्त सम्पूर्ण आयुर्वेदको अष्टाङ्ग आयुर्वेद कहा गया है। यह अथर्ववेदका उपवेद है। शारीरिक, मानसिक तथा आगन्तुक—इस प्रकारसे व्याधियाँ तीन प्रकारकी कही गयी हैं।

प्रस्तुत गरुडपुराणमें मुख्यरूपसे निदान-स्थान, चिकित्सा-स्थान, कल्प-स्थान [विषौषधिज्ञान तथा चिकित्सा] और उत्तरतन्त्रमें कौमारयतन्त्र एवं भूतविद्या आदि विषयोंका ही निरूपण हुआ है। साथ ही गवायुर्वेद, अश्व-चिकित्सा, गज-चिकित्सा आदिका भी संक्षेपमें निर्देश हुआ है।

गरुडपुराणके आयुर्वेद-प्रकरणके प्रथम बीस अध्यायोंमें निदान-स्थानके विषय वर्णित हैं। किस कारणसे रोग उत्पन्न हुआ है, रोगके लक्षण क्या हैं? जिससे रोगका निर्णय हो सके इत्यादि विषय निदान शब्दसे अभिप्रेत हैं। इसमें प्रारम्भमें ज्वर, रक्त, पित्त, श्वास, राजयक्ष्मा, मदात्यय, अर्श, अतिसार, मूत्राघात, प्रमेह, गुल्म, पाण्डु, कुष्ठ, वातदोष आदि रोगोंके उत्पत्तिजनक कारणों तथा उनके लक्षणोंका वर्णन हुआ है। गरुडपुराणका यह वर्णन आचार्य वाग्भट्टके अष्टाङ्गहृदयसे बहुत अंशोंमें साम्य रखता है। इसके बाद लगभग चालीस अध्यायोंमें विभिन्न रोगोंकी चिकित्साहेतु औषधियोंका निरूपण हुआ है। अमुक रोग होनेपर अमुक-अमुक औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। इनके निर्माणकी तथा अनुपान आदिकी विधि बतायी गयी है। एक ही रोगके लिये अनेक औषधिक योगोंको भी बताया गया है।

आयुर्वेदकी औषधियों और वनस्पतियोंका वर्णन जो भगवान् श्रीहरिने शिवजीसे किया था, उसे सुनानेके बाद सूतजीने शौनकादि ऋषियोंको कुमार अर्थात् भगवान् स्कन्दके द्वारा कात्यायनसे कहे गये व्याकरणशास्त्रको सुनाया। यह व्याकरण सिद्ध शब्दोंके ज्ञान एवं बालकोंकी व्युत्पत्ति प्रक्रियाको बढ़ानेमें सहायक है। इसके अनन्तर सूतजीने अल्प बुद्धिवालोंके लिये विशिष्ट बुद्धिकी प्राप्ति-हेतु मात्रा और वर्णके भेदके अनुसार छन्द-विधानको प्रस्तुत किया है।

कर्मविपाकका वर्णन

जगत्सृष्टि और प्रलय आदिकी चक्रगतिको जाननेवाले विद्वान् यदि आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीन सांसारिक तापोंको जानकर ज्ञान और वैराग्यका मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तो आत्यन्तिक लय (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं।

सूतजी कर्मविपाकका वर्णन करते हुए कहते हैं—जीव पापकर्म करनेके कारण नरक-लोकमें जाता है और पुण्यकर्मके कारण स्वर्ग। अपने उन पाप-पुण्योंके प्रभावसे नरक तथा स्वर्गमें गया प्राणी पुनः नरक और स्वर्गसे लौटकर स्त्रियोंके गर्भमें जाता है। गर्भमें विकसित होता हुआ यह जीव नौ मासतक अधोमुख स्थित रहकर दसवें मासमें जन्म लेता है। यह जीव बाल्यावस्था, कौमारावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्थाको प्राप्त करता है। इसके बाद पुनः यह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह जीव इस संसारचक्रमें घटीयन्त्रके समान घूमता रहता है। जीव नरक-भोग करनेके पश्चात् पापयोनियोंमें जन्म लेता है। यहाँ पापयोनियोंका वर्णन सविस्तार किया गया है—मित्रका अपमान करनेवाला गधेकी योनिमें जन्म लेता है। माता-पिताको कष्ट पहुँचानेवाले प्राणीको कछुवेकी योनिमें जाना पड़ता है। जो मनुष्य अपने स्वामीका विश्वसनीय बनकर उसको छलकर जीवन-यापन करता है वह व्यामोहमें फँसे बंदरकी योनिमें जाता है। धरोहर रूपमें अपने पास रखे हुए पराये धनका अपहरण करनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है, नरकसे निकलनेके बाद वह कृमियोनिमें जन्म लेता है। जो मनुष्य विश्वासघाती होता है, वह मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होता है। यज्ञ, दान तथा विवाहादिमें विघ्न डालनेवाले

मनुष्यको कृमियोनि प्राप्त होती है।

देवता, पितर और ब्राह्मणोंको बिना भोजन आदि दिये जो मनुष्य अन्न ग्रहण कर लेता है, वह नरकको जाता है। वहाँसे मुक्त होकर वह काकयोनिको प्राप्त करता है। कृतघ्न व्यक्ति कृमि, कीट, पतंग तथा बिच्छूकी योनियोंमें भ्रमण करता है।

दूसरेकी निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरेकी मर्यादाको नष्ट करना, निष्ठुरता, अत्यन्त घृणित व्यवहारमें अभिरुचि, परस्त्रीके साथ सहवास करना, पराये धनका अपहरण करना, अपवित्र रहना, देवोंकी निन्दा, मर्यादाके बन्धनको तोड़कर अशिष्ट व्यवहार करना, कृपणता तथा मनुष्योंका हनन—यह सब नरक भोगकर जन्म लिये हुए मनुष्योंका लक्षण कहा गया है।

प्राणियोंके प्रति दया, सद्भावपूर्ण वार्तालाप, परलोकके लिये सात्त्विक अनुष्ठान, सत्कार्योंका निष्पादन, सत्यधर्मका पालन, दूसरेका हितचिन्तन, मुक्तिकी साधना, वेदोंमें प्रामाण्य-बुद्धि, गुरु-देवर्षि और सिद्धर्षियोंकी सेवा, साधुजनोंद्वारा बताये गये नियमोंका पालन, सत्क्रियाओंका अनुष्ठान तथा प्राणियोंके साथ मैत्रीभाव—ये स्वर्गसे आये मनुष्योंके लक्षण हैं।

जो मनुष्य योगशास्त्रद्वारा बताये गये यम-नियम आदि अष्टाङ्गयोगके साधनसे सत् ज्ञानको प्राप्त करता है, वह आत्यन्तिक फल—मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

महायोगका वर्णन

श्रीसूतजीने यहाँ समस्त अङ्गोंसहित महायोगका वर्णन किया है। यह महायोग मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेका श्रेष्ठतम साधन है।

महामति भगवान् दत्तात्रेयने राजा अलर्कसे कहा था—हे राजन्! ममता ही दुःखका मूल है और ममताका परित्याग ही दुःखसे निवृत्तिका उपाय है। अहंकार अज्ञानरूपी महातरुका अंकुर है। पापमूलक आपातरमणीय सुख-शान्तिके लिये यह अज्ञानरूपी महातरु पैदा हुआ है। जो लोग ज्ञानरूपी कुल्हाड़ीसे अज्ञानरूप महावृक्षको काट गिराते हैं, वे परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। तदनन्तर ब्रह्मरसको प्राप्त कर उसका भलीभाँति पान करके प्राज्ञपुरुष नित्य सुख एवं परम शान्तिको प्राप्त करते हैं। जो लोग मायापाशसे आबद्ध हैं, वे सभी नित्य-नैमित्तिक ही कार्य करते हैं और उसीमें अन्ततक लगे रहते हैं। इस कारण उन्हें परमात्माका ऐक्य प्राप्त नहीं होता। जो पुनः इस संसारमें जन्म लेते हैं, जो अज्ञानसे मोहित हैं, वे ज्ञानयोग प्राप्त करके अज्ञानसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद वह जीवन्मुक्त योगी न कभी मरता है, न दुःखी होता है, न रोगी होता है और न संसारके किसी बन्धनसे आबद्ध होता है। न वह पापोंसे युक्त होता है, न तो उसे नरकयातनाका ही दुःख भोगना पड़ता है और न उसे गर्भवासमें जाना पड़ता है। वह स्वयं अव्यय नारायणस्वरूप हो जाता है। इस प्रकारकी अनन्य भक्तिसे वह योगी भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् नारायणको प्राप्त कर लेता है।

ध्यान, पूजा, जप, स्तोत्र, व्रत, यज्ञ और दानके नियमोंका पालन करनेसे मनुष्यके चित्तकी शुद्धि होती है। चित्तशुद्धिसे ज्ञान प्राप्त होता है तथा इससे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्ति मिलती है।

भगवद्भक्तिका निरूपण

सूतजी भगवद्भक्तिका निरूपण करते हुए कहते हैं कि प्रभु भक्तिसे जितना संतुष्ट होते हैं, उतना किसी अन्य साधनसे नहीं। भगवान् हरिका निरन्तर स्मरण करना मनुष्योंके लिये महान् श्रेयका मूल है। यह पुण्योंकी उत्पत्तिका साधन है और जीवनका मधुर फल है। इसलिये विद्वानोंने प्रभुकी सेवाको भक्तिका बहुत बड़ा साधन कहा है। भगवान् त्रिलोकीनाथ विष्णुके नाम तथा गुणोंके कीर्तनमें तन्मय होकर जो प्रसन्नताके आँसू बहाते हैं, रोमाञ्चित होकर गद्‌गद हो उठते हैं, वे ही उनके भक्त हैं। इस संसारमें वही श्रेष्ठ है, वही ऐश्वर्यसे सम्पन्न है और वही मोक्षको प्राप्त करता है, जो भगवान् हरिकी भक्तिमें तन्मय रहता है। यदि कोई भगवद्भक्त चाण्डाल जातिका है तो वह भी अपनी पवित्र भक्तिकी महिमासे सबको पवित्र कर देता है।

'हे नाथ! आप मुझपर दया करो, मैं आपकी शरणमें हूँ—ऐसा जो प्राणी कहता है, उसको भगवान् हरि अभय कर देते हैं। किसीसे भी उसको भय नहीं होता, यह भगवान्‌की प्रतिज्ञा है'—

दयां कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत्।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रतं हरेः॥
(१। २२७। ११)

जिन मनुष्योंका मन हरिभक्तिमें रमा हुआ है, उनके सभी प्रकारके पापोंका विनाश निश्चित है।

हाथमें पाश लेकर खड़े हुए अपने दूतको देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं कि हे दूत! तुम उन लोगोंको छोड़ देना, जो मधुसूदन विष्णुके भक्त हैं। मैं तो

अन्य दुराचारी पापियोंका स्वामी हूँ, भक्तोंके स्वामी स्वयं हरि हैं। श्रीविष्णुने सर्वदा कहा है—यदि दुराचारी मनुष्य भी मुझमें अनन्य भक्ति रखता है तो वह साधु ही है; क्योंकि उसने यह निश्चय कर लिया है कि भगवान्‌की भक्तिके समान अन्य कुछ भी नहीं है। भगवान् हरिमें जिस मनुष्यकी भक्ति रहती है, उसके लिये धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गका कोई महत्त्व नहीं है; क्योंकि परम सुखरूप मुक्ति उसके हाथमें ही सदा रहती है।

'इस संसाररूपी विषवृक्षके अमृतके समान दो फल हैं। एक फल है भगवान् केशवकी भक्ति और दूसरा फल है उनके भक्तोंका सत्सङ्ग'—

संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।
कदाचित् केशवे भक्तिस्तद्भक्तैर्वा समागमः॥
(१।२२७।३२)

नाम-संकीर्तनकी महिमाका वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं कि मुक्तिके कारणभूत अनादि, अनन्त, अज, नित्य, अव्यय और अक्षय भगवान् विष्णुको जो व्यक्ति नमन करता है, वह समस्त संसारके लिये नमस्कारके योग्य हो जाता है।

स्वप्नमें भी भगवान् नारायणका नाम लेनेवाला मनुष्य अपनी अक्षय पापराशिको विनष्ट कर देता है। यदि कोई मनुष्य जाग्रत् अवस्थामें परात्पर प्रभुका नाम लेता है तो फिर उसके विषयमें कहना ही क्या? 'हे कृष्ण! हे अच्युत! हे अनन्त! हे वासुदेव! आपको नमस्कार है।' ऐसा कहकर जो भक्तिभावसे विष्णुको प्रणाम करते हैं, वे यमपुरी नहीं जाते। सूर्यके उदित हो जानेपर जैसे अन्धकार विनष्ट हो जाता है, वैसे ही हरिका नाम-संकीर्तन करनेसे प्राणियोंके पापसमूहका विनाश हो जाता है।

सूतजी कहते हैं कि सभी शास्त्रोंका अवलोकन करके तथा पुनः-पुनः विचार करनेपर एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको सदैव नारायणका ध्यान करना चाहिये। इस लोक और परलोकमें प्राणीके लिये जो कुछ दुर्लभ है, जो अपने मनसे भी सोचा नहीं जा सकता, वह बिना माँगे ही ध्यानमात्र करनेसे भगवान् मधुसूदन प्रदान कर देते हैं। पापकर्म करनेवालोंकी शुद्धिका ध्यानके समान अन्य कोई साधन नहीं है। यह ध्यान पुनर्जन्म देनेवाले कारणोंको भस्म करनेवाली योगाग्नि है। भगवान्‌का भक्त अनासक्त भावसे यदि अपने सभी कर्मोंको विष्णुके चरणोंमें समर्पित करता है तो उसके कर्म साधु हों या असाधु बन्धनकारक नहीं होते।

इसके अनन्तर श्रीसूतजी भगवान् शिवद्वारा कही गयी नारसिंहस्तुति (नृसिंहस्तोत्र)-का वर्णन करते हैं। इसके साथ ही 'कुलामृतस्तोत्र' का वर्णन किया गया है, जो देवर्षि नारदके पूछनेपर शिवजीने कहा था। तदनन्तर मार्कण्डेय मुनिके द्वारा कहे गये मृत्युको निवारण करनेवाले 'मृत्यष्टकस्तोत्र' को कहा गया है। इसके बाद प्राणियोंको सब कुछ प्रदान करनेवाले 'अच्युतस्तोत्र' का वर्णन किया गया है। यह स्तोत्र देवर्षि नारदके पूछनेपर ब्रह्माजीने कहा था। सूतजीने इस स्तोत्रकी अत्यधिक महिमाका वर्णन किया है।

आचारकाण्डके अन्तमें ब्रह्मज्ञान और षडङ्गयोग, आत्मज्ञान तथा गीतासारका निरूपण किया है।

जीवका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। यह मुक्ति जीवको तभी प्राप्त होती है, जब वह पुर्यष्टक तथा त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका परित्याग कर देता है। जीवको मुक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रकृतिसे स्वयंको अलग करना अनिवार्य है। इसके लिये शब्द आदि विषयोंके प्रति अनासक्त होना आवश्यक है।

प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, समाधि और ध्यान—ये छः योगके साधन हैं।

इन्द्रियसंयमसे पापक्षय और पापक्षयसे देवप्रीति सुलभ होती है। देवप्रीति भुक्ति एवं मुक्ति-साधनकी ओर उन्मुख होनेके लिये प्रथम एवं अनिवार्य साधन है।

आत्मज्ञान

भगवान् नारदजीसे कहते हैं—कर्मोंसे भवबन्धन और ज्ञान होनेसे जीवकी संसारसे मुक्ति हो जाती है। इसलिये आत्मज्ञानका आश्रय करना चाहिये। जो आत्मज्ञानसे भिन्न ज्ञान है, उसे अज्ञान कहा जाता है। 'जब हृदयमें स्थित सभी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब जीव निस्संदेह जीवनकालमें ही अमृत प्राप्त कर लेता है'—

यदा सर्वे विमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
तदाऽमृतत्वमाप्नोति जीवन्नेव न संशयः॥
(१।२३६।१२)

वस्तुमात्रका सार ब्रह्म ही है। तेजोरूप ब्रह्मको एक अखण्ड परम पुण्यरूप समझना चाहिये। जैसे अपनी आत्मा सबको प्रिय है, वैसे ही ब्रह्म सबको प्रिय है; क्योंकि आत्मा ही ब्रह्म है। सभी तत्त्वज्ञ ज्ञानको सर्वोच्च मानते हैं। इसलिये चित्तका आलम्बन बोधस्वरूप आत्मा ही है। यह आत्मविज्ञान है। यह पूर्ण है। शाश्वत है। जागते-सोते तथा सुषुप्तावस्थामें प्राप्त होनेवाला सुख, पूर्ण सुखरूप

ब्रह्मका ही एक क्षुद्र अंश समझना चाहिये।

हे नारद! मैं अनन्त हूँ, हमारा ज्ञान भी अनन्त है। मैं अपनेमें पूर्ण हूँ। आत्माके द्वारा अनुभूत अन्त:सुख मैं ही हूँ। सात्त्विक, राजस और तामस गुणसे सम्बन्धित भावोंसे मैं नित्य परे रहता हूँ। मैं शुद्ध हूँ। अमृतस्वरूप हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं प्राणियोंके हृदयमें प्रज्वलित वह ज्योति हूँ, जो दीपकके समान उनके अज्ञानरूपी अन्धकारको विनष्ट करती रहती है। यही आत्मज्ञानकी स्थिति है।

गीतासार

गीतासारका वर्णन करते हुए भगवान् नारदजीसे कहते हैं—हे नारद! आत्मकल्याण ही परम कल्याण है। उस आत्मज्ञानसे उत्कृष्ट और कुछ भी नहीं है। आत्मा देहरहित, रूप आदिसे हीन, इन्द्रियोंसे अतीत है। मैं आत्मा हूँ। संसार आदि सम्बन्धके कारण मुझे किसी प्रकारका दु:ख नहीं है। जैसे आकाशमें विद्युत् अग्निका प्रकाश होता है, वैसे ही हृदयमें आत्मा (आत्मज्ञान)-के द्वारा आत्मा प्रकाशित होता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—यह अष्टाङ्गयोग मुक्तिके लिये कहा गया है। शरीर, मन और वाणीको सदा सभी प्राणियोंकी हिंसासे निवृत्त रखना चाहिये; क्योंकि 'अहिंसा ही परम धर्म है और उसीसे परम सुख मिलता है'—

'हिंसाविरामको धर्मो ह्यहिंसा परमं सुखम्'

(१।२३८।३)

सदा सत्य और प्रिय वचन बोलना चाहिये। कभी भी अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये। प्रिय मिथ्या वचन भी नहीं बोलना चाहिये। चोरीसे या बलपूर्वक दूसरेके द्रव्यका अपहरण करना स्तेय है। स्तेय कार्य (चोरी) कभी भी नहीं करना चाहिये; क्योंकि अस्तेय (चोरी न करना) ही धर्मका साधन है। आपत्तिकालमें भी इच्छापूर्वक द्रव्यका ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है। यदृच्छालाभ तथा अनायास-प्राप्तिसे संतुष्ट होना ही संतोष है। यह संतोष ही सभी प्रकारके सुखका साधन है। मन और इन्द्रियोंकी जो एकाग्रता है, वही परम तप है।

कर्म, मन और वाणीसे हरिकी स्तुति, नाम-स्मरण, पूजा आदि कार्य और हरिके प्रति निश्चला भक्तिको ही ईश्वरका चिन्तन कहा जाता है। अपने शरीरगत वायुका नाम प्राण है। उस वायुके निरोधको प्राणायाम कहा जाता है। इन्द्रियाँ असत् विषयोंमें विचरण करती हैं। उनको विषयोंसे निवृत्त करना चाहिये। मूर्त और अमूर्त ब्रह्मचिन्तनको ध्यान कहा जाता है। योगारम्भके समय मूर्तिमान् और अमूर्तरूपमें हरिका ध्यान करना चाहिये। तेजोमण्डलके मध्यमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मधारी चतुर्भुज, कौस्तुभचिह्नसे विभूषित, वनमाली, वायुस्वरूप जो ब्रह्म अधिष्ठित है, 'मैं वही हूँ'। इस प्रकार मनका लय करके परमात्मप्रभुको धारण करना ही धारणा है। 'मैं ही ब्रह्म हूँ' और 'ब्रह्म ही मैं हूँ'—इस प्रकार अहं और ब्रह्म पदार्थका तादात्म्य रूप ही समाधि है।

ब्रह्मगीताका सारतत्त्व वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं—यह सिद्ध है कि परमात्मा है। उसी परमात्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल तथा जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है। जो इस जगत्प्रपञ्चकी भी जन्मदात्री है।

जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी अवस्थाओंसे परे वह ब्रह्म अपने निर्गुण स्वभावमें ही रहता है। उस क्रियाशील शरीरके साथ रहने तथा न रहनेकी स्थितिमें भी वह नित्य शुद्ध स्वभाववाला ही है। उसमें कोई विकृति नहीं आती है। मुमुक्षुके अन्त:करणमें कैवल्य अर्थात् उस परमात्माके साक्षात्कारकी अवस्था आ जाती है। अत: मोक्षार्थीको उस स्थितिमें जीवात्माके विषयमें विचारकर उसको शरीरसे पृथक् समझना चाहिये; क्योंकि आत्मतत्त्वको शरीरसे अतिरिक्त न माननेपर ब्रह्मतत्त्वसे साक्षात्कार करनेमें अनेक बाधाएँ होती हैं। अत: उन बाधाओंको दूर करना अपेक्षित है।

ब्रह्मको नित्य शुद्ध बुद्ध सत्य तथा अद्वैत कहा जाता है। यह आत्मतत्त्व परम ज्योति:स्वरूप है। यह चिदानन्द है। यह सत्य, ज्ञान और अनन्त है। यही तत्त्वमसि है—ऐसा वेदोंका भी कथन है। 'मैं ब्रह्म हूँ', सांसारिक विषयोंसे जो परे रहता है, मैं वही निर्लिप्त देव हूँ। मैं तो वही अनादि देवदेवेश्वर परब्रह्म ही हूँ, जिसके आदि और अन्तका ज्ञान किसीको भी नहीं है, यही गीताका सार है। इसको सुनकर मनुष्य ब्रह्ममें लीन हो सकता है। अर्थात् उसे जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

गरुडपुराणका माहात्म्य

आचारकाण्डके अन्तिम अध्यायमें गरुडपुराणका माहात्म्य वर्णित है। भगवान् श्रीहरि भूतभावन रुद्रसे कहते हैं कि मैंने गरुडपुराणका यह सारभाग आपको सुना दिया, जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यह विद्या, यश, सौन्दर्य, लक्ष्मी और आरोग्य आदिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान लेता है और अन्तमें उसका परम कल्याण हो जाता है।

जिस व्यक्तिके घरमें यह महापुराण रहता है, उसको इसी जन्ममें सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

इस महापुराणको पढ़ने एवं सुननेसे मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो जाती है। जो मनुष्य इस पुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसकी अकालमृत्यु नहीं होती है। पक्षिश्रेष्ठ गरुडजीके द्वारा कहा गया यह महापुराण धन्य है। यह सबका कल्याण करनेवाला है।

धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

धर्मकाण्ड (प्रेतकल्प)-में सर्वप्रथम भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार किया गया है। तदनन्तर देवक्षेत्र नैमिषारण्यमें शौनकादि श्रेष्ठ मुनिगण सूतजी महाराजसे प्रश्न करते हैं कि कुछ लोगोंका कहना है कि शरीरधारी जीव एक शरीरके बाद दूसरे शरीरका आश्रय ग्रहण करता है, जबकि दूसरे विद्वानोंका कहना है कि प्राणीको मृत्युके पश्चात् यमराजकी यातनाओंका भोग करनेके बाद दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है—इन दोनोंमें क्या सत्य है, यह बतानेकी कृपा करें। सूतजी महाराज प्रश्नको सुनकर प्रसन्न होते हैं और इस प्रकार कथाका वर्णन करते हैं—

एक बार विनतापुत्र गरुडके हृदयमें इस ब्रह्माण्डके सभी लोकोंको देखनेकी इच्छा हुई। अतः हरिनामका उच्चारण करते हुए उन्होंने पाताल, पृथ्वी तथा स्वर्ग आदि सभी लोकोंका भ्रमण किया।

पृथ्वीलोकके दुःखसे अत्यन्त दुःखित एवं अशान्तचित्त होकर वे पुनः वैकुण्ठलोक वापस आ गये। वैकुण्ठलोकमें मृत्युलोकके समान रजोगुण तथा तमोगुण आदिकी प्रवृत्ति नहीं है। केवल शुद्ध सत्त्वगुणकी ही प्रवृत्ति है। वहाँ राग-द्वेषादि षड्‌विकार भी नहीं हैं। किसीका वहाँ विनाश नहीं होता। वहाँ भगवान्‌के मनोहारी सुन्दर पार्षद उपस्थित हैं। गरुडजीने देखा कि हरि झूलेपर विराजमान हैं। भगवान् हरिका दर्शन करनेसे विनतासुत गरुडका हृदय आनन्दविभोर हो उठा। आनन्दमग्न होकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम करते हुए कहा—भगवन्! आपकी कृपासे त्रिलोकका परिभ्रमण मैंने कर लिया है। यमलोकको छोड़कर पृथ्वीलोकसे सत्य-लोकतक सब कुछ मेरे द्वारा देखा जा चुका है। सभी लोकोंकी अपेक्षा पृथ्वीलोक प्राणियोंसे अधिक परिपूर्ण है। सभी योनियोंमें मानवयोनि ही भोग और मोक्षका शुभ आश्रय है। अतः सुकृतियोंके लिये ऐसा लोक न तो अभीतक बना है और न भविष्यमें बनेगा। 'देवता लोग भी इस लोककी प्रशंसामें गीत गाते हुए कहते हैं कि जो लोग पवित्र भारतभूमिमें जन्म लेकर निवास करते हैं, वे धन्य हैं। सुरगण भी स्वर्ग एवं अपवर्गरूप फलकी प्राप्तिके लिये पुनः भारतभूमिमें मनुष्यरूपमें जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं'—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
(२।१।२७)

गरुड पूछते हैं—हे प्रभो! आप यह बतानेकी कृपा करें कि मरणासन्न व्यक्तिको किस कारण पृथ्वीपर सुलाया जाता है? उसके मुखमें पञ्चरत्न क्यों डाला जाता है? उसके नीचे कुश और तिल क्यों बिछाये जाते हैं? हे केशव! मृत्युके समय विविध वस्तुओंके दान एवं गोदान, अष्ट महादान किसलिये दिया जाता है? प्राणी कैसे मरता है और मरनेके बाद कहाँ जाता है? उस समय प्राणी आतिवाहिक शरीर कैसे प्राप्त करता है? अग्नि देनेवाले पुत्र-पौत्र उसे कन्धेपर क्यों ले जाते हैं? शवमें घृतका लेप क्यों किया जाता है? शवके उत्तर दिशामें 'यमसूक्त' का पाठ क्यों होता है? मरे हुए व्यक्तिको पीनेके लिये जल एक ही वस्त्र धारण करके क्यों दिया जाता है? शवका दाह-संस्कार करनेके पश्चात् उस व्यक्तिको अपने परिजनोंके साथ बैठकर भोजन आदि क्यों नहीं करना चाहिये? मृत व्यक्तिके पुत्र दसवें दिनके पहले किसलिये नौ पिण्डोंका दान देते हैं? शवका दाह-संस्कार तथा उसके अनन्तर जलतर्पणकी क्रिया क्यों की जाती है? किस विधानसे पितरोंको पिण्डदान देना चाहिये? उस पिण्डको स्वीकार करनेके लिये उनका आवाहन कैसे किया जाता है? दाह-संस्कारके बाद अस्थि-संचयन और घट फोड़नेका विधान क्यों है? दसवें दिन सभी परिजनोंके साथ शुद्धिके लिये स्नान तथा पिण्डदान क्यों करना चाहिये? एकादशाहको वृषोत्सर्ग आदिके सहित पिण्डदान करनेका क्या प्रयोजन है? तेरहवें दिन पददान आदि क्यों किया जाता है? वर्षपर्यन्त सोलह श्राद्ध क्यों किये जाते हैं?

हे प्रभो! मनुष्यका यह शरीर अनित्य है और समय आनेपर ही वह मरता है, किंतु मैं उस छिद्रको नहीं देख पाता हूँ, जिससे जीव निकल जाता है?

प्राणी अपने जीवनकालमें पुण्य और पाप जो भी करता है, नाना प्रकारके दान देता है, वे सब शरीरके नष्ट हो जानेपर उसके साथ कैसे चले जाते हैं? मरे हुए प्राणीके

लिये सपिण्डीकरण क्यों होता है? इस कृत्यमें प्रेतपिण्डका मिलन किसके साथ किस विधिसे होना चाहिये? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

जो मनुष्य पापी, दुराचारी अथवा हतबुद्धि हैं, मरनेके बाद वे किस स्थितिको प्राप्त करते हैं? जो पुरुष आत्मघाती, ब्रह्महत्यारा, स्वर्ण आदिकी चोरी करनेवाला, मित्रादिके साथ विश्वासघात करनेवाला है, उस महापातकीका क्या होता है?

हे माधव! यदि शूद्र प्रणव महामन्त्रका जप करता है तथा ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीतको धारण करता है तो मृत्युके बाद उसकी क्या गति होती है?

गरुडजी कहते हैं कि हे विश्वात्मन्! मैंने कौतूहलवश सम्पूर्ण जगत्‌का भ्रमण किया है, उसमें रहनेवाले लोगोंको मैंने देखा है कि वे सभी दुःखमें ही डूबे रहते हैं। उनके अत्यन्त कष्टोंको देखकर मेरा अन्तःकरण पीड़ासे भर गया, स्वर्गमें दैत्योंकी शत्रुतासे भय है, पृथ्वीलोकमें मृत्यु और रोगादिसे तथा अभीष्ट वस्तुके वियोगसे लोग दुःखी हैं। पाताललोकमें रहनेवाले प्राणियों (नाग आदि)-को मेरे भयसे दुःख बना रहता है। हे प्रभो! आपके इस वैकुण्ठधामके अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी लोकमें ऐसी निर्भयता नहीं दिखायी देती। कालके वशीभूत इस जगत्‌की स्थिति स्वप्नकी मायाके समान असत्य है। उसमें भी इस भारतवर्षमें रहनेवाले लोग बहुत-से दुःखोंको भोग रहे हैं। मैंने देखा है कि उस देशके मनुष्य राग-द्वेष तथा मोह आदिमें आकण्ठ डूबे हुए हैं। उस देशमें कुछ लोग अन्धे हैं, कुछ टेढ़ी दृष्टिवाले हैं, कुछ दुष्ट वाणीवाले हैं, कुछ लूले हैं, कुछ लँगड़े हैं, कुछ काने हैं, कुछ बहरे हैं, कुछ गूँगे हैं, कुछ कोढ़ी हैं, कुछ अधिक रोमवाले हैं, कुछ नाना रोगसे घिरे हैं और कुछ आकाश-कुसुमकी तरह नितान्त मिथ्याभिमानसे चूर हैं। उनके विचित्र दोषोंको तथा उनकी मृत्युको देखकर मेरे मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी है कि यह मृत्यु क्या है? इस भारतवर्षमें यह कैसी विचित्रता है? ऋषियोंसे मैंने पहले ही इस विषयमें सामान्यतः यह सुन रखा है कि जिसकी विधिपूर्वक वार्षिक क्रियाएँ नहीं होती हैं, उसकी दुर्गति होती है। फिर भी प्रभो! इसकी विशेष जानकारीके लिये मैं आपसे पूछ रहा हूँ।

हे उपेन्द्र! मनुष्यकी मृत्युके समय उसके कल्याणके लिये क्या करना चाहिये? कैसा दान देना चाहिये? मृत्यु और श्मशानभूमितक पहुँचनेकी कौन-सी विधि अपेक्षित है? चितामें शवको जलानेकी क्या विधि है? तत्काल अथवा विलम्बसे उस जीवको कैसे दूसरी देह प्राप्त होती है? यमलोक (संयमनी नगरी)-को जानेवालेके लिये वर्षपर्यन्त कौन-सी क्रियाएँ करनी चाहिये? दुर्बुद्धि अर्थात् दुराचारी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उसका प्रायश्चित्त क्या है? पञ्चकादिमें मृत्यु होनेपर पञ्चकशान्तिके लिये क्या करना चाहिये? हे देव! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप मेरे इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट करनेमें समर्थ हैं। मैंने आपसे यह सब लोकमङ्गलकी कामनासे पूछा है, मुझे बतानेकी कृपा करें।

मरणासन्न व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले कर्म

श्रीकृष्णजी गरुडसे कहते हैं—आपने मनुष्योंके हितमें बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात पूछी है। जिसको देवतागण, योगीजन नहीं देख सके, जो गुह्यातिगुह्य है, उसे मैं बता रहा हूँ।

पुत्रकी महिमा बताते हुए भगवान् कहते हैं—यदि मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता है तो पुत्र नरकसे उसका उद्धार कर देता है। पुत्र और पौत्रको मरे हुए प्राणीको कन्धा देना चाहिये तथा उसका यथाविधान अग्निदाह करना चाहिये।

सबसे पहले गोबरसे भूमिको लीपना चाहिये। तदनन्तर जलकी रेखासे मण्डल बनाना चाहिये। इसके बाद उस स्थानपर तिल और कुश बिछाकर मरणासन्न व्यक्तिको कुशासनपर सुला देना चाहिये तथा उसके मुखमें स्वर्ण आदि पञ्चरत्न डालना चाहिये। यह सब कार्य करनेसे वह प्राणी अपने समस्त पापोंको जलाकर पापमुक्त हो जाता है। भूमिपर मण्डल बनानेका अत्यधिक महत्त्व बताया गया है। भूमिपर बनाये गये ऐसे मण्डलमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी तथा अग्नि आदि देवता विराजमान हो जाते हैं, अतः मण्डलका निर्माण अवश्य करना चाहिये। मण्डलविहीन भूमिपर प्राणत्याग करनेपर उसे अन्य योनि नहीं प्राप्त होती, उसकी जीवात्मा वायुके साथ भटकती रहती है। तिल और कुशकी महत्ता बताते हुए भगवान् कहते हैं कि हे गरुड! तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं, अतः तिल बहुत ही पवित्र हैं। तिलका प्रयोग करनेपर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं। एक ही तिलका दान स्वर्णके बत्तीस सेर तिलके बराबर है। तर्पण, दान एवं होममें दिया गया तिलका दान अक्षय होता है। कुश मेरे शरीरके रोमोंसे उत्पन्न हुए हैं। कुशके मूलमें ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु तथा अग्रभागमें शिवको जानना चाहिये। ये तीनों देव कुशमें प्रतिष्ठित माने गये हैं। इसलिये देवताओंकी तृप्तिके लिये मुख्यरूपसे

कुशकी और पितरोंकी तृप्तिके लिये तिलकी आवश्यकता होती है। देवताओं और पितरोंकी तृप्ति ही विश्वकी तृप्तिमें हेतु है। अतः श्राद्धकी जो विधियाँ बतायी गयी हैं, उन्हींके अनुसार मनुष्यको ब्रह्मा, देवदेवेश्वर तथा पितृजनोंको संतृप्त करना चाहिये। ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी—ये बार-बार प्रयुक्त होनेपर भी बासी नहीं होते।

'हे पक्षिश्रेष्ठ! विष्णु, एकादशीव्रत, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गौ—ये छः दुर्गम असार-संसारमें लोगोंको मुक्ति प्रदान करनेके साधन हैं'—

विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः ॥
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी।
(२।२।२४-२५)

मृत्युकालमें मरणासन्नके दोनों हाथोंमें कुश रखना चाहिये। इससे प्राणी विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

लवणरस पितरोंको प्रिय होता है और स्वर्गको प्रदान करता है। यह लवणरस भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इसलिये अन्नादिके साथ लवणका दान करना चाहिये। इस पृथ्वीपर यदि किसी आतुर व्यक्तिके प्राण न निकलते हों तो उसके लिये स्वर्गका द्वार खोलनेके लिये लवणका दान करना चाहिये।

उसके समीप तुलसीका वृक्ष एवं शालग्रामकी शिलाको भी लाकर रखे। तत्पश्चात् यथाविधान विभिन्न सूक्तोंका पाठ करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु मुक्तिदायक होती है। उसके बाद मरे हुए प्राणीके शरीरगत विभिन्न स्थानोंमें सोनेकी शलाकाओंको रखनेका विधान है, जिसके अनुसार क्रमशः एक शलाका मुख, एक-एक शलाका नाकके दोनों छिद्र, दो-दो शलाकाएँ नेत्र और कान, एक शलाका लिङ्ग तथा एक शलाका उसके ब्रह्माण्डमें रखनी चाहिये। उसके दोनों हाथ एवं कण्ठभागमें तुलसी रखे। उसके शवको दो वस्त्रोंसे आच्छादित करके कुंकुम और अक्षतसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पुष्पोंकी मालासे विभूषित करके उसे बन्धु-बान्धवों तथा पुत्र एवं पुरवासियोंके साथ अन्य द्वारसे ले जाय। उस समय अपने बान्धवोंके साथ पुत्रको मरे हुए पिताके शवको कन्धेपर रखकर स्वयं ले जाना चाहिये।

श्मशान देशमें पहुँचकर पुत्र पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख वहाँकी उस भूमिपर चिताका निर्माण करवाये, जो पहलेसे जली न हो। उस चितामें चन्दन, तुलसी और पलाशादिकी लकड़ीका प्रयोग करना चाहिये।

जब मरणासन्न व्यक्तिकी इन्द्रियोंका समूह व्याकुल हो उठता है, चेतन शरीर जडीभूत हो जाता है, उस समय प्राण शरीरको छोड़कर यमराजके दूतोंके साथ चल देते हैं।

उस समय जो प्राणी दुरात्मा होते हैं, उन्हें यमदूत अपने पाशबन्धनोंसे जकड़कर मारते हैं। जो सुकृती हैं, उनको स्वर्गके पार्षद सुखपूर्वक अपने लोकको ले जाते हैं। यमलोकके दुर्गम मार्गमें पापियोंको दुःख झेलते हुए जाना पड़ता है।

यमराज अपने लोकमें शङ्ख, चक्र तथा गदा आदिसे विभूषित चतुर्भुज रूप धारणकर पुण्यकर्म करनेवाले साधु पुरुषोंके साथ मित्रवत् आचरण करते हैं और पापियोंको संनिकट बुलाकर उन्हें अपने दण्डसे तर्जना देते हैं। वे प्रलयकालीन मेघके समान गर्जना करनेवाले हैं। अञ्जनगिरिके सदृश उनका कृष्णवर्ण है। तथा एक बहुत बड़े भैंसेपर सवार होते हैं। ये महाक्रोधी एवं अत्यन्त भयंकर हैं। भीमकाय दुराकृति यमराज अपने हाथोंमें लोहेका दण्ड और पाश धारण करते हैं। उनके मुख तथा नेत्रोंको देखनेसे ही पापियोंके मनमें भय उत्पन्न हो उठता है। इस प्रकारका महाभयानक यमराज जब पापियोंको दिखायी पड़ते हैं, उस समय हाहाकार करता हुआ अङ्गुष्ठमात्रका मृत पुरुष अपने घरकी ओर देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा ले जाया जाता है।

प्राणोंसे मुक्त-शरीर—चेष्टाहीन हो जाता है। उसको देखनेसे मनमें घृणा उत्पन्न होने लगती है। वह तुरंत अस्पृश्य तथा दुर्गन्धयुक्त और सभी प्रकारसे निन्दित हो जाता है। यह शरीर अन्तमें कीट, विष्ठा या राखमें परिवर्तित हो जाता है। हे तार्क्ष्य! क्षणभरमें विध्वंस होनेवाले इस शरीरपर कौन ऐसा होगा जो गर्व करेगा। इस असत्-शरीरसे होनेवाले वित्तका दान, आदरपूर्वक वाणी, कीर्ति, धर्म, आयु और परोपकार ही सारभूत है। यमलोक ले जाते हुए यमदूत प्राणीको बार-बार नरकका तीव्र भय दिखाते हुए डाँटकर यह कहते हैं कि हे दुष्टात्मन्! तू शीघ्र चल। तुझे यमराजके घर जाना है। शीघ्र ही हम सब तुझे 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें ले चलेंगे। उस समय इस प्रकारकी वाणी और बन्धु-बान्धवोंका रुदन सुनकर ऊँचे स्वरमें हा-हा करके विलाप करता हुआ वह मृतक यमदूतोंके द्वारा यमलोक पहुँचाया जाता है। [शेष पृष्ठ-संख्या ५१५ से]

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

संक्षिप्त गरुडपुराण

आचारकाण्ड

भगवान् विष्णुकी महिमा तथा उनके अवतारोंका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

'नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनरनारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणका प्रवचन करना चाहिये।'

जो जन्म और जरासे रहित कल्याणस्वरूप—अजन्मा तथा अजर हैं, अनन्त एवं ज्ञानस्वरूप हैं, महान् हैं, विशुद्ध (मलरहित), अनादि एवं पाञ्चभौतिक शरीरसे हीन हैं, समस्त इन्द्रियोंसे रहित और सभी प्राणियोंमें स्थित हैं, मायासे परे हैं, उन सर्वव्यापक, परम पवित्र, मङ्गलमय, अद्वय भगवान् श्रीहरिकी मैं वन्दना करता हूँ। मैं मन-वाणी और कर्मसे विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणेश तथा देवी सरस्वतीको सर्वदा नमस्कार करता हूँ।[1]

एक बार सर्वशास्त्रपारङ्गत, पुराणविद्याकुशल, शान्तचित्त महात्मा सूतजी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें नैमिषारण्य आये और एक पवित्र आसनपर स्थित होकर भगवान् विष्णुका ध्यान करने लगे। ऐसे उन क्रान्तदर्शी तपस्वीका दर्शन करके नैमिषारण्यवासी शौनकादि मुनियोंने उनकी पूजा की और स्तुति करते हुए उनसे यह निवेदन किया—

ऋषियोंने कहा—हे सूतजी! आप तो सब कुछ जानते हैं, इसलिये हम सब आपसे पूछते हैं कि देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ देव कौन हैं, ईश्वर कौन हैं और कौन पूज्य हैं? ध्यान करनेके योग्य कौन हैं? इस जगत्के स्रष्टा, पालनकर्ता और संहर्ता कौन हैं? किनके द्वारा यह (सनातन) धर्म प्रवर्तित हो रहा है और दुष्टोंके विनाशक कौन हैं? उन देवका कैसा स्वरूप है? किस प्रकार इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि हुई है? किन व्रतोंका पालन करनेसे वे देव संतुष्ट होते हैं? किस योगके द्वारा उनको प्राप्त किया जा सकता है? उनके कितने अवतार हैं? उनकी वंश-परम्परा कैसी है? वर्णाश्रमादि धर्मोंके प्रवर्तक एवं रक्षक कौन हैं? हे महामते श्रीसूतजी! इन सबको और अन्य विषयोंको हमें बतायें तथा भगवान् नारायणकी सभी उत्तम कथाओंका वर्णन करें।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! मैं उस गरुडमहापुराणका वर्णन करता हूँ, जो सारभूत है और भगवान् विष्णुकी कथाओंसे परिपूर्ण है। प्राचीन कालमें इस पुराणको श्रीगरुडजीने कश्यप ऋषिको सुनाया था और मैंने इसे व्यासजीसे सुना था। हे ऋषियो! भगवान् नारायण ही सब देवोंमें श्रेष्ठ देव हैं। वे ही परमात्मा एवं परब्रह्म हैं। उन्हींसे इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारकी क्रियाएँ होती हैं। वे जरा-मरणसे रहित हैं। वे भगवान् वासुदेव अजन्मा

---

१. अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम्।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिममलममायं सर्वगं वन्द एकम्॥
नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणं च गणाधिपम्। देवीं सरस्वतीं चैव मनोवाक्कर्मभिः सदा॥ (१।१-२)

होते हुए भी जगत्की रक्षाके लिये सनत्कुमार आदि अनेक रूपोंमें अवतार ग्रहण करते हैं।

हे ब्रह्मन्! उन भगवान् श्रीहरिने सर्वप्रथम कौमार-सर्गमें (सनत्कुमारादिके रूपमें) अवतार धारण करके कठोर तथा अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया। दूसरे अवतारमें उन्हीं यज्ञेश्वर श्रीहरिने जगत्की स्थितिके लिये (हिरण्याक्षके द्वारा) रसातलमें ले जायी गयी पृथिवीका उद्धार करते हुए 'वराह'-शरीरको धारण किया। तीसरे ऋषि-सर्गमें देवर्षि (नारद)-के रूपमें अवतरित होकर उन्होंने 'सात्वत तन्त्र' (नारदपाञ्चरात्र)-का विस्तार किया, जिससे निष्काम कर्मका प्रवर्तन हुआ। चौथे 'नरनारायण'-अवतारमें भगवान् श्रीहरिने धर्मकी रक्षाके लिये कठोर तपस्या की और वे देवताओं तथा असुरोंद्वारा पूजित हुए। पाँचवें अवतारमें भगवान् श्रीहरि 'कपिल'-नामसे अवतरित हुए, जो सिद्धोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और जिन्होंने कालके प्रभावसे लुप्त हो चुके सांख्यशास्त्रकी शिक्षा दी। छठे अवतारमें भगवान् नारायणने महर्षि अत्रिकी पत्नी अनसूयाके गर्भसे 'दत्तात्रेय' के रूपमें अवतीर्ण होकर राजा अलर्क और प्रह्लाद आदिको आन्वीक्षिकी (ब्रह्म) विद्याका उपदेश दिया। सातवें अवतारमें श्रीनारायणने इन्द्रादि देवगणोंके साथ यज्ञका अनुष्ठान किया और इसी स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वे आकूतिके गर्भसे रुचि प्रजापतिके पुत्ररूपमें 'यज्ञदेव' नामसे अवतीर्ण हुए। आठवें अवतारमें वे ही भगवान् विष्णु नाभि एवं मेरुदेवीके पुत्ररूपमें 'ऋषभदेव' नामसे प्रादुर्भूत हुए। इस अवतारमें इन्होंने नारियोंके उस आदर्श मार्ग (गृहस्थाश्रम)-का निदर्शन किया, जो सभी आश्रमोंद्वारा नमस्कृत है। ऋषियोंकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीहरिने नवें अवतारमें पार्थिव शरीर अर्थात् 'पृथु'का रूप धारण किया और (गोरूपा पृथिवीसे) दुग्धरूपमें (अन्नादिक) महौषधियोंका दोहन किया, जिससे प्रजाओंके जीवनकी रक्षा हुई। दसवें अवतारमें 'मत्स्यावतार' ग्रहणकर इन्होंने चाक्षुष मन्वन्तरके बाद आनेवाले प्रलयकालमें (निराश्रित) वैवस्वत मनुको पृथ्वीरूपी नौकामें बैठाकर सुरक्षा प्रदान की। ग्यारहवें अवतारमें देवों और दानवोंने समुद्र-मन्थन किया तो उस समय भगवान् नारायणने 'कूर्म'रूप ग्रहण करके मन्दराचल पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया। उन्होंने बारहवें अवतारमें 'धन्वन्तरि' तथा तेरहवें अवतारमें 'मोहिनी'का रूप ग्रहण किया और इसी स्त्रीरूपमें उन्होंने (अपने सौन्दर्यसे) दैत्योंको मुग्ध करते हुए देवताओंको अमृतपान कराया। चौदहवें अवतारमें भगवान् विष्णुने 'नृसिंह'का रूप धारणकर अपने तेज नखाग्रोंसे पराक्रमी दैत्यराज हिरण्यकशिपुके हृदयको उसी प्रकार विदीर्ण किया, जिस प्रकार चटाई बनानेवाला व्यक्ति तिनकेको चीर डालता है। पंद्रहवें अवतारमें 'वामन'रूप धारणकर वे राजा बलिके यज्ञमें गये और देवोंको तीनों लोक प्रदान करनेकी इच्छासे उनसे तीन पग भूमिकी याचना की। सोलहवें (परशुराम नामक) अवतारमें ब्राह्मणद्रोही क्षत्रियोंके अत्याचारोंको देखकर उनको क्रोध आ गया और उसी भावावेशमें उन्होंने इक्कीस बार पृथिवीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया। तदनन्तर सत्रहवें अवतारमें ये पराशरद्वारा सत्यवतीसे (व्यास-नामसे) अवतरित हुए और मनुष्योंकी अल्पज्ञताको जानकर इन्होंने वेदरूपी वृक्षको अनेक शाखाओंमें विभक्त किया। श्रीहरिने देवताओंके कार्योंको करनेकी इच्छासे राजाके रूपमें 'श्रीराम'-नामसे अट्ठारहवाँ अवतार लेकर समुद्रबन्धन आदि अनेक पराक्रमपूर्ण कार्य किया। उन्नीसवें तथा बीसवें अवतारमें श्रीहरिने वृष्णिवंशमें 'कृष्ण' एवं 'बलराम'का रूप धारण करके पृथ्वीके भारका हरण किया। इक्कीसवें अवतारमें भगवान् कलियुगकी सन्धिके अन्तमें देवद्रोहियोंको मोहित करनेके लिये कीकट देशमें जिनपुत्र 'बुद्ध'के नामसे अवतीर्ण होंगे और इसके पश्चात् कलियुगकी आठवीं सन्ध्यामें अधिकांश राजवर्गके समाप्त होनेपर वे ही श्रीहरि विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घरमें 'कल्कि' नामसे अवतार ग्रहण करेंगे।

हे द्विजो! (मैंने यहाँपर भगवान् नारायणके कुछ ही अवतारोंकी कथाका वर्णन किया है। सत्य तो यह है कि) सत्त्वगुणके अधिष्ठान भगवान् विष्णुके असंख्य अवतार हैं। मनु, वेदवेत्ता तथा सृष्टिप्रवर्तक सभी ऋषि उन्हीं विष्णुकी विभूतियाँ कही गयी हैं। उन्हीं मनु आदि श्रेष्ठ ऋषियोंसे इस जगत्की सृष्टि आदि होती है, इसीलिये व्रत आदिके द्वारा इनकी पूजा करनी चाहिये। प्राचीन कालमें भगवान् वेदव्यासने इसी 'गरुडमहापुराण'को मुझे सुनाया था। (अध्याय १)

गरुडपुराणकी वक्तृ-श्रोतृ-परम्परा, भगवान् विष्णुद्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा गरुडजीको पुराणसंहिताके प्रणयनका वरदान

ऋषियोंने पुनः कहा—(हे सूतजी महाराज!) आपको महात्मा व्यासजीने विष्णुकथासे आश्रित इस श्रेष्ठ गरुडमहापुराणको किस प्रकार सुनाया था? वह सब आप हमें विधिवत् सुनानेकी कृपा करें।

सूतजी बोले—एक बार मुनियोंके साथ मैं बदरिकाश्रम गया था। वहाँपर परमेश्वरके ध्यानमें निमग्न भगवान् व्यासका मुझे दर्शन हुआ। उन्हें प्रणाम करके मैं वहींपर बैठ गया और उन मुनीश्वरसे मैंने पूछा—हे व्यासजी! आप परमेश्वर भगवान् श्रीहरिके स्वरूप और जगत्‌की सृष्टि आदिको मुझे सुनायें, क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप उन्हीं परम पुरुषका ध्यान कर रहे हैं और उन सर्वज्ञके स्वरूपका परिज्ञान भी आपको है। हे विप्रवृन्द! मैंने व्यासदेवके सामने जब ऐसी जिज्ञासा की तो उन्होंने मुझसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं आप सभीसे कह रहा हूँ, सुनें।

व्यासजीने कहा—हे सूतजी! ब्रह्माजीने जिस प्रकार नारद एवं प्रजापति दक्ष आदिसे तथा मुझसे इस पुराणकी कथा कही थी, उसी प्रकार मैं गरुडमहापुराणको सुनाता हूँ। आप सब (उसे) सुनें।

सूतजीने पूछा—(हे भगवन्!) ब्रह्माजीने देवर्षि नारद और प्रजापति दक्षसहित आपसे किस प्रकारके पवित्र एवं सारतत्त्व बतानेवाले पुराणको कहा था?

व्यासजीने कहा—एक बार नारद, दक्ष तथा भृगु आदि ऋषियोंके साथ मैं ब्रह्मलोकमें विद्यमान श्रीब्रह्माजीके पास गया और उन्हें प्रणामकर मैंने प्रार्थना की कि हे प्रभो! आप हमें सारतत्त्व बतानेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—यह गरुडमहापुराण अन्य सभी शास्त्रोंका सारभूत है। प्राचीन कालमें भगवान् विष्णुने अन्य देवताओंसहित रुद्रदेव (शिव) और मुझसे जिस प्रकार इसे कहा था, उसी प्रकार मैं भी इसका वर्णन आपसे कर रहा हूँ।

व्यासजीने कहा—भगवान् श्रीहरिने अन्य देवोंके साथ रुद्रदेवको किस प्रकारसे सारभूत और महान् अर्थ बतलानेवाले इस गरुडमहापुराणको सुनाया था? हे ब्रह्मन्! उसे आप सुनायें।

ब्रह्माजी बोले—एक बार इन्द्रादि देवताओंके साथ मैं कैलासपर्वतपर पहुँच गया। वहाँ मैंने देखा कि रुद्रदेव शङ्कर परम तत्त्वके ध्यानमें निमग्न हैं। मैंने प्रणाम करके उनसे पूछा—हे सदाशिव! आप किस देवका ध्यान कर रहे हैं? मैं तो आपसे अतिरिक्त अन्य किसी देवताको नहीं जानता हूँ। इन सभी देवताओंके साथ उस परम सारतत्त्वको जाननेकी मेरी इच्छा है। अतः आप उसका वर्णन करें।

श्रीरुद्रजीने ब्रह्माजीसे कहा—मैं तो सर्वफलदायक, सर्वव्यापी, सर्वरूप, सभी प्राणियोंके हृदयमें अवस्थित परमात्मा तथा सर्वेश्वर उन भगवान् विष्णुका ध्यान करता हूँ। हे पितामह! उन्हीं विष्णुकी आराधना करनेके लिये मैं शरीरमें भस्म तथा सिरपर जटाजूट धारण करके व्रताचरणमें निरत रहता हूँ। जो सर्वव्यापक, जयशील, अद्वैत, निराकार एवं पद्मनाभ हैं, जो निर्मल (शुद्ध) तथा पवित्र हंसस्वरूप हैं, मैं उन्हीं परमपद परमेश्वर भगवान् श्रीहरिका ध्यान करता हूँ। इस सारतत्त्व (श्रीविष्णु)-के विषयमें उन्हींके पास चलकर हम सभीको पूछना चाहिये।

जिनमें सम्पूर्ण जगत्‌का वास है। प्रलयकालमें जिनमें सम्पूर्ण जगत् प्रविष्ट हो जाता है, सब प्रकारसे अपनेको उन्हींकी शरणमें करके मैं उन्हींका चिन्तन करता हूँ। जिन सर्वभूतेश्वरमें सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण एक सूत्रमें अवगुम्फित मणियोंके समान विद्यमान रहते हैं, जो हजार नेत्र, हजार चरण, हजार जंघा तथा श्रेष्ठ मुखसे युक्त हैं, जो सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, स्थूलसे भी स्थूल, गुरुसे गुरुतम और पूज्योंमें पूज्यतम तथा श्रेष्ठोंमें भी श्रेष्ठतम हैं, जो सत्योंके परम सत्य और सत्यकर्मा कहे गये हैं, जो (पुराणोंमें) पुराणपुरुष और द्विजातियोंमें ब्राह्मण हैं, जो प्रलयकालमें सङ्कर्षण कहलाते हैं; मैं उन्हीं परम उपास्यकी उपासना करता हूँ।

जिन सत्-असत्‌से परे, ऋत (सत्यस्वरूप), एकाक्षर (प्रणवस्वरूप) परब्रह्मकी देव, यक्ष, राक्षस और नागगण अर्चना करते हैं, जिनमें सभी लोक उसी प्रकार स्फुरित होते हैं, जिस प्रकार जलमें छोटी-छोटी मछलियाँ स्फुरित होती हैं, जिनका मुख अग्नि, मस्तक द्युलोक, नाभि आकाश, चरणयुग्म पृथ्वी और नेत्र सूर्य तथा चन्द्र हैं; ऐसे उन (विष्णु) देवका मैं ध्यान करता हूँ।

जिनके उदरमें स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल—ये तीनों लोक

विद्यमान हैं। समस्त दिशाएँ जिनकी भुजाएँ हैं, पवन जिनका उच्छ्वास है, मेघमालाओंका समूह जिनका केश-पुञ्ज है, नदियाँ ही जिनके सभी अङ्गोंकी सन्धियाँ हैं और चारों समुद्र जिनकी कुक्षि हैं, जो कालातीत हैं, यज्ञ एवं सत्-असत्‌से परे हैं, जो जगत्‌के आदि कारण तथा स्वयं अनादि हैं, ऐसे उन नारायणका मैं चिन्तन करता हूँ।

जिनके मनसे चन्द्रमा, नेत्रोंसे सूर्य और मुखसे अग्नि उत्पन्न हैं, जिनके चरणोंसे पृथिवीकी, कानोंसे दिशाओंकी और मस्तकसे स्वर्गकी सृष्टि हुई है, जिन परमेश्वरसे सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित प्रवर्तित हुआ है; उन देवकी मैं आराधना करता हूँ। परम सारतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये हम सभीको उन्हींकी शरणमें जाना चाहिये।

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी! प्राचीन कालमें रुद्रके द्वारा ऐसा कहे जानेपर श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले भगवान् विष्णुको प्रणाम करके उनकी स्तुतिकर उस परम तत्त्वके सारको सुननेकी इच्छासे देवगणोंके साथ मैं भी वहींपर स्थित हो गया। तदनन्तर हमारे मध्य अवस्थित रुद्रने उन परम सारतत्त्वस्वरूप विष्णुको प्रणाम करके (यह) जिज्ञासा करते हुए कहा—हे देवेश्वर! हे हरे! आप हम सबको यह बतायें कि कौन देवाधिदेव हैं और कौन ईश्वर हैं? कौन ध्येय तथा कौन पूज्य हैं? किन व्रतोंसे वे परम तत्त्व संतुष्ट होते हैं? किन धर्मोंके द्वारा, किन नियमोंसे अथवा किस धार्मिक पूजासे और किस आचरणसे वे प्रसन्न होते हैं? उन ईश्वरका वह स्वरूप कैसा है? किन देवके द्वारा इस जगत्‌की सृष्टि हुई है और कौन इस जगत्‌का पालन करते हैं? वे किन-किन अवतारोंको धारण करते हैं? प्रलयकालमें यह विश्व किन देवमें लीन होता है? सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश तथा मन्वन्तर किन देवसे प्रवर्तित होते हैं और यह सब (दृश्यमान जगत्) किन देवमें प्रतिष्ठित है? हे हरे! इन सभी विषयोंके साथ अन्य जो भी सारतत्त्व हैं, उन्हें बतायें और इसके साथ ही परमेश्वरके माहात्म्य तथा ध्यानयोगके विषयमें भी बतानेकी कृपा करें।

तदनन्तर भगवान् विष्णुने रुद्रको उस परमेश्वरके माहात्म्य एवं (उसकी प्राप्तिके साधनभूत) ध्यान और योगादिक नियमों तथा अष्टादश विद्याओंका ज्ञान (इस प्रकारसे) दिया—

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! मैं बताता हूँ, ब्रह्मा और अन्य देवोंके साथ आप उसका श्रवण करें—

मैं ही सभी देवोंका देव हूँ। मैं ही सभी लोकोंका स्वामी हूँ। देवोंका मैं ही ध्येय, पूज्य और स्तुतियोंसे स्तुति करने योग्य हूँ। हे रुद्र! मैं ही मनुष्योंसे पूजित होकर उन्हें परम गति प्रदान करता हूँ तथा व्रत, नियम और सदाचरणसे संतुष्ट होकर हे शिव! मैं ही इस संसारकी स्थितिका मूल कारण हूँ। मैं ही जगत्‌की रचना करनेवाला हूँ। हे शङ्कर! मैं ही दुष्टोंका निग्रह और धर्मकी रक्षा करता हूँ। मैं ही मत्स्य आदिके रूपमें अवतीर्ण होकर अखिल भूमण्डलका पालन करता हूँ। मैं ही मन्त्र हूँ। मैं ही मन्त्रका अर्थ हूँ और मैं ही पूजा तथा ध्यानके द्वारा प्राप्त होनेवाला परम तत्त्व हूँ। मैंने ही स्वर्ग आदिकी सृष्टि की है और मैं ही स्वर्गादि भी हूँ। मैं ही योगी, आद्य योग और पुराण हूँ। ज्ञाता, श्रोता तथा मननकर्ता मैं ही हूँ। वक्ता और सम्भाषणका विषय भी मैं ही हूँ। इस जगत्‌के समस्त पदार्थ मेरे ही स्वरूप हैं और मैं ही सब कुछ हूँ। मैं ही भोग और मोक्षका प्रदायक परम देव हूँ। हे रुद्र! ध्यान, पूजाके उपचार और (सर्वतोभद्र) मण्डल आदि सब कुछ मैं ही हूँ। हे शिव! मैं ही सम्पूर्ण वेद हूँ। मैं ही इतिहासस्वरूप हूँ। मैं ही सर्वज्ञानमय हूँ। मैं ही ब्रह्म और सर्वात्मा हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ, मैं ही सर्वलोकमय हूँ तथा मैं ही सभी देवोंका आत्मस्वरूप हूँ। मैं ही साक्षात् सदाचार हूँ। मैं ही धर्म हूँ। मैं ही वैष्णव हूँ। मैं ही वर्णाश्रम हूँ। मैं ही सभी वर्णों और आश्रमोंका सनातन धर्म हूँ। हे रुद्र! मैं ही यम-नियम और विविध प्रकारका व्रत हूँ। मैं ही सूर्य, चन्द्र एवं मंगल आदि ग्रह हूँ।

प्राचीन कालमें पृथिवीपर पक्षिराज गरुडने तपस्याके द्वारा मेरी ही आराधना की थी। उनकी तपस्यासे संतुष्ट होकर मैंने उनसे कहा था कि आप मुझसे अभीष्ट वर माँग लें।

उस समय गरुडने कहा—हे हरि! नागोंने मेरी माता विनताको दासी बना लिया है। हे देव! आप प्रसन्न होकर मुझे यह वर प्रदान करें कि मैं उनको जीतकर अमृत प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकूँ और माँको (नागोंकी माता) कद्रूकी दासतासे मुक्त करा सकूँ, मैं आपका वाहन बन सकूँ, महान् बली, महान् शक्तिशाली, सर्वज्ञ और नागोंको विदीर्ण करनेमें समर्थ हो सकूँ तथा जिस प्रकार पुराण-संहिताका रचनाकार हो सकूँ वैसा ही करनेकी कृपा करें।

श्रीविष्णु बोले—हे पक्षिराज गरुड! आपने जैसा वर

माँगा है, वैसा ही सब कुछ होगा। आप नागोंकी दासतासे

अपनी माता विनताको मुक्त करवा सकेंगे। सभी देवताओंको जीतकर अमृत ग्रहण करनेमें आपको सफलता प्राप्त होगी। अत्यन्त शक्तिसम्पन्न होकर आप मेरे वाहन होंगे। विषोंके विनाशकी शक्ति भी आपको प्राप्त होगी। मेरी कृपासे आप मेरे ही माहात्म्यको कहनेवाली पुराण-संहिताका प्रणयन करेंगे। मेरा जैसा स्वरूप कहा गया है, वैसा ही आपमें भी प्रकट होगा। आपके द्वारा प्रणीत यह पुराणसंहिता आपके 'गरुड' नामसे लोकमें प्रसिद्ध होगी।

हे विनतासुत! जिस प्रकार देव-देवोंके मध्य मैं ऐश्वर्य और श्रीरूपमें विख्यात हूँ, उसी प्रकार हे गरुड! सभी पुराणोंमें यह गरुडमहापुराण भी ख्याति अर्जित करेगा। जैसे विश्वमें मेरा कीर्तन होता है, वैसे ही गरुडके नामसे आपका भी संकीर्तन होगा। हे पक्षिश्रेष्ठ! अब आप मेरा ध्यान करके उस पुराणका प्रणयन करें।

हे रुद्र! मेरे द्वारा यह वरदान दिये जानेके बाद इसी सम्बन्धमें कश्यप ऋषिके द्वारा पूछे जानेपर गरुडने इसी पुराणको उन्हें सुनाया। कश्यपने इस गरुडमहापुराणका श्रवण करके गारुडीविद्याके बलसे एक जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था। गरुडने स्वयं (भी) इसी विद्याके द्वारा अनेक प्राणियोंको जीवित किया था। 'यक्षि ॐ उं स्वाहा' यह जप करने योग्य गारुडी पराविद्या है। हे रुद्र! मेरे स्वरूपसे परिपूर्ण गरुडद्वारा कहे गये इस गरुडमहापुराणको आप सुनें।

(अध्याय २)

गरुडपुराणके प्रतिपाद्य विषयोंका निरूपण

सूतजीने कहा—हे शौनक! जिस गरुडमहापुराणको ब्रह्मा और शिवने भगवान् विष्णुसे, मुनिश्रेष्ठ व्यासने ब्रह्मासे और मैंने व्याससे सुना था, उसे ही इस नैमिषारण्यमें आप सबको मैं सुना रहा हूँ। इस गरुडमहापुराणके प्रारम्भमें सर्गवर्णन तदनन्तर देवार्चन, तीर्थमाहात्म्य, भुवनवृत्तान्त, मन्वन्तर, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, दानधर्म, राजधर्म, व्यवहार, व्रत, वंशानुचरित, निदानपूर्वक अष्टाङ्ग आयुर्वेद, प्रलय, धर्म, काम, अर्थ, उत्तम ज्ञान और भगवान् विष्णुकी मायामय एवं सहज लीलाओंको विस्तारपूर्वक कहा गया है। भगवान् वासुदेवके अनुग्रहसे इस गरुडमहापुराणके उपदेष्टारूपमें श्रीगरुड सब प्रकारसे अत्यन्त सामर्थ्यवान् हो गये और उसीके प्रभावसे उन्होंके वाहन बनकर वे सृष्टि, स्थिति तथा प्रलयके कारण भी बन गये। देवोंको जीतकर (अपनी माताको दासतासे मुक्त करानेके लिये) अमृत प्राप्त करनेमें भी उन्होंने सफलता प्राप्त की।

जिन भगवान् विष्णुके उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विद्यमान है, उनकी क्षुधाको भी उन्होंने (अपनी भक्तिसे) शान्त किया। जिनके दर्शन या स्मरणमात्रसे सर्पोंका विनाश हो जाता है, जिस गारुडमन्त्रके बलसे कश्यप ऋषिने जले हुए वृक्षको भी जीवित कर दिया था, उन्हीं हरिरूप गरुडने इस गरुडमहापुराणका वर्णन श्रीकश्यपसे किया था।

हे शौनक! यह श्रीमद्गरुडमहापुराण अत्यन्त पवित्र तथा पाठ करनेपर सब कुछ प्रदान करनेवाला है। व्यासजीको नमस्कार करके मैं यथावत् उसे कह रहा हूँ। आप सब उसको सुनें। (अध्याय ३)

सृष्टि-वर्णन

रुद्रजी बोले—हे जनार्दन! आप सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित—इन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करें।

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! सर्ग आदिके साथ ही पापोंका नाश करनेवाली सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयरूप भगवान् विष्णुकी सनातन क्रीडाका अब मैं वर्णन करूँगा, उसको आप सुनें।

नरनारायण-रूपमें उपास्य वे वासुदेव प्रकाशस्वरूप परमात्मा परब्रह्म और देवाधिदेव हैं तथा इस जगत्‌की सृष्टि-स्थिति एवं प्रलयके कर्ता हैं। यह सब जो कुछ दृष्ट-अदृष्ट है, उन भगवान्‌का ही व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप है। वे ही पुरुष एवं कालरूपमें विद्यमान हैं। जिस प्रकार बालक क्रीडा करता है, उसी प्रकार व्यक्तरूपमें भगवान् विष्णु और अव्यक्तरूपमें काल एवं पुरुष (निराकार ब्रह्म)-की क्रीडा होती है। उन्हीं लीलाओंको आप भी सुनें।

उन परमात्मा परमेश्वरका आदि और अन्त नहीं है, वे ही जगत्‌को धारण करनेवाले अनन्त पुरुषोत्तम हैं। उन्हीं परमेश्वरसे अव्यक्तकी उत्पत्ति होती है और उन्हींसे आत्मा (पुरुष) भी उत्पन्न होता है। उस अव्यक्त प्रकृतिसे बुद्धि, बुद्धिसे मन, मनसे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथिवीकी उत्पत्ति हुई है।

हे रुद्र! इसके पश्चात् हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्डमें वे प्रभु स्वयं प्रविष्ट होकर जगत्‌की सृष्टिके लिये सर्वप्रथम शरीर धारण करते हैं। तदनन्तर चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें शरीर धारणकर रजोगुणके आश्रयसे उन्हीं देवने इस चराचर विश्वकी सृष्टि की।

देव, असुर एवं मनुष्योंसहित यह सम्पूर्ण जगत् उसी अण्डमें विद्यमान है। वे ही परमात्मा स्वयं स्रष्टा (ब्रह्मा)-के रूपमें जगत्‌की संरचना करते हैं, विष्णुरूपमें जगत्‌की रक्षा करते हैं और अन्तमें संहर्ता शिवके रूपमें वे ही देव संहार करते हैं। इस प्रकार एकमात्र वे ही परमेश्वर ब्रह्माके रूपमें सृष्टि, विष्णुके रूपमें पालन और कल्पान्तके समय रुद्रके रूपमें सम्पूर्ण जगत्‌को विनष्ट करते हैं। सृष्टिके समय वे ही वराहका रूप धारणकर अपने दाँतोंसे जलमग्न पृथिवीका उद्धार करते हैं। हे शङ्कर! संक्षेपमें ही मैं देवादिकी सृष्टिका वर्णन कर रहा हूँ; आप उसको सुनें।

सबसे पहले उन परमेश्वरसे महत्तत्त्वकी सृष्टि होती है। वह महत्तत्त्व उन्हीं ब्रह्मका विकार है। पञ्च तन्मात्राओं (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द)-की उत्पत्तिसे युक्त द्वितीय सर्ग है। उसे भूत-सर्ग कहा जाता है। (इन पञ्च तन्मात्राओंसे पृथिवी, जल, तेज, वायु तथा आकाश-रूपमें महाभूतोंकी सृष्टि होती है।) तीसरा वैकारिक सर्ग है, (इसमें कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियोंकी सृष्टि आती है इसलिये) इसे ऐन्द्रिक भी कहा जाता है। इसकी उत्पत्ति बुद्धिपूर्वक होती है, यह प्राकृत-सर्ग है। चौथा सर्ग मुख्य-सर्ग है। पर्वत और वृक्षादि स्थावरोंको मुख्य माना गया है। पाँचवाँ सर्ग तिर्यक्-सर्ग कहा जाता है, इसमें तिर्यक्स्रोता[1] (पशु-पक्षी आदि) आते हैं। इसके पश्चात् ऊर्ध्वस्रोतों[2]की सृष्टि होती है। इस छठे सर्गको देव-सर्ग भी कहा गया है। तदनन्तर सातवाँ सर्ग अर्वाक्स्रोतों[3]का होता है। यही मानुष-सर्ग है।

आठवाँ अनुग्रह नामक सर्ग है। वह सात्त्विक और तामसिक गुणोंसे संयुक्त है। इन आठ सर्गोंमें पाँच वैकृत-सर्ग और तीन प्राकृत-सर्ग कहे गये हैं। कौमार नामक सर्ग नवाँ सर्ग है। इसमें प्राकृत और वैकृत दोनों सृष्टियाँ विद्यमान रहती हैं।

हे रुद्र! देवोंसे लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी सृष्टि कही गयी है। सृष्टि करते समय ब्रह्मासे (सबसे पहले) मानसपुत्र उत्पन्न हुए। तदनन्तर देव, असुर, पितृ और मनुष्य—इस सर्गचतुष्टयका प्रादुर्भाव हुआ।

इसके बाद जल-सृष्टिकी इच्छासे उन्होंने अपने मनको सृष्टि-कार्यमें संलग्न किया। सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्त होनेपर प्रजापति ब्रह्मासे तमोगुणका प्रादुर्भाव हुआ। अतः सृष्टिकी अभिलाषा रखनेवाले ब्रह्माकी जङ्घासे सर्वप्रथम असुर उत्पन्न हुए। हे शङ्कर! तदनन्तर ब्रह्माने उस तमोगुणसे युक्त शरीरका परित्याग किया तो उस शरीरसे निकली हुई तमोगुणकी मात्राने स्वयं

---

१. जिनका स्रोत (आहार-संचार) तिर्यक् (वक्र) होता है उन्हें 'तिर्यक्स्रोता' कहते हैं, इसीलिये पशु-पक्षियोंको तिर्यक्स्रोता कहा जाता है। इनके द्वारा खाये गये अन्न-जल आदिका इनके उदर (पेट)-में वक्र (टेढ़ी-तिरछी) गतिसे संचरण होता है।

२. 'ऊर्ध्वस्रोता' शब्द देवताओंका वाचक है, क्योंकि इनका आहार-संचार ऊपरकी ओर होता है।

३. 'अर्वाक्स्रोता' शब्द मनुष्योंका वाचक है, क्योंकि इनका आहार-संचार अर्वाक् (नीचेकी ओर) होता है।

रात्रिका रूप धारण कर लिया। उस रात्रिरूप सृष्टिको देखकर यक्ष और राक्षस बहुत ही प्रसन्न हुए।

हे शिव! उसके बाद सत्त्वगुणकी मात्राके उत्पन्न होनेपर प्रजापति ब्रह्माके मुखसे देवता उत्पन्न हुए। तदनन्तर जब उन्होंने सत्त्वगुण-समन्वित अपने उस शरीरका परित्याग किया तो उससे दिनका प्रादुर्भाव हुआ, इसीलिये रात्रिमें असुर और दिनमें देवता अधिक शक्तिशाली होते हैं। उसके पश्चात् ब्रह्माके उस सात्त्विक शरीरसे पितृगणोंकी उत्पत्ति हुई।

इसके बाद ब्रह्माके द्वारा उस सात्त्विक शरीरका परित्याग करनेपर संध्याकी उत्पत्ति हुई जो दिन और रात्रिके मध्य अवस्थित रहती है। तदनन्तर ब्रह्माके रजोमय शरीरसे मनुष्योंका प्रादुर्भाव हुआ। जब ब्रह्माने उसका परित्याग किया तो उससे ज्योत्स्ना (प्रभातकाल) उत्पन्न हुई, जो प्राक्सन्ध्याके नामसे जानी जाती है। ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या—ये चारों उस ब्रह्माके ही शरीर हैं।

तत्पश्चात् ब्रह्माके रजोगुणमय शरीरके आश्रयसे क्षुधा और क्रोधका जन्म हुआ। उसके बाद ब्रह्मासे ही भूख-प्याससे आतुर एवं रक्त-मांस पीने-खानेवाले राक्षसों तथा यक्षोंकी उत्पत्ति हुई। राक्षसोंसे रक्षणके कारण राक्षस[1] कहा गया और भक्षणके कारण यक्षोंको यक्ष[2]-नामकी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। तदनन्तर ब्रह्माके केशोंसे सर्प उत्पन्न हुए। ब्रह्माके केश उनके सिरसे नीचे गिरकर पुनः उनके सिरपर आरूढ हो गये—यही सर्पण है। इसी सर्पण (गतिविरोध)-के कारण उन्हें सर्प कहा गया। उसके बाद ब्रह्माके क्रोधसे भूतोंका जन्म हुआ। (इसीलिये इन प्राणियोंमें क्रोधकी मात्रा अधिक होती है।) तदनन्तर ब्रह्मासे गन्धर्वोंकी उत्पत्ति हुई। गायन करते हुए इन सभीका जन्म हुआ था, इसलिये इन्हें गन्धर्व और अप्सराकी ख्याति प्राप्त हुई।

उसके बाद प्रजापति ब्रह्माके वक्षःस्थलसे स्वर्ग और द्युलोक उत्पन्न हुआ। उनके मुखसे अज, उदर-भागसे तथा पार्श्व-भागसे गौ, पैर-भागसे हाथीसहित अश्व, महिष, ऊँट और भेड़की उत्पत्ति हुई। उनके रोमोंसे फल-फूल एवं औषधियोंका प्रादुर्भाव हुआ।

गौ, अज, पुरुष—ये मेध्य (पवित्र) हैं। घोड़े, खच्चर और गदहे ग्राम्य पशु कहे जाते हैं। अब मुझसे वन्य पशुओंको सुनो—इन वन्य जन्तुओंमें पहले श्वापद (हिंसक व्याघ्रादि) पशु, दूसरे दो खुरोंवाले, तीसरे हाथी, चौथे बंदर, पाँचवें पक्षी, छठे कच्छपादि जलचर और सातवें सरीसृप जीव (उत्पन्न हुए) हैं।

उन ब्रह्माके पूर्वादि चारों मुखोंसे ऋक्, यजुष्, साम तथा अथर्व—इन चार वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ। उन्हींके मुखसे ब्राह्मण, भुजाओंसे क्षत्रिय, ऊरु-भागसे वैश्य तथा पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए। उसके बाद उन्होंने ब्राह्मणोंके लिये ब्रह्मलोक, क्षत्रियोंके लिये इन्द्रलोक, वैश्योंके लिये वायुलोक और शूद्रोंके लिये गन्धर्वलोकका निर्धारण किया। उन्होंने ही ब्रह्मचारियोंके लिये ब्रह्मलोक, स्वधर्मनिरत गृहस्थाश्रमका पालन करनेवाले लोगोंके लिये प्राजापत्यलोक, वानप्रस्थाश्रमियोंके लिये सप्तर्षिलोक और संन्यासी तथा इच्छानुकूल सदैव विचरण करनेवाले परम तपोनिधियोंके लिये अक्षयलोकका निर्धारण किया। (अध्याय ४)

मानस-सृष्टि-वर्णन, दक्ष प्रजापतिद्वारा मिथुनधर्मसे सृष्टिका विस्तार

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! प्रजापति ब्रह्माने परलोकमें रहनेवाली मानस-प्रजाओंकी सृष्टिके अनन्तर सृष्टि-विस्तार करनेवाले मानस-पुत्रोंकी सृष्टि की। उनसे धर्म, रुद्र, मनु, सनक, सनातन, भृगु, सनत्कुमार, रुचि, श्रद्धा, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु वसिष्ठ और नारदका प्रादुर्भाव हुआ। साथ ही बर्हिषद्, अग्निष्वात्त, क्रव्याद, आज्यप, सुकालिन, उपहूत एवं दीप्य नामक (सात पितृगण) उत्पन्न हुए। इन बर्हिषदादि सप्त पितृगणोंमें प्रथम तीन पितृगण अमूर्तरूप और शेष चार मूर्तिमान् हैं।

कमलयोनि ब्रह्माके दक्षिण अँगूठेसे ऐश्वर्यसम्पन्न दक्ष प्रजापति और वाम अँगूठेसे उनकी भार्याका जन्म हुआ। प्रजापतिने अपनी उस पत्नीके गर्भसे अनेक शुभ लक्षणोंवाली

१. जिससे सब लोग अपनी रक्षा करें, वह राक्षस है। इसी दृष्टिसे रक्षणका आशय यह है—जिनसे अपना रक्षण—बचाव आवश्यक है, वे राक्षस हैं।

२. यक्ष धनके देवता हैं। वे धनके लिये पूज्य होते हैं। भक्षण पूजाका एक भाग है। यक्ष धन प्रदान करनेके लिये धनकी कामना करनेवालोंसे भक्षणकी अपेक्षा रखते हैं, इसी दृष्टिसे भक्षणके आधारपर यक्ष नाम समझना चाहिये। यक्षका अर्थ पूजा भी हो सकता है। इसके लिये ऋग्वेद (७।६१।५)-का सायणभाष्य भी द्रष्टव्य है।

कन्याओंको उत्पन्न किया और उन्हें ब्रह्माके मानस पुत्रोंको समर्पित कर दिया। उन्होंने सती नामक पुत्रीका विवाह रुद्रके साथ किया, उनसे रुद्रके असंख्य महापराक्रमशाली पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई।

दक्षने असाधारण रूपवती सुन्दर लक्षणोंवाली ख्याति नामक पुत्री भृगुको समर्पित की, जिससे भृगुके धाता और विधाता नामक दो पुत्र हुए। उसी ख्यातिसे भगवान् नारायणकी जो श्री नामक पत्नी हैं, उनकी भी उत्पत्ति हुई। उन श्रीके गर्भसे हरिने 'बल' और 'उन्माद' नामके दो पुत्रोंको उत्पन्न किया है।

महात्मा मनुके आयति और नियति नामवाली दो कन्याएँ हुईं, जिनका विवाह भृगुपुत्र धाता और विधाताके साथ हुआ। उन दोनोंसे एक-एक पुत्रका जन्म हुआ। आयतिके गर्भसे धाताने प्राण और नियतिके गर्भसे विधाताने 'मृकण्डु' को उत्पन्न किया। उन्हीं मृकण्डुसे महामुनि मार्कण्डेयकी उत्पत्ति हुई।

मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमास नामक एक पुत्रको जन्म दिया। उस महात्मा पौर्णमासके दो पुत्र हुए, जिनका नाम विरजा और सर्वग है।

अङ्गिराने दक्षकन्या स्मृतिसे अनेक पुत्र और सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति नामक चार कन्याओंको जन्म दिया।

अनसूयाने अत्रिसे चन्द्रमा, दुर्वासा एवं योगी दत्तात्रेय नामक तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया। पुलस्त्यकी पत्नी प्रीतिसे दत्तोली नामक पुत्र हुआ। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमासे कर्मश, अर्थवीर तथा सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। क्रतुकी पत्नी सुमतिसे साठ हजार बालखिल्य ऋषियोंकी उत्पत्ति हुई। ये सभी ऊर्ध्वरेता, अङ्गुष्ठपर्व परिमाणवाले तथा देदीप्यमान सूर्यके समान तेजस्वी हैं।

वसिष्ठकी पत्नी ऊर्जासे रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, शरण, अनघ, सुतपा और शुक्र—ये सात पुत्र हुए। ये सभी सप्तर्षि थे।

हे हर! उस दक्ष प्रजापतिने शरीरधारी अग्निको स्वाहा नामक पुत्री प्रदान की थी। उस स्वाहादेवीने अग्निदेवसे पावक, पवमान तथा शुचि[1] नामक ओजस्वी तीन पुत्रोंको प्राप्त किया।

दक्षकन्या स्वधाने पितरोंसे मेना तथा वैतरणी नामवाली दो पुत्रियोंको जन्म दिया। ये दोनों कन्याएँ 'ब्रह्मवादिनी' थीं। मेनाका विवाह हिमाचलके साथ हुआ। हिमाचलने मेनासे मैनाक नामक पुत्र उत्पन्न किया था तथा गौरी (पार्वती)-नामसे प्रसिद्ध पुत्रीको उत्पन्न किया, जो पूर्वजन्ममें सती थीं।

हे शिव! तदनन्तर भगवान् ब्रह्माने अपने ही समान गुणवाले स्वायम्भुव मनुको जन्म दिया और उन्हें प्रजापालनके कार्यमें नियुक्त किया। उन्हीं ब्रह्मासे देवी शतरूपाका आविर्भाव हुआ। सर्वैश्वर्यसम्पन्न महाराज स्वायम्भुव मनुने तपस्याके प्रभावसे परम शुद्ध तपस्विनी उस शतरूपा नामक कन्याको पत्नीरूपमें ग्रहण किया, जिससे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा प्रसूति, आकूति और देवहूति नामकी तीन पुत्रियोंका जन्म हुआ। उनमेंसे मनुने आकूति नामक कन्याका विवाह प्रजापति 'रुचि' के साथ किया। प्रसूति तथा देवहूति क्रमशः दक्ष एवं कर्दममुनिको प्रदान की गयीं।

रुचिसे यज्ञ और दक्षिणाका जन्म हुआ। यज्ञसे दक्षिणाके बारह पुत्र हुए, जो महाबलशाली 'याम' (देवगण विशेष)-के नामसे प्रसिद्ध हैं।

दक्ष प्रजापतिने (प्रसूतिसे) चौबीस श्रेष्ठ कन्याओंकी उत्पत्ति की। उन कन्याओंमें श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, ऋद्धि और कीर्ति नामकी जो तेरह कन्याएँ थीं, उनको पत्नीके रूपमें दक्षिणाके पुत्र धर्मने स्वीकार किया। इसके बाद शेष जो ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामक ग्यारह कन्याएँ थीं, उनका विवाह क्रमशः मुनिश्रेष्ठ भृगु, महादेव, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि और पितृगणोंके साथ हुआ।

श्रद्धाने काम, लक्ष्मीने दर्प, धृतिने नियम, तुष्टिने संतोष तथा पुष्टिने लोभको उत्पन्न किया। मेधासे श्रुतका तथा क्रियासे दण्ड, लय और विनय नामक तीन पुत्रोंका जन्म हुआ। बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने व्यवसाय

---

१. पावक, पवमान और शुचि नामक तीन अग्नियाँ कही गयी हैं। उनमें विद्युत्-सम्बन्धी अग्निको 'पावक' तथा मन्थनसे उत्पन्न अग्निको 'पवमान' कहा जाता है और जो यह सूर्य चमकता है वही 'शुचि' (नामक) अग्नि कहलाता है—

पावकः पवमानश्च शुचिरग्निश्च ते त्रयः। निर्मथ्यः पवमानः स्याद् वैद्युतः पावकः स्मृतः॥

यश्चासौ तपते सूर्यः शुचिरग्निस्त्वसौ स्मृतः। (कूर्मपुराण, पूर्वविभाग १२। १५-१६)

एवं शान्तिने क्षेमको उत्पन्न किया। ऋद्धिसे सुख और कीर्तिसे यश उत्पन्न हुए। ये सभी धर्मके पुत्र हैं। धर्मके पुत्र कामकी पत्नीका नाम रति है, उसके पुत्रको हर्ष कहा गया है।

दक्ष प्रजापतिने किसी समय अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें रुद्र और सतीके अतिरिक्त निमन्त्रित दक्षके सभी जामाता अपनी पत्नियोंके साथ उपस्थित हुए। ऐसा देखकर बिना बुलाये ही सती भी उस यज्ञमें जा पहुँचीं, किंतु वहाँ अपने पिता दक्षके द्वारा किये गये तिरस्कारपूर्ण व्यवहारको देखकर उनसे न रहा गया और उन्होंने वहींपर अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया। वे ही सती पुनः हिमालयसे मेनाके गर्भमें उत्पन्न हुईं और गौरीके नामसे प्रसिद्ध होकर शम्भुकी पत्नी बनीं। तदनन्तर उनसे गणेश और कार्तिकेय हुए। (सतीके देहत्यागसे) अत्यन्त क्रुद्ध महातेजस्वी भृङ्गीश्वर पिनाकपाणि भगवान् शङ्करने यज्ञका विध्वंस करके उस दक्षको यह शाप दिया कि तुम ध्रुवके वंशमें मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करोगे। (अध्याय ५)

ध्रुववंश तथा दक्ष प्रजापतिकी साठ कन्याओंकी सन्ततियोंका वर्णन

श्रीहरिने (रुद्रसे) कहा—उत्तानपादकी सुरुचि नामक पत्नीसे उत्तम और सुनीति नामवाली भार्यासे ध्रुव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उनमें ध्रुवने देवर्षि नारदकी कृपासे प्राप्त उपदेशके द्वारा देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी आराधना करके श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया।

ध्रुवके महाबलशाली एवं पराक्रमशील श्लिष्ट नामका पुत्र हुआ। उससे प्राचीनबर्हि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे उदारधी नामक पुत्रने जन्म लिया। उसके दिवञ्जय नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र रिपु हुआ। रिपुसे चाक्षुष नामक पुत्रने जन्म लिया। उसीने चाक्षुष मनुकी ख्याति प्राप्त की थी। उस चाक्षुष मनुसे रुरु उत्पन्न हुआ। तदनन्तर उसके भी ऐश्वर्यसम्पन्न अङ्ग नामवाला एक पुत्र हुआ। उस पुत्रसे वेण (वेन)-ने जन्म लिया, जो नास्तिक एवं धर्मच्युत था। मुनियोंके द्वारा किये गये कुशाघातसे उस अधर्मी वेनकी मृत्यु हुई। उसके बाद पुत्र प्राप्त करनेके लिये तपस्वियोंने उसके ऊरु-भागका मन्थन किया, जिससे एक पुत्र हुआ, जो अत्यन्त छोटा और कृष्णवर्णका था। मुनियोंने उससे कहा 'त्वं निषीद' अर्थात् तुम बैठो। इसी शब्दके कथनसे उसको निषाद नामकी प्रसिद्धि प्राप्त हुई और वह विन्ध्याचलमें निवास करनेके लिये चला गया।

तदनन्तर उन मुनियोंने पुनः उस वेनके दाहिने हाथका मन्थन किया। उस मन्थन-कर्मसे वेनको विष्णुका मानसरूप धारण करनेवाला पृथु नामका पुत्र हुआ। राजा पृथुने प्रजाकी जीवन-रक्षाके लिये पृथिवीका दोहन किया। उस पृथुराजका अन्तर्धान नामक एक पुत्र था। उससे हविर्धान नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उस हविर्धानका पुत्र प्राचीनबर्हि हुआ, जो पृथिवीका एकच्छत्र सम्राट् था। उसने लवण-समुद्रकी पुत्री सामुद्रीके साथ विवाह किया। उस प्राचीनबर्हिसे सामुद्रीने दस पुत्रोंको जन्म दिया। ये सभी प्राचेतस नामवाले धनुर्वेदमें निष्णात हुए। धर्माचरणमें निरत रहते हुए इन लोगोंने दस हजार वर्षोंतक जलमें निमग्न होकर अत्यन्त कठिन तपस्या की। (तपस्याके प्रभावसे) प्रजापतिका पद प्राप्त करनेवाले उन तपस्वियोंका विवाह मारिषा नामक कन्यासे हुआ।

शिवके शापसे ग्रस्त दक्षने इसी मारिषाके गर्भसे पुनः जन्म ग्रहण किया। दक्षने सबसे पहले चार प्रकारकी मानस प्रजाओंकी सृष्टि की, किंतु महादेवके शापसे उन मानस संतानोंकी अभिवृद्धि नहीं हुई। अतः उन प्रजापतिने 'स्त्री-पुरुष'के संयोगसे होनेवाली मैथुनी सृष्टिकी इच्छा की।

इसके बाद दक्षने प्रजापति वीरणकी पुत्री असिक्नीके साथ विवाह किया। इस असिक्नीके गर्भसे उन दक्षके हजार पुत्र उत्पन्न हुए। नारदके उपदेशसे वे सभी पृथिवीकी अन्तिम सीमाको जाननेके लिये निकल पड़े, किंतु पुनः वापस नहीं आये।

हे हर! इस प्रकार उन हजार पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर दक्षने पुनः हजार पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी 'शबलाश्व' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन लोगोंने भी अपने बड़े भाइयोंके मार्गका ही अनुसरण किया। पुत्रोंके ऐसे विनाशको देखकर (क्रुद्ध) दक्षने नारदको शाप दे दिया कि 'तुम्हें भी (पृथ्वीपर) जन्म लेना होगा।' अतः नारद कश्यपमुनिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए।

इसके बाद दक्ष प्रजापतिने असिक्नीसे साठ रूपवती कन्याओंको जन्म दिया, जिनमेंसे उन्होंने दो कन्याओंका

विवाह अङ्गिराके साथ किया। उनके द्वारा दो कन्याएँ कृशाश्व, दस कन्याएँ धर्म, चौदह कन्याएँ कश्यप तथा अट्ठाईस कन्याएँ चन्द्रमाको दी गयीं। हे महादेव! इसके पश्चात् दक्षने मनोरमा, भानुमती, विशाला तथा बहुदा नामक चार कन्याओंका विवाह अरिष्टनेमिके साथ किया।

दक्ष प्रजापतिने कृशाश्वको सुप्रजा और जया नामक कन्याओंको प्रदान किया। अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानुमती, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा विश्वा—ये धर्मकी दस पत्नियाँ कही गयी हैं। अब मैं कश्यपकी पत्नियोंके नामोंको भी कहता हूँ, उनके नाम हैं—अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, कद्रू, साध्या, इरा, क्रोधा, विनता, सुरभि और खगा।

हे रुद्र! (धर्मकी पत्नी) विश्वासे विश्वेदेव और साध्यासे साध्यगणोंकी उत्पत्ति हुई है। मरुत्वतीसे मरुत्वान् तथा वसुसे (आठ) वसुगणोंका आविर्भाव हुआ। हे शङ्कर! भानुसे (द्वादश) भानु और मुहूर्तासे मुहूर्तगणोंकी उत्पत्ति हुई। लम्बासे घोष तथा यामीसे नागवीथिका जन्म हुआ और सङ्कल्पासे सर्वात्मक सङ्कल्पका प्रादुर्भाव हुआ।

आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास—ये आठ वसु माने गये हैं। आपके वेतुण्डि, श्रम, श्रान्त और ध्वनि नामक चार पुत्र हुए। ध्रुवके पुत्ररूपमें भगवान् कालका जन्म हुआ, जो लोकके संहारक हैं। सोमसे पुत्ररूपमें भगवान् वर्चा हुए, जिनकी कृपासे ही मनुष्य वर्चस्वी होता है। मनोहरासे धरके द्रुहिण, हुत हव्यवह, शिशिर, प्राण और रमण नामवाले पुत्र उत्पन्न हुए। अनिलकी पत्नीका नाम शिवा है। अनिल और शिवासे पुलोमज तथा अविज्ञातगति नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। अनल (अग्नि)-के पुत्र कुमार हैं, जिनकी उत्पत्ति शरकाननपर हुई थी। कृत्तिकाओंके पालित पुत्र होनेसे इन्हें कार्तिकेय भी कहा जाता है। इनके शाख, विशाख और नैगमेय नामक तीन अन्य छोटे भाई भी हैं।

महर्षि देवलको प्रत्यूष नामक वसुका पुत्र माना गया है। प्रभासवसुसे विख्यात देवशिल्पी विश्वकर्माका जन्म हुआ। विश्वकर्माके महाबलवान् अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा तथा पराक्रमी रुद्र—ये चार पुत्र हुए। त्वष्टाके विश्वरूप नामक एक महातपस्वी पुत्र हुआ। हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व और कपाली—ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं। ये तीनों लोकोंके स्वामी हैं।

कश्यपकी पत्नी अदितिसे द्वादश सूर्योंकी उत्पत्ति हुई है। उन्हें विष्णु, शक्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंशुमान् तथा भग कहा गया है। ये ही द्वादश आदित्य कहे जाते हैं।

रोहिणी आदि जो प्रसिद्ध सत्ताईस नक्षत्र हैं, वे सब सोम (चन्द्रमा)-की पत्नियाँ हैं। दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा सिंहिका नामकी एक कन्या भी हुई, जिसका विवाह विप्रचित्तिके साथ हुआ। हिरण्यकशिपुके महापराक्रमशाली चार पुत्र हुए। उनके नाम अनुह्राद (अनुह्लाद), ह्राद (ह्लाद), प्रह्राद (प्रह्लाद) तथा संह्राद (संह्लाद) हैं। उनमें प्रह्लाद विष्णुपरायण भक्तके रूपमें प्रसिद्ध हुए। संह्रादके आयुष्मान्, शिवि और बाष्कल नामक तीन पुत्र हुए। प्रह्लादके पुत्र विरोचन हुए। विरोचनसे बलिकी उत्पत्ति हुई। हे वृषभध्वज! बलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें बाण सबसे ज्येष्ठ है।

हिरण्याक्षके सभी पुत्र महाबलवान् थे। उनके नाम उत्कुर, शकुनि, भूतसन्तापन, महानाभ, महाबाहु तथा कालनाभ हैं।

दनुके द्विमूर्धा, शङ्कर, अयोमुख, शङ्कुशिरा, कपिल, शम्बर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु, वृषपर्वा, पुलोमा, महासुर और पराक्रमी विप्रचित्ति नामक पुत्र विख्यात हुए।

स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभा तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा थी। इसके अतिरिक्त उसे उपदानवी और हयशिरा नामकी दो अन्य श्रेष्ठ कन्याएँ हुईं।

वैश्वानरकी दो पुत्रियाँ थीं। उनका नाम पुलोमा तथा कालका था। उन दोनों परम सौभाग्यशालिनी कन्याओंका विवाह मरीचिके पुत्र कश्यपके साथ हुआ था। उन दोनोंसे साठ हजार श्रेष्ठ दानव उत्पन्न हुए। कश्यपके इन पुत्रोंको पौलोम और कालकञ्ज कहा गया है।

विप्रचित्तिके पुत्रोंका जन्म सिंहिकासे हुआ। उनके नाम व्यंश, शल्य, बलवान्, नभ, महाबल, वातापि, नमुचि, इल्वल, खसृमान्, अंजक, नरक तथा कालनाभ हैं।

प्रह्लादके कुलमें निवातकवच नामक दैत्योंकी उत्पत्ति हुई। ताम्रासे सत्त्वगुणसम्पन्न छः कन्याओंका जन्म हुआ। उनके नाम शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका हैं।

शुकीसे शुक, उलूक एवं उलूकोंके प्रतिपक्षी काकादि उत्पन्न हुए। श्येनीसे श्येन (बाज), भासीसे भास, गृध्रिकासे

गृध्र (गीध), शुचिसे जलचर पक्षिगण तथा सुग्रीवीसे अश्व, ऊँट और गधोंका जन्म हुआ। इसको ताम्रावंश कहा गया है।

विनताके गर्भसे गरुड और अरुण नामक दो विख्यात पुत्र हुए। सुरसाके गर्भसे अपरिमित तेजसम्पन्न सहस्रों सर्पोंकी उत्पत्ति हुई। कद्रूसे भी अत्यधिक तेजस्वी सहस्रों सर्प हुए। इन सभी सर्पोंमें प्रधान सर्प शेष, वासुकि, तक्षक, शङ्ख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, नाग, कर्कोटक और धनञ्जय हैं। इस सर्पसमूहको क्रोधसे परिपूर्ण जानें। इन सभीके बड़े-बड़े दाँत हैं।

क्रोधाने महाबली पिशाचोंको उत्पन्न किया। सुरभिसे गायों और भैंसोंका जन्म हुआ। इरासे समस्त वृक्ष, लता-वल्लरी और तृणोंकी उत्पत्ति हुई।

खगासे यक्ष-राक्षस, मुनिसे (नृत्य-गान करनेवाली) अप्सराएँ तथा अरिष्टासे परम सत्त्वसम्पन्न गन्धर्व उत्पन्न हुए। दितिसे मरुत् नामक उनचास देवोंका जन्म हुआ।

उन मरुद्गणोंमें एकज्योति, द्विज्योति, त्रिज्योति, चतुर्ज्योति, एकशुक्र, द्विशुक्र तथा महाबलशाली त्रिशुक्र—इन सातोंका एक गण है। ईदृक्, सदृक्, अन्यादृक्, प्रतिसदृक्, मित, समित, सुमित नामवाले मरुतोंका परम शक्तिसम्पन्न दूसरा गण है। ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, अतिमित्र, अमित्र तथा दूरमित्र नामक मरुतोंका तीसरा अजेय गण है। ऋत, ऋतधर्म, विहर्ता, वरुण, ध्रुव, विधारण और दुर्मेधा नामवाले मरुतोंका चौथा गण है। ईदृश, सदृक्ष, एतादृक्ष, मिताशन, एतेन, प्रसदृक्ष और सुरत नामक महातपस्वी मरुतोंका पाँचवाँ गण है। हेतुमान्, प्रसव, सुरभ, नादिरुग्र, ध्वनिर्भास, विक्षिप तथा सह नामवाला मरुतोंका छठा गण है। द्युति, वसु, अनाधृष्य, लाभ, काम, जयी विराट् तथा उद्वेषण नामका सातवाँ वायु-गण (स्कन्ध) है।

ये सभी उनचास मरुद्गण भगवान् विष्णुके ही रूप हैं। राजा, दानव, देव, सूर्यादि ग्रह तथा मनु आदि इन्हीं श्रीहरिका पूजन करते हैं। (अध्याय ६)

देवपूजा-विधान, विष्णुपूजोपयोगी वज्रनाभमण्डल, विष्णुदीक्षा तथा लक्ष्मी-पूजा

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्रदान करनेवाली सूर्यादि देवोंकी पूजाका मैं वर्णन करता हूँ। हे वृषभध्वज! ग्रहदेवताओंके आसनकी पूजाकर निम्न मन्त्रों—

ॐ नमः सूर्यमूर्तये। ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः। ॐ सोमाय नमः। ॐ मङ्गलाय नमः। ॐ बुधाय नमः। ॐ बृहस्पतये नमः। ॐ शुक्राय नमः। ॐ शनैश्चराय नमः। ॐ राहवे नमः। ॐ केतवे नमः। ॐ तेजश्चण्डाय नमः:—से आसन, आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नमस्कार, प्रदक्षिणा और विसर्जन आदि उपचारोंको प्रदान करके सूर्यादि ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये।

ॐ ह्रां शिवाय नमः-मन्त्रसे आसनकी पूजाकर **ॐ ह्रां शिवमूर्तये शिवाय नमः**-मन्त्रसे नमस्कार करे और साधक शिवपूजामें सर्वप्रथम— **ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रूं शिखायै वषट्। ॐ ह्रैं कवचाय हुं। ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ह्रः अस्त्राय नमः**—इन मन्त्रोंसे षडङ्गन्यास करे। तत्पश्चात्— **ॐ ह्रां सद्योजाताय नमः। ॐ ह्रीं वामदेवाय नमः। ॐ ह्रूं अघोराय नमः। ॐ ह्रैं तत्पुरुषाय नमः। ॐ ह्रौं ईशानाय नमः**—इन मन्त्रोंसे शिवके पाँचों मुखोंको नमस्कार करना चाहिये।

इसी प्रकार विष्णुपूजामें **ॐ वासुदेवासनाय नमः**-मन्त्रसे भगवान् विष्णुके आसनकी पूजा करे और— **ॐ वासुदेवमूर्तये नमः। ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः। ॐ आं ॐ नमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः। ॐ अं ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः। ॐ अः ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः**—इन मन्त्रोंके द्वारा साधक हरिके चतुर्व्यूहको नमन करे। उसके बाद— **ॐ नारायणाय नमः। ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः। ॐ हुं विष्णवे नमः। ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय नमः। ॐ भूः ॐ नमो भगवते वराहाय नमः। ॐ कं टं पं शं वैनतेयाय नमः। ॐ जं खं रं सुदर्शनाय नमः। ॐ खं ठं फं षं गदायै नमः। ॐ वं लं मं क्षं पाञ्चजन्याय नमः। ॐ घं ढं भं हं श्रियै नमः। ॐ गं डं वं सं पुष्ट्यै नमः। ॐ धं षं वं सं वनमालायै नमः। ॐ सं दं लं श्रीवत्साय नमः। ॐ ठं चं भं यं कौस्तुभाय नमः। ॐ गुरुभ्यो नमः। ॐ इन्द्रादिभ्यो नमः। ॐ विष्वक्सेनाय नमः**—इन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिके अवतारों, आयुधों एवं वाहन आदिको नमस्कार करते हुए उन्हें आसनादि उपचार प्रदान करने चाहिये।

हे वृषध्वज! भगवान् विष्णुकी शक्ति देवी सरस्वतीकी मङ्गलकारिणी पूजामें **ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः**—इस मन्त्रसे देवी सरस्वतीको नमस्कारकर निम्न मन्त्रोंसे षडङ्गन्यास करना चाहिये—

ॐ ह्रां हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे नमः। ॐ ह्रूं शिखायै नमः। ॐ ह्रैं कवचाय नमः। ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः। ॐ ह्रः अस्त्राय नमः।

इसी प्रकार श्रद्धा, ऋद्धि, कला, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, प्रभा तथा मति—ये जो सरस्वतीदेवीकी आठ शक्तियाँ हैं, इनका पूजन निम्न नाममन्त्रोंसे करे—

ॐ ह्रीं श्रद्धायै नमः। ॐ ह्रीं ऋद्ध्यै नमः। ॐ ह्रीं कलायै नमः। ॐ ह्रीं मेधायै नमः। ॐ ह्रीं तुष्ट्यै नमः। ॐ ह्रीं पुष्ट्यै नमः। ॐ ह्रीं प्रभायै नमः। ॐ ह्रीं मत्यै नमः।

[इन शक्तियोंकी पूजा करनेके पश्चात्] क्षेत्रपाल, गुरु और परम गुरुका **ॐ क्षेत्रपालाय नमः। ॐ गुरुभ्यो नमः। ॐ परमगुरुभ्यो नमः**—इन मन्त्रोंसे नमस्कार करना चाहिये।

तदनन्तर कमलवासिनी सरस्वतीदेवीको आसनादि उपचार प्रदान करने चाहिये। पूजनके अनन्तर सूर्यादि देवताओंके लिये प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रोंसे उनका पवित्रारोहण करना चाहिये।

श्रीहरिने कहा—हे शिव! भगवान् विष्णुकी विशेष पूजाके लिये पाँच प्रकारके रंगोंसे बने हुए चूर्णके द्वारा वज्रनाभ-मण्डलका निर्माण करना चाहिये, जो सोलह समान कोष्ठकोंसे संयुक्त हो।

वज्रनाभ-मण्डल बनाकर सबसे पहले न्यास करे और उसके बाद भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे। हृदयके मध्यमें भगवान् विष्णु, कण्ठमें सङ्कर्षण, सिरपर प्रद्युम्न, शिखा-भागमें अनिरुद्ध, सम्पूर्ण शरीरमें ब्रह्मा तथा दोनों हाथोंमें श्रीधरका न्यास करे। तत्पश्चात् '**अहं विष्णुः**' (मैं ही विष्णु हूँ)—ऐसा ध्यान करते हुए पद्मके कर्णिका-भागमें भगवान् श्रीहरिकी स्थापना करे। इसी प्रकार मण्डलके पूर्वमें सङ्कर्षण, दक्षिणमें प्रद्युम्न, पश्चिममें अनिरुद्ध और उत्तरमें ब्रह्माकी स्थापना करे। तदनन्तर ईशानकोणमें श्रीधर तथा पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि देवोंकी स्थापना करनी चाहिये। यथा—पूर्व दिशामें (**ॐ इन्द्राय नमः** मन्त्रसे) इन्द्र, अग्निकोणमें (**ॐ अग्नये नमः** मन्त्रसे) अग्नि, दक्षिण दिशामें (**ॐ यमाय नमः** मन्त्रसे) यम, नैर्ऋत्यकोणमें (**ॐ निर्ऋतये नमः** मन्त्रसे) निर्ऋति, पश्चिम दिशामें (**ॐ वरुणाय नमः** मन्त्रसे) वरुण, वायुकोणमें (**ॐ वायवे नमः** मन्त्रसे) वायु, उत्तर दिशामें (**ॐ कुबेराय नमः** मन्त्रसे) कुबेर और ईशानकोणमें (**ॐ ईशानाय नमः** मन्त्रसे) ईशान नामक दिक्पालकी स्थापना करे। उसके बाद उन सभी देवोंकी गन्धादि उपचारोंके द्वारा पूजा करनी चाहिये। इससे साधक परमपदको प्राप्त हो जाता है।

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! दीक्षित शिष्यको वस्त्रसे अपने दोनों नेत्र बंद करके अग्निमें देवताके मूलमन्त्रसे एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। हे रुद्र! पुत्र-लाभके लिये द्विगुण (दो सौ सोलह), साधनासिद्धिके निमित्त त्रिगुण (तीन सौ चौबीस) और मोक्ष-प्राप्तिकी कामनासे देशिक (उपदेष्टा आचार्य)-को चाहिये कि वह चतुर्गुण (चार सौ बत्तीस) आहुतियाँ उसी विष्णु-मन्त्रसे प्रदान करे।

विद्वान् देशिकको सबसे पहले भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर वे वायवी कला (यं बीज-मन्त्र)-से शिष्योंकी स्थिति, आग्नेय कला (रं बीज-मन्त्रके)-द्वारा उनकी मनस्ताप-वेदना तथा वारुण कला (वं बीज-मन्त्र)-से हृदयकी स्थिति (धर्मकी अभिरुचि)-का विचार करें। इसके बाद देशिकको उस परम तेजमें आत्मतेजका निक्षेप करके जीवात्मा और परमात्माके ऐक्य अर्थात् अभेद-ज्ञानका चिन्तन करना चाहिये। तदनन्तर वे आकाश-तत्त्वमें 'ॐकार'का ध्यानकर शरीरमें स्थित अन्य कारणभूत वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी-तत्त्वका चिन्तन करें। इस प्रकार प्रणव (ॐकार)-मन्त्रका चिन्तन करते हुए प्रत्येक कारणभूत तत्त्वोंपर जो साधक विजय प्राप्त करता है, वह शरीरधारी होनेके कारण उस पञ्चमहाभूतके ज्ञानरूपी शरीरको ग्रहण कर लेता है। अतः हे वृषभध्वज! अपने अन्तःकरणमें उस सूक्ष्म शरीरधारी (क्षेत्रज्ञ) ज्ञानको उत्पन्न करके प्रत्येक महाभूतको उसीमें संयुक्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

मण्डलादिके निर्माणमें जो लोग असमर्थ हैं, वे मात्र मानसमण्डलकी कल्पना करके भगवान् श्रीहरिका पूजन करें। [शरीरमें ब्रह्मतीर्थादिकी कल्पना की गयी है।

अतएव] उसी क्रमसे वह (मानस-मण्डल भी) चार द्वारोंसे युक्त है। हाथको पद्म तथा अँगुलियोंको पद्मपत्र कहा गया है। हथेली उस पद्मकी कर्णिका है और नख उसके केशर हैं, इसलिये साधकको उस हाथरूपी कमलमें सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, अग्नि तथा यमसहित श्रीहरिका ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिये।

उसके बाद वह देशिक सावधान होकर अपने उस हाथको शिष्यके सिरपर रखे, [क्योंकि हाथमें विष्णु विद्यमान रहते हैं, अतः] यह हाथ स्वयं विष्णु-स्वरूप है। उस हाथके स्पर्शमात्रसे शिष्यके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर गुरु शिष्यकी विधिवत् पूजा करे और उस शिष्यका नामकरण करे।

श्रीहरिने (रुद्रसे) कहा—[अब मैं] सिद्धि प्राप्त करनेके लिये स्थण्डिल आदिमें की जानेवाली श्रीलक्ष्मीकी पूजाके सम्बन्धमें कह रहा हूँ। सबसे पहले— **ॐ श्रीं ह्रीं महालक्ष्म्यै नमः** —यह कहकर साधक— '**श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः**'— इन बीजमन्त्रोंसे क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र[1]में इस प्रकारसे षडङ्गन्यास करे—

'**ॐ श्रां हृदयाय नमः। ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ श्रूं शिखायै वषट्। ॐ श्रैं कवचाय हुम्। ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ श्रः अस्त्राय फट्।**'

साधनारत भक्तको अङ्गन्यास करके आसनसहित श्रीमहालक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद चार प्रकारके वर्णोंसे अनुरञ्जित पद्मगर्भ चार द्वार और चौंसठ प्रकोष्ठोंसे युक्त मण्डलके मध्य लक्ष्मी और उनके अङ्गोंका तथा एक कोणमें दुर्गा, गण एवं गुरुका, तदनन्तर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करनेके लिये तत्पर साधक अग्नि आदि कोणोंमें क्षेत्रपाल देवोंकी पूजा करके हवन करे। तत्पश्चात् वह—'**ॐ घं टं डं हं श्रीमहालक्ष्म्यै नमः**'—इस महामन्त्रसे पूर्व उल्लिखित परिवारके सहित श्रीमहालक्ष्मीदेवीका पूजन करे।

तदनन्तर उस साधकको '**ॐ सौं सरस्वत्यै नमः।**' '**ॐ ह्रीं सौं सरस्वत्यै नमः।**' '**ॐ ह्रीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा।**', '**ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः**'—इन मन्त्रोंको कहकर सरस्वतीको नमस्कार करना चाहिये।

(अध्याय ७—१०)

नवव्यूहार्चनविधि, पूजानुक्रम-निरूपण

श्रीहरिने (रुद्रसे) कहा—(गरुडने) कश्यप ऋषिको जो नवव्यूहकी पूजाका वर्णन सुनाया था, उसको (अब) मैं कह रहा हूँ, आप सुनें।

साधक सबसे पहले [योग-क्रियाके द्वारा] जीवात्माको मस्तक, नाभि और [हृदयरूपी] आकाश नामक तत्त्वमें प्रविष्ट करे। तदनन्तर वह 'रं' (इस अग्निबीज) मन्त्रसे पाञ्चभौतिक शरीरका शोधन करे। उसके बाद वह 'यं' (इस वायु) बीजमन्त्रसे उस सम्पूर्ण शरीरके लयकी भावना करे। तत्पश्चात् वह 'लं' इस बीजमन्त्रसे चराचर जगत्-(के साथ उस विलीन हुए शरीर)-के सम्प्लावित होनेकी भावना करे। उसके बाद वह 'वं' इस बीजमन्त्रसे पुनः स्वयंमें अमरत्वकी भावना करे। तदनन्तर [अमृतके] बुद्बुदोंके बीच 'मैं ही पीताम्बरधारी चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि हूँ' ऐसा मानकर आत्मतत्त्वके ध्यानमें निमग्न हो जाय।

इसके बाद शरीर तथा हाथमें तीन प्रकारका मन्त्र-न्यास करना चाहिये। पहले द्वादशाक्षर बीजमन्त्रसे, तदनन्तर कहे गये बीजमन्त्रसे न्यास और बादमें षडङ्गन्यास करे। इससे साधक साक्षात् नारायणस्वरूप हो जाता है। साधक दक्षिण अङ्गुष्ठसे प्रारम्भकर मध्यमा अङ्गुलिपर्यन्त न्यास करे। उसके बाद वह पुनः मध्य अङ्गुलिपर ही दो बीजमन्त्रसे न्यास करके पुनः शरीरके विभिन्न अङ्गोंपर न्यास करे। क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच, मुख, नेत्र, उदर और पीठ-भागसे अङ्गन्यास करते हुए दोनों बाहु, दोनों हाथ, दोनों जानु और दोनों पैरोंमें भी न्यास करना चाहिये।

तदनन्तर अपने दोनों हाथोंको कमलवत् आकृति प्रदान करके उसके मध्य-भागमें दोनों अङ्गुष्ठोंको संनिविष्ट करे।

---

१. समस्त शरीरकी रक्षक आवरक शक्ति 'अस्त्र'की कल्पना दोनों हाथोंमें की जाती है।

तत्पश्चात् उसी मुद्राकृतिमें परमतत्त्वस्वरूप, अनामय, सर्वेश्वर भगवान् नारायणका चिन्तन करे।

इसके बाद इन्हीं बीजमन्त्रोंसे क्रमशः तर्जनी आदि अङ्गुलियोंमें न्यास करके यथाक्रम सिर, नेत्र, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुह्य, जानुद्वय तथा पादद्वयमें भी न्यास करना चाहिये।

बीजमन्त्रोंसे दोनों हाथोंमें न्यास तथा षडङ्गन्यास करके सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करना चाहिये। वह अङ्गुष्ठसे कनिष्ठा अङ्गुलितक पाँच बीजमन्त्रोंसे न्यास करे। उसके बाद हाथके मध्य-भागमें नेत्रके बीजमन्त्रसे न्यास करनेका विधान है। अङ्गन्यासमें भी इसी क्रमसे हृदय-भागमें हृदय, मस्तकमें मस्तक, शिखामें शिखा, दोनों स्तन-प्रदेशमें कवच, नेत्रद्वयमें नेत्र तथा दोनों हाथोंमें अस्त्र-बीजमन्त्रको अवस्थित करना चाहिये।

तदनन्तर उन्हीं बीजमन्त्रोंसे दिशाओंको प्रतिबद्ध करके साधक पूजनकी क्रिया प्रारम्भ करे। सबसे पहले एकाग्रचित्त होकर उसको अपने हृदयमें योगपीठका ध्यान करना चाहिये। उसके बाद वह आग्नेयादिसे पूर्व दिशाओंमें यथाक्रम धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यको विन्यस्त करके पूर्वादि दिशाओंमें अधर्मादिका न्यास करे। यथा— अग्निकोणमें '**ॐ धर्माय नमः**', नैर्ऋत्यकोणमें '**ॐ ज्ञानाय नमः**', वायुकोणमें '**ॐ वैराग्याय नमः**' और ईशानकोणमें '**ॐ ऐश्वर्याय नमः**', पूर्व दिशामें '**ॐ अधर्माय नमः**', दक्षिण दिशामें '**ॐ अज्ञानाय नमः**', पश्चिम दिशामें '**ॐ अवैराग्याय नमः**' तथा उत्तर दिशामें '**ॐ अनैश्वर्याय नमः**' कहकर न्यास करे।

साधक इस प्रकार इन न्यास-विधियोंसे आच्छादित अपने शरीरको आराध्यका पीठ और स्वयंको उसीका स्वरूप समझकर पूर्वाभिमुख उन्नत अवस्थामें स्थिर होकर अनन्त भगवान् विष्णुको अपनेमें प्रतिष्ठित करे। तदनन्तर ज्ञानरूपी सरोवरमें उत्पन्न ऊपरकी ओर उठी हुई कर्णिकासे युक्त शतपत्रवाले आठों दिशाओंमें प्रसरित श्वेत अष्टदल-कमलका ध्यान करे।

तत्पश्चात् साधकको ऋग्वेदादिके मन्त्रोंसे सूर्य, चन्द्र तथा अग्निस्वरूप मण्डलोंका क्रमशः एकके ऊपर एकका ध्यान करना चाहिये। उसके बाद वह पूर्वादि दिशाओंमें भगवान् केशवके पास ही अवस्थित विमलादि शक्तियोंको अष्टदल-कमलपर विन्यस्त करके नवीं शक्तिको कर्णिकामें स्थापित करे।

इस प्रकार ध्यान करके उस साधकको योगपीठकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् वह पुनः मनसे भगवान् विष्णुका अङ्गसहित आवाहनकर [उस योगपीठमें उन्हें] प्रतिष्ठित करे। तदनन्तर पूर्वादि चारों दिशाओंमें अवस्थित चतुर्दल-कमलपर हृदयादिन्यास करना चाहिये। कमलके मध्यभागमें तथा कोणोंपर अस्त्रमन्त्रका न्यास करे। अर्थात् उसके पूर्व दलमें '**हृदयाय नमः**', दक्षिण दलमें '**शिरसे स्वाहा**', पश्चिम दलमें '**शिखायै वषट्**', उत्तर दलमें '**कवचाय हुम्**', मध्यमें '**नेत्रत्रयाय वौषट्**' तथा कोणमें '**अस्त्राय फट्**' कहकर न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् पूर्वादि दिशाओंमें यथाक्रम सङ्कर्षण आदिके बीजमन्त्रोंको विन्यस्त करनेका विधान है। तदनन्तर वह पूर्व और पश्चिम दिशाके द्वारपर '**ॐ वैनतेयाय नमः**' कहकर वैनतेयको प्रतिष्ठित करे। उसके बाद दक्षिण द्वारपर '**ॐ सुदर्शनाय नमः**', '**ॐ सहस्राराय नमः**' का उच्चारण करके हजार अरोंवाले सुदर्शन चक्रको वह स्थापना करे। तदनन्तर दक्षिण द्वारपर '**ॐ श्रियै नमः**' मन्त्रसे श्रीका न्यास करके उत्तर द्वारपर '**ॐ लक्ष्म्यै नमः**' मन्त्रसे लक्ष्मीको प्रतिष्ठित करे।

साधकको इसके बाद उत्तर दिशामें '**ॐ गदायै नमः**' मन्त्रसे गदा, कोणोंमें '**ॐ शङ्खायै नमः**' मन्त्रसे शङ्खका न्यास करना चाहिये।

तत्पश्चात् उन विष्णुदेवके दोनों ओर आयुधोंका न्यास करना चाहिये। विद्वान् साधक दक्षिणकी ओर शार्ङ्ग (धनुष) तथा देवके बायीं ओर इषु (बाणों)-का न्यास करे। इसी प्रकार दोनों भागोंमें खड्ग और चर्मका न्यास करे।

तदनन्तर वह साधक मण्डलके मध्य दिशाभेदके अनुसार पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंको प्रतिष्ठित करे और उनके आयुधोंको भी स्थापित करे। उसके बाद विद्वान् साधकको ऊपरकी ओर '**ॐ ब्रह्मणे नमः**' मन्त्रसे ब्रह्मा तथा नीचेकी ओर '**ॐ अनन्ताय नमः**' मन्त्रसे अनन्तदेवका न्यास करना चाहिये।

इस प्रकार साधक सभी देवोंका न्यास एवं ध्यान करके उनकी पूजा करे और उनके सामने उनकी ही मुद्राका प्रदर्शन करे। अञ्जलिबद्ध होना प्रथम मुद्रा है। इसके प्रदर्शनसे शीघ्र ही देवसिद्धि हो जाती है। दूसरी वन्दिनी मुद्रा है और तीसरी मुद्रा हृदयासक्ता है। इस मुद्रामें बायें हाथकी मुट्ठीसे दाहिने हाथके अँगूठेको बाँधकर बायें हाथके अँगूठेको ऊपर उठाये हुए हृदयभागसे संलग्न रखना चाहिये। व्यूह-पूजामें मूर्तिभेदसे इन तीन मुद्राओंको साधारण मुद्रा माना गया है। दोनों हाथोंमें अँगूठेसे कनिष्ठापर्यन्त तीन अँगुलियोंको नवाकर क्रमशः उन्हें मुक्त करनेसे आठ मुद्राएँ बनती हैं।

दोनों हाथोंके अँगूठोंसे अपने-अपने हाथकी मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा अँगुलियोंको नीचेकी ओर झुकाकर जो मुद्रा बनायी जाती है, उसको 'नरसिंह-मुद्रा' कहते हैं। दाहिने हाथके ऊपर बायें हाथको उत्तान स्थितिमें रखकर प्रतिमाके ऊपर धीरे-धीरे घुमानेको 'वाराही मुद्रा' कहते हैं। भगवान् वाराहको सदा ही यह प्रिय है। दोनों मुट्ठियोंको उत्तान रखकर क्रमशः एक-एक अँगुली सीधे खोलते हुए सभीको खोल दे। तदनन्तर उन सभी अँगुलियोंकी पुनः मुट्ठी बाँध ले। यह 'अङ्गमुद्रा' कहलाती है। साधकको इन मुद्राओंका प्रदर्शन क्रमशः दसों दिक्पालोंके लिये करना चाहिये।

भगवान् वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ देव-स्थानके अधिकारी देव हैं। साधकको—'ॐ अं वासुदेवाय नमः' मन्त्रसे वासुदेव, 'ॐ आं बलाय नमः' मन्त्रसे बलराम, 'ॐ अं प्रद्युम्नाय नमः' मन्त्रसे प्रद्युम्न तथा 'ॐ अः अनिरुद्धाय नमः' मन्त्रसे अनिरुद्धकी पूजा करनी चाहिये।

ॐकार, तत्सत्, हुं, क्ष्रौं तथा भूः—ये पाँच क्रमशः नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह और महावराह भगवान्‌के बीजमन्त्र हैं, इसलिये साधक—'ॐ नारायणाय नमः' मन्त्रसे भगवान् नारायण, 'ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः' मन्त्रसे पद्मयोनि ब्रह्मा, 'ॐ हुं विष्णवे नमः' मन्त्रसे विष्णु, 'ॐ क्ष्रौं नरसिंहाय नमः' मन्त्रसे नरसिंह तथा 'ॐ भूः महावराहाय नमः' मन्त्रसे आदिवराहका पूजन करे।

उपर्युक्त इन नौ देवताओं (वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण, ब्रह्मा, विष्णु, नरसिंह तथा महावराह) (नवव्यूह)-का वर्ण क्रमशः श्वेत, अरुण, हरिद्रावत् पीत, नील, श्यामल, लोहित, मेघवत् श्याम, अग्निवत् पीत एवं मधु पिङ्गल है। अर्थात् वासुदेव श्वेत, बलदेव अरुण, प्रद्युम्न हरिद्रावत् पीत, अनिरुद्ध नील, नारायण श्याम, ब्रह्मा रक्ताभ, विष्णु मेघवत् श्याम, नरसिंह अग्निवत् पीत तथा वराहदेव मधु पिङ्गल वर्णकी तेजस्वी आभासे सुशोभित रहते हैं।

'(ॐ) कं टं पं शं' बीजमन्त्रसे गरुड, '(ॐ) जं खं वं' बीजमन्त्रसे सुदर्शन , '(ॐ) षं चं फं षं' बीजमन्त्रसे गदादेवी, '(ॐ) वं लं मं क्षं' बीजमन्त्रसे शङ्ख, '(ॐ) घं ढं भं हं' बीजमन्त्रसे श्रीलक्ष्मी, '(ॐ) गं जं वं शं' बीजमन्त्रसे पुष्टि, '(ॐ) धं वं' बीजमन्त्रसे वनमाला, '(ॐ) दं सं' बीजमन्त्रसे श्रीवत्स और '(ॐ) छं डं पं यं' बीजमन्त्रसे कौस्तुभमणि युक्त हैं। [इसके अतिरिक्त] मैं स्वयं अनन्त (विष्णु) हूँ। ये सभी उस देवाधिदेव विष्णुके अङ्ग हैं।

गरुड कमलके समान लाल, गदा कृष्णवर्ण, पुष्टि शिरीष-पुष्परंगके समान आभासे समन्वित तथा लक्ष्मी सुवर्ण-कान्तिसे सुशोभित हैं। शङ्ख पूर्ण चन्द्रकी कान्तिके समान श्वेत और कौस्तुभमणि नवोदित अरुणके सदृश वर्णवाला है। चक्र सहस्र सूर्योंकी कान्तिके सदृश और श्रीवत्स कुन्द पुष्पके समान श्वेत है। वनमाला पाँच वर्णोंसे युक्त पञ्चवर्णी और अनन्त भगवान् मेघकी भाँति श्याम वर्णका है। जिन अस्त्रोंके रंगोंका वर्णन यहाँ नहीं किया गया है, वे सभी विद्युत्-कान्तिके समान हैं। (भगवान् विष्णुके इन समस्त अङ्गोंको) 'पुण्डरीकाक्ष' नामक विद्यासे अर्घ्य और पाद्यादि समर्पित करने चाहिये। (अध्याय ११)

पूजानुक्रम-निरूपण

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! देवके पूजनका जो क्रम है, उसके ज्ञानके लिये पूजाविधिके क्रमको कहा जा रहा है। सर्वप्रथम साधकको 'ॐ नमः' मन्त्रसे परमात्माका स्मरण करना चाहिये। तदनन्तर वह 'यं रं वं लम्' इन बीजमन्त्रोंके द्वारा शरीरकी शुद्धि करके 'ॐ नमः' इस मन्त्रसे चतुर्भुज भगवान् विष्णुके रूपमें ही अपनेको मान ले।

तत्पश्चात् करन्यास तथा देहन्यास करे। तदनन्तर हृदयमें योगपीठकी पूजाका विधान है। जिसको इन मन्त्रोंसे करे—

'ॐ अनन्ताय नमः। ॐ धर्माय नमः। ॐ ज्ञानाय नमः। ॐ वैराग्याय नमः। ॐ ऐश्वर्याय नमः। ॐ अधर्माय नमः। ॐ अज्ञानाय नमः। ॐ अवैराग्याय नमः। ॐ अनैश्वर्याय नमः। ॐ पद्माय नमः। ॐ आदित्यमण्डलाय नमः। ॐ चन्द्रमण्डलाय नमः। ॐ वह्निमण्डलाय नमः। ॐ विमलायै नमः। ॐ उत्कर्षिण्यै नमः। ॐ ज्ञानायै नमः। ॐ क्रियायै नमः। ॐ योगायै नमः। ॐ प्रह्व्यै नमः। ॐ सत्यायै नमः। ॐ ईशानायै नमः। ॐ सर्वतोमुख्यै नमः। ॐ साङ्गोपाङ्गाय हरेरासनाय नमः।'

इसके बाद साधक कर्णिकाके मध्यमें **'अं वासुदेवाय नमः'** कहकर भगवान् वासुदेवको नमस्कार करके निम्न मन्त्रोंसे हृदयादिन्यास करे—

'आं हृदयाय नमः। ईं शिरसे नमः। ऊँ शिखायै नमः। ऐं कवचाय नमः। औं नेत्रत्रयाय नमः। अः फट् अस्त्राय नमः।'

तदनन्तर— **'आं सङ्कर्षणाय नमः। अं प्रद्युम्नाय नमः। अः अनिरुद्धाय नमः। ॐ अः नारायणाय नमः। ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः। ॐ हुं विष्णवे नमः। क्ष्रौं नरसिंहाय नमः। भूर्वराहाय नमः।'**—इन मन्त्रोंसे संकर्षण आदि व्यूहदेवोंको नमस्कार करे।

तत्पश्चात् साधक निम्न मन्त्रोंसे भगवान् विष्णुके वाहन एवं आयुधादिको नमस्कार करे—

'कं टं जं शं वैनतेयाय (नमः)। जं खं वं सुदर्शनाय (नमः)। खं चं फं षं गदायै (नमः)। वं लं मं क्षं पाञ्चजन्याय (नमः)। घं ढं भं हं श्रियै (नमः)। गं डं वं शं पुष्ट्यै (नमः)। धं वं वनमालायै (नमः)। दं शं श्रीवत्साय (नमः)। छं डं यं कौस्तुभाय (नमः)। शं शार्ङ्गाय (नमः)। इं इषुधिभ्यां (नमः)। चं चर्मणे (नमः)। खं खड्गाय (नमः)।

तत्पश्चात् इन बीजमन्त्रोंसे इन्द्रादि दिक्पालोंको नमस्कार करना चाहिये—

(ॐ) लं इन्द्राय सुराधिपतये (नमः)। (ॐ) रं अग्नये तेजोऽधिपतये (नमः)। (ॐ) यमाय धर्माधिपतये (नमः)। (ॐ) क्षं नैर्ऋताय रक्षोऽधिपतये (नमः)। (ॐ) वं वरुणाय जलाधिपतये (नमः)। (ॐ) यों वायवे प्राणाधिपतये (नमः)। (ॐ) धं धनदाय धनाधिपतये (नमः)। (ॐ) हां ईशानाय विद्याधिपतये (नमः)।

इसके बाद क्रमशः पूर्वोक्त इन्द्र आदि दिक्पाल देवताओंके निम्न आयुधोंको प्रणाम करनेका विधान है—

(ॐ) वज्राय (नमः)। (ॐ) शक्त्यै (नमः)। (ॐ) दण्डाय (नमः)। (ॐ) खड्गाय (नमः)। (ॐ) पाशाय (नमः)। (ॐ) ध्वजाय (नमः)। (ॐ) गदायै (नमः)। (ॐ) त्रिशूलाय (नमः)।

इसके बाद भगवान् अनन्त तथा ब्रह्मदेवको इस मन्त्रसे प्रणाम करे—

(ॐ) लं अनन्ताय पातालाधिपतये (नमः)। (ॐ) खं ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये (नमः)।

अब इसके बाद साधक भगवान् वासुदेवको नमस्कार करनेके लिये द्वादशाक्षर-मन्त्रका प्रयोग करे, साथ ही द्वादशाक्षर-मन्त्रके बीजमन्त्रों और दशाक्षर-मन्त्रके बीज-मन्त्रोंको इस प्रकार नमस्कार करे—

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः।'

ॐ ॐ नमः। ॐ नं नमः। ॐ मों नमः। ॐ ॐ भं नमः। ॐ गं नमः। ॐ वं नमः। ॐ तें नमः। ॐ वां नमः। ॐ सुं नमः। ॐ दें नमः। ॐ वां नमः। ॐ यं नमः। ॐ ॐ नमः। ॐ नं नमः। ॐ मों नमः। ॐ नां नमः। ॐ रां नमः। ॐ यं नमः। ॐ णां नमः। ॐ यं नमः।

द्वादशाक्षर-मन्त्र— **ॐ नमो भगवते वासुदेवाय,** दशाक्षर-मन्त्र— **ॐ नमो नारायणाय नमः** तथा अष्टाक्षर-मन्त्र— **ॐ पुरुषोत्तमाय नमः**—इन मन्त्रोंका यथाशक्ति जप करके निम्न मन्त्रसे भगवान् पुण्डरीकाक्षको नमस्कार करे—

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज॥

हे पुण्डरीकाक्ष! (कमलनयन) आपको नमस्कार है। हे विश्वके कारणभूत! आपको मेरा प्रणाम है। हे ब्रह्मण्यदेव! आपको नमस्कार है। हे महापुरुष! हे पूर्वज! आपको मेरा प्रणाम है।

इस प्रकार भगवान् विष्णुकी स्तुति करके साधकको हवन करना चाहिये। तदनन्तर साधक (महापुरुषविद्या नामक) मन्त्रका विधिपूर्वक एक सौ आठ बार जप करके अर्घ्य प्रदान करे और 'जितं तेन' (यह स्तोत्र ही महापुरुषविद्या है) इसी स्तोत्रसे उन भगवान् नारायणको बारम्बार प्रणाम करना चाहिये।

तत्पश्चात् [अग्निकी स्थापना करके] साधक उस अग्निदेवकी पूजा करनेके बाद हवन करे। अपने (यथाविहित) बीजमन्त्रसे देवाधिदेव भगवान् विष्णु तथा अङ्गमन्त्रोंके द्वारा अच्युतादि आङ्गिक देवताओंको आहुति प्रदान करे। सबसे पहले मन्त्रविद् साधकको कुण्डमें ॐकारके द्वारा [तीन रेखाओंका] उल्लेखन करना चाहिये और उसके बाद यज्ञकुण्डका अभ्युक्षण[1] करना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि भ्रामणपूर्वक हवनकुण्डमें अग्नि स्थापित करके उत्तम फल आदिसे सविधि उसकी पूजा करनी चाहिये।

पहले साङ्गोपाङ्ग देव ब्रह्मका मनसे ध्यानकर मण्डलमें उन सभीको स्थापित करे। तदनन्तर वह साधक वासुदेव-मन्त्रसे एक सौ आठ बार आहुति दे। तत्पश्चात् वह सङ्कर्षण आदि देवोंके बीजमन्त्रसे उन छः देवोंकी भी पूजा करके अङ्ग देवताओंको तीन-तीन और दिक्पालोंको एक-एक आहुति प्रदान करे। उसके बाद हवन पूर्ण होनेपर साधकको पुनः एकाग्रचित्त स्थित होकर पूर्णाहुति देनी चाहिये।

तदनन्तर वह साधक 'वाणीसे अतीत उस परमात्मा'में अपने आत्माको लीन करे और निम्नलिखित मन्त्रसे वासुदेव और उन सभी देवोंका विसर्जन करे—

'गच्छ गच्छ परं स्थानं यत्र देवो निरञ्जनः॥
गच्छन्तु देवताः सर्वाः स्वस्थानस्थितिहेतवे।'

'हे देवाधिदेव भगवान् वासुदेव! अब आप उस अपने परम स्थानको प्राप्त करें, जहाँपर निर्मल (प्रकाशस्वरूप) परम ब्रह्मका निवास है। अङ्गदेव, सङ्कर्षणादि और इन्द्रादि दिक्पाल! आप सभी देव अपने-अपने स्थानमें निवास करनेके लिये प्रस्थान करें!'

सुदर्शन, श्रीहरि, अच्युत, त्रिविक्रम, चतुर्भुज, वासुदेव, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण और पुरुषसे युक्त देवोंका (एक जो समूह है उसे) नवव्यूह माना गया है। इसमें दसवें परम तत्त्वका योग होनेसे यह दशात्मक कहा जाता है। इसी नवव्यूहमें अनिरुद्ध तथा अनन्तका संनिवेश होनेसे यह एकादश व्यूह द्वादशात्मक कहलाता है।

अङ्कित चक्रोंमें उस प्रधान देवकी पूजा करनेपर वह (साधकके) घर आदिकी रक्षा करता है। अतः निम्न मन्त्रोंसे चक्रादिकी पूजा करनी चाहिये—

ॐ चक्राय स्वाहा। ॐ विचक्राय स्वाहा। ॐ सुचक्राय स्वाहा। ॐ महाचक्राय स्वाहा। ॐ असुरान्तकृत् हुं फट्। ॐ हुं सहस्रार हुं फट्।

उपर्युक्त मन्त्रोंसे की गयी पूजा द्वारकाचक्रकी पूजा कही जाती है। इस प्रकार सम्पन्न की गयी चक्रकी पूजा 'घरमें' सब प्रकारसे रक्षा करनेवाली तथा मङ्गलदायिनी है। (अध्याय १२)

विष्णुपञ्जरस्तोत्र[2]

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! अब मैं विष्णुपञ्जर नामक स्तोत्र कहता हूँ। यह स्तोत्र (बड़ा ही) कल्याणकारी है। उसे सुनें—

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णवं पञ्जरं शुभम्।
नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम्॥
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः।
गदां कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभ नमोऽस्तु ते॥
याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः।
हलमादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम॥
प्रतीच्यां रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः।
मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम्॥
उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः।
खड्गमादाय चर्माथ अस्त्रशस्त्रादिकं हरे॥
नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणं गतः।
पाञ्चजन्यं महाशङ्खमनुघोष्यं च पङ्कजम्॥
प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां यज्ञशूकर[3]।
चन्द्रसूर्यं समागृह्य खड्गं चान्द्रमसं तथा॥
नैर्ऋत्यां मां च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेसरिन्।

1. 'अभ्युक्षण' जलके द्वारा पवित्र करनेकी एक शास्त्रीय विधि है।
2. 'पञ्जर'का अर्थ है— रक्षक। यह विष्णुका स्तोत्र हम सबका रक्षक है, इसलिये 'विष्णुपञ्जरस्तोत्र' कहा जाता है।
3. वामनपुराण अध्याय १७ के अनुसार 'यज्ञशूकर' पाठ उचित है।

वैजयन्तीं सम्प्रगृह्य श्रीवत्सं कण्ठभूषणम्॥
वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तु ते।
वैनतेयं समारुह्य त्वन्तरिक्षे जनार्दन॥
मां रक्षस्वाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित।
विशालाक्षं[1] समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले॥
अकूपार[2] नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते।
करशीर्षाद्यङ्गुलीषु सत्य त्वं बाहुपञ्जरम्॥
कृत्वा रक्षस्व मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम।
एतदुक्तं शङ्कराय वैष्णवं पञ्जरं महत्॥
पुरा रक्षार्थमीशान्याः कात्यायन्या वृषध्वज।
नाशयामास सा येन चामरं महिषासुरम्॥
दानवं रक्तबीजं च अन्यांश्च सुरकण्टकान्।
एतज्जपन्नरो भक्त्या शत्रून् विजयते सदा॥
(१२।१—१४)

हे गोविन्द! आपको नमस्कार है। आप सुदर्शनचक्र लेकर पूर्व दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पद्मनाभ! आपको मेरा नमन है। आप अपनी कौमोदकी गदा धारणकर दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पुरुषोत्तम! आपको मेरा प्रणाम है। आप सौनन्द नामक हल लेकर पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष! आप शातन नामक मुसल हाथमें लेकर उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करें। हे जगन्नाथ! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे हरे! आपको मेरा नमस्कार है। आप खड्ग, चर्म (ढाल) आदि अस्त्र-शस्त्र ग्रहणकर ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। हे दैत्यविनाशक! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे यज्ञवराह (महावराह)! आप पाञ्चजन्य नामक महाशङ्ख और अनुघोष (अनुबोध) नामक पद्म ग्रहणकर अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! मैं आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी रक्षा करें। हे दिव्य-शरीर भगवान् नृसिंह! आप सूर्यके समान देदीप्यमान और चन्द्रके समान चमत्कृत खड्गको धारणकर नैर्ऋत्यकोणमें मेरी रक्षा करें। हे भगवान् हयग्रीव! आपको प्रणाम है। आप वैजयन्ती माला तथा कण्ठमें सुशोभित होनेवाले श्रीवत्स नामक आभूषणसे विभूषित होकर वायुकोणमें मेरी रक्षा करें। हे जनार्दन! आप वैनतेय गरुडपर आरूढ होकर अन्तरिक्षमें मेरी रक्षा करें। हे अजित! हे अपराजित! आपको सदैव मेरा प्रणाम है। हे कूर्मराज! आपको नमस्कार है। हे महामीन! आपको नमस्कार है। हे सत्यस्वरूप महाविष्णो! आप अपनी बाहुको पञ्जर (रक्षक)- जैसा स्वीकार करके हाथ, सिर, अङ्गुली आदि समस्त अङ्ग-उपाङ्गसे युक्त मेरे शरीरकी रक्षा करें। हे पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है।

हे वृषध्वज! मैंने प्राचीन कालमें सर्वप्रथम भगवती ईशानी कात्यायनीकी रक्षाके लिये इस विष्णुपञ्जर नामक स्तोत्रको कहा था। इसी स्तोत्रके प्रभावसे उस कात्यायनीने स्वयंको अमर समझनेवाले महिषासुर, रक्तबीज और देवताओंके लिये कण्टक बने हुए अन्यान्य दानवोंका विनाश किया था। इस विष्णुपञ्जर नामक स्तुतिका जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जप करता है, वह सदा अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेमें सफल होता है। (अध्याय १३)

ध्यान-योगका वर्णन

श्रीहरिने पुनः कहा— अब मैं भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले योगको कह रहा हूँ। योगियोंके द्वारा ध्यानगम्य जो देव हैं, उन्हें ही ईश्वर कहा जाता है। हे महेश्वर! उनके लिये किये जानेवाले योगको सुनें। यह योग समस्त पापोंका विनाशक है। योगीको आत्मस्वरूप परमात्माकी स्वयंमें इस प्रकार भावना करनी चाहिये—

मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही सभीका ईश्वर हूँ, मैं ही अनन्त हूँ और मैं ही छः ऊर्मियों[3] (शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा एवं पिपासा)-से रहित हूँ। मैं ही वासुदेव हूँ, मैं ही जगन्नाथ और ब्रह्मरूप हूँ। मैं ही समस्त प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाला आत्मा और सर्वदेहविमुक्त परमात्मा हूँ। मैं ही शरीरधर्मसे रहित, क्षर[4] (समस्त प्रपञ्च), अक्षर (कूटस्थ चेतन भोक्ता)-से

१. **विशालाक्ष**— गरुडवंशविशेष (शब्दकल्पद्रुम)।
२. **अकूपार**— कूर्मराज (मेदिनीकोश)।
३. 'शोकमोहौ जरामृत्यू क्षुत्पिपासे षडूर्मयः' (शब्दकल्पद्रुम)।
४. 'क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते' (गीता १५।१६)-के अनुसार समस्त प्रपञ्च क्षर है। '**अक्षर**' का अर्थ कूटस्थ है। श्रीधरस्वामीने '**कूटस्थ**' का अर्थ चेतन भोक्ता किया है।

अतीत, मनके साथ पाँच इन्द्रियोंमें मूल शक्तिरूपसे स्थित मैं स्वयं अतीन्द्रिय (इन्द्रियोंसे अग्राह्य) होता हुआ द्रष्टा, श्रोता एवं घ्राता (गन्ध ग्रहण करनेवाला) हूँ।

मैं इन्द्रियधर्मसे रहित, जगत्‌का स्रष्टा, नाम और गोत्रसे शून्य, मननशील सबके मनमें स्थित देवता हूँ, किंतु मुझमें मन नहीं है और न तो उसका धर्म ही है। मैं ही विज्ञान[1] तथा ज्ञानस्वरूप[2] हूँ। मैं ही समस्त ज्ञानका आश्रय, बुद्धिरूप गुहामें स्थित प्राणिमात्रका साक्षी (तटस्थ द्रष्टा) तथा सर्वज्ञ और बुद्धिकी अधीनतासे मुक्त हूँ। मैं ही बुद्धिके धर्मोंसे भी शून्य हूँ, मैं ही सर्वस्वरूप, सर्वगतमनस्स्वरूप और प्राणिमात्रके किसी भी प्रकारके बन्धनसे सर्वथा विनिर्मुक्त तथा प्राणधर्म[3] (बुभुक्षा एवं पिपासा)-से विमुक्त हूँ। मैं ही प्राणियोंका प्राणस्वरूप हूँ, मैं ही महाशान्त, भयशून्य तथा अहंकारादिसे रहित हूँ और अहंकारजन्य विकारोंसे भी मैं रहित हूँ।

मैं जगत्‌का साक्षी, जगत्‌का नियन्ता और परमानन्दस्वरूप हूँ। जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति—इन सभी अवस्थाओंमें जगत्‌का साक्षी होते हुए भी मैं इन अवस्थाओंसे रहित हूँ। मैं ही तुरीय ब्रह्म और विधाता हूँ। मैं ही दृग्रूप[4] हूँ। मैं ही निर्गुण, मुक्त, बुद्ध, शुद्ध-प्रबुद्ध, अजर, सर्वव्यापी, सत्यस्वरूप एवं शिवस्वरूप परमात्मा हूँ।

इस प्रकार जो विद्वान् इन परमपद-परमेश्वरका ध्यान करते हैं, वे निश्चय ही ईश्वरका सारूप्य प्राप्त कर लेते हैं, इसमें संदेह नहीं है। हे सुव्रत शङ्कर! आपसे ही इस ध्यानयोगकी चर्चा मैंने की है। जो व्यक्ति सदैव इस ध्यानयोगका पाठ (चिन्तन-मनन) करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १४)

विष्णुसहस्रनाम

श्रीरुद्रने पूछा—हे प्रभो! मनुष्य किस मन्त्रका जप करके इस अथाह संसार-सागरसे पार हो सकता है? आप जप करने-योग्य उस श्रेष्ठ मन्त्रको मुझे बतायें।

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! परम ब्रह्म, परमात्मा, नित्य, परमेश्वर भगवान् विष्णुकी सहस्रनामसे स्तुति करनेपर मनुष्य भवसागरको पार कर सकता है। हे वृषभध्वज! मैं उस पवित्र, श्रेष्ठतम और जप करने-योग्य (विष्णु) 'सहस्रनाम' को कहता हूँ। वह समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाला स्तोत्र है। आप उसे सावधान होकर सुनें—

ॐ वासुदेवो महाविष्णुर्वामनो वासवो वसुः।
बालचन्द्रनिभो बालो बलभद्रो बलाधिपः॥
बलिबन्धनकृद्वेधा वरेण्यो वेदवित् कविः।
वेदकर्ता वेदरूपो वेद्यो वेदपरिप्लुतः॥
वेदाङ्गवेत्ता वेदेशो बलाधारो बलार्दनः।
अविकारो वरेशश्च वरुणो वरुणाधिपः॥
वीरहा च बृहद्वीरो वन्दितः परमेश्वरः।
आत्मा च परमात्मा च प्रत्यगात्मा वियत्परः॥
पद्मनाभः पद्मनिधिः पद्महस्तो गदाधरः (धराधरः)।
परमः परभूतश्च पुरुषोत्तम ईश्वरः॥
पद्मजङ्घः पुण्डरीकः पद्ममालाधरः प्रियः।
पद्माक्षः पद्मगर्भश्च पर्जन्यः पद्मसंस्थितः॥
अपारः परमार्थश्च पराणां च परः प्रभुः।
पण्डितः पण्डितेड्यश्च पवित्रः पापमर्दकः॥
शुद्धः प्रकाशरूपश्च पवित्रः परिरक्षकः।
पिपासावर्जितः पाद्यः पुरुषः प्रकृतिस्तथा॥
प्रधानं पृथिवीपद्मं पद्मनाभः प्रियप्रदः (प्रियंवदः)।
सर्वेशः सर्वगः सर्वः सर्ववित् सर्वदः सुरः (परः)॥
सर्वस्य जगतो धाम सर्वदर्शी च सर्वभृत्।
सर्वानुग्रहकृद्देवः सर्वभूतहृदि स्थितः॥
सर्वपूज्यश्च सर्वाद्यः सर्वदेवनमस्कृतः।
सर्वस्य जगतो मूलं सकलो निष्कलोऽनलः॥
सर्वगोप्ता सर्वनिष्ठः सर्वकारणकारणम्।
सर्वध्येयः सर्वमित्रः सर्वदेवस्वरूपधृक्॥
सर्वाध्यक्षः सुराध्यक्षः सुरासुरनमस्कृतः।

१. 'विज्ञान'—परमार्थज्ञान। २. 'ज्ञान'—व्यावहारिक ज्ञान। ३. बुभुक्षा च पिपासा च प्राणस्य ''''(शब्दकल्पद्रुम)।

४. 'दृग्रूप' का तात्पर्य यह है—समस्त प्रपञ्च द्रष्टा, दृश्य एवं दृष्टि—इन तीनोंमें अन्तर्हित है। परमेश्वर विष्णु ही द्रष्टा हैं, वे ही दृश्य हैं, दृष्टि भी वे ही हैं। यह दृष्टि ही 'दृग्' शब्दसे कही जाती है।

दुष्टानां चासुराणां च सर्वदा घातकोऽन्तकः ॥
सत्यपालश्च सन्नाभः सिद्धेशः सिद्धवन्दितः ।
सिद्धसाध्यः सिद्धसिद्धः साध्यसिद्धो (सिद्धिसिद्धः) हृदीश्वरः ॥
शरणं जगतश्चैव श्रेयः क्षेमस्तथैव च ।
शुभकृच्छोभनः सौम्यः सत्यः सत्यपराक्रमः ॥
सत्यस्थः सत्यसङ्कल्पः सत्यवित् सत्य(त्र)दस्तथा ।
धर्मो धर्मी च कर्मी च सर्वकर्मविवर्जितः ॥
कर्मकर्ता च कर्मैव क्रिया कार्यं तथैव च ।
श्रीपतिर्नृपतिः श्रीमान् सर्वस्य पतिरूर्जितः ॥
सदेवानां पतिश्चैव वृष्णीनां पतिरीडितः ।
पतिर्हिरण्यगर्भस्य त्रिपुरान्तपतिस्तथा ॥
पशूनां च पतिः प्रायो वसूनां पतिरेव च ।
पतिराखण्डलस्यैव वरुणस्य पतिस्तथा ॥
वनस्पतीनां च पतिरनिलस्य पतिस्तथा ।
अनलस्य पतिश्चैव यमस्य पतिरेव च ॥
कुबेरस्य पतिश्चैव नक्षत्राणां पतिस्तथा ।
ओषधीनां पतिश्चैव वृक्षाणां च पतिस्तथा ॥
नागानां पतिरर्कस्य दक्षस्य पतिरेव च ।
सुहृदां च पतिश्चैव नृपाणां च पतिस्तथा ॥
गन्धर्वाणां पतिश्चैव असूनां पतिरुत्तमः ।
पर्वतानां पतिश्चैव निम्नगानां पतिस्तथा ॥
सुराणां च पतिः श्रेष्ठः कपिलस्य पतिस्तथा ।
लतानां च पतिश्चैव वीरुधां च पतिस्तथा ॥
मुनीनां च पतिश्चैव सूर्यस्य पतिरुत्तमः ।
पतिश्चन्द्रमसः श्रेष्ठः शुक्रस्य पतिरेव च ॥
ग्रहाणां च पतिश्चैव राक्षसानां पतिस्तथा ।
किन्नराणां पतिश्चैव द्विजानां पतिरुत्तमः ॥
सरितां च पतिश्चैव समुद्राणां पतिस्तथा ।
सरसां च (रसानां च) पतिश्चैव भूतानां च पतिस्तथा ॥
वेतालानां पतिश्चैव कूष्माण्डानां पतिस्तथा ।
पक्षिणां च पतिः श्रेष्ठः पशूनां पतिरेव च ॥
महात्मा मङ्गलो मेयो मन्दरो मन्दरेश्वरः ।
मेरुर्माता प्रमाणं च माधवो मलवर्जितः ॥
मालाधरो महादेवो महादेवेन पूजितः ।
महाशान्तो महाभागो मधुसूदन एव च ॥
महावीर्यो महाप्राणो मार्कण्डेयर्षिवन्दितः ।
मायात्मा मायया बद्धो मायया तु विवर्जितः ॥
मुनिस्तुतो मुनिर्मैत्रो महाना (रा) सो महाहनुः ।
महाबाहुर्महादान्तो (महादन्तो) मरणेन विवर्जितः ॥
महावक्त्रो महात्मा च महाकायो महोदरः ।
महापादो महाग्रीवो महामानी महामनाः ॥
महागतिर्महाकीर्तिर्महारूपो महासुरः ।
मधुश्च माधवश्चैव महादेवो महेश्वरः ॥
मखेज्यो मखरूपी च माननीयो मखेश्वरः (महेश्वरः) ।
महावातो महाभागो महेशोऽतीतमानुषः ॥
मानवश्च[1] मनुश्चैव मानवानां प्रियङ्करः ।
मृगश्च मृगपूज्यश्च मृगाणां च पतिस्तथा ॥
बुधस्य च पतिश्चैव पतिश्चैव बृहस्पतेः ।
पतिः शनैश्चरस्यैव राहोः केतोः पतिस्तथा ॥
लक्ष्मणो लक्षणश्चैव लम्बोष्ठो ललितस्तथा ।
नानालङ्कारसंयुक्तो नानाचन्दनचर्चितः ॥
नानारसोज्ज्वलद्वक्त्रो नानापुष्पोपशोभितः ।
रामो रमापतिश्चैव सभार्यः[2] परमेश्वरः ॥
रत्नदो रत्नहर्ता च रूपी रूपविवर्जितः ।
महारूपोग्ररूपश्च सौम्यरूपस्तथैव च ॥
नीलमेघनिभः शुद्धः कालमेघनिभस्तथा ।
धूमवर्णः पीतवर्णो नानारूपो (नानावर्णो) ह्यवर्णकः ॥
विरूपो रूपदश्चैव शुक्लवर्णस्तथैव च ।
सर्ववर्णो महायोगी यज्ञो (याज्यो) यज्ञकृदेव च ॥
सुवर्णवर्णवांश्चैव सुवर्णाख्यस्तथैव च ।
सुवर्णावयवश्चैव सुवर्णः स्वर्णमेखलः ॥
सुवर्णस्य प्रदाता च सुवर्णेशस्तथैव (सुवर्णाशस्तथैव च) च ।
सुवर्णस्य प्रियश्चैव सुवर्णाढ्यस्तथैव च ॥
सुपर्णी च महापर्णी सुपर्णस्य च कारणम् ।
वैनतेयस्तथादित्य आदिरादिकरः शिवः ॥
कारणं महतश्चैव प्रधानस्य च कारणम् ।
बुद्धीनां कारणं चैव कारणं मनसस्तथा ॥
कारणं चेतसश्चैव अहङ्कारस्य कारणम् ।

१-मानवो मनुजश्चैव० । २-ज्ञातार्थः पर० ।

भूतानां कारणं तद्वत् कारणं च विभावसोः॥
आकाशकारणं तद्वत् पृथिव्याः कारणं परम्।
अण्डस्य कारणं चैव प्रकृतेः कारणं तथा॥
देहस्य कारणं चैव चक्षुषश्चैव कारणम्।
श्रोत्रस्य कारणं तद्वत् कारणं च त्वचस्तथा॥
जिह्वायाः कारणं चैव घ्राणस्यैव च कारणम्।
हस्तयोः कारणं तद्वत् पादयोः कारणं तथा॥
वाचश्च कारणं तद्वत् पायोश्चैव तु कारणम्।
इन्द्रस्य कारणं चैव कुबेरस्य च कारणम्॥
यमस्य कारणं चैव ईशानस्य च कारणम्।
यक्षाणां कारणं चैव रक्षसां कारणं परम्॥
नृपाणां कारणं श्रेष्ठं धर्मस्यैव तु कारणम्।
जन्तूनां कारणं चैव वसूनां कारणं परम्॥
मनूनां कारणं चैव पक्षिणां कारणं परम्।
मुनीनां कारणं श्रेष्ठं योगिनां कारणं परम्॥
सिद्धानां कारणं चैव यक्षाणां कारणं परम्।
कारणं किन्नराणां च गन्धर्वाणां च कारणम्॥
नदानां कारणं चैव नदीनां कारणम् परम्।
कारणं च समुद्राणां वृक्षाणां कारणं तथा॥
कारणं वीरुधां चैव लोकानां कारणं तथा।
पातालकारणं चैव देवानां कारणं तथा॥
सर्पाणां कारणं चैव श्रेयसां कारणं तथा।
पशूनां कारणं चैव सर्वेषां कारणं तथा॥
देहात्मा चेन्द्रियात्मा च आत्मा बुद्धिस्तथैव च।
मनसश्च तथैवात्मा चात्माहङ्कारचेतसः[1]॥
जाग्रतः स्वपतश्चात्मा महदात्मा परस्तथा।
प्रधानस्य परात्मा च आकाशात्मा ह्यपां तथा॥
पृथिव्याः परमात्मा च रसस्यात्मा तथैव च।
गन्धस्य परमात्मा च रूपस्यात्मा परस्तथा॥
शब्दात्मा चैव वागात्मा स्पर्शात्मा पुरुषस्तथा।
श्रोत्रात्मा च त्वगात्मा च जिह्वात्मा परमस्तथा॥
घ्राणात्मा चैव हस्तात्मा पादात्मा परमस्तथा।
उपस्थस्य तथैवात्मा पाय्वात्मा परमस्तथा॥
इन्द्रात्मा चैव ब्रह्मात्मा रुद्रा (शान्ता) त्मा च मनोस्तथा।
दक्षप्रजापतेरात्मा सत्या (त्वष्टा) त्मा परमस्तथा॥
ईशात्मा परमात्मा च रौद्रात्मा मोक्षविद्यतिः।
यत्नवांश्च तथा यत्नश्चर्मी खड्गी मुरान्तकः (असुरान्तकः)॥
ह्रीप्रवर्तनशीलश्च यतीनां च हिते रतः।
यतिरूपी च योगी च योगिध्येयो हरिः शितिः॥
संविन्मेधा च कालश्च ऊष्मा वर्षा म (म) तिस्तथा।
संवत्सरो मोक्षकरो मोहप्रध्वंसकस्तथा॥
मोहकर्ता च दुष्टानां माण्डव्यो वडवामुखः।
संवर्तः कालकर्ता च गौतमो भृगुरङ्गिराः॥
अत्रिर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्यः कुत्स एव च।
याज्ञवल्क्यो देवलश्च व्यासश्चैव पराशरः॥
शर्मदश्चैव गाङ्गेयो हृषीकेशो बृहच्छ्रवाः।
केशवः क्लेशहन्ता च सुकर्णः कर्णवर्जितः॥
नारायणो महाभागः प्राणस्य पतिरेव च।
अपानस्य पतिश्चैव व्यानस्य पतिरेव च॥
उदानस्य पतिः श्रेष्ठः समानस्य पतिस्तथा।
शब्दस्य च पतिः श्रेष्ठः स्पर्शस्य पतिरेव च॥
रूपाणां च पतिश्चाद्यः खड्गपाणिर्हलायुधः।
चक्रपाणिः कुण्डली च श्रीवत्साङ्कस्तथैव च॥
प्रकृतिः कौस्तुभग्रीवः पीताम्बरधरस्तथा।
सुमुखो दुर्मुखश्चैव मुखेन तु विवर्जितः॥
अनन्तोऽनन्तरूपश्च सुनखः सुरमन्दरः।
सुकपोलो विभुर्जिष्णुर्भ्राजिष्णुश्चेषुधीस्तथा॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता हिरण्याक्षविमर्दकः।
निहन्ता पूतनायाश्च भास्करान्तविनाशनः॥
केशिनो दलनश्चैव मुष्टिकस्य विमर्दकः।
कंसदानवभेत्ता च चाणूरस्य (धेनुकस्य) प्रमर्दकः॥
अरिष्टस्य निहन्ता च अक्रूरप्रिय एव च।
अक्रूरः क्रूररूपश्च अक्रूरप्रियवन्दितः॥
भगहा भगवान् भानुस्तथा भागवतः स्वयम्।
उद्धवश्चोद्धवस्येशो ह्युद्धवेन विचिन्तितः॥
चक्रधृक् चञ्चलश्चैव चलाचलविवर्जितः।
अहङ्कारोपमश्चित्तं गगनं पृथिवी जलम्॥
वायुश्चक्षुस्तथा श्रोत्रं जिह्वा च घ्राणमेव च।
वाक्पाणिपादजवनः[2] पायूपस्थस्तथैव च॥
शङ्करश्चैव सर्वश्च क्षान्तिदः क्षान्तिकृन्नरः।

१-चाहाहंकार०। २-पाणिपादावितिं पा०।

भक्तप्रियस्तथा भर्ता भक्तिमान् भक्तिवर्धनः॥
भक्तस्तुतो भक्तपरः कीर्तिदः कीर्तिवर्धनः।
कीर्तिर्दीप्तिः क्षमाकान्तिर्भक्तश्चैव दया परा॥
दानं दाता च कर्ता च देवदेवप्रियः शुचिः।
शुचिमान् सुखदो मोक्षः कामश्चार्थः सहस्रपात्॥
सहस्रशीर्षा वैद्यश्च मोक्षद्वारं तथैव च।
प्रजाद्वारं सहस्राक्षः सहस्रकर एव च॥
शुक्रश्च (सुभ्रुः) सुकिरीटी च सुग्रीवः कौस्तुभस्तथा।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च हयग्रीवश्च सूकरः॥
मत्स्यः परशुरामश्च प्रह्लादो बलिरेव च।
शरण्यश्चैव नित्यश्च बुद्धो मुक्तः शरीरभृत्॥
खरदूषणहन्ता च रावणस्य प्रमर्दनः।
सीतापतिश्च वर्धिष्णुर्भरतश्च तथैव च॥
कुम्भेन्द्रजिन्निहन्ता च कुम्भकर्णप्रमर्दनः।
नरान्तकान्तकश्चैव देवान्तकविनाशनः॥
दुष्टासुरनिहन्ता च शम्बरारिस्तथैव च।
नरकस्य निहन्ता च त्रिशीर्षस्य विनाशनः॥
यमलार्जुनभेत्ता च तपोहितकरस्तथा।
वादित्रं चैव वाद्यं च बुद्धश्चैव वरप्रदः॥
सारः सारप्रियः सौरः कालहन्तुनिकृन्तनः।
अगस्त्यो देवलश्चैव नारदो नारदप्रियः॥
प्राणोऽपानस्तथा व्यानो रजः सत्त्वं तमः शरत्।
उदानश्च समानश्च भेषजं च भिषक् तथा॥
कूटस्थः स्वच्छरूपश्च सर्वदेहविवर्जितः।
चक्षुरिन्द्रियहीनश्च वागिन्द्रियविवर्जितः॥
हस्तेन्द्रियविहीनश्च पादाभ्यां च विवर्जितः।
पायूपस्थविहीनश्च महातापविवर्जितः॥
प्रबोधेन विहीनश्च बुद्ध्या चैव विवर्जितः।
चेतसा विगतश्चैव प्राणेन च विवर्जितः॥
अपानेन विहीनश्च व्यानेन च विवर्जितः।
उदानेन विहीनश्च समानेन विवर्जितः॥
आकाशेन विहीनश्च वायुना परिवर्जितः।
अग्निना च विहीनश्च उदकेन विवर्जितः॥
पृथिव्या च विहीनश्च शब्देन च विवर्जितः।
स्पर्शेन च विहीनश्च सर्वरूपविवर्जितः॥

रागेण विगतश्चैव अघेन परिवर्जितः।
शोकेन रहितश्चैव वचसा परिवर्जितः॥
रजोविवर्जितश्चैव विकारैः षड्भिरेव च।
कामेन वर्जितश्चैव क्रोधेन परिवर्जितः॥
लोभेन विगतश्चैव दम्भेन च विवर्जितः।
सूक्ष्मश्चैव सुसूक्ष्मश्च स्थूलात्स्थूलतरस्तथा॥
विशारदो बलाध्यक्षः सर्वस्य क्षोभकस्तथा।
प्रकृतेः क्षोभकश्चैव महतः क्षोभकस्तथा॥
भूतानां क्षोभकश्चैव बुद्धेश्च क्षोभकस्तथा।
इन्द्रियाणां क्षोभकश्च विषयक्षोभकस्तथा॥
ब्रह्मणः क्षोभकश्चैव रुद्रस्य क्षोभकस्तथा।
अगम्यश्चक्षुरादेश्च श्रोत्रागम्यस्तथैव च॥
त्वचा न गम्यः कूर्मश्च जिह्वाऽग्राह्यस्तथैव च।
घ्राणेन्द्रियागम्य एव वाचाऽग्राह्यस्तथैव च॥
अगम्यश्चैव पाणिभ्यां पदागम्यस्तथैव च।
अग्राह्यो मनसश्चैव बुद्ध्याऽग्राह्यो हरिस्तथा॥
अहं बुद्ध्या तथा ग्राह्यश्चेतसा ग्राह्य एव च।
शङ्खपाणिश्चाव्ययश्च गदापाणिस्तथैव च॥
शार्ङ्गपाणिश्च कृष्णश्च ज्ञानमूर्तिः परन्तपः।
तपस्वी ज्ञानगम्यो हि ज्ञानी ज्ञानविदेव च॥
ज्ञेयश्च ज्ञेयहीनश्च ज्ञप्तिश्चैतन्यरूपकः।
भावो भाव्यो भवकरो भावनो भवनाशनः॥
गोविन्दो गोपतिर्गोपः सर्वगोपीसुखप्रदः।
गोपालो गोगतिश्चैव गोमतिर्गोधरस्तथा॥
उपेन्द्रश्च नृसिंहश्च शौरिश्चैव जनार्दनः।
आरणेयो बृहद्भानुर्बृहद्दीप्तिस्तथैव च॥
दामोदरस्त्रिकालश्च कालज्ञः कालवर्जितः।
त्रिसन्ध्यो द्वापरं त्रेता प्रजाद्वारं त्रिविक्रमः॥
विक्रमो दण्ड (र) हस्तश्च ह्येकदण्डी त्रिदण्डधृक्।
सामभेदस्तथोपायः सामरूपी च सामगः॥
सामवेदो ह्यथर्वश्च सुकृतः सुतरूपणः।
अथर्ववेदविच्चैव ह्यथर्वाचार्य एव च॥
ऋग्रूपी चैव ऋग्वेद ऋग्वेदेषु प्रतिष्ठितः।
यजुर्वेत्ता यजुर्वेदो यजुर्वेदविदेकपात्॥
बहुपाच्च सुपाच्चैव तथैव च सहस्रपात्।

चतुष्पाच्च द्विपाच्चैव स्मृतिर्न्यायो यमो बली॥
संन्यासी चैव संन्यासश्चतुराश्रम एव च।
ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वर्णास्तथैव च।
शीलदः शीलसम्पन्नो दुःशीलपरिवर्जितः॥
मोक्षोऽध्यात्मसमाविष्टः स्तुतिः स्तोता च पूजकः।
पूज्यो वाक्करणं चैव वाच्यं चैव तु वाचकः॥
वेत्ता व्याकरणं चैव वाक्यं चैव च वाक्यवित्।
वाक्यगम्यस्तीर्थवासी तीर्थस्तीर्थी च तीर्थवित्॥
तीर्थादिभूतः साङ्ख्यश्च निरुक्तं त्वधिदैवतम्।
प्रणवः प्रणवेशश्च प्रणवेन प्रवन्दितः॥
प्रणवेन च लक्ष्यो वै गायत्री च गदाधरः।
शालग्रामनिवासी च शालग्रामस्तथैव च॥
जलशायी योगशायी शेषशायी कुशेशयः।
महीभर्ता च कार्यं च कारणं पृथिवीधरः॥
प्रजापतिः शाश्वतश्च काम्यः कामयिता विराट्।
सम्राट् पूषा तथा स्वर्गो रथस्थः सारथिर्बलम्॥
धनी धनप्रदो धन्यो यादवानां हिते रतः।
अर्जुनस्य प्रियश्चैव ह्यर्जुनो भीम एव च॥
पराक्रमो दुर्विषहः सर्वशास्त्रविशारदः।
सारस्वतो महाभीष्मः पारिजातहरस्तथा॥
अमृतस्य प्रदाता च क्षीरोदः क्षीरमेव च।
इन्द्रात्मजस्तस्य गोप्ता गोवर्धनधरस्तथा॥
कंसस्य नाशनस्तद्वद्धस्तिपो हस्तिनाशनः।
शिपिविष्टः प्रसन्नश्च सर्वलोकार्तिनाशनः॥
मुद्रो मुद्रा करश्चैव सर्वमुद्राविवर्जितः।
देही देहस्थितश्चैव देहस्य च नियामकः॥
श्रोता श्रोतृनियन्ता च श्रोतव्यः श्रवणं तथा।
त्वक्स्थितश्च स्पर्शयिता स्पृश्यं च स्पर्शनं तथा॥
रूपद्रष्टा च चक्षुःस्थो नियन्ता चक्षुषस्तथा।
दृश्यं चैव तु जिह्वास्थो रसज्ञश्च नियामकः॥
घ्राणस्थो घ्राणकृद् घ्राता घ्राणेन्द्रियनियामकः।
वाक्स्थो वक्ता च वक्तव्यो वचनं वाङ्नियामकः॥
प्राणिस्थः शिल्पकृच्छिल्पो हस्तयोश्च नियामकः।
पदव्यश्चैव गन्ता च गन्तव्यं गमनं तथा॥
नियन्ता पादयोश्चैव पाद्यभाक् च विसर्गकृत्।
विसर्गस्य नियन्ता च ह्युपस्थस्थः सुखं तथा॥
उपस्थस्य नियन्ता च तदानन्दकरश्च ह।
शत्रुघ्नः कार्तवीर्यश्च दत्तात्रेयस्तथैव च॥
अलर्कस्य हितश्चैव कार्तवीर्यनिकृन्तनः।
कालनेमिर्महानेमिर्मेघो मेघपतिस्तथा॥
अन्नप्रदोऽन्नरूपी च ह्यन्नादोऽन्नप्रवर्तकः।
धूमकृद्धूमरूपश्च देवकीपुत्र उत्तमः॥
देवक्यानन्दनो नन्दो रोहिण्याः प्रिय एव च।
वसुदेवप्रियश्चैव वसुदेवसुतस्तथा॥
दुन्दुभिर्हासरूपश्च पुष्पहासस्तथैव च।
अट्टहासप्रियश्चैव सर्वाध्यक्षः क्षरोऽक्षरः॥
अच्युतश्चैव सत्येशः सत्यायाश्च प्रियो वरः।
रुक्मिण्याश्च पतिश्चैव रुक्मिण्या वल्लभस्तथा॥
गोपीनां वल्लभश्चैव पुण्यश्लोकश्च विश्रुतः।
वृषाकपिर्यमो गुह्यो मङ्कुलश्च[१] बुधस्तथा॥
राहुः केतुर्ग्रहो ग्राहो गजेन्द्रमुखमेलकः[२]।
ग्राहस्य विनिहन्ता च ग्रामणी रक्षकस्तथा॥
किन्नरश्चैव सिद्धश्च छन्दः स्वच्छन्द एव च।
विश्वरूपो विशालाक्षो दैत्यसूदन एव च॥
अनन्तरूपो भूतस्थो देवदानवसंस्थितः।
सुषुप्तिस्थः सुषुप्तिश्च स्थानं स्थानान्त एव च॥
जगत्स्थश्चैव जागर्ता स्थानं जागरितं तथा।
स्वप्नस्थः स्वप्नवित् स्वप्नस्थानं स्वप्नस्तथैव च॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तैश्च विहीनो वै चतुर्थकः।
विज्ञानं वेद्यरूपं च जीवो जीवयिता तथा॥
भुवनाधिपतिश्चैव भुवनानां नियामकः।
पातालवासी पातालं सर्वज्वरविनाशनः॥
परमानन्दरूपी च धर्माणां च प्रवर्तकः।
सुलभो दुर्लभश्चैव प्राणायामपरस्तथा॥
प्रत्याहारो धारकश्च प्रत्याहारकरस्तथा।
प्रभा कान्तिस्तथा ह्यर्चिः शुद्धः स्फटिकसंनिभः॥
अग्राह्यश्चैव गौरश्च सर्वः शुचिरभिष्टुतः।
वषट्कारो वषड् वौषट् स्वधा स्वाहा रतिस्तथा॥
पक्ता नन्दयिता भोक्ता बोद्धा भावयिता तथा।
ज्ञानात्मा चैव देहात्मा भू (ऊ) मा सर्वेश्वरेश्वरः॥
नदी नन्दी च नन्दीशो भारतस्तरुनाशनः।

१-मङ्कलश्च बुध इति पा०। २-गजेन्द्रमुपमेल०।

चक्रपः श्रीपतिश्चैव नृपाणां चक्रवर्तिनाम्॥
ईशश्च सर्वदेवानां द्वारकासंस्थितस्तथा।
पुष्करः पुष्कराध्यक्षः पुष्करद्वीप एव च॥
भरतो जनको जन्यः सर्वाकारविवर्जितः।
निराकारो निर्निमित्तो निरातंको निराश्रयः॥
इति नामसहस्रं ते वृषभध्वज कीर्तितम्।
देवस्य विष्णोरीशस्य सर्वपापविनाशनम्॥
पठन् द्विजश्च विष्णुत्वं क्षत्रियो जयमाप्नुयात्।
वैश्यो धनं सुखं शूद्रो विष्णुभक्तिसमन्वितः॥

हे वृषभध्वज! मैंने सर्वपापविनाशक, जगदीश्वर, देवाधिदेव, विष्णुके इस सहस्रनामका जो कीर्तन किया है, इसका पाठ करनेसे ब्राह्मण विष्णुत्व अर्थात् विष्णुस्वरूप, क्षत्रिय विजय, वैश्य धन तथा सुख और शूद्र विष्णुकी भक्ति प्राप्त करता है। (अध्याय १५)

भगवान् विष्णुका ध्यान एवं सूर्यार्चन-निरूपण

रुद्रने कहा—हे शंख-चक्र और गदाको धारण करनेवाले भगवान् हरि! आप पुनः देवदेवेश्वर शुद्धरूप परमात्मा विष्णुके ध्यानका वर्णन करें।

हरिने कहा—हे रुद्र! संसाररूपी वृक्षका विनाश करनेवाले वे हरि ज्ञानरूप, अनन्त, सर्वव्याप्त, अजन्मा और अव्यय हैं। वे अविनाशी, सर्वत्रगामी, नित्य, महान्, अद्वितीय ब्रह्म हैं। सम्पूर्ण संसारके मूल कारण तथा समस्त चराचरमें गतिमान् परमेश्वर हैं। वे समस्त प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाले तथा सभीके ईश्वर हैं, सम्पूर्ण जगत्‌का आधार होते हुए भी वे स्वयं निराधार हैं। सभी कारणोंके कारण हैं।

सांसारिक विषयोंकी आसक्तिसे परे उनकी स्थिति है, वे निर्मुक्त हैं। मुक्त योगियोंके ध्येय हैं। वे स्थूल शरीरसे रहित, नेत्र, पाणि, पाद, पायु, उपस्थादि समस्त इन्द्रियोंसे विहीन हैं। वे हरि मन एवं मनके धर्म सङ्कल्प-विकल्प आदिसे रहित हैं। वे बुद्धि (भौतिक इन्द्रियविशेष)-से रहित, बुद्धि-धर्म-विवर्जित, अहंकारसे शून्य, चित्तसे अग्राह्य, प्राण-अपान-व्यानादि वायुसे रहित हैं।

हरिने कहा—अब मैं सूर्यकी पूजाका पुनः वर्णन करता हूँ, जो प्राचीन कालमें भृगु ऋषिको सुनायी गयी थी।

'**ॐ खखोल्काय नमः**'—यह भगवान् सूर्यदेवका मूल मन्त्र है, जो साधकको भोग और मोक्ष प्रदान करता है। (निम्न मन्त्रसे अङ्गन्यास करके साधकको सूर्यदेवकी पूजा करनी चाहिये।) यथा—

'**ॐ खखोल्काय त्रिदशाय नमः।**' '**ॐ विचि ठठ शिरसे नमः।**' '**ॐ ज्ञानिने ठठ शिखायै नमः।**' '**ॐ सहस्ररश्मये ठठ कवचाय नमः।**' '**ॐ सर्वतेजोऽधिपतये ठठ अस्त्राय नमः।**' '**ॐ ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ठठ नमः।**'

सूर्यका यह मन्त्र साधकके समस्त पापोंका विनाश करनेवाला है। इसे अग्नि-प्राकार मन्त्र भी कहते हैं।

भगवान् सूर्यको प्रसन्न करनेवाला मन्त्र इस प्रकार है, यह सूर्य-गायत्री-मन्त्र कहलाता है—इस मन्त्र-जपके पश्चात् साधकको सूर्य एवं गायत्रीका सकलीकरण करना चाहिये—

'**ॐ आदित्याय विद्महे, विश्वभावाय धीमहि, तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।**'

साधकको प्रत्येक दिशा-प्रदिशामें निम्नलिखित दिक्पाल देवोंके लिये प्रणाम निवेदन करना चाहिये—

'**ॐ धर्मात्मने नमः**' पूर्वमें, '**ॐ यमाय नमः**' दक्षिणमें, '**ॐ दण्डनायकाय नमः**' पश्चिममें, '**ॐ दैवताय नमः**' उत्तरमें, '**ॐ श्यामपिंगलाय नमः**' ईशानमें, '**ॐ दीक्षिताय नमः**' अग्निकोणमें, '**ॐ वज्रपाणये नमः**' नैर्ऋत्यकोणमें, '**ॐ भूर्भुवः स्वः नमः**' वायुकोणमें।

हे वृषध्वज! साधकको चाहिये कि वह निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे पूर्वादि दिशाओंसे प्रारम्भ करके ईशानकोणतक चन्द्रादि ग्रहोंकी भी पूजा करे—

'**ॐ चन्द्राय नक्षत्राधिपतये नमः।**' '**ॐ अङ्गारकाय क्षितिसुताय नमः।**' '**ॐ बुधाय सोमसुताय नमः।**' '**ॐवागीश्वराय सर्वविद्याधिपतये नमः।**' '**ॐ शुक्राय महर्षये भृगुसुताय नमः।**' '**ॐ शनैश्चराय सूर्यात्मजाय नमः।**' '**ॐ राहवे नमः।**' '**ॐ केतवे नमः।**'

निम्न तीन मन्त्रोंसे सूर्यदेवको प्रणाम करके उन देवको अर्घ्यादि प्रदान करनेके लिये आवाहित करना चाहिये—

'**ॐ अनूरुकाय नमः।**' '**ॐ प्रमथनाथाय नमः।**' '**ॐ**

बुधाय नमः।'

'ॐ भगवन्नपरिमितमयूखमालिन् सकलजगत्पते सप्ताश्ववाहन चतुर्भुज परमसिद्धिप्रद विस्फुलिङ्गपिङ्गल तत् एह्येहि इदमर्घ्यं मम शिरसि गतं गृह्ण गृह्ण तेजोग्ररूपम् अनग्र ज्वल ज्वल ठठ नमः।'

उपर्युक्त मन्त्रसे आवाहित इन अभीष्ट देवका निम्न मन्त्रसे विसर्जन करे—

'ॐ नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय गच्छ सुखं पुनरागमनाय।'

हे सहस्ररश्मि भगवान् आदित्य! आपके लिये मेरा प्रणाम है। हे कृपालु! आप पुनः आगमनके लिये सुखपूर्वक पधारें।

हरिने कहा—हे रुद्र! मैं पुनः सूर्य-पूजाकी विधिका वर्णन करूँगा, जिसे मैंने पहले कुबेरसे कहा था।

[सूर्यपूजा प्रारम्भ करनेसे पूर्व] एकाग्रचित्त होकर पवित्र स्थानपर कर्णिकायुक्त अष्टदलकमल बनाये। तदनन्तर सूर्यदेवका आवाहन करे। तत्पश्चात् भूमिपर निर्मित कमलदलके मध्यमें यन्त्ररूपी खखोल्क भगवान् सूर्यकी उनके परिकरोंके साथ स्थापना करे तथा उन्हें स्नान कराये।

हे शिव! इसके बाद साधक अग्निकोणमें (अभीष्ट) देवके हृदयकी स्थापना करे। ईशानकोणमें सिरकी स्थापना करके नैर्ऋत्यकोणमें शिखाका विन्यास करे। वह पुनः एकाग्रचित्त होकर पूर्व दिशामें उनके धर्म, वायुकोणमें उनके नेत्र और पश्चिम दिशामें उनके अस्त्रका विन्यास करे।

इसी प्रकार अष्टदलकमलके ईशानकोणमें चन्द्र, पूर्व दिशामें मंगल, अग्निकोणमें बुध, दक्षिण दिशामें बृहस्पति, नैर्ऋत्यकोणमें शुक्र, पश्चिम दिशामें शनि, वायुकोणमें केतु एवं उत्तर दिशामें राहुके पूजनका विधान है। अतः (साधकको इन सभी ग्रहोंकी पूजा करके) द्वितीय कक्षामें साथ ही द्वादश सूर्योंकी पूजा भी करनी चाहिये।

भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु—ये द्वादश सूर्य कहे गये हैं।

द्वादश सूर्योंकी पूजा करनेके बाद पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि देवोंकी अर्चना करे तथा जया-विजया-जयन्ती एवं अपराजिता शक्तियोंकी और शेष, वासुकि आदि नागोंकी पूजा करे। (अध्याय १६-१७)

मृत्युञ्जय-मन्त्र-जपकी महिमा

सूतजीने कहा—अब मैं मृत्युञ्जय-पूजाका वर्णन करूँगा, जिसको गरुडने कश्यप ऋषिसे कहा था। वह साधकका उद्धार करनेवाली, पुण्यप्रदायिनी एवं सर्वदेवमय पूजा है, ऐसा सभीका अभिमत है।

सूतजीने कहा—मृत्युञ्जय-मन्त्र 'ॐ जुं सः' तीन अक्षरोंवाला है। पहले ॐकारका उच्चारण करके जुं (हुं)-का उच्चारण करे। तदनन्तर विसर्गके साथ 'स' (सः)-का उच्चारण करना चाहिये। यह मन्त्र मृत्यु और दरिद्रताका मर्दन करनेवाला है तथा शिव, विष्णु, सूर्य, आदि सभी देवोंका कारणभूत है। 'ॐ जुं सः' यह महामन्त्र अमृतेशके नामसे कहा जाता है। इस मन्त्रका जप करनेसे प्राणी सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और मृत्युरहित हो जाता है अर्थात् मृत्युके समान होनेवाले उसके कष्ट दूर हो जाते हैं।

इस मन्त्रका सौ बार जप करनेसे वेदाध्ययनजनित पुण्यफल तथा यज्ञकृत फल एवं तीर्थ-स्नान-दान-पुण्यादिका फल प्राप्त होता है। तीनों संध्याओंमें एक सौ आठ बार इस मन्त्रका जप करनेसे मनुष्य मृत्युको जीत लेता है। कठिन-से-कठिन विघ्न-बाधाओंको पार कर जाता है, शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है।

भगवान् मृत्युञ्जय श्वेत कमलके ऊपर बैठे हुए वरद-हस्त तथा अभय-मुद्रा धारण किये रहते हैं। तात्पर्य यह कि उनके एक हाथमें अभय-मुद्रा है और एक हाथमें वरद-मुद्रा। दो हाथोंमें अमृत-कलश है। इस रूपमें अमृतेश्वरका ध्यान करनेके साथ ही अमृतेश्वर भगवान्के वामाङ्कमें रहनेवाली अमृतभाषिणी अमृतादेवीका भी ध्यान करना चाहिये। देवीके दायें हाथमें कलश और बायें हाथमें कमल सुशोभित रहता है।

हे शिव! यदि एक मासतक अमृतादेवीके साथ अमृतेश्वर भगवान्का ध्यान करते हुए मानव 'ॐ जुं सः' इस मन्त्रका तीनों सन्ध्याओंमें आठ हजार जप करे तो वह जरा, मृत्यु तथा महाव्याधियोंसे मुक्त हो जाता है और शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेता है। यह मन्त्र महान् शान्ति प्रदान करनेवाला है।

अमृतेश्वर भगवान्‌की पूजामें आवाहन, स्थापन, रोधन (प्रतिष्ठा), संनिधान, निवेशन करनेके बाद पाद्य, आचमन, स्नान, अर्घ्य, माला, अनुलेपन, दीप, वस्त्र, आभूषण, नैवेद्य, पान, आचमन, वीजन (पंखेसे हवन करना), मुद्रा-प्रदर्शन, मन्त्र-जप, ध्यान, दक्षिणा, आहुति, स्तुति, वाद्य और गीत तथा नृत्य, न्यासयोग और प्रदक्षिणा, साष्टाङ्ग प्रणति, मन्त्रशय्या, वन्दन आदि उपचारोंको निवेदित करके उनका विसर्जन करना चाहिये।

षडङ्ग प्रकारका पूजन जिसे परमेश परमात्माने अपने मुखसे स्वयं कहा है, वह क्रमसे बतलाया गया है, उसे जो जानता है वही पूजक है। षडङ्ग-पूजा इस प्रकार है—

साधकको प्रारम्भमें अर्घ्य प्रदान करनेके लिये प्रयुक्त पात्रकी पूजा करके अस्त्र अर्थात् फट् मन्त्रसे हस्तताडन (दाहिने हाथके द्वारा बायें हाथपर ध्वनि) करना चाहिये। उसके बाद कवच (हुं) मन्त्रसे शोधनकर अमृतीकरणकी क्रियाको पूर्ण करे। तत्पश्चात् आधारशक्ति आदिकी पूजा, प्राणायाम, आसनोपवेशन तथा देहशुद्धि करके भगवान् अमृतेशका ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर अपनी आत्माको देवस्वरूपमें स्वीकारकर अङ्गन्यास, करन्यास करके साधक हृदयकमलमें स्थित ज्योतिर्मय आत्मदेवका पूजन करे।

उसके बाद मूर्तिपर अथवा यज्ञके लिये बनी हुई वेदीपर चित्रित देवके ऊपर सुन्दर पुष्प अर्पित करे। द्वारपर अवस्थित रहनेवाले देवोंका आवाहन और पूजन करनेके लिये पहले आधारशक्तिकी पूजा करे। तदनन्तर देवताकी प्रतिष्ठा करके उनके (देव) परिवारका पूजन करना चाहिये; क्योंकि विद्वानोंने बतलाया है कि मुख्य देवके पूजाके साथ उसके अङ्ग-परिवार आदिकी भी पूजा करनेका विधान है। आयुधों एवं परिवारोंके साथ धर्म आदिकी तथा इन्द्र आदिकी, युगों, वेदों और मुहूर्तोंकी भी मुख्य देवके रूपमें पूजा करनी चाहिये। यह पूजा भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाली है। अतः साधक विद्वानोंको उनकी षडङ्ग-पूजा करनी चाहिये।

देवमण्डलकी पूजा करनेके पूर्व मातृका, गणदेवता, नन्दी और गङ्गाकी पूजा करके देवस्थानके देहली-भागपर महाकाल तथा यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। इस पूजामें '**ॐ अमृतेश्वर भैरवाय नमः**।' तथा '**ॐ जुं हं सः सूर्याय नमः**' कहना चाहिये। इसी प्रकार प्रारम्भमें प्रणव मन्त्र ॐकारको जोड़कर नामोच्चार करते हुए अन्तमें '**नमः**' शब्दका प्रयोग करके शिव, कृष्ण, ब्रह्मा, गण, चण्डिका, सरस्वती और महालक्ष्मी आदिकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १८)

सर्पोंके विष हरनेके उपाय तथा दुष्ट उपद्रवोंको दूर करनेके मन्त्र
(प्राणेश्वरी विद्या)

श्रीसूतजी बोले—हे ऋषियो! अब मैं शिवद्वारा पक्षिराज गरुडको सुनाये गये प्राणेश्वर महामन्त्रका वर्णन करता हूँ, किंतु उसके पूर्व उन स्थानोंका वर्णन करूँगा, जहाँ सर्पके काटनेसे प्राणी जीवित नहीं रह सकता।

श्मशान, वल्मीक (बाँबी), पर्वत, कुआँ और वृक्षके कोटर—इन स्थानोंमें स्थित सर्पके द्वारा काट लेनेपर यदि उस दाँत-लगे स्थानपर तीन प्रच्छन्न रेखाएँ बन जाती हैं तो वह प्राणी जीवित नहीं रहता है। षष्ठी तिथिमें, कर्क और मेष राशिमें आनेवाले नक्षत्रों तथा मूल, अश्लेषा, मघा आदि क्रूर नक्षत्रोंमें सर्पदंश होनेसे प्राणीका जीवन समाप्त हो जाता है तथा काँख, कटि, गला, सन्धि-स्थान, मस्तक या कनपटीके अस्थिभाग और उदरादिमें काटनेपर प्राणी जीवित नहीं रहता है।

यदि सर्पदंशके समय दण्डी, शस्त्रधारी, भिक्षु तथा नग्न प्राणीका दर्शन होता है तो उसे कालका ही दूत समझना चाहिये। हाथ, मुख, गर्दन और पीठमें सर्पके काटनेसे प्राणी जीवित नहीं बचता है।

दिनके प्रथम भागके पूर्व अर्ध यामका भोग सूर्य करता है। उस दिवाकर-भोगके पश्चात् गणनाक्रममें जो ग्रह आते हैं, उन ग्रहोंके द्वारा यथाक्रम शेष यामोंका भोग होता है। इस कालगतिमें प्रत्येक दिन छः परिवर्तनोंके साथ अन्य शेष ग्रहोंका भोग माना गया है। यथा—ज्योतिषियोंने काल-चक्रके आधारपर रात्रिकालमें शेषनाग 'सूर्य', वासुकि नाग 'चन्द्र', तक्षक नाग 'मङ्गल', कर्कोटक नाग 'बुध', पद्म नाग 'गुरु', महापद्म नाग 'शुक्र', शंख नाग 'शनि' और कुलिक नाग 'राहु' को स्वीकार किया।

रात या दिनमें बृहस्पतिका भोगकाल आनेपर सर्प, देवोंका भी अन्त करनेवाला हो जाता है। अत: इस कालमें सर्पद्वारा काटा गया प्राणी बच नहीं सकता है। दिनमें शनि-ग्रहकी वेलाके आनेपर राहु अशुभ धर्मसे संयुक्त रहता है। अत: वह अपने यामार्ध भोग और सन्धिकालकी अवस्थितिमें काल अर्थात् यमराजकी गतिके समान गतिमान् रहता है।

रात्रि और दिनका मान लगभग तीस-तीस घटीका होता है। इस मानके अनुसार निर्मित कालचक्रमें चन्द्रमा प्रतिपदा तिथिको पादाङ्गुष्ठ, द्वितीयाको पैरसे ऊपर, तृतीयाको गुल्फ, चतुर्थीको जानु, पञ्चमीको लिङ्ग, षष्ठीको नाभि, सप्तमीको हृदय, अष्टमीको स्तन, नवमीको कण्ठ, दशमीको नासिका, एकादशीको नेत्र, द्वादशीको कान, त्रयोदशीको भौंह, चतुर्दशीको शंख अर्थात् कनपटी तथा पूर्णिमा एवं अमावस्याको मस्तकपर निवास करता है। पुरुषके दक्षिणाङ्गमें तथा स्त्रीके वामभागमें चन्द्रकी स्थिति होती है। चन्द्रकी स्थिति जिस अङ्गमें होती है, उस अङ्गमें सर्पके डसनेपर प्राणी जीवित बच सकता है। यद्यपि सर्पदंशसे शरीरमें उत्पन्न हुई मूर्च्छा शीघ्र समाप्त होनेवाली नहीं है, फिर भी शरीर-मर्दनसे वह दूर हो सकती है।

स्फटिकके समान निर्मल 'ॐ हंस:' नामक बीजमन्त्र, साधकका परम मन्त्र है। विषरूपी पापको नष्ट करनेमें समर्थ इस बीज-मन्त्रका प्रयोग सर्पदंशसे मूर्च्छित प्राणीपर करना चाहिये। इसके चार प्रकार हैं। प्रथम मात्रा बीज बिन्दुसे युक्त है। दूसरा पाँच स्वरोंसे संयुक्त है। तीसरा छ: स्वरोंवाला और चौथा विसर्गयुक्त है। प्राचीन समयमें पक्षिराज गरुडने तीनों लोकोंकी रक्षाके लिये 'ॐ कुरु कुले स्वाहा' इस महामन्त्रको आत्मसात् किया था। अत: सर्प एवं सर्पिणियोंके विषको शान्त करनेके लिये इच्छुक व्यक्तिको मुखमें 'ॐ', कण्ठमें 'कुरु', दोनों गुल्फोंमें 'कुले' तथा दोनों पैरोंमें 'स्वाहा' मन्त्रका न्यास करना चाहिये। जिस घरमें उपर्युक्त मन्त्र भली प्रकारसे लिखा रहता है, सर्प उस घरको छोड़कर चले जाते हैं। जो मनुष्य एक हजार बार इस मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित सूत्रको कानपर धारण करता है, उसको सर्प-भय नहीं रहता। जिस घरमें इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित शर्कराखण्ड फेंक दिये जाते हैं, उस घरको भी सर्प छोड़ देते हैं। देवताओं और असुरोंने इस मन्त्रका सात लाख जप करके सिद्धि प्राप्त की थी।

इसी प्रकार एक अष्टदल पद्मका रेखाङ्कनकर उसके प्रत्येक दलपर इस—'ॐ सुवर्णरेखे कुक्कुटविग्रहरूपिणि स्वाहा'—मन्त्रके दो-दो वर्ण लिखे तथा 'ॐ पक्षि स्वाहा'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा स्नान करानेसे विषविह्वल प्राणीका विष दूर हो जाता है।

'ॐ पक्षि स्वाहा' इस मन्त्रके द्वारा अङ्गुष्ठ-भागसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त करन्यास तथा मुख-हृदय-लिङ्ग और पैरोंमें अङ्गन्यास करे तो विषधर नाग ऐसे मनुष्यकी छायाको स्वप्नमें भी लाँघ नहीं सकता। जो मनुष्य इस मन्त्रका एक लाख जप करके सिद्धि प्राप्त कर लेता है, वह अपनी दृष्टिमात्रसे व्यथित व्यक्तिके शरीरमें व्याप्त विषको नष्ट कर देता है।

'ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रीं भि (भी) रुण्डायै स्वाहा'—इस मन्त्रका जप सर्पदंशित व्यक्तिके कानमें करनेपर विषका प्रभाव क्षीण हो जाता है।

यदि दोनों पैरके अग्रभागमें 'अ आ', गुल्फमें 'इ ई' जानुमें 'उ ऊ', कटिमें 'ए ऐ', नाभिमें 'ओ', हृदयमें 'औ', मुखमें 'अं' तथा मस्तकमें 'अ:' वर्णका स्थापनकर 'ॐ हंस:' बीजमन्त्रके सहित न्यास करके साधक इस बीजमन्त्रका ध्यान-पूजन और जप करे तो वह सर्प-विषको दूर कर सकता है।

'मैं (स्वयं) गरुड हूँ' यह ध्यान (भावना) करके साधकको विष-शमनका कार्य करना चाहिये। 'हं'बीजमन्त्रका शरीरमें विन्यास विषादिका हरण करनेवाला कहा गया है। वाम हाथमें 'हंस:' मन्त्रका न्यास करके जो साधक इस मन्त्रका ध्यान-पूजन और जप करता है, वह सर्प-विषको दूर करनेमें समर्थ होता है; क्योंकि यह मन्त्र विषधर नागोंके नासिकाभाग और मुँहकी श्वास-नलिकाको भी रोकनेमें पूर्ण समर्थ है। यह मन्त्र शरीरकी त्वचा-मांस आदिमें व्याप्त सर्प-विषको भी विनष्ट कर देता है।

सर्पदंशसे मूर्च्छित प्राणीके शरीरमें 'ॐ हंस:' मन्त्रका न्यास करके भगवान् नीलकण्ठ आदि देवोंका भी ध्यान करना चाहिये। ऐसा करनेसे यह मन्त्र अपनी वायु शक्तिके द्वारा उस सम्पूर्ण विषका हरण कर लेता है।

प्रत्यङ्गिराकी जड़को चावलके जलके साथ पीसकर पीनेसे विषका प्रभाव दूर हो जाता है। पुनर्नवा, प्रियंगु,

वक्त्रज (ब्राह्मी), श्वेत, बृहती, कूष्माण्ड, अपराजिताकी जड़, गेरू तथा कमलगट्टेके फलको जलमें पीसकर घृतके साथ लेप तैयार करना चाहिये, इस प्रकार बना हुआ लेप भी शरीरमें लगानेसे विषको शान्त कर देता है। सर्पके काटनेपर जो मनुष्य उष्ण (गरम) घृतका पान कर लेता है, उसके शरीरमें विषका अधिक प्रभाव नहीं बढ़ता। सर्पदंश होनेपर शिरीष नामक वृक्षके पञ्चाङ्ग (पत्र, पुष्प, फल, मूल एवं छाल)-के सहित गाजरके बीजोंको पीसकर सर्वाङ्गमें लेप करनेसे अथवा पीनेसे भी विषका प्रभाव समाप्त हो जाता है।

'**ॐ ह्रीं**' बीजमन्त्र, गोनस (गोहुअन) आदि विषैले सर्पोंके विषको दूर करनेमें समर्थ है। इस मन्त्रके साथ '**अ:**'-का प्रयोगकर अर्थात् '**ॐ ह्रीं अ:**'का उच्चारण करते हुए हृदय, ललाट आदिमें विन्यास करके उसका ध्यान करनेमात्रसे ही सर्पादिका वशीकरण हो जाता है। इसका पंद्रह हजार जप करके साधक गरुडके समान सर्वगामी, कवि—विद्वान्, वेदविद् हो जाता है तथा दीर्घ आयुको प्राप्त करता है।

सूतजीने पुन: कहा—ऋषियो! अब मैं आप सभीको शिवके द्वारा कथित अत्यन्त गोपनीय मन्त्रोंको बताऊँगा; जिनसे अभिमन्त्रित पाश, धनुष, चक्र, मुद्गर, शूल और पट्टिश नामक आयुधोंको धारण करके राजा शत्रुओंपर भी विजय प्राप्त कर लेता है।

मन्त्रोद्धारके लिये कमल-पत्रपर अष्टवर्ग बनाकर पूर्व (दिशा)-से शुरू करके क्रमश: ईशान-कोणतक बीजमन्त्र (**ॐ ह्रीं ह्रीं**)-को लिखना चाहिये। '**ॐ**'कार ब्रह्मबीज है, '**ह्रीं**'कार विष्णुबीज है और '**ह्रीं**'कार शिवबीज है। त्रिशूलके तीनों शीर्षपर '**ह्रीं**' लिखकर क्रमानुसार न्यास करे। मन्त्र '**ॐ ह्रीं ह्रीं**' है।

साधक हाथमें शूल ग्रहण करे। तत्पश्चात् उसको आकाशमें घुमाये, जिसे देखते ही दुष्ट ग्रह और सर्प नष्ट हो जाते हैं। साधक धूम्रवर्णके धनुषको हाथमें लेकर आकाशकी ओर भुजा उठाकर इस मन्त्रका चिन्तन करे। ऐसा करनेसे दुष्ट विषैले सर्प, कुत्सित ग्रह, विनाशकारी मेघ और राक्षस नष्ट होते हैं। यह मन्त्र तो त्रिलोककी रक्षा करनेमें समर्थ है, मृत्युलोकके विषयमें कहना ही क्या है?

'**ॐ जूं सूं हूं फट्**' यह दूसरा मन्त्र है। साधक खैरकी आठ लकड़ियोंको इसी मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर उन्हें आठ दिशाओंमें गाड़ दे तो उस कीलाङ्कित क्षेत्रमें वज्रपात (विद्युत्-निपात) तथा इसकी गर्जनाका उपद्रव नहीं होता। गरुडद्वारा कहे गये इस मन्त्रसे आठ कीलोंको इक्कीस बार अभिमन्त्रितकर रात्रिके समय अपने अभीष्ट क्षेत्रकी चारों दिशाओं और विदिशाओंमें गाड़ देना चाहिये। इससे भी वहाँ विद्युत्-निपात, वज्रपतन तथा चूहा, टिड्डी आदिसे होनेवाले उपद्रवोंका भय नहीं रहता।

'**ॐ ह्रां सदाशिवाय नम:**' ऐसा कहकर साधक तर्जनी अंगुलिके द्वारा अनार-पुष्पके सदृश कान्तिमान् एक पिण्डका निर्माण करे। उस पिण्डके प्रदर्शनमात्रसे ही दुष्ट जन, मेघ, विद्युत्, विष, राक्षस, भूत और डाकिनी आदि दसों दिशाओंको छोड़कर भाग जाते हैं।

'**ॐ ह्रीं गणेशाय नम:।**' '**ॐ ह्रीं स्तम्भनादिचक्राय नम:।**' '**ॐ ऐं ब्राह्मी त्रैलोक्यडामराय नम:।**'—इस मन्त्र-संग्रहको भैरव-पिण्ड कहा जाता है। यह भैरव-पिण्ड विष तथा पापग्रहोंके कुप्रभावको समाप्त करनेमें समर्थ है। यह साधकके कार्यक्षेत्रकी रक्षा और भूत-राक्षसादिकी उपद्रवी शक्तियोंको नष्ट करता है।

'**ॐ नम:**' यह कहकर साधक अपने हाथमें इन्द्रवज्रका ध्यान करे। इस वज्रमुद्रासे विष, शत्रु और भूतगण विनष्ट हो जाते हैं। '**ॐ क्षुं (क्ष) नम:**' इस मन्त्रसे बायें हाथमें पाशका स्मरण करे, जिससे विष तथा भूतादिका विनाश होता है। इसी प्रकार '**ॐ ह्रां (ह्रो) नम:**' इस मन्त्रके उच्चारणसे उपद्रवकारी मेघ और पापग्रहोंके प्रभाव नष्ट हो जाते हैं। कृतान्त—यमराजका ध्यान करके साधक छेदक अस्त्र (भाले)-से शत्रु-समूहका विनाश करे। '**ॐ क्षण (क्षम) नम:**' इस मन्त्रोच्चारके साथ कालभैरवका ध्यान करके मनुष्य पापग्रह, भूत, विषके प्रभावका शमन कर सकता है।

'**ॐ लसद्द्विजिह्वाक्ष स्वाहा**' इस मन्त्रका ध्यान करके मनुष्य खेती-बाड़ीमें विघ्न डालनेवाले ग्रह, भूत, विष और पक्षियोंका निवारण कर सकता है। '**ॐ क्षव (क्षर्ण) नम:**' इस मन्त्रको रक्त-वर्णकी स्याहीसे नगाड़ेपर लिखकर उसे बजाना चाहिये। उसके शब्दोंको सुनकर पापग्रह आदि सभी उपद्रवकारी तत्त्व भयभीत हो उठते हैं।

(अध्याय १९-२०)

पञ्चवक्त्र-पूजन तथा शिवार्चन-विधि

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! अब मैं पञ्चमुख शिवकी पूजाका वर्णन करूँगा, जो साधकको भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करती है। साधकको सबसे पहले निम्न मन्त्रसे उन देवका आवाहन करना चाहिये—

'ॐ भूर्विष्णवे आदिभूताय सर्वाधाराय मूर्तये स्वाहा।'

पुनः **'ॐ हां सद्योजाताय नमः।'** कहकर साधक सद्योजातका आवाहन करे। इन सद्योजातकी आठ कलाएँ कही गयी हैं। उनका नाम सिद्धि, ऋद्धि, धृति, लक्ष्मी, मेधा, कान्ति, स्वधा और स्थिति है। सद्योजातकी पूजा करनेके पश्चात् **'ॐ सिद्ध्यै नमः'** इत्यादि मन्त्रोंसे उन सभी आठ कलाओंकी पूजा करनेका विधान है। तदनन्तर **'ॐ हीं वामदेवाय नमः'** इस मन्त्रसे साधक वामदेवकी पूजा करे। वामदेवकी तेरह कलाएँ हैं, जिन्हें रजा, रक्षा, रति, पाल्या, कान्ति, तृष्णा, मति, क्रिया, कामा, बुद्धि, रात्रि, त्रासनी तथा मोहिनी कला कहा गया है। इन कलाओंके अतिरिक्त मनोन्मनी, अघोरा, मोहा, क्षुधा, निद्रा, मृत्यु, माया तथा भयंकरा नामकी आठ कलाएँ (अघोरकी) हैं।

उक्त समस्त कलाओंका पूजन करनेके बाद साधकको **'ॐ हैं तत्पुरुषाय नमः'** इस मन्त्रसे तत्पुरुषदेवकी पूजा करनी चाहिये। उनकी निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और सम्पूर्णा—ये पाँच कलाएँ हैं। साधक कलाओंकी पूजा करके **'ॐ हौं ईशानाय नमः'** इस मन्त्रसे ईशानदेवकी पूजा करे। तत्पश्चात् ईशानदेवकी निश्चला, निरञ्जना, शशिनी, अंगना, मरीचि और ज्वालिनी नामकी जो छः कलाएँ हैं, उनकी पूजा करके पूजन पूर्ण करे।

सूतजीने पुनः कहा—हे ऋषियो! अब मैं शिवकी अर्चनाका वर्णन करूँगा, जो भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करनेवाली है। बारह अंगुलके मापमें बिन्दुद्वारा (किसी पात्रमें) भगवान् शिवकी मूर्ति बनानी चाहिये। उसमें शान्त, सर्वगत और निराकारका चिन्तन करना चाहिये। बिन्दुद्वारा बनायी गयी मूर्तिमें ऊपरकी ओर पाँच बिन्दु लगाने चाहिये, जो शिवका मुख है। वह छोटे आकारमें होना चाहिये और नीचेकी ओर मूर्तिके अनुसार बिन्दु लगाकर बड़े-बड़े अङ्ग बनाने चाहिये। मूर्तिके अधोभागमें छठा बिन्दु विसर्गके साथ होना चाहिये, जो अस्त्र है। इसके साथ **'हौं'** लिख देना चाहिये—यह महामन्त्र है और सम्पूर्ण अर्थोंको देनेवाला है। साधक मूर्तिके ऊर्ध्वभागसे लेकर मूर्तिके चरणपर्यन्त अपने दोनों हाथोंसे स्पर्श करे और महामुद्रा दिखाये; इसके बाद सम्पूर्ण अङ्गोंमें न्यास-करन्यास आदि करे।

तदनन्तर वह अस्त्रमन्त्र **'ॐ फट्'** का उच्चारण करता हुआ दाहिनी हथेलीसे स्पर्श करके शोधन करे। उसके बाद कनिष्ठा अँगुलीसे लेकर महामन्त्रसे ही तर्जनी अँगुलीतक न्यास करना चाहिये।

अब मैं हृदय-कमलकी कर्णिकामें[1] पूजनकी विधि बतलाऊँगा। उसमें धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्यादिकी अर्चना करे। सर्वप्रथम आवाहन, स्थापन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान अर्पित करे तथा अन्य विविध मानस उपचारोंको करके तदाकार हो जाय। उसके बाद अग्निमें आहुति देनेकी विधि कह रहा हूँ। साधकको पूजा-स्थलपर अग्नि प्रज्वलित करनेके लिये **'ॐ फट्'** अस्त्रमन्त्रसे एक कुण्डका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् **'ॐ हूं'** इस कवचमन्त्रसे उस कुण्डका अभ्युक्षण करके मानसिकरूपसे उसमें शक्तिका विन्यास करे। उसके बाद साधकको हृदय अथवा शक्तिकुण्डमें क्रमशः ज्ञानरूपी तेज तथा अग्निका विन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् अग्निके निष्कृति-संस्कारको छोड़कर गर्भाधानादि समस्त संस्कार करनेका विधान है। निष्कृति या मोक्ष-संस्कार आहुतिके पश्चात् किया जाता है। [इसलिये आहुतिके पूर्व उस संस्कारका निषेध है।] समस्त संस्कारोंके बाद साधकको उस प्रज्वलित अग्निमें समस्त आङ्गिकदेवोंके साथ मानसिकरूपसे शिवको आहुति देनी चाहिये।

तदनन्तर कमलाङ्कित गर्भवाले उस मण्डलमें नीलकण्ठ शिवका पूजन करना चाहिये। इस मण्डलके अग्निकोणमें अर्धचन्द्राकार कल्याणकारी एक अग्निकुण्ड बनाना चाहिये।

तदनन्तर अग्निदेवताके अस्त्रोंसे युक्त हृदयादिमें न्यास करनेका विधान है। उसके बाद मण्डलके अन्तर्गत बने हुए कमलकी कर्णिकापर सदाशिवकी तथा दिशाओंमें अस्त्रकी पूजा करे।

अब श्रेष्ठ पञ्चतत्त्वोंमें स्थित पृथ्वी, जल आदि तत्त्वोंको

१-यहाँ बाह्यपूजन तथा मानसपूजन दोनोंका एक साथ वर्णन है।

दीक्षा बतलायी जाती है। इन दोनों शान्तियोंके लिये पृथक्-पृथक् रूपसे सौ-सौ आहुतियाँ पाँच बार देनी चाहिये। तत्पश्चात् साधक पूर्णाहुति देकर प्रसन्नतापूर्वक त्रिशूली भगवान् शिवका ध्यान करे।

उसके बाद प्रायश्चित्त-शुद्धिके लिये आठ बार आहुति देनी चाहिये। यह आहुति अस्त्र-बीज 'हुं फट्' मन्त्रसे प्रदान करनेका विधान है। इस प्रकार संस्कारसे शुद्ध हुआ वह साधक निःसंदेह शिव-स्वरूप हो जाता है।

शिवकी विशेष पूजामें साधकको चाहिये कि वह प्रथम— '**ॐ हां आत्मतत्त्वाय स्वाहा**', '**ॐ हीं विद्यातत्त्वाय स्वाहा**' तथा '**ॐ हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा**'— ऐसा उच्चारण करके आचमन करे। तत्पश्चात् उसे मानसिक रूपसे कर्णेन्द्रियोंका स्पर्श करना चाहिये। उसके बाद भस्म-धारण और तर्पण आदि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिये। '**ॐ हां प्रपितामहेभ्यः स्वधा**', '**ॐ हां मातामहेभ्यः स्वधा**' और '**ॐ हां नमः सर्वमातृभ्यः स्वधा**' इन मन्त्रोंसे तर्पण करे। इसी रीतिसे पिता, पितामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह आदिका भी तर्पण करे और फिर प्राणायाम करना चाहिये।

इसके बाद आचमन तथा मार्जन करके साधकको शिवके गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिये। वह मन्त्र इस प्रकार है—

'**ॐ हां तन्महेशाय विद्महे, वाग्विशुद्धाय धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।**'

अर्थात् प्रणवसे युक्त 'हां' बीजशक्तिसे सम्पन्न उन महेश्वरका हम सभी चिन्तन करते हैं। वाणीकी पवित्रताके लिये उनका हम ध्यान करते हैं। वे रुद्र हम सभीको सन्मार्गपर चलनेके लिये प्रेरणा प्रदान करें।

शिव-गायत्रीमन्त्र-जपके पश्चात् सूर्योपस्थान करके सूर्य-मन्त्रोंसे सूर्यरूप शिवकी पूजा करनी चाहिये। उन मन्त्रोंका स्वरूप इस प्रकार है—

'**ॐ हां हीं हूं हैं हौं हः शिवसूर्याय नमः।**' '**ॐ हं खखोल्काय सूर्यमूर्तये नमः।**' '**ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः।**'

— इस पूजाके बाद क्रमशः नामके आदि और अन्तमें '**ॐ नमः**' शब्दका प्रयोग करके दण्डी तथा पिङ्गल आदि भूतनायकोंका स्मरण करे। तदनन्तर अग्नि आदि कोणोंमें '**ॐ विमलायै नमः, ॐ ईशानायै नमः**'— आदि मन्त्रोंसे क्रमशः विमला और ईशानादि शक्तियोंकी स्थापना करके पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उपासकको परम सुखकी प्राप्ति होती है। [इन शक्तियोंकी पूजाके लिये पृथक्-पृथक् बीजमन्त्र निर्दिष्ट हैं।] यथा—

'**ॐ रां पद्मायै नमः**' (अग्निकोणमें), '**रीं दीप्तायै नमः**' (नैर्ऋत्यकोणमें), '**रूं सूक्ष्मायै नमः**' (वायव्यकोणमें), '**रै जयायै नमः**' (ईशानकोणमें), '**रैं भद्रायै नमः**' (पूर्व दिशामें), '**रों विभूत्यै नमः**' (दक्षिण दिशामें), '**रौं विमलायै नमः**' (पश्चिम दिशामें), '**रं अमोघिकायै नमः**', '**रं विद्युतायै नमः**' (उत्तर दिशामें) और '**रं सर्वतोमुख्यै नमः**' (मण्डलके मध्यमें)। इसके बाद शिवस्वरूप सूर्यप्रतिमाको सूर्यासन प्रदान करके '**ह्रां हूं (ह्रीं) सः**' इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यकी अर्चना करे और फिर निम्न मन्त्रोंसे न्यास करे—

'**ॐ आं हृदर्काय नमः**', '**ॐ भूर्भुवः स्वः शिरसे स्वाहा**', '**ॐ भूर्भुवः स्वः शिखायै वौषट्**', '**ॐ हूं ज्वालिन्यै नमः**', '**ॐ हुं कवचाय हुम्**', '**ॐ हूं अस्त्राय फट्**', '**ॐ हूं फट् राज्ञ्यै नमः**', '**ॐ हूं फट् दीक्षितायै नमः।**'

साधकको अङ्गन्यासके पश्चात् निम्न मन्त्रोंसे सूर्यादि सभी नवग्रहोंकी मानसी पूजा करनी चाहिये—

'**ॐ सः सूर्याय नमः, ॐ सों सोमाय नमः, ॐ मं मंगलाय नमः, ॐ बुं बुधाय नमः, ॐ बृं बृहस्पतये नमः, ॐ भं भार्गवाय नमः, ॐ शं शनैश्चराय नमः, ॐ रं राहवे नमः, ॐ कं केतवे नमः, ॐ तेजश्चण्डाय नमः।**'

इस प्रकार सूर्यदेव आदिकी पूजा करके साधकको आचमन करना चाहिये। उसके बाद वह कनिष्ठिका आदि अंगुलियोंमें करन्यास तथा पुनः निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे अङ्गन्यास करे—

'**ॐ हां हृदयाय नमः, ॐ हीं शिरसे स्वाहा, ॐ हूं शिखायै वौषट्, ॐ हैं कवचाय हुम्, ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हः अस्त्राय फट्।**'

तदनन्तर भूतशुद्धि करे तथा पुनः न्यास करे। अर्घ्यस्थापन करके उसी जलसे अपने शरीरका प्रोक्षण करना चाहिये। उसके बाद वह साधक शिवसहित नन्दी आदिकी पूजा करे। '**ॐ हौं शिवाय नमः**' मन्त्रसे पद्ममें स्थित शिवकी पूजा करके नन्दी, महाकाल, गङ्गा, यमुना, सरस्वती, श्रीवत्स, वास्तुदेवता, ब्रह्मा, गणपति तथा गुरुकी पूजा करे।

तत्पश्चात् साधकको पद्मके मध्यमें शक्ति एवं अनन्त देवकी पूजा करके पूर्व दिशामें धर्म, दक्षिणमें ज्ञान, पश्चिममें वैराग्य, उत्तरमें ऐश्वर्य, अग्निकोणमें अधर्म, नैर्ऋत्यमें अज्ञान, वायव्यमें अवैराग्य, ईशानमें अनैश्वर्य, पद्मकी कर्णिकामें वामा और ज्येष्ठा उसके बाद पूर्व आदि दिशाओंमें रौद्री, काली, शिवा तथा असिता आदि शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर साधकको शिवके आगे स्थित पीठके मध्यमें '**ॐ ह्रीं कलविकरिण्यै नमः, ॐ ह्रीं बलविकरिण्यै नमः, ॐ ह्रीं बलप्रमथिन्यै नमः, ॐ सर्वभूतदमन्यै नमः, ॐ मनोन्मन्यै नमः**'—इन मन्त्रोंसे कलविकरिणी एवं बलविकरिणी आदि शक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। साधक भगवान् शिवके लिये आसन प्रदानकर महामूर्तिकी स्थापना करे। तदनन्तर मूर्तिके मध्यमें शिवको उद्दिष्ट करके आवाहन-स्थापन-सन्निधान-सन्निरोध-सकलीकरण आदि मुद्रा दिखाये और अर्घ्य, पाद्य, आचमन, अभ्यङ्ग, उद्वर्तन तथा स्नानीय जल समर्पित करे एवं अरणि-मन्थन करके पूज्यदेवको वस्त्र, गन्ध, पुष्प, दीप और नैवेद्यमें चरु समर्पित करे। नैवेद्यके अनन्तर आचमन दे करके मुखशुद्धिके लिये ताम्बूल, करोद्वर्तन, छत्र, चामर, पवित्रक (यज्ञोपवीत) प्रदानकर परमीकरण (अर्चनीय देवमें सर्वोत्कृष्टताका भाव) करे। तदनन्तर साधक आराध्यके साथ तदाकार होकर उनका जप करे तथा विनम्रभावसे स्तुतिकर उन्हें प्रणाम करे। इसी हृदयादिन्यास आदिके साथ पूर्ण की गयी पूजाको 'षडङ्गपूजा' यह नाम दिया गया है।

इस प्रकार शिवपूजन पूर्ण करनेके पश्चात् साधकको अग्नि आदि चतुर्दिक् कोणों, मध्यभाग तथा पूर्वादि दिशाओंमें अग्नि आदि दिग्देवताओं तथा इन्द्रादि दिक्पालोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर उसको उन देवोंके मध्य स्थित चण्डेश्वरकी पूजाकर उनके लिये निर्माल्य समर्पित करना चाहिये। उसके बाद वह निम्नाङ्कित स्तुतिसे क्षमापन (क्षमा-याचना) करके उनका विसर्जन करे—

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात् त्वयि स्थितिः॥
यत्किंचित् क्रियते कर्म सदा सुकृतदुष्कृतम्।
तन्मे शिवपदस्थस्य रुद्र क्षपय शङ्कर॥
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत्।
शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च॥
यत्कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं सुकृतं तव।
त्वं त्राता विश्वनेता च नान्यो नाथोऽस्ति मे शिव॥

(२३। २६—२९)

हे प्रभो! आप गुह्य-से-गुह्य तत्त्वोंके संरक्षक हैं। आप मेरे किये हुए जपको स्वीकार करें। हे देव! मुझे सिद्धि प्राप्त हो। आपकी कृपासे आपमें मेरी निष्ठा बनी रहे। हे रुद्र! हे भगवान् शङ्कर! मेरे द्वारा सर्वदा पाप-पुण्यरूप जो कर्म किया जाता है, उसे आप नष्ट करें। मैं आपके इन कल्याणकारी चरणोंमें पड़ा हूँ। हे शिव! आप अपने भक्तोंको सर्वस्व देनेवाले हैं। आप ही भोक्ता हैं, हे शिव! यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् भी तो आप ही हैं। हे शङ्कर! आपकी विजय हो। सर्वत्र जब शिव ही हैं तो मैं भी वही हूँ। जो कुछ मैंने किया है और जो कुछ भविष्यमें करूँगा, वह सब आपके द्वारा ही किया हुआ है। आप रक्षक हैं। आप विश्वनायक हैं। हे शिव! आपके अतिरिक्त मेरा कोई स्वामी नहीं है।

(हरिने पुनः कहा—हे रुद्र!) इसके बाद मैं शिवपूजाकी दूसरी विधि कह रहा हूँ—

इस विधिके अनुसार गणेश-सरस्वती-नन्दी-महाकाल-गङ्गा-यमुना, अस्त्र तथा वास्तुपतिदेवकी पूजा मण्डलके द्वारपर करनी चाहिये और साधक पूर्वादि दिशाओंमें इन्द्रादि सभी दिक्पालोंकी पूजा करे। उसके बाद कारणभूत समस्त तत्त्वोंकी पूजा करे।

उन तत्त्वोंमें 'पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश'—ये पञ्चमहाभूत हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द—ये उनकी पाँच तन्मात्राएँ हैं। वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इनके अतिरिक्त मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार—ये अन्तःकरणचतुष्टय हैं। इनसे ऊपर 'पुरुष' की स्थिति है। इन्हीं (पुरुष)-को शिव कहा जाता है।

इन तत्त्वोंके साथ राग (गानशास्त्रीय रागविशेष), बुद्धि, विद्या, कला, काल, नियति, माया, शुद्धविद्या, ईश्वर और सदाशिव जो सबके मूल हैं, उनकी भी पूजा होनी चाहिये। इन समस्त तत्त्वोंमें जो शिव और शक्ति अर्थात् पुरुष एवं प्रकृतिका तत्त्व अनुस्यूत है, उसको जानकर ज्ञानी

साधक जीवन्मुक्त होकर शिवरूप हो जाता है। इन तत्त्वोंमें जो शिवतत्त्व है, वही विष्णु है, वही ब्रह्मा है और वही ब्रह्मतत्त्व है।

भगवान् सदाशिवका मङ्गलमय ध्यानस्वरूप इस प्रकार है—वे देव पद्मासनपर विराजमान रहते हैं। उनका वर्ण शुक्ल है। सदैव सोलह वर्षकी आयुमें स्थित रहते हैं। वे पाँच मुखोंवाले हैं। उनके दसों हाथोंमें क्रमशः दक्षिणभागकी ओर अभयमुद्रा, प्रसादमुद्रा, शक्ति, शूल तथा खट्वाङ्ग और वामभागकी ओर सर्प, अक्षमाला, डमरू, नीलकमल तथा श्रेष्ठ बीजपूरक (बिजौरा नीबू) स्थित रहता है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया नामक तीन शक्तियाँ उनके तीन नेत्र हैं। ऐसे वे देव सर्वदा कल्याणकी भावनामें अवस्थित रहते हैं, इसीलिये इन्हें सदाशिव कहा गया है।[1]

ऐसे मूर्तिमान् देवका चिन्तन करनेवाला साधक सदैव कालभयसे रहित रहता है। इस प्रकार शिवोपासना करनेवाले साधककी न तो अकालमृत्यु होती है और न शीत तथा ऊष्णादि कारणोंसे ही उसकी मृत्यु होती है।

(अध्याय २१—२३)

भगवती त्रिपुरा तथा गणेश आदि देवोंकी पूजा-विधि

सूतजीने कहा—अब मैं गणेश आदि देवोंकी तथा त्रिपुरादेवीकी पूजाको कहूँगा, जो अपने भक्तोंको सर्वदा अभीष्ट प्रदान करनेवाली तथा श्रेष्ठ है। साधकको सबसे पहले गणपतिदेवके आसन एवं उनके मूर्तस्वरूपका पूजन करके न्यासपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। साधक 'गां' आदि बीजमन्त्रोंसे निम्न रीतिसे हृदयादिन्यास करे—

ॐ गां हृदयाय नमः, ॐ गीं शिरसे स्वाहा, ॐ गूं शिखायै वषट्, ॐ गैं कवचाय हुम्, ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ गः अस्त्राय फट्।

इस न्यासके पश्चात् साधकको—'**ॐ दुर्गायाः पादुकाभ्यां नमः**', '**ॐ गुरुपादुकाभ्यां नमः**'—मन्त्रसे माता दुर्गा और गुरुकी पादुकाओंको नमस्कार करके देवी त्रिपुराके आसन और मूर्तिको प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् वह (साधक) '**ॐ ह्रीं दुर्गे रक्षिणि**'—इस मन्त्रसे हृदयादिन्यास करे और फिर इसी मन्त्रसे 'रुद्रचण्डा, प्रचण्डदुर्गा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा, चण्डिका तथा दुर्गा'—इन नौ शक्तियोंका पूजन करे। तदनन्तर वज्र, खड्ग आदि मुद्राओंका प्रदर्शनकर उसके अग्निकोणमें सदाशिव आदि देवोंकी पूजा करे। अतः साधक पहले '**ॐ सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः**' कहकर प्रणाम करे। तत्पश्चात् '**ॐ ऐं क्लीं (ह्रीं) सौं त्रिपुरायै नमः**' यह मन्त्रोच्चार करते हुए उस त्रिपुराशक्तिको नमस्कार करे।

साधक उसके बाद भगवती त्रिपुराके पद्मासन, मूर्ति और हृदयादि अङ्गोंको प्रणाम करे। तत्पश्चात् उस पद्मपीठपर ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और चण्डिका—इन आठ देवियोंकी पूजा करे। इन देवियोंकी पूजाके बाद 'भैरव' नामक देवोंकी पूजाका विधान है। असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण तथा संहार नामवाले—ये आठ भैरव हैं।

भैरव-पूजाके पश्चात् रति, प्रीति, कामदेव, पञ्चबाण, योगिनी, बटुक, दुर्गा, विघ्नराज, गुरु और क्षेत्रपाल-देवोंका भी पूजन करे।

साधकको पद्मगर्भ-मण्डल या त्रिकोणपीठ बनाकर उसपर और हृदयमें शुक्ल वर्णवाली, वरदायिनी, अक्षमाला, पुस्तक एवं अभय-मुद्रासे सुशोभित भगवती सरस्वतीका भी ध्यान करना चाहिये। एक लाख मन्त्रका जप और हवन करनेसे भगवती त्रिपुरेश्वरी साधकके लिये सिद्धिदात्री हो जाती हैं। पूजामें देवोंके आसन तथा पादुकाकी पूजाका भी विधान है। विशेष पूजनमें मन्त्रन्यास तथा मण्डलादि-पूजन भी करना चाहिये। (अध्याय २४—२६)

१-बद्धपद्मासनासीनः सितः षोडशवार्षिकः॥
पञ्चवक्त्रः कराग्रैः स्वैर्दशभिश्चैव धारयन्। अभयं प्रसादं शक्तिं शूलं खट्वाङ्गमीश्वरः॥
दक्षैः करैर्वामकैश्च भुजंगं चाक्षसूत्रकम्। डमरुकं नीलोत्पलं बीजपूरकमुत्तमम्॥ (२३।५४—५६)

सर्पों एवं अन्य विषैले जीव-जन्तुओंके विषको दूर करनेका मन्त्र

सूतजीने कहा—अब मैं सर्पादि विभिन्न विषैले जीव-जन्तुओंके काटनेसे कष्ट पहुँचानेवाले विषको दूर करनेमें समर्थ मन्त्रको कह रहा हूँ, जो इस प्रकार है—

'**ॐ कणिचिकीणिकक्वाणी चर्वाणी भूतहारिणि फणिविषिणि विरथनारायणि उमे दह दह हस्ते चण्डे रौद्रे माहेश्वरि महामुखि ज्वालामुखि शङ्कुकर्णि शुकमुण्डे शत्रुं हन हन सर्वनाशिनि स्वेदय सर्वाङ्गशोणितं तन्निरीक्षसि मनसा देवि सम्मोहय सम्मोहय रुद्रस्य हृदये जाता रुद्रस्य हृदये स्थिता। रुद्रो रौद्रेण रूपेण त्वं देवि रक्ष रक्ष मां हुं मां हुं फफफ ठठ स्कन्दमेखलाबालग्रहशत्रुविषहारी ॐ शाले माले हर हर विषोङ्काररहिविषवेगे हां हां शवरि हुं शवरि आकौलवेगेशे सर्वे विंचमेघमाले सर्वनागादिविषहरणम्।**'

इस मन्त्रका प्रयोग करते समय माहेश्वरी उमादेवीसे प्रार्थना करे कि हे उमे! तुम रुद्रके हृदयमें उत्पन्न हुई हो और उसीमें रहती हो। तुम्हारा रौद्र रूप है। तुम्हें रौद्री भी कहा जाता है। तुम्हारा मुख ज्वालाके समान जाज्वल्यमान है तथा तुमने अपने कटिप्रदेशमें क्षुद्र घण्टिका लगी करधनी पहन रखी है। तुम भूतोंकी प्रिय हो, सर्पोंके लिये विषरूपिणी हो, तुम्हारा नाम विरथनारायणी है तथा तुम शुकमुण्डा हो और कानोंमें शङ्कु पहनी हुई हो। हे विशाल मुखवाली, भयंकर एवं प्रचण्ड स्वभाववाली चण्डादेवी! हाथोंमें ज्वलन-शक्ति पैदा कर, शत्रुका हनन कर, हनन कर। सब प्रकारके विषोंका नाश करनेवाली हे देवि! मेरे सर्वाङ्गमें फैले हुए विषको प्रभावहीन कर दे। उस विषको तुम देख रही हो। [उस काटनेवाले जन्तुको] सम्मोहित करो, सम्मोहित करो। हे देवि! तुम मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। इस प्रकार प्रार्थना एवं चिन्तन करके '**हुं मां हुं फफफ ठठ**' इसका उच्चारण करे तथा 'स्कन्दकी मेखलारूपी बालग्रहों, शत्रुओं और विषोंका हरण करनेवाली हे शाला-माला! नाना प्रकारके विषोंके वेगका हरण कर, हरण कर।' ऐसा उच्चारण करे और '**हां हां शवरि हुं**' शवरि कहकर वेगपूर्ण गतिशीलोंमें अतिगतिशील सर्वत्र व्यापिनी मेघमालारूपिणी देवि! मेरे सभी नागादि विषजन्तुओंसे उत्पन्न विषका हरण करो।

[इस प्रकार चिन्तन और प्रार्थना करते हुए रोगीके प्रति स्पर्शादि करते हुए मन्त्रपाठ करे।]

(अध्याय २७)

श्रीगोपालजीकी पूजा, त्रैलोक्यमोहन-मन्त्र तथा श्रीधर-पूजनविधि

श्रीसूतजीने कहा—हे ऋषियो! मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली श्रीगोपालजी तथा भगवान् श्रीधर विष्णुकी पूजाका वर्णन कर रहा हूँ, इसे सुनें। पूजा प्रारम्भ करनेसे पहले पूजा-मण्डलके द्वारदेशमें गङ्गा और यमुनाके साथ धाता और विधाताकी, श्रीके साथ शङ्ख, पद्मनिधि एवं शार्ङ्गधनुष और शरभकी पूजा करनी चाहिये तथा पूर्व दिशामें भद्र और सुभद्रकी, दक्षिण दिशामें चण्ड और प्रचण्डकी, पश्चिम दिशामें बल और प्रबलकी, उत्तर दिशामें जय और विजयकी तथा चारों दरवाजोंपर श्री, गण, दुर्गा और सरस्वतीकी पूजा करनी चाहिये।

मण्डलके अग्नि आदि कोणोंमें और दिशाओंमें परम भागवत नारद, सिद्ध तथा गुरुका एवं नल-कूबरका पूजन करे। पूर्व दिशामें विष्णु, विष्णुतपा तथा विष्णुशक्तिकी अर्चना करे। इसके बाद विष्णुके परिवारकी अर्चना करे। मण्डलके मध्यमें शक्तिकी और कूर्म, अनन्त, पृथ्वी, धर्म, ज्ञान तथा वैराग्यकी अग्नि आदि कोणोंमें पूजा करे। वायव्य-कोणके साथ उत्तर दिशामें प्रकाशात्मक एवं ऐश्वर्यकी पूजा करे। '**गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**'—यह गोपालमन्त्र है। मण्डलकी पूर्व दिशासे आरम्भ करके क्रमशः आठों दिशाओंमें जाम्बवती और सुशीलाके साथ रुक्मिणी, सत्यभामा, सुनन्दा, नाग्नजिती, लक्ष्मणा और मित्रविन्दाकी पूजा करनी चाहिये।

साथ ही श्रीगोपालके शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुसल, खड्ग, पाश, अङ्कुश, श्रीवत्स, कौस्तुभ, मुकुट, वनमाला, इन्द्रादि ध्वजवाहक दिक्पाल, कुमुदादिगण और विष्वक्सेनका पूजन करके श्रीलक्ष्मीसहित कृष्णकी भी अर्चना करनी चाहिये।

गोपीजनवल्लभके मन्त्र जपनेसे तथा उनका ध्यान

करनेसे एवं उनकी (साङ्गोपाङ्ग) पूजा करनेसे साधक सभी कामनाओंको पूर्ण कर लेता है।

त्रैलोक्यमोहन श्रीधरके मन्त्र इस प्रकार हैं—

'ॐ श्रीं (श्रीः) श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः। क्लीं पुरुषोत्तमाय त्रैलोक्यमोहनाय नमः। ॐ विष्णवे त्रैलोक्यमोहनाय नमः। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः।

—ये मन्त्र समस्त प्रयोजनोंको पूर्ण करनेवाले हैं।

श्रीसूतजी पुनः बोले—अब मैं श्रीधर भगवान् (विष्णु)-की मङ्गलमयी पूजाका वर्णन करता हूँ।

साधकको सर्वप्रथम **'ॐ श्रां हृदयाय नमः, ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ श्रूं शिखायै वषट्, ॐ श्रैं कवचाय हुम्, ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ श्रः अस्त्राय फट्'**—इन मन्त्रोंसे अङ्गन्यास और करन्यास करना चाहिये। तदनन्तर भगवान्‌को शङ्ख, चक्र, गदास्वरूपिणी मुद्रा प्रदर्शितकर शङ्ख, चक्र तथा गदा-पद्मसे सुशोभित आत्मस्वरूप श्रीधर भगवान् पुरुषोत्तमका ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वस्तिक या सर्वतोभद्र-मण्डलमें श्रीधरदेवकी पूजा करनी चाहिये।

सर्वप्रथम शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले देवाधिदेव भगवान् विष्णुके आसनकी पूजा करनी चाहिये।

'ॐ श्रीधरासनदेवता आगच्छत' इस मन्त्रसे आवाहन करके **'ॐ समस्तपरिवारायाच्युतासनाय नमः', 'ॐ धात्रे नमः', 'ॐ विधात्रे नमः', 'ॐ गङ्गायै नमः', 'ॐ यमुनायै नमः', 'ॐ आधारशक्त्यै नमः', 'ॐ कूर्माय नमः', 'ॐ अनन्ताय नमः', 'ॐ पृथिव्यै नमः', 'ॐ धर्माय नमः', 'ॐ ज्ञानाय नमः', 'ॐ वैराग्याय नमः', 'ॐ ऐश्वर्याय नमः', 'ॐ अधर्माय नमः', 'ॐ अज्ञानाय नमः', 'ॐ अवैराग्याय नमः', 'ॐ अनैश्वर्याय नमः', 'ॐ कन्दाय नमः,' 'ॐ नालाय नमः', 'ॐ पद्माय नमः', 'ॐ विमलायै नमः,' 'ॐ उत्कर्षिण्यै नमः', 'ॐ ज्ञानायै नमः', 'ॐ क्रियायै नमः', 'ॐ योगायै नमः', 'ॐ प्रह्वयै नमः', 'ॐ सत्यायै नमः', 'ॐ ईशानायै नमः', 'ॐ अनुग्रहायै नमः'**—इन मन्त्रोंसे श्रीधरके आसनका पूजन करके (हे रुद्र!) पूर्वोक्त धाता, विधाता, गङ्गा आदि देवोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर हरिका आवाहन करके पूजन करे। उसके बाद **'ॐ ह्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः आगच्छ।'**—इस मन्त्रसे श्रीधरदेवका आवाहन तथा पूजन करना चाहिये।

इस पूजाके पश्चात् **'ॐ श्रियै नमः'**—इस मन्त्रसे लक्ष्मीका पूजन करना चाहिये। **'ॐ श्रां हृदयाय नमः' 'ॐ श्रीं शिरसे नमः', 'ॐ श्रूं शिखायै नमः,' 'ॐ श्रैं कवचाय नमः', 'ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय नमः', 'ॐ श्रः अस्त्राय नमः', 'ॐ शङ्खाय नमः', 'ॐ पद्माय नमः', 'ॐ चक्राय नमः', 'ॐ गदायै नमः', 'ॐ श्रीवत्साय नमः', 'ॐ कौस्तुभाय नमः', 'ॐ वनमालायै नमः', 'ॐ पीताम्बराय नमः,' 'ॐ ब्रह्मणे नमः', 'ॐ नारदाय नमः', 'ॐ गुरुभ्यो नमः', 'ॐ इन्द्राय नमः', 'ॐ अग्नये नमः', 'ॐ यमाय नमः', 'ॐ निर्ऋतये नमः', 'ॐ वरुणाय नमः', 'ॐ वायवे नमः', 'ॐ सोमाय नमः', 'ॐ ईशानाय नमः', 'ॐ अनन्ताय नमः', 'ॐ ब्रह्मणे नमः', 'ॐ सत्त्वाय नमः', 'ॐ रजसे नमः', 'ॐ तमसे नमः', 'ॐ विष्वक्सेनाय नमः'**—इत्यादि मन्त्रोंसे षडङ्गन्यास, अस्त्र-पूजा तथा उक्त देव-परिवारकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर सपरिकर भगवान् विष्णुका अभिषेक करके वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य निवेदित करके प्रदक्षिणा करे। मूल मन्त्रका जप १०८ बार करे और किया हुआ जप अभीष्ट देव भगवान् श्रीधरको समर्पित कर दे।

तत्पश्चात् विद्वान् साधकको चाहिये कि मुहूर्तभर अपने हृदयदेशमें स्थित विशुद्ध स्फटिक मणिके समान कान्तिमान्, करोड़ों सूर्यके सदृश प्रभावाले, प्रसन्नमुख, सौम्य मुद्रावाले, चमचमाते हुए धवल-मकराकृति-कुण्डलोंसे सुशोभित, सिरपर मुकुटको धारण किये हुए, शुभलक्षणसम्पन्न अङ्गोंवाले तथा वनमालासे अलंकृत परब्रह्मस्वरूप श्रीधरदेवका ध्यान करे।

उसके बाद इन स्तोत्रोंसे भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये—

श्रीनिवासाय देवाय नमः श्रीपतये नमः।
श्रीधराय सशार्ङ्गाय श्रीप्रदाय नमो नमः॥
श्रीवल्लभाय शान्ताय श्रीमते च नमो नमः।
श्रीपर्वतनिवासाय नमः श्रेयस्कराय च॥

श्रेयसां पतये चैव ह्याश्रयाय नमो नमः।
नमः श्रेयःस्वरूपाय श्रीकराय नमो नमः॥
शरण्याय वरेण्याय नमो भूयो नमो नमः।
स्तोत्रं कृत्वा नमस्कृत्य देवदेवं विसर्जयेत्॥
इति रुद्र समाख्याता पूजा विष्णोर्महात्मनः।
यः करोति महाभक्त्या स याति परमं पदम्॥

(३०। १५—१९)

हे देव! आप लक्ष्मीनिवास और श्रीपति हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप श्रीधर हैं, शार्ङ्गपाणि हैं एवं साधकको लक्ष्मी प्रदान करनेवाले हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप ही श्रीवल्लभ, शान्तिस्वरूप तथा ऐश्वर्यसम्पन्न देव हैं, आपको मेरा प्रणाम है।

आप श्रीपर्वतपर निवास करनेवाले हैं, समस्त मङ्गलोंके स्वामी, सर्वकल्याणकर्ता तथा सर्वमङ्गलाधार हैं, आपको मेरा बार-बार नमस्कार है। आप कल्याण और ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हैं, आपको मेरा नमन है। आप शरण देनेवाले तथा सर्वश्रेष्ठ हैं, आपको बारम्बार प्रणाम है।

इस प्रकार देवाधिदेव श्रीधर भगवान् विष्णुका स्तवन और नमन करके उनका विसर्जन करना चाहिये। भक्तिपूर्वक इस पूजाको करनेवाला परमपदको प्राप्त करता है। जो विष्णुपूजाको प्रकाशित करनेवाले इस अध्यायका पाठ करता है, वह इस लोकमें समस्त पापोंसे मुक्त होकर अन्तमें विष्णुके परमपदको प्राप्त करता है।

रुद्रने कहा—हे प्रभो! हे जगत्‌के स्वामी! पुनः उस प्रकारकी पूजा-विधिको बतानेकी कृपा करें, जिसके द्वारा इस अत्यन्त दुस्तर भवसागरको पार किया जा सकता है।

श्रीहरि बोले—हे वृषभध्वज! मैं विष्णुदेवके पूजन-विधानको कह रहा हूँ। हे महाभाग! उस भोग और मोक्षको देनेवाले कल्याणकारी पूजनके विषयमें सुनें।

हे रुद्र! सर्वप्रथम मनुष्यको स्नान करना चाहिये। तदनन्तर संध्यासे निवृत्त होकर यज्ञमण्डपमें प्रवेश करना चाहिये। हाथ-पैरका प्रक्षालनकर विधिवत् आचमन करके न्यासविधिके अनुसार दोनों हाथोंके द्वारा व्यापक रूपमें मूलमन्त्रका करन्यास करना चाहिये। हे रुद्र! उन विष्णु-देवके मूलमन्त्रको कह रहा हूँ, आप सुनें—

'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीधराय विष्णवे नमः।'

—यह मन्त्र देवाधिदेव परमेश्वर विष्णुका वाचक है। यह समस्त रोगोंको हरण करनेवाला तथा सभी ग्रहोंका शमनकर्ता है। यह सर्वपापविनाशक और भुक्ति-मुक्ति प्रदायक है।

साधकको इन मन्त्रोंके द्वारा अङ्गन्यास करना चाहिये—

'ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुम्, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट्।'

आत्मसंयमी साधकको चाहिये कि वह अङ्गन्यास करके आत्ममुद्रा प्रदर्शित करे। तदनन्तर हृदयगुहामें विराजमान शङ्ख-चक्रसे युक्त, कुन्द-पुष्प और चन्द्रमाके समान शुभ्र कान्तिवाले, श्रीवत्स और कौस्तुभमणिसे समन्वित, वनमाला तथा रत्नहार धारण किये हुए परमेश्वर भगवान् विष्णुका ध्यान करे।

तदनन्तर 'विष्णुमण्डलमें अवस्थित होनेवाले आप सभी देवगणों, पार्षदों तथा शक्तियोंका मैं आवाहन करता हूँ, यहाँपर आप सब पधारें'—ऐसा कहकर—

'ॐ समस्तपरिवारायाच्युताय नमः, ॐ धात्रे नमः, ॐ विधात्रे नमः, ॐ गङ्गायै नमः, ॐ यमुनायै नमः, ॐ शङ्खनिधये नमः, ॐ पद्मनिधये नमः, ॐ चण्डाय नमः, ॐ प्रचण्डाय नमः, ॐ द्वारश्रियै नमः, ॐ आधारशक्त्यै नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ श्रियै नमः, ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ कं कन्दाय नमः, ॐ नं नालाय नमः, ॐ लां पद्माय नमः, ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः, ॐ सों सोममण्डलाय नमः, ॐ वं वह्निमण्डलाय नमः, ॐ विमलायै नमः, ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ योगायै नमः, ॐ प्रह्व्यै नमः, ॐ सत्यायै नमः, ॐ ईशानायै नमः, ॐ अनुग्रहायै नमः—इन नाममन्त्रोंसे गन्ध-पुष्पादि उपचारोंके द्वारा धाता, विधाता, गङ्गा, यमुना आदि देवताओंका नमस्कारपूर्वक पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर हे रुद्र! सृष्टि तथा संहार करनेवाले, सभी पापोंको दूर करनेवाले परमेश्वर भगवान् विष्णुका मण्डलमें आवाहन करके इस विधिसे उनका पूजन करना चाहिये।

जिस प्रकार सर्वप्रथम अपने शरीरमें न्यास किया जाता है, उसी प्रकार प्रतिमामें भी सर्वप्रथम न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् मुद्राका प्रदर्शनकर अर्घ्य-पाद्यादि उपचारोंको अर्पण करना चाहिये। उसके बाद स्नान, वस्त्र, आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यरूपमें चरु अर्पित करके उन देवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर उनके मन्त्रका जप करके इस जप-पूजनको उन्हें ही समर्पित कर देना चाहिये।

हे वृषभध्वज! उन श्रीधरदेवकी पूजा उनके मूल मन्त्रसे करनी चाहिये। हे त्रिनेत्र! इस समय मैं उन मन्त्रोंको भी कह रहा हूँ, जिनसे न्यास तथा विष्णुके परिवार, दिग्देवता और आयुध आदिकी पूजा करनी चाहिये। उन्हें आप सुनें—

ॐ हां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे नमः, ॐ हूं शिखायै नमः, ॐ हैं कवचाय नमः, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः, ॐ हः अस्त्राय नमः, ॐ श्रियै नमः, ॐ शङ्खाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ श्रीवत्साय नमः, ॐ कौस्तुभाय नमः, ॐ वनमालायै नमः, ॐ पीताम्बराय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ मुसलाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ शार्ङ्गाय नमः, ॐ शराय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ नारदाय नमः, ॐ पूर्वसिद्धेभ्यो नमः, ॐ भागवतेभ्यो नमः, ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ इन्द्राय सुराधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ अग्नये तेजोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ यमाय प्रेताधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ वरुणाय जलाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ वायवे प्राणाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ सोमाय नक्षत्राधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ ईशानाय विद्याधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ अनन्ताय नागाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ ब्रह्मणे लोकाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः, ॐ वज्राय हुं फट् नमः, ॐ शक्त्यै हुं फट् नमः, ॐ दण्डाय हुं फट् नमः, ॐ खड्गाय हुं फट् नमः, ॐ पाशाय हुं फट् नमः, ॐ ध्वजाय हुं फट् नमः, ॐ गदायै हुं फट् नमः, ॐ त्रिशूलाय हुं फट् नमः, ॐ चक्राय हुं फट् नमः, ॐ पद्माय हुं फट् नमः, तथा **ॐ वौं विष्वक्सेनाय नमः।**

हे महादेव! इस प्रकार इन मन्त्रोंसे अधिकारी मनुष्योंको चाहिये कि वे विष्णुके विभिन्न अङ्गोंकी पूजा करें, तदनन्तर ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुका पूजन करके इस स्तुतिसे उन अविनाशी परमात्म प्रभुका स्तवन करें—

विष्णवे देवदेवाय नमो वै प्रभविष्णवे॥
विष्णवे वासुदेवाय नमः स्थितिकराय च।
ग्रसिष्णवे नमश्चैव नमः प्रलयशायिने॥
देवानां प्रभवे चैव यज्ञानां प्रभवे नमः।
मुनीनां प्रभवे नित्यं यक्षाणां प्रभविष्णवे॥
जिष्णवे सर्वदेवानां सर्वगाय महात्मने।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवन्द्याय सर्वेशाय नमो नमः॥
सर्वलोकहितार्थाय लोकाध्यक्षाय वै नमः।
सर्वगोप्त्रे सर्वकर्त्रे सर्वदुष्टविनाशिने॥
वरप्रदाय शान्ताय वरेण्याय नमो नमः।
शरण्याय सुरूपाय धर्मकामार्थदायिने॥

(३१। २४—२९)

देवाधिदेव, तेजोमूर्ति भगवान् विष्णुदेवके लिये नमस्कार है। संसारकी स्थिति (पालन) करनेवाले वासुदेव विष्णुके लिये नमन है। प्रलयके समय संसारको अपने मूल कारण प्रकृतिमें लीन करके आत्मसात्कर शयन करनेवाले विष्णुको प्रणाम है। देवोंके अधिपति तथा यज्ञोंके अधिपति विष्णुको नमन है। मुनियों तथा यक्षोंके प्रभु और समस्त देवोंपर विजय प्राप्त करनेवाले, सबमें व्याप्त रहनेवाले, महात्मा, ब्रह्मा, इन्द्र-रुद्रादिके वन्दनीय सर्वेश्वर भगवान् विष्णुके लिये नमस्कार है।

समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले, लोकाध्यक्ष, सर्वगोप्ता, सर्वकर्ता तथा समस्त दुष्टोंके विनाशक भगवान् विष्णुके लिये नमन है। वर प्रदान करनेवाले, परम शान्त, सर्वश्रेष्ठ, शरणागतकी रक्षा करनेवाले, सुन्दर रूपवाले, धर्म-काम तथा अर्थ—इस त्रिवर्गके प्रदाता भगवान् विष्णुके लिये बार-बार प्रणाम है।

हे शङ्कर! इस प्रकार ब्रह्मस्वरूप, अव्यय, परात्पर भगवान् विष्णुकी स्तुति करके अपने हृदयमें उनका ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् मूल मन्त्रसे उन विष्णुकी पूजा

करनी चाहिये और मूल मन्त्रका जप करना चाहिये। जो अधिकारी व्यक्ति ऐसा करता है, वह भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है। हे रुद्र! इस प्रकार मैंने आपसे इस रहस्यपूर्ण, परम गुह्य, भुक्ति-मुक्तिप्रद और उत्तम विष्णुकी पूजाविधिको कहा है। हे शङ्कर! जो विद्वान् पुरुष इसका पाठ करता है, वह विष्णुभक्त हो जाता है। इसे जो सुनता है अथवा सुनाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय २८—३१)

पञ्चतत्त्वार्चन-विधि

महेश्वरने कहा—हे शङ्ख-चक्र-गदाधर! आप पञ्चतत्त्वोंकी उस पूजा-विधिको मुझे बतानेकी कृपा करें, जिसका ज्ञान प्राप्त कर लेनेमात्रसे ही मनुष्य परमपदको प्राप्त कर लेता है।

श्रीहरिने कहा—हे सुव्रत शिव! मैं आपसे पञ्चतत्त्व-पूजा-विधिको कह रहा हूँ, यह दिव्य, मङ्गलस्वरूप, कल्याणकारी, रहस्यपूर्ण, श्रेष्ठ तथा अभीष्टोंकी सिद्धि करनेवाली है। हे महादेव! ऐसे उस परम पवित्र कलिदोष-विनाशक पूजन-विधिका आप श्रवण करें।

हे सदाशिव! एक ही परमात्मा जो वासुदेव श्रीहरि हैं, वे ही अविनाशी, शान्त, सनातन, सत्-स्वरूप हैं। वे ध्रुव (नित्य, अचल), शुद्ध, सर्वव्याप्त तथा निरञ्जन हैं। वे ही विष्णुदेव अपनी मायाके प्रभावसे पाँच प्रकारसे अवस्थित हैं। वे जगत्‌का कल्याण करनेवाले हैं। वे ही अद्वितीय विष्णु वासुदेव, संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायणस्वरूपसे पाँच रूपों (तत्त्वों)-में स्थित हैं।

हे वृषध्वज! जनार्दन विष्णुके उक्त पञ्चरूपोंके वाचक मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ अं वासुदेवाय नमः, ॐ आं संकर्षणाय नमः, ॐ अं प्रद्युम्नाय नमः, ॐ अः अनिरुद्धाय नमः, ॐ ॐ नारायणाय नमः।

—ये पाँच मन्त्र उक्त पाँच देवताओंके वाचक हैं, जो सभी पातक, महापातकोंके विनाशक, पुण्यजनक तथा समस्त रोगोंको दूर करनेवाले हैं। अब मैं आपसे मङ्गलमय पञ्चतत्त्वार्चन-विधिको कह रहा हूँ। हे शिव! उसको जिस विधिसे और जिन मन्त्रोंके द्वारा सम्पन्न करना चाहिये, उसका आप श्रवण करें।

—इन पाँच देवोंकी पूजामें सर्वप्रथम स्नान करके विधिवत् संध्या करनी चाहिये। तदनन्तर हाथ-पैर धोकर पूजा-गृहमें प्रवेश करके विद्वान् साधकको चाहिये कि वह आचमन करके मनोऽनुकूल आसन लगाकर बैठ जाय और—'अं क्ष्रौं रम्'—इन मन्त्रोंसे शोषणादि क्रिया करे।

वे वासुदेव कृष्ण जगत्‌के स्वामी, पीतवर्णके कौशेय (रेशमी) वस्त्रोंसे विभूषित, सहस्रों सूर्यकी किरणोंके समान तेजःस्वरूप तथा देदीप्यमान मकराकृति-कुण्डलोंसे सुशोभित हैं, ऐसे उन भगवान् कृष्णका अपने हृदय-कमलमें ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर भगवान् संकर्षणका ध्यान करे। उसके बाद यथाक्रम प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा श्रीमन्नारायणके स्वरूपका ध्यान करके उन देवाधिदेवसे प्रादुर्भूत इन्द्रादि देवोंका ध्यान करके मूल मन्त्रके द्वारा दोनों हाथोंसे व्यापक रूपमें करन्यास करे, तत्पश्चात् अङ्गन्यासके मन्त्रोंसे अङ्गन्यास करे। हे महादेव! सुव्रत! उन न्यास एवं पूजाके मन्त्र इस प्रकार हैं—

'ॐ आं हृदयाय नमः, ॐ ईं शिरसे नमः, ॐ ऊं शिखायै नमः, ॐ ऐं कवचाय नमः, ॐ औं नेत्रत्रयाय नमः, ॐ अः अस्त्राय फट्, ॐ समस्तपरिवारायाच्युताय नमः, ॐ धात्रे नमः, ॐ विधात्रे नमः, ॐ आधारशक्त्यै नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः, ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः, ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः, ॐ सों सोममण्डलाय नमः, ॐ वं वह्निमण्डलाय नमः, ॐ वं वासुदेवाय परब्रह्मणे शिवाय तेजोरूपाय व्यापिने सर्वदेवाधिदेवाय नमः, ॐ पाञ्चजन्याय नमः, ॐ सुदर्शनाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ श्रियै नमः, ॐ ह्रियै नमः, ॐ पुष्ट्यै नमः, ॐ गीत्यै नमः, ॐ शक्त्यै नमः, ॐ प्रीत्यै नमः, ॐ इन्द्राय नमः, ॐ अग्नये नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ सोमाय नमः, ॐ ईशानाय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ ब्रह्मणे नमः, ॐ विष्वक्सेनाय नमः।'

तत्पश्चात् 'ॐ पद्माय नमः' ऐसा कहकर स्वस्तिक और सर्वतोभद्रादि मण्डलोंका निर्माण करके उस मण्डलमें इन्हीं मन्त्रोंसे देवोंका पूजन करना चाहिये।

मूल मन्त्रसे पाद्य आदिका निवेदन करके स्नान, वस्त्र,

आचमन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य प्रदान करके नमस्कार तथा प्रदक्षिणा करनी चाहिये। हे शङ्कर! उसके बाद यथाशक्ति मूल मन्त्रका जपकर उसे प्रभुको समर्पित कर दे।

तदनन्तर भगवान् वासुदेवका स्मरणकर इस स्तोत्रका पाठ करे—

ॐ नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च॥
प्रद्युम्नायादिदेवायानिरुद्धाय नमो नमः।
नमो नारायणायैव नराणां पतये नमः॥
नरपूज्याय कीर्त्याय स्तुत्याय वरदाय च।
अनादिनिधनायैव पुराणाय नमो नमः॥
सृष्टिसंहारकर्त्रे च ब्रह्मणः पतये नमः।
नमो वै वेदवेद्याय शङ्खचक्रधराय च॥
कलिकल्मषहर्त्रे च सुरेशाय नमो नमः।
संसारवृक्षच्छेत्रे च मायाभेत्रे नमो नमः॥
बहुरूपाय तीर्थाय त्रिगुणायागुणाय च।
ब्रह्मविष्ण्वीशरूपाय मोक्षदाय नमो नमः॥
मोक्षद्वाराय धर्माय निर्वाणाय नमो नमः।
सर्वकामप्रदायैव परब्रह्मस्वरूपिणे॥
संसारसागरे घोरे निमग्नं मां समुद्धर।
त्वदन्यो नास्ति देवेश नास्ति त्राता जगत्प्रभो॥
त्वामेव सर्वगं विष्णुं गतोऽहं शरणं ततः।
ज्ञानदीपप्रदानेन तमोमुक्तं प्रकाशय॥

(३२। ३०—३८)

'हे वासुदेव! हे संकर्षण (बलराम)! आपको नमस्कार है। हे प्रद्युम्न, आदिदेव, अनिरुद्ध! आपके लिये नमस्कार है। हे नारायण! नराधिपति! आपको नमन है, कीर्तन करने योग्य, मनुष्योंसे पूजनीय, स्तुति करने योग्य, वर देनेवाले, आदि तथा अन्तसे रहित सनातन प्रभुको बारम्बार नमस्कार है। सृष्टि और संहारकर्ता, ब्रह्माके भी स्वामी तथा शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णुको नमस्कार है। नमस्कार है।'

कलिकालके दोषोंको नष्ट करनेवाले, देवोंके ईश! आपको बारम्बार प्रणाम है। सम्पूर्ण जगत्-रूपी मूल वृक्षका छेदन करनेवाले, मायाका भेदन करनेवाले, बहुत-से रूपोंको धारण करनेवाले, तीर्थस्वरूप, सत्त्व, रजस् तथा तमोरूप एवं वस्तुतः निर्गुण तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन रूपोंमें अवस्थित रहनेवाले मोक्षदायक भगवान् विष्णु परमेश्वरको नमस्कार है। मोक्षके द्वारभूत, धर्मस्वरूप, निर्वाणरूप, समस्त अभीष्टोंको प्रदान करनेवाले परब्रह्मस्वरूप आपके लिये बार-बार नमस्कार है। इस गहन संसारसागरमें मैं डूब रहा हूँ, आप मेरा उद्धार करें। हे देवदेवेश्वर! हे जगत्के स्वामी! आपके अतिरिक्त मेरा कोई भी रक्षक नहीं है। सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले हे भगवान् विष्णु! मैं आपकी शरणमें हूँ। हे भगवन्! ज्ञानरूपी दीपकको प्रज्वलितकर मेरे (अज्ञानरूपी) अन्धकारको दूर करके मुझे प्रकाशित कर दें।

इस प्रकार समस्त कष्टोंको दूर करनेवाले देवेश भगवान् वासुदेवकी स्तुति करके हे नीललोहित शिव! अन्य वैदिक स्तोत्र-पाठोंसे भी स्तुति करके पञ्चतत्त्वोंसे युक्त उन भगवान् विष्णुका अपने हृदयमें ध्यान करे। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये। इस प्रकार हे शङ्कर! सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली वासुदेवकी श्रेष्ठ पूजा कही गयी। इस पूजाके करनेमात्रसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।

हे रुद्र! जो व्यक्ति इस पञ्चतत्त्वार्चनको पढ़ता है, सुनता है अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ३२)

सुदर्शनचक्र-पूजा-विधि

रुद्रने कहा—हे शङ्ख-गदाधर! उस सुदर्शनकी पूजाके विषयमें मुझे बतायें, जिसे करनेसे ग्रहदोष और रोगादि—सभी कष्ट विनष्ट हो जाते हैं।

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! सुदर्शनचक्रकी पूजा-विधिको मैं कह रहा हूँ, आप सुनें। सर्वप्रथम स्नान करके हरिका पूजन करे। साधकको चाहिये कि अपने निर्मल एवं शुभ हृदय-कमलमें भगवान् सुदर्शनदेव विष्णुका ध्यान करे। हे महादेव! उसके बाद मण्डलमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करनेवाले, सौम्य आकृतिवाले, किरीटी भगवान् विष्णुदेवका आवाहन करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि विविध उपचारोंसे पूजा करे।

पूजाके अन्तमें मूल मन्त्रका १०८ बार जप करे। हे रुद्र! जो इस प्रकार सुदर्शनचक्रका उत्तम पूजन करता है, वह इस लोकमें समस्त रोगोंसे विमुक्त होकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। मन्त्र-जपके पश्चात् सभी व्याधियोंको विनष्ट करनेवाले इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये—

नमः सुदर्शनायैव सहस्रादित्यवर्चसे॥
ज्वालामालाप्रदीप्ताय सहस्राराय चक्षुषे।
सर्वदुष्टविनाशाय सर्वपातकमर्दिने॥
सुचक्राय विचक्राय सर्वमन्त्रविभेदिने।
प्रसवित्रे जगद्धात्रे जगद्विध्वंसिने नमः॥
पालनार्थाय लोकानां दुष्टासुरविनाशिने।
उग्राय चैव सौम्याय चण्डाय च नमो नमः॥
नमश्चक्षुःस्वरूपाय संसारभयभेदिने।
मायापञ्जरभेत्रे च शिवाय च नमो नमः॥
ग्रहातिग्रहरूपाय ग्रहाणां पतये नमः।
कालाय मृत्यवे चैव भीमाय च नमो नमः॥
भक्तानुग्रहदात्रे च भक्तगोप्त्रे नमो नमः।
विष्णुरूपाय शान्ताय चायुधानां धराय च॥
विष्णुशस्त्राय चक्राय नमो भूयो नमो नमः।
इति स्तोत्रं महत्पुण्यं चक्रस्य तव कीर्तितम्॥
यः पठेत् परया भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति।
चक्रपूजाविधिं यश्च पठेद्रुद्र जितेन्द्रियः।
स पापं भस्मसात्कृत्वा विष्णुलोकाय कल्पते॥

(३३।८—१६)

सहस्रों सूर्यके समान तेजःसम्पन्न सुदर्शनचक्रके लिये नमस्कार है। तेजस्वी किरणोंकी मालाओंसे प्रदीप्त हजारों अरे (चक्रके अवयव)-वाले, नेत्रस्वरूप, सर्वदुष्टविनाशक तथा सभी प्रकारके पापोंको नष्ट करनेवाले आपको नमन है। सुचक्र तथा विचक्र नामधारी, सम्पूर्ण मन्त्रका भेदन करनेवाले, जगत्की सृष्टि करनेवाले, पालन-पोषण करनेवाले एवं जगत्का संहार करनेवाले हे सुदर्शनचक्र! आपको नमस्कार है। (संसारकी रक्षा करनेके लिये) देवताओंका कल्याण करनेवाले, दुष्ट राक्षसोंका विनाश करनेवाले, दुष्टोंका संहार करनेके लिये उग्र-स्वरूप एवं प्रचण्ड-स्वरूप और सज्जनोंके लिये सौम्य-स्वरूप धारण करनेवाले आपको बारम्बार नमस्कार है। जगत्के लिये नेत्रस्वरूप संसारभयको काटनेवाले मायारूपी पिंजड़ेका भेदन करनेवाले, कल्याणकारी सुदर्शनचक्रको नमस्कार है। ग्रह एवं अतिग्रहस्वरूप, ग्रहपति, कालस्वरूप, मृत्युस्वरूप, पापात्माओंके लिये महाभयंकर आपके लिये बार-बार नमन है। भक्तोंपर कृपा करनेवाले, उनके अभिरक्षक, विष्णुस्वरूप, शान्तस्वभाव, समस्त आयुधोंकी शक्तिको अपनेमें धारणकर स्थित रहनेवाले विष्णुके शस्त्रभूत हे सुदर्शनचक्र! आपके लिये बारम्बार नमस्कार है।

हे शङ्कर! सुदर्शनचक्रके इस महत्पुण्यशाली स्तोत्रका जो मनुष्य परम भक्तिसे पाठ करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय ३३)

भगवान् हयग्रीवके पूजनकी विधि

रुद्रने कहा—हे हृषीकेश! हे गदाधर! आप पुनः देवार्चनविधिको बतायें। आपके द्वारा बार-बार देव-पूजनविधिको सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है।

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं हयग्रीव नामके देवके पूजनविधानको कहता हूँ, आप सुनें। उसके करनेसे जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु अत्यन्त संतुष्ट हो जायँगे।

हे शङ्कर! उस पूजनका मूल मन्त्र हयग्रीवदेवका ही वाचक है। वह परम पुण्यशाली मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ सौं क्षौं शिरसे नमः' यह प्रणव-युक्त मन्त्र सभी प्रकारकी विद्याओंको प्रदान करनेवाला है।

'ॐ क्षां हृदयाय नमः, ॐ क्षीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्षूं शिखायै वषट्, ॐ क्षैं कवचाय हुम्, ॐ क्षौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ क्षः अस्त्राय फट्'— इन मन्त्रोंसे अङ्गन्यास और करन्यास करना चाहिये।

हे शङ्कर! वे हयग्रीव देव शङ्ख, कुन्दपुष्प, चन्द्रके सदृश श्वेतवर्ण, कमलनालतन्तु और रजतधातुकी कान्तिके समान देहकान्तिको धारण करनेवाले, गौके दुग्धकी भाँति और करोड़ों सूर्योंके सदृश प्रतिभासित होनेवाले, शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मको धारण किये हुए चार भुजावाले हैं। वे सर्वव्यापी देवता मुकुट, कुण्डल, वनमालासे सुशोभित, सुदर्शनचक्रसे युक्त, सुन्दर-सुन्दर कपोलोंवाले, पीताम्बरको धारण किये हुए हैं। सभी देवोंसे युक्त उन विराट्देवको अपनेमें भावना करके अङ्गमन्त्रोंसे तथा मूल मन्त्रसे न्यास करना चाहिये। इसके पश्चात् मूल मन्त्रसे ही शङ्ख, पद्मादिको मङ्गलमयी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। हे शङ्कर! इस प्रकार मुद्राएँ दिखा करके मूल मन्त्रसे विष्णुका ध्यान करके

अर्चा करनी चाहिये।

हे रुद्र! इसके बाद हयग्रीवके आसनके संनिकट अवस्थित रहनेवाले जो अन्य देव हैं, उनका आवाहन करना चाहिये। यथा—

'ॐ हयग्रीवासनस्य आगच्छन्त च देवता:।'

—इस प्रकार आवाहन करके स्वस्तिक या सर्वतोभद्र-मण्डलके अन्तर्गत उन देवोंका पूजन करके द्वारपर धाता और विधाताकी पूजा सम्पन्न करनी चाहिये।

हे वृषध्वज! '**समस्तपरिवाराय अच्युताय नमः**'—इस मन्त्रसे मण्डलके मध्यमें भगवान् विष्णुका पूजन करके द्वारपर गङ्गा, महादेवी तथा शङ्ख एवं पद्म नामक निधिकी पूजा करके अग्रभागमें गरुड तथा मध्यभागमें आधार नामवाली शक्तिकी पूजा करनी चाहिये।

हे महादेव! तदनन्तर कूर्म, अनन्त एवं पृथ्वीका पूजन करे और अग्निकोणमें धर्म, नैर्ऋत्यकोणमें ज्ञान, वायुकोणमें वैराग्य तथा ईशानकोणमें ऐश्वर्यका पूजन करना चाहिये। इसके बाद पूर्व दिशामें अधर्म, दक्षिण दिशामें अज्ञान, पश्चिम दिशामें अवैराग्य तथा उत्तर दिशामें अनैश्वर्यका भी पूजन करना चाहिये। इसके बाद मण्डलके मध्यमें सत्त्व, रजस् तथा तमस्—इन तीन गुणोंकी पूजा करके मध्यभागमें ही कन्द, नाल और पद्मकी विधिवत् पूजा करे। तदनन्तर मध्यदेशमें अर्क, सोम और अग्निमण्डलका पूजन करना चाहिये।

हे वृषध्वज! विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना तथा अनुग्रहा नामक ये शक्तियाँ हैं। पूर्वादि दिशाओंमें—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तरमें अवस्थित पद्मपत्रोंपर यथाक्रम, '**ॐ विमलायै नमः**', '**ॐ उत्कर्षिण्यै नमः**', '**ॐ ज्ञानायै नमः**', '**ॐ क्रियायै नमः**', '**ॐ योगायै नमः**' इत्यादि मन्त्रोंसे विमलादि शक्तियोंका पूजन करना चाहिये। कल्याणकामी व्यक्तिको चाहिये कि वे अनुग्रहा नामक शक्तिकी पूजा पद्मकी कर्णिकामें '**ॐ अनुग्रहायै नमः**' इस मन्त्रसे करें।

इस विधिसे स्नान, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य समर्पण करके देवके आसनका मङ्गलमय पूजन करना चाहिये। इस पूजाके पश्चात् देवाधिदेव भगवान् हयग्रीवदेवका मण्डलमें आवाहन करना चाहिये। आवाहन करके समाहित होकर उनका न्यास भी करना चाहिये। न्यास करनेके पश्चात् देवों और असुरोंसे नमस्कृत देवाधिदेव परमेश्वर भगवान् हयग्रीवका पुनः ध्यान करना चाहिये और शङ्ख-चक्रादि मङ्गलमयी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। उसके बाद पाद्य, अर्घ्य, आचमन तथा स्नान प्रदान करे। हे वृषध्वज! उन्हें वस्त्र प्रदान करनेके बाद आचमन प्रदानकर उनको सुन्दर यज्ञोपवीत समर्पित करना चाहिये और उन्हें पाद्य, अर्घ्य आदि प्रदान करना चाहिये। अनन्तर मूल मन्त्रसे भैरवदेवको पाद्यादि प्रदान करते हुए उनका विधिवत् पूजन करना चाहिये।

हे शिव! इसके बाद शुभदायिनी तथा ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली परमादेवी लक्ष्मीकी पूजा करे। पूर्व दिशामें '**ॐ शङ्खाय नमः**' कहकर शङ्खका, दक्षिण दिशामें '**ॐ पद्माय नमः**' कहकर पद्मका, पश्चिम दिशामें '**ॐ चक्राय नमः**'से चक्रका तथा उत्तर दिशामें '**ॐ गदायै नमः**' से गदाका यथाक्रम पूजन करे।

इसी प्रकार पुनः पूर्व दिशामें '**ॐ खड्गाय नमः**' से खड्ग, दक्षिण दिशामें '**ॐ मुसलाय नमः**'से मुसल, पश्चिम दिशामें '**ॐ पाशाय नमः**' से पाश, उत्तर दिशामें '**ॐ अंकुशाय नमः**'से अंकुश तथा मध्यमें '**ॐ सशराय धनुषे नमः**' कहकर शरयुक्त धनुषकी पूजा करनी चाहिये।

हे रुद्र! पुनः पूर्व आदि चार दिशाओंमें श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला और मङ्गलमय पीताम्बरकी पूजा करके पुनः शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् हयग्रीवकी पूजा करे।

तदनन्तर '**ॐ ब्रह्मणे नमः**' से ब्रह्मा, '**ॐ नारदाय नमः**'से नारद, '**ॐ सिद्धाय नमः**' से सिद्ध, '**ॐ गुरुभ्यो नमः**' से गुरु, '**ॐ परगुरुभ्यो नमः**' से परगुरु और '**ॐ गुरुपादुकाभ्यां नमः**'से गुरुपादुकाकी पूजा करे।

तत्पश्चात् '**ॐ सवाहनाय सपरिवाराय इन्द्राय नमः**', '**ॐ सवाहनाय सपरिवाराय अग्नये नमः**', '**ॐ यमाय नमः**', '**ॐ निर्ऋतये नमः**', '**ॐ वरुणाय नमः**', '**ॐ वायवे नमः**', '**ॐ सोमाय नमः**', '**ॐ ईशानाय नमः**', '**ॐ अनन्ताय नमः**', '**ॐ ब्रह्मणे नमः**'—इन मन्त्रोंसे पूर्व आदि दिशाओंसे ऊर्ध्वदिशापर्यन्त इन्द्र, अग्नि आदि सभी दिग्-देवताओंकी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद 'ॐ वज्राय नमः', 'ॐ शक्तये नमः', 'ॐ दण्डाय नमः', 'ॐ खड्गाय नमः', 'ॐ पाशाय नमः', 'ॐ ध्वजाय नमः', 'ॐ गदायै नमः', 'ॐ त्रिशूलाय नमः', 'ॐ चक्राय नमः', 'ॐ पद्माय नमः'—इन मन्त्रोंसे वज्र, शक्ति आदि आयुधोंकी पूजा करे।

तत्पश्चात् ईशानकोणमें '**ॐ विष्वक्सेनाय नमः**' इस मन्त्रसे विष्वक्सेनकी पूजा करे। इसी प्रकार अनन्तकी भी पूजा करे। हे वृषभध्वज! भगवान् हयग्रीवके मूल मन्त्रसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्यके द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् उन (देव हयग्रीव)-की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे और यथाशक्ति मूल मन्त्रका जपकर उन्हें समर्पित कर दे। तदनन्तर देवेश्वर भगवान् हयग्रीवकी इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये—

ॐ नमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै नमः॥
नमो विद्यास्वरूपाय विद्यादात्रे नमो नमः।
नमः शान्ताय देवाय त्रिगुणायात्मने नमः॥
सुरासुरनिहन्त्रे च सर्वदुष्टविनाशिने।
सर्वलोकाधिपतये ब्रह्मरूपाय वै नमः॥
नमश्चेश्वरवन्द्याय शङ्खचक्रधराय च।
नम आद्याय दान्ताय सर्वसत्त्वहिताय च॥
त्रिगुणायागुणायैव ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे।
कर्त्रे हर्त्रे सुरेशाय सर्वगाय नमो नमः॥

(३४।५०—५४)

'सर्वविद्याधिपति, अश्वशिर भगवान्‌को नमस्कार है। विद्यास्वरूप, विद्याप्रदायक उन देवके लिये बार-बार नमन है। शान्तस्वरूप, त्रिगुणात्मक, सुर तथा असुरोंका निग्रह करनेवाले, सभी दुष्टोंका विनाश करनेवाले, सर्वलोकाधिपति ब्रह्मस्वरूप उन देव हयग्रीवके लिये नमस्कार है। महेश्वरके लिये भी वन्दनीय, शङ्ख-चक्रधारी, जगत्‌के आदि कारण, परम उदार तथा सभी प्राणियोंका हित करनेवाले देवके लिये नमस्कार है। त्रिगुणात्मक, त्रिगुणातीत, ब्रह्मा-विष्णुस्वरूप, जगत्‌की सृष्टिके कर्ता, संहर्ता, देवेश्वर तथा सर्वव्यापक उन भगवान् हयग्रीवको बारम्बार नमस्कार है।

इस प्रकार स्तुति करके अपने हृदयकमलके मध्य शङ्ख, चक्र और गदाको धारण करनेवाले, करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान्, सर्वाङ्गसुन्दर, अविनाशी महेश्वरके भी ईश, देवाधिदेव, परमात्मा हयग्रीवका ध्यान करना चाहिये।

हे शङ्कर! इस प्रकार मैंने भगवान् हयग्रीवकी पूजा-विधिका वर्णन किया। परम भक्तिपूर्वक जो इसका पाठ करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। (अध्याय ३४)

गायत्रीन्यास तथा संध्या-विधि

श्रीहरिने कहा—हे शङ्कर! अब मैं गायत्रीदेवीके [पूजनमें] न्यासादिका वर्णन करूँगा, आप इसका श्रवण करें। इस (गायत्री-मन्त्र)-के ऋषि विश्वामित्र, देवता सविता, मस्तक ब्रह्मा और शिखा रुद्र हैं। ये विष्णुके हृदयमें रहनेवाली हैं। ये विनियोग-कालमें एकनेत्रा हैं। इनका प्रादुर्भाव कात्यायन-गोत्रमें हुआ है, तीनों लोक इनके चरण हैं तथा ये पृथ्वीकी कोखमें स्थित रहती हैं। गायत्रीदेवीके स्वरूपको इस प्रकार जानकर [गायत्री-मन्त्रका] बारह लाख जप करना चाहिये।

इस मन्त्रके त्रिपाद तथा चतुष्पाद अर्थात् तीन चरण तथा चार चरण होते हैं। त्रिपादके प्रत्येक चरणमें आठ अक्षर तथा चतुष्पादके प्रत्येक चरणमें छः अक्षर होते हैं। जपमें त्रिपदा और पूजनमें चतुष्पदा गायत्रीके मन्त्रका प्रयोग करनेके लिये कहा गया है[1]।

जप, ध्यान, यज्ञादि कृत्य एवं पूजनके कार्योंमें नित्य इस सर्वपापविनाशिनी गायत्रीदेवीका विधिवत् अपने अङ्गोंमें न्यास करना चाहिये।

पैरके अंगुष्ठ-भागमें, गुल्फके[2] मध्यमें, दोनों जंघाओं, दोनों जानुओं[3], ऊरु[4]-भाग, गुह्यस्थान, अण्डकोष, नाडी, नाभि, शरीरके उदरभाग, दोनों स्तन, हृदय, कण्ठ, ओष्ठ, मुख, तालु, दोनों स्कन्धप्रदेश, दोनों नेत्र और भौंहों तथा

१-जिस गायत्री-मन्त्रका जप किया जाता है, वह त्रिपदा गायत्री कहलाती है। 'परोरजसेऽसावदोम्०' यह गायत्रीका चतुर्थ पाद है। इस चतुष्पदा गायत्रीका प्रयोग सूर्योपस्थान, पूजन आदिमें होता है। २-गुल्फ (पैरकी घुट्टी) पाँवोंकी गाँठें। ३- जानु (घुटना)। ४- ऊरु—घुटनेके ऊपरका भाग।

मस्तकमें इस (गायत्री)-मन्त्रका न्यास करके क्रमशः— पूर्व, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिम दिशामें इनका न्यास करना चाहिये।

हे रुद्र! इन गायत्रीदेवीके मन्त्रके वर्णों (रंगों)-को कह रहा हूँ। क्रमशः इसके (चौबीस) अक्षर इन्द्रनीलमणि, अग्निसदृश, पीत, श्याम, कपिलवर्ण, श्वेत, विद्युत्प्रभ, मौक्तिकवर्ण, कृष्ण, रक्त, श्याम, शुक्ल, पीत, श्वेत, पद्मरागतुल्य, शङ्खवर्ण, पाण्डुर, रक्त, आसवके समान रक्तकृष्णमिश्रित, सूर्यसदृश, सौम्य, श्वेत, शङ्खकी आभाके समान तथा श्वेत हैं।

गायत्रीदेवीके मन्त्रका जप करके मनुष्य जिन-जिन वस्तुओंका हाथसे स्पर्श करता है और नेत्रोंसे जिनका-जिनका अवलोकन करता है, वे सभी पवित्र हो जाते हैं। गायत्रीसे श्रेष्ठ कोई दूसरा मन्त्र नहीं है, ऐसा समझना चाहिये—

यद्यत्स्पृशति हस्तेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
पूतं भवति तत् सर्वं गायत्र्या न परं विदुः॥
(३५। ११)

श्रीहरिने पुनः कहा—हे रुद्र! अब पापविनाशिनी संध्याकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। उसे आप सुनें। तीन बार प्राणायाम[1] करके संध्या[2]-स्नानका उपक्रम करे। प्राणवायुको संयतकर प्रणवमन्त्र (ॐकार) तथा सप्त व्याहृतिसे युक्त गायत्री-मन्त्रका **(आपो ज्योतीरसोऽमृतं भूर्भुवः स्वरोम्)** इस गायत्री सिरके साथ तीन बार उच्चारण करनेको प्राणायाम कहते हैं। द्विज प्राणायामोंके द्वारा मानसिक, वाचिक तथा कायिक दोषोंको भस्म कर लेता है। इसीलिये यथाविधि यथानियत सभी कालोंमें प्राणायामपरायण होना चाहिये।

प्रातः **'सूर्यश्च[3]०'** इस मन्त्रके द्वारा, मध्याह्नमें **'आपः पुनन्तु[4]०'** इस मन्त्रसे तथा सायंकाल **'अग्निश्च मा मन्युश्च[5]०'** इस मन्त्रके द्वारा यथाविधि आचमन करके प्रणव-मन्त्रसे युक्त **'आपो हि[6]०'** इस ऋचासे कुशोदकके द्वारा मार्जन करते हुए प्रत्येक पदपर जल सिरपर छिड़के।

रजोगुणसे उत्पन्न होनेवाले पाप, तमोगुण और अज्ञानजन्य पाप, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकी स्थितिमें होनेवाले पाप तथा कायिक, वाचिक एवं मानसिक—ये नवों पाप इन नौ मन्त्रोंसे (मार्जनद्वारा) भस्म हो जाते हैं—

रजस्तमःस्वमोहोत्थान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिजान्।
वाङ्मनःकर्मजान् दोषान् नवैतान् नवभिर्दहेत्॥
(३६। ६)

दाहिने हाथमें जल लेकर उसे 'द्रुपदा[7]०' मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रितकर सिरपर छोड़ दे। अघमर्षण[8] मन्त्रकी तीन, छः, आठ अथवा बारह आवृत्ति करके अघमर्षण करे।

तत्पश्चात् 'उदु त्यं[9]०' तथा 'चित्रं[10]'— इन मन्त्रोंसे सूर्योपस्थान करना चाहिये। इससे दिन तथा रात्रिमें किये गये समस्त पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं।

१-यहाँ संध्याका प्रकरण प्राणायामसे प्रारम्भ किया गया है, परंतु प्राणायामसे पूर्व संध्योपासनमें मालाधारण, पवित्रीकरण, शिखाबन्धन, भस्मधारण आदि करनेका विधान है। तत्पश्चात् आचमन, मार्जन, भूमिशोधनके अनन्तर संकल्प करके 'ऋतञ्च०' इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये। तदनन्तर गायत्री-मन्त्रसे दिग्रक्षण करनेके पश्चात् विनियोगपूर्वक प्राणायाम करनेकी विधि है। पूरी संध्योपासनविधि जाननेके लिये गीताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' ग्रन्थ देखना चाहिये।

२-संध्यासे संध्याकाल लेना है। यह काल प्रातः, सायं एवं मध्याह्नमें आता है।

३-सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २५)

४-ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथ्वी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहः स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २३)

५-ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहमापोऽमृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा। (तै०आ० प्र० १०, अ० २४)

६-आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ (यजु० ११। ५०—५२)

७-ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥ (यजु० २०। २०)

८-ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ (ऋग्वेद १०। १९०। १)

९-ॐ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यं स्वाहा॥ (यजु० ७। ४१)

१०-ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥
(यजु० ७। ४२)

प्रातःकालकी संध्या खड़ा होकर तथा मध्याह्न एवं सायंकालकी संध्या बैठकर करनी चाहिये। प्रणव (ॐकार) और महाव्याहृतियों अर्थात् 'भूः, भुवः, स्वः' से संयुक्त करके गायत्री-मन्त्रका दस बार जप करनेसे इस जन्मके पाप, सौ बार जप करनेपर पूर्वजन्मके पाप तथा हजार बार गायत्रीका जप करनेसे तीन युगोंके पाप नष्ट हो जाते हैं—

दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुरा कृतम्।
त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम्॥

(३६। १०)

प्रातःकालमें गायत्री रक्तवर्णा, मध्याह्नकालमें सावित्री शुक्लवर्णा और सायंकालमें सरस्वती कृष्णवर्णा कही गयी हैं।[1] गायत्री-मन्त्रकी प्रथम व्याहृति 'भूः'का 'ॐ भूः हृदयाय नमः'से हृदयमें, द्वितीय व्याहृति 'भुवः'का 'ॐ भुवः शिरसे स्वाहा'से सिरमें तथा तृतीय व्याहृति 'स्वः'का 'ॐ स्वः शिखायै वषट्'से शिखामें न्यास करे। गायत्री-मन्त्रके प्रथम पाद (तत्सवितुर्वरेण्यं)-का कवचमें, द्वितीय पाद (भर्गो देवस्य धीमहि)-का नेत्रोंमें तथा तृतीय पाद (धियो यो नः प्रचोदयात्)-का अस्त्रमें और चतुर्थ पाद (परोरजसेऽसावदोम्)-का सर्वाङ्गमें न्यास करे। संध्याओंके समय इस कथित विधिसे न्यास करके वेदमाता गायत्रीका जप करनेवालेका सब प्रकारसे कल्याण होता है। प्राणायामके अनन्तर सभी अङ्गोंमें न्यास करे।

त्रिपदा गायत्री ब्रह्मा-विष्णु और शिवस्वरूपा है। इसके ऋषि, छन्द और विनियोगको भलीभाँति जानकर जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे साधक सभी पापोंसे विमुक्त होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

'परोरजसेऽसावदोम्' यह गायत्रीका तुरीय पाद कहा जाता है। जो व्यक्ति संध्योपासन नहीं करता है, उसको सूर्यदेव विनष्ट कर देते हैं। तुरीय पादके ऋषि निर्मल तथा छन्द गायत्री एवं देवता परमात्मा हैं।

जो मनुष्य योग और मोक्षको प्रदान करनेवाली परमश्रेष्ठा देवी गायत्रीका जप करता है, उसके महान्-से-महान् पाप नष्ट हो जाते हैं।

प्रातः, मध्याह्न एवं सायं—इन तीनों संध्याओंमें १००८ या १०८ बार गायत्री-मन्त्रका जप करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मलोक जानेका अधिकारी हो जाता है।

(अध्याय ३५—३७)

देवी दुर्गाका स्वरूप, सूर्य-ध्यान तथा माहेश्वरीपूजन-विधि

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! नवमी आदि तिथियोंमें 'ॐ ह्रीं दुर्गे रक्षिणि'—इस मन्त्रसे देवी दुर्गाका पूजन करना चाहिये। मार्गशीर्ष (अगहन)-मासकी तृतीया तिथिसे आरम्भ करके नामक्रमके अनुसार गौरी, काली, उमा, दुर्गा, भद्रा, कान्ति, सरस्वती, मङ्गला, विजया, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी-रूपमें उन देवीका पूजन करनेवाले अधिकृत मनुष्यका इष्ट (प्रियजनों या प्रिय वस्तुओं)-से वियोग नहीं होता।

दुर्गादेवीके अट्ठारह हाथ हैं। उन हाथोंमें खेटक[2], घण्टा, दर्पण, तर्जनी-मुद्रा, धनुष, ध्वज, डमरू, परशु, पाश, शक्ति, मुद्गर, शूल, कपाल, शरक (बाण), अंकुश, वज्र, चक्र और शलाका—ये सभी सुशोभित रहते हैं। इनसे सुसज्जित उन अष्टादशभुजा देवीका स्मरण करना चाहिये।

अट्ठाईस भुजावाली या अट्ठारह भुजावाली अथवा बारह भुजावाली या आठ भुजा अथवा चार भुजावाली दुर्गादेवीका भी ध्यान करना चाहिये। महिषासुरका वध करनेवाली ये देवी सिंहपर विराजमान रहती हैं।

वासुदेवने कहा—हे रुद्र! सूर्यार्चनमें भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

वे भगवान् सूर्य तेजःस्वरूप, रक्त वर्णवाले, श्वेत पद्मपर विराजमान, एक चक्रवाले रथपर समासीन, दो भुजाओंसे युक्त तथा कमल धारण करनेवाले हैं। इस रूपमें उनका सदैव ध्यान करना चाहिये।

श्रीहरिने पुनः कहा—हे वृषध्वज! [अब] मैं माहेश्वरी-पूजाका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनो—पहले स्नान तथा आचमन कर ले। इसके बाद आसनपर बैठकर न्यास करके मण्डलमें महेश्वरकी पूजा करे। हे महेशान! हरकी

१-गायत्री, सावित्री एवं सरस्वती—ये गायत्रीके ही तीन स्वरूप हैं।

२-खेटक—'खेटति भयमुत्पादयति अनेन इति खेटकः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार भय उत्पन्न करनेवाली यष्टि (दण्ड विशेष)-को खेटक या खेट कहते हैं। यह देवीके हाथमें रहता है—

यष्टिरूपेण खेट त्वमरिसंहारकारकः। देवीहस्तस्थितो नित्यं मम रक्षां कुरुष्व च॥ (शारदीय दुर्गापूजापद्धति, अस्त्र-पूजा-प्रकरण)

पूजा परिवारके साथ करे। हे रुद्र! '**ॐ हां शिवासनदेवता आगच्छत**'—इस मन्त्रसे आसनके देवताओंका आवाहन करे। मण्डलके मुख्य द्वारपर स्नान, गन्ध आदिद्वारा '**ॐ हां गणपतये नमः**' मन्त्रसे गणपतिकी, '**ॐ हां सरस्वत्यै नमः**' मन्त्रसे सरस्वतीकी, '**ॐ हां नन्दिने नमः**' मन्त्रसे नन्दीकी, '**ॐ हां महाकालाय नमः**' मन्त्रसे महाकालकी, '**ॐ हां गङ्गायै नमः**' मन्त्रसे गङ्गाकी, '**ॐ हां लक्ष्म्यै नमः**' मन्त्रसे लक्ष्मीकी, '**ॐ हां महाकलायै नमः**' मन्त्रसे महाकलाकी तथा '**ॐ हां अस्त्राय नमः**' मन्त्रसे अस्त्रकी पूजा करे।

इसी प्रकार '**ॐ हां ब्रह्मणे वास्त्वधिपतये नमः**' से वास्त्वधिपतिकी, '**ॐ हां गुरुभ्यो नमः**' से गुरुकी, '**ॐ हां आधारशक्त्यै नमः**' से आधारशक्तिकी, '**ॐ हां अनन्ताय नमः**' से अनन्तकी, '**ॐ हां धर्माय नमः**' से धर्मकी, '**ॐ हां ज्ञानाय नमः**' से ज्ञानकी, '**ॐ हां वैराग्याय नमः**' से वैराग्यकी, '**ॐ हां ऐश्वर्याय नमः**' से ऐश्वर्यकी, '**ॐ हां अधर्माय नमः**' से अधर्मकी, '**ॐ हां अज्ञानाय नमः**' से अज्ञानकी, '**ॐ हां अवैराग्याय नमः**' से अवैराग्यकी, '**ॐ हां अनैश्वर्याय नमः**' से अनैश्वर्यकी, '**ॐ हां ऊर्ध्वच्छन्दाय नमः**' से ऊर्ध्वच्छन्दकी, '**ॐ हां अधश्छन्दाय नमः**' से अधश्छन्दकी, '**ॐ हां पद्माय नमः**' से पद्मकी, '**ॐ हां कर्णिकायै नमः**' से कर्णिकाकी, '**ॐ हां वामायै नमः**' से वामाकी, '**ॐ हां ज्येष्ठायै नमः**' से ज्येष्ठाकी, '**ॐ हां रौद्र्यै नमः**' से रौद्रीकी, '**ॐ हां काल्यै नमः**' से कालीकी, '**ॐ हां कलविकरण्यै नमः**' से कलविकरणीकी, '**ॐ हां बलप्रमथिन्यै नमः**' से बलप्रमथिनीकी, '**ॐ हां सर्वभूतदमन्यै नमः**' से सर्वभूतदमनीकी, '**ॐ हां मनोन्मन्यै नमः**' से मनोन्मनीकी, '**ॐ हां मण्डलत्रितयाय नमः**' से मण्डलत्रितयकी, '**ॐ हां हौं हं शिवमूर्तये नमः**' से शिवमूर्तिकी, '**ॐ हां विद्याधिपतये नमः**' से विद्याधिपतिकी और '**ॐ हां हौं हौं शिवाय नमः**' से शिवकी पूजा करे।

अनन्तर '**ॐ हां हृदयाय नमः**' से हृदयकी, '**ॐ हीं शिरसे नमः**' से सिरकी, '**ॐ हूं शिखायै नमः**' से शिखाकी, '**ॐ हैं कवचाय नमः**' से कवचकी, '**ॐ हौं नेत्रत्रयाय नमः**' से नेत्रत्रयकी, '**ॐ हः अस्त्राय नमः**' से अस्त्रकी और '**ॐ हां सद्योजाताय नमः**' से सद्योजातकी पूजा करे।

सद्योजातकी आठ कलाएँ जाननी चाहिए, जो पूर्व आदि दिशाओंमें स्थित हैं। उनकी पूजा [गन्ध आदिसे] इस प्रकार करनी चाहिये— '**ॐ हां सिद्ध्यै नमः**' से सिद्धिकी, '**ॐ हां ऋद्ध्यै नमः**' से ऋद्धिकी, '**ॐ हां विद्युतायै नमः**' -से विद्युताकी, '**ॐ हां लक्ष्म्यै नमः**' से लक्ष्मीकी, '**ॐ हां बोधायै नमः**' से बोधाकी, '**ॐ हां काल्यै नमः**' से कालीकी, '**ॐ हां स्वधायै नमः**' से स्वधाकी और '**ॐ हां प्रभायै नमः**' से प्रभाकी अर्चना करनी चाहिये।

हे वृषध्वज! वामदेवकी तेरह कलाएँ जाननी चाहिये, उनकी भी पूजा गन्ध-पुष्प आदिसे करनी चाहिये। उनकी पूजामें पहले '**ॐ हां वामदेवाय नमः**' कहकर वामदेवकी पूजा करनेके बाद उनकी कलाओंका पूजन करना चाहिये। जैसे— '**ॐ हां रजसे नमः**' से रजस्‌की, '**ॐ हां रक्षायै नमः**' से रक्षाकी, '**ॐ हां रत्यै नमः**' से रतिकी, '**ॐ हां कन्यायै नमः**' से कन्याकी, '**ॐ हां कामायै नमः**' से कामाकी, '**ॐ हां जनन्यै नमः**' से जननीकी, '**ॐ हां क्रियायै नमः**' से क्रियाकी, '**ॐ हां वृद्ध्यै नमः**' से वृद्धिकी, '**ॐ हां कार्यायै नमः**' से कार्याकी, '**ॐ हां रा (धा)-त्र्यै नमः**' से रा (धा)-त्रि (त्री)-की, '**ॐ हां भ्रामण्यै नमः**' से भ्रामणीकी, '**ॐ हां मोहिन्यै नमः**' से मोहिनीकी और '**ॐ हां क्ष (त्व) रायै नमः**' से क्ष (त्व)-राकी अर्चना करनी चाहिये।

हे वृषध्वज! तत्पुरुषकी चार कलाएँ हैं। पहले '**ॐ हां तत्पुरुषाय नमः**' इस मन्त्रद्वारा तत्पुरुषकी पूजा करे। तदनन्तर '**ॐ हां निवृत्त्यै नमः**' से निवृत्तिकी, '**ॐ हां प्रतिष्ठायै नमः**' से प्रतिष्ठाकी, '**ॐ हां विद्यायै नमः**' से विद्याकी और '**ॐ हां शान्त्यै नमः**' से शान्तिकी पूजा करनी चाहिये।

अघोरकी भैरव-सम्बन्धी छः कलाएँ जाननी चाहिये। इनकी पूजामें पहले '**ॐ हां अघोराय नमः**' मन्त्रद्वारा अघोरकी पूजा करनेके पश्चात् '**ॐ हां उमायै नमः**' से उमाकी, '**ॐ हां क्षमायै नमः**' से क्षमाकी, '**ॐ हां निद्रायै नमः**' से निद्राकी, '**ॐ हां व्याध्यै नमः**' से व्याधिकी, '**ॐ हां क्षुधायै नमः**' से क्षुधाकी तथा '**ॐ हां तृष्णायै नमः**'-से तृष्णाकी पूजा करनी चाहिये।

हे वृषभध्वज! ईशानदेवकी पाँच कलाएँ हैं, इनकी

पूजामें '**ॐ हां ईशानाय नमः**' इस मन्त्रसे ईशानकी पूजा करनेके पश्चात् '**ॐ हां समित्यै नमः**' से समितिकी, '**ॐ हां अङ्गदायै नमः**' से अङ्गदाकी, '**ॐ हां कृष्णायै नमः**' से कृष्णाकी, '**ॐ हां मरीच्यै नमः**' से मरीचिकी और '**ॐ हां ज्वालायै नमः**' से ज्वालाकी पूजा करे।

तदनन्तर हे शङ्कर! '**ॐ हां शिवपरिवारेभ्यो नमः**' से शिवपरिवारका, '**ॐ हां इन्द्राय सुराधिपतये नमः**' से सुराधिपति इन्द्रका, '**ॐ हां अग्नये तेजोऽधिपतये नमः**' से तेजोऽधिपति अग्निका, '**ॐ हां यमाय प्रेताधिपतये नमः**' से प्रेताधिपति यमका, '**ॐ हां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये नमः**' से रक्षोऽधिपति निर्ऋतिका, '**ॐ हां वरुणाय जलाधिपतये नमः**' से जलाधिपति वरुणका, '**ॐ हां वायवे प्राणाधिपतये नमः**' से प्राणाधिपति वायुका, '**ॐ हां सोमाय नेत्राधिपतये नमः**' से नेत्राधिपति सोमका, '**ॐ हां ईशानाय सर्वविद्याधिपतये नमः**' से सर्वविद्याधिपति ईशानका, '**ॐ हां अनन्ताय नागाधिपतये नमः**' से नागाधिपति अनन्तका, '**ॐ हां ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये नमः**' से सर्वलोकाधिपति ब्रह्माका और '**ॐ हां धूलिचण्डेश्वराय नमः**' से धूलिचण्डेश्वरका आवाहन, स्थापन, संनिधान, संनिरोध तथा सकलीकरण करना चाहिये।

तदनन्तर तत्त्व-न्यास करके मुद्रा दिखानी चाहिये तथा ध्यान करना चाहिये। इसके बाद पाद्य, आचमन, अर्घ्य, पुष्प, अभ्यङ्ग, उद्वर्तन और स्नान तथा सुगन्धानुलेपन, वस्त्र, अलंकार, भोग, अङ्गन्यास, धूप, दीप, नैवेद्य-अर्पण, करोद्वर्तन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, गन्ध एवं ताम्बूल निवेदन करनेके बाद गीत, वाद्य, नृत्यसे महेश्वरको संतुष्टकर छत्र आदि समर्पित करना चाहिये। मुद्राका प्रदर्शन करके आवाहित देवके रूपका ध्यान, जप तथा तादात्म्य-भावसे मूलमन्त्रद्वारा जप और पूजाको समर्पित करे।

इस प्रकार विविध कामनाओंकी सिद्धिके लिये विश्वावसु गन्धर्व तथा देवी कालरात्रि आदिकी उपासना करनी चाहिये। (अध्याय ३८—४१)

शिवके पवित्रारोपणकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे महादेव! अमङ्गलका नाश करनेवाले भगवान् शिवके पवित्रारोपणके पूजा-विधानको कह रहा हूँ। यह पूजा आषाढ़, श्रावण, माघ या भाद्रपद मासमें होती है। पवित्रारोपणकी इस पूजामें पवित्रक (जनेऊ) बनानेके लिये सत्ययुग आदिके भेदसे सूत्र-धारणका नियम है। जैसे—सत्ययुगमें सुवर्णके, त्रेतामें रजतके, द्वापरमें ताम्रके और कलियुगमें कन्याके हाथसे बनाये गये कपासके सूत्र (सूत)-को ग्रहण करना चाहिये। सूत्रको लेकर पहले उसे तिगुना करके पुनः उसका तिगुना करना चाहिये। इस प्रकार नवगुणित सूत्रसे पवित्रकका निर्माण करके वामदेवमन्त्रसे उसमें ग्रन्थि देनी चाहिये। तदनन्तर हे शिव! सद्योजातमन्त्रसे उसका प्रक्षालन करके अघोरमन्त्रसे उसका शोधन करना चाहिये। तत्पुरुषमन्त्रसे उसमें बन्धन तथा ईशानमन्त्रसे तन्तुदेवताओंको सुगन्धित धूप दिखाना चाहिये।

तन्तुओंमें क्रमशः—ॐकार, चन्द्र, अग्नि, ब्रह्मा, नाग, शिखिध्वज, सूर्य, विष्णु और शिवका वास है—ये नौ तन्तुके देवता हैं। हे रुद्र! उस पवित्रकमें एक सौ आठ या पचास अथवा पच्चीस तन्तु होने चाहिये। ये क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ हैं। पवित्रकमें दस ग्रन्थिका मान है। अतएव प्रत्येक चार अंगुल या दो अंगुल अथवा एक अंगुलका अन्तर देकर एक-एक ग्रन्थिका बन्धन देना चाहिये। हे सदाशिव! उन ग्रन्थियोंके नाम इस प्रकार हैं—प्रकृति, पौरुषी, वीरा, अपराजिता, जया, विजया, रुद्रा, अजिता, मनोन्मनी तथा सर्वमुखी।

हे शिव! ग्रन्थिबन्धनके पश्चात् उस पवित्रकको कुंकुम, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंसे रञ्जित करना चाहिये। उस गन्धानुरञ्जित पवित्रकको देवको समर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर यथाविधि सभी क्रियाओंको करके 'हे देवेश! हे महेश्वर! आप अपने गणोंके साथ यहाँपर आमन्त्रित हैं। प्रातःकाल यहाँपर आपका पूजन करूँगा अतः आप यहाँपर उपस्थित रहें।'—इस प्रकार देवताको निमन्त्रित करे और गीत-वाद्यादिके द्वारा रात्रि-जागरण करे।

प्रातः उन आमन्त्रित पवित्रकोंको भगवान् महेश्वरके पास स्थापित करके चतुर्दशी तिथिमें स्नान करे और सबसे पहले सूर्य तथा रुद्रकी पूजा करे, तदनन्तर ललाटस्थ विश्वरूपका ध्यानकर अपने आत्मस्वरूपकी पूजा करे।

तत्पश्चात् अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षित और हृदयमन्त्रके द्वारा अर्पित तथा संहितामन्त्रोंसे धूपित पवित्रकोंको भगवान्‌को समर्पित करना चाहिये। सबसे पहले शिवतत्त्व और विद्यातत्त्वकी पूजा करके आत्मतत्त्व और देवतत्त्वका पूजन इन निर्धारित मन्त्रोंसे करे—

'ॐ हाँ हीं शिवतत्त्वाय नमः, ॐ हीं (ह्रीः) विद्यातत्त्वाय नमः, ॐ हां (ह्रौः) आत्मतत्त्वाय नमः, ॐ हां हीं हूं क्षौं सर्वतत्त्वाय नमः।'

भगवान् महेश्वरको पवित्रक विधिपूर्वक निवेदितकर स्वयं भी धारण करना चाहिये। (अध्याय ४२)

विष्णुके पवित्रारोपणकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! अब मैं आपसे विष्णुके पवित्रारोपणका वर्णन करूँगा, जो भोग तथा मोक्ष दोनोंको देनेवाला है। प्राचीन समयमें हो रहे देवासुर-संग्राममें [अपनी विजय न होते देखकर] ब्रह्मादि देवगण विष्णुकी शरणमें गये। उन सबकी प्रार्थना सुन करके विष्णुने विजय-प्राप्तिके लिये उन्हें अपने गलेका हार, पवित्र नामक ग्रैवेयक तथा एक ध्वज प्रदान किया और कहा कि इन्हें देखते ही दानव नष्ट हो जायँगे। तभीसे उन पवित्रकोंकी पूजा आरम्भ हुई।

हे हर! प्रतिपदासे लेकर पौर्णमासीतक जिस देवताकी जो तिथि कही गयी है, उसके अनुसार ही उस तिथिमें उन देवताओंका पवित्रारोपण करना चाहिये। हे शिव! शुक्ल-पक्ष हो अथवा कृष्णपक्ष, द्वादशी तिथिमें विष्णुके लिये पवित्रारोपणका विधान है। व्यतीपातयोग, उत्तरायण, दक्षिणायन, चन्द्र तथा सूर्यग्रहण, विवाहादि मङ्गल एवं वृद्धि-कार्यों तथा गुरुजनके आगमन इत्यादि अवसरोंपर यह पूजा करनी चाहिये। पवित्रकके उद्देश्यसे भी नित्य पूजन हो सकता है; किंतु वर्षाकालमें इसका पूजन आवश्यक है।

हे रुद्र! इन पवित्रकोंका निर्माण वर्णानुसार होना चाहिये, जैसे—ब्राह्मणोंका पवित्रक कौशेय[1], कपास, क्षौम[2] अथवा कुशसूत्रसे निर्मित होना चाहिये। क्षत्रियोंका पवित्रक कौशेयसूत्रसे, वैश्योंका क्षौमसूत्र तथा वल्कलसूत्रसे[3] और शूद्रोंका सनसे बना हुआ पवित्रक प्रशस्त माना गया है। कपास या पद्मज (कमल)-से निर्मित पवित्रक समस्त वर्णोंके लिये प्रशस्त है।

ॐकार, शिव, चन्द्रमा, अग्नि, ब्रह्मा, शेष, सूर्य, गणेश और विष्णु—इन नौ देवताओंका इस पवित्रकके तन्तुओंमें निवास है।

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र—ये पवित्रकके तीन सूत्रोंके देवता हैं। जो उनमें अधिष्ठित रहते हैं। इन सूत्रोंको सुवर्ण, रजत, ताम्र, बाँस या मिट्टीके बने हुए पात्रमें रखना चाहिये। एक सौ आठ तन्तुओंका सूत्र उत्तम, चौवन तन्तुओंका सूत्र मध्यम तथा सत्ताईस तन्तुओंका पवित्रक कनिष्ठ होता है।

इन पवित्रकोंके प्रत्येक ग्रन्थि-पर्वोको कुंकुम, हल्दी या चन्दनसे चर्चितकर उपवास रखते हुए उन्हें शास्त्रसम्मत पात्रमें रखकर अधिवासित करे।

पवित्रकको पृथक्-पृथक् अभिमन्त्रित करके उसका सम्यक् दर्शन तथा पुनः पूजन करना चाहिये और यत्नपूर्वक उसका वस्त्राच्छादन करके उसे मण्डलस्थ देवप्रतिमाके समक्ष यत्नपूर्वक स्थापित कर देना चाहिये।

ब्रह्मादि अन्य देवोंकी स्थापना करके कलशकी पूजा करे। मण्डलका निर्माण करके नैवेद्य समर्पित करे। पवित्रकको पुनः अधिवासित[4] करके तीन या नौ बार सूत्र घुमाकर वेदीको वेष्टित करे। तदनन्तर अपनेको तथा

१-कौशेय—विशेष कीड़ेके कोशसे बननेवाला वस्त्र (रेशमी वस्त्र)।

२-क्षौम—तीसी, केलेकी छाल या अन्य लताविशेषसे बने वस्त्र।

३-वल्कल—भोजपत्र नामके वृक्षविशेष अथवा अन्य मुलायम छालवाले वृक्षकी छालसे बना वस्त्र (वल्कल वस्त्र)।

४-अधिवासन—संस्कार-विशेष।

कलश, घी, अग्निकुण्ड, विमान, मण्डप और गृहको सूत्रसे वेष्टित करके एक सूत्र देवताके मस्तकपर अर्पित करे।

इस प्रकार सम्पूर्ण सामग्री निवेदितकर महेश्वर विष्णुकी पूजा करके इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

आवाहितोऽसि देवेश पूजार्थं परमेश्वर॥
तत्प्रभातेऽर्चयिष्यामि सामग्र्याः संनिधौ भव।

(४३। २८-२९)

हे परमेश्वर! देवदेवेश्वर! आप यहाँपर पूजाके लिये आवाहित हैं। इस समस्त सामग्रीसे प्रभातकालमें मैं आपका पूजन करूँगा। आपकी संनिधि यहाँ बनी रहे।

एक रात्रि या तीन रात्रितक पवित्रकको अधिवासित-कर स्वयं रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल भगवान् केशवका पूजन करे और निर्मित पवित्रकोंको उन देवको अर्पित करे। पवित्रकको धूपसे धूपित करके मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित भी करना चाहिये।

गायत्री-मन्त्रसे पूजित इस पवित्रकके द्वारा देव-पूजन करके उसे मन्त्र पढ़कर देवताके समक्ष स्थापित कर दे—

विशुद्धग्रन्थिकं रम्यं महापातकनाशनम्।
सर्वपापक्षयं देव तवाग्रे धारयाम्यहम्॥

(४३। ३३)

हे देव! यह पवित्रक विशुद्ध रूपसे ग्रथित, सुन्दर तथा महापातकोंको नष्ट करनेवाला और सम्पूर्ण पापोंका क्षय करनेवाला है। इसे मैं आपके समक्ष स्थापित करता हूँ। तदनन्तर इस मन्त्रका पाठकर स्वयं भी धारण करना चाहिये—

पवित्रं वैष्णवं तेजः सर्वपातकनाशनम्॥
धर्मकामार्थसिद्ध्यर्थं स्वकण्ठे धारयाम्यहम्।

(४३। ३४-३५)

[हे देव!] यह विष्णु-तेजःस्वरूप, सर्वपाप-विनाशक पवित्रक है। मैं धर्म, काम तथा अर्थ—इस त्रिवर्गकी सिद्धिके लिये इसे अपने कण्ठमें धारण करता हूँ। अनन्तर इस प्रकार प्रार्थना करे—

वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि।
तद्वत् पवित्रं तन्तूनां मालां त्वं हृदये धर॥

(४३। ४१)

हे देव! आपके हृदयपर जिस प्रकार वनमाला और कौस्तुभ विराजते हैं, उसी प्रकार तन्तुओंको बनी हुई यह माला और पवित्रक आप अपने हृदयपर धारण करें।

इस प्रकार प्रार्थना करके ब्राह्मणोंको भोजन कराकर और उन्हें दक्षिणा देकर उसी दिन सायंकाल या दूसरे दिन पुनः उसी प्रकार पूजा सम्पन्न करके निम्न मन्त्र पढ़ते हुए विसर्जन करे—

सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मया।
व्रज पवित्रकेदानीं विष्णुलोकं विसर्जितः॥

(४३। ४३)

हे पवित्रक! मैंने इस सांवत्सरी पूजाको विधिवत् सम्पादित किया है। इस समय मेरे द्वारा विसर्जित आप विष्णुलोकको पधारें। (अध्याय ४३)

ब्रह्ममूर्तिके ध्यानका निरूपण

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! भगवान्‌की पवित्रक आदिसे पूजाकर ब्रह्मका ध्यान करके साधक हरि बन जाता है (मेरा स्वरूप हो जाता है)। अब मैं मायाजालको नष्ट करनेवाले ब्रह्मके ध्यानका वर्णन करता हूँ। आप सुनें—

ब्रह्मके ध्यानके लिये प्रवृत्त प्राज्ञ (विशेष साधक) अपनी वाणी एवं मनको नियन्त्रितकर अपनी आत्मामें ही ज्ञानस्वरूप ब्रह्मका यजन करे और जिस प्राज्ञको यह उत्कट इच्छा हो कि मैं अपनी आत्मामें ब्रह्मका दर्शन (जीव-ब्रह्मका अभेददर्शन) करूँ, उसे महद्‌ब्रह्म (प्रत्यक्-चैतन्याभिन्न परब्रह्म)-में ज्ञानकी भावना (ब्रह्म एवं निर्विषय-नित्य-ज्ञानमें अभेदभाव) करनी चाहिये।

ब्रह्मका ध्यान ही समाधि है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस रूपमें सदा स्वयंकी अवस्थिति ही ब्रह्मका ध्यान है। स्वयंसे अभिन्न ब्रह्म देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण, अहङ्कार, पञ्चमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश), पञ्चतन्मात्र (गन्धतन्मात्र, रसतन्मात्र, रूपतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र,

एवं शब्दतन्मात्र) विविध गुण, जन्म और भोजन, शयन आदि भोगसे सर्वथा रहित, स्वप्रकाश, निराकार, सदा निरतिशय, नित्य आनन्दस्वरूप, अनादि, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, सर्वतः परिपूर्ण, सत्यस्वरूप, परमसुखस्वरूप, परमपद एवं तुरीय (कूटस्थ निरञ्जन परब्रह्म)-के रूपमें वेदोंमें वर्णित है।

हे वृषभध्वज! अपनी आत्माको रथी और शरीरको रथ समझना चाहिये। बुद्धि उसमें सारथि तथा मन लगाम है। इन्द्रियोंको उस रथमें जुते हुए अश्वके रूपमें स्वीकार किया गया है। ये इन्द्रियाँ ही रूप, रस, गन्ध आदि विषयका अनुभव करती हैं।

इन्द्रिय और मनसे युक्त आत्माको ही मनीषियोंने भोक्ता कहा है। जो मनुष्य विज्ञानरूपी सारथिसे युक्त है, मनरूपी लगामको अपने वशमें रखता है, वही उस परमपदको प्राप्त करता है, फिर वह उत्पन्न नहीं होता। जो विज्ञानरूपी सारथिसे नियन्त्रित मनरूपी लगामवाला मनुष्य है, वह स्वर्धुनी[1] (अज्ञान)-से पार हो जाता है और वही विष्णुका परमपद है[2]।

इस योगकी परम साधनामें अहिंसादि धर्मोंको यम तथा शौचादिक कर्मोंको नियम कहा गया है। पद्मादि आसन हैं। प्राण, अपानादिक वायुपर विजय प्राप्त करना प्राणायाम है। इन्द्रियोंपर विजय प्रत्याहार और ईश्वरका चिन्तन करना ध्यानावस्था है। मनको नियन्त्रित करना ही धारणा है और ब्रह्ममें मनको केन्द्रित करनेकी जो स्थिति होती है, वह समाधि है। यदि पहले इस योगके द्वारा चञ्चल चित्त स्थिर नहीं होता तो उस मूर्ति (परमेश्वर)-का इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये—

जो हृदयकमलकी कर्णिकाके मध्य विराजमान रहनेवाले हैं तथा शङ्ख, चक्र, गदा और कमलसे सुशोभित हैं, जो श्रीवत्स तथा कौस्तुभमणि, वनमाला एवं लक्ष्मीसे विभूषित हैं, जो नित्य-शुद्ध, ऐश्वर्यसम्पन्न, सत्य, परमानन्दस्वरूप, आत्मस्वरूप, परमब्रह्म तथा परम ज्योतिःस्वरूप हैं—ऐसे वे चौबीस स्वरूप (अवतार)-वाले, शालग्रामकी शिलामें विराजमान, द्वारकादि[3] शिलाओंपर अवस्थित रहनेवाले परमेश्वर ध्यानके योग्य हैं और पूजनीय हैं। मैं भी वही हूँ—ऐसा समझना चाहिये।

इस प्रकार आत्मस्वरूप नारायणका यम-नियम इत्यादिक योगके साधनोंसे एकाग्रचित्त होकर जो ध्यान करता है, वह मनोऽभिलषित इच्छाओंको प्राप्तकर वैमानिक[4] देव हो जाता है। यदि निष्काम होकर उन हरिकी मूर्तिका ध्यान और स्तवन करे तो मुक्ति प्राप्त हो जाती है। (अध्याय ४४)

१-शब्दकल्पद्रुमके—'धूनयति कम्पयति शत्रून्'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'धुनी' शब्द कम्पित कर देनेवालेके लिये प्रयुक्त होता है। इसलिये यहाँ प्रसंगानुसार 'स्वः' शब्दका मोक्ष अर्थ मानकर मोक्षको कम्पित (प्रतिबन्धित) करनेवाले अज्ञानको 'स्वर्धुनी' कह सकते हैं। इस तरह अज्ञानको पार कर लेना ही 'स्वर्धुनी' को पार करना समझना चाहिये।

२-आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं च सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचराः॥
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः। यस्तु विज्ञानवानात्मा युक्तेन मनसा सदा॥
स तु तत्पदमाप्नोति स हि भूयो न जायते। विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः॥
स्वर्धुन्याः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्। (४४। ६—९)

३-शब्दकल्पद्रुमके अनुसार द्वारकामें होनेवाली तक्षशिला भी भगवान् विष्णुकी मूर्ति मानी जाती है। इसीलिये जैसे गण्डकी नदीमें होनेवाली चक्रयुक्त शिला (शालग्रामशिला)-में विष्णुका सदा संनिधान है, वैसे ही द्वारकाकी शिलामें भी विष्णुका संनिधान है।

४-वैमानिक देव—शब्दकल्पद्रुमके—'विगतं मानम् उपमा यस्य'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार निरुपमेयको विमान कहा जा सकता है। 'विमान एव वैमानिकः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार वैमानिक शब्द भी निरुपमेय (उपमारहित)-का बोधक हो सकता है। इसलिये प्रकृतमें 'वैमानिक देव' का अर्थ निरुपमेय—उपमारहित—सर्वोत्कृष्ट देव महाविष्णु किया जा सकता है।

विविध शालग्रामशिलाओंके लक्षण

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! अब मैं प्रसंगवश शालग्रामका लक्षण कहता हूँ। शालग्रामशिलाओंके स्पर्शमात्रसे करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। केशव, नारायण, गोविन्द तथा मधुसूदन आदि नामोंवाली विभिन्न शालग्रामशिलाएँ होती हैं, जो शंख, चक्र आदि चिह्नोंसे सुशोभित रहती हैं। इन शिलाओंके लक्षण इस प्रकार हैं—

शंख, चक्र, गदा तथा पद्मके चिह्नसे सुशोभित शिला '**केशव**', पद्म, कौमोदकी[1] गदा, चक्र तथा शंखके चिह्नसे सुशोभित शिला '**नारायण**', चक्र शंख, पद्म तथा गदाके चिह्नसे विभूषित शिला '**माधव**' और गदा, पद्म, शंख तथा चक्रके चिह्नसे शोभायमान शिला '**गोविन्द**' नामसे जानी जाती है।

पद्म, शंख, चक्र, गदासे युक्त '**विष्णु**' नामकी, शंख, पद्म, गदा तथा चक्रसे युक्त '**मधुसूदन**' नामकी, गदा, चक्र, शंख, पद्मसे संयुक्त '**त्रिविक्रम**' नामकी, चक्र, गदा, पद्म, शंखसे चिह्नित '**वामन**' नामकी, चक्र, पद्म, शंख एवं गदासे समन्वित '**श्रीधर**' नामकी और पद्म, गदा, शंख, चक्रसे अंकित '**हृषीकेश**' नामकी शालग्राम-मूर्ति कही गयी हैं। इन देवमूर्तियोंको बार-बार नमन है।

पद्म, चक्र, गदा, शंख-चिह्नपूरित शालग्रामशिला '**पद्मनाभ**', शंख, चक्र, गदा, पद्मयुक्त शालग्रामशिला '**दामोदर**', चक्र, शंख, गदा तथा पद्मसे संयुक्त शालग्रामशिला '**वासुदेव**', शंख, पद्म, चक्र, गदा-चिह्नसे समन्वित शालग्रामशिला '**संकर्षण**', शंख, गदा, पद्म, चक्रसे सुशोभित शालग्रामशिला '**प्रद्युम्न**' तथा गदा, शंख, पद्म और चक्रसे शोभित शालग्रामशिला '**अनिरुद्ध**' नामसे अभिहित है। इन्हें बारम्बार प्रणाम है।

पद्म, शंख, गदा, चक्रके चिह्नसे विभूषित '**पुरुषोत्तम**' नामकी, गदा, शंख, चक्र, पद्म-चिह्नसे विभूषित '**अधोक्षज**' नामकी, पद्म, गदा, शंख, चक्रसे विभूषित '**नृसिंह**' नामकी, पद्म, चक्र, शंख, गदासे अंकित '**अच्युत**' नामकी और शंख, चक्र, पद्म, गदासे सयुक्त '**जनार्दन**'की शालग्राम-मूर्ति है—इन देवनामोंसे अभिहित मूर्तियोंको नमस्कार है।

गदा, चक्र, पद्म, शंखसे अंकित शालग्राम '**उपेन्द्र**', चक्र, पद्म, गदा, शंखसे युक्त शालग्राम '**हरि**', गदा, पद्म, चक्र, शंख-चिह्नसे शोभित शालग्राम '**श्रीकृष्ण**' नामसे प्रसिद्ध हैं और शालग्रामशिलाके द्वारदेशपर चिह्नित दो चक्र धारण करनेवाले, शुक्लवर्णवाले भगवान् वासुदेव हैं। इन सभी रूपों एवं नामोंको धारण करनेवाले हे गदाधर भगवान् विष्णु! हम सबकी आप रक्षा करें।

दो चक्रोंसे युक्त, रक्त आभावाली और पूर्वभागमें पद्म-चिह्नसे अंकित शालग्रामशिला '**संकर्षण**'की मूर्ति होती है, किंतु छोटे-छोटे चक्रोंवाली तथा पीतवर्णकी होनेपर वह शिला '**प्रद्युम्न**' कही जाती है। यदि शालग्रामशिला बड़ी तथा छिद्रसे संयुक्त शिरोभागवाली और वर्तुलाकार हो तो उसे '**अनिरुद्ध**' नामक शालग्राम-मूर्ति कहते हैं। जो द्वारमुखपर नीलवर्णकी तीन रेखाओंसे युक्त होती है और जिसका शेष सम्पूर्ण भाग कृष्णवर्णसे सुशोभित रहता है, वह शालग्रामशिला '**नारायण**' शिलाके नामसे जानी जाती है।

जिस शिलाके मध्यमें गदाके समान रेखा हो, यथास्थान नाभिचक्र उन्नत हो तथा वक्ष:स्थल विस्तृत हो, वह '**नृसिंह**' नामवाली शालग्रामशिला है और इन चिह्नोंके साथ ही उसमें तीन बिन्दु अथवा पाँच बिन्दु हों तो वह '**कपिल**' नामक शिला है, वह शिला हम सबकी रक्षा करे। उसका पूजन ब्रह्मचारियोंको करना चाहिये। विषम परिमाणवाले दो चक्रोंसे चिह्नित शक्ति-चिह्नसे युक्त शिलाको '**वाराह**' शिला कहते हैं। वह हम सबकी रक्षा करे। नीलवर्णवाली, तीन रेखाओंसे युक्त, स्थूल तथा बिन्दुयुक्त शिला '**कूर्ममूर्ति**' है और वही अगर वर्तुलाकार है तथा उसका पीछेका भाग झुका हुआ हो तो वह शिला '**कृष्ण**' कही गयी है, वह हम सबकी रक्षा करे। पाँच रेखावाली शिला '**श्रीधर**' नामकी कही जाती है। गदासे अंकित शिला '**वनमाली**' है—ये हम सबकी रक्षा करें। गोलाकार तथा छोटी शिला '**वामन**' शिला है, बायें भागमें चक्राङ्कित शिला '**सुरेश्वर**'की मूर्ति है। विभिन्न रंगोंवाली, अनेक रूपोंवाली, नागके समान फणोंसे युक्त शिला '**अनन्तक**' है। स्थूल हो, नीलवर्णकी हो और मध्यमें नीलवर्णका चक्र हो तो वह '**दामोदर**'-

---

१-श्रीविष्णुकी गदाका नाम 'कौमोदकी' है।

शिला है। संकुचित द्वारवाली, रक्तवर्णवाली, लम्बी रेखाओंवाली, छिद्रयुक्त, एक चक्र तथा एक कमलवाली विस्तीर्ण शिला '**ब्रह्मशिला**' है, ये सब हम सबकी रक्षा करें। विस्तृत छिद्रवाली तथा स्थूल चक्रवाली शिला '**कृष्णशिला**' तथा बिल्वाकार शिला '**विष्णुशिला**' है। अंकुशके आकारवाली, पाँच रेखाओंवाली तथा कौस्तुभ-चिह्नसे युक्त शिला '**हयग्रीव**' शिला है। एक चक्र तथा एक कमलसे अंकित, मणि तथा रत्नोंकी आभासे युक्त कृष्णवर्णकी शिला '**वैकुण्ठ**' शिला और द्वारपर रेखावाली, विस्तृत कमलसदृश शिला '**मत्स्यशिला**' है—ये हम सबकी रक्षा करें। दाहिनी ओर रेखायुक्त, श्यामवर्णसे समन्वित, रामचक्रसे अंकित '**त्रिविक्रम**'नामवाली शिला हम सबकी रक्षा करे। द्वारकामें स्थित, शालग्राममें निवास करनेवाले गदाधारी भगवान्‌को नमस्कार है। एक द्वारवाली, चार चक्रोंसे युक्त, वनमालासे विभूषित, स्वर्णरेखासमन्वित, गोपदसे सुशोभित तथा कदम्बके पुष्पकी आकृतिवाली '**लक्ष्मीनारायण**' नामवाली शिला हम सबकी रक्षा करे।

एक चक्रवाले शालग्रामको '**सुदर्शन**' कहते हैं, उनके रूपमें वे गदाधारी श्रीविष्णु हम सबकी रक्षा करें। दो चक्र होनेसे शालग्रामशिलाकी '**लक्ष्मीनारायण**' संज्ञा होती है। जिसमें तीन चक्र हैं, वह (शिला) '**त्रिविक्रम**'की मूर्ति है, चार चक्रवाली **चतुर्व्यूह**, पाँच चक्रवाली '**वासुदेव**', छः चक्रवाली शालग्रामशिला '**प्रद्युम्न**', सात चक्रवाली शिला '**संकर्षण**', आठ चक्रवाली '**पुरुषोत्तम**', नव चक्रवाली शिला '**नवव्यूह**', दस चक्रवाली '**दशावतार**' तथा ग्यारह चक्रवाली शिला '**अनिरुद्ध**' कहलाती है—ये हम सबकी रक्षा करें। बारह चक्रोंसे युक्त शिला '**द्वादशात्मा**' है। बारहसे अधिक चक्रकी शिला '**अनन्त**' नामवाली है।

जो मनुष्य इस विष्णुमूर्तिमय स्तोत्रका पाठ करता है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ४५)

वास्तुमण्डल-पूजाविधि

श्रीहरिने कहा—गृहनिर्माणके प्रारम्भमें जिसके करनेसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। संक्षेपमें उस वास्तुपूजाकी विधि कहता हूँ, यह पूजा ईशानकोणसे प्रारम्भ होकर इक्यासी पदवाले मण्डपके अन्तर्गत पूर्ण की जानी चाहिये।

इस मण्डलके ईशानकोणमें वास्तुदेवताका मस्तक होता है। नैर्ऋत्यकोणमें उनके दोनों पाद तथा अग्नि और वायुकोणमें दोनों हाथ होते हैं। आवास अर्थात् भवन, गृह आदि, नगर, ग्राम, व्यापारिकपथ, प्रासाद, उद्यान, दुर्ग, देवालय तथा मठ आदिके निर्माणमें वास्तुदेवताकी स्थापनापूर्वक पूजा करनी चाहिये। बाईस[1] देवता बाह्यभागमें तथा तेरह देवता अन्तःभागमें अवस्थित रहते हैं।

यथा—ईश, शिखी, पर्जन्य, जयन्त, कुलिशायुध, सूर्य, सत्य, भृगु, आकाश, वायु, पूषा, वितथ, ग्रहक्षेत्र, यम, गन्धर्व, भृगुराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, गणाधिप, असुर, शेष, पाप, रोग, अहिमुख, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति तथा दिति—ये वास्तुमण्डलके बाह्य देव हैं।

—इन बाह्य देवोंका पूजन करके बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि वह ईशानादि चारों कोणोंपर स्थित देवताओंकी पूजा करे। यथा—ईशानकोणमें आप (जल), अग्निकोणमें सावित्री, नैर्ऋत्यकोणमें जय और वायुकोणमें रुद्रदेवकी पूजा करे। नवपद परिमापके मध्यमें ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये और उनके समीप ही अन्य आठ देवताओंका भी पूजन करे। पूर्वादिक क्रमसे उन पूजनीय देवोंके नाम इस प्रकार हैं—

अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर और अपवत्स—ये आठ देव हैं, जो ब्रह्माके चारों ओर मण्डलाकार स्थित हैं।

दुर्गनिर्माणमें ईशानकोणसे नैर्ऋत्यकोणपर्यन्त सूत्रद्वारा किया गया रेखाङ्कन वंश कहा जाता है और अग्निकोणसे जब वायुकोणपर्यन्त दूसरी रेखा खींची जाती है तो वह वंश-रेखा, दुर्धर-रेखा कहलाती है। वंश-रेखापर ईशानकोणमें अदिति, दुर्धरयोग बिन्दुपर हिमवन्त, नैर्ऋत्यकोण अर्थात् वास्तुमण्डलके अन्तिम नैर्ऋत्य बिन्दुपर जयन्तके पूजनका

[1] मूलपाठमें 'द्वाविंशति' पाठ है, वास्तवमें द्वात्रिंशत् पाठ होना चाहिये।

विधान है। तत्पश्चात् दुर्धर-रेखाके प्रारम्भमें अग्निकोणपर नायिका तथा अन्तिम छोर वायुकोणपर कालिकादेवीकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर शुक्र अर्थात् इन्द्रसे लेकर गन्धर्वपर्यन्त उक्त वास्तुदेवोंकी पूजा करके भवन-निर्माणका कार्य प्रारम्भ करना चाहिये।

वास्तु (भवन)-के सम्मुख-भागमें देवालय, अग्निकोणमें पाकशाला, पूर्व दिशामें यज्ञ-मण्डप, ईशानकोणमें काष्ठ या प्रस्तरसे बनी पट्टिकाओंके द्वारा घिरा हुआ सुगन्धित पदार्थों तथा पुष्पोंको रखनेका स्थान, उत्तर दिशामें भाण्डागार, वायुकोणमें गोशाला, पश्चिम दिशामें खिड़की तथा जलाशय, नैर्ऋत्यकोणमें समिधा, कुश, ईंधन तथा अस्त्र-शस्त्रका कक्ष, दक्षिण दिशामें सुन्दर शय्या, आसन, पादुका, जल, अग्नि, दीप और सज्जन भृत्योंसे युक्त अतिथिगृहका निर्माण करना चाहिये।

गृहके बीच समस्त रिक्तभागमें कूप, जलसिंचित कदलीगृह और पाँच प्रकारके पुष्पपादपोंको सुनियोजित करे। भवनके बाह्य भागमें चारों ओर पाँच हाथ ऊँची दीवाल बनाकर वन और उपवनसे आच्छादित भगवान् विष्णुका मन्दिर बनाना चाहिये।

इस मन्दिरके निर्माणकार्यके प्रारम्भमें चौंसठ पदका वास्तुमण्डल बनाकर वास्तुदेवताकी विधिवत् पूजा करे। उक्त रीतिके अनुसार वास्तुमण्डलके मध्य भागमें चार पदके मण्डलान्तर्गत ब्रह्मा तथा उनके समीपस्थ प्रत्येक दो पदपर अर्यमादि आठ देवोंकी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर कर्णभागपर कार्तिकेय आदिका पूजन करके, दोनों ओर पार्श्व बिन्दुओंपर दो-दो पदोंकी दूरीसे स्थित अन्य पार्श्व देवोंका पूजन करे। तत्पश्चात् वास्तुमण्डलके ईशानादि कोणोंपर क्रमशः चरकी, विदारी, पूतना और पापराक्षसी नामक देवशक्तियोंकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद बाह्य भागमें हैतुकादि देवोंका पूजन करे। इनके नाम हेतुक, त्रिपुरान्तक, अग्नि, वैताल, यम, अग्निजिह्व, कालक, कराल और एकपाद हैं। उनकी पूजा करनेके पश्चात् ईशानकोणमें भीमरूप, पातालमें प्रेतनायक, आकाशमें गन्धमाली तथा उसके बाद क्षेत्रपाल देवोंकी पूजा करनी चाहिये।

यथासाध्य वास्तु संकुचित या विस्तृत क्षेत्रफलकी राशिको वसुओंकी संख्या अर्थात् आठसे पहले भाग दे, उसके बचे हुए शेष भागको यम माने। पुनः उक्त वास्तुराशिको आठसे गुणा करे, जो गुणनफल हो उसको ऋक्ष भाग अर्थात् सत्ताईससे भाग दे, जो शेष हो उसे ऋक्ष या नक्षत्रराशि कहते हैं और जो भागफल है, वह अव्यय कहलाता है।

उस ऋक्षराशिको चारसे गुणा करके गुणनफलमें नौसे भाग दे, जो शेषांश हो उसका नाम स्थिति है। इसी स्थिति अङ्कपर वास्तुमण्डलका निर्धारण करना चाहिये। ऐसा देवल ऋषिका अभिमत है।

उक्त वास्तुराशिको आठसे गुणा करके जो गुणनफल हो उसे पिण्ड कहते हैं। उस पिण्डको साठसे भाग देना चाहिये, जो शेषांक हो उसके द्वारा गृहस्वामीके जीवन-मरण और परिजनोंके विनाशका निर्धारण होता है।

मनुष्यको चाहिये कि वास्तुमण्डलके मध्यमें ही सदा गृहका निर्माण करे। उसके पृष्ठभागमें न करे। इसी प्रकार वास्तुमण्डलके वामपार्श्वमें भी गृह-निर्माण करना उचित नहीं होता है, क्योंकि वामपार्श्वमें वास्तुदेव सोये रहते हैं। अतः इसमें गृह-निर्माण नहीं करना चाहिये।

सिंह, कन्या तथा तुला राशि रहनेपर उत्तर दिशाके द्वारका शोधन करे और उसी प्रकार वृश्चिकादि अन्य राशियोंके रहनेपर पूर्व-दक्षिण तथा पश्चिम द्वारका शोधन करना चाहिये (क्योंकि भाद्रपद, आश्विन तथा कार्तिकमासमें पूर्व दिशामें मस्तक, उत्तर दिशामें पृष्ठ, दक्षिण दिशामें क्रोड और पश्चिम दिशामें चरण फैलाकर वास्तुनाग सोये रहते हैं। अतः उत्तर दिशाका द्वार इस कालमें प्रशस्त होता है। वृश्चिक, धनु एवं मकर राशि अर्थात् मार्गशीर्ष, पौष और माघमें वास्तुनागका सिर दक्षिण, पृष्ठ पूर्व, क्रोड पश्चिम और पैर उत्तर दिशामें रहता है। जिससे उस समय पूर्व दिशाका द्वार-शोधन उचित है। कुम्भ, मीन और मेष राशि अर्थात् फाल्गुन, चैत्र तथा वैशाखमासमें वास्तुनागका मस्तक पश्चिम, पृष्ठ दक्षिण तथा पैर उत्तर-पूर्व दिशामें रहता है। अतः दक्षिण दिशाके द्वारका शोधन इस कालमें श्रेयस्कर है। इसी प्रकार वृष, मिथुन और कर्कराशि अर्थात् ज्येष्ठ,

आषाढ़ तथा श्रावणमासमें वास्तुनागका सिर उत्तर, पृष्ठ पश्चिम, क्रोड पूर्व और पैर दक्षिण दिशामें रहता है। उस समय पश्चिम द्वारका शोधन करना उचित होता है)।

वास्तुके विस्तारके अनुसार आधे भागमें द्वारका निर्माण करना चाहिये। इस प्रकार आठ दिशाओंमें आठ द्वार कहे गये हैं।

यदि उपर्युक्त शास्त्र-सम्मत विधिसे द्वार-शोधन नहीं होता है तो हानि होती है।

अत: उपर्युक्त विधिसे प्रासाद या भवनका निर्माण करके उसके पूर्वमें पीपल, दक्षिणमें पाकड़, पश्चिममें बरगद, उत्तरमें गूलर तथा ईशानकोणमें सेमलका वृक्ष लगाना चाहिये, जो घरके लिये शुभ-फलदायी होते हैं। इस प्रकार पूजित वास्तु प्रासाद और घरके विघ्नोंका नाश करनेवाला होता है। (अध्याय ४६)

प्रासाद-लक्षण

श्रीसूतजीने पुन: कहा—हे शौनक! अब मैं प्रासाद-निर्माण एवं उसके लक्षणोंके विषयमें कह रहा हूँ। आप सुनें।

सर्वप्रथम कुशल वास्तुविद्‌की देख-रेखमें चारों दिशाओंमें चौंसठ-चौंसठ पद परिमापका एक चतुष्कोण भूखण्ड तैयार करना चाहिये। जिसमें अड़तालीस पद-परिमाण-भूमिमें दीवालका निर्माण करे। साथ ही चारों दिशाओंमें कुल बारह द्वार (बारादरी) बनाये जायँ।

प्रासादकी ऊँचाईके परिमाणको अर्थात् पृथ्वीतलपर प्रासादका बनाया गया ऊँचा जो धरातल है, उसको प्रासादिक-जंघा (कुर्सी) कहते हैं। भवनकी यह जंघा मानव जंघाकी अपेक्षा ढाई गुना अधिक होनी चाहिये। उसके ऊपर निर्मित होनेवाले गर्भभागके विस्तार-परिमापको शुक्रांघ्रि कहते हैं। गर्भभागको पुन: तीन अथवा पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये और शुक्रांघ्रिके द्वारकी ऊँचाई शिखर भागकी आधी करनी चाहिये। चार शिखर बनाकर उसके तीसरे भागपर वेदि-बन्धन करे। उसके चतुर्थ भागपर पुन: प्रासादके कण्ठ-भागका निर्माण करना चाहिये।[1] अथवा भवनका निर्माण करनेके लिये भूमिखण्डको समान सोलह भागोंमें विभक्त करके उस सोलहवें भागके चतुर्थ-भागके मध्यमें गर्भगृहका निर्माण करवाये। बचे हुए बारह भागमें भित्ति (दीवाल)-का निर्माण करे। चतुर्थभागकी ऊँचाईके अनुसार ही अन्य भित्तियोंकी ऊँचाईका परिमाण निश्चित करना चाहिये। भित्तिकी ऊँचाईके मानकी अपेक्षा शिखरकी ऊँचाई दो गुनी हो। मन्दिरके चारों ओर बननेवाले प्रदक्षिणा-भागका विस्तार शिखर भागकी ऊँचाईके मानका चतुर्थांश होना चाहिये।

बुद्धिमानोंको चाहिये कि वे उस देवप्रासादमें चारों दिशाओंमें निर्गम (बाहर निकलनेके) द्वार रखें। गर्भगृहकी चतुर्दिक् भित्तियोंमें प्रत्येक भित्तिका पाँच भाग करके उसके मध्यके पाँचवें भागमें द्वार लगाना चाहिये। ऐसा ही गर्भगृहके प्रत्येक द्वारका मान वास्तुविद् विद्वानोंने निर्धारित किया है। गर्भगृहके समान ही उसके अग्रभागमें मुखमण्डप बनाना चाहिये। यह प्रसादका सामान्य लक्षण कहा गया है। अब मैं लिङ्गनिर्माणके परिमाणको कह रहा हूँ।

हे शौनक! लिङ्गके परिमाणके अनुसार उसकी पीठका निर्माण होना चाहिये। पीठभागका दुगुना चारों ओर पीठका गर्भभाग हो। पीठगर्भके अनुसार ही उसकी भित्ति तथा उसके विस्तारके अर्धपरिमाणमें उस लिङ्गपीठका जंघा-भाग निर्मित करे।

हे शौनक! जंघा-भागके परिमाणकी अपेक्षा द्विगुणित ऊँचा शिखर होना चाहिये। पीठ और गर्भभागके मध्य जो परिमाण हो, उस परिमाणके अनुसार शुक्रांघ्रिभाग निर्मित होता है। द्वारनिर्माणके समय पहले जैसा कहा जा चुका है, शेष कार्य वैसे ही होगा। लिङ्गका परिमाण बताया जा चुका है। अब द्वारका परिमाण कहते हैं। चार हाथ (छ: फुट)-का द्वार बनाया जाय, जो वास्तुसे आठवाँ हिस्सा होता है। स्वेच्छानुसार इसका दुगुना विस्तार हो सकता है।

द्वारके सदृश पीठके मध्यभागको छिद्रयुक्त ही रखना चाहिये। पादिक, शेषिक तथा भित्तिद्वार परिमाणके अनुसार ही उसके अर्ध-अर्ध परिमाणकी दूरीपर निर्मित करे। उस

[1] १-चारों शिखरोंके मध्यमें ऊपरके हिस्सेको कण्ठभाग कहते हैं।

गर्भभागके विस्तारके समान ही मण्डपके जंघाभागका निर्माण करके उस जंघाभागके द्विगुणके परिमाणमें ऊँचे शिखरभागको निर्मित करे। शुक्रांघ्रिभागको पहलेकी ही भाँति बनवाकर निर्गम अर्थात् द्वारभागको ऊँचा ही बनवायें—ऐसा मण्डपनिर्माणका मान है। इसके अतिरिक्त शेष प्रासाद-भागके स्वरूपको कह रहा हूँ, सुनें—

प्रासाद-मण्डपके अग्रभागमें त्रैवेद अर्थात् त्रिद्वारीका निर्माण करवाना चाहिये, जिसके क्षेत्रभागमें देवगण विद्यमान रहते हैं। इस प्रकार प्रासादके मानका अवधारण करके बाह्य भागका निर्माण करे।

इस निर्माणकार्यमें प्रासादके चारों ओर एक पाद परिमाणवाली नेमि या नींवका निर्माण करना चाहिये। वैसे संसारमें गर्भगृहके परिमाणके अनुसार नेमिका मान उसका द्विगुण है। भित्तिकी चौड़ाईसे दो गुणा ऊँचा उसका शिखर-भाग होना चाहिये।

लक्षणों एवं स्वरूपकी भिन्नताके कारण प्रासाद अनेक प्रकारके होते हैं। यथा—वैराज, पुष्पक, कैलास, मालिका (माणिक) तथा त्रिविष्टप—ये पाँच प्रकारके प्रासाद हैं। इनमें प्रथम प्रकारका वैराज नामक प्रासाद सब प्रकारसे चौकोर और समतल होता है। द्वितीय प्रकारका पुष्पक प्रासाद आयताकार होता है। तृतीय प्रकारका कैलास नामक प्रासाद वृत्ताकार, चौथा मालिका नामक प्रासाद वृत्तायत और पाँचवाँ त्रिविष्टप नामक प्रासाद अष्टकोणाकार होता है। इस प्रकारसे बने हुए ये प्रासाद बड़े ही मनोहारी होते हैं। इन प्रासादोंसे ही अन्य प्रकारके प्रासादोंका स्वरूप निर्मित हुआ है।

यथा—मेरु, मन्दर, विमान, भद्रक, ,सर्वतोभद्र, रुचक, नन्दन, नन्दिवर्धन और श्रीवत्स—ये नौ प्रकारके चौकोर प्रासाद वैराज नामक प्रासाद निर्माणकी कलासे ही उत्पन्न हुए हैं।

वलभी, गृहराज, शालागृह, मन्दिर, विमान, ब्रह्ममन्दिर, भवन, उत्तम्भ और शिबिकावेश्म—ये नौ प्रासाद पुष्पक नामक प्रासादकलासे उत्पन्न हुए हैं।

वलय, दुन्दुभि, पद्म, महापद्म, मुकुली, उष्णीषी, शंख, कलश, गुवावृक्ष तथा अन्य वृत्ताकार प्रासाद कैलास प्रासादसे निकले हैं। गज, वृषभ, हंस, गरुड, सिंह, सम्मुख, भूमुख, भूधर, श्रीजय तथा पृथिवीधर—इन प्रासादोंका उद्भव 'मालिका' (मणिक) नामक वृत्तायत प्रासादसे हुआ है।

वज्र, चक्र, मुष्टिकवभ्रु, वक्रस्वस्तिक, खड्ग, गदा, श्रीवृक्ष, विजय तथा श्वेत—इन नौ प्रासादोंका प्रादुर्भाव त्रिविष्टप नामक प्रासादसे हुआ है।

इसके अतिरिक्त त्रिकोण, पद्माकार, अर्धचन्द्राकार, चतुष्कोण तथा षोडशकोणीय प्रकारसे भी मण्डपके संस्थानका निर्माण जहाँ-तहाँ किया जा सकता है, जो क्रमशः—राज्य, ऐश्वर्य, आयुवर्धन, पुत्रलाभ और स्त्रीप्राप्ति करानेवाले होते हैं।

मुख्यद्वारके स्थानमें ही ध्वजा आदि तथा गर्भगृहका निर्माण कराना चाहिये। सूत्रके द्वारा सम संख्याओंसे गुम्फित मण्डपका निर्माण करके उस मण्डपके चतुर्थांश अर्थात् चौथाई परिमाणका एक भद्रगृह निर्मित करवाये। भद्रगृहको समानान्तर वातायन (रोशनदान)-से अथवा वातायनसे रहित बनाना चाहिये। कहीं मण्डपकी दीवालके बराबर अथवा कहीं उससे डेढ़ गुना अथवा कहीं दुगुने मापके मण्डप बनाये जाने चाहिये। प्रासादके लतामण्डपकी भूमि विषम तथा चित्र-विचित्र (रंग-बिरंगी) वर्णकी बनानी चाहिये। परिमाण-विरोध रहनेपर उसे विषम रेखाओंसे अलंकृत किया जा सकता है।

प्रासादकी आधारभूमि प्रत्येक दिशाओंमें अवस्थित चार द्वारों और चार मण्डपोंसे सुशोभित होनी चाहिये। जो प्रासाद सौ शृंगोंवाला अर्थात् सौ मीनारोंसे युक्त रहता है, उसे मेरु-संज्ञासे अभिहित किया जाता है। यह अन्य प्रासादोंकी अपेक्षा उत्तम कोटिका होता है। इस प्रकारके प्रासादमें प्रत्येक मण्डप तीन-तीन भद्रगृहोंसे अलंकृत होने चाहिये।

निर्माणपद्धति, आकार और परिमाणके वैभिन्यके कारण ये प्रासाद भिन्न-भिन्न प्रकारके हो जाते हैं। जिनमें कुछ प्रासादोंका आधार होता है, किंतु कुछ आधारसे रहित होते हैं। वे प्रासाद अपने छन्दक अर्थात् छत-निर्माणके भेदसे भी भिन्न-भिन्न प्रकारके हो जाते हैं। रचना-पद्धति तथा नामके भेदसे परस्पर सांकर्यके कारण भी भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रासाद हो जाते हैं।

देवताओंकी विशेषताके कारण बहुत प्रकारके प्रासाद

बताये गये हैं। यद्यपि स्वयंभू (स्वतः प्रादुर्भूत देवमूर्ति) देवताओंके लिये निर्मित होनेवाले प्रासादके निमित्त कोई नियम नहीं हैं, तथापि देवोंके लिये उक्त मानके अनुसार ही उन प्रासादोंका निर्माण करवाना चाहिये, जो चतुरस्र अर्थात् चौरस भूमिपर समान चार कोणोंसे समन्वित हों। वे प्रासाद चन्द्रशालाओं (बारादरी)-से युक्त तथा भेरीशिखर (नौबतखानों)-से संयुक्त होने चाहिये। उनके सामनेके भागमें वाहनोंके लिये लघु मण्डप भी निर्मित हों।

देवप्रासादके द्वारदेशकी सन्निधिमें नाट्यशाला बनानी चाहिये। प्रासादके विभिन्न दिशाओंके मुख्य द्वारोंपर अलग-अलग द्वारपाल बनाने चाहिये। उस देवप्रासादसे कुछ दूर देवालयमें रहनेवाले सेवकवर्गके लिये आवास बनवाना चाहिये।

देवप्रासादकी भूमि फल, पुष्प और जलसे परिपूर्ण होनी चाहिये। ऐसे प्रासादोंमें देवताओंको स्थापित करके उनकी अर्घ्यादिक विविध प्रकारके उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये। वासुदेव तो सर्वमय हैं, उनके भवनका निर्माण करनेवाला व्यक्ति सभी फलोंको प्राप्त करता है। (अध्याय ४७)

देव-प्रतिष्ठाकी सामान्य विधि

सूतजीने कहा—अब मैं सभी देवताओंकी प्रतिष्ठा-विधिको संक्षेपमें कह रहा हूँ। प्रशस्त तिथि-नक्षत्रादिमें प्रतिष्ठा करवानी चाहिये।

सर्वप्रथम अपनी वैदिक शाखामें कहे गये विधानके अनुसार या प्रणव-मन्त्र (ॐकार)-का उच्चारण करके पाँच या उससे अधिक ऋत्विजोंके साथ मध्य स्थानमें स्थित आचार्यका वरण करे। तदनन्तर पाद्य, अर्घ्य और मुद्रिका, वस्त्र-गन्ध-माल्य एवं अनुलेपनीय द्रव्योंसे उनका पूजन करे। गुरुको चाहिये कि वे मन्त्रन्यासपूर्वक प्रतिष्ठाकर्मका समारम्भ करें।

प्रासादके अग्रभागमें दस अथवा बारह हाथका एक वर्गाकार सोलह खम्भोंवाला मण्डप तैयार करके उसमें (पूर्वादिक चारों दिशाओं और ईशानादिक चार विदिशाओंमें एक-एक ध्वजा—इस तरह) कुल आठ ध्वजोंको प्रतिष्ठित करना चाहिये। तदनन्तर मण्डपके मध्यभागमें चार हाथ परिमाणकी एक वेदीका निर्माण कराये। उस वेदीके ऊपरी भागमें नदियोंके संगम-स्थलके किनारेसे लायी गयी बालुका बिछाये। प्रधान कुण्डका निर्माण करवाकर उसके पूर्व दिशामें वर्गाकार, दक्षिणमें धनुषाकार, पश्चिममें वर्तुलाकार और उत्तरमें पद्माकार—इस प्रकार पाँच कुण्डोंका निर्माण करवाना चाहिये अथवा सभी कुण्ड चौकोर रखे जा सकते हैं।

कुण्ड-निर्माणके पश्चात् समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये आचार्य, शान्तिकर्मके लिये विहित विधिसे हवन करे। कुछ लोग मण्डपके ईशानकोणकी भूमिको गायके गोबर या स्वच्छ मिट्टीसे लीपकर उसमें होम करते हैं।

मण्डपमें लगे तोरणोंके समीप ही पूर्वादिक दिशाओंमें चार द्वारोंका निर्माण करवाना चाहिये। मण्डपके तोरणस्तम्भ न्यग्रोध (वट), उदुम्बर (गूलर), अश्वत्थ (पीपल), बिल्व, पलाश, खदिर (खैर) काष्ठसे निर्मित होने चाहिये। प्रत्येक तोरणस्तम्भका परिमाप पाँच हाथ होना चाहिये और प्रत्येक स्तम्भको वस्त्र-पुष्पादिसे अलंकृत करना चाहिये तथा उसके निचले भागको एक हाथ नापकर पृथ्वीमें गाड़ देना चाहिये। शेष चार हाथ परिमाणका भाग ऊपर रखें। इसी प्रकार उन्हें मण्डपके चारों ओरकी दिशाओंमें स्थापित करवाना चाहिये।

मण्डपके पूर्वी द्वारपर मृगेन्द्र, दक्षिणी द्वारपर हयराज, पश्चिमी द्वारपर गोपति तथा उत्तरी द्वारपर देवशार्दूलका न्यास करे। पहले '**अग्निमीळे०**' इस मन्त्रसे पूर्व द्वारकी दिशामें मृगेन्द्रका न्यास करे। तदनन्तर '**ईषेत्वोर्ज्जे त्वा०**' इस मन्त्रसे दक्षिण द्वारकी दिशामें हयराजका, '**अग्न आयाहि०**' इस मन्त्रसे पश्चिम द्वारकी दिशामें गोपतिका और '**शं नो देवी०**' मन्त्रसे उत्तर द्वारकी दिशामें देवशार्दूलका न्यास करना चाहिये।

मण्डपकी पूर्व दिशामें मेघवर्णके समान श्याम, अग्निकोणमें धूम्रवर्ण, दक्षिण दिशामें कृष्णवर्ण, नैर्ऋत्यकोणमें धूसरवर्ण[1], पश्चिम दिशामें पाण्डुरवर्ण, वायुकोणमें पीतवर्ण, उत्तर दिशामें रक्तवर्ण, ईशानकोणमें शुक्लवर्ण तथा मण्डपके

१-पीलापनके साथ शुक्लवर्ण पाण्डुरवर्ण है और थोड़ा कम पाण्डुरवर्ण धूसरवर्ण है।

मध्यभागमें अनेक वर्णवाली पताकाको स्थापित करे।

'**इन्द्रविद्योति॰**' इस मन्त्रसे पूर्व दिशामें इन्द्र, '**संसुप्ति॰**' इस मन्त्रसे अग्निकोणमें अग्नि, '**यमोनाग॰**' इस मन्त्रसे दक्षिणमें यम, '**रक्षोहणावेति॰**' मन्त्रसे (नैर्ऋत्यमें निर्ऋति) पश्चिममें वरुण तथा '**ॐ वातेति॰**' मन्त्रसे वायव्यमें वायुदेवका अभिषेक करके उत्तरमें '**ॐ आप्यायस्वेति॰**' मन्त्रसे कुबेरकी पूजा करे। '**ॐ तमीशान॰**' इस मन्त्रसे ईशान दिशामें ईशान और मण्डपके मध्यभागमें '**ॐ विष्णोर्लौकेति॰**' मन्त्रसे विष्णुका पूजन करना चाहिये।

प्रत्येक तोरणके समीप दो-दो कलश स्थापित करनेके पश्चात् वस्त्र तथा उपवस्त्रसे आच्छादित, चन्दनादि सुगन्धित पदार्थोंसे अलंकृत, पुष्प, वितान एवं अन्यान्य पूजा-उपचारोंसे सुशोभित दिक्पालोंकी पूजा करनी चाहिये।

'**ॐ प्रातरग्निन्द्र॰**' मन्त्रसे इन्द्र, '**ॐ अग्निर्मूर्धा॰**' मन्त्रसे अग्नि, '**ॐ अस्मिन्वृक्ष॰**' मन्त्रसे निर्ऋति, '**ॐ किं चे दधातु॰**' मन्त्रसे वरुण, '**ॐ आचत्वा॰**' मन्त्रसे कुबेर, '**ॐ इमा रुद्रेति॰**' मन्त्रसे रुद्र आदि दिक्पालोंकी पूजा करके विद्वान् आचार्यको चाहिये कि वह वायव्यकोणमें होमद्रव्य एवं अन्य पूजामें प्रयुक्त वस्तुओंको स्थापित करे।

तदनन्तर वह गुरु वहाँ रखी गयी श्वेत शंखादिक शास्त्र-विहित समस्त वस्तुओंपर एक बार दृष्टिपात कर ले, ऐसा करनेसे निश्चित द्रव्योंकी शुद्धि हो जाती है।

तत्पश्चात् हृदयादि षडङ्गोंका न्यास व्याहृति और प्रणवमन्त्रसे संयुक्त करके क्रमशः—(**ॐ हृदयाय नमः, ॐ भूः शिरसे स्वाहा, ॐ भुवः शिखायै वषट्, ॐ स्वः कवचाय हुम्, ॐ भूर्भुवः स्वः नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ भूर्भुवः स्वः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्** मन्त्रका उच्चारण करते हुए) हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र, करतल और करपृष्ठका स्पर्श करे। तदनन्तर '**ॐ अस्त्राय फट्**' मन्त्रसे अस्त्रका न्यास भी करना चाहिये, क्योंकि यह न्यास-कर्म समस्त इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला होता है।

अस्त्र-मन्त्रके द्वारा अक्षत और विष्टरको अभिमन्त्रित करके उसी विष्टरके द्वारा यज्ञमण्डपमें एकत्रित समस्त द्रव्योंका स्पर्श करे। तत्पश्चात् अस्त्र-मन्त्रसे पवित्र किये गये उन अक्षतोंको अपने चारों ओर बिखेर दे। उसके बाद पूर्व दिशासे लेकर अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्यकोण, पश्चिम, वायुकोण, उत्तर और ईशानकोणपर्यन्त मण्डपमें अभिमन्त्रित अक्षतोंका निक्षेप करके सम्पूर्ण यज्ञ-मण्डपका लेपन करवाना चाहिये।

तदनन्तर याज्ञिक गुरुको चाहिये कि वह अर्घ्यपात्रमें गन्धादिसे युक्त जलको पूर्णकर मन्त्रसमूहोंसे उसे अभिमन्त्रित करे। उसी अभिमन्त्रित जलसे यज्ञमण्डपका प्रोक्षण करना चाहिये। उसके बाद जिस देवकी प्रतिष्ठा करनी है, उसी देवके नामसे मण्डपके ईशानकोणमें कलश स्थापितकर उसके दक्षिण भागमें अस्त्र-मन्त्रसे अभिमन्त्रित वर्द्धिनीकी[1] स्थापना करे। उसके बाद कलश, वर्द्धिनी, ग्रह और वास्तोष्पति देवकी यथाविहित आसनपर प्रतिष्ठाके साथ पूजा करके आचार्य प्रणव-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर सूत्रसे वेष्टित, पल्लवोंसे युक्त दो वस्त्रोंसे आच्छादित सब प्रकारकी औषधियों तथा चन्दनादि सुगन्धित पदार्थोंसे अनुलिप्त उस कलशकी पुनः पूजा करे, साथ ही उस कलशमें प्रतिष्ठित देवताकी भी पूजा करनी चाहिये।

तदनन्तर उत्तम वस्त्रसे वर्द्धिनीको आच्छादित करके उसके साथ कलशको घुमाये। वर्द्धिनीकी जलधारासे उस कुम्भको सिञ्चित करके उसके आगे ही वर्द्धिनीको स्थापित करे। वर्द्धिनीके साथ उस कुम्भका पूजन करके स्थण्डिलमें मूल देवताकी पूजा करे।

उसके बाद वायव्यकोणमें एक घटकी स्थापना करनी चाहिये। उसमें गणपतिका आवाहनकर '**ॐ गणानां त्वेति॰**' मन्त्रसे उनकी पूजा करके ईशानकोणमें दूसरा घट स्थापित करे। उसमें वास्तुदोष-परिहारके लिये '**ॐ वास्तोष्पते॰**' इस मन्त्रसे वास्तुदेवकी पूजा करनी चाहिये। कुम्भके पूर्वभागमें भूत और गणदेवको बलि प्रदानकर वेदीका आलम्भन करे। तदनन्तर '**ॐ योगेयोगेति॰**' मन्त्रसे हरे कुशोंका आस्तरण करे और ऋत्विजोंके साथ आचार्य तथा यज्ञदीक्षित वह श्रेष्ठ यजमान स्नान-पीठपर उस देवमूर्तिको प्रतिष्ठित करे। उस समय विविध वैदिक मन्त्रोच्चारके साथ जय-जयकारकी मङ्गल ध्वनि करनी चाहिये।

स्नान करवानेके लिये पीठसहित उस देवमूर्तिको ब्रह्मरथपर बैठाकर ईशानकोणमें अवस्थित मण्डपपीठमें

१-कमण्डलु (गडुआ) कलशविशेष-देवताकी प्रतिष्ठा आदिमें विहित पात्र।

स्थापित करे। तदनन्तर '**ॐ भद्रं कर्णेति०**' मन्त्रसे स्नान कराकर यज्ञीय सूत्र या वल्कल वस्त्रसे पोंछकर मूर्तिको स्वच्छ करके तूर्यादिक वाद्य-यन्त्रोंका वादन करते हुए लक्षणोद्धार (मूर्तिका नामकरण) करे।

उसके बाद कांस्य या ताम्र-पात्रमें स्थित घृत और मधुसे मिश्रित अञ्जनको सोनेकी शलाकासे लेकर उस प्रतिमाकी आँखोंमें अञ्जन करे। अञ्जन लगानेके लिये '**ॐ अग्निर्ज्योतीति०**' मन्त्रसे देवके नेत्रोंको उद्घाटित करना चाहिये।

अञ्जनादिसे सुशोभित उस देवप्रतिमाका नामकरण स्थापना करनेवाला व्यक्ति करे। तदनन्तर '**ॐ इमं मे गङ्गेति०**' मन्त्रसे प्रतिमाके नेत्रोंमें शीतल-क्रिया (शीतलीकरण)-का सम्पादनकर '**ॐ अग्निर्मूर्द्धेति०**' मन्त्रसे बाँबी अर्थात् दीमकादिके द्वारा एकत्रित की गयी मिट्टी उस देवमूर्तिको समर्पित करे और बिल्व, गूलर, पीपल, वट, पलाशद्वारा निर्मित पञ्चकषायको लेकर '**ॐ यज्ञायज्ञेति०**' मन्त्रसे प्रतिमाको स्नान कराये। तत्पश्चात् पञ्चगव्यसे स्नान कराकर सहदेवी, बला, शतमूली, शतावरी, घृतकुमारी, गुडूची, सिंही तथा व्याघ्री—इन औषधियोंसे युक्त जलसे '**ॐ या ओषधीति०**' मन्त्रद्वारा स्नान कराये। तदनन्तर '**ॐ याः फलिनीति०**' मन्त्रके द्वारा फल-स्नान करानेका विधान है।

तत्पश्चात् '**ॐ द्रुपदादिवेति०**' मन्त्रसे विद्वानोंको उद्वर्तन-कृत्य करना चाहिये। अनन्तर उत्तर आदि दिशाओंमें क्रमशः चार कलशोंका स्थापन करना चाहिये और उन कलशोंमें विविध रत्न, सप्तधान्य[1] और शतपुष्पिका[2] नामक औषधिका निक्षेप करना चाहिये। इसके अतिरिक्त उन चारों कलशोंमें चारों समुद्र एवं चारों दिशाओंके अधिष्ठाता देवोंका आवाहन करना चाहिये। साथ ही दूध, दही, क्षीरोदक एवं घृतोदकसे चारों कलशोंको पृथक्-पृथक् परिपूर्ण करके '**आप्यायस्व०**' इस मन्त्रसे दुग्धकुम्भ, '**दधिक्राव्णो०**' मन्त्रसे दधिकुम्भ, '**या ओषधी०**' इस मन्त्रसे क्षीरोदककुम्भ तथा '**तेजोसि०**' मन्त्रसे घृतकुम्भको अभिमन्त्रित करना चाहिये। अभिमन्त्रित इन चारों कलशोंको चार समुद्रोंका प्रतिनिधि समझते हुए इनके द्वारा देवप्रतिमाको स्नान कराना चाहिये।

इस प्रकार स्नान-सम्पन्न उस देवप्रतिमाको सुन्दर वेश-भूषासे अलंकृत करके गुग्गुलका धूप प्रदान करे। तत्पश्चात् पुनः कुम्भोंमें पृथ्वीपर विद्यमान सभी तीर्थों, नदियों तथा सागरोंका विन्यास करना चाहिये। उन कुम्भोंको '**ॐ या ओषधीति०**' मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके उनसे पुनः उस देवप्रतिमाका अभिषेक करे। जो व्यक्ति अभिषेकके अवशिष्ट जलसे स्नान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

समुद्रके प्रतिनिधिरूप उन कुम्भोंसे उस देवमूर्तिका अभिषेक-कृत्य सम्पन्न होनेके पश्चात् अर्घ्य प्रदान करके '**ॐ गन्धद्वारेति०**' मन्त्रसे सुगन्धित चन्दनादि पदार्थोंद्वारा अनुलेप करे। साथ ही शास्त्रोंमें विविध वेदमन्त्रोंसे देवमूर्ति-न्यासकी प्रक्रिया भी सम्पन्न करे। तत्पश्चात् '**ॐ इमं वस्त्रेति०**' मन्त्रके द्वारा वस्त्रोंसे मूर्तिको आच्छादित करे। उसके बाद '**ॐ कविहाविति०**' मन्त्रका उच्चारण करते हुए उस प्रतिमाको सुन्दर मण्डपमें ला करके '**ॐ शम्भवायेति०**' मन्त्रसे शय्यापर स्थापित करे। तदनन्तर '**ॐ विश्वतश्चक्षु०**' मन्त्रका उच्चारणकर समस्त पूजाविधिको सब प्रकारसे परिपूर्ण करे। तत्पश्चात् वहींपर बैठकर परमतत्त्वका ध्यान करते हुए आचार्यको शास्त्रीय विधानके अनुसार मन्त्रन्यास करना चाहिये। मन्त्रन्यासकी प्रक्रिया मन्त्रशास्त्रोंमें बतायी गयी है। इस न्यासके बाद मण्डपमें प्रतिष्ठापित देवप्रतिमाको वस्त्रसे आच्छादित करना चाहिये और उसकी यथाविधि पुनः पूजा भी करनी चाहिये। शास्त्रीय विधिके अनुसार जो देवताको समर्पित करना है, वह उनके पादमूलमें समर्पित कर देना चाहिये। इसके अतिरिक्त देवताके शिरोभागमें दो वस्त्रोंसे वेष्टित, स्वर्णसे युक्त एवं प्रणवसे अंकित कलश स्थापित करना चाहिये।

तदनन्तर कुम्भके सन्निकट बैठकर आचार्य वेदमन्त्रोच्चारके साथ अग्निकी स्थापना करे। तदनन्तर पूर्वदिशामें ऋग्वेदवेत्ता ऋत्विक् कुण्डके समीप बैठकर श्रीसूक्त तथा पवमान आदि सूक्तोंका पाठ करे।

कुण्डके दक्षिण दिशामें स्थित अध्वर्यु अर्थात् यजुर्वेदवेत्ता आचार्य रुद्रसूक्त तथा पुरुषसूक्तका पारायण करे। कुण्डके पश्चिममें बैठा हुआ उद्गाता सामवेदीय आचार्य वेदव्रत,

---

१-जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा—इन धान्योंका समूह सप्तधान्य कहलाता है।

२-शतपुष्पिका सौंफ या वनसौंफको कहते हैं।

सामदेव्य, ज्येष्ठसाम, रथन्तर एवं भेरुण्डसामका पाठ करे। ऐसे ही कुण्डके उत्तरमें स्थित अथर्ववेदवेत्ता अथर्वशिरस्, कुम्भसूक्त, नीलरुद्रसूक्त एवं मैत्रसूक्तका पारायण करे।

तदनन्तर आचार्य अस्त्र-मन्त्रके द्वारा भलीभाँति कुण्डका प्रोक्षण करके स्वसामर्थ्यके अनुसार प्राप्त ताम्र या अन्य किसी धातुसे निर्मित पात्रमें अग्नि ग्रहणकर उस मूर्तिके आगे स्थापित करे। तत्पश्चात् उस अग्निको अस्त्र-मन्त्रसे प्रज्वलित करके कवच-मन्त्रके द्वारा वेष्टित कर देना चाहिये (इसे अग्निका अमृतीकरण-कृत्य कहते हैं)।

इस प्रकार अमृतीकृत अग्निको गुरु वेदमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके पात्रसहित कुण्डके चारों ओर घुमाये और वैष्णवयोगसे उसे प्रज्वलितकर वहीं कुण्डके मध्य स्थापित करे। अग्निके दक्षिणमें ब्रह्मा और उत्तरमें प्रणीताको स्थापितकर कुण्डकी प्रत्येक दिशाओं एवं विदिशाओंमें कुशाके विष्टरोंसे परिधिका निर्माण करे।

तदनन्तर गुरु ब्रह्मा, विष्णु, हर और ईशानकी पूजा करके दर्भोंके ऊपर अग्निको रखकर दर्भसे ही वेष्टित करके दर्भजलसे ही प्रोक्षण करे, क्योंकि कुशाद्वारा प्रदत्त जलका प्रोक्षण करनेसे बिना मन्त्रके भी शुद्धि हो जाती है और पूर्वाग्र, उत्तराग्र एवं पश्चिमाग्र अखण्डित तथा विस्तृत कुशाओंसे वेष्टित वह्निमें देवताका सांनिध्य स्वयं ही हो जाता है।

अग्निकी रक्षाके लिये मन्त्रज्ञोंने जो उपर्युक्त नियम कहे हैं, उनके विषयमें कुछ आचार्योंका विचार है कि उन सभी कृत्योंको जातकर्म-संस्कारके पश्चात् करना चाहिये।

अग्निका पवित्रीकरण करके आचार्यको आज्य-संस्कार करना चाहिये। अनन्तर आज्य (घृत)-को आहुतियोग्य बनानेके लिये उसका अवेक्षण, निरीक्षण, नीराजन एवं अभिमन्त्रण करके उसके द्वारा मुख्य हवनके पूर्व करणीय आज्यभाग एवं अभिघार[1] नामका कृत्यविशेष सम्पन्न करना चाहिये। तदनन्तर उस आज्यसे पाँच-पाँच आहुतियाँ देनी चाहिये। उसके बाद गर्भाधान-संस्कारसे लेकर गोदान-संस्कारपर्यन्त अग्निका संस्कार करके आचार्यको अपनी शाखाके अनुसार विहित मन्त्रोंसे अथवा प्रणवसे आहुति प्रदान करनी चाहिये। आचार्य अन्तमें पूर्णाहुति प्रदान करे, क्योंकि पूर्णाहुति देनेसे यजमानकी अभिलाषा पूर्ण हो जाती है।

इन वेद-विहित नियमोंसे उत्पन्न हुई अग्नि सभी कार्योंमें सिद्धि प्रदान करनेवाली होती है। अतएव पुनः उसकी पूजा करके अन्य सभी कुण्डोंमें उसे प्रतिष्ठित करना चाहिये। वहाँ प्रत्येक आचार्य अपने शाखामन्त्रोंसे इन्द्रादि सभी देवोंको सौ-सौ आहुतियाँ प्रदान करे। सौ आहुतियोंके पश्चात् पूर्णाहुति समर्पित करके सभी देवोंको एक-एक आहुति पुनः प्रदान करनी चाहिये।

होता अपने द्वारा अनुष्ठित आज्याहुतियोंके शेष भागको यथाविधान कलशमें समर्पित करे। इसके बाद आचार्य देवता, मन्त्र एवं अग्निके साथ अपने तादात्म्यकी भावना करते हुए पूर्णाहुति सम्पन्न कराये।

यज्ञमण्डपसे बाहर आकर आचार्य दिक्पालोंको बलि प्रदान करे। इस बलिकृत्यके साथ भूतों, देवताओं और नागोंको बलि देनी चाहिये। तिल और समिधा—यही दो होम-पदार्थ विहित हैं। आज्य तो उन दोनोंका सहयोगी है, क्योंकि घृतके बिना हवनीय द्रव्य अक्षय (परिपूर्ण) नहीं होता।

इस हवनकृत्यमें पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्त, ज्येष्ठसाम तथा 'तन्नयामि' इस मन्त्रसे युक्त भारुण्डसूक्त, महामन्त्रके रूपमें प्रसिद्ध नीलरुद्रसूक्त एवं अथर्वके कुम्भसूक्तका पारायण यथाक्रम पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम आदि दिशाओंमें आसीन ऋत्विजोंसे करवाना चाहिये। इस हवन-कर्ममें एक-एक सहस्र आहुतिका विधान है और इन आहुतियोंमें वेदोंके आदि मन्त्रों, देवताके नाम-मन्त्रों, अपनी शाखाके विहित मन्त्रों, गायत्री-मन्त्रके साथ यथाविधान व्याहृति एवं प्रणवका प्रयोग करना चाहिये। साथ ही यह भावना करनी चाहिये कि हम इन आहुतियोंको देवताके शिरोभाग, मध्यभाग तथा पादभाग आदिमें समर्पित कर रहे हैं और स्वयंको देवमय समझना चाहिये।

इस प्रकार होम-विधिको सम्पन्न करके देशिक (आचार्य)-को चाहिये कि वह देव-विग्रहमें मन्त्रोंका न्यास करे। यथा—'ॐ अग्निमीळे०' मन्त्रका देवके दोनों चरणोंमें, 'ॐ इषेत्वोर्जे त्वा०' मन्त्रका दोनों गुल्फोंमें, 'ॐ अग्न आयाहि०' मन्त्रसे देवकी दोनों जंघाओंमें, 'ॐ शं नो देवी०' मन्त्रका दोनों जानुओंमें, 'ॐ बृहद्रथन्तर०' मन्त्रका दोनों ऊरुओंमें

[1]-अभिघार (आघार) एवं आज्यभाग आहुतिविशेषका नाम है। यह कुशकण्डिका नामके विशेष कृत्यके सम्पादन-कालमें मुख्य आहुतियोंके पूर्व अवश्य करणीय है।

न्यास विहित है। देवके उदर भागमें भी इसी प्रकार न्यास करना चाहिये। तदनन्तर '**ॐ दीर्घायुष्ट्वाय०**' मन्त्रका देवके हृदयमें, '**ॐ श्रीश्चते०**' मन्त्रका गलेमें, '**ॐ त्रातारमिन्द्र०**' मन्त्रका वक्ष:स्थलमें, '**ॐ त्र्यम्बकं०**' मन्त्रका दोनों नेत्रोंमें तथा '**ॐ मूर्द्धा भव०**' मन्त्रका मस्तकमें न्यास करके विहित लग्नमुहूर्तमें हवन करे।

इसके पश्चात् '**ॐ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०**' मन्त्रसे देवमूर्तिका उत्थापन करके मन्त्रवेत्ता आचार्य '**देवस्य त्वा०**' मन्त्रसे मूर्तिका स्पर्श करते हुए वेदोक्त पुण्याहवाचनके साथ देवप्रासादकी प्रदक्षिणा करे। इसके अनन्तर विविध रत्न, विविध धातु, लौहद्रव्य एवं विधानके अनुसार अनेक प्रकारके सिद्धबीजोंके साथ दिक्पाल आदि देवताओंकी प्रदक्षिणा विहित है। इसके अनन्तर यथास्थान प्रधान देवप्रतिमाकी प्रतिष्ठा होनी चाहिये।

देवमूर्तिको मन्दिरके मुख्य गर्भभागमें स्थापित नहीं करना चाहिये और न उस गर्भका परित्याग करके अन्यत्र ही उसकी स्थापना होनी चाहिये, अपितु गर्भभागका कुछ मध्यभाग छोड़कर उसे स्थापित करनेसे दोषका परिहार हो जाता है। अत: तिलके कणमात्र परिमाणमें मूर्तिको उत्तरकी ओर कुछ बढ़ा लेना चाहिये।

'**ॐ स्थिरो भव**', '**शिवो भव**', '**प्रजाभ्यश्च नमो नमः**', '**देवस्य त्वा सवितु:०**' आदि मन्त्रोंसे गुरु देवमूर्तिका यथाविधि विन्यास एवं अभिमन्त्रण करे। साथ ही सुप्रतिष्ठित देवप्रतिमाको यथाविधान सम्पातकलशके जलसे ही स्नान कराना चाहिये।

तदनन्तर धूप-दीप, अन्य सुगन्धित पदार्थ तथा नैवेद्यसे उस देवप्रतिमाकी विधिवत् पूजा करके अर्घ्य प्रदान करे और प्रणाम निवेदन करके क्षमा-प्रार्थना करे।

उसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार यजमान ऋत्विजोंको पात्र, वस्त्र एवं उपवस्त्र, छत्र, सुन्दर बहुमूल्य अँगूठी तथा दक्षिणा देकर संतुष्ट करे। तदनन्तर सावधान होकर यजमान चतुर्थी होम करे। सौ आहुतियोंको देकर अन्तमें वह पूर्णाहुति प्रदान करे।

इसके बाद आचार्य मण्डपसे बाहर आकर दिक्पालोंको बलि प्रदान करके पुष्प लेकर '**क्षमस्व**' इस वाक्यसे उन देवोंका विसर्जन कर दे।

इस प्रकार यज्ञ पूर्ण होनेके पश्चात् आचार्यको कपिला धेनु, चामर, मुकुट, कुण्डल, छत्र, केयूर, कटिसूत्र, व्यजन (पंखा), वस्त्रादि वस्तुएँ, ग्राम तथा साज-सज्जापूर्ण सुन्दर भवन प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर आचार्य तथा अन्य सहयोगीजनोंके लिये सुन्दर विशाल भोजका आयोजन कराकर सबको संतुष्ट करना चाहिये। ऐसा करनेसे यजमान कृतार्थ हो जाता है और वास्तुदेवकी प्रसन्नतासे उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। (अध्याय ४८)

वर्ण एवं आश्रमधर्मोंका निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी महाराज! स्वायम्भुव मनु आदि शास्त्रकारोंके द्वारा पूज्य तथा सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेवाले भगवान् हरिकी पूजा ब्राह्मणादि चारों वर्ण अपने-अपने धर्मके अनुसार करते हैं। मैं पृथक्-पृथक् रूपसे उनके धर्मोंको कह रहा हूँ। आप उसे सुनें।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह, अध्ययन और अध्यापन—ये छः कर्म ब्राह्मणके धर्म हैं। दान, अध्ययन तथा यज्ञ—ये क्षत्रिय एवं वैश्यके साधारण धर्म हैं। इसके अतिरिक्त दण्ड क्षत्रियके लिये और कृषि करना वैश्यके लिये विशेष धर्म स्वीकार किया गया है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनों द्विजातियोंकी सेवा करना शूद्रोंका धर्म है। शिल्पकारी उनकी आजीविका है। धर्मानुसार वे पाकयज्ञ-संस्थाका निर्वहन भी कर सकते हैं।

भिक्षाचरण, गुरु-शुश्रूषा, स्वाध्याय, संध्या तथा अग्नि-कार्य—ये ब्रह्मचारियोंके धर्म हैं।

चारों आश्रमोंके दो भेद माने गये हैं। इसके अनुसार ब्रह्मचारीके उपकुर्वाण तथा नैष्ठिक—ये दो भेद हैं। जो द्विज विधिवत् वेदादिका अध्ययन करके गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट हो जाता है वह उपकुर्वाण है। जो मृत्युपर्यन्त गुरुकुलमें निवास करते हुए वेदाध्ययन करते रहते हैं—ब्रह्मतत्पर होते हैं, उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारीके नामसे जानना चाहिये।

हे द्विजश्रेष्ठ! अग्निकार्य, अतिथिसेवा, यज्ञ-दान और देवार्चन—ये सभी गृहस्थोंके संक्षिप्त धर्म हैं। गृहस्थके साधक और उदासीन दो प्रकार हैं। जो गृहस्थ परिवारके

भरण-पोषणमें लगा रहता है, वह साधक है। जो गृहस्थ पितृऋण, देवऋण और ऋषिऋण—इन तीनोंसे मुक्त होकर पत्नी-धनादिका भी त्याग करके एकाकी धर्माचरण करता हुआ विचरण करता रहता है, वह उदासीन गृहस्थ है। उसीको मौक्षिक भी कहते हैं।

भूमिशयन, फल-मूलका आहार, वेदाध्ययन, तप और अपनी सम्पत्तिका यथाधिकार यथोचित विभाग—ये सभी वानप्रस्थके धर्म हैं। जो वानप्रस्थ अरण्यमें तपश्चरण करता है, देवार्चन और उन्हें आहुति प्रदान करता है तथा स्वाध्यायमें सदैव अनुरक्त रहता है, वह वानप्रस्थ तापसोत्तम कहा जाता है। ऐसे ही जो वानप्रस्थ तपके द्वारा शरीरको अत्यन्त क्षीण करके ईश्वरके ध्यानमें सदा निमग्न रहता है, वह वानप्रस्थाश्रममें रहता हुआ भी संन्यासीके रूपमें जाना जाता है।

जो भिक्षु (संन्यासाश्रमी) नित्य योगाभ्यासमें अनुरक्त होकर ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये प्रयासरत एवं जितेन्द्रिय बना रहता है, उसको पारमेष्ठिक संन्यासी कहते हैं। जो सदैव आत्मतत्त्वानुसंधानमें प्रेम रखनेवाले हैं, नित्य तृप्त हैं, जो संयम-नियमसे रहते हैं, ऐसे महामुनि योगी भिक्षु कहे जाते हैं। भिक्षाचरण, वेदाध्ययन, मौनावलम्बन, तप, ध्यान, सम्यक् ज्ञान और वैराग्य—ये भिक्षुक (संन्यासाश्रमी)-के सामान्य धर्म माने गये हैं।

पारमेष्ठिक संन्यासी तीन प्रकारके हैं—ज्ञानसंन्यासी, वेदसंन्यासी एवं कर्मसंन्यासी। योगीके भी तीन प्रकार हैं—जिन्हें भौतिक, (क्षत्र) एवं अन्त्याश्रमी योगी कहते हैं। ये तीनों योगमूर्तिस्वरूप परमात्माका आश्रयकर स्थित रहते हैं।

इन योगियोंकी पृथक्-पृथक् ब्रह्मभावनाएँ होती हैं। प्रथम प्रकारकी ब्रह्मभावना भौतिक योगीमें रहती है। दूसरी (मोक्ष) भावना क्षत्र योगीमें रहती है, इसीको अक्षर भावना कहते हैं। तीसरी भावनाको अन्तिम भावना कहते हैं, जो पारमेश्वरी भावनाके नामसे भी जानी जाती है[1]।

मनुष्यको धर्मसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, अर्थसे काम-पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है। वेदमें प्रवृत्ति और निवृत्तिके भेदसे दो प्रकारके कर्म कहे गये हैं। वेदशास्त्रानुसार अग्नि आदि देव एवं गुरु-विप्रादिको प्रसन्न करनेके लिये जो कर्म विहित हैं, वे प्रवृत्तिकर्म हैं तथा सविधि कर्मानुष्ठानसे चित्तशुद्धिके अनन्तर आत्मज्ञानमात्रमें सदा रत रहना निवृत्तिकर्म है।

क्षमा, दम, दया, दान, निर्लोभता, स्वाध्याय, सरलता, अनसूया, तीर्थका[2] अनुसरण, सत्य, संतोष, आस्तिक्य, इन्द्रियनिग्रह, देवार्चन—विशेषकर ब्राह्मणोंका पूजन, अहिंसा, प्रियवादिता, अरूक्षता और अपैशुन्य (चुगली न करना)—इन सभीको चारों आश्रमोंका सामान्य धर्म स्वीकार किया गया है[3]।

इसके बाद अब मैं चारों वर्णोंको प्राप्त होनेवाले स्थानके विषयमें कह रहा हूँ।

उपर्युक्त वेद-विहित कर्मोंको करनेवाले ब्राह्मणोंके निमित्त प्राजापत्य नामका स्थान है (अर्थात् ब्राह्मण ऐसे धर्मोंका पालन करता हुआ अन्त समयमें प्राजापत्य लोक प्राप्त करता है)। युद्धमें न भागनेवाले धर्मरत क्षत्रियोंको स्वर्गमें इन्द्रका स्थान प्राप्त होता है। सदैव अपने धर्ममें अनुरक्त रहनेवाले वैश्य अन्तमें मरुद् देवके स्थानको प्राप्त करते हैं। ब्राह्मणादि द्विजोंकी सेवामें तत्पर रहनेसे शूद्रोंको गन्धर्वलोक प्राप्त होता है।

ऊर्ध्वरेतस् ब्रह्मनिष्ठ अट्ठासी सहस्र ऋषियोंने तपस्याके द्वारा जिस स्थानको प्राप्त किया था, वही स्थान गुरुकुलमें निवास करनेवाले ब्रह्मचारीको प्राप्त होता है। जो स्थान मरीचि, अत्रि आदि सप्तर्षियोंको प्राप्त है, वह स्थान वानप्रस्थाश्रमी प्राप्त करते हैं। संयमित चित्तवाले, ऊर्ध्वरेतस् संन्यासियोंको वह आनन्दरूप परब्रह्मपद प्राप्त होता है। जहाँसे पुनः आगमनकी सम्भावना नहीं होती। यह परब्रह्मपद व्योम नामके अक्षरतत्त्वके रूपमें, योगियोंके अमृतस्थानके

१-ब्रह्मभावनाके ये तीन भेद ब्रह्मानुसंधानकी प्राथमिक, माध्यमिक और अन्तिम स्थितिको दृष्टिमें रखकर किये गये हैं।

२-'तीर्थ' शब्द श्रेष्ठताका वाचक है।

३-क्षमा दमो दया दानमलोभा (भो) भ्यास एव च॥
आर्जवं चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा। सत्यं संतोष आस्तिक्यं तथा चेन्द्रियनिग्रहः॥
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः। अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमरूक्षता॥
एते आश्रमिका धर्माश्चातुर्वर्ण्यं ब्रवीम्यतः। (४९। २१—२४)

रूपमें एवं ईश्वरसम्बन्धी परम आनन्दके रूपमें प्रसिद्ध है। इस स्थानको प्राप्त करनेवाला मुक्त आत्मा पुन: संसारमें नहीं आता है। अभी जिस मुक्तात्माकी चर्चा की गयी है, उसको प्राप्त होनेवाली मुक्ति अष्टाङ्ग-मार्गका सम्यक्-ज्ञान रखनेसे प्राप्त होती है। अत: मैं संक्षेपमें उसे भी कह रहा हूँ। आप सुनें।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। प्राणीकी हिंसा न करना अहिंसा है। प्राणियोंके हितमें बोलना सत्य है। दूसरेकी वस्तु अपहरण न करना अस्तेय है। अमैथुनका पालन करना ब्रह्मचर्य है और सब कुछ त्याग देना अपरिग्रह है।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा प्रणिधान—ये पाँच नियम हैं। बाह्य और आभ्यन्तर रूपसे शौचके दो भेद हैं। इसी प्रकार संतोषको तुष्टि, इन्द्रिय-निग्रहको तप, मन्त्र-जपको स्वाध्याय और भगवत्पूजनादिको प्रणिधान कहते हैं[1]।

साधकके द्वारा पद्मादि प्रकारसे स्थित होना आसन कहा जाता है। वायुका निरोध करना प्राणायाम है। यह दो प्रकारका होता है। मन्त्रोच्चार करते हुए देवका ध्यान करना सगर्भ-प्राणायाम है। उसके विपरीत (अमन्त्रक, प्राणायाम) अगर्भ-प्राणायाम है। यह दो प्रकारका प्राणायाम प्रकारान्तरसे तीन प्रकारका कहा गया है। यथा—वायु अंदर खींचकर अवस्थित होना पूरक नामक प्राणायाम है। वायुको रोककर देहेन्द्रियोंको स्थिर करना कुम्भक और उस वायुको धीरे-धीरे बाहर निकालना रेचक नामक प्राणायाम है।

बारह मात्रावाला[2] प्राणायाम 'लघु' है। चौबीस मात्राका प्राणायाम 'मध्यम' तथा छत्तीस मात्रावाला प्राणायाम 'उत्तम' है।

अपने-अपने विषयोंसे असम्बद्ध इन्द्रियोंके द्वारा चित्तके स्वरूपमात्रका अनुकरण करना एक विशेष प्रकारका निरोध है और इसी निरोधको प्रत्याहार कहते हैं। ब्रह्मके साथ आत्माका अभेद चिन्तन करना (ब्रह्माकारवृत्तिका अखण्ड प्रवाह) ध्यान है। उस कालमें मनके द्वारा धैर्यका अवलम्बन करना (ध्येयमें चित्तकी निश्चलरूपमें स्थिति) धारणा है।

'अहं ब्रह्म' इस प्रकार अभेद ज्ञानके साथ ब्रह्मरूपमें अवस्थिति ही समाधि है। मैं आत्मा ही परमात्मा—परब्रह्म हूँ। वह परब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानरूप और अनन्त है। वही ब्रह्म है। उसीको विज्ञान कहते हैं। वही आनन्दस्वरूप है, उसीका 'तत्त्वमसि' इस श्रुतिसे बोध कराया गया है। 'मैं ब्रह्म हूँ', 'मैं अशरीरी, इन्द्रियातीत हूँ, मन, बुद्धि, महत्तत्त्व, अहङ्कारादिसे रहित, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओंसे मुक्त जो ब्रह्मका तेज:स्वरूप है, मैं वही हूँ। नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य, आनन्दस्वरूप, अद्वय कहा जानेवाला जो वह आदित्य पुरुष है, वही मैं पूर्ण पुरुष हूँ।' इस प्रकार ब्रह्मका ध्यान करता हुआ ब्राह्मण भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। (अध्याय ४९)

संध्योपासन, तर्पण, देवाराधन आदि नित्य कर्मों तथा आशौचका निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—जो मनुष्य प्रतिदिन शास्त्रविहित क्रियाओंको करता है, उसको दिव्य ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अत: ब्राह्म-मुहूर्तमें उठकर मनुष्यको धर्म और अर्थका चिन्तन करना चाहिये।

उष:काल होनेपर विद्वान् व्यक्ति सर्वप्रथम अपने हृदयकमलमें विराजमान आनन्दघन, अजर, अमर, सनातन पुरुष भगवान् हरिका ध्यान करे। तदनन्तर यथाविधि शौचादि आवश्यक क्रियाओंसे निवृत्त होकर पवित्र नदियोंमें स्नान करे। प्रात:काल स्नान करनेसे पापकर्म करनेवाले मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिये यत्नपूर्वक प्रात:काल स्नान करना चाहिये। प्रात:कालके स्नानकी लोगोंने प्रशंसा की है, क्योंकि यह स्नान लौकिक और पारलौकिक

१-यमा: पञ्च त्वहिंसाद्या अहिंसा प्राण्यहिंसनम्॥

सत्यं भूतहितं वाक्यमस्तेयं स्वाग्रहं परम्। अमैथुनं ब्रह्मचर्यं सर्वत्यागोऽपरिग्रह:॥

नियमा: पञ्च सत्याद्या बाह्यमाभ्यन्तरं द्विधा। शौचं तुष्टिश्च संतोषस्तपश्चेन्द्रियनिग्रह:॥

स्वाध्याय: स्यान्मन्त्रजाप: प्रणिधानं हरेर्यजि:। (४९। ३०—३३)

२-प्रणवके जपकी प्रक्रियामें 'मात्रा'का विशेष महत्त्व है। उस मात्राके अनुसार बारह बार प्रणव-जपके साथ सम्पन्न प्राणायामको 'द्वादशमात्रिक', चौबीस बार प्रणव-जपके साथ सम्पन्न प्राणायामको 'चतुर्विंशतिमात्रिक' और छत्तीस बार प्रणव-जपके साथ सम्पन्न प्राणायामको 'षट्त्रिंशन्मात्रिक' कहा जाता है। यहाँ प्रणवके स्थानपर बीजमन्त्र भी दिया जा सकता है।

फलोंको प्रदान करनेमें समर्थ होता है।

रात्रिमें सुखपूर्वक सोये हुए व्यक्तिके मुखसे निरन्तर लार आदि अपवित्र मल गिरते रहते हैं। (अतः सम्पूर्ण शरीर अपवित्र हो जाता है।) इसलिये प्रथमतः स्नान करके ही संध्या-वन्दनादिके धार्मिक कृत्य करने चाहिये (बिना प्रातःकाल स्नान-कृत्य किये संध्या-वन्दनादि करना उचित नहीं है)।

प्रातःस्नान करनेसे अलक्ष्मी, कालकर्णी अर्थात् विघ्न डालनेवाली अनिष्टकारी शक्तियाँ, दुःस्वप्न एवं दुर्विचारसे होनेवाले चिन्तनके पाप धुल जाते हैं, इसमें संशय नहीं। यह स्मरणीय है कि बिना स्नानके किये गये कार्य प्रशस्त नहीं होते। अतएव होम और जपादिके कार्योंमें विशेषरूपसे सबसे पहले विधिवत् स्नान करना चाहिये।

अशक्त होनेपर बिना सिरपर जल डाले ही स्नान करनेका विधान है। आर्द्र वस्त्रसे भी शरीरको पोंछा जा सकता है। इसको कायिक स्नान कहते हैं।

ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण और यौगिक— ये छः प्रकारके स्नान हैं, यथाधिकार मनुष्यको स्नान करना चाहिये। मन्त्रोंसहित कुशके द्वारा जल-बिन्दुओंसे मार्जन करना ब्राह्म-स्नान है। सिरसे लेकर पैरतक यथाविधान भस्मके द्वारा अङ्गोंका लेपन आग्नेय-स्नान है। गोधूलिसे शरीरको पवित्र करना वायव्य-स्नान कहा गया है। यह उत्तम स्नान माना जाता है। धूपके साथ होनेवाली वृष्टिमें किये गये स्नानको दिव्य-स्नान कहते हैं। जलमें अवगाहन करना वारुण-स्नान है। योगद्वारा हरिका चिन्तन यौगिक स्नान है। इसीको मानस-आत्मवेदन (ब्रह्माकार अखण्ड चित्तवृत्ति) कहते हैं। यह यौगिक स्नान ब्रह्मवादियोंके द्वारा सेवित है, इसे ही आत्मतीर्थ भी कहते हैं।

(स्नानके पूर्व) दुग्धधारी वृक्षोंसे उत्पन्न काष्ठ, मालती, अपामार्ग, बिल्व अथवा करवीर अर्थात् कनेरकी दातौन लेकर उत्तर या पूर्व दिशाकी ओर पवित्र स्थानमें बैठकर दाँतोंको स्वच्छ करना चाहिये और उसे धोकर उसका पवित्र स्थानमें त्याग करना चाहिये।

तदनन्तर स्नान करके देवताओं, ऋषियों और पितृगणोंका विधिवत् तर्पण करना चाहिये। यहाँ यथाशास्त्र स्नानका अङ्गभूत आचमन एवं संध्योपासनके अङ्गभूत आचमनका विधान है। संध्योपासनके अङ्गरूपमें ही कुशोदक बिन्दुओंसे **'आपो हि ष्ठा०'** आदि वारुणमन्त्र एवं यथाविधान सावित्रीमन्त्रके द्वारा मार्जन करना विहित है। इसी क्रममें **ॐकार** और 'भूः भुवः स्वः' इन व्याहृतियोंसे युक्त वेदमाता गायत्रीका जप करके अनन्यभावसे भगवान् सूर्यके प्रति जलाञ्जलि समर्पित करे (सूर्यार्घ्य प्रदान करे)।

इसी क्रममें पूर्वकी ओर अग्रभागवाले कुशोंके आसनपर समाहितचित्तसे बैठकर प्राणायाम करके संध्या-ध्यान करनेका श्रुतिमें विधान है। यह जो संध्या है, वही जगत्‌की सृष्टि करनेवाली है, मायासे परे है, निष्कला, ऐश्वरी, केवला शक्ति तथा तीन तत्त्वोंसे समुद्भूत है। अतः अधिकारी व्यक्ति (प्रातःकाल) रक्तवर्ण, (मध्याह्नकाल) शुक्लवर्ण एवं (सायंकाल) कृष्णवर्ण गायत्रीका ध्यान करके गायत्रीमन्त्रका जप करे।

द्विजको सदैव पूर्वाभिमुख होकर संध्योपासन करना चाहिये। संध्या-कृत्यसे रहित ब्राह्मण सदा अपवित्र रहता है, वह सभी कार्योंके लिये अयोग्य होता है। वह जो भी अन्य कोई कार्य करता है, उसका कुछ भी फल उसे प्राप्त नहीं होता। अनन्यचित्त होकर वेदपारङ्गत ब्राह्मणोंने विधिवत् संध्योपासन करके अपने पूर्वजोंके द्वारा प्राप्त उत्तम गतिको प्राप्त किया है। संध्योपासनका त्यागकर जो द्विजोत्तम अन्य किसी धर्म-कार्यके लिये प्रयत्न करता है, उसे दस हजार वर्षोंतक नरक भोग करना पड़ता है। अतः सभी प्रकारका प्रयत्न करके संध्योपासन अवश्य करना चाहिये[1]।

उस संध्योपासनकर्मसे योगमूर्ति परमात्मा भगवान् नारायण पूजित हो जाते हैं। अतः अधिकारीको चाहिये कि वह पवित्र होकर पूर्वाभिमुख बैठ करके नित्य संयत-भावसे एक सहस्र या एक सौ अथवा दस बार गायत्रीका

१-प्राङ्मुखः सततं विप्रः संध्योपासनमाचरेत्। संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु॥
यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलभाग्भवेत्। अनन्यचेतसः संतो ब्राह्मणा वेदपारगाः॥
उपास्य विधिवत्संध्यां प्राप्ताः पूर्वपरां गतिम्। योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः॥
विहाय संध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन संध्योपासनमाचरेत्॥
उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः। (५०। २१—२५)

जप (अवश्य) करे। गायत्रीका एक सहस्र जप उत्तम, एक सौ जप मध्यम तथा दस बार किया गया जप कनिष्ठ जप कहलाता है।

एकाग्रचित्त होकर उदय होते हुए भगवान् भास्करका उपस्थान करे। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदमें आये हुए विविध सौर मन्त्रोंसे देवाधिदेव महायोगेश्वर भगवान् दिवाकरका उपस्थान करके पृथिवीपर मस्तक टेककर इस मन्त्रसे प्रणाम करे—

ॐ खखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे॥
निवेदयामि चात्मानं नमस्ते ज्ञानरूपिणे।
त्वमेव ब्रह्म परममापो ज्योती रसोऽमृतम्॥
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः सर्वो रुद्रः सनातनः।

(५०। २८—३०)

शान्तस्वरूप भगवान् भास्कर आप सृष्टि, स्थिति और संहार—इन तीनों कारणोंके कारण हैं, आप ज्ञानस्वरूप हैं। मैं आपको आत्मनिवेदन करता हूँ, आप ही परब्रह्म हैं, आप ही ज्योतिःस्वरूप, अप्-स्वरूप, रसरूप तथा अमृतस्वरूप हैं। भूः, भुवः, स्वः—ये तीनों आप ही हैं और आप ही ॐकाररूप, सर्वस्वरूप रुद्र तथा अविनाशी हैं, आपको नमस्कार है।

इस उत्तम आदित्यहृदय-स्तोत्रका जप करके भगवान् दिवाकरको प्रातः और मध्याह्न (तथा सायंकाल)-में नमस्कार करना चाहिये।

इसके पश्चात् घर आ करके ब्राह्मण पुनः विधिवत् आचमन करे।

तदनन्तर उसे अग्निको प्रज्वलित करके विधिवत् भगवान् अग्निदेवको आहुति प्रदान करनी चाहिये। मुख्य अधिकारीकी अशक्तावस्थामें उसकी आज्ञा प्राप्त करके ऋत्विक् पुत्र अथवा पत्नी, शिष्य या सहोदर भ्राता भी हवन करे। मन्त्रविहीन एवं विधिकी उपेक्षा करके किया गया कोई भी कर्म इस लोक या परलोकमें फल देनेवाला नहीं होता।

तदनन्तर देवताओंको नमस्कार करके (अर्घ्य, पाद्य, चन्दन, सुगन्धित पदार्थका अनुलेपन, वस्त्र तथा नैवेद्यादि) पूजाके उपचारोंको निवेदनकर गुरुका पूजन करे और उनके हित-साधनमें लग जाय। तत्पश्चात् प्रयत्नपूर्वक यथाशक्ति द्विजको वेदाभ्यास करना चाहिये और उसके बाद इष्ट मन्त्रोंका जप (वेदपारायण) करके शिष्योंके अध्यापन-कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये। वह शिष्योंको वेदार्थ धारण कराये और दत्तचित्त होकर वेदार्थका विचार करे। द्विजोत्तम धर्मशास्त्र आदि विविध शास्त्रोंका अवलोकन करे और वेदादि निगमशास्त्रों (उपनिषदों) तथा व्याकरणादि वेदाङ्गोंका अच्छी प्रकार अवलोकन करे। इसके बाद वह पुनः योग-क्षेमके लिये राजा या श्रीमान्‌के पास जाय और अपने परिवारके लिये विविध प्रकारके अर्थोंका उपार्जन करे।

इसके पश्चात् मध्याह्न कालके आनेपर स्नान करनेके लिये शुद्ध मिट्टी, पुष्प, अक्षत, तिल, कुश और गोमय (गायके गोबर) आदि पदार्थोंको एकत्र करना चाहिये। उसके बाद नदी, देव, पोखर, तड़ाग या सरोवरमें आकर स्नान करे। प्रत्येक दिन तडाग, सरोवर या नदी आदिसे पाँच मृत्तिकापिण्ड बिना निकाले स्नान करना दोषयुक्त होता है। (अतः पाँच पिण्ड मिट्टी निकाल करके ही स्नान करना चाहिये।) स्नानके समय (स्नानके लिये लायी गयी) मिट्टीके एक भागसे सिर धोना चाहिये, दूसरे भागसे नाभिके ऊपरी भागको और तीसरे भागसे नाभिसे नीचेके भागका तथा मृत्तिकाके छठे भागसे पैरोंका प्रक्षालन करना चाहिये। इन मृत्तिकापिण्डोंको परिमाणमें पके हुए आँवलेके फलके समान होना चाहिये। मृत्तिकाके समान ही गोमय स्नान भी होना चाहिये। तदनन्तर शरीरके अङ्गोंको विधिवत् धोकर आचमन करके स्नान करना चाहिये।

जलाशयके तीरपर स्थित होकर ही मृत्तिका, गोमय आदिका अपने अङ्गोंमें लेपन करना चाहिये और इस लेपनके अङ्गभूत स्नानके अनन्तर पुनः वारुण (वरुणदेवताके)-मन्त्रोंसे जलाशयके जलका अभिमन्त्रण करके पुनः जल-स्नान करना चाहिये; क्योंकि जल भगवान् विष्णुका ही रूप है। यह स्नानकी प्रक्रिया प्रणवस्वरूप भगवान् सूर्यका दर्शनकर जलाशयमें तीन बार निमज्जन (डुबकी लगाना)-से पूरी होती है। तदनन्तर स्नानाङ्ग आचमन करके नीचे लिखे मन्त्रसे आचमन करे—

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः॥
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्।

(५०। ४५-४६)

हे जलदेव! आप समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणरूपी गुहामें विचरण करते हैं। आप सर्वत्र मुखवाले हैं। आप ही यज्ञ हैं। आप ही वषट्कार हैं। आप ही ज्योतिःस्वरूप तेज और आप ही अमृतमय रसस्वरूप हैं।

'द्रुपदादिव०' इस मन्त्रका तीन बार उच्चारण अथवा प्रणव एवं व्याहृतियोंसहित सावित्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। विद्वान् अघमर्षण-मन्त्रका जप करे। तदनन्तर '**ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः**', '**इदमापः प्रवहत**' तथा व्याहृतियोंसे मार्जन करना चाहिये। अनन्तर '**आपो हि ष्ठा०**' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा अभिमन्त्रित जलसे अघमर्षण-मन्त्रका तीन बार जप करते हुए अघमर्षण सम्पन्न करना चाहिये। अघमर्षणके अनन्तर '**द्रुपदादिव०**' आदि मन्त्र अथवा गायत्री-मन्त्र या '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' आदि मन्त्र अथवा प्रणवकी आवृत्ति करनी चाहिये और देवाधिदेव श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये। जिस जलको हाथमें लेकर अघमर्षण-क्रिया एवं मार्जन-क्रिया सम्पन्न की जाती है, उस जलको अपने सिरपर धारण करनेसे सभी प्रकारके पातकोंसे मुक्ति मिलती है। संध्योपासनके अनन्तर आचमन करके सदा परमेश्वरका स्मरण करना चाहिये। पुष्पसे युक्त अञ्जलिको शिरोभागसे लगाकर सूर्यका उपस्थान करना चाहिये और उपस्थानके बाद अपनी अञ्जलिके पुष्पोंको भगवान् सूर्यके चरणोंमें अर्पित करना चाहिये। उदित होते हुए सूर्यको नहीं देखना चाहिये, अतः विशेष मुद्राद्वारा ही उनका दर्शन करना चाहिये। '**ॐ उदुत्यं०**', '**चित्रं०**', '**तच्चक्षु०**'—इन मन्त्रोंसे तथा '**ॐ हꣳसः शुचिषद्०**' इस मन्त्रसे और सावित्रीके विशेष मन्त्रसे एवं अन्य सूर्यसे सम्बन्धित वैदिक मन्त्रोंसे सूर्यका उपस्थान करना चाहिये। तदनन्तर पूर्वाग्र कुशाओंके आसनपर बैठकर सूर्यका दर्शन करते हुए समाहितचित्तसे गायत्री-मन्त्र एवं अन्य विहित मन्त्रोंका जप करना चाहिये। मन्त्र-जपके लिये स्फटिक, रुद्राक्ष अथवा पुत्रजीव (जीवन्तिका) या अब्जाक्षसे निर्मित मालाका प्रयोग करना चाहिये।

यदि आर्द्र वस्त्रोंवाला हो तो जलके मध्य खड़े होकर जप करना चाहिये। अन्यथा (सूखे वस्त्रोंकी स्थितिमें) पवित्र भूमिमें कुशासनपर बैठकर एकाग्रचित्त होकर जप करना चाहिये। जपके पश्चात् प्रदक्षिणाकर भूमिपर दण्डवत् नमस्कार करना चाहिये। तदनन्तर आचमन करके यथाशक्ति अपनी शाखाके अनुसार स्वाध्याय करे। उसके बाद देवों, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। मन्त्रोंके प्रारम्भमें ॐकारका और अन्तमें 'नमः' का प्रयोगकर प्रत्येक देव, ऋषि और पितृका तर्पण कर रहा हूँ—ऐसा कहकर तर्पण करे। देवताओं और मरीच्यादि ब्रह्मर्षियोंका तर्पण अक्षत और जलके साथ करना चाहिये। पितृगणों, देवों और मुनियोंके लिये अपने शाखासूत्रके विधानसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। तर्पण जलाञ्जलियोंके द्वारा करे। देवताओंका तर्पण यज्ञोपवीती अर्थात् सव्य होकर देवतीर्थसे करे और निवीती होकर (कण्ठमें यज्ञोपवीत कर) ऋषियोंका ऋषितीर्थसे तथा प्राचीनावीती अर्थात् अपसव्य होकर पितृतीर्थसे पितरोंका तर्पण करे।

तदनन्तर हे हर! स्नानमें प्रयुक्त वस्त्रको निचोड़कर मौन होकर आचमन करके मन्त्रोंसे पुष्प, पत्र तथा जलसे ब्रह्मा, शिव, सूर्य एवं मधुसूदन विष्णुदेवका पूजन करे। क्रोधरहित होकर भक्तिपूर्वक अन्य अभीष्ट देवोंकी भी पूजा करनी चाहिये। 'पुरुषसूक्त' के द्वारा पुष्पादि समर्पित करे। जल सर्वमय देव है अर्थात् समस्त देवता जलमें व्याप्त रहते हैं। अतः उस जलमात्रसे भी ये सभी देवता पूजित होते हैं। इस पूजामें पूजकको समाहितचित्त होना चाहिये तथा प्रणवके साथ देवताका ध्यान करना चाहिये। उसके बाद प्रणाम करते हुए समस्त देवोंको पृथक्-पृथक् पुष्पाञ्जलि समर्पित करे।

देवताओंकी आराधनाके बिना कोई भी वैदिक कर्म पुण्यप्रद नहीं होता है। अतएव समस्त कार्योंके आदि, मध्य और अन्तमें हृदयसे भगवान् हरिका ध्यान करना चाहिये। '**ॐ तद्विष्णोरिति०**' मन्त्र तथा पुरुषसूक्तके मन्त्रोंका जप करते हुए उस निर्मल विष्णुके परमतेजके सामने आत्मनिवेदन करे अर्थात् शरणागत हो जाय।

उसके बाद विष्णुमें अनुरक्तचित्त, शान्तस्वभाव वह भक्त '**तद्विष्णोः०**' इस मन्त्रसे और '**अप्रेतेसशिराः०**' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित पुष्पासनपर विराजमान हरिकी पुनः पूजा करके देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मानुषयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ नामक पञ्चयज्ञोंको करे। तर्पणसे पूर्व ब्रह्मयज्ञ कैसे हो सकता है? अतः मानुषयज्ञ करके स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) करना चाहिये।

वैश्वदेव ही देवयज्ञ है। काक आदि प्राणियोंके लिये जो बलि प्रदान की जाती है, वह भूतयज्ञ है। हे द्विजोत्तम! चाण्डाल एवं पतित आदिको घरके बाहर अन्न देना चाहिये और कुत्ता आदि पशुओं तथा पक्षियोंको घरके बाहर भूमिपर अन्न देना चाहिये। पितरोंके उद्देश्यसे प्रतिदिन एक ब्राह्मणको भोजन कराये। पितरोंके निमित्त जो नित्य श्राद्ध

किया जाता है, उसीको पितृयज्ञ कहते हैं। यह उत्तम गति प्रदान करनेवाला है।

अथवा समाहितचित्त होकर यथाशक्ति कुछ कच्चा अन्न निकालकर वैदिक तत्त्ववेत्ता विद्वान् ब्राह्मणको प्रदान करे। प्रतिदिन अतिथि-सत्कार करना चाहिये। घरपर आये हुए शान्तस्वभाव द्विज (ब्राह्मण)-को मन, और वचनसे स्वागतपूर्वक नमस्कार करे तथा उनका अर्चन करे।

एक ग्रास परिमाणमात्र अन्नको 'भिक्षा' कहा गया है। उसका जो चार गुना अन्न है उसको 'पुष्कल' तथा उस पुष्कलके चार गुना अन्नको 'हन्तकार भिक्षा' कहते हैं।

गोदोहनमात्र कालतक अतिथिके आगमनकी प्रतीक्षा स्वयं करनी चाहिये। आये हुए अभ्यागत (अतिथि)-का सत्कार यथाशक्ति करना चाहिये।

ब्रह्मचारी भिक्षुकको विधिवत् भिक्षा देनी चाहिये। लोभसे रहित होकर याचकोंको अन्न प्रदान करे। तत्पश्चात् अपने बन्धुजनोंके साथ मौन होकर अन्नकी निन्दा न करते हुए भोजन करे।

हे द्विजश्रेष्ठ! जो देवयज्ञादि पञ्चयज्ञोंको बिना किये भोजन करते हैं, वे मूढात्मा तिर्यक्-योनि (पक्षियोंकी योनि)-में जाते हैं। यथाशक्ति प्रतिदिन किये जानेवाले वेदाभ्यासके साथ पञ्चमहायज्ञ एवं देवतार्चन शीघ्र ही सभी पापोंको नष्ट कर देते हैं। जो मोहवश अथवा आलस्यके कारण बिना देवार्चन किये ही भोजन करता है, उसे नाना प्रकारके कष्टदायक नरकोंमें जाकर सूकरकी योनिमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है।

अब मैं अशौचका सम्यक् प्रकारसे वर्णन करता हूँ। जो अपवित्र है, वह सदा पातकी है। अपवित्र व्यक्तियोंके संसर्गसे अशौच होता है और उनके संसर्गका परित्याग कर देनेसे शरीर पवित्र हो जाता है। हे द्विजोत्तम! सभी विद्वान् ब्राह्मण दस दिनोंका अशौच मानते हैं। यह अशौच मृत्यु अथवा जन्म दोनोंमें होता है। दाँत निकलनेके पूर्वतक बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः स्नान करनेसे अशौचकी निवृत्ति हो जाती है। उसके बाद चूडा (मुण्डन)-संस्कारपर्यन्त बालककी मृत्यु होनेपर एक रात्रिका अशौच होता है।

उपनयन-संस्कारके पूर्वतक बालककी मृत्यु होनेपर तीन रात्रियोंका अशौच होता है। उपनयन-संस्कारके बाद किसीका मरण होनेपर यथाविधान दस रात्रिका अशौच ब्राह्मणोंको होता है।

क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पंद्रह दिनोंमें तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। क्योंकि इनको यथाक्रम बारह दिनका, पंद्रह दिनका एवं एक मासका अशौच होता है। संन्यासियोंको अशौच नहीं लगता है। गर्भस्राव होनेपर गर्भमासके अनुसार जितने मासका गर्भ हो, उतनी रात्रिका अशौच होता है। (अर्थात् एक मासका गर्भस्राव होनेपर एक रात्रि, दो मासका गर्भस्राव होनेपर दो रात्रिका अशौच होता है। इसी क्रममें अन्य मासोंकी गणना करके अशौचकी रात्रियोंका निश्चय करना चाहिये।) (अध्याय ५०)

दानधर्मका निरूपण एवं विभिन्न देवताओंकी उपासना

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं सर्वोत्तम दानधर्मके विषयमें कह रहा हूँ—

सत्पात्रमें श्रद्धापूर्वक किये गये अर्थ (भोग्यवस्तु)-का प्रतिपादन (विनियोग) दान कहलाता है—ऐसा दानधर्मवित्-जनोंका कहना है। यह दान इस लोकमें भोग और परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक ही अर्थका उपार्जन करे, क्योंकि न्यायसे उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है।

अध्यापन, याजन तथा प्रतिग्रह—ये तीनों ब्राह्मणोंकी वृत्ति (आजीविका) हैं। उनके लिये कुसीद अर्थात् सूदखोरी, कृषिकर्म तथा वाणिज्य अथवा क्षत्रियवृत्ति (युद्धादि कृत्य) त्याज्य है। उक्त सद्वृत्तिसे प्राप्त हुआ धन यदि सुयोग्य पात्रोंको दिया जाता है तो उसीको दान कहा जाता है। यह नित्य, नैमित्तिक, काम्य और विमल—चार प्रकारका कहा गया है।

फलकी अभिलाषा न रखकर प्रत्युपकारकी भावनासे रहित होकर ब्राह्मणको प्रतिदिन जो दान दिया जाता है, वह नित्यदान है। अपने पापोंकी शान्तिके लिये विद्वान् ब्राह्मणोंके हाथोंपर जो धन दिया जाता है, सत्पुरुषोंके द्वारा अनुष्ठित ऐसा दान नैमित्तिक दान है। संतान, विजय, ऐश्वर्य और

स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छासे जो दान किया जाता है, उसको धर्मवेत्ता ऋषिगण काम्य दान कहते हैं। ईश्वरकी प्रसन्नताको प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मवित्-जनोंको सत्त्ववृत्तिसे युक्त चित्तवाले मनुष्यके द्वारा जो दान दिया जाता है, वह विमल दान है। यह दान कल्याणकारी है।

ईखकी हरी-भरी फसलसे युक्त या यव-गेहूँकी फसलसे सम्पन्न (शस्य-श्यामल) भूमिका दान वेदविद् ब्राह्मणोंको जो देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। भूमिदानसे श्रेष्ठ दान न हुआ है और न होगा ही।

ब्राह्मणको विद्या प्रदान करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति प्रतिदिन ब्रह्मचारीको श्रद्धापूर्वक विद्या प्रदान करता है, वह सभी पापोंसे विमुक्त होकर ब्रह्मलोकके परमपदको प्राप्त करता है।

वैशाखमासकी पूर्णिमा तिथिको उपवास रखकर जो व्यक्ति पाँच या सात ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा करके उन्हें मधु, तिल और घृतसे संतुष्ट करता है तथा उनकी गन्धादिसे भली प्रकार पूजा करके उनसे यह कहलवाता है या स्वयं कहता है—

प्रीयतां धर्मराजेति यथा मनसि वर्तते॥

(५१। १३)

(हे धर्मराज! मेरे मनमें जैसा भाव है, उसीके अनुकूल आप प्रसन्न हों।)

—ऐसा कहनेपर उसके जन्मभर किये गये समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं।

जो व्यक्ति स्वर्ण, मधु एवं घीके साथ तिलोंको कृष्ण-मृगचर्ममें रखकर ब्राह्मणको देता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है।

वैशाखमासमें घृत, अन्न और जलका दान करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है। अतः उस मासमें धर्मराजको उद्देश्य करके घृत, अन्न और जलका दान ब्राह्मणोंके लिये अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे सभी प्रकारके भयसे मुक्ति हो जाती है। द्वादशी तिथिमें स्वयं उपवास रखकर पापोंका विनाश करनेवाले भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे निश्चित ही मनुष्यके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य जिस देवताकी पूजा करनेके लिये इच्छा करता है, उसकी पूजा वह अपने इष्टको प्राप्त करनेके लिये करे और उसको उस देवकी प्रतिमूर्ति मानकर प्रयत्नपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करके उन्हें भोजन भी कराये। साथ ही सौभाग्यवती स्त्रियों तथा अन्य देवोंको भी पूजन-भोजनादिके द्वारा संतुष्ट करे।

संतान-प्राप्तिके इच्छुक व्यक्तिको इन्द्रदेवका पूजन करना चाहिये। ब्रह्मवर्चस्‌की कामना करनेवाला व्यक्ति ब्रह्मरूपमें ब्राह्मणोंको स्वीकार करके उनकी पूजा करे। आरोग्यकी इच्छावाला मनुष्य सूर्यकी तथा धन चाहनेवाला मनुष्य अग्निकी पूजा करे। कार्योंमें सिद्धि प्राप्त करनेकी अभिलाषा करनेवाला व्यक्ति विनायक (गणेश)-का पूजन करे। भोगकी कामना होनेपर चन्द्रमाकी तथा बल-प्राप्तिकी इच्छा होनेपर वायुकी पूजा करे। संसारसे मुक्त होनेकी अभिलाषा होनेपर प्रयत्नपूर्वक भगवान् हरिकी आराधना करनी चाहिये। निष्काम तथा सकाम सभी मनुष्योंको भगवान् गदाधर हरिकी पूजा करनी चाहिये।

जलदानसे तृप्ति, अन्नदानसे अक्षय सुख, तिलदानसे अभीष्ट संतान, दीपदानसे उत्तम नेत्र, भूमिदानसे समस्त अभिलषित पदार्थ, सुवर्णदानसे दीर्घ आयु, गृहदानसे उत्तम भवन तथा रजतदानसे उत्तम रूपकी प्राप्ति होती है।[1]

वस्त्र प्रदान करनेसे चन्द्रलोक तथा अश्वदान करनेसे अश्विनीकुमारके लोककी प्राप्ति होती है। अनडुह् (बैल)-का दान देनेसे विपुल सम्पत्तिका लाभ और गोदानसे सूर्यलोक प्राप्त होता है।

यान और शय्याका दान करनेपर भार्या तथा भयार्त (भयभीत)-को अभय प्रदान करनेसे ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। धान्य-दानसे शाश्वत (अविनाशी) सुख तथा वेदके (वेदाध्यापन) दानसे ब्रह्माका सांनिध्य लाभ होता है। वेदविद् ब्राह्मणको ज्ञानोपदेश करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति तथा गायको घास देनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। ईंधन (अग्निको प्रज्वलित करने)-के लिये काष्ठ आदिका दान करनेपर व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोंके रोगशान्तिके लिये औषधि, तेल आदि

१-वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षयमन्नदः। तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः। गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥ (५१। २२-२३)

पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित होकर सुखी और दीर्घायु हो जाता है।

छत्र और जूतेका दान करनेवाला मनुष्य प्रचण्ड धूपके कारण तीक्ष्ण तापवाले तथा तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाली नुकीली पत्तियोंसे परिव्याप्त असिपत्रवन नामके नारकीय मार्गोंको पार कर जाता है। जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उसे अपने लिये संसार या घरमें जो वस्तु अभीष्टतम है तथा प्रिय है, उस वस्तुका दान गुणवान् ब्राह्मणको करना चाहिये।[1]

उत्तरायण[2], दक्षिणायन[3], महाविषुवत्काल[4], सूर्य तथा चन्द्रग्रहणमें एवं कर्क-मेष-मकरादिकी संक्रान्तियोंके आनेपर ब्राह्मणोंको दिया गया दान परलोकमें अक्षय सुख देनेवाला होता है। इस प्रकारके दानका महत्त्व प्रयागादि तीर्थोंमें बहुत है, गया-क्षेत्रके तीर्थोंमें किया गया दान विशेष महत्त्व रखता है।[5]

दान-धर्मसे बढ़कर श्रेष्ठ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके लिये कोई दूसरा नहीं है। दान स्वर्ग, आयु तथा ऐश्वर्यको प्राप्त करनेकी इच्छासे और अपने पापोंकी उपशान्तिके लिये भी किया जाता है। गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा देवोंको दिये जानेवाले दानसे जो मनुष्य मोहवश दूसरोंको रोकता है, वह पापी तिर्यक् (पक्षीकी)-योनिको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति दुर्भिक्षकालमें और मरणासन्न ब्राह्मणको अन्नादिका दान नहीं करता है, वह ब्रह्महत्या करनेवालेके समान तथा अति निन्दित है। (अध्याय ५१)

प्रायश्चित्त-निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्राह्मणो! अब इसके बाद मैं प्रायश्चित्त-विधिको भली प्रकार कह रहा हूँ—

ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला ब्रह्महन्ता, मदिरा-पान करनेमें निरत मद्यपी, चोरी करनेवाला स्तेयी तथा गुरुकी पत्नीके साथ गमन करनेवाला गुरुतल्पगामी (गुरुपत्नीगामी)—ये चार महापातकी हैं। इन सभीका संसर्ग (साथ) करनेवाला पाँचवाँ महापातकी है। गोहत्यादि जो अन्य पाप होते हैं—वे उपपातक हैं, ऐसा देवताओंका कहना है।

जिसने ब्रह्महत्या की है, उसे वनमें स्वयं पर्णकुटी बनाकर उसीमें उपवास करते हुए बारह वर्षोंतक रहना चाहिये अथवा पर्वतके उस ऊँचे भागसे गिरकर अपने प्राणोंका परित्याग करना चाहिये, जिस भागसे गिरनेपर कहीं बीचमें रुकनेकी सम्भावना न हो और मरण निश्चित हो। इसके अतिरिक्त जलती हुई अग्निमें प्रवेशकर प्राण-परित्याग, अगाध जलमें प्रवेशकर प्राण-परित्याग, ब्राह्मण या गौकी रक्षाके लिये प्राण-परित्याग भी ब्रह्महत्या-दोषके निवारक होते हैं। इतना अवश्य ध्यानमें रखना है कि ब्रह्महत्याके दोष-निवारणके लिये प्राण-परित्यागके जो साधन बताये गये हैं, उनको करनेके पहले यथाशक्ति विद्वान् ब्राह्मणको अन्नदान करना अनिवार्य है।

अश्वमेध-यज्ञके अन्तमें होनेवाले अवभृथ-स्नानसे ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। वेदविद् ब्राह्मणको सर्वस्व दान करनेसे ब्रह्महत्याजनित पापका नाश हो जाता है। सरस्वतीजी, गङ्गा तथा यमुना—इन नदियोंके

१-वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः। अनडुद्दः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः। धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम्॥
वेदवित्सु ददज्ज्ञानं स्वर्गलोके महीयते। गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः। औषधं स्नेहमाहारं रोगिरोगप्रशान्तये॥
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च। असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितम्॥
तीक्ष्णातपं च तरतिच्छत्रोपानत्प्रदो नरः। यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे॥
तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता। अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्। (५१। २४—३०)

२-मकर-राशिसे मिथुन राशितक सूर्यके रहनेके कालको उत्तरायण कहते हैं। यह माघ माससे आषाढ़ मासतकका काल है।

३-कर्क राशिसे धनु राशितक सूर्यके रहनेके कालको दक्षिणायन कहते हैं। यह श्रावण माससे पौष मासतकका काल है।

४-जिस कालमें दिन-रात दोनों बराबर होते हैं, वह विषुवकाल कहा जाता है। यह काल तुला और मेषकी सूर्य-संक्रान्तिका होता है।

५-प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायां च विशेषतः॥ (५१। ३१)

पवित्र संगमपर तीन रात्रियोंतक उपवास रख करके प्रतिदिन तीनों कालोंमें स्नान करके भी द्विज ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। सेतुबन्ध रामेश्वरम् (कपालमोचन तीर्थ या वाराणसीके पवित्र तीर्थ)-में स्नान करके ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति हो जाती है।

मद्यपी द्विज अग्निवर्णके सदृश (अन्त:करणको जला देनेवाली) खौलती हुई मदिरा अथवा दूध, घृत या गोमूत्रका पान करके तज्जनित पापसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सुवर्णकी चोरी करनेवाला राजाओंके द्वारा दण्डरूपमें मूसलप्रहारसे पापमुक्त हो जाता है अथवा जीर्ण-शीर्ण वस्त्र धारण करके वनमें ब्रह्महत्यानाशक प्रायश्चित्त-व्रतको करनेसे पापमुक्त हो जाता है।

कामसे मोहित ब्राह्मण यदि अपने गुरुकी पत्नीके पास जाता है तो उसे इस गुरुपत्नीगमनरूप पापसे मुक्त होनेके लिये जलती हुई—तपती हुई लौह-निर्मित स्त्रीका सर्वाङ्ग आलिङ्गन करना चाहिये। अथवा ब्रह्महत्याके पापसे मुक्तिके लिये जो व्रत विहित है, उस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। चार या पाँच चान्द्रायणव्रत करनेसे भी गुरुपत्नीगमनजनित पापसे मुक्ति हो सकती है।

जो द्विज पतितजनोंका संसर्ग करता है, उसे विभिन्न संसर्गोंसे होनेवाले पापोंको दूर करनेके लिये उन-उन पापोंके निमित्त कहे गये व्रतोंका पालन करना चाहिये। अथवा वह आलस्यसे रहित होकर एक संवत्सरपर्यन्त तप्तकृच्छ्रव्रतका अनुपालन करे। विधिवत् किया गया सर्वस्वदान सभी पापोंको दूर करनेवाला होता है। अथवा विधिवत् चान्द्रायणव्रत तथा अतिकृच्छ्रव्रत भी सभी पापोंको दूर करनेवाला होता है।

गया आदि पुण्यक्षेत्रोंकी यात्रा करनेसे भी ऐसे पापोंका विनाश हो जाता है। अमावास्या तिथिमें जो महादेव भगवान् शङ्करकी सम्यक्-रूपसे आराधना करके ब्राह्मणोंको भोजन प्रदान कराता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

जो मनुष्य कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें उपवास रखकर संयतचित्तसे पवित्र नदीमें स्नान करके ॐकारसे युक्त यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल तथा सर्वभूतक्षय—इन नामोंका उच्चारणकर तिलसे संयुक्त सात जलाञ्जलियोंसे तर्पण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

इन व्रतोंके पालन करते समय शान्त रहकर तथा मनका निग्रहकर, ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भूमिपर सोना चाहिये और उपवास रखकर ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। (कार्तिक) शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिमें उपवास रखकर सप्तमी तिथिको सूर्यदेवकी पूजा करनेसे भी सभी प्रकारके पापोंसे मुक्ति हो जाती है।

शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें निराहार रहकर जो द्वादशी तिथिमें जनार्दन भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, वह समस्त महापापोंसे मुक्त हो जाता है।

सूर्य-चन्द्र-ग्रहण आदि समयोंमें मन्त्रका जप, तपस्या, तीर्थसेवन, देवार्चन तथा ब्राह्मण-पूजन—ये सभी कृत्य भी महापातकोंको नष्ट करनेवाले होते हैं। समस्त पापोंसे युक्त मनुष्य भी पुण्य-तीर्थोंमें जाकर नियमपूर्वक अपने प्राणोंका परित्यागकर समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

पतिव्रता नारी पतिके देहावसानके बाद पतिका वियोग असह्य होनेके कारण पति-धर्मके अनुसार पतिके शरीरके साथ शास्त्रीय विधिका पालन करते हुए अग्निमें प्रवेश करती है तो ब्रह्महत्या, कृतघ्नता आदि बड़े-बड़े पातकोंसे दूषित भी अपने पतिका उद्धार कर देती है।

जो स्त्री पतिव्रता है, अपने पतिकी सेवा-शुश्रूषामें दत्तचित्त रहती है, उसको इस लोक तथा परलोकमें कोई पाप नहीं लगता। वह वैसे ही निर्दोष रहती है, जैसे दशरथपुत्र श्रीरामकी पत्नी जगद्विख्यात भगवती सीतादेवी लङ्कामें रहकर भी निर्दोष रहीं तथा (अपने पातिव्रतके प्रभावसे) उन्होंने राक्षसराज रावणपर विजय प्राप्त की।

हे यतव्रत! संयतचित्त होकर विविध शास्त्रीय व्रतका अनुष्ठान करनेवाले! भगवान् विष्णुने मुझसे बहुत पहले ही यह बताया था कि गयामें स्थित फल्गु (नदी) आदि तीर्थोंमें यथाविधि श्रद्धाके साथ स्नान करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके पातकोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त सदाचरणका फल भी प्राप्त करता है। (अध्याय ५२)

नवनिधियोंके लक्षणोंसे युक्त पुरुषके ऐश्वर्य एवं स्वभावका वर्णन

सूतजीने कहा—भगवान् विष्णुसे अष्टनिधियोंके विषयमें सुनकर ब्रह्माजीने उनका वर्णन इस प्रकार किया था कि 'पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द (नन्द), नील और शङ्ख नामकी अष्टनिधियाँ' हैं। नवीं निधि मिश्र कहलाती है। अब मैं उनके स्वरूपका वर्णन करता हूँ।

पद्मनिधिके लक्षणोंसे सम्पन्न मनुष्य सात्त्विक और दाक्षिण्य गुणसे सम्पन्न होता है। वह सुवर्ण-चाँदी आदि मूल्यवान् धातुओंका संग्रह करके यतियों, देवताओं और याज्ञिकोंको दान करता है। महापद्म-चिह्नसे लक्षित व्यक्ति भी अपने संग्रहीत धन आदिका दान धार्मिक जनोंको करता रहता है। पद्म तथा महापद्मनिधिसम्पन्न पुरुष सात्त्विक स्वभाववाले कहे गये हैं।

मकरनिधिके चिह्नसे चिह्नित मनुष्य खड्ग, बाण एवं कुन्त (भाला) आदि अस्त्रोंका संग्रह करनेवाला होता है। वह नित्य श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दान देता है और राजाओंके साथ उसकी सदैव मित्रता बनी रहती है। द्रव्यादिका आहरण करनेके लिये वह शत्रुओंका विनाश करता है और युद्धके लिये सदा तत्पर रहता है। कच्छपनिधि-लक्षित व्यक्ति तामस गुणवाले होते हैं। कच्छप-चिह्नसे युक्त व्यक्ति किसीपर विश्वास नहीं करता है। वह न अपनी सम्पत्तिका स्वयं उपभोग करता है और न तो उसमेंसे वह किसीको कुछ देता ही है। वह एकान्तमें जाकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिको पृथिवीमें गाड़कर छिपा देता है। उसकी सम्पत्ति एक पीढ़ीतक रहती है।

मुकुन्दनिधिके चिह्नसे अंकित पुरुष रजोगुणसम्पन्न होता है। वह राज्य-संग्रहमें लगा रहता है, वह भोगोंका उपभोग करते हुए गायक और वेश्या आदिको धन देता है।

नन्दनिधिसे युक्त व्यक्ति राजस और तामस गुणोंवाला होता है। वही कुलका आधार बनता है। वह स्तुति करनेपर प्रसन्न होता है तथा बहुत-सी स्त्रियोंका पति होता है। पूर्वकालके मित्रोंमें उसकी प्रीति शिथिल होती है और वह अन्य नये मित्रोंके साथ प्रेम करने लगता है।

नीलनिधिके चिह्नसे सुशोभित मानव सात्त्विक तेजसे संयुक्त होता है। वह वस्त्र-धान्यादिका संग्रह तथा तडागादिका निर्माण करता है। उसके द्वारा (जनहितमें) आम्रादिके उद्यान भी लगवाये जाते हैं। उसकी सम्पत्ति तीन पीढ़ीतक रहती है।

शङ्खनिधि एक ही पुरुष (पीढ़ी)-के लिये होती है। इससे समन्वित मनुष्य धनादिका स्वयं तो उपभोग करता है, किंतु उसके परिजन कुत्सित अन्नका भोजन तथा अच्छे न लगनेवाले मैले-कुचैले वस्त्रोंसे जीवनयापन करते हैं। वह स्वयंके भरण-पोषणमें सदैव तत्पर रहता है। यदि वह किसीको कुछ वस्तु देता भी है तो वह व्यर्थकी वस्तु होती है (जिसका कोई उपयोग नहीं होता)।

मिश्र (मिली-जुली)-निधिके चिह्नसे युक्त होनेपर मनुष्यके स्वभावमें मिश्रित फल दिखलायी देते हैं।

भगवान् विष्णुने भी निधियोंके ऐसे ही स्वरूपका वर्णन शिव आदि देवोंसे किया था (उसको मैंने आप सभीको सुना दिया)। अब हरिने भुवनकोशादिका जैसा वर्णन किया था, वैसा ही मैं कह रहा हूँ। (अध्याय ५३)

भुवनकोशवर्णनमें राजा प्रियव्रतके वंशका निरूपण

श्रीहरिने कहा—राजा प्रियव्रतके आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, शबल, पुत्र और ज्योतिष्मान् नामके दस पुत्र हुए थे।

इन पुत्रोंमेंसे मेधा, अग्निबाहु तथा पुत्र नामक तीन पुत्र योगपरायण (योगी), जातिस्मर (इन्हें पूर्वजन्मका वृत्तान्त विस्मृत नहीं हुआ था) तथा महासौभाग्यशाली थे। इन लोगोंने राज्यके प्रति अपनी कोई अभिरुचि प्रकट नहीं की, अतः राजाने सप्तद्वीपा पृथिवीको अपने अन्य सात पुत्रोंमें विभक्त कर दिया।

पचास करोड़ योजनमें विस्तृत सम्पूर्ण पृथिवी नदीकी जलराशिमें तैरती हुई नौकाके समान चारों ओर अवस्थित अथाह जलके ऊपर स्थित है।

हे शिव! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा पुष्कर नामक ये सात द्वीप हैं, जो सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। उन सात समुद्रोंके नाम लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और जलके सागररूपमें प्रसिद्ध हैं। हे

वृषभध्वज! ये सभी द्वीप तथा समुद्र उक्त क्रममें एक-दूसरेसे द्विगुण परिमाणमें अवस्थित हैं।

जम्बूद्वीपमें मेरु नामक पर्वत है, जो एक लाख योजनके परिमाणमें फैला हुआ है। इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। इसका अधोभाग पृथिवीमें सोलह हजार योजन धँसा हुआ है और शिखरदेश बत्तीस हजार योजन विस्तृत है। इसका अधोभाग जो पृथिवीके ऊपर सन्निहित है, वह भी सोलह हजार योजनके विस्तारमें कर्णिकाके रूपमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें हिमालय, हेमकूट तथा निषध, उत्तरमें नील, श्वेत और शृंगी नामक वर्षपर्वत हैं।

हे रुद्र! प्लक्ष आदि द्वीपोंके निवासी मरणादिसे मुक्त हैं। उनमें युग या अवस्थाके आधारपर कोई विषमता नहीं है।

जम्बूद्वीपके राजा आग्नीध्रके नौ पुत्र उत्पन्न हुए। उन सभीका नाम क्रमशः—नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल था। राजाने उन सभी पुत्रोंको उनके नामसे ही अभिहित (प्रसिद्ध) एक-एक भूखण्ड प्रदान किया। हे हर! राजा नाभि और उनकी पत्नी मेरुदेवीसे ऋषभ नामक पुत्र हुए थे, उनसे भरत नामके पुत्र हुए, जो शालग्रामतीर्थमें स्थित रहकर विभिन्न व्रतोंके पालनमें ही निरत रहते थे। उन भरतसे सुमति नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र तैजस हुआ।

तैजसके इन्द्रद्युम्न, इन्द्रद्युम्नसे परमेष्ठी, परमेष्ठीके प्रतीहार तथा प्रतीहारसे प्रतिहर्ता नामक पुत्र कहे गये हैं।

प्रतिहर्ताके पुत्र प्रस्तार, प्रस्तारके पुत्र विभु, विभुके पुत्र नक्त और नक्तके पुत्र गय नामके राजा हुए।

गयका पुत्र नर हुआ। नरसे विराट्, विराट्से महातेजस्वी धीमान्, धीमान्से भौवन नामके पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भौवनके त्वष्टा, त्वष्टाके विरजा, विरजाके रज, रजके शतजित् तथा शतजित्के विष्वग्ज्योति नामक पुत्र हुआ था। (अध्याय ५४)

भारतवर्षका वर्णन

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! जम्बूद्वीपके मध्यभागमें इलावृत नामक वर्ष है। उसके पूर्वमें अद्भुत भद्राश्ववर्ष तथा उसके पूर्व-दक्षिण (अग्निकोण)-में हिरण्वान् नामक वर्ष है।

मेरुके दक्षिणभागमें किम्पुरुषवर्ष कहा गया है। उसके दक्षिणभागमें भारतवर्ष कहा गया है। मेरुके दक्षिण-पश्चिममें हरिवर्ष, पश्चिममें केतुमालवर्ष, पश्चिमोत्तरमें रम्यक् और उत्तरमें कुरुवर्ष स्थित हैं, जिनके भू-भाग कल्पवृक्षोंसे आच्छादित हैं।

हे रुद्र! भारतवर्षको छोड़कर अन्य सभी वर्षोंमें सिद्धि स्वभावसे ही प्राप्त हो जाती है। यहाँ इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल और वारुण नामक आठ वर्ष हैं। नवाँ वर्ष भारतवर्ष है, जो चतुर्दिक् समुद्रसे घिरा हुआ है।

इस (भारतवर्ष)-के पूर्वमें किरात तथा पश्चिममें यवन देश स्थित हैं। हे रुद्र! दक्षिणमें आन्ध्र, उत्तरमें तुरुष्क आदि देश हैं। इस भारतवर्षमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-वर्णके लोग रहते हैं।

यहाँ महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं। इस वर्षमें वेद, स्मृति, नर्मदा, वरदा, सुरसा, शिवा, तापी, पयोष्णी, सरयू, कावेरी, गोमती, गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, महानदी, केतुमाला, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, सरस्वती, ऋषिकुल्या, कावेरी, मत्तगङ्गा, पयस्विनी, विदर्भा, शतद्रू नामक मङ्गल प्रदान करनेवाली तथा पापविनाशिनी नदियाँ हैं, जिनके जलका पान मध्यदेशादिके निवासीजन करते हैं।

पाञ्चाल, कुरु, मत्स्य, यौधेय, पटच्चर, कुन्त तथा शूरसेन देशके निवासी मध्यदेशीय हैं। पाद्म, सूत, मागध, चेदि, काशेय तथा विदेह पूर्वमें स्थित हैं। कोशल, कलिंग, वंग, पुण्ड्र, अंग और विदर्भ-मूलकजनोंके देश और विन्ध्यपर्वतके अन्तर्गत विद्यमान देश पूर्व तथा दक्षिणके तटवर्ती भूभागमें स्थित हैं। पुलिन्द, अश्मक, जीमूत, नय राष्ट्रमें निवास करनेवाले, कर्णाटक, कम्बोज तथा घण—ये दक्षिणापथ भूभागके निवासी हैं। अम्बष्ठ, द्रविड, लाट, कम्भोज, स्त्रीमुख, शक और आनर्तवासी दक्षिण-पश्चिमके निवासी हैं।

स्त्रीराज्य, सैन्धव, म्लेच्छ, नास्तिक, यवन, मथुरा तथा निषधके रहनेवाले लोगोंके देश पश्चिमी भूभाग हैं। माण्डव्य,

तुषार, मूलिका, अश्वमुख, खश, महाकेश, महानास देश उत्तर-पश्चिमभागमें स्थित हैं।

लम्बक, स्तननाग, माद्र, गान्धार, बाह्लिक तथा म्लेच्छ देश हिमाचलके उत्तरतटवर्ती भूभागमें स्थित हैं। त्रिगर्त, नील, कोलात, ब्रह्मपुत्र, सटङ्कण, अभीषाह और कश्मीर देश उत्तर-पूर्व-दिशामें अवस्थित कहे गये हैं। (अध्याय ५५)

प्लक्ष तथा पुष्कर आदि द्वीपों एवं पाताल आदिका निरूपण

श्रीहरिने कहा—प्लक्षद्वीपके स्वामी मेधातिथिके सात पुत्र थे। उन सबमें शान्तभव नामक पुत्र ज्येष्ठ था। उससे छोटा शिशिर था। तदनन्तर सुखोदय, नन्द, शिव और क्षेमक हुए। उनका जो सातवाँ भाई था, वह ध्रुव नामसे प्रसिद्ध हुआ—ये सभी प्लक्षद्वीपके राजा बने।

इस द्वीपमें गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमनस और वैभ्राज नामक सात पर्वत हैं। यहाँ अनुतप्ता, शिखी, विपाशा, त्रिदिवा, क्रमु, अमृता तथा सुकृता नामकी सात नदियाँ प्रवाहित होती रहती हैं।

वपुष्मान् शाल्मलद्वीपके स्वामी थे। उस द्वीपमें अवस्थित सात वर्षोंके नामसे ही प्रसिद्ध उनके सात पुत्र थे, जिनके नाम श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सप्रभ हैं।

यहाँ कुमुद, उन्नत, द्रोण, महिष, बलाहक, क्रौञ्च तथा ककुद्मान् नामक सात पर्वत हैं। योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी और विधृति—ये सात नदियाँ हैं। ये पापोंका प्रशमन करनेवाली हैं।

कुशद्वीपमें ज्योतिष्मान्‌का स्वामित्व था। उनके भी सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे उद्भिद, वेणुमान्, द्वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल नामसे प्रसिद्ध थे। उन्हींके नामसे इस द्वीपके जो सात वर्ष थे, वे प्रसिद्ध हुए। यहाँ विद्रुम, हेमशैल, द्युमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि तथा मन्दराचल नामक सात वर्षपर्वत हैं। यहाँ धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सन्मति, विद्युदभ्र, मही और काशा नामकी ये सात नदियाँ हैं, जो सब प्रकारके पापोंको विनष्ट करनेवाली हैं।

हे शिव! क्रौञ्चद्वीपके अधीश्वर महात्मा द्युतिमान्‌के भी सात पुत्र हुए। कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये उनके नाम हैं।

यहाँ क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, दिवावृत्, महाशैल, दुन्दुभि तथा पुण्डरीकवान् नामके सात वर्षपर्वत हैं। यहाँपर गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका—ये सात नदियाँ (प्रवाहित होती रहती) हैं।

शाकद्वीपके राजा भव्यके भी सात पुत्र उत्पन्न हुए। वे जलद, कुमार, सुकुमार, अरुणीवक, कुसुमोद, समोदार्कि तथा महाद्रुम नामसे ख्याति प्राप्त थे। यहाँ सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और गभस्ति नामसे प्रसिद्ध सात नदियाँ हैं।

पुष्करद्वीपके स्वामी महाराज शबलके महावीर तथा धातकि नामक दो पुत्र हुए। उन्हींके नामसे यहाँपर दो वर्ष हैं। इन दोनोंके मध्य एक ही मानसोत्तर नामक वर्षपर्वत है। यह पचास सहस्र योजनमें विस्तृत तथा इतना ही ऊँचा है। यह चतुर्दिक् विस्तारमें भी उसी परिमाणको प्राप्तकर मण्डलाकार अवस्थित है। इस पुष्करद्वीपको स्वादिष्ट जलवाला समुद्र चारों ओरसे घेरकर स्थित है। उस स्वादिष्ट जलवाले समुद्रके सामने उससे द्विगुण जनजीवनसे रहित स्वर्णमयी भूमिवाली जगत्‌की स्थिति दिखायी देती है। वहाँपर दस हजार योजनमें फैला हुआ लोकालोक नामक पर्वत है। वह अन्धकारसे आच्छादित है और वह अन्धकार भी अण्डकटाहसे आवृत है।

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! इस भूमिकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन है। इसमें दस-दस सहस्र योजनकी दूरीपर एक-एक पाताललोक स्थित हैं, जिन्हें अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल तथा पाताल कहा जाता है।

इन लोकोंकी भूमि कृष्ण, शुक्ल, अरुण, पीत, शर्करा-सदृश, शैलमयी तथा स्वर्णमयी है। वहाँपर दैत्य तथा नागोंका निवास है। हे रुद्र! दारुण पुष्करद्वीपमें जो नरक स्थित हैं, उनके विषयमें आप सुनें। वहाँ रौरव, सूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विमोहित, रुधिर, वैतरणी, कृमिश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, नानाभक्ष (लालाभक्ष), दारुण, पूयवह, पाप, वह्निज्वाल,

अधःशिरा, संदंश, कृष्णसूत्र, तमस्, अवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ तथा उष्णवीचि नामक नरक हैं। उनमें विष देनेवाले, शस्त्रसे हत्या करनेवाले तथा अग्निसे जलाकर मारनेवाले पापीजन अपने-अपने पापका फलभोग करते हैं।

हे रुद्र! यथाक्रम उनके ऊपर अन्य लोकोंकी स्थिति है। उन लोकोंको क्रमशः— जल, अग्नि, वायु तथा आकाश घेरे हुए है। इस प्रकार अवस्थित ब्रह्माण्ड प्रधान तत्त्वसे आवेष्टित है। वह ब्रह्माण्ड अन्य ब्रह्माण्डोंकी अपेक्षा दस गुना अधिक है। इसे परिव्याप्तकर स्वयं नारायण अवस्थित रहते हैं। (अध्याय ५६-५७)

भुवनकोश-वर्णनमें सूर्य तथा चन्द्र आदि नौ ग्रहोंके रथोंका विवरण

श्रीहरिने कहा—हे वृषभध्वज! अब मैं सूर्यादि ग्रहोंकी स्थिति एवं उनके परिमाणसे सम्बन्धित विषयका वर्णन कर रहा हूँ।

सूर्यदेवके रथका विस्तार नौ हजार योजन है। उसका ईषादण्ड अर्थात् जुआ तथा रथके बीचका जो भाग है, वह उस रथ-विस्तारका दुगुना है। उसकी धुरी एक करोड़ सत्तावन लाख योजन लम्बी है तथा उसमें चक्र लगा हुआ है। उस चक्रकी (पूर्वाह्न, मध्याह्न तथा अपराह्णरूप) तीन नाभियाँ हैं, (परिवत्सरादिक) पाँच अरे हैं, (वसन्तादि षड्ऋतुरूपी) छः नेमियाँ हैं तथा अक्षयस्वरूपवाले संवत्सरसे युक्त उस चक्रमें सम्पूर्ण कालचक्र सन्निहित है। सूर्यके रथकी दूसरी धुरी चालीस हजार योजन लम्बी है।

हे वृषभध्वज! रथके जो पहियोंके अक्ष हैं, वे साढ़े पाँच हजार योजन लम्बे हैं। रथके कहे गये प्रधान दोनों अक्षोंके परिमाणके समान जुएके दोनों अर्द्धोंकी लम्बाई है। सबसे छोटा अक्ष जुएके अर्द्धभाग-परिमाणवाला है, जो रथके ध्रुवाधारपर अवस्थित है। रथके दूसरे अक्षमें चक्र लगा हुआ है, जो मानसोत्तर पर्वतपर स्थित है।

गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् तथा पंक्ति नामक—ये सात छन्द ही सूर्यके सात घोड़े कहे गये हैं।

चैत्रमासमें सूर्यके इस रथपर धाता नामक आदित्य, क्रतुस्थला नामकी अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकि नाग, रथकृत् ग्रामणी, हेति नामका राक्षस और तुम्बुरु गन्धर्व स्थित रहते हैं। वैशाखमासमें इस रथपर अर्यमा नामवाले आदित्य, पुलह ऋषि, रथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थला अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छनीर सर्प तथा नारद नामक गन्धर्व आसीन रहते हैं। ज्येष्ठमासमें सूर्यके इस रथमें मित्र नामक आदित्य, अत्रि ऋषि, तक्षक नाग, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, हाहा नामक गन्धर्व और रथस्वन यक्षका वास रहता है।

आषाढ़मासमें इस रथके ऊपर वरुण नामसे प्रसिद्ध आदित्य, वसिष्ठ ऋषि, रम्भा तथा सहजन्या नामक अप्सरा, हूहू गन्धर्व, रथचित्र नामक यक्ष एवं राक्षसगुरु शुक्र निवास करते हैं। श्रावणमासमें इस रथपर इन्द्र नामसे विख्यात आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, स्रोत नामक यक्ष, एलापत्र सर्प, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा और सर्प नामक राक्षसोंका निवास रहता है। भाद्रपदमासमें विवस्वान् नामक आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भृगु ऋषि, आपूरण नामक यक्ष, अनुम्लोचा नामक अप्सरा, शंखपाल नामक सर्प तथा व्याघ्र राक्षसका सूर्य-रथमें निवास रहता है।

आश्विनमासमें इस रथपर पूषा नामक आदित्य, सुरुचि नामक गन्धर्व, धाता एवं गौतम ऋषि, धनञ्जय नाग, सुषेण तथा घृताची अप्सराका वास होता है। कार्तिकमासमें पर्जन्य नामके आदित्य, विश्वावसु गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, ऐरावत सर्प, विश्वाची अप्सरा, सेनजित् यक्ष एवं आप नामक राक्षसका निवास उस रथपर रहता है। मार्गशीर्षमासमें अंशु नामक आदित्य, कश्यप ऋषि, तार्क्ष्य, महापद्म नाग, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व और विद्युत् नामक राक्षस उस रथमें संचरण करते हैं।

पौषमासमें भर्ग नामके आदित्य, क्रतु ऋषि, उर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोटक नाग, अरिष्टनेमि यक्ष तथा पूर्वचित्ति नामक अप्सरा सूर्यमण्डलमें निवास करते हैं। माघमासमें त्वष्टा नामक आदित्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, ऋतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र नामक गन्धर्व सूर्यमण्डलमें रहते हैं। फाल्गुनमासमें विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और

यज्ञापेत राक्षसका उस रथमें वास रहता है।

हे ब्रह्मन्! भगवान् विष्णुकी शक्तिसे तेजोमय बने मुनिगण सूर्यमण्डलके सामने उपस्थित रहकर उनकी स्तुति करते हैं, गन्धर्वजन यशोगान करते हैं। अप्सराएँ नृत्य करती हैं। राक्षस उस रथके पीछे-पीछे चलते हैं। सर्प उस रथको वहन करते हैं और यक्षगण उसकी बागडोर सँभालनेका कार्य करते हैं। बाल्यखिल्य नामक ऋषिगण उस रथको सब ओरसे घेरकर स्थित रहते हैं।

चन्द्रमाका रथ तीन पहियोंवाला है। उसके घोड़े कुन्द-पुष्पके समान श्वेतवर्णवाले हैं। वे रथके जुएमें बायें और दाहिने दोनों ओर जुतकर उसे खींचते हैं। उनकी संख्या दस है।

चन्द्रमाके पुत्र बुधका रथ जल तथा अग्निसे मिश्रित द्रव्यका बना हुआ है। उसमें वायुके समान वेगशाली पिशंग (भूरे) वर्णके आठ घोड़े जुते रहते हैं।

शुक्रका महान् रथ सैन्यबलसे युक्त, अनुकर्ष (रथको सुदृढ बनानेके लिये सम्पन्न रथके नीचे लगा काष्ठविशेष), ऊँचे शिखरवाला, पृथिवीपर उत्पन्न होनेवाले घोड़ोंसे संयुक्त, उपासङ्ग (तरकश) तथा ऊँची पताकासे विभूषित है।

भूमिपुत्र मंगलका महान् रथ तपाये गये स्वर्णके सदृश काञ्चन वर्णवाला है। उसमें आठ घोड़े लगे रहते हैं, जो अग्निसे प्रादुर्भूत हैं तथा पद्मरागमणिके समान अरुण वर्णके हैं।

आठ पाण्डुर (कुछ पीलापन लिये हुए सफेद) वर्णके घोड़ोंसे युक्त स्वर्णके रथपर विद्यमान बृहस्पति एक-एक राशिमें एक-एक वर्ष स्थित रहते हैं।

शनिका रथ आकाशसे उत्पन्न हुए चितकबरे घोड़ोंसे युक्त है। वे उसमें चढ़कर धीरे-धीरे चलते हैं। उनका मन्दगामी भी नाम है।

स्वर्भानु अर्थात् राहुके [रथमें] आठ घोड़े हैं, जो भ्रमरके सदृश काले हैं। उसका रथ धूसर[1] वर्णका है। हे भूतेश शिव! उन घोड़ोंको एक बार रथमें जोत दिये जानेपर वे निरन्तर चलते रहते हैं। इसी प्रकार केतुके रथमें भी वायुके समान वेगवाले आठ घोड़े हैं। उनके वर्णोंकी आभा पुवालसे निकलनेवाले धुएँके सदृश तथा लाक्षारसकी भाँति अरुण रंगकी है।

[हे शिव! इस प्रकार सूर्य-चन्द्रादि उपर्युक्त ग्रहोंसे युक्त] द्वीप, नदी, पर्वत, समुद्र आदिसे समन्वित समस्त भुवन-मण्डल भगवान् विष्णुका विराट् शरीर ही है।

(अध्याय ५८)

ज्योतिश्चक्रमें वर्जित नक्षत्र, उनके देवता एवं कतिपय शुभ-अशुभ योगों तथा मुहूर्तोंका वर्णन

श्रीसूतजीने कहा—[ऋषियो!] केशवने भगवान् शिवसे पृथिवीका परिमाण बताकर कहा कि हे रुद्र! ज्योतिष्-शास्त्रकी गणना चार लाखमें है, पर उनमेंसे मैं अब ज्योतिश्चक्र अर्थात् नक्षत्रोंसे युक्त राशिचक्रका संक्षेपसे वर्णन करूँगा, जो सब कुछ देनेवाला है।

श्रीहरिने कहा—हे शिव! कृत्तिका नक्षत्रके देवता अग्नि हैं। रोहिणी नक्षत्रके देवता ब्रह्मा हैं। मृगशिराके चन्द्रमा तथा आर्द्राके रुद्र देवता कहे गये हैं। इसी प्रकार पुनर्वसुके आदित्य तथा तिष्य पुष्यके गुरु हैं। आश्लेषा नक्षत्रके सर्प तथा मघा नक्षत्रके देवता पितृगण हैं। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रके देवता भाग्य (भग), उत्तराफाल्गुनीके अर्यमा, हस्तके सविता और चित्राके देवता त्वष्टा हैं। स्वाती नक्षत्रके देवता वायु और विशाखा नक्षत्रके देवता इन्द्राग्नि हैं। अनुराधा नक्षत्रके देवता मित्र और ज्येष्ठाके शक्र (इन्द्र) देवता कहे गये हैं। नक्षत्रज्ञ विद्वानोंने मूल नक्षत्रका देवता निर्ऋतिको बताया है। पूर्वाषाढ नक्षत्रके देवता आप तथा उत्तराषाढके विश्वेदेव हैं। अभिजित्के देवता ब्रह्मा और श्रवणके विष्णु कहे गये हैं। धनिष्ठा नक्षत्रके देवता वसु तथा शतभिषाके वरुण कहे गये हैं। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रके देवता अजपाद, उत्तराभाद्रपदके अहिर्बुध्न्य, रेवतीके पूषा, अश्विनीके अश्विनीकुमार और भरणीके यम देवता कहे गये हैं।

प्रतिपदा तथा नवमी तिथिमें ब्रह्माणी नामकी योगिनी पूर्व दिशामें अवस्थित रहती है। द्वितीया और दशमी तिथिमें माहेश्वरी नामक योगिनी उत्तर दिशामें रहती है। पञ्चमी तथा त्रयोदशी तिथिमें वाराही नामक योगिनी दक्षिण दिशामें स्थित रहती है।

१-थोड़े पाण्डु वर्णको धूसर और कुछ पीलापन लिये सफेद वर्णको पाण्डुरवर्ण कहते हैं।

षष्ठी और चतुर्दशी तिथिमें इन्द्राणी नामकी योगिनीका वास पश्चिममें होता है। सप्तमी और पौर्णमासी तिथिमें चामुण्डा नामसे अभिहित योगिनीका निवास वायुगोचर अर्थात् वायव्यकोणमें रहता है। अष्टमी तथा अमावास्यामें महालक्ष्मी नामकी योगिनी ईशानकोणमें रहती है। एकादशी एवं तृतीया तिथिमें वैष्णवी नामकी योगिनी अग्निकोणमें वास करती है। द्वादशी और चतुर्थी तिथिमें कौमारी नामवाली योगिनीका निवास नैर्ऋत्यकोणमें रहता है। योगिनीके सम्मुख रहनेपर यात्रा नहीं करनी चाहिये।

अश्विनी, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त और ज्येष्ठा नक्षत्र प्रस्थान (यात्रा)-के लिये प्रशस्त कहे गये हैं।

हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा—ये पाँच नक्षत्र तथा उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, धनिष्ठा और पुनर्वसु नक्षत्र नवीन वस्त्र धारण करनेके लिये श्रेष्ठ हैं।

कृत्तिका, भरणी, अश्लेषा, मघा, मूल, विशाखा तथा पूर्वाभाद्रपद, पूर्वाषाढ और पूर्वाफाल्गुनी—इन नक्षत्रोंको अधोमुखी कहा गया है। इन अधोमुखी नक्षत्रोंमें वापी, तडाग, सरोवर, कूप, भूमि, तृण आदिका खनन, देवालयके लिये नींवादिके खननका शुभारम्भ, भूमि आदिमें गड़ी हुई धन-सम्पत्तिकी खुदाई, ज्योतिश्चक्रका गणनारम्भ और सुवर्ण, रजत, पन्ना तथा अन्य धातुओंको प्राप्त करनेके लिये भू-खदानोंमें प्रविष्ट होना आदि अन्य अधोमुखी कार्य इन अधोमुखी नक्षत्रोंमें करने चाहिये। रेवती, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा एवं ज्येष्ठा नक्षत्र पार्श्वमुखी हैं। इन पार्श्वमुखी नक्षत्रोंमें हाथी, ऊँट, अश्व, बैल तथा भैंसेको वशमें करनेका उपाय करना चाहिये। (अर्थात् इनके नाक आदिमें छेद करके छल्ला या रस्सी डालनेका कार्य करना चाहिये।)

खेतोंमें बीज बोना, गमनागमन, चक्रयन्त्र (चरखी, चरसा, रहट आदि यन्त्र) अथवा रथ एवं नौकादिका क्रय और निर्माण उक्त पार्श्वमुखी नक्षत्रोंमें करना चाहिये और अन्य पार्श्व कार्योंको भी इन पार्श्व नक्षत्रोंमें करना चाहिये।

रोहिणी, आर्द्रा, पुष्य, धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, शतभिष (वारुण) तथा श्रवण—ये नौ नक्षत्र ऊर्ध्वमुखी कहे गये हैं। इन नक्षत्रोंमें राज्याभिषेक और पट्टबन्ध आदि शुभ कार्य करवाने चाहिये। ऊर्ध्वमुखी अर्थात् अभ्युदय प्रदान करनेवाले अन्य विशिष्ट कार्योंको भी इन नक्षत्रोंमें कराना प्रशस्त होता है।

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, अमावास्या तथा पूर्णिमा तिथि अशुभ होती है। इन तिथियोंमें शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तथा बुधवारसे युक्त द्वितीया तिथि शुभ होती है। यदि भूमिपुत्र मंगलसे युक्त तृतीया हो, शनैश्चरको चतुर्थी हो, गुरुवारको पञ्चमी पड़ रही हो, षष्ठीको मंगल या शुक्रवार हो तो ये तिथियाँ भी शुभ होती हैं। बुधवारको सप्तमी, मंगल तथा रविवारको अष्टमी, सोमवारको नवमी और गुरुवारको पड़नेवाली दशमी तिथि शुभ होती है। एकादशी तिथिमें गुरु तथा शुक्र होनेपर, बुधवारको द्वादशी तिथि पड़नेपर, शुक्र तथा मंगलवारको त्रयोदशी और शनिवारको चतुर्दशी तिथि शुभ होती है। इसी प्रकार बृहस्पतिको पूर्णिमा या अमावास्या तिथिका होना भी शुभ होता है।

द्वादशी तिथि रविवार, एकादशी सोमवार, दशमी मंगलवार, नवमी बुधवार, अष्टमी गुरुवार, सप्तमी शुक्रवार और षष्ठी तिथि शनिवारसे दग्ध होती है। ऐसे तिथि-दग्ध-योगमें यात्रादिका शुभारम्भ नहीं करना चाहिये। प्रतिपदा, नवमी, चतुर्दशी और अष्टमी तिथियोंमें यदि बुधवारका संयोग हो तो उस तिथिमें प्रस्थानके विचारका दूरसे ही परित्याग करना चाहिये। मेष और कर्क-संक्रान्तिकी षष्ठी, कन्या और मिथुन-संक्रान्तिकी अष्टमी, वृष तथा कुम्भ-संक्रान्तिकी चतुर्थी, मकर और तुला-संक्रान्तिकी द्वादशी, वृश्चिक और सिंह-संक्रान्तिकी दशमी तथा धनु और मीन-संक्रान्तिकी चतुर्दशी—ये दग्ध तिथियाँ हैं। इन तिथियोंमें यात्रादि नहीं करनी चाहिये। ये कष्टदायक होती हैं।

हे शिव! रविवारको विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठाका योग, सोमवारके दिन पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ तथा श्रवण नक्षत्रका योग, मंगलवारको धनिष्ठा, शतभिष और पूर्वाभाद्रपदका योग, बुधवारमें रेवती, अश्विनी तथा भरणीका योग, बृहस्पतिवारको रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्राका योग, शुक्रवारमें पुष्य, अश्लेषा एवं मघाका योग, शनिवारको उत्तराफाल्गुनी, हस्त तथा चित्रा नक्षत्रका योग होनेपर औत्पातिक योग होता है। इन योगोंमें गमनादि कार्य करनेसे

उत्पात, मृत्यु और रोगकी उत्पत्ति होती है।

हे रुद्र! रविवारको मूल, सोमवारको श्रवण, मंगलवारको उत्तराभाद्रपद, बुधवारको कृत्तिका, बृहस्पतिके दिन पुनर्वसु, शुक्रवारको पूर्वाफाल्गुनी तथा शनिवारको स्वाती नक्षत्र हो तो अमृत योग होता है। ये सभी कार्योंको सिद्ध करनेवाले हैं।

विष्कुम्भ योगकी पाँच घटी, शूल योगकी सात घटी, गण्ड तथा अतिगण्ड योगकी छः-छः घटी, व्याघात और वज्र योगकी नौ-नौ घटी एवं व्यतीपात, परिघ और वैधृति योग—ये मृत्युतुल्य कष्टदायी होते हैं, इनमें सभी कर्मोंका परित्याग करना चाहिये।

रविवारको हस्त, गुरुवारको पुष्य, बुधवारको अनुराधा नक्षत्र—ये शुभ होते हैं। शनिवारको रोहिणी उत्तम और सोमवारको मृगशिरा नक्षत्र शुभ है। उसी प्रकार शुक्रवारको रेवती तथा मंगलवारको अश्विनी नक्षत्र शुभ फल देता है। इस प्रकारका योग होनेपर सिद्धि योग बनता है। ये सिद्धि योग सभी प्रकारके दोषोंका विनाश करनेवाले होते हैं।

हे वृषभध्वज! शुक्रवारको भरणी, सोमवारको चित्रा, मंगलवारको उत्तराषाढ, बुधवारको धनिष्ठा, बृहस्पतिको शतभिष, शुक्रवारको रोहिणी और शनिवारको रेवती नक्षत्र होनेपर विषयोग होता है।

पुष्य, पुनर्वसु, रेवती, चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, अश्विनी, मृगशिरा एवं शतभिष नक्षत्र होनेपर जातकर्म आदि संस्कार करनेके लिये उत्तम माने गये हैं।

हे शिव! विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तराभाद्रपद, मघा, आर्द्रा, भरणी, अश्लेषा और कृत्तिका नक्षत्रमें यात्रा करनेपर मृत्युका भय रहता है। (अध्याय ५९)

ग्रहदशा, यात्राशकुन, छींकका फल तथा सूर्यचक्र आदिका निरूपण

श्रीहरिने कहा—[हे शिव! अब मैं ग्रहोंकी महादशाका वर्णन कर रहा हूँ] सूर्यकी दशा छः वर्ष, चन्द्रकी दशा पंद्रह वर्ष, मंगलकी दशा आठ वर्ष, बुधकी दशा सत्रह वर्ष, शनिकी दशा दस वर्ष, बृहस्पतिकी दशा उन्नीस वर्ष, राहुकी दशा बारह वर्ष तथा शुक्रकी दशा इक्कीस वर्ष रहती है[1]।

सूर्यकी दशा दुःख देनेवाली होती है और उद्वेगको पैदा करती है तथा राजाका नाश करती है। चन्द्रकी दशा ऐश्वर्य देनेवाली, सुख पैदा करनेवाली तथा (इष्ट) मनोऽनुकूल अन्न देनेवाली होती है।

मंगलकी दशा दुःख देनेवाली तथा राज्यादिका विनाश करनेवाली है। बुधकी दशा दिव्य स्त्रीका लाभ, राज्य-प्राप्ति एवं कोषवृद्धि करनेवाली है। शनिकी दशा राज्यका नाश और बन्धु-बान्धवोंको कष्ट-प्रदान करनेवाली है। बृहस्पतिकी दशा राज्य-लाभ और सुख-समृद्धि तथा धर्म देनेवाली है। राहुकी दशा राज्यका नाश करती है, व्याधियोंकी प्राप्ति कराती है और दुःख पैदा करती है। शुक्रकी दशामें हाथी, घोड़ा, राज्य तथा स्त्रीका लाभ होता है।

मेष मंगलका, वृष शुक्रका, मिथुन बुधका और कर्क चन्द्रमाका क्षेत्र कहा गया है। सूर्यका क्षेत्र सिंह एवं बुधका क्षेत्र कन्याराशि है। तुलाराशि शुक्रका क्षेत्र है और वृश्चिक मंगलका क्षेत्र है। बृहस्पतिका क्षेत्र धनु, शनिका क्षेत्र मकर एवं कुम्भ और मीन बृहस्पतिका क्षेत्र कहा गया है।

कर्कराशिमें सूर्य आ जानेपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं।

अश्विनी, रेवती, चित्रा, धनिष्ठा—ये नक्षत्र आभूषण धारण करनेमें उत्तम माने गये हैं।

यात्रामें यदि दाहिने हरिण, साँप, बन्दर, बिलाव, कुत्ता, सुअर, पक्षी (नीलकण्ठ आदि), नेवला तथा चूहा दिखायी दें तो यात्रा मङ्गलकारी होती है। यात्रामें ब्राह्मणकी कन्याका

१-यहाँपर ग्रहोंकी महादशाओंका जो योग्य समय तथा उनका क्रम दिया गया है, वह महर्षि पराशर आदि द्वारा निर्दिष्ट विंशोत्तरी महादशासे भिन्न है। इसमें केतुकी दशा भी नहीं दिखलायी गयी है। महर्षि पराशरके अनुसार ग्रहोंका क्रम तथा उनकी भोग्यवर्ष-संख्या इस प्रकार है—सूर्यकी महादशा छः वर्ष रहती है, चन्द्रदशा दस वर्ष रहती है। इसी प्रकार मंगल सात वर्ष, राहु अठारह वर्ष, बृहस्पति सोलह वर्ष, शनि उन्नीस वर्ष, बुध सत्रह वर्ष, केतु सात वर्ष तथा शुक्र बीस वर्षतक भोग करता है। इनका योग एक सौ बीस वर्ष होता है, जो महर्षि पराशरद्वारा मानव-आयुका परिमाण है, इसीलिये यह विंशोत्तरी महादशा कहलाती है, इसी प्रकार दूसरा अष्टोत्तरी महादशा क्रम भी है, किंतु गरुडपुराणमें निर्दिष्ट क्रम तथा दशा-वर्ष सर्वथा भिन्न है।

दर्शन हो जाना मङ्गल होनेका सूचक है तथा शङ्ख और मृदंगकी आवाज सुनना एवं सदाचारी श्रीमन्त व्यक्तिका दर्शन हो जाना, वेणु, स्त्री, जलसे भरा कलश दिखायी देना कल्याण-प्राप्तिका सूचक है।

यात्रामें बायीं ओर शृगाल, ऊँट और गदहा आदिका दिखायी देना मङ्गलकारी होता है। यात्रामें कपास, ओषधि, तेल, दहकते अंगारे, सर्प, बाल बिखेरे, लाल माला पहने और नग्न अवस्थामें यदि कोई व्यक्ति दिखायी दे तो अशुभ होता है।

अब मैं हिक्का (छींक)-के शुभ-अशुभ फलोंका वर्णन कर रहा हूँ। पूर्व दिशामें छींक होनेपर बहुत बड़ा फल प्राप्त होता है। अग्निकोणमें छींक होनेपर शोक और संताप तथा दक्षिणमें छींक होनेपर हानि उठानी पड़ती है। नैर्ऋत्यकोणमें छींक होनेपर शोक और संताप तथा पश्चिममें छींक होनेपर मिष्टान्नकी प्राप्ति होती है। वायव्यकोणमें छींक होनेपर धनकी प्राप्ति और उत्तरमें छींक होनेपर कलह होता है। ईशानकोणमें छींक होनेपर मरणके समान कष्ट प्राप्त होना बतलाया गया है।

मनुष्यके आकारमें भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका चित्रण करे। सूर्यकी प्रतिमा बनानेके दिन सूर्य जिस नक्षत्रपर हों, उस नक्षत्रसे तीन नक्षत्र उस प्रतिमाके मस्तकपर अंकित करे। मुखके मध्यमें अंकित सूर्यनक्षत्रसे आगे तीन नक्षत्र लिखे और उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनों कन्धोंपर लिखे। फिर उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनों भुजाओंपर लिखे और उससे आगेके एक-एक नक्षत्र दोनों हाथोंपर लिखे। उससे आगे पाँच नक्षत्र हृदय-प्रदेशपर लिखे तथा उससे आगे एक नक्षत्र नाभिमण्डलमें लिखे। उससे आगे गुह्यस्थानमें एक नक्षत्र लिखे। उससे आगे एक-एक नक्षत्र दोनों घुटनोंपर लिखे। शेष नक्षत्र सूर्यके चरणोंपर लिखे।

सूर्यचक्रके चरणोंमें जातकका जन्मनक्षत्र पड़ता हो तो जातक अल्पायु होता है। वही नक्षत्र यदि घुटनोंपर पड़ता है तो जातक विदेश यात्रावाला होता है और यदि गुह्यस्थानपर पड़े तो पर-स्त्रीगामी होता है। नाभिस्थानमें पड़नेपर थोड़ेमें ही प्रसन्न हो जानेवाला होता है। यदि हृदयस्थानमें पड़ता है तो महेश्वर होता है। यदि पाणिस्थानमें पड़ता है तो चोर होता है। वही यदि भुजाओंपर पड़ता है तो उसका कहीं निश्चित स्थान नहीं रहता। यदि कन्धोंपर पड़ जाय तो वह धनपति—कुबेर होता है। यदि मुखपर पड़ जाय तो मिष्टान्न प्राप्त करता रहता है और यदि मस्तकपर जातक-नक्षत्र पड़ जाय तो जातक रेशम-वस्त्रधारी होता है। (अध्याय ६०)

ग्रहोंके शुभ एवं अशुभ स्थान तथा उनके अनुसार शुभाशुभ फलका संक्षिप्त विवेचन

श्रीहरिने कहा—लग्नसे सप्तम भाव तथा उपचयमें स्थित चन्द्रमा सर्वत्र मङ्गलकारी होता है। शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथि तथा पञ्चम और नवम भावमें स्थित चन्द्रमा गुरुके सदृश पूज्य है।

हे शिव! चन्द्रमाकी बारह अवस्थाएँ हैं। आप उनके विषयमें भी सुनें। अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रोंसे एक-एक अवस्था बनती है। अत: उन अश्विनी आदि तीन-तीन नक्षत्रोंके क्रमसे 'प्रवासावस्था, दृष्टावस्था, मृतावस्था, जयावस्था, हास्यावस्था, नतावस्था, प्रमोदावस्था, विषादावस्था, भोगावस्था, ज्वरावस्था, कम्पावस्था तथा सुखावस्था'—ये चन्द्रकी बारह अवस्थाएँ होती हैं।

इन्हीं अवस्थाओंके क्रममें चन्द्रकी स्थिति होनेपर क्रमश:—प्रवास, हानि, मृत्यु, जय, हास, रति, सुख, शोक, भोग, ज्वर, कम्प तथा सुख—ये फल प्राप्त होते हैं।

चन्द्रके जन्मलग्नमें होनेपर तुष्टि, द्वितीय भावमें रहनेपर सुख-हानि, तृतीय भावमें रहनेपर राजसम्मान, चतुर्थ भावमें कलह और पञ्चम भावमें रहनेपर स्त्रीका लाभ होता है। यदि चन्द्र षष्ठ (स्थान) भावमें रहता है तो धन-धान्यकी प्राप्ति, सप्तम भावमें रहनेपर प्रेम तथा सम्मानकी प्राप्ति होती है। चन्द्रमाके अष्टम भाव (स्थान)-में रहनेपर मनुष्यके प्राणोंको संकट बना रहता है। नवम भावमें उसकी स्थिति रहनेपर कोषमें धनकी वृद्धि होती है। दशम भावमें चन्द्रके रहनेपर कार्यसिद्धि और एकादश भावमें होनेपर विजय निश्चित है। जब वह द्वादश भावमें रहता है तो जातककी निश्चित ही मृत्यु होती है। इसमें संदेह नहीं है।

कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा—इन सात नक्षत्रोंमें पूर्व दिशाकी यात्रा करनी चाहिये। मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती तथा विशाखा—इन सात नक्षत्रोंमें दक्षिणकी यात्रा करनी चाहिये। अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ, श्रवण और धनिष्ठा—इन सात नक्षत्रोंमें पश्चिमकी यात्रा करनी चाहिये। धनिष्ठा, शतभिष, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी और भरणी—इन सात नक्षत्रोंमें उत्तरकी यात्रा प्रशस्त होती है।

अश्विनी, रेवती, चित्रा तथा धनिष्ठा नक्षत्र नवीन अलंकारोंको धारण करनेके लिये श्रेष्ठ हैं। मृगशिरा, अश्विनी, चित्रा, पुष्य, मूल और हस्त नक्षत्र कन्यादान, यात्रा तथा प्रतिष्ठादि कार्योंमें शुभप्रद होते हैं।

जन्मलग्नमें शुक्र और चन्द्रके रहनेपर शुभ फलकी प्राप्ति होती है। उसी प्रकार ये दोनों ग्रह द्वितीय भावमें रहनेपर भी शुभ फल प्रदान करते हैं। तृतीय भावमें स्थित चन्द्र, बुध, शुक्र और बृहस्पति, चतुर्थ भावमें मंगल, शनि, चन्द्र, सूर्य और बुध श्रेष्ठ होते हैं। पञ्चम भावमें शुक्र, बृहस्पति, चन्द्रमा और केतुके रहनेपर शुभ होता है। षष्ठ भावमें शनि, सूर्य और मंगल, सप्तम भावमें बृहस्पति तथा चन्द्रमा शुभ हैं। इसी प्रकार अष्टम भावमें बुध और शुक्र तथा नवम भावमें स्थित गुरु शुभ फल देनेवाला है। जन्मके दशम भावमें स्थित सूर्य, शनि एवं चन्द्रमा तथा एकादश भावमें सभी ग्रह शुभ फल देते हैं। ऐसे ही जन्मके द्वादश भावमें स्थित बुध और शुक्र सब प्रकारके सुखोंको प्रदान करते हैं।

सिंहके साथ मकर, कन्याके साथ मेष, तुलाके साथ मीन, कुम्भके साथ कर्क, धनुके साथ वृष और मिथुनके साथ वृश्चिकराशिका योग श्रेष्ठ होता है। यह षडष्टक योग है। यह योग प्रीतिकारक होता है[1], इसमें संशय नहीं है। (अध्याय ६१)

लग्न-फल, राशियोंके चर-स्थिर आदि भेद, ग्रहोंका स्वभाव तथा सात वारोंमें किये जाने योग्य प्रशस्त कार्य

श्रीहरिने कहा—हे शिव! सूर्य उदयकालसे मेषादि राशियोंपर अवस्थित रहते हैं। वे दिनमें क्रमशः छः राशियोंको पारकर रात्रिमें शेष छः राशियोंको पार करते हैं।

मेषलग्नमें कन्याका जन्म होनेपर वह वन्ध्या होती है। वृषलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या कामिनी होती है, मिथुन-लग्नवाली सौभाग्यशालिनी तथा कर्कलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या वेश्या होती है। सिंहलग्नमें जन्म-प्राप्त कन्या अल्पपुत्रोंवाली, कन्यालग्नवाली रूपसे सम्पन्न, तुलालग्नवाली रूप और ऐश्वर्यसे युक्त तथा वृश्चिकलग्नवाली कर्कश स्वभावकी होती है। धनुलग्नमें उत्पन्न हुई कन्या सौभाग्यवती तथा मकरलग्नवाली निम्न पुरुषोंके साथ गमन करनेवाली होती है। कुम्भलग्नमें जन्म-प्राप्त कन्या अल्पपुत्रों तथा मीनलग्नवाली वैराग्ययुक्त होती है[2]।

तुला, कर्क, मेष और मकर—ये चर राशियाँ हैं, इनमें यात्रादि चर कार्य करने चाहिये। सिंह, वृष, कुम्भ और वृश्चिक स्थिर राशि हैं। इनमें स्थिर कार्य करने चाहिये। कन्या, धनु, मीन एवं मिथुनराशि द्विस्वभावकी होती हैं। विद्वान् व्यक्तिको इन राशियोंमें द्विस्वभावसे युक्त कर्म करने चाहिये। यात्रा चरलग्नमें तथा गृह-प्रवेशादिका कार्य स्थिरलग्नमें करना चाहिये। देवताओंकी स्थापना और वैवाहिक संस्कारको द्विस्वभावके लग्नमें करना श्रेयस्कर है।

हे वृषभध्वज! प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशी तिथियाँ नन्दा मानी जाती हैं। द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथियाँ भद्रा कही गयी हैं। तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथियाँ जया कही गयी हैं। चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी—ये तीन

१-यहाँ षडष्टक योगको शुभ बताया गया है, किंतु मतान्तरसे वर-वधूके मेलापक चक्रमें यह षडष्टक योग अशुभ माना गया है। वर या वधूकी परस्पर जन्म-राशि एक-दूसरेसे छठी या आठवीं होना ही षडष्टक योग है। अर्थात् यदि एककी सिंह राशि हो और दूसरेकी मकरराशि तो ये राशियाँ गणना करनेपर एक-दूसरेसे छठी या आठवीं पड़ेंगी, ऐसे ही मेष-कन्या, वृष-तुला, मिथुन-वृश्चिक, कर्क-धनु आदिके विषयमें समझना चाहिये। प्रायः ऐसेमें विवाहादि नहीं किया जाता। षडष्टकके समान ही द्विर्द्वादश योग तथा नवम-पञ्चम योगपर भी विचार किया जाता है।

२-ज्योतिष शास्त्रके अनुसार अन्य सभी योग एवं ग्रह-स्थितियोंको ध्यानमें रखकर ही इस फलपर विचार करना चाहिये। यहाँ दिग्दर्शनमात्र है।

रिक्ता तिथि हैं। ये शुभ कार्यके लिये वर्जित हैं।

सौम्य स्वभाववाला बुध ग्रह चर स्वभाव है। गुरु क्षिप्र, शुक्र मृदु और रवि ध्रुव स्वभावका है। शनि दारुण, मंगल उग्र तथा चन्द्रको समस्वभावका जानना चाहिये।

चर और क्षिप्र स्वभाववाले (अर्थात् बुध एवं बृहस्पति) वारमें यात्रा करनी चाहिये तथा मृदु और ध्रुव स्वभावसे संयुक्त शुक्र अथवा रविवारको गृह-प्रवेशादिका कार्य करना चाहिये। दारुण और उग्र स्वभाववाले शनि तथा मंगलवारको विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषासे क्षत्रियादि वीरोंको युद्धके लिये प्रस्थान करना चाहिये।

राज्याभिषेक और अग्निकार्य सोमवारको प्रशस्त माना गया है। सोमवारमें लिपाईका कार्य एवं गृहका शुभारम्भ करना श्रेयस्कर है। मंगलवारको सेनापतिका पद-भार वहन करना, शौर्य, पराक्रमका कार्य तथा शस्त्राभ्यासका प्रारम्भ करना शुभ है। बुधके दिन किसी कार्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्न करना, मन्त्रणा करना और यात्रा करना सफलतादायक माना गया है। बृहस्पतिवारको वेदपाठ, देवपूजा, वस्त्र तथा अलंकारादि धारणके कार्य करने चाहिये। शुक्रवारको कन्यादान, गजारोहण तथा स्त्रीसहवास उचित है। शनिवारको गृहारम्भ, गृहप्रवेश और गजबन्धनके कार्य शुभ माने गये हैं।

(अध्याय ६२)

सामुद्रिकशास्त्रके अनुसार स्त्री-पुरुषके शुभाशुभ लक्षण, मस्तक एवं हस्तरेखासे आयुका परिज्ञान

श्रीहरिने कहा—हे शिव! अब मैं स्त्री-पुरुषके लक्षणोंका वर्णन संक्षेपमें कर रहा हूँ, आप सुनें।

जिनके हाथ-पाँवके तल पसीनेसे रहित हों, कमलके भीतरी भागकी तरह मृदु एवं रक्त हों, अँगुलियाँ सटी हुई हों, नाखून ताँबेके वर्णके समान थोड़े रक्त हों, पाँव सुन्दर गुल्फवाले, नसोंसे रहित और कूर्मके समान उन्नत हों, उन्हें नृपश्रेष्ठ समझना चाहिये।

रूक्ष एवं थोड़ा पीलापन लिये, श्वेत नखवाले, वक्र, तथा नसोंसे भरे हुए और विरल अँगुलियोंसे युक्त शूर्पाकार चरणोंवाले मनुष्य दुःखी एवं दरिद्र होते हैं।

अल्परोमसे युक्त, गलशुण्डके समान सुन्दर जंघा-प्रदेश तथा एक-एक रोमसे भरे हुए रोमकूपोंवाला शरीर राजाओं और महात्माओंका माना गया है। प्रत्येक रोमकूपमें दो-दो रोम होनेपर मनुष्य श्रोत्रिय या पण्डित होता है। तीन-तीन रोमोंसे व्याप्त रोमकूप दरिद्रोंके होते हैं।

मांसरहित, अत्यन्त कृश जानुयुगलवाला मनुष्य रोगी होता है। समान उदरभागसे सुशोभित मनुष्य अतिशय भोगसे समृद्ध और कुम्भके सदृश उन्नत या सर्पके समान उदरभागवाले लोग अत्यन्त दरिद्र होते हैं।

रेखाओंके द्वारा आयुका निर्णय किया जाता है। जिसके ललाटपर समान आकारवाली तीन रेखाएँ स्पष्ट दिखायी देती हैं, वह पुत्रादिसे सम्पन्न रहकर सुखपूर्वक साठ वर्षतक जीवित रहता है। मस्तकपर दो रेखाओंके दृष्टिगोचर होनेपर मनुष्यकी आयु चालीस वर्षकी होती है। एक रेखाके होनेपर उस मनुष्यका जीवन बीस वर्ष मानना चाहिये, किंतु कर्णपर्यन्त एक रेखाके होनेपर वह शतायु होता है।

ललाटपर कानतक विस्तृत दो रेखाओंके होनेसे मनुष्यकी आयु सत्तर वर्ष तथा वैसी ही तीन रेखाओंके रहनेपर उसकी आयु साठ वर्ष होती है। ललाटपर रेखाओंकी व्यक्त (प्रकट)-अव्यक्त (अप्रकट) स्थिति होनेपर मनुष्य बीस वर्षकी अल्पायुको ही प्राप्त करता है। रेखाविहीन ललाटके होनेपर मनुष्य चालीस वर्षतक जीवित रहता है। रेखाओंके छिन्न-भिन्न रहनेपर मनुष्यकी अकालमृत्यु होती है।

जिसके मस्तकपर त्रिशूल अथवा फरसेके समान चिह्न दिखायी देता है, वह धन-पुत्रादिसे परिपूर्ण होकर सौ वर्षतक जीवित रहता है।

हे रुद्र! तर्जनी और मध्यमा अंगुलीके मध्यभागतक आयुरेखाके पहुँचनेपर मनुष्य शतायु होता है। अंगुष्ठके

मूलभागसे निकलनेवाली प्रथम रेखा ज्ञानरेखा है। मध्यमा अंगुलीके मूलसे जो रेखा जाती है, वह आयुरेखा है। यह रेखा कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे निकलकर मध्यमाके मूल भागको पार करती है। यदि यह रेखा विच्छिन्न या किसी अन्य रेखासे विभक्त नहीं होती है तो ऐसे व्यक्तिकी आयु सौ वर्ष होती है।

हे रुद्र! जिसके हाथमें यह आयुरेखा स्पष्ट दिखायी देती है। उसकी आयु सौ वर्ष अवश्य होती है, इसमें संदेह नहीं। जो रेखा कनिष्ठा अंगुलीके मूलसे होकर मध्यमा अंगुलीके मूलतक विस्तारको प्राप्त करती है, वह रेखा मनुष्यको साठ वर्ष आयु प्रदान करनेमें सक्षम होती है। (अध्याय ६३)

स्त्रियोंके शुभाशुभ लक्षण

श्रीहरिने कहा—जिस कन्याके केश घुँघराले, मुख मण्डलाकार अर्थात् गोल एवं नाभि दक्षिणावर्त होती है, वह कुलकी वृद्धि करनेवाली होती है। जो स्वर्णसदृश आभावाली होती है, जिसके हाथ लाल कमलके समान सुन्दर होते हैं, वह हजारों स्त्रियोंमें अद्वितीय तथा पतिव्रता होती है।

जो कन्या वक्र केशोंवाली और गोल नेत्रवाली होती है, वह निश्चित ही दुःख भोगनेवाली होती है तथा उसका पति शीघ्र ही मर जाता है।

पूर्णचन्द्रके सदृश मुखमण्डलसे सुशोभित, बालसूर्यके समान लाल-लाल कान्तिवाली, विशाल नेत्रोंसे युक्त, बिम्बाफलकी भाँति ओष्ठवाली कन्या चिरकालतक सुखका उपभोग करती है। हस्ततलमें बहुत-सी रेखाओंके होनेपर कष्ट तथा अल्प रेखाओंके होनेपर वह धनहीनताका दुःख भोगती है। हाथमें रक्तवर्णकी रेखाओंके होनेसे वह सुखी जीवन व्यतीत करती है, किंतु कृष्णवर्णकी रेखाओंके होनेपर वह दास्यवृत्तिवाली दूतीका जीवन व्यतीत करती है।

अच्छी स्त्री वह है, जो पतिके कार्योंमें मन्त्रीके समान परामर्श देनेवाली होती है। सहयोगमें मित्रके समान वर्ताव करती है। स्नेहके व्यवहारमें भार्या अथवा माता तथा शयन-कालमें वेश्याके समान सुख प्रदान करती है।

जिस कन्याके हाथमें अंकुश, कुण्डल और चक्रके चिह्न विद्यमान रहते हैं, वह पुत्रसे सम्पन्न होती है और राजाको पतिके रूपमें वरण करती है।

जिस स्त्रीके दोनों पार्श्व और स्तन-प्रदेश रोमसमन्वित होते हैं तथा अधरोष्ठ-भाग ऊँचा उठा हुआ होता है, वह निश्चित ही शीघ्र पतिका नाश करनेवाली होती है। जिसके हाथमें प्राकार और तोरणकी रेखाएँ दिखायी देती हैं, वह दासकुलमें भी उत्पन्न होकर रानीके पदको प्राप्त करती है। जिस कन्याकी नाभि ऊपरकी ओर उठी हुई, मण्डलाकार एवं कपिलवर्णकी रोमावलियोंसे आवृत्त रहती है, वह कन्या राजकुलमें उत्पन्न होकर दासीकी वृत्तिसे जीवनयापन करती है।

जिस स्त्रीके चलनेपर दोनों पैरकी अनामिका तथा अंगुष्ठ पृथिवीतलका स्पर्श नहीं करते हैं, वह शीघ्र ही पतिका नाश करती है तथा स्वयं स्वेच्छाचारपूर्वक जीवन बितानेवाली होती है। जिस स्त्रीके चलनेसे पृथिवीमें कम्पन हो उठता है, वह शीघ्र ही पतिका नाश करके स्वेच्छाचारिणी बन जाती है।

सुन्दर मनोहारी नेत्रोंके होनेसे स्त्री सौभाग्यशालिनी, उज्ज्वल चमकते हुए दाँतोंके होनेपर उत्तम भोजन प्राप्त करनेवाली, शरीरकी त्वचा सुन्दर एवं कोमल होनेसे उत्तम प्रकारकी शय्या तथा कोमल स्निग्ध चरणोंके होनेपर वह श्रेष्ठ वाहनका सुख प्राप्त करती है।

चिकने, ऊँचे उठे हुए ताम्रवर्णके समान लाल-लाल नखोंसे युक्त, मत्स्य, अंकुश, पद्म, चक्र तथा लाङ्गल (हल)-चिह्नसे सुशोभित एवं पसीनेसे रहित और कोमल तलवाले स्त्रीके चरण सौभाग्यशाली होते हैं।

सुन्दर रोमविहीन जंघा, गजशुण्डके सदृश ऊरु, पीपलपत्रके समान विशाल उत्तम गुह्यभाग, दक्षिणावर्त गम्भीर नाभि, रोमरहित त्रिवली और हृदयपर सुशोभित रोमरहित स्तन-प्रदेश—ये उत्तम स्त्रीके शुभ लक्षण हैं। (अध्याय ६४)

स्त्री एवं पुरुषोंके शुभाशुभ लक्षण

श्रीहरिने कहा—अब मैं सामुद्रिकशास्त्रमें कहे गये स्त्री और पुरुषके शुभाशुभ लक्षणोंका वर्णन करता हूँ, जिन्हें जान लेनेसे भूत तथा भविष्यका ज्ञान हो जाता है।

मार्गमें गमन करनेपर विषम रूपसे पड़नेवाले, कषाय वर्णसे युक्त विचित्र प्रकारके बने हुए चरण वंशका नाश करते हैं। शङ्खाकार चरणोंसे युक्त मनुष्य ब्रह्महत्या करता है तथा अगम्या स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा रखता है।

विरल रोमभागयुक्त जंघा तथा हाथीके सूँड़के समान सुन्दर ऊरु भागोंवाले अंग राजाके शरीरमें सुशोभित होते हैं। दरिद्रकी जंघाएँ सियारकी जंघाओंके समान होती हैं। कुंचित केशराशिवाले मनुष्यकी मृत्यु विदेशमें होती है।

मांसरहित जानु-प्रदेशवाला व्यक्ति सौभाग्यशाली होता है। अल्प और छोटी-छोटी जानुओंके होनेसे मनुष्य स्त्री-प्रेमी तथा विशाल विकटाकार होनेपर दरिद्र होता है। मांससे भरपूर जानुओंके होनेपर मनुष्यको राज्यकी प्राप्ति होती है। बड़ी जानुओंके होनेपर मनुष्य दीर्घायु होता है।

मांसल स्फिक् (कूल्हा)-प्रदेशवाला व्यक्ति सुखी तथा सिंहके समान स्फिक् होनेपर वह राजपुरुष माना गया है। इसी प्रकार सिंहके सदृश कटिप्रदेशके होनेपर वह राजा होता है, किंतु कपिके समान कटिभागवाला व्यक्ति निर्धन होता है।

समान कक्ष (काँख)-प्रदेशवाले अत्यधिक भोग-विलासी होते हैं। निम्न कक्षाओंवाले धनहीन तथा उन्नत एवं विषम कक्षाओंवाले कुटिल होते हैं।

मत्स्यके समान उदरवाले प्रचुर धनवान् होते हैं। विस्तीर्ण नाभिप्रदेशसे सुशोभित जन सुखी एवं अत्यधिक गहरी नाभिके होनेपर कष्ट भोगनेवाले होते हैं।

त्रिवलीके मध्यभागमें नाभिके अवस्थित होनेपर प्राणी शूलरोगसे ग्रसित होते हैं। वामावर्त नाभिके होनेपर शक्तिसम्पन्न और दक्षिणावर्त होनेपर मेधावी होते हैं। पार्श्वदेशमें नाभिके विस्तृत होनेसे मनुष्य चिरंजीवी, उन्नत होनेपर ऐश्वर्यशाली, अधोमुख होनेपर गोधनसे सम्पन्न एवं पद्मकर्णिकाके सदृश सुन्दर होनेपर वे राजत्वको प्राप्त करते हैं।

उदरभागपर एक वलिके रहनेपर मनुष्य शतायु होता है। दो वलियोंके होनेसे वह ऐश्वर्यका भोग करनेवाला तथा त्रिवलियोंके होनेपर राजा या आचार्यकी पदवीको प्राप्त करता है। सरल वलियोंवाला मनुष्य सुखी होता है। वक्र वलिवाला व्यक्ति अगम्यागामी होता है।

जिसके दोनों पार्श्वभाग मांसल होते हैं, वह राजा होता है। मृदु, कोमल, सुन्दर और समभागकी दूरियोंपर अवस्थित दक्षिणावर्तीय रोमराशियोंसे सुशोभित व्यक्ति भी राजा होते हैं। यदि उदर-प्रदेशपर इन लक्षणोंके विपरीत रोम-राशियाँ होती हैं तो ऐसे मनुष्य दूत-कर्म करनेवाले, निर्धन तथा सुखसे रहित होते हैं।

समुन्नत, मांसल तथा कम्पनरहित विशाल वक्ष:स्थल राजाओंका होता है। अधम जनोंका वक्ष:स्थल तो गर्दभोंकी रोमराशिके समान, कर्कश तथा रोमावलियोंसे युक्त स्पष्ट परिलक्षित होनेवाली नसोंसे व्याप्त रहता है।

समतल वक्ष:स्थलवाले मनुष्य धन-सम्पन्न होते हैं। पीन (मांसल) वक्ष:स्थलोंसे युक्त प्राणी शक्तिसम्पन्न होता है। विषम वक्ष:स्थलके होनेपर मनुष्य निर्धन होता है और उसकी मृत्यु शस्त्राघातसे होती है।

स्कन्ध-प्रदेशके सन्धिस्थान (पखुरा)-में विषमता तथा अस्थि-संलग्नताके होनेपर भी मनुष्य निर्धन होते हैं। उन्नत स्कन्ध-प्रदेशके रहनेसे व्यक्ति भोगी, निम्न होनेपर धनहीन तथा स्थूल होनेपर धनी होते हैं।

चिपटाकार कण्ठसे युक्त मनुष्य निर्धन, शुष्क एवं उन्नत शिराओंसे व्याप्त गलेवाला सुखी होता है। महिषके सदृश ग्रीवावाला वीर तथा मृगके समान कण्ठवाला शास्त्रोंमें पारंगत होता है। शंखके समान ग्रीवावाला मनुष्य राजा और लम्बे कण्ठवाला बहुत भोजन करनेवाला होता है।

रोमरहित एवं मुड़ा हुआ पृष्ठ-प्रदेश शुभ तथा उसके विपरीत रहनेपर अशुभ माना गया है।

पीपल-पत्रके सदृश, सुगन्धित तथा मृगके सदृश रोमावलियोंवाली कक्षाएँ उत्तम होती हैं। इसके विपरीत कक्षाओंके जो लक्षण होते हैं, वे निर्धनोंकी दरिद्रताके कारण हैं।

मांसल, श्लिष्ट, विशाल, बलिष्ठ, वृत्ताकार तथा जानुपर्यन्त लम्बी सुन्दर भुजाएँ राजाकी होती हैं। प्रचुर रोमावलियोंसे

युक्त छोटे-छोटे हाथ निर्धनके होते हैं। हाथीकी शुण्डके समान सुन्दर भुजाएँ श्रेष्ठ मानी गयी हैं।

भवनमें वायु-प्रवेशके लिये बने द्वारके समान बनी हुई अंगुलियाँ शुभ होती हैं। मेधावी जनोंकी अंगुलियाँ छोटी होती हैं। चिपटाकार अंगुलियाँ भृत्योंमें पायी जाती हैं। स्थूल अंगुलियोंके होनेपर मनुष्य निर्धन होते हैं। जब मनुष्यकी अंगुलियाँ कृश होती हैं तो वे विनयी होते हैं। बन्दरके सदृश हाथके होनेपर मनुष्य निर्धन और बाघके समान हाथ होनेपर बलवान् होते हैं।

करतल भागके निम्न होनेसे मनुष्य पिताके द्वारा संचित धनको नष्ट करनेवाले होते हैं। मणिबन्धके सुगठित, श्लिष्ट तथा सुगन्धयुक्त होनेपर व्यक्तियोंको राजपदकी प्राप्ति होती है। कटे-फटे कर-भागसे युक्त, शब्द करनेवाले मणिबन्धोंके रहनेसे मनुष्य धनहीन और नीच प्रकृतिके माने जाते हैं।

संवृत्त अर्थात् गोलाकार एवं गहरे करतलोंके होनेसे मनुष्योंको धनवान् कहा गया है। उन्नत करतलोंके होनेपर व्यक्ति दानी और विषम भागवाले व्यक्ति कठोर होते हैं। लाक्षारसके समान करतलोंके होनेसे प्राणी राजा होते हैं। पीतवर्णवाले करतलोंसे युक्त व्यक्ति परस्त्रीके साथ रमण करनेवाले होते हैं। जिनके हाथ और तल-प्रदेश रूखे हैं, वे मनुष्य निर्धन होते हैं।

तुष (भूसी)-के समान रंगसे युक्त नखवाले लोग नपुंसक, कुटिल तथा फटे हुए नखवाले धनहीन होते हैं। विवर्ण नखवाले दूसरेके साथ तर्क करनेवाले होते हैं।

ताम्रवर्णके सदृश रक्ताभ नखवाले मनुष्य राजा होते हैं। यव-चिह्नसे युक्त अंगुष्ठवाले व्यक्ति अत्यधिक धन-वैभवसे युक्त होते हैं। अंगुष्ठके मूलभागमें यव-चिह्नके होनेसे व्यक्ति पुत्रवान् होता है। लम्बे पर्वोंसे युक्त अँगुलियोंके होनेपर दीर्घायु तथा पुत्र-पौत्रादिसे परिपूर्ण होता है, किंतु विरल अँगुलियोंवाला व्यक्ति निर्धन होता है। सघन अँगुलियोंके होनेसे मनुष्य धन-सम्पन्न होता है। मणिबन्धसे निकलकर तीन रेखाएँ जिसके करतल भागको पार कर जाती हैं, वह राजा होता है।

दो मत्स्याङ्कित करतलभागवाला पुरुष यज्ञकर्ता एवं दानी होता है। वज्राकार चिह्नवाले करतल धनीजनोंके होते हैं। विद्वान्‌का करतलभाग मीन-पुच्छके चिह्नसे अङ्कित होता है।

राजाके करतलमें शङ्ख, छत्र, शिविका (डोली), गज और पद्माकार चिह्न रहते हैं। अतुलनीय ऐश्वर्यसम्पन्न राजाके करतलमें कुम्भ, अङ्कुश, पताका तथा मृणालके समान चिह्न रहते हैं। गोधनके स्वामीजनोंके करतलोंमें रस्सीके चिह्न होते हैं। जिसके हाथमें स्वस्तिकका चिह्न होता है, वह सम्राट् होता है। राजाके हाथमें चक्र, कृपाण, तोमर, धनुष और भालेके आकारके चिह्न होते हैं।

ओखलीके चिह्नसे युक्त व्यक्ति यज्ञादिक कर्मकाण्डोंमें निष्णात होता है। जिनके हाथोंमें वेदिकाकार रेखा होती है, वे अग्निहोत्री होते हैं। वापी, देवकुल्या तथा त्रिकोण रेखाओंके रहनेपर मनुष्य धार्मिक होता है।

अंगुष्ठ-मूलतक रेखाके होनेसे व्यक्ति पुत्रवान् होते हैं। यदि वे रेखाएँ सूक्ष्म होती हैं तो उन्हें कन्याएँ होती हैं। कनिष्ठिकाके मूलसे निकलकर तर्जनीके मूलतक रेखाका विस्तार होनेपर मनुष्य शतायु होता है, किंतु किसी स्थानपर उसके विच्छिन्न होनेपर प्राणीको वृक्षसे गिरकर मृत्युका भय बना रहता है। बहुत-सी रेखाओंके होनेसे मनुष्य दरिद्र होते हैं। चिबुक (ठुड्डी)-के कृश होनेपर भी मनुष्योंको धनहीन समझना चाहिये, किंतु जिनकी ठुड्डियाँ मांसल होती हैं, वे धन-सम्पदाओंसे परिपूर्ण होते हैं। अरुणाभ, बिम्बाफलके समान सुन्दर अधरोंसे सुशोभित मुख राजाओंका माना गया है; किंतु जिसके ओष्ठ रूखे, खण्डित, फटे हुए तथा विषम होते हैं, वे निर्धन होते हैं।

स्निग्ध (चिकने), चमकते हुए, सघन एवं समान भागवाले सुन्दर तीक्ष्ण दाँतोंका होना शुभ है। रक्तवर्णकी समतल, चिकनी एवं दीर्घ जिह्वा श्रेष्ठ होती है। राजाओंका मुख कठोर, सम, सौम्य, गोल, मलरहित तथा स्निग्ध होता है। दुःख भोगनेवाले लोगोंमें इन लक्षणोंके विपरीत लक्षण होते हैं। कुत्सित एवं भाग्यहीनोंको स्त्रीमुखी पुत्र प्राप्त होता है। धनी लोगोंका मुख गोलाकार तथा निर्धनोंका मुख लम्बा होता है। पापकर्माका मुख भयाक्रान्त होता है। धूर्तोंके मुख चौकोर, पुत्रहीनोंके निम्न एवं कंजूसोंके छोटे मुख होते हैं। भोगीजनोंका मुख सुन्दर, आभामय, मूँछोंसे युक्त, स्निग्ध, शुभ तथा कोमल होता है।

चौर-वृत्तिवाले व्यक्ति निस्तेज, मुरझायी हुई लालवर्णकी दाढ़ी और मूँछोंवाले होते हैं। रक्तवर्णके थोड़े तथा कड़े बालयुक्त दाढ़ीवाले और छोटे-छोटे कानोंवाले मनुष्योंकी

मृत्यु पापकर्म करनेसे होती है। मांसरहित, चिपटे कानोंवाले लोग भोगी और अत्यन्त छोटे-छोटे कानोंसे युक्त मनुष्य कंजूस होते हैं। शङ्खाकार कानोंके होनेपर मनुष्य राजा होता है तथा रोमराशिसे भरे होनेपर उसे क्षीण आयुकी प्राप्ति होती है। बड़े कानोंवाले धनी अथवा राजा माने जाते हैं। स्निग्ध, विस्तृत, मांसल तथा दीर्घ कानोंवाले राजा होते हैं। निम्न गण्डस्थलवाला भोगी और पूर्ण सुडौल एवं सुन्दर होनेपर मनुष्य मन्त्री होता है।

सुग्गेकी नासिकाके समान सुन्दर नासिकावाला व्यक्ति सुखी और शुष्क नासिकावाला दीर्घजीवी होता है। नासिकाका अग्रभाग छिन्न तथा कूपके समान नासिकाके होनेपर मनुष्य अगम्या स्त्रीके साथ सहवास करता है। दीर्घ नासिकाके रहनेपर सौभाग्यवान् एवं आकुंचित अर्थात् टेढ़ी नासिका होनेसे व्यक्ति चौरकार्यमें प्रवृत्त होता है। नासिकाके चिपटी होनेपर मनुष्यकी अकालमृत्यु होती है। भाग्यवान्‌की नासिका छोटी होती है। चक्रवर्ती सम्राट्‌की नासिकामें छोटे-छोटे गोल और सीधे छिद्र होते हैं। दक्षिणभागकी ओर नासिकाके वक्र होनेपर मनुष्योंमें क्रूर-स्वभाव होता है।

वक्र उपान्तभागोंसे युक्त तथा पद्म-पत्रके समान सुन्दर नेत्र सुखी लोगोंके होते हैं। बिल्लीके सदृश नेत्रोंके होनेपर मनुष्य पापात्मा तथा मधु-पिंगलवर्णवाले नेत्रोंके होनेपर वह दुरात्मा होता है। केकड़ेके नेत्रोंकी भाँति नेत्र होनेसे व्यक्ति क्रूर और हरितवर्णके नेत्रवाले पापकर्ममें अनुरक्त होते हैं। वक्र नेत्र बलवान् पुरुषोंका लक्षण है। हाथीके समान नेत्रोंवाले मनुष्य सेनानी होते हैं। गम्भीर नेत्रोंवाला पुरुष राजा तथा स्थूल नेत्रोंवाला मन्त्री होता है। नीलकमलके सदृश नेत्रोंके होनेपर व्यक्ति विद्वान् तथा श्यामवर्णके नेत्रवाले सौभाग्यशाली होते हैं। कृष्णवर्णके तारक बिन्दुओंसे युक्त नेत्रोंवाले पुरुषोंमें उत्पाटन-क्षमता होती है। मण्डलाकार नेत्रोंके होनेपर व्यक्ति पापी तथा दैन्यभावयुक्त नेत्रवाले मनुष्य दरिद्र होते हैं। सुन्दर एवं विशाल नेत्रोंवाले संसारमें विभिन्न प्रकारके सुखोंका उपभोग करते हैं। जिनके नेत्र अधिक उन्नत अर्थात् ऊपरकी ओर अधिक उठे होते हैं, वे अल्पायु होते हैं। विशाल और उन्नत नेत्रोंके होनेपर मनुष्य सुखी होते हैं।

विषम भौंहोंवाले दरिद्र होते हैं तथा दीर्घ, सघन, एक-दूसरेसे संयुक्त, बालचन्द्रके सदृश पतले, वक्र एवं उन्नत सुन्दर भौंहोंसे सुशोभित प्राणी धन-वैभवसे सम्पन्न होते हैं। मध्यभागमें कटी हुई भौंहोंके होनेपर मनुष्य निर्धन तथा झुकी हुई भौंहोंके होनेसे अगम्या स्त्रियोंमें रत रहनेवाले और पुत्रसे रहित होते हैं।

उन्नत, विशाल, शङ्खाकार एवं विषम मस्तक होनेपर पुरुषोंमें निर्धनता और अर्द्धचन्द्राकार ललाटके होनेपर वे धनसम्पन्नतासे परिपूर्ण रहते हैं। सीपके समान आभावाले तथा विशाल मस्तकवाले आचार्यके पदको सुशोभित करते हैं, जिनके मस्तकोंपर शिराएँ स्पष्ट प्रतीत होती रहती हैं, वे पापकर्ममें लगे रहते हैं। उन्नत शिराओंसे युक्त स्वस्तिकाकार, सुन्दर ललाटके होनेपर मनुष्य धनवान् तथा निम्न ललाटके होनेपर बन्दी बनाये जानेयोग्य होते हैं और क्रूर कर्मोंको करते हैं। गोल ललाटवाले कृपण और उन्नत भालवाले राजा होते हैं।

लोगोंका अश्रुरहित, दीनतारहित, स्निग्ध रुदन मङ्गलकारी होता है तथा अविरल अश्रुधारवाला, दैन्यभावको प्रकट करता हुआ रूखा रुदन सुखकारी होता है।

कम्पनरहित हँसी श्रेष्ठ होती है। आँख मूँदकर हँसनेवाला व्यक्ति पापी होता है। बार-बार हँसनेवाला दुष्ट होता है और उन्मत्तकी हँसी अनेक प्रकारकी होती है।

सौ वर्षतक जीवन प्राप्त करनेवाले लोगोंके मस्तकपर तीन रेखाएँ होती हैं। मस्तकपर चार रेखाओंके होनेपर मनुष्य राजा होता है और उसकी आयु पंचानबे वर्षतक होती है। रेखारहित ललाटवाला व्यक्ति नब्बे वर्ष जीवित रहता है। विच्छिन्न रेखाओंसे व्याप्त मस्तकवाले पुरुष लम्पट होते हैं। मस्तकपर केशपर्यन्त रेखाओंके होनेसे मनुष्यकी आयु अस्सी वर्षकी होती है। पाँच, छ: अथवा सात रेखाओंके होनेसे प्राणीकी आयु पचास वर्ष तथा सातसे अधिक रेखाओंके होनेपर चालीस वर्षकी आयु माननी चाहिये। मस्तकपर रेखाओंकी वक्रता एवं भौंहपर्यन्त स्थिति होनेसे पुरुष तीस वर्ष तथा बाँयी और वक्र होनेपर बीस वर्षकी अल्पायुको प्राप्त करते हैं। रेखाओंके क्षुद्र होनेपर मनुष्य अल्पायु होता है।

छत्राकार सिरवाले मनुष्य राजा और निम्न सिरवाले धनी होते हैं। चिपटे सिरसे युक्त पुरुषोंके पिताकी मृत्यु शीघ्र होती

है। मण्डलाकार सिर होनेपर व्यक्ति गौ आदि प्राणियोंसे सम्पन्न होते हैं। घटाकार मूर्द्धाभागके होनेपर मनुष्य पापमें अभिरुचि रखनेवाला तथा धनहीन होता है।

काले-काले घुँघराले, स्निग्ध, एक छिद्रमें एक-एक उत्पन्न, अभिन्न अग्रभागवाले, अत्यधिक, न छोटे न बड़े, सुन्दर केशोंवाले राजा होते हैं। एक छिद्रमें अनेक बालवाले, विषम, स्थूलाग्र तथा कपिलवर्णके केशोंसे युक्त पुरुष निर्धन होते हैं। अत्यन्त कुटिल, सघन एवं काले बालवाले भी निर्धन होते हैं।

मनुष्यके जो अङ्ग अतिशय रूक्ष, शिराओंसे व्याप्त तथा मांसरहित होते हैं, वे सभी अशुभ हैं। यदि वे अङ्ग इसके विपरीत होते हैं तो उन्हें शुभ मानना चाहिये।

मानव-शरीरमें तीन अङ्ग विशाल और तीन अङ्ग गम्भीर, पाँच अङ्ग दीर्घ तथा सूक्ष्म, छः अङ्ग उन्नत, चार ह्रस्व एवं सात अङ्ग रक्तवर्णके होनेपर वह राजा होता है।

नाभि, स्वर तथा सत्त्व (स्वभाव)[१]—ये तीन गम्भीर होने चाहिये। ललाट, मुख तथा वक्षःस्थल विशाल, नेत्र, कक्षा (काँख), नासिका तथा कृकाटिका अर्थात् गरदनका उठा हुआ भाग, सिर और गरदनका जोड़—इन छःको उन्नत होना चाहिये, ऐसा होनेपर मनुष्य राजा होता है। जंघा, ग्रीवा, लिङ्ग तथा पृष्ठभाग—ये चार अङ्ग ह्रस्व होने चाहिये। करतल, तालु, अधर और नख—ये चार रक्ताभ होने चाहिये। नेत्रान्तभाग चरणतल, जिह्वा और दोनों ओष्ठ—ये पाँच सूक्ष्म होने चाहिये। दाँत, अँगुली, पर्व, नख, केश और त्वचा—ये पाँच अङ्ग दीर्घ होनेपर शुभकारी हैं। दोनों स्तनोंका मध्यभाग, दोनों भुजाएँ, दाँत, नेत्र और नासिकाका भी दीर्घ होना शुभ है।

इस प्रकार मनुष्योंका लक्षण कहकर अब स्त्रियोंका लक्षण कह रहा हूँ।

रानीके दोनों चरण स्निग्ध, समान पदतलवाले, ताम्रवर्णकी आभासे सुशोभित नखोंसे युक्त, सघन अँगुलियोंवाले तथा उन्नत अग्रभागवाले होते हैं। ऐसी स्त्रीको प्राप्तकर मनुष्य राजा बन जाता है।

गूढ गुल्फ-प्रदेशसे युक्त पद्मपत्रके समान चरणतल शुभ होते हैं। जिसके चरणतलोंमें पसीना नहीं छूटता है और वे कोमल होते हैं, उनमें मत्स्य, अंकुश, ध्वज, वज्र, पद्म तथा हलका चिह्न हो तो वह रानी होती है। इन लक्षणोंसे रहित चरणवाली स्त्री दासी होती है। स्त्रियोंकी रोमरहित, सुन्दर, शिराविहीन, गोल-गोल जंघाएँ शुभ हैं। सन्धिस्थान तथा दोनों जानु समान होने चाहिये, ऐसा शुभ होता है। गजशुण्डके सदृश, रोमरहित तथा समान भागवाले दोनों ऊरु श्रेष्ठ माने जाते हैं।

विस्तीर्ण, मांसल, गम्भीर, विशाल तथा दक्षिणावर्त नाभि तथा मध्यभागमें त्रिवलियाँ श्रेष्ठ होती हैं। स्त्रियोंके रोमरहित, विशाल, भरे हुए, सघन एवं समान भागवाले कठोर स्तन-प्रदेश शुभ हैं। रोमरहित, शङ्खके आकारवाली सुन्दर ग्रीवा प्रशस्त होती है। अरुणाभ अधरोष्ठवाला तथा वर्तुलाकार मांसल भरा हुआ मुख श्रेष्ठ होता है। कुन्द-पुष्पके समान दन्तपंक्ति तथा कोयलकी भाँति वाणी शुभ होती है, जो सदैव दाक्षिण्य भावसे परिपूर्ण रहती है, उसमें शठता नहीं होती, अपितु हंसोंके समान मधुर शब्दोंका प्रयोग करके वह दूसरोंको सुख प्रदान करती है, वही स्त्री श्रेष्ठ होती है। स्त्रियोंकी नासिका और नासिका-छिद्र समान होना मनोहर और मङ्गलदायी होता है।

स्त्रियोंके नीलकमलके समान नेत्र अच्छे होते हैं। बालचन्द्रके सदृश भौंहोंका होना शुभ है, किंतु उनका मोटा होना अच्छा नहीं है। उनका मस्तक अर्द्धचन्द्रके समान सुन्दर, समतल तथा रोमविहीन होना शुभ है।

सुन्दर, समान, मांसल एवं कोमल कान श्रेष्ठ होते हैं। स्त्रियोंके चिकने, नीलवर्णवाले, मृदु और घुँघराले केश प्रशस्त माने गये हैं। उनका सम आकारवाला सिर शुभ होता है। चरणतल अथवा करतलमें अश्व, हस्ति, श्री, वृक्ष, यूप, बाण, यव, तोमर, ध्वज, चामर, माला, पर्वत, कुण्डल, वेदी, शङ्ख, छत्र, पद्म, स्वस्तिक, रथ तथा अङ्कुश आदि चिह्नवाली स्त्रियाँ राजवल्लभा होती हैं।

स्त्रियोंके मांसल मणिबन्धवाले तथा कमलदलके समान

१-किरातार्जुनीय १२। ३९ के अनुसार 'सत्त्व' का अर्थ स्वभाव भी होता है।

हाथोंको शुभ माना जाता है। स्त्रियोंके करतलोंका न तो अधिक निम्न और न अधिक उन्नत होना अच्छा होता है। शुभ रेखाओंसे व्याप्त करतलवाली स्त्रियाँ आजीवन सधवा रहकर विभिन्न प्रकारके सुखोंका उपभोग करती हैं। हाथमें जो रेखा मणिबन्धसे निकलकर मध्यमा अँगुलीतक जाती है, वह ऊर्ध्वरेखा कही जाती है। ऐसी रेखा यदि स्त्री या पुरुषके करतल अथवा चरणतलमें अवस्थित रहती है तो वे स्त्री या पुरुष राज्य अथवा अन्य प्रकारके सुखोंका उपभोग करते हैं।

कनिष्ठिका अँगुलीके मूलसे निकलकर तर्जनी और मध्यमा अँगुलियोंके मध्यभागतक रेखाके पहुँचनेपर स्त्री या पुरुषकी आयु सौ वर्षकी होती है। यदि इन अँगुलियोंके बीचतक आनेवाली रेखाका परिमाण उसकी अपेक्षा कम हो तो उसी अनुपातमें मनुष्यकी आयु भी कम होती है।

अङ्गुष्ठमूलक रेखाओंके रहनेपर स्त्री या पुरुष बहुत-से पुत्रों या कन्याओंवाले होते हैं। स्थान-स्थानपर आयुरेखाके छिन्न-भिन्न होनेसे मनुष्यकी आयु अल्प हो जाती है। यदि वह रेखा दीर्घ एवं अविच्छिन्न हो तो उस पुरुष अथवा स्त्रीको दीर्घायु माना जाता है। स्त्रियोंके विषयमें कहे गये ये सभी लक्षण शुभ हैं। इनके विपरीत लक्षणोंके होनेपर उन्हें अशुभ मानना चाहिये। (अध्याय ६५)

चक्राङ्कित शालग्रामशिलाओंके विविध नाम, तीर्थमाहात्म्य तथा साठ संवत्सरोंके नाम

श्रीहरिने कहा—हे शिव! चक्राङ्कित शालग्राम-शिलाकी पूजा सब प्रकारके कल्याण-मङ्गल प्रदान करती है।

प्रथम शालग्राम-शिलाका नाम सुदर्शन है। (इसमें एक चक्रका चिह्न अङ्कित होता है।) दूसरी शिलाका नाम लक्ष्मीनारायण है। (इसमें दो चक्रोंके चिह्न होते हैं।) तीन चक्रोंवाली शिलाको अच्युत तथा चार चक्रोंवाली शिलाको चतुर्भुज कहा जाता है। इस प्रकार चक्रसमन्वित अन्य शालग्राम-शिलाओंको क्रमशः—वासुदेव, प्रद्युम्न, संकर्षण तथा पुरुषोत्तमके नामसे अभिहित किया गया है। नौ चक्रोंवाली शिलाको नवव्यूह और दस चक्रोंवाली शिलाको दशात्मक कहते हैं। एकादश चक्रोंसे युक्त शिलाको अनिरुद्ध एवं द्वादश चक्रोंसे समन्वित शिलाका नाम द्वादशात्मक है। उसके ऊपर चक्रोंकी चाहे जितनी संख्या हो, उनसे लक्षित शिलामूर्तिका नाम भगवान् अनन्त कहा गया है। जो शिलामूर्ति सबसे सुन्दर हो, उसका पूजन करना चाहिये, ऐसी सुदर्शन मूर्तियाँ पूजित होनेपर सभी कामनाओंको पूर्ण करती हैं।

जहाँ शालग्राम और द्वारका-शिला रहती हैं और इन दोनों शिलाओंका जहाँ संगम है, वहाँ मुक्ति रहती है, इसमें संशय नहीं है—

शालग्रामशिला यत्र देवो द्वारवतीभवः।
उभयोः संगमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः॥

(६६। ५)

हे शंकर! शालग्राम, द्वारका, नैमिष, पुष्कर, गया, वाराणसी, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, सूकरक्षेत्र, गङ्गा, नर्मदा, चन्द्रभागा, सरस्वती, पुरुषोत्तमक्षेत्र तथा महाकालका अधिष्ठान उज्जयिनी—ये सभी तीर्थ सब प्रकारके पापोंका विनाश करनेवाले एवं भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं।[1]

प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, विषु, चित्रभानु, स्वभानु, तारण, पार्थिव, व्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकार, शर्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभन, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवंग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत्, परिधावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, नल, पिंगल, काल, सिद्धार्थ, रौद्रि, दुर्मति, दुन्दुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन एवं अक्षय—ये साठ संवत्सर अपने नामके अनुसार शुभ और अशुभ फल प्रदान करनेवाले हैं। (अध्याय ६६)

---

१. शालग्रामो द्वारका च नैमिषं पुष्करं गया। वाराणसी प्रयागश्च कुरुक्षेत्रं च सूकरम्॥
गङ्गा च नर्मदा चैव चन्द्रभागा सरस्वती। पुरुषोत्तमो महाकालस्तीर्थान्येतानि शङ्कर॥
सर्वपापहराण्येव भुक्तिमुक्तिप्रदानि वै। (६६। ६—८)

स्वरोदय-विज्ञान

स्वरके उदयसे कार्योंके शुभ और अशुभका ज्ञान होता है। शरीरमें बहुत प्रकारकी नाडियोंका विस्तार है। नाभि-प्रदेशके नीचे जो कन्दस्थान अर्थात् मूलाधार है, वहींसे उन नाडियोंका अङ्कुरण होकर सम्पूर्ण शरीरमें विस्तार होता है। बहत्तर हजार नाडियाँ नाभिके मध्यमें चक्राकार अवस्थित रहती हैं। उन नाडियोंमें वामा, दक्षिणा और मध्यमा नामक तीन श्रेष्ठ नाडियाँ हैं। (उन्हींको क्रमशः—इडा, पिंगला और सुषुम्णा कहा जाता है।) इनमें वामा सोमात्मिका, दक्षिणा सूर्यके समान तथा मध्यमा नाडी अग्निके समान फलदायिनी एवं कालरूपिणी है।

वामा नाडी अमृतरूपा है, वह जगत्को आप्यायित करती रहती है। दक्षिणा नाडी अपने रौद्रगुणसे सदैव जगत्का शोषण करती रहती है। जब शरीरमें इन दोनोंका एक साथ प्रवाह होता है, उस समय समस्त कार्योंका विनाश करनेवाली मृत्यु आ पहुँचती है।

यात्रादिके लिये प्रस्थानकालमें वामा तथा प्रवेशके अवसरपर दक्षिणा नाडीप्रवाहको शुभ माना गया है। इडा अर्थात् वामाके श्वास-प्रवाह-कालमें ऐसा सौम्य शुभकारी कार्य करना चाहिये, जो चन्द्रके समान जगत्के लिये भी शुभकारी हो तथा पिंगला अर्थात् दक्षिणा नाडीमें प्राणवायुके प्रवाहित होनेके समय सूर्यके समान तेजस्वी क्रूर कार्य करना चाहिये। यात्रामें, सभी कार्योंमें तथा विषको दूर करनेमें इडा नाडीका चलना अच्छा होता है। भोजन, मैथुन, युद्धारम्भमें, पिंगला नाडी सिद्धिदायक होती है। उच्चाटनादि अभिचार कर्मोंमें भी पिंगला नाडीका चलना उत्तम होता है।

मैथुन, संग्राम और भोजन करते समय राजाओंको पिंगला नाडीके श्वास-प्रवाहपर ध्यान रखना चाहिये। शुभ कार्योंके सम्पादनमें, यात्रामें, विषापनोदनमें तथा शान्ति एवं मुक्तिकी सिद्धिमें राजाओंको इडा नाडीकी गतिपर विचार करना चाहिये।

पिंगला एवं इडा नामक दोनों नाडियाँ चल रही हों तो क्रूर तथा सौम्य दोनों प्रकारका कार्य न करे। विद्वान्को यह समय विषके समान मानना चाहिये।

सौम्यादि शुभ कार्योंमें, लाभादिके कर्मोंमें, विजयके लिये, जीवनके लिये तथा गमनागमनके लिये वामा नाडी सर्वत्र प्रशस्त मानी जाती है। घात-प्रतिघात, युद्धादिके क्रूर कार्य, भोजन और स्त्री-सहवासमें दक्षिणा नाडी प्रशस्त होती है। प्रवेश तथा क्षुद्र-कार्योंमें भी दक्षिणा नाडी श्रेष्ठ होती है।

शुभ-अशुभ, लाभ-हानि, जय-पराजय तथा जीवन और मृत्युके विषयमें प्रश्न करनेपर यदि प्रश्नकर्ताकी उस समय मध्यमा नाडी चल रही हो तो सिद्धि प्राप्त नहीं होती और यदि वामा तथा दक्षिणा नाडीके चलते समय प्रश्न हो तो निश्चित ही सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है।

इसी प्रकार प्रश्नकर्ताके स्वरमें उदय तथा प्रश्नकर्ताकी अवस्थिति आदिपर विचार करनेसे भी कार्यकी सिद्धि-असिद्धिका निर्णय तथा शुभ-अशुभ-कालका ज्ञान किया जाता है। इसके लिये स्वरोदय-विज्ञानकी जानकारी अपेक्षित होती है[1]। (अध्याय ६७)

रत्नोंके प्रादुर्भावका आख्यान तथा वज्र (हीरे)-की परीक्षा

सूतजीने कहा—अब मैं रत्नपरीक्षाका वर्णन करता हूँ। प्राचीनकालमें बल नामक एक असुर था। उसने इन्द्रादि सभी देवोंको पराजित कर दिया था। उसको जीतनेमें देवगण समर्थ नहीं थे। अतः असमर्थ देवोंने एक यज्ञ करनेका विचार किया और उस असुरके सन्निकट पहुँचकर उससे यज्ञपशु बननेकी अभ्यर्थना की। वचनबद्ध बलासुरने अपना शरीर उन देवोंको दानमें दे दिया। अतः अपने वाग्वज्रसे वह पशुवत् मारा गया।

वचनपर अडिग, पशु-शरीरवाले उस असुरने संसारके कल्याणार्थ एवं देवताओंकी हितकामनाके कारण यज्ञमें शरीरका परित्याग किया था, उस विशुद्ध कर्मको करनेसे उसका शरीर भी विशुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न हो उठा था।

१-यहाँ स्वरोदय-विज्ञानका दिग्दर्शनमात्र किया गया है। विस्तृत जानकारी, प्रमाण एवं तथ्यातथ्यके स्पष्टीकरणके लिये तद्विषयक ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिये।

अतः उसके शरीरके सभी अङ्ग रत्नोंके बीजके रूपमें परिणत हो गये।

इस प्रकार रत्नोंकी उत्पत्ति होनेपर देवता, यक्ष, सिद्ध तथा नागोंका उस समय बहुत बड़ा उपकार हुआ। जब वे सभी विमानके द्वारा उसके शरीरको आकाशमार्गसे ले जाने लगे तो यात्रावेगके कारण उसका शरीर स्वतः खण्ड-खण्ड होकर पृथिवीपर इधर-उधर गिरने लगा।

बलासुरके शरीरके अङ्ग खण्ड-खण्ड होकर समुद्र, नदी, पर्वत, वन अथवा जहाँ-कहीं रंचमात्र भी गिरे, वहाँ रत्नोंकी खान बन गयी और उन स्थानोंकी प्रसिद्धि उन्हीं रत्नोंके नामपर हो गयी। पृथिवीकी उन खानोंमें विविध प्रकारके रत्न उत्पन्न होने लगे; जो राक्षस, विष, सर्प, व्याधि तथा विविध प्रकारके पापोंको नष्ट करनेमें समर्थ थे।

रत्नोंके विविध प्रकारोंको वज्र (हीरा), मुक्तामणि, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन, पुलक, रुधिर, स्फटिक तथा प्रवालादि कहा गया है। पारदर्शी विद्वज्जनोंने उनका यह नामकरण तथा संग्रह यथायोग्य गुणोंको दृष्टिमें रखकर किया है।

अतः रत्नपारखी विद्वानोंको सर्वप्रथम रत्नोंके आकार, वर्ण, गुण, दोष, फल, परीक्षा तथा मूल्य आदिका ज्ञान तत्सम्बन्धित सभी शास्त्रोंके द्वारा विधिवत् प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि कुत्सित लग्न या अनेक कुयोगोंसे बाधित अशुभ दिनोंमें जिन रत्नोंकी उत्पत्ति होती है, वे सभी दोषपूर्ण होकर अपनी गुण-क्षमताको नष्ट करते हैं।

ऐश्वर्यकी इच्छा करनेवाले राजाको चाहिये कि वह परीक्षासे किये गये अत्यन्त शुद्ध रत्नोंको धारण करे अथवा उनका संग्रह करे।

जो रत्नशास्त्रोंके ज्ञाता, कुशल, रत्नसंग्रही तथा परीक्षण-कार्यमें दक्ष होते हैं, उन्हींको रत्नोंके मूल्य और मात्राको जाननेवाले कहा गया है। वज्र (हीरा)-को महाप्रभावशाली कहा गया है, इसलिये सर्वप्रथम उसीकी परीक्षाको बतायेंगे।

वज्रायुध इन्द्रपर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले उस बल नामक असुरके अस्थिभाग पृथिवीके जिन-जिन स्थानोंमें गिरे, वे हीरे बनकर उन स्थानोंमें नाना प्रकारकी आकृतिवाले हो गये।

हिमाचल, मातंग, सौराष्ट्र, पौण्ड्र, कलिंग, कोसल, वेण्वातट तथा सौवीर नामक आठ भूभाग हीरोंके क्षेत्र हैं। हिमालयसे उत्पन्न हीरे ताम्रवर्ण, वेणुकाके तटसे प्राप्त चन्द्रमाके समान श्वेत, सौवीर देशवाले नीलकमल तथा कृष्णमेघके समान, सौराष्ट्रप्रान्तीय ताम्रवर्ण एवं कलिंगदेशीय सोनेके समान आभावाले होते हैं। इसी प्रकार कोसल देशके हीरोंका वर्ण पीत, पुण्ड्रदेशीय श्याम तथा मतंग-क्षेत्रवाले हलके पीतवर्णके होते हैं।

यदि इस संसारमें कहींपर भी अत्यन्त क्षुद्र वर्ण, पार्श्वभागोंमें भली प्रकारसे परिलक्षित होनेवाली रेखा, बिन्दु कालिमा, काकपदक[1] और त्रास[2] दोषसे रहित, परमाणुकी भाँति अत्यन्त लघु तथा तीक्ष्ण धारसे युक्त जो भी वज्र अर्थात् हीरा दिखायी देता है, उसमें निश्चित ही देवताका वास समझना चाहिये।

रंगके अनुसार हीरकोंमें देवताओंके विग्रहोंका निश्चय किया गया है। वर्णको ध्यानमें रखकर ही हीरोंका विभाजन करना चाहिये। हरित, श्वेत, पीत, पिंगल, श्याम तथा ताम्रवर्णके हीरे स्वभावतः सुन्दर होते हैं। उन हीरोंमें क्रमानुसार विष्णु, वरुण, इन्द्र, अग्नि, यम और मरुत्-देव प्रतिष्ठित रहते हैं।

ब्राह्मणके लिये शङ्ख, कुमुद अथवा स्फटिकके समान शुभ्रवर्णका हीरा प्रशस्त होता है। क्षत्रियके लिये शश (चन्द्रलाञ्छनके समान वर्णवाला), बभ्रु (पिंगल—भूरे वर्णके धातु विशेषके समान वर्णवाला), विलोचन[3] (आँखकी ताराके समान वर्णवाला), वैश्यवर्णके निमित्त कान्त (कुंकुम) अथवा कदलीदलके समान आभावाला तथा शूद्रवर्णके लिये धौत (चाँदी)-के समान अथवा तलवारके सदृश हीरा प्रशस्त है।

विद्वानोंने राजाओंके योग्य दो प्रकारके हीरोंको उत्तम माना है, जो अन्य लोगोंके लिये प्रशस्त नहीं होते हैं। जो हीरा जपावर्ण तथा प्रवालके समान रक्तवर्ण अथवा हल्दी-रसके सदृश पीतवर्णका होता है, वह राजाओंके लिये

१-काकके पदके समान आभाविशेषसे युक्त।

२-त्रास—मणिके दोषविशेषको त्रास कहते हैं।

३-विलोचन (आँख) प्रसंगके अनुसार आँखकी तारा।

लाभप्रद है। सभी वर्णोंका स्वामी होनेके कारण अथवा समस्त वर्णोंके गुणोंको अपनेमें समाविष्ट करनेके उद्देश्यसे राजाओंको सभीके कल्याणकी इच्छासे उक्त दो प्रकारके हीरोंको धारण करना चाहिये। ऐसे हीरोंको धारण करनेका अधिकार अन्यके लिये किसी भी प्रकारसे नहीं है।

जिस प्रकार लोकमें निम्न और उच्च वर्णका वर्णसांकर्य दोषावह एवं दु:खदायी होता है, रत्नोंका वर्णसांकर्य उससे भी अधिक दु:खदायी होता है।

केवल वर्णमात्रको देखकर ही विद्वानोंको रत्नका संचय नहीं करना चाहिये, क्योंकि जो गुणवान् रत्न होता है, वही गुण और सम्पत्तिकी विभूति होता है, इसके विपरीत गुणहीन रत्न कष्टका हेतु होता है। जिस हीरेका एक भी शृंग टूटा हुआ अथवा छिन्न-भिन्न दिखायी दे तो गुणवान् होनेपर भी धनार्थी जनोंको उसे अपने घरमें नहीं रखना चाहिये।

अग्निके समान स्फुटित, विशीर्ण शृंगभागसे युक्त, मलिन वर्णवाले तथा मध्यमें बिन्दुओंसे चिह्नित हीरकको धारण करनेपर इन्द्र भी श्रीहीन हो जाते हैं। ऐसे हीरेके संग्रह करनेकी लालसा नहीं करनी चाहिये। जिस हीरेका एक भाग अस्त्र-शस्त्रादिसे विदीर्ण क्षत-विक्षत शरीरकी आभाको प्राप्त हो तथा वह रक्तवर्णसे चित्रित हो तो वैसा हीरा इच्छा-मृत्युसे सम्पन्न शक्तिशाली व्यक्तिकी भी शीघ्र मृत्युको रोक नहीं सकता है। ऐसे हीरेको धारण नहीं करना चाहिये।

षट्कोण, अष्टकोण, द्वादशकोण, षट्पार्श्व, अष्टपार्श्व, द्वादशपार्श्व, षड्धारा, अष्टधारा, द्वादशधारा, उत्तुंग, सम एवं तीक्ष्णाग्र भाग हीरेके खानिक अर्थात् प्रकृतिगत गुण हैं।

जो हीरा षट्कोण, विशुद्ध, निर्मल, तीक्ष्ण धारवाला लघु, सुन्दर पार्श्वभागसे युक्त और निर्दोष है तथा इन्द्रायुध वज्रके समान स्फुरित अपनी प्रभाको विकीर्ण करनेमें समर्थ हो तो अन्तरिक्ष भागमें स्थित वह हीरा इस पृथिवीलोकमें सुलभ नहीं है।

जो मनुष्य तीक्ष्णाग्र, निर्मल तथा दोषशून्य हीरेको धारण करता है, वह जीवनपर्यन्त प्रतिदिन स्त्री, सम्पत्ति, पुत्र, धन-धान्य और गवादिक पशुओंकी श्रीवृद्धिको प्राप्त करता है। सर्प, विष, व्याधि, अग्नि, जल तथा तस्करादिक भय एवं अभिचार-मन्त्रोंके उच्चाटनादिक प्रयोग उसके सन्निकट आनेके पूर्व दूरसे ही प्रत्यागमित हो जाते हैं।

यदि हीरा सभी दोषोंसे रहित तथा भारमें बीस तण्डुलके बराबर हो तो मणिशास्त्रके पण्डितोंने उसका मूल्य अन्य हीरेकी अपेक्षा द्विगुण अधिक कहा है। पूर्वोक्त परिमाणमें तीन भाग, अर्द्धभाग, चतुर्थांश, त्रयोदशांश और तीसवाँ अंश, साठवाँ अंश, अस्सीवाँ अंश, शतांश तथा सहस्रांश भाग न्यूनाधिक होनेपर मूल्यका निर्धारण भी उसके समान ही न्यूनाधिक होता है।

आठ गौर सरसोंके दानोंके भारके बराबर एक तण्डुलका भार होता है।

जो हीरा सभी गुणोंसे सम्पन्न होता है और जलमें डालनेपर तैरता है, वह सभी रत्नोंमें सर्वश्रेष्ठ होता है। उसीको धारण करना उचित है।

जिस हीरेमें अल्पमात्र भी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट दोष होता है तो स्वाभाविक मूल्यकी अपेक्षा उस हीरेको मनुष्य दशांश कम मूल्यमें ही प्राप्त कर लेता है। जिस हीरेमें छोटे अथवा बड़े अनेक दोष प्रकट रहते हैं, उस हीरेका मूल्य स्वाभाविक मूल्यकी अपेक्षा शतांश ही माना गया है।

अलंकारके रूपमें प्रयुक्त हीरेमें यदि किसी भी प्रकारका दोष परिलक्षित होता है तो अपेक्षाकृत उसका मूल्य बहुत ही कम हो जाता है। यदा-कदा जो हीरा सबसे पहले गुण-सम्पत्तियोंसे परिपुष्ट माना जाता है, वही बादमें दोषयुक्त हो जाता है। राजाको ऐसे दोषपूर्ण हीरेसे बने आभूषणको धारण नहीं करना चाहिये। गुणहीन होनेपर तो मणि भी आभूषणके योग्य नहीं होती है।

पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषा रखनेवाली स्त्रीके लिये सर्वगुण-सम्पन्न होनेपर भी हीरा प्रशस्त नहीं होता है। दीर्घ, चिपटा, ह्रस्व तथा अन्यान्य गुणोंसे रहित हीरेके विषयमें कुछ कहना ही नहीं, वह तो दोषपूर्ण होता ही है।

हीरेके कुशल विशेषज्ञ लौह, पुष्पराग, गोमेद, वैदूर्य, स्फटिक एवं विविध प्रकारके काँचोंसे हीरकके प्रतिरूपोंका निर्माण कर लेते हैं। अत: विद्वानोंको कुशल परीक्षकोंसे उनकी परीक्षा करवा लेनी चाहिये।

क्षार-द्रव्यके द्वारा, उल्लेखन-विधिसे एवं शाण-प्रयोगसे हीरोंका परीक्षण करना चाहिये। पृथिवीमें जितने भी रत्न हैं

अथवा लौहादिक जितनी अन्य धातुएँ हैं, हीरा उन सबमें चिह्नाङ्कन कर सकता है; किंतु अन्य कोई भी रत्न या धातु हीरेमें चिह्न करनेमें समर्थ नहीं है।

गुरुता समस्त रत्नोंके महत्त्वका कारण है, फिर भी रत्नशास्त्रज्ञ हीरेके विषयमें इस निर्देशके विपरीत ही कहते हैं।

पुष्परागादि जातिविशेषके रत्न दूसरी जातिके रत्नको काट सकते हैं, किंतु हीरक एवं कुरुविन्द[1] अपनी ही जातिके रत्नको काटनेमें सक्षम होते हैं। हीरेसे हीरा ही कट सकता है, अन्य रत्नोंसे वह हीरा काटा नहीं जा सकता है।

स्वाभाविक हीरेके अतिरिक्त हीरक तथा मुक्तादि जितने प्रकारके रत्न हैं, उनमें किसी भी रत्नकी प्रभा ऊर्ध्वगामिनी नहीं होती है। मात्र हीरा ही ऐसा रत्न है, जिसकी प्रभा ऊपरकी ओर जाती है।

यदि हीरा टूटे हुए किनारोंसे दोषयुक्त हो या बिन्दु तथा रेखासे समन्वित हो अथवा विशेष वर्णसे रहित हो तो भी इन्द्रायुध-चिह्नसे अङ्कित होनेपर वह मनुष्यको धन-धान्य एवं पुत्रादिसे परिपूर्ण करता है।

जो राजा विद्युत्-तुल्य, समुज्ज्वल एवं चमकते हुए शोभा-सम्पन्न हीरेको धारण करता है, वह अपने पराक्रमसे दूसरेके प्रतापको आक्रान्त करनेमें समर्थ होता है तथा अपने समस्त सामन्तोंको वशमें रखकर वह पृथिवीका उपभोग करता है। (अध्याय ६८)

मुक्ताके विविध भेद, लक्षण और परीक्षण-विधि

सूतजीने कहा—श्रेष्ठ हाथी, जीमूत (मेघ), वराह, शङ्ख, मत्स्य, सर्प, शुक्ति तथा बाँसमें उत्पन्न मुक्ताफलोंकी संसारमें प्रसिद्धि है; किंतु इनमें शुक्ति (सीप)-में प्रादुर्भूत मुक्ताएँ ही अधिक उपलब्ध हैं।

मुक्ताशास्त्री कहते हैं कि इन मुक्ताओंमें मात्र एक ही ऐसी मुक्ता होती है, जिसको रत्नपदपर अधिष्ठित किया जा सकता है। वह शुक्तिसे उत्पन्न होनेवाली मुक्ता है। यह सूचिकादि यन्त्रोंसे वेध्य होती है, शेष मुक्ताएँ अवेध्य हैं।

प्राय: बाँस, हाथी, मत्स्य, शङ्ख एवं वराहसे उत्पन्न मुक्ताएँ प्रभाविहीन होती हैं; फिर भी माङ्गलिक होनेसे वे प्रशस्त मानी जाती हैं।

रत्ननिर्णायक विद्वानोंने मुक्ताओंके जिन आठ प्रकारोंका वर्णन किया है, उनमें शङ्खसे उत्पन्न और हाथीसे प्राप्त होनेवाली मुक्ताको अधम कहा है।

शङ्खसे उत्पन्न मुक्ता, अपने मूल कारणके मध्यभागमें अवस्थित वर्णके समान वर्णवाली तथा परिमाणमें बृहल्लोल फलके सदृश होती है। जो मुक्ता हाथीके कुम्भस्थलसे निकलती है, वह पीतवर्णवाली एवं प्रभाविहीन होती है। जो शङ्खोद्भव मुक्ताएँ हैं, वे शार्ङ्गधनुषके तुल्य वर्णको प्राप्त पीतशङ्खोंके श्रेष्ठ गोत्रमें ही उत्पन्न होती हैं। जो गजमुक्ताएँ हैं, उनका भी जन्म विशुद्ध वंशवाले मदमत्त गजराजोंमें होता है, उन्हें मौक्तिकप्रभव अर्थात् गजमुक्ता नामसे अभिहित किया गया है। इनसे प्राप्त मुक्ता पूर्णतया पीतवर्णसे युक्त एवं प्रभाविहीन होती है।

मत्स्यसे उत्पन्न मुक्ता पाठीन मत्स्यके पीठके समान वर्णवाली, अत्यन्त सुन्दर, वृत्ताकार, लघु एवं अत्यधिक सूक्ष्म होती है। यह जलचर प्राणियोंके मुखोंमें प्राप्त होती है, उनमें भी जो मत्स्य अथाह समुद्रकी जलराशिमें विचरण करते हैं, वे इसके जनक होते हैं।

वराहके दाँतसे उत्पन्न मुक्ता उसके ही दन्ताङ्कुरोंके सदृश वर्णवाली होती है, किंतु ऐसी मुक्ता प्रदान करनेवाले विशिष्ट वराहराज कहीं किसी विशेष भूप्रदेशमें ही पाये जाते हैं।

बाँसके पर्वोंसे उत्पन्न मुक्ताएँ वर्षोपल (ओले)-के समान समुज्ज्वल वर्णकी सुन्दर शोभासे सुशोभित रहती हैं। ऐसी मुक्ताओंके जनक बाँसोंके वंश दिव्यजनोंके लिये उपभोग्य विशेष स्थानमें अङ्कुरित होते हैं। वे सार्वजनिक स्थानोंमें नहीं पाये जाते।

सर्पमुक्ता मत्स्यमुक्ताके सदृश विशुद्ध तथा वृत्ताकार होती है। स्थान-विशेषके कारण उसकी अत्यन्त उज्ज्वल शोभा होती है। इसकी कान्ति शाणपर चढ़ायी गयी तलवारकी धारके समान अत्यन्त स्वच्छ होती है। सर्पोंके

[1] कुरुविन्द—माणिक्य अथवा कुरुबिल्व नामका रत्नविशेष।

सिरसे प्राप्त होनेवाली इस मुक्ताको अर्जित करनेवाले मनुष्य अतिशय प्रभासम्पन्न, राज्यलक्ष्मीसे युक्त तथा दुःसाध्य महान् ऐश्वर्यसम्पन्न, तेजस्वी एवं पुण्यवान् होते हैं।

रत्नोंके गुण एवं अवगुणोंको जाननेकी इच्छासे यदि रत्न-विधियोंमें पूर्ण अधिकार रखनेवाले विद्वानोंके द्वारा शुभ मुहूर्तमें प्रयत्नपूर्वक समस्त रक्षा-विधिसे सम्पन्न भवनके ऊपर उस मुक्ताको स्थापित करा दिया जाय तो उस समय आकाशमें देव-दुन्दुभियोंकी ध्वनि परिव्याप्त हो उठती है। इन्द्रधनुषकी टंकार, विद्युल्लताओंके संघर्षण एवं सघन पयोधरोंकी पारस्परिक टकराहटसे अन्तरिक्ष आच्छादित हो उठता है।

जिसके कोशागारमें यह सर्पमुक्ता रहती है, उसकी मृत्यु सर्प, राक्षस, व्याधि या अन्य आभिचारिक दोषके कारण नहीं होती।

मेघसे उत्पन्न होनेवाली मुक्ता पृथ्वीतक आ ही नहीं पाती। देवगण आकाशमें ही उसका हरण कर लेते हैं। उस मेघमुक्ताके तेजकी दिव्य कान्तिसे अनावृत समस्त दिशाएँ आलोकित हो उठती हैं। सूर्यके समान देदीप्यमान उसका परिमण्डल देखनेमें कष्टसाध्य होता है। अग्नि, चन्द्र, नक्षत्र तथा ताराओंके तेजको तिरस्कृत करके जैसे सूर्यके कारण दिन प्रतिभासित होता है, उसी प्रकार गहन अन्धकारसे भरी हुई रात्रियोंमें भी उस मेघमुक्ताका तेज दिनकी प्रभाके समान ही प्रभाको विकीर्ण करता है। विचित्र रत्नकान्तिको प्राप्त सुन्दर आभूषणको प्रशस्त बनानेके लिये जलराशिवाले चारों समुद्रोंसे इस मुक्ताका जन्म हुआ है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि इसका कोई मूल्य निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह जिसके पास रहती है, वह राजा होता है। उसके राज्यकी सम्पूर्ण भूमि सोनेसे परिपूर्ण होती है। कदाचित् शुभ तथा महान् कर्मविपाकसे यदि कोई दरिद्र भी इस मेघमुक्ताको प्राप्त कर लेता है तो उस व्यक्तिके पास जबतक यह रहती है, तबतक वह शत्रुओंसे रहित सम्पूर्ण पृथिवीका उपभोग करता है।

यह मेघमणि मात्र राजाके लिये ही शुभप्रद है, ऐसा नहीं है, अपितु प्रजाओंके भाग्यसे भी इसका जन्म होता है। यह अपने चारों ओर सहस्र योजनपर्यन्त क्षेत्रमें अनर्थोंको आने नहीं देती।

दैत्यराज बलासुरके मुखसे विशीर्ण हुई दन्तपंक्ति आकाशमें फैली हुई नक्षत्रमालाके समान प्रतीत होती थी। विचित्र वर्णोंमें भी अपना विशुद्ध स्थान रखनेवाली वह दन्तावलि आकाशसे उस समुद्रकी जलराशिमें गिरी, जो पूर्णिमाके चन्द्रकी समस्त षोडशकलाओंको तिरस्कृत करनेमें समर्थ महागुणसम्पन्न मणिरत्नका निधान है। समुद्रके जलमें उसे शुक्तिमें स्थान प्राप्त हुआ। अतः वह सामुद्रिक मुक्ताका प्राचीन बीज बन गया, जिससे अन्य मुक्ताओंका उद्भव हुआ। समुद्रके जिस जल-प्रदेशमें सुन्दर रत्न मुक्तामणिके बीज गिरे, उसी प्रदेशमें वे बीज फैलकर शुक्तियोंमें स्थित होनेके कारण मुक्तामणि (मोती) हो गये। अतएव सिंहल, परलोक, सौराष्ट्र, ताम्रपर्ण, पारशव, कुबेर, पाण्ड्य, हाटक और हेमक—ये मुक्ताओंके खजाने हैं।

बर्धन, पारसीक, पाताल, लोकान्तर तथा सिंहलादिकी शुक्ति-मुक्ताएँ प्रमाण, स्थान, गुण और कान्तिकी दृष्टिसे अन्य क्षेत्रोंमें प्राप्त होनेवाली मुक्ताओंकी तुलनामें अत्यधिक हीन वर्णकी नहीं होती हैं। अतः विद्वान् व्यक्तिको उनके मूल उत्पत्ति-स्थानको लेकर चिन्तन नहीं करना चाहिये, बल्कि उनके रूप एवं प्रमाणपर ही विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता होती है। इस प्रकारकी मुक्तासे सम्बन्धित गुण-अवगुणकी कोई व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। ये सर्वत्र सब प्रकारकी आकृतियोंमें पायी जाती हैं।

शुक्तिसे उत्पन्न एक मुक्ताफलका मूल्य एक हजार तीन सौ पाँच मुद्रा होता है। आधे तोले भारवाली मुक्ताका मूल्य उक्त मूल्यकी अपेक्षा २/५ भाग कम होता है। जिस मुक्ताका भार तीन माशा अधिक हो, उसका मूल्य दो हजार मुद्रा कहा गया है।

ढाई माशा परिमाणवाली मुक्ताका मूल्य तेरह सौ मुद्रा होता है। जो मुक्ता दो माशा परिमाणकी होती है, उसका मूल्य आठ सौ मुद्रा है। जिसका परिमाण आधा माशा है, उसका मूल्य तीन सौ बीस मुद्रा है। जो मुक्ता भारमें छः गुंजाके बराबर है, पण्डितोंने उसका मूल्य दो सौ मुद्रा स्वीकार किया है। जिसका परिमाण तीन गुंजा है, वह एक सौ मुद्राकी होती है। जो मुक्ता उक्त परिमाणमें सोलहवाँ

भाग है, विद्वानोंने उसको दार्विका कहा है। उसका मूल्य एक सौ दस मुद्रा होता है।

जिस मुक्ताका कथित परिमाणकी तुलनामें भार १/२० भाग होता है, उसको विद्वानोंने भवककी संज्ञा प्रदान की है। यदि वह मुक्ता गुणहीन न हो तो उसका मूल्य सत्तानबे मुद्रा होता है। जो मुक्ता उक्त स्वाभाविक परिमाणमें १/३० भागकी होती है, उसको शिक्य कहा जाता है। उसका मूल्य चालीस मुद्रा होता है। जिसका परिमाण कहे गये परिमाणकी अपेक्षा १/४० वाँ अंश हो तो उसका मूल्य तीस मुद्रा है। जो मुक्ता १/५० वाँ अंश परिमित होती है, उसे सोम कहा जाता है। उसका मूल्य बीस मुद्रा है। जो मुद्रा १/६० अंशके बराबर होती है, उसको निकरशीर्ष कहा जाता है। वह चौदह मुद्रा मूल्यकी होती है। १/८० तथा १/९० अंश परिमित मुक्ताको कूप्य नामसे अभिहित किया गया है। उनका मूल्य क्रमशः ग्यारह और नौ मुद्रा है।

विशुद्धताके लिये मुक्ताओंको अन्नपात्र (अर्थात् अन्न रखनेवाले मटके)-में भरे हुए जम्बीर-रसमें डालकर पकाना चाहिये। तत्पश्चात् उनकी मूल आकृतियोंको घिसकर चिक्कण एवं समुज्ज्वल आकार प्रदान करके उनमें यथाशीघ्र छेद भी कर देना चाहिये।

सर्वप्रथम पूर्णतया आर्द्र मिट्टीसे लिप्त मत्स्य पुटपाक और फिर बिडाल पुटपाकमें मुक्ताओंका पाचन करे। उसके बाद उन्हें चिकना और उज्ज्वल बनानेके लिये उसमेंसे निकालकर दूध अथवा जल या सुधारसमें पकाया जाता है। तदनन्तर स्वच्छ वस्त्रसे घिस-घिसकर उन्हें उज्ज्वल और चमकदार रूप प्रदान किया जाता है। ऐसा करनेसे वह मौक्तिक अत्यधिक गुणवान् तथा कान्तिसे युक्त हो जाता है। महाप्रभावशाली, सिद्ध एवं संतप्तजनोंके हितमें लगे रहनेवाले, दयावान् आचार्य व्याडिने ऐसा ही कहा है।

रसविशेषमें शोधित वही मुक्ता शरीरका अलङ्कार होती है—जो श्वेत काँचके समान हो, स्वर्ण-जटित हो तथा रत्नशास्त्रके अनुसार सुपरीक्षित होनेके कारण (तार) कष्टका निवारण करनेवाली हो। सिंहल-देशके कुशलजन ऐसा ही (शोधनादि कार्य) करते हैं।

यदि किसी मुक्ताके कृत्रिम होनेका संदेह हो तो उसको लवणमिश्रित उष्ण, स्नेह द्रव्यमें एक रात रखकर सूखे वस्त्रमें वेष्टित करके यथायोग्य धान्यके साथ उसका मर्दन करे। ऐसा करनेसे यदि उसमें विवर्ण भाव नहीं आता है तो उसको स्वाभाविक मुक्ता ही मानना चाहिये।

यथोक्त प्रमाणवाली गुरु, श्वेत, स्निग्ध, स्वच्छ, निर्मल एवं तेजसम्पन्न, सुन्दर एवं वृत्ताकार मुक्ता गुणसम्पन्न मानी गयी है। प्रमाणमें बड़ी-बड़ी, सुन्दर, रश्मि-कान्तिसे परिपूर्ण, श्वेत, सुवृत्ताकार, समान एवं सूक्ष्म छिद्रसे युक्त जो मुक्ता होती है, वह क्रय न करनेवाले व्यक्तिको भी आनन्दित करती है[1]। अतः ऐसी मुक्ताको प्रशस्त मानना चाहिये।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रत्नशास्त्रीय परीक्षा-विधिके अनुसार जिस मुक्तामें सभी गुणोंका उदय हो गया है, यदि वह मुक्ता किसी पुरुषका योग (संयोग) प्राप्त कर लेती है तो वह अपने स्वामीको किसी भी प्रकारके एक भी अनर्थोत्पादक दोषके सम्पर्कमें नहीं आने देती। (अध्याय ६९)

पद्मरागके विविध लक्षण एवं उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—भगवान् भास्कर जब महामहिम दैत्यराज बलासुरके उस श्रेष्ठ रत्नबीजरूप शरीरके रक्तको लेकर स्वच्छ नीले आकाश-मार्गसे देवलोकको जा रहे थे; उसी समय निरन्तर देवोंपर विजय प्राप्त करनेसे अहंकारमें भरे हुए लंकाधिपति रावणने आकर बलात् उनको शत्रुके समान आधे मार्गमें ही रोक लिया। भयवश सूर्यने बलासुरके रत्नबीजरूपी रक्तको लंका देशकी एक श्रेष्ठ नदीके जलमें छोड़ दिया, जो उस देशकी सुन्दर रमणियोंके कान्तिमय नितम्बोंकी प्रतिच्छायासे झिलमिलाते हुए अगाधजलसे परिपूर्ण तथा सुपारीकी वृक्ष-पंक्तियोंसे आच्छादित

१-उत्तम मुक्ताका क्रय (मुक्ता विक्रय) करनेसे रुपये मिलते हैं, उससे आनन्दानुभूति होती है। क्रय किये बिना भी अपनी उत्तमताके कारण यथाविधि यदि मुक्ता धारणकी जाय तो वह स्वयं विविध ऐश्वर्य देती ही है। इसलिये आनन्दानुभूति दोनों दशा (क्रय करने, न करने)-में समान है।

अपने दोनों तटोंसे सुशोभित हो रही थी। गङ्गाके समान पवित्र एवं उत्तम फलोंको प्रदान करनेमें सक्षम उस नदीका नाम रावणगङ्गा प्रसिद्ध हो गया।

बलासुरके रत्नबीजरूपी रक्तके गिरनेसे उस नदीके तटपर उसी समयसे रात्रिमें रत्नराशियाँ स्वयं आकर एकत्र होने लगीं। अतएव नदीका अन्त:भाग एवं बाह्यभाग सैकड़ों स्वर्ण-बाणोंके समान अपनी प्रभाको बिखेरनेमें समर्थ रत्नोंसे प्रतिभासित होने लगा। उस रावणगङ्गाके दोनों तट सदैव रत्नोंकी उज्ज्वल प्रभासे सुशोभित रहते हैं। उसके जलमें उत्पन्न पद्मराग नामक रत्न सौगन्धिक (शापमाल-विकसित होनेवाला श्वेतमाल), कुरुविन्दज (रत्नविशेष) तथा स्फटिक रत्नोंके प्रधान गुणोंको धारण करते हैं। उनका स्वरूप बन्धूकपुष्प, गुञ्जाफल, वीरबहूटी कीट तथा जवाकुसुम और अष्टक (कुंकुम)-के वर्णोंकी कान्तियोंसे सुशोभित रहता है। कुछ पद्मराग दाडिम-बीजकी आभासे सम्पन्न तथा कुछ किंशुक (पलाश)-पुष्पके समान रक्तवर्णकी कान्तिसे युक्त रहते हैं। सिन्दूर, रक्तकमल, नीलोत्पल, कुंकुम और लाक्षारसके समान रंगवाले भी पद्मराग होते हैं। गहरा वर्ण होनेपर भी उन पद्मरागरत्नोंमें स्फुरित शोभासम्पन्न कान्तियाँ सुन्दर आभाको फैलाती रहती हैं।

स्फटिकसे उद्भूत पद्मराग सूर्यकी किरणोंसे सम्पृक्त होकर अपनी रश्मियोंके द्वारा दूर रहते हुए भी पार्श्वभागोंको अनुरञ्जित करते हैं। कुछ रत्न कुसुम्भवर्ण एवं नीलवर्णकी मिश्रित आभासे सम्पन्न रहते हैं तो कुछ रत्नोंका वर्ण नये विकसित कमलके सदृश शोभाको धारण करता है। कुछ रत्न भल्लनाक तथा कण्टकारी-पुष्पके समान कान्ति प्राप्त करनेवाले हैं और कुछ रत्न हिंगुल अर्थात् हींग-वृक्षके पुष्पोंकी शोभासे सुशोभित रहते हैं। कतिपय रत्नोंका वर्ण चकोर, पुंस्कोकिल तथा सारस पक्षियोंके नेत्रोंके समान होता है। कुछ रत्न कुमुद-पुष्पके सदृश होते हैं। प्राय: गुण-प्रभाव, शारीरिक काठिन्य एवं गुरुत्वमें स्फटिकोद्भूत पद्मरागमणियाँ समान होती हैं।

सौगन्धिक मणियोंसे प्रादुर्भूत पद्मराग मणिका वर्ण नीले और लाल कमलके समान होता है। कुरुविन्दकसे उत्पन्न पद्मराग मणियोंमें वैसी आभा नहीं होती है, जैसी आभा स्फटिकसे उद्भूत पद्मराग मणियोंमें रहती है। अधिकांश मणियोंमें प्रभा अन्तर्निहित होती है। फिर भी वे अपनी समस्त पुञ्जीभूत रश्मि-प्रभाओंसे लोगोंपर अपना अत्यधिक प्रभाव डालती हैं।

उस रावणगङ्गामें जो भी कुरुविन्दक रत्न पाये जाते हैं, वे सभी सघन, रक्ताभवर्ण तथा स्फटिक प्रभावाले होते हैं। उन रत्नोंकी वर्ण-समानताको प्राप्त करनेवाले अन्य रत्न आन्ध्रादिक किसी दूसरे देशमें दुर्लभ हैं। उन स्थानोंमें जो भी कुरुविन्दक रत्न प्राप्त होते हैं, उनका मूल्य इस रावणगङ्गा नदीसे प्राप्त रत्नोंकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है। उसी प्रकार यहाँपर उत्पन्न स्फटिक मणियोंसे प्रादुर्भूत पद्मरागकी समानतामें तुम्बुरु देशसे प्राप्त होनेवाली मणियोंका भी मूल्य कम ही माना गया है।

वर्णाधिक्य, गुरुता, स्निग्धता, समता, निर्मलता, पारदर्शिता, तेजस्विता एवं महत्ता श्रेष्ठ मणियोंका गुण है। जिन मणियोंमें करकराहट, छिद्र, मल, प्रभाहीनता, परुषता तथा वर्ण-विहीनता होती है, वे सभी जातीय गुणोंके रहनेपर प्रशस्त नहीं मानी जातीं।

यदि अज्ञानतावश कोई मनुष्य ऐसी दोषयुक्त मणियोंको धारण कर लेता है तो उनके कुप्रभावसे उत्पन्न शोक, चिन्ता, रोग, मृत्यु तथा धननाशादि आपदाएँ उसको घेर लेती हैं।

पूर्वकथित श्रेष्ठ मणियोंकी तुलनामें अत्यधिक सौन्दर्य-सम्पन्न एवं उनके प्रतिरूप होनेपर भी पाँच जातियोंकी मणियोंको विजातीय माना गया है। जिनका परीक्षण विद्वान् पुरुषको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। कलशपुर, सिंहल, तुम्बुरु, मुक्तपाणि तथा श्रीपूर्णकमें उत्पन्न पद्मरागका रावणगङ्गासे प्राप्त शुभप्रद पद्मराग मणियोंसे सादृश्य होनेपर भी वे विजातीय ही माने गये हैं।

तुषका-सदृश (मलिन वर्णका) होनेसे कलशपुर, अल्प ताम्रवर्णके कारण तुम्बुरु देश, कृष्णवर्णके रहनेसे सिंहल, नीलवर्णके होनेसे मुक्त तथा कान्तिविहीन होनेसे श्रीपूर्णककी मणियोंमें (रावणगङ्गाकी मणियोंकी अपेक्षा) विजातीय रूप होनेसे ही भेद स्पष्ट होता है।

जो पद्मराग ताम्रिका (गुञ्जा)-के वर्णको धारण करता

है, तुष (बहेड़ा)-के समान मध्यमें पूर्णतासे युक्त (गोलाकार) होता है तथा स्नेहसे प्रदिग्ध (स्वभावतः स्नेहिल) होता है और अत्यन्त घिसनेके कारण कान्तिविहीन हो जाता है, मस्तक-संघर्षण अथवा हाथोंकी अँगुलियोंके स्पर्शसे जिसके पार्श्वभाग काले हो जाते हैं, हाथमें लेकर बार-बार ऊपरकी ओर उछालनेपर जो मणि प्रत्येक बार एक ही वर्णको धारण करती है, वह सभी गुणोंसे युक्त होती है। समान प्रमाण, समान जाति अथवा गुरुत्व धर्मसे दो वस्तुओंमें तुलना होती है। अतः विशेष रत्नाकरसे प्राप्त रत्नोंकी स्वजातिका निर्धारण गुरुत्व और गुण-धर्मके अनुसार विद्वान् व्यक्तिको करना चाहिये। यदि उनमें संदेह उत्पन्न हो जाय तो उनको शाणपर चढ़ाकर खरादना चाहिये। वज्र या कुरुविन्दक रत्नको छोड़कर अन्य किसी भी रत्नके द्वारा पद्मराग एवं इन्द्रनीलमणिमें चिह्न-विशेष टंकित नहीं किया जा सकता है।

जातिविशेषमें उत्पन्न सभी मणियाँ विजातीय नहीं होती हैं। उनका वर्ण समान होता है, फिर भी उनके पृथक्करणके लिये उनमें विभिन्न भेद बताये गये हैं। गुणयुक्त मणिके साथ गुणरहित मणिको धारण नहीं करना चाहिये। विद्वान् पुरुषको कौस्तुभ मणिके साथ विजातीय मणिको धारण नहीं करना चाहिये; क्योंकि अनेक गुणोंसे सम्पन्न मणियोंको एक ही विजातीय मणि नष्ट करनेमें समर्थ होती है।

शत्रुओंके बीच निवास करने तथा प्रमाद-वृत्तिमें आसक्त रहनेपर भी विशुद्ध महागुणसम्पन्न पद्मराग मणिका स्वामी होनेसे किसी भी व्यक्तिको आपदाएँ स्पर्शतक नहीं कर सकतीं। जो गुणोंसे परिपूर्ण तेजस्वी सुन्दर वर्णवाले पद्मरागमणिको धारण करता है, उसके समीपमें उपस्थित होकर दोष-संसर्गजनित उपद्रव कोई कष्ट देनेमें अपनेको सक्षम नहीं कर पाते हैं।

जिस प्रकार तण्डुल-परिमाणके अनुसार हीरेका मूल्य निर्धारित होता है, उसी प्रकार महागुणसम्पन्न पद्मराग मणिके मूल्यका निर्धारण उड़दके परिमाणका आकलन करके करना चाहिये।

जो मणि या रत्न उत्तम वर्ण एवं श्रेष्ठ कान्तियोंसे सम्पन्न रहते हैं, उन्हींको प्रशस्त माना जाता है। यदि उनमें तनिक भी दोषके कारण भ्रष्टता आ जाती है तो उनका मूल्य घट जाता है। (अध्याय ७०)

मरकतमणि[1]का लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—नागराज वासुकि उस असुरपति बलासुरके पित्तको लेकर अत्यन्त वेगसे मानो आकाशमार्गको दो भागोंमें विभक्त करते हुए देवलोकको जा रहे थे। उस समय वे अपने ही सिरपर अवस्थित मणिकी प्रभासे देदीप्यमान होनेके कारण आकाशरूपी समुद्रपर बने हुए एक अद्वितीय रजतसेतुके समान सुशोभित हो रहे थे। उसी समय अपने पंख-निपातसे पृथिवी एवं आकाशको आतंकित करते हुए पक्षिराज गरुडने सर्पदेव वासुकिपर प्रहार करनेका प्रयत्न किया।

भयभीत वासुकिने सहसा उस रत्नबीजरूप पित्तको मधुर-सुस्वादु जलसे परिपूर्ण सरिता एवं वृक्षोंसे सुशोभित तथा पुष्पोंकी नव-कलिकाओंकी सान्द्र गन्धसे सुवासित तुरुष्कदेशकी एक श्रेष्ठ माणिक्योंसे परिपूर्ण पर्वतकी उपत्यकामें छोड़ दिया। वह पित्त उस पर्वतसे निकलनेवाले जल-प्रपातके समान ही था। अतः उसीकी जलधाराके साथ बहता हुआ वह पित्त भगवती महालक्ष्मीके समीपमें स्थित उनके श्रेष्ठ भवन अर्थात् समुद्रको प्राप्त करके उसकी तटवर्ती भूमिके समीप मरकतमणियोंका खजाना बन गया।

फणिराज वासुकिने जिस समय उस पित्तका परित्याग किया था, उसी समय गरुडने गिरते हुए उस पित्तका कुछ अंश ग्रहण (पान)-कर लिया। जिससे वे मूर्च्छित हो गये और सहसा उन्होंने अपने दोनों नासाछिद्रोंसे उस पित्तको बाहर कर दिया। उस स्थानपर प्राप्त होनेवाली मरकत-मणियाँ कोमल शुकपक्षीके कण्ठ, शिरीषपुष्प, खद्योतके पृष्ठप्रदेश, हरित तृणक्षेत्र, शैवाल, कल्हारपुष्प, (श्वेतकमल) नयी निकली हुई घास, सर्पभक्षिणी मयूरी तथा हरितपत्रकी कान्तिसे सुशोभित होकर लोगोंको कल्याण देनेवाली होती हैं।

१-मरकतमणि— पन्ना।

वहाँपर नागभक्षी गरुडके द्वारा पान किया गया जो दैत्याधिपति बलासुरका पित्त गिरा था, वह स्थान मरकत-मणियोंका आकर अर्थात् खजाना बन गया। वह देश सामान्य जनोंके लिये दुर्लभ और गुणयुक्त हो गया। उस मरकतमणियोंके देशमें जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब विष-व्याधियोंको शान्त करनेवाला कहा गया है। सभी मन्त्रों एवं औषधियोंसे जिस नागके महाविषके उपचारमें सफलता नहीं प्राप्त हो सकती है, उस प्रभावको वहाँपर उत्पन्न वस्तुओंसे शान्त किया जा सकता है।

वहाँ जो मरकतमणियाँ उत्पन्न होती हैं, वे अन्यान्य देशोंकी मणियोंसे उत्तम कही गयी हैं। जो मणि अत्यन्त हरितवर्णवाली, कोमल कान्तिवाली, जटिल, मध्यभागमें सुवर्ण-चूर्णसे परिपूर्ण-सी दिखायी देती है, जो अपने स्थानविशेषके गुणोंसे समन्वित, समान कान्तिवाली, उत्तम तथा सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे अपनी प्रभाके द्वारा सभी स्थानोंको आलोकित करती है, हरितभावको छोड़कर जिसके मध्यभागमें एक समुज्ज्वल कान्ति विद्यमान रहती है और जो अपनी नवनवोदित प्रभाराशिसे नवीन निकले हुए हरित तृणकी कान्तिको तिरस्कृत करती है तथा जो देखनेमात्रसे ही लोगोंके मनको अत्यधिक आह्लादित करनेमें समर्थ होती है, वह मरकतमणि बहुत गुणवती मानी जाती है। ऐसा रत्नविद्या-विशारद विद्वज्जनोंका विचार है।

वर्णकी अत्यधिक व्यापकताके कारण जिस मरकत-मणिके अन्तर्भागकी निर्मल स्वच्छ किरणें परिधानके रूपमें परिलक्षित होती हैं, जिसकी उज्ज्वल कान्ति घनीभूत, स्निग्ध, विशुद्ध, कोमल, मयूरकण्ठकी आभाके समान शोभाको प्राप्त करती है तथा अपने वर्णकी उज्ज्वल कान्तिकी सान्द्रतासे एकाकार होकर सुशोभित रहती है। ऐसी मरकतमणि भी उसी गुणसम्पन्न मणिकी संज्ञाको प्राप्त करती है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

जो मरकतमणि चित्र वर्णवाली, कठोर, मलिन, रूक्ष, कड़े पत्थरके समान एवं खुरदुरी तथा शिलाजीतके समान दग्ध होती है, ऐसी मरकतमणि गुणरहित होती है। जो मरकतमणि सन्धि-प्रदेशमें शुष्क हो तथा उससे अन्य रत्नका प्रादुर्भाव होता हो तो कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिके लिये वह रत्न धारण करने अथवा खरीदनेयोग्य नहीं होता है। भल्लातकी (शैलविशेष) और पुत्रिका (शैलविशेष)-वर्ण अथवा उन दोनों वर्णोंका एक ही मणिमें संयोग हो तो उसे भी मरकतमणिका विजातीय लक्षण ही समझना चाहिये। क्षौम-वस्त्रके द्वारा मार्जन करनेपर पुत्रिका लक्षणवाली मरकतमणि अपनी कान्तिका परित्याग कर देती है। जिस प्रकार काँचमें लघुता होती है, उसी प्रकार उसकी लघुताके द्वारा ही उसमें अवस्थित विजातीय भावनाको पहचाना जा सकता है। अनेक प्रकारके रूप या गुण अथवा वर्णके द्वारा मरकत-मणिका अनुगमन करनेवाली मणियाँ भल्लातकीकी शब्द-ध्वनिसे विपरीत वर्णको प्राप्त हो जाती हैं। जो हीरे-मोती विजातीय होते हैं, यदि वे किसी रत्नौषधि विशेषके लेप्य पदार्थसे रहित हैं तो उनके वर्णोंकी प्रभा ऊर्ध्वगामिनी होती है।

ऋजुताके कारण किन्हीं मणियोंमें ऊर्ध्वगामिनी प्रभा दीख सकती है, किंतु तिर्यक् दृष्टिसे उनका अवलोकन करनेसे उनकी वह प्रभा शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

स्नान, आचमन, जप तथा रक्षामन्त्रकी क्रियाविधिमें, गौ-सुवर्णका दान देते हुए और अन्यान्य प्रकारकी साधना करते समय, देव, पितृ, अतिथि तथा गुरुकी पूजाके समय, विषसे उत्पन्न विविध दोषोंसे पीड़ित होनेपर, संग्राममें विचरण करते हुए दोषोंसे हीन और गुणोंसे युक्त, सोनेके सूत्रमें पिरोये उस मरकतको विद्वानोंके द्वारा धारण किया जाना चाहिये।

सामान्यतः पद्मरागमणिका तौलके अनुसार जो मूल्य होता है, उस मूल्यकी अपेक्षा सर्वगुणसम्पन्न मरकतमणिका मूल्य अधिक होता है। जिस प्रकार दोष रहनेपर पद्मराग-मणियोंका मूल्य न्यून हो जाता है, उसी प्रकार दोषसम्पन्न होनेपर मरकतमणियोंके मूल्यमें अत्यधिक न्यूनता आ जाती है। (अध्याय ७१)

इन्द्रनीलमणिका लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने पुनः कहा—जिस स्थानपर सिंहल देशकी रमणियाँ अपने करपल्लवके अग्रभागसे नवीन लवली[1] कुसुम तथा प्रवालका चयन कर रही थीं, वहींपर उस बलासुरके विकसित कमलसदृश शोभासम्पन्न दोनों नेत्र आकर गिर पड़े। समुद्रकी वह कछारभूमि, रत्नके समान चमकनेवाले नेत्रोंकी प्रभातरंगोंसे सुशोभित होकर एक विशाल क्षेत्रमें फैली हुई है। वहींपर विकसित केतकी नामक पुष्पोंके वनोंकी शोभाको फैलानेमें प्रतिक्षण लगी रहनेवाली इन्द्रनीलमणियोंकी एक भूमि है। उस वनस्थलीपर अवस्थित पर्वतकी जो कर्णिकाभूमि है, उसमें प्रादुर्भूत होनेवाली वे मरकतमणियाँ नीलकमलसदृश कृष्ण एवं हलधर बलरामके द्वारा धारण किये जानेवाले पीत और नील वर्णोंकी आभासे सम्पन्न हैं। काले भ्रमरके समान हैं, शार्ङ्गधनुषसे सुशोभित स्कन्ध-प्रदेशवाले भगवान् विष्णुकी कान्तिसे युक्त हैं तथा भगवान् शिवके कण्ठके समान (नीलवर्ण) और नवीन कषाय पुष्पोंके समान आभावाली हैं।

उन मणियोंमें कोई स्वच्छ तरङ्गायित जलके समान, कोई मयूरके समान, कोई नीलीरसके समान, कोई जल-बुद्बुदके समान और कोई मणि मदमस्त कोकिल पक्षीके कण्ठकी प्रभासे आभासित रहती है। उन सभी मणियोंमें एक प्रकारकी ही निर्मलता तथा प्रभाशक्तिकी भास्वरता विद्यमान रहती है, उस पर्वतके रत्नगर्भसे प्राप्त होनेवाली मणियोंमें इन्द्रनीलमणि नामके रत्न अत्यधिक गुणशाली होते हैं।

जिन मणियोंमें मिट्टी, पत्थर, छिद्र और करकराहटकी ध्वनि तथा नीलगगनपर आच्छादित सघन मेघच्छायाकी आभा रहती है, वे वर्णदोषसे दूषित मानी जाती हैं। किंतु वहींपर वे ही इन्द्रनीलमणियाँ अत्यधिक उत्पन्न होती हैं, जिनकी प्रशंसा रत्नशास्त्रके सुविज्ञजनोंके द्वारा की जाती है।

धारण करनेयोग्य पद्मरागमणिमें जो गुण दिखायी देते हैं; मनुष्य इन्द्रनीलमणिको धारण करके उसमें उन सभी गुणोंको प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार पद्मरागमणियोंकी तीन जातियाँ हैं, उसी प्रकार सामान्य रूपसे इन्द्रनीलमणियोंमें भी तीन जातियाँ देखी जा सकती हैं। जिन उपायोंके द्वारा पद्मरागमणिका परीक्षण किया जाता है, उन्हीं उपायोंसे इन्द्रनीलमणिका भी परीक्षण होता है।

पद्मरागमणिको उपयोगयोग्य बनानेके लिये जितनी अग्निके साथ उसका सन्निधान अपेक्षित है, उसकी अपेक्षा अधिक अग्निका सन्निधान इन्द्रनीलमणिके साथ होना चाहिये। तब भी परीक्षण अथवा गुणोंकी अभिवृद्धिके लिये किसी भी प्रकारकी मणिको अग्निमें डालकर संतप्त नहीं करना चाहिये। अज्ञानतावश भी यदि कोई ऐसा करता है तो अग्निकी सम्यक् मात्राके परिज्ञानसे रहित प्रदाहमें जलानेके कारण उत्पन्न दोषोंसे प्रदूषित वह मणि ऐसा कृत्य करनेवाले कर्ता एवं कारयिता (करवानेवाला) दोनोंके लिये अनिष्टकारी होती है।

काँच, उत्पल, करवीर, स्फटिक एवं वैदूर्य आदि मणियाँ इन्द्रनीलमणिके सदृश होनेपर भी रत्नविशेषज्ञोंके अनुसार विजातीय ही मानी जाती हैं। अतएव इन उक्त सभी मणियोंके गुरुत्व एवं काठिन्य धर्मकी अवश्य परीक्षा लेनी चाहिये। जिस प्रकार कोई इन्द्रनीलमणि ताम्रवर्णको धारण कर लेती है, उसी प्रकार ताम्रवर्णवाले करवीर तथा उत्पल नामक दोनों मणियोंकी भी रक्षा करनी चाहिये। जिस इन्द्रनीलमणिके मध्य इन्द्रायुधकी प्रभा अवभासित होती रहती है, उस इन्द्रनीलमणिको पृथ्वीपर अत्यन्त दुर्लभ एवं अत्यधिक मूल्यवाली कहा गया है।

सौगुना अधिक परिमाणवाले दूधमें रखनेपर भी जिसकी सान्द्रवर्णकी कान्तिसे वह दूध स्वयं नीलवर्णका हो जाता है, उसीको महानीलमणि कहते हैं।

जिस प्रकार माशादिसे की गयी तौलके द्वारा महागुणशाली पद्मरागमणिका मूल्य निर्धारित किया जाता है, उसी प्रकार सुवर्ण परिमाण (अस्सी रत्ती)-की तौलसे महागुणशाली इन्द्रनीलमणिका मूल्य निर्धारित होता है। (अध्याय ७२)

१-सुगन्धित पुष्पवाला वृक्षविशेष।

वैदूर्यमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं ब्रह्माके द्वारा बतायी हुई तथा व्यासजीद्वारा कही हुई वैदूर्य, पुष्पराग, कर्केतन तथा भीष्मकमणियोंकी परीक्षा-विधिको पृथक्-पृथक् कहता हूँ।

कल्पान्तकालमें क्षुब्ध अगाध समुद्रकी जलराशिके गम्भीर महानादके समान दिति-पुत्र बलासुरके नादसे विभिन्न वर्णोंवाली, अत्यन्त सौन्दर्य-सम्पन्न वैदूर्यमणियोंका बीज उत्पन्न हुआ था।

उत्तुंग शिखरोंवाले विदूर नामक पर्वतके सन्निकट स्थित कामभूतिक सीमासे मिले हुए क्षेत्रमें उस वैदूर्यबीजका अवधान होनेसे एक रत्नगर्भकी उत्पत्ति हुई।

बलासुरके नादसे उत्पन्न यह रत्नाकर महागुणसम्पन्न तथा तीनों लोकोंका श्रेष्ठतम आभूषणस्वरूप है। उस रत्नाकरमें दैत्यराजके महानादका अनुकरण करनेवाली, वर्षाकालीन श्रेष्ठ मेघोंकी आभावाली बड़ी ही सुन्दर विचित्र प्रकारकी मणियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे प्रभाके स्फुलिङ्गोंका समूह निकलता रहता है।

पृथिवीपर पद्मरागमणियोंके जो वर्ण हैं, उन सभी वर्णोंकी शोभाका अनुगमन वैदूर्यमणि करती है। उन मणियोंमें जो मणि मयूरकण्ठके सदृश अथवा वंशपत्रके समान वर्णवाली होती है, उसको श्रेष्ठ माना गया है। जिन मणियोंका वर्ण चषक नामक पक्षीके सदृश होता है, उन वैदूर्यमणियोंको मणिशास्त्रवेत्ताओंने प्रशस्त नहीं कहा है।

गुणयुक्त वैदूर्यमणि अपने स्वामीको परम सौभाग्यसे सम्पन्न बनाती है और दोषयुक्त मणि अपने स्वामीको दोषोंसे संयुक्त कर देती है। अतएव प्रयत्नपूर्वक परीक्षा करनी चाहिये।

वैदूर्यमणिके अतिरिक्त गिरिकाँच, शिशुपाल, काँच तथा स्फटिक—ये चार विजातीय मणियाँ हैं, जो वैदूर्यके समान ही आभा फैलाती हैं। किंतु लेखनकी सामर्थ्यसे रहित होनेके कारण काँच, गुरुत्वभावसे हीन होनेके कारण शिशुपाल, कान्तियुक्त होनेसे गिरिकाँच एवं अपने समुज्ज्वल वर्णके कारण स्फटिकमणिसे इस मणिमें भेद होता है। महागुणसम्पन्न इन्द्रनीलमणिका सुवर्ण (अस्सी रत्ती मात्रा) परिमाणके अनुसार जो मूल्य निर्धारित किया गया है, वही मूल्य दो पल भारयुक्त वैदूर्यमणिका कहा गया है।

एक विजातीय मणिमें ये सभी वर्ण समान होते हैं, जो वर्ण मणियोंमें पाये जाते हैं; फिर भी उनमें महान् भेद माना गया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वे विशेष भेदक तत्त्वपर विचार करें। स्नेह, लघुता और मृदुताके द्वारा सजातीय और विजातीय मणियोंके चिह्नोंका भेद सार्वजनीन है।

मणिशोधनमें कुशल या अकुशलजनोंके द्वारा प्रयुक्त उचित एवं अनुचित उपायोंके कारण भी विभिन्न प्रकारकी मणियोंमें उत्पन्न हुए गुण-दोषके अनुसार उनके मूल्यमें न्यूनाधिक्य हो जाता है।

मणिबन्धक अर्थात् मणिवेत्ताके द्वारा भली प्रकारसे शोधित मणियाँ यदि दोषरहित होती हैं तो उनका सामान्य मूल्यकी अपेक्षा छः गुना अधिक मूल्य होता है। समुद्रके तीरकी सन्निधिमें स्थित आकरसे प्राप्त हुई मणियोंका जो मूल्य होता है, पृथिवीपर सर्वत्र मणियोंका वही मूल्य नहीं रहता।

मनुने सोलह माशेका एक 'सुवर्ण' (भार) बताया है[1]। उसका सातवाँ हिस्सा संज्ञारूप प्राप्त करता है। चार माशेका एक 'शाण', पाँच कृष्णलका एक 'माशा' और एक पलका दशम भाग 'धरण' कहलाता है। इस प्रकार रत्नोंके मूल्य निश्चयके लिये यह मणिविधि कही गयी है। (अध्याय ७३)

पुष्परागमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने पुनः कहा—देवशत्रु बलासुरके शरीरकी त्वचा हिमालय पर्वतपर गिरी थी, जिनसे महागुणसम्पन्न पुष्परागमणियोंका प्रादुर्भाव हुआ। जो पाषाण पूर्णपीत एवं पाण्डुरवर्णकी सुन्दर आभासे समन्वित रहता है, उसका नाम 'पद्मराग' है। यदि वह लोहित और पीतवर्णकी आभासे युक्त है तो उसको 'कौकण्टक' नामसे जानना चाहिये।

जो पाषाण पूर्ण लोहित एवं सामान्य पीतवर्णसे संयुक्त होता है, उसे 'काषायकमणि' कहते हैं। जिस पत्थरका वर्ण

१-मनुस्मृति ८। १३४

पूर्णरूपसे नीला और शुक्लवर्णसमन्वित तथा स्निग्ध होता है, वह सोमालक गुणयुक्त मणि है। जो पत्थर अत्यन्त लोहित वर्णका होता है, उसीको 'पद्मराग' कहा जाता है। जो पूर्ण नीलवर्णकी सुन्दर आभासे सम्पन्न रहता है, उसे 'इन्द्रनीलमणि' कहते हैं।

मणिशास्त्रवेत्ताओंने वैदूर्यमणिके समान ही पुष्परागमणिका मूल्य स्वीकार किया है। इसको धारण करनेसे वही फल प्राप्त होते हैं, जो वैदूर्यमणिके धारणसे होते हैं। नारियोंके द्वारा धारण किये जानेपर यह मणि उन्हें 'पुत्र' प्रदान करती है। (अध्याय ७४)

कर्केतनमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—पवनदेवने रत्नबीजरूप उस दैत्यराज बलासुरके नखोंको प्रसन्नतापूर्वक लेकर कमल-वनप्रान्तमें बिखेर दिया। वायुद्वारा विकीर्ण उन नखोंसे पृथिवीपर कर्केतन नामक पूज्यतम मणिका जन्म हुआ। उसका वर्ण रक्त, चन्द्र एवं मधुसदृश, ताम्र, पीत, अग्निवत् प्रज्वलित, समुज्ज्वल, नील तथा श्वेत होता है। रत्न-व्याधि आदि दोषोंके कारण वह कठोर एवं विभिन्न वर्णोंमें भी प्राप्त होती है।

जो कर्केतनमणियाँ स्निग्ध, स्वच्छ, समराग, अनुरञ्जित, पीत, गुरुत्व धर्मसे संयुक्त एवं विचित्र आभासे व्याप्त तथा संताप, व्रण और व्याधि आदि दोषोंसे रहित होती हैं, उन्हे विशुद्ध या परम पवित्र माना जाता है।

स्वर्ण-पत्रमें सम्पुटितकर जब उन मणियोंको अग्निमें शोधित किया जाता है तो वे अत्यधिक देदीप्यमान हो उठती हैं। ऐसी विशुद्ध कर्केतनमणि रोगका नाश करनेवाली, कलिके दोषोंको नष्ट करनेवाली, कुलकी वृद्धि करनेवाली तथा सुख प्रदान करनेवाली होती है।

जो मनुष्य अपने शरीरको अलंकृत करनेके लिये इस प्रकारके बहुत-से गुणोंवाली कर्केतन नामक मणिको धारण करते हैं, वे पूजित, प्रचुर धनसे परिपूर्ण तथा अनेक बन्धु-बान्धवोंसे सम्पन्न होते हैं और नित्य उज्ज्वल कीर्तिसे सम्पन्न तथा प्रसन्न रहते हैं।

अन्य दूषित कर्केतनमणिको धारण करनेवाले विकृत, व्याकुल, नीली कान्तिवाले, मलिन द्युतिवाले, स्नेहरहित, कलुषित तथा विरूपवान् हो जाते हैं। वे तेज, दीप्ति, कुल, पुष्टि आदिसे विहीन होकर दूषित कर्केतनके सदृश शरीरको धारण करते हैं। (अध्याय ७५)

भीष्मकमणिकी परीक्षा-विधि

सूतजीने पुनः कहा—उस देवशत्रु बलासुरका वीर्य हिमालय पर्वतके उत्तरी प्रान्तमें गिरा था। अतः वह देश उत्तम भीष्मकमणियोंका रत्नाकर बन गया। वहाँसे प्राप्त होनेवाली भीष्मकमणियाँ शङ्ख एवं पद्मके समान समुज्ज्वल, मध्याह्नकालीन सूर्यकी प्रभाके समान शोभावाली तथा वज्रके समान तरुण होती हैं।

जो मनुष्य अपने कण्ठादिक अङ्गोंमें स्वर्णसूत्रमें गुँथी हुई विशुद्ध भीष्मकमणिको धारण करता है, वह सदा सुख-समृद्धि प्रदान करनेवाली सम्पदाओंको प्राप्त करता है। वनोंमें भी ऐसी मणिसे सुशोभित मनुष्यको देखकर समीप आये हुए द्वीपी, भेड़िया, शरभ, हाथी, सिंह और व्याघ्रादि हिंसक वन्य प्राणी तत्काल भाग जाते हैं। उस मणिको धारण करनेसे किसी भी प्रकारका भय नहीं रह जाता है। लोग भीष्मकमणिके स्वामीका उपहास नहीं कर पाते हैं।

भीष्मकमणिसे संयुक्त अँगूठीको धारण करके जो व्यक्ति अपने पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितरोंको बहुत वर्षोंतकके लिये संतृप्ति प्राप्त हो जाती है। इस रत्नके प्रभावसे सर्प, आखु (चूहा), बिच्छू आदि अण्डज जीवोंके विष स्वयं शान्त हो जाते हैं। जल, अग्नि, शत्रु और चोरोंके भयंकर भय भी नष्ट हो जाते हैं।

शैवाल एवं मेघकी आभासे युक्त, कठोर, पीत प्रभावाली, मलिन द्युति और विकृत वर्णवाली भीष्मकमणिका विद्वान् व्यक्तिको दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। पण्डितोंको देश-कालके परिज्ञानके अनुसार इन मणियोंके मूल्योंका निर्धारण करना चाहिये; क्योंकि दूर देशमें उत्पन्न हुई मणियोंका मूल्य अधिक तथा निकट देशमें उत्पन्न हुई मणियोंका मूल्य उसकी अपेक्षा कुछ कम होता है। (अध्याय ७६)

पुलकमणिके लक्षण तथा उसकी परीक्षा-विधि

सूतजीने कहा—वायुदेवने दानवराज बलासुरके नखसे लेकर भुजापर्यन्त गतिमान् रत्नमयी प्रकाशकी विधिवत् पूजा करके उसको श्रेष्ठ पर्वतों, नदियों तथा उत्तरदेशके अन्य प्रसिद्ध स्थानोंमें स्थापित किया था। अतएव दाशार्ण, वागदर, मेकल, कलिङ्ग आदि देशोंमें उस प्रकाशरूपी बीजसे उत्पन्न पुलकमणियाँ गुञ्जाफल, अञ्जन, क्षौद्र (मधु) और कमलनालके समान तथा गन्धर्व एवं अग्निदेशमें उत्पन्न हुई मणियाँ केलेके समान कान्तिवाली होती हैं। इन सभी पुलकमणियोंको प्रशस्त माना गया है।

कुछ पुलकमणियोंकी भंगिमा शंख, पद्म, भ्रमर तथा सूर्यके समान विचित्र होती है। ऐसी परम पवित्र मणियोंको सूत्रोंमें गूँथकर धारण करनेसे सब प्रकारका कल्याण होता है; क्योंकि वे पुलकमणियाँ माङ्गलिक एवं धन-धान्यादि ऐश्वर्यकी अभिवृद्धि करनेवाली होती हैं।

कौआ, घोड़ा, गधा, सियार, भेड़िया तथा भयंकर रूप धारण करनेवाले और मांस-रुधिरादिसे संलिप्त मुखवाले गृध्रोंके समान वर्णवाली जो पुलकमणियाँ होती हैं, वे मृत्युदायक होती हैं। विद्वान् व्यक्तिको उनका परित्याग कर देना चाहिये। श्रेष्ठ एक पल प्रमाणवाली पुलकमणिका मूल्य पाँच सौ मुद्रा कहा गया है। (अध्याय ७७)

रुधिराक्ष रत्न-परीक्षा

सूतजीने कहा—अग्निदेवने दानवराजके अभीष्टरूपको ग्रहणकर कुछ अंश नर्मदा नदीके प्रान्तभागमें तथा कुछ अंश उस देशके निम्न भू-भागोंमें फेंक दिया था। अतः उन स्थानोंपर इन्द्रगोप (वीरबहूटी कीट) तथा शुक पक्षीके मुखकी भाँति वर्णवाली एवं प्रकट पीलु फलके समान वर्णवाली रुधिराक्ष मणियाँ प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त भी यहाँपर नाना प्रकारकी मणियाँ प्राप्त होती हैं, इनका आकार एक समान होता है।

जो मणि मध्यभागमें चन्द्रके सदृश पाण्डुर तथा अत्यन्त विशुद्ध वर्णवाली होती है, तुलनामें वह इन्द्रनीलमणिके समान होती है। इसे ऐश्वर्य, धन-धान्य एवं भृत्यादिकी अभिवृद्धि करनेवाली माना गया है। इस मणिका पाक-क्रियासे शोधन होनेपर देववज्रके समान वर्ण होता है। (अध्याय ७८)

स्फटिक-परीक्षा

सूतजीने कहा—हलधारी बलरामने उस दैत्यराजके मेदाभागको लेकर कावेरी, विन्ध्य, यवन, चीन तथा नेपाल देशके भूभागोंमें प्रयत्नपूर्वक बिखेरा था। अतः उन स्थानोंपर आकाशके समान निर्मल तैल-स्फटिक नामक मणि उत्पन्न हुई। यह मणि मृणाल एवं शंखके सदृश धवल होती है, किंतु कुछ मणियाँ उक्त वर्णके अतिरिक्त अन्य वर्णोंको भी धारण करती हैं।

रत्नोंमें उस मणिके समान अन्य कोई नहीं है, जो पाप-विनाश करनेमें उसके बराबर क्षमता रखती हो। शिल्पकारके द्वारा संस्कारित होनेपर ही स्फटिकके मूल्यका कुछ आकलन किया जा सकता है। (अध्याय ७९)

विद्रुममणिकी परीक्षा

सूतजीने पुनः कहा—हे शौनक! शेषनागने उस बलासुरके अन्त्र-भागको ग्रहणकर केरल आदि देशोंमें छोड़ा था, अतएव उन स्थानोंपर महागुणसम्पन्न विद्रुममणियोंका जन्म हुआ। उन विद्रुममणियोंमें जो खरगोशके रक्तके समान लोहित होती हैं अथवा गुञ्जाफल या जपापुष्पकी आभाको धारण करती हैं, उन्हें श्रेष्ठ माना गया है। नील देश, देवक तथा रोमक नामक स्थान इन मणियोंकी जन्मभूमि है। उनमें उत्पन्न हुई विद्रुममणि अत्यन्त लाल वर्णकी होती है। अन्य स्थानोंसे प्राप्त होनेवाली मणियाँ प्रशस्त नहीं मानी गयी हैं। शिल्पकलाके विशेष योग-कौशलपर ही इनके मूल्यका निर्धारण होता है।

जो विद्रुममणि सुन्दर, कोमल, स्निग्ध तथा लाल-लाल वर्णकी होती है, वह निश्चित ही इस संसारमें मनुष्यको धन-धान्य-सम्पन्न बनानेवाली तथा उसके विषादिक दुःखोंको दूर करनेवाली होती है। (अध्याय ८०)

गङ्गा आदि विविध तीर्थोंकी महिमा

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं समस्त तीर्थोंका वर्णन करूँगा। जितने भी तीर्थ हैं, उनमें गङ्गा उत्तमोत्तम तीर्थ है। यद्यपि गङ्गा सर्वत्र सुलभ है, किंतु हरिद्वार, प्रयाग एवं गङ्गासागरके संगम—इन तीन स्थानोंमें वह दुर्लभ है[1]।

प्रयाग परम श्रेष्ठ तीर्थ है, जो मरनेवालेको मुक्ति और भुक्ति दोनों प्रदान करता है। इस महातीर्थमें स्नान करके जो अपने पितरोंके लिये पिण्डदान करते हैं, वे अपने समस्त पापोंका विनाशकर सभी अभीष्टोंकी सिद्धि प्राप्त करते हैं।

वाराणसी परमतीर्थ है। इस तीर्थमें भगवान् विश्वनाथ और केशव सदैव निवास करते हैं। कुरुक्षेत्र भी बहुत बड़ा तीर्थ है। इस तीर्थमें दानादि करनेसे यह भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति करानेवाला है। प्रभास श्रेष्ठतम तीर्थ है, जहाँपर भगवान् सोमनाथ विराजमान रहते हैं। द्वारका अत्यन्त सुन्दर नगरी है। यह मुक्ति-भुक्ति दोनोंको प्रदान करनेवाली है। पूर्व दिशामें अवस्थित सरस्वती पुण्यदायिनी तीर्थ है। इसी प्रकार सप्तसारस्वत परमतीर्थ है।

केदारतीर्थ समस्त पापोंका विनाशक है। सम्भलग्राम उत्तम तीर्थ है। बदरिकाश्रम भगवान् नरनारायणका महातीर्थ है, जो मुक्तिप्रदायक है।

श्वेतद्वीप, मायापुरी (हरिद्वार), नैमिषारण्य, पुष्कर, अयोध्या, चित्रकूट, गोमती, वैनायक, रामगिर्याश्रम, काञ्चीपुरी, तुंगभद्रा, श्रीशैल, सेतुबन्ध-रामेश्वर, कार्तिकेय, भृगुतुंग, कामतीर्थ, अमरकण्टक, महाकालेश्वरकी निवासभूमि उज्जयिनी, श्रीधर हरिका निवासस्थल कुब्जक, कुब्जाम्रक, कालसर्पि, कामद, महाकेशी, कावेरी, चन्द्रभागा, विपाशा, एकाम्र, ब्रह्मेश, देवकोटक, रम्य मधुरापुरी, महानद शोण तथा जम्बूसर नामक स्थानोंको महातीर्थ कहा गया है।

इन तीर्थोंमें सदा सूर्य, शिव, गणपति, महालक्ष्मी एवं भगवान् हरि निवास करते हैं। यहाँ और अन्यान्य पवित्र स्थानोंमें किया गया स्नान, दान, जप, तप, पूजा, श्राद्ध तथा पिण्डदानादि अक्षय होता है। इसी प्रकार शालग्राम तथा पाशुपततीर्थ भी परम पवित्र तीर्थ हैं, जो भक्तोंको सब कुछ प्रदान करते हैं।

कोकामुख, वाराह, भाण्डीर और स्वामि नामक तीर्थ महातीर्थके रूपमें विख्यात हैं। लोहदण्ड नामक तीर्थमें महाविष्णु तथा मन्दारतीर्थमें मधुसूदन निवास करते हैं।

कामरूप महान् तीर्थ है। इस स्थानमें कामाख्यादेवी सदा विराजमान रहती हैं। पुण्ड्रवर्धनतीर्थमें भगवान् कार्तिकेय प्रतिष्ठित रहते हैं। विरज, श्रीपुरुषोत्तम, महेन्द्रपर्वत, कावेरी, गोदावरी, पयोष्णी, वरदा, विन्ध्य और नर्मदाभेद नामक महातीर्थ समस्त पापोंके विनाशक हैं। गोकर्ण, माहिष्मती, कलिंजर एवं श्रेष्ठ शुक्लतीर्थको महातीर्थ माना गया है। यहाँपर स्नान करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस तीर्थमें भगवान् शार्ङ्गधारी हरि निवास करते हैं। भक्तोंको सब कुछ देनेवाले विरज तथा स्वर्णाक्षतीर्थ भी उत्तम तीर्थ हैं।

नन्दितीर्थ मुक्तिदायक और कोटितीर्थोंका फल प्रदान करनेवाला है। नासिक, गोवर्धन, कृष्णा, वेणी, भीमरथी, गण्डकी, इरावती, विंदुसर एवं विष्णुपादोदक महापुण्यप्रदायक परमतीर्थ हैं।

ब्रह्मध्यान और इन्द्रियनिग्रह महान् तीर्थ हैं, दम तथा भावशुद्धि श्रेष्ठ तीर्थ है। ज्ञानरूपी सरोवर और ध्यानरूपी जलमें, राग-द्वेषादि रूप मलका नाश करनेके लिये ऐसे मानस तीर्थमें जो मनुष्य स्नान करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है।

यह तीर्थ है, यह तीर्थ नहीं है—जो लोग इस प्रकारके भेद-ज्ञानको रखते हैं, उन्हीं लोगोंके लिये तीर्थ-गमन और उसके उत्तम फलका विधान किया गया है, किंतु जो 'सर्वत्र ब्रह्ममय है' ऐसा स्वीकार करते हैं, उनके लिये कोई भी स्थान अतीर्थ नहीं है। इन सभीमें स्नान, दान, श्राद्ध,

१-सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे। (८१। १-२)

पिण्डदान आदि कर्म करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है। समस्त पर्वत, समस्त नदियाँ एवं देवता, ऋषि-मुनि तथा संतों आदिसे सेवित स्थान तीर्थ हो हैं—

इदं तीर्थमिदं नेति ये नरा भेददर्शिनः।
तेषां विधीयते तीर्थगमनं तत्फलं च यत्॥
सर्वं ब्रह्मेति यो वेत्ति नातीर्थं तस्य किञ्चन।
एतेषु स्नानदानानि श्राद्धं पिण्डमथाक्षयम्॥
सर्वा नद्यः सर्वशैलाः तीर्थं देवादिसेवितम्।

(८१। २५—२७)

श्रीरंगपत्तनम् भगवान् हरिका महान् तीर्थ है। ताप्ती एक श्रेष्ठ महानदी है। सप्तगोदावरी एवं कोणगिरि भी महातीर्थ हैं। कोणगिरितीर्थमें महालक्ष्मी नदीके रूपमें स्वयं विराजमान रहती हैं। सह्यपर्वतपर भगवान् देवदेवेश्वर एकवीर तथा महादेवी सुरेश्वरी निवास करती हैं।

गङ्गाद्वार, कुशावर्त, विन्ध्यपर्वत, नीलगिरि और कनखल—इन महातीर्थोंमें जो व्यक्ति स्नान करता है, वह पुनः संसारमें जन्म नहीं लेता—

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते विन्ध्यके नीलपर्वते॥
स्नात्वा कनखले तीर्थे स भवेन्न पुनर्भवे।

(८१। २९-३०)

सूतजीने (आगे) कहा कि उपर्युक्त वर्णित और अन्य जो अवर्णित तीर्थ हैं, सभी स्नानादिक क्रियाओंको सम्पन्न करनेपर सदैव सब कुछ प्रदान करनेवाले हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरिसे तीर्थोंका माहात्म्य सुनकर ब्रह्माने दक्षप्रजापति आदिके साथ महामुनि व्यासको उनका श्रवण कराया और पुनः तीर्थोत्तम एवं अक्षय फल देनेवाले तथा ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाले 'गया' नामक तीर्थका वर्णन किया। (अध्याय ८१)

गया-माहात्म्य तथा गयाक्षेत्रके तीर्थोंमें श्राद्धादि करनेका फल

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी! मैं भुक्ति और मुक्ति प्राप्त करानेवाले परम सार-स्वरूप उत्तम गया-माहात्म्यको संक्षेपमें कहूँगा, आप सुनें।

पूर्वकालमें गय नामक परम वीर्यवान् एक असुर हुआ। उसने सभी प्राणियोंको संतप्त करनेवाली महान् दारुण तपस्या की। उसकी तपस्यासे संतप्त देवगण उसके वधकी इच्छासे भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये। श्रीहरिने उनसे कहा—आप लोगोंका कल्याण होगा, इसका महादेह गिराया जायगा। देवताओंने 'बहुत अच्छा' इस प्रकार कहा। एक समय शिवजीकी पूजाके लिये क्षीरसमुद्रसे कमल लाकर गय नामका वह बलवान् असुर विष्णुमायासे विमोहित होकर कीकट देशमें शयन करने लगा और उसी स्थितिमें वह विष्णुकी गदाके द्वारा मारा गया।

भगवान् विष्णु मुक्ति देनेके लिये 'गदाधर'के रूपमें गयामें स्थित हैं। गयासुरके विशुद्ध देहमें ब्रह्मा, जनार्दन, शिव तथा प्रपितामह स्थित हैं, विष्णुने वहाँकी मर्यादा स्थापित करते हुए कहा कि इसका देह पुण्यक्षेत्रके रूपमें होगा। यहाँ जो भक्ति, यज्ञ, श्राद्ध, पिण्डदान अथवा स्नानादि करेगा, वह स्वर्ग तथा ब्रह्मलोकमें जायगा, नरकगामी नहीं होगा। पितामह ब्रह्माने गयातीर्थको श्रेष्ठ जानकर वहाँ यज्ञ किया और ऋत्विक्-रूपमें आये हुए ब्राह्मणोंकी पूजा की।

ब्रह्माने वहाँ रसवती अर्थात् जलसे परिपूर्ण एक विशाल नदी, वापी, जलाशय आदि तथा विविध भक्ष्य, भोज्य, फल आदि और कामधेनुकी सृष्टि की। तदनन्तर ब्रह्माने इन सब साधनोंसे सम्पन्न पाँच कोशके परिक्षेत्रमें फैले हुए उस गया तीर्थका दान उन ब्राह्मणोंको कर दिया।

ब्राह्मणोंने उस धर्मयज्ञमें दिये गये धनादिक दानको लोभवश ही स्वीकार किया था। अतः उसी कालसे वहाँके ब्राह्मणोंके लिये यह शाप हो गया कि 'तुम्हारे द्वारा अर्जित विद्या और धन तीन पुरुषपर्यन्त अर्थात् तीन पीढ़ियोंतक स्थायी नहीं रहेगा। तुम्हारे इस गया परिक्षेत्रमें प्रवाहित होनेवाली रसवती नदी जल एवं पत्थरोंके पर्वतमात्रके रूपमें ही अवस्थित रहेगी।

संतप्त ब्राह्मणोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर प्रभु ब्रह्माने अनुग्रह किया और कहा—गयामें जिन पुण्यशाली लोगोंका श्राद्ध होगा, वे ब्रह्मलोकको प्राप्त करेंगे। जो मनुष्य यहाँ आकर आप सभीका पूजन करेंगे, उनके द्वारा मैं भी अपनेको पूजित स्वीकार करूँगा।

'ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गोशालामें मृत्यु तथा कुरुक्षेत्रमें निवास—ये चारों मुक्तिके साधन हैं—'

ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा।
वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा॥

(८२।१५)

हे व्यासजी! सभी समुद्र, नदी, वापी, कूप, तडागादि जितने भी तीर्थ हैं; वे सब इस गयातीर्थमें स्वयमेव स्नान करनेके लिये आते हैं, इसमें संदेह नहीं है।

'गयामें श्राद्ध करनेसे ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी, गुरुपत्नीगमन और उक्त संसर्ग-जनित सभी महापातक नष्ट हो जाते हैं'—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः।
पापं तत्संगजं सर्वं गयाश्राद्धाद् विनश्यति॥

(८२।१७)

जिनकी संस्काररहित दशामें मृत्यु हो जाती है अथवा जो मनुष्य पशु तथा चोरद्वारा मारे जाते हैं या जिनकी मृत्यु सर्पके काटनेसे होती है, वे सभी गया-श्राद्ध-कर्मके पुण्यसे बन्धन-मुक्त होकर स्वर्ग चले जाते हैं।

'गयातीर्थमें पितरोंके लिये पिण्डदान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, सौ करोड़ वर्षोंमें भी उसका वर्णन मेरेद्वारा नहीं किया जा सकता'।

ब्रह्माजीने पुनः व्यासजीसे कहा—कीकट-देशमें गया पुण्यशाली है। राजगृह, वन तथा विषयचारण परम पवित्र है एवं नदियोंमें पुनःपुना नामक नदी श्रेष्ठ है।

गयातीर्थमें पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तरमें 'मुण्डपृष्ठ' नामक तीर्थ है, जिसका मान ढाई कोश विस्तृत कहा गया है। 'गयाक्षेत्रका परिमाण पाँच कोश और गयाशिरका परिमाण एक कोश है। वहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंको शाश्वत तृप्ति हो जाती है'—

पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः।
तत्र पिण्डप्रदानेन तृप्तिर्भवति शाश्वती॥

(८३।१)

विष्णुपर्वतसे लेकर उत्तरमानसतकका भाग गयाका सिर माना गया है। उसीको फल्गुतीर्थ भी कहा जाता है। यहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंको परमगति प्राप्त होती है। गयागमनमात्रसे ही व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है—

गयागमनमात्रेण पितॄणामनृणो भवेत्॥

(८३।५)

गयाक्षेत्रमें भगवान् विष्णु पितृदेवताके रूपमें विराजमान रहते हैं। पुण्डरीकाक्ष उन भगवान् जनार्दनका दर्शन करनेपर मनुष्य अपने तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। गयातीर्थमें रथमार्ग तथा रुद्रपद आदिमें कालेश्वर भगवान् केदारनाथका दर्शन करनेसे मनुष्य पितृऋणसे विमुक्त हो जाता है।

वहाँ पितामह ब्रह्माका दर्शन करके वह पापमुक्त और प्रपितामहका दर्शनकर अनामयलोककी प्राप्ति करता है। उसी प्रकार गदाधर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करनेसे उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

हे ब्रह्मर्षि! गयातीर्थमें (मौन धारण करके जो) मौनादित्य और महात्मा कनकार्कका दर्शन करता है, वह पितृऋणसे विमुक्त हो जाता है और ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है।

जो मनुष्य प्रातःकाल उठ करके गायत्रीदेवीका दर्शनकर विधि-विधानसे प्रातःकालीन संध्या सम्पन्न करता है, उसे सभी वेदोंका फल प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति मध्याह्नकालमें सावित्रीदेवीका दर्शन करता है, वह यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो सायंकालमें सरस्वतीदेवीका दर्शन करता है, उसे दानका फल प्राप्त होता है।

यहाँ पर्वतपर विराजमान भगवान् शिवका दर्शन करके मनुष्य अपने पितृऋणसे विमुक्त हो जाता है। धर्मारण्य और उस पवित्र वनके स्वामी धर्मस्वरूप देवका दर्शन करनेसे समस्त ऋण नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार गृध्रेश्वर महादेवका दर्शन करके कौन ऐसा व्यक्ति है, जो भव-बन्धनसे विमुक्त नहीं हो सकता।

प्राणी धेनुवन (गो-प्रचारतीर्थ) नामक महातीर्थमें धेनुका दर्शन करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोक ले जाता है। प्रभास-तीर्थमें प्रभासेश्वर शिवका दर्शन-लाभ करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है। कोटीश्वर और अश्वमेधका दर्शन करनेपर ऋणका विनाश हो जाता है। स्वर्गद्वारेश्वरका दर्शन करके

मनुष्य भवबन्धनसे विमुक्त हो जाता है।

उसी धर्मारण्यमें अवस्थित गदालोलतीर्थ तथा भगवान् रामेश्वरका दर्शन करके मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होता है। भगवान् ब्रह्मेश्वरके दर्शनसे ब्रह्महत्याके पापसे विमुक्ति हो जाती है।

मुण्डपृष्ठतीर्थमें महाचण्डीका दर्शन करके प्राणी अपनी समस्त इच्छाओंको पूर्ण कर लेता है। फल्गुतीर्थके स्वामी फल्गु, चण्डीदेवी, गौरी, मङ्गला, गोमक, गोपति, अङ्गारेश्वर, सिद्धेश्वर, गयादित्य, गज तथा मार्कण्डेयेश्वर भगवान्‌के दर्शनसे व्यक्ति पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। फल्गुतीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करता है, वह पितरोंके ऋणसे विमुक्त हो जाता है।

पुण्यकर्म करनेवाले जनोंके लिये क्या इतने कर्मसे पर्याप्त संतोष नहीं होता? (अरे इन तीर्थोंमें अवस्थित देव-दर्शन तथा स्नान करनेसे मनुष्यके कुलकी) इक्कीस पुरुषपर्यन्त पीढ़ियाँ ब्रह्मलोकको प्राप्त हो जाती हैं।

पृथिवीपर जितने भी तीर्थ, समुद्र और सरोवर हैं, वे सभी प्रतिदिन एक बार फल्गुतीर्थ जाते हैं। पृथिवीमें गया पुण्यशाली तीर्थ है। गयामें गयाशिर श्रेष्ठ है और उसमें भी फल्गुतीर्थ उसका मुखभाग है—

> पृथिव्यां यानि तीर्थानि ये समुद्राः सरांसि च।
> फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिने दिने॥
> पृथिव्यां च गया पुण्या गयायां च गयाशिरः।
> श्रेष्ठं तथा फल्गुतीर्थं तन्मुखं च सुरस्य हि॥
> (८३।२२-२३)

उदीची, कनका नदी और नाभितीर्थ उसका मध्यभाग है। उसी तीर्थके सन्निकट ब्रह्मसदस्तीर्थ है, जो स्नान करनेसे मनुष्यको ब्रह्मलोक प्रदान करता है। वहाँपर स्थित कूपमें पिण्डदानादि कृत्य करके मनुष्य अपने पितरोंके ऋणसे विमुक्त हो जाता है। अक्षयवटमें श्राद्धकर्म सम्पन्न करके मनुष्य अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है।

हंसतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। कोटितीर्थ, गयालोल, वैतरणी तथा गोमकतीर्थमें पितरोंके लिये श्राद्ध करनेपर मनुष्य अपने इक्कीस पुरुषपर्यन्त (इक्कीस पीढ़ी)-को ब्रह्मलोक ले जाता है। ब्रह्मतीर्थ, रामतीर्थ, अग्नितीर्थ, सोमतीर्थ और रामह्रदतीर्थमें श्राद्ध करनेवाला अपने पितरोंको ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है। उत्तरमानसतीर्थमें श्राद्ध करनेपर पुनर्जन्म नहीं होता। दक्षिणमानसतीर्थमें श्राद्ध करनेसे श्राद्ध करनेवाले अपने पितरोंको ब्रह्मलोक पहुँचाते हैं। स्वर्गद्वारतीर्थमें श्राद्ध करनेसे भी श्राद्धकर्ताओंके पितृजन ब्रह्मलोकको जाते हैं। भीष्म-तर्पणका कृत्य जिस स्थानपर हुआ था, उस कूट स्थानपर श्राद्ध करनेसे भी मनुष्य पितृगणोंको भवसागरसे पार उतार देता है। गृध्रेश्वरतीर्थमें श्राद्ध करनेसे श्राद्धकर्ता अपने पितृऋणसे विमुक्त हो जाते हैं।

धेनुकारण्यमें श्राद्धकर तिलसे बनी हुई गौका दान करनेवाला व्यक्ति यदि स्नान करके वहाँपर अवस्थित धेनुमूर्तिका दर्शन करता है तो निश्चित ही वह अपने पितृजनोंको ब्रह्मलोक पहुँचाता है।

ऐन्द्रतीर्थ, वासवतीर्थ, रामतीर्थ, वैष्णवतीर्थ तथा महानदीके पवित्र तीर्थपर श्राद्ध करनेवाला मनुष्य पितरोंको ब्रह्मलोक ले जाता है। गायत्रीतीर्थ, सावित्रीतीर्थ, सारस्वततीर्थमें स्नान-संध्या तथा तर्पण करके श्राद्ध-क्रिया-सम्पन्न करनेसे श्राद्धकर्ता एक सौ एक पुरुषपर्यन्त पितरोंकी पीढ़ीको ब्रह्मलोक ले जाते हैं।

संयतमनसे पितरोंके प्रति ध्यान लगाकर मनुष्यको ब्रह्मयोनि नामक तीर्थको विधिवत् पार करना चाहिये। वहाँपर पितृगणों एवं देवोंका तर्पण करके मनुष्य पुनः गर्भ-यन्त्रणाके संकटमें नहीं पड़ता है।

काकजङ्घातीर्थमें तर्पण करनेसे पितरोंको अक्षयतृप्ति होती है। धर्मारण्य तथा मतङ्गवापीतीर्थमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त करता है। धर्मकूप तथा कूपतीर्थमें श्राद्ध करनेपर प्राणी पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। यहाँ श्राद्धादि कृत्य करके इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

> प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः।
> मयागत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितॄणां निष्कृतिः कृता॥
> (८३।३६)

अर्थात् मेरे द्वारा किये जा रहे श्राद्धादि कृत्योंके साक्षी यहाँके देवता प्रमाण हों और लोकपाल साक्षी हों। इस मतङ्गतीर्थमें आ करके मैंने पितरोंसे ऋण-मुक्तिका कार्य किया है।

रामतीर्थमें स्नान करके प्रभासतीर्थ और प्रेतशिलातीर्थमें श्राद्ध करनेसे पितृगण निश्चित ही प्रेतभावसे मुक्त हो जाते हैं। (ऐसा करके) वह श्राद्धकर्ता अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार करता है। मुण्डपृष्ठादि तीर्थोंमें भी श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न करके अपने पितरोंको ब्रह्मलोक ले जाता है।

गयाक्षेत्रमें ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँपर तीर्थ नहीं है। पाँच कोशके क्षेत्रफलमें स्थित गयाक्षेत्रमें जहाँ-तहाँ भी पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अक्षय फलको प्राप्तकर अपने पितृगणोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है—

गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते।
पञ्चक्रोशे गयाक्षेत्रे यत्र तत्र तु पिण्डदः॥
अक्षयं फलमाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन्।
(८३।३९-४०)

भगवान् जनार्दनके हाथमें अपने लिये पिण्डदान समर्पित करके यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन।
परलोकं गते मोक्षमक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥
(८३।४१)

हे जनार्दन! भगवान् विष्णु! मैंने आपके हाथमें यह पिण्ड प्रदान किया है। अतः परलोकमें पहुँचनेपर मुझे मोक्ष प्राप्त हो। ऐसा करनेसे मनुष्य पितृगणोंके साथ स्वयं भी ब्रह्मलोक प्राप्त करता है।

गयाक्षेत्रमें स्थित धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसर, गयाशीर्ष तथा अक्षयवट-तीर्थमें पितरोंके लिये जो कुछ किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। धर्मारण्य, धर्मपृष्ठ, धेनुकारण्य नामक तीर्थोंका दर्शन करनेसे व्यक्ति अपनी बीस पीढ़ियोंका उद्धार करता है।

महानदीके पश्चिमी भागको ब्रह्मारण्य कहा जाता है। उसके पूर्वभागमें ब्रह्मसद, नागाद्रि पर्वत तथा भरताश्रम है। भरताश्रम एवं मतङ्गपर्वतपर मनुष्यको पितरोंके लिये श्राद्ध करना चाहिये।

गयाशीर्षतीर्थसे दक्षिण तथा महानदीतीर्थके पश्चिम चम्पक वन स्थित है, जहाँपर पाण्डुशिला नामक तीर्थ है। श्रद्धावान् व्यक्तिको उस तीर्थमें तृतीया तिथिको श्राद्ध करना चाहिये। उसी तीर्थके सन्निकट निश्चिरामण्डल, महाह्रद और कौशिकी आश्रम है। इन पवित्र तीर्थोंमें भी श्राद्ध करनेसे प्राणीको अक्षय-फलकी प्राप्ति होती है।

वैतरणी नदीके उत्तरमें तृतीया नामक एक जलाशय है, वहाँपर क्रौञ्च-पक्षियोंका निवास है। इस तीर्थमें श्राद्ध करनेवाला पितृगणोंको स्वर्ग ले जाता है।

क्रौञ्चपदतीर्थसे उत्तर निश्चिरा नामसे प्रसिद्ध एक जलाशय है, वहाँपर एक बार जाने और एक बार पिण्डदान करनेसे मनुष्यको कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है, किंतु जो इस तीर्थमें नित्य निवास करते हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है?

महानदीके जलका स्पर्श करके मनुष्यको पितृदेवोंका तर्पण करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसे अक्षय-लोकोंकी प्राप्ति होती है और उसके कुलका उद्धार हो जाता है।

सावित्रीतीर्थमें (एक बार) संध्या करनेसे मनुष्यको द्वादशवर्षीय संध्याका फल प्राप्त हो जाता है।

शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्षमें जो मनुष्य गयातीर्थ जाकर वहाँपर रात्रिवास करते हैं, निश्चित ही उनके सात कुलोंका उद्धार हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। इस गयातीर्थमें मुण्डपृष्ठ, अरविन्दपर्वत तथा क्रौञ्चपाद नामक तीर्थोंका दर्शन करके प्राणी समस्त पापोंसे विमुक्त हो जाता है। मकर-संक्रान्ति, चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहणके अवसरपर गयातीर्थमें जाकर पिण्डदान करना तीनों लोकोंमें दुर्लभ है।

महाह्रद, कौशिकी, मूल-क्षेत्र तथा गृध्रकूटपर्वतकी गुफामें श्राद्ध करनेपर महाफलकी प्राप्ति होती है। जहाँ भगवान् महेश्वर शिवकी जटाओंसे निकली हुई गङ्गाकी माहेश्वरी धारा प्रवाहित है, वहाँ श्राद्ध करके मनुष्यको ऋणमुक्त होना चाहिये। उसी क्षेत्रमें तीनों लोकोंमें विश्रुत पुण्यतमा विशाला नामक नदीतीर्थ है। वहाँ श्राद्ध करनेसे व्यक्ति अग्निष्टोम नामक यज्ञका फल प्राप्त करता है एवं मृत्युके पश्चात् उसको स्वर्गलोक प्राप्त होता है। श्राद्धकर्ताको उस क्षेत्रमें स्थित मासपद नामसे विख्यात तीर्थके जलमें स्नान करके वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त करना चाहिये।

रविपाद नामक तीर्थमें पिण्डदान करके पतितजनोंको अपना उद्धार करना चाहिये। गयातीर्थमें जाकर जो मनुष्य अन्नदान करते हैं, उन्हींसे पितृगण अपनेको पुत्रवान् मानते हैं। नरकके भयसे डरे हुए पितृजन इसीलिये पुत्र-प्राप्तिकी

अभिलाषा करते हैं कि गयातीर्थमें जो कोई भी मेरा पुत्र जायगा, वह हमारा उद्धार करेगा। इस तीर्थमें पहुँचे हुए अपने पुत्रको देखकर पितृजनोंमें यह उत्सव होता है कि यहाँपर आया हुआ यह मेरा पुत्र अपने पैरोंसे भी इस तीर्थके जलका स्पर्श करके हम सबको निश्चित ही कुछ-न-कुछ प्रदान करेगा—

गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितृणामुत्सवो भवेत्।
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किल दास्यति॥

(८३।६०)

अपने पुत्र अथवा पिण्डदान देनेके अधिकारी अन्य किसी वंशजके द्वारा जब कभी इस गयाक्षेत्रमें स्थित गयाकूप नामक पवित्र तीर्थमें जिसके भी नामसे पिण्डदान दिया जाता है, उसे शाश्वत ब्रह्मगति प्राप्त करा देता है—

आत्मजो वा तथान्यो वा गयाकूपे यदा तदा।
यन्नाम्ना पातयेत् पिण्डं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम्॥

(८३।६१)

वहाँपर स्थित कोटितीर्थमें जानेसे मनुष्यको पुण्डरीक विष्णुलोक प्राप्त होता है। उस क्षेत्रमें त्रिलोकविश्रुत वैतरणी नामक नदी है। वह उस गयाक्षेत्रमें पितरोंका उद्धार करनेके लिये अवतरित हुई है।

जो श्रद्धालु व्यक्ति वहाँपर पिण्डदान एवं गोदान करता है, निश्चित ही उसके द्वारा अपने कुलकी इक्कीस पुरुषपर्यन्त पीढ़ियोंका उद्धार होता है, इसमें संदेह नहीं है।

या सा वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुता॥
सावतीर्णा गयाक्षेत्रे पितृणां तारणाय हि।

(८३।६२-६३)

यदि मनुष्य किसी समय गयातीर्थकी यात्रा करता है तो वहाँपर उसके द्वारा उन्हीं कुलके ब्राह्मणोंको भोजन करवाना चाहिये, जिनका ब्रह्माने अपने यज्ञमें वरण किया था। उस गयातीर्थमें ब्रह्मपद तथा सोमपान नामक तीर्थ उन्हीं ब्राह्मणोंके स्थान हैं, जिनका निर्माण ब्रह्माजीने किया था। इन ब्रह्माके द्वारा प्रकल्पित तीर्थपुरोहितोंकी पूजा करनेपर पितृगणोंके देवता भी पूजित हो जाते हैं।

उस गयातीर्थमें हव्य-कव्यादि पक्वान्नके द्वारा वहाँके ब्राह्मणोंको विधिवत् संतुष्ट करना चाहिये। गयामें निवास तथा देह-परित्यागकी भी विधि है। उत्तमोत्तम गयाक्षेत्रमें जो वृषोत्सर्ग करता है, उसे एक सौ अग्निष्टोम-यज्ञोंका पुण्य-लाभ होता है, इसमें संदेह नहीं है।

बुद्धिमान् मनुष्यको इस गयाक्षेत्रमें अपने लिये भी तिलरहित पिण्डदान करना चाहिये और अन्य व्यक्तियोंके लिये भी पिण्डदान करना चाहिये[1]।

हे व्यासजी! जातिके जितने भी पितृ, बन्धु-बान्धव एवं सुहृद् जन हों, उन सभीके लिये गयाभूमिमें विधिपूर्वक पिण्डदान किया जा सकता है।

रामतीर्थमें स्नान करके मनुष्य एक सौ गोदानका फल प्राप्त करता है। मतङ्गवापीमें स्नान करके एक सहस्र गायोंके दानका फल प्राप्त होता है। निश्चिरा-संगममें स्नान करके मनुष्य अपने पितृजनोंको ब्रह्मलोक ले जाता है। वसिष्ठाश्रममें स्नान करनेसे वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। महाकौशिकीतीर्थमें निवास करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

ब्रह्मसरोवरके निकट संसारको पवित्र करनेवाली प्रसिद्ध अग्निधारा नामक नदी प्रवाहित होती है। उसीको कपिला कहते हैं। इस नदीमें स्नान करके कृतकृत्य हुआ श्रद्धालु व्यक्ति पितरोंके लिये श्राद्ध करके अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

कुमारधारामें श्राद्ध करके मनुष्यको अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करना चाहिये और वहाँपर स्थित कुमारदेवको प्रणाम-निवेदन करके उसे मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिये।

सोमकुण्डतीर्थमें स्नान करके मनुष्य सोमलोकको जाता है। संवर्तवापी नामक तीर्थमें स्नान करके पिण्डदान करनेवाला प्राणी महासौभाग्यशाली बन जाता है।

प्रेतकुण्डतीर्थमें पिण्डदान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे विमुक्त हो जाता है। देवनदी, लेलिहान, मथन, जानुगर्तक तथा इसी प्रकारके अन्य पवित्र तीर्थोंमें पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अपने पितृजनोंको तार देता है। गयाक्षेत्रमें वसिष्ठेश्वर आदि देवताओंको प्रणाम करके प्राणी सभी ऋणोंसे विमुक्त हो जाता है। (अध्याय ८२-८३)

१-आत्मनोऽपि महाबुद्धिर्गयायां तु तिलैर्विना। पिण्डनिर्वापणं कुर्यादन्येषामपि मानवः॥ (८३।६९)

गयाके तीर्थोंका माहात्म्य तथा गयाशीर्षमें पिण्डदानकी महिमामें विशालकी कथा

ब्रह्माजीने कहा—व्यासजी! गयातीर्थकी यात्राके लिये उद्यत मनुष्यको विधिपूर्वक श्राद्ध करके संन्यासीके वेषमें अपने गाँवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर दूसरे गाँवमें वह जाकर श्राद्धसे अवशिष्ट अन्नका भोजन ग्रहण करके प्रतिग्रहसे विवर्जित होकर यात्रा करे।

गयायात्राके लिये मात्र घरसे चलनेवालेके एक-एक कदम पितरोंके स्वर्गारोहणके लिये एक-एक सीढ़ी बनते जाते हैं—

गृहाच्चलितमात्रस्य गयायां गमनं प्रति।
स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणां तु पदे पदे॥

(८४।३)

कुरुक्षेत्र, विशाला (बदरीक्षेत्र), विरजा (जगन्नाथक्षेत्र) तथा गयातीर्थको छोड़कर शेष सभी तीर्थोंमें मुण्डन एवं उपवासका विधान है।

गयातीर्थमें दिन तथा रात (प्रत्येक समय)-में कभी भी श्राद्ध किया जा सकता है। वाराणसी, शोणनद और महानदी पुनःपुनाके तटपर श्राद्ध करके अपने पितृजनोंको स्वर्गलोकमें ले जाय। मनुष्य उत्तर मानसतीर्थमें जाकर श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करता है। उस तीर्थमें उसे स्नान तथा श्राद्धादि क्रियाओंको सम्पन्न करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह दिव्य कामनाओंको तथा मोक्षको प्राप्त करता है।

दक्षिण मानसतीर्थमें जाकर श्रद्धावान् पुरुषको मौन धारण करके पिण्डदानादि करना चाहिये, उस तीर्थमें श्राद्धादि करनेसे मनुष्य देव, ऋषि एवं पितृ—इन तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है।

उस गयाक्षेत्रमें सिद्धजनोंके लिये प्रीतिकारक, पापियोंके लिये भयोत्पादक, अपनी जिह्वाको लपलपाते हुए महाभयंकर, नष्ट न होनेवाले महासर्पोंसे परिव्याप्त कनखल नामक त्रिलोकविश्रुत महातीर्थ है। उदीचितीर्थमें देवर्षियोंसे सेवित मुण्डपृष्ठ नामसे एक प्रसिद्ध तीर्थ है। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है एवं श्राद्ध करनेपर उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। उस तीर्थमें सूर्यदेवको नमस्कार करके पिण्डदानादि सत्क्रियाओंको अवश्य ही सम्पन्न करना चाहिये।

[कव्यवाह, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् और सोमपा नामक पितृदेवता हैं। गयाके तीर्थमें श्राद्ध करते समय इन सभी पितृदेवोंकी इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—]

कव्यवाहस्तथा सोमो यमश्चैवार्यमा तथा।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः॥
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितास्त्विह।
मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः॥
तेषां पिण्डप्रदानार्थमागतोऽस्मि गयामिमाम्।

(८४।१२—१४)

हे कव्यवाह! सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, सोमप (दिव्य) पितृदेवता! आप महाभाग! यहाँ पधारें! आप लोगोंद्वारा रक्षित हमारे कुलमें उत्पन्न जो सपिण्ड पितर पितृलोकमें चले गये हैं, उन सभी पितृजनोंके लिये पिण्डदान करनेके निमित्त मैं इस गयातीर्थमें आया हूँ।

—ऐसी प्रार्थना करके फल्गुतीर्थमें पिण्डदान करके मनुष्यको पितामहका दर्शन करना चाहिये। उसके बाद भगवान् गदाधर विष्णुका दर्शन करे। ऐसा करनेसे वह पितृऋणसे मुक्त हो जाता है। फल्गुतीर्थमें स्नान करके जो मनुष्य भगवान् गदाधरका दर्शन करता है, वह सद्यः अपना तो उद्धार करता ही है, साथ ही वह अपने कुलके दस पूर्व पुरुष एवं दस पश्चाद्वर्ती पुरुषपर्यन्त इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करता है।

गयातीर्थमें पहुँचे हुए श्रद्धालु व्यक्तिके लिये यह प्रथम दिनकी विधिका वर्णन किया गया है। दूसरे दिन धर्मारण्य एवं मतङ्गवापीमें जाकर श्राद्ध करनेवाला मनुष्य पिण्डदान आदि करे, धर्मारण्यमें जानेसे मनुष्यको वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् ब्रह्मतीर्थमें राजसूय-यज्ञ एवं अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर कूप और यूप नामके तीर्थोंके मध्य श्राद्ध एवं पिण्डोदक कृत्य सम्पन्न करना चाहिये। कूपोदकके द्वारा किया गया वह श्राद्धादि कार्य अक्षय होता है। तीसरे दिन ब्रह्मसदतीर्थमें जाकर स्नानकर तर्पण करना चाहिये, तदनन्तर यूप एवं कूपतीर्थके मध्यमें श्राद्ध तथा पिण्डदान करनेका नियम है।

तदनन्तर गोप्रचारतीर्थके समीपमें ब्रह्माके द्वारा कल्पित आम्रवृक्षोंके सेवनमात्रसे पितृजन मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

यूपतीर्थकी प्रदक्षिणा करके वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त कर लेना चाहिये।

चौथे दिन फल्गुतीर्थमें स्नान करके देवादिकोंका तर्पण करे और उसके बाद गयाशीर्षमें रुद्रपदादि तीर्थोंमें जाकर वह पितरोंके लिये श्राद्ध करे।

तदनन्तर व्यास, देहिमुख, पञ्चाग्नि तथा पदत्रय नामक तीर्थमें पिण्डदान करके सूर्यतीर्थ, सोमतीर्थ एवं कार्तिकेय-तीर्थमें जाकर किये गये श्राद्धका फल अक्षय होता है।

गयातीर्थमें नवदैवत्य और द्वादशदैवत्य नामक श्राद्ध करना चाहिये। अन्वष्टका तिथियोंमें, वृद्धिश्राद्धमें, गयामें और मृत्युतिथिमें माताके लिये पृथक् रूपसे श्राद्ध करनेका विधान है। अन्यत्र तीर्थोंमें पिताके साथ ही माताका श्राद्ध करना चाहिये[1]। दशाश्वमेधतीर्थमें स्नान करके पितामहका दर्शनकर यदि मनुष्य रुद्रपादका स्पर्श करता है तो वह पुनः इस लोकमें नहीं आता है।

वित्तपरिपूर्ण समग्र पृथिवीका तीन बार दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल गयाशिरतीर्थमें श्राद्ध करनेपर प्राप्त हो जाता है। इस गयाशिरतीर्थमें शमीपत्र प्रमाणके बराबर पिण्डदान करना चाहिये। इससे पितृगण देवत्वको प्राप्त करते हैं। इस कार्यमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है[2]।

भगवान् शिवने मुण्डपृष्ठतीर्थपर अपना चरण रखा था। अतः उस तीर्थमें अल्पमात्र तपस्यासे ही मनुष्य महान् पुण्य प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति गयाशीर्षतीर्थमें नामोच्चारके साथ जिन पितरोंको पिण्डदान करता है उससे नरकलोकमें निवास करनेवाले पितृजन स्वर्गलोक एवं स्वर्गमें रहनेवाले पितरोंको मोक्ष प्राप्त हो जाता है—

मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता॥
अल्पेन तपसा तत्र महापुण्यमवाप्नुयात्।
गयाशीर्षे तु यः पिण्डान्नाम्ना येषां तु निर्वपेत्॥
नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः।

(८४। २८—३०)

पाँचवें दिन गदालोलतीर्थमें स्नान करके अक्षयवटके नीचे पिण्डदान करनेवाला अपने समस्त कुलका उद्धार कर देता है। अक्षयवटके मूलमें शाक अथवा उष्णोदकसे एक ब्राह्मणको भोजन करानेपर करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त हो जाता है[3]। अक्षयवटमें श्राद्ध करनेके पश्चात् प्रपितामहका दर्शन करके मनुष्य अक्षय लोकोंको प्राप्त करता है एवं अपने सौ कुलोंका उद्धार कर देता है।

मनुष्यको बहुत-से पुत्रोंकी कामना करनी चाहिये, क्योंकि उनमेंसे एक भी पुत्र गयातीर्थमें जाय अथवा अश्वमेध-यज्ञ करे या नीलवृषोत्सर्ग करे[4]।

एक प्रेतने किसी वणिक्से कहा—हे वणिक्! गयाशीर्षतीर्थमें तुम मेरे नामसे पिण्डदान करो, जिससे मैं इस प्रेतयोनिसे मुक्त हो जाऊँगा। यह पिण्डदान दाताके लिये भी स्वर्गप्रदान करनेवाला होगा। ऐसा सुनकर उस वणिक्ने गयाशीर्षतीर्थमें उस प्रेतराजके लिये पिण्डदान किया। तदनन्तर अपने छोटे भाइयोंके साथ उसने अपने पितृजनोंको भी पिण्डदान प्रदान किया। वणिक्के द्वारा वहाँ पिण्डदान करनेसे उस प्रेतराजके साथ उसके सभी पितर मुक्त हो गये और पिण्डदान करनेवाला वह विशाल वणिक् पुत्रवान् हो गया। मृत्युके पश्चात् उसने विशालामें राजपुत्रके रूपमें जन्म लिया। उसने ब्राह्मणोंसे कहा कि मुझे किस प्रकारके सत्कार्योंको करनेसे पुत्र-प्राप्ति हो सकती है। ब्राह्मणोंने विशाल नामक राजपुत्रसे कहा कि गयातीर्थमें पिण्डदान करनेसे आपकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं।

तदनन्तर विशालने गयाशीर्षतीर्थमें जाकर पिण्डदान किया, जिसके पुण्यसे वह पुत्रवान् हो गया। एक दिन उसने आकाशमें श्वेत, रक्त एवं कृष्णवर्णवाले पुरुषोंको देखा। उन लोगोंको देखकर उसने पूछा कि तुम सब कौन हो? उनमेंसे श्वेतवर्णवाले पुरुषने उस विशालसे कहा कि श्वेतवर्णवाला मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम्हारे द्वारा दिये गये पिण्डदानके पुण्यलाभसे मैंने शुभ इन्द्रलोकको प्राप्त किया

१-श्राद्धं तु नवदैवत्यं कुर्याद्द्वादशदैवतम्। अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां मृतवासरे॥
अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह। (८४। २४-२५)

२-त्रिर्वित्तपूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात्॥
स तत्फलमवाप्नोति कृत्वा श्राद्धं गयाशिरे। शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद् गयाशिरे॥
पितरो यान्ति देवत्वं नात्र कार्या विचारणा। (८४। २६—२८)

३-वटमूलं समासाद्य शाकेनोष्णोदकेन वा॥ एकस्मिन् भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिताः। (८४। ३१-३२)

४-एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥ यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्। (८४। ३३-३४)

है। हे पुत्र! ये जो रक्तवर्णवाले पुरुष दिखायी दे रहे हैं, मेरे पिता हैं। ये ब्रह्महत्या करनेवाले तथा अन्यान्य महापापोंसे युक्त थे। ये कृष्णवर्णवाले तेरे पितामह हैं। इन्होंने अपने जीवनकालमें अनेक ऋषियोंका वध किया। अतः इन लोगोंको अवीचि नामक नरक प्राप्त हुआ था, किंतु तुम्हारे द्वारा प्रदत्त पिण्डदानसे हम सभी पापविमुक्त हो गये हैं। अब हम लोग उत्तम स्वर्गलोकमें जा रहे हैं।

यह सुनकर कृतकृत्य होकर विशाला नगरीमें राज्य करके वह विशाल स्वर्गलोकमें चला गया।

[गयातीर्थमें पिण्डदान करते हुए निम्न मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये—]

येऽस्मत्कुले तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥
ये चाप्यकृतचूडास्तु ये च गर्भाद्विनिस्सृताः।
येषां दाहो न क्रिया च येऽग्निदग्धास्तथापरे॥
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः॥
माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही।
तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च॥
वृद्धप्रमातामहश्च तथा मातामही परम्।
प्रमातामही तथा वृद्धप्रमातामहीति वै॥
अन्येषां चैव पिण्डोऽयमक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥

(८४।४३—४८)

इसका भाव यह है कि हमारे कुलमें जो पितर पिण्डदान एवं जल-तर्पण क्रियासे वञ्चित रहे हैं, जो चूडाकर्म-संस्कारविहीन हैं, जो गर्भसे निकले हुए हैं (गर्भपातके कारण मृत्युको प्राप्त हुए हैं), जिनका अग्निदाह अथवा अन्य अन्तिम क्रिया-संस्कार नहीं हुआ है, अग्निमें जलकर जिनकी मृत्यु हुई है और जो दूसरे पितृगण हैं, वे भूमिमें मेरे द्वारा किये गये इस पिण्डदानसे तृप्त हों और तृप्त होकर परमगतिको प्राप्त करें। पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही और अन्य पितृजनोंको मेरे द्वारा दिया गया यह पिण्ड अक्षय होकर उन्हें प्राप्त हो।

(अध्याय ८४)

गयातीर्थमें पिण्डदानकी महिमा

ब्रह्माजीने कहा—पिण्डदान करनेवालेको चाहिये कि वह प्रेतशिलादि तीर्थोंमें स्नान करके '**अस्मत्कुले मृता ये च०**' आदि मन्त्रोंसे अपने श्रेष्ठ पितरोंका आवाहनकर वरुणानदीके अमृतमय जलसे पिण्डदान प्रदान करे[1]।

हमारे कुलमें जो मरे हैं, जिनकी सद्गति नहीं हुई है। इस दर्भपृष्ठपर तिलोदकके द्वारा उन सभी पितरोंका

१-अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते। आवाहयिष्ये तान् सर्वान् दर्भपृष्ठे तिलोदकैः॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भे प्रपीडिताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
बन्धुवर्गाश्च ये केचिन्नामगोत्रविवर्जिताः। स्वगोत्रे परगोत्रे वा गतिर्येषां न विद्यते।
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये। आत्मोपघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
अग्निदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये। दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि तेषां पिण्डं ददाम्यहम्॥
अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथापरे। विद्युच्चौरहता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
रौरवे चान्धतामिस्रे कालसूत्रे च ये गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाके च ये गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
अन्येषां यातनास्थानां प्रेतलोकनिवासिनाम्। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
पशुयोनिं गता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः। अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
असंख्ययातनासंस्था ये नीता यमशासनैः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥
जात्यन्तरसहस्रेषु भ्रमन्ति स्वेन कर्मणा। मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥
ये बान्धवाऽबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा॥
ये केचित् प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा॥

आवाहन करता हूँ। पितृवंश एवं मातृवंशमें जिन लोगोंकी मृत्यु हुई है, उन लोगोंके उद्धारके लिये मैं यह पिण्डदान दे रहा हूँ। मातामह अर्थात् नानाके कुलमें जो लोग मर गये हैं, जिनको कोई सद्‌गति प्राप्त नहीं हुई है, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड दे रहा हूँ। हमारे कुलमें जो दाँत निकलनेके पूर्व ही मृत्युको प्राप्त हो गये और जो कोई गर्भकालमें विनष्ट हो गये हैं, उन लोगोंके उद्धारके लिये मैं यह पिण्डदान दे रहा हूँ। बन्धुकुलमें उत्पन्न जो कोई नाम-गोत्रसे रहित हैं, स्वगोत्र एवं परगोत्रमें जिनकी कोई गति नहीं रही है, उनके उद्धारके लिये मैं यह पिण्ड दे रहा हूँ। उद्बन्धन (फाँसीद्वारा) अथवा विषसे या शस्त्राघातसे जिनकी मृत्यु हुई है, जिन्होंने आत्महत्या की है, उन लोगोंके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ।

जो लोग अग्निमें जलकर मर गये हैं, जिनकी मृत्यु सिंह और व्याघ्रादि हिंसक प्राणियोंके द्वारा हुई है अथवा विशाल दाँतोंवाले हाथियों या सींगधारी पशुओंके आघातसे जो मरे हैं, उन सभीके उद्धारके लिये मैं पिण्ड दे रहा हूँ। जिनकी मृत्यु अग्निमें जलकर अथवा बिना अग्निमें जले हो गयी है, जो विद्युत्‌से या चोरोंके द्वारा मारे गये हैं, उनके लिये मैं पिण्ड दे रहा हूँ। जो रौरव, अन्धतामिस्र तथा कालसूत्र नामक नरकोंमें गये हैं, उन सबके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ। जो असिपत्रवन और घोर-कुम्भीपाक नामक नरकोंमें पड़े हुए हैं, उनके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ। अन्य जो यातना भोग रहे हैं और प्रेतलोकमें निवास कर रहे हैं, उनके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ।

जो पितृगण पशुयोनिमें चले गये हैं अथवा जो पक्षी, कीट-पतंग, सर्प, सरीसृप (छिपकली, गिरगिट, सर्पादि) हो गये हैं या जो वृक्षयोनिमें अवस्थित हैं, उनके लिये मैं यह पिण्ड दे रहा हूँ। जो यमराजके शासनादेशसे यमगणोंके द्वारा असंख्य यातनाओंके बीच पहुँचाये गये हैं, उन सभीके उद्धारके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ। जो अपने कर्मानुसार हजारों योनियोंमें घूमते हुए कष्ट भोग रहे हैं, जिनको मानुषयोनि दुर्लभ है, उन सभीके लिये यह पिण्ड दे रहा हूँ।

जो हमारे बान्धव हैं या बान्धव नहीं हैं अथवा जो अन्य जन्मोंमें मेरे बन्धु-बान्धव रहे हैं, वे मेरे द्वारा दिये गये इस पिण्डदानसे सदैव तृप्तिको प्राप्त करें। जो कोई भी पितृजन प्रेतरूपमें अवस्थित हैं, वे सभी इस पिण्डदानसे तृप्ति प्राप्त करें।

जो हमारे पितृकुल, मातृकुल, गुरु, श्वशुर, बान्धव अथवा अन्य सम्बन्धियोंके कुलमें उत्पन्न होकर मृत्युको प्राप्त हुए हैं और जो अन्य बान्धव हैं, जो मेरे कुलमें पुत्र-पत्नीसे रहित होनेके कारण लुप्तपिण्ड हैं, क्रियालोपसे जिनकी दुर्गति हुई है, जो जन्मान्ध या पंगु हैं, जो विरूप हैं अथवा अल्प-गर्भमें ही मृत्युको प्राप्त हुए हैं, जो ज्ञात अथवा अज्ञात हैं, उनके निमित्त मेरे द्वारा दिया गया यह पिण्डदान अक्षय होकर उन्हें प्राप्त हो।

ब्रह्मा और ईशान आदि देव! आप सब मेरे इस कार्यमें साक्षी हों। मैंने गयातीर्थमें आ करके पितरोंके उद्धारके लिये यह पिण्डदानादिक कार्य सम्पन्न किया है।

हे देव! भगवान् गदाधर विष्णु! मैं पितृकार्यके लिये इस गयातीर्थमें उपस्थित हुआ हूँ। मेरे द्वारा सम्पन्न किये गये आजके इस पितृकार्यमें आप साक्षी हों। आज मैं (देव-गुरु एवं पितृ) तीनों ऋणोंसे विमुक्त हो गया हूँ। (अध्याय ८५)

ये मे पितृकुले जाताः कुले मातुस्तथैव च। गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः। क्रियालोपहता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा॥
विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम। तेषां पिण्डं मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठताम्॥
साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा। मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता॥
आगतोऽहं गयां देव पितृकार्ये गदाधर। तन्मे साक्षी भवत्वद्य अनृणोऽहमृणत्रयात्॥ (८५। २—२२)

गयाके तीर्थोंकी महिमा तथा आदिगदाधरका माहात्म्य

ब्रह्माजीने कहा—इस गयाक्षेत्रमें जो विख्यात प्रेतशिला है, वह प्रभास, प्रेतकुण्ड एवं गयासुरशीर्ष नामक तीर्थोंमें तीन प्रकारसे अवस्थित है। सर्वदेवमयी इस शिलाको धर्मदेवताके द्वारा ऐश्वर्यके लिये धारण किया गया है। अपने मित्रादिक बन्धु-बान्धवोंमें जिन लोगोंको प्रेतयोनि प्राप्त हो गयी है, उनका उद्धार करनेके लिये यह प्रेतशिला शुभ है। अतएव मुनिजन, नृपगण तथा राजपत्न्यादि इस प्रेतशिलापर आ करके अपने पितृजनोंके लिये श्राद्धादिकर ब्रह्मलोक प्राप्त करते हैं।

गयासुरके मुण्डके पृष्ठभागमें जो शिला स्थित है, उसका नाम 'मुण्डपृष्ठगिरि' है, इसी कारण यह पर्वत सर्वदेवमय है। इसके पाददेशमें ब्रह्मसरोवरादि अनेक तीर्थ हैं। उन तीर्थोंमें एक अरविन्दवन नामक तीर्थ है। उस वनसे सुशोभित होनेके कारण उसके पर्वतीय प्रान्त-भागको 'अरविन्दगिरि' कहते हैं। वहाँपर क्रौञ्च पक्षियोंके चरण-चिह्न विद्यमान रहते हैं। इसलिये वह पर्वतीय भाग 'क्रौञ्चपाद'के नामसे प्रसिद्ध है। श्राद्धादि करनेसे वह तीर्थ पितरोंको ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

आदिकालसे ही यहाँपर आदिदेव भगवान् गदाधर विष्णु अव्यक्तरूपमें शिलारूपसे स्थित हैं। इसलिये यह शिला देवमयी कही गयी है। यह शिला गयासुरके सिरको आच्छादित करके वर्तमान समयमें भी अपने गुरुत्व भावके कारण चारों ओरसे अवस्थित है। कालान्तरमें महारुद्रादि देवोंके साथ आदि-अन्तसे रहित हरि आदि गदाधरके रूपमें व्यक्त होकर यहाँ स्थित हो गये हैं।

जिस प्रकार पूर्वकालमें धर्म-संरक्षण एवं अधर्म-विनाशके निमित्त दैत्यों और राक्षसोंका संहार करनेके लिये मत्स्यावतार हुआ। जैसे कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, दाशरथी राम, कृष्ण और बुद्ध हुए। तदनन्तर कल्कि अवतार भी हुआ। उसी प्रकार यहाँपर व्यक्ताव्यक्त भगवान् आदि गदाधर प्रकट हुए।

आदिकालमें इसी पवित्र तीर्थपर ब्रह्मादि देवोंने आदिदेव भगवान् गदाधर विष्णुकी पूजा की थी। इसलिये यहाँपर अर्घ्य, पाद्य, पुष्पादिक उपहारोंसे उन भगवान् गदाधरकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य इस तीर्थमें जाकर अन्य देवताओंके साथ इन आदिदेव भगवान् गदाधरको अर्घ्य-पात्र, पाद्य, गन्ध, पुष्प, धूप, सुन्दर नैवेद्य, विविध प्रकारके पुष्पोंसे बनी हुई मालाएँ, वस्त्र, मुकुट, घण्टा, चामर, दर्पण, अलंकार, पिण्ड, अन्न तथा अन्यान्य वस्तुओंको प्रदान करता है, वह जबतक इस पृथिवीपर जीवित रहता है, तबतक धन, धान्य, आयु, आरोग्य, सम्पदाओं, पुत्र-पौत्रादिक संतति, श्रेय, विद्या, अर्थ एवं अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त करता है। भार्याको प्राप्तकर (अन्तमें) स्वर्गका निवासी बन जाता है। तदनन्तर वह पुनः पृथिवीपर जन्म लेकर राज्यसुख प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ कुलीन मनुष्य सत्त्वसम्पन्न होकर युद्धभूमिमें शत्रुओंको पराजित करनेमें समर्थ रहते हुए वध और बन्धनसे विमुक्त होकर मृत्युके पश्चात् मोक्ष प्राप्त करता है।

जो इस गयातीर्थमें अपने पितृजनोंके लिये श्राद्ध तथा पिण्डदानादिक क्रियाओंको सम्पन्न करनेवाले हैं, वे उन पितृगणोंके साथ स्वयं भी ब्रह्मलोकगामी होते हैं[1]।

जो व्यक्ति पुरुषोत्तमक्षेत्रमें जाकर भगवान् जगन्नाथ, सुभद्रा एवं बलभद्रकी पूजा करते हैं, वे लोग ज्ञान, लक्ष्मी तथा पुत्रादिकोंको प्राप्तकर अन्त समयमें भगवान् पुरुषोत्तम विष्णुके सांनिध्यमें चले जाते हैं। जो मनुष्य वहाँ स्थित भगवान् पुरुषोत्तम जगन्नाथ, सूर्यदेव और गणनायक विघ्नेश्वरके समक्ष पितरोंके लिये पिण्डदानादिक कार्य करते हैं, उन लोगोंको वह सम्पूर्ण कृत्य ब्रह्मलोक प्रदान करता है।

इस क्षेत्रमें विद्यमान कपर्दी भगवान् शिव और गणेशको नमस्कार करके मनुष्य समस्त विघ्नोंसे मुक्त हो जाता है। यहाँपर विराजमान भगवान् कार्तिकेयका पूजनकर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। द्वादशादित्य सूर्यदेवकी सम्यक् अर्चनासे पुरुष सर्वरोग-विमुक्त हो जाता है। भगवान् वैश्वानर अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके पुरुष उत्तम कान्ति प्राप्त करता है। रेवन्त देवकी पूजा करके मनुष्य उत्तम जातिके अश्वोंको प्राप्त करता है। देवराज इन्द्रकी भलीभाँति पूजा करके महान् ऐश्वर्य एवं गौरीदेवीकी पूजा करके सौभाग्यकी प्राप्ति करनी चाहिये। मनुष्य सरस्वतीदेवीकी पूजा करके विद्या, लक्ष्मीकी पूजा करके सम्पत्ति तथा गरुडकी पूजा करके विघ्नोंके समूहोंसे विमुक्त हो जाता है।

१-वधबन्धविनिर्मुक्तश्चान्ते मोक्षमवाप्नुयात्। श्राद्धपिण्डादिकर्तार: पितृभिर्ब्रह्मलोकगा:॥ (८६। १८)

क्षेत्रपालदेवकी पूजा करके व्यक्ति ग्रहोंके समूहसे निर्मुक्त हो जाता है। मुण्डपृष्ठकी पूजा करके अपनी सम्पूर्ण अभिलाषाओंकी पूर्ति करनी चाहिये। अष्टनागदेवकी पूजा करके प्राणी सर्पदंशसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्माकी पूजा करके ब्रह्मलोकका पुण्य अर्जित करना चाहिये।

भगवान् बलभद्रकी सम्यक् पूजा करके शक्ति और आरोग्य तथा सुभद्रादेवीकी विधिवत् पूजा करके परम सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। भगवान् पुरुषोत्तम जगन्नाथकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति होती है। भगवान् नारायणकी पूजा करके वह मनुष्योंका अधिपति होता है।

नृसिंहदेवके चरणोंका स्पर्श एवं नमन करके मनुष्य संग्राममें विजयी होता है। वराहदेवकी पूजा करके वह पृथिवीका राज्य प्राप्त करता है तथा मालाधर एवं विद्याधरका स्पर्श करके विद्याधरोंके पदको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् आदिगदाधरकी सम्यक् पूजा करके प्राणी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण कर लेता है। भगवान् सोमनाथकी पूजासे शिवलोकको प्राप्त करता है। रुद्रदेवको नमस्कार करके रुद्रलोकमें प्रतिष्ठापित होता है।

रामेश्वर-शिवको प्रणाम करके मनुष्यको रामके समान अतिशय प्रिय बनना चाहिये। भगवान् ब्रह्मेश्वरकी पूजा करके ब्रह्मलोक-प्राप्तिकी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। कालेश्वरकी भलीभाँति पूजा करके कालजयी बनना चाहिये। केदारनाथकी पूजा करके शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनी चाहिये और भगवान् सिद्धेश्वरकी पूजा करके मनुष्यको ब्रह्मलोक प्राप्त करना चाहिये।

आद्यदेव रुद्र आदिके साथ भगवान् आदिगदाधर विष्णुका दर्शन करके अपने सौ कुलोंका उद्धार कर उन्हें ब्रह्मलोक प्राप्त कराये। आदिगदाधरकी पूजासे धर्मार्थी धर्मको, धनार्थी धनको, कामार्थी कामको तथा मोक्षार्थी मोक्षको प्राप्त करता है। इनकी पूजासे राज्य चाहनेवाला पुरुष राज्य और शान्तिका इच्छुक शान्ति प्राप्त कर लेता है। सब प्रकारकी कामना करनेवाला सब कुछ प्राप्त कर लेता है। इन भगवान् आदिगदाधरकी अर्चनासे पुत्रकी कामना करनेवाली स्त्रीको पुत्र, सौभाग्य चाहनेवालीको सौभाग्य तथा वंशाभिवृद्धिकी इच्छुक स्त्रीको वंशाभिवृद्धिका पुण्य प्राप्त करना चाहिये। मनुष्य श्राद्ध, पिण्डदान, अन्नदान और जलदानके द्वारा भगवान् गदाधरदेवकी विधिवत् पूजा करके ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। पृथिवीपर अवस्थित सभी तीर्थोंकी अपेक्षा जिस प्रकार गयापुरी श्रेष्ठ है, उसी प्रकार शिलाके रूपमें विराजमान गदाधर श्रेष्ठ हैं। उनकी मूर्तिका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण शिलाका दर्शन हो जाता है; क्योंकि सब कुछ तो भगवान् गदाधर विष्णु ही हैं—

> श्राद्धेन पिण्डदानेन अन्नदानेन वारिदः॥
> ब्रह्मलोकमवाप्नोति सम्पूज्यादिगदाधरम्।
> पृथिव्यां सर्वतीर्थेभ्यो यथा श्रेष्ठा गयापुरी॥
> तथा शिलादिरूपश्च श्रेष्ठश्चैव गदाधरः।
> तस्मिन् दृष्टे शिला दृष्टा यतः सर्वं गदाधरः॥
> (८६। ३८—४०)

(अध्याय ८६)

चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन तथा अठारह विद्याओंके नाम

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं चौदह मनु और उनके पुत्रोंका वर्णन करूँगा। पूर्वकालमें सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुए। उनके अग्नीध्र आदि अनेक पुत्र थे। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा वसिष्ठ—ये इस मन्वन्तरके सात ऋषि (सप्तर्षि) कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें जय, अमित, शुक्र एवं याम नामक (देवताओंके) बारह गण थे, जिनमें चार सोमपायी थे। इसीमें विश्वभुक् और वामदेव इन्द्रपदसे प्रसिद्ध हुए। बाष्कलि नामक दैत्य उनका शत्रु था, वह भगवान् विष्णुके द्वारा चक्रसे मारा गया।

तदनन्तर स्वारोचिष मनुका प्रादुर्भाव हुआ। उनके चैत्रक, विनत, कर्णान्त, विद्युत्, रवि, बृहद्गुण और नभ नामसे विख्यात महाबली मण्डलेश्वर एवं पराक्रमशाली पुत्र हुए थे। ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, ऋषभ, निश्चल, दत्तोलि और अर्वरीवान्—ये सात ऋषि सप्तर्षिरूपमें प्रसिद्ध हुए। इस मन्वन्तरमें द्वादश तुषित और पारावतदेवगण हुए। विपश्चित् नामक इन्द्र थे। उनका शत्रु पुरुकुत्सर नामक दैत्य था। मधुसूदन भगवान् विष्णुने हाथीका रूप धारण करके उसे मारा था।

हे रुद्र! स्वारोचिष मनुके पश्चात् औत्तम मनु हुए। इस मनुके अज, परशु, विनीत, सुकेतु, सुमित्र, सुबल,

शुचि, देव, देवावृध, महोत्साह और अजित नामक पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें रथौजा, ऊर्ध्वबाहु, शरण, अनघ, मुनि, सुतप और शंकु—ये सप्तर्षि हुए। वशवर्ति, स्वधाम, शिव, सत्य तथा प्रतर्दन नामके पाँच देवगण हुए। इन सभी देवगणोंके प्रत्येक गणमें बारह देवता थे। स्वशान्ति नामक इन्द्र हुए, जिनका शत्रु प्रलम्बासुर दैत्य था। भगवान् विष्णुने मत्स्यावतार धारण करके उस दैत्यका वध किया।

उस मनुके बाद तामस मनु हुए। उनके जानुजङ्घ, निर्भय, नवख्याति, नय, विप्रभृत्य, विविक्षिप, दृढेषुधि, प्रस्तलाक्ष, कृतबन्धु, कृत, ज्योतिर्धाम, पृथु, काव्य, चैत्र, चेताग्नि और हेमक नामक पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें सुरागा तथा सुधी आदि सात ऋषि कहे गये हैं। इसमें हरि आदि देवताओंके चार गण थे, प्रत्येकमें पचीस देवता हुए। उसी गणमें शिवि इन्द्र हुए। उनका शत्रु भीमरथ नामक असुर हुआ। भगवान् विष्णुने कूर्मावतार लेकर उसका वध किया।

तदनन्तर रैवत मनुका आविर्भाव हुआ। उनके महाप्राण, साधक, वनबन्धु (वलबन्धु), निरमित्र, प्रत्यङ्ग, परहा, शुचि, दृढव्रत और केतुशृंग नामक ऋषि कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें वेदश्री, वेदबाहु, उद्र्ध्वबाहु, हिरण्यरोम, पर्जन्य, सत्यनेत्र और स्वधाम—ये सात ऋषि हुए। इस मन्वन्तरमें अभूतरजस्, अश्वमेधस्, वैकुण्ठ तथा अमृत नामक चार देवगण हुए, जिनमें चौदह देव हुए। विभु नामक इन्द्र हुए। उनका शत्रु शान्त नामक दैत्य था। भगवान् विष्णुने हंसरूप धारण करके उसका विनाश किया।

इसके बाद चाक्षुष मनुका प्रादुर्भाव हुआ। इनके ऊरु, पूरु, महाबल, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यबाहु, कृति, अग्निष्णु, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा नर नामक पुत्र हुए। हविष्मान्, उत्तम, स्वधामा, विरज, अभिमान, सहिष्णु तथा मधुश्री नामक—ये सात ऋषि हुए। आर्य, प्रभूत, भाव्य, लेख और पृथुक नामवाले पाँच गणोंमें आठ-आठ देवता कहे गये हैं। इस मन्वन्तरके इन्द्र मनोजव थे, उनका शत्रु महान् भुजाओंवाला महाबली महाकाल कहा गया है। जगदाधार भगवान् विष्णुने अश्वरूप धारण करके उसका वध किया था।

तत्पश्चात् वैवस्वत मनु हुए। उनके इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, पांसु, नभ, नेदिष्ठ, करूष, पृषध्र और सुद्युम्न नामक विष्णुपरायण पुत्र हुए। इस मन्वन्तरमें अत्रि, वसिष्ठ, जमदग्नि, कश्यप, गौतम, भरद्वाज तथा विश्वामित्र नामक सात ऋषि (सप्तर्षि) कहे गये हैं। इसमें उनचास मरुद्गण, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, साध्यगण आठ वसु, अश्विनीकुमारद्वय, दस विश्वेदेव, दस आंगिरसदेव तथा नौ देवगण कहे गये हैं। इस मनुके समयमें तेजस्वी नामक इन्द्र हैं। उनका शत्रु हिरण्याक्ष माना गया है। भगवान् विष्णुने वराह अवतार धारण करके उस दैत्यका विनाश किया था।

अब मैं भविष्यमें होनेवाले सावर्णि मनुके पुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ। उन मनुके विजय, आर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति, वरिष्ठ, गरिष्ठ, वाच, संगति नामक पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें अश्वत्थामा, कृपाचार्य, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, ऋष्यशृंग और परशुराम—ये सात ऋषि कहे गये हैं। सुतपा, अमृताभ तथा मुख्य नामक तीन देवगण हैं, जिनके प्रत्येक गणमें बीस-बीस देव माने गये हैं। विरोचन-पुत्र बलि इन्द्र होंगे, जो वामनरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा याचित तीन पग भूमिदान देनेसे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रपदको छोड़कर सिद्धि प्राप्त करेंगे।

हे ब्रह्मा! नवें वरुणपुत्र दक्षसावर्णि मनुके पुत्रोंको सुनें। धृतिकेतु, दीप्तिकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवा, बृहद्द्युम्न, ऋचीक तथा बृहद्गुण नामके पुत्र हुए। इस मन्वन्तरमें मेधातिथि, द्युति, सवस, वसु, ज्योतिष्मान् हव्य और कव्य तथा विभु—ये सप्तर्षि हुए। पर, मरीचिगर्भ तथा सुधर्मा—ये तीन देवता हुए। इस मन्वन्तरमें कालकाक्ष नामक देवशत्रु हुआ, जिसका वध पद्मनाभ विष्णुने किया था।

दसवें मनु (धर्म)-के पुत्र धर्मसावर्णिके पुत्रोंको सुनो—सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिश्रेण्य, शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न, सुवर्चा, शान्ति एवं इन्द्र नामक महाप्रतापी पुत्र थे। इस मन्वन्तरमें अयोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृति, अव्यय, नाभाग, अप्रतिमौजा और सौरभ नामक सप्तर्षि हुए। इसमें देवताओंके प्राण नामके एक सौ गण विद्यमान थे। उन गणोंके इन्द्र महाबलशाली शान्त नामक देवपुरुष थे। उनका शत्रु बलि नामक असुर होगा। भगवान् विष्णु अपनी गदासे उसका वध करेंगे।

हे रुद्र! अब मैं आपके पुत्र एकादश मनु (रुद्रसावर्णि)-की संतानोंका वर्णन करता हूँ। इनके सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरु, गुरु, क्षेत्रवर्ण, दृढेषु, आर्द्रक तथा पुत्र नामक

पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, हविष्य, वरुण, विश्व, विस्तार, विष्णु और अग्नितेज नामक सप्तर्षि कहे गये हैं और इसमें विहङ्गम, कामगम, निर्माण तथा रुचि नामक चार देवगण हुए। एक-एक गणमें तीस-तीस देवता कहे गये हैं। उन समस्त देवगणोंके इन्द्र वृषभ हुए; जिनका शत्रु दशग्रीव नामक राक्षस होगा। लक्ष्मीका रूप धारण करके विष्णु उसका विनाश करेंगे।

इसके पश्चात् दक्षके पुत्र दक्षसावर्णि बारहवें मनु हुए। उनके पुत्रोंका वर्णन सुनें—इन मनुके देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रबिन्दु, वीर्यवान्, मित्रवाह, प्रवाह नामक पुत्र हैं। इस मन्वन्तरमें तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, द्युति तथा तपोधन नामसे विख्यात सप्तर्षि हुए। स्वधर्मा, सुतपस, हरित और रोहित नामक देव सुरगण हैं। उनके प्रत्येक गणोंमें दस-दस देव हुए। हे शिव! इस मन्वन्तरमें ऋतधामा नामके इन्द्र होंगे। उनका शत्रु तारकासुर होगा। विष्णु नपुंसकस्वरूप धारण करके उसका वध करेंगे।

तदनन्तर रौच्य नामक त्रयोदश मनुके पुत्रोंको मुझसे सुनें। इन मनुके चित्रसेन, विचित्र, तप, धर्मरत, धृति, सुनेत्र, क्षेत्रवृत्ति तथा सुनय नामक पुत्र कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें धर्म, धृतिमान्, अव्यय, निशारूप, निरुत्सक, निर्मोह और तत्त्वदर्शी नामक सप्तर्षि कहे गये हैं। इस मन्वन्तरमें सुरोम, सुधर्म तथा सुकर्म—तीन देवगणोंका उद्भव हुआ। इन सभी गणोंमें तैंतीस-तैंतीस देवगण कहे गये हैं। इन देवगणोंका इन्द्र दिवस्पति और शत्रु त्वष्टिभ नामक दानव था। भगवान् विष्णु मयूरका स्वरूप धारण करके उस दैत्यका वध करेंगे।

हे शिव! अब मेरे पुत्र चौदहवें मनु भौत्यके पुत्रोंका श्रवण करें—इन मनुके ऊरु, गभीर, धृष्ट, तरस्वी, ग्राह, अभिमानी, प्रवीर, जिष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी तथा दुर्लभ नामक पुत्र होंगे। इस मन्वन्तरमें अग्नीध्र, अग्निबाहु, मागध, शुचि, अजित, मुक्त और शुक्र—ये सप्तर्षि होंगे। इस मन्वन्तरमें चाक्षुष, कर्मनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिन तथा वचोवृद्ध नामक पाँच देवगणोंके प्रत्येक गणको सात-सात देवगणोंसे समन्वित कहा गया है। इस मन्वन्तरमें शुचि नामसे प्रसिद्ध इन्द्र होंगे तथा महादैत्य उनका शत्रु होगा। स्वयं भगवान् विष्णु ही उस महादानवका वध करेंगे।

उन्हीं भगवान् विष्णुने व्यासरूपमें अवतरित होकर एक ही वेदसंहिताको चतुर्धा विभाजित किया। तदनन्तर अठारह पुराणोंका प्रणयन किया। उन्होंने ही चारों वेद, छः वेदाङ्ग और मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अर्थवेद, धनुर्वेद और गन्धर्ववेद—इन अष्टादश विद्याओंका विस्तार किया। (अध्याय ८७)

प्रजापति रुचि और उनके पितरोंका संवाद

सूतजीने कहा—भगवान् हरिने ब्रह्मा और भगवान् शिवको चौदह मन्वन्तरोंका जो वर्णन सुनाया था, मैंने आपको वह सुना दिया। अब मार्कण्डेयजीने क्रौञ्चुकि मुनिको जो पितृस्तोत्र सुनाया था, वह आप सभीको सुना रहा हूँ। आप सब उसे श्रवण करें।

मार्कण्डेयजीने कहा—प्राचीनकालमें रुचि नामक प्रजापति मायामोहको छोड़कर, निर्भय होकर, स्वल्प शयन करते हुए निरहंकारभावसे इस पृथिवीपर विचरण करने लगे। उन्होंने अग्निहोत्रका परित्याग कर दिया। घरमें रहना छोड़ दिया। वे एक बार भोजन करते और गृहस्थादिक आश्रमके नियमोंसे रहित हो संगरहित होकर इधर-उधर अकेले ही विचरण करते थे। उन्हें देखकर उनके पितृजनोंने उनसे कहा—

हे वत्स! तुमने किस कारण दार-परिग्रह (विवाह) नहीं किया। यह दार-परिग्रह स्वर्ग एवं मोक्ष-प्राप्तिका हेतु है। गृहस्थाश्रमके बिना प्राणीको शाश्वत बन्धन होता है; क्योंकि गृहस्थ समस्त देवताओं, पितरों, ऋषियों और याचकोंकी पूजा करके उत्तम लोकोंको प्राप्त करता है। वह देवताओंको स्वाहा एवं पितरोंको स्वधा शब्दके उच्चारणसे तथा अतिथि एवं भृत्यादि जनोंको अन्न-दानसे संतुष्ट करता है। ऐसा न करके तुम देवऋण और हम सभी पितृजनोंके ऋणसे आबद्ध हो। मनुष्य, ऋषि एवं अन्य प्राणिजनोंके लिये भी तुम प्रतिदिन ऋणी ही हो रहे हो। पुत्रोत्पत्ति, देव-पूजा तथा पितृतर्पण तथा संन्यासग्रहण किये बिना ही तुम कैसे उस स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छा कर रहे हो।

हे पुत्र! इस अन्यायसे तुमको मात्र कष्ट ही प्राप्त होगा।

इससे तो मरनेके बाद तुम्हें नरककी प्राप्ति होगी और दूसरे जन्ममें भी क्लेश ही होगा।

रुचिने पितृजनोंसे कहा—जीवनमें परिग्रह (ग्रहण करना) अत्यन्त दुःख-भोग, पाप-संग्रह एवं अन्तकालमें अधोगति प्रदान करनेके लिये होता है। ऐसा विचार करके ही मैंने स्त्रीपरिग्रह (विवाह) नहीं किया है। क्षणमात्र विचार करनेसे ही अपने अन्तःकरणमें विद्यमान संशय—संदेहको दूर करनेका उपाय किया जा सकता है। परिग्रह उस मुक्तिका कारण नहीं हो सकता है। जो निष्परिग्रह-व्यक्ति प्रतिदिन विद्याके सद्-ज्ञानोपार्जनरूपी जलद्वारा अपने आत्माको निर्मल करता है, मेरे लिये तो वही श्रेष्ठ है। विद्वानोंने अनेक प्रकारके सांसारिक कर्मरूपी पंकिलचिह्नोंका वर्णन किया है। अतएव जितेन्द्रिय पुरुषोंको तत्त्वज्ञानरूपी जलसे आत्माका प्रक्षालन करना चाहिये।

पितरोंने कहा—'हे वत्स! जितेन्द्रियजनोंके द्वारा आत्माका प्रक्षालन करना चाहिये'—ऐसा तुम्हारा कहना

उचित ही है, किंतु यह कल्याणका मार्ग नहीं है, जिसके ऊपर तुम चल रहे हो। पञ्चयज्ञ, तप तथा दानके द्वारा अपने अमङ्गलको दूर करते हुए फलप्राप्तिकी कामनासे रहित किये हुए जो शुभ और अशुभ कर्म हैं, वे बन्धनके हेतु नहीं होते और जो पूर्वका कर्म है, वह भोगसे नष्ट होता है।

प्रारब्धका जो पुण्यापुण्य कर्म है, वह सुख-दुःखात्मक भोग भोगनेसे निरन्तर नष्ट होता रहता है। इस प्रकार विद्वज्जनोंके द्वारा अपनी आत्माका प्रक्षालन होता रहता है और कर्मबन्धनसे उसकी रक्षा की जाती है। अपने विवेकसे रक्षित आत्मा पापरूपी पंकसे लिप्त नहीं होता।

रुचिने कहा—हे पितामह आदि पितृगण! वेदमें कर्म-मार्गके प्रतिपादनके द्वारा अविद्या—मायाकी परिपुष्टि की गयी है। इसलिये आप सब कैसे मुझे उसी मार्गमें चलनेके लिये प्रवृत्त कर रहे हैं।

पितरोंने कहा—'कर्मके द्वारा जो कुछ किया जाता है, वह सब अविद्या है'—ऐसा जो तुम्हारा कहना है, वह असत्य वचन नहीं है; किंतु विद्याकी सम्यक्-प्राप्तिमें भी तो कर्म ही हेतु है। शास्त्र-प्रतिपादित जो विहित कर्म हैं, सज्जन पुरुष उनका उल्लंघन नहीं करते। उन्हें उसीसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। विहित कर्मका अनुष्ठान न करना अधोगति-प्रदायक है। हे वत्स! 'मैं अपरिग्रहादिके द्वारा आत्मप्रक्षालन कर रहा हूँ', ऐसा तुम उचित मानते हो, किंतु शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान न करनेसे उत्पन्न पापोंके द्वारा भी तुम स्वयं अपनेको जला रहे हो।

अविद्या भी विषके समान मनुष्योंका उपकार करनेके लिये ही होती है। जिस प्रकार विषका यथोचित उपयोग करनेसे प्राणीका कल्याण होता है, उसी प्रकार समुचित रूपसे अविद्यारूप विहित कर्मका अनुष्ठान करनेसे कर्ताका हित ही होगा। वह भवबन्धनके लिये नहीं, अपितु मोक्षके लिये है।

हे पुत्र! इस कारण तुम विधिपूर्वक दार-परिग्रह अर्थात् अपना विवाह करो। लौकिक कर्मोंका सम्यक् रीतिसे अनुष्ठान न करनेसे तुम आजन्म विफलताको ही प्राप्त करोगे।

रुचिने कहा—हे पितृगण! अब तो मैं वृद्ध हो गया हूँ। कौन मुझे अपनी कन्या प्रदान करेगा? वैसे भी मुझ-जैसे अकिञ्चन व्यक्तिके लिये दार-परिग्रह अर्थात् विवाह करना अत्यन्त कष्टसाध्य है।

पितरोंने कहा—हे वत्स! यदि तुम हमारे वचनका अनुपालन नहीं करते हो तो निश्चित ही हम सभी पितरोंका पतन होगा और तुम्हारी अधोगति होगी।

हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहकर उस प्रजापति रुचिके सभी पितृगण देखते-ही-देखते वायुवेगके झोंकोंसे बुझे हुए दीपकोंके समान सहसा अदृश्य हो गये। (अध्याय ८८)

रुचिद्वारा की गयी पितृस्तुति तथा श्राद्धमें इस पितृस्तुतिके पाठका माहात्म्य

पितृजनोंके द्वारा उस प्रकारके वाक्यको सुनकर वे ब्रह्मर्षि रुचि मन-ही-मन अत्यधिक व्याकुल हो उठे और कन्या प्राप्त करनेकी इच्छासे पृथिवीलोकमें विचरने लगे, किंतु उन्हें कोई कन्या प्राप्त न हो सकी। अतएव पितरोंके उक्त वचनरूपी अग्निसे संतप्त हुए वे अतिशय चिन्ताग्रस्त होकर व्यग्र-मनसे इस प्रकार सोचने लगे—

'मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे पितृगणोंका और मेरा अभ्युदय करनेवाला वह स्त्री-परिग्रह (विवाह-संस्कार) किस प्रकार हो सकेगा?'

इस प्रकार चिन्तन करते हुए उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं कमलयोनि उन ब्रह्माको ही तपस्याके द्वारा प्रसन्न करता हूँ। तदनन्तर महात्मा रुचिने सौ दिव्य वर्षोंतक कठिन तप किया। वे तपस्याके लिये वनमें एक ही स्थानपर चिरकालतक अवस्थित रहे।

तत्पश्चात् जगत्पितामह ब्रह्माने दर्शन दिया और कहा

कि मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुम अपनी अभिलाषा प्रकट करो। तदनन्तर सम्पूर्ण संसारको गति प्रदान करनेवाले उन आराध्य-देव ब्रह्माको प्रणाम करके रुचिने पितृजनोंके कथनानुसार जो-जो उनकी अभिलाषा थी, उनसे निवेदन किया।

इसपर ब्रह्माजीने कहा—हे विप्र! तुम प्रजापति होओगे। तुम्हारे द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि होगी। प्रजारूपी पुत्रोंकी उत्पत्ति करके ही तुम पितृजनोंके लिये श्राद्ध एवं पिण्डदानादिको सम्पन्न करनेके पश्चात् साधिकार उक्त कामनाकी सिद्धि प्राप्त कर सकोगे। अतः तुम्हारे पितरोंके द्वारा उचित ही कहा गया है कि 'तुम स्त्री-परिग्रह करो।' इस अभिलाषाको भलीभाँति ध्यानमें रखते हुए तुम्हें पितरोंकी ही पूजा करनी चाहिये। प्रसन्न होकर वे ही पितृगण तुम्हारी इस कामनाको पूर्ण करेंगे। सम्यक् पूजासे संतुष्ट हुए पितामहादि पितृगण स्त्री-पुत्र आदि क्या नहीं दे सकते।

ब्रह्माजीका इस प्रकारका वचन सुनकर ऋषि रुचिने नदीके एकान्त तटपर पहुँच करके अपने पितरोंका तर्पण-कर उन्हें संतृप्त किया। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक वे इन स्तुतियोंके द्वारा पितरोंकी आराधना करने लगे[1]—

रुचि बोले—जो अधिदेवताके रूपमें विद्यमान रहते हैं और जो श्राद्धके अवसरपर देवताओंसे, स्वधाद्वारा तृप्त किये जाते हैं, मैं उन पितृगणोंको नमस्कार करता हूँ। स्वर्गमें भी अवस्थित महर्षिगण भुक्ति और मुक्तिकी कामनासे मानसिक श्राद्धके द्वारा जिनको भक्तिपूर्वक तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ।

स्वर्गमें सिद्धजन श्राद्धके सुअवसरोंपर सभी दिव्य उत्तम उपहारोंके द्वारा जिन पितरोंको भलीभाँति संतुष्ट करते हैं, उन पितरोंको मेरा नमन है। गुह्यकजन स्वर्गमें आत्यन्तिकी श्रेष्ठ ऋद्धिकी कामनासे भक्तिपूर्वक तन्मय-

---

१-रुचिरुवाच

नमस्येऽहं पितॄन् भक्त्या ये वसन्त्यधिदेवतम्। देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये श्राद्धेषु स्वधोत्तरैः॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः। श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे सिद्धाः संतर्पयन्ति यान्। श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः॥
नमस्येऽहं पितॄन् भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैर्दिवि। तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम्॥
नमस्येऽहं पितॄन् मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा। श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकपुष्टिप्रदायिनः॥
नमस्येऽहं पितॄन् विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा। वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः॥
नमस्येऽहं पितॄन् ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः। वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकल्मषैः॥
नमस्येऽहं पितॄन् विप्रैर्नैष्ठिकैर्धर्मचारिभिः। ये संयतात्मभिर्नित्यं संतर्प्यन्ते समाधिभिः॥
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धै राजन्यास्तर्पयन्ति यान्। कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकद्वयफलप्रदान्॥

भावसे जिन पितरोंका पूजन करते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ। पृथिवीपर मनुष्योंके द्वारा श्राद्धोंमें सदैव जिनकी पूजा होती है, जो श्रद्धापूर्वक स्वजनोंसे पूजित होकर अभीष्ट लोक प्रदान करते हैं, मैं उन पितृगणोंको प्रणाम करता हूँ। इस पृथिवीपर ब्राह्मणजन वाञ्छित अभीष्ट लाभके लिये प्राजापत्यलोक प्रदान करनेवाले जिन पितरोंकी सदैव पूजा

नमस्येऽहं पितॄन् वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ॥
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धे शूद्रैरपि च भक्तितः । संतर्प्यन्ते जगत्कृत्स्नं नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ॥
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धे पाताले ये महासुरैः । संतर्प्यन्ते सुधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले । भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः ॥
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैः सर्पैः संतर्पितान् सदा । तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥
पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद् ये देवलोकेऽथ महीतले वा । तथान्तरिक्षे च सुरारिपूज्यास्ते वै प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥
पितॄन्नमस्ये परमार्थभूता ये वै विमाने निवसन्त्यमूर्ताः । यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥
पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ । प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् । सुरत्वमिन्द्रत्वमितोऽधिकं वा गजाश्वरत्नानि महागृहाणि ॥
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति । तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥
येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः । ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ॥
ये खड्गमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च । कालेन शाकेन महर्षिवर्यैः संप्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥
कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषां मम पूजितानाम् । तेषां च सांनिध्यमिहास्तु पुष्पगन्धाम्बुभोज्येषु मया कृतेषु ॥
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु । ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तुष्टिम् ॥
पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां ज्वलनार्कवर्णाः । तथा विशां ये कनकावदाता नीलीप्रभाः शूद्रजनस्य ये च ॥
तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगन्धधूपाम्बुभोज्यादिनिवेदनेन । तथाग्निहोमेन च यान्ति तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥
ये देवपूर्वाण्यभितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहृतानि । तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥
रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान् निर्णाशयन्तु त्वशिवं प्रजानाम् । आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा । व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया ॥
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् । तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां मे पितरः सदा ।
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः ॥
रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः । सर्वतः पितरो रक्षां कुर्वन्तु मम नित्यशः ॥
विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः । भूतिदो भूतिकृद् भूतिः पितॄणां ये गणा नव ॥
कल्याणः कल्यदः कर्ता कल्यः कल्यतराश्रयः । कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः ॥
वरो वरेण्यो वरदस्तुष्टिदः पुष्टिदस्तथा । विश्वपाता तथा धाता सप्तैते च गणाः स्मृताः ॥
महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः । गणाः पञ्च तथैवैते पितॄणां पापनाशनाः ॥
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः । पितॄणां कथ्यते चैव तथा गणचतुष्टयम् ॥
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् । त एवात्र पितृगणास्तुष्यन्तु च मदाहितात् ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः । प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः ॥
तद्दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समाच्छाद्य स्थितं जगत् । जानुभ्यामवनीं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ॥

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् । नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥
इन्द्रादीनां च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा । सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ॥
मन्वादीनां च नेतारः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा । तान्नमस्याम्यहं सर्वान् पितॄनप्युदधावपि ॥
नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा । द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च । योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु । स्वायम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्तिधरांस्तथा । नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥
अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् । अग्निसोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ॥
ये च तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्तयः । जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः । नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं स्तुतास्ततस्तेन तेजसो मुनिसत्तमाः । निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश ॥
निवेदनं च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् । तद्भूषितानथ स तान् ददृशे पुरतः स्थितान् ॥
प्रणिपत्य रुचिर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ॥ (८९।१३—६३)

करते हैं, मैं उन सभीको नमन करता हूँ।

तपके द्वारा निर्धूतकल्मष, संयत आहार करनेवाले अरण्यवासी मुनियोंके द्वारा वनमें उत्पन्न पदार्थोंके माध्यमसे किये गये श्राद्धद्वारा जिन पितरोंको तृप्ति प्रदान की जाती है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। नैष्ठिक धर्मचारी, जितेन्द्रिय एवं समाधिस्थ ब्राह्मणोंके द्वारा जो विधिवत् नित्य संतृप्त किये जाते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। क्षत्रियगण इस लोक तथा स्वर्गलोकका फल प्रदान करनेवाले जिन पितृगणोंको श्राद्धमें प्रदत्त कव्य-पदार्थोंसे संतुष्ट करते हैं, उन सभी पितरोंको मेरा नमन है। स्वकर्मनिरत वैश्यगण पृथ्वीपर सदा जल, पुष्प, धूप तथा अन्नादिके द्वारा जिनकी अर्चना करते हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करता हूँ। शूद्रगण इस भूतलपर भक्तिपूर्वक श्राद्धमें जिन समस्त लोकको संतृप्त करते हैं, मैं ऐसे सुकालिन् नामसे विख्यात पितरोंको प्रणाम करता हूँ।

पाताललोकमें रहनेवाले असुरगण अपने दम्भ एवं अहंकारका परित्यागकर श्राद्धमें जिन अमृतपान करनेवाले पितरोंको तृप्ति प्रदान करते हैं, मैं उन सभी पितृजनोंको नमन करता हूँ। रसातलमें अवस्थित नागगण अपनी मनोवाञ्छित कामनाओंको पूर्ण करनेकी अभिलाषाओंसे प्रेरित होकर विधिपूर्वक श्राद्धमें प्रदत्त भोग-पदार्थोंके द्वारा जिन पितृगणोंकी पूजा करते हैं, मैं उन पितरोंको नमस्कार करता हूँ। रसातलमें स्थित सर्पगण भी विधिवत् मन्त्रोच्चारके साथ प्रदान किये गये भोग-पदार्थोंसे समन्वित श्राद्धके द्वारा जिन पितृगणोंकी अर्चना करते हैं, मैं उन सभीको प्रणाम करता हूँ। जो देवलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथिवीलोकमें प्रत्यक्षरूपसे निवास करते हैं, देवताओं तथा दैत्योंके भी जो पूज्य हैं, ऐसे उन पितृजनोंको मैं नमन करता हूँ। वे मेरे द्वारा निवेदित वस्तुओंको प्राप्त करें।

जो परमार्थ अर्थात् दूसरेका हित करनेके लिये पितृयोनिमें रहकर भी अमूर्तरूपसे विमानमें विद्यमान रहते हैं, श्रेष्ठ योगीजन कष्टोंसे मुक्ति प्रदान करनेवाले जिन पितृजनोंकी पूजा अपने निर्मल मनसे करते हैं, मैं उन पितरोंको नमस्कार करता हूँ। जो स्वर्गमें मूर्तिमान् होकर निवास करते हैं एवं स्वधाभोजी हैं, जो सभी अभिलषित जनोंको उनकी इच्छित कामनाओंका फल प्रदान करनेमें समर्थ हैं और जो निष्काम-जनोंकी मुक्तिके कारण हैं, मैं उन पितरोंको प्रणाम करता हूँ।

जो इच्छुकजनोंके अभीष्टको इसी लोकमें सिद्ध कर देते हैं तथा देवत्व, इन्द्रत्व और उससे भी अधिक श्रेष्ठ पद अथवा हाथी, घोड़े, रत्न और उत्तम प्रकारके भवन प्रदान करनेमें सक्षम हैं, वे समस्त पितृजन मेरी इस प्रार्थनासे संतुष्ट हों। जो चन्द्ररश्मि, सूर्यमण्डल और स्वच्छ विमानमें सदा निवास करते हैं, वे पितृजन इस पूजामें हमारे द्वारा प्रदत्त अन्न, जल, गन्धादिके द्वारा संतुष्ट हों और शक्तिवान् बनें।

अग्निमें प्रदान की गयी हविष्यकी आहुतिसे जिन्हें संतुष्टि प्राप्त होती है, जो ब्राह्मणके शरीरमें प्रविष्ट होकर श्राद्ध-भोजन करते हैं, जो पिण्डदान देनेसे प्रसन्न होते हैं, वे सभी पितृगण हमारी इस पूजामें प्रदान किये गये अन्न-जलसे संतुष्ट हों। जो काले-काले सुन्दर तिलोंद्वारा प्रसन्न होते हैं, जो महर्षिजनोंके द्वारा श्राद्धमें उस कालमें प्राप्त शाक-पातसे आनन्दित हो उठते हैं, वे पितृजन प्रसन्न हों।

मेरे उन पूज्य पितरोंके जो अतिशय प्रिय समस्त कव्य पदार्थ हैं, उन्हें उन सभी पदार्थोंकी प्राप्ति, इस पूजामें मेरे द्वारा प्रदान किये गये पुष्प, गन्ध, जल तथा पक्वान्न—भोज्य पदार्थोंमें ही हो जाय। इस भूलोकमें प्रतिदिन जो पितृगण श्रद्धावान् जनोंके द्वारा सम्पन्न की गयी पूजाको स्वीकार करते हैं, जो प्रत्येक मासकी अन्तिम तिथि तथा अष्टकाकालमें श्रद्धालुओंके पूज्य हैं और जिन पितृजनोंकी पूजा वर्षान्त एवं अभ्युदयकालमें होती है, वे सभी मेरे पितृगण इस श्राद्धमें संतुष्टि प्राप्त करें।

कुन्द-पुष्प तथा चन्द्रके समान स्वच्छ गौर वर्णकी कान्तिको धारण करनेवाले जो पितृजन ब्राह्मणोंके पूज्य हैं, देदीप्यमान सूर्यके समान वर्णवाले जिन पितरोंका पूजन क्षत्रियजन करते हैं, स्वर्णके समान कान्तिको धारण किये हुए जो पितृगण वैश्यवर्ण और नीली कान्तिसे सुशोभित जो पितृजन शूद्रवर्णके पूजनीय हैं, वे सभी इस पूजामें मेरे द्वारा निवेदित गन्ध, पुष्प, धूप, जल एवं भोज्यादि-पदार्थ तथा अग्निमें समर्पित आहुतिसे सदाके लिये तृप्ति प्राप्त करें। मैं उन सभी पितरोंको प्रणाम करता हूँ।

श्राद्धादिमें अपनी क्षुधाको पूर्णरूपसे संतुष्ट करनेके निमित्त जो पितृगण देवताओंके पूर्व ही श्रद्धालु व्यक्तियोंके द्वारा अर्पित कव्य-पदार्थोंको ग्रहण कर लेते हैं और संतुष्ट होकर जो अपने स्वजनोंके लिये ऐश्वर्योंकी सृष्टि करते हैं, मैं इस श्राद्धमें उन सभी पितरोंको प्रणाम करता हूँ। जो देवताओंके आदिपुरुष एवं देवराज इन्द्रसे भी पूजित हैं, वे राक्षस, भूत, वेताल, असुर तथा उग्र योनिवाले (हिंसक जीव-जन्तुओं)-का विनाश करके अपनी प्रजा (संतति)-की रक्षा करें। मैं उन पितरोंको प्रणाम करता हूँ।

जो अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप तथा सोमप नामक पितृगण हैं, वे सभी इस श्राद्धमें मेरे द्वारा संतृप्त होकर तृप्तिको प्राप्त करें। अग्निष्वात्त पितर मेरी पूर्व दिशाकी रक्षा करें। बर्हिषद् नामक पितृगण सर्वदा मेरी दक्षिण दिशाकी अभिरक्षा करें। आज्यप पितृजन पश्चिम दिशा तथा सोमप पितृगण उत्तर दिशाकी रक्षा करें। ये समस्त पितृजन राक्षस, भूत, पिशाच एवं असुरगणोंके कारण उत्पन्न दोषोंसे नित्य सब प्रकारसे हमारी रक्षा करें।

विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धान्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति नामक जो पितरोंके नौ गण हैं तथा कल्याण और कल्यद, कल्यकर्ता, कल्यतराश्रय, कल्यताहेतु एवं अनघ नामक जो पितरोंके छः गण कहे गये हैं और वर, वरेण्य, वरद, तुष्टिद, पुष्टिद, विश्वपाता एवं धाता नामसे विख्यात—ये सात गण तथा पितृगणोंके पापविनाशक जो महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल नामसे प्रसिद्ध—ये पाँच गण हैं, उन गणोंके ही साथ सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद नामक पितरोंका एक अन्य गण-चतुष्टय कहा गया है। इस प्रकार कुल मिलाकर उन पितरोंके एकतीस गण हो जाते हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् परिव्याप्त है। ये सभी पितृजन इस श्राद्धमें मेरे द्वारा प्रदत्त कव्यादिसे संतुष्ट हों।'

इस प्रकार उस रुचिकी स्तुतिसे पितर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उसी समय सहसा एक दिव्य तेजोराशि उत्पन्न हुई,

जो आकाशमण्डलको अपने तेजसे चतुर्दिक् परिव्याप्त कर रही थी। सम्पूर्ण विश्वको अपने तेजसे भलीभाँति आच्छादित करनेवाली उस तेजोराशिको देखकर रुचि पृथिवीपर घुटने टेककर पुनः इस स्तुतिका गान करने लगे—

रुचि बोले—'जो सर्वपूज्य, अमूर्त, देदीप्यमान तेजसे युक्त, ध्यानियोंके हृदयमें विराजमान रहनेवाले एवं दिव्य दृष्टिसे सम्पन्न पितृजन हैं, उन सभीको मैं नमस्कार करता हूँ। जो इन्द्रादि देवगण, दक्ष, मरीचि एवं सप्तर्षियों तथा अन्य श्रेष्ठजनोंके नायक और सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, उन पितरोंको मैं नमन करता हूँ। जो मनु आदि तथा सूर्य, चन्द्र एवं समुद्रके भी अधिनायक हैं, उन समस्त पितृगणोंको मैं प्रणाम करता हूँ। जो नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथिवीके नेता हैं, उन पितरोंको मैं हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।

मैं प्रजापति, कश्यप, सोम, वरुण और श्रेष्ठ योगीजनोंको सर्वदा हाथ जोड़कर नमन करता हूँ। मैं सातों लोकमें अवस्थित सप्तगणोंको प्रणाम करता हूँ। स्वयम्भू और योगचक्षुष् ब्रह्माको नमन करता हूँ। जो चन्द्रलोकको भूमिपर अवस्थित रहनेवाले एवं योगमूर्ति-स्वरूप हैं, ऐसे पितरोंको नमस्कार करता हूँ तथा इस जगत्के पितृदेव सोमको भी मैं नमन करता हूँ।

अग्नि ही जिनका रूप है—ऐसे पितरोंको मैं प्रणाम करता हूँ। उसी प्रकार जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व अग्नि-सोममय है, ऐसे पितरोंको भी नमस्कार करता हूँ। जो तेजमें विद्यमान रहते हैं, जो चन्द्र-सूर्य और अग्निकी प्रतिमूर्ति हैं, जो जगत्स्वरूप एवं ब्रह्मस्वरूप हैं—ऐसे उन योगपरायण समस्त पितरोंको संयतचित्तसे अवस्थित होकर मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। वे सभी स्वधाभुजी पितृजन प्रसन्न हों।'

मार्कण्डेयजीने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ क्रौञ्चुकि! रुचिके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये गये तेजःस्वरूप वे सभी पितृगण दसों दिशाओंको प्रतिभासित करते हुए प्रत्यक्ष प्रकट हो गये।

रुचिने जिन पुष्प, गन्ध और अनुलेप पदार्थका उन्हें निवेदन किया था, उन्हींसे विभूषित उन पितरोंको उन्होंने अपने समक्ष उपस्थित देखा।

रुचिने पुनः भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम निवेदन किया और 'पृथक्-पृथक्-रूपसे आप सभीको नमन है,

नमन है'—ऐसा आदरपूर्वक कहा—

प्रसन्न होकर उन पितृजनोंने उन मुनिश्रेष्ठ रुचिसे 'वर माँगो'—ऐसा कहा। नतमस्तक रुचिने उन पितरोंसे कहा—

रुचिने कहा—हे पितृदेव! ब्रह्माने प्रजाओंकी सृष्टि करनेके लिये मुझे आदेश दिया है। अतः मैं आपसे संतानोत्पादनमें समर्थ, श्रेष्ठ एवं दिव्य पत्नीकी कामना करता हूँ।

पितरोंने कहा—हे मुनिसत्तम! इसी स्थानपर आपको अभी इसी क्षण मनोरमा पत्नीकी प्राप्ति होगी, उसीसे आपको पुत्र होगा। हे रुचि! वह बुद्धिमान् मन्वन्तराधिप होकर आपके ही रौच्य इस नामसे तीनों लोकोंमें ख्याति प्राप्त करेगा। उसके भी अतिशय बलवान्, महापराक्रमशाली, महात्मा और पृथिवीका पालन करनेवाले बहुत-से पुत्र होंगे। आप भी प्रजापति होकर चार प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि करके अधिकार समाप्त होनेपर धर्मके तत्त्वज्ञानको प्राप्तकर सिद्धि प्राप्त करेंगे।

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस स्तुतिसे हम सभीको संतुष्ट करेगा, उससे प्रसन्न होकर हम लोग उसे उत्तम भोग, आत्मविषयक उत्तम ध्यान, आयु, आरोग्य तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करेंगे। अतः कामनाओंकी पूर्ति चाहनेवाले श्रद्धालुओंको निरन्तर इस स्तोत्रसे पितरोंकी स्तुति करनी चाहिये। जो मनुष्य श्राद्धमें भोजन कर रहे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके समक्ष भक्तिपूर्वक अत्यन्त प्रिय इस स्तोत्रका पाठ करेगा तो उस स्तवनको सुननेके प्रेमसे हम सबकी भी वहाँ उपस्थिति रहेगी। हम लोगोंकी उपस्थितिसे वह श्राद्ध अक्षय होगा, इसमें संदेह नहीं है[1]।

जिस श्राद्धमें इस स्तोत्रका पाठ किया जाता है, उस श्राद्धमें हमारी तृप्ति बारह वर्षतकके लिये हो जाती है। हेमन्त-ऋतुमें इस स्तोत्रका पाठ बारह वर्षपर्यन्त हमें संतृप्ति प्रदान करता है। शिशिर-ऋतुमें इस शुभ स्तोत्रका पाठ करनेसे चौबीस वर्षोंतक हमारी तृप्ति रहती है। वसन्त एवं ग्रीष्म-ऋतुमें सम्पन्न होनेवाले श्राद्ध-कर्मके अवसरपर इस स्तोत्रका पाठ हम लोगोंके लिये सोलह वर्षोंतक तृप्ति प्रदान करनेका साधन होता है। हे रुचे! वर्षाकालके दिनोंमें इस स्तोत्र-पाठके साथ किया गया श्राद्ध हम सभीके लिये अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला होता है। शरत्कालमें सम्पादित श्राद्धके अवसरपर पठित यह स्तोत्र हम लोगोंको पंद्रहवर्षीय तृप्ति प्रदान करता है।

जिस घरमें लिखकर यह सम्पूर्ण स्तोत्र सदैव रखा रहता है, वहाँ श्राद्ध करनेपर हमारी उपस्थिति विद्यमान रहती है अर्थात् उस श्राद्धमें हम लोग उपस्थित रहते हैं। हे महाभाग! इसलिये श्राद्धमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके सामने हम लोगोंको तृप्ति प्रदान करनेवाले इस स्तोत्रको सुनाना चाहिये[2]। (अध्याय ८९)

१-स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः। तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मजं ध्यानमुत्तमम्॥
आयुरारोग्यमर्थं च पुत्रपौत्रादिकं तथा। वाञ्छद्भिः सततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः॥
श्राद्धेषु य इमं भक्त्या त्वस्मत्प्रीतिकरं स्तवम्। पठिष्यति द्विजाग्र्याणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः॥
स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्या संनिधाने परे कृते। अस्माभिरक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयम्॥ (८९। ७०—७३)

२-यस्मिन् गेहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा। संनिधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति॥
तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः। श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिकारकम्॥ (८९। ८२-८३)

प्रम्लोचा नामक अप्सराकी दिव्य कन्या मानिनीसे प्रजापति रुचिका विवाह

मार्कण्डेय मुनिने कहा—पितरोंकी कृपासे उसी समय उस नदीके मध्यसे ही रुचिके समीप प्रम्लोचा नामकी मनको प्रिय लगनेवाली कृशाङ्गी, सुन्दर श्रेष्ठ एक अप्सरा प्रकट हुई। उस श्रेष्ठ अप्सराने प्रिय एवं मधुर वाणीमें महात्मा रुचिसे कहा—हे तपस्विश्रेष्ठ! मेरी प्रसन्नतासे वरुणके पुत्र महात्मा पुष्करद्वारा मेरी एक अतिशय सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई है। मैं उस सुन्दर स्वरूपवाली मानिनी नामवाली कन्याको भार्याके रूपमें आपको प्रदान करती हूँ, आप उसे वरण करें, इस कन्यासे अतिशय बुद्धिमान् मनु नामक आपका पुत्र उत्पन्न होगा।

इसपर उस रुचिने 'ऐसा ही होगा।'—इस प्रकार कहा। ऐसा कहनेपर उस नदीके मध्य-जलसे मानिनी नामकी शरीरधारिणी एक दिव्य कन्या निकली।

उस नदीके तटपर मुनिश्रेष्ठ रुचिने अनेक महामुनियोंको बुलाकर विधिपूर्वक कन्याके साथ पाणिग्रहण किया। उस कन्यासे अतिशय पराक्रमी और महाद्युति तथा पिताके नामसे रौच्यके रूपमें विख्यात एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो रौच्य मन्वन्तरका अधिपति हुआ। (अध्याय ९०)

भगवान् विष्णुका अमूर्त ध्यान-स्वरूप

सूतजीने कहा—हे शौनक! स्वायम्भुव मनु आदि मुनिजन व्रत, यम, नियम, पूजा, ध्यान, स्तुति तथा जपमें निरत रहकर भगवान् हरिका ध्यान करते हैं। वे हरि देहेन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित हैं। वे आकाश, तेज, जल, वायु तथा पृथिवी नामक सभी पञ्चभूतोंसे असम्बद्ध हैं तथा उनके धर्मसे भी रहित हैं। वे सभी प्राणियोंके स्वामी, सबको आबद्धकर नियमन करनेवाले नियन्ता एवं इस जगत्‌के प्रभु हैं। वे चैतन्यरूप, सबके स्वामी और निराकार हैं। वे सभी आसक्तियोंसे रहित, सभी देवोंसे पूजित तथा महेश्वर हैं। वे तेज:स्वरूप तथा तीनों गुणोंसे भिन्न हैं। वे सभी रूपोंसे रहित एवं कर्तृत्वादिसे शून्य हैं।

वे वासनाविहीन, शुद्ध, सर्वदोषरहित, पिपासावर्जित तथा शोक-मोहादिसे दूर रहते हैं। वे हरि जरा-मरणसे रहित कूटस्थ तथा मोहवर्जित हैं। वे सृष्टि एवं प्रलयसे रहित एवं सत्यस्वरूप हैं, निष्कल परमेश्वर हैं। वे जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति आदि अवस्थाओंसे रहित तथा नामरहित हैं। वे जाग्रत् आदि अवस्थाओंके अध्यक्ष, शान्तस्वरूप देवाधिदेव हैं। वे जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें विद्यमान रहनेवाले हैं तथा नित्य हैं और कार्य-कारणभावसे रहित हैं।

वे सभीके द्वारा देखने योग्य, मूर्तस्वरूप, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर एवं सूक्ष्मतम हैं। वे ज्ञानदृष्टिवाले, कर्णेन्द्रियके लिये सुनने योग्य विज्ञान और परमानन्दस्वरूप हैं। वे संसारसे रहित तथा तैजससे भी वर्जित हैं। वे प्रकृष्ट ज्ञानसे अप्राप्य, तुरीयावस्थामें विद्यमान रहनेवाले परमाक्षरस्वरूप ब्रह्म हैं। वे सभीके रक्षक एवं सभीके हन्ता हैं। वे सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप हैं, बुद्धि और धर्मसे रहित हैं। वे हरि निराधार हैं। साक्षात् कल्याणस्वरूप शिव हैं। वे विकारहीन, वेदान्तियोंके द्वारा जानने योग्य, वेदरूप, इन्द्रियातीत, सर्वकल्याणप्रद, परमशुभ, भूतेश्वर, शब्द-रूप-रस-स्पर्श और गन्ध—इन पाँच तन्मात्राओंसे रहित अनादि ब्रह्म हैं। वे योगियोंके द्वारा सम्पुटित ब्रह्मरन्ध्रमें अवस्थित 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसे परिज्ञानमात्र हैं।

हे महादेव! इस प्रकार ज्ञान प्राप्तकर जितेन्द्रिय मनुष्यको उन हरिका ध्यान करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकारसे उन हरिका ध्यान करता है, वह निश्चित ही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। (अध्याय ९१)

भगवान् विष्णुका मूर्त ध्यान-स्वरूप

भगवान् हरिका मूर्त ध्यानरूप इस प्रकार है—वे विष्णु करोड़ों सूर्यके समान जयशील, अद्वितीय प्रभासम्पन्न, कुन्दपुष्प एवं गोदुग्ध-सदृश धवल-वर्ण हैं। मोक्ष चाहनेवाले मुनियोंको ऐसे श्रीहरिका ध्यान करना चाहिये। वे अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल शंख-समन्वित हैं। हजारों सूर्यके समान प्रचण्ड ज्वालाओंकी मालासे आवेष्टित, उग्ररूप, चक्रसे युक्त, शान्तस्वभाव और सुन्दर मुखमण्डलवाले वे विष्णु अपने हाथमें गदा धारण करते हैं।

वे रत्नोंसे देदीप्यमान बहुमूल्य किरीटसे युक्त सर्वत्रगामी देव कमलको धारण करते हैं। वे वनमालाको धारण करनेवाले तथा शुभ्र हैं, समान स्कन्धोंवाले तथा स्वर्णाभूषणको धारण करते हैं, वे शुद्ध वस्त्र धारण करनेवाले, विशुद्ध देहवाले और सुन्दर कान्तिवाले हैं तथा कमलपर विराजमान रहते हैं।

वे स्वर्णमय शरीरवाले विष्णु सुन्दर हार, शुभ अंगद (बाजूबंद), केयूर और वनमालासे अलंकृत हैं। वे श्रीवत्स कौस्तुभमणि धारण करनेवाले हैं एवं लक्ष्मीसे वन्दनीय और नेत्रद्वयसे शोभायमान हैं। वे अणिमादिक गुणोंसे समन्वित विष्णु जगत्‌के सृष्टिकर्ता और संहारक हैं।

वे मुनि, देव तथा दानव सभीके लिये ध्यानगम्य, अत्यन्त सुन्दर हैं। वे ब्रह्मादिसे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणिवर्गके हृदयमें विराजमान हैं। वे सनातन, अव्यय, सभीके ऊपर कृपालु, प्रभु-नारायण, देवाधिदेव तथा चमकते हुए मकराकृत कर्णकुण्डलोंसे सुशोभित हैं। वे दुःखविनाशक, पूजनीय, मङ्गलमय, दुष्टोंके संहारक, सर्वात्मा, सर्वस्वरूप, सर्वत्रगामी और ग्रहदोषोंके निवारक हैं।

वे देदीप्यमान नखोंसे समन्वित तथा सुन्दर-सुन्दर अँगुलियोंसे सम्पन्न, जगत्‌के शरणस्थल, सभीको सुख देनेवाले सौम्यस्वरूप महेश्वर हैं। वे समस्त अलंकारोंसे अलंकृत, सुन्दर चन्दनसे संलिप्त, सर्वदेवसमन्वित तथा सभी देवताओंका प्रिय करनेवाले हैं।

वे सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी, सर्वेश्वर एवं सभीकी भावनाओंमें विराजमान रहते हैं। वे सूर्यमण्डलसे अधिष्ठित देव, अग्नि और जलमें भी निवास करते हैं। वे वासुदेव जगत्‌के धाता और मुमुक्षुओंके ध्यान करने योग्य हैं। हे हर! इस लोकमें प्राणियोंके द्वारा 'मैं ही वासुदेव हूँ', इस प्रकार चिन्तनीय वे हरि आत्मस्वरूप हैं।

जो मनुष्य इस प्रकारके भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं, वे परमगति प्राप्त करते हैं। प्राचीन कालमें महर्षि याज्ञवल्क्यने ऐसे स्वरूपवाले उन देवेश्वरका ध्यान किया था, जिसके फलस्वरूप धर्मोपदेशकके कर्तृत्वको प्राप्त करके उन्होंने परमपद प्राप्त किया था। जो मनुष्य इस विष्णु-ध्यान नामक अध्यायका पाठ करता है, उसको भी परमगतिकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ९२)

वर्णधर्म-निरूपण

श्रीशिवजीने कहा—हे हरे! हे केशिहन्ता! हे माधव! महर्षि याज्ञवल्क्यजीने जिस धर्मका प्रतिपादन किया था, आप मुझको उसे सुनानेकी कृपा करें।

श्रीहरिने कहा—मिथिलापुरीमें विराजमान महर्षि याज्ञवल्क्यजीके पास पहुँचकर ऋषियोंने उनका अभिवादन किया और उनसे सभी वर्णोंके धर्मादिक कर्तव्योंको जाननेकी अपनी इच्छा प्रकट की। तत्पश्चात् वे जितेन्द्रिय महामुनि सर्वप्रथम भगवान् विष्णुका ध्यान करके उन सभी ऋषियोंसे धर्मसम्बन्धित विषयका वर्णन करने लगे।

याज्ञवल्क्यजीने कहा—जिस देशमें कृष्णसार नामक मृग विचरण करते हैं, मैं उस देशके धर्मादिक विषयोंका वर्णन करता हूँ, आप सब सुनें।

पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष्‌के सहित चार वेद—ये धर्म तथा चौदह विद्याओंके स्थान हैं। मनु, विष्णु, यम, अङ्गिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, व्यास, कात्यायन, बृहस्पति, गौतम, शंख-लिखित, हारीत और अत्रिके साथ मैं स्वयं—हम सब भगवान् विष्णुका ध्यान करके धर्मोपदेशक हुए।

धर्मका अर्थ है—पुण्य। पुण्यकी उत्पत्तिके हेतु हैं—

शास्त्रविहित देशमें, शास्त्रविहित कालमें, शास्त्रविहित उपायसे श्रद्धापूर्वक योग्य पात्र (विद्या एवं तपसे समृद्ध ब्राह्मण)-को दिया गया दान तथा इसके अतिरिक्त अन्य सभी शास्त्रोक्त कर्म। इन्हें अलग-अलग तथा समूहरूपमें धर्म (पुण्य)-का उत्पादक समझना चाहिये। धर्मके उत्पादक इन हेतुओंका मुख्य फल (परम धर्म) योग (चित्तवृत्तिनिरोध)-के द्वारा आत्मदर्शन (आत्माका साक्षात्कार) ही है। इस आत्मदर्शनरूप परम धर्मके लिये देश आदिका कोई नियम नहीं है। चित्तवृत्तिनिरोध (योग) होनेसे यह होता ही है। चित्तवृत्तिनिरोधके लिये विहित उपायोंके अनुष्ठानकी सम्पन्नतामें देश आदिका नियम आवश्यक है। अभी धर्मके उत्पादक जिन हेतुओंका निर्देश किया गया है, उनके बारेमें संदेह होनेपर निर्णय प्राप्त करनेके लिये परिषद् (धर्मसभा)-का सहयोग लेना चाहिये। यह परिषद् वेदों एवं धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता चार ब्राह्मणोंकी अथवा तीन ब्राह्मणोंकी होती है। इस परिषद्का निर्णय धर्मके सम्बन्धमें मान्य होता है। ब्रह्मवेत्ता—वेद एवं धर्मशास्त्रका विज्ञ एक ब्राह्मण भी धर्मके विषयमें उत्पन्न संदेहका निराकरण कर सकता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं। इनमें प्रारम्भके तीन वर्ण द्विज कहलाते हैं। गर्भाधानसे लेकर श्मशानपर्यन्त ऐसे द्विजोंकी समस्त क्रियाएँ मन्त्रोंके द्वारा होती हैं।

गर्भाधान-संस्कार ऋतुकालमें[1] होता है। गर्भस्पन्दन होनेसे पूर्व ही पुंसवन-संस्कार किया जाता है। गर्भाधानके छठे अथवा आठवें मासमें सीमन्तोन्नयन-संस्कार होता है। संतानोत्पत्तिके बाद जातकर्म और ग्यारहवें दिन नामकरण-संस्कार करनेका विधान है। चतुर्थ मासमें निष्क्रमण तथा छठे मासमें अन्नप्राशन-संस्कार करना चाहिये। उसके बाद कुल-परम्पराके अनुसार चूडाकरण नामक संस्कार करनेका विधान है।

इस प्रकार संतानके लिये विहित उक्त संस्कारोंको करनेसे बीज (शुक्र) तथा गर्भ (शोणित)-के कारण उत्पन्न हुए सभी पाप शान्त हो जाते हैं। स्त्रियोंकी ये सभी क्रियाएँ (संस्कार) अमन्त्रक होती हैं और विवाह-संस्कार समन्त्रक होता है। (अध्याय ९३)

वर्णधर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—गर्भधारण अथवा जन्म-ग्रहणके आठवें वर्षमें ब्राह्मण, ग्यारहवें वर्षमें क्षत्रिय तथा बारहवें वर्षमें वैश्यका उपनयन-संस्कार गुरु करे अथवा कुल-परम्पराके अनुसार करे। गुरु इस उपनीत शिष्यको महाव्याहृतियोंके सहित वेद पढ़ाये और शौचाचारकी शिक्षा प्रदान करे।

द्विजोंको दिन और संध्याकालमें उत्तराभिमुख तथा रात्रिके समय दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्रका परित्याग करना चाहिये। तदनन्तर मिट्टीसे एवं जलसे[2] मल-मूत्रके गन्ध एवं लेपका निवारण जबतक न हो, तबतक इन्द्रियोंका परिमार्जन करे।

तत्पश्चात् शुद्ध स्थानमें आकर दोनों पाँवोंको भलीभाँति धोकर दोनों जानुओंके मध्य अपने हाथोंको अवस्थित करके उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख बैठे और दाहिने हाथमें स्थित ब्राह्मतीर्थ (अर्थात् अंगुष्ठका मूल स्थान)-से आचमन करे। कनिष्ठा, तर्जनी एवं अंगुष्ठ अंगुलिके मूल स्थान तथा हाथके अग्रभागमें क्रमशः प्रजापतितीर्थ, पितृतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ और देवतीर्थका अधिष्ठान होता है।

कूप एवं तड़ागादिके शुद्ध जलसे तीन बार आचमन करके अंगुष्ठमूलसे दो बार ओठोंका मार्जन करना चाहिये। द्विजातियोंको चाहिये कि वे फेन और बुद्बुदोंसे रहित प्रकृतिद्वारा प्रदत्त शुद्ध-स्वाभाविक जलसे अपनी इन्द्रियोंका स्पर्श यथाविधि करें। हृदय, कण्ठ एवं तालुतक पहुँचनेवाले जलसे ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य आचमन करके शुद्ध होते हैं। स्त्री एवं शूद्रकी तालुतक पहुँचनेवाले शुद्ध

१-स्त्रियोंका वह काल-विशेष ऋतुकाल है, जो गर्भ धारणके योग्य अवस्थाविशेषसे युक्त है। यह विशेष काल रजोदर्शनके दिनसे सोलह अहोरात्रका होता है। इन सोलह अहोरात्रोंमें प्रथम चार रात्रियाँ गर्भाधानके लिये वर्जित हैं; अतः इन चार रात्रियोंके बादकी बारह रात्रियाँ ही गर्भाधानके लिये विहित हैं।

२-कूप आदिसे बाहर निकाले गये जलके द्वारा शुद्धिका विधान है। जलके मध्य शौच आदि क्रिया निषिद्ध है।

जलसे एक बार आचमन करनेसे ही शुद्धि हो जाती है। जिनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, उनके लिये भी इसी प्रकार आचमनकी व्यवस्था है।

प्रातःस्नान, जलदैवत '**ॐ आपो हि ष्ठा०**' आदि मन्त्रोंसे मार्जन, प्राणायाम, सूर्योपस्थान एवं गायत्रीमन्त्रका जप प्रतिदिन अपने अधिकारके अनुसार यथाविधि करना चाहिये।

'**ॐ आपो ज्योती०**' आदि मन्त्र ही गायत्रीमन्त्रका शिरोभाग हैं। इस शिरोभागसे युक्त प्रतिमहाव्याहृति एक-एक बार प्रणव जोड़कर तीनों महाव्याहृतियोंके साथ गायत्रीमन्त्रका मानस-जप करते हुए मुख एवं नासिकामें संचरणशील वायुका नियमन करना ही प्राणायाम है।

प्राणायाम करनेके पश्चात् तीन बार जल देवताके मन्त्रसे प्रोक्षणकर प्रतिदिन सायंकाल नक्षत्रदर्शनतक पश्चिममुख बैठकर गायत्रीमन्त्रका जप करे। इसी प्रकार प्रातःकालकी संध्या करके पूर्वमुख होकर गायत्रीमन्त्रका जप करते हुए सूर्यदर्शनके समयतक स्थिर रहे। उन दोनों संध्याओंमें अपने गृह्यसूत्रके अनुसार अग्निहोत्र करे।

तदनन्तर 'मैं अमुक हूँ' इस प्रकार कहते हुए वृद्धजनों (गुरु आदि बड़े लोगों)-को प्रणाम करे। इसके बाद संयमी ब्रह्मचारी स्वाध्यायके लिये एकाग्रचित्त होकर गुरुकी सेवामें उनके अधीन सदा रहे। तत्पश्चात् गुरुके द्वारा बुलानेपर उनके पास जाकर अध्ययन करे (गुरुको स्वयं अध्यापनके लिये प्रेरित न करे) और भिक्षामें जो कुछ प्राप्त हो, उसे गुरुके चरणोंमें समर्पित करे। मन, वाणी और शरीरके द्वारा गुरुके हितकारी कार्योंमें सदा संलग्न रहे।

ब्रह्मचारीको दण्ड, मृगचर्म, यज्ञोपवीत और मूँजमेखलाका धारण यथाशीघ्र करना चाहिये तथा अपनी जीविकाके लिये अनिन्दित श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके घरसे भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भिक्षा ग्रहण करते समय ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य-वर्णके ब्रह्मचारीको क्रमशः आदिमें, मध्यमें तथा अन्तमें '**भवति**' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। इसके अनुसार '**भवति भिक्षां देहि**', '**भिक्षां भवति देहि**' और '**भिक्षां देहि भवति**'— इस प्रकार वाक्यप्रयोग यथाक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ब्रह्मचारीको करना विहित है। इस वाक्यका अर्थ है—आप भिक्षा दें। '**भवति**' यह माताओंके लिये सम्बोधन है।

अग्निकार्य (अग्निहोत्र) करके गुरुकी आज्ञासे विनयपूर्वक आपोऽशान[1]-क्रिया करके सम्मानके सहित उस भिक्षासे प्राप्त भोज्यान्नको बिना निन्दा किये ही मौन होकर ग्रहण करना चाहिये। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए आपत्तिरहित कालमें, रोग आदिके अभावमें अनेकका अन्न ग्रहण करे (एक घरका अन्न न ग्रहण करे)। अपने व्रतका संयमपूर्वक पालन करता हुआ ब्राह्मण ब्रह्मचारी श्राद्धमें आदरपूर्वक आहूत होनेपर इच्छानुसार भोजन कर सकता है, किंतु उसे श्राद्धकाल या अन्य अवसरोंमें मधु, मद्य, मांस अथवा उच्छिष्ट अन्न भोजनके रूपमें ग्रहण नहीं करना चाहिये।

जो विधि-विहित क्रियाओंको सम्पन्न कराके ब्रह्मचारीको वेदकी शिक्षा प्रदान करता है, वही 'गुरु' है। जो केवल यज्ञोपवीत-संस्कार कराके ब्रह्मचारीको वेदकी शिक्षा देता है, वह 'आचार्य' कहा गया है। जो वेदके एक देशका[2] अध्ययन कराता है, वह 'उपाध्याय' है। जो वरण लेकर यजमानके यज्ञको सम्पन्न करता है, उसे 'ऋत्विक्' कहा जाता है। यथाक्रम ये सभी—गुरु, आचार्य, उपाध्याय और ऋत्विक् ब्रह्मचारीके लिये मान्य हैं, किंतु इन सभीसे माता श्रेष्ठ है।

प्रत्येक वेदके अध्ययनके लिये बारह-बारह वर्षतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये। अशक्तावस्थामें प्रत्येक वेदके अध्ययनके लिये पाँच-पाँच वर्षतक भी ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया जा सकता है। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि वेदाध्ययन पूर्ण होनेतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन होना चाहिये। केशान्त[3]-संस्कार गर्भसे सोलहवें वर्षमें ब्राह्मणका, गर्भसे बाईसवें वर्षमें क्षत्रियका तथा गर्भसे चौबीसवें वर्षमें वैश्यका होना चाहिये।

१-भोजनके पूर्व तथा अन्तमें एक बार जलसे आचमन करना 'आपोऽशान-क्रिया' है। इसमें 'अमृतोपस्तरणमसि' इस वाक्यका प्रयोग विहित है।

२-मन्त्र एवं ब्राह्मणरूपमें वेदके दो भाग हैं। इनमेंसे केवल एक भागका अध्यापन अथवा वेदके अङ्गमात्रका अध्यापन वेदके एक देशका अध्यापन है।

३-केशान्त-संस्कारसे ही श्मश्रु (दाढ़ी) बनवानेका आरम्भ होता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णके लिये क्रमशः सोलह, बाईस और चौबीस वर्षतक उपनयनकाल रहता है। इस कालतक उपनयन न होनेपर ये सभी पतित हो जाते हैं, सर्वधर्मच्युत हो जाते हैं। उनका किसी भी धर्मकार्यमें अधिकार नहीं रहता। व्रात्यस्तोम नामके क्रतुका अनुष्ठान करके ही ये यज्ञोपवीत-संस्कारके लिये योग्य होते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य सबसे पहले माताके उदरसे उत्पन्न होते हैं, उसके बाद पुनः मौंजीबन्धन अर्थात् यज्ञोपवीत-संस्कारसे उनका द्वितीय जन्म होता है। अतः ये द्विजाति कहलाते हैं।

श्रौत-स्मार्त यज्ञ, तपस्या (चान्द्रायण आदि व्रत) और शुभकर्मों (उपनयन आदि संस्कारों)-का बोधक एकमात्र वेद है। अतः द्विजातियोंके लिये वेद ही परम कल्याणका साधन है। इससे वेदमूलक स्मृतियोंका भी उपयोग स्पष्ट है।

जो द्विज प्रतिदिन ऋग्वेदका अध्ययन करता है, वह देवताओंको मधु एवं दुग्धसे तथा पितरोंको मधु एवं घृतसे प्रतिदिन तृप्त करता है। जो द्विज प्रतिदिन यजुर्वेद, सामवेद अथवा अथर्ववेदका अध्ययन करता है, वह घृत एवं अमृतसे पितरों तथा देवताओंको प्रतिदिन तृप्त करता है। ऐसे ही जो द्विज प्रतिदिन वाकोवाक्य[1], पुराण, नाराशंसी[2], गाथिका[3], इतिहास[4] तथा विद्याका[5] अध्ययन करता है, वह पितरों एवं देवताओंको मांस (फल), दूध और ओदन (भात)-से प्रतिदिन तृप्त करता है। संतृप्त ये देवता और पितृजन भी इस स्वाध्यायशील द्विजको समस्त अभीष्ट शुभ फलोंसे संतुष्ट करते हैं। द्विज जिस-जिस यज्ञके प्रतिपादक वेद-भागका अध्ययन करता है, उस-उस यज्ञके फलको प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त भूमिदान, तपस्या और स्वाध्यायके फलका भी भागी होता है।

नैष्ठिक ब्रह्मचारीको अपने आचार्यके सांनिध्यमें रहना चाहिये। आचार्यके अभावमें आचार्यपुत्र और उसके अभावमें आचार्य-पत्नी तथा उसके भी अभावमें वैश्वानर-अग्निके आश्रयमें (अपनेद्वारा उपास्य अग्निकी शरणमें) रहना चाहिये। इस प्रकार अपने देहको क्षीण करता हुआ जितेन्द्रिय द्विज ब्रह्मचारी ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। उसका पुनः जन्म नहीं होता। (अध्याय ९४)

गृहस्थधर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे यतव्रत मुनियो! आप सभी अब गृहस्थाश्रमके धर्मोंका वर्णन सुनें।

(विद्याध्ययनकी समाप्तिके पश्चात्) गुरुको दक्षिणा प्रदान करके उन्हींकी अनुज्ञासे स्नानकर शिष्यको ब्रह्मचर्यव्रतकी समाप्ति करनी चाहिये। तदनन्तर वह सुलक्षणा, अत्यन्त सुन्दर मनोरमा, असपिण्डा, अवस्थामें छोटी, अरोगा, भ्रातृमती, भिन्न प्रवर एवं गोत्रवाली कन्यासे विवाह करे।

सभी असपिण्डा कन्याको विवाहयोग्य बताया गया है। इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि सपिण्डा कन्यासे विवाह नहीं करना चाहिये। महर्षि याज्ञवल्क्यने यहाँ सपिण्डाके बारेमें यह बताया है—मातासे लेकर उनके पिता, पितामह आदिकी गणनामें पाँचवीं परम्परातक तथा पितासे लेकर उनके पिता, पितामह आदिकी गणनामें सातवीं परम्परातक सपिण्ड्य समझना चाहिये। इसके मध्यमें आनेवाली कन्या सपिण्ड्य तथा इसके मध्यमें न आनेवाली कन्या असपिण्डा होगी। इसके अनुसार विवाहके लिये असपिण्डा कन्याका चयन होना चाहिये। ऐसे ही उसी कन्यासे विवाह उचित है, जिसका मातृकुल तथा पितृकुलमें पाँच-पाँच परम्परातक सदाचार, अध्ययन एवं पुत्र-पौत्रादिकी समृद्धिकी दृष्टिसे विख्यात हो। ऐसे ही कन्याके लिये समानवर्णमें उत्पन्न श्रोत्रिय एवं विद्वान् पुरुष श्रेष्ठ होता है। अन्य विद्वानोंने जो यह कहा है कि द्विजातियोंके लिये शूद्रकुलमें उत्पन्न हुई कन्या भी ग्रहण करने योग्य होती है, यह मेरा अभिमत नहीं है, क्योंकि उस कन्यामें उससे विवाह करनेवाला उसका पति ही स्वयं उत्पन्न होता है[6]। तीनों वर्ण तीन, दो, एक इस क्रमसे वर्णोंमें विवाह कर सकते हैं। शूद्र-वर्णको

१-वाकोवाक्य—प्रश्नोत्तररूप वेद-वाक्य। २-नाराशंसी—रुद्रदैवत्य मन्त्र। ३-गाथिका—यज्ञ-सम्बन्धी इन्द्र आदिकी गाथाएँ। ४-इतिहास—महाभारत आदि। ५-विद्या—वारुणी आदि विभिन्न विद्याएँ। ६-'आत्मा वै जायते पुत्रः' के अनुसार पिता ही पुत्रके रूपमें जन्म लेता है।

अपने ही वर्णसे कन्या प्राप्त करनी चाहिये।

अपने घरपर वरको बुलाकर उसे यथाशक्ति अलंकृत अपनी कन्या प्रदान करना 'ब्राह्मविवाह' है। इस विधिसे विवाहित स्त्री-पुरुषसे उत्पन्न होनेवाली संतान दोनों कुलोंके इक्कीस पीढ़ियोंको पवित्र करती है। यज्ञदीक्षित ऋत्विक् ब्राह्मणको अपनी कन्या देना 'दैवविवाह' है तथा वरसे एक जोड़ा गौ[1] (स्त्री गौ एवं पुरुष गौ) लेकर उसको कन्या प्रदान करना 'आर्षविवाह' कहा जाता है। इस प्रथम (ब्राह्मविवाह) विधिसे विवाहित स्त्री-पुरुषसे उत्पन्न पुत्र अपनी प्रथमकी सात तथा बादकी सात—इस तरह चौदह पीढ़ियोंको पवित्र करता है। आर्षविधिके विवाहसे उत्पन्न पुत्र तीन पूर्व तथा तीन बादकी—इस तरह छः पीढ़ियोंको पवित्र करता है।

'तुम इस कन्याके साथ धर्मका आचरण करो'—यह कहकर विवाहकी इच्छा रखनेवाले वरको पिताके द्वारा जब कन्या प्रदान की जाती है, तब ऐसे विवाहको 'काय (प्राजापत्य)-विवाह' कहते हैं। इस विवाह-विधिसे उत्पन्न पुत्र अपनेसहित पूर्वकी छः तथा बादकी छः पीढ़ियों—इस तरह कुल तेरह पीढ़ियोंको पवित्र करता है। कन्याके पिता या बन्धु-बान्धव अथवा कन्याको ही यथाशक्ति धन देकर यदि कोई वर उससे विवाह करता है तो इस विवाहको 'असुरविवाह' और वर एवं कन्याके बीच पहले ही पारस्परिक सहमति हो जानेके बाद जो विवाह होता है, उसको 'गान्धर्वविवाह' कहते हैं। कन्याकी इच्छा नहीं है, तब भी बलात् युद्ध आदिके द्वारा अपहृत उस कन्याके साथ विवाह करना 'राक्षसविवाह' है। स्वाप (शयन) आदि अवस्थामें अपहरणकर उसके साथ जो विवाह किया जाता है, उसको 'पैशाचविवाह' कहते हैं।

इन उपर्युक्त आठ विवाहोंमें प्रथम चार प्रकारके विवाह अर्थात् ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्यविवाह ब्राह्मणवर्णके लिये उपयुक्त हैं। गान्धर्वविवाह तथा राक्षसविवाह क्षत्रिय-वर्णके लिये उचित है। असुरविवाह वैश्यवर्ण और अन्तिम गर्हित पैशाच नामक विवाह शूद्रवर्णके लिये (उचित) माना गया है।

समान वर्णवाले वर-कन्याके विवाहमें कन्याओंके द्वारा गृह्यसूत्रकी विधिके अनुसार वरका पाणिग्रहण अर्थात् हाथ पकड़ना चाहिये। क्षत्रियकन्या ब्राह्मणवरसे विवाह करते समय ब्राह्मणवरके दाहिने हाथमें विद्यमान शर (बाण)-के एकदेशको ग्रहण करे। वैश्यकन्या ब्राह्मण अथवा क्षत्रियवरसे विवाह करते समय वरके हाथमें विद्यमान चाबुकके एकदेशको ग्रहण करे। ऐसे ही शूद्रकन्या ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यवरसे विवाह करते समय वरके उत्तरीय वस्त्र (ऊपर ओढ़े हुए चादर)-के किनारेको ग्रहण करे[2]।

पिता, पितामह, भ्राता, सकुल्य[3] (बन्धु-बान्धव) अथवा माता कन्यादान करनेके अधिकारी हैं। पूर्वके अभावमें उत्तरोत्तर कन्यादानके अधिकारी हैं, यदि उन्माद आदि दोषसे ग्रस्त नहीं हैं। यदि कन्यादानका अधिकारी समयपर कन्यादान न करे तो कन्याके ऋतुमती हो जानेपर कन्यादानके अधिकारीको कन्याके प्रति ऋतुकालमें एक-एक भ्रूणहत्याका पाप लगता है। कन्यादानके दाताके अभावमें कन्याको स्वयं उपयुक्त वरका वरण कर लेना चाहिये।

कन्या एक बार दी जाती है, इसलिये कन्या एक बार देकर पुनः उसका अपहरण करनेवाला चौरकर्मके समान दण्डका भागी होता है। निर्दुष्ट अर्थात् सौम्य सुशीला पत्नीका परित्याग करनेपर पति दण्डनीय है, किंतु अत्यन्त दुष्ट (महापातक आदिसे दुष्ट) पत्नीका उपायान्तरके अभावमें परित्याग किया जा सकता है।

यदि कन्याका किसी वरके साथ विवाह करनेके लिये वाग्दानमात्र किया गया हो, अनन्तर विवाहके पूर्व ही वरका मरण हो गया तो कलियुगसे अन्य युगोंमें ऐसी कन्याको पुत्र प्राप्त करनेका उपाय यह है—ऐसी कन्या पुत्र चाहती है तो उसका देवर अथवा कोई सपिण्ड या कोई सगोत्र बड़ोंकी आज्ञा प्राप्त होनेपर अपने सभी अङ्गोंमें घृतलेप कर

१-कन्याका पिता वरसे गौका जोड़ा मूल्यके रूपमें नहीं लेता। आवश्यकतावश धर्मकार्य (याग आदि) सम्पन्न करनेके लिये होता है। इसीलिये मनुस्मृति (३। २९)-के अनुसार जितनासे धर्मकार्य हो सके, उतना ही (एक ही गौ या गौका जोड़ा) कन्या-पिताको वरसे लेना चाहिये।

२-दूसरे वर्णसे विवाह करनेकी यह व्यवस्था कलियुगके लिये नहीं है।

३-सकुल्य—आठवीं पीढ़ीसे दसवीं पीढ़ीतक 'सकुल्य' कहा जाता है।

ऋतुकालमात्रमें उस कन्याके पास तबतक जा सकता है, जबतक गर्भ-धारण न हो। गर्भ-धारणके बाद यदि वह ऐसी कन्याके पास जाता है तो पतित हो जाता है। इस विधिसे इस कन्यासे उत्पन्न पुत्र जिस वरको कन्याका वाग्दान किया गया था, उसका क्षेत्रज पुत्र माना जाता है।

जो स्त्री व्यभिचारिणी है, बहुत प्रयत्न करनेपर भी व्यभिचारसे विरत नहीं हो रही है, उसको अपने गर्हित जीवनके प्रति वैराग्य उत्पन्न करनेके लिये अपने घरमें ही रखते हुए समस्त अधिकारोंसे अलग कर देना चाहिये तथा उसे मलिनदशामें ही रखकर उतना ही भोजन देना चाहिये, जितनासे उसकी प्राणरक्षामात्र हो सके। साथ ही उसके निन्दनीय कर्मके लिये उसकी भर्त्सना करनी चाहिये और भूमिपर ही उसके शयनकी व्यवस्था करनी चाहिये।

स्त्रियोंको विवाहसे पूर्व चन्द्रने शुचिता, गन्धर्वने सुन्दर मधुर वाणी एवं अग्निने सब प्रकारकी पवित्रता प्रदान की है। इसीलिये स्त्रियाँ पवित्र ही होती हैं। अतएव उनके लिये अतप्त प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है। पर इतनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि स्त्रियोंमें दोषका संक्रमण नहीं होता है। यदि कोई स्त्री केवल मनसे पर पुरुषकी इच्छा करती है तो यह भी एक तरहका व्यभिचार ही है। ऐसे ही अन्य पुरुषसे सम्पर्क करनेका संकल्पमात्र कोई स्त्री कर लेती है तो यह भी किसी रूपमें व्यभिचार ही है। ऐसा व्यभिचार यदि प्रकाशमें नहीं आया है तो इससे उत्पन्न दोषका मार्जन उस स्त्रीके ऋतुकालमें रजोदर्शनसे हो जाता है। यदि पर पुरुष शूद्रके साथ सम्पर्क कर कोई स्त्री गर्भधारण कर लेती है तो इस पापका प्रायश्चित्त उस स्त्रीका त्याग ही है। ऐसे ही गर्भवध, पतिका वध, ब्रह्महत्या आदि महापातकसे ग्रस्त होनेपर तथा शिष्य आदिके साथ गमन करनेवाली स्त्रीका त्याग ही कर देना चाहिये।

मदिरापान करनेवाली, दीर्घ रोगिणी, द्वेष रखनेवाली, वन्ध्या, अर्थका नाश करनेवाली, अप्रियवादिनी (निष्ठुरभाषिणी), कन्याको ही उत्पन्न करनेवाली एवं पतिका अहित ही करनेवाली भार्याका परित्याग कर दूसरा विवाह किया जा सकता है। प्रथम विवाहिता (परित्यक्ता) स्त्रीका भी दान, मान, सत्कार आदिके द्वारा भरण करना चाहिये, अन्यथा उस स्त्रीके पतिको महापाप होता है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि जिस घरमें पति-पत्नीके मध्य किसी भी प्रकारका विरोध नहीं होता, उस घरमें धर्म-अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी अभिवृद्धि होती है। अतः प्रथम विवाहिता एवं वर्तमान भार्यामें, अस्वीकृत स्त्री भी पूर्वमें भार्या रही है। इस दृष्टिसे उससे विरोध नहीं ही करना चाहिये। उसे पूर्ण प्रसन्न रखना चाहिये। जो स्त्री पतिकी मृत्युके पश्चात् अथवा उसके जीवित रहते हुए अन्य पुरुषका आश्रय नहीं लेती, वह इस लोकमें यश प्राप्त करती है और अपने पातिव्रत्य-पुण्यके प्रभावसे परलोकमें जाकर पार्वतीके साहचर्यमें आनन्द प्राप्त करती है।

यदि पति अपनी स्त्रीका परित्याग करता है तो उस स्त्रीको भरण-पोषणके लिये अपनी सम्पत्तिका तृतीयांश दे देना चाहिये।

स्त्रियोंको अपने पतिकी आज्ञाका पालन करना चाहिये—यही उनका परम धर्म है। स्त्रियोंमें ऋतु अर्थात् रजोदर्शनके प्रथम दिनसे सोलह रात्रितक उनका ऋतुकाल होता है। अतः पुरुषको उक्त सोलह रात्रियोंकी युग्म रात्रियोंमें अपनी पत्नीके साथ पुत्र-प्राप्तिके लिये संसर्ग करना चाहिये[1]। पर्वोंकी तिथियोंमें[2] तथा ऋतुकालकी प्रारम्भिक चार तिथियोंमें सहवास नहीं करना चाहिये। अपनी अपेक्षा क्षाम (दुर्बल) स्त्रीका सहवास पुत्र-प्राप्तिमें सहायक होता है। मघा और मूल नक्षत्रमें सहवास वर्जित है।

इन नियमोंका पालन करके ही अपनी स्त्रीसे सुन्दर, सबल, उत्तम लक्षणोंवाले नीरोग पुत्रको उत्पन्न किया जा सकता है। स्त्रियोंको इन्द्रने जो वर[3] दिया है, उसे ध्यानमें रखते हुए पुरुष यथाकामी (पत्नीकी इच्छानुसार ऋतुकालकी

१-इन नियमोंका पालन करनेवालेको 'ब्रह्मचारी' कहा गया है।

२-पर्व-तिथि चार हैं—अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या और पूर्णिमा (मनु० ४। १५६)।

३-एक बार स्त्रियोंने पुरुषकी अपेक्षा आठगुनी अपनी कामभावनासे बाध्य होकर इन्द्रदेवकी शरणमें जाकर अपने मनोभावको उनसे स्पष्ट किया। इन्द्रदेवने स्त्रियोंके भावको जानकर उन्हें वर दिया—'भवतीनां कामविहन्ता पातकी स्यात्' ('आप लोगोंकी कामभावनाका हनन करनेवाला पुरुष पातकी होगा')। इसी वरके अनुसार पत्नीकी इच्छाके अनुसार ऋतुकालसे अन्य कालकी अनिषिद्ध रात्रियोंमें भी पत्नीगमन अनुज्ञात है।

रात्रियोंसे अतिरिक्त अनिषिद्ध रात्रियोंमें भी अपनी पत्नीके साथ सहवास करनेवाला) भी हो सकता है। पुरुषके यथाकामी होनेमें दो कारण हैं—(१) पुरुषको अपनी पत्नीमें ही रति रखनी चाहिये और (२) स्त्रियोंकी रक्षा करना पुरुषका धर्म है। पति, भ्राता, पिता, पितृव्य, सास, श्वशुर, देवर तथा अन्य बन्धु-बान्धवोंको स्त्रियोंका आभूषण-वस्त्र एवं भोजनादिके द्वारा पर्याप्त आदर करना चाहिये।

स्त्रीको घरकी सामग्री संयमित रूपमें रखनी चाहिये, कार्यकुशल होना चाहिये, प्रसन्न रहना चाहिये, मितव्ययी (अधिक खर्चीली नहीं) होना चाहिये तथा सर्वदा अपने सास-श्वशुरके चरणोंका वन्दन करना चाहिये।

जो स्त्री प्रोषितपतिका है अर्थात् जिसका पति परदेश चला गया है, उसके लिये किसी प्रकारकी क्रीड़ा (खेल-तमाशा), शरीरकी सजावट सामाजिक उत्सवोंका दर्शन, हास-परिहास तथा दूसरेके घरमें गमन करना वर्जित है।

बाल्यावस्थामें पिता, यौवनकालमें पति, वृद्धावस्थामें पुत्र, पुत्रके अभावमें अन्य सम्बन्धियोंको नारीकी रक्षा करनी चाहिये। दिन हो अथवा रात्रि हो, कभी भी स्त्री अपने पतिके बिना एकान्तमें निवास न करे। पतिको सदैव धर्म-कार्यमें अपनी ज्येष्ठ पत्नीको ही संलग्न करना चाहिये। कनिष्ठा भार्या धर्म-कार्यके लिये उपयुक्त नहीं मानी गयी है। सदाचारिणी स्त्रीके मृत्यु होनेपर पतिको चाहिये कि वह अग्निहोत्रमें प्रयुक्त अग्निसे उसका दाह-संस्कार करे। तदनन्तर अविलम्ब अन्य स्त्रीके साथ पाणिग्रहण करके पुनः अग्निका संचयन करे। पतिहितैषिणी पत्नी इस लोकमें यश अर्जित करके अन्तमें स्वर्गलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ९५)

वर्णसंकर जातियोंका प्रादुर्भाव, गृहस्थधर्म, वर्णधर्म तथा सैंतीस प्रकारके अनध्याय

याज्ञवल्क्यजीने कहा—अब मैं संकर जातियोंकी उत्पत्ति एवं गृहस्थादिके श्रेष्ठ धर्मोंका वर्णन करता हूँ।

ब्राह्मण पुरुषसे विवाहिता क्षत्रिय कन्यामें मूर्धावसिक्त, विवाहिता वैश्य कन्यामें अम्बष्ठ और विवाहिता शूद्रामें पारशव निषाद नामक संकरका जन्म होता है[1]। क्षत्रिय पुरुषसे वैश्य कन्यामें माहिष्य तथा शूद्रामें म्लेच्छकी[2] उत्पत्ति होती है। वैश्य पुरुषसे शूद्रवर्णा स्त्रीमें करण नामक संकर जातिकी संतानका जन्म होता है[3]। क्षत्रिय पुरुषसे ब्राह्मण स्त्रीमें सूत, वैश्य पुरुषसे ब्राह्मणीमें वैदेहक तथा शूद्र पुरुषसे ब्राह्मणीमें सर्ववर्णनिन्दनीय चाण्डालकी उत्पत्ति होती है। क्षत्रिय स्त्रीमें वैश्यसे मागध और शूद्रसे क्षत्ता नामक संकर संतानका जन्म होता है। इसी प्रकार वैश्य स्त्री शूद्र पुरुषके संसर्गसे आयोगव[4] नामक वर्णसंकर पुत्रको जन्म देती है। क्षत्रिय पुरुषसे वैश्य कन्यामें उत्पन्न हुए माहिष्य संकरके द्वारा करणी (वैश्यसे शूद्रामें उत्पन्न) स्त्रीके साथ संसर्ग होनेपर रथकारका जन्म होता है।

जो उच्चवर्णीय पुरुषसे निम्नवर्णा स्त्रीमें संतान उत्पन्न होती है, वह अप्रतिलोमज अथवा अनुलोमज संतान है और जो निम्नवर्गीय पुरुषसे उच्चवर्णा स्त्रीमें संतान जन्म ग्रहण करती है, वह प्रतिलोमज संतान है। प्रतिलोमज असत् हैं और अनुलोमज सत् हैं।

जातिका उत्कर्ष सातवें, पाँचवें अथवा छठे जन्ममें होता है। यहाँ जाति शब्दसे अभी वर्णित मूर्धावसिक्त आदि जातियाँ ली गयी हैं। प्रकृतमें संक्षेपसे यह समझना चाहिये—ब्राह्मणसे शूद्रामें उत्पन्न संतान निषाद कही जाती है। यह संतान यदि कन्या है तो इसे निषादी कहा जाता है। इसका यदि ब्राह्मणसे विवाह हो और उससे उत्पन्न कन्याका पुनः ब्राह्मणसे विवाह हो, आगे उससे भी उत्पन्न कन्याका पुनः ब्राह्मणसे ही विवाह हो—इसी क्रमसे उत्पन्न छठी कन्यासे विवाहित ब्राह्मणके द्वारा उत्पादित सातवीं संतान शुद्ध ब्राह्मणवर्णकी होगी। ऐसे

१-ये अनुलोम संकर कहे जाते हैं।

२-याज्ञवल्क्यस्मृति (१। ९२)-के अनुसार क्षत्रियसे शूद्रामें उग्र नामकी संकर जातिकी संतान उत्पन्न होती है।

३-मूर्धावसिक्त, अम्बष्ठ, निषाद, माहिष्य, उग्र एवं करण—ये छः अनुलोमज पुत्र हैं।

४-सूत, वैदेहक, चाण्डाल, मागध, क्षत्ता एवं आयोगव—ये छः प्रतिलोमज पुत्र हैं।

ही ब्राह्मणसे वैश्य जातीय कन्यामें उत्पन्न अम्बष्ठ जातिकी पाँचवीं कन्याकी छठी संतान शुद्ध ब्राह्मण होगी। मूर्धावसिक्ता कन्याकी भी इसी क्रमसे उत्पन्न चौथी कन्याकी पाँचवीं संतान शुद्ध ब्राह्मण ही होगी। ठीक यही स्थिति उग्रा और माहिष्याकी है। ये दोनों उग्र एवं माहिष्य जातिकी कन्याएँ यदि क्षत्रियसे ही विवाहित होती गयीं तो इनकी छठी और पाँचवीं संतति शुद्ध क्षत्रिय ही होगी। ऐसे ही करण जातिकी कन्या और वैश्यवर्णके पुरुषसे विवाहित होकर यथाक्रम पाँचवें संतानको शुद्ध वैश्यरूपमें ही उत्पन्न करेगी।

इसके अतिरिक्त यह भी जानने योग्य है कि कर्मका व्यत्यय होनेसे भी जिस वर्णका कर्म किया जा रहा है, वही वर्ण सातवें, छठे तथा पाँचवें जन्मकी संतानका हो जाता है। स्पष्टरूपमें इस प्रकार समझा जा सकता है—धर्मशास्त्रके अनुसार ब्राह्मणको अपनी मुख्यवृत्ति याजन तथा अध्यापन आदिसे जीविका चलानी चाहिये। आपत्कालमें अपनी मुख्यवृत्तिसे जीविका न चल पानेपर क्षत्रियवृत्ति, वैश्यवृत्ति या शूद्रवृत्ति भी ब्राह्मण स्वीकार कर सकता है। यही क्षत्रिय एवं वैश्यके बारेमें भी व्यवस्था है। जब कोई वर्ण अपनी मुख्यवृत्तिका परित्याग कर अन्य द्वितीय, तृतीय वर्णकी वृत्ति स्वीकार करता है तो यह हीनवर्णकी वृत्ति मानी जाती है और यह हीनवर्णकी वृत्ति स्वीकार करना ही 'कर्म-व्यत्यय' है। इस प्रकारके कर्म-व्यत्यय होनेपर आपत्तिकालके अभावमें भी यदि कोई हीनवर्णकी वृत्तिका परित्याग नहीं करता है तो उसकी सातवीं, छठी, पाँचवीं कुल-परम्परामें उत्पन्न संतति उस हीनवर्णकी ही होगी। जिस हीनवर्णकी वृत्ति स्वीकार कर जीविका निर्वाह किया जा रहा है। दृष्टान्तके रूपमें यह कहा जा सकता है—यदि कोई ब्राह्मण शूद्रवृत्तिसे जीविका चला रहा है और उसका परित्याग बिना किये पुत्र उत्पन्न कर रहा है तथा यह पुत्र भी शूद्रवृत्तिसे अपना जीवन चलाता हुआ अपना पुत्र उत्पन्न कर रहा है एवं यह तीसरा पुत्र भी शूद्र-वृत्तिमें रहकर ही अपना पुत्र उत्पन्न कर रहा है तो ऐसी परम्परामें सातवें जन्ममें शूद्र ही उत्पन्न होगा। वैश्यवृत्तिसे जीविका निर्वाहकी दशामें छठे जन्ममें वैश्य ही उत्पन्न होगा। क्षत्रियवृत्तिसे जीविका निर्वाहकी स्थितिमें पाँचवें जन्ममें क्षत्रिय ही उत्पन्न होगा। क्षत्रिय भी शूद्रवृत्तिसे जीविका निर्वाह करनेपर छठे वंशमें शूद्रवर्णकी एवं वैश्यवृत्तिसे जीविका निर्वाह करनेपर पाँचवें वंशमें वैश्यवर्णकी संतान उत्पन्न करेगा। ऐसे ही वैश्य भी शूद्रवृत्तिसे जीविका निर्वाह करते हुए अपनी पुत्र-परम्पराके पाँचवें जन्ममें शूद्रको ही उत्पन्न करेगा।

इसी प्रसंगसे यह भी ज्ञातव्य है—तीन प्रकारकी जातियाँ हैं—१-संकर जाति, २-संकीर्ण संकर जाति तथा ३-वर्ण संकीर्ण संकर जाति। संकर जातिके मूर्धावसिक्त अम्बष्ठ आदि छः भेद ऊपर बताये गये हैं। इन्हें अनुलोमज कहा जाता है। ऐसे ही सूत, वैदेहक आदि भी छः संकर जातिके भेद पहले ही कहे जा चुके हैं। ये प्रतिलोमज हैं। संकीर्ण संकर जातिके जो लोग होते हैं, उनका निर्देश पहले रथकारकी उत्पत्ति बताकर किया गया है। अब वर्ण संकीर्ण संकर जातिके लोगोंको इस प्रकार समझनी चाहिये—मूर्धावसिक्ता स्त्रीमें क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रसे जो उत्पादित हैं, ऐसे ही अम्बष्ठ जातिकी स्त्रीमें वैश्य अथवा शूद्रके द्वारा जो उत्पादित हैं और पारशव निषाद जातिकी स्त्रीमें शूद्रके द्वारा जो उत्पादित हैं, वे वर्ण संकीर्ण संकर जातिके होते हैं। इन्हें, अधर प्रतिलोमज कहते हैं। इसी प्रकार मूर्धावसिक्त, अम्बष्ठ एवं पारशव निषाद जातिकी स्त्रियोंमें ब्राह्मणके द्वारा जो उत्पादित हैं, माहिष्य एवं उग्रजातिकी स्त्रियोंमें ब्राह्मण अथवा क्षत्रियसे जो उत्पादित हैं और करणजातिकी स्त्रीमें ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्यसे जो उत्पादित हैं, उन्हें उत्तर अनुलोमज कहते हैं। उनमें अधर प्रतिलोमज असत् तथा उत्तर प्रतिलोमज सत् माने जाते हैं।

गृहस्थाश्रमीको प्रतिदिन विवाहाग्निमें अथवा सम्पत्ति विभागके समय स्वयं लायी गयी संस्कृत-अग्निमें स्मार्तकर्म वैश्वदेव आदि सम्पन्न करना चाहिये। श्रौतकर्मानुष्ठान अग्निहोत्र आदि वैतानाग्नि (आहवनीय आदि अग्नियों)-में करना चाहिये। शरीर चिंता (प्रातः-सायं अवश्य करणीय मल-मूत्र विसर्जन)-को शास्त्रीय विधिसे सम्पन्न कर, गन्ध-लेपनिवृत्तिपर्यन्त शुद्धि प्राप्तकर दन्तधावन एवं स्नानकर द्विजको प्रातःकाल संध्योपासन करना चाहिये तथा अनन्तर

अग्निमें हवन (अग्निहोत्र) करके समाहितचित्तसे सूर्यदेवताके मन्त्रोंका[1] जप करना चाहिये। उसके बाद गृहस्थाश्रमी वेदार्थ (निरुक्त व्याकरण आदि) तथा अन्य विविध प्रकारके शास्त्रोंका अध्ययन करे। योगक्षेम आदिकी सिद्धिके लिये उसको ईश्वरकी उपासना करनी चाहिये।

वह स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण तथा पूजन करे। तदनन्तर उसको वेद, पुराण तथा इतिहासका यथाशक्ति अध्ययन एवं अध्यात्मिकी विद्याका जप (चिन्तन) करना चाहिये। तत्पश्चात् भूत, पितर, देव, ब्रह्म और मनुष्य जातिके लिये गृहस्थ बलिकर्म[2], स्वधा, होम, स्वाध्याय तथा अतिथि-सत्कार करे। देवताओंके लिये अग्निमें हवन करना चाहिये। भूतबलि, श्वान (कुत्ता), चाण्डाल एवं काक आदिके लिये पका हुआ अन्न भूमिपर दे। पितृगण एवं मनुष्योंको अन्नके सहित जल भी प्रतिदिन प्रदान करना चाहिये। प्रतिदिन स्वाध्याय करे, केवल अपने लिये अन्नपाक न करे। स्ववासिनी (अपने पितृगृहमें रहनेवाली विवाहिता स्त्री), वृद्ध, गर्भिणी, व्याधिपीड़ित, कन्या, अतिथि तथा भृत्योंको भोजन प्रदानकर गृहस्वामिनी और उसका पति शेष बचे हुए अन्नका भोजन करे। अग्निमें पञ्चप्राणाहुति देकर अन्नकी निन्दा न करते हुए भोजन करना चाहिये।

भोजनके आदि और अन्तमें आपोऽशान-विधिसे आचमन करे तथा सम्यक् प्रकारसे पका हुआ, हितकारी, स्वल्प भोजन बालकोंके साथ करना चाहिये।

पात्रादिसे आच्छादित अमृततुल्य भोजन द्विजको कराना चाहिये। यथाशक्ति अतिथि एवं अन्य वर्णोंको क्रमशः भोजन देना चाहिये। सायंकाल भी आये हुए अतिथिको लौटाना नहीं चाहिये। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। सुव्रत! (ब्रह्मचारी एवं संन्यासी) भिक्षुकको सत्कारपूर्वक भिक्षा प्रदान करनी चाहिये। द्वारपर पधारे सभीको भोजन कराना चाहिये। प्रतिवर्ष स्नातक, आचार्य एवं राजाकी पूजा करनी चाहिये। ऐसे ही मित्र, जामाता एवं ऋत्विक् प्रतिवर्ष पूजनीय हैं। पथिकको अतिथि तथा वेदपारंगतको श्रोत्रिय कहा जाता है। ब्रह्मलोककी कामना करनेवाले गृहस्थजनोंके लिये ये दोनों मान्य हैं।

ससम्मान आमन्त्रणके बिना ब्राह्मणको दूसरेके यहाँ बने हुए पक्वान्नको प्राप्त करनेकी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। गृहस्थको वाणी, हाथ, पैरकी चञ्चलता एवं अतिभोजन करनेसे बचना चाहिये। संतुष्ट श्रोत्रिय तथा अतिथिको विदा करते समय ग्रामकी सीमातक उनका अनुगमन करना चाहिये।

गृहस्थ अपने इष्ट-मित्र एवं बन्धुओंके साथ दिनका शेष भाग व्यतीत करे। तदनन्तर सायंकालीन संध्योपासना करके वह पुनः अग्निहोत्रकर भोजन ग्रहण करे। इसके बाद उसको अपने सुबुद्ध भृत्योंके साथ बैठकर अपने हितका विचार करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परित्यागकर वह धनादिसे ब्राह्मणको संतुष्ट करे तथा वृद्ध, दुःखी एवं भार ढोनेवाले पथिकोंको भलीभाँति मार्ग दिखाकर प्रसन्न करे।

यज्ञानुष्ठान, अध्ययन और दान वैश्य तथा क्षत्रियका कर्म माना गया है। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणके लिये याजन, अध्यापन तथा प्रतिग्रह—ये तीन कर्म अधिक बताये गये हैं।

क्षत्रियका प्रधान कर्म प्रजापालन है। वैश्यवर्णके लिये कुसीद (सूद), कृषि, वाणिज्य और पशुपालन मुख्य कर्म कहा गया है। शूद्रवर्णका प्रधान कर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यकी सेवा करना है। द्विजोंको यज्ञादि कर्तव्योंसे प्रमाद नहीं करना चाहिये। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियसंयम, दम, क्षमा, सरलता और दान सभीके लिये धर्मके साधन हैं। अपने वर्णधर्मानुसार जीविकाका आश्रयणकर कुटिल और दुष्टवृत्तिका परित्याग करना चाहिये—

प्रधानं क्षत्रियं कर्म प्रजानां परिपालनम्॥
कुसीदकृषिवाणिज्यं पशुपाल्यं विशः स्मृतम्।
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजो यज्ञान् न हापयेत्॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः।
दमः क्षमार्जवं दानं सर्वेषां धर्मसाधनम्॥
आचरेत् सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा।
(९६। २७—३०)

जो मनुष्य तीन वर्षसे अधिक कालतकके लिये अन्नका भण्डारण करता है, वह सोमरस पान करनेकी

१-'उदु त्यं जातवेदसं०' आदि।
२-बलिकर्म— भूतयज्ञ, स्वधा— पितृयज्ञ, होम— देवयज्ञ, स्वाध्याय— ब्रह्मयज्ञ, अतिथि-सत्कार— मनुष्य-यज्ञ।

योग्यता रखता है। जिसके पास मात्र एक वर्षभरके लिये ही अन्न रहता है, उसे मुख्यत: सोमयागकी प्राक्क्रिया[1] करनी चाहिये। द्विजको प्रतिवर्ष सोमयाग, पशुयाग, आग्रायणेष्टि[2] तथा चातुर्मास्ययाग यत्नपूर्वक करना चाहिये। यदि इन यागोंको करना प्रतिवर्ष असम्भव हो तो इन यागोंके कालमें वैश्वानरी इष्टि ही कर लेनी चाहिये।

मुख्य कल्पके सम्पादनमें असमर्थके लिये जो द्वितीय कल्प विहित है, वह हीन कल्प है। सोमयाग, आग्रायणेष्टि आदि मुख्य कल्प हैं। वैश्वानरी इष्टि हीनकल्प है। यदि मुख्यकल्पके सम्पादनयोग्य द्रव्य है तो हीनकल्पका सम्पादन नहीं करना चाहिये। जितने भी फलप्रद (काम्य) अनुष्ठान हैं। फलकी कामना रहनेपर उन्हींका सम्पादन करना होगा। उनको न कर हीनकल्पका सम्पादन करनेपर फल नहीं प्राप्त हो सकता।

ब्राह्मणको अपनी जीविकाके लिये उस अप्रतिषिद्ध अर्थकी भी इच्छा नहीं करनी चाहिये जो स्वाध्याय-विरोधी हो। ऐसे जिस-किसी भी व्यक्तिसे अर्थ पानेकी इच्छा नहीं करनी चाहिये, जिसका आचरण संदिग्ध हो। विरुद्धवृत्ति (अयाज्य याजन आदि)-से भी अर्थ-अर्जन नहीं करना चाहिये। ऐसे ही नृत्य, गीत आदि (प्रसंग)-से भी अर्थ-अर्जन नहीं करना चाहिये। जो द्विज यज्ञके लिये शूद्रसे धनकी याचना करता है, वह मृत्युके पश्चात् चाण्डाल-योनिमें जन्म लेता है। यज्ञके लिये लाये हुए अन्नको जो सम्पूर्णरूपसे यज्ञमें नहीं लगाता, वह कुक्कुर, गृध्र अथवा काकयोनिमें जन्म ग्रहण करता है।

ब्राह्मणको एक कुसूल[3] (कोष्ठक)-भर, एक मटका-भर, तीन दिनतकके लिये या एक दिनतकके लिये अन्न संग्रह करना चाहिये। अथवा वह शिलोञ्छवृत्तिसे अपना जीवन-निर्वाह करे। इन वृत्तियोंमें उत्तरोत्तर वृत्ति श्रेष्ठ है।

यदि वह भूखसे पीड़ित है तो उसको राजा, अपने छात्र या यज्ञ करनेवाले यजमानसे ही अन्न-धनकी याचना करनी चाहिये और दाम्भिक, हैतुक, पाखण्डिक एवं वकवृत्तिवालेका सभी लौकिक-शास्त्रीय कर्ममें सर्वथा परित्याग करना चाहिये। वह स्वच्छ श्वेत वस्त्र धारण करे। सिर, दाढ़ी आदिके केश एवं नखोंको यथा-विधान कटवाये रहे। भार्याके साथ भोजन नहीं करना चाहिये। एक वस्त्र धारण कर तथा खड़े होकर भोजन नहीं करना चाहिये।

कभी भी अप्रिय वचन नहीं बोलना चाहिये। यज्ञोपवीतधारी ब्राह्मणको विनीत होना चाहिये। दण्ड और कमण्डलु धारण करना चाहिये। देव आदिको अपने दाहिने करके चलना चाहिये। वह नदी, वृक्षच्छाया, भस्म, गोष्ठ, जल तथा मार्गके मध्यमें मूत्रका परित्याग न करे। अग्नि, सूर्य, गौ, चन्द्र, संध्या, जल, स्त्री और द्विजोंके सम्मुख भी मूत्रका त्याग करना वर्जित है। वह अग्नि एवं उदय तथा अस्त हो रहे सूर्यका दर्शन न करे। उसके लिये नग्न तथा मैथुनासक्त स्त्री, मूत्र और विष्ठाका दर्शन भी त्याज्य है। पश्चिम सिर करके नहीं सोना चाहिये। थूक, रक्त, विष्ठा, मूत्र और विषको जलमें छोड़ना अनुचित है। आगपर पैरोंको सेंकना तथा उसे लाँघना निषिद्ध है।

अञ्जलिद्वारा जल नहीं पीना चाहिये और निद्रा-निमग्न व्यक्तिको जगाना नहीं चाहिये। धूर्त-वञ्चकका साथ नहीं

१-प्राक्क्रिया—सोमयागके पूर्व करणीय अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रायण, चातुर्मास्य आदि।

२-नया सस्य उत्पन्न होनेपर आग्रायणेष्टिका विधान है।

३-कुसूलधान्य बारह दिनके लिये अन्न, कुम्भीधान्य छ: दिनके लिये अन्न।

४-'शिलोञ्छवृत्ति' भरण-पोषणकी एक ब्राह्मण-वृत्ति (साधन) है। 'शिलवृत्ति' उसे कहते हैं, जिसमें ब्राह्मण फसल कट जानेके बाद खेतमें गिरे हुए अन्नकी बल्लरी (बाल)-को एकत्र करके अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करता है। 'उञ्छवृत्ति' उसे कहते हैं, जिसमें अन्नकी बल्लरी छोड़कर एक-एक कणमात्र एकत्र कर उसीसे अपने कुटुम्बका भरण-पोषण करता है। 'शिल' और 'उञ्छ'—यही 'शिलोञ्छवृत्ति' है।

५-दाम्भिक—केवल किसीको प्रसन्न करनेके लिये ही धर्मानुष्ठान।

६-हैतुक—निराधार तर्कोंसे धार्मिक कृत्योंमें संशयकर्ता।

७-पाखण्डिक—वेदशास्त्रोंके विरुद्ध अनेक प्रकारके लुभावने वेशका धारक।

८-वकवृत्ति—वकके समान वर्तन (व्यवहार) करनेवाला।

करना चाहिये। रोगी जनोंके साथ शयन नहीं करना चाहिये। धर्म-विरुद्ध कर्मोंका परित्याग कर देना चाहिये। चिताग्निका धुआँ तथा नदीमें तैरना वर्जित है। केशपर, भस्मपर, भूसीपर, प्रज्वलित अग्निके अंगारेपर और कपालपर स्थित नहीं होना चाहिये। किसीसे बछड़ेको दूध पिलाती हुई गायको बताना नहीं चाहिये और किसीके घरमें द्वारके अतिरिक्त अन्य गवाक्षादि मार्गोंसे प्रवेश नहीं करना चाहिये। लोभी तथा शास्त्र-विरुद्ध कर्म करनेवाले राजासे प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिये।

वेद तथा धर्म-शास्त्रादिका अध्ययन करनेवालोंका उपाकर्म-संस्कार श्रवणनक्षत्रसे युक्त श्रावणी पूर्णिमाको होना चाहिये। संस्कार-विहित औषधियों— सामग्रियोंके उपलब्ध रहनेपर यह कार्य श्रावणमासकी हस्तनक्षत्रसे युक्त पञ्चमी-तिथिमें भी सम्पन्न हो सकता है। पौषमासके रोहिणीनक्षत्रमें अथवा अष्टकाके दिन ग्रामसे बाहर जलाशयके पास वेदोंका उत्सर्ग-कर्म गृह्यसूत्रके अनुसार करना चाहिये।

शिष्य, ऋत्विक्, गुरु तथा बन्धु-बान्धवोंकी मृत्यु होनेपर तीन दिनका अनध्याय उपाकर्म तथा उत्सर्ग-कर्म करनेपर होता है। ऐसे ही अपनी शाखाके श्रोत्रिय ब्राह्मणकी मृत्यु होनेपर तीन दिनका अनध्याय होता है। संध्याके समय मेघ-गर्जन होनेपर, आकाशमें उत्पातकी ध्वनि होनेपर, भूकम्प होनेपर तथा उल्कापात होनेपर अनध्याय रखना चाहिये। वेद और आरण्यकका अध्ययन पूर्ण होनेपर एक दिन एवं एक रात्रि (अहोरात्र)-का अनध्याय होता है।

अष्टमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, चन्द्र-सूर्यग्रहण, ऋतुसंधिकी प्रतिपद्‌में तथा श्राद्ध-भोजन अथवा श्राद्धका प्रतिग्रह लेनेपर एक दिन और एक रात्रि (अहोरात्र)-का अनध्यायकाल[1] मानना चाहिये। पशु, मेढक, नेवला, कुत्ता, सर्प, बिडाल और सूअरके बीचमें आनेपर तथा शक्रध्वजके अवरोपणका दिन आनेपर एवं उत्सवका दिन होनेपर भी एक ही दिन-रात्रिका अनध्यायकाल होता है।

कुत्ता, सियार, गर्दभ, उलूक, सामवेद तथा बच्चोंके कोलाहल और पीड़ितजनोंकी दुःखभरी ध्वनि होनेपर, अपवित्र वस्तु, शव, शूद्र, अन्त्यज, श्मशान और पतित व्यक्तिका सामीप्य होनेपर तत्काल अनध्याय होता है। अपवित्र देशमें, अपवित्रावस्थामें, बार-बार बिजली चमकनेपर, दो प्रहरतक बार-बार मेघ-गर्जन होनेपर, भोजन करनेके बाद हाथ गीला रहनेपर, जलके मध्यमें, अर्धरात्रिमें तथा मध्यके दो प्रहरमें और आँधी-तूफानके बीच भी उतने कालतक अध्ययन नहीं होना चाहिये। दिग्दाह[2] होनेपर, उत्पात-जैसी धूलिकी वर्षा होनेपर, संध्याकालीन कोहरा होनेपर अथवा चोर, राजा आदिके कारण होनेवाले उपद्रवोंके समयमें तत्काल अनध्याय होता है। स्वयं दौड़ते हुए, अपवित्र मदिरा आदिका गन्ध आनेपर तथा शिष्ट व्यक्तिके घर आ जानेपर अध्ययन करना वर्जित है। गधा, ऊँट, वाहन (रथ), हाथी, घोड़ा, नौका, वृक्ष और पर्वतारोहणका काल अनध्यायका ही काल होता है। उपर्युक्त सैंतीस अनध्यायोंको तात्कालिक अनध्याय माना गया है अर्थात् ये निमित्त जिस समय हों, उस समय अनध्याय समझना चाहिये।

देवताकी मूर्ति, ऋत्विक्, स्नातक, आचार्य एवं राजाकी छाया, पर-स्त्रीकी छाया, रक्त, विष्ठा, मूत्र, थूक और उबटनकी सामग्रीका अतिक्रमण नहीं करना चाहिये। बहुश्रुत ब्राह्मण, सर्प, क्षत्रिय (नृपति)-की अवमानना कदापि न करे। ऐसे ही अपनी भी अवमानना न करे। उच्छिष्ट (जूठन), विष्ठा, मूत्र और चरण-प्रक्षालित जल दूरसे ही त्यागने योग्य हैं। श्रुति और स्मृतिमें कहे गये सदाचारका पालन करना चाहिये। किसीके गोपनीय रहस्यको प्रकाशित कर उसे कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। किसीकी निन्दा या ताड़ना नहीं करनी चाहिये, किंतु पुत्र अथवा शिष्यको दण्ड देना चाहिये। मनुष्यको सर्वदा धर्मका ही आचरण करना चाहिये। धर्मविरुद्ध आचरण उसके लिये त्याज्य है। गृहस्थ व्यक्तिको माता-पिता, अतिथि और धनी पुरुषके साथ विवाद नहीं करना चाहिये।

दूसरेके सरोवरमेंसे पाँच पिण्ड मिट्टी बिना निकाले

१-यह व्यवस्था एकोद्दिष्ट श्राद्धसे अतिरिक्त श्राद्धके लिये है। एकोद्दिष्ट श्राद्धका भोजन अथवा प्रतिग्रहमें तीन रात्रिका अनध्याय होता है। (याज्ञवल्क्य मिताक्षरा आचाराध्याय श्लोक १४६)

२-दिग्दाह— दिशाएँ यदि जलती हुई प्रतीत होती हों।

उसमें स्नान नहीं करना चाहिये। नदी, झरना, देव-सरोवर और पोखर—तालाबमें स्नान करना चाहिये।

दूसरेकी शय्यापर शयन नहीं करना चाहिये। अनापत्तिकालमें पराम्न भोजन नहीं करना चाहिये। कृपण, बन्दी, चोर, अग्निहोत्र न करनेवाले ब्राह्मण, बाँसका काम करनेवाले, न्यायालयमें जिसका दोष सिद्ध हो चुका है, सूदखोर, वेश्या, सामूहिक दीक्षा देनेवाला, चिकित्सक, रोगी, क्रोधी, नपुंसक, रंगमंचसे जीविका चलानेवाला, उग्र, निर्दय, पतित, व्रात्य, दम्भी, उच्छिष्टभोजी, शस्त्र-विक्रेता, स्त्रीके वशमें रहनेवाला, ग्राम्य-याजक (ग्रामके देवताओंकी शान्तिके लिये अनुष्ठान करनेवाला), निर्दयी राजा, धोबी, कृतघ्न, कसाई, चुगलखोर, झूठ बोलनेवाला, सोम-विक्रेता, बन्दी तथा स्वर्णकार—इनका अन्न कदापि नहीं खाना चाहिये। बाल तथा कृमि (कीड़े) आदिसे युक्त भोजन एवं मांस नहीं खाना चाहिये।

बासी, उच्छिष्ट, शुक्त (पका हुआ वह अन्न जो अधिक काल बीतनेके कारण विकृत हो गया है), कुत्तेद्वारा स्पृष्ट, पतितद्वारा देखा हुआ, रजस्वलासे स्पृष्ट, संघुष्ट[1] तथा पर्यायान्न[2]-भोजन त्याज्य है। गायसे सूँघा गया, पक्षियोंके द्वारा उच्छिष्ट और जानकर पैरसे छुआ गया अन्न भी त्यागने योग्य होता है। यद्यपि शूद्रका अन्न नहीं लेना चाहिये, तथापि जो शूद्र परम्परासे ही अपने यहाँ सेवक है, गोपालन करनेवाला है, कुल-परम्परासे ही जो मित्रके समान व्यवहार करनेवाला है, परम्परासे अपने यहाँ हलवाहेका काम करनेवाला है, कुल-परम्परासे जो निर्धारित नाई है—इनके अतिरिक्त वह शूद्र जिसने मन, वाणी, शरीर एवं कर्मसे सर्वथा अपनेको समर्पित कर रखा है—ऐसे शूद्रोंका अन्न स्वीकार किया जा सकता है। घी आदि स्निग्ध पदार्थोंसे युक्त अन्न यदि बासी है या बहुत कालसे रखा हुआ है तो भी ग्रहण करने योग्य होता है। किंतु घृत या तेल आदिसे संमिश्रित न होनेपर भी गेहूँ, जौ और गोरससे तैयार किये गये पदार्थ यदि बहुत देरतक रखे गये हैं, तब भी ग्रहण किये जा सकते हैं; यदि विकृत न हुए हों।

देव और अतिथिको बिना समर्पित किया हुआ तिल-तण्डुलमिश्रित पदार्थ, यवागू, खीर, पुआ तथा पूड़ीका भोजन व्यर्थ हो जाता है।

पलाण्डु (प्याज) और लहसुन आदि उग्र पदार्थोंका सेवन करनेपर चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। जो पुरुष पशु-हत्या करता है, वह पशुके रोम-परिमित कालतक घोर यातनाओंको सहन करते हुए नरकमें वास करता है। अभोज्य पदार्थोंका परित्याग करके अपनी सद्गतिकी भावनासे प्रभुसे क्षमा-याचना और प्रार्थना करता हुआ व्यक्ति भगवान्‌को प्राप्त करता है। (अध्याय ९६)

द्रव्यशुद्धि

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे श्रेष्ठ मुनिजनो! अब मैं द्रव्य-शुद्धिका वर्णन कर रहा हूँ। आप सब उसका ज्ञान प्राप्त करें।

सोने, चाँदी, अब्ज (मुक्ताफल, शंख, शुक्ति आदि), शाक, रस्सी तथा बकरे आदिके चमड़ेसे बनाये गये पात्र, होतृ, चमस आदि यदि किसी चिकने पदार्थके लेपसे रहित हैं और उच्छिष्ट हाथ आदिसे ही केवल स्पृष्ट हैं तो इनकी शुद्धि जलसे प्रक्षालनमात्र करनेपर हो जाती है। यज्ञमें प्रयुक्त स्रुक् एवं स्रुवाकी शुद्धि उष्ण जलसे तथा धान्यादिका शुद्धीकरण जलके प्रोक्षणसे होता है।

काष्ठ और सींग आदिसे विनिर्मित पात्रादिकी शुद्धि छिलनेसे होती है। मार्जन करनेसे यज्ञका पात्र पवित्र हो जाता है। उष्ण जल और उष्ण गोमूत्रसे धोनेपर ऊनी और रेशमी वस्त्र शुद्ध हो जाते हैं। ब्रह्मचारीके हाथमें विद्यमान भिक्षा-प्राप्त अन्न, बाजारमें विक्रयके लिये रखा अन्न तथा स्त्रीका मुख पवित्र होता है। मिट्टीका पात्र अग्निमें पुनः पकानेपर शुद्ध होता है, यदि चाण्डाल आदिसे स्पृष्ट नहीं है। गौके द्वारा सूँघे जानेपर और केश, मक्षिका एवं कीटादिसे दूषित होनेपर अन्नकी शुद्धि यथायोग्य जल, भस्म

१-संघुष्ट—'भोजन बचा हुआ है, जो भोजन करना चाहे वह आकर ले ले'। इस प्रकारकी घोषणा करके जो भोजन दिया जाता है, वह 'संघुष्ट' कहा जाता है।

२-पर्यायान्न—किसी दूसरेके उद्देश्यसे रखा भोजन यदि बिना उसकी स्वीकृतिके दूसरेको दिया जाय तो ऐसे अन्नको 'पर्यायान्न' कहा जाता है।

तथा मिट्टी डालनेसे हो जाती है। भूमिका पवित्रीकरण मार्जनादि करनेपर होता है। राँगा, सीसा तथा ताम्रपात्रकी शुद्धि क्षार और अम्लमिश्रित जलसे होती है। कांस्य और लौहपात्रोंकी शुद्धि भस्म तथा जलसे मार्जन करनेपर होती है। अज्ञात वस्तुएँ तो सदैव पवित्र ही रहती हैं।

अमेध्य (शरीरसे निकलनेवाले मल, वसा, शुक्र और श्लेष्मा आदि)-से लिप्त पात्रकी शुद्धि मिट्टी और जलके द्वारा परिमार्जित कर उसमें व्याप्त गन्ध एवं लेपको दूर करनेसे होती है। प्रकृतिद्वारा भूमिमें एकत्र जल, जो गौको संतृप्त करनेमें पर्याप्त हो, सदैव शुद्ध होता है।

सूर्य-रश्मि, अग्नि, धूलि, वृक्ष-छाया, गौ, अश्व, पृथ्वी, वायु तथा ओसकी बूँदें पवित्र ही होती हैं।

मनुष्यको स्नान करनेके बाद, जल पीनेके बाद, छींक आनेके बाद, शयनोपरान्त, भोजन करनेपर, मार्गमें चलनेपर तथा वस्त्र बदलनेपर पुनः आचमन करना चाहिये।

जम्हाई लेनेपर, निष्ठीवन (थूकनेपर), शयन करनेपर, वस्त्र-धारण करनेपर और अश्रुपात होनेपर—इन पाँच अवस्थाओंमें आचमन नहीं करे, अपितु दक्षिण कानका स्पर्श कर ले। ब्राह्मणके दक्षिण कानपर अग्नि आदि देवता सदैव विराजमान रहते हैं। (अध्याय ९७)

दान-धर्मकी महिमा

याज्ञवल्क्यजीने पुनः कहा—हे ऋषियो! अब मैं दान-धर्मकी महिमाका वर्णन करता हूँ, उसे सुनें।

अन्य वर्णोंकी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी जो सत्क्रियावान् (कर्मनिष्ठ) ब्राह्मण हैं वे श्रेष्ठ हैं। उन कर्मनिष्ठोंमें भी विद्या तथा तपस्यासे युक्त ब्रह्म-तत्त्ववेत्ता श्रेष्ठ तथा सत्पात्र हैं। गृहस्थके द्वारा गौ, भूमि, धान्य तथा सुवर्ण आदिका दान सत्पात्रको उसका पूजन करके दिया जाना चाहिये।

विद्या एवं तपस्यासे हीन ब्राह्मणको प्रतिग्रह (दान) स्वीकार नहीं करना चाहिये। इस प्रकार दान लेनेपर वह प्रदाता और स्वयंको अधोगामी बना देता है। प्रतिदिन उपयुक्त पात्रको दान देना चाहिये। निमित्त (सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण आदि विशेष अवसर) उपस्थित होनेपर विशेष रूपसे अधिक दान देना चाहिये। किसीके याचना करनेपर भी यथाशक्ति अपनी श्रद्धाके अनुसार दान देना चाहिये। सुवर्णसे अलंकृत सींगोंवाली, चाँदीसे मढ़े हुए खुरोंवाली, सुन्दर वस्त्राच्छादित, अधिक दूध देनेवाली, सुशील गौका यथाशक्ति दक्षिणाके साथ दान करना चाहिये और दान देते समय साथमें कांस्यपात्र भी देना चाहिये।

सींगमें दस सौवर्णिक (एक सौ साठ माशा) सोना तथा खुरमें सात पल चाँदी लगाना चाहिये एवं दोहन-पात्र पचास पल काँसेका होना चाहिये।

गौका बछड़ा भी अलंकृत होना चाहिये। गौ रोगरहित तथा सवत्सा होनी चाहिये। यदि बछड़ा न हो तो स्वर्ण या पिप्पलकाष्ठका बाछा या बाछी बनाकर देना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रदाता बछड़ेके शरीरमें स्थित रोम-संख्याके अनुसार उतने ही वर्षपर्यन्त स्वर्गका उपभोग करता है। यदि गौ कपिला (भूरे रंगकी) होती है तो वह दाताके सात कुलोंका उद्धार कर देती है।

जबतक प्रसव कर रही गौकी योनिमें बछड़ेके दोनों पैरोंसहित मुख दिखायी देता है और जबतक वह गर्भका प्रसव नहीं कर देती है, तबतक गौको पृथ्वीके समान ही मानना चाहिये।

सामर्थ्यके अभावमें स्वर्णमय सींग आदिसे युक्त गौका दान यदि न किया जा सके तो भी रोगरहित, हृष्ट-पुष्ट, दूध देनेवाली धेनु अथवा दूध न देनेवाली गर्भिणी गौका जो दान करता है, वह स्वर्गलोकमें महिमामण्डित होकर निवास करता है।

थके हुए प्राणीकी आसनादिक दानके द्वारा थकान दूर करना, रोगीकी सेवा करना, देवपूजन करना, ब्राह्मणका पाद-प्रक्षालन करना तथा ब्राह्मणद्वारा उच्छिष्ट किये गये स्थान और पात्रका मार्जन-कृत्य विधिवत् दिये गये गोदानके समान फलदायक होता है। ब्राह्मणके लिये जो अभीष्ट हो, उसे वह वस्तु प्रदानकर प्रदाताको स्वर्ग-लाभ लेना चाहिये।

भूमि, दीप, अन्न, वस्त्र और घृतके दानसे प्रदाता लक्ष्मी प्राप्त कर सकता है। घर, धान्य, छाता, माला, उपयोगी वृक्ष,

यान (सवारी), घृत, जल, शय्या, कुंकुम, चन्दन आदि प्रदान करनेसे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

सत्पात्रको विद्या प्रदान करनेवाला देवदुर्लभ ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। मूल्य लेकर भी वेदोंके अर्थ, यज्ञोंकी विभिन्न विधियोंको सम्पादित करनेवाले तथा शास्त्र और धर्म-शास्त्रोंको लिखनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। वेद-शास्त्र ही संसारके मूल (व्यवस्थापक) हैं। इसी कारण ईश्वरने सबसे पहले इन्हींकी सृष्टि की। अत: सब प्रकारका सत्प्रयत्न करके वेदोंका अर्थ-संग्रह करना चाहिये अर्थात् वेदोंके तात्पर्यको समझनेके लिये भलीभाँति प्रयास करना चाहिये। जो अधिकारी इतिहास अथवा पुराण लिखकर दान देता है, वह ब्रह्मदानके समान प्राप्त पुण्यका द्विगुणित पुण्य प्राप्त करता है।

द्विजको नास्तिकोंके वचन, कुतर्क तथा प्राकृत और म्लेच्छ-भाषा-भाषित वचन नहीं सुनने चाहिये, क्योंकि ये शब्द द्विजको अधोगतिमें ले जाते हैं।

दान ग्रहण करनेका सामर्थ्य रहनेपर भी जो लोग दान ग्रहण नहीं करते, वे लोग उन्हीं लोकोंको प्राप्त करते हैं, जो दान-दाताको प्राप्त होते हैं।

कुश, शाक, दूध, गन्ध तथा जल—ये वस्तुएँ बिना माँगे यदि कुलटा, पतित, नपुंसक एवं शत्रुके अतिरिक्त किसी दुष्कृतीके द्वारा भी दी जा रही हैं तो भी इनका प्रत्याख्यान नहीं करना चाहिये। यदि कोई सुकृती इन्हें बिना याचनाके दे रहा है, तब तो इनके प्रत्याख्यानका कोई प्रसंग ही नहीं है। देवता तथा अतिथिकी पूजा करनेके लिये, अपने माता-पिता आदिके भरण-पोषणके लिये तथा अपने जीवनकी रक्षाके लिये पतित आदि अत्यन्त कुत्सितको छोड़कर अन्य सभीसे जितना अत्यावश्यक है, उतना प्रतिग्रह लिया जा सकता है। (अध्याय ९८)

श्राद्धके अवसर तथा अधिकारी; श्राद्धकी संक्षिप्त विधि, महिमा और फल

याज्ञवल्क्यजीने कहा—ऋषिगणो! अब मैं सर्वपाप-विनाशिनी श्राद्ध-विधिका वर्णन करता हूँ।

अमावास्या, अष्टका[1], वृद्धि (पुत्रजन्म आदि), कृष्णपक्ष, उत्तरायण, दक्षिणायन, द्रव्य (अन्नादि)-लाभ होना, श्राद्ध-योग्य ब्राह्मणकी प्राप्ति होना, विषुवत्-संक्रान्ति (सूर्यके तुला और मेषराशिपर संक्रमण करनेका समय), मकर-संक्रान्ति, व्यतीपात, गजच्छाया-योग, चन्द्र-सूर्यग्रहण तथा कर्ताकी श्राद्धके प्रति अभिरुचि होना—ये सब श्राद्धके काल (अवसर) कहे गये हैं।

जो ब्राह्मण युवा (मध्यम वयस्क) होते हुए सभी वेदोंमें अग्र्य (सतत अस्खलित अध्ययनमें समर्थ), श्रोत्रिय, ब्रह्मवित्, मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदके तात्पर्यके वेत्ता, ज्येष्ठ साम नामक साम-विशेषके अध्ययनके लिये विहित व्रतके आचरणके साथ ज्येष्ठ सामके अध्येता, त्रिमधु नामके ऋग्वेदके एकदेशके अध्ययनके लिये विहित व्रतके आचरणके साथ त्रिमधुके अध्येता तथा ऋक् और यजुके एकदेश त्रिसुपर्णके अध्ययनके लिये विहित व्रतके आचरणके साथ त्रिसुपर्णके अध्येता ब्राह्मण हैं, ये श्राद्धकी सम्पत्ति माने जाते हैं, अर्थात् इन्हें भोजन कराने या दान देनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। ऐसे ही भानजा, श्राद्ध-योग्य ब्राह्मणोंके लक्षणोंसे विशिष्ट ऋत्विक्, यजुर्वेदके एकदेश-विशेषके अध्ययनके अङ्ग व्रतके आचरणके साथ उस एकदेशके अध्येता, दौहित्र, शिष्य तथा अन्य सम्बन्धी—बन्धु-बान्धव एवं कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ पञ्चाग्नि[2]-विद्याके अध्येता, ब्रह्मचारी, मातृ-पितृभक्त एवं ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मण श्राद्धकी सम्पत्ति (श्राद्धमें भोजनीय एवं दान देने योग्य) हैं।

जो रोगी (महारोगसे युक्त), अङ्गहीन, अधिकाङ्ग, काण, पौनर्भव[3] (विधवाके पुनर्विवाहके अनन्तर उत्पन्न पुत्र),

१-हेमन्त-ऋतु एवं शिशिर-ऋतुके महीनोंमें आनेवाली कृष्णपक्षकी अष्टमीमें 'अष्टका' होती है।

२-पञ्चाग्नि—सभ्य, आवसथ्य, आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि—ये पाँच अग्नियाँ हैं।

३-पौनर्भव—पुनर्भूसे उत्पन्न। पुनर्भू उस स्त्रीको कहते हैं, जो विवाहके पहले किसी दूसरे पुरुषसे विवाहित हो चुकी है अथवा किसी दूसरे पुरुषके संसर्गसे दूषित हो चुकी है।

अवकीर्णी[1] आदि[2] आचारभ्रष्ट तथा अवैष्णव हैं, वे श्राद्धके योग्य नहीं हैं।

श्राद्धके एक दिन पूर्व ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये। निमन्त्रित ब्राह्मणोंको उस दिन संयम रखना चाहिये। श्राद्ध-दिवसके पूर्वाह्णकालमें उपस्थित उन ब्राह्मणोंको आचमन कराकर आसनोंपर बैठा दे। विश्वेदेव अथवा आभ्युदयिक श्राद्धके लिये दो ब्राह्मण तथा पितृपात्रके स्थानपर यथाशक्ति ब्राह्मणको बैठाना चाहिये अथवा इनमें दो ब्राह्मणोंको विश्वेदेवपात्रके आसनपर पूर्वाभिमुख तथा तीन ब्राह्मणोंको पितृपात्रके आसनपर उत्तराभिमुख अथवा दोनों (देव-पितर)-के लिये एक-एक ब्राह्मण आसनपर बैठाना चाहिये। इसी प्रकार मातामहादिके श्राद्धमें व्यवस्था करनी चाहिये और मातामह-श्राद्धमें विश्वेदेव-सम्बन्धी कृत्य अलग-अलग या एक साथ किया जा सकता है।

इसके बाद ब्राह्मणोंको हस्त-प्रक्षालनके लिये जल (हस्तार्घ्य) और आसनके लिये कुश प्रदानकर उन्हींकी अनुज्ञासे '**विश्वे देवास॰**' इस मन्त्रसे विश्वेदेवका आवाहन करके भोजन-पात्रमें यव विकीर्ण करे। तदनन्तर पवित्रकयुक्त अर्घ्यपात्रमें '**शं नो देवी॰**' इस मन्त्रसे उसमें जल तथा '**यवोऽसि॰**' मन्त्रद्वारा यव डालकर '**या दिव्या॰**' मन्त्रसे ब्राह्मणके हाथमें अर्घ्योदक प्रदानकर गन्ध, दीपक, माला, हार आदि आभूषण तथा वस्त्र दान करे।

तत्पश्चात् अपसव्य होकर पितरोंको अप्रदक्षिण (वाम)-क्रमसे स्थान (कुशरूपी आसन) प्रदान करे और (आसनके लिये मोटकरूप) द्विगुणित कुश देकर '**उशन्तस्त्वा॰**' मन्त्रसे उन पितरोंका आवाहन करे। उसके बाद पितृ-स्थानपर विराजमान ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर '**आयन्तु नः पितरः॰**' इस मन्त्रका जप करे।

पितृकार्यमें यवके स्थानपर तिलोंका प्रयोग करना चाहिये और तिलके साथ उन पितृगणोंको पूर्ववत् अर्घ्यादि प्रदान करे। उन अर्घ्यों (अर्घ्यपात्रों)-के संस्रव (ब्राह्मणके हाथमें दिये गये अर्घ्योदकका नीचे गिरा हुआ जल)-को पितृपात्रमें रखकर और दक्षिणाग्र कुशस्तम्बको भूमिपर रखकर उसके ऊपर '**पितृभ्यः स्थानमसि॰**' इस मन्त्रके द्वारा उक्त अर्घ्यपात्र (पितरोंके वामभागमें) भूमिपर उलटकर रख दे। उसके बाद घृत-सम्मिश्रित अन्नको अग्निमें प्रदान करनेके लिये आचार्यसे श्राद्धकर्ता अग्नौकरणकी आज्ञा प्राप्त करे। जब आचार्य '**ऐसा ही करो**' यह कह दें तो उन्हें पितृयज्ञके समान ही उस अग्निमें युक्त घृताक्त हव्यका हवन करके आहुति करनेसे शेष बचे हुए अन्नको समाहित मनसे पितरोंके भोजन-पात्रोंमें रख दे। पितरोंके भोजन-पात्रोंके रूपमें यथाशक्ति चाँदीके पात्रोंका प्रयोग करना चाहिये।

'**पृथिवी ते पात्रं॰**' मन्त्रसे पात्रको अभिमन्त्रित करे। '**इदं विष्णुः**' मन्त्रका पाठ करे और ब्राह्मणके अंगुष्ठको पितरोंके लिये परिवेशित अन्नमें प्रवेशित करे। व्याहृतियोंके सहित 'गायत्री' एवं '**मधुवाता॰**' मन्त्रका जप करके सुखपूर्वक भोजन करें, इस प्रकार ब्राह्मणोंसे निवेदन करे और ब्राह्मण मौन होकर भोजन करें। श्राद्धकर्ता क्रोधादिसे रहित होकर बड़े ही श्रद्धा-भावसे उन ब्राह्मणोंको बिना शीघ्रता किये उनका अभीष्ट अन्न तथा हविष्यान्न उन्हें प्रदान करे और ब्राह्मणोंकी तृप्तितक '**पुरुषसूक्त**' तथा '**पवमानसूक्त**' आदिका जप करता रहे। उसके बाद पुनः पहलेके समान '**मधुवाता॰**' मन्त्रका पाठ करे और शेषान्नको लेकर उन संतृप्त ब्राह्मणोंके द्वारा 'हम तृप्त हो गये', इस प्रकार कहनेपर उन ब्राह्मणोंकी अनुज्ञासे श्राद्धकर्ता दक्षिणाभिमुख होकर तिलसहित उस शेषान्नको ब्राह्मणोंके उच्छिष्ट पात्रोंके समीपमें ही भूमिपर जलके साथ रख दे और प्रत्येक ब्राह्मणको मुख-प्रक्षालनके लिये अलग-अलग जल प्रदान करे।

उच्छिष्टके समीपमें पितर आदिके लिये पिण्डदान करके उसी प्रकार मातामहादिके लिये भी पिण्डदान करे। उसके बाद ब्राह्मणोंको आचमन कराये। तदनन्तर ब्राह्मणोंके '**स्वस्ति**' ऐसा कहनेपर श्राद्धकर्ता '**अक्षय्यमस्तु**' कहकर ब्राह्मणोंके हाथमें जल प्रदानकर यथासामर्थ्य दक्षिणा दे और '**स्वधां वाचयिष्ये**' ऐसा कहे। '**वाच्यताम्**' के द्वारा ब्राह्मण श्राद्धकर्ताको आज्ञा प्रदान करें। उनकी अनुज्ञा प्राप्तकर श्राद्धकर्ता पितृजनोंके लिये '**स्वधा**' इस वाक्यका प्रयोग करे। पुनः उन ब्राह्मणोंके द्वारा '**स्वधा**' ऐसा कह देनेके पश्चात् श्राद्धकर्ता पृथ्वीपर जलसिञ्चन करे।

१-अवकीर्णी—ब्रह्मचर्याश्रममें रहते हुए जिसका वीर्य स्खलित हो गया है।

२-आदिसे कुण्ड, गोलक, कुनखी एवं काले दाँतवाले ब्राह्मण समझे जाने चाहिये। पति जीवित रहते हुए दूसरे पुरुषसे उत्पन्न कुण्ड एवं पतिके निधनके बाद दूसरे पुरुषसे उत्पन्न गोलक होता है।

'**विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम्**' यह कहकर श्राद्धकर्ता विश्वेदेवोंको जल अर्पितकर उन्हें विसर्जित करे। तदनन्तर पितरोंसे इस प्रकारकी प्रार्थना करे—

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च॥
श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति।

(९९। २६-२७)

पितृगण! हमारे यहाँ दाताओं, वेदों और संतानोंकी वृद्धि हो, हमारी श्रद्धा कभी न घटे, देनेके लिये हमारे पास बहुत सम्पत्ति हो। तदनन्तर '**वाजे वाजे०**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए श्राद्धकर्ता प्रसन्नताके साथ यथाक्रम पितरोंका विसर्जन करे। जिस अर्घ्यपात्रमें पहले संस्रव-जल रखा गया था, उस पितृपात्र (अर्घ्यपात्र)-को सीधा कर दे तथा श्राद्धकर्ता उन आमन्त्रित ब्राह्मणोंका प्रदक्षिणाके साथ अनुगमन करते हुए उन्हें विदा करे। इसके पश्चात् श्राद्धसे अवशिष्ट अन्नका भोजन करके उस रात्रिमें सपत्नीक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करे।

विवाहादिक माङ्गलिक अवसरोंपर पितरोंका नान्दीमुख श्राद्ध करना चाहिये। उनके लिये दधि, कर्कन्धू (बदरी फल)-मिश्रित यवान्नका पिण्डदान करना चाहिये।

एकोद्दिष्ट[1] श्राद्ध विश्वेदेवसे रहित एकार्घ और एक पवित्रकसे युक्त होता है। इस श्राद्धमें आवाहन और अग्नौकरण नहीं किया जाता। इस श्राद्धका सम्पूर्ण कृत्य अपसव्य अर्थात् दक्षिण कन्धेपर यज्ञोपवीत धारण करके करना चाहिये। श्राद्धकर्ता इस श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंको पवित्र भूमिपर रखे हुए आसनपर '**उपतिष्ठताम्**' कहकर बैठनेके लिये निवेदन करे। उसी प्रकार '**अभिरम्यताम्**' कहकर विसर्जन करे। ब्राह्मणोंको भी '**अभिरताः स्म**' यह वचन कहना चाहिये।

सपिण्डीकरण श्राद्धमें श्राद्धकर्ता तिल एवं गन्धमिश्रित जलसे चार पात्रों[2]को परिपूर्ण करे। उन पितृपात्रोंमेंसे एक पात्रको अर्घ्य प्रदान करनेके लिये प्रेतपात्रके रूपमें कल्पित करे। तदनन्तर श्राद्धकर्ता प्रेतपात्रमें रखे हुए अर्घ्य-जलके कुछ भागको पिता आदिके तीन पात्रोंमें मिलाकर पूर्ववत् अर्घ्यादि क्रियाका सम्पादन करे। '**ये समाना०**' इन दो मन्त्रोंके द्वारा प्रेतपिण्डको तीन भागोंमें विभक्तकर पितरोंके पिण्डोंमें मिला दे। इसके अनन्तर विहित एकोद्दिष्ट[3] श्राद्ध स्त्री (माता)-का भी करना चाहिये। जिसका सपिण्डीकरण एक वर्षसे पूर्व होता है, उसके उद्देश्यसे भी एक वर्षपर्यन्त सान्नोदक कुम्भ प्रतिदिन, प्रतिमाह यथाशक्ति ब्राह्मणको देना चाहिये। पितरोंको समर्पित पिण्डोंको गौ, अज, ब्राह्मण, अग्नि अथवा जलको अर्पित कर दे।

हविष्यान्न (तिल, व्रीहि, यव आदि)-से श्राद्ध करनेपर पितृगणोंको एक मास तथा पायससे श्राद्ध करनेपर उन्हें एक वर्षपर्यन्त संतुष्टि प्राप्त होती है।

मृत व्यक्तियोंके लिये कृष्ण चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करनेपर श्राद्धकर्ताको मृत्युके पश्चात् स्वर्ग तो प्राप्त होता ही है, जीवनकालमें भी उन (श्राद्धकर्ता)-को उत्साह, शौर्य, क्षेत्र तथा शक्तिकी प्राप्ति होती है।

जो विधिवत् अपने पितृजनोंके लिये श्राद्ध करता है, वह पुत्र, सर्वजनश्रेष्ठता, सौभाग्य, समृद्धि, प्रमुखता, माङ्गलिक दक्षता, अभीष्ट कामना-पूर्ति, वाणिज्यमें लाभ, निरोगता, यश, शोकराहित्य, परम गति, धन, विद्या, वाक्-सिद्धि, पात्र, गौ, अज, आविक (भेंड़), अश्व और दीर्घायु प्राप्तकर अन्तकालमें मोक्ष-लाभ प्राप्त करता है। कृत्तिकादिसे भरणीपर्यन्त प्रत्येक नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाले व्यक्तिको भी इन सभी सुखोंकी प्राप्ति होती है। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तथा भवन आदि सुख-साधन स्वयं ही श्राद्धकर्ताको सुलभ होते हैं अर्थात् इस प्रकारका श्राद्धकर्ता भोजन, वस्त्र तथा भवन आदिसे परिपूर्ण रहता है।

पिता-पितामहादि पितर संतुष्ट होकर श्राद्धकर्ताको नित्य आयु, संतति, धन, विद्या, राज्य, सभी प्रकारके सुख, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करते हैं। (अध्याय ९९)

विनायकशान्ति-स्नान

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे ऋषियो! अब आप सभी विनायककी अप्रसन्नतासे ग्रस्त (आविष्ट) पुरुषके लक्षणोंका श्रवण करें।

विनायकसे ग्रस्त व्यक्ति स्वप्नावस्थामें बहुत अधिक स्नान करता है। उसे स्वप्नमें मरे हुए प्राणियोंके सिरोंका दर्शन होता है। वह उद्विग्नमन रहता है। उसके सारे प्रयत्न निष्फल

१-एक व्यक्ति (पिता)-के उद्देश्यसे किया जानेवाला श्राद्ध एकोद्दिष्ट है।

२-ये चार पात्र पितरोंके लिये अलग-अलग विहित हैं। इनके अतिरिक्त विश्वेदेवके दो पात्र तो होते ही हैं।

३-इस एकोद्दिष्टका तात्पर्य यह है कि पार्वण श्राद्धमें माताका श्राद्ध अलगसे करना चाहिये (या० मिताक्षरा, श्रा० प्र० अ० श्लोक २५४)।

रहते हैं। बिना कारण उसे पीड़ा होती है। विनायककी अप्रसन्नतासे युक्त होनेपर राजा राज्यसे वञ्चित रहता है, कुमारी पतिसे वञ्चित रहती है तथा गर्भिणी स्त्री पुत्र-लाभसे वञ्चित रहती है। अतएव विनायककी शान्तिके लिये किसी पवित्र दिन एवं शुभ मुहूर्तमें उसे विधिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। स्नानकी विधि संक्षेपमें इस प्रकार है—भद्रासनपर बिठाकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचनपूर्वक स्नान कराना चाहिये। पीली सरसों पीसकर उसे घृत-मिश्रित करके उबटन बनाये और उस व्यक्तिके सम्पूर्ण शरीरमें मले। फिर उसके मस्तकपर सर्वौषधिसहित सब प्रकारके सुगन्धित द्रव्यका लेप करे। सर्वौषधियुक्त चार कलशोंके जलसे स्नान कराना चाहिये। सरोवर आदि पाँच स्थानोंकी मिट्टी, गोरोचन, गन्ध और गुग्गुल—ये वस्तुएँ भी उन कलशोंके जलमें छोड़े।

प्रथम कलशको लेकर आचार्य निम्नलिखित मन्त्रसे उसे स्नान कराये—

सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पावनं स्मृतम्॥
तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते।
(१००।६-७)

जो सहस्रों नेत्र (अनेक प्रकारकी शक्तियों)-से युक्त हैं, जिनकी सैकड़ों धाराएँ (प्रवाह) हैं और जिसे महर्षियोंने पवित्र करनेवाला बताया है, उस पवित्र जलसे मैं (विनायकग्रस्त) तुम्हारा (उपद्रवकी शान्तिके लिये) अभिषेक करता हूँ। यह पावन जल तुम्हें पवित्र करे।

द्वितीय कलशके जलसे निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए अभिषेक करे—

भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः॥
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः।
(१००।७-८)

राजा वरुण तथा भगवान् सूर्य एवं देवगुरु बृहस्पति आपके सौभाग्यकी अभिवृद्धि करें; इसी प्रकार देवराज इन्द्र, वायुदेव तथा सप्तर्षिगण भी आपके सौभाग्यकी अभिवृद्धि करते रहें।

तृतीय कलशके जलसे निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए अभिषेक करे—

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि॥
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तद्घ्नन्तु ते सदा।
(१००।८-९)

तुम्हारे केशोंमें, सीमन्तमें, मस्तकपर, ललाटमें, कानोंमें और नेत्रोंमें भी जो दुर्भाग्य है, उसे जलदेवता सदाके लिये शान्त करें।

तदनन्तर पहले कहे गये तीनों मन्त्रोंसे चतुर्थ कलशके जलसे स्नान कराये। इसके बाद बाँयें हाथमें कुशा लेकर स्नान किये हुए प्राणीके सिरको कुशसे स्पर्श करते हुए ब्राह्मणको संयमित होकर गूलरकी लकड़ीसे निर्मित स्रुवाके द्वारा सार्षपतैल (सरसोंका तेल)-से अग्निमें आहुति प्रदान करनी चाहिये। आहुति देनेके लिये ये मन्त्र विहित हैं—'मिताय स्वाहा', 'सम्मिताय स्वाहा', 'शालाय स्वाहा', 'कटङ्कटाय स्वाहा', 'कूष्माण्डाय स्वाहा', 'राजपुत्राय स्वाहा' ('स्वाहा' के पूर्व प्रयुक्त सभी नाम विनायकके हैं। या० मि० ग० प्र० अ० श्लोक २८५)।

इसके अनन्तर लौकिक अग्निमें स्थालीपाक-विधिसे चरु पकाकर उससे सभी निर्दिष्ट विनायक नामवाले 'स्वाहा' युक्त छः मन्त्रोंसे उसी लौकिक अग्निमें ही हवनकर अवशिष्ट हविशेषके द्वारा इन्द्र, अग्नि, यम आदिको बलि देनी चाहिये। तत्पश्चात् किसी चतुष्पथ (चौराहे)-पर कुशोंका आसन बिछाकर उसमें पुष्प, गन्ध, उण्डेरककी माला, कच्चे-पक्के चावल, घृतमिश्रित पुलाव, मूली, पूड़ी, पुआ, दही, पायस, घृत, गुड़पिष्ट, लड्डू तथा इक्षु—इन सभी सामग्रियोंको एकत्र करके रख दे। तदनन्तर विनायकजननी भगवती अम्बिकाका उपस्थान करे और हाथ जोड़कर अर्घ्य प्रदान करे।

पुत्रजन्मकी कामना करनेवाली स्त्रीको दूर्वा और सरसोंके पुष्पोंसे भगवती दुर्गाकी अर्चना करके स्वस्ति-वाचनके साथ इस प्रकार उनकी प्रार्थना करनी चाहिये—

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे।
पुत्रान्देहि श्रियं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे॥
(१००।१६)

हे भगवति! आप मुझे रूप, यश और ऐश्वर्य प्रदान करें। हे देवि! आप मेरे लिये पुत्र दें, लक्ष्मी दें और मेरी सभी कामनाओंको परिपूर्ण करें।

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन प्रदानकर संतुष्ट करे। अपने गुरुको दो वस्त्र प्रदानकर अन्य ग्रहोंकी पूजा करके सूर्यार्चनमें निरत रहे। इस प्रकार विनायक और ग्रहोंका पूजन करके मनुष्य अपने सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त करता है। (अध्याय १००)

ग्रहशान्ति-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे मुनियो! लक्ष्मी एवं सुख-शान्तिके इच्छुक तथा ग्रहोंकी दृष्टिसे दुःखित जनोंको ग्रहशान्तिके लिये तत्सम्बन्धित यज्ञ करना चाहिये। विद्वानोंके द्वारा सूर्य, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु—ये नौ ग्रह बताये गये हैं। इनकी अर्चाके लिये इनकी मूर्ति क्रमशः इन द्रव्योंसे बनानी चाहिये—ताम्र, स्फटिक, रक्तचन्दन, स्वर्ण, सुवर्ण, रजत, अयस् (लोहा), सीसा तथा कांस्य। अर्थात् सूर्यग्रहके लिये ताम्र धातु, चन्द्रके लिये स्फटिक, मंगलके लिये रक्तचन्दन, बुध एवं बृहस्पतिके लिये स्वर्ण, शुक्रके लिये रजत, शनिके लिये लोहा, राहुके लिये सीसा तथा केतुके लिये कांस्य धातु प्रशस्त है।

सूर्यका वर्ण लाल, चन्द्रमाका सफेद, मंगलका लाल, बुध तथा बृहस्पतिका पीला, शुक्रका श्वेत, शनि, राहु और केतुका काला वर्ण होता है। इसी वर्णके इनके द्रव्य भी होते हैं। एक पाटेपर वस्त्र बिछाकर ग्रहवर्णोंके अनुसार निर्दिष्ट द्रव्योंके द्वारा विधिपूर्वक उनकी स्थापना तथा पूजा-होम करे। उन्हें सुवर्ण, वस्त्र तथा पुष्प समर्पित करे। उनके लिये गन्ध, बलि, धूप, गुग्गुल भी देना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रोंके द्वारा प्रत्येक ग्रह-देवताके निमित्त चरु पदार्थ अर्पित करना चाहिये।

उसके बाद यथाक्रम '**ॐ आकृष्णेन रजसा०**' इस मन्त्रके द्वारा सूर्य, '**ॐ इमं देवा०**' मन्त्रसे चन्द्र, '**ॐ अग्निर्मूर्धादिवः ककुत्०**' मन्त्रके द्वारा मंगल, '**ॐ उद्बुध्यस्व०**' मन्त्रसे बुध, '**ॐ बृहस्पते०**' इस मन्त्रके द्वारा बृहस्पति, '**ॐ अन्नात्परिस्रुतम्०**' मन्त्रसे शुक्र, '**ॐ शं नो देवी०**' मन्त्रके द्वारा शनि, '**ॐ कयानश्चित्र०**' मन्त्रसे राहु तथा '**ॐ केतुं कृण्वन्०**' मन्त्रके द्वारा केतु ग्रहके लिये आहुति देनी चाहिये।

इन ग्रहोंके लिये इसी क्रमसे मन्दार, पलाश, खैर, अपामार्ग (चिचड़ा), पिप्पल, गूलर, शमी, दूर्वा और कुशकी समिधाएँ विहित हैं। इन समिधाओंको घृत, दधि तथा मधुसे मिश्रितकर हवन करना चाहिये। तदनन्तर क्रमानुसार उपर्युक्त मन्त्रोंके द्वारा पदार्थोंकी आहुति प्रदान करे। यथा—सूर्यके लिये गुड़, चन्द्रके लिये भात, मंगलके लिये पायस, बुधके लिये साठी चावलकी खीर, बृहस्पतिके लिये दही-भात, शुक्रके लिये घृत, शनिके लिये अपूप (पुआ), राहुके लिये फलका गूदा और केतुके लिये अनेक वर्णके पकाये हुए धान्यकी आहुति देनी चाहिये।

द्विजको चाहिये कि इसी क्रमसे प्रत्येक ग्रहके लिये अन्न भी दानरूपमें दे। तदनन्तर प्रत्येक ग्रहके निमित्त यथाक्रम—धेनु, शंख, बैल, सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, कृष्णा गौ, अयस् (शस्त्र आदि) तथा छागकी दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार ग्रहोंकी सदैव पूजा करनेसे मनुष्यको राज्यादि फल प्राप्त होते हैं। (अध्याय १०१)

वानप्रस्थ-धर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे महर्षियो! अब मैं वानप्रस्थाश्रमके धर्मका वर्णन कर रहा हूँ, आप सभी इसका श्रवण करें।

वानप्रस्थ-आश्रममें प्रविष्ट पुरुषको अपनी पत्नीके संरक्षणका भार पुत्रोंके ऊपर छोड़कर अथवा पत्नीके सहित वनमें जाना चाहिये।

वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाला ब्रह्मचर्य-व्रतका निर्वाह करते हुए अपनी श्रौत-अग्नि एवं गृह-अग्निके साथ वनमें जाय। शान्त एवं क्षमावान् रहकर वह अहर्निश देवोपासनामें निमग्न रहे। वह बिना जोती हुई भूमिसे उत्पन्न अन्नके द्वारा अग्निदेव, पितरों, देवताओं, अतिथियों तथा भृत्योंको तृप्त (संतुष्ट) करे। आत्मज्ञानमें तत्पर रहनेवाला वह वानप्रस्थी दाढ़ी, जटा तथा लोमराशिको धारण करे, इन्द्रियोंका दमन करे, त्रिकाल स्नान करे एवं अपनेको प्रतिग्रह अर्थात् दान-ग्रहणसे दूर रखे।

ऐसे व्यक्तिको स्वाध्यायवान्, भगवद्ध्यानपरायण तथा सभी लोगोंके हितसाधनमें लगे रहना चाहिये। उसको जीवनयापनके लिये सीमित अर्थ-संग्रह करना चाहिये।

उसके पास जो कुछ शेष सामग्री हो, उसका आश्विन-मासमें परित्यागकर वह व्रतादिके द्वारा ही समय व्यतीत करे। यदि शक्ति हो तो एक मास या एक पक्षका व्रतकर

मास या पक्षके अन्तमें ही भोजन करे। ऐसे व्रती अपने दाँतोंको ही उलूखल मानकर उन्हींसे अन्नको तुषसे विहीनकर अपनी प्राण-रक्षाके लिये उपयोगमें लाते हैं।

वानप्रस्थीको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये, भूमिपर सोना चाहिये और वह अपने सभी धार्मिक कृत्योंका सम्पादन यथासम्भव फलसे करे (अन्नसे नहीं)। वह ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्निके[1] मध्य स्थित रहे, वर्षा-ऋतुमें स्थण्डिल (खुले चबूतरे)-पर शयन करे तथा हेमन्त-ऋतुमें आर्द्रवस्त्रोंको धारण करके योगाभ्यासके द्वारा अपने दिन व्यतीत करे।

जो काँटोंसे उसे पीड़ा पहुँचाये उसके प्रति भी क्रोध न करे और जो अङ्गोंमें चन्दनका अनुलेपन करे उसपर भी प्रसन्न न हो, उन दोनोंके प्रति वह समान भाव रखे। वानप्रस्थियोंमें दुःख और सुख भोगनेकी एक समान ही क्षमता होनी आवश्यक है। (अध्याय १०२)

संन्यास-धर्म-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने पुनः कहा—हे सज्जनवृन्द! अब मैं भिक्षु-धर्म (संन्यास-धर्म)-का वर्णन करूँगा। आप सब उसका ज्ञान प्राप्त करें।

गृहस्थाश्रम एवं वानप्रस्थाश्रममें विहित सभी श्रौत इष्टियोंको सम्पन्नकर सर्व वेद सम्बन्धी दक्षिणा जिस इष्टिमें विहित है, उस प्राजापत्य इष्टिको भी सम्पन्न करके अन्तमें वेद-विहित विधानसे समस्त श्रौताग्नियोंको अपनेमें आरोपित करके संन्यास ग्रहण किया जा सकता है। संन्यासीको चाहिये कि वह सभी प्राणियोंका हितैषी हो, शान्त हो, त्रिदण्डी हो, (संन्यासीके लिये बाँसके बने तीन दण्ड धारण करनेका विधान है।) वह कमण्डलु धारण करे। सभी प्रकारके सुख-साधनयुक्त भवनोंका परित्यागकर भिक्षार्थी होकर ग्रामका आश्रय ग्रहण करे। प्रमादरहित होकर भिक्षाटन करे और सायंकाल ग्राममें न दिखलायी पड़े। जो ग्राम भिक्षुकोंसे[2] रहित हो, वहाँपर वह लोभशून्य होकर प्राणधारणमात्रके लिये भिक्षा माँगे।

यम-नियमका पालन करते हुए योग-सिद्ध होकर संन्यासीको एकदण्डी[3] अथवा परमहंस[4] बनना चाहिये। इस प्रकार रहता हुआ संन्यासी शरीरका परित्यागकर इसी लोकमें अमरत्व प्राप्त कर लेता है। दान देनेवाला, अतिथिका आदर करनेवाला, ब्रह्मज्ञ यथाविधि श्राद्ध करनेवाला गृहस्थ भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १०३)

कर्मविपाक-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—पापकर्मसे उत्पन्न होनेवाली नारकीय यातनाओंको भोगनेसे उस पापकर्मका क्षय होता है। शेष बचे हुए पापोंका शमन करनेके निमित्त प्राणी पुनः विभिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है। यथा—

ब्रह्महन्ता नरकभोगके पश्चात् श्वान, गर्दभ और ऊँट-योनिमें उत्पन्न होता है। मदिरापायी व्यक्ति मेढक और जुआँ होता है। सुवर्णका चोर कृमि-कीट तथा गुरुतल्पगामी घास-फूसादिकी योनिमें जन्म लेता है। इन योनियोंमें पाप-शमन होनेके पश्चात् वे ब्रह्महत्यादिके पापी पुनः यथाक्रम क्षयरोगी, काले दाँतवाले, कुत्सित नखवाले तथा शिपिविष्टक (कुष्ठरोगी) होकर जन्म ग्रहण करते हैं अथवा ये सभी दोष उक्त प्राणियोंकी संततिमें प्रकट होते हैं।

अन्नकी चोरी करनेवाला रोगी, वचन देकर उसका पालन न करनेवाला गूँगा, धान्यका अपहरणकर्ता अधिक अङ्गोंवाला, चुगलखोर दुर्गन्धसे युक्त नाकवाला, तेलका चोर तैलपायी अर्थात् तिलचट्टा कीट, अविद्यमान दोषकी सूचना देनेवाला दुर्गन्धयुक्त मुखवाला होता है।

ब्राह्मणके धनका हरण करनेवाला तथा कन्याको

१-चार दिशाओंमें चार अग्नि और ऊपर सूर्य।

२-व्यवसायकी दृष्टिसे अनेक प्रकारके पाखण्डके साथ भिक्षा माँगनेवाले यहाँ 'भिक्षुक' शब्दसे अभिप्रेत हैं।

३-बाँसके बने हुए तीन दण्डोंके विकल्पमें बाँसके एक दण्डके धारणका भी विधान है। अतः संन्यासी बाँसके एक दण्डको भी धारण कर सकता है। ऐसे संन्यासीको 'एकदण्डी' कहते हैं।

४-परमहंस उस अवधूतको कहते हैं, जो अपने शरीरकी ममतासे सर्वथा विनिर्मुक्त हो। ये यथेच्छ सवस्त्र-निर्वस्त्र आदि किसी भी रूपमें रह सकते हैं। इसके लिये कोई बन्धन नहीं होता।

खरीदनेवाला व्यक्ति वनमें राक्षस तथा बैल होता है। रत्नका अपहरणकर्ता हीनजाति और शाक-पातका चोर मयूर-योनिमें जन्म लेता है। पुष्पका चोर छछुन्दरी, धान्यापहारी मूषक, फलका चोर वानर, पशुओंका हरण करनेवाला बकरी तथा दूधहर्ता काकयोनिमें उत्पन्न होता है।

मांस, वस्त्र और नमककी चोरी करनेवाले मनुष्य यथाक्रम—गृध्र, श्वेतकुष्ठी तथा चीरी[1]की योनि प्राप्त करते हैं। उस फलको भोगकर वे तिर्यक्‌योनिमें उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार भोग भोगनेके पश्चात् ये लक्षणभ्रष्ट पतितजन दूसरे जन्ममें दरिद्र या पुरुषाधम होते हैं। तत्पश्चात् अपने सत्कर्मोंसे निष्कलुष होकर वे योगीके महान् कुलमें जन्म लेते हैं और सुलक्षणोंसे युक्त होते हुए वे धन-धान्यसे सम्पन्न हो जाते हैं। (अध्याय १०४)

प्रायश्चित्त-विधान एवं सान्तपन, कृच्छ्र, पराक तथा चान्द्रायणादि व्रतोंका विविध स्वरूप

याज्ञवल्क्यजीने पुनः कहा—हे मुनियो! विहित कर्म न करनेसे, निन्दित (निषिद्ध) कर्मका आचरण करनेसे एवं इन्द्रिय-निग्रह न करनेके कारण मनुष्य अधोगतिको प्राप्त करता है[2]। अतएव आत्मशुद्धिके लिये प्रयत्नपूर्वक प्रायश्चित्त करना चाहिये। इस प्रकार प्रायश्चित्त-कर्म करनेसे उसकी अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाती है और लोक भी उसके साथ प्रसन्नतापूर्वक व्यवहार करता है। प्रायश्चित्तसे पापका विनाश भी हो जाता है। प्रायश्चित्त न करनेवाले तथा पश्चात्तापसे रहित पापीजन पापके प्रभावसे महारौरव नरकसे भी महाभयंकर तामिस्र, लोहशंकु, पूतिगन्ध, हंसाभ, लोहितोद, संजीवन, नदीपथ, महानिलय, काकोल, अन्धतामिस्र तथा तापन नामक नरकमें जाते हैं।

ब्रह्महन्ता, मद्यपी, ब्राह्मणके सुवर्णका[3] चोर, गुरुपत्नीगामी तथा इनका संसर्ग करनेवाले मनुष्य अपने पापके कारण अवीचि तथा कुम्भीपाक नामक महाभयानक नरकका भोग करते हैं।

गुरु एवं वेदकी निन्दा करना ब्रह्महत्याके समान हैं। निषिद्ध पदार्थका भक्षण, कुटिलतापूर्वक आचरण और रजस्वला स्त्रीका अधरपान मदिरापान नामक महापातकके सदृश माना जाता है। अश्व तथा रत्नादिका अपहरण, सुवर्ण-चोरीके महापापकी भाँति होता है। मित्रकी पत्नी, अपनी अपेक्षा उत्तम जातिकी कन्या, चाण्डाली और बहन तथा पुत्रवधूके साथ सहवास करना गुरुपत्नी-गमनके समान महापाप स्वीकार किया गया है। इसी प्रकार माता-पिताकी बहन, मामी, विमाता, आचार्यपुत्री, आचार्यपत्नी तथा पुत्रीके साथ रमण करनेवाला व्यक्ति भी गुरुपत्नीगामीके समान ही महापातकी होता है।

ऐसा महापापी मनुष्य लिंग-छेदनके पश्चात् वध करनेके योग्य होता है। इस प्रकारके पापमें यदि स्त्री सकाम होकर संश्लिष्ट होती है तो उसके लिये भी इसी प्रकारका प्रायश्चित्त-विधान कहा गया है।

गोहत्या, व्रात्यता (समयपर यज्ञोपवीत-संस्कार न होना अर्थात् सावित्रीच्युत होना), चोरी (ब्राह्मणका सुवर्ण अथवा सुवर्ण-सदृश अन्य द्रव्यका हरण करना), ऋण न लौटाना तथा देव, ऋषि एवं पितृ-ऋणसे मुक्त होना, अधिकारी होते हुए भी अग्न्याधान न करना, विक्री न करने योग्य लवण आदिका विक्रय करना, परिवेदन[4], रुपये लेकर अध्ययन करानेवालेसे अध्ययन करना, रुपये लेकर अध्यापन करना, परस्त्रीके[5] साथ सहवास, पारिवित्य[6], प्रतिषिद्ध सूदसे जीविकायापन, नमकका उत्पादन, स्त्रीवध, शूद्रवध, अदीक्षित वैश्य तथा क्षत्रियका वध करना और निन्दित धनसे जीविका चलाना, नास्तिकता, व्रतका लोप, सुत-विक्रय,

---

१-ऊँची आवाजवाला कीटविशेष (या० मिताक्षरा, प्रायश्चित्त प्रकरण श्लोक २१५)

२-विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति॥ (१०५। १)

३-या० मिताक्षरा प्रा०प्र० श्लोक २२७

४-सहोदर ज्येष्ठ भाईके अविवाहित रहते हुए छोटा भाई यदि विवाह एवं अग्निहोत्र ग्रहण करता है तो वही परिवेदन नामक पाप है।

५-गुरु एवं गुरुके समान श्रेष्ठजनोंके अतिरिक्त स्त्री।

६-छोटे भाईके विवाहकर लेनेपर ज्येष्ठके द्वारा विवाह न करनेपर होनेवाला दोष पारिवित्य कहलाता है।

माता-पिता तथा मित्रका परित्याग, तालाब-उद्यानका विक्रय, कन्याको दूषित करना, बड़े भाईकी उपेक्षा करके अग्न्याधान तथा विवाह करनेवालेको यजन कराना तथा ऐसे व्यक्तिको कन्यादान करना, गुरुसे अतिरिक्तके साथ कुटिलता करना, व्रतका लोप, केवल अपने लिये भोजन बनानेवाला, मद्यपान करनेवाली स्त्रीका सम्पर्क, स्वाध्याय, अग्नि, पुत्र तथा बन्धुका परित्याग, असत्-शास्त्रका अध्ययन, भार्या एवं अपना विक्रय—ये सभी निन्दित कर्म उपपातक कहे गये हैं। हे मुनियो! आप अब इनके प्रायश्चित्तका ज्ञान प्राप्त करें—

ब्रह्महत्या करनेपर पापी व्यक्ति शिरःकपाल (खर्पर-खोपड़ी)-को हाथमें लेकर तथा दूसरा एक शिरःकपाल ध्वजके समान दण्डमें लगाकर चले और भिक्षामात्रसे जीविका-निर्वाह करता हुआ अपने पापकर्मका उद्घोष करते हुए बारह वर्षतक अल्प भोजन कर आत्मशुद्धि करे अथवा जानते हुए इच्छापूर्वक ब्रह्महत्या करनेपर '**लोमभ्यः स्वाहा**' इत्यादि मन्त्रके अनुसार लोमसे शरीरके अवयवोंके प्रतिनिधिरूप यथाविहित विभिन्न द्रव्योंकी आहुति देकर अन्तमें अपने शरीरका भी प्रायश्चित्त-विधानमें निर्दिष्ट विधानके अनुसार अग्निमें प्रक्षेप करे। अपने प्राणोंका त्याग करके ब्राह्मणकी रक्षा करनेसे भी ब्रह्महत्याकी शुद्धि हो जाती है।

अत्यधिक कष्ट देनेवाले दुःसह बहुकालव्यापी रोग या अन्य किसी प्रकारके भयरूप आतंकसे ग्रस्त ब्राह्मणको अथवा मार्गमें पड़ी हुई ऐसी ही गायको निरोग या निरातङ्क करके भी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति पायी जा सकती है। यदि कदाचित् प्रमादवश ऐसे ब्राह्मणकी हत्या किसीके द्वारा होती है, जो ब्राह्मणके लिये अपेक्षित गुणोंसे युक्त नहीं है तो इस हत्यासे होनेवाले पापसे मुक्तिके लिये यह प्रायश्चित्त है—वनमें रहकर मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदका तीन बार पारायणकर अथवा सरस्वती (वेदविद्या)-की सेवामें अपना पूर्ण समर्पण करनेके साथ अपना सब कुछ धन (सर्वस्व) योग्य पात्रमें समर्पित करके अपनेको शुद्ध किया जाय। सोमयाग प्रयोगमें वर्तमान क्षत्रिय और वैश्यका वध करनेपर ब्रह्महत्याके लिये जो प्रायश्चित्त है, उसे करे। गर्भहत्या करनेवाले पापीने जिस वर्णका गर्भ नष्ट किया हो, उसी वर्णके अनुसार उसको उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये। रजस्वला होनेके बाद ऋतुस्नान की हुई स्त्रीकी हत्या करनेवाला जिस वर्णकी स्त्रीकी हत्या की है, उस वर्णके अनुसार प्रायश्चित्त करे। हत्या करनेके लिये उद्यत होनेपर यदि हत्यारेको उस कृत्यमें सफलता नहीं प्राप्त होती है तो भी वह हत्याके पापसे मुक्त नहीं है, उसको उस पापका प्रायश्चित्त करना चाहिये।

सोमयागके लिये दीक्षित ब्राह्मणकी हत्या करनेपर ब्रह्महत्याके लिये विहित प्रायश्चित्तका दुगुना प्रायश्चित्त-व्रत करे। मदिरापान करनेवालेका प्रायश्चित्त, अग्निके समान प्रतप्त मदिरा एवं गोमूत्रका अथवा अग्निके समान लाल-लाल खौलता हुआ गोघृतपान एवं गोदुग्धपान करनेसे होता है और जल समझकर भूलसे मदिरा पी लेनेपर जटाधारण करके मलिन वस्त्र धारणकर अग्निके समान तप्त घृत पीते हुए ब्रह्महत्याके लिये विहित व्रत करे तथा पुनः सवर्णोचित संस्कार करे तब शुद्धि होती है।

वीर्य, विष्ठा, मूत्रका पान करनेवाली ब्राह्मणी एवं सुरा पीनेवाली ब्राह्मणी पातकी हो जाती है। पतिलोकसे परिभ्रष्ट होकर वह क्रमशः गृध्री, सूकरी तथा कुतियाकी योनिमें जन्म लेती है।

ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी करनेवाले द्विजको चाहिये कि वह राजाको मूसल समर्पित करके अपने चौर्य-कर्मका उद्घोष करे। तत्पश्चात् उस मूसलके आघातसे वह मृत्युको प्राप्त हो या जीवित दोनों दशामें पवित्र हो जाता है। ऐसा द्विज अपनी तौलके बराबर सुवर्ण देकर भी आत्मशुद्धि कर सकता है।

जो गुरु-पत्नीके साथ सहवास करता है,उसको दहकती हुई लौहमयी स्त्री-प्रतिमाके साथ शयन करके अपने शरीरका परित्याग करना चाहिये अथवा अपना लिंग और अण्डकोश काटकर नैर्ऋत्य दिशामें फेंक देना चाहिये और शरीरपर्यन्त पीछे मुँह करके चलता रहे अथवा वह दुरात्मा तीन वर्ष प्राजापत्य तथा कृच्छ्रव्रतका पालन करे या तीन मासतक चान्द्रायणव्रत एवं वेद-संहिताका पाठ करके भी वह उस पापसे विमुक्त हो सकता है।

गो-वध करनेवाले पापीको पञ्चगव्य पानकर एक मासतक संयमित जीवन व्यतीत करना चाहिये। वह गोष्ठमें निवास करते हुए गौओंका अनुगमन तथा गौका दान करे।

चान्द्रायणव्रत करनेसे उपपातकोंकी शुद्धि होती है। एक मासतक दुग्ध-पान अथवा पराक नामक व्रत करके

उन उपपातकोंसे शुद्धि प्राप्त की जा सकती है।

क्षत्रिय-वध करनेपर मनुष्यको एक बैल और एक हजार गायोंका दान देना चाहिये अथवा वह तीन वर्षतक ब्रह्महत्याके लिये विहित व्रतका पालन करे। वैश्यका वध करनेवाले मनुष्यको एक वर्षतक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त-व्रत अथवा एक सौ गायोंका दान करना चाहिये। शूद्रकी हत्या करनेपर छ: मासतक ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त अथवा दस सवत्सा दूध देनेवाली गायोंका दान दे।[1] अदुष्ट अर्थात् सुशीला सच्चरित्र स्त्रीका वध करनेपर मनुष्यको शूद्र-वध-विहित प्रायश्चित्तव्रतका पालन करना चाहिये।

मार्जार (बिल्ली), गोह, नेवला, साधारण पशु तथा मेढककी हत्या करनेपर पापी व्यक्ति तीन रात्रितक दुग्धपानके साथ ही पाद कृच्छ्रव्रतका पालन करे। हाथीका वध करनेपर मनुष्यको पाँच नील[2] बैलोंका दान देना चाहिये। शुक पक्षीकी हत्या करनेपर दो वर्षका बछड़ा तथा क्रौंच पक्षीका वध करनेपर तीन वर्षका बछड़ा दान देना चाहिये। गधा, बकरा और भेंड़की हत्या करनेपर भी एक बैलका दान दे। वृक्ष, गुल्म, लता तथा झाड़ीको काटनेपर सौ बार गायत्री-जप करे।

मधु और मांसका भक्षण करनेपर कृच्छ्रव्रत तथा अन्य शेष व्रतोंका पालन करना चाहिये। यदि गुरुके द्वारा प्रेषित शिष्यकी मृत्यु मार्गमें हो जाती है तो गुरु तीन कृच्छ्र-व्रतका पालन करे, किंतु गुरुके प्रतिकूल कार्य करनेपर शिष्यके द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेसे ही शुद्धि हो जाती है।

शत्रुओंको धान्य आदि तथा प्रीति आदिके द्वारा प्रसन्न करे। यदि किये जा रहे उपकारके बीच ही ब्राह्मणकी मृत्यु हो जाती है तो उपकारी व्यक्तिको पाप नहीं लगता।

जो मनुष्य दूसरेको महापापी तथा उपपातकीका मिथ्या दोष लगाता है, ऐसा मनुष्य जितेन्द्रिय रहकर एक मासतक केवल जल पीकर रहे और पापमोचनमन्त्रका जप करे।

असत्-प्रतिग्रह लेनेसे जो पाप होता है, उससे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये एक मासपर्यन्त ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पयोव्रत करे। गोष्ठमें निवासकर गायत्री-मन्त्रके जपमें परायण रहे। ऐसा करनेसे मनुष्य पापविमुक्त हो जाता है।

(यथासमय यज्ञोपवीत-संस्कारादिसे वञ्चित) व्रात्यका यजन करानेवाला तीन कृच्छ्रव्रतका आचरण करके अपने उस पापसे मुक्त हो सकता है। ऐसे ही अभिचारक क्रिया करनेवालेके लिये भी यही प्रायश्चित्त है। वेदप्लावी[3] वर्षपर्यन्त जौका भक्षण करे। शरणमें आये हुएका परित्याग करनेवाला भी वर्षपर्यन्त जौका भक्षण करे।

गर्दभयान तथा उष्ट्रयानसे गमन करनेवाला तीन प्राणायाम करे। इसी प्रकार नग्नस्नान, नग्न-शयन और दिनमें स्त्रीगमन करनेपर भी तीन प्राणायामसे शुद्धि होती है।

गुरुजनोंको 'तू' कहने तथा 'हूँ' इस प्रकार कहनेसे तथा वाद-प्रतिवादमें ब्राह्मणपर विजय प्राप्त करनेसे मनुष्यको जो पाप लगता है, उससे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये पापी मनुष्यको उस गुरु या ब्राह्मणको प्रसन्नकर एक दिनका उपवास करना चाहिये। ब्राह्मणपर प्रहार करनेके लिये उद्यत होनेपर कृच्छ्रव्रत तथा प्रहार कर देनेपर अतिकृच्छ्रव्रतका पालन करना चाहिये।

जिस निन्दित आचरणके लिये प्रायश्चित्त-विधान निर्दिष्ट नहीं है, उसके लिये देश, काल, आयु, शक्ति और पापपर सम्यक् विचार करके ही प्रायश्चित्तका निर्णय करना चाहिये। शास्त्रकारोंने पाप-विमुक्तिका यही समुचित नियम कहा है।

गर्भपात तथा पतिनिन्दा करना स्त्रियोंके पतनके कारण हैं। ऐसी स्त्रियाँ अपने दोषके अनुसार शास्त्रविहित प्रायश्चित्त नहीं करती हैं तो उनका परित्याग ही उचित है अन्यथा उन्हें अपने घरमें जीवनयापनके लिये आवश्यक सामान देकर रखना चाहिये।

जो पाप विख्यात हो चुका है, उसका प्रायश्चित्त गुरुजनोंके (परिषद्के)[4] अभिमतके अनुसार ही करना

१-ये सभी प्रायश्चित्त अज्ञानपूर्वक वधके लिये विहित हैं।

२-नील-वृष एक विशिष्ट लक्षणवाले बैलको कहते हैं।

३-या० स्मृति श्लोक २८८ की मिताक्षरा व्याख्याके अनुसार प्रकृतमें विप्लव शब्दके तीन अर्थ हैं—१-जो व्यक्ति वेदकी रक्षा कर सकता है, यदि वह वेदरक्षा नहीं करता तो यह वेदका विप्लव है। २-अनध्यायकालमें वेदका अध्ययन विप्लव है। ३-वेदाध्ययनमें समर्थ अथवा वेदाध्ययन करके उत्कर्ष प्राप्त करनेवाले अधिकारीको वेदाध्ययनके प्रति अनुत्साहित करना विप्लव है। इनमेंसे किसी एक दोषसे युक्त व्यक्ति भी वेदप्लावी कहा जाता है।

४-वेद एवं धर्मके विज्ञाता चार ब्राह्मणों अथवा तीन ब्राह्मणों या ब्रह्मवेत्ता धर्मशास्त्रज्ञ एक ब्राह्मणकी भी परिषद् हो सकती है।

(या० स्मृति; आचाराध्याय श्लोक ९)

चाहिये, किंतु जो पाप विख्यात नहीं है, उसका प्रायश्चित्त गुप्तरूपसे करना चाहिये।

गुप्तरूपसे किये जानेवाले कुछ प्रायश्चित्त इस प्रकार समझना चाहिये—ब्रह्महत्या करनेवाला पापी तीन रात्रियोंतक उपवास रखकर विशुद्ध जल (नदी आदिके जलमें निमग्न होकर)-के मध्य अघमर्षण-मन्त्रका जप करे और दूध देनेवाली गायका दान दे तो वह शुद्ध हो जाता है। किंतु यह प्रायश्चित्त अज्ञानमें होनेवाली ब्रह्महत्याके लिये विहित है। अज्ञानमें होनेवाली ब्रह्महत्याके निमित्त यह प्रायश्चित्त भी किया जा सकता है कि ब्रह्महत्याकर्ता अहोरात्रपर्यन्त वायुपान करते हुए जलमें रहनेके बाद प्रातःकाल जलसे बाहर आकर '**लोमभ्य स्वाहा**'० इत्यादि आठ मन्त्रोंसे पाँच-पाँच आहुतियाँ यथाविधान अग्निमें दे।

मद्यपी एवं सुवर्णकी चोरी करनेवाले पापीको जलके मध्य स्थित होकर रुद्रदेवके मन्त्रका जप करते हुए तीन दिनका उपवास और कुष्माण्डी ऋचासे घृतकी आहुतियाँ देकर आत्मशुद्धि करनी चाहिये। गुरु-पत्नीके साथ सम्पर्क करनेवाला पापी '**सहस्रशीर्षा०**' मन्त्रका जप करके पापसे विमुक्त हो जाता है।

सौ बार प्राणायाम करनेपर मनुष्य सर्वविध पापोंसे मुक्त हो जाता है। अज्ञानवश किये गये पापकी शान्ति त्रैकालिक संध्योपासनासे हो जाती है। ब्राह्मणोंके द्वारा एकादश आवृत्ति रुद्रानुवाकोंका जप करवानेसे भी पापका शमन होता है। वेदाभ्यास करनेवाले, शान्तिपरायण और पञ्चयज्ञके अनुष्ठाताको पापका स्पर्श तक नहीं होता। वायुमात्रका भक्षण करते हुए पूरे दिन सूर्यदर्शनके साथ एवं पूरी रात्रि जलमें रहकर एक सहस्र गायत्री-मन्त्रका जप करनेसे ब्रह्महत्यासे होनेवाले पापके अतिरिक्त अन्य समस्त पापोंसे मुक्ति हो जाती है।

ब्रह्मचर्य, दया, क्षमा, भगवद्ध्यान, सत्य, निष्कपटता, अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना), माधुर्य और दम—ये दस यम माने गये हैं। स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, स्वाध्याय, इन्द्रियनिग्रह, तपस्या, अक्रोध, गुरुभक्ति और पवित्रता—ये दस नियम कहे जाते हैं।

गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, गोमूत्र तथा गोमयको 'पञ्चगव्य' कहते हैं। इस पञ्चगव्यका कुशोदकके साथ पान कर व्रती दूसरे दिन उपवास करे। इस तरह दो रात्रिका कृच्छ्र-सान्तपनव्रत होता है। पहले दिन गोदुग्ध, दूसरे दिन गोदधि, तीसरे दिन गोघृत, चौथे दिन गोमूत्र, पाँचवें दिन गोमय, छठें दिन कुशोदक मात्र और सातवें दिन कुछ भी न लेकर शुद्ध उपवास कर जो व्रत पूर्ण किया जाता है, वही महासान्तपन नामक व्रत कहा जाता है।

पलाश, गूलर, कमल, बिल्वपत्र इनमेंसे एक-एकको एक-एक दिन जलमें पकाकर उसी जलको क्रमशः एक-एक दिन पीकर चार दिन रहे एवं पाँचवें दिन कुशोदकमात्र पीकर जिस व्रतका पालन किया जाता है, उसको पर्णकृच्छ्रव्रत कहते हैं। तप्तकृच्छ्रव्रतमें व्रतीको पहले दिन गरम गोदुग्ध, दूसरे दिन गरम घृत, तीसरे दिन गरम जलका प्राशन चौथे दिन उपवास करना चाहिये। यह पवित्र (शुद्ध) करनेवाला महातप्तकृच्छ्रव्रत है।

पहले दिन एकभक्तव्रत (चौबीस घण्टेमें मध्याह्नमें केवल एक बार भोजन करना), दूसरे दिन नक्तव्रत अर्थात् चौबीस घण्टेमें एक बार (रात्रिमें), तीसरे दिन अयाचित (बिना याचनासे प्राप्त) अन्नका भोजन करना, चौथे दिन पूर्ण उपवास करनेपर पादकृच्छ्रव्रत होता है। इसी पादकृच्छ्रव्रतको तीन बार करनेसे प्राजापत्यकृच्छ्रव्रत होता है। प्राजापत्यव्रतके अनुसार भोजन और उपवासका नियम किया जाय परंतु भोजनके रूपमें उतना ही अन्न ग्रहण किया जाय, जितना एक हाथमें आता हो। इस तरह चार दिनका उपवास करनेसे अतिकृच्छ्रव्रत हो जाता है। इक्कीस दिनतक जल या दूधमात्र लेकर अतिकृच्छ्रव्रतका पालन करनेसे वह कृच्छ्रातिकृच्छ्रव्रत होता है। बारह दिन पूर्ण उपवास करनेपर एक पराकव्रत होता है।

पहले दिन जिनसे तेल निकाल लिया गया है ऐसे तिल, दूसरे दिन माँड़, तीसरे दिन मट्ठा, चौथे दिन जल तथा पाँचवें दिन सत्तूका आहारकर छठें दिन उपवास करना सौम्यकृच्छ्रव्रत कहलाता है। इस सौम्यकृच्छ्रव्रतमें बताये गये पदार्थोंका एक दिनके स्थानपर तीन-तीन दिनतक क्रमशः पंद्रह दिनतक चलनेवाला तुलापुरुषसंज्ञक कृच्छ्रव्रत होता है अर्थात् इस व्रतमें (प्रथम) तीन रात्रियोंतक निःसृत

१-'ऋतं च सत्यं०' आदि मन्त्र अघमर्षण है।

२-या० स्मृतिमें श्लोक ३४७ में इन मन्त्रोंको दिया गया है।

तेलवाले तिल, (द्वितीय) तीन रात्रियोंतक माँड़, (तृतीय) तीन रात्रियोंतक मट्ठा, (चतुर्थ) तीन रात्रियोंतक जल तथा (पञ्चम) तीन रात्रियोंतक सत्तूका भोजन करके एक दिनका उपवास करना चाहिये।

शुक्लपक्षमें तिथि-वृद्धि-क्रमसे मयूरके अण्डेके समान मात्रावाले एक-एक भोजन-ग्रासका अधिक आहार करते हुए पूर्णिमा तिथिको यह क्रम समाप्त करके पुनः कृष्णपक्षमें प्रतिदिन एक-एक अन्न-ग्रासका भक्षण-क्रमसे घटाते हुए चतुर्दशी तिथिको एक ग्रास भोजन करे एवं अमावास्याको उपवास करे, यह चान्द्रायणव्रत है। चान्द्रायणका अन्य प्रकार यह है—पूरे मासमें दो सौ चालीस ग्रास मात्र हविष्यान्न ग्रहण किया जाय। इन व्रतोंमें यह आवश्यक है कि प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालीन स्नान करके पवित्र- संज्ञक विशेष मन्त्रोंका जप करे तथा गायत्री-मन्त्रसे पिण्डग्रासको अभिमन्त्रित कर उसे ग्रहण करे।

जिन पापोंका प्रायश्चित्त शास्त्रोंमें नहीं बताया गया है, उन पापोंसे भी शुद्धि चान्द्रायणव्रतसे हो जाती है। किसी पापके निवारणके लिये प्रायश्चित्तरूपमें नहीं, अपितु पुण्य प्राप्त करनेकी दृष्टिसे जो इस चान्द्रायणव्रतका अनुष्ठान करता है, उसको चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार पुण्य प्राप्त करनेके लिये ही जो कृच्छ्रव्रत करता है, वह महान् ऐश्वर्यका लाभ प्राप्त करता है। (अध्याय १०५)

अशौच तथा आपद्वृत्ति-निरूपण

याज्ञवल्क्यजीने कहा—हे यतियो! अब मैं मृत्युके पश्चात् होनेवाले मरणाशौचका वर्णन करता हूँ, उसका श्रवण करें।

दो वर्षसे कम आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर उसको मिट्टीमें गाड़ देना चाहिये। उसके लिये जलाञ्जलि न दे[1]। दो वर्षसे अधिक आयुके बालककी मृत्यु होनेपर उसे सभी बन्धुगण मिलकर श्मशानभूमिमें ले जाकर लौकिक अग्निसे 'यमसूक्त' का पाठ करते हुए चितामें जला दें। यज्ञोपवीत होनेके अनन्तर मृत्यु होनेपर सभी क्रियाएँ आहिताग्निके समान करे। मरणतिथिके सातवें दिन अथवा दसवें दिनके पहले अपने कुल एवं गोत्रमें आनेवाले परिजन[2] 'अप नः शोशुचदघम्[3]' मन्त्रसे दक्षिण दिशाकी ओर अभिमुख होकर यथासम्भव घरसे बाहर जलाशयपर जाकर जलाञ्जलि दे। इसी प्रकार मातामह तथा आचार्य-पत्नी आदिकी भी उदकक्रिया करनी चाहिये।

मित्र, विवाहित स्त्री (लड़की, बहन आदि), भागिनेय, श्वशुर और ऋत्विक्‌का यदि मरण हुआ है तो इनके अभ्युदयके लिये इन्हें सविधि जलाञ्जलि देनी चाहिये और वह जलाञ्जलि इनके नाम, गोत्रका उल्लेख करते हुए एक ही बार देनी चाहिये। पाखण्डी एवं पतितजनोंकी मृत्यु होनेपर उनकी उदकक्रिया नहीं होती। ब्रह्मचारी, व्रात्य तथा स्वेच्छाचारिणी स्त्रीके लिये भी उदकक्रियाका निषेध है। मद्यपी और आत्महत्या करनेवाले अशौच और उदक-क्रियाके पात्र नहीं होते।

व्यक्तिके निधनपर रोना निषिद्ध है, क्योंकि जीवोंकी स्थिति अनित्य होती है। यथाशक्ति श्मशानभूमिमें दाहादिक क्रिया करके स्वजनोंको घर आना चाहिये। द्वारपर पहुँचकर वे सबसे पहले निम्बकी पत्ती चबाकर, तदनन्तर आचमन करके अग्नि, जल, गोबर और श्वेत सरसोंका स्पर्श कर पत्थरपर पैर रखकर धीरेसे घरमें प्रवेश करें। प्रेतका संस्पर्श करनेपर भी मनुष्यको घरमें प्रविष्ट होनेके पूर्व उक्त विहित-कर्म कर लेना चाहिये। सपिण्डमें आनेवाले जो लोग पुण्यप्राप्त करनेमात्रकी दृष्टिसे प्रेतका अनुगमन अर्थात् उसकी दाह-क्रिया आदिमें सम्मिलित होते हैं और वे यदि तत्काल अपनी शुद्धि चाहते हैं तो दाह-क्रिया सम्पन्न करानेके अनन्तर उन्हें स्नान एवं प्राणायाम कर लेना चाहिये।

उस दिन खरीदे हुए पदार्थोंका भोजन करके सभी परिजनोंको अलग-अलग भूमिपर सोना चाहिये। पिण्डयज्ञके पश्चात् मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे विहित पिण्डदानकी प्रक्रियाके

१-ऐसे शवको गन्ध, माल्य, अनुलेपन आदिसे अलंकृत करके श्मशानसे अन्यत्र हड्डियोंके समूहसे रहित, ग्राम या नगरके बाहरकी भूमिमें गड्ढा खोदकर रखना चाहिये। (मनुस्मृति ५। ६८-६९)

२-समानगोत्र, समानपिण्ड एवं समानोदकवाले लोग।

३-ऋग्वेद १। ९७। १—८

४-बिना माँगे हुए अन्नमात्रका भोजन करना चाहिये।

अनुसार अपसव्य आदिके रूपमें तीन दिनतक पिण्डरूप अन्न पृथ्वीपर मौन धारण करते हुए दे। श्राद्धके लिये अधिकृत व्यक्ति खुले हुए आकाशके नीचे एक शिक्य आदिके मिट्टीके पात्रमें जल और दूसरे मिट्टीके पात्रमें दूध उस प्रेतात्माको समर्पित करे। श्राद्धकर्ताको अशुचि होनेपर भी श्रौत अग्नि एवं स्मार्त अग्निमें किये जानेवाले नित्यकर्म (अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, स्मार्त अग्निमें विहित सायं-प्रातः होम)-का अनुष्ठान श्रुतिकी आज्ञाके अनुसार करना ही चाहिये।

यदि जन्मके पश्चात् और दाँत निकलनेके पूर्व बालककी मृत्यु हो जाती है तो उनके सम्बन्धियोंकी सद्यः शुद्धि हो जाती है। दाँत निकलनेके पश्चात् चूडाकरणतक एक अहोरात्रका अशौच होता है और उपनयन-संस्कारके पहले और चूडाकरणके बाद बालककी मृत्यु होनेपर तीन रात्रिके बाद अशौच समाप्त होता है। उपनयन-संस्कारके पश्चात् मृत्यु होनेपर दस रात्रियोंका अशौच होता है। सपिण्डोंके लिये दस रात्रिका एवं समानोदक लोगोंके लिये तीन रात्रिका अशौच होता है।

दो वर्षसे कम आयुवाले पुत्र एवं पुत्रीकी मृत्युपर माता-पिता दोनोंको दस रात्रिका अशौच होता है। यदि इस मरणाशौचके मध्य परिवारमें किसी बालकका जन्म या किसीकी मृत्यु होती है तो प्रथम अशौचके शेष दिनोंके पश्चात् ही शुद्धि हो जाती है।

सपिण्डकी मृत्यु होनेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके लिये क्रमशः—दस, बारह, पंद्रह तथा तीस दिनोंका अशौच माना गया है। पाणिग्रहण-संस्कारके पूर्व और वाग्दानके पूर्व तथा चूडाकरणके बाद कन्याकी मृत्यु होनेपर एक अहोरात्रमें ही शुद्धि हो जाती है। या० स्मृति २४वें श्लोककी मिताक्षराके अनुसार दाँत निकलनेके पूर्व यदि बालकका मरण हुआ और उसका अग्नि-संस्कार किया गया तो एक दिनमें शुद्धि हो जाती है। गुरु[1] और अन्तेवासी (शिष्य) वेदाङ्गोंका प्रवक्ता, मामा[2], श्रोत्रिय[3] एवं अनौरस[4] पुत्र, अपनी वह भार्या जो प्रतिलोम संकरसे अतिरिक्त किसी अन्यके आश्रयमें रह रही है, उसके तथा अपने देशके राजाकी मृत्युपर एक दिनका अशौच होता है। राजा (अभिसिक्त क्षत्रिय आदि राजा), गौ (पशुमात्र), ब्राह्मण (मनुष्यमात्र)-के द्वारा जो आहत होता है, उसके सम्बन्धियोंकी स्नानमात्रसे तत्काल शुद्धि हो जाती है। ऐसे ही जिसने विष या बन्धन आदिके द्वारा बुद्धिपूर्वक आत्मघात कर लिया है, उसके सम्बन्धियोंकी भी तत्काल स्नानमात्रसे शुद्धि हो जाती है और समस्त पृथ्वी या पृथ्वीके एक देशके अभिषिक्त अधिपति क्षत्रिय आदिको मरण या उत्पत्तिनिमित्तिक अशौच नहीं होता। सत्री (लगातार अन्नसत्र चलानेवाले), व्रती (कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रतमें प्रवृत्त), ब्रह्मचर्यव्रतमें प्रवृत्त, दाता (वह वानप्रस्थाश्रमी जो केवल दान ही देता है, प्रतिग्रह कभी भी नहीं करता), ब्रह्मविद् (संन्यासी) किसी भी प्रकारके अशौचसे ग्रस्त नहीं होते। दान (किसीको देनेके लिये पूर्वमें संकल्पित द्रव्य), विवाह (विवाहके निमित्त एकत्रित सामग्री), यज्ञ आदि विशेष कृत्योंके लिये एकत्रित सामग्री, संग्राम (युद्धकाल)-में, देशमें अतिभयंकर या राजभयसे उत्पन्न विप्लवकी दशामें, अतिकष्टकर आपत्तिमें किसी भी प्रकारके अशौचकी निवृत्ति तत्काल ही हो जाती है अर्थात् अशौच नहीं होता।

जो अकार्यकारी अर्थात् निषिद्ध कार्य करनेवाले हैं, उनकी शुद्धि दान देनेसे होती है। ग्रीष्म-ऋतु आदिके प्रभावसे जो नदी अत्यल्प जलवाली हो जाती है और उसके किनारे आदि अपवित्र वस्तुओंसे उपहत हो जाते हैं वह नदी जलके वेगपूर्ण उस प्रवाहसे शुद्ध हो जाती है जो प्रवाह नदीको जलमय बना दे और उसके किनारोंको काट देनेमें समर्थ हो।

आपत्कालमें ब्राह्मणको क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णकी वृत्तिसे जीविकाका निर्वाह करना चाहिये, किंतु वैश्यवृत्ति करनेवाले ब्राह्मणके लिये फल, सोमलता, क्षौमवस्त्र (सभी वस्त्र), वेत्र आदिकी लताएँ, औषधि लता, दधि, दुग्ध, घृत, जल, तिल, ओदन, रस, क्षार, मधु, लाक्षा, पकाया हुआ हविष्यान्न, वस्त्र, मणि आदि प्रस्तरमात्र, आसव, पुष्प, शाक, मिट्टी, चर्म, पादुका, मृगचर्म, कौशेय (वस्त्र), लवण, मांस, तिलकुट (पिण्याक), मूल और सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोंका विक्रय वर्जित है।

१-पिता ही यदि गुरु होते हैं तो उनकी मृत्युपर पिताकी मृत्युपर होनेवाला अशौच होगा।

२-यहाँ मामा मात्रको नहीं लेना है, अपितु मातृ-पक्ष एवं पितृ-पक्षके जितने भी बन्धु हैं उन सबको लेना है।

३-वेदकी एक शाखामात्रका अध्येता।

४-औरसके अतिरिक्त क्षेत्रज, दत्तक आदि पुत्र।

ब्राह्मणके द्वारा अपने श्रौत-स्मार्त-यज्ञकी पूर्णताके लिये अपेक्षित धान्य या अन्य किसी अत्यावश्यक औषधि आदिकी व्यवस्थाके लिये अपेक्षित धान्यके बराबर तिलका विक्रय करके धान्यका संग्रह किया जा सकता है। किंतु आपत्कालमें भी लवणादिका व्यापार ब्राह्मणके लिये अवश्य वर्जित है। (आपत्तियोंके कारण नमकादिके अतिरिक्त) ब्राह्मण अन्य जो कुछ हीन आवैश्यवृत्ति करता है, उसमें वह उसी प्रकार निष्कलुष रहता है जैसे सूर्य। आपत्कालमें ब्राह्मण कृषि एवं पशुपालनादि कार्य कर सकता है, किंतु उसके द्वारा अश्वोंका विक्रय त्याज्य है।

यदि किसी कारण ब्राह्मण कृषि आदिसे भी अपने जीवनकी रक्षा न कर सके तो तीन दिन बुभुक्षित हो रहे। तदनन्तर ब्राह्मणके अतिरिक्त और किसीके यहाँसे केवल एक दिनके लिये धान्य प्राप्त करे तथा अब्राह्मणसे प्राप्त इस धान्यका उपभोग करते समय वह प्रकाशित भी करे कि मैंने अब्राह्मणसे धान्य लेकर आज जीवन-निर्वाह किया है। ऐसे वृत्तिसंकरसे ग्रस्त ब्राह्मणके वृत्त, कुल, रीति, शास्त्राध्ययन, वेदाध्ययन और तप आदि विशेषताओंको जानकर राजाका यह कर्तव्य होता है कि वह उस ब्राह्मणके लिये धर्मानुकूल जीवन-यापनकी व्यवस्था करे। (अध्याय १०६)

महर्षि पराशरप्रोक्त वर्ण तथा आश्रम-धर्म एवं प्रायश्चित्त-धर्मका निरूपण

सूतजीने कहा—महर्षि पराशरने वेदव्यासजीसे वर्णाश्रमादिके धर्मका वर्णन किया था। [उनका यही कहना है कि] कल्प-कल्पमें उत्पत्ति और विनाशके कारण प्रजाएँ आदि क्षीण होती रहती हैं। कल्पके प्रारम्भमें मन्वादि ऋषि वेदोंका स्मरण करके ब्राह्मणादि वर्णोंके धर्मोंका पुनः निरूपण करते हैं।

कलियुगमें दान ही धर्म है। कलियुगमें केवल पाप करनेवालेका परित्याग करना चाहिये[1]। कलियुगमें पाप तथा शाप—ये दोनों एक वर्षमें फलीभूत हो जाते हैं।

मनुष्य आचार (सदाचार तथा शौचाचार)-से ही सब कुछ प्राप्त करे। संध्या, स्नान, जप, होम, देव और अतिथिपूजन—इन षट्कर्मोंको प्रतिदिन करना चाहिये। आचारवान् ब्राह्मण तथा संन्यासी इस कलियुगमें दुर्लभ हैं। क्षत्रियको चाहिये कि वह शत्रुसेनाओंको जीतकर पृथिवीका भलीभाँति पालन करे। वैश्य कृषि एवं पशुपालन तथा व्यापारादि करे और शूद्र इन तीन द्विजवर्णोंकी सेवामें अनुरक्त रहे।

व्यक्तिका पतन अभक्ष्य-भक्षण (शास्त्र-निषिद्ध भोजन), चोरी और अगम्यागमन करनेसे हो जाता है। यदि द्विज कृषिकार्य करता है तो वह थके हुए बैलसे हल न खींचे तथा उसे भार ढोनेके कार्यमें नियोजित न करे। स्नान और योगादि कार्योंसे निवृत्त होकर पञ्चयज्ञ करे। मध्याह्नकालमें ब्राह्मणोंको भोजन कराये और क्रूरकर्मोंकी निन्दा करे।

तिल तथा घृतका विक्रय नहीं करना चाहिये। पञ्चसूनाजनित[2] दोषके निवारणार्थ [बलिवैश्वदेव] होम करे। कृषिकर्ता द्विजद्वारा अपनी उपजका क्रमशः छठा भाग राजा, बीसवाँ भाग देवता और तैंतीसवाँ भाग ब्राह्मणोंको देय है, इससे (कृषिजनित) पाप नहीं लगता। कृषिकार्य करनेवाले क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र यदि खलिहानमें उक्त निर्धारित भाग राजा आदिको प्रदान नहीं करते हैं तो वे चोरके समान पापके भागी होते हैं।

मृत्युका अशौच होनेपर [सामान्यतः] ब्राह्मण तीन दिनके पश्चात् शुद्ध हो जाता है[3]। इसी प्रकार क्षत्रिय दस दिन, वैश्य बारह दिन और शूद्र एक मासके पश्चात् शुद्ध होता है। ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य पंद्रह दिन तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होते हैं। जो सपिण्ड-कुल-परम्परासे प्राप्त होनेवाली भू-सम्पत्ति आदिके हिस्सेदार हैं। और पृथक् आवास बनाकर रहनेवाले बन्धु-बान्धव हैं, उन्हें

१-त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत्। द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे॥

सत्ययुगमें जिस देशमें पाप होता हो उस देशका, त्रेतामें जिस ग्राममें पाप होता हो उस ग्रामका, द्वापरमें जिस कुलमें पाप होता हो उस कुलका और कलियुगमें केवल पाप करनेवालेका त्याग कर देना चाहिये।

२-सूनाका अर्थ है—पशुके वधका स्थान। यहाँ सूनाका अर्थ है—हिंसाका स्थान। गृहस्थके घरमें हिंसाके पाँच स्थान होते हैं—चूल्हा, पेषणी (कूटने-पीसनेका साधन, खल-बट्टा, सिल आदि), मार्जनी (झाड़ू आदि), उखल, मूसल और जलका कलश—ये ही पाँचसूना हैं।

३-यहाँपर ब्राह्मण आदिकी अशौच-निवृत्तिके लिये दो प्रकारके वचन दिये गये हैं। पहलेके अनुसार तीन दिनमें तथा दूसरेके अनुसार दस दिनमें शुद्धि लिखी है। कलियुगमें दूसरा वचन ही मानकर अशौच-निवृत्तिकी व्यवस्था समझनी चाहिये।

जन्म तथा मृत्यु आदिकी विपत्तिमें अशौच होता है। चौथी पीढ़ीतक दस दिन, पाँचवीं पीढ़ीमें छः दिन, छठीं पीढ़ीमें चार दिन, सातवीं पीढ़ीमें तीन दिन मरणाशौच होता है। देशान्तरमें बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः स्नानमात्रसे शुद्धि होती है।

जो बालक जन्म होनेके पश्चात् दाँत निकलनेके पूर्व ही मर जाते हैं या जिनकी मृत्यु गर्भसे बाहर होनेके समय हो जाती है, उन सबका अग्नि-संस्कार, पिण्डदान तथा जल-संतर्पण-कार्य नहीं होता है। यदि स्त्रीका गर्भस्राव हो जाता है अथवा गर्भपात हो जाता है तो जितने मासका वह गर्भ होता है, उतने दिनतक सूतक मानना चाहिये। जन्मसे लेकर नामकरणतक बालककी मृत्यु होनेपर सद्यः स्नानमात्रसे शुद्धि होती है। यदि नामकरणके पश्चात् चूडाकरण-संस्कारके मध्य बालककी मृत्यु होती है तो एक दिन और एक रात्रिका अशौच होता है। यदि उपनयन-संस्कारके पूर्व बालककी मृत्यु हो जाती है तो तीन रात्रियोंतक और तत्पश्चात् उसकी मृत्यु होनेपर दस रात्रियोंका अशौच होता है।

चार मासतकके गर्भके नष्ट होनेपर गर्भस्राव तथा पाँच और छः मासके गर्भके गिरनेको गर्भपात कहा जाता है।

जो ब्रह्मचर्यव्रतके अग्निहोत्रकी दीक्षामें हैं अथवा अनासक्त-भावसे जीवन व्यतीत करनेवाले हैं, उनके लिये जन्म एवं मृत्युका अशौच नहीं होता। शिल्पकार, कारुकर्म करनेवाला (चटाई बनानेवाला), वैद्य, दास-दासी-भृत्य-अग्निहोत्री तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण और राजा—ये सद्यःशौचवाले कहे गये हैं।

जन्मका अशौच होनेपर माता दस दिनमें तथा पिता स्नान करनेके बाद शुद्ध हो जाता है। सूतिका-गृहमें प्रसूता स्त्रीके स्पर्शसे पिताको अशौच हो जाता है। आचमनसे पिता इस अशौचसे शुद्ध हो जाता है।

यदि विवाहोत्सव तथा यज्ञादिक कार्योंके सम्पादन-कालमें ही मृत्यु या जन्मका अशौच हो जाता है तो पूर्वसंकल्पित कार्यसे अन्य कार्यके निषेधका विधान है। अर्थात् पूर्वसंकल्पित कार्यके लिये अशौच नहीं होता। बादके कार्यमें अशौच होगा।

अनाथ व्यक्तिके शवको वहन करनेपर प्राणायाममात्रसे ही मनुष्यकी शुद्धि हो जाती है, किंतु शूद्रका शव उठानेपर तीन रात्रियोंके पश्चात् शुद्धि होती है।

आत्मघात, विषपान, फाँसी तथा कृमिदंशसे मृत्यु होनेपर उसका संस्कार यथाविधान विशेष प्रायश्चित्तके बिना नहीं होता है। गौके द्वारा आहत होनेसे अथवा कृमिदंशके कारण मरे हुए व्यक्तिका स्पर्श करनेपर कृच्छ्रव्रतसे शुद्धि होती है, यह शुद्धि अशौच-निमित्तक है।

जो पत्नी यौवनावस्थामें अपने निर्दुष्ट एवं सच्चरित्रवान् पतिका परित्याग कर देती है, वह सात जन्मोंतक स्त्रीयोनिको प्राप्त कर बार-बार विधवा होती है। ऋतुकालमें पत्नीके साथ संसर्ग न करनेके कारण पुरुषको बालहत्याका पाप लगता है। जो स्त्री अन्न-पानादिकी दृष्टिसे भ्रष्ट होती है, वह अगम्या होती है तथा जन्मान्तरमें सूकरयोनि प्राप्त करती है।

औरस और क्षेत्रज पुत्र एक ही पिताके पुत्र होते हैं। अतः ये दोनों पुत्र अपने पिताके लिये पिण्डदान कर सकते हैं।

परिवेत्ता[1] एवं परिवित्ति (बड़े भाईद्वारा अपने विवाहकी अस्वीकृति देनेवाला)-को अपनी शुद्धिके लिये कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। इसी प्रकार कन्या[2]को भी कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। ऐसी कन्याके दान देनेवालेको अतिकृच्छ्रव्रत तथा विवाह-विधि सम्पन्न करानेवालेको चान्द्रायणव्रत करना चाहिये।

यदि बड़ा भाई कुबड़ा, बौना, नपुंसक, हकलानेवाला, मूर्ख, जन्मान्ध, बहरा तथा गूँगा हो तो छोटे भाईके द्वारा विवाह कर लेनेमें कोई दोष नहीं होता।

जिसे वाग्दानमात्र किया गया है ऐसा भावी पति यदि परदेश चला जाय, मर जाय, संन्यास-धर्मका अवलम्बन कर ले, नपुंसक हो अथवा पतित हो गया हो तो इन पाँच आपदाओंमें वाग्दत्ता कन्या दूसरे पतिका वरण कर सकती है। अपने पतिके साथ सतीधर्मके अनुसार अग्निमें प्रवेश करनेवाली स्त्री शरीरमें स्थित रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करती है।

कुत्ता आदिके काटनेपर मनुष्यको गायत्री-मन्त्रके

१-ज्येष्ठ भ्राताके अविवाहित रहते हुए अपना विवाह कर लेनेवाला छोटा भाई 'परिवेत्ता' कहा जाता है और परिवेत्ताका अविवाहित बड़ा भाई 'परिवित्त' कहा जाता है।

२-यहाँ उस कन्याको समझना चाहिये, जिसका परिवेत्तासे विवाह हुआ है।

जपसे शुद्धि करनी चाहिये। जिसे स्वयं गायत्री-जपका अधिकार नहीं है, उसे ब्राह्मणद्वारा गायत्री-जप कराना चाहिये। चाण्डाल आदिके द्वारा मारा गया अग्निहोत्री ब्राह्मण लौकिक अग्निसे जलाने योग्य होता है। [उस अग्निसे जलाये गये] ब्राह्मणकी अस्थियोंको दूधमें प्रक्षालित करके पुनः विधिवत् मन्त्रपूर्वक अपने अग्निहोत्रशालाकी अग्निसे प्रदग्ध करना चाहिये। यदि मृत्यु प्रवासकालमें होती है तो परिजनको अपने घरपर उस मृत व्यक्तिका कुशसे शरीर बनाकर पुनः अग्निदाह करना चाहिये।

कृष्णमृगचर्मपर छः सौ पलाशपत्रोंको (मृतककी आकृतिके समान) बिछाकर अथवा कुशमय शरीरका निर्माण करके शिश्न-भागपर शमी तथा वृषण-भागपर अरणिके काष्ठको स्थापित करे। उसके दायें हाथके स्थानपर कुण्ड (स्थाली) और बायें हाथके स्थानपर उपभृत [यज्ञियपात्र], पार्श्वभागमें उलूखल तथा पीठकी ओर मूसल रखे। तत्पश्चात् उस शवके वक्षःस्थलपर [सोमरस तैयार करनेके लिये प्रयोगमें आनेवाले] पत्थरको रखकर उसके मुखभागमें घृत-तण्डुल और तिल डालना चाहिये। कानके पास प्रोक्षणीपात्र और नेत्रोंके संनिकट आज्यस्थाली रखे। कान, नेत्र, मुख तथा नासिका-भागमें स्वर्ण-खण्ड रखनेका विधान है। इस प्रकार अग्निहोत्रके समस्त उपकरणोंके सहित उस अग्निहोत्रीका शवदाह करनेसे वह (मृत अग्निहोत्री) ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। '**असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा**' इस मन्त्रसे घृतकी एक आहुति देनी चाहिये।

हंस, सारस, क्रौंच, चक्रवाक, कुक्कुट, मयूर और मेषका वध करनेवाला मनुष्य एक दिन तथा एक रात्रिके उपवासके पश्चात् पापसे शुद्ध हो जाता है। अन्य सभी पक्षियोंका वध करनेपर एक अहोरात्रमें शुद्धि होती है।

सभी प्रकारके चतुष्पद पशुओंका वध करनेपर जो पाप मनुष्यको लगता है, उसका अवमोचन खड़े होकर एक अहोरात्र उपवास कर [गायत्री] मन्त्रका जप करनेसे होता है।

शूद्रका वध करनेपर कृच्छ्रव्रत, वैश्यकी हत्या करनेपर अतिकृच्छ्रव्रत, क्षत्रियका वध करनेपर बाईस चान्द्रायणव्रत एवं ब्राह्मणकी हत्या करनेपर तीस चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। (अध्याय १०७)

बृहस्पतिप्रोक्त नीतिसार

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! अब मैं 'अर्थशास्त्र' आदिपर आश्रित नीतिसार कह रहा हूँ, जो राजाओंके साथ ही अन्य सभीके लिये भी हितकर तथा पुण्य, आयु और स्वर्गादिको प्रदान करनेवाला है।

जो मनुष्य [धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ-चतुष्टयकी] सिद्धि चाहता है, उसको सदैव सज्जनोंकी ही संगति करनी चाहिये। दुर्जनोंके साथ रहनेसे इस लोक अथवा परलोकमें हित सम्भव नहीं है—

सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः।
नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम्॥

(१०८।२)

क्षुद्रके साथ वार्तालाप और दुष्ट व्यक्तिका दर्शन नहीं करना चाहिये। शत्रुसे सेवित व्यक्तिके साथ प्रेम न करे और मित्रके साथ विरोध न करे। मूर्ख शिष्यको उपदेश देनेसे, दुष्ट स्त्रीका भरण[1]-पोषण करनेसे तथा दुष्टोंका किसी कार्यमें सहयोग लेनेसे विद्वान् पुरुष भी अन्तमें दुःखी हो जाता है। मूर्ख ब्राह्मण, युद्ध-पराङ्मुख क्षत्रिय, विवेकरहित वैश्य और अक्षरसंयुक्त शूद्रका परित्याग तो दूरसे ही कर देना चाहिये। कालकी प्रबलतासे शत्रुके साथ संधि और मित्रसे विग्रह (शत्रुता) हो जाता है। अतः कार्य-कारण-भावका विचार करके ही पण्डितजन अपना समय व्यतीत करते हैं।

समय प्राणियोंका पालन करता है। समय ही उनका संहार करता है। उन सभीके सोनेपर समय (काल) जागता रहता है। अतः समय बड़ा ही दुरतिक्रम है (अर्थात् समयको जीतना बड़ा ही कष्टसाध्य है)। समयपर ही प्राणीके पराक्रमका क्षरण होता है। समय आनेपर ही प्राणी गर्भमें आता है। समयके आधारपर उसकी सृष्टि होती है और पुनः समय ही उसका संहार भी करता है। काल निश्चित ही नियमसे नित्य सूक्ष्म गतिवाला हो होता है तब भी हमारे अनुभवमें उसकी गति दो प्रकारसे होती है, जिसका अन्तिम परिणाम जगत्‌का संग्रह ही होता है। यह

१-यथाशक्ति भरण-पोषणका प्रयास करना चाहिये और यदि स्त्रीके दुष्ट स्वभाववश भरण-पोषण कदाचित् अशक्य हो रहा है या पारिवारिक-सामाजिक व्यवस्था उच्छिन्न हो रही है, तब इस व्यवस्थाको ध्यानमें रखना चाहिये।

गति स्थूल एवं सूक्ष्म-रूपमें दो प्रकारकी होती है।

ऋषियो! बृहस्पतिने इन्द्रसे इस नीतिसारका वर्णन किया था, जिसके कारण सर्वज्ञ होकर इन्द्रने दैत्योंका विनाश करके देवलोकका आधिपत्य प्राप्त किया था।

ब्राह्मणकल्प राजर्षियोंको नित्य देवता एवं ब्राह्मण आदिका पूजन करना चाहिये तथा महान् पातकोंको नष्ट करनेवाले अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये।

उत्तम प्रकृतिवाले सज्जनोंकी संगति, विद्वानोंके साथ सत्कथाका श्रवण और लोभरहित मनुष्यके साथ मैत्रीसम्बन्ध स्थापित करनेवाला पुरुष दुःखी नहीं होता[1]।

[दूसरेकी] निन्दा, दूसरेका धन-ग्रहण, परायी स्त्रीके साथ परिहास तथा पराये घरमें निवास कभी नहीं करना चाहिये। हितकारी अन्य व्यक्ति भी अपने बन्धु हैं और यदि बन्धु अहितकर हैं तो वह भी अपने लिये अन्य है। शरीरसे ही उत्पन्न हुई व्याधि अहितकर होती है, किंतु वनमें उत्पन्न हुई औषधि उस व्याधिका निराकरण करके मनुष्यका हित-साधन करती है। जो मनुष्य सदैव हितमें तत्पर रहता है, वही बन्धु है। जो भरण-पोषण करता है, वही पिता है। जिस व्यक्तिमें विश्वास रहता है, वही मित्र है और जहाँपर मनुष्यका जीवन-निर्वाह होता है, वही उसका देश है[2]।

जो आज्ञापालक है, वही वास्तविक भृत्य (सेवक) है; जो बीज अंकुरित होता है, वही बीज है; जो पतिके साथ प्रिय सम्भाषण करती है, वही वास्तविक भार्या है। पिताके जीवनपर्यन्त पिताके भरण-पोषणमें जो पुत्र लगा रहता है, वही वास्तवमें पुत्र है। जो गुणवान् है, उसीका जीवन वास्तवमें सार्थक है। जो धर्ममें प्रवृत्त है, वही जीवित है; जो गुण-धर्मविहीन है, उसका जीवन निष्फल है।

जो भार्या गृहकार्यमें दक्ष है, जो प्रियवादिनी है, जिसके पति ही प्राण हैं और जो पतिपरायणा है वास्तवमें वही भार्या है[3]। जो नित्य स्नान करके अपने शरीरको सुगन्धित द्रव्य-पदार्थोंसे सुवासित करनेवाली है, प्रियवादिनी है, अल्पाहारी है, मितभाषिणी है, सदा सब प्रकारके मङ्गलोंसे युक्त है, जो निरन्तर धर्मपरायण है, निरन्तर पतिकी प्रिय है, सदा सुन्दर मुखवाली है तथा जो ऋतुकालमें ही पतिके सहगमनकी इच्छा रखती है, वही भार्या है।

—इन लक्षणोंसे समन्वित स्त्री समस्त सौभाग्योंकी अभिवृद्धिकारिणी होती है। जिस मनुष्यकी ऐसी भार्या है वह मनुष्य नहीं देवराज इन्द्र है।

जिस मनुष्यकी भार्या विरूप नेत्रोंवाली, पापिनी, कलहप्रिय और विवादमें बढ़-चढ़कर बोलनेवाली है, वह पतिके लिये वास्तवमें वृद्धावस्था ही है, वास्तविक वृद्धावस्था वृद्धावस्था नहीं है। जिसकी भार्या परपुरुषका आश्रय ग्रहण करनेवाली है, दूसरेके घरमें रहनेकी आकांक्षा रखती है, कुकर्ममें संलग्न है तथा निर्लज्ज है, वह (पतिके लिये) साक्षात् वृद्धावस्था-स्वरूप है।

जिस पुरुषकी भार्या गुणोंका महत्त्व समझनेवाली, पतिका अनुगमन करनेवाली और स्वल्पसे भी स्वल्प वस्तुसे संतुष्ट रहनेवाली है; पतिके लिये वही सच्ची प्रियतमा है, सामान्य प्रिया नहीं है।

दुष्ट पत्नी, दुष्ट मित्र तथा प्रत्युत्तर देनेवाला भृत्य और सर्पयुक्त घरमें निवास साक्षात् मृत्यु ही है।

मनुष्यको दुर्जनोंकी संगतिका परित्याग करके साधुजनोंकी संगति करनी चाहिये और दिन-रात्रि पुण्यका संचय करते हुए नित्य अपनी अनित्यताका स्मरण रखना चाहिये—

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥
(१०८।२६)

जो स्त्री सर्पके कण्ठमें रहनेवाले विषके समान है, जो सर्पके फणोंके सदृश भयंकर है, जो रौद्ररसकी साक्षात् मूर्ति है, जो शरीरसे कृष्णवर्णकी है, जो रक्तके सदृश लाल-लाल नेत्रोंके द्वारा दूसरेके हृदयको भयभीत कर देनेवाली है, जो व्याघ्रके समान भयानक है, जो क्रोधवदना एवं प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाकी भाँति धधकनेवाली और काकके समान जिह्वालोलुप है, अपने पतिसे प्रेम न रखनेवाली है, भ्रमितचित्तवाली तथा दूसरेके पुर (घर-नगर) आदिमें जानेवाली अर्थात् परपुरुषकी इच्छा रखनेवाली है, वह स्त्री

१-उत्तमैः सह साङ्गत्यं पण्डितैः सह सत्कथाम्। अलुब्धैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति॥ (१०८।१२)

२-परोऽपि हितवान् बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः। अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम्॥
स बन्धुर्यो हिते युक्तः स पिता यस्तु पोषकः। तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते॥ (१०८।१४-१५)

३-सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रियंवदा। सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता॥ (१०८।१८)

कदापि सेव्य नहीं है।

दैववश कभी अल्प सामर्थ्यवान् व्यक्ति भी शक्तिशाली हो सकता है, कृतघ्न व्यक्ति भी कभी सुकृत कर सकता है, अग्निमें कभी शीतलता भी आ सकती है, हिममें उष्णता भी आ सकती है; किंतु वेश्यामें [पुरुषविषयक] अनुराग नहीं हो सकता।

घरके अंदर भयंकर सर्प देख लिये जानेपर, चिकित्सा होनेपर भी रोग बने ही रहनेपर, बाल्य-युवा आदि अवस्थासे युक्त यह शरीर कालसे आवृत है। यह समझनेपर भी कौन ऐसा व्यक्ति है, जो धैर्य धारण कर सकता है? (अध्याय १०८)

नीतिसार-निरूपण

सूतजीने कहा—आपत्तिकालके लिये धनका संरक्षण करना चाहिये, स्त्रियोंकी रक्षाके लिये धनका उपयोग करना चाहिये एवं अपनी रक्षामें स्त्री एवं धन दोनोंका उपयोग करना चाहिये।

कुलकी रक्षाके लिये एक व्यक्तिका, ग्रामकी रक्षाके लिये कुलका, जनपदके हितके लिये ग्रामका और अपने वास्तविक कल्याणके लिये पृथिवीका भी परित्याग कर देना चाहिये—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

(१०९। २)

नरकमें निवास करना अच्छा है, किंतु दुश्चरित्र व्यक्तिके घरमें निवास करना उचित नहीं है। नरकवासके कारण पाप विनष्ट हो जाता है, किंतु दुश्चरित्र व्यक्तिके घरमें निवास करनेसे पापकी निवृत्ति नहीं होती। बुद्धिमान् पुरुष एक पाँवको स्थिर करके ही दूसरे पाँवको आगे बढ़ाता है। इसीलिये अगले स्थानकी परीक्षाके बिना पूर्वस्थानका परित्याग नहीं करना चाहिये[1]।

दुष्टजनोंसे व्याप्त देश, उपद्रवग्रस्त निवासभूमि, कृपण राजा तथा मायावी मित्रका परित्याग कर देना चाहिये।

कंजूसके हाथमें पहुँचे हुए धन, अत्यन्त दुष्ट और आग्रही व्यक्तिके पास संचित ज्ञान, गुण एवं पराक्रमसे रहित रूप तथा आपत्तिकालमें पराङ्मुख मित्रसे मनुष्यको क्या लाभ हो सकता है? जो पदासीन (अधिकारयुक्त) व्यक्ति है, उसके कभी न देखे गये बहुत-से व्यक्ति भी सहायक हो जाते हैं और सभी व्यक्ति मित्र हो जाते हैं। परंतु जब वही व्यक्ति पदच्युत और अर्थहीन हो जाता है तो उसके असमयमें स्वजन भी शत्रु हो जाते हैं[2]।

आपत्कालमें मित्र, युद्धमें वीर, एकान्त स्थानमें शुचिता, विभवके क्षीण हो जानेपर पत्नी तथा दुर्भिक्षके समय अतिथिप्रियताकी पहचान होती है—

आपत्सु मित्रं जानीयाद्रणे शूरं रहः शुचिम्।
भार्यां च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम्॥

(१०९। ८)

पक्षीगण फलरहित वृक्षोंका परित्याग कर देते हैं। सारस पक्षी सूखे हुए सरोवरको छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। वेश्याएँ धनसे रहित होनेपर पुरुषको छोड़ देती हैं। मन्त्री भ्रष्ट राजाका त्याग कर देते हैं। भौंरे बासी पुष्पको त्यागकर नवविकसित कुसुमपर चले जाते हैं और मृग जले हुए वनका परित्याग कर अन्यत्र आश्रय लेते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वार्थवश ही सभी प्राणी एक-दूसरेसे प्रेम करते हैं। वास्तवमें कौन किसका प्रिय है[3]?

अर्थप्रदानके द्वारा लोभी मनुष्यको, करबद्ध-प्रणाम निवेदनसे उदारचेता व्यक्तिको, प्रशंसा करनेसे मूर्ख व्यक्तिको और तात्त्विक चर्चासे विद्वान् पुरुषको संतुष्ट किया जा सकता है। सद्भाव रखनेसे देवगण, सज्जनवृन्द एवं द्विजाति संतुष्ट होते हैं। इनके अतिरिक्त साधारण लोग खान-पान

१-वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे। नरकात् क्षीयते पापं कुगृहान्न निवर्तते॥
चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्। न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्॥ (१०९। ३-४)

२-अर्थेन किं कृपणहस्तगतेन केन ज्ञानेन किं बहुशठाग्रहसंकुलेन।
रूपेण किं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन॥
अदृष्टपूर्वा बहवः सहायाः सर्वे पदस्थस्य भवन्ति मित्राः।
अर्थैर्विहीनस्य पदच्युतस्य भवत्यकाले स्वजनोऽपि शत्रुः॥ (१०९। ६-७)

३-वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसा निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं मन्त्रिणः।
पुष्पं पर्युषितं त्यजन्ति मधुपाः दग्धं वनान्तं मृगाः सर्वः कार्यवशाज्जनो हि रमते कस्यास्ति को वल्लभः॥ (१०९। ९)

तथा पण्डितजन मान-सम्मानसे संतुष्ट हो जाते हैं—

लुब्धमर्थप्रदानेन श्लाघ्यमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च याथातथ्येन पण्डितम्॥
सद्भावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषा द्विजाः।
इतरे खाद्यपानेन मानदानेन पण्डिताः॥
(१०९।१०-११)

प्रणिपात-निवेदनसे उत्तम प्रकृतिवाले सज्जन पुरुषको, भेद-नीतिसे धूर्त तथा अपनी अपेक्षा कम पराक्रमवाले व्यक्तिको थोड़ा-बहुत देकर और अपने समान पराक्रमवालेको अपनी अपेक्षाके अनुकूल धन देकर वशमें किया जा सकता है। जिसका जैसा स्वभाव हो, उसके अनुरूप वैसा ही प्रिय वचन बोलते हुए उसके हृदयमें प्रवेशकर चतुर व्यक्तिको यथाशीघ्र उसे अपना बना लेना चाहिये।

नदी, नख तथा शृंग धारण करनेवाले पशु, हाथमें शस्त्र धारण किये हुए पुरुष, स्त्री और राजपरिवार विश्वास करनेयोग्य नहीं होते। जो मनुष्य बुद्धिमान् है, उसको अपनी धनक्षति, मनस्ताप, घरमें हुए दुश्चरित्र, वञ्चना तथा अपमानकी घटनाको दूसरेके समक्ष प्रकाशित नहीं करना चाहिये—

नदीनां च नखीनां च शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥
अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत्॥
(१०९।१४-१५)

नीच और दुर्जन व्यक्तिका सांनिध्य, अत्यन्त विरह तथा सम्मान, दूसरेके प्रति स्नेह एवं दूसरेके घरमें निवास—ये सभी नारीके उत्तम शीलको नष्ट करनेवाले हैं।

किसके कुलमें दोष नहीं है, रोगसे कौन पीड़ित नहीं है, कौन दुःखी नहीं है और किसकी धन-सम्पत्तियाँ सदैव विद्यमान रही हैं? इस पृथिवीपर धन प्राप्त कर कौन अहंकारसे भरा नहीं है, किसपर विपत्तियाँ आयी नहीं हैं, स्त्रियोंके द्वारा किसका मन क्षुब्ध नहीं किया गया है और राजाओंका कौन प्रिय रहा है? कौन कालकवलित नहीं हुआ है, किस याचकका स्वाभिमान नष्ट नहीं हुआ है, कौन दुर्जनके जालमें फँसकर कुशलपूर्वक जीवनयापन कर सकता है[1]? (अर्थात् कोई नहीं कर सकता।)

जिस मनुष्यके मित्र, स्वजन, बन्धु-बान्धव नहीं हैं, जिसके पास अपनी बुद्धि नहीं है, वह कैसे अपने जीवनमें सफल हो सकता है और जिस कर्मके सम्पन्न होनेपर भी फलका उदय नहीं दीख रहा है, उस कर्मके अनुष्ठानसे क्या लाभ? ऐसे ही जो सम्पत्ति परिणाममें बहुत बड़ा दुःख देनेवाली है, उसका संग्रह कौन बुद्धिमान् व्यक्ति करेगा?

जिस देशमें व्यक्तिको सम्मान न मिले, आदर भी न मिले, अपने बन्धु-बान्धव भी सुलभ न हों और विद्या-लाभकी भी सम्भावना न बनती हो, उस देशका परित्याग कर देना चाहिये।

जिस धनके लिये राजा और चोरसे भय नहीं है, जो धन मरनेपर भी मनुष्यका साथ नहीं छोड़ता, उस धनका उपार्जन करना चाहिये। प्राणोंको भी संकटमें डाल देनेवाले परिश्रमसे जिस धनका अर्जन किया जाता है, उस धनको तो उत्तराधिकारी लोग यथोचित विभागके साथ अपने काममें ले लेते हैं; परंतु प्राणोंको संकटमें डालकर धनार्जनके लिये परिश्रम करनेवाला व्यक्ति धनके लोभमें जिन पापोंको करता है, वे पाप ही उसकी धरोहर बनकर उसकी नरक-यातनाके अथवा कुत्सित योनिके कारण बनते हैं।

संचित किया हुआ तथा बार-बार विचार करके सुरक्षित रखा हुआ, कदर्य (कृपण)-का धन चूहेके द्वारा एकत्रित किये गये धनके तुल्य है। ऐसा धन दुःख देनेके लिये ही होता है। उपार्जनकर्ताको उससे कोई भी सुख प्राप्त नहीं होता। ऐसा व्यक्ति मात्र धनार्जनका कष्ट ही भोगता है।

ऐसे ही व्यक्ति जन्मान्तरमें दरिद्र होनेके कारण नग्न होकर अनेक प्रकारके व्यसनसे त्रस्त हो रूखे स्वभाववाले हो जाते हैं तथा हाथमें खप्पर लेकर घर-घर भीख माँगते हैं और यह लोगोंको बताते हैं कि दान न देनेवालेको ऐसा ही फल मिलता है। ऐसे भिक्षुक कुछ दीजिये, कुछ दीजिये—ऐसी बार-बार याचना करते हुए संसारको यह शिक्षा प्रदान करते हैं कि दान न देनेवाले मनुष्यकी यही दशा होती है। आपकी भी मेरी-जैसी दुर्दशा न हो, इसलिये आपको दान देना चाहिये[2]।

१-कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः। केन न व्यसनं प्राप्तं श्रियः कस्य निरन्तराः॥
कोऽर्थं प्राप्य न गर्वितो भुवि नरः कस्यापदो नागताः स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेण यातः पुमान्॥ (१०९।१७-१८)

२-शिक्षयन्ति च याचन्ते देहीति कृपणा जनाः। अवस्थेयमदानस्य मा भूदेवं भवानपि॥ (१०९।२५)

कृपण अपने द्वारा संचित धन यज्ञोंमें नहीं लगा पाता है और अपने द्वारा माँगकर इकट्ठा किये धनको गुणवानोंको भी नहीं देता है। इस प्रकारका कृपणके द्वारा सुरक्षित धन चोर और राजाके काममें ही आता है। कृपणका धन देवता, ब्राह्मण, बन्धु तथा आत्महितके लिये नहीं होता, वह तो अग्नि, चोर अथवा राजाके लिये होता है। अत्यन्त कष्टसे अर्जित किया गया धन, धर्मका अतिक्रमण करके अर्जित किया गया धन अथवा शत्रुको साष्टाङ्ग प्रणाम करके और उसकी अधीनता स्वीकार करके प्राप्त किया गया धन— इस प्रकारका धन तुझे कभी प्राप्त न हो।

विद्याका अभ्यास न करनेसे वह विनष्ट हो जाती है। शक्ति रहते हुए फटे-पुराने, मैले-कुचैले वस्त्रोंको धारण करनेवाली स्त्रियाँ सौभाग्यकी रक्षा नहीं कर पातीं, सुपाच्य भोजनसे रोग नष्ट हो जाता है और चातुर्यपूर्ण नीतिसे शत्रुका विनाश हो जाता है।

चोरका वध ही उसका दण्ड है। दुष्ट मित्रके लिये समुचित दण्ड उसके साथ अल्प वार्तालाप करना है। स्त्रियोंका दण्ड उनसे पृथक् शय्यापर शयन करना तथा ब्राह्मणके लिये दण्ड निमन्त्रण न देना है।

दुर्जन, शिल्पकार, दास तथा दुष्ट एवं ढोलक आदि वाद्य और स्त्री आदि सम्यक् अनुशासनसे ही मृदु-स्वभावको प्राप्त करते हैं। ये सत्कारमात्रसे मृदु स्वभाववाले नहीं हो पाते।

कार्यमें संलग्न करनेसे भृत्य, दुःख होनेपर बन्धु-बान्धव, विपत्तिकालमें मित्र तथा ऐश्वर्यके नष्ट होनेपर स्त्रीके स्वभावकी परीक्षा करनी चाहिये—

जानीयात्प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनागमे।
मित्रमापदि काले च भार्यां च विभवक्षये॥

(१०९।३२)

पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंका आहार दुगुना, बुद्धि चौगुनी, कार्यकी क्षमता छःगुनी और कामवासना आठगुनी अधिक मानी गयी है। स्वप्नसे निद्राको नहीं जीता जा सकता, कामवासनासे स्त्रीपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती, ईंधनसे अग्निको तृप्त नहीं किया जा सकता तथा मद्यसे प्यास नहीं बुझायी जा सकती। मांसयुक्त स्निग्ध भोजन, नाना प्रकारकी मदिराओंका पान, सुगन्धित द्रव पदार्थोंका विलेपन, सुन्दर वस्त्र और सुवासित माल्याभरण—ये स्त्रियोंकी कामवासनाकी अभिवृद्धि करते हैं। जैसे लकड़ियोंके अधिक-से-अधिक ढेरको प्राप्त करके भी अग्नि संतुष्ट नहीं होती; नदीसमूहके मिलनेपर भी समुद्र तृष्णारहित होकर संतृप्त नहीं होता; यमराज सभी प्राणियोंका संहार करके भी आत्मसंतुष्टि प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं; ऐसे ही नारी असंख्य पुरुषोंके साथ सम्पर्क करके भी संतृप्त नहीं होती।

शिष्ट व्यक्ति (सुशील), अभीष्ट-सिद्धि, प्रियवचन, सुख, पुत्र, जीवन और देवगुरुसे प्राप्त आशीर्वचनसे मनुष्यकी इच्छाएँ परिपूर्ण नहीं होतीं, इनके लिये अभिलाषा बढ़ती ही रहती है। धनके संग्रहसे राजा, नदियोंकी जलराशिसे समुद्र, सम्भाषणसे विद्वान् एवं राजदर्शनसे प्रजाके नेत्र संतुष्ट नहीं हो पाते।

अपने विहित कर्म तथा धर्माचरणका पालन करते हुए जीविकोपार्जनमें तत्पर, सदैव शास्त्र-चिन्तनमें रत तथा अपनी स्त्रीमें अनुरक्त, जितेन्द्रिय और अतिथिसेवामें निरत श्रेष्ठ पुरुषोंको तो घरमें भी मोक्ष प्राप्त हो जाता है[1]।

जिस सत्कर्मनिरत पुरुषके पास मनोऽनुकूल, सुन्दर वस्त्राभूषणसे अलंकृत स्त्री है, यदि वह व्यक्ति उसके साथ अपने भवनकी अटारीपर सुखपूर्वक निवास करता है तो उसके लिये यहींपर स्वर्गका सुख है।

जो स्त्रियाँ स्वभावसे ही धर्म-विरुद्ध आचरण करनेवाली एवं पतिके प्रतिकूल व्यवहार रखनेवाली हैं, वे स्त्रियाँ न धन आदिके दान, न सम्मान, न सरल व्यवहार, न सेवाभाव, न शस्त्र-भय और न शास्त्रोपदेशसे ही अनुकूल की जा सकती हैं, वे तो सदा प्रतिकूल ही रहती हैं[2]।

विद्यार्जन, अर्थ-संग्रह, पर्वतारोहण, अभीष्ट-सिद्धि तथा धर्माचरण—इन पाँचोंको धीरे-धीरे प्राप्त करना चाहिये।

देवपूजनादिक कर्म, ब्राह्मणको दान, गुणवती विद्याका संग्रहण तथा सन्मित्र—ये सदा सहायक होते हैं। जिन्होंने बाल्यकालसे विद्यार्जन नहीं किया है, जिनके द्वारा युवावस्थामें

१-स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम्।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम्॥ (१०९।४३)

२-न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया। न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः॥ (१०९।४५)

धन और स्त्रीकी प्राप्ति नहीं की जा सकी है, वे इस संसारमें शोकके पात्र हैं और मनुष्यरूप धारण करके पशुवत् विचरण करते हुए दुःखसे परिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।

विद्याके उपासकको अध्ययन-कालमें भोजनकी चिंता नहीं करनी चाहिये। विद्यार्थीको विद्यार्जनके लिये गरुडके समान सुदूर देशको यथाशीघ्र पार कर लेना चाहिये।

जो बाल्यावस्थामें विद्याध्ययन नहीं करते हैं और फिर युवावस्थामें कामातुर होकर यौवन तथा धनको नष्ट कर देते हैं, वे वृद्धावस्थामें चितासे जलते हुए शिशिरकालमें कुहरेसे झुलसनेवाले कमलके समान संतप्त जीवन व्यतीत करते हैं।

शुष्क तर्क स्वयंमें अप्रतिष्ठित है, अतः किसी सिद्धान्तकी स्थापना केवल तर्कके द्वारा नहीं हो सकती। श्रुतियाँ भी अनेक प्रकारकी हैं। ऐसा कोई भी ऋषि नहीं है जो भिन्न-भिन्न प्रसंगोंमें विभिन्न सिद्धान्तोंका निर्देश न करे। इसीलिये धर्मका तत्त्व न तर्कोंमें निहित है, न श्रुतियोंमें निहित है, अपितु आप्तोंकी प्रज्ञामें निहित है। फलतः शिष्ट लोग जिस मार्गका अनुसरण करते हैं, उसी मार्गको अपना धर्म समझना चाहिये[1]।

आकार, संकेत, गति, चेष्टा, वाणी, नेत्र और मुखकी भावभंगिमासे प्राणीके अन्तःकरणमें छिपा हुआ भाव प्रकट होता रहता है[2]। विद्वान् वह है जो दूसरेके द्वारा अकथित विषयको भी जान लेता है। बुद्धि वह है जो दूसरोंके संकेतमात्रसे भी वास्तविकताको समझ ले। कथित शब्दका अर्थ तो पशु भी जान लेते हैं। मनुष्यके दिखाये गये मार्गका अनुसरण तो हाथी और घोड़े भी करते हैं।

(अध्याय १०९)

नीतिसार

श्रीसूतजीने कहा—जो व्यक्ति सुनिश्चित अर्थका परित्याग कर अनिश्चित पदार्थोंका सेवन करता है, उसका सुनिश्चित अर्थ विनष्ट हो जाता है और अनिश्चित पदार्थ तो नष्ट होता ही है—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुवं नष्टमेव च॥

(११०।१)

वाग्वैभवसे रहित व्यक्तिकी विद्या और कायर पुरुषके हाथमें विद्यमान अस्त्र वैसे ही उन्हें संतुष्टि नहीं प्रदान करते, जैसे अपने अंधे पतिके साथ रहती हुई उसकी स्त्री अपने रूप-लावण्यसे पतिको संतृप्त नहीं कर पाती।

सुन्दर भोज्य पदार्थ भी उपलब्ध हो और भोजनकी शक्ति भी हो, रूपवती स्त्री भी हो और सहवास करनेकी क्षमता भी हो तथा धन-वैभव भी हो और दान करनेकी सामर्थ्य भी हो—ये अल्प तपके फल नहीं हैं।

वेदोंका फल अग्निहोत्र है, विद्याका फल शील और सदाचार है, स्त्रीका फल रति और पुत्रवान् होना है तथा धनका फल है दान और भोग।

विद्वान् व्यक्तिको श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न कुरूप कन्याके साथ भी विवाह कर लेना चाहिये, किंतु रूपवती एवंअच्छे लक्षणोंवाली उत्तम कुलसे हीन कन्या उसके लिये कभी भी ग्राह्य नहीं है।

मनुष्यको उस अर्थसे क्या लाभ है, जिस अर्थका साथ अनर्थसे होता है? क्योंकि कोई व्यक्ति सर्पके फणपर विद्यमान मणिको प्राप्त करना नहीं चाहता।

अग्निहोत्रके लिये हविष्यान्न दुष्ट कुलसे भी ग्राह्य है। बालकसे भी सुभाषित ग्रहण करना उचित है। अमेध्य अर्थात् अपवित्र स्थानसे स्वर्ण और हीन कुलसे स्त्रीरूपी रत्न भी मनुष्यके लिये संग्राह्य है। विषसे अमृत ग्राह्य है अपवित्र स्थलसे भी स्वर्ण ग्राह्य है तथा नीच व्यक्तिसे श्रेष्ठ विद्या भी ग्रहण करने योग्य है और दुष्कुलसे भी स्त्री-रत्न ग्राह्य है।

राजाके साथ मित्रभाव और सर्पका विषहीन होना सम्भव नहीं है। वह कुल पवित्र नहीं रहता, जिस कुलमें स्त्रियाँ ही उत्पन्न होती हैं। अपने कुलके साथ भगवद्भक्तका सम्पर्क कर देना चाहिये, पुत्रको विद्याध्ययनमें लगाना

१-तर्कोऽप्रतिष्ठा श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥ (१०९।५१)

२-आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च। नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥ (१०९।५२)

चाहिये, शत्रुको व्यसनमें जोड़ देना चाहिये तथा जो अपने इष्टपुरुष हैं, उन्हें धर्ममें नियोजित करना चाहिये।

विद्वान् मनुष्यको नौकर और आभूषणोंको यथोचित स्थानपर नियुक्त करना चाहिये, क्योंकि चूडामणि कभी चरणमें सुशोभित नहीं होती है। चूडामणि, समुद्र, अग्नि, घण्टा, अखण्ड अम्बर और राजा—ये सिरपर धारण करने योग्य होते हैं अर्थात् आदरणीय हैं। प्रमादवश भी इन्हें चरणमें स्थान नहीं देना चाहिये। मनस्वी व्यक्तिकी पुष्प-स्तबकके समान दो ही स्थितियाँ होती हैं—या तो वह सबके सिरपर ही रहता है अथवा वनमें ही चला जाता है। मणि स्वर्णाभूषणमें संनिविष्ट करनेके योग्य होती है। यदि वह मणि लाखसे निर्मित आभूषणमें संनिहित की जाती है तो उस कुसंगतिके कारण वह न स्वयं संक्षुब्ध होकर विलाप करती है और न सुशोभित ही होती है। अश्व, गज, लौह, काष्ठ, पाषाण, वस्त्र, नारी, पुरुष तथा जल—इनमें परस्पर बहुत बड़ा अन्तर है।

तिरस्कृत होनेपर भी धैर्यसम्पन्न सज्जन व्यक्तिके गुण कभी भी आन्दोलित नहीं होते। दुष्टके द्वारा नीचे कर दी गयी अग्निकी भी शिखा कभी नीचे नहीं जाती।

उत्तम जातिका अश्व अपने स्वामीका चाबुक-प्रहार, सिंह हाथीकी गर्जना और वीर पुरुष शत्रुपक्षकी भयंकर गर्जना सहन नहीं कर सकता।

यदि सज्जन मनुष्य दुर्भाग्यवश कदाचित् वैभवरहित हो जाता है तो भी वह न तो दुष्ट जनोंकी सेवा करनेकी अभिलाषा रखता है और न नीच जनोंका सहारा लेता है। भूखसे अत्यन्त पीड़ित होनेपर भी सिंह घास नहीं खाता, अपितु हाथियोंके गर्म रक्तका ही पान करता है।

जिस मित्रमें एक बार भी दुष्ट भाव परिलक्षित हो जाता है और पुनः उसीसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करनेकी जो इच्छा करता है, वह मानो अश्वतरी (खच्चरी)-के द्वारा धारण किये गये गर्भके सदृश मृत्युको ही प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखता है।

शत्रुकी मृदुभाषी संतानोंकी उपेक्षा करना बुद्धिमान् जनोंके लिये उचित नहीं है; अर्थात् प्रिय बोलनेवाले शत्रुपुत्रोंसे भी सावधान रहना चाहिये; क्योंकि समय आनेपर वे ही असह्य दुःख-प्रदाता एवं विषपात्रके समान भयंकर विपत्ति उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं।

उपकारके द्वारा वशीभूत हुए शत्रुसे अन्य शत्रुको समूल उखाड़ फेंकना चाहिये, क्योंकि पैरमें गड़े हुए काँटेको मनुष्य हाथमें लिये हुए काँटेसे ही निकालता है।

सज्जन व्यक्तिको अपकारपरायण मनुष्यके नाशकी चिंता कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वह नदीके तटपर अवस्थित वृक्षोंकी भाँति स्वयं ही नष्ट हो जाता है।

अर्थका रूप धारण करनेवाले अनर्थ और अनर्थका रूप धारण करनेवाले अर्थ—ये दैवाधीन पुरुषके विनाशके लिये होते हैं। कभी-कभी कार्यकालके भेदसे निष्पाप बुद्धि उत्पन्न हो जाती है; क्योंकि दैवके अनुकूल रहनेपर पुरुषका सर्वत्र कल्याण ही होता है। धनार्जन करते समय, किसी भी प्रकारका प्रयोग करते समय, अपने कार्यको सिद्ध करते समय, भोजनके समय और सांसारिक व्यवहारके समय मनुष्यको लज्जाका परित्याग कर देना चाहिये।

जिस देश, प्रान्त, नगर एवं ग्राममें धनवान्, श्रोत्रिय, राजा, नदी तथा वैद्य—ये पाँच नहीं रहते हैं, वहाँ बुद्धिमान् व्यक्तिका रहना उचित नहीं है[1]। जहाँ आना-जाना न हो, जहाँ अनुचित आचरणको रोकनेके लिये भयकी सम्भावना न हो, लज्जा न हो तथा दानकी प्रवृत्ति न हो, वहाँ तो एक भी दिन निवास नहीं करना चाहिये। जिस देश-प्रान्तादिमें दैवज्ञ, वेदज्ञ, राजा, नदी एवं सज्जन व्यक्ति—इन पाँचका निवास नहीं है, वहाँपर निवास नहीं करना चाहिये।

हे शौनक! एक ही व्यक्तिमें सभी ज्ञान प्रतिष्ठित रूपमें नहीं रहते हैं। इसलिये यह सर्वमान्य है कि सभी व्यक्ति सब कुछ नहीं जानते हैं और कहींपर भी सभी सर्वज्ञ नहीं हैं। इस संसारमें न तो कोई सर्वविद् है और न कोई अत्यन्त मूर्ख ही है। उत्तम, मध्यम तथा निम्नस्तरीय ज्ञानसे जो व्यक्ति जितना जानता है, उसे उतनेमें विद्वान् समझा जाना चाहिये। (अध्याय ११०)

१-धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः। पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात् तत्र संस्थितिम्॥ (११०।२६)

राजनीति-निरूपण

सूतजीने कहा—राजाको चाहिये कि वह सदैव सबकी भलीभाँति परीक्षा करता रहे। सत्यपरायण तथा धर्मपरायण राजा ही नित्य राज्यका पालन करनेमें समर्थ होता है, उसे चाहिये कि वह शत्रुसेनाओंको जीतकर धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन करे।

राजाको जंगलमें मालीके समान पुष्पवृक्षसे पुष्प ग्रहण करना चाहिये, किंतु कोयला बनानेवालेके समान वृक्षका मूलोच्छेद नहीं करना चाहिये। अर्थात् राज्यरूपी वनमें राजाको अपनी प्रजासे कर ग्रहण करते समय मालीके सदृश आचरण करना चाहिये, वृक्ष काटकर कोयला बनानेवाले अंगारकका आचरण उसके लिये सर्वथा त्याज्य है।

जिस प्रकार दूध दुहनेवाले दुग्धका पान करते हैं, किंतु विकृत हो जानेपर उसका उपभोग नहीं करते, उसी प्रकार राजाओंको चाहिये कि वे परराष्ट्रका उपभोग तो करें, किंतु उसको दूषित न करें।[1] जिस प्रकार दुग्ध-प्राप्तिके इच्छुक मनुष्य गौके स्तनसे दुग्ध तो निकाल लेते हैं, परंतु उसके स्तनको काटते नहीं; इसी प्रकार राजाके द्वारा प्रयुक्त इस नीतिसे अर्थात् कर-रूपमें सम्पूर्ण धन ग्रहण करनेसे पीड़ित राष्ट्र अभ्युदयको प्राप्त नहीं करता है। अतएव राजाको सब प्रकारसे पृथिवीका पालन करना चाहिये; क्योंकि ऐसे राजाके पास ही भूमि, कीर्ति, आयु, प्रतिष्ठा और पराक्रम विद्यमान रहते हैं।

नित्य भगवान् विष्णुकी पूजा करके जो धार्मिक राजा गौ-ब्राह्मणके हितमें रत रहता है, वही जितेन्द्रिय राजा प्रजाके पालनमें समर्थ हो सकता है।

ऐश्वर्य अस्थायी होता है। अतः प्राप्त हुए अस्थिर ऐश्वर्यमें आसक्त न होकर राजाको धर्माचरणमें अपनी बुद्धिको लगाना चाहिये। धन-सम्पत्ति आदि तो क्षणभरमें ही नष्ट हो जाता है, क्योंकि धन आदि अपने अधीन नहीं हैं।[2] मनको रमणीय लगनेवाली स्त्रियाँ सत्य हो सकती हैं, विभूतियाँ (धन-सम्पत्ति) भी सत्य हो सकती हैं, किंतु यह जीवन तो स्त्रीके कटाक्षपातकी भाँति चंचल (असत्य) है। शरीरमें स्थित वृद्धावस्था सिंहनीके समान भयभीत करती रहती है, रोग शत्रुकी भाँति शरीरमें उत्पन्न होते रहते हैं। आयु फूटे हुए घड़ेसे निकलते हुए जलके सदृश क्षीण होती जाती है, फिर भी इस संसारमें कोई भी मनुष्य आत्महित-चिन्तनमें प्रवृत्त नहीं होता।[3]

हे मनुष्यो! इस क्षणभंगुर जीवनमें आप सब निश्चिन्त क्यों हैं? दूसरेका हित करना ही उचित है, जो बादमें कल्याणकारी है। इस परोपकार-धर्मसे विपरीत कामिनियोंके मन्द-मन्द कटाक्षपातसे कामपीड़ित आप सबके द्वारा जो आनन्द प्राप्त किया जाता है, क्या उसीमें आप सभीका हित संनिहित है? ऐसे आचरणमें तो कभी भी हित सम्भव नहीं है। अतः इस प्रकारका पाप न करें। आप सभीको सदैव ब्राह्मण, विष्णु और उस परात्पर ब्रह्मका विधिवत् निरन्तर भजन करना चाहिये; क्योंकि जलमें डूबे हुए घटके समान आयु मृत्युके बहाने एक दिनमें ही समाप्त हो सकती है, अथवा वह धीरे-धीरे नष्ट होती जाती है।

जो मनुष्य पराची स्त्रियोंमें मातृभाव रखता है, जो दूसरेके द्रव्योंको मिट्टी-पत्थरके ढेलेके समान नगण्य समझता है और सभी प्राणियोंमें अपने ही स्वरूपका दर्शन (आत्मदर्शन) करता है, वही विद्वान् है—

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥
(१११।१२)

हे ब्राह्मणो! सत्य तो यही है कि राजागण अपनी आत्माके लिये ही राज्यप्राप्तिकी कामना करते हैं और इसीलिये सभी कार्योंमें अपनी वाणीका उल्लंघन भी सहन नहीं करते हैं तथा धनका संचय भी इसीके लिये करते हैं, किंतु राजाको भी अपनी रक्षा करके शेष बचे हुए धनका उपयोग द्विजातियोंके भरण-पोषणमें करना चाहिये।

ब्राह्मणोंका मूल मन्त्र ॐकार है। इस ॐकारकी उपासनासे राष्ट्रकी अभिवृद्धि होती है और योगसे राजा वृद्धिको प्राप्त करते हैं और किसी भी प्रकारकी व्याधियाँ उसे बाँध नहीं सकतीं।

१-दोग्धारः क्षीरभुञ्जाना विकृतं तन्न भुञ्जते। परराष्ट्रं महीपालैर्भोक्तव्यं न च दूषयेत्॥ (१११।४)

२-ऐश्वर्यमध्रुवं प्राप्य राजा धर्मे मतिं चरेत्। क्षणेन विभवो नश्येन्नात्मायत्तं धनादिकम्॥ (१११।८)

३-सत्यं मनोरमाः कामाः सत्यं रम्या विभूतयः। किंतु वै वनितापाङ्गभङ्गिलोलं हि जीवितम्॥
व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रभवन्ति गात्रे।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो लोको न चात्महितमाचरतीह कश्चित्॥ (१११।९-१०)

सब प्रकारसे असमर्थ मुनिजन भी द्रव्योपार्जन करते हैं, फिर पुत्रवत् प्रजाका पालन करते हुए अर्थका संग्रह करनेवाले राजाके विषयमें क्या कहा जा सकता है? धनसंचय करना तो उसके लिये आवश्यक ही है।

जिसके पास धन है, उसीके मित्र एवं बन्धु-बान्धव हैं। वही इस संसारमें पुरुष है और वही धन-सम्पन्न व्यक्ति विद्वान् है। धनरहित होनेपर मनुष्यको मित्र, पुत्र, स्त्री तथा परिजन छोड़ देते हैं। धनवान् होनेपर पुनः वे सभी उसीका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं; क्योंकि इस संसारमें धन ही पुरुषका बन्धु है—

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः॥
त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च।
ते चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ति ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः॥

(१११।१७-१८)

जो राजा शास्त्रोंके ज्ञानसे शून्य है, वह नेत्रोंके रहते हुए भी अन्धेके समान है; क्योंकि अन्धा व्यक्ति तो अपने गुप्तचरके द्वारा देख सकता है, किंतु शास्त्र-ज्ञानसे रहित राजा देखनेमें असफल ही रहता है—

अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः।
अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति॥

(१११।१९)

जिस राजाके पुत्र, भृत्य, मन्त्री एवं पुरोहित तथा इन्द्रियाँ प्रसुप्त रहती हैं अर्थात् अपने-अपने कर्तव्यके पालनमें सावधान नहीं रहती हैं, उसका राज्य निश्चित ही चिरस्थायी नहीं होता। जिस [ज्ञान-सम्पन्न] व्यक्तिने [बुद्धिमान् तथा आलस्यरहित] पुत्र, भृत्य एवं परिजन—इन तीनोंको योग्यरूपमें प्राप्त किया है, वह राजाओंके सहित चारों समुद्रसे संयुक्त पृथिवीपर विजय प्राप्त कर लेता है।

जो राजा शास्त्रसम्मत और युक्तियुक्त सिद्धान्तोंका उल्लंघन करता है, वह निश्चित ही इस लोक एवं परलोक—दोनोंमें नष्ट हो जाता है[1]।

आपत्कालके आनेपर राजाको दुःखी नहीं होना चाहिये, उसे समबुद्धि, प्रसन्नात्मा तथा सुख-दुःखमें समान रहना चाहिये। धैर्यवान् मनुष्य कष्ट प्राप्त करके भी दुःखी नहीं होते हैं, क्योंकि राहुके मुखमें प्रविष्ट होकर चन्द्र क्या पुनः उदित नहीं होता?[2] शरीरके लालन-पालनमें अनुरक्त जनोंके प्रति धिक्कार है! धिक्कार है!! मनुष्यको धनहीन होनेसे क्षीण हुए शरीरके प्रति भी खेद नहीं करना चाहिये। यह तो सुना ही गया है कि [पतिव्रता] पत्नीसहित पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर आदिने आपत्कालके दुःखसे मुक्त होकर पुनः सुख प्राप्त किया था। अतः अनुकूल समयकी प्रतीक्षा धैर्यके साथ करनी चाहिये।

गन्धर्व-विद्या, वाद्य, गणिकागण, धनुर्वेद और अर्थशास्त्रकी रक्षा राजाको करनी चाहिये, क्योंकि ये सभी अपनी-अपनी जगह राष्ट्रके लिये उपयोगी हैं। जो राजा भृत्यपर अकारण क्रोध करता है, वह काले भयंकर नागसे छोड़े गये विषसे ग्रस्त उन्मादको प्राप्त करता है।

राजाको कभी भी श्रोत्रियके प्रति, भृत्यके प्रति किंबहुना मानवमात्रके प्रति न कभी चपलदृष्टि रखनी चाहिये और न कभी भी मिथ्या वाक्यका प्रयोग करना चाहिये। जो राजा अपने योग्य भृत्य एवं योग्य स्वजनके बलपर गर्वित होकर शासनकी उपेक्षा करता है और मदान्ध होकर विलासी जीवन व्यतीत करता है, वह अति शीघ्र शत्रुओंसे पराजित हो जाता है।

राजाको क्रोधातुर होकर अहंकारमें भृकुटि टेढ़ी नहीं करनी चाहिये। जो राजा दोषरहित भृत्योंपर अधर्मपूर्वक शासन करता है, इस लोकमें उसके सभी विलासपूर्ण सुखोपभोग नष्ट हो जाते हैं। राजाको विलासी वस्तुओंका परित्याग कर देना चाहिये, परंतु धार्मिक राजाके सुखमें प्रवृत्त होनेपर भी उसके शत्रु युद्धमें पराजित हो जाते हैं।

उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम—ये छः प्रकारके जो साहस कहे गये हैं, इनसे समन्वित राजासे देवता भी सशंकित रहते हैं। उद्योग करनेपर यदि व्यक्तिको कार्यमें सफलता प्राप्त नहीं होती है तो उसमें भाग्य ही कारण है, तथापि मनुष्यको सदा पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। प्रयत्नसे विरत नहीं होना चाहिये, क्योंकि इस जन्मका ही पौरुष अगले जन्ममें भाग्य बनता है।[3] (अध्याय १११)

१-लंघयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च। स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च॥ (१११।२२)

२-धीराः कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिनः। प्रविश्य वदनं राहोः किं नोदेति पुनः शशी॥ (१११।२४)

३-उद्योगः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः। षड्विधो यस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शंकते॥
उद्योगेन कृते कार्ये सिद्धिर्यस्य न विद्यते। दैवं तस्य प्रमाणं हि कर्तव्यं पौरुषं सदा॥ (१११।३२-३३)

राजाद्वारा सेवकोंके लिये अपनायी जाने योग्य भृत्यनीतिका निरूपण

श्रीसूतजीने कहा—उत्तम, मध्यम और अधम-भेदसे भृत्योंके तीन प्रकार जानना चाहिये। अतः उनकी योग्यताके अनुसार ही उन्हें विभिन्न कार्योंमें लगाना चाहिये।

सर्वप्रथम भृत्योंकी परीक्षण-विधिको कहा जा रहा है, साथ ही जिस-जिस भृत्यका जो गुण है, उसका भी वर्णन किया जा रहा है।

घर्षण, छेदन, तापन और ताडन—इन चार विधियोंसे जिस प्रकार सुवर्णकी परीक्षा की जाती है, उसी प्रकार राजाको व्रत, शील, कुल तथा कर्म—इन चार प्रकारोंसे भृत्यकी परीक्षा करनी चाहिये।

कुल, शील तथा सद्गुणसे सम्पन्न, सत्य-धर्मपरायण, रूपवान् तथा प्रसन्नचित्त मनुष्यको कोषाध्यक्षके पदपर नियुक्त करना चाहिये। द्रव्योंके मूल्य और रूपकी परीक्षा करनेमें कुशल व्यक्तिको रत्न-परीक्षकके पदपर नियुक्त करना चाहिये। जो सैन्य-शक्तिके बलाबलका परिज्ञान प्राप्त करनेमें निपुण हो, उसीको सेनाध्यक्ष बनाना चाहिये।

जो व्यक्ति संकेतमात्रसे स्वामीके अभिप्रायको समझनेमें समर्थ है, बलवान् तथा सुन्दर शरीरवाला है, प्रमादहीन एवं जितेन्द्रिय है, उसको प्रतीहारके पदपर नियुक्त करनेके लिये कहा गया है। जो मेधावी, वाक्पटु, विद्वान्, सत्यवादी, जितेन्द्रिय और सभी शास्त्रोंकी सम्यक् आलोचना करनेवाला हो, वही सज्जन व्यक्ति लेखकके पदका अधिकारी है। जो बुद्धिमान्, विवेकशील, दूसरेके चित्तका परिज्ञाता, शूर तथा यथोक्तवादी है, उसे दूतके पदपर नियुक्त करना चाहिये। जो मनुष्य समस्त स्मृतियों और शास्त्रोंका पण्डित है, जितेन्द्रिय, शौर्य एवं पराक्रमादि गुणोंसे सम्पन्न है, उसे धर्माध्यक्षके पदपर नियुक्त करना चाहिये।

जिसके पितृ-पितामह आदिकी परम्परामें रसोइयेका ही काम होता रहा हो और जो विशेषरूपसे पाकशास्त्रका जाननेवाला, सत्यवादी, पवित्र एवं दक्ष हो, ऐसा पुरुष रसोइयेके लिये उचित होता है।

जो आयुर्वेदशास्त्रका सम्यक् ज्ञान रखनेवाला, सौम्य स्वरूपसे सम्पन्न, सभीके लिये देखनेमें प्रिय लगनेवाला, आयु, शील और गुणोंसे सम्पन्न हो, वह वैद्यके पदका अधिकारी होता है। वेद-वेदाङ्गके तत्त्वोंको जाननेमें समर्थ, जप-होमपरायण, नित्य आशीर्वाद देनेमें तत्पर (अर्थात् राजाकी मङ्गलकामनामें अहर्निश दत्तचित्त) विद्वान् राजपुरोहितके योग्य होता है।

यदि लेखक, पाठक, गणक, प्रतिरोधक (प्रतीहार) आदि पदाधिकारी कार्य करनेमें आलस्य करते हों तो राजा सदैव उनको उस कार्यसे पृथक् कर दे।

जो दो प्रकारकी बात करता है, उद्वेगकर वाणी बोलता है, क्रूरकर्मा है तथा अत्यन्त दारुण है, ऐसे दुष्ट व्यक्ति और सर्पका मुख—ये मात्र दूसरेके अपकारके लिये ही होते हैं। विद्यासे सुशोभित होनेपर भी दुर्जन व्यक्तिका परित्याग कर देना चाहिये, मणिसे अलंकृत सर्प क्या भयंकर नहीं होता?[1]

अकारण क्रोध करनेवाले दुष्टसे किस व्यक्तिको भय नहीं रहता? अर्थात् ऐसे दुष्टसे सभी भयभीत रहते हैं; क्योंकि महाभयंकर नागराजका विष तथा दुष्टका कुत्सित वचन दूसरेके लिये असहनीय होता ही है।

राजाको अपने समान धन-वैभवसे सम्पन्न, पौरुष और ज्ञानमें समकक्ष एवं अपने रहस्यको जाननेवाले और उद्योगशील भृत्यको पूर्णरूपसे निष्प्रभावी बना देना चाहिये, अन्यथा राजा निश्चित ही अपने राज्यसे भ्रष्ट हो जाता है; क्योंकि ऐसा भृत्य राज्यका अपहारक ही होता है।

आरम्भमें जो भृत्य शूरता दिखाये, मधुर और धीमे वाक्य बोले, जितेन्द्रियके रूपमें स्वयंको प्रदर्शित करे और साथ ही पराक्रमशीलता भी प्रदर्शित करे पर बादमें इसके विपरीत आचरण करे, ऐसे भृत्य हितैषी नहीं होते। आलस्यरहित, अच्छी तरहसे संतुष्ट, अनिद्रारोगसे रहित, सदा सजग रहनेवाले, सुख-दुःखमें स्थिर-मतिवाले तथा धैर्यसम्पन्न भृत्य इस जगत्में दुर्लभ हैं।[2] क्षमासे रहित, सत्यविहीन, क्रूरबुद्धि, निन्दक, अहंकारी, कपटी, शठ, लोभी, पौरुषहीन और भयभीत होनेवाला भृत्य राजाके लिये त्याज्य है। ऐसे व्यक्तिको किसी भी राज्य-कार्यमें नियुक्त नहीं करना चाहिये।

राजाको दुर्ग (किले)-में संधान किये जाने योग्य अस्त्र तथा विविध प्रकारके शस्त्रोंका अच्छी प्रकारसे संग्रह करना चाहिये। ऐसा करनेसे राजा शत्रुको पराजित कर सकता है। परिस्थितिके अनुसार संधिकी अनिवार्यता होनेपर राजाको शत्रुके साथ छः मास अथवा एक वर्षपर्यन्त ही संधि करनी चाहिये। उसके बाद अपनी संचित

१-दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥ (११२।१५)

२-निरालस्याः सुसंतुष्टाः सुस्वप्नाः प्रतिबोधकाः। सुखदुःखसमा धीरा भृत्या लोकेषु दुर्लभाः॥ (११२।१९)

सामर्थ्यको देखते हुए शत्रुको पराजित करना चाहिये। जो राजा राज्यकार्यमें मूर्ख व्यक्तिको नियोजित करता है, उस राजाको अपयश, धन-विनाश तथा नरकभोग—ये तीन प्राप्त होते हैं।

जो राजा भृत्योंकी सूक्ष्म कार्यप्रणालीके द्वारा जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके अनुसार ही वह भविष्यमें अभिवृद्धि या ह्रासको प्राप्त करता है। अतः राजाको धर्म-अर्थ तथा काम—इस त्रिवर्गकी साधना एवं गौ-ब्राह्मणकी अभिरक्षाके लिये राज्यकार्यमें सर्वगुणसम्पन्न विद्वान् व्यक्तिको ही नियुक्त करना चाहिये। (अध्याय ११२)

नीतिसार

श्रीसूतजीने कहा—राजाको राज्यकार्यमें गुणवान् पुरुषकी नियुक्ति और गुणहीनका परित्याग करना चाहिये। विद्वान् व्यक्तिमें सभी गुण विद्यमान रहते हैं, किंतु मूर्ख व्यक्तिमें तो केवल दोष ही रहते हैं।

निरन्तर सज्जनोंके साथ रहना चाहिये और सज्जनोंकी ही संगति करनी चाहिये। विवाद एवं मैत्री भी सज्जनोंके साथ ही करनी चाहिये। दुर्जनोंके साथ कुछ भी नहीं करना चाहिये। पण्डित, विनीत, धर्मज्ञ एवं सत्यवादी जनोंके साथ बन्धनमें भी रहना श्रेयस्कर है, किंतु दुष्टोंके साथ राज्यका भी उपभोग करना उचित नहीं है—

सद्भिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत संगतिम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किंचिदाचरेत्॥
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः।
बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेच्च न तु राज्ये खलैः सह॥

(११३। २-३)

सभी कार्योंको पूर्ण कर लेना चाहिये। कोई काम अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। इससे सभी प्रकारके अर्थोंकी प्राप्ति हो जाती है।

जिस प्रकार भ्रमर पुष्पके परागको ग्रहण कर लेता है, किंतु पुष्पको नष्ट नहीं करता; जैसे दूध दुहनेवाला व्यक्ति बछड़ेके हितको ध्यानमें रखते हुए दूधको दुहता है, वैसे ही राजाको प्रजाहितका ध्यान रखते हुए प्रजासे करका दोहन करना चाहिये। जिस प्रकार मधुमक्खी एक-एक पुष्पसे मधुको ग्रहण कर उसे एकत्र करती है, उसी प्रकार राजाको भी प्रजासे धन-संग्रह करना चाहिये।[1] जैसे वल्मीक (बाँबी), मधुमक्खीका छत्ता तथा शुक्लपक्षका चन्द्रमा प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा बढ़ता रहता है, वैसे ही राजाका द्रव्य तथा भिक्षा भी धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा धर्मपूर्वक संग्रह करनेसे बढ़ते रहते हैं।

समुचित रीतिसे अर्जित किये गये धनका भी क्षय होता ही है और श्रद्धापूर्वक दीयमान दान कोटिगुणित होकर यथासमय मिलता ही है—इस वास्तविकताको ध्यानमें रखते हुए अपना कोई भी दिन दान, अध्ययन या सत्कर्मसे विहीन नहीं होने देना चाहिये।[2] रागी व्यक्तिसे वनमें भी दोष हो जाते हैं। अतः घरमें मनुष्यके द्वारा किया गया पञ्चेन्द्रियोंका निग्रह तप ही है। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर अनिन्दित कर्मोंमें प्रवृत्त हो सन्मार्गकी ओर बढ़ता जाता है, उस विषयवासनाओंसे दूर निवृत्तमार्गवालेके लिये उसका घर ही तपोवन है।[3]

सत्यके पालनसे धर्मकी रक्षा होती है। सदा अभ्यास करनेसे विद्याकी रक्षा होती है। मार्जनके द्वारा पात्रकी रक्षा होती है और शीलसे कुलकी रक्षा होती है—

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते पात्रं कुलं शीलेन रक्ष्यते॥

(११३। १०)

विन्ध्याटवीमें निवास करना मनुष्यके लिये अच्छा है, बिना भोजन किये ही मर जाना श्रेयस्कर है, सर्पसे परिव्याप्त भूमिपर सोना तथा कुएँमें गिरकर मृत्युको प्राप्त करना उचित है, जलके आवर्तयुक्त भयंकर भँवरमें डूब मरना श्रेष्ठ है; किंतु अपने ही पक्षके आत्मीय जनसे 'थोड़ा धन मुझे दे दें' इस प्रकार याचना करना अच्छा नहीं है।[4] भाग्यका ह्रास होनेसे मनुष्यकी सम्पदाओंका विनाश होता है, न कि उपभोग

१-मधुहेव दुहेत् सारं कुसुमं च न घातयेत्। वत्सापेक्षी दुहेत् क्षीरं भूमिं गां चैव पार्थिवः॥
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनुते मधु षट्पदः। तथा वित्तमुपादाय राजा कुर्वीत संचयम्॥ (११३। ५-६)

२-अर्जितस्य क्षयं दृष्ट्वा सम्प्रदत्तस्य संचयम्। अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मसु॥ (११३। ८)

३-वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥ (११३। ९)

४-वरं विन्ध्याटव्यां निवसनमभुक्तस्य मरणं वरं सर्पाकीर्णे शयनमथ कूपे निपतनम्।
वरं भ्रान्तावर्ते सभयजलमध्ये प्रविशनं न तु स्वीये पक्षे हि धनमणु देहीति कथनम्॥ (११३। ११)

करनेसे। पूर्वजन्ममें यदि पुण्य अर्जित है तो सम्पत्तिका नाश कभी नहीं हो सकता।

ब्राह्मणोंका आभूषण विद्या, पृथिवीका आभूषण राजा, आकाशका आभूषण चन्द्र एवं समस्त चराचरका आभूषण शील है—

विप्राणां भूषणं विद्या पृथिव्या भूषणं नृपः।
नभसो भूषणं चन्द्रः शीलं सर्वस्य भूषणम्॥

(११३।१३)

इतिहासप्रसिद्ध ये जो भीमसेन, अर्जुन आदि राजपुत्र हैं—ये सभी चन्द्रके समान कान्तिसम्पन्न, पराक्रमशील, सत्यप्रतिज्ञ, सूर्यके सदृश प्रतापशाली और स्वयं विष्णुके अवतारस्वरूप भगवान् कृष्णसे अभिरक्षित थे, फिर भी इन लोगोंको कृपण धृतराष्ट्रकी परवशताके कारण भिक्षाटन करना पड़ा। इस संसारमें कौन ऐसा है, किसमें ऐसी सामर्थ्य है, जिसको भाग्यके वशीभूत होनेके कारण कर्मरेखा नहीं घुमाती?[1]

जिस पूर्वसंचित कर्मके अधीन होकर ब्रह्मा कुम्भकारके समान ब्रह्माण्डरूपी इस महाभाण्डके उदरमें चराचर प्राणियोंकी सृष्टिमें नियमतः लगे रहते हैं, जिस कर्मसे अभिभूत होकर विष्णु दशावतारके कालमें परिव्याप्त असीमित महासंकटमें अपनेको डाल देते हैं, जिस कर्मके अनुसार ही सदाशिव रुद्र हाथमें कपाल धारणकर भिक्षाटन करते हैं और जिस कर्मसे सूर्य नित्य आकाशमें ही चक्कर काटते हैं—उस कर्मको मैं नमस्कार करता हूँ।[2]

राजा बलि उत्कृष्ट कोटिके दाता थे और याचक स्वयं भगवान् विष्णु थे। विशिष्ट ब्राह्मणोंके समक्ष पृथ्वीका दान दिया गया, फिर भी दानका फल बन्धन प्राप्त हुआ। यह सब दैवका खेल है, ऐसे इच्छानुसार फल देनेवाले दैवको नमस्कार है।[3]

यदि प्राणीकी माता स्वयं लक्ष्मी हों, पिता साक्षात् भगवान् जनार्दन विष्णु हों, उसके बाद भी प्राणीको यदि कुबुद्धिमें ही विश्वास है तो उसको दण्ड भोगना ही पड़ेगा।

पूर्वजन्ममें प्राणीने जैसा कर्म किया है, उसी कर्मके अनुसार वह दूसरे जन्ममें फल भोगता है। अतः स्वयमेव प्राणी अपने भोग्य फलका निर्माण करता है, अर्थात् वह कर्मफलका स्वयं ही विधाता है।

हम अपने सुख या दुःखके स्वयं ही हेतु हैं। माताके गर्भाशयमें आकर अपने पूर्वदेहमें किये गये कर्मोंके फल ही हमें भोगने पड़ते हैं। आकाश, समुद्र, पर्वतीय गुफा तथा माताके सिरपर और माताकी गोदमें अवस्थित रहते हुए भी मनुष्य निश्चित ही उन अपने पूर्वसंचित कर्मफलका परित्याग करनेमें समर्थ नहीं होता।

जिसका दुर्ग ही त्रिकूट पर्वत था, जिसकी परिखा समुद्र ही था, राक्षसगणसे जो अभिरक्षित था, स्वयं जो परम विशुद्ध आचरण करनेवाला था, जिसको नीतिशास्त्रकी शिक्षा शुक्राचार्यसे प्राप्त हुई थी, वह रावण भी काल-वश नष्ट हो गया।

जिस अवस्था, जिस समय, जिस दिन, जिस रात्रि, जिस मुहूर्त अथवा जिस क्षण जैसा होना निश्चित है; वह वैसा ही होगा, अन्यथा नहीं हो सकता—

यस्मिन् वयसि यत्काले यद्दिवा यच्च वा निशि।
यन्मुहूर्ते क्षणे वापि तत्तथा न तदन्यथा॥

(११३।२२)

सभी अन्तरिक्षमें जा सकते हैं या भूगर्भमें प्रवेश कर सकते हैं अथवा दसों दिशाओंको अपने ऊपर धारण कर सकते हैं, किंतु अप्रदत्त वस्तुको प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

पूर्वजन्ममें अर्जित की गयी विद्या, दिया गया धन तथा सम्पादित कर्म ही दूसरे जन्ममें आगे-आगे मिलते जाते हैं। अर्थात् प्राणीने पूर्वजन्ममें जैसा कर्म किया है, उसको इस जन्ममें वैसा ही प्राप्त होता है।[4] इस संसारमें कर्म ही प्रधान है। सुन्दर नक्षत्र था, ग्रहोंका योग था, स्वयं वसिष्ठ मुनिके द्वारा निर्धारित लग्नमें विवाह-संस्कार कराये जानेपर भी

१-एते ते चन्द्रतुल्याः क्षितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्याः शूराः सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुषः केशवेनोपगूढाः।
ते वै दुष्टग्रहस्थाः कृपणवशगता भैक्ष्यचर्यां प्रयाताः को वा कस्मिन् समर्थो भवति विधिवशाद्भ्रामयेत् कर्मरेखा॥ (११३।१४)

२-ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे॥ (११३।१५)

३-दाता बलिर्याचकको मुरारिर्दानं मही विप्रमुखस्य मध्ये। दत्त्वा फलं बन्धनमेव लब्धं नमोऽस्तु ते दैव यथेष्टकारिणे॥ (११३।१६)

४-पुराधीता च या विद्या पुरा दत्तञ्च यद्धनम्। पुरा कृतानि कर्माणि ह्यग्रे धावति धावति॥ (११३।२४)

जानकी—सीताको [पूर्वजन्ममें संचित कर्मके अनुसार] दुःख भोगना पड़ा। विशाल जंघाओंवाले श्रीराम, शब्दकी गतिसे चलनेवाले श्रीलक्ष्मण तथा सघन केशवाली शुभलक्षणा श्रीसीताजी—ये भी तीनों जब अपने कर्मके अनुसार दुःखके भाजन हो गये तो सामान्य जनके विषयमें कुछ कहना ही व्यर्थ है। न पिताके कर्मसे पुत्रको सद्गति मिल सकती है और न पुत्रके कर्मसे पिताको सद्गति मिल सकती है। सभी लोग अपने-अपने कर्मसे ही अच्छी गति प्राप्त करते हैं।[1]

पूर्वजन्ममें अर्जित कर्मफलके अनुसार प्राप्त शरीरमें शारीरिक और मानसिक रोग उसी प्रकार आकर अपना दुष्प्रभाव प्रकट करते हैं, जिस प्रकार कुशल वीर धनुर्धरोंके द्वारा छोड़े गये बाण लक्ष्यको बेधकर कष्ट पहुँचाते हैं। बाल-युवा तथा वृद्ध जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, वह जन्म-जन्मान्तरमें उसी अवस्थाके अनुसार उस फलका भोग करता है। उस पूर्वार्जित फलको न देखनेवाला एवं विदेशमें रहता हुआ भी मनुष्य अपने कर्मरूपी जहाजके संयमित पवन-वेगके द्वारा उस फलतक पहुँचा दिया जाता है।[2]

मनुष्य अपने प्रारब्धका फल प्राप्त करता है। देवता भी उस फलभोगको रोकनेमें समर्थ नहीं हैं। इसीलिये मैं कर्मफलके विषयमें चिन्ता नहीं करता हूँ और न मुझे आश्चर्य ही है, क्योंकि जो मेरा है, उसे दूसरा कोई नहीं ले सकता—

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो
देवोऽपि तं वारयितुं न शक्तः।
अतो न शोचामि न विस्मयो मे
यदस्मदीयं न तु तत्परेषाम्॥
(११३।३२)

जैसे साँप, हाथी और चूहा—ये शीघ्रतावश क्रमशः कुआँ, अपने वासस्थान तथा बिलतक ही भाग सकते हैं, इससे आगे कहाँतक जा सकते हैं? इसी तरह अपने कर्म अथवा भाग्यसे कौन भाग सकता है? सब तो उसीके अधीन हैं।

सद्विद्या देनेसे उसी प्रकार बढ़ती रहती है कम नहीं होती, जिस प्रकार कुएँसे जल ग्रहण कर लेनेपर भी कुएँका जल बढ़ता ही रहता है [घटता नहीं]। जो धन धर्मानुसार अर्जित किया जाता है वही [वास्तविक] धन है। अधर्मसे प्राप्त हुआ धन तो मनुष्यके ऐश्वर्यका नाशक होता है। इस संसारमें धर्मार्थी ही महान् होता है। धनकी अपेक्षा करनेवाले मनुष्यको निश्चित ही श्रेष्ठजनोंके दृष्टान्तोंको स्मरण करके धनोपार्जनमें तत्पर होना चाहिये। अन्नार्थी कृपण व्यक्ति जिन दुःखोंको भोगता है, यदि धर्मार्थी होकर वह उन दुःखोंका चिन्तन करे तो पुनः उसको दुःखका पात्र होना ही न पड़े। सभी प्रकारकी शुचितामें अन्नकी शुचिता ही प्रधान है। जो मनुष्य अन्न और अर्थसे पवित्र है [वही शुचि है]। केवल मिट्टी और जलसे शुचिता नहीं आती।[3]

सत्यपालनमें शुचिता, मनःशुद्धि, इन्द्रियनिग्रह, सभी प्राणियोंमें दया और जलसे प्रक्षालन—ये पाँच प्रकारके शौच माने गये हैं। जिसमें सत्यपालनकी शुचिता है, उसके लिये स्वर्गकी प्राप्ति दुर्लभ नहीं है। जो मनुष्य सत्य ही सम्भाषण करता है, वह अश्वमेधयज्ञ करनेवाले व्यक्तिसे भी बढ़कर है—

सत्यं शौचं मनःशौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूते दया शौचं जलशौचं च पञ्चमम्॥
यस्य सत्यं हि शौचं च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः।
सत्यं हि वचनं यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते॥
(११३।३८-३९)

दुष्ट स्वभावसे अपनी आत्माको दबाकर रखनेवाला

१-कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभग्रहे। वसिष्ठकृतलग्नाऽपि जानकी दुःखभाजनम्॥
स्थूलजंघो यदा रामः शब्दगामी च लक्ष्मणः। घनकेशी यदा सीता त्रयस्ते दुःखभाजनम्॥
न पितुः कर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा। स्वयं कृतेन गच्छन्ति स्वयं बद्धाः स्वकर्मणा॥ (११३।२५—२७)

२-बालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम्। तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि॥
अनीक्षमाणोऽपि नरो विदेशस्थोऽपि मानवः। स्वकर्मपोतवातेन नीयते यत्र तत्फलम्॥ (११३।३०-३१)

३-येऽर्था धर्मेण ते सत्या येऽधर्मेण गताः श्रियः। धर्मार्थी च महाँल्लोके तत् स्मृत्वा ह्यर्थकारणात्॥
अन्नार्थी यानि दुःखानि करोति कृपणो जनः। तान्येव यदि धर्मार्थी न भूयः क्लेशभाजनम्॥
सर्वेषामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते। योऽन्नार्थैः शुचिः शौचान्न मृदा वारिणा शुचिः॥ (११३।३५—३७)

दुराचारी पुरुष हजारों बार मिट्टीके लेप तथा सैकड़ों बार जलके प्रक्षालनसे पवित्र नहीं हो सकता। जिसके हाथ-पैर एवं मन सुसंयत हैं, जिसे अध्यात्म-विद्या प्राप्त है, जो धर्मपालनके लिये कष्ट सहन करता है तथा जिसने सत्कीर्ति अर्जित की है, वही तीर्थोंका यथार्थ फल भी भोगता है—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥

(११३।४१)

जो मनुष्य सम्मानसे प्रसन्न नहीं होता, अपमानसे क्रुद्ध नहीं होता एवं क्रोधके आनेपर मुँहसे कठोर वाक्य नहीं निकालता, ऐसे ही मनुष्यको साधुपुरुष समझना चाहिये—

न प्रहृष्यति सम्मानैर्नावमानैः प्रकुप्यति।
न क्रुद्धः परुषं ब्रूयादेतत्साधोस्तु लक्षणम्॥

(११३।४२)

विद्वान्, मधुरभाषी भी कोई व्यक्ति यदि दरिद्र है तो उसके समयोचित हितकारी वचनको सुनकर भी कोई संतुष्ट नहीं होता है। यदि कोई मनुष्य मन्त्र या बलके प्रभावसे अथवा बुद्धि और पौरुषके बलपर अलभ्य-अदृष्ट वस्तुको प्राप्त नहीं कर पा रहा है तो उस विषयमें मनुष्यको किसी प्रकारका खेद नहीं करना चाहिये।

अयाचित कोई वस्तु मुझे प्राप्त हो और पुनः वह मेरे पाससे चली जाय तो कष्ट होता है, किंतु जो जहाँसे आयी थी वह पुनः वहीं चली गयी तो उसमें कैसा दुःख? दुःख करनेका कोई औचित्य ही नहीं है। रात्रिमें सदैव एक ही वृक्षपर नाना प्रकारके पक्षियोंका समूह शरण लेता है, किंतु प्रातःकाल होते ही वे सभी भिन्न-भिन्न दिशाओंमें चले जाते हैं। उस आश्रयके विषयमें उन लोगोंको कौन-सा दुःख होता है? इसी दृष्टान्तको ध्यानमें रखकर मनुष्योंको वियोगजन्य दुःखमें खिन्न नहीं होना चाहिये। एक साथ सामूहिक रूपमें चलनेवालोंमें यदि कोई एक त्वरित गतिसे चल रहा है तो उससे ईर्ष्या क्यों की जाय?

हे शौनक! सभी प्राणियों या पदार्थोंकी उत्पत्तिके पूर्वमें स्थिति नहीं थी और निधनके अन्तमें भी उनकी स्थिति नहीं रहेगी। सभी पदार्थ मध्यमें ही विद्यमान रहते हैं। इसमें दुःख करनेकी क्या बात है—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

(११३।४८)

समय प्राप्त न होनेसे पहले प्राणी सैकड़ों बाण लगनेपर भी नहीं मरता और समयके आ जानेपर कुशकी नोंक लग जानेसे भी वह जीवित नहीं रहता।[1] प्राप्त होने योग्य वस्तु ही प्राप्त होती है, गन्तव्य स्थानपर ही व्यक्ति जाता है। अतः प्राणीको जो दुःख-सुख प्राप्त होने योग्य है वही उसको प्राप्त होता है।

मनुष्य प्राप्त होने योग्य अमुक-अमुक वस्तुको ही प्राप्त करता है तो वह अभिलषित वस्तुके लिये नाना प्रकारसे प्रयास करके क्या प्राप्त कर लेगा? उसका तो अपनेको अभावग्रस्त समझकर प्रलाप करना व्यर्थ ही है।

जिस प्रकार प्रार्थना आदिके बिना ही यथासमय वृक्षके द्वारा प्राणीको अपने समयपर ही फल-फूलकी प्राप्ति हो जाती है, उसी प्रकार पूर्वजन्मकृत कर्म भी अपने समयके अनुसार यथोचित फल देता है। व्यक्तिमें अवस्थित शील, कुल, विद्या, ज्ञान, गुण तथा कुल-शुद्धि उसको कुछ देनेमें समर्थ नहीं हैं। पूर्वजन्मकृत तपसे प्राप्त हुआ उसका भाग्य ही समयके अनुसार वृक्षकी भाँति उसे फल देता है।[2]

प्राणीकी मृत्यु वहाँ होती है, जहाँ उसका हन्ता विद्यमान रहता है। लक्ष्मी वहीं निवास करती है, जहाँ सम्पत्तियाँ रहती हैं। ऐसे ही अपने कर्मसे प्रेरित होकर प्राणी स्वयं ही उन-उन स्थानोंपर पहुँच जाता है। पूर्वजन्ममें किया गया कर्म कर्ताके पीछे-पीछे वैसे ही रहता है, जैसे गोष्ठमें

१-नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि। कुशाग्रेण तु संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति॥ (११३।४९)

२-आचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च। स्वकालं नातिवर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम्॥
शीलं कुलं नैव च चैव विद्या ज्ञानं गुणा नैव न बीजशुद्धिः।
भाग्यानि पूर्वं तपसार्जितानि काले फलन्त्यस्य यथैव वृक्षाः॥ (११३।५१-५२)

हजार गायोंके रहनेपर भी बछड़ा अपनी माताको प्राप्त कर लेता है—

> तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पदः।
> तत्र तत्र स्वयं याति प्रेर्यमाणः स्वकर्मभिः॥
> भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्तारमनुतिष्ठति।
> यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्॥
> (११३।५३-५४)

हे मूर्ख प्राणी! इस प्रकार जब पूर्वजन्मकृत कर्म कर्तामें ही अवस्थित रहता है तो अपने पुण्यका फल भोगो। तुम क्यों संतप्त हो रहे हो? जैसा पूर्वजन्ममें शुभ अथवा अशुभ कर्म किया गया है, वैसा ही फल जन्मान्तरमें कर्ताका अनुसरण करता है, उसके पीछे-पीछे चलता है।

नीच व्यक्ति दूसरेमें सरसोंके बराबर भी स्थित दोष-छिद्रोंको देखता है, किंतु अपनेमें बेल (फल)-के समान अवस्थित दोषोंको देखते हुए भी नहीं देखता।[1] हे द्विज! राग-द्वेषादिक दोषोंसे युक्त प्राणियोंको कहींपर भी सुख नहीं है। मैं भली प्रकारसे विचार करके यह देखता हूँ कि जहाँ संतोष है, वहाँ सुख है। जहाँ स्नेह है, वहाँ भय है। अतः स्नेह ही दुःखका कारण है। प्राणियोंमें स्नेह उत्पन्न करनेके जो मूल हैं, वे ही दुःखके कारण हैं। अतः उनका परित्याग कर देनेपर अर्थात् उनके प्रति अपनी आसक्तिको समाप्त कर देनेसे प्राणीको महान् सुखकी प्राप्ति होती है।[2] यह शरीर ही दुःख और सुखका घर है। उत्पन्न हुए शरीरके साथ ही वह दुःख-सुख भी उत्पन्न होता है।

पराधीनता ही दुःख है और स्वाधीनता ही सुख है। संक्षेपमें यही सुख-दुःखका लक्षण समझना चाहिये। प्राणीको सुखभोगके पश्चात् दुःख और दुःखके बाद सुखका भोग प्राप्त होता है। इस तरह मनुष्योंके सुख-दुःख चक्रके समान परिवर्तित होते रहते हैं। जो मनुष्य भूतकालिक विषयवस्तुको समाप्त हुआ मान लेता है और भविष्यमें होनेवालेको बहुत दूर समझता है एवं वर्तमानमें अनासक्त-भावसे रहता है, वह किसी भी प्रकारके शोकसे दुःखी नहीं होता।[3] (अध्याय ११३)

नीतिसार

श्रीसूतजीने पुनः कहा—न कोई किसीका मित्र है और न कोई किसीका शत्रु। कारणविशेषसे ही लोग एक-दूसरेके मित्र और शत्रु होते हैं। यह दो अक्षरोंवाला रत्नरूपी 'मित्र' शब्द किसने बनाया? यह दुःख एवं भयसे प्राणियोंका अभिरक्षक है तथा प्राणिमात्रमें प्रेम और विश्वासको उत्पन्न करनेवाला है।

जिस व्यक्तिने एक बार भी 'हरि' इस दो अक्षरसे युक्त शब्दका उच्चारण कर लिया है, वह अपने कटिप्रदेशमें परिकर (फेंटा) बाँधकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये तैयार रहता है। अर्थात् ऐसा मनुष्य मोक्षका अधिकारी हो जाता है—

> सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्।
> बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥
> (११४।२)

माता, पत्नी, सहोदर बन्धु तथा पुत्रमें पुरुषोंको वैसा विश्वास नहीं होता है, जैसा विश्वास उन्हें स्वाभाविक मित्रमें होता है। यदि मनुष्य किसीके साथ शाश्वत प्रेम करना चाहता है तो उसे उसके साथ द्यूत, अर्थ-व्यवहार (धनका लेन-देन) एवं परोक्षरूपमें उसकी स्त्रीका दर्शन—इन तीन दोषोंका परित्याग कर देना चाहिये। माता, भगिनी अथवा पुत्रीके साथ एकान्तमें एक साथ नहीं बैठना चाहिये, क्योंकि

१-नीचः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति। आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति॥ (११३।५७)

२-रागद्वेषादियुक्तानां न सुखं कुत्रचिद्द्विज। विचार्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः॥
यत्र स्नेहो भयं तत्र स्नेहो दुःखस्य भाजनम्। स्नेहमूलानि दुःखानि तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम्॥ (११३।५८-५९)

३-सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्। एतद्विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्। सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत् परिवर्तते॥
यद्गतं तदतिक्रान्तं यदि स्यात् तच्च दूरतः। वर्तमानेन वर्तेत न स शोकेन बाध्यते॥ (११३।६१—६३)

इन्द्रियोंका समूह बलवान् होता है, वह विद्वान्‌को भी [दुराचरणकी ओर] खींच लेता है—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो वसेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(११४।६)

हे शौनक! उपयुक्त अवसर न होनेसे, एकान्त स्थान न होनेसे तथा प्रार्थयिता व्यक्तिके सुलभ न होनेसे ही स्त्रियोंमें सतीत्व पाया जाता है।

जो मधुर पदार्थोंसे बालकको, विनम्रभावसे सज्जन पुरुषको, धनसे स्त्रीको, तपस्यासे देवताको और सद्व्यवहारसे समस्त लोकको अपने वशमें कर लेता है, वही पण्डित है। जो लोग कपटसे मित्र बनाना चाहते हैं, पापसे धर्म कमाना चाहते हैं, दूसरेको संतप्त करके धन-संग्रह करना चाहते हैं, बिना परिश्रमके ही सुखपूर्वक विद्या-अर्जन करना चाहते हैं और कठोर व्यवहारके द्वारा स्त्रियोंको वशमें रखनेकी अभिलाषा रखते हैं, वे पण्डित (कुशल) नहीं हैं।

फलकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य यदि फल-समन्वित वृक्षका ही मूलोच्छेद कर डालता है तो वह दुर्बुद्धि है। उसे फल कभी नहीं प्राप्त हो सकता। अविश्वसनीय व्यक्तिका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। मित्रका भी [अधिक] विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि कदाचित् क्रुद्ध होनेपर मित्र भी समस्त गोपनीयताको प्रकट कर सकता है—

न विश्वसेदविश्वस्ते मित्रस्यापि न विश्वसेत्।
कदाचित् कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्॥

(११४।१२)

सभी प्राणियोंमें विश्वास करना, सभी प्राणियोंके प्रति सात्त्विक भाव रखना एवं अपने सत्-स्वभावकी रक्षा करना—ये सज्जन पुरुषके लक्षण हैं।

दरिद्रके लिये गोष्ठी[1] विषके समान है और वृद्ध व्यक्तिके लिये युवती विषके समान है। भलीभाँति आत्मसात् न की गयी विद्या विष है तथा अजीर्ण-दशामें किया गया भोजन विषके समान (अनिष्टकारी) है। अकुण्ठित व्यक्तिको गायन, नीच व्यक्तिको उच्च आसनकी प्राप्ति, दरिद्रको दान तथा युवकको तरुणी प्रिय होती है।

अधिक मात्रामें जलका पीना, गरिष्ठ भोजन, धातुकी क्षीणता, मल-मूत्रका वेग रोकना, दिनमें सोना एवं रात्रिमें जागरण करना—इन छः कारणोंसे मनुष्योंके शरीरमें रोग निवास करने लगते हैं—

अत्यम्बुपानं कठिनाशनं च धातुक्षयो वेगविधारणं च।
दिवाशयो जागरणं च रात्रौ षड्भिर्नराणां निवसन्ति रोगाः॥

(११४।२८)

प्रातःकालीन धूप, अतिशय मैथुन, श्मशान-धूमका सेवन, अग्निमें हाथ सेंकना और रजस्वला स्त्रीका मुख-दर्शन—ये दीर्घ आयुका विनाश करनेवाले हैं। शुष्क मांस, वृद्धा स्त्री, बालसूर्य, रात्रिमें दहीका प्रयोग, प्रभातकालमें मैथुन एवं [प्रभातकालीन] निद्रा—ये छः सद्यः प्राणविनाशक होते हैं।

तत्काल पकाया गया घृत (ताजा घी), द्राक्षाफल, बाला स्त्री, दुग्ध-सेवन, गरम जल तथा वृक्षोंकी छाया—ये शीघ्र ही प्राण (शक्ति) प्रदान करनेवाले हैं। कुएँका जल और वटवृक्षकी छाया शीतकालमें गरम तथा गर्मीमें शीतल होते हैं। तैलमर्दन और सुन्दर भोजनकी प्राप्ति—ये सद्यः शरीरमें शक्तिका संचार करते हैं, किंतु मार्ग-गमन और मैथुन तथा ज्वर—ये सद्यः पुरुषका बल हर लेते हैं।

जो मलिन वस्त्र धारण करता है, दाँतोंको स्वच्छ नहीं रखता, अधिक भोजन करनेवाला है, कठोर वचन बोलता है, सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय भी सोता है; वह यदि साक्षात् चक्रपाणि विष्णु हो तो उसे भी लक्ष्मी छोड़ देती हैं।[2]

जो मनुष्य नखसे तृणका छेदन करता है, पृथिवीपर लिखता है, चरणोंका प्रक्षालन नहीं करता, दाँत स्वच्छ नहीं

१-मित्रोंको आमन्त्रितकर उनके साथ भोजन-जलपानादिकी व्यवस्था वहनकर मनोरंजन करना आदि।

२-कुचैलिनं दन्तमलोपधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम्।
सूर्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥ (११४।३५)

रखता, मलिन वस्त्र धारण करता है, केश संस्कारविहीन रखता है, प्रातः एवं सायंकालकी संध्याओंमें सोता है, नग्न शयन करता है, भोजन और परिहास अधिक करता है, अपने अङ्ग और आसनपर बाजा बजाता है तो भगवान् विष्णुके समान होनेपर भी उसे लक्ष्मी त्याग देती हैं। जो पुरुष अपने सिरको जलसे धोकर स्वच्छ रखता है, चरणोंको प्रक्षालित करके मलरहित करता है, वेश्यागमनसे दूर रहता है, अल्पभोजन करता है, नग्न शयन नहीं करता तथा पर्वरहित दिवसोंमें स्त्री-सहवास करता है तो उसके ये षट्कर्म चिरकालसे विनष्ट हुई उसकी लक्ष्मीको पुनः उसके सांनिध्यमें ले आते हैं।

बालसूर्यके तेज, जलती हुई चिताका धुआँ, वृद्ध स्त्री, बासी दही और झाड़ूकी धूलिका सेवन दीर्घ आयुकी कामना करनेवाले पुरुषको नहीं करना चाहिये।

हाथी, अश्व, रथ, धान्य तथा गौकी धूलि शुभ होती है। किंतु गधा, ऊँट, बकरी एवं भेड़की धूलिको अशुभ मानना चाहिये। गौकी धूलि, धान्यकी धूलि और पुत्रके अङ्गमें लगी हुई जो धूलि है, वह महान् कल्याणकारी एवं महापातकोंका विनाशक है।[1]

सूप फटकनेसे निकली हुई वायु, नखाग्र (नाखून)-का जल, स्नान किये हुए वस्त्रसे निचोड़ा हुआ जल, केशसे गिरता हुआ जल तथा झाड़ूकी धूलि मनुष्यके पूर्वजन्मके अर्जित पुण्यको भी नष्ट कर देती है। ब्राह्मण तथा अग्निके बीचसे, दो ब्राह्मणके बीचसे, पति-पत्नीके बीचसे, स्वामि-स्वामिनीके बीचसे तथा घोड़ा और साँड़के बीचसे नहीं जाना चाहिये।

स्त्री, राजा, अग्नि, सर्प, स्वाध्याय, शत्रुकी सेवा, भोग और आस्वादमें कौन ऐसा बुद्धिमान् होगा जो विश्वास करेगा?[2] अविश्वसनीयपर विश्वास तथा विश्वस्त प्राणीपर अधिक विश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि विश्वास करनेसे जो भय उत्पन्न होता है, वह मनुष्यको समूल नष्ट कर देता है। जो मनुष्य शत्रुके साथ संधि करके आश्वस्त रहता है, वह निश्चित ही वृक्षकी शाखाके अग्रभागपर सोये हुए मनुष्यके समान गिरनेके पश्चात् ही जागता है।[3]

प्राणीको अत्यन्त सरल अथवा अत्यन्त कठोर नहीं होना चाहिये, क्योंकि सरल स्वभावसे सरल और कठोर स्वभावसे कठोर शत्रुको नष्ट किया जा सकता है। अत्यन्त सरल तथा अत्यन्त कोमल नहीं होना चाहिये। सरल अर्थात् सीधे वृक्ष ही काटे जाते हैं, टेढ़े तो यथास्थितिमें खड़े रहते हैं। फलसे परिपूर्ण वृक्ष एवं गुणवान् व्यक्ति विनम्र हो जाते हैं, किंतु सूखे हुए वृक्ष और मूर्ख मनुष्य टूट सकते हैं पर झुक नहीं सकते; अर्थात् वे विनयावनत नहीं हो सकते।[4]

जिस प्रकार बिना याचना किये ही दुःख जीवनमें आते हैं और स्वतः चले भी जाते हैं [उसी प्रकार सुखकी भी यही स्थिति है], कामना करनेवाला मनुष्य तो मार्जार (बिल्ली)-की तरह दुःखोंको ही प्राप्त करता है। सज्जन पुरुषके आगे-पीछे सम्पदाएँ सर्वदा घूमती रहती हैं, दुर्जनके लिये इससे विपरीत स्थिति होती है। अतः जैसा अच्छा लगे वैसा करें। सज्जनता और दुर्जनताका आचरण करना मनुष्यपर निर्भर है।

छः कानोंतक पहुँची हुई गुप्त मन्त्रणा नष्ट हो जाती है। अतः मन्त्रणाको चार कानोंतक ही सीमित रखना चाहिये। दो कानोंतक स्थित मन्त्रणाको तो ब्रह्मा भी जाननेमें समर्थ नहीं हैं।[5]

उस गायसे क्या लाभ है, जो न दूध देनेवाली है और

१-गवां रजो धान्यरजः पुत्रस्याङ्गभवं रजः। एतद्रजो महाशस्तं महापातकनाशनम्॥ (११४।४२)

२-स्त्रीषु राजाग्निसर्पेषु स्वाध्याये शत्रुसेवने। भोगास्वादेषु विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति॥ (११४।४६)

३-न विश्वसेदविश्वस्तं विश्वस्तं नातिविश्वसेत्। विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति॥
वैरिणा सह संधाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति। स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतिबुध्यते॥ (११४।४७-४८)

४-नात्यन्तं मृदुना भाव्यं नात्यन्तं क्रूरकर्मणा। मृदुनैव मृदुं हन्ति दारुणेनैव दारुणम्॥
नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं नात्यन्तं मृदुना तथा। सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः॥
नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः। शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च॥ (११४।४९—५१)

५-षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुःकर्णश्च धार्यते। द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्यन्तं न बुध्यते॥ (११४।५४)

न गर्भिणी है? उस पुत्रके उत्पन्न होनेसे भी क्या लाभ है, जो न तो विद्वान् है और न धार्मिक? विद्यासम्पन्न एवं बुद्धिमान् तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ एकमात्र सुपुत्रसे भी मनुष्यका कुल वैसे ही सुशोभित हो जाता है, जैसे एक ही चन्द्रमासे आकाश-मण्डल चमकने लगता है। जिस प्रकार एक ही सुपुष्पित और सुगन्धित वृक्षसे सम्पूर्ण वन सुवासित हो जाता है, उसी प्रकार एक ही सुपुत्रसे सम्पूर्ण कुल पवित्र हो जाता है। मनुष्यके लिये गुणवान् एक ही पुत्र अच्छा है, गुणहीन सौ पुत्रोंसे क्या लाभ? चन्द्रमा अकेले ही अन्धकारको नष्ट कर देता है, किंतु हजारों ज्योतिष्पुञ्ज उस अन्धकारको दूर करनेमें असफल रहते हैं।[1]

मनुष्यको पाँच वर्षतक पुत्रका प्यारसे पालन करना चाहिये, दस वर्षतक उसे अनुशासित रखना चाहिये तथा सोलह वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर उसके साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिये।[2]

कुछ व्याघ्र हरिणके समान मुखवाले होते हैं, कुछ हरिण व्याघ्रमुखवाले होते हैं। उनके वास्तविक स्वरूपके परिज्ञानमें पद-पदपर अविश्वास बना ही रहता है। इसलिये बाह्य आकृतिसे प्राणीको अन्तःप्रवृत्तिको नहीं जानना चाहिये।[3]

क्षमाशील व्यक्तियोंमें एक ही दोष है, दूसरा दोष नहीं है। दोष यह है कि जो क्षमाशील होते हैं, मनुष्य उनको अशक्त (असमर्थ) मानता है—

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥
(११४।६२)

प्राणीको यह शास्त्रमत स्वीकार कर लेना चाहिये कि संसारके समस्त भोग क्षणभंगुर ही हैं, इसीलिये अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले स्निग्ध-सुन्दर सुखोपभोगोंके प्रति विद्वान् पुरुषके विचार स्थिर एवं तटस्थ रहते हैं। उनके मनमें उन विषय-वासनाओंके लिये आकर्षण नहीं होता।

हे शौनक! बड़ा भाई पिताके समान है। पिताकी मृत्युके पश्चात् वह सभी छोटे भाइयोंका पिता ही है; क्योंकि वह सभीका पालन-पोषण करता है। वह समस्त छोटोंके प्रति एक-समान भाव रखता है। वह समान उपभोग करनेवाले परिजनोंके विषयमें वैसा ही व्यवहार करता है, जैसा अपने पुत्रोंके प्रति उसका व्यवहार होता है। अतः छोटे भाइयोंको बड़े भाईके प्रति पिताके समान आदर-भाव रखना चाहिये।[4]

कम शक्तिशाली वस्तुओंका समुदाय (संगठन) भी अत्यधिक शक्तिसम्पन्न हो जाता है, जैसे तृणको बटकर बनायी गयी रस्सीसे हाथी भी बाँध लिया जाता है।

जो दूसरेका धन चुराकर दान देता है, वह नरकमें जाता है। जिसका धन है उसीको उस दानका फल प्राप्त होता है। देव-द्रव्य (देवताओंके पूजन आदिमें समर्पित किये जाने योग्य द्रव्यों)-के विनाश करनेसे, ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेसे एवं ब्राह्मणका तिरस्कार करनेसे मनुष्योंके वंश नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्महन्ता, मद्यपी, चोर तथा व्रतभंग करनेवाले पापियोंके पापका शमन[5] हो सकता है, किंतु सज्जनोंके द्वारा किये गये उपकारके प्रति कृतघ्नता करनेवाले कृतघ्न व्यक्तिका निस्तार सम्भव नहीं है।

मनुष्यको भूलकर भी दुष्ट एवं छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि भली प्रकारसे न बुझायी गयी अग्नि भी संसारको भस्म कर सकती है।

जो नयी अवस्थामें अर्थात् युवावस्थामें शान्त रहता है, वही शान्त-स्वभाव है, ऐसा मेरा विचार है; क्योंकि धातुक्षय आदि सब प्रकारकी शक्तियोंके समाप्त हो जानेपर किसमें शान्ति नहीं आ जाती? अर्थात् उस अवस्थामें तो सभी शान्त हो जाते हैं—

१-एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन धीमता। कुलं पुरुषसिंहेन चन्द्रेण गगनं यथा॥
एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना। वनं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा॥
एको हि गुणवान् पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम्। चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रकम्॥ (११४।५६—५८)

२-लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥ (११४।५९)

३-केचिन्मृगमुखा व्याघ्राः केचिद्‌व्याघ्रमुखा मृगाः। तत्स्वरूपपरिज्ञाने ह्यविश्वासः पदेपदे॥ (११४।६१)

४-ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता मृते पितरि शौनक। सर्वेषां स पिता हि स्यात् सर्वेषामनुपालकः॥
कनिष्ठेषु च सर्वेषु समत्वेनानुवर्तते। समोपभोगजीवेषु यथैवं तनयेषु च॥ (११४।६४-६५)

५-इन पापोंके शमनके लिये शास्त्रोंमें प्रायश्चित्तका विधान है, परंतु कृतघ्नके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

नवे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते॥
(११४।७३)

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! सार्वजनिक मार्गके समान सभी सम्पदाएँ सर्वमान्य हैं। अतएव 'यह सम्पदा मेरी है', ऐसा मानकर मनुष्यको प्रसन्न नहीं होना चाहिये। (अध्याय ११४)

नीतिसार

सूतजीने कहा—मनुष्यको गुणहीन पत्नी, दुष्ट मित्र, दुराचारी राजा, कुपुत्र, गुणहीन कन्या और कुत्सित देशका परित्याग दूरसे ही कर देना चाहिये।

कलियुगमें धर्म समाजसे निकल जाता है, तपमें स्थिरता नहीं रहती, सत्य प्राणियोंके हृदयसे दूर हो जाता है, पृथिवी वन्ध्या होकर फलहीन हो जाती है, मनुष्य कपट-व्यवहार करने लगते हैं, ब्राह्मणोंमें लालच आ जाता है, पुरुषजन स्त्रीके वशीभूत हो जाते हैं, स्त्रियाँ चंचल हो उठती हैं और नीच प्रवृत्तिके लोग ऊँचे पदोंपर आरूढ़ हो जाते हैं। अतः इस कलिकालमें जीवित रहना निश्चित ही बहुत कष्टसाध्य है। जो प्राणी मर गये हैं, वे ही धन्य हैं। वे लोग धन्य हैं जो राज्यानुशासनसे टूट रहे देश, विनष्ट होते हुए कुल, परासक्त पत्नी तथा दुराचरणमें आसक्त पुत्रको नहीं देखते हैं।

कुपुत्रके होनेपर मनुष्यको सुख-शान्ति नहीं मिलती है। दुराचारिणी पत्नीमें प्रेम कहाँ है? दुर्जन मित्र विश्वासके योग्य नहीं होता है और राज्यके कुशासनमें जीवित रहना सम्भव नहीं है। दूसरेका अन्न, दूसरेका धन, दूसरेकी शय्या, दूसरेकी स्त्रीका सेवन और दूसरेके घरमें निवास करना—ये सब कृत्य इन्द्रके भी ऐश्वर्यको समाप्त कर देते हैं।[1]

पापी पुरुषसे वार्तालाप करनेसे, उसके शरीरको स्पर्श करनेसे, संसर्गसे, सहभोजनसे, एक आसनपर बैठनेसे, एक शय्यापर शयन करनेसे एवं एक यानसे गमन करनेपर पापीका पाप दूसरे पुरुषमें संक्रमण कर जाता है। स्त्रियाँ रूपसे नष्ट हो जाती हैं। क्रोधसे तपस्या विनष्ट हो जाती है। दूरतक भ्रमण करनेसे गायें नष्ट हो जाती हैं और शूद्रान्नसे श्रेष्ठ ब्राह्मण नष्ट हो जाता है।[2]

पापीके साथ एक आसनपर बैठनेसे, एक शय्यापर शयन करनेसे, पंक्तिमें एक साथ भोजन करनेसे मनुष्यमें पापका संक्रमण वैसे ही होता है जैसे एक घड़ेका जल दूसरे घड़ेमें प्रविष्ट हो जाता है।

दुलारमें बहुत-से दोष हैं और ताडनामें बहुत-से गुण हैं। अतः शिष्य एवं पुत्रको अनुशासित रखना चाहिये, उन्हें केवल दुलार देना उचित नहीं है।

अधिक पैदल चलना प्राणियोंके लिये बुढ़ापा है। पर्वतोंका जल उसकी वृद्धावस्था है। सम्भोगकी अप्राप्ति स्त्रियोंके लिये वृद्धावस्था है और सदैव धूपमें रहना वस्त्रोंकी जीर्णता है।

नीच व्यक्ति दूसरेसे कलहकी इच्छा करते हैं। मध्यमार्गी दूसरेसे संधि चाहते हैं तथा उत्तम प्रकृतिके व्यक्ति दूसरेसे सम्मानकी अभिलाषा रखते हैं; क्योंकि महापुरुषोंका धन मान ही है। मान ही अर्थका मूल है। यदि सम्मान है तो धनकी क्या आवश्यकता है? मान और दर्पके नष्ट हो जानेपर धनसे और जीवनसे मनुष्यको क्या लाभ? मान तथा स्वाभिमानके विनष्ट हो जानेके पश्चात् प्राणीको धन एवं आयुसे क्या लेना-देना रह जाता है?

नीच प्रकृतिवाले पुरुष धन चाहते हैं। मध्यम प्रकृतिवाले धन और मानकी अभिरुचि रखते हैं तथा उत्तम प्रकृतिवाले मात्र सम्मानकी इच्छा करते हैं; क्योंकि श्रेष्ठजनोंका मान ही धन है—

अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥
(११५।१३)

वनमें भूखे सिंह किसी दूसरेके द्वारा प्राप्त किये गये मांसको देखनेके लिये भी नहीं झुकते हैं। उत्तम कुलमें

१-परान्नं च परस्वं च परशय्याः परस्त्रियः। परवेश्मनि वासश्च शक्रादपि हरेच्छ्रियम्॥ (११५।५)
२-स्त्रियो नश्यन्ति रूपेण तपः क्रोधेन नश्यति। गावो दूरप्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तमः॥ (११५।७)

उत्पन्न व्यक्ति धनहीन होनेपर भी नीच कर्म नहीं करते। वनमें सिंहका अभिषेक नहीं होता है और न तो उसका कोई संस्कार ही होता है, किंतु नित्य सम्यक् पुरुषार्थको करनेसे प्राणीमें स्वयं ही सिंहत्वका भाव आ जाता है—

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता॥
(११५।१५)

प्रमादी वणिक्, अभिमानी भृत्य, विलासी भिक्षु, निर्धन कामी तथा कटुभाषिणी वेश्या अपने कार्यमें असफल रहते हैं। दरिद्र होकर दाता होना, धनवान् होनेपर कृपण रहना, पुत्रका आज्ञाकारी न होना और दुष्टजनोंकी सेवामें संलग्न होना तथा दूसरेका अहित करते हुए मृत्युको प्राप्त हो जाना—ये पाँच कर्म मानवके दुश्चरित हैं। पत्नी-वियोग, स्वजनोंके द्वारा अपमान, शेष ऋण, दुर्जनसेवा तथा दरिद्रताके कारण मित्रोंकी विमुखता—ये पाँच बातें मनुष्यको बिना अग्निके ही जलाती हैं।[1]

मनुष्यको हजारों चिन्ताएँ होती हैं, किंतु उन चिन्ताओंके मध्य चार चिन्ताएँ ऐसी हैं जो तलवारकी धारके समान अत्यन्त तीक्ष्ण हैं, यथा—नीच व्यक्तिसे प्राप्त अपमानकी चिन्ता, भूखसे पीड़ित पत्नीकी चिन्ता, अनुरागहीन भार्याकी चिन्ता तथा कार्यमें स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न अवरोधकी चिन्ता। ये मनुष्यके मर्मस्थलपर तलवारकी धारके समान कष्ट पहुँचाती हैं।

अनुकूल पुत्र, अर्थकरी विद्या, आरोग्य शरीर, सत्संगति तथा मनोऽनुकूल वशवर्तिनी पत्नी—ये पाँच पुरुषके दुःखको समूल नष्ट करनेमें समर्थ हैं।[2]

मृग, हाथी, कीट, भ्रमर और मत्स्य—ये पाँच क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, और रस—इन पाँचों प्रमादी विषयोंमें एक-एकका सेवन करनेपर ही नष्ट हो जाते हैं, परंतु जो मनुष्य पाँचों विषयोंका पाँचों इन्द्रियोंसे सेवन करता है, तो वह क्यों नहीं मारा जायगा—

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग-
मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न घात्यो
यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥
(११५।२१)

धैर्यरहित, रूक्ष स्वभाववाले, गतिहीन, मलिन वस्त्राच्छादित और अनाहूत (बिना बुलाये सभा-उत्सवादिमें उपस्थित होनेवाले)—ये पाँच प्रकारके ब्राह्मण बृहस्पतिके समान होनेपर भी पूजे नहीं जाते हैं। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँच जन्मसे ही सुनिश्चित रहते हैं—

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पञ्चैतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिनः॥
(११५।२३)

मेघकी छाया, दुष्टका प्रेम, परनारीका साथ, यौवन और धन—ये पाँच अस्थिर हैं। संसारमें प्राणीका जीवित रहना अस्थिर है, उसका धन और यौवन अस्थिर है तथा उसके स्त्री-पुत्र आदि अस्थिर हैं, किंतु उसका धर्म, कीर्ति और यश चिरस्थायी होता है—

अभ्रच्छाया खले प्रीतिः परनारीषु संगतिः।
पञ्चैते ह्यस्थिरा भावा यौवनानि धनानि च॥
अस्थिरं जीवितं लोके अस्थिरं धनयौवनम्।
अस्थिरं पुत्रदाराद्यं धर्मः कीर्तिर्यशः स्थिरम्॥
(११५।२५-२६)

सौ वर्षका जीवन भी बहुत कम है, क्योंकि परिमित आयुका आधा भाग रात्रियोंमें ही व्यतीत हो जाता है। शेष बचे हुए समयका आधा भाग व्याधि, दुःख तथा वृद्धावस्थामें निष्क्रियताके कारण व्यतीत हो जाता है। मनुष्यकी आयु सौ वर्ष मानी गयी है। आयुका आधा भाग रात्रियोंमें ही समाप्त हो जाता है। उसकी शेष आधी ही आयु बचती है, जिसमेंसे आधेसे कुछ अधिक भाग बाल्यावस्थामें बीत जाता है, कुछ भाग परिजनोंके वियोग, उनकी दुःखदायी मृत्युसे प्राप्त कष्ट तथा राजसेवामें चला जाता है। इसके बाद जो आयुका शेष भाग बचता भी है, वह जलतरंगके समान चंचल होनेके कारण बीचमें ही विनष्ट हो जाता है। अतः लोगोंको मानसे क्या लाभ हो सकता है?

१-दाता दरिद्रः कृपणोऽर्थयुक्तः पुत्रोऽविधेयः कुजनस्य सेवा। परापकारेषु नरस्य मृत्युः प्रजायते दुश्चरितानि पञ्च॥
कान्तावियोगः स्वजनापमानं ऋणस्य शेषः कुजनस्य सेवा। दारिद्र्यभावाद्विमुखाश्च मित्रा विनाग्निना पञ्च दहन्ति तीव्राः॥(११५।१७-१८)

२-वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसङ्गतिश्च। इष्टा च भार्या वशवर्तिनी च दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च॥(११५।२०)

मृत्यु दिन-रात वृद्धावस्थाके रूपमें लोकमें विचरण करती रहती है। वह प्राणियोंको वैसे ही अपना ग्रास बनाती है, जैसे सर्प वायुका ग्रास करता है।

चलते हुए, रुकते हुए, जागते हुए और सोते हुए भी व्यक्ति यदि सभी प्राणियोंके हितके लिये चेष्टा नहीं करता है तो उसकी समस्त चेष्टा पशुवत् ही है।[1] हित और अहितके विचारसे शून्य बुद्धिवाले, वेद-पुराण तथा शास्त्रोंकी चर्चाके समय अत्यधिक तर्क-वितर्क करनेवाले एवं उदरपूर्तिमात्रमें संतुष्ट-बुद्धिवाले पुरुष और पशुके बीच कौन ऐसा वैशिष्ट्य है जिसके अनुसार उन दोनोंमें अन्तर स्पष्ट किया जा सके?

पराक्रम, तप, दान, विद्या तथा अर्थ-लाभमें जिस मनुष्यकी कीर्ति संसारमें प्रसिद्ध नहीं हुई, वह माताके द्वारा परित्याग किये गये मलके समान ही है। विज्ञान, पराक्रम, यश और अक्षुण्ण सम्मानसे युक्त होकर क्षणमात्र भी जो मनुष्य जीवन धारण करता है, विज्ञ लोग उसीके जीवनको जीवन मानते हैं। वैसे तो कौआ भी बहुत समयतक बलि-भक्षण करते हुए जीवित रहता ही है। धन-मानसे रहित जीवनसे क्या लाभ? भयसे सशंकित मित्रसे क्या हो सकता है? [इसलिये] विषादका परित्यागकर सिंहव्रत अर्थात् पराक्रमका आचरण करना चाहिये। अन्यथा कौआ भी तो बलिका भक्षण करते हुए बहुत समयतक जीवित रहता ही है। जो मनुष्य इस संसारमें अपने प्रति तथा गुरु, नौकर-चाकर और दीन-दुःखीके प्रति दयाभाव नहीं रखता है और मित्रके कार्यमें सहयोग नहीं करता है, मनुष्यलोकमें उसके जीवित रहनेसे क्या लाभ? अरे, कौआ भी बहुत समयतक जीवित रहता है और मनुष्योंके द्वारा दिये गये बलिभागके अन्नको ही जीवनभर खाता है[2]।

धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी क्रियासे रहित जिस मनुष्यके दिन आते हैं और चले जाते हैं, ऐसा व्यक्ति लुहारकी धौंकनीके समान ही है, जो कि श्वास लेते हुए भी जीवित नहीं है।

स्वाधीन रहकर आचरण करनेवाले मनुष्यका जीवन सफल है। पराधीन रहकर जीवन व्यतीत करनेवालेका जीवन तो व्यर्थ है। जो परतन्त्र रहकर जीवन-यापन करते हैं, वे तो जीवित रहते हुए भी मरेके समान हैं।[3]

आकाशमें घिरे हुए बादलोंकी छाया, तिनकेसे आग, नीचकी सेवा, मार्गमें दृष्टिगोचर हुआ जल, वेश्याका प्रेम और दुष्टके अन्तःकरणमें उत्पन्न हुई प्रीति—ये छः जलमें उठने और तत्काल विलुप्त होनेवाले बुलबुलेके सदृश ही क्षणभंगुर होते हैं—

अभ्रच्छाया तृणादग्निर्नीचसेवा पथो जलम्।
वेश्यारागः खले प्रीतिः षडेते बुद्बुदोपमाः॥

(११५।३९)

केवल वाणीके द्वारा किये गये हित-सम्पादनसे मनुष्यको सुख नहीं प्राप्त होता। जीवनका मूल तो मान है। मानके नष्ट हो जानेपर मनुष्यके लिये सुख कहाँ होता है?

निर्बलका बल राजा है, बालकका बल रोना है, मूर्खका बल मौन धारण कर लेना है और चोरका बल असत्य है।[4] मनुष्य जैसे-जैसे शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करता जाता है, वैसे-वैसे उसकी बुद्धि बढ़ती रहती है और विज्ञान प्राप्त करनेमें रुचि होती जाती है। मनुष्य जैसे-जैसे जनकल्याणमें अपनी बुद्धिको संयुक्त करता है, वैसे-वैसे ही वह सर्वत्र सभीका प्रिय पात्र बन जाता है—

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथास्य मेधा स्याद्विज्ञानं चास्य रोचते॥
यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मतिम्।
तथा तथा हि सर्वत्र श्लिष्यते लोकसुप्रियः॥

(११५।४२-४३)

लोभ, प्रमाद और विश्वास—इन तीनके कारण व्यक्तिका विनाश होता है। अतएव प्राणीको लोभ, प्रमाद और विश्वास नहीं करना चाहिये। मनुष्यको भयसे उसी समयतक भयभीत रहना चाहिये, जिस समयतक उसका आगमन नहीं हो जाता। तीव्र भयके उपस्थित हो जानेपर तो उसे

१-गच्छंस्तिष्ठन् वापि जाग्रत् स्वपतो न चेत्। सर्वसत्त्वहितार्थाय पशोरिव विचेष्टितम्॥ (११५।३०)

२-यो वात्मनीह न गुरौ न च भृत्यवर्गे दीने दयां न कुरुते न च मित्रकार्ये।
किं तस्य जीवितफलेन मनुष्यलोके काकोऽपि जीवति चिरं च बलिं च भुङ्क्ते॥ (११५।३५)

३-स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवर्तिता। ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृताः॥ (११५।३७)

४-अबलस्य बलं राजा बालस्य रुदितं बलम्। बलं मूर्खस्य मौनं हि तस्करस्यानृतं बलम्॥ (११५।४१)

निर्भीक होकर उसका सामना करना चाहिये।[1]

ऋण, अग्नि तथा व्याधिके शेष रहनेपर वे बार-बार बढ़ते जाते हैं। अतः उनका शेष रखना उचित नहीं है—

ऋणशेषं चाग्निशेषं व्याधिशेषं तथैव च।
पुनःपुनः प्रवर्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत्॥

(११५।४६)

परोक्ष-रूपमें कार्यको नष्ट करनेवाले तथा सामने मधुर बोलनेवाले मित्रका, मायावी शत्रुकी भाँति परित्याग कर देना चाहिये—

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं मायामयमरिं तथा॥

(११५।४८)

दुष्टका साथ करनेसे सज्जन मनुष्य भी विनष्ट हो जाता है, क्योंकि सुन्दर-स्वच्छ पेय जल कीचड़के मिल जानेसे दूषित हो जाता है—

दुर्जनस्य हि सङ्गेन सुजनोऽपि विनश्यति।
प्रसन्नमपि पानीयं कर्दमैः कलुषीकृतम्॥

(११५।४९)

जिस व्यक्तिका धन ब्राह्मणके लिये [समर्पित] होता है, वही [धनका] सम्यक् उपभोग करता है। इसलिये सभी प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक द्विजकी पूजा करनी चाहिये। जो द्विजके उपभोगसे बचे हुए पदार्थोंका उपभोग करता है, वही उत्तम भोजन है। जो पाप नहीं करता, वही बुद्धिमान् है। जो पीठ-पीछे हित-सम्पादन किया जाता है, वही मित्र-भाव है और जो दिखावेके बिना (दम्भरहित) धर्म किया जाता है, वही वास्तविक धर्माचरण है।[2]

वह सभा सभा नहीं होती, जिसमें वृद्ध जन नहीं होते। वे [वृद्ध] वृद्ध नहीं माने जाते, जो धर्मका उपदेश नहीं देते। वह [धर्म] धर्म नहीं है, जिसमें सत्यका वास नहीं होता। वह [सत्य] सत्य नहीं है, जो कपटसे अनुप्राणित रहता है—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति
नैतत् सत्यं यच्छलेनानुविद्धम्॥

(११५।५२)

मनुष्योंमें ब्राह्मण, तेजमें आदित्य, शरीरमें सिर और व्रतोंमें सत्य ही श्रेष्ठतम व्रत है।

जहाँ मनको प्रसन्नताकी प्राप्ति हो, वहीं प्राणीका मङ्गल है। दूसरेकी सेवामें समर्पित जीवन ही यथार्थ जीवन है। जो उपार्जित धन स्वजनोंके द्वारा उपभोग्य है, वही धन सार्थक है। युद्धभूमिमें शत्रुके सामने की गयी गर्जना ही वास्तविक गर्जना है। स्त्री वही श्रेष्ठ है, जो मदोन्मत्त नहीं हो। तृष्णारहित व्यक्ति ही सुखी होता है। जिसपर विश्वास किया जाय, वही मित्र है और जो जितेन्द्रिय होता है, वही वास्तविक पुरुष है।

राज्यका ऐश्वर्य क्रुद्ध ब्राह्मणके शापसे विनष्ट हो जाता है, ब्राह्मणका तेज पापाचार करनेसे नष्ट हो जाता है, अशिक्षित गाँवमें निवास करनेसे ब्राह्मणका सदाचार समाप्त हो जाता है और दुष्ट स्त्रियोंके साहचर्यसे कुलका विनाश हो जाता है। सभी संग्रहोंका अन्त क्षय है और सभी उत्कर्षोंका अन्त पतन है। संयोगका अन्त वियोग है और जीवनका अन्त मरण है।

मनुष्यको राजासे रहित राज्यमें और बहुत राजाओंवाले राज्यमें निवास नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार जहाँ स्त्रीका नेतृत्व हो या बालनेतृत्व हो वहाँ भी निवास करना अच्छा नहीं होता।

कौमार्य-अवस्थामें स्त्रीकी रक्षा पिता करता है, युवावस्थामें उसकी रक्षाका भार पतिपर होता है, वृद्धावस्थामें उसकी रक्षाका भार पुत्र उठाता है। स्त्री स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है।[3]

अर्थके लिये आतुर मनुष्यका न कोई मित्र है और न कोई बन्धु। कामातुर व्यक्तिके लिये न भय है और न लज्जा ही। चिन्तासे ग्रस्त प्राणीके लिये न सुख है और न नींद ही तथा भूखसे पीड़ित मनुष्यके शरीरमें न बल ही रहता है और न तेज ही रह जाता है—

अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धुः
कामातुराणां न भयं न लज्जा।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा
क्षुधातुराणां न बलं न तेजः॥

(११५।६७)

दरिद्र तथा दूसरेके द्वारा प्रेषित दूत, पर-नारीमें आसक्त तथा दूसरेके धन-अपहरणमें लगे हुए व्यक्तिको नींद कहाँ

१-तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्। उत्पन्ने तु भये तीव्रे स्थातव्यं वै ह्यभीतवत्॥ (११५।४५)

२-तद्भुज्यते यद्द्विजभुक्तशेषं स बुद्धिमान् यो न करोति पापम्। तत्सौहृदं यत्क्रियते परोक्षे दम्भैर्विना यः क्रियते स धर्मः॥ (११५।५१)

३-पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रस्तु स्थविरे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ (११५।६३)

आती है?[1] जो मनुष्य ऋणरहित और रोगमुक्त होता है, वही सुखपूर्वक निद्राका उपभोग करता है। इनके अतिरिक्त वह व्यक्ति भी निद्राका सुख प्राप्त करनेमें सफल होता है, जो स्त्रियोंके संसर्गसे दूर रहता है।

जलके परिमाणके अनुसार ही कमलनाल भी ऊपरकी ओर उठता जाता है और अपने स्वामीके बलके अनुसार भृत्य भी गर्वोन्नत हो जाता है। अपने स्थान जलाशयमें स्थित रहनेपर वरुणदेव एवं सूर्यनारायण कमलके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं, किंतु उस स्थानसे च्युत होनेपर उसी कमलके साथ वे जलासरुह और शोषणका व्यवहार करके कष्ट पहुँचाते हैं। पदासीन रहनेपर जो जिसके मित्र होते हैं, वे पदसे विमुक्त होनेपर वैसे ही शत्रु हो जाते हैं जैसे जलमें कमलके विद्यमान रहनेपर सूर्यकी प्रीति उसके साथ रहती है, किंतु उस जलसे उसको तोड़कर स्थलभागमें लानेपर वही सूर्य उसका शोषण करने लगता है।

अपने स्थान या पदपर अवस्थित रहनेपर ही मनुष्यकी पूजा होती है। स्थान और पदसे च्युत होनेपर उसकी उसी प्रकार पूजा नहीं होती, जिस प्रकार शरीरसे पृथक् होनेपर केश, दाँत और नख शोभित नहीं होते—

स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिताः।
स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नराः॥

(११५।७३)

आचारको देखकर कुलका ज्ञान होता है। भाषाको सुनकर देशका ज्ञान होता है। सम्भ्रमसे स्नेह प्रकट होता है और शरीरको देखकर भोजनका ज्ञान (अनुमान) होता है।[2]

समुद्रमें वर्षा होना व्यर्थ है। तृप्त हुए प्राणीके लिये भोजनका आग्रह व्यर्थ है। समृद्धको दान देना व्यर्थ है तथा नीचके लिये किया गया सुकृत व्यर्थ है। जो प्राणी जिसके हृदयमें अवस्थित है, वह दूरदेशमें रहते हुए भी उसके संनिकट ही विद्यमान रहता है और जो प्राणी हृदयसे ही निकल चुका है, वह समीपमें ही रहते हुए भी दूरदेशमें निवास करनेवालेके समान है।[3]

मुखकी विकृति, स्वरभंग, दैन्यभाव, पसीनेसे लथपथ शरीर तथा अत्यन्त भयके चिह्न प्राणीमें मृत्युके समय उपस्थित होते हैं, किंतु ये ही चिह्न याचकके जीवित शरीरपर भी दिखायी देते रहते हैं।

कुब्ज होना, कृमिदोषसे पीड़ित रहना, वायुविकारसे ग्रस्त होना, देश, राज्य या गृहसे निष्कासित हो जाना तथा पर्वतके शिखर-भागमें रहना अच्छा है, किंतु याचनाकी वृत्तिको स्वीकार करना उचित नहीं है। संसारके स्वामी होनेपर भी भगवान् विष्णु बलिके यहाँ याचना करके वामन (बौने) हो गये थे। उनसे बढ़कर और कौन ऐसा है, जो याचक होकर लघुताको प्राप्त नहीं होगा?[4]

वे माता-पिता उस बालकके शत्रु होते हैं, जिन्होंने उसे विद्याध्ययन नहीं कराया है। सभाके मध्य मूर्ख वैसे ही शोभा प्राप्त करनेमें सफल नहीं होता, जैसे हंस-समुदायके मध्य बगुला सुशोभित नहीं होता।

विद्या कुरूप व्यक्तिके लिये भी रूप है। विद्या अत्यधिक गुप्त धन है। विद्या प्राणीको साधुवृत्तिवाला तथा सभी लोगोंका प्रियपात्र बना देती है। वह गुरुओंकी भी गुरु है। विद्या बन्धु-बान्धवोंके कष्टोंको दूर करनेवाली है। विद्या परम देवता है। विद्या राजाओंके मध्य पूजनीय है। अतः विद्यासे विहीन मनुष्य पशुके समान है—

विद्या नाम कुरूपरूपमधिकं विद्यातिगुप्तं धनं
विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनार्तिनाशनकरी विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः॥

(११५।८१)

घर या उसके गुह्य स्थानोंपर सुरक्षित रखा हुआ द्रव्य देखा जा सकता है और वह समस्त धन-वैभव चोरोंके द्वारा चुराया भी जा सकता है। किंतु विद्या एक ऐसा धन है, जो दूसरेके द्वारा किसी भी प्रकार अपहृत नहीं किया जा सकता।[5] (अध्याय ११५)

१-कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यवरस्य च। परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च॥ (११५।६८)

२-आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषितम्। सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्॥ (११५।७४)

३-दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदये स्थितः। हृदयादपि निष्क्रान्तः समीपस्थोऽपि दूरतः॥ (११५।७६)

४-जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वामनतां गतः। कोऽन्योऽधिकतरस्तस्य योऽर्थी याति न लाघवम्॥ (११५।७९)

५-गृहे चाभ्यन्तरे द्रव्यं लग्नं चैव तु दृश्यते। अजेयं हरणीयं च विद्या न ह्रियते परैः॥ (११५।८२)

तिथि आदि व्रतोंका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! अब मैं व्रतोंका वर्णन करूँगा, जिनको करनेसे प्राणीको भगवान् हरि सब कुछ प्रदान करते हैं। सभी मास, सभी नक्षत्र, सभी तिथि और सभी दिनोंमें हरिका पूजन होता है। एकभक्त[1], नक्त[2], उपवास अथवा फलाहारव्रत करनेसे व्रतीको भगवान् हरि धन, धान्य, पुत्र, राज्य और विजय आदि प्रदान करते हैं।

प्रतिपदा तिथिमें वैश्वानर तथा कुबेर पूज्य हैं, वे साधकको अर्थलाभ कराते हैं। प्रतिपदा तिथिमें तथा अश्विनी नक्षत्रमें उपवास करनेवाले साधकके द्वारा पूजित ब्रह्मा उसे लक्ष्मी प्रदान करते हैं।

द्वितीया तिथिमें यमराज एवं भगवान् लक्ष्मीनारायण उस व्रतीको अर्थलाभ कराते हैं। तृतीया तिथिमें गौरी, विघ्नविनाशक गणेश तथा शिव—ये तीन देव पूज्य हैं। चतुर्थीको चतुर्व्यूह भगवान् विष्णु, पञ्चमीको हरि, षष्ठीको कार्तिकेय और रवि तथा सप्तमीको भगवान् भास्करकी पूजा करनी चाहिये। ये उपासकको अर्थलाभ कराते हैं।

अष्टमी तिथिमें दुर्गा और नवमी तिथिमें मातृका तथा दिशाएँ पूजित होनेपर अर्थ प्रदान करती हैं। दशमी तिथिमें यमराज और चन्द्र तथा एकादशी तिथिमें ऋषिगणोंकी पूजा करनी चाहिये। द्वादशीको हरि और कामदेव तथा त्रयोदशीको भगवान् शिव पूज्य हैं। चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथियोंमें ब्रह्मा तथा अमावास्यामें पितृगणोंकी पूजा करनेसे वे धन-सम्पत्ति प्रदान करते हैं।

रवि, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि—ये सातों वार, अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र तथा योगोंकी पूजा करनेसे ये सब कुछ प्रदान करते हैं। (अध्याय ११६)

अनंगत्रयोदशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें अनंगत्रयोदशीव्रत होता है। इस तिथिमें मल्लिका-वृक्षकी दतुअन निवेदितकर धतूरके पुष्प एवं फलोंसे शिवकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर 'अनङ्गायेति०' इस मन्त्रसे भगवान् शिवको मधुका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये। पौषमासमें भगवान् योगेश्वरका बिल्वपत्र, कदम्बके दतुअन, चन्दन तथा कृसर आदि नैवेद्यसे पूजन करना चाहिये।

हे मुने! माघमासमें भगवान् नटनागर शिवकी कुन्द-पुष्प तथा मौक्तिक मालासे पूजा करके उन्हें पाकड़वृक्षकी दतुअन और पूरिका (पूड़ी)-का नैवेद्य निवेदित करना चाहिये। फाल्गुनमासमें मरुबक (मंडक) नामक पुष्पोंसे भगवान् वीरेश्वरकी पूजा करनी चाहिये तथा उन्हें शर्करा, शाक, माँड़ और आम्र-वृक्षकी दतुअन निवेदित करे।

चैत्रमासमें भगवान् सुरूपकी पूजा करनी चाहिये और रात्रिमें उन्हें कर्पूरका प्राशन देना चाहिये। दन्तधावनके लिये वटवृक्षकी दतुअन तथा नैवेद्यके निमित्त शष्कुली (पूड़ी) प्रदान करे। वैशाखमासमें अशोकवृक्षके पुष्पोंसे भगवान् शिवका दमनक (संहारकारक) स्वरूप पूजनीय होता है। इन महास्वरूपधारी देवको नैवेद्यमें गुड़ और भात, दन्तधावनके लिये गूलर-वृक्षकी दतुअन और प्राशनके लिये जातिफल अर्पित करना चाहिये।

ज्येष्ठमासमें भगवान् प्रद्युम्नका पूजन चम्पक-पुष्पसे करे और बिल्व-वृक्षकी दतुअन एवं लवङ्गांश (लौंग फलके टुकड़े)-के नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। आषाढ़मासमें उमाभद्रकी पूजा करनी चाहिये। इसमें अगुरुकी गन्ध,

---

१-दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत्। एकभक्तमिति प्रोक्तं रात्रौ तन्न कदाचन॥
दिनका आधा समय बीत जानेपर २४ घंटेमें केवल एक बार दिनमें किया गया भोजन एकभक्त होता है।

२-दिवसस्याष्टमे भागे मन्दीभूते दिवाकरे। नक्तं तच्च विजानीयान्न नक्तं निशिभोजनम्॥
नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थेन विधीयते। यतेर्दिनाष्टमे भागे रात्रौ तस्य निषेधनम्॥
दिनके आठवें भागमें सूर्यप्रभाके मन्द होनेपर किया गया २४ घंटेमें एक बारका भोजन नक्तव्रत है। गृहस्थके लिये सूर्यास्तके अनन्तर नक्षत्र-दर्शन करके भोजन करना नक्तव्रत है और यति (संन्यासी)-के लिये सूर्यास्तके पूर्व दिनके आठवें भागमें भिक्षा ग्रहण करना नक्तव्रत है।

अपामार्गकी दतुअन उन्हें प्रदान की जाती है।

श्रावणमासमें भगवान् शूलपाणि शिवकी पूजा होती है। उन्हें करवीर-पुष्प, गन्ध, घृतादिसे युक्त भोजन तथा करवीर-वृक्षकी दतुअन निवेदित की जाती है। भाद्रपदमासमें सद्योजात शिवका पूजन बकुल-पुष्प और अपूप (पूए)-के नैवेद्यसे करना चाहिये। आश्विनमासमें चम्पक-पुष्प, स्वर्णकलशके जल और सुवासित मोदकके नैवेद्यसे तथा दमनककी दतुअनसे सुराधिप शिवके पूजनका विधान है। कार्तिकमासमें खदिर (कत्थे)-की दतुअनसे तथा बेरकी दतुअन, मदन-पुष्प, दूध और शाक प्रदान करते हुए वर्षपर्यन्त कमल-पुष्पसे शिवकी पूजा करनी चाहिये।

उपर्युक्त विधिसे पूजन करनेके पश्चात् रतिसहित अनंग—कामदेवको स्वर्णसे निर्मित मण्डलके अन्तर्गत स्थापित करके उनकी गन्धादिसे पुनः पूजा कर तिल और चावल आदिसे संयुक्त हवन-सामग्रीसे उन्हें दस हजार आहुतियाँ प्रदान करनेका विधान है। उस दिन रात्रिमें जागरण करे तथा गीत-वाद्यादिसे आमोद-प्रमोद करते हुए प्रभातकालमें उन देवकी फिरसे पूजा करके ब्राह्मणको शय्या, पात्र, छत्र, वस्त्र तथा पदत्राणके लिये जूतेका दान देकर भक्तिपूर्वक गौ और ब्राह्मणको भोजन देकर मनुष्यको कृतकृत्य होना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर उद्यापन करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रती लक्ष्मी, पुत्र, आरोग्य, सौभाग्य तथा स्वर्ग प्राप्त करता है।

(अध्याय ११७)

अखण्डद्वादशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं मोक्ष तथा शान्तिप्रद अखण्डद्वादशीव्रतका वर्णन करता हूँ। मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें गौके दूध-दही आदिको भोजनरूपमें स्वीकार करके व्रत करनेवाले उपासकको जगत्के स्वामी भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। चार मासपर्यन्त अर्थात् फाल्गुनमासतक वह व्रती पाँच प्रकारके धान्यसे पूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान दे और भगवान् विष्णुकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

सप्तजन्मनि हे विष्णो यन्मया हि व्रतं कृतम्।
भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥
यथाखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तम।
तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै॥

(११८। ३-४)

हे विष्णो! सात जन्मोंमें मैंने जो व्रत किये हैं, हे भगवन्! वे आपकी कृपासे इस जन्ममें पूर्ण हों। हे पुरुषोत्तम! जिस प्रकार आप ही इस सम्पूर्ण अखण्ड ब्रह्माण्डके रूपमें अवस्थित हैं, उसी प्रकार मेरे द्वारा किये गये ये सभी व्रत भी अखण्ड हो जायँ।

चैत्रादि (चार) मासमें सत्तूसे पूर्ण पात्र और श्रावण आदि चार महीनोंमें घृतपूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान देना चाहिये।

इस विधिसे वर्षपर्यन्त द्वादशीव्रतका संकल्प लेकर जो व्रती अपने व्रतको पूर्ण करता है, वह स्त्री-पुत्रादिसे सम्पन्न होकर अन्तमें स्वर्गलोकका सुखोपभोग करता है।

(अध्याय ११८)

अगस्त्यार्घ्यव्रत-निरूपण

ब्रह्माजीने पुनः कहा—हे मुने! भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले अगस्त्यार्घ्यव्रतको कहता हूँ। कन्याराशिपर सूर्यकी संक्रान्तिके तीन दिन पहलेसे काश-पुष्पकी बनी हुई अगस्त्यकी मूर्तिका प्रदोषकालमें पूजन करके कुम्भमें अर्घ्य देना चाहिये। (रात्रि) जागरण और उपवास करके दधि-अक्षत और फल-पुष्पसे पूजा करके पाँच वर्णसे युक्त सोने-चाँदीसे समन्वित सप्तधान्यसे भरे पात्रको दही और चन्दनसे रंजित कर '**अगस्त्यः खनमानः०**'[1] इस मन्त्रसे अगस्त्यको अर्घ्य प्रदान करे।

इसके बाद इस मन्त्रसे उन्हें नमस्कार करना चाहिये—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥

(११९। ५)

अर्थात् काश-पुष्पके समान उज्ज्वल, अग्नि और

१-ऋग्वेद (१। १७९। ६)।

वायुसे उत्पन्न मित्रावरुणके पुत्र हे कुम्भयोनि अगस्त्यजी! आपको नमस्कार है।

शूद्र, स्त्री आदि इसी विधिसे अगस्त्यके लिये धान, फल और रस प्रदान करे तथा ब्राह्मणको स्वर्ण और दक्षिणासे युक्त घट प्रदान करे। सात ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार वर्षभर अगस्त्यार्घ्य-व्रत करनेवाला सभी प्रकारके श्रेय-प्राप्तिका अधिकारी हो जाता है। (अध्याय ११९)

रम्भातृतीयाव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं सौभाग्य, लक्ष्मी तथा पुत्रादिसे सम्पन्न करनेवाले 'रम्भातृतीयाव्रत'को कहूँगा। यह व्रत मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको किया जाता है। इस तिथिको उपवास रखकर व्रती कुशोदक हाथमें लेकर बिल्वपत्रसे महागौरीकी पूजा करे। इस पूजनमें कदम्ब (वृक्ष)-की दतुअनका प्रयोग करना चाहिये, किंतु पौषमासमें मरुबकके पुष्पोंसे पार्वतीके पूजनका विधान है। व्रती इस मासके व्रतमें मात्र कर्पूरका सेवनकर उपवास करता हुआ उन गौरीको कृसर (तिल-चावलका सिद्धान्न)-का नैवेद्य एवं मल्लिकाओंकी दतुअन अर्पित करे।

माघमासमें व्रतके दिन घृतपानकर उपवास करते हुए व्रतीको कल्हार-पुष्प (श्वेतकमल)-से सुभद्रादेवीकी पूजा करके उन्हें मण्ड[1]का नैवेद्य समर्पित करना चाहिये।

फाल्गुनमासमें गोमतीकी पूजाका विधान है। कुन्द-पुष्पसे उनकी पूजा करके उसीकी नालको दतुअनरूपमें उन्हें निवेदित करे और स्वयं जीवा[2] (जीवन्ती)-का भक्षणकर शष्कुली[3] (पूड़ी)-का नैवेद्य लगाये।

चैत्रमासमें भगवती विशालाक्षीको दमनक-पुष्प, तगर[4] काष्ठकी दतुअन और कृसरान्नका नैवेद्य अर्पित करके स्वयं दहीका प्राशन करे। वैशाखमासमें श्रीमुखीदेवीकी पूजा कर्णिकार (कनैल)-के पुष्प, वटवृक्षकी दतुअनसे करनी चाहिये और व्रतीको अशोककलिकाका प्राशन करना चाहिये।

ज्येष्ठमासमें नारायणीदेवीका पूजन शतपर्णी (छितवन)-के पुष्प एवं दतुअनसे होता है। इस पूजामें देवीको खाँड़का नैवेद्य प्रदानकर स्वयं उपासक लौंगका भक्षण करे। आषाढ़मासमें माधवीकी पूजा करनी चाहिये। इस मासमें व्रती तिलका प्राशन करे और भगवती माधवीकी बिल्वपत्रसे पूजाकर खीर और वटक (घृतपक्व मधुर पिष्टक)-का नैवेद्य अर्पित करे। इस पूजनमें देवीके लिये गूलरकी दतुअन प्रदान करनी चाहिये। श्रावणमासमें क्षीरान्न तथा मल्लिकाकी दतुअन देकर तगरके फूलसे श्रीदेवीकी पूजा करनी चाहिये।

भाद्रपदमासमें सिंघाड़ेका आहारकर व्रतीको उत्तमा-देवीके लिये गुड़का नैवेद्य अर्पित करके पद्मपुष्पोंसे पूजा करनी चाहिये।

आश्विनमासमें राजपुत्रीका पूजन जपा-पुष्पसे करके उन्हें जीरेसे सुवासित अन्नका नैवेद्य अर्पितकर रात्रिमें प्राशन करना चाहिये। कार्तिकमासमें पद्मजादेवीका जाति नामक पुष्प एवं कृसरान्नके नैवेद्यसे पूजन होता है और उपासकको पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये।

इस प्रकार मार्गशीर्षसे कार्तिकमासतक वर्षकी समाप्तिपर सपत्नीक ब्राह्मणोंको घृतोदन (घृतमें पका तण्डुल) देकर उनका पूजन करना चाहिये। उसके बाद पार्वती और शिवकी गुड़ आदिसे बने नैवेद्य, वस्त्र, छत्र और सुवर्ण आदिसे पूजा करके गीत-वाद्यादिसे रात्रि-जागरण करते हुए प्रात: गौ आदिका दान देना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रतीको सब कुछ प्राप्त हो जाता है। (अध्याय १२०)

१-मण्ड—अन्न, दधि आदिका सार।
२-जीवा—शाकविशेष, शर्कराके समान मधुर पुष्पवाली लता।
३-तिल, तण्डुल, उड़दके चूर्णसे बना यवागू भी शष्कुलीका अर्थ है।
४-तगर—पुष्पवृक्ष, सितपुष्प, मदनवृक्ष (टगर)।

चातुर्मास्यव्रतका निरूपण

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं चातुर्मास्यव्रतको कहता हूँ। इस व्रतका आरम्भ आषाढ़मासकी एकादशी या पूर्णिमा तिथिमें सब प्रकारसे भगवान् हरिका पूजन करके करे। व्रतारम्भके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

> **इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव।**
> **निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव॥**
> **गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णे म्रियाम्यहम्।**
> **तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन॥**
> (१२१। २-३)

हे देव! आपके समक्ष मैंने इस व्रतको ग्रहण किया है। हे केशव! आपके प्रसन्न होनेपर मुझे निर्विघ्न सिद्धि प्राप्त हो। हे देव! ग्रहण किये गये इस व्रतकी अपूर्णतामें ही यदि मैं मृत्युको प्राप्त हो जाता हूँ तो भी हे जनार्दन! आपकी कृपासे यह मेरा व्रत पूर्ण हो।

इस प्रकार हरिका पूजन करके व्रत, पूजन और जपादिका नियम ग्रहण करना चाहिये। जो हरिके व्रतको करनेकी इच्छा करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। साधक स्नान करके भगवान् हरिका पूजन कर इस पूजा तथा जपादिकी विहित क्रियाओंकी पूर्तिका संकल्प ले तथा आषाढ़ आदि चार मासोंतक एकभक्तव्रत करता हुआ विष्णुकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला विष्णुके परम पवित्र निर्मल लोकमें चला जाता है।

मधु, मांस, सुरा और तेलका परित्याग करनेवाला जो वेदपारंगत, कृच्छ्रपादव्रती[1] विष्णुभक्त हरिका पूजन करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त हो जाता है। एक रात्रिका उपवास करनेसे वैमानिक (विमानपर चढ़कर भ्रमण करनेवाला) देवता हो जाता है। तीन रात्रिपर्यन्त उपवास कर षष्ठांश भोजन करनेसे साधकको श्वेतद्वीपकी प्राप्ति होती है। चान्द्रायणव्रत[2] करनेसे तो भगवान् हरिका लोक और मुक्ति बिना माँगे ही मिल जाती है। प्राजापत्यव्रत[3] करनेसे विष्णुलोक तथा पराकव्रत[4] करनेसे हरिकी प्राप्ति होती है।

इस व्रतमें सत्तू, यवान्नकी भिक्षा कर, दूध, दही तथा घृतका प्राशन कर, गोमूत्रयावकका आहार कर, पञ्चगव्यका पान कर अथवा सभी प्रकारके रसोंका परित्याग कर शाक-मूल-फलादिका भक्षण करते हुए जो साधक विष्णुकी भक्ति करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १२१)

मासोपवासव्रतका निरूपण

ब्रह्माजीने पुनः कहा—अब मैं आपसे मासोपवास नामक उस सर्वोत्तम व्रतका वर्णन करूँगा, जिसका पालन वानप्रस्थ, संन्यासी और नारीको करना चाहिये।

आश्विनमासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें उपवास रखकर तीस दिनपर्यन्त इस व्रतको धारण करनेका विधान है। व्रतारम्भके समय सर्वप्रथम भगवान् विष्णुसे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

> **अद्यप्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव।**
> **अर्चये त्वामनश्नंस्तु दिनानि त्रिंशदेव तु॥**
> **कार्तिकाश्विनयोर्विष्णो द्वादश्योः शुक्लयोरहम्।**
> **म्रिये यद्यन्तराले तु व्रतभङ्गो न मे भवेत्॥**
> (१२२। ३-४)

हे विष्णो! आजसे लेकर जबतक आपका शयनोत्थान नहीं हो जाता है, तबतक तीस दिनपर्यन्त बिना भोजन किये

१- कृच्छ्रपादव्रत—यह तीन दिनका व्रत है। पहले दिन दिनमें एक बार हविष्यान्न ग्रहण, दूसरे दिन अयाचितरूपमें हविष्यान्नका एक बार ग्रहण और तीसरे दिन अहोरात्र उपवास। (याज्ञ०स्मृति० प्राय० श्लोक ३१८)

२- चान्द्रायणव्रत—यह व्रत अनेक प्रकारका है। मनु० ११। २१६ के अनुसार यह है—प्रतिदिन तीनों काल स्नान। पूर्णिमासे व्रतका आरम्भ। इस दिन पंद्रह ग्रास हविष्यान्नमात्र ग्रहण। पूर्णिमाके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदासे एक-एक ग्रास कम करते हुए अर्थात् १४, १३, १२ इस संख्यामें ग्रास ग्रहण करते हुए कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको एक ग्रास ग्रहण। तदनन्तर अमावास्याको पूर्ण उपवास। पुनः अमावास्याके बाद शुक्ल प्रतिपदासे एक-एक ग्रास बढ़ाकर १, २, ३ इस क्रममें दूसरी पूर्णिमाको पंद्रह ग्रास ग्रहण। इस प्रकार एक मासमें यह व्रत पूर्ण होता है।

३- प्राजापत्यव्रत—यह व्रत बारह दिनका होता है। प्रथम तीन दिन केवल दिनमें हविष्यान्न-ग्रहण। तत्पश्चात् तीन दिन केवल रातमें हविष्यान्न-ग्रहण। तदनन्तर तीन दिन बिना माँगे जो मिल जाय, उतनामात्र एक बार ग्रहण। अन्तिम तीन दिन पूर्णरूपमें उपवास। (मनु० ११। २११)

४- पराकव्रत—इस व्रतमें बारह दिनतक केवल जल ग्रहण करके रहा जाता है। (याज्ञ०स्मृति० प्राय० श्लोक ३२०, मनु० ११। २१५)

ही मैं आपका पूजन करता रहूँगा। हे विष्णो! यदि मैं आश्विन और कार्तिकमासके शुक्लपक्षमें द्वादशीसे लेकर दूसरी द्वादशी तिथिके मध्य मर जाता हूँ तो मेरा यह व्रत भंग न हो।

इस प्रकार प्रार्थना करनेके पश्चात् प्रातः, मध्याह्न तथा संध्याकालमें स्नान करके उपासक गन्धादिसे भगवान् हरिका देवालयमें पूजन करे, किंतु व्रतीको शरीरमें उबटन तथा सुगन्धित गन्धलेप आदि नहीं करना चाहिये।

द्वादशी तिथिमें भगवान् हरिकी पूजा करके व्रती ब्राह्मणोंको भोजन कराये। एक मासतक हरिका व्रत करनेके पश्चात् व्रती पारणा करे। यदि व्रतधारी इस अवधिके मध्य मूर्च्छित हो जाता है तो उसे दुग्धादिका प्राशन कर लेना चाहिये; क्योंकि दुग्धादिका पान करनेसे व्रत विनष्ट नहीं होता। इस प्रकार मासव्रत करनेसे भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं। (अध्याय १२२)

भीष्मपञ्चकव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं कार्तिकमासमें होनेवाले व्रतोंको कहूँगा। इस मासमें स्नान करके व्रतीको भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। व्रती एक मासतक एकभक्त-व्रत कर, नक्तव्रत कर, अयाचितव्रत कर, दुग्ध, फल, शाक आदिका आहार कर अथवा उपवास कर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। ऐसा करनेसे वह व्रती सभी पापोंसे मुक्त होकर समस्त कामनाओंके साथ-साथ भगवान् हरिको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् हरिका व्रत करना सदैव श्रेष्ठ है, किंतु सूर्यके दक्षिणायनमें चले जानेपर यह व्रत अधिक प्रशस्त होता है। उसके बाद इस व्रतका काल चातुर्मासमें श्रेयस्कर है। तदनन्तर इस व्रतका उचित काल कार्तिकमास है। इसके बाद भीष्मपञ्चक इस व्रतके लिये श्रेष्ठ समय है किंतु कार्तिकमासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथि इस व्रतके शुभारम्भके लिये सर्वश्रेष्ठ काल होता है। अतः इसी तिथिसे इस व्रतका शुभारम्भ करना चाहिये। उपासक इस दिन प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालीन—इन तीनों सन्ध्याओंमें स्नान कर यवादि पदार्थोंसे पितृगण आदिकी नैत्यिक पूजा करनेके पश्चात् भगवान् हरिका पूजन करे। वह मौन होकर घृत, मधु, शर्करादि तथा पञ्चगव्य एवं जलसे हरिकी मूर्तिको स्नान कराये और कर्पूरादि सुगन्धित द्रव्यसे श्रीहरिके शरीरका अनुलेपन करे।

तदनन्तर व्रतीको घृतसमन्वित गुग्गुलसे पूर्णिमापर्यन्त पाँच दिनोंतक श्रीहरिको धूप देना चाहिये और सुन्दर-सुन्दर पक्वान्न तथा मिष्टान्नका नैवेद्य अर्पितकर '**ॐ नमो वासुदेवाय**' इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करना चाहिये।

तत्पश्चात् स्वाहायुक्त अष्टाक्षर-मन्त्र (ॐ नमो वासुदेवाय)-से घृतसहित चावल तथा तिलकी आहुति प्रदान करनी चाहिये।

व्रती पहले दिन कमलपुष्पसे भगवान् हरिके दोनों चरणोंका पूजन करे। दूसरे दिन बिल्वपत्रसे उनके जानु (जंघा)-प्रदेशकी पूजाकर तीसरे दिन गन्धसे नाभिदेशकी पूजा करे। चौथे दिन बिल्वपत्र तथा जवापुष्पसे उनके स्कन्ध-भागका पूजन करके पाँचवें दिन मालतीके पुष्पोंसे उनके शिरोभागका पूजन करना चाहिये। व्रती भूमिपर ही शयन करे और उक्त पाँच दिनोंतक क्रमशः पहले दिन गोमय, दूसरे दिन गोमूत्र, तीसरे दिन दही, चौथे दिन दुग्ध और पाँचवें दिन घृत—इन चारों पदार्थोंसे निर्मित पञ्चगव्यका प्राशन रात्रिमें करे। ऐसा व्रत करनेवाला व्रती भोग और मोक्ष दोनोंका अधिकारी हो जाता है।

कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षोंकी एकादशीका व्रत हमेशा करना चाहिये। यह व्रत उस समस्त पापसमूहका विनाश करता है, जो प्राणीको नरक देनेवाला है। यह व्रतीको सभी अभीष्ट फल प्रदान करता है और अन्त समयमें उसे विष्णुलोक भी दे देता है।

पहले दिन शुद्ध एकादशी, दूसरे दिन शुद्ध द्वादशी तथा द्वादशीकी निशा (रात्रि)-के अन्तमें अर्थात् तीसरे दिन त्रयोदशी हो तो ऐसी एकादशी तिथिमें सदा श्रीहरिका संनिधान रहता है। यदि दशमी और एकादशी तिथि एक ही दिन होती है तो इसमें असुरोंका निवास रहता है। अतः यह एकादशी व्रतके लिये उपयुक्त नहीं मानी जाती। एकादशीको उपवासकर द्वादशीमें पारणा करनी चाहिये। सूतक (वंशमें किसीकी उत्पत्ति) और मृतक (वंशमें किसीके मरण)-की स्थितिसे होनेवाले अशौचकालमें भी यह व्रत करना चाहिये।

हे मुने! यदि चतुर्दशी और प्रतिपदा तिथि पूर्व तिथिसे

विद्ध है तो इन तिथियोंमें भी उपवास करना चाहिये।

प्रतिपदासे मिश्रित पौर्णमासी और अमावास्या तिथि, तृतीयासे मिश्रित द्वितीया तिथि, चतुर्थीसे संगत तृतीया तिथि, तृतीयासे युक्त चतुर्थी तिथिको उपवास करे। षष्ठीसे असंयुक्त पञ्चमी तिथि और षष्ठीसे युक्त सप्तमी तिथिको उपवास किया जाना चाहिये। (अध्याय १२३)

शिवरात्रिव्रतकथा तथा व्रत-विधान

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं शिवरात्रिव्रत और उस कथाका वर्णन करूँगा, जो व्रत करनेवालोंकी समस्त अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ है। जैसे पूर्वकालमें पार्वतीने भगवान् महेश्वर शिवसे इस परमश्रेष्ठ व्रतको सुननेकी इच्छा की थी और सुना था, वैसे ही आप भी सुनें।

भगवान् महेश्वरने कहा—हे गौरि! माघ और फाल्गुन-मासके मध्यमें जो कृष्णा चतुर्दशी होती है, उस चतुर्दशी तिथिमें उपवास तथा जागरण करनेसे और भगवान् रुद्रकी पूजा करनेसे पूजित रुद्र भुक्ति और मुक्ति दोनों प्रदान करते हैं। जिस प्रकार द्वादशी तिथिको विष्णुकी पूजा होती है, उसी प्रकार कामनासे युक्त होकर इस चतुर्दशी तिथिमें महादेव हरकी पूजा करनी चाहिये। उपवाससहित विधि-विधानसे पूजित शिव विष्णुके समान भक्तको नरक-भोगसे बचाते हैं। शिवरात्रिव्रतकी कथा इस प्रकार है—

बहुत पहले अर्बुद देशमें एक सुन्दरसेन नामक पापात्मा निषाद राजा रहता था। वह एक बार अपने कुत्तोंको साथ लेकर आखेट करनेके लिये वनमें गया, किंतु दैववशात् उस पर्वतीय वनप्रान्तमें उसको कोई भी मृगादि जीव आखेटरूपमें प्राप्त नहीं हो सका। भूख-प्याससे पीड़ित वह रात्रिमें जलाशय और तडागोंके तटपर अवस्थित वृक्ष-लताओंके झुरमुटोंमें भटकता हुआ जागता ही रह गया। वहींपर उसे एक शिवलिंगका दर्शन हुआ। अतः उसने अपने शरीरकी रक्षाके लिये एक वृक्षकी शरण ली और निढाल होकर वहीं गिर गया, किंतु उसकी जानकारीके बिना शिवलिंगपर वृक्षके पत्ते गिर पड़े। उसने उन पत्तोंको हटाकर जलसे उस शिवलिंगके ऊपर स्थित धूलिको दूर करनेके लिये शिवलिंगको प्रक्षालित किया। प्रमादवश उसी समय शिवलिंगके पास ही उसके हाथसे एक बाण छूटकर भूमिपर गिर गया। अतः घुटनोंको भूमिपर टेककर एक हाथसे शिवलिंगको स्पर्श करते हुए उसने उस बाणको उठा लिया। इस प्रकार उस व्याधके द्वारा रात्रि-जागरण, शिवलिंगका स्नान, स्पर्श और पूजन भी हो गया।

प्रातःकाल होनेपर वह व्याध अपने घर चला गया और पत्नीके द्वारा दिये गये भोजनको ग्रहणकर क्षुधासे निवृत्त हुआ। यथोचित समयपर उसकी मृत्यु हुई तो यमराजके दूत उसको पाशमें बाँधकर जब यमलोक ले जाने लगे, तब मेरे गणोंने उन यमदूतोंको युद्धमें जीतकर व्याधको उसके पाशसे मुक्त करा दिया। अतः अपने कुत्तोंके साथ निष्पाप होकर वह व्याध मेरा पार्षद बन गया।

इस प्रकार प्राणीके द्वारा अज्ञानवश अथवा ज्ञानपूर्वक किये गये पुण्य अक्षय ही होते हैं। उपासकको चाहिये कि त्रयोदशी तिथिमें शिवका पूजन करे तथा व्रतका नियम ग्रहण करते हुए इस प्रकार प्रार्थना करे—

प्रातर्देव चतुर्दश्यां जागरिष्याम्यहं निशि।
पूजां दानं तपो होमं करिष्याम्यात्मशक्तितः॥
चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा शम्भो परेऽहनि।
भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर॥
(१२४।१२-१३)

हे देव! मैं रात्रिभर जागरण करूँगा। प्रातः चतुर्दशी तिथिमें यथासामर्थ्य आपकी पूजा, दान और हवन भी करूँगा। हे शम्भो! चतुर्दशी तिथिमें निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा। हे महादेव! भुक्ति और मुक्तिकी प्राप्तिके लिये मैं आपकी शरणमें हूँ।

व्रतीको पञ्चामृतसे महादेवको स्नान कराकर 'ॐ नमो नमः शिवाय' इस मन्त्रसे उनकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर घृतसमन्वित तिल, तण्डुल एवं व्रीहिसे निर्मित चरुकी आहुति अग्निमें देकर पूर्णाहुति करे। व्रती गीतवाद्यके साथ सत्कथाओंका श्रवण करे। उसके बाद वह अर्धरात्रि, तीसरे प्रहर और चौथे प्रहरमें पुनः उनकी पूजाकर मूलमन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल आ जानेपर उनके सामने इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—

अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादान्मयार्चितम्।
क्षमस्व जगतां नाथ त्रैलोक्याधिपते हर॥
यन्मयाद्य कृतं पुण्यं यद्रुद्रस्य निवेदितम्।

त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम्॥
प्रसन्नो भव मे श्रीमन् गृहं प्रति च गम्यताम्।
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः॥
(१२४। १७—१९)

हे देव! हे नाथ! हे त्रैलोक्याधिपति स्वामिन् शिव! आपकी कृपासे मैं व्रतको निर्विघ्न सम्पन्न कर सका हूँ और आपकी यह पूजा भी पूर्ण हो सकी है। आप मुझे क्षमा करें। हे देव! मैंने जो कुछ आज पुण्य किया है, भगवान् रुद्रको जो कुछ निवेदित किया है, वह सब आपकी कृपासे ही हुआ है। आपकी ही कृपासे यह व्रत भी आज समाप्त किया जा रहा है। श्रीमन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप अपने लोकको अब प्रस्थान करें। आपका दर्शनमात्र प्राप्तकर मैं निस्संदेह पवित्र हो गया हूँ।

व्रती ध्याननिष्ठ ब्राह्मणको भोजनसे संतृप्त कर वस्त्र-छत्रादि दे। तदनन्तर वह पुनः इस प्रकार प्रार्थना करे—

देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक॥
यन्मया श्रद्धया दत्तं प्रीयतां तेन मे प्रभुः।
(१२४। २०-२१)

हे देवादिदेव! समस्त प्राणिजगत्‌के स्वामिन्, संसारपर कृपा रखनेवाले प्रभो! श्रद्धापूर्वक मैंने जो कुछ आपको समर्पित किया है, उससे आप प्रसन्न हों।

इस प्रकार क्षमापन-स्तुति करनेके पश्चात् व्रतीको द्वादश-वार्षिक व्रतका संकल्प लेना चाहिये। ऐसा करके व्रती कीर्ति, लक्ष्मी, पुत्र तथा राज्यादिके सुख-वैभवको प्राप्तकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है। व्रतधारी बारहों मासमें भी इस व्रतके जागरणको पूर्ण करके यदि द्वादश ब्राह्मणोंको भोजन प्रदान करे और दीपदान करे तो उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। (अध्याय १२४)

एकादशीमाहात्म्य

पितामहने कहा—मान्धाता नामके एक राजा थे, जिन्होंने एकादशीव्रत करके उसके पुण्यसे चक्रवर्ती सम्राट्‌की उपाधि धारण की थी। अतः कृष्ण एवं शुक्ल दोनों पक्षकी एकादशी तिथिमें मनुष्यको भोजन नहीं करना चाहिये।

गान्धारीने दशमीविद्धा एकादशीका व्रत किया था, जिसके फलस्वरूप उसके सौ पुत्रोंका विनाश उसके जीवनकालमें ही हो गया था। इसलिये दशमीसे युक्त एकादशीका व्रत नहीं करना चाहिये। द्वादशीके साथ एकादशी होनेपर उस एकादशीमें भगवान् हरिका संनिधान रहता है। जिस मास दशमीवेधसे युक्त एकादशी होती है, उसमें असुरोंका संनिधान होता है। जब विभिन्न शास्त्रोंमें कहे गये वाक्योंकी बहुलतासे अज्ञतावश संदेह बढ़ जाता है तो उस परिस्थितिमें द्वादशी तिथिको व्रत करके त्रयोदशी तिथिमें पारणा कर लेनी चाहिये।[1] यदि एकादशी एक कलामात्र भी कालगणनामें रहती है तो द्वादशी (युक्त एकादशी) तिथिको यह व्रत उपास्य है। यदि एकादशी, द्वादशी और विशेष रूपसे त्रयोदशी तिथि भी एक ही दिन आ जाती है तो इन तीन तिथियोंसे मिश्रित वह तिथि व्रत करने योग्य होती है, क्योंकि वह तिथि माङ्गलिक एवं सभी पापोंका विनाश करनेमें समर्थ होती है।

हे द्विजराज! एकादशी अथवा द्वादशीका व्रत करके तीन तिथियोंसे मिश्रित अर्थात् एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी तिथिसे समन्वित तिथिपर व्रत कर लेना उचित है, किंतु दशमीवेधसे युक्त एकादशीका व्रत कभी नहीं करना चाहिये।

रातमें जागरण तथा पुराणका श्रवण एवं गदाधर विष्णुकी पूजा करते हुए दोनों पक्षोंकी एकादशीका व्रत कर महाराज रुक्माङ्गदने मोक्ष प्राप्त किया था। अन्य एकादशी व्रतकर्ताओंने भी मोक्ष प्राप्त किया है। (अध्याय १२५)

विष्णुमण्डल-पूजाविधि

ब्रह्माजीने कहा—जिस पूजाको करनेसे लोग परमगतिको प्राप्त हो गये हैं, मैं उसी भुक्ति एवं मुक्ति देनेमें समर्थ श्रेष्ठ पूजाका विधिवत् वर्णन करूँगा।

व्रतीको सर्वप्रथम एक सामान्य पूजामण्डलका निर्माण

१-यहाँ केवल वैष्णव एकादशीकी चर्चा की गयी है।

कर द्वारदेशसे उसमें पूजा प्रारम्भ करनी चाहिये। मण्डलके द्वारदेशमें धाता, विधाता और महानदी गङ्गा, यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर द्वारदेशपर ही श्री, दण्ड, प्रचण्ड और वास्तुपुरुषकी पूजाकर मध्यभागमें आधारशक्ति, कूर्मदेव एवं अनन्तका पूजन करे। इसके बाद पूजक पृथिवी, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्यकी पूजा कन्द, नाल, पद्म, कर्णिका तथा केसरादि भागोंपर करे। तदनन्तर सत्त्व, रजस् और तमस् गुणोंकी पूजा करके उस व्रतीको यथाविहित स्थानपर सूर्यादि ग्रहमण्डलोंकी और विमलादि शक्तियोंकी भी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद मण्डलके कोण-भागमें दुर्गा, गणेश, सरस्वती और क्षेत्रपाल देवोंकी तथा आसन और मूर्तिकी पूजा कर व्रती भगवान् वासुदेव और बलभद्रका स्मरण करता हुआ महात्मा अनिरुद्ध तथा नारायणकी पूजा करे। वह उनके हृदयादि सम्पूर्ण अङ्ग, शंख, चक्र तथा गदादि आयुधकी पूजाकर श्री, पुष्टि, गरुड, गुरु और परम गुरुकी पूजा करे। तदनन्तर उसे इन्द्रादि आठों दिक्पालकी पूजा उनकी ही दिशाओंमें करके अधोभागमें नाग तथा ऊर्ध्वभागमें ब्रह्माकी पूजा करनी चाहिये। आगमशास्त्रमें निर्दिष्ट विधिके अनुसार विष्वक्सेन देवकी पूजा ईशानकोणमें करके उस मण्डलकी पूजाको पूर्ण करना चाहिये।

जो मनुष्य इस विधिके अनुसार एक बार भी भगवान् विष्णुकी पूजा करता है, उस महात्माका पुनर्जन्म इस संसारमें नहीं होता। पुण्डरीकाक्ष गदाधर भगवान् विष्णु एवं ब्रह्माकी पूजा करनेसे पुनः जन्म नहीं होता। (अध्याय १२६)

भीमा-एकादशीव्रत एवं माहात्म्य तथा पूजन-विधि

ब्रह्माजीने कहा—प्राचीनकालमें माघमासके शुक्लपक्षमें हस्तनक्षत्रसे युक्त एक एकादशीका व्रत भीमने किया था। इसलिये इस एकादशीको भीमा-एकादशी कहा जाता है। यह आश्चर्य है कि मात्र इसी एकादशीका व्रत करनेसे भीमसेन पितृऋणसे मुक्त हो गये थे।

प्राणियोंके पुण्योंकी अभिवृद्धि करनेवाली भीमा-द्वादशी तिथि भीमसेनके नामसे ही प्रसिद्ध भी है। यह तिथि तो बिना हस्तनक्षत्रके संयोगसे ही ब्रह्महत्यादि पापोंका विनाश कर देती है।

यह द्वादशी तिथि महापापोंको तो वैसे ही नष्ट कर देती है, जैसे कुमार्गगामी राजासे राज्य, कुपुत्रसे कुल, दुष्टपत्नीसे पति, अधर्मसे धर्म, कुमन्त्रीसे राजा, अज्ञानसे ज्ञान, अशौचसे शौच, अश्रद्धासे श्राद्ध, असत्यसे सत्य, उष्णतासे शीतलता, अनाचारसे सम्पत्ति, कहनेमात्रसे दान, विस्मय करनेसे तप, अशिक्षासे पुत्र, दूर चली जानेसे गौ, क्रोधसे शान्ति, नहीं बढ़ानेसे धन, ज्ञानसे अविद्या और निष्कामतासे फल विनष्ट हो जाते हैं। उसी प्रकार पाप नाशके लिये द्वादशी तिथि शुभ कही गयी है।

ब्रह्महत्या, सुरापान, सुवर्ण-चोरी तथा गुरुपत्नीगमन—ये महापातक मनुष्यमें यदि एक साथ उत्पन्न हो जायँ तो इनको त्रिपुष्कर तीर्थ भी नष्ट नहीं कर सकते हैं (किंतु यह द्वादशी उस समस्त पापसमूहको नष्ट कर देती है) नैमिषक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र, कालिन्दी (यमुना), गङ्गा, तथा सभी तीर्थ भी एकादशीके समान नहीं हैं। कोई भी दान, जप, होम या अन्य पुण्य इसके तुल्य नहीं है। यदि एक ओर पृथिवीके दानका सत्कर्म रखकर दूसरी ओर भगवान् हरिकी इस पवित्र एकादशी तिथिकी तुलना की जाय तो भी यही एक महापुण्यशालिनी एकादशी तिथि सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होगी।

इस व्रतमें भगवान् वराहदेवकी स्वर्णप्रतिमा बनाकर नये ताम्रपात्रमें घटके ऊपर स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणजन समस्त विश्वके बीजभूत विष्णुदेवकी उस प्रतिमाको श्वेत वस्त्रसे आच्छादितकर स्वर्णनिर्मित दीपादिक उपचारोंसे प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा करे।

'**ॐ वराहाय नमः**' इस मन्त्रसे उन विष्णुके चरणकमलोंकी पूजाकर '**ॐ क्रोडाकृतये नमः**' इस मन्त्रसे उनके कटिप्रदेशका पूजन करे। तदनन्तर '**ॐ गम्भीरघोषाय नमः**' इस मन्त्रसे उनकी नाभिकी पूजा कर '**ॐ श्रीवत्सधारिणे नमः**' इस मन्त्रसे उनके वक्षःस्थलका पूजन करे। उसके बाद '**ॐ सहस्रशिरसे नमः**' इस मन्त्रसे उन विष्णुभगवान्‌की भुजाओंकी पूजा करके भक्तको '**ॐ सर्वेश्वराय नमः**' इस मन्त्रसे उन देवके ग्रीवाभागकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर व्रती '**ॐ सर्वात्मने नमः**' इस मन्त्रसे मुखकी और '**ॐ प्रभवाय नमः**' इस मन्त्रसे हरिके ललाटभागकी

पूजाकर 'ॐ शतमयूखाय नमः' इस मन्त्रसे उन चक्रधारी हरिकी केशराशिकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार भगवान् विष्णुकी विधिपूर्वक पूजाको समाप्तकर व्रती रात्रिमें जागरण करते हुए भगवान् हरिके माहात्म्यको प्रतिपादित करनेवाले पुराणकी कथाका श्रवण करे। तदनन्तर प्रातःकाल स्वर्णनिर्मित वराहसहित सपरिवार भगवान्की उस मूर्तिको अपेक्षा रखनेवाले ब्राह्मणको दे करके पारणा करे।

इस विधि-विधानसे व्रत करनेसे मनुष्य पुनः माताके गर्भसे उत्पन्न होकर स्तनका दूध नहीं पान करता है अर्थात् वह पुनर्जन्मसे मुक्त हो जाता है। इस पुण्यशालिनी एकादशीका व्रत करनेसे प्राणीको पितृ, गुरु एवं देव—इन तीनों ऋणोंसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यह व्रत सभी व्रतोंका आदि स्थान है। इस व्रतको करके मनुष्य अपने समस्त मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त करनेमें सफल रहता है। (अध्याय १२७)

व्रतपरिभाषा तथा व्रतमें पालन करनेयोग्य नियम और अन्य ज्ञातव्य बातें

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! जिन व्रतोंको करनेसे नारायण संतुष्ट होकर सब कुछ प्रदान करते हैं, उन व्रतोंको मैं कहूँगा। शास्त्रके द्वारा वर्णित नियम-पालन व्रत कहलाता है और वही तप है। व्रतोंके कुछ सामान्य नियम इस प्रकार हैं—

व्रतीको नित्य तीनों संध्याओंमें स्नान करना चाहिये। उसे जितेन्द्रिय होकर भूमिपर शयन करना चाहिये। स्त्री, शूद्र और पतितजनोंके साथ बातचीत करना उसके लिये वर्जित है। वह पवित्र बना रहे और प्रतिदिन हवन करे।

सुकृत करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह नियमोंका पालन करे। (व्रताचरणके पूर्व) क्षौर न कराना चाहे तो दुगुना व्रत करना चाहिये।

व्रतीके लिये कांस्यपात्र, उड़द, मसूर, चना, कोदो, दूसरेका अन्न, शाक और मधुका सेवन वर्जित है। पुष्प, अलंकार, नवीन वस्त्र, धूप-गन्धादि लेप, दन्तधावन और अञ्जनका प्रयोग त्याज्य है। पञ्चगव्य पान कर व्रतका आचरण करना चाहिये। एकसे अधिक बार जलपान, ताम्बूल-भक्षण, दिनमें शयन तथा मैथुन करनेसे व्रतभंग हो जाता है।

क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निमें हवन, संतोष और चोरी न करना—ये दस सभी व्रतोंके सामान्य धर्म हैं।

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः॥
देवपूजाग्निहवनं संतोषोऽस्तेयमेव च।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः॥

(१२८। ८-९)

(चौबीस घण्टेमें केवल एक बार) नक्षत्रदर्शनके समय किया जानेवाला भोजन नक्तव्रत कहा जाता है और जो रात्रिमें भोजन किया जाता है, वह नक्तव्रत नहीं है। एक पल गोमूत्र, आधे अँगूठेके बराबर गोमय, सात पल गोदुग्ध, तीन पल गोदधि, एक पल गोघृत और एक पल कुशोदक—यह पञ्चगव्यका परिमाण है। गायत्रीमन्त्रसे गोमूत्र, 'गन्धद्वारा०' इस मन्त्रसे गोमय, 'आप्यायस्व०' मन्त्रसे दूध, 'दधि०' मन्त्रसे दही, 'तेजोऽसि०' मन्त्रसे घृत और 'देवस्य०' इस मन्त्रसे कुशोदकको अभिमन्त्रितकर पञ्चगव्यका निर्माण करना चाहिये।

अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ, दान, व्रत, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग, चूडाकरण, उपनयन, विवाहादिक माङ्गलिक कृत्य और राज्याभिषेक आदि कर्म मलमासमें नहीं करना चाहिये।

अमावास्यासे अमावास्यातक चान्द्रमास होता है। सूर्योदयसे लेकर दूसरे सूर्योदयतक एक दिन, इस प्रकार तीस दिनका सावनमास होता है। एक राशिसे दूसरे राशिपर सूर्यके संक्रमणकालको सौरमास कहते हैं। नक्षत्र सत्ताईस होते हैं। उनके अनुरोधसे जो मास होता है, उसे नाक्षत्र मास कहते हैं। विवाहकार्यमें सौरमास, यज्ञादिमें सावनमास ग्रहण किया जाता है।

द्वितीयाके साथ तृतीया, चतुर्थीके साथ पञ्चमी, षष्ठीके साथ सप्तमी, अष्टमीके साथ नवमी, एकादशीके साथ द्वादशी, चतुर्दशीके साथ पूर्णिमा तथा प्रतिपदाके साथ अमावास्याका युग्म हो तो ऐसी युग्म-तिथि महाफलदायक होती है। इसके विपरीत यदि युग्म-तिथियाँ हों तो वह महाघोर काल है। वह पूर्वजन्मके किये हुए पुण्यको भी नष्ट कर देता है।

यदि व्रत प्रारम्भ करनेके पश्चात् व्रतकालमें ही स्त्रियोंमें रजोदर्शन हो जाता है तो उससे उनका व्रत नष्ट नहीं होता है। ऐसी स्थितिमें उन्हें चाहिये कि वे दान-पूजा आदि कार्य

किसी अन्यसे सम्पन्न करायें और स्नान, उपवासादि कायिक कार्य स्वयं करें।

यदि क्रोध, प्रमाद अथवा लोभवश किसीका व्रत भंग हो जाता है तो उसको तीन दिनतक उपवास करके शिरोमुण्डन करा देना चाहिये। शरीरके असमर्थ हो जानेपर व्रतीको अपने पुत्रादिसे व्रत कराना चाहिये। यदि व्रतकालमें व्रती मूर्च्छित हो जाता है तो उसे जल आदि पिला देना चाहिये। इससे व्रतभंग नहीं होता। (अध्याय १२८)

प्रतिपदा, तृतीया, चतुर्थी तथा पञ्चमीमें किये जानेवाले विविध तिथिव्रत

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! अब मैं प्रतिपदादि तिथियोंके व्रतोंकी विधियोंका वर्णन करूँगा। आप उनका श्रवण करें। प्रतिपदा तिथिके एक विशेष व्रतका नाम शिखिव्रत है। इस व्रतको करनेसे व्रती वैश्वानर-पद प्राप्त करता है। प्रतिपदा तिथिमें एकभक्तव्रत करके दिनमें एक बार भोजन करना चाहिये। व्रतकी समाप्तिपर कपिला गौका दान करे। चैत्रमासके प्रारम्भमें विधिपूर्वक सुन्दर गन्ध, पुष्प, माला आदिसे ब्रह्माकी पूजा और हवन करनेसे सभी अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति होती है। कार्तिकमासमें शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको व्रती पुष्प और उनसे बनी हुई मालाका दान करे। यह क्रम वर्षपर्यन्त चलना चाहिये। ऐसा करनेसे रूपकी इच्छा करनेवाले व्रतीको रूप-सौन्दर्यकी प्राप्ति होती है।

श्रावणमासके कृष्णपक्षकी तृतीया तिथिमें लक्ष्मीके साथ भगवान् श्रीधरविष्णुको सुसज्जित शय्यापर स्थापित कर उनकी पूजा करे और फलकी भेंट चढ़ाये। इसके बाद उस शय्यादिका दान ब्राह्मणको करके व्रती '**श्रीधराय नमः, श्रियै नमः**' यह प्रार्थना करे। इसी तृतीया तिथिको उमा-शिव और अग्निकी पूजा करनी चाहिये। व्रती इन सभीको हविष्यान्न, नैवेद्य और दमनक (श्वेत कमल)-का निवेदन करे।

फाल्गुनादिमें तृतीयाका व्रत करनेवाले मनुष्यको नमक नहीं खाना चाहिये। व्रतके समाप्त होनेपर सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके अन्न, शय्या, पात्रादि उपस्करोंसे युक्त घरका दान '**भवानी प्रीयताम्**' 'भवानी प्रसन्न हों' ऐसा कहकर करना चाहिये। ऐसा करनेसे व्रतीको अन्त समयमें भवानीका लोक प्राप्त होता है और इस लोकमें श्रेष्ठ सुख तथा सौभाग्यकी प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्षमासकी तृतीया तिथिमें गौरी तथा चतुर्थी आदि तिथियोंमें क्रमशः—काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, मंगला, वैष्णवी, लक्ष्मी, शिवा तथा नारायणीदेवीकी पूजा करनी चाहिये। इनकी पूजा करनेसे व्रती प्रियजनोंसे होनेवाले वियोगादि कष्टोंसे मुक्त हो जाता है।

माघमासके शुक्लपक्षमें चतुर्थी तिथिको निराहार रहकर व्रत करते हुए व्रती ब्राह्मणको तिलका दानकर स्वयं तिल एवं जलका आहार करे। इस प्रकार प्रतिमास व्रत करते हुए दो वर्ष बीतनेपर इस व्रतको समाप्त कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे जीवनमें किसी प्रकारका विघ्न आदि प्राप्त नहीं होता। चतुर्थी तिथिमें गणोंके अधिनायक गणपतिदेवकी यथाविधि पूजा करनी चाहिये—पूजामें '**ॐ गः स्वाहा**' यह प्रणवसे युक्त मूल मन्त्र है। पूजामें अङ्गन्यास इस प्रकारसे करना चाहिये—

ॐ ग्लौं ग्लां हृदयाय नमः (दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श)। **ॐ गां गीं गूं शिरसे स्वाहा** (सिरका स्पर्श)। **ॐ हूं ह्रीं ह्रीं शिखायै वषट्** (शिखाका स्पर्श)। **ॐ गूं कवचाय वर्मणे हुम्** (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अँगुलियोंसे दाहिने कंधेका साथ ही स्पर्श)। **ॐ गौं नेत्रत्रयाय वौषट्** (दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटके मध्यभागका स्पर्श)। **ॐ गौं अस्त्राय फट्** (यह वाक्य पढ़कर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये)।

आवाहनादिमें निम्नाङ्कित मन्त्रोंका प्रयोग करना चाहिये। यथा—

आगच्छोल्काय गन्धोल्कः पुष्पोल्को धूपकोल्ककः।
दीपोल्काय महोल्काय बलिश्चाथ विस (मा) र्जनम्॥

हे गन्धोल्क, हे पुष्पोल्क, हे धूपकोल्क अर्थात् हे गन्ध, पुष्प तथा धूपमें तेजःस्वरूप विद्यमान रहनेवाले देव! आप इस रचित पूजामण्डलमें स्थित दीपकमें तेज प्रदान करनेके लिये, महातेज देनेके लिये, बलि और विसर्जनतक विद्यमान रहनेके लिये यहाँ उपस्थित हों।

आवाहनके पश्चात् गायत्रीमन्त्रसे अंगुष्ठादिका न्यास

करना चाहिये। वह गायत्रीमन्त्र इस प्रकार है—

ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।

करन्यासके पश्चात् इसी मन्त्रसे उनका ध्यान करके व्रतीको तिलादिसे उनकी पूजा करके आहुति देनी चाहिये। गणपतिके साथ रहनेवाले गणोंकी पूजा भी करनी चाहिये। व्रतीको '**ॐ गणाय नमः**', '**ॐ गणपतये नमः**' तथा '**ॐ कूष्माण्डकाय नमः**' इस प्रकार कहकर उनकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद स्वाहान्त शब्दका प्रयोग कर इन्हीं मन्त्रोंसे आहुति दे। इसी प्रकार अमोघोल्क, एकदन्त, त्रिपुरान्तकरूप, श्यामदन्त, विकरालास्य, आहवेष और पद्मदंष्ट्रा गणोंको भी 'नमः' और अन्तमें 'स्वाहा' शब्दसे यथापेक्षित नमन और आहुति प्रदान करनी चाहिये। उसके बाद व्रती गणदेवके लिये मुद्रा-प्रदर्शन, नृत्य, हस्ततााल तथा हास्यभाव प्रदर्शित करे। ऐसा करनेसे उसे सौभाग्यादि फलोंकी प्राप्ति होती है।

मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी चतुर्थी तिथिमें गणकी पूजा करनी चाहिये। वर्षपर्यन्त ऐसा करनेसे विद्या, लक्ष्मी, कीर्ति, आयु और संतानकी प्राप्ति होती है। सोमवार, चतुर्थी तिथिको उपवास रखकर व्रतीको विधि-विधानसे गणपतिदेवकी पूजा कर उनका जप, हवन और स्मरण करना चाहिये। इस व्रतको करनेसे उसे विद्या, स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त होता है।

शुक्लपक्षकी चतुर्थीको खाँडके लड्डू और मोदकसे विघ्नेश्वरकी पूजा करनेपर व्रतीकी समस्त कामनाओंकी सिद्धि तथा सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। यदि दमनक (श्वेतकमल)-से इनकी पूजा होती है तो साधकको पुत्रादिकका फल प्राप्त होता है, इसीलिये इस चतुर्थीका नाम दमना है।

'**ॐ गणपतये नमः**' इस मन्त्रसे गणपतिकी पूजा करनी चाहिये। जिस किसी भी मासमें इन गणपतिदेवकी पूजा करने तथा होम, जप और स्मरण करनेसे व्रतीकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा समस्त विघ्नोंका विनाश हो जाता है। मनुष्यको विभिन्न नामोंका उच्चारण करके भी भगवान् आद्यदेव विनायककी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे उसको भी सद्गतिकी प्राप्ति होती है। जबतक वह इस लोकमें रहता है, तबतक समस्त सुखोंका उपभोग करता है और अन्त समयमें उसे स्वर्ग और मोक्षकी भी प्राप्ति होती है। विनायकके निम्नलिखित ये बारह नाम हैं—

गणपूज्यो वक्रतुण्ड एकदंष्ट्री त्रियम्बकः।
नीलग्रीवो लम्बोदरो विकटो विघ्नराजकः॥
धूम्रवर्णो भालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः।
गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादशारे यजेद्गणम्॥

(१२९। २५-२६)

गणपूज्य, वक्रतुण्ड, एकदंष्ट्र, त्रियम्बक (त्र्यम्बक), नीलग्रीव, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण, भालचन्द्र, विनायक और हस्तिमुख—इन बारह नामोंसे गणदेवकी पूजा करनी चाहिये।

पृथक्-पृथक् इन नामोंसे जो बुद्धिमान् प्राणी इनकी पूजा करता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिकमासके शुक्ल-पक्षकी पञ्चमी तिथिमें वासुकि, तक्षक, कालीय, मणिभद्रक, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक तथा धनञ्जय—इन आठ नागोंकी घृतादिसे स्नान कराकर पूजा करनी चाहिये। ये नाग अपने भक्तको आयु-आरोग्य और स्वर्ग प्रदान करते हैं। अनन्त, वासुकि, शंख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, धृतराष्ट्र, शंखक, कालीय, तक्षक और पिंगल—इन नागोंकी पूजा प्रत्येक मासमें करनी चाहिये। भाद्रपदमासके शुक्लपक्षमें आठों नागोंकी पूजा करनेसे साधकको मृत्युके पश्चात् स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्ति होती है।

श्रावणमासके शुक्लपक्षमें पञ्चमीको द्वारके दोनों ओर इन नागोंका चित्र बनाकर पूजन करना चाहिये। इसी दिन अनन्त आदि महानागोंकी पूजा करके नैवेद्यमें दूध तथा घी देना चाहिये, इससे सभी विषदोष दूर हो जाते हैं। नाग अभय वरदान देनेवाले होते हैं और यह पञ्चमी सर्पदंष्ट्री प्राणीको मुक्ति देनेवाली होती है। इसलिये दंष्ट्रोद्धार पञ्चमी कहलाती है। (अध्याय १२९)

षष्ठी तथा सप्तमीके विविध व्रत

ब्रह्माजीने कहा—भाद्रपदमासमें भगवान् कार्तिकेयकी पूजा करनी चाहिये[1]। इसमें स्नानादि जो कृत्य किये जाते हैं, वे सभी अक्षय फल प्रदान करनेवाले हो जाते हैं। व्रती (षष्ठी तिथिको उपवासकर) सप्तमी तिथिको ब्राह्मणभोजन कराकर '**ॐ खखोल्काय नमः**' इस मन्त्रसे सूर्यदेवकी पूजा करे और अष्टमी तिथिको मरिचका

१-कार्तिकेयकी तिथि षष्ठी कही गयी है।

भोजनकर पारणा करे। इससे व्रती अन्तमें स्वर्ग प्राप्त करता है। मरिच-प्राशनके कारण इस व्रतका नाम मरिचसप्तमी है। इस व्रतको करनेसे प्रियजनोंसे मिलन होता है, उनसे वियोग नहीं होता। सप्तमी तिथिको संयमपूर्वक स्नानादि करके सूर्यकी पूजा करे। **'मार्तण्डः प्रीयताम्'**— 'सूर्यदेव मुझपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए ब्राह्मणोंके लिये फलोंका दान करे और खजूर, नारियल, बिजौरा नीबू आदि फलोंको प्रदान करे। यह प्रार्थना करे कि हे देव! मेरे सभी अभीष्ट चारों ओरसे सफल हों। फलदान एवं प्राशनके कारण इस सप्तमीका नाम 'फलसप्तमीव्रत' है।

सप्तमीको सूर्यदेवकी पूजा कर यदि ब्राह्मणोंको दक्षिणासहित पायसका भोजन कराया जाय, तदनन्तर व्रती स्वयं पयका पानकर व्रत समाप्त करे तो पुण्य-लाभ होता है। ओदन, भक्ष्य, चोष्य और लेह्य पदार्थ इस व्रतमें ग्राह्य नहीं है। धन-पुत्रकी कामना करनेवाला ओदनका परित्याग कर इस व्रतको करे। इसी वैशिष्ट्यके कारण इसे अनौदक सप्तमी कहा गया है।

विजयकी कामना करनेवालेको वायुमात्र पान कर विजयसप्तमीव्रत करना चाहिये। जो कामेच्छुक हैं, वे मात्र अर्कका प्राशनकर इस व्रतको करें। इस प्रकार व्रतकर वे कामपर विजय प्राप्त कर लेते हैं।

इस सप्तमीव्रतमें गेहूँ, उड़द, यव, साठी धान, तिल, कांस्यपात्र, पाषाणपात्र, पिसी हुई वस्तु, मधु, मैथुन, मद्य, मांस, तैल-मर्दन और अञ्जन त्याज्य है। जो मनुष्य इनका परित्याग कर व्रत करता है, उसकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। इसीलिये इसे विजयसप्तमी कहा गया है।

(अध्याय १३०)

दूर्वाष्टमी तथा श्रीकृष्णाष्टमी-व्रत

ब्रह्माजीने कहा—हे ब्रह्मन्! भाद्रपदमासमें शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको दूर्वाष्टमीव्रत होता है। इस दिन उपवास रहकर दूर्वासे गौरी-गणेशकी और शिवकी फल-पुष्प आदिसे पूजा करनी चाहिये। फल, धान्य आदि सभी प्रयोज्य वस्तुओंसे **'शम्भवे नमः, शिवाय नमः'** कहकर शिवका पूजन करे। तदनन्तर **'त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि'**[1] इस मन्त्रसे दूर्वाकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे यह अष्टमीव्रत निश्चित ही साधकको सर्वस्व प्रदान कर देता है। इस व्रतमें जो अग्निमें न पकाये गये पदार्थोंका भोजन करता है, वह ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है।

इसी भाद्रपदके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको अर्द्धरात्रिमें रोहिणी नक्षत्रमें भगवान् हरिकी पूजाका विधान है। यह श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत कहलाता है। सप्तमी तिथिसे विद्ध अष्टमी तिथि भी व्रतके योग्य होती है। इस प्रकारके अष्टमीका व्रत करनेसे प्राणीके तीन जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः उपवास रखकर मन्त्रसे भगवान् हरिकी पूजा करके तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करनी चाहिये।

'ॐ योगाय योगपतये योगेश्वराय योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।' इस मन्त्रसे योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान कर **'ॐ यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।'** इस मन्त्रसे उन्हें स्नान कराना चाहिये।

उसके बाद **'ॐ विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये विश्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः'** इस मन्त्रसे श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात्—**'ॐ सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।'** इस मन्त्रसे उन्हें शयन कराना चाहिये।

स्थण्डिल (वेदी)-में चन्द्रमा और रोहिणीके साथ भगवान् कृष्णकी पूजा करे। पुष्प, फल और चन्दनसे युक्त जलको शंखमें लेकर अपने दोनों घुटनोंको पृथिवीसे लगाते हुए चन्द्रमाको निम्न मन्त्रद्वारा अर्घ्य प्रदान करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव॥
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केश रोहिण्या सहितो मम।

(१३१।८-९)

हे क्षीरसागरसे उत्पन्न देव! हे अत्रिमुनिके नेत्रसे समुद्भूत! हे चन्द्रदेव! रोहिणीदेवीके साथ मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको आप स्वीकार करें।

तदनन्तर व्रतीको महालक्ष्मी, वसुदेव, नन्द, बलराम

---

[1] १-त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरैः। सौभाग्यं संततिं कृत्वा सर्वकार्यकरी भव॥
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले। तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरे॥

तथा यशोदाको फलयुक्त अर्घ्य प्रदानकर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

अनन्तं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्॥
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्।
वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम्॥
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम्।
गोविन्दमच्युतं देवमनन्तमपराजितम्॥
अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम्।
अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम्॥
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्।
पीताम्बरधरं दिव्यं वनमालाविभूषितम्॥
श्रीवत्साङ्कं जगद्धाम श्रीपतिं श्रीधरं हरिम्।
यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्॥
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।

(१३१। १०—१६)

ये देव जो अनन्त, वामन, शौरि, वैकुण्ठनाथ, पुरुषोत्तम, वासुदेव, हृषीकेश, माधव, मधुसूदन, वराह, पुण्डरीकाक्ष, नृसिंह, दैत्यसूदन, दामोदर, पद्मनाभ, केशव, गरुडध्वज, गोविन्द, अच्युत, अनन्तदेव, अपराजित, अधोक्षज, जगद्बीज, सर्गस्थित्यन्तकारण, अनादिनिधन, विष्णु, त्रिलोकेश, त्रिविक्रम, नारायण, चतुर्भुज, शङ्खचक्रगदाधर, पीताम्बरधारी, दिव्य, वनमालासे विभूषित, श्रीवत्साङ्क, जगद्धाम, श्रीपति और श्रीधरादि नामसे प्रसिद्ध हैं, जिनको देवकीसे वसुदेवने उत्पन्न किया है, जो पृथिवीपर निवास करनेवाले ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये संसारमें अवतरित होते हैं, उन ब्रह्मरूप भगवान् श्रीकृष्णको मैं नमन करता हूँ।

इस प्रकार भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन करके अपनी सद्गतिके लिये पुनः यह प्रार्थना करनी चाहिये—

त्राहि मां देवदेवेश हरे संसारसागरात्।
त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात् प्रभो॥
देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात्।
दुर्वृत्तांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत्॥
सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात्।
पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्यज्ञानसागरे॥
त्राहि मां देवदेवेश त्वामृतेऽन्यो न रक्षिता।
स्वजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च॥
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।
शान्तिरस्तु शिवं चास्तु धनविख्यातिराज्यभाक्॥

(१३१। १७—२१)

हे देवदेवेश्वर! हे हरे! इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करें। हे सर्वपापहन्ता प्रभो! दुःख तथा शोकसे परिपूर्ण इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करें। हे देवकीनन्दन! हे श्रीपते! हे हरे! इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करें। हे विष्णो! जो एक बार भी आपका स्मरण करते हैं, उन सभीको आप दुराचरणके दुःखसे उबार लेते हैं। हे देव! मैं भी वैसा ही इस संसारके अत्यन्त दुराचरणमें फँसा हुआ हूँ, आप मेरा भी इस शोकरूपी सागरसे उद्धार करें। हे राजीवलोचन! मैं इस गहन अज्ञानरूपी संसारसागरमें डूबा हुआ हूँ। आप मेरी रक्षा करें। हे देवदेवेश! आपके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई रक्षक नहीं है। हे स्वजन्मा! वासुदेव! गोद्विजहितकारी! जगत्त्राता! कृष्ण! गोविन्द! आपको बारम्बार नमस्कार है। आपकी कृपासे मुझे शान्ति प्राप्त हो, मेरा कल्याण हो और धन, यश तथा राज्यवैभवका मैं अधिकारी बनूँ। (अध्याय १३१)

बुधाष्टमीव्रत-कथा

ब्रह्माजीने कहा—जो मनुष्य अष्टमी तिथिको दिनभर व्रत रखकर नक्तव्रतकी विधिसे एक बार भोजन करता है और इस व्रतक्रमको वर्षपर्यन्त चलाकर व्रतकी समाप्तिपर गोदान करता है, उसे इन्द्रपदकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको सद्गतिव्रत कहा गया है। पौषमासकी शुक्लाष्टमी तिथिके व्रतका नाम महारुद्रव्रत है। जब दोनों पक्षकी अष्टमी तिथि बुधवारसे युक्त हो तो नियमपूर्वक बुधाष्टमीव्रत करनेवालेकी सम्पत्ति कभी भी खण्डित नहीं होती। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला जो मनुष्य दो अंगुलियोंको हटाकर शेष तीन अंगुलियोंसे बाँधी गयी मुट्ठीके द्वारा आठ मुट्ठी चावल लेकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भात बनाता है और कुशासे वेष्टित आम्रपत्रके दोनेमें करेमूके साग और इमलीके साथ उस भातको इस व्रतकी समाप्तिके बाद ग्रहण करता है और बुधाष्टमीकी कथा सुनता है, उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

बुधाष्टमीको जलाशयमें पञ्चोपचार-विधिसे बुधदेवकी

पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर यथाशक्ति दक्षिणासे युक्त ककड़ी और चावलका दान देना चाहिये। इस देवके पूजनका बीजमन्त्र 'ॐ बुं बुधाय नमः' है। इस देवपूजाके पश्चात् कमलगट्टे आदिकी आहुति देनेके लिये इसी बीजमन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग करना चाहिये। जलाशयके मध्य जिस पूजा-मण्डलकी कल्पना करे, उस मण्डलके मध्य कल्पित पद्मदलके ऊपर धनुष-बाणसे युक्त श्यामवर्णवाले इन देवकी भावना कर उनके अङ्गोंकी पूजा करे।

इस बुधाष्टमीकी कथा बड़ी ही पुण्यदायिनी है। इस व्रतकी कथा व्रत करनेवाले जनोंको अवश्य सुननी चाहिये। वह कथा इस प्रकार है—

प्राचीनकालमें पाटलिपुत्र नामक नगरमें वीर नामका एक श्रेष्ठ ब्राह्मण रहता था। उसकी पत्नीका नाम रम्भा और पुत्रका नाम कौशिक था। उसके विजया नामकी एक पुत्री थी तथा धनपाल नामका एक बैल था। ग्रीष्म-ऋतुमें एक बार कौशिक उस बैलको लेकर गङ्गामें स्नान करते समय जलक्रीडा करने लगा और उसी समय चोर गोपालकोंने आकर बलात् उस धनपाल नामक बैलका अपहरण कर लिया। कौशिक दुःखी होकर वनमें भ्रमण करने लगा। उसी समय संयोगवश अपनी माताके साथ गङ्गाजल लेनेके लिये विजया वहींपर आ गयी। कौशिक भूख-प्याससे व्याकुल हो कमलनालको भक्षण करनेकी इच्छासे एक जलाशयके पास जा पहुँचा। जहाँपर दिव्यलोककी कुछ स्त्रियाँ पूजा कर रही थीं। उन्हें देखकर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। अतः विस्मयाभिभूत कौशिकने उन सबके पास जाकर कुछ अन्नके लिये याचना करते हुए कहा—मैं अपनी छोटी बहनके साथ भूखा हूँ, किंतु स्त्रियोंने कहा कि तुमको इस पूजन-सामग्रीमेंसे व्रत करनेके लिये ही कुछ द्रव्य मिल सकता है। तुम भी यहींपर व्रत करो। तत्पश्चात् कौशिकने वहींपर धनपाल बैलकी प्राप्तिके लिये और विजयाने पति-प्राप्तिके लिये बुधदेवकी व्रत-पूजा की। व्रत-पूजन करनेके पश्चात् स्त्रियोंके द्वारा दोनेमें दिये गये प्रसादको उन दोनोंने ग्रहण किया। उसके बाद वे स्त्रियाँ वहाँसे चली गयीं। कुछ समयके बाद चोरोंके साथ वहींपर धनपाल बैल भी दिखायी पड़ गया। चोरोंके द्वारा दिये हुए धनपाल बैलको लेकर प्रदोषकालमें वे दोनों घर वापस चले आये। घरमें दुःखित पिता वीरको प्रणामकर रात्रिमें कौशिक सुखपूर्वक सो गया।

इधर युवा हुई पुत्री विजयाको देखकर वीरको यह चिंता हो गयी कि मैं इस पुत्रीको किसे दूँ। दुःखित पिताने यमराजको पुत्री देनेका निश्चय किया। दैवयोगसे इसी बीच वीरकी मृत्यु हो गयी। पिताके स्वर्ग चले जानेके बाद कौशिकने राज्य-प्राप्तिके लिये पुनः बुधाष्टमीका व्रत किया, जिसके फलस्वरूप कौशिकको अयोध्याका विशाल राज्य प्राप्त हुआ। उसने अपनी उस बहन विजयाका विवाह भी पिताके द्वारा कहे गये वचनके अनुसार यमराजके साथ ही करनेकी बात मनमें ठान ली थी। व्रतके प्रभावसे यमराजने वहाँ स्वयं आकर विजयाको पत्नीके रूपमें स्वीकार किया और विजयासे कहा—'तुम चलकर मेरे घरमें गृहस्वामिनी बनकर रहो।' उसने भी वैसा ही स्वीकार कर लिया और पतिके घर जाकर रहने लगी। एक दिन यमने उसे सावधान करते हुए कहा—देवि! ये जो बंद कमरे हैं, इन्हें कभी खोलना नहीं। विजयाने कभी भी बंद कमरेका किंवाड़तक नहीं खोला और न तो अपने पतिके विरुद्ध कोई आचरण ही किया। वह एक सद्गृहिणीके समान ही उनके साथ रही, किंतु एक दिन जिज्ञासावश उसने पतिके न रहनेपर कमरा खोलनेपर वहाँ अपनी माताको पति यमके ही कष्टकारी पाशमें बँधा हुआ देखा, जिससे वह अत्यन्त दुःखित हो उठी। उसी समय कौशिकके द्वारा बताये गये मुक्ति प्रदान करनेवाले बुधाष्टमी-व्रतकी याद उसे हो आयी। अतः उसने पुनः उस व्रतको किया, जिसके फलस्वरूप माता उस यमपाशसे मुक्त हो गयी। तदनन्तर उसने भी उस व्रतका पालन किया और अन्तमें व्रतके पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोक प्राप्तकर वहाँ सुखपूर्वक निवास करने लगी। (अध्याय १३२)

अशोकाष्टमी, महानवमी तथा नवमीके अन्य व्रत और ऋष्येकादशी व्रत-माहात्म्य

ब्रह्माजीने कहा—चैत्रमासमें पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त शुक्लाष्टमीको 'अशोकाष्टमी'व्रत होता है, इस दिन जो अशोकमञ्जरीकी आठ कलियोंका पान करते हैं, वे शोकको नहीं प्राप्त होते। अशोककलिकाओंका पान करते

समय यह प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव।
पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु॥

(१३३।२)

हे शिवप्रिय! वसंतोद्भव! शोकसंतप्त मैं आपका सेवन कर रहा हूँ। हे अशोक! आप मुझे सदैव शोक-विमुक्त रखें।

ब्रह्माजीने पुनः कहा—आश्विनमासमें उत्तराषाढ नक्षत्र तथा शुक्लपक्षकी अष्टमीसे युक्त जो नवमी होती है, उसे महानवमी कहा जाता है। इस तिथिको स्नान-दानादि करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। यदि केवल नवमी हो तो भी दुर्गाकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् शिव आदिने इस व्रतको किया था। यह महाव्रत अत्यधिक पुण्यलाभ देनेवाला है। शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये राजाको यह व्रत करना चाहिये। उसे जप-होमके बाद कुमारियोंको भोजन कराना चाहिये।

इस व्रतमें देवीके पूजनादिक कृत्योंमें प्रयुक्त होनेवाला '**ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा**' यह मन्त्र है।

व्रतीको चाहिये कि वह अष्टमी तिथिको लकड़ियोंसे देवीके लिये नौ अथवा एक भवन (मण्डप)-का निर्माण करे। उसमें देवीकी सुवर्ण या रजतमूर्ति स्थापित करे। देवीकी पूजा शूल, खड्ग, पुस्तक, पट अथवा मण्डलमें करनी चाहिये। अठारह हाथोंवाली दुर्गादेवी अपनी बायीं ओरके हाथोंमें कपाल, खेटक, घण्टा, दर्पण, तर्जनी, धनुष, ध्वज, डमरू और पाश धारण करती हैं। उनके दाहिनी ओरके हाथोंमें शक्ति, मुद्गर, शूल, वज्र, खड्ग, अंकुश, शर, चक्र और शलाका नामक आयुध रहते हैं। दुर्गादेवीके अतिरिक्त अन्य देवियोंकी जो प्रतिमाएँ होती हैं, उनके सोलह हाथ माने गये हैं। अञ्जन और डमरू उनके हाथोंमें नहीं रहता।

रुद्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, चण्डा, चण्डवती, चण्डरूपा तथा अतिचण्डिका—इन आठ देवियोंके अतिरिक्त नवीं देवी उग्रचण्डा हैं। ये उग्रचण्डादेवी अन्य आठ देवियोंके बीच प्रज्वलित अग्निकी प्रभाके समान सुशोभित होती हैं। रुद्रचण्डाका वर्ण रोचनाके समान, प्रचण्डाका अरुण, चण्डोग्राका कृष्ण, चण्डनायिकाका नील, चण्डाका धूम्र, चण्डवतीका शुक्ल, चण्डरूपाका पीत, अतिचण्डिकाका वर्ण पाण्डुर और उग्रचण्डाका वर्ण अग्निकी ज्वालाके समान है। देवी उग्रचण्डा सिंहपर स्थित रहती हैं। इनके आगे हाथमें खड्ग लिये हुए महिषासुर स्थित रहता है। देवी अपने एक हाथसे उस महिषासुरका (मुण्डयुक्त) कच (केश) पकड़े हुई स्थित रहती हैं।

इन भगवती उग्रचण्डाके दशाक्षरी विद्या-मन्त्र ('**ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा**')-का जप करके मनुष्य किसी भी बाधासे बाधित नहीं होता। पंद्रह अंगुलवाले खड्ग तथा त्रिशूलके साथ ही देवीकी उग्र शक्तियों—पूतना, पापराक्षसी, चरकी तथा विदारिकाकी भी नैर्ऋत्य आदि कोणोंमें यथाविधि पूजा करनी चाहिये।

राजाओंको शत्रु आदिपर विजय प्राप्त करनेके लिये विविध मन्त्रोंसे इस महानवमीको देवीकी विशेष पूजा करनी चाहिये। ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही आदि मातृकाओंको दूधसे स्नपन आदि कराकर देवीकी रथयात्रा निकालनी चाहिये, इससे उन्हें विजय तथा राज्य आदिकी प्राप्ति होती है।

आश्विनमासकी शुक्ला नवमीको एकभक्तव्रत करते हुए देवी और ब्राह्मणोंकी पूजा करके एक लाख बीजमन्त्रका जप करना चाहिये। इसे वीरनवमीव्रत कहा गया है। चैत्रशुक्ला नवमीको देवीकी पूजा दमनक नामक पुष्पसे करनी चाहिये। ऐसा करनेसे आयु, आरोग्य और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है तथा व्रती शत्रुसे अपराजित रहता है। इसे दमनकनवमीव्रत कहा जाता है। इसी मासकी शुक्ला दशमीको एकभक्तव्रत करके वर्षके अन्तमें दस गौओंका दान तथा दिक्पालोंको स्वर्णमेखलाका निवेदन करनेवाला समस्त ब्रह्माण्डका स्वामी हो जाता है। इसका नाम दिग्दशमीव्रत है। एकादशी तिथिको ऋषिपूजा करनेका विधान है। इससे व्रतीका सब प्रकारसे उपकार होता है। वह इस लोकमें धनवान् और पुत्रवान् होकर रहता है और अन्तमें उसे ऋषिलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। चैत्रमासमें दमनक-पुष्प तथा इन्हीं पुष्पोंसे बनी मालाद्वारा मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद—इन ऋषियोंकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १३३—१३५)

श्रवणद्वादशीव्रत

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं प्राणियोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले श्रवणद्वादशीव्रतका वर्णन करूँगा। श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशी और द्वादशी तिथि जब एक ही दिन पड़ती है तो उसे विजया तिथि कहा जाता है। इस दिन हरिकी पूजा आदि करनेसे प्राप्त पुण्यका फल अक्षय होता है। एकभुक्तव्रत करनेसे अथवा नक्तव्रत करनेसे या अयाचितव्रत करनेसे अथवा उपवास या भिक्षाचार करनेसे इस द्वादशीव्रतका पुण्य क्षीण नहीं होता है। व्रतीको इस द्वादशीके दिन कांस्यपात्र, मांस, शहद, लोभ, असत्यभाषण, व्यायाम, मैथुन, दिनमें सोना, अञ्जन, पत्थरपर पिसे हुए द्रव्य तथा मसूरका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

यदि भाद्रपदमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो वह द्वादशी बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है। उस दिन उपवास करनेसे महान् फलोंकी प्राप्ति होती है। यदि यह तिथि बुधवारसे भी युक्त हो तो इस दिन नदियोंके संगममें स्नान करनेसे महनीय फल प्राप्त होते हैं। इस दिन रत्न एवं जलसे परिपूर्ण कुम्भमें दो श्वेतवस्त्रोंसे आच्छादित भगवान् वामनकी स्वर्णमयी प्रतिमाका छत्र और जूता-समन्वित पूजन करना चाहिये।

विद्वान्‌को चाहिये कि '**ॐ नमो वासुदेवाय**' इस मन्त्रसे भगवान् वामनके सिरकी पूजा करके, '**ॐ श्रीधराय नमः**' मन्त्रसे उनके मुखमण्डलकी, '**ॐ कृष्णाय नमः**' मन्त्रसे उनके कण्ठकी, '**ॐ श्रीपतये नमः**' मन्त्रसे उनके वक्षःस्थलकी, '**ॐ सर्वास्त्रधारिणे नमः**' मन्त्रसे उनकी भुजाओंकी, '**ॐ व्यापकाय नमः**' मन्त्रसे उनके कुक्षिप्रदेशकी, '**ॐ केशवाय नमः**' मन्त्रसे उनके उदरकी, '**ॐ त्रैलोक्यपतये नमः**' मन्त्रसे उनके मेढ्र (गुह्य)-भागकी तथा '**ॐ सर्वभृते नमः**' मन्त्रसे उनकी जंघाओंकी और '**ॐ सर्वात्मने नमः**' मन्त्रसे उनके पैरोंकी पूजा करनी चाहिये। उन्हें घृत और पायसका नैवेद्य समर्पित करे। कुम्भ और मोदक दे करके रात्रिमें जागरण करना चाहिये। तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर स्नान और आचमन करे और उनकी पुनः पूजा करके पुष्पाञ्जलिसहित इस प्रकार प्रार्थना करे—

> **नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक॥**
> **अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव।**
>
> (१३६। ११-१२)

हे गोविन्द! ज्ञानस्वरूप! श्रवण नामवाले देव! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप मेरे समस्त पापसमूहोंका विनाश करके मेरे लिये सभी सुखोंको प्रदान करनेवाले होवें।

प्रार्थनाके बाद '**प्रीयतां देवदेवेश**'—ऐसा कहते हुए ब्राह्मणोंको कलशोंका दान दे। इस व्रत-पूजाको नदीतट अथवा अन्य किसी पवित्र स्थानपर करनेसे सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। (अध्याय १३६)

तिथिव्रत, वारव्रत एवं नक्षत्रादिव्रत-निरूपण और प्रतिपदादि तिथियोंमें पूजनीय देवता

ब्रह्माजीने कहा—कामदेवत्रयोदशी तिथिको श्वेतकमल आदिके पुष्पोंसे रति और प्रीतिसे युक्त मणिविभूषित शोकरहित कामदेवकी पूजा करनी चाहिये, इस व्रतका नाम मदनत्रयोदशी है। जो वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासके शुक्ल और कृष्णपक्षकी चतुर्दशी एवं अष्टमी तिथिमें उपवास करके शिवपूजन करता है, वह मुक्ति प्राप्त करता है। इसे शिवचतुर्दशी तथा शिवाष्टमीव्रत कहा गया है। तीन रात्रियोंतक उपवास रखकर व्रतीको कार्तिकमासमें एक शुभ भवनका दान देना चाहिये। ऐसा करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है, यह कल्याणकारी धामव्रत है। अमावास्या तिथिमें पितरोंको दिया गया जल आदि अक्षय होता है। नक्तव्रत करके वारोंके नामसे सूर्यादिकी पूजा करके व्रती सभी फलोंको प्राप्त करनेका अधिकारी हो जाता है। ये वारव्रत कहलाते हैं।

हे ब्रह्मर्षि! प्रत्येक मासके नामकरणके प्रयोजक बारहों नक्षत्रसे युक्त उन-उन महीनोंकी पूर्णिमा तिथि हो तो उन नक्षत्रोंके नामसे मनुष्यको सम्यक्-रूपसे भगवान् अच्युतकी पूजा करनी चाहिये। इस व्रतको कार्तिकमाससे प्रारम्भ करना चाहिये। कृत्तिका नक्षत्रयुक्त कार्तिकमासमें केशवकी पूजा करनी चाहिये। क्रमशः चार महीनों (कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ)-में घृतका हवनकर तिल-चावल (कृसरान्न)-की खिचड़ीका भोग निवेदित करना चाहिये।

आषाढ़ आदि चार महीनोंमें पायस निवेदन करके ब्राह्मणोंको पायसका ही भोजन निवेदित करना चाहिये। पञ्चगव्य, जलस्नान और नैवेद्यसे पूजन करना चाहिये। इस प्रकार संवत्सरके अन्तमें विशेषरूपसे भगवान्‌की पूजा करके निम्नलिखित मन्त्रोंसे प्रार्थना करनी चाहिये—

नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु
पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम्।
ऐश्वर्यवित्तादिसदाऽक्षयं मे
तथास्तु मे सन्ततिरक्षयैव॥
यथाच्युत त्वं परतः परस्मात्
स ब्रह्मभूतः परतः परस्मात्।
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं सदा
मया कृतं पापहराप्रमेय॥
अच्युतानन्त गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम्।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम॥
(ग०पु० १३७। १०—१२)

हे अच्युत! आपको बार-बार प्रणाम है। हे देव! मेरे पापोंका विनाश हो और पुण्यकी वृद्धि हो। मेरे ऐश्वर्य और धनादि सदैव अक्षय रहें। मेरी सन्तान-परम्परा अक्षुण्ण हो। हे अच्युत! जिस प्रकार आप परात्पर ब्रह्म हैं, वैसे ही मेरे मनोऽभिलषित फलको अविनाशी बना दें। हे अप्रमेय! सदैव मेरे द्वारा किये जानेवाले पापका विनाश करते रहें। हे अच्युत! हे अनन्त! हे गोविन्द! आप मुझपर प्रसन्न हों। हे अमेयात्मन्! हे पुरुषोत्तम! जो मेरे लिये अभीष्ट है, आप उसको भी अक्षय बना दें।

यह मास-नक्षत्रव्रत सात वर्षतक करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यको आयु, लक्ष्मी तथा सद्‌गति प्राप्त होती है। यदि स्वच्छ हृदयसे उपवाससहित एक वर्षपर्यन्त यथाक्रम एकादशी, अष्टमी, चतुर्दशी और सप्तमी तिथियोंमें विष्णु, दुर्गा, शिव और सूर्यकी पूजा हो तो प्राणीको उन देवोंके लोक तो प्राप्त होते ही हैं, सभी निर्मल अभिलाषाएँ भी पूर्ण हो जाती हैं। व्रतकालमें एकभुक्त, नक्त अथवा अयाचित एवं उपवास करते हुए शाकादिके द्वारा इन सभी तिथियोंमें सभी देवताओंकी पूजा करनेसे भोग और मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति हो जाती है। प्रतिपदा तिथिमें कुबेर, अग्नि, नासत्य और दस्र नामक देव पूज्य हैं। द्वितीया तिथिमें लक्ष्मी तथा यमराज, पञ्चमीमें श्रीसमन्वित पार्वती और नागगणोंकी पूजा करनी चाहिये। षष्ठी तिथिमें कार्तिकेय तथा सप्तमीमें अर्घदाता सूर्यदेवकी पूजा विहित है। अष्टमी तिथिमें दुर्गा, नवमीमें मातृकाओं एवं तक्षककी पूजाका विधान है। दशमीमें इन्द्र और कुबेर तथा एकादशीमें सप्तर्षियोंकी पूजा करनी चाहिये। द्वादशी तिथिमें हरि, त्रयोदशीमें कामदेव, चतुर्दशीमें महेश्वर शिव, पूर्णिमामें ब्रह्मा तथा अमावास्यामें पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। (अध्याय १३७)

सूर्यवंशवर्णन

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं राजाओंके वंश और उनके चरितका वर्णन करता हूँ। सर्वप्रथम सूर्यवंशका वर्णन सुनें।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्माके अङ्गुष्ठभागसे दक्षका जन्म हुआ। दक्षसे उनकी पुत्री अदितिका प्रादुर्भाव हुआ, जो देवमाता कहलाती हैं। उन्हीं अदितिसे विवस्वान् (सूर्य), विवस्वान्‌से वैवस्वत मनु हुए और उन मनुसे इक्ष्वाकु, शर्याति, नृग, धृष्ट, पृषध्र, नरिष्यन्त, नभग, दिष्ट तथा शशक (करुष) नामक नौ पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। हे रुद्र! मनुकी इला नामकी कन्या थी और सुद्युम्न नामक पुत्र था। इलाके बुधसे राजा पुरूरवा उत्पन्न हुए। सुद्युम्नसे उत्कल, विनत तथा गय नामक तीन पुत्रोंका जन्म हुआ।

गोवध करनेके कारण मनुका पुत्र पृषध्र शूद्र हो गया था। करुष (शशक)-से क्षत्रिय लोगोंकी उत्पत्ति हुई, जो कारुष नामसे विख्यात हुए। मनुके पुत्र दिष्टसे जो नाभाग नामका पुत्र हुआ वह वैश्य हो गया था। उससे एक भलन्दन नामक पुत्र हुआ। भलन्दनसे वत्सप्रीति नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। वत्सप्रीतिसे पांशु और खनित्र—दो पुत्रोंका जन्म हुआ। खनित्रसे भूप, भूपसे क्षुप, क्षुपसे विंश और विंशसे विविंशकने जन्म लिया।

विविंशकसे खनिनेत्र और खनिनेत्रसे विभूति नामक

पुत्रका जन्म हुआ। विभूतिसे करन्धम नामक पुत्र हुआ। करन्धमसे अविक्षित, अविक्षितसे मरुत् और मरुत्से नरिष्यन्तकी उत्पत्ति मानी जाती है। नरिष्यन्तसे तम, तमसे राजवर्धन, राजवर्धनसे सुधृति, सुधृतिसे नर, नरसे केवल तथा केवलसे धुन्धमान हुआ।

धन्धुमानके वेगवान्, वेगवान्के बुध और बुधके तृणबिन्दु नामक पुत्र हुआ। तृणबिन्दुने अलम्बुषा नामकी अप्सरासे इलविला नामकी कन्या तथा विशाल नामक पुत्र उत्पन्न किया। विशालके हेमचन्द्र नामक पुत्र हुआ। हेमचन्द्रसे चन्द्रक, चन्द्रकसे धूम्राश्व, धूम्राश्वसे सृञ्जय, सृञ्जयसे सहदेवकी उत्पत्ति हुई। सहदेवके कृशाश्व नामक पुत्र हुआ। कृशाश्वसे सोमदत्त और सोमदत्तसे जनमेजय हुआ। जनमेजयसे सुमन्ति नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। इन सभी (राजाओं)-को वैशालक कहा गया है।

वैवस्वत मनुके पुत्र शर्यातिके सुकन्या नामकी पुत्री हुई, जो च्यवन ऋषिकी भार्या बनी। शर्यातिके अनन्त नामक पुत्र भी था। उससे रेवत नामका पुत्र हुआ। रेवतके भी रैवत नामक पुत्र हुआ। उससे रेवती नामकी कन्या हुई।

वैवस्वत मनुके पुत्र धृष्टके धार्ष्ट हुआ, जो वैष्णव हो गया था। उन्हीं मनुके पुत्र नभगके नेदिष्ठ नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे अम्बरीष हुआ। अम्बरीषके विरूप, विरूपके पृषदश्व और उसके रथीनर हुआ, जो वासुदेवका भक्त था।

मनुपुत्र इक्ष्वाकुके विकुक्षि, निमि और दण्डक तीन पुत्र हुए। विकुक्षि यज्ञीय शशक (खरगोश)-का भक्षण करनेके कारण शशाद नामसे विख्यात हुआ। शशादसे पुरञ्जय और ककुत्स्थ नामक दो पुत्र हुए। इसी ककुत्स्थसे अनेनस् (वेण) तथा अनेनस्से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथुके विश्वरात नामक पुत्र हुआ। विश्वरातसे आर्द्रकी उत्पत्ति हुई। आर्द्रसे युवनाश्व, युवनाश्वके श्रीवत्स, श्रीवत्सके बृहदश्व, बृहदश्वके कुवलाश्व और कुवलाश्वके दृढाश्व हुआ, जिसकी प्रसिद्धि धुन्धुमारके नामसे हुई थी।

दृढाश्वके चन्द्राश्व, कपिलाश्व और हर्यश्व नामक तीन पुत्र थे। हर्यश्वके निकुम्भ, निकुम्भके हिताश्व, हिताश्वके पूजाश्व और उसके युवनाश्व हुआ। युवनाश्वके मान्धाता हुए। मान्धाता एवं उनकी पत्नी बिन्दुमतीसे मुचुकुन्द, अम्बरीष तथा पुरुकुत्स नामक तीन पुत्रोंका जन्म हुआ। उनकी पचास कन्याएँ भी थीं। जिनका विवाह सौभरि मुनिके साथ हुआ था।

अम्बरीषके युवनाश्व तथा युवनाश्वके हरित हुआ। पुरुकुत्सके नर्मदा नामक पत्नीसे त्रसदस्यु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। उससे अनरण्य, अनरण्यसे हर्यश्व, हर्यश्वसे वसुमना हुआ। उसीका पुत्र त्रिधन्वा था। उसके त्रय्यारुण नामक पुत्र हुआ। त्रय्यारुणके सत्यरत हुआ, जो त्रिशंकु नामसे प्रसिद्ध है। हरिश्चन्द्र इसीसे उत्पन्न हुए थे। हरिश्चन्द्रके रोहिताश्व और रोहिताश्वके हारीत हुआ। हारीतके चंचु, चंचुके विजय, विजयके रुरुक, रुरुकके वृक, वृकके राजा बाहु और बाहुके पुत्र राजा सगर माने जाते हैं।

हे शिव! सगरसे सुमति नामक पत्नीके साठ हजार पुत्र हुए। उनकी दूसरी पत्नी केशिनीसे असमंजस नामक एक पुत्र हुआ। उस असमंजससे अंशुमान् तथा अंशुमान्से दिलीप नामक एक विद्वान् पुत्रने जन्म लिया। दिलीपसे भगीरथ हुए, जिनके द्वारा पृथिवीपर गङ्गा लायी गयी हैं।

भगीरथका पुत्र श्रुत था। श्रुतसे नाभाग हुआ। नाभागसे अम्बरीष, अम्बरीषसे सिन्धुद्वीप, सिन्धुद्वीपसे अयुतायु हुआ। अयुतायुका पुत्र ऋतुपर्ण था, ऋतुपर्णसे सर्वकाम और सर्वकामसे सुदास, सुदाससे सौदास हुआ। जिसका नाम मित्रसह भी माना जाता है। कल्माषपाद उसीका पुत्र है, जो दमयन्तीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। कल्माषपादके अश्मक, अश्मकके मूलक, मूलकके दशरथ हुआ। दशरथके ऐलविल, ऐलविलके विश्वसह, विश्वसहके खट्वाङ्ग, खट्वाङ्गके दीर्घबाहु, दीर्घबाहुके अज तथा अजके दशरथ हुए। इनके महापराक्रमी चार पुत्र हुए, जो राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामसे प्रसिद्ध हैं।

रामसे कुश और लव, भरतसे तार्क्ष तथा पुष्कर, लक्ष्मणसे चित्राङ्गद एवं चन्द्रकेतु और शत्रुघ्नसे सुबाहु तथा शूरसेन नामक पुत्र हुए। कुशके अतिथि, अतिथिके निषध नामक पुत्र हुआ। निषधके नल तथा नलके नभस नामका पुत्र माना गया है। नभसके पुण्डरीक और पुण्डरीकसे क्षेमधन्वा नामक पुत्रने जन्म लिया। उसका पुत्र देवानीक

था, उससे अहीनक, अहीनकसे रुरु तथा रुरुसे पारियात्र नामक पुत्रका जन्म हुआ। पारियात्रसे दलकी उत्पत्ति हुई और दलसे छल, छलसे उक्थ, उक्थसे वज्रनाभ और वज्रनाभसे गण, गणसे उषिताश्व, उषिताश्वसे विश्वसहकी उत्पत्ति हुई। हिरण्यनाभ उसीका पुत्र था। उसका पुत्र पुष्पक माना गया है।

पुष्पकसे ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिसे सुदर्शन, सुदर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णसे पद्मवर्ण हुआ। पद्मवर्णसे शीघ्र और शीघ्रसे मरु हुए। मरुसे सुश्रुत और उससे उदावसु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। उदावसुसे नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धनसे सुकेतु, सुकेतुसे देवरातकी उत्पत्ति हुई। देवरातका पुत्र बृहदुक्थ था। बृहदुक्थके महावीर्य, महावीर्यके सुधृति, सुधृतिके धृष्टकेतु, धृष्टकेतुके हर्यश्व, हर्यश्वके मरु, मरुके प्रतीन्धक हुआ। प्रतीन्धकसे कृतिरथ और कृतिरथके देवमीढ नामक पुत्र हुआ। देवमीढसे विबुध, विबुधसे महाधृति, महाधृतिसे कीर्तिरात तथा कीर्तिरातसे महारोमा नामक पुत्र हुआ।

महारोमाके स्वर्णरोमा हुए। स्वर्णरोमाके ह्रस्वरोमा नामका पुत्र था। ह्रस्वरोमाके सीरध्वज हुआ। उसके सीता नामकी एक पुत्री हुई। सीरध्वजके कुशध्वज नामका एक भाई भी था। सीताके अतिरिक्त सीरध्वजके भानुमान् नामका एक पुत्र भी हुआ। उस भानुमान्से शतद्युम्न, शतद्युम्नसे शुचि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। शुचिके ऊर्ज नामक पुत्र था। उस ऊर्जसे सनद्वाज उत्पन्न हुआ। सनद्वाजसे कुलिने जन्म लिया। उस कुलिसे अनञ्जन नामक पुत्र हुआ। अनञ्जनसे कुलजित्की उत्पत्ति हुई। उसके भी आधिनेमिक नामका पुत्र था। उसका पुत्र श्रुतायु हुआ और उस श्रुतायुसे सुपार्श्व नामक पुत्रने जन्म ग्रहण किया। सुपार्श्वसे सृञ्जय, सृञ्जयसे क्षेमारि, क्षेमारिसे अनेना और उस अनेनाका पुत्र रामरथ माना गया है।

रामरथका पुत्र सत्यरथ, सत्यरथका पुत्र उपगुरु, उपगुरुका उपगुप्त तथा उपगुप्तका पुत्र स्वागत था। स्वागतसे स्ववरकी उत्पत्ति हुई। सुवर्चा उसीका पुत्र था। सुवर्चासे सुपार्श्व और सुपार्श्वसे सुश्रुत, सुश्रुतसे जयकी उत्पत्ति हुई। जयसे विजय, विजयसे ऋत, ऋतसे सुनय, सुनयसे वीतहव्य, वीतहव्यसे धृतिकी उत्पत्ति मानी गयी है। धृतिके बहुलाश्व और बहुलाश्वके कृति नामक पुत्र था। उस कृतिके जनक हुए। जनकके दो वंश कहे गये हैं, जिन्होंने योगमार्गका अनुसरण किया था। (अध्याय १३८)

चन्द्रवंशवर्णन

श्रीहरिने कहा— हे रुद्र! सूर्यके वंशका वर्णन तो मैंने कर दिया। अब मुझसे चन्द्रवंशका वर्णन आप सुनें।

नारायण (विष्णु)-से ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। ब्रह्मासे अत्रिकी उत्पत्ति हुई। अत्रिसे सोम हुए। उनकी पत्नी तारा थी, जो पहले बृहस्पतिकी भी प्रियतमा थी। ताराने चन्द्र (सोम)-से बुधको उत्पन्न किया। उसी बुधका पुत्र पुरूरवा हुआ। बुधपुत्र पुरूरवासे उर्वशीके छः पुत्र हुए, जिनके नाम श्रुतात्मक, विश्वावसु, शतायु, आयु, धीमान् और अमावसु थे।

अमावसुके भीम, भीमके काञ्चन, काञ्चनसे सुहोत्र और सुहोत्रके जह्नु हुए। जह्नुसे सुमन्तु, सुमन्तुसे उपजापक हुआ। उसका पुत्र बलाकाश्व था। बलाकाश्वसे कुश, कुशसे कुशाश्व, कुशनाभ, अमूर्तरय और वसु नामक चार पुत्र हुए। कुशाश्वसे गाधिका जन्म हुआ। विश्वामित्र उसीके पुत्र थे। गाधिकी सत्यवती नामकी एक कन्या थी। उसको उन्होंने ब्राह्मण ऋचीकको सौंप दिया। ऋचीकके जमदग्नि नामक पुत्र हुआ। जमदग्निके परशुराम हुए। विश्वामित्रसे देवरात तथा मधुच्छन्दा आदि अनेक पुत्रोंका जन्म हुआ।

बुधके पुत्र आयुसे नहुषकी उत्पत्ति हुई। नहुषके अनेना, राजि, रम्भक तथा क्षत्रवृद्ध नामक चार पुत्र हुए। क्षत्रवृद्धका सुहोत्र नामक पुत्र राजा हुआ। सुहोत्रके काश्य, काश और गृत्समद नामक तीन पुत्र हुए। गृत्समदसे शौनक तथा काश्यसे दीर्घतमा हुआ। दीर्घतमासे वैद्य धन्वन्तरिका जन्म हुआ। केतुमान् उन्हींका पुत्र था। केतुमान्से भीमरथ, भीमरथसे दिवोदास, दिवोदाससे प्रतर्दन हुआ, जो शत्रुजित् नामसे विख्यात हुआ।

ऋतध्वज उसी शत्रुजित्का पुत्र था। ऋतध्वजसे

अलर्क, अलर्कसे सन्नति, सन्नतिसे सुनीत, सुनीतसे सत्यकेतु, सत्यकेतुसे विभु नामक पुत्र हुआ। विभुसे सुविभु, सुविभुसे सुकुमार, सुकुमारसे धृष्टकेतुकी उत्पत्ति हुई। उस धृष्टकेतुका पुत्र वीतिहोत्र था। वीतिहोत्रके भर्ग और भर्गके भूमिक नामका पुत्र हुआ। ये सभी विष्णुधर्मपरायण राजा थे।

नहुषपुत्र रजि या रजिके पाँच सौ पुत्र थे, जिनका संहार इन्द्रने किया था। नहुषके पुत्र क्षत्रवृद्धसे प्रतिक्षत्र हुए। उसका पुत्र संजय था। संजयके भी विजय हुआ। विजयका पुत्र कृत था। कृतके वृषधन, वृषधनसे सहदेव, सहदेवसे अदीन और अदीनके जयत्सेन हुआ। जयत्सेनसे संकृति और संकृतिसे क्षत्रधर्माकी उत्पत्ति हुई।

नहुषके क्रमशः यति, ययाति, संयाति, अयाति तथा विकृति नामक अन्य पाँच पुत्र थे। ययातिसे देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। राजा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने ययातिसे द्रुह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्रोंको उत्पन्न किया।

यदुके सहस्रजित्, क्रोष्टुमना और रघु नामक तीन पुत्र थे। सहस्रजित्से शतजित्, शतजित्से हय तथा हैहय नामक दो पुत्र हुए। हयसे अनरण्य तथा हैहयसे धर्म हुआ। धर्मका पुत्र धर्मनेत्र हुआ। उस धर्मनेत्रका पुत्र कुन्ति था। कुन्तिसे साहंजि हुआ। साहंजिसे महिष्मान्, महिष्मान्से भद्रश्रेण्य, भद्रश्रेण्यसे दुर्दमकी उत्पत्ति हुई। दुर्दमसे धनक, कृतवीर्य, जानकि, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा नामक छः बलवान् पुत्र हुए। कृतवीर्यसे अर्जुन तथा अर्जुनसे शूरसेन नामक पुत्र हुआ। उस पुत्रके अतिरिक्त कृतवीर्यके जयध्वज, मधु, शूर और वृषण नामक चार पुत्र हुए। शूरसेनसहित ये पाँचों पुत्र बड़े ही सुव्रती थे। जयध्वजसे तालजंघ, तालजंघसे भरत हुआ। कृतवीर्य वृषणका पुत्र मधु था। मधुसे वृष्णि हुआ, जिससे वृष्णिवंशियोंकी उत्पत्ति हुई।

क्रोष्टुके विजज्ञिवान् हुआ। उस विजज्ञिवान्का पुत्र आहि था। आहिसे उशंकु हुआ। उसका पुत्र चित्ररथ था। चित्ररथसे शशबिन्दु हुआ, जिसके एक लाख पत्नियाँ तथा पृथुकीर्ति, पृथुजय, पृथुदान, पृथुश्रवा आदि श्रेष्ठ दस लाख पुत्र थे। पृथुश्रवासे तम, तमसे उशना हुआ। उसका पुत्र शितगु था। तत्पश्चात् उसके श्रीरुक्मकवच हुआ। श्रीरुक्मकवचसे रुक्म, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित और हरि—ये चार पुत्र हुए। ज्यामघसे विदर्भका जन्म हुआ।

विदर्भकी शैब्या नामकी एक पत्नी थी, उससे विदर्भने क्रथ, कौशिक तथा रोमपाद नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया। रोमपादसे बभ्रु और बभ्रुसे धृति हुआ।

कौशिकके ऋचि नामक पुत्र था। उसीसे चेदि नामका राजा हुआ। इसका पुत्र कुन्ति था। कुन्तिसे वृष्णि नामक पुत्र हुआ। वृष्णिसे निवृत्ति, निवृत्तिसे दशार्ह, दशार्हसे व्योम और व्योमसे जीमूत नामका पुत्र हुआ। जीमूतसे विकृतिका जन्म हुआ। उस विकृतिका पुत्र भीमरथ था। भीमरथसे मधुरथ और मधुरथसे शकुनि उत्पन्न हुआ। शकुनिका पुत्र करम्भि था। उस करम्भिका पुत्र देवमान् माना जाता है। देवमान् या देवनतसे देवक्षत्र तथा देवक्षत्रसे मधु नामक पुत्र हुआ। मधुसे कुरुवंश, कुरुवंशसे अनु, अनुसे पुरुहोत्र, पुरुहोत्रसे अंशु, अंशुसे सत्त्वश्रुत और उससे सात्त्वत नामका राजा हुआ।

सात्त्वतके भजिन्, भजमान्, अन्धक, महाभोज, वृष्णि, दिव्यावन्य तथा देवावृध नामक सात पुत्र हुए। भजमान्से निमि, वृष्णि, अयुताजित्, शतजित्, सहस्राजित्, बभ्रु, देव और बृहस्पति नामके पुत्र हुए। महाभोजसे भोज और उस वृष्णिसे सुमित्र नामक पुत्र हुआ। सुमित्रसे स्वधाजित्, अनमित्र तथा अशिनि हुए। अनमित्रका पुत्र निघ्न और निघ्नका पुत्र सत्राजित् हुआ। अनमित्रसे प्रसेन तथा शिबि नामक दो अन्य पुत्र भी हुए थे। शिबिसे सत्यक, सत्यकसे सात्यकि हुआ। सात्यकिके संजय और उस संजयके कुलि हुए। उस कुलिका पुत्र युगन्धर था। इन सभीको शिबिवंशी शैबेय कहा गया है।

अनमित्रके ही वंशमें वृष्णि, श्वफल्क तथा चित्रक नामक अन्य तीन पुत्र हुए थे। श्वफल्कने गान्दिनीके गर्भसे अक्रूरको जन्म दिया, जो परम वैष्णव थे। अक्रूरसे उपमद्गु हुआ, जिसका पुत्र देवद्योत था। उपमद्गुके अतिरिक्त अक्रूरके देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र माने गये हैं।

अनमित्र-पुत्र चित्रकके पृथु तथा विपृथु नामक दो पुत्र थे। सात्त्वतनन्दन अन्धकका पुत्र शुचि माना जाता है। भजमानके कुकुर और कम्बलबर्हिष दो पुत्र हुए। कुकुरसे

धृष्टका जन्म हुआ। उसका पुत्र कापोतरोमक था। उस कापोतरोमकका विलोमा और विलोमासे तुम्बुरुका जन्म हुआ। तुम्बुरुसे दुन्दुभि तथा दुन्दुभिका पुनर्वसु माना जाता है। उस पुनर्वसुका पुत्र आहुक था। आहुकके एक पुत्री हुई, जिसका नाम आहुकी था। आहुकके दो पुत्र हुए जिनका नाम देवक और उग्रसेन था। देवकसे देवकीका जन्म हुआ। इसके अतिरिक्त देवकके वृकदेवा, उपदेवा, सहदेवा, सुरक्षिता, श्रीदेवी और शान्तिदेवी नामकी छः कन्याएँ और भी थीं। इन सातों कन्याओंका विवाह वसुदेवके साथ हुआ था। सहदेवाके देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र थे।

आहुकपुत्र उग्रसेनके कंस, सुनामा तथा वट आदि नामके अनेक पुत्र हुए। अन्धकपुत्र भजमान्‌से विदूरथ नामका पुत्र हुआ था। विदूरथसे शूर और शूरके शमी नामका पुत्र हुआ। शमीसे प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रसे स्वयंभोज, स्वयंभोजसे हृदिक तथा हृदिकसे कृतवर्मा हुए। शूरसे ही देव, शतधनु और देवामीढुषका भी जन्म हुआ था। मारिषाके गर्भसे शूरके वसुदेव आदि अन्य दस पुत्र थे। शूरसे पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेव (राजाधिदेवी) नामवाली पाँच पुत्रियाँ भी थीं। शूरने पुत्री पृथाको कुन्तिराजको दे दिया था। कुन्तिराजने शूरसे प्राप्त उस कन्याका विवाह पाण्डुसे कर दिया। पाण्डुकी उस पृथा नामकी पत्नीसे धर्म, वायु और इन्द्रादि देवोंके अंशसे युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा पाण्डुकी पत्नी माद्रीमें अश्विनीकुमारके अंशसे नकुल तथा सहदेव नामक पुत्र हुए। विवाहके पूर्व ही पृथासे कर्णका जन्म हुआ था।

शूरकी पुत्री श्रुतदेवीके गर्भसे दन्तवक्त्र हुआ, जो अत्यन्त वीर योद्धा था। श्रुतकीर्ति कैकयराजको ब्याही गयी थी। कैकयराजसे उसके सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र हुए। राजाधिदेवीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका नाम विन्द और अनुविन्द था। चेदिराज दमघोषको श्रुतश्रवा ब्याही थी। उससे शिशुपालका जन्म हुआ।

वसुदेवके पौरव, रोहिणी, मदिरा, देवकी, भद्रा आदि जो अन्य स्त्रियाँ हैं, उनमें रोहिणीके गर्भसे बलभद्र हुए। बलभद्रकी पत्नी रेवतीके गर्भसे सारण और शठ आदिका जन्म हुआ। देवकीके गर्भसे पहले छः पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम कीर्तिमान्, सुषेण, उदार्य, भद्रसेन, ऋजुदास और भद्रदेव हैं। कंसने इन सभी पुत्रोंको मार डाला था। देवकीके सातवें पुत्रके रूपमें बलराम और आठवें कृष्ण थे। कृष्णकी सोलह हजार रानियाँ थीं। रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा, चारुहासिनी तथा जाम्बवती आदि आठ प्रधान पत्नियाँ थीं। इनसे उनके बहुत-से पुत्र हुए।

प्रद्युम्न, चारुदेष्ण तथा साम्ब कृष्णके प्रधान पुत्र हैं। प्रद्युम्नकी पत्नी ककुद्मिनीके गर्भसे महापराक्रमशाली अनिरुद्धका जन्म हुआ। अनिरुद्धके सुभद्रा नामक पत्नीके गर्भसे वज्र नामके राजा हुए। उनका पुत्र प्रतिबाहु था। प्रतिबाहुका पुत्र चारु हुआ।

ययाति-पुत्र तुर्वसुके वंशमें वह्नि नामक पुत्रका जन्म हुआ। वह्निसे भर्ग हुआ। भर्गसे भानु, भानुसे करन्धम तथा करन्धमसे मरुत्‌की उत्पत्ति हुई।

हे रुद्र! अब मुझसे द्रुह्युवंशका वर्णन सुनें—

ययातिपुत्र द्रुह्युका पुत्र सेतु, सेतुका पुत्र आरद्ध था। आरद्धके गान्धार, गान्धारके धर्म, धर्मके घृत, घृतके दुर्गम, दुर्गमके प्रचेता हुए।

अब आप अनुवंशको सुनें—अनुका पुत्र सभानर हुआ। सभानरका कालञ्जय, कालञ्जयका सृञ्जय, सृञ्जयका पुरञ्जय, पुरञ्जयका जनमेजय, जनमेजयका पुत्र महाशाल था। इसी महात्मा महाशालका पुत्र उशीनर माना गया है। उशीनरसे राजा शिवि उत्पन्न हुए। शिविके पुत्र वृषदर्भ हुए। वृषदर्भसे महामनोज और महामनोजसे तितिक्षु और तितिक्षुसे रुषद्रथका जन्म हुआ। रुषद्रथसे हेम तथा हेमसे सुतप हुए। सुतपसे बलि और बलिसे अंग, बंग, कलिंग, आन्ध्र तथा पौण्ड्र नामके पुत्र हुए। अंगसे अनपान, अनपानसे दिविरथ, दिविरथसे धर्मरथ हुआ। धर्मरथसे रोमपाद तथा रोमपादसे चतुरंग, चतुरंगसे पृथुलाक्ष, पृथुलाक्षसे चम्प, चम्पसे हर्यङ्ग, हर्यङ्गसे भद्ररथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

भद्ररथका पुत्र बृहत्कर्मा था। उसके बृहद्भानु नामक पुत्र हुआ। बृहद्भानुका पुत्र बृहन्मना और बृहन्मनाका पुत्र जयद्रथ था। जयद्रथसे विजय और विजयसे धृति हुआ।

धृतिका पुत्र धृतव्रत था। धृतव्रतसे सत्यधर्मा हुआ। सत्यधर्माका पुत्र अधिरथ था। अधिरथके कर्ण और कर्णके वृषसेन नामक पुत्र हुआ।

हरिने पुनः कहा—हे रुद्र! इसके बाद आप पुरुवंशका वर्णन सुनें।

पुरुका पुत्र जनमेजय, जनमेजयका पुत्र नमस्यु था। नमस्युका अभय तथा अभयका सुद्यु हुआ। सुद्युके बहुगति नामक पुत्रका जन्म हुआ। उसका पुत्र संजाति था। संजातिके वत्सजाति और उसके रौद्राश्व हुआ। रौद्राश्वके ऋतेयु, स्थण्डिलेयु, कक्षेयु, कृतेयु, जलेयु और सन्ततेयु नामक श्रेष्ठ पुत्र हुए।

ऋतेयुके रतिनार नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र प्रतिरथ था। प्रतिरथका मेधातिथि, मेधातिथिका ऐनिल नामक पुत्र माना जाता है। ऐनिलका पुत्र दुष्यन्त था। शकुन्तलाके गर्भसे दुष्यन्तके भरत नामक पुत्र हुआ। भरतसे वितथ, वितथसे मन्यु, मन्युसे नरका जन्म माना गया है। नरके संकृति और संकृतिके गर्ग हुआ। गर्गसे अमन्यु, अमन्युसे शिनि नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई।

मन्युपुत्र महावीरसे उरुक्षय, उरुक्षयसे त्र्याहणि, त्र्याहणिसे व्यूहक्षत्र, व्यूहक्षत्रसे सुहोत्र, सुहोत्रसे हस्ती, अजमीढ तथा द्विमीढ नामक तीन पुत्र हुए। हस्तीका पुत्र पुरुमीढ और अजमीढका कण्व था। कण्वके मेधातिथि हुए। इन्हींसे काण्वायन नामक गोत्र ब्राह्मणोंके हुए और वे काण्वायन कहलाये।

अजमीढसे बृहदिषु नामक एक अन्य पुत्र भी हुआ था। उस पुत्रके बृहद्धनु हुआ। बृहद्धनुके बृहत्कर्मा तथा बृहत्कर्माके जयद्रथ नामका पुत्र था। जयद्रथसे विश्वजित् और विश्वजित्से सेनजित्, सेनजित्से रुचिराश्व, रुचिराश्वसे पृथुसेन, पृथुसेनसे पार तथा पारसे द्वीप और नृप हुए। नृपका पुत्र सृमर हुआ। पृथुसेनका एक अन्य पुत्र था, जिसका नाम सुकृति कहा गया है। सुकृतिके विभ्राज और विभ्राजके अश्वह नामक पुत्र हुआ। कृतिके गर्भसे उत्पन्न उस अश्वहके ब्रह्मदत्त नामका पुत्र था। उस पुत्रसे विष्वक्सेनने जन्म लिया।

द्विमीढके यवीनर, यवीनरके धृतिमान्, धृतिमान्के सत्यधृति नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र दृढनेमि था। दृढनेमिसे सुपार्श्व और सुपार्श्वसे सन्नतिका जन्म हुआ। सन्नतिका पुत्र कृत तथा कृतका पुत्र उग्रायुध था। उग्रायुधसे क्षेम्य नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सुधीर था। सुधीरसे पुरञ्जय, पुरञ्जयसे विदूरथ नामके पुत्रने जन्म लिया।

अजमीढकी नलिनी नामकी एक पत्नी थी। उसके गर्भसे राजा नीलकी उत्पत्ति हुई। नीलसे शान्ति नामका पुत्र हुआ। उसका पुत्र सुशान्ति था। सुशान्तिके पुरु हुआ। पुरुका पुत्र अर्क, अर्कका हर्यश्व, हर्यश्वका मुकुल और मुकुलके यवीर, बृहद्भानु, कम्पिल्ल, सृञ्जय एवं शरद्वान् नामक पाँच पुत्र हुए। इनमें शरद्वान् परम वैष्णव था। इस शरद्वान्के अहल्या नामकी पत्नीसे दिवोदास नामक पुत्र हुआ। उसके शतानन्द हुए। शतानन्दके सत्यधृति हुआ। सत्यधृतिके उर्वशीसे कृप तथा कृपी नामक दो संतानें हुईं। कृपीका विवाह द्रोणाचार्यसे हुआ था। उसी कृपीसे द्रोणाचार्यके अश्वत्थामा नामक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए।

दिवोदासके मित्रयु और मित्रयुके च्यवन नामका पुत्र था। च्यवनसे सुदास, सुदाससे सौदास नामक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सहदेव था। सहदेवसे सोमक, सोमकसे जन्तु (जह्नु) और पृषत नामक महान् पुत्र उत्पन्न हुआ। पृषतसे द्रुपद, द्रुपदसे धृष्टद्युम्नकी उत्पत्ति हुई। धृष्टद्युम्नसे धृष्टकेतु हुआ।

अजमीढके एक ऋक्ष नामका पुत्र था। उस ऋक्षसे संवरण, संवरणसे कुरुका जन्म हुआ। कुरुके सुधनु, परीक्षित् और जह्नु नामके तीन पुत्र थे। सुधनुसे सुहोत्र तथा सुहोत्रसे च्यवन, च्यवनसे कृतक तथा उपरिचर वसु हुए। वसुके बृहद्रथ, प्रत्यग्र और सत्य आदि अनेक पुत्र थे। बृहद्रथसे कुशाग्र, कुशाग्रसे ऋषभ, ऋषभसे पुष्पवान् तथा उस पुष्पवान्से सत्यहित नामका राजा हुआ। सत्यहितसे सुधन्वा, सुधन्वासे जह्नुकी उत्पत्ति हुई।

बृहद्रथका एक अन्य पुत्र था, जिसका नाम जरासन्ध था। उस जरासन्धसे सहदेव, सहदेवसे सोमापि, सोमापिसे श्रुतवान्, भीमसेन, उग्रसेन, श्रुतसेन तथा जनमेजय हुए। जह्नुके सुरथ नामक पुत्र था। सुरथके विदूरथ, विदूरथके सार्वभौम, सार्वभौमके जयसेन तथा उस जयसेनसे

अवधीत हुआ। उस अवधीतसे अयुतायु, अयुतायुसे अक्रोधन, अक्रोधनसे अतिथि, अतिथिसे ऋक्ष, ऋक्षसे भीमसेन, भीमसेनसे दिलीप, दिलीपसे प्रतीप, प्रतीपसे देवापि, शन्तनु और बाह्लीक नामके राजा तीन सहोदर भ्राता हुए।

बाह्लीकसे सोमदत्त हुआ। सोमदत्तसे भूरि और भूरिसे भूरिश्रवाकी उत्पत्ति हुई। इस भूरिश्रवाका पुत्र शल था। गङ्गाके गर्भसे शन्तनुके महाप्रतापी धर्मपरायण पुत्र भीष्म हुए। उस शन्तनुकी दूसरी पत्नी सत्यवतीसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक अन्य दो पुत्रोंका जन्म हुआ। विचित्रवीर्यकी दो पत्नियाँ थीं, जिनका अम्बिका तथा अम्बालिका नाम था। व्यासजीने अम्बिकासे धृतराष्ट्रको, अम्बालिकासे पाण्डुको तथा उनकी दासीसे विदुरजीको पैदा किया।

धृतराष्ट्रने गान्धारीसे दुर्योधनादि सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया। पाण्डुसे युधिष्ठिर आदि पाँच पुत्र हुए। द्रौपदीसे क्रमशः प्रतिविन्ध्य, श्रुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतकर्मा नामक पाँच पुत्रोंका जन्म हुआ। यौधेयी, हिडिम्बा, कौशी, सुभद्रिका (सुभद्रा), विजया तथा रेणुमती नामकी पत्नियाँ भी थीं। इनके गर्भसे देवक, घटोत्कच, अभिमन्यु, सर्वग, सुहोत्र और निरमित्र नामक पुत्र हुए। अभिमन्युके परीक्षित् तथा परीक्षित्के जनमेजय नामका पुत्र हुआ। (अध्याय १३९-१४०)

भविष्यके राजवंशका वर्णन

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! परीक्षित्के पुत्र जनमेजयके पश्चात् इस चन्द्रवंशमें शतानीक, अश्वमेधदत्त, अधिसोमक, कृष्ण, अनिरुद्ध, उष्ण, चित्ररथ, शुचिद्रथ, वृष्णिमान्, सुषेण, सुनीथक, नृचक्षु, मुखावाण, मेधावी, नृपञ्जय, पारिप्लव, सुनय, मेधावी, नृपञ्जय, बृहद्रथ, हरि, तिग्म, शतानीक, सुदानक, उदान, अह्निनर, दण्डपाणि, निमित्तक, क्षेमक तथा शूद्रक नामक राजा हुए। ये सभी यथाक्रम अपने पूर्ववर्ती राजाके पुत्र थे।

हे रुद्र! अब मैं इक्ष्वाकुवंशीय बृहद्बलके उस वंशका वर्णन करता हूँ, जिसे बृहद्बलवंशीय कहा गया है। यथा— बृहद्बलसे उरुक्षय उसके बाद वत्सव्यूह हुआ। वत्सव्यूहसे सूर्य और उसके पुत्र सहदेव हुए। इसके बाद बृहदश्व, भानुरथ, प्रतीच्य, प्रतीतक, मनुदेव, सुनक्षत्र, किन्नर और अन्तरिक्षक हुए। तत्पश्चात् सुवर्ण, कृतजित् और धार्मिक बृहद्भ्राज, हुए। तदनन्तर कृतंजय, धनंजय, संजय, शाक्य, शुद्धोदन, बाहुल, सेनजित्, क्षुद्रक, समित्र, कुडव और सुमित्र हुए।

अब मगधवंशीय राजाओंको सुनें—

मगध वंशमें जरासन्ध, सहदेव, सोमापि, श्रुतश्रवा, अयुतायु, निरमित्र, सुक्षत्र, बहुकर्मक, श्रुतञ्जय, सेनजित्, भूरि, शुचि, क्षेम्य, सुव्रत, धर्म, श्मश्रुल तथा दृढसेन आदि राजा हुए।

इसी प्रकार आगे सुमति, सुबल, नीत, सत्यजित्, विश्वजित् तथा इषुंजय—ये सभी बृहद्रथवंशमें उत्पन्न होनेसे बार्हद्रथ नामसे जाने जाते हैं। इसके बाद जितने भी राजा होंगे, वे सभी अधार्मिक और शूद्र होंगे।

स्वर्गादि समस्त लोकोंके रचयिता साक्षात् अव्यय भगवान् नारायण हैं। वे ही सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्ता हैं। नैमित्तिक, प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक भेदसे प्रलय तीन प्रकारका होता है। प्रलयकाल आनेपर पृथिवी जलमें, जल तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश अहंकारमें, अहंकार बुद्धिमें, बुद्धि जीवमें और वह जीवात्मा अव्यक्त परब्रह्म परमात्मामें विलीन हो जाता है। आत्मा ही परमेश्वर है, वही विष्णु है और वही नारायण है। वही देव एकमात्र नित्य है, अविनाशी है, उसके अतिरिक्त स्वर्गादि समस्त संसार नाशवान् है। इसी नश्वरताके कारण ये सभी राजा मृत्युको प्राप्त हुए हैं। अतः मनुष्यको पापकर्म छोड़कर अविनाशी धर्माचरणमें अनुरक्त रहना चाहिये, जिससे निष्पाप होकर वह भगवान् हरिको प्राप्त कर सके। (अध्याय १४१)

भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंकी कथा तथा पतिव्रता-माहात्म्यमें ब्राह्मणपत्नी, अनसूया एवं भगवती सीताके पातिव्रतका आख्यान

ब्रह्माजीने कहा—वेद आदि धर्मोंकी रक्षाके लिये और आसुरी धर्मके विनाशके लिये सर्वशक्तिमान् भगवान् हरिने अवतार धारण किया और इन सूर्य-चन्द्रादिके वंशोंका पालन-पोषण किया। ये अजन्मा हरि ही मत्स्य, कूर्म आदि रूपोंमें अवतरित होते हैं।

मत्स्यका अवतार लेकर भगवान् विष्णुने युद्धकण्टक हयग्रीव नामक दैत्यका विनाश किया और वेदोंको पुनः पृथिवीपर लाकर मनु आदिकी रक्षा की। समुद्र-मन्थनके समय देवोंका हितसाधन करनेके लिये कूर्म (कच्छप)-का अवतार ग्रहण करके उन्होंने मन्दराचलको धारण किया। क्षीरसागरके मन्थनके समय अमृतसे परिपूर्ण कमण्डलुको लिये हुए धन्वन्तरि वैद्यके रूपमें समुद्रसे वे ही प्रकट हुए। उन्हींके द्वारा सुश्रुतको अष्टाङ्ग आयुर्वेदकी शिक्षा दी गयी थी। उन श्रीहरिने स्त्री (मोहिनी)-का रूप धारण करके देवोंको अमृतका पान कराया।

वराहका अवतार लेकर उन्होंने हिरण्याक्षको मारा। उसके अधिकारसे पृथिवीको छीनकर पुनः स्थापित किया और देवताओंकी रक्षा की। तदनन्तर नरसिंहरूपमें इन्होंने हिरण्यकशिपु तथा अन्य दैत्योंका विनाशकर वैदिकधर्मका पालन किया। तत्पश्चात् इस सम्पूर्ण संसारके स्वामी उन विष्णुने जमदग्निसे परशुरामका अवतार लेकर इक्कीस बार पृथिवीको क्षत्रियजातिसे रहित किया था।[1] कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य सहस्रार्जुनको युद्धमें मार करके इन्हीं भगवान् परशुरामने यज्ञानुष्ठानमें उसके सम्पूर्ण राज्यका आधिपत्य महर्षि कश्यपको सौंप दिया और स्वयं महाबाहु (परशुराम) महेन्द्रगिरिपर जाकर तपमें स्थित हो गये।

इसके बाद दुष्टोंका मर्दन करनेवाले भगवान् विष्णु राम आदि चार स्वरूपोंमें राजा दशरथके पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए। जिनके नाम राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं। रामकी पत्नी जानकी हुईं। पिताके वचनको सत्य करनेके लिये तथा माता (कैकेयी)-के हितकी रक्षा करते हुए रामने अयोध्याका राजवैभव त्यागकर शृंगवेरपुर, चित्रकूट तथा दण्डकारण्यमें निवास किया। तदनन्तर वहींपर शूर्पणखाकी नाक कटवाकर उसके भाई खर तथा दूषण नामक दो राक्षसोंको मारा। तत्पश्चात् जानकीका अपहरण करनेवाले दैत्याधिपति रावणका वधकर उसके छोटे भाई विभीषणको लङ्कापुरीमें राक्षसोंके राजाके रूपमें अभिषिक्त किया। उसके बाद अपने मुख्य सहयोगी सुग्रीव तथा हनुमानादिके साथ पुष्पक विमानपर आरूढ होकर पतिपरायणा सीता एवं लक्ष्मणके साथ वे अपनी पुरी अयोध्या आ गये। यहाँ उन्होंने राज्यसिंहासन प्राप्तकर देवताओं, ऋषियों, ब्राह्मणों तथा प्रजाका पालन किया।

उन्होंने धर्मकी भलीभाँति रक्षा की। अश्वमेधादि अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया। भगवती सीताने राजा रामके साथ सुखपूर्वक रमण किया। यद्यपि सीता रावणके घरमें रहीं, फिर भी उन्होंने रावणको अंगीकार नहीं किया और सर्वदा मन, वचन तथा कर्मसे राममें ही अनुरक्त रहीं। वे सीता तो अनसूयाके समान पतिव्रता थीं।

ब्रह्माजीने पुनः कहा—अब मैं पतिव्रता स्त्रीका माहात्म्य कह रहा हूँ, आप सुनें।

पुराने समयमें प्रतिष्ठानपुरमें कौशिक नामका एक कुष्ठरोगी ब्राह्मण रहता था। उस ब्राह्मणकी पत्नी अपने पति-की देवताके समान ही सेवा-शुश्रूषा करती थी। पतिके द्वारा तिरस्कार मिलनेपर भी वह पतिव्रता पतिको देवता-रूप ही मानती थी। एक बार पतिके द्वारा कहे जानेपर वेश्याको शुल्क देनेके लिये अधिकतम धन साथ लेकर वह उन्हें कन्धेपर बैठाकर वेश्याके घर पहुँचाने निकल पड़ी।

मार्गमें माण्डव्य ऋषि थे। यद्यपि वे ऋषि परम तपस्वी महात्मा थे, तथापि उन्हें चोर समझकर राजदण्डके रूपमें लोहेके लम्बे शङ्कुपर बिठा दिया गया था। अतः शरीरके नीचेके छिद्रसे ऊपर सिरके छिद्र ब्रह्मरन्ध्रतक शरीरके भीतर-ही-भीतर लौह शङ्कुके प्रवेशके कारण माण्डव्य ऋषिका असह्य तीव्र वेदनासे ग्रस्त होना स्वाभाविक था। इसीलिये माण्डव्य ऋषि वेदनाके अनुभवसे स्वयंको बचानेकी दृष्टिसे समाधिस्थ हो गये थे।

कुष्ठ-व्याधियुक्त ब्राह्मण कौशिककी पतिव्रता पत्नी

१. यहाँ क्षत्रिय जातिसे रहित करनेका तात्पर्य इतना ही है कि श्रीपरशुरामने क्षत्रियोंके दर्पका मर्दन किया और उनकी कर्तव्यविमुखताको नष्ट किया।

रातमें ही अपने पतिकी इच्छाके अनुसार वेश्याके यहाँ जा रही थी, इसलिये अन्धकार रहनेके कारण अपनी पत्नीके कन्धेपर बैठे कौशिकने माण्डव्य ऋषिको नहीं देखा और अपना पाँव स्वभावत: हिलाया-डुलाया। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कौशिकके पाँवोंसे माण्डव्य ऋषि आहत हो गये और उनकी समाधि टूट गयी। समाधि-भंग होनेसे उन्हें असह्य वेदना होने लगी। इससे माण्डव्य ऋषिका क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। अत: क्रोधवश उन्होंने शाप देते हुए

कहा—जिसने मेरे ऊपर यह अपना पैर चलाया है, उसकी सूर्योदय होते ही मृत्यु हो जायगी। यह सुनकर उस ब्राह्मण-पत्नीने कहा कि (यदि ऐसी बात है तो) अब सूर्योदय ही नहीं होगा। इसके बाद सूर्योदय न होनेसे बहुत वर्षोंतक निरन्तर रात्रि ही छायी रही। जिससे देवता भी भयभीत हो गये।

देवताओंने ब्रह्माकी शरण ली। ब्रह्माने उन देवोंसे कहा कि पतिव्रताके इस तेजसे तो तपस्वियोंके तेजका भी ह्रास हो रहा है। पातिव्रत-धर्मके माहात्म्यसे सूर्यदेव उदित नहीं हो रहे हैं। उनके उदय न होनेसे मानवों और आप सभीको यह हानि उठानी पड़ रही है। अत: सूर्योदयकी कामनासे आप सब अत्रिमुनिकी धर्म-पत्नी तपस्विनी पतिपरायणा अनसूयाको प्रसन्न करें। वे ही सूर्योदय कराके पतिव्रता ब्राह्मणीके पतिको भी जीवित कर सकती हैं। ब्रह्माजीके कथनानुसार अनसूयाकी शरणमें जाकर देवताओंने उनकी प्रार्थना की। देवताओंकी प्रार्थनासे अनसूया प्रसन्न हो गयीं। अपने तप:प्रभावसे सूर्योदय कराके उन्होंने ब्राह्मणीके पति कौशिकको जीवित कर दिया। इन महातपस्विनी पतिव्रताको अपेक्षा सीता और अधिक पतिपरायणा थीं। (अध्याय १४२)

रामचरितवर्णन (रामायणकी कथा)

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं रामायणका वर्णन करता हूँ, जिसके श्रवणमात्रसे समस्त पापोंका विनाश हो जाता है।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मासे मरीचि, मरीचिसे कश्यप, कश्यपसे सूर्य, सूर्यसे वैवस्वत मनु हुए। वैवस्वत मनुसे इक्ष्वाकु हुए। इन्हीं इक्ष्वाकुके वंशमें रघुका जन्म हुआ। रघुके पुत्र अजसे दशरथ नामक महाप्रतापी राजाने जन्म लिया। उनके महान् बल और पराक्रमवाले चार पुत्र हुए। कौसल्यासे राम, कैकेयीसे भरत और सुमित्रासे लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नका जन्म हुआ।

माता-पिताके भक्त श्रीरामने महामुनि विश्वामित्रसे अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा प्राप्तकर ताड़का नामक यक्षिणीका विनाश किया। विश्वामित्रके यज्ञमें बलशाली रामके द्वारा ही सुबाहु नामक राक्षस मारा गया। जनकराजके यज्ञस्थलमें पहुँचकर उन्होंने जानकीका पाणिग्रहण किया। वीर लक्ष्मणने ऊर्मिला, भरतने कुशध्वजकी पुत्री माण्डवी तथा शत्रुघ्नने कीर्तिमतीका पाणिग्रहण किया, ये महाराज कुशध्वजकी पुत्री थीं।

विवाहके पश्चात् अयोध्यामें जाकर चारों भाई पिताके साथ रहने लगे। भरत और शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित्‌के यहाँ चले गये। उन दोनोंके ननिहाल जानेके बाद नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथ रामको राज्य देनेके लिये उद्यत हुए। उसी समय कैकेयीने रामको चौदह वर्ष वनमें रहनेका दशरथजीसे वर माँग लिया। अत: लक्ष्मण और सीतासहित मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम पिताके हितकी रक्षाके लिये राज्यको तृणवत् त्यागकर शृंगवेरपुर चले गये। वहाँपर रथका भी परित्यागकर वे सभी प्रयाग गये और वहाँसे चित्रकूटमें जाकर रहने लगे।

इधर रामके वियोगसे दु:खित महाराज दशरथ शरीरका

परित्याग कर स्वर्ग पधार गये। मामाके घरसे आकर भरतने पिताका अन्तिम संस्कार किया। तदनन्तर वे दल-बलके साथ रामके पास पहुँचे। उन्होंने विनम्रतापूर्वक अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामसे कहा—'हे महामते! आप अयोध्या लौट चलें और वहाँका राज्य करें।' रामने राज्यके प्रति अनिच्छा प्रकट कर दी और भरतको अपनी पादुका देकर राज्यकी रक्षाके लिये वापस अयोध्या भेज दिया। भरत वहाँसे लौटकर रामके प्रतिनिधिरूपमें राज्यकार्य देखने लगे। तपस्वी भरतने नन्दिग्राममें ही रहकर राज्यका संचालन किया, वे अयोध्यामें नहीं गये।

राम भी चित्रकूट छोड़कर अत्रिमुनिके आश्रममें चले आये। तदनन्तर वहाँ उन्होंने सुतीक्ष्ण और अगस्त्यमुनिके आश्रममें जाकर उन्हें प्रणाम किया और उसके बाद वे दण्डकारण्य चले गये। वहाँ उन सभीका भक्षण करनेके लिये शूर्पणखा नामकी एक राक्षसी आ धमकी। अत: रामचन्द्रने नाक-कान कटवाकर उस राक्षसीको वहाँसे भगा दिया। उसने जाकर खर-दूषण तथा त्रिशिरा नामके राक्षसोंको युद्धके लिये प्रेरित किया। चौदह हजार राक्षसोंकी सेना लेकर उन लोगोंने रामपर आक्रमण कर दिया। रामने अपने बाणोंसे उन राक्षसोंको यमपुर भेज दिया। राक्षसी शूर्पणखासे प्रेरित रावण सीताका हरण करनेके लिये वहाँ त्रिदण्डी संन्यासीका वेश धारणकर मृगरूपधारी मारीचकी अगुवाईमें आ पहुँचा। मृगका चर्म प्राप्त करनेके लिये सीतासे प्रेरित रामने मारीचको मार डाला। मरते समय उसने 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' ऐसा कहा।

इसके बाद सीताकी सुरक्षामें लगे लक्ष्मण भी सीताके कहनेपर वहाँ जा पहुँचे। लक्ष्मणको देखकर रामने कहा—यह निश्चित ही राक्षसी माया है। सीताका हरण अवश्य हो गया होगा। इसी बीच बली रावण अवसर पाकर अङ्कमें सीताको लेकर, जटायुको क्षत-विक्षतकर लङ्का चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने राक्षसियोंकी निगरानीमें सीताको अशोक-वृक्षकी छायामें ठहरा दिया।

रामने आकर पर्णशालाको सूनी देखा। वे अत्यन्त दु:खित हो उठे। उसके बाद वे सीताकी खोजमें निकल पड़े। मार्गमें उन्होंने जटायुका अन्तिम संस्कार किया और उसीके कहनेसे वे दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। उस दिशामें आगे बढ़नेपर सुग्रीवके साथ रामकी मित्रता हुई। उन्होंने अपने तीक्ष्ण बाणसे सात तालवृक्षोंका भेदन किया तथा बालीको मारकर किष्किन्धामें रहनेवाले वानरोंके राजाके रूपमें सुग्रीवको अभिषिक्त किया और स्वयं जाकर ऋष्यमूक पर्वतपर निवास करने लगे।

सुग्रीवने पर्वताकार शरीरवाले उत्साहसे भरे हुए वानरोंको सीताकी खोजमें पूर्वादि दिशाओंमें भेजा। वे सभी वानर जो पूर्व, पश्चिम और उत्तरकी दिशाओंमें गये थे, खाली हाथ वापस लौट आये, किंतु जो लोग दक्षिण दिशामें गये थे उन्होंने वन, पर्वत, द्वीप तथा नदियोंके तटोंको खोज डाला; पर जानकीका कुछ भी पता न चल सका। अन्तमें हताश होकर उन सबने मरनेका निश्चय कर लिया। सम्पातिके वचनसे सीताकी जानकारी प्राप्त करके कपिश्रेष्ठ हनुमान्‌जीने शतयोजन (चार सौ कोस) विस्तृत समुद्रको लाँघकर लङ्कामें अशोकवाटिकाके अन्दर रह रही सीताका दर्शन किया, जिनका तिरस्कार राक्षसियाँ और रावण स्वयं करता था। इन सबके द्वारा बराबर यह कहा जा रहा था कि तुम रावणकी पत्नी बन जाओ, किंतु वे हृदयमें सदैव रामका ही चिन्तन करती थीं।

हनुमान्‌ने (ऐसी दयनीय स्थितिमें रह रही) सीताको कौसल्यानन्दन रामके द्वारा दी गयी अंगूठी देकर अपना परिचय देते हुए कहा कि 'हे मैथिलि! मैं श्रीरामका दूत हूँ। आप अब दु:ख न करें। आप मुझे कोई अपना चिह्नविशेष दें, जिससे भगवान् श्रीराम आपको समझ सकें।' हनुमान्‌का यह वचन सुनकर सीताने अपना चूडामणि उतारकर दे दिया और कहा कि 'हे कपिराज! राम जितना ही शीघ्र हो सके उतना ही शीघ्र मुझको यहाँसे ले चलें।' ऐसा आप उनसे कहियेगा। हनुमान्‌ने कहा कि ऐसा ही होगा। तदनन्तर वे उस दिव्य अशोक वनको विध्वंस करने लगे। उसे विनष्टकर उन्होंने रावणके पुत्र अक्ष तथा अन्य राक्षसोंको मार डाला और स्वयं मेघनादके पाशमें बन्दी भी बन गये। रावणको देखकर हनुमान्‌ने कहा कि हे रावण! मैं श्रीरामका दूत हनुमान् हूँ। आप रामको सीता लौटा दें। यह सुनकर रावण क्रुद्ध हो उठा। उसने उनकी पूँछमें आग लगवा दी।

महाबली हनुमान्‌ने उस जलती हुई पूँछसे लंकाको जला डाला। वे पुनः रामके पास लौट आये और बताया कि मैंने सीता माताको देखा, तदनन्तर हनुमान्‌जीने सीताद्वारा दिया गया चूडामणि उन्हें दे दिया। इसके बाद सुग्रीव, हनुमान्, अंगद तथा लक्ष्मणके साथ राम लङ्कापुरीमें जा पहुँचे। रावणका भाई विभीषण भी रामकी शरणमें आ गया। श्रीरामने उसे लङ्काके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। रामने नलके द्वारा सेतुका निर्माण कराकर समुद्रको पार किया था। (समुद्रके तटपर) सुवेल पर्वतपर उपस्थित होकर उन्होंने लङ्कापुरीको देखा।

तदनन्तर नील, अंगद, नलादि मुख्य वानरों तथा धूम्राक्ष, वीरेन्द्र तथा ऋक्षपति जाम्बवान्, मैन्द, द्विविद आदि मुख्य वीरोंने लङ्कापुरीको नष्ट कर डाला। विशाल शरीरवाले काले-काले पहाड़के समान राक्षसोंको अपनी वानरी सेनाके साथ राम-लक्ष्मणने मार गिराया। विद्युज्जिह्व, धूम्राक्ष, देवान्तक, नरान्तक, महोदर, महापार्श्व, महाबल, अतिकाय, कुम्भ, निकुम्भ, मत्त, मकराक्ष, अकम्पन, प्रहस्त, उन्मत्त, कुम्भकर्ण तथा मेघनादको अस्त्रादिसे राम-लक्ष्मणने काट डाला। तदनन्तर उन महापराक्रमी श्रीरामने बीस भुजाओंके समूहको छिन्न-भिन्न करके रावणको भी धराशायी कर दिया।

उसके बाद अग्निमें प्रविष्ट होकर अपनी शुद्धताको प्रमाणित की हुई सीताके साथ लक्ष्मण एवं वानरोंसे युक्त राम पुष्पक विमानमें बैठकर अपनी श्रेष्ठतम नगरी अयोध्या लौट आये। वहाँपर राज्य-सिंहासन प्राप्तकर उन्होंने प्रजाका पुत्रवत् पालन करते हुए राज्य किया। दस अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान करके रामने गयातीर्थमें पितरोंको विधिवत् पिण्डदान दिया और ब्राह्मणोंको विभिन्न प्रकारका दान देकर कुश और लवको राज्यसिंहासन सौंप दिया।

रामने ग्यारह हजार वर्षतक राज्य किया।[1] शत्रुघ्नने लवण नामक दैत्यका विनाश किया। भरतके द्वारा शैलूष नामक गन्धर्व मारे गये। इसके पश्चात् उन सभीने अगस्त्यादि मुनियोंको प्रणाम करके उनसे राक्षसोंकी उत्पत्तिकी कथा सुनी। तदनन्तर अपने अवतारका प्रयोजन पूर्ण करके भगवान् श्रीराम अयोध्यामें रहनेवाली प्रजाके साथ स्वर्गलोकको चले गये। (अध्याय १४३)

हरिवंशवर्णन (श्रीकृष्णकथा)

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं हरिवंशका वर्णन करूँगा, जो भगवान् कृष्णके माहात्म्यसे परिपूर्ण होनेके कारण श्रेष्ठतम है।

पृथिवीपर धर्म आदिकी रक्षा और अधर्मादिके विनाशके लिये वसुदेव तथा देवकीसे कृष्ण और बलरामका प्रादुर्भाव हुआ। जन्मके कुछ ही दिन बाद कृष्णने पूतनाके स्तनोंको दृढतापूर्वक पीकर उसे मृत्युके पास पहुँचा दिया था। तदनन्तर शकट (छकड़े)-को बालक्रीडामें उलटकर सभीको विस्मित करते हुए इन्होंने यमलार्जुन-उद्धार, कालियनाग-दमन, धेनुकासुर-वध, गोवर्धन-धारण आदि अनेक लीलाएँ कीं और इन्द्रद्वारा पूजित होकर पृथिवीको भारसे विमुक्त किया तथा अर्जुनकी रक्षाके लिये प्रतिज्ञा की।

इनके द्वारा अरिष्टासुर आदि अनेक बलवान् शत्रु मारे गये। इन्होंने केशी नामक दैत्यका वध किया तथा गोपोंको संतुष्ट किया। उसके बाद चाणूर और मुष्टिक नामक मल्ल इनके द्वारा ही पराजित हुए। ऊँचे मंचपर अवस्थित कंसको वहाँसे नीचे पटककर इन्होंने ही मारा था।

श्रीकृष्णकी रुक्मिणी, सत्यभामा आदि आठ प्रधान पत्नियाँ थीं। इनके अतिरिक्त महात्मा श्रीकृष्णकी सोलह हजार अन्य स्त्रियाँ थीं। उन स्त्रियोंसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंकी संख्या सैकड़ों-हजारोंमें थी। रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न उत्पन्न हुए, जिन्होंने शम्बरासुरका वध किया था। इनके पुत्र अनिरुद्ध हुए, जो बाणासुरकी पुत्री उषाके पति थे। अनिरुद्धके विवाहमें कृष्ण और शङ्करका महाभयंकर युद्ध हुआ और इसी युद्धमें हजार भुजाओंवाले बाणासुरको दो भुजाओंको छोड़कर शेष सभी भुजाएँ कृष्णके द्वारा काट डाली गयीं।

नरकासुरका वध इन्हीं महात्मा श्रीकृष्णने किया था।

१. एकादशसहस्राणि रामो राज्यमकारयत्। (ग०पु० १४३।५०)

नन्दनवनसे बलात् पारिजात-वृक्ष सत्यभामाके लिये ये ही उखाड़कर लाये थे। बल नामक दैत्य, शिशुपाल नामक राजा तथा द्विविद नामक बन्दरका वध इन्हींके द्वारा हुआ था।

अनिरुद्धसे वज्र नामका पुत्र हुआ। कृष्णके स्वर्गारोहणके पश्चात् वही इस वंशका राजा बना था। सान्दीपनि नामक मुनि कृष्णके गुरु थे। कृष्णने ही गुरु सान्दीपनिकी पुत्रप्राप्तिकी अभिलाषाको पूर्ण किया था। मथुरामें उग्रसेन और देवताओंकी रक्षा इन्होंने ही की थी। (अध्याय १४४)

महाभारतकी कथा एवं बुद्ध आदि अवतारोंकी कथाका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं महाभारतके युद्धकी कथाका वर्णन करूँगा, जो पृथिवीपर बढ़े हुए अत्याचारके भारको उतारनेके लिये हुआ था, जिसकी योजना युधिष्ठिरादि पाण्डवोंकी रक्षाके लिये तत्पर कृष्णने स्वयं की थी।

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मासे अत्रि, अत्रिसे सोम, सोमसे बुध हुए। बुधने इला नामक अपनी पत्नीसे पुरूरवाको उत्पन्न किया। पुरूरवासे आयु, आयुसे ययाति और ययातिके वंशमें भरत, कुरु तथा शन्तनु हुए। राजा शन्तनुकी पत्नी गङ्गासे भीष्म हुए। भीष्म सर्वगुणसम्पन्न तथा ब्रह्मविद्याके पारङ्गत विद्वान् थे।

शन्तनुकी सत्यवती नामक एक दूसरी पत्नी थी। उस पत्नीके दो पुत्र हुए, जिनका नाम चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य था। चित्रांगद नामवाले गन्धर्वके द्वारा युद्धमें चित्रांगद मार डाला गया। विचित्रवीर्यका विवाह काशिराजकी पुत्री अम्बिका और अम्बालिकाके साथ हुआ। विचित्रवीर्य भी नि:संतान ही मर गये थे। अत: व्याससे उनके दो क्षेत्रज पुत्रों—अम्बिकाके गर्भसे धृतराष्ट्र तथा अम्बालिकाके गर्भसे पाण्डुका जन्म हुआ। उन्हीं व्यासके द्वारा दासीके गर्भसे विदुरका जन्म हुआ। धृतराष्ट्रके गान्धारीसे सौ पराक्रमी पुत्र हुए, जिनमें दुर्योधन सबसे बड़ा था। पाण्डुपत्नी कुन्ती और माद्रीसे पाँच पुत्रोंका जन्म हुआ। युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—ये पाँचों पुत्र बड़े ही बलवान् और पराक्रमशाली थे।

दैववशात् कौरव और पाण्डवोंमें वैरभाव उत्पन्न हो गया। उद्धत स्वभाववाले दुर्योधनद्वारा पाण्डवजन बहुत ही सताये गये। लाक्षागृहमें उन्हें विश्वासघातसे जलाया गया, किंतु वे अपनी बुद्धिमत्तासे बच गये। उसके बाद उन लोगोंने एकचक्रा नामक पुरीमें जाकर एक ब्राह्मणके घरमें शरण ली। वहाँ रहते हुए उन सभीने बक नामक राक्षसका संहार किया। तदनन्तर पाञ्चाल नगरमें हो रहे द्रौपदीके स्वयंवरको जानकर वे सभी वहाँ पहुँचे। वहाँ अपने पराक्रमका परिचय देकर उन पाण्डवोंने द्रौपदीको पत्नीके रूपमें प्राप्त किया।

इसके बाद द्रोणाचार्य और भीष्मकी अनुमतिसे धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको अपने पास बुला लिया और आधा राज्य उन्हें दे दिया। आधा राज्य प्राप्त करनेके पश्चात् इन्द्रप्रस्थ नामक एक सुन्दर नगरीमें रहकर वे राज्य करने लगे। उन तपस्वी पाण्डवोंने वहाँपर एक सभामण्डपका निर्माण करके राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान किया।

तत्पश्चात् मुरारि भगवान् वासुदेवकी अनुमतिसे ही द्वारकापुरीमें जाकर अर्जुनने उनकी बहन सुभद्राका पाणिग्रहण किया। उन्हें अग्निदेवसे नन्दिघोष नामक दिव्य रथ, तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध गाण्डीव नामका श्रेष्ठतम दिव्य धनुष, अविनाशी बाण तथा अभेद्य कवच प्राप्त हुआ। उसी धनुषसे कृष्णके सहचर वीर अर्जुनने अग्निको खाण्डव-वनमें संतुष्ट किया था। दिग्विजयमें देश-देशान्तरके राजाओंको जीतकर उनसे प्राप्त रत्नराशि लाकर उन्होंने अपने नीति-परायण ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरको सौंप दी।

भाइयोंके साथ धर्मराज युधिष्ठिर कर्ण, दु:शासन और शकुनिके मतमें स्थित पापी दुर्योधनके द्वारा द्यूतक्रीडाके मायाजालमें जीत लिये गये। उसके बाद बारह वर्षोंतक उन्हें वनमें महान् कष्ट उठाना पड़ा। तदनन्तर धौम्य ऋषि तथा अन्य मुनियोंके साथ द्रौपदीसहित वे पाँचों पाण्डव विराट्-नगर गये और गुप्तरूपसे वहाँ रहने लगे। एक वर्षतक वहाँ रहकर दुर्योधनद्वारा हरण की जाती हुई गायोंका प्रत्याहरण करके अर्थात् वापस लौटाकर वे अपने

राज्यमें जा पहुँचे। सम्मानपूर्वक दुर्योधनसे उन्होंने अपने आधे राज्यके हिस्सेके रूपमें पाँच गाँव माँगे, किंतु दुर्योधनसे वे भी प्राप्त न हो सके। अतः कुरुक्षेत्रके मैदानमें उन वीरोंको युद्ध करना पड़ा। उसमें पाण्डवोंकी ओर सात दिव्य अक्षौहिणी सेना थी और दुर्योधनादि ग्यारह अक्षौहिणी सेनासे युक्त थे। यह युद्ध देवासुर-संग्रामके समान महाभयंकर हुआ था।

सबसे पहले दुर्योधनकी सेनाके सेनापति भीष्म हुए और पाण्डवोंका सेनापति शिखण्डी बना। उन दोनोंके बीचमें शस्त्र-से-शस्त्र तथा बाण-से-बाण भिड़ गये। दस दिनोंतक महाभयंकर युद्ध होता रहा। शिखण्डी और अर्जुनके सैकड़ों बाणोंसे बिंधकर भीष्म धराशायी हो गये, किंतु इच्छामृत्युका वरदान होनेसे भीष्मकी उस समय मृत्यु नहीं हुई। जब सूर्य उत्तरायणमें आ गये तब धर्म-सम्बन्धित विभिन्न उपदेश देकर उन्होंने अपने पितरोंका तर्पण किया और भगवान् गदाधरका ध्यान करते हुए अन्तमें वे उस परमपदको प्राप्त हुए, जहाँपर आनन्द-ही-आनन्द है और जो निर्मल आत्माओंके लिये मुक्तिका स्थान है।

तदनन्तर सेनापतिके पदपर द्रोणाचार्य आसीन हुए। उनका युद्ध पाण्डव-सेनापति धृष्टद्युम्नके साथ हुआ। यह परम दारुण युद्ध पाँच दिनोंतक चलता रहा। जितने भी राजा इस युद्धमें सम्मिलित हुए, वे सभी अर्जुनके द्वारा मारे गये। पुत्रशोकका समाचार सुनकर द्रोणाचार्य उस शोकके सागरमें डूबकर मर गये।

इसके बाद वीर अर्जुनसे लड़नेके लिये कर्ण युद्धभूमिमें आया। दो दिनोंतक महाभयानक युद्ध करके वह भी उनके द्वारा प्रयुक्त अस्त्रोंसे न बच सका। तत्पश्चात् शल्य धर्मराजसे युद्ध करनेके लिये गया। अपराह्णकाल होनेके पूर्व ही धर्मराजके तीक्ष्ण बाणोंसे वह भी चल बसा।

तदनन्तर कालान्तक यमराजके समान क्रुद्ध दुर्योधन गदा लेकर भीमसेनको मारनेके लिये दौड़ा, किंतु वीर भीमसेनने अपनी गदासे उसे गिरा दिया। उसके बाद द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने रात्रिमें सोयी हुई पाण्डवोंकी सेनापर आक्रमण कर दिया। अपने पिताके वधका स्मरण करके उसने बड़ी ही बहादुरीसे बहुतोंको मौतके घाट उतार दिया। धृष्टद्युम्नका वध करके उसने द्रौपदीके पुत्रोंको भी मार डाला। इस प्रकार पुत्रोंका वध होनेसे दुःखित एवं रोती हुई द्रौपदीको देखकर अर्जुनने अश्वत्थामाको परास्तकर ऐषिक नामक अस्त्रसे उसकी शिरोमणिको निकाल लिया।

उसके बाद अत्यन्त शोकसन्तप्त स्त्रीजनोंको आश्वस्त करके धर्मराज युधिष्ठिरने स्नान करके देवता और पितृजनोंका तर्पण किया। तत्पश्चात् भीष्मके द्वारा दिये गये सदुपदेशोंसे आश्वस्त महात्मा युधिष्ठिर पुनः राज्यकार्यमें लग गये। अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करके उन्होंने भगवान् विष्णुका पूजन किया तथा विधिवत् ब्राह्मणोंको दक्षिणादि देकर संतुष्ट किया। साम्बके पेटसे निकले हुए मूसलके द्वारा यदुवंशियोंके विनाशका समाचार सुनकर उन्होंने राज्यसिंहासनपर अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्को बैठाकर भीमादि अपने सभी भाइयोंसहित विष्णुसहस्रनामका जप करते हुए स्वयं भी स्वर्गके मार्गका अनुगमन किया।

वासुदेव कृष्ण असुरोंको व्यामोहित करनेके लिये बुद्धरूपमें अवतरित हुए। अब वे कल्कि होकर फिर सम्भल ग्राममें अवतार लेंगे और घोड़ेपर सवार होकर वे संसारके सभी विधर्मियोंका विनाश करेंगे।

अधर्मको दूर करनेके लिये, सत्त्वगुण-प्रधान देवता आदिकी रक्षा और दुष्टोंका संहार करनेके निमित्त भगवान् विष्णुका समय-समयपर वैसे ही अवतार होता है, जैसे समुद्रमन्थनके समय धन्वन्तरि होकर उन्होंने देवता आदिकी रक्षाके लिये विश्वामित्रके पुत्र महात्मा सुश्रुतको आयुर्वेदका उपदेश किया।

इस तरह महाभारतकी कथा एवं भगवान्के अवतारोंकी कथाका मैंने वर्णन किया, इसे सुनकर मनुष्य स्वर्गको प्राप्त करता है। (अध्याय १४५)

आयुर्वेद-प्रकरण

[गरुडपुराणका आयुर्वेद-प्रकरण अत्यन्त महत्त्वका है। इस प्रकरणके प्रथम बीस अध्यायोंमें निदान-स्थानके विषय वर्णित हैं। किस कारणसे रोग उत्पन्न हुआ है और रोगके लक्षण क्या हैं जिससे रोगका निर्णय हो सके इत्यादि विषय 'निदान' शब्दसे अभिप्रेत हैं। इसके बाद लगभग चालीस अध्यायोंमें रोगोंकी चिकित्सा-हेतु औषधियोंका निरूपण हुआ है तथा उन औषधियोंके निर्माणकी विधि बतायी गयी है। इस औषधिका यह अनुपान है, किस प्रकार इसका सेवन करना चाहिये आदि बताया गया है। एक ही रोगके लिये अनेक औषधिक योगोंको भी बताया गया है, पर यह सब किसी सुयोग्य वैद्यके परामर्शसे ही करना उचित है।

उपलब्ध गरुडपुराणका पाठ कहीं-कहीं अस्पष्ट तथा खण्डित भी प्रतीत होता है। आयुर्वेदके आर्षग्रन्थोंका आश्रय करके यथासम्भव अर्थ ठीक करनेकी चेष्टा की गयी है, पाठकोंको इससे लाभ उठाना चाहिये— सम्पादक]

निदानका अर्थ तथा रोगोंका सामान्य निदान-निरूपण

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! प्राचीन कालमें आत्रेय आदि श्रेष्ठ मुनियोंने जिस प्रकार सभी रोगोंका निदान बताया है, वैसे ही मैं तुम्हें सुनाऊँगा। पाप्मा, ज्वर, व्याधि, विकार, दुःख, आमय, यक्ष्मा, आतङ्क, गद और आबाध—ये पर्यायवाची शब्द हैं।

रोगके ज्ञानके पाँच उपाय हैं—निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति। निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान तथा कारण—इन पर्यायोंसे निदान कहा जाता है अर्थात् निमित्त आदि शब्दोंसे जिस वस्तुका निश्चय होता है वही निदान है। दोष-विशेषके ज्ञानके बिना ही उत्पन्न होनेवाला रोग जिन लक्षणोंसे जाना जाता है, उसे पूर्वरूप कहते हैं। यह पूर्वरूप सामान्य और विशिष्ट-भेदसे दो प्रकारका होता है। यह उत्पद्यमान रोग जिन लक्षणोंसे जाना जाता है, उन लक्षणोंको अल्पताके कारण थोड़ा व्यक्त होनेसे पूर्वरूप कहा जाता है। वही पूर्वरूप व्यक्त हो जानेपर रूप कहलाता है। संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न और आकृति—ये रूपके पर्यायवाची शब्द हैं। हेतु-विपरीत, व्याधि-विपरीत, हेतु-व्याधि-उभय-विपरीत तथा हेतु-विपरीत अर्थकारी (हेतुके समान प्रतीत होनेपर भी विपरीत क्रिया करनेवाला), व्याधि-विपरीत अर्थकारी और हेतु-व्याधि-उभय-विपरीत अर्थकारी औषध, अन्न तथा विहारके परिणाममें सुखदायक उपयोगको उपशय कहते हैं, इसीका नाम सात्म्य भी है। उपशयके विपरीत अनुपशय होता है। इसका दूसरा नाम व्याध्यसात्म्य भी है। दोष जिस प्रकार (प्राकृत आदि विविध) निदानोंसे दूषित होकर (ऊर्ध्व आदि भिन्न गतियोंके द्वारा शरीरमें) विसर्पण करते हुए (धातु आदिको दूषित कर) रोगको उत्पन्न करता है, उसे सम्प्राप्ति कहा जाता है। उसके पर्यायवाची शब्द हैं—जाति तथा आगति।

संख्या, विकल्प, प्राधान्य, बल और व्याधि कालकी विशेषताओंके आधारपर उस सम्प्राप्तिके भेद किये जाते हैं। जैसे इसी शास्त्रमें बताया जायगा कि ज्वरके आठ भेद होते हैं (यह संख्यासम्प्राप्ति हुई)। रोगोत्पत्तिमें कारणभूत दोषोंकी अंशांशकल्पना (न्यूनाधिक्य आदि)-का विवेचन विकल्पसम्प्राप्ति, स्वतन्त्रता और परतन्त्रताद्वारा दोषोंका प्राधान्य या अप्राधान्य-विवेचन प्राधान्यसम्प्राप्ति, हेतु-पूर्वरूप और रूपकी सम्पूर्णता अथवा अल्पताके द्वारा बल या अबलका विवेचन बलसम्प्राप्ति और दोषानुसार रात्रि, दिन, ऋतु एवं भोजन (-के परिपाक)-के अंश (आदि, मध्य और अन्त)-द्वारा रोगकालके ज्ञानको कालसम्प्राप्ति समझना चाहिये।

इस प्रकार निदानके सामान्य अभिधेयों (निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति)-का निरूपण किया गया। सम्प्रति उनका विस्तारसे वर्णन किया जायगा। सभी रोगोंके मूल कारण [शरीरमें स्थित] कुपित दोष ही हैं। किंतु दोष-प्रकोपका भी कारण अनेक प्रकारके अहितकर पदार्थोंका सेवन है। यह अहितसेवन तीन प्रकार (असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग, प्रज्ञापराध तथा परिणाम)-का होता है, इन तीनों योगोंको पहले बताया जा चुका है।

वात-प्रकोपका निदान

तिक्त, उष्ण, कटु, कषाय, अम्ल और रुक्ष खाद्यान्नका असंयमित आहार, दौड़ना, जोरसे बोलना, रात्रि-जागरण तथा उच्च भाषण, कार्योंमें विशेष अनुरक्ति, भय, शोक, चिन्ता, व्यायाम एवं मैथुन करनेसे शरीरके अन्तर्गत विद्यमान वायु प्रकुपित हो जाती है। विशेषतः यह वायु-विकार ग्रीष्म-ऋतुके दिन तथा रात्रिमें भोजन करनेके पश्चात् पाकके अन्तमें होता है।

पित्त-प्रकोपका निदान

कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, लवण तथा क्रोधोत्पादक एवं दाहोत्पादक आहार करनेसे पित्त प्रकुपित होता है। पित्तका यह प्रकोप शरद्-ऋतुके मध्याह्न, अर्धरात्रि तथा अन्य दाह उत्पन्न करनेवाले क्षणोंमें विशेषरूपसे होता है।

कफ-प्रकोपका निदान

मधुर[1], अम्ल, लवण, स्निग्ध, गुरु, अभिष्यन्दी तथा शीतल भोजनोंके प्रयोगसे, बैठे रहनेसे, निद्रासे, सुख-भोगसे, अजीर्णसे, दिवा-शयनसे, अत्यन्त बलकारक पदार्थोंके प्रयोगसे, वमन आदि न करनेसे, भोजनके परिपाकके प्रारम्भकालमें, दिनके प्रथम भागमें तथा रात्रिके प्रथम भागमें कफ कुपित होता है और दो-दो दोषोंके प्रकोपक आहार-विहारका सेवन करनेसे दो-दो दोष प्रकुपित होते हैं।

त्रिदोष-प्रकोपका निदान एवं सब रोगोंकी सामान्य सम्प्राप्ति

त्रिदोषके (वात-पित्त[2] तथा श्लेष्मा—इन सभीके) प्रकुपित तथा मिश्रित स्वभावसे सन्निपातकी उत्पत्ति होती है। संकीर्ण भोजन, अजीर्णतामें भोजन, विषम तथा विरुद्ध भोजन, मद्यपान, सूखे शाक, कच्ची मूली, पिण्याक (खली), मृत्तुवत्सर पूति (सत्तू) शुष्क, कृशा, मांस तथा मत्स्यादिका भक्षण करनेसे, वात-पित्त एवं श्लेष्मोत्पादक विभिन्न पदार्थोंके उपभोगसे, आहार्य अन्नका परिवर्तन, धातुजन्य-दोष, वात-पित्त, श्लेष्माका परस्पर मिलकर उपद्रव करनेसे शरीरमें यह विकार (सन्निपात) उत्पन्न होता है। दूषित कच्चे अन्नका प्रयोग करनेसे, श्लेष्माजनित विकारसे तथा ग्रहोंके प्रभावसे, मिथ्या आहार-व्यवहारके योगसे, पूर्वजन्ममें संचित विभिन्न पापोंके प्रभाववश किये गये दुराचरणसे, स्त्रियोंमें प्रसव-कालकी विषमता तथा मिथ्योपचारसे शरीरमें सन्निपातकी विकृति उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्रकुपित वात आदि दोष रोगोंके अधिष्ठानोंमें जानेवाली रसवाहिनियोंके द्वारा शरीरमें पहुँचकर अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न करते हैं। (अध्याय १४६)

ज्वर-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब समस्त ज्वरोंकी[3] विशेष जानकारीके लिये मैं ज्वर-निदानको बताऊँगा।

ज्वर रोगपति, पाप्मा, मृत्युराज, ओजोऽशन (ओजको खा जानेवाला), अन्तक (आयुको समाप्त कर देनेवाला), क्रुद्ध होकर दक्षके यज्ञको विध्वंस करनेवाले रुद्रके तीसरे नयनसे उत्पन्न संताप, मोहमय, संतापात्मा तथा अपचारज (मिथ्या आहार-विहारसे उत्पन्न)—इन विभिन्न नामोंसे नाना प्रकारकी योनियोंमें विद्यमान रहता है।

यह हाथियोंमें पाकल, अश्वोंमें अभिताप, कुत्तोंमें अलर्क, मेघोंमें इन्द्रमद, जलमें नीलिका, औषधियोंमें ज्योति और भूखण्डोंमें ऊषर नामसे रहता है।

कफ-ज्वरके लक्षण

कफसे[4] उत्पन्न होनेवाले ज्वरमें हृदयमें घबराहट, वमन, खाँसी, शरीरमें ठंडक तथा अङ्गोंमें सूजन हो जाती है। दोषोंके प्रकोप-कालमें ज्वरकी उत्पत्ति होने लगती है। (पर यह पहलेसे जो उत्पन्न हो चुके हैं) बढ़ावपर आ जाते हैं (ग्रन्थकारका अभिप्राय यह है कि चिकित्सक इस स्थितिसे लाभ उठायें)। पहले वह कालपर विचार करें कि यह वात, पित्त, कफ—इन दोषोंमें किस दोषको प्रकुपित करनेवाला है। इस आधारपर रोगको समझनेमें सुविधा हो सकती है। जिस तरह विशिष्ट कालके द्वारा रोगकी उत्पत्ति या वृद्धि देखकर यह रोग—वात आदि किस दोषसे उत्पन्न हुआ है, यह अनुमान कर लिया जाता है, उसी तरह उपशय (लाभ) और अनुपशय (हानि)-से भी रोगको पहचाना जा सकता है। औषध, अन्न, विहार, देश, काल आदिसे उत्पन्न लाभको उपशय कहते हैं और इन्हीं औषध आदिका उपयोग यदि किसी रोगमें दुःखद हो तो उसे अनुपशय कहते हैं।

अतः किस प्रकारकी औषधि, अन्न आदिके सेवनसे रोगीको लाभ (उपशय) हो रहा है और किस प्रकारकी औषधि आदिसे हानि (अनुपशय) हो रहा है, इसपर विचार करनेसे चिकित्सकको रोग समझनेमें आसानी होती है।

निदान-प्रकरणमें कहे गये (किस औषधि और विहारके सेवनसे) अनुपशय (हानि) होती है और किन पदार्थोंके सेवनसे उपशय (लाभ) होता है, यह देखकर दोषोंका अनुमान किया जा सकता है। अरुचि, अपरिपाक, स्तम्भ, आलस्य, हृदयदाह, विपाक, तन्द्रा, वस्ति, विमर्दाचनय,

---

१-अ०हृ०अ० २।१३-१८

२-अ०हृ०नि०अ० २।१९—२३ (चिकित्सादर्श परि० पृ० १ वैद्य राजेश्वरशास्त्रीकृत)

३-अ०हृ०नि०अ०२, माधव ज्वर नि०पृ० ७३

४-कफ-ज्वरके लक्षण, अ०हृ०अ० २।२२

लारका गिरना, मनका भरा होना, भूखका न लगना, मुखकी चिपचिपाहट, शरीरमें श्वेतता होना, उष्णताका रहना, शरीरका भारी लगना, अधिक पेशाबका होना, शरीरकी जीर्णताका विशेष भान होना तथा शरीरकी कान्तिमें मलिनताका आना—ये सभी आम ज्वरके लक्षण हैं।

भूखका न लगना, शरीरका हल्का हो जाना, यह सामान्य ज्वर है। जब ज्वरमें वात-पित्त तथा कफ—तीनों दोष बराबर बढ़ते रहते हैं तो उसे परिपक्व अग्राह[1] (निराम) ज्वरका लक्षण माना जाता है। दो दोषोंके लक्षणोंका संसर्ग होनेपर तीन संसर्गज-द्वन्द्वज ज्वर होते हैं।

वात-पित्त-ज्वरके लक्षण

सिरमें वेदना, मूर्च्छा, वमन, शरीर-प्रदाह, मोह, कण्ठ और मुखकी शुष्कता, अरुचि, शरीरके पर्व-पर्वमें टूटन, अनिद्रा, मनमें विभ्रम, रोमाञ्च (सिहरन), जम्हाई एवं वात-प्रकोपसे त्वचामें शीतलताकी अनुभूतिका होना—ये सभी लक्षण वात और पित्तकी प्रवृत्तिके कारण उत्पन्न हुए ज्वरसे ग्रसित शरीरमें दिखायी देते हैं।

ज्वर-तापकी अल्पता, अरुचि, पर्ववेदना (शरीरके प्रत्येक जोड़में दर्द), सिरपीड़ा, बार-बार थूकनेकी इच्छा, श्वास-कष्ट और खाँसी, चेहरेका रंग उड़ जाना, ठंडक लगना, आँखोंके सामने दिनमें भी अन्धकारका छाया रहना और अनिद्राका होना—ये सभी लक्षण कफ-वातजनित ज्वरकी पहचान कराते हैं।

शरीरमें अनियत शीतलताका अनुभव, स्तम्भन, पसीनेका आना, दाहका होना, प्यासका लगना और खाँसीका आना, श्लेष्म एवं पित्तकी प्रवृत्ति, मूर्च्छा, तन्द्रावस्थामें तथा मुखमें कड़ुवापनका होना—ये सभी लक्षण श्लेष्म-पित्तजन्य ज्वरके रूपका निर्धारण करते हैं।

वात[3]-पित्त और श्लेष्म-प्रवृत्तिजन्य सभी लक्षणोंके एक साथ सर्वज (सन्निपात) ज्वरका आकलन होता है। ऐसी अवस्थामें बार-बार ये सभी लक्षण प्रकट होते रहते हैं। इस ज्वरकालमें रोगीको ठंडक लगती है, दिनमें महानिद्राकी स्थिति बनी रहती है, रात्रिमें नींद नहीं आती या सदैव निद्रा ही रहती है अथवा निद्रा ही नहीं आती। रोगीको अधिक पसीना छूटता है अथवा पसीना ही नहीं आता। वह ऐसी अवस्थामें गीत गाता है, नाचता है या हास्यादिकी क्रियाओंको करता है। उसकी सामान्य प्रकृति पूर्ण बदली हुई होती है। नेत्र मलिन एवं आँसुओंसे डबडबाये रहते हैं। आँखोंकी पलकोंके किनारोंपर लाली छायी रहती है और आँखें खुली रहती हैं अथवा मुँदी रहती हैं। शरीरकी पिण्डुली, पार्श्वभाग, सिर, संधि-स्थान तथा हड्डी-हड्डीमें वेदना होती है और बुद्धिमें भ्रम बना रहता है। दोनों कान ध्वनि एवं वेदनासे व्याप्त रहते हैं। ये अत्यधिक ठंडे हो जाते हैं अथवा अत्यधिक गर्म हो जाते हैं। रोगीको जिह्वा जली हुई-सी प्रतीत होती है अर्थात् कुछ लाल और कृष्ण वर्णके मिश्रित भावोंसे युक्त तथा खुरदरी हो जाती है, उसमें स्निग्धता नहीं रह जाती। सम्पूर्ण शरीर एवं उसके संधि-स्थानोंमें भारीपन तथा शिथिलता आ जाती है।

रोगीके मुखसे रक्त-पित्तमिश्रित थूक निकलता है, सिर लुढ़क जाता है, अत्यन्त प्यास लगती है। शरीरके समस्त कोष्ठ-प्रदेशोंका वर्ण श्याम और रक्त हो जाता है। उनपर मण्डलाकार धब्बे दिखायी पड़ने लगते हैं। हृदयमें व्यथा होने लगती है। आँख, कान, नाक, गुदा आदिसे निकलनेवाले मलकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है अथवा अत्यन्त कम हो जाती है। मुखमें स्निग्धता, बलकी क्षीणता, स्वरभंग, ओजक्षय तथा प्रलापकी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। दोषपाक अर्थात् वात-पित्त और कफकी वृद्धि शरीरके अंदर-ही-अंदर पक जाती है, जिससे शरीरकी सामान्य गतिमें अवरोध आ जाता है, कण्ठ घरघराने लगता है। शरीरमें तन्द्राकी अवस्था रहती है और कण्ठसे अव्यक्त शब्द निकलने लगते हैं। ऐसे लक्षणोंसे युक्त रोग शरीरमें अपना स्थान बना लेता है, उसको बलवीर्य-विनाशक अभिन्यास-सन्निपात[4] नामक ज्वर कहना चाहिये।

इस सन्निपातिक ज्वरमें वायु-विकारके कारण कण्ठमें अवरोध उत्पन्न होनेसे पित्त आभ्यन्तर-भागमें पीड़ा पहुँचाने लगता है और (विशेष मार्ग) नाक आदिसे सुखपूर्वक बिना प्रयासके ही बाहर निकलने लगता है। उसी पित्त-प्रभावके कारण नेत्र हल्दीके समान पीले पड़ जाते हैं। वात-पित्त तथा कफजन्य दोषके बढ़ जानेपर जब शरीरमें विद्यमान अग्नि-तत्त्व विनष्ट हो जाता है तो उस समय वह अपने

१-निरामज्वरका लक्षण (च०चि०अ० ३)

२-द्वन्द्वज ज्वरका रूप अ०हृ०अ० २। २३—२६

३-त्रिदोषज्वरका रूप अ०हृ०अ० २। २७—३३

४-वंगसेन अभिन्यास ज्वर-प्रकरण देखें।

सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त रहता है। यह सन्निपात-ज्वर असाध्य है। इसपर बड़ी ही कठिनतासे अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

इस सन्निपात[1]का एक अन्य भी रूप है, जिसमें पित्त पृथक्-भावसे स्थित रहता है। ऐसे ज्वरमें त्वचा और कोष्ठके अंदर दाह होता है अथवा यह स्थिति इस ज्वरोत्पत्तिके पहले भी शरीरमें हो सकती है। उसी प्रकार जब वात और पित्तकी प्रवृत्ति शरीरमें बढ़ने लगती है, उस समय भी यह सन्निपात-ज्वर होता है। उस कालमें शीत और दाहका प्रकोप शरीरपर होता है। उनसे मुक्ति प्राप्त करना प्राणीके लिये अत्यन्त कठिन है। शीतका प्रभाव शरीरपर पहले होनेसे पित्तके कारण मुखसे कफ निकलता है और सूख भी जाता है। पित्तके शान्त होनेपर मूर्च्छा, मद और तृष्णा होती है। अन्तमें क्रमशः रोगीको तन्द्रा और आलस्य आ जाता है तथा अम्ल वमन होता है।

आगन्तु-ज्वरका लक्षण

अभिघात[2], अभिषंग, शाप तथा अभिचार-कर्मसे आनेवाले चार प्रकारके ज्वरको आगन्तु-ज्वर माना गया है। दाह आदिके कारण शरीरमें जब पसीना छूटता है तो उसको अभिघातज ज्वर कहा जाता है। अधिक परिश्रम करनेसे शरीरमें वायु प्रायः रक्तको प्रदूषित करता हुआ पीड़ा, शोक तथा शरीरके सामान्य वर्णोंको परिवर्तित करनेवाले पीड़ायुक्त ज्वरको उत्पन्न कर देता है।

ग्रह-प्रभाव, औषधि-प्रयोग, विष-पान तथा क्रोध, भय, शोक एवं कामजन्य भी सन्निपात-ज्वर होता है। ग्रहावेशसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसमें रोगी अकस्मात् हँसने और रोने लगता है। औषधि और गन्ध-विशेषके प्रयोगसे आये हुए सन्निपात-ज्वरमें मूर्च्छा, सिरपीड़ा, वमन, कम्प तथा क्षय (शरीर-शैथिल्य)-का प्रभाव रोगीपर रहता है। विष-पानसे मूर्च्छा, अतिसार, पीलापन, दाह और मस्तिष्क-भ्रान्तिके लक्षण रोगीमें स्पष्ट होने लगते हैं। क्रोधजन्य सन्निपातमें शरीर काँपने लगता है, मस्तिष्कमें पीड़ा होती है। भय तथा शोकसे उत्पन्न हुए ज्वरमें रोगी प्रलाप करता है। कामजन्य ज्वरमें भ्रम, अरुचि, दाह, लज्जा, निद्रा, बुद्धि तथा धैर्यका ह्रास हो जाता है।

सन्निपातिक ग्रहावेशादिके कारण उत्पन्न हुए ज्वर और आगन्तुकरूप आदि रूपजन्य ज्वरमें वायुका प्रकोप ही प्रभावी रहता है। कोपजन्य ज्वरके कारण रोगीमें पित्त प्रकुपित हो उठता है। शाप तथा अभिचारकर्मके कारण जो ये दो सन्निपात-ज्वर प्राणीमें आते हैं, ये दोनों अत्यन्त भयंकर होते हैं। इन दोनों ज्वरोंको सहन करना रोगीके लिये अतिशय कठिन है। अभिचारजन्य ज्वर तान्त्रिकोंके द्वारा प्रयुक्त मन्त्रोंसे शरीरमें आता है। इसमें मन्त्र-प्रभावके कारण उत्पन्न किये गये असह्य कष्टोंसे प्राणी संतप्त होता रहता है। इसी अभिचार-मन्त्रके द्वारा इसकी पूर्वावस्थाकी जानकारी करनी चाहिये, तत्पश्चात् शरीरपर विचार करना अपेक्षित है। उसके बाद रोगीमें उठे हुए संतापसे विस्फोट तथा दिग्भ्रमित दाह, मूर्च्छा, चेतना आदिसे ज्वरका परीक्षण करना उचित होता है। अन्यथा उस रोगीमें सर्वप्रथम प्रदाह और मूर्च्छाका प्रकोप होता है। उसके बाद ज्वर प्रतिदिन बढ़ता रहता है।

इस प्रकार संक्षेप[3]में आठ प्रकारका ज्वर देखा गया, किंतु वह विभिन्न प्रकारका होता है—यथा—शारीरिक, मानसिक, सौम्य, तीक्ष्ण, अन्तर्बाह्य, प्राकृत, वैकृत, साध्य, असाध्य, सामज्वर और निरामज्वर इसके विविध रूप हैं।

ज्वर होनेपर प्रथम शरीरमें शारीरिक, मनमें मानसिक ज्वर आनेपर पहले मनमें अनन्तर शरीरमें ताप होता है। प्राकृतिक वायुके बाह्य-प्रभावसे नाक-कान तथा मुँह आदिके द्वारा जो वायु ग्रहण की जाती है, उसके कारण कफ मिश्रित होता है, तब शरीरमें शीत बढ़ जाता है। पित्त-मिश्रित शरीर होनेपर शरीरमें दाह होता है। कफ तथा पित्त दोनोंकी मिश्रित-अवस्थामें शीत और दाहका मिश्रित प्रभाव पड़ता है। इसलिये वात-कफ-ज्वर सौम्य तथा वात-पित्त-ज्वर तीक्ष्ण होता है। अन्तराश्रयज्वरमें अन्तर्विकार अधिक होते हैं तथा तीव्र दाह और मल-मूत्रादिका विबन्ध होता है, बहिराश्रयज्वरमें केवल बाहरी ताप होता है। इसमें तीव्र दाह और मल आदिकी विबन्धता नहीं होती, इसलिये बहिराश्रय-ज्वर सुख-साध्य और अन्तराश्रयज्वर दुःसाध्य होता है।

वर्षा, शरद् तथा वसन्त-ऋतुओंमें वात-पित्त और कफके प्रभावसे जो ज्वर उत्पन्न होता है, उसे प्राकृत-ज्वर

१-चरक चि०अ० ३, सु०उ०अ० ३९। २-च०चि०अ० ३, अ०हृ०नि०अ० २। ३-अ०हृ०नि०अ० २।३६

कहा जाता है (यथा वर्षाकालमें वातिक, शरत्कालमें पैत्तिक एवं वसन्तकालमें श्लैष्मिक ज्वरका प्राकृतिक प्रभाव रहता है।), वह साध्य है। इस वैकृत ज्वरका जो विपरीत रूप है, वह दुःसाध्य माना गया है। प्राकृतिक ज्वर प्रायः वायुदोषके कारण होता है, यह भी दुःसाध्य है। वायु वर्षाकालमें दोषयुक्त हो जाती है, उसके प्रभावके कारण पित्त एवं कफसे समन्वित ज्वर प्राणियोंमें होता है। शरत्कालमें पित्त-दोषजन्य ज्वरकी उत्पत्ति होती है। इस कालमें पित्त-दोषका अनुगमन कफ करता रहता है, इसलिये इस कालके ज्वरमें पित्त एवं कफ दोनों मिलकर रोगीको कष्ट देते हैं। इस प्राकृतिक ज्वरसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये भोजन न करनेसे रोगीको किसी अन्य रोगका भय नहीं रहता है। वसन्तकालमें कफ कुपित होकर ज्वर उत्पन्न करता है। उसके पीछे ही वात एवं पित्तके दोष भी लगे रहते हैं। इस ज्वरमें उपवाससे हानि हो सकती है।

यदि रोगी बलवान् हो और ज्वर अल्प दोषसे उत्पन्न हुआ हो तथा कासादि दोष उपद्रवोंसे रहित हो तो सुख-साध्य होता है। जैसे रोगीको जैसा ज्वर असाध्य होता है वह पहले बताया गया है। इसका उपद्रव हो जानेपर रोगीमें चिड़चिड़ापन, मन्दाग्नि, बहुमूत्रता, अरुचि, अजीर्ण तथा भूख न लगनेके लक्षण उभर आते हैं, यही सामज्वर है।

तेज ज्वर होनेपर अधिक प्यास-प्रलाप, श्वास तथा चक्कर आता है। नाक-कान, मुँह तथा गुदाभागसे मल निकलनेकी गति तेज होती है। उत्क्लेश होता है, जिससे रोगीको कष्ट होता है। यह पच्यमान-ज्वरका लक्षण है। सामज्वरसे विपरीत लक्षण होनेपर सात दिनका लंघन करना चाहिये, क्योंकि आठवें दिन ज्वर निराम हो जाता है।

मल[1], काल तथा बलाबलके कारण ज्वर पाँच प्रकारका कहा गया है। यथा— निरन्तर विद्यमान रहनेवाला, सततवाही ज्वर, दूसरे दिनतक रहनेवाला ज्वर, तीसरे और चौथे— चार दिनतक रहनेवाला। विशेषतः ये ज्वर सन्निपातसे ही होते हैं। इस ज्वरमें धातु-मूत्र और विष्ठाको शरीरसे बाहर निकालनेवाले मार्ग मलव्यापी हो जाते हैं। इस समय ये सभी दूषित होकर एक समान ही सम्पूर्ण शरीरको संतप्त करते हैं तथा दूष्य पदार्थों, देश, ऋतु और प्रकृतिद्वारा बढ़कर और बलवान् भारी तथा स्तब्ध होकर रसादिके आश्रित हो जाते हैं तथा प्रतिद्वन्द्वितासे रहित होकर वातादि दोष दुःसह संतत-ज्वरको उत्पन्न करते हैं। अनल-धर्म— ज्वरकी गर्मी, कभी मल और कभी धातुओंका शीघ्र ही क्षय कर देते हैं।

मल[2] और धातुओंके क्षयके कारणसे रसादि सप्त धातु, मल, मूत्र और तीनों दोष—इन बारह पदार्थोंको ज्वरकी ऊष्मा सर्वाकार निःशेष करके कफकी अधिकतासे उत्पन्न हुआ यह संतत-ज्वर सात, दस या बारह दिनमें या तो रोगीको छोड़ देता है या मार डालता है, यह अग्निवेशका मत है। इस विषयमें हारीतका यह मत है कि रोगीकी नीरोगता तथा मृत्युके लिये चौदह, अठारह तथा बाईस दिनतक त्रिदोषकी मर्यादा होती है।

धातुजन्य[3] शुद्धता अथवा अशुद्धताके कारण यह संतत-ज्वर प्राणीके शरीरमें अधिक समयतक भी अवस्थित रह सकता है। दुर्बल तथा व्याधिमुक्त रोगीके मिथ्याहारादि (अपथ्य)-सेवनसे शरीरमें प्रविष्ट अल्प दोष भी अन्य दूसरे दोषोंसे शक्ति ग्रहणकर महाबलवान् हो जाते हैं। जिस उपचार या पथ्यके कारण ज्वर बढ़ता और घटता है, उसे प्रत्यनीक कहते हैं। यह ज्वर विक्षेप, क्षय तथा वृद्धिसे युक्त रहता है। उपर्युक्त मिथ्याहारका सेवन करनेवाले मनुष्यके देहमें वातादि दोषोंमेंसे कोई-सा बलवान् दोष अपने प्रकोपकालमें संतत आदि ज्वर उत्पन्न करता है। परंतु यह तभी सम्भव है, जब उसे अपने पक्षके किसी रसादि दूष्य पदार्थसे सहायता मिले, सहायता न मिलनेपर वह बलहीन होकर क्षीण हो जाता है।

क्षीण हो रहे दोषसे युक्त ज्वर सूक्ष्म होता है, जो शरीरके अंदर विद्यमान रसादिक[4] सप्त धातुओंमें ही लीन रहता है। रस आदिमें सूक्ष्मभावसे विद्यमान रहनेके कारण

१-अ०हृ०नि०अ० २—५, ६—५९, सु०अ०अ० ३९। २-अ०हृ०नि०अ० २, च०चि०अ० ३, ५३—५३। ३-अ०हृ०नि०अ० २—६३—६६। च०चि०अ० ३, सु०उ०अ० ३९। ४-रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र—ये सात धातु शरीरको धारण करते हैं।

वह ज्वर शरीरमें कृशता, विवर्णता और जड़तादिको उत्पन्न कर देता है। रसवाही स्रोतोंके मुख खुले होनेके कारण ज्वरको उत्पन्न करनेवाले दोष उन स्रोतोंमें प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाते हैं। इस कारण संतत-ज्वर निरन्तर रहता है और उक्त हेतुके विपरीत होनेपर सम्पूर्ण स्रोत दूरवर्ती सूक्ष्म मुखवाले होते हैं। इसलिये ज्वरको उत्पन्न करनेवाले दोष विलम्बमें प्रविष्ट होते हैं अर्थात् सम्पूर्ण देहमें फैलने नहीं पाते, इसलिये विच्छिन्न कालमें सततादि ज्वरको उत्पन्न करते हैं। अत: सततादि ज्वर संतत-ज्वरसे विपरीत होता है।

विषम[1] संज्ञक ज्वरका प्रारम्भ, क्रिया और काल विषम होता है तथा यह ज्वर दीर्घ कालानुबन्धी होता है, प्राय: रक्ताश्रित दोष सतत-ज्वरको उत्पन्न करता है। यह ज्वर अहोरात्रमें दो बार होता है अर्थात् दिनमें एक बार, रातमें एक बार अथवा कभी दिनमें दो बार, रातमें दो बार। जब दोष मांसवाही नाड़ीमें आश्रित होकर अन्येद्यु नामक विषम ज्वरको उत्पन्न करता है, तब यह दिन-रातमें एक बार होता है। उसी ज्वरके प्रभावमें जब मांसवाही एवं मेदावाही नाड़ियाँ भी प्रकुपित दोषके संसर्गमें आ जाती हैं, वह लक्षण तृतीयक (तिजरिया) ज्वरके अन्तर्गत मान लिया जाता है।

तृतीयक ज्वर तीन प्रकारका होता है— वात-पित्ताधिक्य, कफ-पित्ताधिक्य और वात-कफाधिक्य। प्रथम दिन पित्त और वायुके प्रकुपित होनेसे ज्वर मस्तकका ग्राही हो जाता है। दूसरे दिन कफ तथा पित्तके प्रकोपसे वह रीढ़की हड्डीमें प्रविष्ट हो जाता है और तीसरे दिन वायु एवं कफसे दूषित होनेसे वह ज्वर सम्पूर्ण पीठपर अधिकार कर लेता है। अर्थात् पित्त और वायुके प्रकुपित होनेसे ज्वर-प्रभावके कारण पहले दिन रोगीका मस्तक जलने लगता है और उसमें पीड़ा होती है। दूसरे दिन कफ तथा पित्तके प्रकुपित होनेसे रीढ़की हड्डीमें दर्द होता है, तीसरे दिन वायु एवं कफके दोषजन्य प्रभावके बढ़नेसे रोगीको ताप तो होता ही है, किंतु उसकी समस्त पीठमें पीड़ा होती है। यह ज्वर एक-एक दिनका अन्तराल छोड़कर शरीरके तीनों भागोंको प्रभावित करता है, इसीलिये इसको 'एकाहान्तर' नामसे स्वीकार किया गया है।

वात-पित्त और कफजन्य दोषके कारण शरीरके अंदर अधिक बननेवाले मलके द्वारा ज्वर जब मेदा-मज्जा-हड्डी तथा अन्य स्थितियोंमें पहुँच जाता है, तब उसको चतुर्थक ज्वर कहा जाता है। लौकिक भाषामें इसीको लोग 'चौथिया बुखार' कहते हैं। जब यही ज्वर मज्जाभागमें प्रविष्ट होता है तो यह दूसरे प्रकारका हो जाता है और इसका प्रभाव भी शरीरपर दूसरी रीतिसे पड़ता है।

वाय्वाधिक्यसे सिरमें वेदना होती है। कफाधिक्यसे जंघामें प्रारम्भ होती है। उक्त सिर एवं जंघामें वेदना होकर ही ज्वर चढ़ता है।

तदनन्तर वह अस्थि एवं मज्जामें जाकर अवस्थित होता है। इसी कारण इसको चतुर्थक ज्वरका विपर्यय[2] (दूसरा) रूप माना जाता है। यह ज्वर अपने संतापकालमें एक दिनका अन्तराल करके रोगीपर तीन दिनतक तीन प्रकारसे आक्रमण करता है। यह अस्थि और मज्जा—इन दो धातुओंमें आश्रित होनेके कारण लगातार तीन दिनतक रहकर बीचमें एक दिन छोड़कर आता है और फिर तीन दिन लगातार रहता है। बलाबलके प्रभावसे वात-पित्त तथा कफजन्य दोष अथवा अन्य विकृत चेष्टाओंको जन्म देनेवाले विकारोंकी परिपक्व-स्थितिके आ जानेपर रोगीको सात दिनका लंघन करना चाहिये।

इसी तरह जिस-जिस समय रजोगुण एवं तमोगुणके कारण मानस दोष और मानस कार्यका बलाबल होता है, उसी-उसी समयमें यह सततादि ज्वर उत्पन्न होकर चढ़ता-उतरता रहता है।

उस प्रत्येक कालमें रोगीके कर्मका प्रभाव दिखायी देता है। सन्निपातके द्वारा सम्भूत कारणसे गम्भीर धातुओंमें समाहित दोषोंकी प्रबलता होनेपर यह चतुर्थक ज्वर अत्यन्त कठिन चिकित्साकी अपेक्षा करने लगता है अर्थात् ज्वरका शमन, चिकित्सकके लिये दुस्साध्य हो जाता है। दूरतम देश-काल और अवस्थाके अनुसार सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपसे ज्वरका शरीरमें जो संक्रमण होता है, रक्तादिक मार्गोंमें जो दोष बहुत समय पहलेसे धीरे-धीरे अल्पमात्रामें प्रभावी होता है, वह सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त नहीं होता (अतएव वह

१-च०चि०अ० ३, अ०हृ०नि०अ० २। २-सु०उ०अ० ३९

एक दिन शरीरपर अपना पूर्ण अधिकार कर लेता है) और उसी दोषके कारण वह ज्वर प्राणीमें संतापादिके कष्टोंको उत्पन्न करता है। अतः प्राणीको प्रयत्नपूर्वक यथोपचारसे उस ज्वरका विनाश कर देना चाहिये, अन्यथा वह असाध्य हो जाता है। ज्वरका सामान्य लक्षण तो यही है कि वह शरीरमें तापसे युक्त होकर अनुभूत होता है।

विषमगतिसे प्रारम्भ होनेवाला ज्वर विषम कहा जाता है। यह विषम ज्वर मध्यरात्रिकालतक अपने पूर्ण वेगमें रहता है। उसके बाद उसकी गति और शक्ति दोनों मन्द हो जाती है। उसी कालके अनुसार वह शरीरके रसादिपर अपने दोषका प्रभाव डालता है और धीरे-धीरे निष्प्रभावी होता है। ऐसा प्रकुपित दोष प्राणीको अधिकतम समयतक अस्वस्थ रखता है। जैसे भूमिमें जलसे सिंचित बीज अंकुरणके लिये समयकी प्रतीक्षा नहीं करता, वैसे ही (वात-पित्त तथा कफजन्य) दोषका बीजरूप स्वयंको शरीरमें प्रकट करनेके लिये समयकी प्रतीक्षा नहीं करता। जिस प्रकार विष वेगपूर्वक शरीरके आमाशयमें जाकर बलवान् होकर क्रुद्ध हो उठता है, उसी प्रकार शरीरमें स्थित दोष भी यथासमय शक्ति-सम्पन्न होकर स्वास्थ्यपर क्रोध करता है। इसी प्रकार सततादि ज्वर भी शरीरमें विषम भावको प्राप्त कर लेते हैं।

अधिक[1] कष्टका होना, शरीरका भारी लगना, दीनता, अङ्ग-भङ्ग (शरीरका टूटना), जँभाई, अरुचि, वमन और श्वासका फूलना आदि ये दोष सभी रसगत ज्वर होते हैं। जब ज्वर रक्तगत[2] संश्रित हो जाता है तो उस अवस्थामें रोगीको रक्तका वमन, प्यास, रूक्षता, ऊष्णता, शरीरपर छोटी-छोटी पीडिकाओं (दानों)-का निकलना, दाह, लालिमा, भ्रम, मद तथा प्रलापका उपद्रव होता है। मांस और मेदामें ज्वरके संश्रित होनेपर तृष्णा, ग्लानि, कान्तिमन्दता, अन्तर्दाह, भ्रम, अन्धकारदर्शन, दुर्गन्ध, गात्रविक्षेपका दोष उत्पन्न हो जाता है। ज्वरके अस्थिगत होनेपर पसीना, अधिक प्यास, वमन, दुर्गन्धिकी प्रतीति, चिड़चिड़ापन, प्रलाप, ग्लानि तथा अरुचि एवं हड्डियोंमें तोड़ने-जैसी पीड़ा होती है। ज्वरके मज्जागत हो जानेपर उक्त दोष तो होते ही हैं, उसके अतिरिक्त श्वास, अङ्गविक्षेप, अस्पष्ट-ध्वनि, बाह्य शीतलता और हिचकीके दोषकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। शुक्रमें दोषके संश्रित होनेपर रोगीको दिनमें भी अन्धकार दिखायी देता है, शरीरके मर्मोंमें छेदने-जैसी पीड़ा होती है। जननेन्द्रियके स्तब्ध होनेपर निरन्तर उससे वीर्य बहता रहता है। प्रायः ऐसी अवस्थामें शुक्रगत हो जानेपर रोगीकी मृत्यु होती है। वस्तुतः रस, रक्त, मांस, मेद तथा मज्जागत—ये पाँचों ज्वर उत्तरोत्तर दुस्साध्य होते हैं।

मन्द ज्वर होनेपर सम्पूर्ण शरीर कफद्वारा भारीपनके दोषसे संलिप्त रहता है। रोगी प्रलाप करता है, उसको शीतलताकी अनुभूति होती है तथा उसके सभी अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। जब शरीरमें नित्य ही मन्द ज्वर होता है तो शरीरमें सूखापन रहता है, रोगी शीतलताका अनुभव करता है और शरीरमें दुर्बलता आ जाती है तथा श्लेष्माकी अधिकता हो जाती है।

जिस ज्वरमें शरीर हल्दीके वर्णका हो जाता है और पेशाब भी पीला हो जाता है, उसको हरिद्रक ज्वर कहा जाता है, यह यमके समान मारनेवाला होता है।

जिसके शरीरमें कफ और वात समान रूपमें रहते हैं तथा पित्तकी कमी होती है, उसमें यह ज्वर दिनमें मन्द वेगसे एवं रात्रिमें तेज हो जाता है तथा इसे रात्रिज्वर कहते हैं।

व्यायामके कारण दिवाकरके शक्ति संचय न करनेसे जब रोगीका शरीर शुष्क हो जाता है तो वातकी अधिकताके कारण रोगीके शरीरमें सदा रातमें ज्वर रहता है, उसे पौर्वरात्रिक ज्वर कहा जाता है।

इस ज्वरमें श्लेष्मा पित्तके नीचे आमाशयमें स्थित रहनेपर आत्मस्थ होकर रोगीका आधा शरीर शीतल और आधा ऊष्ण रहता है। ज्वरके समय रोगीके शरीरमें जब पित्त परिव्याप्त रहता है तथा श्लेष्मा अन्तमें स्थित रहता है। इसलिये उसका शरीर ऊष्ण और हाथ-पैर ठंडे रहते हैं। रस और रक्तमें आश्रित तथा मांस एवं मेदामें स्थित ज्वर साध्य है। हड्डी और मज्जामें स्थित ज्वर कष्ट-साध्य है। ज्वर जिस-जिस अङ्गमें रहता है, उसे कान्तिहीन कर देता है। इस ज्वरमें रोगी संज्ञाहीन, ज्वरके वेगसे आर्त और

१-माधव नि० ज्वर ४८—५३। २-सु०उ०अ० ३९, च०चि०अ० ३

क्रोधयुक्त रहता है। रोगी सदा दोष-समन्वित उष्ण मलका वेगपूर्वक परित्याग करता है।

ज्वरके[1] शान्त होनेपर शरीर लघु (हल्का) हो जाता है, थकान, मोह और संताप दूर हो जाता है, मुखमें छाले पड़ जाते हैं, इन्द्रियोंमें निर्मलता आ जाती है, पीड़ा नहीं रहती, शरीरमें उचित पसीना छूटता है, भूख लगती है, मन स्वस्थ तथा प्रसन्न हो जाता है, अन्न-ग्रहणकी इच्छा होने लगती है तथा सिरमें खुजलाहट होती है। (अध्याय १४७)

रक्त-पित्त-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब इसके बाद मैं रक्त[2]-पित्तके निदानका विधिवत् वर्णन करता हूँ।

अत्यन्त उष्ण, तिक्त, कटु, अम्ल, नमक आदि जो पेटमें विशेष प्रकारका दाह उत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं और कोदो, उद्दालक आदि गरिष्ठ अन्नसे बने भोजन हैं तथा अन्य पित्तवर्धक शाक-पात हैं, उन सभीका अधिक सेवन करनेसे शरीरमें पूर्वसे स्थित पित्तात्मक द्रव कुपित हो उठता है और परस्परमें मिलकर वह रक्तपर दूषित प्रभाव डालता है। जिससे शरीरका रक्त दूषित हो जाता है, उन्हीं भोज्य एवं पेय पदार्थोंके प्रभावसे पित्त और रक्त एक-सा रूप धारण करके सम्पूर्ण शरीरपर अधिकार कर लेते हैं। संसर्ग-दोषके कारण विकृत हुए रक्त-पित्त-गन्ध-वर्ण तथा दोष-प्रवृत्तिमें एक अनुरूपता होनेपर भी उसको रक्त[3] नामसे ही जाना जाता है। वह दूषित रक्त प्लीहा तथा यकृत भागवाले कोष्ठसे उत्पन्न होता है। इस कारण उसका नाम रक्त-पित्त है।

रक्त-पित्तका दोष निम्नलिखित उपद्रवोंसे जाना जा सकता है। मस्तिष्कमें भारीपन, अरुचि, शीतल पदार्थके सेवनकी इच्छा, कण्ठसे धूम निकलनेका आभास तथा अम्लतायुक्त डकारोंका आना, वमन, वमनमें दुर्गन्ध, खाँसी, श्वास, भ्रम, थकान, लोहा, रक्त तथा मछलीकी-सी गन्ध, स्वरमें क्षीणता, नयनादि अङ्गोंमें लाली, हल्दीकी तरह पीलापन अथवा हरापन होना, नीले, लाल और पीले रंगमें भेदका न मालूम होना और स्वप्नमें भी लाल रंग दिखायी देना—ये लक्षण रक्त-पित्तरोग होनेवालेमें पाये जाते हैं।

रक्त-पित्त तीन प्रकारका होता है—ऊर्ध्वगामी, अधोगामी और उभयगामी। इनमेंसे ऊर्ध्वगामी रक्त-पित्त दोनों नाकके छिद्रों तथा आँखों, कानों और मुख—इन सात द्वारोंसे निकलता है, अधोगामी कुपित रक्त मूत्रेन्द्रिय, योनि और गुदासे निकलता है और उभयगामी रक्त-पित्त समस्त रोमकूपों एवं पूर्वोक्त दसों द्वारोंसे निकलता है। ऊर्ध्वगामी साध्य रक्त-पित्त-कफको अधिकतासे निकलता है। इसलिये इसका साधन विरेचन है। पित्तशान्तिकी बहुत-सी औषधियाँ हैं, उनमें सबसे प्रधान विरेचन है तथा रक्त-पित्तका अनुबन्धी कफ होता है और कफकी औषधि भी विरेचन ही है। फाण्ट आदि कषाय, मधुर रसयुक्त होनेपर भी रोग-नाशक होनेके कारण वातादिके दोषसे रहित कफवाले रोगीके लिये हितकारी होते हैं। ऐसी स्थितिमें कटु, तिक्त और कषाय द्रव्य जो स्वभावसे ही कफका नाश करनेवाले हैं, ये अत्यन्त लाभप्रद होते हैं। अधोगामी रक्त-पित्त-वातसे उत्पन्न होनेके कारण याप्य (साध्य) होता है। इसकी चिकित्सा वमन है। पित्तकी चिकित्सा अल्प होनेके कारण वमनसे श्रेष्ठ औषधि नहीं है। रक्त-पित्तका अनुबन्धी वात है। इसीलिये वमन वातका शमन नहीं करता। इसलिये रक्त-पित्त दोषमें मधुर कषाय ही हितकारी होता है।

शरीरमें कफ तथा वायुके संसृष्ट होनेपर रक्त-पित्तजनित उभयगामी रक्त-पित्त असाध्य हो जाता है। प्रतिलोम होने और औषधिसे असाध्य होनेके कारण यह रोग असह्य होता है। प्रतिलोम होनेके कारण इस दोषका कोई प्रतिकार नहीं है। रक्त-पित्त रोगमें शोध प्रतिलोम (रोगका उल्टा) उपाय ही बतलाया गया है। रोगका इसी तरहसे संशोधन और उपशमन सम्भव है।

वात[4]-पित्त तथा कफ आदि दोषोंके एक-दूसरे दोषमें संसृष्ट हो जानेपर सब प्रकारसे शमन औषधि ही हितकारी होती है। इस रोगसे रक्षा करनेमें शिरावेध परीक्षणविधि ही दिखायी देता है। वस्तुतः ऐसे दोषोंमें होनेवाले उपद्रव विकारको लक्ष्य करके ही शरीरपर प्रभावी होते हैं। अतः रोगीके शरीरमें दृष्टिगत उपद्रवोंसे अन्य विकार न उत्पन्न हों, उसके पूर्व ही उनका शमन तथा परीक्षण करा लेना चाहिये। (अध्याय १४८)

१-अ०हृ० निदान २।७९, सु०उ०अ० ३९। २-च०चि०अ० २, सु०उ० ४५—५२। ३-च०चि०अ० ४, अ०हृ०अ० ३। ४-सु०उ०अ० ४५, च०चि०अ० २, सु०चि०अ० ३४

कास (खाँसी)-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—कास (खाँसी)-रोग यथाशीघ्र प्राणीपर अपना कुप्रभाव दिखाता है, इसलिये उसी रोगको अब कहा जायगा।

खाँसी वातज, पित्तज, कफज, क्षतज तथा धातु-क्षयज होनेसे पाँच प्रकारकी मानी गयी है। यदि इन पाँचोंके विनाशकी उपेक्षा कर दी जाती है तो ये क्षयको उत्पन्न कर देती हैं, यह उत्तरोत्तर बलवान् हो जाती हैं। इसका भावी रूप इस प्रकार होता है—

कासरोग होनेपर कण्ठमें खुजलाहट और अरुचि होती है। कान, मुख तथा कण्ठमें शुष्कता आ जाती है। शरीरमें वायु प्रायः अधोगामी होता है। इस रोगमें ऊर्ध्वगामी होकर वक्षःस्थलमें जा पहुँचता है, वहाँ अभिघात करते हुए वायु कण्ठमें रोगकी सृष्टि करता हुआ मस्तिष्क तथा रक्तवाही आदि शरीरके तेरहों स्रोतोंमें जाता है। तदनन्तर सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें प्रविष्ट होकर आक्षेप एवं उनको कष्ट पहुँचाता है।

इसका प्रकोप होते ही नेत्रोंमें उत्क्षेप करता हुआ और पीठ तथा हृदय एवं पार्श्वोंमें पीड़ा उत्पन्न करता हुआ मुखसे निकलता है। बोलनेमें[1] भी रोगीको कष्ट होता है, फूटे हुए काँसेकी ध्वनिके समान मुखसे वाणी निकलती है, हृदयके पार्श्वभाग तथा शिरोभागमें पीड़ा उठती है, मोह और क्षोभ होता है एवं स्वरभंग हो जाता है।

यह रोगीको अत्यन्त तेज पीड़ाके साथ सूखी खाँसी खाँसनेके लिये विवश कर देता है। रोगीको रोमाञ्च हो जाता है। खाँसनेपर बड़ी ही कठिनतासे अंदरसे सूखा हुआ कफ बाहर निकलता है, जिससे खाँसी कुछ कम हो जाती है।

पित्तजन्य[2] कास होनेसे नेत्र पीले पड़ जाते हैं, मुखमें तीतापन रहता है, ज्वर और भ्रम होता है, रोगी पित्त तथा रक्तसंश्रित वमन करता है, उसे प्यास लगती है, कण्ठसे निकलनेवाली ध्वनि टूटी रहती है, उसको सब ओर धुआँ-ही-धुआँ दिखायी देता है और धूमायित एवं खट्टी डकार आती है तथा उसमें एक प्रकारका मद छाया रहता है। जब रोगीको खाँसीका वेग आता है तो उसी खाँसीके बीच आँखोंके सामने चमकता हुआ छोटा-छोटा प्रकाशपुञ्ज दिखायी देता है।

कफजन्य कासरोग होनेपर वक्षःस्थलमें सामान्य वेदना होती है, सिरमें भारीपन तथा हृदयमें जकड़न आ जाती है। कण्ठमें किसी द्रव्य पदार्थके लेपका अनुभव होता है। एक प्रकारका मद-जैसा शरीरपर छाया रहता है तथा पीनस, वमन, अरुचि, रोमाञ्च और घने स्निग्ध कफकी प्रवृत्ति होती है।

युद्धादि अत्यन्त साहसिक विभिन्न कर्मोंको करनेवाले लोगोंद्वारा जब शक्तिसे अधिक कर्म किया जाता है तो उससे वक्षःस्थलमें क्षत हो जाता है। पित्तसे अनुगमित होकर वायु बलवान् हो जाता है। तदनन्तर उसके कारण रोगीको खाँसी आने लगती है, जिसके द्वारा मुखसे रक्तसंश्रित कफ अधिक निकलता है। प्रायः यह कफ पीला, पिंगल, शुष्क, ग्रथित (लोथड़ेकी भाँति) और अत्यन्त दूषित होता है।

इस रोगमें रोगी रुग्ण-कण्ठसे कफरूपी मलको बाहर निकालता है, वायुदोषके कारण हृदय फटा-सा प्रतीत होता है और शरीरमें सुइयोंके चुभने-जैसे कष्टकी अनुभूति होती है तथा कष्टकारी शूलके आघातसे मर्मस्थलमें पीड़ा होती है, रोगीके पर्व-पर्वमें दर्द होता है और ज्वर भी रहता है। उसकी साँस फूलती है। प्यास बढ़ जाती है। उसकी वाणीमें स्वर-भंग होने लगता है तथा शरीरमें कम्पन रहता है।

रोगी[3] इस रोगमें कबूतरके समान कहरने लगता है। उसके पार्श्वभागमें शूल उठने लगता है। कफादि विकारोंके कारण उसको वमन होता है। उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है और शरीरका वर्ण कान्तिहीन हो जाता है।

राजयक्ष्मारोग होनेसे रोगीका शरीर क्षीण होने लगता है। उसके पेशाबमें रक्त आता है। साँस फूलनेसे पीठ और कमरमें पीड़ा होती है। जिनको शास्त्रमें आयु कहा गया है, वे आयुरूपी धातुएँ शरीरमें प्रकुपित होकर दौड़ने लगती हैं। यक्ष्मासे पीड़ित रोगी घरको खाँसी और खखारसे भर देता है। यह खखार (पीब)-के समान दुर्गन्धियुक्त तथा हरे और लाल रंगका होता है। ऐसे रोगीको सोनेमें विशेष कष्ट होता है अर्थात् सुप्तावस्थामें भी रोगीको कष्ट होता रहता है। यह रोग रोगीके हृदयको गिरते हुएके समान कष्ट देता है। अचानक रोगीमें उष्ण और शीतल भोजन एवं पेय-पदार्थ

१-अ०हृ०नि०अ० ३। २१, सु०उ० ५२। २-अ०हृ० नि०अ० ३, २४-२५; सु०उ० ५२। ३-अ०हृ०नि०अ० ३, सु०उ० ५२

ग्रहण करनेकी इच्छा होने लगती है। वह बहुत खाता है। उसका बल क्षीण होने लगता है। मुखपर स्निग्धता बनी रहती है। उसके नेत्र भी शोभा-सम्पन्न रहते हैं, किंतु रोगके बलवान् होनेके बाद सभी विनाशकारी राजयक्ष्माके लक्षण रोगीके शरीरमें जन्म लेते हैं।

क्षयजन्य[1] कासका रूप ऐसा ही है। इस रोगसे क्षीण हुए शरीरवाले रोगियोंकी मृत्यु निश्चित ही हो जाती है अथवा रोगियोंके बलवान् होनेपर यह रोग याप्य—साध्य रहता है। क्षतजन्य कासरोग भी उसी प्रकारका होता है। कास जब रोगीपर अपना प्रथम कुप्रभाव दिखाना प्रारम्भ करे, उसी कालमें इसकी चिकित्सा अपेक्षित है।

रोगीमें[2] उपचारका सामर्थ्य होनेपर यह रोग साध्य भी है। अतः रोगीको यथासामर्थ्य इस रोगका उपशमन अवश्य करना चाहिये, किंतु उपचार प्रारम्भ करनेके पूर्व उसके वात आदि सभी प्रकारोंपर विचार करके ही पृथक्-पृथक् रूपसे प्रयोज्य औषधि तथा पथ्यापथ्य आहार ग्रहण करना हितकर होता है। वृद्ध प्राणीके शरीरमें जो मिश्रित भावसे वातजादि कासरोग होते हैं, वह याप्य है। उनकी उपेक्षा करनेसे खाँसी, श्वास, क्षय, वमन तथा स्वरभंगादिक प्रतिश्यायका प्रकोप होता है। इसकी उपेक्षा करनेसे कासरोग असाध्य हो जाता है। इसलिये शीघ्र ही इसका उपचार कर लेना चाहिये। (अध्याय १४९)

श्वासरोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—अब मैं श्वासरोगका निदान कह रहा हूँ।

कासरोगके परिपक्व हो जानेपर उसीसे शरीरमें श्वासरोगकी उत्पत्ति होती है अथवा प्रारम्भकालमें वात-पित्त तथा कफजन्य दोषोंके प्रकुपित होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगका प्रादुर्भाव आमातिसार, वमन, विषपान और पाण्डु-रोग एवं ज्वरसे भी हो जाता है। धूलि-ग्रहण, धूप तथा शीत वायुके सेवन करनेसे भी इस रोगका जन्म हो सकता है। मर्मस्थलमें आघात पहुँचनेसे और बर्फीले जलका प्रयोग करनेसे भी शरीरमें इस रोगका प्रकोप हो जाता है।

यह रोग क्षुद्र, तमक, छिन्न, महान् तथा ऊर्ध्व नामसे पाँच प्रकारका माना गया है। कफके द्वारा सामान्य ढंगसे शरीरमें अवरोधित गतिवाला सर्वव्यापी वायु प्राणवाही, जलवाही, अन्नवाही तथा रक्त-पित्तादिजन्य स्रोतोंको प्रकुपित करता हुआ जब हृदयमें स्थित हो जाता है, तब वह आमाशयमें श्वासरोगको उत्पन्न करता है।

इस रोगका पूर्वरूप इस प्रकार होता है—रोगीके हृदय और पार्श्व (बगल)-भागमें शूल उठता है, प्राणवायु शरीरमें प्रतिलोम-गतिसे प्रवाहित होने लगती है, रोगीके मुखसे पीड़ाके कारण बराबर आह-आहकी ध्वनि निकला करती है, फूटे हुए शङ्खको बजानेसे जैसी ध्वनि प्रकट होती है, वैसी ही ध्वनि रोगीके शरीरकी पीड़ाके कारण होती है।

प्रायः शरीरमें इन लक्षणोंका उद्भव अधिक भोजन करनेसे होता है। अधिक भोजन करनेके दोषसे प्रेरित वायु स्वयं मलसे युक्त क्षुद्र श्वासको प्रेरित करता है अर्थात् अधिक भोजन करनेसे रोगीकी साँस फूलने लगती है और उसे मल-विसर्जन करनेकी इच्छा होती है। ऐसी स्थितिमें कफके अवरोधको पार करके वायु प्रतिलोम-भावसे शिरोभागमें प्रवेश करता है, जिससे वह हृदयमें पहुँचता है और वहाँ आमाशयमें जाकर श्वासरोगको बल देता है।

यह वायु[3]-प्रकोप उस समय सिर, गला और हृदयभागको अपने अधिकारमें लेकर पार्श्वभागोंमें पीड़ा उत्पन्न करता हुआ खाँसी, घुरघुराहट, मूर्च्छा, अरुचि और पीनस तथा तृषाका उपद्रव शरीरमें प्रकट करता है। प्राणोंको संतप्त करनेवाली साँस अत्यन्त वेगसे चलने लगती है। यद्यपि खाँसीके द्वारा कण्ठमें आये हुए दूषित कफको थूकनेसे तात्कालिक कुछ शान्ति रोगीको प्राप्त हो जाती है और वह कुछ क्षणके लिये सुखका अनुभव कर सकता है।

श्वासके प्रकोपसे रोगीको प्राणघातक कष्ट होता है। श्वासके प्रकोपसे अत्यन्त कष्ट होनेपर रोगी सो जाता है। यदि बैठ जाता है, तब वह अपनेको कुछ स्वस्थ अनुभव

१-अ०हृ०नि०अ० ३, ३६-३७, सु०उ० ५२। २-अ०हृ०नि०अ० ३, च०चि०अ० १८, सु०उ० ५२। ३-अ०हृ० नि०अ० ४, च०चि०अ० १७, सु०उ०अ० ५१, आयु०नि०चि०दर्श पृष्ठ ४१। ४-च०चि०अ० २१, अ०हृ०अ०४—३

करता है। इस प्रकुपित रोगके कारण रोगीको कष्टाधिक्यके कारण आँखें ऊपरकी ओर निकलती हुई प्रतीत होती हैं, मस्तकसे पसीना छूटने लगता है और रोगी अत्यन्त कातर हो उठता है। बार-बार श्वास आनेसे रोगीका मुँह सूख जाता है। वह काँपता है और उष्ण आहार या पेय पदार्थके सेवनकी अभिलाषा करता है। मेघ घिरनेपर, वर्षा होनेपर, शीत गिरनेपर एवं पूर्वी हवा चलनेपर तथा कफकारक आहार-विहार करनेपर श्वासका वेग बढ़ जाता है।

यदि बलवान् मनुष्यके शरीरमें तमक नामक श्वासरोग होता है तो वह याप्य—साध्य होता है। प्रथम दृष्ट्या तो ज्वर और मूर्च्छासे युक्त होनेपर रोगीके इस तमक श्वासका उपशमन शीतल द्रव्य पदार्थोंसे ही करना चाहिये। ऐसे रोगके उपभेदमें रोगी खाँसी और श्वासके प्रकोपसे ग्रस्त, शरीरसे निर्बल तथा मर्मस्थलकी पीड़ासे अत्यन्त दुःखी रहता है। उसे अधिक पसीना आता है, मूर्च्छा होती है, पीड़ासे वह कराहता रहता है, उसके मूत्राशयमें जलन एवं पेशाब (मूत्र) रुक-रुककर होता है। विभ्रमका प्रकोप होता है। रोगीकी दृष्टि अधोगति रहती है, अधिक कष्ट तथा तापके कारण आँखें अपने स्थानसे निकलती-सी प्रतीत होती हैं, उनमें चिकनापन तथा लालिमा छा जाती है, मुख सूख जाता है। कष्टके कारण रोगी प्रलाप करता है। शरीरका तेज नष्ट होकर चेतना भी नष्ट हो जाती है तथा वह मृत्युको प्राप्त हो जाता है।

महा[1]श्वासका रोग-प्रभेद होनेपर रोगी अपने शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक महत्त्वसे रहित हो उठता है। वह दीन व्यक्तिके समान प्रतीत होता है, श्वासमें पीड़ाके कारण आवाज तथा गलेमें घड़घड़ाहट होती है। वह मतवाले साँड़के समान रात-दिन धूलिधूसरित होकर हुँकारके साथ श्वास छोड़ता है तथा ज्ञान-विज्ञानसे रहित हो जाता है। उसके नेत्र और मुखपर भ्रान्तिकी अवस्था आ जाती है। नेत्रोंसे वह किसी वस्तुको सत्यरूपमें जान नहीं पाता। उसकी जिह्वामें खाये गये द्रव्य पदार्थोंके स्वादको बतानेकी शक्ति नहीं रह जाती। उसके नेत्रोंमें झपकी चढ़ी रहती है। मूत्रके साथ रोगीका तेज भी निकलता है। उसकी वाणी मुखसे टूटी-फूटी निकलती है। रोगीका कण्ठ सूख जाता है। उसकी बारम्बार साँस फूलती है। उसके कान, गला और सिरमें अत्यन्त पीड़ा होती है। जिस रोगीकी लम्बी-लम्बी ऊर्ध्व गतिवाली साँस निकलती है, वह अपने श्वासको नीचेकी ओर ले जानेमें समर्थ नहीं हो पाता।

इस महा[2]श्वासके रोगमें रोगीके मुख और कान कफसे भरे रहते हैं। शरीरका प्रकुपित वायु उसे बहुत ही कष्ट देता है। अब मैं ऊर्ध्व श्वासके भेदकी समीक्षा कर रहा हूँ। इस रोगमें रोगी चारों ओर अपनी दृष्टिको फेंकता हुआ भ्रान्ति प्राप्त करता है। मर्म छेदनेकी-सी वेदना होती है और वाणी रुक जाती है। इन तीनों प्रकारके श्वासोंके लक्षण जबतक प्रकट नहीं होते हैं, तभीतक साध्य होते हैं, परंतु लक्षण प्रकट हो जानेपर असाध्य हो जाते हैं और निश्चित ही मृत्युकारक बन जाते हैं। (अध्याय १५०)

हिक्कारोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं हिक्का (हिचकी)-रोगके निदानको कहूँगा, आप उसे सुनें।

श्वासरोगके जो-जो निदान—पूर्वरूप, संख्या, प्रकृति और आश्रयस्थान कहे गये हैं, वे ही हिक्कारोगके भी होते हैं। यह हिक्का पाँच प्रकारकी होती है—भक्तोद्भवा (अन्नजा), क्षुद्रा, यमला, महती और गम्भीरा। रूक्ष, तीक्ष्ण, खर तथा असात्म्य अन्न अथवा पेय पदार्थोंके सेवनसे प्रकुपित वायु हिक्कारोगको पैदा करती है। इस हिक्कारोगमें रोगी श्वास लेता हुआ क्षुधानुगामी मन्द-मन्द शब्द करता है। अन्न तथा पेय पदार्थके अयुक्तिपूर्वक सेवन करनेसे जो हिक्का (हिचकी) रोगीको आती है, उसे 'अन्नजा हिक्का' कहते हैं। यह हिचकी सात्म्य अन्नपानसे शान्त हो जाती है। अधिक परिश्रम करनेसे शरीरमें प्रकुपित हुआ पवन 'क्षुद्रा हिक्का'को जन्म देता है। वह ग्रीवामूलसे निकलकर मन्द-मन्द गतिसे कण्ठके बाहर आता है। यह रोग अधिक परिश्रम करनेसे बढ़ जाता है, किंतु यथोचित मात्रामें भोजन

१-च०चि० २१, अ०हृ० नि०अ० ४। २-सु०उ० ५१, अ० हृ०नि०अ० ४

कर लेनेपर कुछ शान्त हो जाता है।

जो हिचकी[1] अधिक समयसे एक या दो बार वेगपूर्वक आती है, परिणामतः वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। अपने वेगसे जो रोगीके सिर और ग्रीवाभागको प्रकम्पित कर देती है, उसको 'यमला हिक्का' के नामसे स्वीकार करना चाहिये। इसमें रोगी प्रलाप करता है तथा उसको वमन होता है और उसे अतिसार हो जाता है, कमजोरीसे उसके नेत्र बैठ जाते हैं और जम्भाई आती है। ऐसी अवस्थावाली हिक्काको वेगवती परिणाम देनेवाली 'यमला हिक्का' कहते हैं।

जिस हिक्कारोगके वेगसे रोगीकी भौंह और कनपटियोंमें कष्ट होने लगता है, कान तथा नेत्र बंद हो जाते हैं, कानोंसे सुनायी नहीं देता है और आँखोंसे दिखायी नहीं पड़ता है। रोगीके शरीर, वाणी और स्मरणकी शक्तिको शिथिल करती हुई जो हिक्का अन्तमें उसे संज्ञाशून्य कर देती है, तथा अन्य इन्द्रियोंको दुःखित करती हुई वह उसके मर्मस्थलमें पीड़ा पहुँचाती है तथा रोगीको पीठभागसे झुका देती है एवं शरीरको शुष्क कर देती है, उस हिक्काको 'महती हिक्का' कहा जाता है। यह महामूला, महाशब्दा, महावेगा और महाबला होती है।

गम्भीरा नामकी हिक्का पक्वाशय, मलाशय अथवा नाभिभागसे अपने पूर्वस्वभावके अनुसार शरीरमें प्रकट होती है तो उस रोगीको जम्भाई लेनेके लिये विवश कर देती है। उसके हाथ-पैर आदि सभी अङ्ग फैलने लगते हैं। उस हिक्काके कुप्रभावसे रोगीका सम्पूर्ण शरीर शिथिल पड़ जाता है। इसमें गम्भीर शब्द होता है, इसलिये इसका नाम 'गम्भीरा हिक्का' है।

प्रारम्भमें[2] बतायी गयी भक्तोद्भवा (अन्नजा) तथा क्षुद्रा नामक जो दो हिक्काके प्रकार बताये गये हैं, वे साध्य होती हैं। उन दोनोंको छोड़कर शेष अन्य जो यमलादिक तीन हिक्काएँ हैं, वे असाध्य होती हैं। किंतु चिरकाल (पुरानी) हिचकी, वृद्ध मनुष्यकी हिचकी, अतिस्त्री-सेवीकी हिचकी, व्याधिद्वारा क्षीण देहवालेकी हिचकी, अन्नके अभावसे कृश मनुष्यकी हिचकी—ये सब असाध्य होती हैं। सभी रोग शरीरमें प्राणियोंका विनाश करनेके लिये ही आते हैं। किंतु वे वैसी शीघ्रता नहीं करते हैं, जैसी शीघ्रता इस हिक्काके यमलादिक भेद करते हैं। हिक्का और श्वास—ये दोनों रोग जैसे हैं, वैसे अन्य कोई रोग नहीं हैं। ये दोनों तो मृत्युकाल स्वरूप प्राणीके शरीरमें ही अपना डेरा डाल लेते हैं। (अध्याय १५१)

राजयक्ष्मा-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—अब मैं हिक्कारोगके पश्चात् यक्ष्मारोगके[3] निदानको भलीभाँति कह रहा हूँ।

राजयक्ष्मारोगसे पूर्व प्राणीके शरीरमें अनेक रोग रहते हैं और बादमें अनेक रोग हो जाते हैं। इस रोगको राजयक्ष्मा, क्षय, शोष तथा रोगराज भी कहा जाता है। प्राचीनकालमें नक्षत्र और द्विजोंके राजा चन्द्रमाको यह रोग हुआ था। एक तो यह रोगोंका राजा है और दूसरे इसका नाम यक्ष्मा है। इसलिये इसे 'राजयक्ष्मा' कहा गया है। यह देह और औषधि दोनोंका क्षय कर देता है तथा शरीर और औषधिका विनाश करनेवाले रोगके रूपमें यह उत्पन्न होता है, इसलिये इसका क्षय नाम दिया गया है। यह रसादि धातुओंका शोषण करनेके कारण शोष नामसे भी जाना जाता है। राजाके समान रोगोंका राजा है, जिसके कारण रोगराजके नामसे अभिहित किया गया है।

साहसके कार्य मल-मूत्रादिके वेगका बलात् अवरोध, शुक्रौज, शारीरिक स्निग्धताका विनाश तथा संयमित आहार-व्यवहारका परित्याग—ये चार इस यक्ष्मारोगकी उत्पत्तिके कारण हैं। शरीरमें उन्हीं कारणोंसे कुपित हुआ वायु पित्त एवं कफको व्यर्थमें ही कुपित कर देता है। तदनन्तर वह शरीरके संधिस्थानोंमें प्रवेश करके उनकी शिराओंको पीड़ित करता हुआ रक्त, अन्न, रसवाही आदि सभी स्रोतोंके मुखोंको बंद करता है अथवा उसी प्रकार उन सभीको छोड़कर हृदयभागमें जा पहुँचता है और उसको मध्य, ऊपर, नीचे तथा तिरछे रूपमें व्यथित करता है।

इस रोगके उत्पन्न होनेसे पूर्व रोगीको प्रतिश्याय ज्वर, लार, प्रवाह, मुखमाधुर्य, अग्निमन्दता तथा शारीरिक शिथिलताका दोष होता है। अन्न और पेय पदार्थके प्रति अनिच्छा तथा पवित्रतामें अपवित्रताकी प्रतीति रोगीको होती है। प्रायः

१-अ०हृ०नि०अ०५। २-अ०हृ०नि०अ० ४, च०चि०अ० २१। ३-सु०उ०तं०अ० ४१, च०चि०अ० ६, अ०हृ०नि०अ० ५

उसको भोज्य एवं पेय पदार्थोंमें मक्खी, तृण और बाल गिरनेका भान होता है। रोगीका हृदय कफादिसे संश्लिष्ट हो जाता है, उसको वमन होता है। आहार-विहारके प्रति उसकी रुचि नहीं रह जाती है। भोजन करनेपर भी वह अपनेको शक्तिहीन समझता है। उसके हाथ-पैर, जंघा, वक्षःस्थल, मुख, नेत्र तथा कुक्षिभाग सूख जाते हैं। रक्तकी कमीके कारण उसका रंग श्वेत हो जाता है। उसकी भुजाओंमें विशेष प्रकारकी पीड़ा होती है। उसकी जिह्वामें भी ज्वरादिके कारण उत्पन्न हुए छालोंसे कष्ट रहता है। उसको शरीरके प्रति स्वयं घृणा होती है। उसमें स्त्रीसंसर्ग, मद्य और मांसके प्रति प्रेम तथा घृणा दोनों होने लगते हैं। उसके सिरमें चक्कर आता है। इस रोगके होनेपर रोगीके नाखून, केश तथा अस्थि अपेक्षाकृत पहलेसे अधिक बढ़ते हैं। वह स्वप्नमें अपनी पराजय देखता है।

पतंग, कृकल (गिरगिट), साही, बंदर, कुत्ता तथा पक्षियोंसे भयार्त होकर अपनेको पराजित या गिरता हुआ देखता है। स्वप्नमें अपने शरीरके बाल तथा अस्थिभागको भस्म होते हुए देखकर वह भयभीत होता है। वह स्वप्नमें ही वृक्षपर चढ़ता है। उसे स्वप्नमें निर्जन ग्राम और देशका दर्शन होता है। जलरहित भूभागको देखनेके कारण उसे स्वप्नमें भय लगता है। उसको आकाशमें प्रकाशपुञ्ज तथा दावाग्निसे जलते हुए वृक्ष दिखायी पड़ते हैं, जिससे उस रोगीका मन भयसे व्याकुल हो उठता है। ये सब लक्षण रोगप्रभावके कारण ही होते हैं। अतः इसे पूर्वरूप कहते हैं।

इस राजयक्ष्मारोगके कोष्ठगत होनेपर रोगीको पीनस, श्वास, कास, स्वरभंग, सिरपीड़ा, अरुचि, ऊर्ध्वनिःश्वास, शारीरिक शुष्कता, वधजन्य कष्ट तथा वमन होता है। उसके पार्श्वभाग तथा संधिस्थानमें पीड़ा होती है। उसका शरीर ज्वरसे संतप्त रहता है। इस प्रकार इस राजयक्ष्माके उक्त ग्यारह लक्षण रोगीके शरीरमें पाये जाते हैं। उनके उपद्रवसे रोगीके कण्ठमें ऐसी पीड़ा होती है जैसी श्वासमार्गमें विकृति एवं हृदयवेदना होनेपर होती है। उसे जम्भाई आती है, प्रत्येक अङ्गमें दर्द होता है, मुखसे बार-बार थूक निकलता है, मन्दाग्नि हो जाती है तथा मुखसे दुर्गन्ध आने लगती है।

इस राजयक्ष्माके रोगमें वायुप्रकोपके कारण रोगीके शिरोभाग तथा दोनों पार्श्वमें शूल उठता है, जिसके कारण असह्य पीड़ा होती है। दर्दसे रोगीका अङ्ग-अङ्ग टूटता रहता है, कण्ठावरोध और स्वरभंग हो जाता है। पित्तदोष होनेसे रोगीको स्कन्ध-प्रदेश, हाथ तथा पैरमें दाह, अतिसार, रक्तसंश्रित वमन, मुखदुर्गन्ध, ज्वर और एक प्रकारका मद रहता है। कफजन्य दोषके कारण रोगीको अरुचि, वमन, खाँसी, आधे शरीरका भारीपन, लारबाहुल्य, पीनस, श्वास, स्वरभेद और अग्निमान्द्यका प्रकोप होता है। इसी अग्निमान्द्यता एवं शरीरमें शोथको उत्पन्न करनेवाले प्रदूषित कफजन्य दोषोंसे रोगीके रक्तवाही आदि स्रोतोंके मुखोंका अवरोध तथा धातुओंके क्षीण हो जानेपर हृदयमें दाह और अन्य उपद्रव होते हैं।

शरीरके अंदर पक्वाशय-भागमें उक्त दोषोंके कारण प्रायः अन्न आम्लिक रससे पकता है, जिसके कारण वह सिद्ध नहीं होता और न तो शारीरिक पुष्टतामें सहयोग करनेकी क्षमता ही अर्जित कर पाता है। रोगीके शरीरका ऐसा आम्लिक रस रक्त और मांसको पुष्ट करनेमें अक्षम होता है। सप्त धातुओंका पोषण न होनेपर रोगी केवल मलके भरोसे जीता है।

रोगीमें इन लक्षणोंके कम होनेपर भी अत्यन्त क्षीणता आ सकती है। इस रोगमें छः प्रकारका क्षय होता है। अतः उन सभी प्रकारोंके क्षय होनेपर रोगीके शरीरमें होनेवाले उपद्रवोंको यथोपचार रोककर यथासम्भव इस रोगको समूल दूर करनेका प्रयास करना चाहिये अन्यथा इस रोगसे प्राणीकी मृत्यु ही निश्चित होती है।

उक्त रोगके दोष पृथक्-पृथक् या समूहवत् शरीरपर प्रकट होते ही रोगीके मेदका क्षय हो जाता है, जिसके कारण उसके स्वरोंमें भेद, क्षीणता, रूक्षता और चञ्चलता आ जाती है। वात-प्रकोप होनेसे रोगीका कण्ठ सफेद रंगका हो जाता है। उसके शरीरकी स्निग्धता तथा उष्णता समाप्त हो जाती है। पित्तदोषके कारण रोगीके तालु और कण्ठमें दाह होता है और निरन्तर वह सूखता जाता है। रोगीका मुँह और कण्ठ कफसे संलिप्त रहता है। उसके गलेसे घुरघुराती हुई ध्वनि निकलती है। उस कालमें रोगी स्वयंमें सभी विरुद्ध आचरणोंसे प्रभावित हो उठता है। अतः वह उसकी ओर उन्मुख हो जाता है, जिससे अन्य सभी लक्षणोंकी उत्पत्ति हो जाती है। इससे रोगी मृत्युको ही प्राप्त

१-सु०उ० ४१, अ०हृ० नि०अ० ५. २-च०चि०अ० १६, अ०हृ०नि०अ० ५.

होता है। वैसी स्थितिमें रोगीको सब ओर धुएँके समान ही दिखायी देता है और सभी कफजन्य लक्षण उसमें प्रकट हो उठते हैं।

इस क्षयरोगसे बचना बड़ा ही कष्टसाध्य है। यदि सभी लक्षणोंसे युक्त होकर यह प्राणीपर आक्रमण करता है तो रोगीकी जीवनरक्षा असम्भव हो जाती है। अतः अल्प लक्षणोंके दिखायी देते ही इस रोगको शरीरसे दूर करनेहेतु विधिवत् चिकित्सा करनी चाहिये। (अध्याय १५२)

अरोचक, वमन आदि रोगोंका निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको अरोचकरोगके[1] निदानके विषयमें बताऊँगा। जब वात-पित्त तथा कफजन्य दोष जिह्वा और हृदय या मनका आश्रय लेते हैं, तब प्राणीके शरीरमें अरोचकरोग उत्पन्न होता है।

यह रोग वातजन्य, पित्तजन्य तथा कफजन्य—इन तीन रूपोंके अतिरिक्त सन्निपातजन्य और मनःसंतापजन्य भी होता है। इस रोगके पाँच प्रकार हैं। यथा—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और मनःसंतापज। वात आदि दोषोंसे होनेवाली अरुचिमें रोगीका मुख क्रमशः वायुमें कसैला, पित्तमें तिक्त, कफमें मीठा या माधुर्ययुक्त, सन्निपातमें विकृतरस तथा शोक-दुःखादिमें दोषानुसार स्वादवाला[2] हो जाता है। इस रोगमें रोगीको किसी द्रव्य-विशेषका आस्वाद नहीं प्राप्त होता है। शोक, क्रोधादिमें मनकी जैसी स्थिति होती है, उसी प्रकार उसकी भोजनादि ग्रहण करनेकी अभिरुचि होती है। जब मन शोकादिके कारण खिन्न रहता है तो भोजनके प्रति अरुचिके कारण उसे अन्नादि ग्रहण करनेकी अनिच्छा हो जाती है। इस रोगमें अग्निदुष्ट ही प्रधान कारण है।

छर्दि[3] अर्थात् वमनरोग पाँच प्रकारका होता है—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज तथा अनभिप्रेत (इच्छाके विपरीत)। दुष्ट पदार्थोंके ग्रहण करनेसे पाँचवीं छर्दि होती है। सम्पूर्ण प्रकारके वमनरोगमें उदान वायु प्रकुपित होकर सभी प्रकारके अधिकृत दोषोंको उद्दीप्त करता है, जिसके फलस्वरूप क्रमशः शीघ्रातिशीघ्र रोगीको कष्ट होता है, मुख लवणयुक्त रहता है तथा उससे पानी छूटता है और धीरे-धीरे आहार-व्यवहारके प्रति अरुचि हो जाती है। इस रोगमें रोगीको नाभि तथा पृष्ठ-प्रदेशमें वेदना होने लगती है। रोगीके पार्श्वभागमें भी पीड़ा होती है, जिसके कारण पेटमें अवस्थित अन्न ऊपरकी ओर पक्वाशयसे निकलने लगता है। अर्थात् रोगीको वमनकी इच्छा होती है। अन्ततोगत्वा रोगीके मुँहसे कषाय और फेनयुक्त थोड़ा-थोड़ा करके वमन होता है।

इस वातजन्य वमनरोगमें अत्यन्त कष्टसाध्य पीड़ाके साथ रोगीको तेज दर्द होनेके कारण चिल्लाना पड़ता है। उसको खाँसी आती है, उसके मुखमें शोथ होता है और उसकी वाणीमें स्वरभंग होने लगता है।

पित्तजन्य वमनरोग होनेपर रोगीको क्षारसे युक्त जलके समान धूम्र, हरित या पीतवर्णवाले पित्तका वमन होता है अथवा रक्तसे युक्त अम्ल, कटु, तिक्त पित्त उसके मुँहसे निकलता है। उसके शरीरमें तृष्णा, मूर्च्छा, संताप तथा अग्निके समान दाहका प्रकोप होता है।

कफजन्य वमनरोगके होनेसे रोगीमें स्निग्ध, घनीभूत पीत तथा मधु (शहद)-के समान मधुर, श्लेष्मा (कफ)-का उदय होता है। यह कफ लवण-रससे भी युक्त हो जाता है। इस कफदोषके कारण उत्पन्न वमनके कष्टसे रोगीको भयवश रोमाञ्च हो जाता है। इस रोगमें रोगीके मुखमें शोथ हो जाता है। उसके मुखमें मिठास भरी रहती है, उसके नेत्रोंमें तन्द्रा छायी रहती है, उसके हृदयमें कष्ट होता है और उसे खाँसी आती है।

सन्निपातिक वमनरोगमें सभी दोषोंके लक्षण दिखायी देते हैं। ऐसी अवस्थामें उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। ऐसे रोगीको देखना, सुनना आदि कुछ अच्छा नहीं लगता है।

आँतादिके प्रकुपित होनेपर ही उदरभागमें कृमिजन्य और अन्नजन्य वमनरोग भी उत्पन्न होता है। कृमिजन्य छर्दिरोगमें शरीरमें शूल, कम्पन, मिचली तथा हृल्लास (हृदयकी धड़कन)-के उपद्रवकी उत्पत्ति विशेष रूपसे ही होती है। (अध्याय १५३)

१-च०चि०अ० ८, सु०उ०तं०अ० ५७
२-अ०हृ०नि०अ० ५, च०चि०अ० २६
३-च०चि०अ० २३, सु०उ० तं०अ० ४९
४-च०चि०अ० २०, अ०हृ०नि०अ० ५

हृदय-तृषारोगका निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपसे हृदयरोगका निदान कहूँगा।

हृदयको सामान्यतः सभी रोगोंसे रुग्ण बनानेवाले प्रतीक दोष वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातके साथ कृमिदोष भी हैं। जिसके कारण हृदयमें वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और कृमिज—ये पाँच प्रकारके रोग माने गये हैं।

वातदोषके कारण वातज हृदयरोगीको अपने हृदयमें तीव्र शूलका अनुभव होता है, सूईके चुभने और फटनेकी-सी पीड़ा होती है। दोषके कुप्रभावसे हृदयमें उठी हुई असह्य वेदनासे व्यथित होकर रोगी रोता रहता है। यह वातज दोष हृदयको विदीर्ण कर देता है। उसके दुष्प्रभावसे शरीरपर शुष्कता छायी रहती है। रोगी दुःख-सुखकी अनुभूतिमें स्तब्ध (अवाक्) बना रहता है। स्वयंमें उसे शून्यताकी अनुभूति होती है। मनमें भ्रमकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अकस्मात् उसमें दीनता, शोक, भय, शब्द-श्रवणमें असहिष्णुता, कम्पन, मोह, श्वासरोध तथा अल्पनिद्राके लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं।

पित्तदोषसे हृदयरोगीको तृष्णा, थकान, दाह, स्वेद, अम्ल उद्गार, क्लम (थकान), अम्लपित्तात्मक वमन, धूम्रदर्शन और ज्वर होता है। कफजन्य दोष होनेसे हृदयमें स्तब्धता तथा हृदयके अंदर पत्थरके समान भारीपन हो जाता है। इन दोषोंके अतिरिक्त ऐसे रोगीको खाँसी, अस्थि, पीड़ा, थूक, निद्रा, आलस्य, अरुचि और ज्वरका भी उपद्रव होता है।

हृदयरोगमें जब उपर्युक्त तीनों दोषोंके लक्षण शरीरमें प्रकट हो उठते हैं तो वह सन्निपातज हृदयरोग हो जाता है। कृमिजन्य हृदयरोगमें रोगीके नेत्रोंका वर्ण काला हो जाता है। उसके नेत्रोंके सामने अन्धकार छाया रहता है। उसको हल्लास, शोथ, खुजलाहट तथा मुँहसे कफ आता है। इस रोगमें रोगीका हृदय ऐसी असह्य पीड़ासे व्यथित होता है, जैसे वह आरेसे चीरा जा रहा हो। यह रोग बड़ा भयंकर और शीघ्र प्राणघातक होता है। इसलिये इस रोगकी शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये।

वात, पित्त, कफ, सन्निपात, रसक्षय तथा बलकी अल्पता और उपसर्ग—इस प्रकार तृषा (तृष्णा या तृषारोग) छः प्रकारका होता है (उनके नाम हैं—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, बल (रस)-क्षयज तथा उपसर्गज)। इस प्रकारके सब तृषारोगोंका मुख्य कारण तो वात-पित्तसंश्रित दोषमें विद्यमान रहता है। इन दोषोंके द्वारा रोगीके शरीरकी धातु (शक्ति)-का शोषण होनेसे चक्कर, कम्पन, ताप, हृद्दाह, मोह तथा मूर्च्छाका उपद्रव होता है। इस रोगमें जिह्वाके मूलभाग, कण्ठ और तालुमें सञ्चार करनेवाली जलवाही शिराओंको शुष्क बनाकर तृष्णा (प्यास) उत्पन्न होती है।

इस तृषारोगमें मुखशोष, जलसे अतृप्ति, अन्नके प्रति घृणा, स्वरभंग तथा कण्ठ-ओष्ठ, तालुकी कर्कशताके कारण जिह्वा निकालनेमें रोगीको कष्ट होता है। वह असह्य वेदनाके कारण प्रलाप करता है, उसका चित्त स्थिर नहीं रहता तथा मनमें अनेक प्रकारके उद्गार उठते हैं। वायु-प्रकोपके कारण उत्पन्न तृषासे शरीरमें कृशता और दीनता आ जाती है, सिरमें शंखोद्भेद, असह्य पीड़ा और भ्रम उत्पन्न होता है। पित्तदोषके कारण तृषारोगी गन्ध-ज्ञानकी क्षमतासे रहित, श्रवण-शक्तिसे निर्बल, निद्राहीन तथा अन्य शारीरिक क्षमताओंके ह्रासोन्मुख होनेसे बलहीन हो जाता है। उसको शीतलताका अनुभव होता है और मुखसे अम्लयुक्त फेन निकला करता है।

पित्तज तृषारोगमें रोगीके मुखमें तिक्तता बनी रहती है और मूर्च्छाका भी प्रकोप होता है। रोगीके नेत्र रक्तवर्णके हो जाते हैं। उसके मुखमें निरन्तर शुष्कता बनी रहती है। शरीरमें दाह रहता है और मुँहसे अत्यन्त धूमायित वायु छूटती है।

कफज तृषारोगमें वायु प्रकुपित हो उठती है। उसके कुप्रभावसे अन्तःस्थ स्रोत कफयुक्त हो जाता है और उसके बाद वह उसमें पंकवत् सूख जाता है। उसका कण्ठभाग काँटोंसे चुभते हुएके समान व्यथित होता है। रोगीमें निद्रा छायी रहती है और उसका मुख सदैव मधुर (मीठा) बना रहता है। ऐसा रोगी पेट फूलने, सिरपीड़ा, जडता, शुष्कता, वमन, अरुचि, आलस्य तथा अग्निमान्द्यके दोषसे युक्त होता है।

जिस तृषारोगमें तीनों दोषोंके मिले हुए लक्षण पाये

१-च०चि०अ० २६, सु०उ० ४३, चा०चि०अ० ४३
२-च०चि०अ०२६, सु०उ०अ० ४३
३-च०चि० २२, सु०उ०तं० अ० ४८, अ०ह०नि०अ० ५

जाते हैं, वह त्रिदोषसे उत्पन्न होती है। इस रोगमें आँवकी उत्पत्तिके कारण रक्तवाही स्रोतका अवरोध होता है। जिसके कुप्रभावसे वात-पित्तका दोष शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। उससे रोगीके शरीरमें उष्णता बढ़ जाती है, जिसके कारण शीतल जल प्राप्त करनेकी अभिलाषिणी तृष्णाका प्रादुर्भाव होता है अर्थात् रोगी इस कालमें प्याससे बेचैन हो उठता है। उसी उष्णताके कारण शरीरमें प्रविष्ट हुआ जल जब ऊपरी कोष्ठमें जाता है, तब उसे पित्तजा नामक तृष्णाकी उत्पत्ति होती है। अत्यधिक जल पीनेसे जो तृष्णा शान्त नहीं होती, अपितु तीव्रगतिसे बढ़ती ही जाती है, वह शरीरके स्निग्ध अंशको जला देनेवाली होती है। उसको स्नेहपाकजा अथवा पित्तजा नामकी तृष्णा कहा गया है।

स्निग्ध, कटु, अम्ल तथा लवणरससंश्लिष्ट भोजन करनेसे कफोद्भव तृष्णाका जन्म होता है। जब तृष्णा शरीरके रसको विनष्ट करनेवाले उपर्युक्त लक्षणसे समन्वित हो जाती है, तब वह क्षयात्मिका तृष्णा कहलाती है। जो शोष-मोह-ज्वर आदि अन्य दीर्घकालतक रहनेवाले रोगोंके कारण शरीरमें तीव्र तृष्णा उत्पन्न होती है, उसे उपसर्गात्मिका तृष्णाके नामसे स्वीकार किया गया है।

(अध्याय १५४)

मदात्यय-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं प्राचीन मुनियोंके द्वारा प्रतिपादित मदाधिक्यके निदानको कहता हूँ।

मद्य, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, आशुकारी, लघु, विकाशी तथा विशद होता है। ओज इसके विपरीत होता है अर्थात् ओज मन्द, शीत, मधुर, सान्द्र, स्निग्ध, स्थूल, चिरकारी, गुरु और पिच्छल होता है। तीक्ष्णादि दस गुण मद्यमें होता है और यही गुण विषमें भी होते हैं, जो प्राणियोंके चित्तमें हलचल मचानेवाले तथा प्राणघातक होते हैं। प्रथम मदमें मद्य अपने तीक्ष्णादि दस गुणोंसे ओजके मन्दादि दस गुणोंको संक्षुभित करके चित्तमें विकार उत्पन्न कर देता है। दूसरा मद प्रमादका स्थान है।[1] इसमें दुष्ट विकल्पोंसे उपहत मनुष्य कर्तव्याकर्तव्यसे अज्ञान होकर मद्यके द्वितीय वेगको अधिक सुखकर मानता है। रजोगुणी या तमोगुणी मनुष्य मध्यम और उत्तमकी संधि अर्थात् द्वितीय और तृतीय मदकी मध्यावस्थामें पहुँचकर अंकुशरहित मदोन्मत्त निरंकुश हाथीकी तरह कुछ भी नहीं करता। यह मद्यावस्था निन्दनीय मनुष्यों तथा दु:शीलोंकी भूमि अर्थात् एकमात्र मदिरा ही अनेक मुखवाली दुर्गतिकी आचार्य है। मदकी तीसरी अवस्थामें पहुँचकर मनुष्य निश्चेष्ट होता हुआ मौन होकर सोया रहता है। वह पापात्मा मरनेसे भी अधिक बुरी दशामें पहुँच जाता है। मद्यमें आसक्त मनुष्य धर्म-अधर्म, सुख-दु:ख, मान-अपमान, हित-अहित, शोक-मोहकी अनुभूतिसे रहित हो जाता है। वह शोक, मोहादिसे समन्वित रहता है। ऐसा प्राणी उन्माद-भ्रम और मूर्च्छामें सदैव विद्यमान होता है और अन्ततोगत्वा मिर्गीके रोगीके समान भूमिमें गिरकर छटपटाता रहता है। जो व्यक्ति बलवान् हैं, समुचित भोजन करते हैं या यथाशक्ति प्रचुरमात्रामें भोजन करके पचा जाते हैं, उनमें मद नहीं होता है। यह मदात्ययरोग वात-पित्त तथा कफके प्रकुपित होनेके कारण उत्पन्न हुए अन्य सभी दोषोंसे होता है।

इस प्रकार वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सन्निपातिक नामसे यह मदात्यय चार प्रकारका होता है। मोह, हृदयवेदना, पुरीषभेद, निरन्तर तृषा, कफ, पित्तज्वर, अरुचि, हृदयमें विबन्धता, अन्धकार, खाँसी, श्वास, निद्रा न आना, पसीना, विष्टम्भता, सूजन, चित्तविभ्रम, स्वप्नदर्शनसे घबड़ाहट, मना करनेपर भी बोलते रहना आदि—ये सब मदात्ययके सामान्य लक्षण हैं।

पित्तदोषके कारण मदात्यय होनेपर प्राणी दाहज्वर, स्वेद, मोह, प्यास, अतिसार और विभ्रमके कारण उपद्रवसे ग्रस्त होता है। श्लेष्मज मदात्ययरोगमें रोगी वमन, हृल्लास (धड़कन), निद्रा तथा अग्निमान्द्यके कारण उदरकी गुरुताके दोषसे संत्रस्त रहता है। सन्निपातिक दोषवाले मदात्ययमें पूर्वकथित सभी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह सब जानकर जिस प्राणीकी अभिरुचि सहसा मद्यपानमें हो जाती है तो उसमें ध्वंसक और शोषक—ये वातज व्याधियाँ हो जाती हैं। ये कष्टसाध्य होती हैं और विशेषकर दुर्बल मनुष्यको होती हैं।

१-च०चि०अ० २४, १२, अ०ह०नि०अ० ६

ध्वंसकमें कफकी प्रवृत्ति, कण्ठशोष, अतिनिद्रा, शब्दका न सहना होते हैं, विक्षय (शोषक)-रोगमें चित्तविक्षेप, अङ्गमें पीड़ा, हृदय तथा कण्ठमें रोग, सम्मोह, खाँसी, तृष्णा, वमन तथा ज्वर होते हैं। अतः जो व्यक्ति जितेन्द्रिय हो, वह इन सभी बातोंपर विधिवत् पहले विचार करे। तदनन्तर वह मद्यके दोषसे अपनेको दूर कर ले। इसीमें उसका कल्याण है। मद्यसे दूर रहनेवाला शारीरिक तथा उन्माद आदि मानसिक विकारोंसे कभी कष्ट नहीं पाता है।

रजोगुण, तमोगुणकी प्रधानतावाले मोहजन्य दोष तथा असंयमित आहार करनेवाले प्राणीको मद, मूर्च्छा और संन्यास नामक तीन प्रकारके रोग होते हैं। यथा—शरीरमें इनका प्रकोप होनेपर ये तीनों रोग रस, रक्त और चेतनाके ही स्रोतोंके निरोध हो जानेसे होते हैं। इनमें मदसे मूर्च्छा और मूर्च्छासे संन्यास उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं।

मदात्ययरोग मद, वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातके दोषोंसे तो होता ही है, किंतु रक्त, मद्य और विषके कारण भी यह शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। शरीरमें शक्तिकी अनन्तता न होनेके कारण जब शक्ति क्षीण हो जाती है तो प्राणी अपनी शक्तिका आभासमात्र करता है। उसकी चित्तवृत्तियाँ चञ्चल हो उठती हैं। वह छल-कपटके व्यवहारसे घिरा रहता है।

वातज मद्यसे मनुष्यका शरीर रूक्ष-श्याम और अरुण-वर्णका हो जाता है। पित्तज मद्यसे प्राणी क्रोधी हो उठता है। उसके शरीरका वर्ण लाल और पीला हो जाता है। वह कलहमें अभिरुचि लेता है। कफोत्पादक मदात्ययमें रोगी जब सोता है तो उसे स्वप्न दिखायी देते हैं। स्वप्नमें असम्बद्ध, अनर्गल प्रलाप करता है। उसकी चित्तवृत्तियाँ किसी विशेष ध्यानमें एकाग्र होकर अनुरक्त रहती हैं। सभी दोषोंके कारण उत्पन्न होनेवाले सन्निपातजनित मदमें प्राणीका वर्ण रक्त हो जाता है और उसके शरीरमें स्तम्भन होने लगता है, जिसके कारण उसके अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो जाते हैं।

इस मदात्ययरोगमें तो प्राणीके शरीरमें पित्तदोष सर्वप्रथम ही प्रकट हो जाता है। उसकी समस्त शारीरिक चेष्टाएँ विकृत हो जाती हैं। उसे तृष्णा, स्वरभंग तथा अज्ञानकी अवस्था प्राप्त होती है। उसको सद्-ज्ञान नहीं रह जाता है। विषज मदमें शरीरमें कम्पन होता है। वह गहन निद्रामें सोता है और उसको इस मदात्ययरोगमें अत्यधिक थकानकी अनुभूति होती है।[1]

मनुष्यको शरीरके अंदर विद्यमान रक्त, मज्जादिमें उभरे हुए वात-पित्त तथा कफजनित दोषोंके लक्षणोंको देखकर यथापेक्षित वातज, पित्तज, कफज या सन्निपातज मदात्ययका निर्धारण करना चाहिये और उसी रोगके अनुसार चिकित्सा भी करनी चाहिये। यथा—वातज, मदात्यय (मूर्च्छा) होनेपर सामान्यतः रोगी आकाशको लाल-नीला अथवा काला रंग देखता हुआ अपनेको अन्धकारमें पहुँचा हुआ मूर्च्छित मानता है। शीघ्र मूर्च्छा टूटनेपर वह हृदयकी पीड़ा—कम्पन तथा भ्रमसे संतप्त रहता है।

जो व्यक्ति वातिक मदात्ययदोषसे ग्रस्त होता है उसे खाँसी आती है और कान्ति पीली एवं लाल रंगकी हो जाती है। वह अधिकतर मूर्च्छामें ही रहता है। पित्तात्मक दोषकी सामान्यतः परिणतिमें रोगीको आकाश रक्त अथवा पीतवर्णका प्रतीत होता है और अन्तमें उसे अन्धकार-ही-अन्धकार दिखायी देता है। उस समय उसको विशेष प्रकारका ज्ञान प्राप्त होता है। उसके शरीरसे पसीना निकलता है। वह शरीरमें उत्पन्न हुए दाह, तृष्णा तथा तापसे पीड़ित हो उठता है। कफसे संश्लिष्ट होनेपर रोगीको एक छिन्न-भिन्न होती हुई नीली-पीली आभा दिखायी देती है। उसके लाल, पीले और नीले नेत्रोंमें व्याकुलता छायी रहती है। कफज मूर्च्छामें रोगी आकाशको मेघोंसे आच्छन्न देखता हुआ मूर्च्छित हो जाता है। उसे गहन निद्रा आती है, इसलिये उसकी नींद बहुत देरके बाद टूटती है। होशमें आनेपर उसके हृदयमें धड़कन होती है और प्राण सूखते हुए प्रतीत होते हैं। उक्त दोषके कारण उत्पन्न हुए भारीपन और आलस्यके वशीभूत हुए अङ्गोंसे उसको ऐसी अनुभूति होती है, जैसे शरीर राजधर्मसे अनुप्राणित पुरुषों (सिपाहियों)-के द्वारा प्रताड़ित किया गया है। इन सभी दोषोंका प्रभाव जब एक साथ शरीरपर पड़ता है तो सन्निपातकी अवस्था आ जाती है। उस कालके मदात्ययमें प्राणीका सम्पूर्ण शरीर (अपस्मार) मिर्गीके रोगसे ग्रस्त हुएके समान पृथ्वीपर गिर पड़ता है। अपस्मारमें रोगीकी चेष्टा बीभत्स हो जाती है और इसमें नहीं होती है।[2]

१-अ०हृ०नि०अ० ६ २-सु०उ०तं०अ० ४६, अ०हृ०नि०अ० ६

वातादिक दोषोंके वेग समाप्त होनेके कारण उत्पन्न मदात्ययकी मूर्च्छा और अन्य उपद्रवोंसे ग्रस्त प्राणियोंके कष्टोंका उपशमन बिना औषधिक उपचारके ही संयमित रहनेसे स्वयमेव हो जाता है। परंतु संन्यासका रोग औषधके बिना शान्त नहीं होता। इस मदात्ययकालमें वाचिक, शारीरिक तथा मानसिक चेष्टाओंके दबावमें निर्बल प्राणी स्वयं प्राणाघात ही करते हैं। जिससे वे मरे हुएके समान काष्ठवत् हो जाते हैं। यदि उनकी चिकित्सा शीघ्र नहीं की जाती है तो वे अविलम्ब ही मर जाते हैं।

ग्राहादिक हिंसक जलचरोंसे भरे हुए अथाह जलराशिवाले समुद्रके समान इस संन्यास मदात्ययरोगके सागरमें डूब रहे प्राणीकी शीघ्र ही रक्षा करनी चाहिये। उसमें मद, मान, रोष, संतोष आदि विभिन्न प्रवृत्तियाँ होती हैं। उन्हीं प्रवृत्तियोंके द्वारा वह यहाँ-वहाँसे उचित और अनुचितका विचार करके यथापेक्षित कार्यमें सामान्य विधिका प्रयोग करता है, किंतु अयुक्तिपूर्वक मद्यपानसे प्रभावित दशामें ऐसा सम्भव नहीं है। उसे कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान नष्ट हो जाता है। (अध्याय १५५)

अर्श (बवासीर)-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं अर्श (बवासीर) नामक रोगके निदानका विषय बताऊँगा।

प्राणियोंके मांसमें जो कीलक सदा उत्पन्न होते हैं, वे कीलक गुदाके द्वारका अवरोध करते हैं, इसलिये उन्हें अर्श कहा जाता है। वात-पित्त तथा कफजन्य दोष शरीरमें स्थित त्वक्, मांस और मेदाको दूषित करके अपानवायुके मार्गमें अनेक आकृतियोंवाले मांसाकुरोंको जन्म देता है, उन अंकुरोंको अर्श माना गया है। जो अर्श शरीरके साथ ही उत्पन्न होता है, उसे 'सहज' और जो जन्म लेनेके बाद उत्पन्न होता है, उसे 'जन्मान्तरोत्थान' कहते हैं। इस दृष्टिसे अर्शके दो भेद हुए। प्रकारान्तरसे इसके दो भेद और हैं—एक शुष्क (बादी बवासीर) और दूसरा है स्रावी (खूनी बवासीर)। गुदा नामक स्थानका आश्रय लेकर अवस्थित रहनेवाली शुष्क अग्रभागसे युक्त परस्पर भिन्न नाड़ियोंका स्थान है। गुदाभागका परिमाण साढ़े पाँच अंगुलका होता है। उसीमें नीचेकी ओर साढ़े तीन अंगुलके भागमें ये रोग स्थित रहते हैं। उनमें एक नाड़ी बालोंको जन्म देनेवाली शक्तिका सञ्चार करती है और एक नाड़ी आँतके मध्यभागसे होकर नीचेकी ओर आती है। यही आमाशयसे निकलनेवाले मलको लाकर गुदामार्गसे बाहर करती है। उसी विसर्जन कार्यके कारण उसे विसर्जनी नाड़ीके नामसे अभिहित किया गया है। उस विसर्जनी नाड़ीके बाह्यभाग अर्थात् गुदाके मुख- द्वारके बाह्यभागमें एक अंगुलका जो स्थान है, उसीमें इन मांसांकुरोंका जन्म होता है। उसके बाद डेढ़ अंगुलके परिमाणभागमें गुदौष्ठके परे रोमवती त्वचा है, जिसपर रोम नहीं उत्पन्न होते हैं। वहींपर सहोत्थ अर्शका कारण विद्यमान रहता है, जो बाल्यकालमें उपतप्त अर्थात् सहोत्थ दोषको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्यसे युक्त हो जाता है।

प्राणियोंमें इस अर्शरोगका बीज तो माता-पिताके कुपथ्यसे उत्पन्न होता है। देवताओंके प्रकुपित होनेपर तो यही दूसरे रूपसे सान्निपातिक दोषका भी बीज बन जाता है। प्राणियोंमें इस प्रकारके जो कुल (वंश)-क्रमागत रोग होते हैं, वे सभी असाध्य माने गये हैं। सहजोत्थ अर्श तो विशेषरूपसे देखनेमें दुस्साध्य, अन्तर्मुखी, पाण्डुवर्ण सन्निहित और भयंकर उपद्रव मचानेमें समर्थ होते हैं। शरीरके वात-पित्त तथा सन्निपातदोषके अनुसार इनको वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, संसर्गज, त्रिदोषज तथा रक्तज रूपमें नियोजित किया जा सकता है। अर्थात् इन सहजोत्थ अर्श दोषके यही छः प्रकार हैं।

इनमेंसे शुष्क अर्श वात और कफसे होते हैं और आर्द्र अर्श रक्त एवं पित्तसे होते हैं। उसके दोषके प्रकोपका कारण तो पहले ही कहा जा चुका है। इसके अतिरिक्त उदरस्थ अग्निमान्द्य तथा मलाधिक्यकी एकत्रित अवस्थामें अतिशय, अत्यल्प तथा असामयिक जलपान, देश-कालादिके

१-प्रवाहिणी, संवरणी और विसर्जनी।

२-च०चि०अ० १४, सु०नि०अ० २, अ०ह०नि०अ० ७

विपरीत कठिन और अल्पाहार ग्रहण करनेके कारण भी यह उत्पन्न होता है। वस्ति, नेत्र, गले और ओष्ठादिके भागोंमें घट्ट—रगड़ (घेठा), अधिक शीतल जलके संस्पर्श तथा बैठकर लगाम आदिसे साधे जानेवाले वाहन (अश्वादि)-की सवारी करनेसे भी इस रोगकी उत्पत्ति होती है। यह रोग हठात् मल-मूत्रादिके वेगको धारण करने और निकालनेसे भी हो सकता है। ज्वरगुल्म, अतिसार, ग्रहणीरोग, शोथ तथा पाण्डुरोगके प्रभाव एवं दौर्बल्यकारक आहारादिके सेवनसे अन्य उपद्रव और विषम चेष्टाओंसे भी इसका जन्म होता है। स्त्रियोंमें अपक्व-गर्भपात, गर्भवृद्धि तथा तज्जन्य पीड़ाके कारण इस उपद्रवकी उत्पत्ति होती है।

इन्हीं सब कारणोंसे अपानवायु मलस्थानके भागमें कुपित हो जाता है। तदनन्तर वह गुदाभागका शुद्ध कार्य करनेवाली वलियोंमें अपना कुप्रभाव छोड़ता हुआ अर्शके उन कीलकोंके रूपोंमें जन्म लेता है।

इस रोगका पूर्व लक्षण अग्निमान्द्य, विष्टम्भ, पैरोंमें पीड़ा, पिण्डुलिका कष्ट, भ्रम, शरीरमें शिथिलता, नेत्र, शोथ, मलभेद तथा मलग्रह है। इस रोगमें शरीरके अग्रभागसे निश्चेष्ट वायु नाभिभागसे नीचेकी ओर संचरण करता हुआ पीड़ितकर रक्तसंश्रित होकर बड़ी कठिनाईसे बाहर निकलता है। इस रोगमें आँतभागसे अव्यक्त गुड़गुड़ शब्द होता है। क्षारसहित उद्गार, अतिशय मूत्र, अल्पविष्ठा (मल), घृणा, धूमायित डकार, सिर-पीठ, वक्षःस्थलमें पीड़ा, आलस्य तथा धातुक्षरणका उपद्रव होता है। इसमें इन्द्रिय-सुखकी चञ्चलता एवं दुःख होनेके कारण रोगीमें क्रोधकी मात्रा बढ़ जाती है। इस रोगके प्रभावसे रोगीमें विष्ठा-त्यागकी आशङ्का बनी रहती है। उसके पेटमें संग्रहणी, शोथ, पाण्डु तथा गुल्म नामक रोगोंका भी उपद्रव होता है।

इतना ही नहीं, अर्शरोगके होनेसे प्राणियोंमें ये रोग भली प्रकारसे बढ़ते ही जाते हैं। उन अर्शकीलकोंसे गुदामार्ग अवरुद्ध होनेके कारण अपानवायु भी क्रुद्ध हो उठता है, जिसके फलस्वरूप वह शरीरकी समस्त इन्द्रियोंमें स्थित अन्य समानादिक भेदवाले वायु-प्रभेदोंको क्षुब्ध एवं विचलित कर देता है। वह वायु मूत्र, मल, पित्त तथा कफ, रस-रक्तादिको संक्षुब्ध करता हुआ जठराग्निको मन्द बना देता है। उससे प्रायः सभी प्रकारके अर्शरोग[1] उत्पन्न हो जाते हैं।

शरीरमें इन सभी अर्श-भेदोंका प्रकोप होनेपर रोगीके शरीरमें अत्यन्त दुर्बलता, उत्साहहीनता, दैन्य तथा कान्तिहीनता आ जाती है। वह रोगी साररहित वृक्षके समान सारहीन और छायारहित हो जाता है। मर्मस्थलको पीड़ित करनेवाले अत्यन्त कष्टसाध्य उक्त रोगोंका उपद्रव हो जानेसे रोगी एक दिन यक्ष्माके रोगसे भी ग्रस्त हो उठता है। उसके शरीरमें कास, पिपासा, मुखविकृति, श्वास, पीनस, खेद, अङ्ग-भंग, वमन, हिचकी, शोथ, ज्वर, नपुंसकता, बधिरता, स्तब्धता तथा शर्करा एवं पथरीरोग हो जाते हैं। वह क्षीणकाय, स्वरभंग, चिन्तातुर, अरुचि, बारम्बार थूकनेवाला और अनिश्चित स्वभावका हो जाता है। उसके सभी पर्व तथा अस्थिभागमें पीड़ा होती है। उसका हृदय, नाभि, पायु और वंक्षणभाग शूलसे ग्रस्त हो उठता है। उसके गुदामार्गसे चावलके धोवनके समान द्रव निकलता है, जो वर्णमें बगुलेके उदरभागके समान होता है। यह मल कभी-कभी सूखा हुआ, मोतीके अग्रभागकी कान्तिसे सम्पन्न, पके हुए आमके समान पीत, हरा, लाल, पाण्डु, हल्दिया तथा पिच्छिलवर्णका होता है।

वात-प्रकोपके कारण रोगीके गुदाभागमें जो मांसांकुर निकलते हैं, उनके बीच भागोंसे अपानवायु अधिक मात्रामें निकलता है, वे सूखे हुए होते हैं, उनमें चिमचिमाहट या चुनचुनाहट होती है, उनका वर्ण गाढ़े अंगारके समान लाल होता है। वे पीड़ाके कारण रोगीको स्तब्ध बना देते हैं, उन सभी अंकुरोंमें विषमता होती है और उनका स्वभाव बड़ा ही कठोर होता है। इतना ही नहीं, उनमें विशेष समानता भी प्राप्त होती है। वे वक्र और तीक्ष्ण तथा फटे हुए मुखवाले होते हैं।

वातजन्य अर्शके सभी मांसांकुरोंकी आकृतियाँ बिम्ब, खजूर, बेर तथा कपासके फलोंकी भाँति होती हैं। कुछ अंकुर कदम्ब-पुष्प और कुछ सरसोंके फूलके समान आभावाले होते हैं।

इस रोगके होनेपर रोगीके सिर, पार्श्व, स्कन्ध, जंघा,

१-च०चि०अ० ८, १४, अ०हृ०नि०अ० ७

ऊरु और वंक्षणभागमें अधिक पीड़ा होती है। रोगीको हिचकी, उद्गार, विष्टम्भ, हृदयमें पीड़ा तथा अनिच्छाका प्रकोप होता है। उसको खाँसी आती है, श्वास फूलती है और अग्निमन्दता बढ़ जाती है। उसके कानोंमें ध्वनि गुञ्जरित होता रहता है। उसको सदैव भ्रम बना रहता है।

इस रोगमें गाँठदार प्रवाहिकाके लक्षणोंसे युक्त झागदार, पिच्छिलताविशिष्ट बहुत-सा विष्ठा थोड़ा-थोड़ा शब्दकर निकलता है। मलत्यागके समय अत्यन्त वेदना और शब्द होता है। रोगीकी त्वचा काली पड़ जाती है। उसके मल-मूत्रमें अवरोध बना रहता है। उसके नेत्र और मुखपर भी रोगका प्रभाव छाया रहता है। उसको गुल्म, प्लीहा, उदर अष्ठीला-सम्बन्धित विकारोंके सहित हल्लास (दिलमें धड़कन)-का भी रोग हो जाता है।

जो पित्त-प्रकोपके बाद अर्श-सम्बन्धी अंकुर निकलते हैं, वे नीलवर्णके समान मुखवाले तथा लाल-पीली और काली आभासे युक्त होते हैं। इन मांसांकुरोंके अग्रभागसे पतला रक्तस्राव होता है। इनका आकार लम्बा कोमल और आर्द्र रहता है। इनकी लम्बी आकृतियाँ प्राय: शुकजिह्वा, यकृतखण्ड तथा जोंकके मुखकी तरह होती हैं। इस अर्शरोगमें रोगीके शरीरमें दाह, शुष्कता, ज्वर, स्वेद, तृष्णा, मूर्च्छा, अरुचि एवं मोहका प्रकोप रहता है। उसको उष्ण-द्रवयुक्त, नीलवर्ण, पीत या रक्तवर्णका मल पड़ता है, जो प्राय: आँव और धातुसे संश्लिष्ट रहता है। रोगी यवके समान कटि-भागवाला हो जाता है। उसके शरीरकी त्वचा और नख आदिकी कान्ति हरित, पीत तथा हल्दीकी-सी वर्णवाली हो जाती है।

कफजनित विकारके कारण उत्पन्न होनेवाले मांसांकुर पुष्ट मूलभागसे युक्त, सघन, मन्द वेदनाजन्य और श्वेत-वर्णके होते हैं। इनमें स्निग्धता, स्तब्धता और भारीपन होता है। ये मांसांकुर चिकने, नीले तथा कोमल होते हैं और इनमें खुजलाहट होती है। इन्हें छूनेसे सुख मालूम पड़ता है।

ये मांसांकुर बाँसके निकले हुए अंकुर, कटहलकी गुठली तथा गौके स्तनोंकी आकृतिमें पाये जाते हैं। इस अर्शसे ग्रस्त प्राणीके ऊरुभागसे ऊपर संधिस्थान, मलद्वार, वस्ति और नाभि-प्रदेशमें ऐसी पीड़ा होती है, जैसे उन स्थानोंको कोई काट-काटकर फेंक रहा हो। रोगी खाँसी, श्वास, हल्लास, शुष्कता, अरुचि, पीनस, मेहकृच्छ्र, सिरपीड़ा, जड़ता, वमन, शीतप्रकोप, क्षारोत्तेजन, नपुंसकता, अग्निमान्द्य तथा अतिसार आदिके विकारोंसे युक्त हो जाता है।

ऐसे रोगीको वसाके समान प्रतीत होनेवाले कफके साथ रक्तमिश्रित मल पड़ता है। किंतु रक्तका स्राव नहीं होता और न कष्ट ही होता है। रोगीके चर्म आदि श्वेत तथा स्निग्ध हो जाते हैं।

जिन लोगोंमें इस रोगका त्रिदोषजन्य प्रकोप होता है, उनमें सभी संसृष्ट लक्षणोंका उपद्रव होता है। रक्ताधिक्य अर्श होनेसे मांसांकुरके लक्षण पित्तज अर्शके समान ही होते हैं। इसमें रक्तसे भरे हुए वटकी बरोहके सदृश, लाल गुञ्जाफल और मूँगेके समान रक्त होते हैं। उन लाल अंकुरोंपर जब गाढ़े मलका दबाव पड़ता है, तब वे अत्यधिक मात्रामें विकृत गाढ़े रक्तका प्रवाह करते हैं। उस समय रोगीको पीड़ा भी अधिक होती है। अधिक मात्रामें रक्तके गिर जानेसे रोगी मेढ़कके समान पीला पड़ जाता है। उस दुर्बलतामें उत्पन्न हुए अनेक कष्टोंसे पीड़ित रहता है। वह वर्ण, बल, उत्साह और ओज सभीसे रहित हो जाता है। उसकी इन्द्रियाँ कलुषित हो जाती हैं। मूँग, कोदो, जम्बीर (नीबू), ज्वार, करील और चनाका आहार करनेसे उसके गुदाभागमें वायु कुपित हो उठती है और बलपूर्वक वह अधोवर्ती विष्ठादिके स्रोतोंको अवरुद्ध कर उनके मल-मूत्रादिको सुखाकर कष्टप्रद बना देती है। उसके कुप्रभावसे रोगीके कोख, पार्श्व, पीठ और हृदयभागमें भयंकर पीड़ा होती है। पेटमें मलके रहनेसे हृदयमें धड़कन होती है, अधिक पीड़ा रहती है, वस्तिभागमें शूल होता है और गण्डस्थलमें शोथ आ जाता है।

शरीरमें जब वायु ऊर्ध्वगामी हो जाता है तो उसके कारण रोगीको वमन, अरुचि, ज्वर, हृदयरोग, संग्रहणी, मूत्रदोष, बहरापन, सिरपीड़ा, श्वास, चक्कर, खाँसी, पीनस, मनोविकार, तृष्णा, श्वास (कास), पित्त, गुल्म तथा उदरादिके रोग होते हैं, वे सभी वातज रोग हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त कठोर और कष्टकारी होता है। वातदोषका यह प्रकोप ही दुर्नामा, मृत्यु तथा उदावर्त अर्थात् वायुगोलाके नामसे स्वीकार किया गया है। इस वातदोषसे पीड़ित कोष्ठ-भागोंमें यह रोग पूर्वोक्त कारणोंके बिना भी उत्पन्न हो जाता है। सहज अर्श, जन्म धारणके पीछे त्रिदोषसे उत्पन्न हुए अर्श और भीतरवाली वलिमें उत्पन्न अर्श असाध्य होता है।

परंतु यदि अग्निबल और आयु शेष हो तथा सम्यक् चिकित्सा हो तो असाध्य रोग भी कष्टसाध्य हो जाते हैं।

गुदाभागकी दूसरी बलिमें जो अर्शांकुरोंका समूह होता है, वह द्वन्द्वज अर्शांकुरोंका समूह माना जाता है। इसकी तत्काल वर्ष-भीतर ही चिकित्सा अपेक्षित होती है अन्यथा यह भी कष्टसाध्य हो जाता है। गुदाभागकी बाहरी बलिमें त्रिदोषजन्य जो अर्शांकुर होते हैं, उनको सामान्य औषधिके उपचारसे दूर किया जा सकता है, किंतु अधिक समय बीत जानेपर वे भी कष्टसाध्य हो जाते हैं।

मेदादि स्थानोंमें इसी प्रकारके अर्श होते हैं। ऐसा ही नाभिदोषके कारण उत्पन्न हुए अर्शांकुरोंका स्वभाव माना गया है। जो अर्शांकुर गण्डस्थल (गुदाके भीतर)-में होते हैं, उनका रूप पिच्छिल (फिसलाहटसे युक्त) तथा कोमल होता है। व्यानवायु कफको आभ्यन्तरभागसे निकालकर त्वचाके बाह्य प्रदेशपर अर्शके रूपमें परिवर्तित कर देता है। वह कीलके समान स्थिर तथा खर होता है। उसको विद्वानोंने चर्मकील (या मस्सा)-के नामसे स्वीकार किया है। वातज दोषके कारण उत्पन्न चर्मकील (मस्सा) अत्यन्त कठोर सूईकी नोकके समान तीक्ष्ण वेदनावाला और खुरदुरापनयुक्त होता है। पित्तदोषसे उत्पन्न हुआ कीलक कृष्ण, लाल मुखभागवाला माना गया है और जो कफजनित होता है, उसमें स्निग्धता, ग्रथिता तथा त्वचा वर्णता होती है।

बुद्धिमान्[१] व्यक्तिको अर्शरोग होनेपर यथाशीघ्र उसके उपशमनका प्रयत्नपूर्वक प्रयास करना चाहिये। क्योंकि वे शान्त नहीं होनेपर शीघ्रातिशीघ्र शरीरके गुह्य-प्रदेश तथा उदरभागमें बद्धगुदोदर आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न कर देते हैं। (अध्याय १५६)

अतिसार-ग्रहणी-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको अतिसार तथा संग्रहणीरोगके निदानकी बात बताता हूँ।

वात-पित्त-कफ और सन्निपात दोषके कुपित होनेसे ही इन रोगोंकी उत्पत्ति होती है। भय तथा शोकके कारण भी ये प्राणियोंके शरीरमें उत्पन्न हो सकते हैं। अतः वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, भयज तथा शोकजके रूपमें इनके छः भेद हो जाते हैं।

अतिसाररोग अधिक जल पीनेसे होता है। इसके अतिरिक्त सूखे अंकुरित एवं कच्चे अन्न, तेल पदार्थ, वसा (चर्बी) और तिलकुटको अधिक खानेसे भी यह उत्पन्न हो जाता है। मद्यपान, रूक्षाहार, अधिकतम मात्रामें रस और तेलका सेवन तथा उदरजन्य कृमियोंके प्रकोपसे एवं वेगारोधसे शरीरकी वायु प्रकुपित हो उठती है। तदनन्तर वह अपानवायुके रूपमें शरीरके अधोभागमें आकर उस दोषका विस्तार कर जठराग्नि-शक्तिको ह्रासोन्मुखी बना देता है। उस अग्निकी मन्दताके कारण शरीरमें गया हुआ अन्न-पिण्ड और पहलेसे स्थित पुरीष (मल) भस्म अथवा सूखनेकी अपेक्षा द्रवतादिके दोषमें बदलकर अतिसाररोगके लक्षणको प्रकट करता है। उस रोगसे प्रभावित होनेवाले रोगीके हृदय, गुह्यभाग तथा आमाशयादिमें पीड़ा होती है, शरीरमें अवसाद होता है एवं पुरीषका निरोध और अपच होता है। शरीर पसीनेसे युक्त हो जाता है और कष्टकी उत्पत्ति होती है। वातदोषके कारण शरीर शिथिल पड़ जाता है, पाचनशक्ति सुचारुरूपसे कार्य नहीं करती है तथा शरीरमें विशेष प्रकारका ज्वर रहता है। उस दोषके कारण उदरमें कुछ गुड़गुड़ाहट भी बनी रहती है। गुह्य भागसे बार-बार सूखा हुआ फेनसे युक्त स्वच्छ ग्रथित, जलाइन्ध और पिच्छिल (कचड़ाहीन) मल कष्टके साथ होता है। इस रोगमें मलद्वार शुष्क एवं विकृत होकर बाहर निकल जाता है, मल निकलनेमें कष्ट होता है। उस कष्टके कारण रोगी लम्बी-लम्बी श्वासें छोड़ता हुआ काँखता रहता है।

पित्त[४]-दोषसे रोगीको पीत-कृष्ण-हल्दी तथा नवांकुर तृण वर्ण रक्तके सहित अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण दस्त होता है। उसको तृष्णा, मूर्च्छा, स्वेद और दाहका प्रकोप भी होता है। कफजनित अतिसाररोगके होनेपर गुह्यभागमें दाहपाक शूल उठता है और संतापजनित कष्ट होता है। इस रोगमें मल द्रवयुक्त न होकर कठोर, भारी एवं घनीभूत रूपमें गुदाभागसे बाहर निकलता है, वह पिच्छिल (कचड़ाहीन) रहता है।

१-सु०नि०अ० ५६, अ०हृ०नि०अ० ७
२-च०चि०अ० १५, सु०नि०अ० २, अ०हृ०नि०अ० ७
३-च०चि०अ० १९, अ०हृ०नि०अ० ८, सु०उ०तं० अ० ४०
४-सु०उ०अ० ४, अ०हृ०नि०अ० ८

उसीके अनुसार वह बहुत ही कम या अधिक मात्रामें उदरके अंदर विद्यमान मलस्रोतमें पाया जाता है। मल-निस्सारणके समय कष्टके कारण रोगीको रोमाञ्च, हर्ष मिचली और क्लेशकी अनुभूति होती है। शरीरके अंदर भारीपन रहता है और इसीके कारण वस्ति-प्रदेश, गुदाभाग और उदरमें भी भारीपन बना रहता है। ऐसे रोगीको दस्त होनेके उपरान्त भी दस्तकी अनुभूति बनी रहती है। जब वह वात-पित्त तथा कफजन्य सभी दोषपूर्ण लक्षणोंसे युक्त हो जाता है अर्थात् रोगीके शरीरमें सन्निपातजन्य अतिसारका प्रकोप जन्म ग्रहण कर लेता है तो रोगी उस समय उक्त समस्त वातादिक त्रिदोषोंके लक्षणसे समन्वित बन जाता है। भयवश चित्तके विक्षुब्ध होनेपर स्थान-विशेषमें पड़े हुए रोगीके उदरभागका मल द्रवीभूत हो उठता है। तदनन्तर उस द्रवपूर्ण मलको यथाशीघ्र वायु गुह्यमार्गसे बाहर निकाल देता है अर्थात् भयवशात् रोगीमें मलोत्सर्गकी इच्छा बलवती हो उठती है और अन्ततोगत्वा उसे पानीके समान मल होता है। वात तथा पित्तदोषसे होनेवाले अतिसाररोगके एक समान ही लक्षण बताये गये हैं, वैसे ही लक्षण शोकज अतिसारमें भी उत्पन्न होते हैं।

संक्षिप्ततः अतिसाररोगके दो प्रकार हैं। उनमें प्रथम साम है और द्वितीय निराम है। साम अतिसाररोगमें मल आँवके सहित होता है, किंतु निराम अतिसारमें आँव दोषरहित मल निकलता है, उनमें एक सरक्त होता है और दूसरा बिना रक्तका होता है। साम अतिसारमें मल बड़ा दुर्गन्धित होता है और जलमें डालनेसे डूब जाता है। रोगीके पेटमें गुड़गुड़ाहट, विष्टम्भ वेदना और मुखप्रसेक होता है। निरामके लक्षण सामसे विपरीत होते हैं, कफजन्य होनेके कारण पक्व होनेपर भी मल जलमें नहीं डूबता है। जो अतिसारमें सावधानी नहीं करता, उसे ग्रहणीरोग हो जाता है।

अग्निमान्दताको बढ़ानेवाले अत्यधिक मात्रामें किये गये दोषपूर्ण आहार-विहारके सेवनसे अतिसाररोगका प्रादुर्भाव होता है। जब रोगीके शरीरसे साम या निराम मल अत्यधिक निकलता है तो उसे अतिसार कहते हैं। मलोत्सर्ग अधिक होनेके कारण इसकी अतिसार संज्ञा है। यह स्वाभाविक आशुकारी है। यही अतिसार जीर्ण होनेपर संग्रहणीरोग बन जाता है। ग्रहणीरोगमें भुक्त अन्नके अजीर्ण होनेपर कभी आमसहित और कभी सान्न मल निकलता है। अन्नके जीर्ण होनेपर कभी पक्व मल निकलता है, कभी कुछ नहीं निकलता और कभी बार-बार बँधा या ढीला दस्त होता है। यह रोग चिरकारी होता है, इसलिये इसे संग्रहणी कहते हैं। संग्रहणी चिरकारी तथा अतिसार आशुकारी होता है।

इस रोगमें एकाएक मलकी प्रवृत्तिका बारम्बार संघात होता है अथवा वह एकाएक रुक-रुककर बाहर निकलता है। ऐसा यह संग्रहणीरोग वात-पित्त तथा कफजन्य दोषसे तो तीन प्रकारका है ही, किंतु सन्निपातिक दोषके कारण भी उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह चार प्रकारका हो जाता है। रोगीके शरीरमें शिथिलता, अग्निमान्द्य, खट्टी डकार, मुखसे लालास्राव, धूमनिर्गमवत् प्रतीति, तमक, ज्वर, मूर्च्छा, अरुचि, तृष्णा, थकान, भ्रम, अपच, वमन, कानमें भनभनाहट और अन्त्रकूजन—ये ग्रहणीके पूर्वरूप हैं। वातज ग्रहणीरोगमें तालुशोथ, तिमिररोग, दोनों कानोंमें शब्द, पसली, ऊरु, वंक्षण और ग्रीवामें दर्द, बार-बार विसूचिका, सब कुछ भोजनकी इच्छा, क्षुधा, तृषा, कैंचीसे कतरनेकी पीड़ा, अफरा, कुछ भोजन करनेसे स्वस्थता, फेनसहित मल—ये सब लक्षण उपस्थित होते हैं। रोगी वातज, हृद्रोग, गुल्म, अर्श, प्लीहा और पाण्डुरोगकी शंका करने लगता है। देरमें कष्टके साथ पतला या गाढ़ा थोड़ा कच्चा एवं फेनयुक्त बार-बार मल आता है। गुदामें दर्द और श्वास-खाँसी भी उठने लगती है।

पित्तज[१] ग्रहणीरोगमें रोगी पीला पड़ जाता है। उसे पीला, नीला और पतला दस्त होता है। वह दुर्गन्धित खट्टी डकार, हृदय और कण्ठमें दाह, अरुचि और तृषासे पीड़ित रहता है।

पित्तज ग्रहणीके होनेपर रोगीका मल द्रवरूप हो जाता है और कफजन्य ग्रहणीरोग होनेपर रोगीको अन्न कठिनतासे पचता है। उसको छरछराहटभरा वमन होता है। उसे भोजनमें अरुचि होने लगती है। उसके मुखमें दाह होता है। उसको कफयुक्त खाँसी आती है। उसके हृदयसे उबकाई छूटती है और जुकाम हो जाता है। उसका हृदय पीड़ित और उदर भारी-सा प्रतीत होता है। उसपर आलस्य छा

१-च०चि०अ० १५, अ०हृ०चि०अ० ८ २-च०चि०अ० १५, १९, सु०उ०तं० अ० ४०

जाता है। उसे मीठी-मीठी डकार और शरीरमें शिथिलता आने लगती है। रोगीको समान या कुछ कम-अधिक मात्रामें कफसे युक्त मल होता है, जो भारी तथा अम्लताके दोषसे संश्लिष्ट रहता है। उस रूपमें प्रायः मैथुन अशक्ति एवं रोगीकी शक्तिका अधिक ह्रास होता है। इस रोगमें बलवान् व्यक्ति भी दुर्बल हो जाता है और उसमें रोगके सभी लक्षण दिखायी देने लगते हैं।

शारीरप्रकरणके अङ्ग-विभाग नामक तीसरे अध्यायमें जो विषम, तीक्ष्ण एवं मन्द नामक तीन पित्ताग्नियाँ कही गयी हैं, वे भी ग्रहणी-दोष ही हैं। केवल समाग्नि उत्तम स्वास्थ्यकी हेतु है। इस रोगमें भी प्राणीको प्यास लगती है, अधिक मल निकलनेके कारण भूख सताती है, हर क्षण शिथिल होते हुए शरीरके कारण उसके मनमें विकृत चिन्ताएँ भी बढ़ जाती हैं। समस्त रोगोंका यही—मल ही कारण है। इसी मलके शरीरमें रहनेपर प्राणीमें वातव्याधि (बाई), अश्मरी (पथरी), कुष्ट (कोढ़), मेह, जलोदर, भगंदर, बवासीर और ग्रहणीरोग होता है—ये आठों रोग महारोग माने गये हैं, इनका निदान अत्यन्त कठिन है और ये कष्टसाध्य हैं।

(अध्याय १५७)

मूत्राघात-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब इसके बाद आप मूत्राघातका निदान सुनें।

वस्ति[1] (पेड़ू अर्थात् नाभि-प्रदेशसे नीचे और मूत्र-प्रवाहिकाके ऊपरका भाग), वस्तिशिर (मूत्र-प्रवाही नली), मेढ्र (जननेन्द्रिय अर्थात् लिंग), कटी (कूल्हेके भागके गड्ढे), वृषण और पायु (गुदा) नामक शरीरके ये छः अङ्ग विशेष हैं, जो परस्पर एक-दूसरेसे सम्बद्ध और एक ही जगह ग्रथित हैं। इन सभीका आश्रय गुदाभागमें रहनेवाले अस्थि-विशेषके छिद्रसे सम्बद्ध रहता है। पेड़ू (वस्ति) अधोमुखी है। इसमें चारों ओरसे सूक्ष्म शिराओंके मुखभागसे होकर रिसाव होता रहता है, इससे वस्ति मूत्रसे भरी रहती है। इन्हीं शिराओंसे वात-पित्तादि दोष भी वस्तिमें प्रविष्ट हो जाते हैं, जिससे मूत्राशयमें बीस प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मर्माश्रित होनेके कारण ये प्रमेहादि रोग अत्यन्त कष्ट-साध्य हैं, अर्थात् इन रोगोंके होनेसे रोगीको मर्माहत करनेवाली पीड़ा होती है। रोगीके पेड़ू, वंक्षण और लिंगभागमें भी कष्ट होता है। उस कष्टसे गुप्ताङ्गोंके द्वारा होता हुआ मूत्र अल्पमात्रामें बार-बार निकलता है। वातजरोगमें प्राणीको मूत्र कष्टके साथ होता है। पित्तज मूत्राघात होनेपर मूत्र पीला, लाल तथा दाहसे युक्त हो जाता है और उसके मूत्राशयमें रुके रहनेपर अत्यन्त पीड़ा होती है। जब यह रोग कफज होता है तो उसके पेड़ू और लिंगमें भारीपन तथा शोथ आ जाता है। मूत्र पिच्छल और रुक-रुककर होता है। रोगीपर सर्व-दोषजन्य मूत्राघात होनेसे सभी लक्षण पाये जाते हैं। जब वायु वस्तिके मुखको आच्छादित कर कफ, मूत्र और वीर्यको शुष्क कर देता है, उस समय रोगीके शरीरमें अश्मरी (पथरी) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है। यह रोग बड़ा भयंकर होता है। जैसे गायका पित्त सूखकर गोरोचन बन जाता है, वैसे ही यह अश्मरी होती है। प्रायः सभी प्रकारकी पथरियाँ कफाश्रित ही होती हैं। इस रोगका पूर्वलक्षण इस प्रकार है—

इस रोगके होनेमें वस्तिभागमें अवरोध होता है अथवा उसके सन्निकट अन्य किसी भागमें भी हो सकता है। जिस भागमें होता है उस भागके चारों ओर अवयवोंमें अत्यधिक पीड़ा होती है। वस्तिभागमें मूत्रका अवरोध तथा उसकी कृच्छ्रता बनी रहती है। रोगीके मूत्रमें अजामूत्रके समान गन्ध, ज्वर और अरुचि होती है। इस रोगका सामान्य लक्षण तो यह है कि रोगीके नाभि-लिंगमणि और वस्तिके शिरोभागमें कष्ट रहता है। अश्मरीद्वारा मार्गावरोधके कारण वहाँ उस समय पर्याप्त भागमें मूत्र फैल जाता है। वह रुक-रुककर बाहर निकलता है। मूत्र निकलनेपर रोगीको सुखानुभूति होती है। उस मूत्रका वर्ण गोमेद या गोमूत्रके समान झलकता रहता है।

मूत्र-निर्गमनमें ऐसा प्रकोप हो जानेपर रक्त, मांस तथा धातु-प्रवाहके मार्गमें कष्ट होता है। वातजरोगसे व्यथित रोगी अपने दाँतोंको किटकिटाता हुआ काँपता है। मूत्रसे

१-सु०नि०अ० ३, मा०नि०पू० ५०५, सु०उ०तं० ५८।
२-वा०नि० ९, अ०हृ०नि०अ० ९

भरे हुए नाभिसे नीचे स्थित वस्तिभागको पकड़कर दबाता हुआ वह कराह उठता है। अपानवायुके सहित मल-पिण्ड उसके गुह्यभागसे निकलता है और बूँद-बूँद करके मूत्र टपका करता है। वातज दोषके कारण शरीरमें उत्पन्न हुई अश्मरीरोगका वर्ण श्याम है। उसमें रूक्षता रहती है। देखनेमें वह काँटोंसे बिंधी हुई-सी प्रतीत होती है।

पित्तज दोषके कारण उत्पन्न इस अश्मरीरोगमें वस्तिभाग जलने लगता है। उसमें ऐसा प्रतीत होता है, जैसे अंदर-ही-अंदर कुछ पक रहा हो। इस पित्त-दोषजन्य अश्मरीका स्वरूप भल्लातक (भिलावेके बीज)-के समान होता है। इसका वर्ण लाल, पीला अथवा काला होता है।

कफजन्य अश्मरी होनेसे वस्तिभागमें पीड़ा होती है। उस स्थानमें भारीपन तथा शीतलताका अनुभव होता है। इस रोगमें उत्पन्न हुई अश्मरी आकारमें बड़ी, चिकनी, मधु (शहद) अथवा श्वेतवर्णा होती है। ये तीनों अश्मरी प्रायः बालकोंमें हुआ करती हैं। आश्रय, मृदुता और उपचयकी अल्पताके कारण बालकोंकी अश्मरी ग्रहण करके सुखपूर्वक निकाली जा सकती है।

शुक्रके वेगको रोकनेसे प्राणीके शरीरमें शुक्राश्मरी नामक भयंकर रोगकी उत्पत्ति होती है। जब धातु-प्रवाहिका नाड़ीसे गिरा हुआ अथवा कुपित वीर्य दोनों अण्डकोशोंके बीच रुक जाता है और लिंग-मार्गसे वह बाहर नहीं निकलता, तब वहाँ स्थित विकृत वायु विक्षुब्ध होकर उसको सुखा देता है, उसी दोषसे इस शुक्राश्मरीका जन्म होता है। इस रोगमें भी वस्तिभागमें पीड़ा होती है। रोगीको मूत्र[1] निर्गत करनेमें कष्ट होता है। इसका भी वर्ण श्वेत माना गया है। इसके कारण मूत्रावरोध होनेसे तत्सम्बन्धी स्थानोंमें सूजन आ जाती है। अण्डकोष और उपस्थेन्द्रियके बीचमें हाथसे दबाया जाय तो वह विलीन हो जाती है। इस रोगके हो जानेपर रोगीको पीड़ा होती है, उसके दुष्प्रभावसे ज्वर हो जाता है, रोगीको खाँसी आने लगती है। इसी अश्मरीरोगके कारण रोगीके शरीरमें शर्करारोगका विकार भी उत्पन्न हो जाता है। यदि इसकी अनुलोम गति होती है तो यह मूत्रके साथ बाहर निकल जाती है अथवा मूत्रके साथ प्रतिलोम-अवस्थामें अंदर ही रुक जाती है। क्रुद्ध हुआ वायु वस्तिभागके मुखको रोककर आमाशयके जलस्रोतसे नीचे आनेवाले उस मलिन जलको एकत्र कर देता है। इस मूत्रके संचित होनेसे वस्तिभागमें विकारकी उत्पत्ति होती है, रोगीको कष्ट होता है और उस भागमें खुजलाहट होने लगती है।

रोगीके शरीरमें विक्षुब्ध वह वायु वस्तिभागके मुखको विधिवत् ढककर मूत्रावरोध उत्पन्न करता है तथा वस्तिको अपने स्थानसे हटाता हुआ उल्टा या इधर-उधर करके वस्तिमें विकृति उत्पन्नकर गर्भ-जैसा स्थूल (मोटा) बना देता है एवं उस स्थानको पीड़ित करता है। वहाँ उसके कारण जलन होती है। उसमें स्पन्दन होने लगता है और कूल्होंमें भी पीड़ा प्रारम्भ हो जाती है। रोगीका मूत्र बिन्दुवत् टपकता है, वह अपने सही वेगसे नहीं निकलता। वस्तिभागमें पीड़ा बनती रहती है। दबानेपर मूत्र धारा- रूपमें निकलता है। वायुजन्य इस रोगको वातवस्तिके नामसे स्वीकार किया गया है।

वातवस्तिके दो भेद हैं—पहला वस्तिके मुखको रोकनेवाला दुस्तर कहलाता है और दूसरा दुस्तरतर। वस्तिके मुखको ऊपर करनेवाला अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य है, क्योंकि इसमें वायुका विशेष प्रकोप होता है। मलमार्ग तथा वस्तिभागके बीच स्थित वायु अष्ठीलाकृति अर्थात् गोलककडी या अँठुलीके समान घनीभूत शक्तिशाली, मजबूत ग्रन्थि (गाँठ) उत्पन्न करता है, जिसके कारण इसको वाताष्ठीला नामसे अभिहित किया गया है। इस रोगमें वायु रोगीके अपानवायु तथा मल-मूत्रको अवरुद्ध कर देता है। वस्तिभागमें विद्यमान कुपित वायु कुण्डली मारकर तीव्र पीड़ाको जन्म देता है। वहाँ मूत्रको रोककर वह उसमें अत्यधिक स्तम्भनका दोष उत्पन्न करता है। ऐसी अवस्थामें रोगीको बहुत ही अल्प मात्रामें बार-बार मूत्र होता है तथा ऐसी अवस्थामें रोगी मूत्रको अधिक देरतक रोकनेमें असमर्थ रहता है। ऐसे रोगको वातकुण्डलिका कहते हैं। जब रोगी रुके हुए मूत्रको निकालनेमें पीड़ाका अनुभव करता है तो वह निरुद्ध मूत्र-कृच्छ्ररोग है अथवा मूत्रको अधिक कालतक रोकनेके पश्चात् यदि उसका वेग नहीं आता है या रुक-रुककर आता है और कुछ कष्ट होता है तो उसको मूत्रातीत कहा जाता है।

मूत्रके वेगको रोकनेसे प्रतिहत हुआ मूत्र अथवा वायुसे

१-सु०नि०अ० ३, अ०हृ०नि०अ० ९। २-मा०नि० मूत्राघात प्र० ४। ३-मा०नि०मूत्राघात प्र० २, ३, श्लोक ७, ८

पीछेको घुमाया हुआ मूत्र जब नाभिके नीचे उदरमें भर जाता है, तब वह तीव्र वेदना और आध्मान पैदा करता है और मलका संग्रह करता है। इसे मूत्रजठर कहते हैं। मूत्रके दोषसे अथवा कुपित वायुके द्वारा आक्षिप्त हुआ थोड़ा-सा मूत्र वस्ति, नाल, उपस्थकी मणिमें स्थित होकर थोड़ा-थोड़ा दर्द करता हुआ अथवा बिना दर्दके ही निकलता है, इसे मूत्रोत्सर्ग या मूत्रजठर कहते हैं।

अबाधगतिसे मूत्रोत्सर्ग होना प्राणीके श्रेष्ठ अण्डकोषोंपर निर्भर होता है। एकाएक रुका हुआ मूत्र निकल जानेपर अन्तःकरण और मुख शुष्क हो जाता है। अधिकाधिक या अल्प मात्रामें प्राणीको प्यास लगती है। वस्तिके आभ्यन्तर भागमें मूत्रावरोधके कारण अश्मरीके सदृश एक ग्रन्थि पड़ जाती है, जिसको मूत्रग्रन्थि कहते हैं। मूत्र-रोग-ग्रसित रोगीका जब स्त्रीके साथ सहवास होता है तो उस समय वायुके द्वारा ही स्त्रीके गर्भाशयमें शुक्र पहुँच जाता है, किंतु स्थान-विशेषसे निकला हुआ वह शुक्र मूत्र-क्षरण होनेसे पहले अथवा बादमें लिंगसे बाहर आता है। इसका स्वरूप भस्ममिश्रित जलके समान होता है। उसको वैद्यकमें मूत्रशुक्रके नामसे जाना जाता है।

जब रूक्षता और दुर्बलताके कारण वातजन्य दोषसे उदावर्त उपद्रव होता है अर्थात् शरीरके अंदर विद्यमान अपानवायु व्यानवायुसे घिर जाता है अर्थात् मलावरोध हो उठता है तो उस कालमें वह मल-मूत्र स्रोतकी संसृष्टिसे संयुक्त हो जाता है। इसमें मूत्र बूँद-बूँद ही होता है और इस टपकनेवाले मूत्र-बिन्दुओंमें एक दुर्गन्ध-सी रहती है। ऐसे रोगको मूत्रविघातके नामसे स्वीकार किया जाता है।

पित्त[1], व्यायाम, तीक्ष्ण और अम्लाहार तथा आध्मान (पेट फूलने) अथवा अन्य विकृतियोंके द्वारा शरीरके आभ्यन्तरिक भागमें बढ़ा हुआ पित्त-वायु-विकार वस्तिभागमें दाह उत्पन्न कर देता है, जिसके कारण रक्तयुक्त मूत्र निकलता है अथवा उष्ण रक्त ही उसकी मूत्र-प्रवाहिकासे बार-बार कष्टपूर्वक गिरता है। इस प्रकारके कष्टको उत्पन्न करनेके कारण लोगोंने उस रोगको उष्णवातकी संज्ञा दी है।

रूक्षाहार तथा परिश्रम करनेसे श्रान्त रोगीका पित्त और वायु कुपित हो उठता है। वह उसके वस्तिभागमें मूत्रावरोध, पीड़ा, क्षय और जलन उत्पन्न कर देता है। उस लक्षणसे युक्त मूत्राघात-कष्टको मूत्रक्षय कहा गया है।

यदि कुपित वायुके द्वारा पित्त और कफ अथवा इन दोनोंको संक्षुब्ध कर दिया जाता है तो उस समय प्राणीको जलन, कष्टसाध्य मूत्र-निर्गमन होता है। उसके मूत्रका वर्ण पीला, रक्त तथा श्वेत हो जाता है और उसमें गाढ़ापन भी आ जाता है। वस्तिभागमें दाहभरी जलन होती है। जो मूत्र निकलता है, उसका वर्ण सूखे गोरोचन तथा शंख-चूर्णके समान होता है। इस रोगको कृच्छ्रमूत्रसाद कहते हैं। इस प्रकार विस्तारपूर्वक मूत्रमें होनेवाले रोगोंको भी मैंने बता दिया है। (अध्याय १५८)

प्रमेहरोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको प्रमेह-रोगोंका निदान सुनाऊँगा, उसे सुनें।

प्रमेह बीस प्रकारके होते हैं। उनमें दस प्रमेह कफजन्य, छः प्रमेह पित्तजन्य और चार प्रमेह वातजन्य हैं। इन सभीमें मेद, मूत्र और कफकी संसृष्टि होती है।

प्रमेहका सबसे पहला प्रकार हारिद्रमेह है। इस प्रमेहके होनेपर रोगीको कटु, रसमिश्रित मूत्र हल्दीके समान मल-मूत्र होता है। इस प्रमेहका दूसरा प्रकार मंजिष्ठामेह है। मंजिष्ठामेहके होनेपर मंजिष्ठ (मजीठ)-वर्णके जलके सदृश होता है। इसका तीसरा प्रकार है रक्तमेह। इस रक्तमेहके होनेपर रक्तवर्णकी आभावाला कच्चे मांसकी गन्धसे समन्वित उष्ण तथा लवण-तत्त्व-मिश्रित मूत्र होता है। वसामेहमें चर्बी-मिला हुआ मूत्र अथवा केवल चर्बी ही बार-बार निकलती है। वसायुक्त मज्जामेही व्यक्ति वर्ण और गन्धमें समानता रखनेवाले मज्जा-तत्त्वसे संश्लिष्ट मूत्रत्याग करता है।

जब प्राणी मतवाले हाथीके समान असंयमित वेगसे अधिक समयतक मूत्र निकालता है, जिसके साथ एक चिपचिपा पदार्थ भी आता है और वह यदा-कदा बीच-बीचमें रुक भी जाता है तो उस रोगीको हस्तिमेही मानना चाहिये। हस्तिमेह प्रायः वृद्धावस्थामें होता है। जब व्यक्तिको मधुके समान मूत्र होता है अर्थात् उस मूत्रमें शरीरके अंदर विद्यमान मधुर रसका तत्त्व आने लगता है तो उसे मधुमेही

१-सु०उ० ८५, अ०हृ०नि०अ० ९। २-सु०उ०नि०अ० ५८। ३-सु०उ० ५७। ४-सु०अ० ८५। ५-च०चि० ७, वा० नि० १०

कहा जाता है। यह दो प्रकारका माना गया है। एक तो धातुके क्षीण होनेपर वायुके कुपित होनेसे तथा दूसरा पित्तादि दोषसे वायुका मार्ग रुक जानेसे।

इस प्रमेहमें घिरा हुआ रोगी प्रायः अन्य सभी दोषजन्य प्रमेहोंके लक्षणोंसे संयुक्त हो जाता है। ऐसे रोगीमें अन्य दोषोंके लक्षणोंका आगमन कोई कारण नहीं रखता। यह रोग तो अपनी प्रबलताके प्रभावसे उन्हें बिना निमित्तके ही रोगीके शरीरपर प्रकट कर देता है। यह ऐसा प्रमेह है कि क्षणमात्रमें नष्ट हो सकता है और क्षणमात्रमें ही अपने पूर्ण बलके साथ उभर सकता है। अतः रोगीको चाहिये कि वह कष्ट उठाकर भी इस वर्गभेदवाले मधुमेहरोगका निदान कर ले। इसकी सामयिक उपेक्षा कर देनेपर प्राणीके शरीरका सब कुछ मधुमेहताको ही प्राप्त कर लेता है अर्थात् शरीरके समस्त स्रोतोंमें इसका विकार पहुँच जाता है और एक दिन मधुमेहके अतिरिक्त कुछ शेष ही नहीं रह जाता तथा उसकी असामयिक मृत्यु हो जाती है। इसका विस्तार हो जानेपर सभी प्रकारके मेहरोगोंमें रोगी प्रायः मधुके समान ही गाढ़ा मूत्र नलीसे निकालता है। शरीरमें जो मधुरता है, वह मधुरता इन सभी प्रमेहोंमें नष्ट होती है, इसलिये इन सभी प्रमेहोंको मधुमेह ही कहा जाता है। इस प्रमेहरोगमें रोगी अपच, अरुचि, वमन, अनिद्रा, खाँसी और पीनसके उपद्रवसे ग्रस्त हो जाता है।

कफजन्य प्रमेहमें वस्ति तथा मूत्राशय-भागमें पीड़ा, हष्ट-पुष्ट शरीरका क्षरण और ज्वरके उपद्रव जन्म लेते हैं। पित्तप्रमेह होनेपर रोगीके शरीरमें दाह, तृष्णा, खट्टी डकार, मूर्च्छा, अतिसार एवं मलभेदका विकार होता है। वातज प्रमेहमें उदावर्त, कम्पन, हृदयवेदना, बेचैनी, शूल, अनिद्रा, शुष्कता, श्वास तथा खाँसीके विकार पैदा हो जाते हैं।

शराविका, कच्छपिका, ज्वालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, सविदारिका और विद्रधि नामक दस प्रकारकी फुंसियाँ प्रमेह-रोगोंकी उपेक्षा कर देनेपर उत्पन्न होती हैं।

प्रायः कफजन्य[1] दोषसे संश्लिष्ट होनेके कारण खाया हुआ अन्न प्रमेहरोगके रूपमें परिणत हो जाता है। उसका रस मूत्रके मार्गसे निकल जाता है। मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध, भारी, चिकना और शीतल पेय, नया चावल, मदिरा, मिर्च-मसाला, मांस, इक्षुरस, गुड़, गोरसके सेवन, एक स्थान और एक आसनपर शयन इस मधुमेहरोगके उत्पादक हैं। इस प्रमेहरोगके होनेसे कफ वस्तिभागमें पहुँचकर उसको दूषित कर देता है। तदनन्तर वह स्वेद, मेदा, वसा और मांससे युक्त शरीरको दूषित करके शिथिल बना देता है।

जब कफ पहले क्षीण हो जाता है तो वायु मूत्रके सहित पित्त, रक्त और धातुको वस्तिभागमें लाकर उसका वहींपर विनाश करता है। साध्य-असाध्य प्रतीत होनेवाले जो मेह हैं, वे सभी इसी वायु-विकारसे ही उत्पन्न होते हैं। जब वायु, पित्त और कफकी मात्रा निर्दुष्ट होकर समान रहती है, तब मेह भी समान-भावसे रहता है।

उक्त प्रमेह-भेदोंका सामान्य लक्षण तो प्रचुर मात्रामें विकृत मूत्रका होना है, किंतु शरीरमें उस विकारके संयुक्त होते ही विशेष परिस्थितिमें भी पड़े हुए मनुष्यके लिये अपेक्षित है कि उस दोषका निवारण कर ले। मूत्रके वर्णादिक लक्षणोंके अनुसार इन प्रमेहरोगोंमें भेदकी कल्पना की जाती है। यह मेहरोग दस प्रकारका है। सामान्यतः मूत्र स्वच्छ, अत्यन्त श्वेत, शीतल, गन्धहीन तथा जलके समान होता है, किंतु जो प्राणी उदकमेहसे ग्रसित है, वह कुछ मटमैले और चिपचिपे मूत्रका क्षरण करता है। इक्षुमेह-रोगीके शरीरसे इक्षुरसके समान अत्यन्त मधुर मूत्र निकलता है। सान्द्रमेहसे प्रभावित रोगी बासी रखे हुए जलके समान मूत्र छोड़ता है। सुरामेही रोगीका मूत्रस्राव सुरा (मदिरा)-के सदृश होता है, जो ऊपरसे देखनेमें स्वच्छ तथा सान्द्र प्रतीत होता है, किंतु अंदरसे गाढ़ा रहता है। पिष्टमेहसे ग्रसित रोगीको प्रायः मूत्रस्रावके समय रोमाञ्च हो उठता है। वह तण्डुलमिश्रित जलके समान अत्यन्त श्वेत मूत्रका परित्याग करता है। जो शुक्रमेही है, उसको शुक्रमिश्रित अथवा शुक्रके समान वर्णवाला मूत्र गिरता है। सिकता अर्थात् रेतमेहसे पीड़ित व्यक्तिको रेतके समान ही मूत्र तथा उसके सदृश मल अथवा विकार हो जाता है। शीतमेही

१-च०चि०अ० ६, अ०हृ०नि०अ० १३। २-वा०नि० १०, अ०हृ०नि०अ० १०।

रोगीको प्राय: अधिक मात्रामें मधुर और अत्यन्त शीतल मूत्र गिरता है। जो रोगी शनैर्मेही विकारसे संतप्त होता है, वह धीरे-धीरे, बार-बार, मन्द-मन्द गतिसे मूत्र-क्षरण किया करता है। लालामेही रोगी लालातन्तु अर्थात् लारके समान तार बनानेवाले चिपचिपे मूत्रकी धार छोड़ता है। क्षारमेह[1] होनेपर रोगी गन्ध, वर्ण, रस तथा स्पर्शमें समान क्षारयुक्त मूत्र करता है। नीलमेही नीलवर्णके समान और मसी अर्थात् स्याहीके सदृश कृष्णवर्णवाले मूत्रका परित्याग करता है।

संधिस्थान[2], मर्मस्थल, मांसलभाग तथा कोष्ठ-प्रदेशोंमें जो प्रमेहपिडिका होती है, वह अन्तमें उन्नत, मध्यमें निम्न, आर्द्रतासे रहित और सहन करनेवाली पीड़ासे समन्वित होती है।

जो पिडिका (फुंसी) किनारोंपर ऊँची, बीचमें नीची, श्यामवर्ण, क्लेद और वेदनासे युक्त होती है तथा जिसकी शराव (मिट्टीका कसोरा)-के समान स्थिति और आकृति होती है, उसे शराविका कहते हैं। जो पिडिका कछुएके समान होती है और उसमें जलन रहती है, उस पिडिकाको विद्वान् लोग कच्छपिका नामसे स्वीकार करते हैं। बहुत बड़ी नीलवर्णके समान दिखायी देनेवाली पिडिकाको विनताके नामसे माना गया है। शरीरमें जिस पिडिकाके उभर आनेसे त्वचामें जलन होती और रोगी कष्टका अनुभव करता है, उस पिडिकाको ज्वालिनी कहा जाता है। रक्त-श्वेत तथा स्फोटका रूप धारण करनेवाली कठोर पिडिकाका नाम अलजी है। जो पिडिकाएँ मसूरके समान आकृतिवाली हैं, उन्हें मसूरिकाके नामसे जानना चाहिये। जिह्वामें सरसोंके समान छोटे-छोटे उभरे हुए दानोंको सर्षपिका कहा जाता है, जो रोगीको अत्यधिक कष्ट देते हैं। पुत्रिणी नामक पिडिका बड़ी अथवा छोटी होती है। यह अत्यन्त सूक्ष्म भी हो सकती है। जो पिडिका विदारीकन्दके समान गोल तथा कठोर होती है, उसका नाम विदारिका है। विद्रधिके लक्षणोंसे युक्त अर्थात् पीपसे युक्त पिडिकाको विद्रधिका कहा जाता है।

पुत्रिणी और विदारी नामक प्रमेहजनित पिडिकाएँ अत्यन्त कष्टकारी होती हैं। सद्य: पित्तके प्रकुपित होनेसे मेदको अल्प मात्रामें विकृत करनेवाली अन्य पिडिकाएँ उत्पन्न होती हैं। प्राय: शरीरमें जैसे-जैसे दोषकी अभिवृद्धि होती है, वैसे-ही-वैसे उन सभी पिडिकाओंका आविर्भाव होता है। मेदको विकृत करनेवाली इन पिडिकाओंका जन्म तो बिना प्रमेहके भी हो सकता है। जबतक पिडिका वर्णरहित होती है, तबतक उसके प्रधान लक्षणको निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। जो हल्दीके समान अथवा रक्तवर्ण या प्रारम्भिक स्वरूपका परित्याग करनेवाले रक्त मूत्रका क्षरण करता है, उसको प्रमेहरोगके बिना रक्तपित्तरोग जानना चाहिये। रक्तपित्तरोगके प्रभावसे ही मूत्रका रंग हरिद्रा एवं रक्तवर्णका हो जाता है।

प्रमेहरोगका[3] पूर्वरूपमें स्वेद, अङ्ग-विशेषमें अप्रिय गन्ध और अङ्गोंमें शिथिलता, शय्या, भोजन, निद्रा तथा सुखकी आसक्ति, हृदय, नेत्र, जिह्वा एवं कानोंमें असाधारण या साधारण भारीपन, जलन, बाल और नाखूनोंमें अभिवृद्धि, शीतल पदार्थोंके प्रति प्रेम, कण्ठ तथा तालुमें शोथ, मुखपर माधुर्यभाव और हाथ-पैरमें जलनके लक्षण दिखायी देते हैं। प्राय: इन सभी प्रमेहरोगोंके रोगीके द्वारा किये गये मूत्रपर चींटियाँ दौड़ने लगती हैं।

प्रमेहरोगमें तृष्णा, मधुरता तथा चिकनाहटका लक्षण तो सामान्य है, किंतु मधुमेह होनेपर अनेक प्रकारके विकारोंका जन्म हो जाता है। शरीरमें इस रोगके परिव्याप्त होनेपर इसकी उत्पत्तिका कारण कफजन्य मानना चाहिये अथवा सभी दोषोंके क्षीण हो जानेपर यदि प्रमेहका कोई विकार दिखायी देता है तो वह वायुजन्य होता है। प्रमेहके ये सभी प्रकार तो कफ और पित्तसे युक्त होते हैं, यथाक्रम जिनकी उत्पत्ति रति-प्रसंगकी आसक्तिके कारण रोगीके मूत्र-भागमें होती है। जो प्रमेह पित्तदोषके कारण उत्पन्न होते हैं, वे याप्य हैं। साध्य वही प्रमेय होता है जो अपने सम्पूर्ण लक्षणोंसे समन्वित होकर रोगीके शरीरमें दिखायी नहीं देता। यदि वह सभी लक्षणोंसे पूर्ण हो जाता है तो उसका निवारण असम्भव ही है। (अध्याय १५९)

१-मा०नि०प्र० ३३-१३, १४। २-वा०नि० १०, अ०हृ०नि०अ० १०, सु०नि० ६। ३-वा०नि० १०

विद्रधि एवं गुल्म-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं विद्रधि और गुल्मका निदान कहता हूँ, उसे आप सुनें।

बासी एवं अत्यन्त उष्ण, रूक्ष, शुष्क तथा विदाहकारी भोजन करनेसे, टेढ़ी-मेढ़ी शय्यापर टेढ़ा-मेढ़ा शयन करनेसे तथा रक्तको दूषित करनेवाले विरुद्ध आहार-विहारसे रक्त दूषित होकर चमड़ा (त्वक्), मांस, मेदा, अस्थि, स्नायु एवं मज्जाको दूषितकर यह उदरका आश्रयण करता है। दुष्ट रक्त जब उदरका आश्रयण करता है तो अङ्ग-विशेषमें (बाहरकी ओर मुँहवाला अतिशय शूलके साथ और अतिशय पीड़ासे युक्त वृत्ताकार अथवा भीतरकी ओर मुँहवाला आयताकार) जो शोथ उत्पन्न हो जाता है, आयुर्वेदवेत्ता वैद्यगण उसे विद्रधिरोग[1] कहते हैं।

दोषोंके द्वारा (वायु, पित्त आदिके) भिन्न-भिन्न रूपमें या मिश्रितरूपमें रक्त एवं स्रावके तत्तत् अङ्गमें ग्रन्थिके आकारका विद्रधिरोग अतिशय दारुण, गम्भीर और गुल्मको बढ़ानेवाला होता है। वह वल्मीक अर्थात् दीमकके घरके समान सच्छिद्र होता है और सभी छिद्रोंसे सदा रक्त आदि बहता रहता है, इससे जठराग्नि मन्द हो जाती है। नाभिवृत्ति, यकृत, प्लीहा, क्लोम (वृक्क), कुक्षि, गुद एवं वंक्षण आदि स्थानोंमें विद्रधिरोग उत्पन्न होनेपर रोगीका हृदय सदा काँपता रहता है और विद्रधि-स्थानमें तीव्र वेदनाकी अनुभूति होती है।

विद्रधिका शोथ श्यामवर्ण अथवा रक्तवर्णका होता है। इसका ऊपरी भाग उन्नत रहता है। कालान्तरमें पाक हो जानेसे यह विषम आकारका हो जाता है। विद्रधिरोगमें संज्ञा-नाश, भ्रम, अनाह, रक्तस्राव और अव्यक्त शब्द होता है। पित्तज विद्रधि रक्त (लाल), ताम्र अथवा कृष्णवर्णका शीघ्रपाकी होता है। इसमें तृषा, दाह, मोह, ज्वर, बेहोशी तथा जलन आदि उपद्रव होते हैं। कफज विद्रधि तेजीसे उभरता है एवं शीघ्र पक जाता है, पीला हो जाता है और खुजलाहटसे युक्त अरुचि, स्तम्भ रहता है। सन्निपातजन्य विद्रधिमें अधिक क्लेश, शीत, स्तम्भ (जकड़न), जृम्भण (जम्हाई), अरुचि, शरीरका भारीपन आदि सभी लक्षण व्यक्त होते हैं। सन्निपातिक (त्रिदोषजन्य) विद्रधि चिरकालमें उत्पन्न होता है और उसका पाक शीघ्र नहीं होता।

बाह्य और आभ्यन्तरिक विद्रधिमें मल पतला होता है। सन्निपातक विद्रधि कृष्णवर्ण, स्फोटावृत और श्यामवर्णका होता है। उसमें रोगीको अधिक दाह, विद्रधि-स्थानमें पीड़ा और तीव्र ज्वर हो जाता है।

बाह्य विद्रधि प्रायः पित्तज और रक्तज होती है। गर्भाशयगत रक्तज अन्तर-विद्रधि केवल नारियोंको ही होती है। शस्त्र आदिके अभिघातसे अधिक रक्तके बहनेपर यह रोग उत्पन्न हो जाता है। किसी स्थानके कटनेपर वायुके द्वारा परिचालित रक्त पित्तको प्रेरित करता है, जिससे रक्त-पित्त लक्षणवाला विद्रधिरोग उत्पन्न होता है। यह अत्यन्त उपद्रवकारी होता है। स्थान-भेदसे उपद्रवोंका भेद कहा जाता है। नाभिमें विद्रधिरोग होनेपर उसकी धौंकनीकी तरह गति (हिचकी) होती है। बस्ति और मूत्राशय आदिमें विद्रधि होनेपर मूत्र-त्यागमें दुर्गन्ध बहुत तथा क्लेश अधिक होता है। प्लीहा-स्थानमें विद्रधि होनेपर श्वास-प्रश्वासका रोध हो जाता है और अत्यन्त प्यास लगती है। क्लोम-स्थानमें विद्रधि उत्पन्न होनेपर गलेका रोधतृषा होने लगती है। हृदयमें विद्रधि होनेपर सर्वाङ्गमें वेदना होती है। मोह, तमक, श्वास, काससे हृदयकी शून्यताका बोध होता है। कुक्षि और पार्श्वके आभ्यन्तरमें विद्रधि उत्पन्न होनेपर कुक्षिमें अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं तथा ऊरु, संधि, धड़, वंक्षण, कटि, पीठ, बगल तथा नितम्ब—इन स्थानोंमें विद्रधिके उत्पन्न होनेपर अपानवायु-अवरोध होकर अत्यन्त वेदना होने लगती है। विद्रधिके कच्चे होनेपर, पक जानेपर अथवा सूजनके आधारपर आगेकी स्थितिका निर्देश करना चाहिये। आन्तर विद्रधि यदि नाभिसे ऊपर ऊर्ध्वमुख है तो मवाद एवं रक्तका स्राव मुखसे होता है और नाभिके नीचे होनेपर गुदामार्गसे स्राव होता है तथा नाभिमें होनेपर दोनों ओरसे होता है। उच्च विद्रधिमें दोष क्लेदके समान जानना चाहिये। सन्निपातज विद्रधि अपने स्थानमें अनेक प्रकारके विवर्तको उत्पन्न कर देता है। नाभि और बस्तिमें स्थित विद्रधि अन्तर्गत या बाह्यगत किसी भी प्रकारका हो, वह निश्चित ही पककर फटता है। उसका परिपाक विद्रधि

१-च०सू०अ० १७, सु०नि०अ० ९।

बढ़नेपर होता है, यह विद्रधि क्षीण होनेपर भी अनेक प्रकारके उपद्रवको जन्म देती है। दुष्ट स्वभाववाली एवं पापिनी स्त्रीकी गर्भगत संतान यदि नष्ट हो जाती है तो गर्भमें अधिक सूजन उत्पन्न होता है। स्त्रियोंके स्तनमें जो विद्रधि होती है, वह अतिशय दु:खप्रद होती है। यह बाह्य विद्रधिका लक्षण है। कन्याओंकी नाड़ियाँ अतिशय सूक्ष्म होनेके कारण उन्हें यह स्तनविद्रधि रोग नहीं होता है। यह अपानवायुकी गतिरोध होनेपर क्रुद्ध वायु लिंगमूलमें शोथ उत्पन्न करता है तथा मुष्क एवं वंक्षणगत फलकोशतक जानेवाली फल्कोटकी शिराओंको पीड़ितकर उसमें वृद्धि करता है। इससे मेदामें दोष उत्पन्न होता है। यह वृद्धिरोग है, जो सात प्रकारका होता है—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मेदज, मूत्रज और आन्त्रज। वातज वृद्धिरोगमें मूत्र वातपूर्ण, कठोर स्पर्शवाला तथा बाह्य और आभ्यन्तरिक एवं रूक्ष वायुके कारण जलन पैदा करनेवाला होता है। पित्तज वृद्धिरोग पके हुए गूलरके फलके समान दाह और ऊष्मासे युक्त होता है और पक जाता है। कफज वृद्धि कफजन्य होती है, वह तीव्र, गुरु, स्निग्ध और कठोर तथा खुजलीसे युक्त रहती है। इसमें अल्प वेदना होती है। रक्तज वृद्धि, कृष्णवर्ण, स्फोटसे युक्त, पिण्डके समान होती है और उसके वृद्धिका लक्षण पित्तजके समान होता है। मेदज वृद्धि मृदु और तालफलके समान होती है। इसके लक्षण कफजके समान होते हैं। जो मूत्रके वेगको धारण करते हैं, उनको मूत्रज वृद्धिरोग उत्पन्न होता है। इसमें मूत्रकृच्छ्र हो जाता है। मूत्रज वृद्धिमें अण्डकोष मसकके समान हिलता है। यह वेदनायुक्त और मृदु होता है। इसमें मूत्रकृच्छ्र हो जाता है और अण्डकोषके नीचेके भागमें कंकण-जैसा आकार उत्पन्न हो जाता है। आन्त्रज वृद्धिरोग वायुको कुपित करनेवाले आहारसे और शीतल जलमें स्नान करने तथा मल-मूत्रके वेगको रोकनेसे, अङ्गकी चेष्टाओंसे क्षुब्ध किये जानेपर जब ओजशक्ति क्षुब्ध होकर शरीरको क्षीण कर देती है, तब वायु दूषित होकर रक्तको नीचेकी ओर ले जाता है। इससे संधि-स्थानमें ग्रन्थिके समान शोथ हो जाता है।

वृद्धिरोगकी उपेक्षा करनेपर गुल्म-वृद्धि,[1] अन्त्र-वृद्धि, आध्मान आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी अत्यन्त पीड़ित हो जाता है। आभ्यन्तरमें शब्द होने लगता है और वायु शिर:प्रदेशमें आध्मान हो जाता है। रक्तज गुल्म वृद्धिरोग असाध्य है और इसके लक्षण वातज वृद्धिरोगके समान होते हैं। गुल्म वृद्धिरोग काली-नीली शिराओंके जालसे उसी प्रकार व्याप्त हो जाता है, जैसे कोई झरोखा मकड़ीके जालसे आवृत हो जाता है। यह गुल्मरोग आठ प्रकारका होता है—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, वातपैत्तिक, वातश्लेष्मिक, पित्तकफ और (त्रिदोषज) सन्निपातिक। ऋतुसम्बन्धित रक्तके दूषित होनेपर आठवाँ (आर्तवदोषज) गुल्म केवल स्त्रियोंके गर्भाशयमें होता है।

जो मनुष्य ज्वर, मूर्च्छा, अतिसारके द्वारा एवं वमन-विरेचनादि पञ्चकर्मके द्वारा दुर्बल हो तथा वातकारक अन्नका भोजन करे; जो शीतसे अथवा भूखसे पीड़ित हो और भोजनसे पूर्व खाली पेट अधिक जल पीये अथवा जलमें तैरे एवं देहको क्षुब्ध करनेवाला उपवास करे तथा वमनका वेग न होनेपर भी वमन करनेका प्रयास करे, स्नेहन, स्वेदनके बिना वमन, विरेचन आदि करे अथवा ठीक प्रकारसे शुद्धि कर्मके बिना वात-विदाहि अन्नका सेवन करे या कष्ट देनेवाले सवारीपर चढ़े तो सम्पूर्ण वातादि दोष अलग-अलग या एक साथ मिलकर देहस्रोत (आम पक्वाशय)-में गमन करते हैं और ऊर्ध्व-अधोमार्गको आच्छादित या निरोध करके वायुशूल उत्पन्न करते हैं। ऐसी दशामें छूनेसे अनुभवमें आनेवाला, गरम, ऊँचा उठा हुआ तथा गाँठ-जैसा गुल्मरोग उत्पन्न हो जाता है।

धातुके क्षीण हो जानेसे कफ, विष्ठादिके द्वारा मार्ग अवरुद्ध हो जानेसे वायु कोष्ठमें स्थित हो जाता है और रूक्षताके कारण कठोर हो जाता है। यह अपने आश्रय (अथवा पक्वाशय)-में स्वतन्त्र रूपसे दुष्ट हो जाता है और पराश्रय (आमाशय)-में परतन्त्र-भावसे (कफादिके अधीन) दुष्ट हो जाता है। तदनन्तर मल एवं श्लेष्मासे संयुक्त होनेके कारण पिण्ड-जैसा हो जाता है। इसे वातगुल्म कहते हैं। यह वस्ति, नाभि, हृदय और पसलियोंमें उत्पन्न होता है। वातज गुल्मरोगमें सिरमें पीड़ा, ज्वर, प्लीहा, आन्त्रकूजन, सूईके वेधके समान पीड़ा—ये सभी उपद्रव होते हैं और बहुत कष्टसे मूत्र होता है। उक्त रोग वायुचालित होकर शरीर, मुख, पैर, शोथ, अग्निमान्द्य आदि उपद्रवको उत्पन्न करता है। विशेषत: शरीरमें चमड़ा रूक्ष और कृष्णवर्णका

१-मा०नि० ११, अ०हृ०नि०अ० ११। २-च०नि०अ० ३, सु०उ०तं०अ० ४२, अ०हृ०नि०अ० ११।

हो जाता है। वायुके चञ्चल होनेके कारण गुल्मरोगका कोई निर्दिष्ट एक स्थान नहीं है। अतः यह अनेक प्रकारकी व्यथाएँ उत्पन्न करता है। वातज गुल्मरोगमें चींटीके चढ़ने या काटने-जैसा स्फुरण होता है और चुभनेकी तरह व्यथा होती है।

पित्तज गुल्मरोगमें दाह, अम्लोद्गार, मूर्च्छा, मलभेद, पसीना, तृष्णा और ज्वर—ये सभी उपद्रव होते हैं। सम्पूर्ण शरीर हल्दीके वर्णका हो जाता है। इस रोगमें शोथ भी हो जाता है और श्लेष्मा घटता-बढ़ता रहता है। गुल्मके स्थानमें जलन-सी प्रतीत होती है।

कफज गुल्मरोगमें स्तैमित्य, अरुचि, सिरमें वेदना और अङ्गोंमें शिथिलता, शीतज्वर, पीनस, आलस्य, हल्लास, चमड़ेका सफेद या काला होना आदि लक्षण होते हैं। कफज गुल्म गम्भीर, कठिन और गर्भस्थ बालकके समान भारी होता है। अपने स्थानमें स्थित रहने तथा वहाँसे न चलनेके कारण यह मृत्युकारक होता है।

त्रिदोषजन्य गुल्मरोगमें प्रायः एक-दूसरेके लक्षण घुले-मिले रहते हैं। इसमें तीव्र वेदना और अतिशय दाह होता है। यह अतिशय उन्नत और सघन होकर शीघ्र ही पक जाता है, तथा असाध्य है।

रक्तगुल्म[1] स्त्रियोंको ही होता है। जिस स्त्रीको ऋतुकालमें अतिशय वेदना या किसी प्रकारका योनिरोग रहता है अथवा वायुकारक पदार्थोंको सेवन करनेसे वायु कुपित होकर प्रतिमाह व्यवस्थित ऋतुस्रावको योनिमें ही रोक देता है तो वह रुका हुआ रक्त कुक्षिमें जाकर गर्भके चिह्नोंको प्रकट करता है। इस रोगमें हल्लास, गर्भिणी-जैसी इच्छा, स्तनमें दुग्ध-दर्शन, कामाचारिता आदि लक्षण प्रकाशित होने लगते हैं। क्रमशः वायुके संसर्गसे पित्त योनिमें रक्तका संचय करता है। शोणित जब गर्भाशयका आश्रयण करता है, तब वात-पित्तज गुल्मके विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह दुष्ट रक्तका आश्रय लेकर गर्भाशयमें अत्यन्त शूल उत्पन्न करता है। योनिमें स्राव, दुर्गन्ध, कभी-कभी स्पन्दन और वेदना होती है। कभी-कभी यह गुल्म गर्भ-जैसा हो जाता है।

दुष्ट रक्त एवं दुष्ट आश्रयके कारण यह विद्रधि गुल्म कभी देरमें पकता है, कभी नहीं पकता है और कभी जल्दी पक जाता है। अतः शीघ्र दाह पैदा करनेवाला होनेके कारण यह विद्रधि गुल्म कहा जाता है। अन्तराश्रय गुल्ममें वस्ति, कुक्षि, हृदय और प्लीहामें वेदना होती है। जठराग्नि और बलका नाश हो जाता है। मल-मूत्रादिका वेग रुद्ध हो जाता है। बहिराश्रय गुल्ममें इसका उलटा होता है अर्थात् वस्ति, कुक्षि आदिमें वेदना अधिक नहीं होती, वेगका प्रवर्तन होता है। गुल्म-स्थानमें विवर्णता और बाहरके भागमें अत्यधिक ऊँचापन आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। ऊपर-नीचे वायुरोधके कारण तीव्र वेदना और उदरमें आध्मान होता है। इसे अनाहरोग कहते हैं। जो ग्रन्थि ऊपर उठी होती है तथा कठोर अष्ठीलाकी तरह होती है, उसे अष्ठीला विद्रधि कहते हैं। उसकी आकृति यदि समस्त चिह्नोंसे युक्त एवं तिरछी हो तो उसे प्रत्यष्ठीला कहते हैं। पक्वाशयमें उत्पन्न होनेवाला वायु तीव्र वेदनासे युक्त होकर डकारोंकी अधिकता, शौचका विबन्ध, भोजनकी अनिच्छा, आँतोंका सूजन, आटोप आध्मान, अग्निमान्द्य—ये सब उत्पन्न होनेवाले गुल्मके पूर्व संकेत हैं।[1] (अध्याय १६०)

उदररोग-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं उदररोगका निदान कहूँगा, सुनो! मन्दाग्नि होनेपर सभी प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं और उदररोग विशेषकर मन्दाग्निसे ही होते हैं।

उदरमें मल संचित होनेपर अजीर्ण आदि भिन्न-भिन्न रोग, ऊर्ध्व और अधोगति वायुके अवरोध होनेसे सभी प्रवाहिणी नाड़ियाँ अकर्मण्य हो जाती हैं। प्राणवायु अपानादि वायुको दूषितकर उनको मांससंधिमें प्रविष्ट कर देती है। इससे कुक्षिस्थान अवरुद्ध होकर उदररोग उत्पन्न होता है। उदररोग[2] आठ प्रकारके हैं—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, सलिलजन्य, प्लीहाजन्य, बद्धोदर-वृद्धि और क्षतजन्य। उदररोग होनेपर हाथ-पैर तथा पेटमें सूजन आ जाती है। शारीरिक चेष्टा, बल और आहार कम हो जाता है। शरीर दुर्बल हो जाता है और अफरा हो जाता है।

१-सु०उ०तं०अ०, ४२ अ०हृ०नि०अ० ११।

२-सु०नि०अ० ६१, च०नि० ३, चि०अ० ५०, अ०हृ०नि०अ० ११, वाग्भट्ट नि० ११

इस रोगसे ग्रस्त व्यक्तिका आकार प्रेतके समान विकृत हो जाता है।

उदररोगका पूर्व लक्षण भूख-नाश, अरुचि, पाकके समय दाह आदि होता है। ऐसा रोगी अपथ्यका सेवन करता है। उदररोगसे बलक्षय हो जाता है। अतः रोगीके थोड़ा कार्य करनेपर श्वास-प्रश्वासकी वृद्धि हो जाती है। किसी भी विषयमें उसकी बुद्धि प्रवेश नहीं कर पाती और शोक एवं शोथ आदि हो जाते हैं। उदररोगी थोड़ा खानेपर भी बस्तिसंधिमें निरन्तर पीड़ाका अनुभव करता है। सभी प्रकारके उदररोगमें रोगी वृद्धावस्थाके समान जीर्ण हो जाता है और बलहीन हो जाता है। तन्द्रा, आलस्य, मलवेग, मन्दाग्नि, दाह, सूजन और आध्मान—ये सभी जलोदरके लक्षण हैं। सब प्रकारका जलोदररोग मृत्युकारक है। इसलिये उसके लिये शोक करना व्यर्थ है। उदररोगमें रोगीका उदर गवाक्षकी तरह शिरोजालसे व्याप्त हो जाता है और सदा गुड़गुड़ शब्द होने लगता है।

उदररोगमें[1] वायु नाभि और आँतमें विष्टब्धता उत्पन्न करके नष्ट हो जाता है। वायुजन्य उदररोगमें हृदय, नाभि, कटि, पायु, वंक्षण—इन सभी स्थानोंमें पीड़ा करके स्वयं वायु शान्त हो जाता है। शब्दके साथ वायु निकलने लगता है एवं अल्प परिमाणमें ही मूत्र होता है। उसकी किसी भी विषयमें चञ्चलता नहीं रहती और मुख सदा उदास रहता है। वातोदरमें हाथ-पैर, मुख और कुक्षिमें शोथ हो जाता है। उदर-पार्श्व तथा कटि और पृष्ठ आदि स्थानोंमें पीड़ाका अनुभव होता है और जोड़ोंमें दर्द रहता है। शुष्क कास, शरीरमें पीड़ा, अधोभागमें गुरुता, मलसंग्रह, शरीरमें श्यामवर्णता या अरुणवर्णता आ जाती है एवं मुँहमें बार-बार पानी आता है। पेटमें नीली और काली शिराएँ उभर जाती हैं और व्यथा होती है तथा थपथपानेपर मशक-जैसा शब्द करता है। उदरमें वेदनाके साथ सशब्द वायु चारों तरफ घूमती है। पित्तजनित उदर-रोगमें ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुखमें कटुता, अतिसार, त्वचा, नख आदिपर पीलापन, उदरपर हरापन एवं पीली और ताम्रवर्णकी शिराएँ अधिकतासे दीखती हैं तथा ऊष्मा और दाह बना रहता है।

कफजनित उदररोगमें शरीरमें अवसाद, शोथ, भारीपन, निद्राधिक्य, अरुचि, श्वास-कास, त्वचा आदिमें श्वेतता, श्वेत शिराओंसे व्याप्त उदर, बड़ा एवं धीरेसे वृद्धिको प्राप्त करता है। त्रिदोषको कुपित करनेवाले आहार-विहारसे, अधिक भोजन करनेसे, शरीरको क्षुब्ध करनेसे, गाड़ी आदिपर यात्रा करनेसे, दौड़ने, कूदने, मैथुन करने, भार उठाने, चलने तथा ज्वरादिसे दुर्बल व्यक्तियोंके वामपार्श्वमें स्थित प्लीहा अपने स्थानसे च्युत होकर वृद्धिको प्राप्त होने लगता है। प्लीहा पहले कठोर तथा पुनः उन्नत या उठा हुआ होकर उदररोग उत्पन्न करता है और श्वास-कास, मुख-विरसता, अफरा, शूल, पाण्डु, वमन, मूर्च्छा, शरीरवेदना, दाह, विभ्रम आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उदरका रंग काला, लाल, विकृत नीला एवं पीला हो जाता है। प्लीहोदरमें भी वात, पित्त और कफका सम्बन्ध रहता है। प्लीहाके समान ही उदरके दक्षिण भागमें स्थित यकृत विकृत होकर भी उदररोग उत्पन्न करता है।

कुपित अपानवायु मल (पुरीष), पित्त एवं कफको अवरुद्ध करके उदरमें बद्ध गुदोदर नामक रोग उत्पन्न करता है और ज्वर, कास, श्वास एवं सिर, नाभि, पार्श्व और गुदामें पीड़ा उत्पन्न करता है। उदर स्थिर एवं अचल बना रहता है। उसपर नीली एवं लाल शिराओंका जाल दीखता है और उदरके ऊपरका हिस्सा गायकी पूँछके समान होकर मल संचय होता रहता है।

भोजनमें हड्डी और पाषाण आदि उदरमें जानेसे तथा अत्यधिक खानेसे आँतोंके फटनेपर पककर मवाद एवं मलके साथ जल निकलकर गुदामार्गसे जब बाहर आता है, वह पीला, लाल पुरीष गन्धयुक्त रहता है। अवशिष्ट भाग पेटमें रुककर उदर-वृद्धि करके जलोदररोग होकर बादमें वातादि दोषोंसे पुनः विकृत हो परिस्रावीछिद्रोदर रोग हो जाता है।

स्नेहपान, स्वेदन, वमन, विरेचन करते समय एकाएक

१-च०चि०अ० १३

ठंडा जल अधिक पान करनेसे मन्दाग्नि रहनेपर या दुर्बलतामें अधिक आम जल पीनेपर वायु एवं कफ कुपित होकर जलवाही स्रोतोंको अवरुद्ध कर उस दूषित जलको बढ़ा देता है और क्लोम, नलिकासे आकर अवरुद्ध हो उदररोग उत्पन्न कर देता है। तदनन्तर प्यास, गुदासे जलस्राव होता हुआ उदरमें वेदना होती रहती है। पुनः कास-श्वास एवं अरुचि हो जाती है। उदरपर अनेक रंगकी शिराएँ उभर आती हैं। उदर जलपूर्ण-सा हो जाता है तथा उसमें कम्पन आदि अनेक उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं, इस स्थितिमें उसे दकोदर, उदकोदर या जलोदररोग कहते हैं। उदर-रोगोंकी उपेक्षा करनेसे वातादि दोष अपने स्थानसे विमुख होकर जलको बढ़ाकर उस जलसे शरीरके जोड़ोंके स्रोतोंके मुखोंको गीला या आर्द्र कर देते हैं। अतः शरीरके[1] पसीनेके रुकनेपर सभी स्रोत अवरुद्ध हो जाते हैं। इससे उदर परिपूर्ण होकर उदररोग उत्पन्न होता है। किसी-किसी रोगीके उदरमें अधिक जलके सञ्चित हो जानेपर यह वर्तुलाकार हो जाता है, उसको ताड़न करनेपर शब्द नहीं होता। इस रोगमें रोगी क्रमशः दुर्बल हो जाता है। यह रोग भयंकर होता है और नाड़ीको दबानेपर जल आगे बढ़ जाता है। उदररोगमें जब उदरगत शिराएँ अन्तर्हित हो जाती हैं, तब उस रोगको सभी लक्षणोंसे आक्रान्त कहा जाता है। वातोदर, पीतोदर, कफोदर, श्लेष्मोदर, प्लीहोदर, सन्निपातोदर और जलोदर—ये क्रमशः कष्टसाध्य होते जाते हैं। एक पक्षके भीतर ही इस रोगमें जल एकत्र होने लगता है। ये सभी उदररोग जन्मसे ही कष्टसाध्य होते हैं। (अध्याय १६१)

पाण्डु-शोथ-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं पाण्डु और शोथरोगका निदान कहता हूँ, सुनो! पित्त-प्रधान द्रव्योंसे सम्पूर्ण वातादि दोष कुपित करनेवाले हेतुओंसे पित्त एवं मल कुपित होकर पाण्डुरोग उत्पन्न करते हैं। इन तीनों कुपित दोषोंमेंसे बलवान् वायु पित्त हृदयस्थ दस धमनियोंका आश्रय लेकर सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। वह पित्तका आश्रयणकर श्लेष्मा, चर्म, रक्त, मांस आदिको दूषित कर देता है। इससे दूषित रक्त चमड़े और मांसके बीचमें जाकर चमड़ेको भिन्न-भिन्न रंगका कर देता है। इस रोगमें चमड़ा हरिद्रादि अनेक रंगका हो जाता है, परंतु इसमें पीले रंगकी अधिकता रहती है। इसीसे इसे पाण्डुरोग कहते हैं। इस रोगमें धातुका गुरुत्व और स्पर्शमें शिथिलता होती है। अम्लजन्य पाण्डुरोगमें शरीरके सभी प्रकारके गुण नष्ट हो जाते हैं। इससे शरीरका रक्त क्रमशः कम हो जाता है, मेदा और अस्थि निस्सार हो जाते हैं। इस रोगमें सभी अङ्ग निर्बल हो जाते हैं, हृदयमें द्रवता आ जाती है एवं नेत्रोंमें सूजन हो जाती है। मुँहमें लालायुक्त लारकी अधिकता हो जाती है। रोगीको प्यास कम लगती है, ठंडक अच्छी नहीं लगती, रोमाञ्च और मन्दाग्नि हो जाती है एवं शरीरकी शक्ति घट जाती है तथा ज्वर, श्वास, कर्णशूल, चक्कर—ये सभी उपद्रव होने लगते हैं।

पाण्डुरोग[2] पाँच प्रकारके हैं—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज एवं मृत्तिका-भक्षणजन्य। हृदयमें स्पन्दन, चमड़ेकी रूक्षता, अरुचि, मूत्रकी पीतवर्णता, पसीना और मूत्रका कम होना—ये सभी पाण्डुरोगके पूर्वरूप हैं। वायुजन्य पाण्डुरोगमें तीव्र वेदना, शरीरमें चिपचिपाहट आदि लक्षण दिखायी देते हैं।

इस रोगमें शिरा, नख, विष्ठा, मूत्र और नेत्र कृष्णवर्ण तथा अरुणवर्णके हो जाते हैं। इससे शोथ, नासिका और मुखमें विरसता, मलशोष, पार्श्वमें वेदना—ये सभी उपद्रव होने लगते हैं। पित्तज पाण्डुरोगमें शिराएँ आदि हरित पित्त-जैसी हो जाती हैं एवं ज्वर, आँखोंके आगे अँधेरा, प्यास, शोष, मूर्च्छा, दुर्गन्ध, शैत्य-सेवनकी इच्छा, मुखमें कड़वाहट—ये सभी लक्षण व्यक्त होने लगते हैं। कफज पाण्डुरोगमें हृदयमें आर्द्रता, मलभेद, खट्टी डकार और दाह होता है। तन्द्रा, मुखमें लवण-रसका स्वाद, श्वास, रोमाञ्च, स्वरभंग, कास, वमन, दुःसहता—ये सभी लक्षण व्यक्त होने लगते हैं। त्रिदोषज होनेपर इसके लक्षणोंको पहचानना कठिन हो

१-च०चि०अ० १३, सु०नि०अ० ७, अ०हृ०नि०अ० १३। २-च०चि० १६, सु०उ०तं०अ० ४३, अ०हृ०सू० २।

जाता है और अतिशय असह्य हो जाता है। मिट्टी खानेसे उत्पन्न पाण्डुरोगमें कसैली मिट्टी वायु, खारी मिट्टी पित्त और मीठी मिट्टी कफको दूषित करके तथा रस आदिको सुखा करके शिराओंको रक्तसे भर देती है तथा उसे वहीं रोक देती है और पाण्डुरोग पैदा हो जाता है। पाण्डुरोगके बढ़ जानेपर नाभि, पैर, मुख और मूत्रमार्गमें शोथ हो जाता है। कृमियुक्त तथा रक्तमिश्रित और कफसमन्वित मल निकलने लगता है।

जो पाण्डुरोगी पित्त उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंका सेवन करता है, उसका पित्त-रक्त और मांसका दाह करके कोष्ठ शाखामें मिलकर कामलारोग उत्पन्न करता है। कामला-रोगमें रोगीका मूत्र, नेत्र, त्वक्, मुख और विष्ठा हल्दीके रंगका हो जाता है। रोगी दाह, अविपाक और तृषासे पीड़ित होकर मेढकके समान पीला और दुर्बल हो जाता है। पाण्डुरोगीको पित्तज शोथ होने लगता है। इसकी उपेक्षा करनेपर जो अतिशय शोथ बढ़ जाता है, वह बहुत क्लेशप्रद होता है। इस रोगको कुम्भकामला कहा जाता है। पित्त यदि हरित और श्यामवर्णका है तो उससे पाण्डुरोग होता है, उस स्थितिमें वात-पित्तके प्रभावसे चक्कर आना, तृष्णा, स्त्रियोंके प्रति अरुचि, थोड़ा-थोड़ा ज्वर, तन्द्रा, अग्निमान्द्य और अतिशय आलस्य—ये सभी रोगके लक्षण व्यक्त हो जाते हैं। इस रोगको हलीमक नामसे जाना जाता है।

पाण्डुरोगसे उत्पन्न सभी उपद्रवोंमें शोथ प्रधान है। इसलिये शोथका वर्णन किया जाता है। वायु कुपित होकर रक्त, पित्त और कफको दूषित करनेके कारण वह त्वक्, शिरा और मांसका आश्रय लेकर ऊँचाई पैदा करता है। सभी शोथ त्रिदोषज होते हैं, क्योंकि सूजन वात, पित्त और कफ—इन तीनोंसे होती है। इसलिये जैसे वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक कारण-भेदसे शोथ नौ प्रकारका होता है—वातपैत्तिक, वातश्लेष्मिक, पित्तकफज, सन्निपातिक, अभिघातक, विषज और एकाङ्गज। निज और आगन्तुक-भेदसे यह दो प्रकारका होता है—सर्वाङ्गज और एकाङ्गज। विस्तृत, उन्नत, अग्रभाग गाँठदार होनेसे इसके अवान्तर तीन भेद हैं।

पित्तज शोथ पीतवर्ण, कृष्णवर्ण या रक्तवर्णका होता है एवं यह शोषणकारी होता है। यह बहुत जल्दी शान्त नहीं होता। इस शोथके उत्पन्न होनेसे पूर्व शरीरमें दाह उत्पन्न होता है। तृष्णा, दाह, ज्वर, पसीना, भ्रम, क्लेद, मद—ये सभी उपद्रव इसमें होने लगते हैं। इस रोगमें रोगीको शीत वस्तुकी इच्छा होती है, मलभेद हो जाता है, दुर्गन्धि होती है, स्पर्श नहीं सहा जाता और कोमलता होती है। कफज शोथमें खुजली होती है। रोम और चमड़ेमें पीलापन, कठोरता, शीतलता, गुरुता, स्निग्धता, कोमलता, स्थिरता और पीड़ा होती है। इस रोगमें निद्रा, मन्दाग्नि, वमन—ये सभी उपद्रव हो जाते हैं।

आघात—अस्त्र-शस्त्रादिकृत छेदन-भेदनसे क्षत होनेपर अभिघातज शोथ होता है। शीतल वायु तथा समुद्रीवायु और भल्लातक-रसके लग जाने एवं केंवाच इत्यादिके लग जानेसे जो सूजन होती है, वह फैल जाती है। यह अत्यन्त गरम लाल रंगका और पित्तज शोथके लक्षणोंसे युक्त होती है।

विषधर[2] प्राणीके किसी अङ्गके ऊपरसे चलनेपर अथवा किसी अङ्गमें मूत्र करनेपर और विषहीन प्राणीके भी दाढ़, दाँत एवं नखके द्वारा घात करनेपर उस स्थानमें जो शोथ उत्पन्न होता है, वही विषज शोथ है। इसके अतिरिक्त विषधर प्राणीके विष्ठा, मूत्र, शुक्र आदिसे सने हुए वस्तुके सम्पर्कसे, विषवृक्षके वायुके सेवनसे, विषयुक्त वस्तु शरीरपर मलनेसे विषशोथरोग उत्पन्न होता है। विषज शोथ कोमल, गतिशील, अवलम्बी, शीघ्र दाह और शूलको उत्पन्न करनेवाला होता है। नये और उपद्रवरहित शोथ साध्य होते हैं और पहले कहे हुए असाध्य होते हैं। (अध्याय १६२)

१-सु०उ०तं०अ० ४४, मा०नि०पाण्डुप्र० २२, २३।   २-च०चि०अ० १२, च०सू०अ० १८, सु०चि०अ० २३।

विसर्परोगका निदान

धन्वन्तरिने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं विसर्पादि रोगोंके मूल कारणोंका वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें।

वात, पित्त, कफ एवं अभिघात नामक दोषोंसे तथा पित्त, रक्त एवं कफके दूषित होनेसे शोथ-सदृश विसर्परोग होता है। बाह्य, अन्तः, उभय—ये उसके तीन अधिष्ठान हैं। इनमें अपने-अपने प्रकोपक तथा विदाहकारी कारणोंसे शरीरमें शीघ्र विसर्पण कर बाहर एवं अंदर विकृत करके विसर्परोग शरीरके बाहर तथा अंदर उत्पन्न करते हैं।

आन्तरिक विसर्पसे हृदय आदिमें उपताप होनेके कारण अत्यन्त मोह तथा कर्ण-नासा आदिमें विघटन होता है। प्यासकी अधिकता और मलमूत्रादिमें विषमता होती है। कफजन्य[1] विसर्परोगमें अत्यधिक खुजलाहट होती है। उसमें स्निग्धता बनी रहती है और कफजन्य ज्वरके समान इस रोगमें भी रोगीको कष्ट भोगना पड़ता है।

संनिपातज विसर्प होनेपर रक्त-वातादि सभी दोषोंके लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इन सभी प्रकारके विसर्प-भेदोंकी उपेक्षा कर देनेपर वे यथाक्रम अपने-अपने दोषोंके लक्षणोंसे समन्वित होकर फुंसियोंके रूपमें उभर आते हैं। ये जब पककर फूट जाते हैं, तब अपने-अपने लक्षणोंमें उक्त व्रणका रूप धारण कर लेते हैं।

वात-पित्तज विसर्परोगमें रोगीको ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, भ्रम, हड्डी टूटना, अग्निमान्द्य, तमक, श्वास और अरुचिका उपद्रव ग्रस्त कर लेता है। यह रोग प्रज्वलित अग्निके अंगारेके समान रोगीके सम्पूर्ण अङ्गको संतप्त कर देता है। यह विसर्प शरीरके जिन-जिन स्थानोंपर फैलता है, वे स्थान बुझे हुए अंगारेके समान काले, नीले तथा रक्तवर्णके हो जाते हैं। अपने स्फुटित व्रणोंके द्वारा यथाशीघ्र ही अग्निसे दग्ध हुए स्थानके सदृश विस्तृत क्षेत्रमें यह फैल जाता है। शीघ्रगामी होनेके कारण विसर्प मर्मस्थलतक पहुँच जाता है। इस रोगमें वायु प्रबल हो जाता है और वह प्रकुपित होकर सम्पूर्ण अङ्गोंको पीड़ित करता है तथा रोगीको चेतनाशून्य कर देता है। उसके प्रभावसे रोगीकी निद्रा भी समाप्त हो जाती है। उसकी श्वसन-क्रियामें विकार आ जाता है। ऐसे रोगीको हिचकी भी आने लगती है। इस प्रकारके रोगमें रोगीकी ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह पीड़ासे ग्रस्त हो उठता है तो उसको अत्यन्त व्याकुलताकी अनुभूति होती है। भूमि, शय्या तथा आसन आदिपर उठने-बैठने और लेटनेसे उसको तनिक भी शान्ति प्राप्त नहीं होती। इस रोगसे ग्रस्त रोगी उससे विमुक्त होनेके लिये विभिन्न प्रकारकी चेष्टा करता है, किंतु उस कष्टसे विमुक्त नहीं हो पाता। ऐसा रोगी मन और शरीर दोनोंसे शिथिल होकर ऐसी गम्भीर मूर्च्छाको प्राप्त कर लेता है, जिससे पुनः चेतनामें उसको लौटना बड़ा ही दुस्साध्य होता है। इन लक्षणोंसे युक्त विसर्पको अग्निविसर्प कहा जाता है।

कफसे अवरुद्ध वायु उस अवरोधक कफका बहुत प्रकारसे भेदन कर देती है, तब ग्रन्थिमाला तैयार हो जाती है अथवा जिस रोगीका रक्त बढ़ जाता है, उसके त्वचा, शिरा, स्नायु तथा मांसगत रक्तको दूषित करके वह वायु लम्बी, छल्लेदार, स्थूल और खरदरी ग्रन्थियोंकी रक्तभरी मालाकी सृष्टि करती है। इसके कारण रोगीको तीव्र पीड़ादायक ज्वर होता है। यह रोग होनेपर रोगी श्वास, खाँसी, अतिसार, मुखशोष, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, वर्णभेद, मूर्च्छा, अङ्गभेद और अग्निमान्द्यके दोषसे भी घिर जाता है। इस प्रकार कफ और वायुके संक्षोभसे उत्पन्न इस रोगको ग्रन्थिविसर्प कहते हैं।

कफ और पित्तके प्रकुपित होनेसे रोगीमें ज्वर, स्तम्भन, निद्रा, तन्द्रा, शिरोवेदना, विक्षेप, प्रलाप, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य, अस्थिभेद, प्यास, इन्द्रियजनित जड़ता, आँवनिर्गमन तथा रसादिक स्रोतोंका लेप—ये लक्षण दिखायी देते हैं। प्रायः यह दोष आमाशयके एक देशमें होता है और धीरे-धीरे अन्य भागोंमें फैलता जाता है, परंतु इसमें दर्द नहीं होता। यह अत्यन्त पीला, लोहित और पाण्डु रंगकी पिडिकाओंसे भर जाता है। इसके स्वरूपकी कान्ति कृष्ण और मलिन मानी गयी है। यह रोग शोथसे युक्त और भारी होता है। यह स्पर्श करनेमें अधिक ऊष्मासे समन्वित अनुभूत होता है। इसमें पसीने-जैसी चिपचिपाहट होती है।

१-च०चि०२१, सु०नि०अ० १०, अ०हृ०नि०अ० १३।

जब यह पककर फूटता है तो इसमें मांस गल-गलकर नये रूपमें निकलने लगता है। शरीरकी स्नायु तथा शिराएँ स्पष्ट रूपसे दिखायी देने लगती हैं। इस प्रकार सभी लक्षणोंसे युक्त हुआ यह विसर्परोग अन्ततोगत्वा शरीरकी त्वचासे सम्पृक्त हो जाता है, जिसके कारण यह बाह्य भागमें दिखायी देने लगता है। इस रोग-स्थानसे शवके समान दुर्गन्ध निकलती है। विद्वानोंने इसको कर्दम विसर्परोगके नामसे अभिहित किया है।

बाह्य आघात आदिके कारण क्षत हुए शरीरसे क्रुद्धवायु पित्तको रक्तसमन्वित करता हुआ कुल्थीके दानोंके समान स्फोटजनित विसर्पको जन्म देता है। इसमें शोथ, ज्वर, पीड़ा, दाहाधिक्य, श्याम और रक्तवर्णताका लक्षण भी दिखायी पड़ता है। पृथक्-पृथक् वात, पित्त तथा कफजनित दोषसे उत्पन्न उक्त तीनों प्रकारका विसर्परोग साध्य है। इतना ही नहीं, वात-पित्त आदि द्वन्द्वजनित दोषसे समन्वित विसर्प यदि उपद्रवसे रहित हैं तो वे भी यथापेक्षित चिकित्सासे दूर किये जा सकते हैं, किंतु जो विसर्प समस्त दोषोंसे युक्त हो जाते हैं और जिनका आक्रमण रोगीके मर्मस्थलको आहत करनेमें सफल हो जाता है, जिसके दुष्प्रभावसे रोगीके शरीरका स्नायु, शिरा और मांस गल जाता है और जिनसे शवके समान दुर्गन्ध आने लगती है—वे विसर्परोग असाध्य हो जाते हैं, उनकी चिकित्सा सम्भव नहीं है। (अध्याय १६३)

कुष्ठरोगका निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! मिथ्या एवं विरोधी आहार-विहार करनेसे तथा सज्जनोंकी निन्दा एवं अपमान और वध या हत्या करनेसे, दूसरोंकी धन-सम्पत्तिके हरण एवं पाप-कृत्यसे, पूर्वजन्मकृत पापका उदय होनेसे वातादि दोष कुपित होकर शिराओंमें जाकर त्वचा, लसीका, रक्त एवं मांसको दूषित और अङ्गोंकी क्रिया-हानि करके वे दोष बाहर आकर त्वचापर विविध प्रकारके कुष्ठोंको उत्पन्न करते हैं।

सामयिक उपेक्षा करनेपर यह रोग आभ्यन्तरिक समस्त कोष्ठकोंके सहित शरीरमें व्याप्त होकर बाहर और भीतर रहनेवाली सभी धातुओंको गलाकर अपना अधिकार कर लेता है। इस रोगमें पसीनेके जलबिन्दुओंसे युक्त प्राणीके शरीरपर कुछ आर्द्रता होती है। इसमें अत्यन्त कष्टदायक बहुत ही छोटे-छोटे कीड़े होते हैं। इन सभी लक्षणोंसे युक्त यह रोग क्रमशः रोगीके रोम, त्वचा, स्नायु तथा धमनियोंपर आक्रमण करता है।

बाह्य भागमें फैला हुआ कुष्ठरोग प्राणीके उस आक्रान्तित शरीरको भस्मसे आच्छादित हुएके समान रूक्ष बना देता है। वात, पित्त, श्लेष्म, वातपित्त, वातश्लेष्म, पित्तश्लेष्म और संनिपात-दोषजन्य प्रभावसे यह रोग सात प्रकारका होता है। इन सभी प्रकारके कुष्ठ-भेदोंमें वात-पित्त तथा कफज दोषके अन्तर्गत प्राप्त होनेवाली विकृति अधिक रहती है।

वात-दोषसे कापाल, पित्त-दोषसे उदुम्बर, कफ-दोषसे मण्डल तथा विचर्चिका नामक कुष्ठ उत्पन्न होता है। वातपित्तज दोषसे ऋक्ष, वातश्लेष्मजन्य दोषसे चर्म, एककुष्ठ, किटिम, सिध्म, अलसक तथा विपादिका नामक कुष्ठ होते हैं। श्लेष्मपित्तजन्य दोषसे दद्रु, शतारुषी, पुण्डरीक, विस्फोट, पामा और चर्मदल नामक कुष्ठोंकी उत्पत्ति होती है। इन सभी दोषोंकी संनिपात-अवस्था आनेपर १८ प्रकारके कुष्ठ-रोग उत्पन्न होते हैं।

इनमें पूर्वमें कहे—कापाल, उदुम्बर तथा मण्डल—ये तीन और दद्रु, काकण, पुण्डरीक तथा अरिजिह्वा नामक इन सात कुष्ठोंको महा कुष्ठ माना गया है। शेष ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ कहलाते हैं।

कुष्ठरोग होनेके पूर्व रोगीकी त्वचामें अत्यन्त चिकनाहट, रूक्षता, स्पर्शता, स्वेद, अस्वेद, वर्णभेद, दाह, खुजली, स्पर्शानुभूतिकी कमी, सुई चुभानेसे होनेवाली पीड़ाके समान कष्ट, पित्तीका उछलना और अनायास श्रमकी अनुभूति, रोगीके घावोंमें अत्यधिक पीड़ा, व्रणोंका यथाशीघ्र उद्भव, अधिक समयतक उन व्रणोंका रहना, व्रण-भरावके समय

१-सु०नि०अ० १०; च०चि०अ० २१। ३-सु०नि०अ० ५।
२-च०चि० २१; अ०हृ०नि०अ० १४। ४-सु०नि०अ० ५; च०चि०अ० ५, ७; अ०हृ०नि०अ० १४; वा०नि० ७।

रूक्षता, सामान्य तथा थोड़ेसे कारणपर रोगीको अत्यधिक क्रोध, रोमाञ्च तथा रक्तका काला होना—ये दोषपूर्ण कुलक्षण दिखायी देते हैं।

कापाल कुष्ठका वर्ण काला और लाल होता है अथवा आँवेंमें पकाये गये मिट्टीके खप्परके सदृश वह देखनेमें लगता है। उसमें रूक्षता और कठोरता होती है। इस कुष्ठ-रोगकी आकृति शरीरके अधिक भागमें फैली रहती है। उन स्थानोंमें रहनेवाले रोमसमूह भी दूषित हो जाते हैं। उन दूषित स्थानोंपर सूचिकाभेदनसे होनेवाली पीड़ाके समान अत्यधिक पीड़ा भी होती है। वह कुष्ठ विषम अर्थात् दुःसाध्य माना गया है।

जो कुष्ठरोग उदुम्बर अर्थात् गूलर-फलके समान दिखायी देता हो, उसको औदुम्बर कुष्ठरोग कहना चाहिये। इसकी आकृति वर्तुलाकार होती है। इसमें अत्यधिक गोलापन, दाह और पीड़ा होती है। जिस प्रकार बिना छानी गयी मदिराका वर्ण होता है, जिसमें छोटे-छोटे कोड़े भरे रहते हैं; वैसे ही सामान्य पके हुए उदुम्बरका फल पीत और लाल होता है, उसी रूपमें इस कुष्ठरोगका वर्ण स्वीकार करना चाहिये। इसमें रोगजन्य कृमि रहते हैं, जिसके कारण उस व्रणमें खुजली भी होती है।

जो कुष्ठ स्थिर, गोल, भारी, चिक्कण, श्वेत या रक्त-वर्णवाला और मलसमन्वित हो, उसके वर्ण परस्पर मिले हों, उसमें अत्यधिक खुजलाहट उत्पन्न करनेवाले कृमि हों, उनसे पीब निकलता रहे तथा वह चिकने, पीत वर्णकी आभासे युक्त मण्डलके समान दिखायी देता हो तो उसको मण्डल कुष्ठरोग कहा गया है।

खुजलाहटसे भरी हुई फुंसियोंवाले धूसर वर्णसे युक्त और स्राव-समन्वित कुष्ठका नाम विचर्चिका कुष्ठ है। जो कुष्ठ कर्कश होता है, जिसके किनारेपर लाल वर्ण और बीचमें काला वर्ण विद्यमान रहता है, जिसकी आकृति ऊँची और रीछ अर्थात् भालूकी जिह्वाके समान होती है, जिसमें बहुतसे कृमि भी होते हैं; उसको आयुर्वेदमें ऋष्यजिह्वा या ऋक्षजिह्वा कुष्ठके नामसे अभिहित किया गया है।

हाथीके चमड़ेके समान रोगीका खरखराहट-भरा चमड़ा होनेपर गजचर्मकुष्ठ कहा जाता है। जो कुष्ठ पसीनेसे रहित मछलीके शल्क (अभ्रकवत् चर्म)-के सदृश होता है, उसे एककुष्ठ कहते हैं। जो कुष्ठ रूखा, अग्निके समान वर्णवाला या काला, स्पर्श करनेमें कष्टकारी, खुजलाहटसे युक्त तथा कठोर होता है, वह किटिम कुष्ठ माना गया है। सिध्म कुष्ठ अन्तर्भागसे रूक्ष और बाह्यरूपमें स्निग्ध होता है। इसके आभ्यन्तरिक भागको रगड़नेसे बालूके कणके समान रज गिरता है। इस रोगके होनेपर शरीरका स्पर्श करनेसे चिकनाहटका अनुभव होता है। इसमें स्वच्छता होती है। इसकी वर्णाकृति काले पुष्पके समान दिखायी देती है, यह कुष्ठ प्रायः शरीरके ऊपरी भागमें होता है।

अलंशुका (अलसक) कुष्ठमें खुजली और लाल रंगकी पिडिका होती है। विपादिका कुष्ठमें हाथ और पाँव फट जाते हैं, अत्यन्त वेदना और खुजली होती है तथा लाल वर्णकी फुंसियाँ हो जाती हैं। जिस कुष्ठमें दद्रु या दाद दूर्वाके समान बहुत जगहमें फैल जाता हो तथा अलसीके फूलके सदृश कान्ति दिखायी देती हो और ऊँचे-ऊँचे गोल चकत्ते हों, ऐसा खुजलाहटसे परिव्याप्त कुष्ठ दद्रु या दाद कुष्ठ कहलाता है।

अपने मूलभागमें स्थूल, दाह और वेदनासे समन्वित रक्तस्राववाले प्रचुर व्रणोंसे युक्त कुष्ठरोगका नाम शतारुषी है। इस प्रकारके कुष्ठरोगमें दाह, क्लेद और वेदना होती है। वह प्रायः अस्थिके जोड़ोंमें होता है। जिस कुष्ठमें कुष्ठ-स्थानका मण्डल रक्तसे भरा हुआ तथा पाण्डु वर्णका होता है, उसमें दाह और खुजलाहट-भरी पीड़ा भी होती है, खिले हुए रक्तवर्ण और अलसे संसिक्त पुण्डरीक-दल अर्थात् श्वेत कमलकी पंखुड़ियोंके समान शरीरपर उभरा हुआ और व्रणके किनारे पद्मपत्रकी जल-बिन्दुओंसे युक्त मांसवाले दिखायी देते हैं, उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं। विस्फोटक कुष्ठ पतले चमड़ेसे ढका होता है तथा सफेद और लाल फुंसियोंसे व्याप्त होता है।

पामा नामक कुष्ठ पककर फूटनेवाली छोटी-छोटी असंख्य फुंसियोंसे भरा होता है। इसमें खुजली, मलस्राव और वेदना होती है। प्रायः इसका वर्ण श्याम और लाल होता है। इसमें रूक्षता होती है। यह रोगीके कूल्हे, चूतड़ और हाथके रोम-छिद्रोंमें होता है। चर्मदल नामक कुष्ठ

फोड़ा-फुंसीके रूपमें उभरकर फफोले पड़कर फूटता है, यह किये गये स्पर्शको सहन करनेमें समर्थ नहीं होता। इसमें खुजलाहट होती है, रक्तस्राव होता है, जलन भी होती है और मांस गलकर गिरता है।

काकण नामक कुष्ठमें अत्यन्त दाह और तीव्र वेदना होती है। गुंजाफलके समान यह पहले लाल और काले अनेक रंगका होता है। अपने-अपने कारणोंसे सब कुष्ठोंके लक्षण इसमें पाये जाते हैं।

दोष[1]-भेदके अनुसार त्रिदोषोंमें जो दोष कुष्ठमें अधिक विहित हो, उसीके लक्षण और कर्मके अनुसार त्रिदोषज कुष्ठका स्वरूप समझना चाहिये। जो कुष्ठ-भेद अपने ही दोषका अनुगमन करता है अर्थात् वह द्वन्द्वज दोष या संनिपातज दोषसे सम्पृक्त नहीं होता तो उसकी चिकित्सा सम्भव है। किंतु जब वह सभी दोषोंसे परिव्याप्त हो जाता है तो उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये, वह असाध्य हो जाता है।

उपर्युक्त जितने भी कुष्ठ हैं, उनमेंसे जो कुष्ठ अस्थि, मज्जा और शुक्राणुओंमें प्रविष्ट हो गया है, वह कुष्ठ भी असाध्य है। जो कुष्ठ मेदागत है और जो स्नायु, अस्थि एवं मांसमें पहुँच गया है, वह अधिक कष्टसाध्य नहीं है। जिस कुष्ठका जन्म कफ और वातके कारण त्वचापर ही होता है, जिसमें विशेष दोष नहीं रहता, वह कष्टसाध्य नहीं होता। सामान्य चिकित्सासे ही उसकी शान्ति हो सकती है।

त्वचाभागपर ऐसे कुष्ठके उभर आनेसे शरीरका वर्ण बदल जाता है, उसमें रूक्षता आ जाती है। तदनन्तर जब वह कुष्ठ रक्त और मांसमें प्रविष्ट हो जाता है तो रोगीके शरीरमें स्वेद, ताप तथा शोथके लक्षण उभर आते हैं। रोगीके हाथ और पैरोंमें फोड़े हो जाते हैं। शरीरके संधि-भागोंमें अधिक पीड़ा होती है। दोषाधिक्य होनेपर वह मेदामें पहुँच जाता है, जिसके कारण उसमें उपद्रव होने लगता है। रोगीकी इन्द्रियोंमें संज्ञाशून्यता बढ़ जाती है अर्थात् वह चलने-फिरनेमें अशक्त हो जाता है। रोगीके शरीरकी मज्जा और अस्थिमें जब वह कुष्ठ पहुँच जाता है तो उसके नेत्रोंकी ज्योति तथा वाणीके स्वरोंमें भेद उत्पन्न हो जाता है।

कुष्ठरोगके कृमियोंके द्वारा रोगीके वीर्यमें विकार उत्पन्न हो जानेपर वह दोष स्त्री और संतानके लिये बाधायुक्त हो जाता है। रस-रक्तादि धातुगत कुष्ठोंमें अपने-अपने लक्षणोंके अतिरिक्त यथापूर्व धातुगत कुष्ठोंके लक्षण भी हो जाते हैं।

श्वित्र और कुष्ठ इन दोनों रोगोंकी उत्पत्तिका कारण एक ही है और इनकी चिकित्सा भी एक ही है। इसीको किलास तथा दारुण भी कहते हैं। इनमें अन्तर यही है कि कुष्ठ संनिपातिक है और श्वित्र अलग-अलग दोषोंसे उत्पन्न होता है। कुष्ठ स्रावी है और श्वित्र अपरिस्रावी। कुष्ठ रसादि सातों धातुओंपर आक्रमण करता है और श्वित्र रक्त, मांस तथा मेद—इन तीन धातुओंका आश्रय ग्रहण करता है।

वातज और आभ्यन्तरिक रूक्षताके कारण उत्पन्न हुआ श्वित्र कुष्ठरोग अरुण वर्णका होता है। जब वह पित्तज दोषके कारण जन्म लेता है तो उसका वर्ण पद्मपत्रके समान या ताम्रवत् होता है। यह दाहयुक्त और रोमविनाशक होता है। कफज दोषके कारण उभरा हुआ श्वित्र श्वेतवर्ण, सघन, भारी और खुजलीसे युक्त होता है।

ये श्वित्र क्रमशः रक्त, मांस और मेदामें पहुँचकर आश्रय ग्रहण करते हैं अर्थात् वातज श्वित्र रक्तमें, पित्तज श्वित्र मांसमें तथा कफज श्वित्र मेदमें होता है। अरुण आदि वर्णके आधारपर ही श्वित्रके वातादिक दोष तथा रक्तादि आश्रय—दोनों ही जाने जाते हैं। उत्तरोत्तर इनकी चिकित्सा कष्ट-साध्य होती है अर्थात् यह श्वित्ररोग जबतक रक्ताश्रित होता है, तबतक उसकी चिकित्सा सम्भव है। मांसगत होते ही यह कष्टसाध्य हो जाता है और उसके बाद तो जब यह मेदामें पहुँच जाता है, तब अत्यन्त कष्टसाध्य हो जाता है।

जो श्वित्र कृष्ण वर्णवाले रोमोंसे भरा हुआ होता है, उसके दाग एक-दूसरेसे संश्लिष्ट नहीं होते। वह अधिक समयका न होकर नया ही होता है और उसका जन्म अग्निसे जलनेके कारण नहीं हो तो उसे चिकित्सा-साध्य समझना चाहिये। इन लक्षणोंके विपरीत होनेपर इसका उपचार करना चिकित्सकके लिये त्याज्य है, क्योंकि यह असाध्य हो जाता है। रोगीके गुह्यभाग, करतल और ओष्ठ-

१-सु०सू०अ० १२

प्रदेशमें तो यथाशीघ्र भी उत्पन्न हुआ यह रोग असाध्य बन जाता है। यश प्राप्त करनेके इच्छुक वैद्यको तो किलास नामक श्वित्र-भेदकी चिकित्साको सर्वथा त्याग देना चाहिये, क्योंकि उसका उपचार सम्भव नहीं है।

प्रायः सभी रोग संक्रामक होते हैं। रोगीका स्पर्श करनेसे, उसके साथ बैठकर भोजन करनेसे, उसके साथ रहनेसे, एक शय्या और आसनपर उसके साथ सोने और बैठनेसे तथा उस रोगीके द्वारा प्रयुक्त वस्त्र, माला एवं अनुलेप-पदार्थका प्रयोग करनेसे दूसरे प्राणीमें रोगोंका प्रादुर्भाव हो जाता है। (अध्याय १६४)

कृमि-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! बाह्य और आभ्यन्तर भेदके कारण कृमियोंके दो प्रकार हैं।[1] उनमें बाह्यगत जो कृमि (कीड़े) होते हैं, उनका जन्म बाहरी मल, कफ, रक्त और विष्ठासे होता है। जन्मगत भेदके कारण उनके चार भेद हो जाते हैं, किंतु नाम-भेदसे कृमियोंके बीस प्रकार माने गये हैं। बाह्य कृमि बाह्य मलसे उत्पन्न होते हैं। इनका परिमाण, आकार और वर्ण तिलके समान होता है। इनका निवास प्राणियोंकी केशराशि तथा उनके वस्त्रोंमें होता है। अनेक पैरोंवाले उन कृमियोंकी आकृति सूक्ष्म होती है। नामतः उन्हें जूँ और लीख कहा जाता है। इन दोनों प्रकारवाले कृमियोंके द्वारा प्राणियोंके बाह्य शरीरपर कोष्ठ (चकत्ते), पिडिका (फुंसी), कण्डू (खुजली) तथा गण्ड (गाँठ) नामक रोग कहे जाते हैं।

कुष्ठरोगका एक मात्र कारण शरीरके आभ्यन्तरिक भागमें उत्पन्न होनेवाला श्लेष्मज कृमि है। यह प्राणीके बाह्य श्लेष्ममें भी उत्पन्न हो सकता है। मधुर अन्न, गुड़, दूध, दही, मछली और नये चावलका भात खानेसे प्राणीके आभ्यन्तरिक भागमें कफ उत्पन्न होता है, उसी कफसे उत्पन्न होकर कृमिवर्ग आमाशयमें पहुँच जाता है। उसीमें इस कृमिवर्गकी अभिवृद्धि होती है और उसीसे निकलकर शरीरमें यह सब ओर फैल जाता है। उनमें कुछ चमड़ेकी मोटी ताँतके समान, कुछ केंचुएके सदृश, कुछ धान्याङ्कुरके समान छोटे-बड़े और कुछ अणुकी भाँति होते हैं। इनका वर्ण श्वेत तथा ताँबे-जैसा होता है। नामतः इन कृमियोंके सात प्रकार हैं—अन्त्राद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महागुद, च्युरव, दर्भकुसुम और सुगन्ध।[2]

इन कृमियोंके उत्पन्न होनेसे प्राणीके हृल्लास, मुखस्राव (लार), अपच, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, आनाह, कृशता, शोथ तथा पीनस नामक रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

रक्तवाही शिराओंमें स्थित रक्तसे उत्पन्न होनेवाले कृमि अणुरूप, पादविहीन, वृत्ताकार और ताम्रवर्णके होते हैं। अपनी सूक्ष्मताके कारण उनमेंसे कुछ कृमि तो दृष्टिगोचर ही नहीं होते। इनके केशाद, रोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस तथा मातर—ये छः भेद हैं। इन सभी कृमियोंका एकमात्र कार्य कुष्ठरोग उत्पन्न करना है।

पक्वाशयमें गुदा-भागसे बाहर निकलनेवाले विष्ठाजन्य कृमियोंका उद्भव होता है। वहींपर बढ़कर जब ये आमाशयकी ओर उन्मुख होते हैं, तब प्राणियोंके डकार और श्वासमें विष्ठा-सदृश दुर्गन्ध आती है। ये कृमि लम्बे, गोल, छोटे और मोटे होते हैं। उनका वर्ण श्याम, पीत, श्वेत और कृष्ण होता है। उन कृमियोंके ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, शूलाख्य तथा लेलिह—ये पाँच नामभेद हैं। जब ये प्रकुपित हो उठते हैं तो प्राणीके शरीरमें मलभेद, शूल, विष्टम्भ, कृशता, कर्कशता, पाण्डुता, रोमाञ्च, मन्दाग्नि और पाण्डु तथा गुदामें खुजलाहटका दोष उत्पन्न हो जाता है।

(अध्याय १६५)

१-वा० नि० अ० १४। २-सु० उ० तं० अ० ५४

वातव्याधि-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपको वातव्याधिका निदान सुना रहा हूँ, उसे आप सुनें।

शरीरमें विशेष रूपसे सर्वथा अनर्थ और विघ्नोंका एकमात्र कारण न दिखायी देनेवाला दुष्ट (प्रकुपित) पवन ही है। वह वायु ही विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विश्वरूप, प्रजापति, स्रष्टा, धाता, विभु, विष्णु, संहर्ता, मृत्यु और अन्तक-रूप है। इसलिये उस वायुको सम रखनेके लिये विशेष रूपसे प्रयत्न करना चाहिये।

उस वातबाधित शरीरसे सम्बद्ध, कहे गये दोष-विज्ञानमें कर्म दो प्रकारका माना गया है। उनमें एक है प्राकृत कर्म और दूसरा है वैकृत कर्म। संक्षेपमें प्रतिपादित दोष-भेदोंका विचार करके प्रत्येक कर्मके पाँच-पाँच दोष सिद्ध किये गये हैं। इनमें वैकृत कर्म-दोष प्राकृतकी अपेक्षा शक्तिशाली और गतिमान् होता है। अब यहाँ यथाविभाग लक्षणसहित उसके निदानको कहा जा रहा है।

शरीरकी धातुओंको क्षीण करनेवाले द्रव्य-पदार्थोंके उपभोग तथा आचार-विचारसे क्रुद्ध वायु अत्यधिक समरूपमें प्रवहमान नहीं रहता। वह रस आदिके चारों स्रोतोंसे प्रवाहित होकर पुनः उनमें तज्जनित दोषोंको परिपूर्ण कर देता है। उसके बाद उन दोषपूर्ण स्रोतोंसे निकलकर वह संक्षुब्ध वायु उसके मुखको विधिवत् आच्छादित करके रोगीके शरीरमें शूल, आनाह, आन्त्रकूजन, मलावरोध, स्वरभंग, दृष्टिभेद, पीठ तथा कटि-प्रदेशमें पीड़ादायक उपद्रवोंको जन्म देता है। उसीके प्रभावसे रोगीके शरीरमें अन्य ऐसे उपद्रवोंका जन्म होता है, जो कष्टसाध्य हैं।

आमाशयमें वात-दोष होनेपर वमन, श्वास, खाँसी विषूचिका, कण्ठावरोध तथा नाभिके ऊपरके भागमें अनेक व्याधियोंका जन्म होता है। कुपित वायु नेत्र-कान आदि इन्द्रियोंमें विघ्न तथा त्वचा-भागमें प्रविष्ट होकर पककर फूटनेवाले फोड़े और रूक्षताका कारण बन जाती है। रक्तमें वायुके प्रविष्ट होनेसे रोगीको अत्यन्त कष्टदायक पीड़ा होती है, श्वास तथा गलेमें जलन और स्वरभेदका रोग होता है। आँतके मध्य प्रदूषित वायुके पहुँचनेपर विष्टम्भ, अरुचि, कृशता और भ्रमके रोगोंकी उत्पत्ति होती है। मांस और मेदामें प्रकुपित हुआ वायु शरीरमें ग्रन्थि, कर्कशता, भारीपन, लाठी एवं मुष्टि-प्रहारसे होनेवाली पीड़ाके समान पीड़ा उत्पन्नकर रोगीको अत्यधिक कष्ट देता है। अस्थियोंमें प्रविष्ट हुए संक्षुब्ध वायुसे सक्थि तथा संधि-स्थानोंमें रहनेवाली अस्थियोंके अन्तर्गत तीव्र शूल उठनेसे रोगीको कष्ट होता है।

मज्जागत कुपित वायु रोगीकी अस्थियोंमें क्षरण एवं अनिद्रा उत्पन्न करता है, जिससे रोगीको पीड़ा होती है। शुक्रगत कुपित वायु वीर्य और गर्भका शीघ्र पतन करता है अथवा वह विकृत हो जाता है। शिरागत वायु सिरमें पीड़ा और रिक्तताका अनुभव कराता है। स्नायु-स्थित क्रुद्ध वायु रोगीके शरीरमें शोथ उत्पन्न कर देता है, जिसके कारण उसको अधिक कष्ट होता है।

शरीरके संधि-स्थानोंमें प्रवहमान प्रकुपित वायुके कारण रोगी जलसे परिपूर्ण दृति (गलगण्ड), स्पर्श तथा शुष्कताके उपद्रवसे ग्रस्त हो जाता है। शरीरके समस्त अङ्गोंमें कुपित वायुके प्रविष्ट हो जानेपर पीड़ा, टूटन और स्फुरणका दोष होता है। स्वप्नावस्थामें विकार होनेसे वायु-स्तम्भन, आक्षेपण, संधिभंग तथा कम्पनका दोष प्राणीके शरीरमें उत्पन्न कर देता है। जब क्रुद्ध वायु शरीरकी सम्पूर्ण धमनियोंमें बारम्बार प्रवाहित होने लगता है तो उस समय शरीरके अङ्ग विक्षिप्त हो उठते हैं। इस व्याधिको आक्षेपण नामसे कहा गया है।

जब नीचेसे ताड़ित वायु कुपित होकर ऊपर चढ़ता है और फिर ऊर्ध्वभागकी ओर प्रवाहित होने लगता है, तब वह रोगीके हृदयको पीड़ितकर सिर और मस्तककी अस्थिमें पीड़ा उत्पन्न कर देता है। वह चारों ओरसे शरीरपर प्रहार करता है, जिससे शरीर विक्षिप्त हो उठता है। वह हनु और मुखकी शक्तिको भी क्षीण करके रोगीको व्यथित करनेका प्रयास करता है। रोगी बड़े ही कष्टसे श्वास लेता और उसका परित्याग करता है। उसके दोनों नेत्र बंद होने लगते हैं। कण्ठसे कबूतरके समान ध्वनि होने लगती है और रोगी ज्ञानशून्य होने लगता है। चिकित्सा-क्षेत्रमें इसका नाम उपतन्त्रक रोग है। हृदयमें स्थित दोषपूर्ण वायुके द्वारा प्रेरित वह रोग जब रोगीको वाम नासिकाके छिद्रमें जाकर आश्रय लेता है, तब उसके कारण रोगी बार-बार स्वस्थता और बार-बार अस्वस्थताका अनुभव करता है।

अभिघातजन्य वातव्याधि (अपतानक रोग) अत्यन्त दुश्चिकित्स्य है।

जब कुपित वायु ग्रीवा और पार्श्वमें स्थित मन्या नामवाली दोनों शिराओंको जकड़कर और सम्पूर्ण धमनियोंका आश्रय लेकर सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाती है, जिससे गर्दन तथा कक्षकी संधियाँ टेढ़ी पड़ जाती हैं और शरीर भीतरकी ओर धनुषकी तरह झुक जाता है, रोगीके नेत्र स्तम्भित हो जाते हैं, वह जँभाई लेने लगता है, दाँतोंको चबाने लगता है, कफयुक्त वमन करता है, दोनों पसलियोंमें वेदना होती है, वाणी रुक जाती है तथा हनु, पृष्ठ और मस्तक जकड़ जाते हैं, तब इसको अन्तरायाम वातरोग कहते हैं।

बहिरायाम रोगमें शरीर बाहरकी ओर धनुषके सदृश झुक जाता है। वक्षःस्थल ऊँचा हो जाता है और सिर तथा कंधा पीछेकी ओर झुक जाता है। दाँतों तथा मुखका रंग बदल जाता है, पसीना अधिक आता है, शरीर शिथिल हो जाता है। इस वातव्याधिको बाह्यायाम या धनुस्तम्भ कहा जाता है।

रोगीके मल, मूत्र और रक्तमें प्रविष्ट हुआ वात-दोष सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त होकर शरीरमें अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न करता है। इस रोगको व्रणायाम कहते हैं। जिस व्रणायाम रोगमें रोगीको अत्यन्त तृषा हो और उसका शरीर पीला पड़ गया हो, वह असाध्य होनेसे वर्जित है। सभी प्रकारके आक्षेपक रोगोंमें वायुका वेग शान्त हो जानेपर रोगी स्वस्थ हो जाता है।

जिह्वाको अत्यधिक रगड़ने और उष्ण भोजन करनेसे हनु अर्थात् ठोड़ीमें स्थित वायु कुपित होकर हनुभागमें स्तम्भन-दोष उत्पन्न करके मुखको खोल देता है अथवा बंद कर देता है। इसीको वातव्याधिमें हनुस्तम्भ-व्याधि कहते हैं। इसके कारण रोगीको खाने-चबाने तथा बोलनेमें अधिक कठिनाई होती है।

कुपित वायु वाग्वाहिनी शिरामें स्थित होकर जिह्वाको स्तम्भित कर देता है। यह जिह्वास्तम्भ नामक वातव्याधिका भेद माना गया है। इसके दुष्प्रभावसे रोगीके मुखमें खाने-पीने तथा बोलने-चालनेकी सामर्थ्य नहीं रह जाती। सिरके द्वारा भार ढोने, अत्यन्त हँसने और बोलने, ऊबड़-खाबड़ स्थानपर सोने तथा कठोर पदार्थोंके चबानेसे वायु विकारयुक्त होकर शरीरमें बढ़ता है और ऊर्ध्वभागमें पहुँचकर आश्रित हो जाता है। इससे रोगीका मुख टेढ़ा हो जाता है। वह ऊँचे स्वरमें अट्टहास करता है तथा किसी ओर अपने नेत्रोंको एकटक लगाकर ध्यानमग्न होकर देखता है। उसके बाद उसी दोषसे रोगीकी वाक्शक्ति शिथिल पड़ जाती है, नेत्रोंमें स्तब्धता छा जाती है, दाँत किटकिटाते हैं, स्वरभंग हो जाता है, बहरापन तथा अन्धत्वका दोष आ जाता है। इन दोषोंके अतिरिक्त गन्धकी अज्ञानता, स्मृतिध्वंस, भय, श्वास, थूक, पार्श्वभेद, एक नेत्रकी शक्तिका ह्रास, दाढ़के ऊर्ध्वभागमें, शरीरके आधे भागमें या नीचेके भागमें प्रबल वेदना होती है। कुछ लोग इसे अर्दित और कुछ एकाङ्गदोष कहते हैं।

जब प्रकुपित वायु रक्तका आश्रय लेकर मूर्धामें स्थित शिराओंको रूक्ष, शूलयुक्त और कृष्णवर्णका कर देता है, तब उसे शिरोग्रह दोष कहते हैं और यह असाध्य है।

जब प्रकुपित वायु शरीरको अपने अधिकारमें करके उसमें निहित शिराओं तथा स्नायु-तन्त्रिकाओंको अपने अधिकारमें कर लेता है और उनमें अवरोध उत्पन्न करके वह रोगीके शरीरके एक पक्ष अथवा अन्य किसी विशेष भागपर प्रहार करता है, जिससे वह भाग चेतना-शून्य अथवा अकर्मण्य हो जाता है, तब उस दोषको लोग पक्षाघात कहते हैं। कुछ लोगोंने तो उसको एकाङ्ग या अर्धाङ्ग रोग और कुछ अन्य लोगोंने कक्षव्याधिके नामसे स्वीकार किया है। परंतु सम्पूर्ण शरीरमें प्रकुपित वायुका आश्रय होनेपर सर्वाङ्गरोध (सर्वाङ्ग-पक्षाघात) और जकड़न नामक रोग होता है।

जो पक्षाघातरोग केवल वातके कारण होता है, वह अत्यन्त कष्ट-साध्य है। जब वह वातरोग पित्तादि अन्य दोषोंके संयोगसे होता है, तब कष्ट-साध्य तथा जो वातरोग धातुओंके क्षय हो जानेसे होता है, वह असाध्य होनेसे वर्ज्य है।

कफसे युक्त वात जब आमाशयमें अवरुद्ध हो जाता है, तब उस समय रोगीके शरीरको वह जकड़ देता है। उसके कारण रोगीका शरीर डंडेके समान सीधा हो जाता है। इसीलिये इसको दण्डापतानक कहा जाता है। यह सम्पूर्ण दोषोंसे समन्वित होनेपर निश्चित ही असाध्य बन जाता है।

स्कन्ध-प्रदेशके मूलभागसे उठा हुआ प्रकुपित वायु

१-सु०शा०अ० ९।

उसकी शिराओंको संकुचित करके बाहुओंकी स्पन्दन-शक्तिको नष्ट कर देता है, उसे अवबाहुक रोग कहते हैं। भुजाओंके पृष्ठभागसे होकर प्रत्येक अँगुलीके तलप्रदेशतक जो एक मोटी नाड़ी जाती है, उसका नाम कण्डरा है। उसमें कुपित हुआ वात उसके कर्म-सामर्थ्यको समाप्त कर देता है, उसको विषूची कहा जाता है। रोगीके कटिप्रदेशमें रहनेवाला वायु जब जंघाप्रदेशतक जाता है, तो अपनी उस मोटी कण्डरा नाड़ीको आक्षिप्त कर देता है अर्थात् उसे जकड़ लेता है, इससे रोगी खञ्ज (लँगड़ा) हो जाता है। जब दोनों जंघाओंकी नसोंको जकड़कर दोनों पैरोंकी कण्डराएँ आक्षिप्त हो उठती हैं, तब उस रोगको पङ्गु कहा जाता है। जब रोगी चलनेमें काँपने लगता है और खञ्जन पक्षीकी भाँति लँगड़ाते हुए चलता है, उसके संधि-बन्धन शिथिल पड़ जाते हैं तो उस दोषको कलायखञ्ज नामक रोग मानना चाहिये।

जीर्ण या अजीर्ण-अवस्थामें शीतल, उष्ण, द्रव-पदार्थ, शुष्क, गुरु, स्निग्ध भोज्य-पदार्थका सेवन, अधिक परिश्रम, संक्षोभ, शैथिल्य तथा अधिक जागरण करनेसे वात-कफयुक्त मेद अत्यधिक मात्रामें संचित होकर पित्तका पराभव करके शरीरको परिव्याप्त कर लेता है।

अन्तःश्लेष्मके द्वारा जंघाप्रदेशकी हड्डियोंके दोष-समन्वित होनेपर स्तम्भन-रोग उन्हें ग्रसित करता है। उस समय शीत-वात-दोषके प्रभावसे जंघाओंकी हड्डी शिथिल पड़ जाती है। उस दोषके प्रभावके कारण रोगीका वह अङ्ग श्यामवर्णका हो जाता है। उसमें जड़ता आ जाती है। रोगी तन्द्रा, मूर्च्छा, अरुचि और ज्वरके उपद्रवोंसे ग्रस्त हो उठता है। इस रोगको ऊरुस्तम्भ कहते हैं। दूसरे लोग इसको बाह्यवात भी कहते हैं।

वायु और रक्त दोनोंके कुपित होनेसे जानुमें (घुटनोंके मध्य) जो शोथ उत्पन्न होता है, वह महाभयंकर पीड़ादायक रोग है। इसमें शोथ सियारके सिरके समान स्थूल माना गया है, इसलिये इसको क्रोष्टुकशीर्षके नामसे कहा जाता है। जब ऊँचे-नीचे पीड़ादायक विषम स्थानपर पैर रखनेसे अथवा अत्यन्त परिश्रमसे वायु कुपित होकर गुल्फ (टखने)-में आश्रित हो जाता है, तो उसे वातकण्टक रोग कहा जाता है।

जब पार्ष्णि-भागके सम्मुख अँगुलीकी शिराओंको प्रकुपित वायु पीड़ा उत्पन्न करते हुए पाँवोंकी गमनशक्ति नष्ट कर देती है, तब उसे गृध्रसी रोग कहते हैं। कफ और वायुके प्रकुपित होनेसे जब दोनों पैर झुनझुनाने लगते हैं और सुप्त भी हो जाते हैं, तब उस दोषको पादहर्ष कहा गया है। पित्त तथा रक्तसे संश्रित वात प्राणीके दोनों पैरोंमें दाह उत्पन्न कर देता है, विशेष रूपसे वैसी अवस्था अधिक चलनेसे ही आती है। वात-दोषमें इस दोषभेदको पाददाह नामसे सम्बोधित किया गया है। (अध्याय १६६)

वातरक्त-निदान

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं आपसे वातरक्त-निदान बतलाऊँगा, उसे सुनें।[1]

प्राय: स्वास्थ्य-विरुद्ध भोजन तथा क्रोध करनेवाले, दिनमें सोने और रात्रिमें जागरण करनेवाले तथा सुकुमार एवं मिथ्या आहार-विहार करनेवाले, स्थूल शरीरवाले और सुखीजनोंका रक्त वृद्धवातसे प्रकुपित हो जाता है। चोट लगनेसे अथवा वमन एवं विरेचन आदिद्वारा शुद्ध न होनेवाले मनुष्योंका रक्त दूषित हो जाता है। वात-दोष पैदा करनेवाले एवं शीतल पदार्थोंके सेवनसे वायु-वृद्धि होती है, वह क्रुद्ध होकर विमार्गगामी हो जाता है। इस प्रकारसे प्रवहमान वह वायु रक्त-स्रोतोंसे अवरुद्ध होकर पहले रक्तको ही दूषित करता है। तदनन्तर मांसादिक अन्य धातुओंको भी दूषित करता है। पहले गुदाभागको पीड़ितकर बादमें यह सम्पूर्ण शरीरमें फैल जाता है। इस वात-दूषित रक्तको वातरक्त कहा जाता है। विशेष रूपसे यह दोष वमनादि उपद्रवों तथा पाँव लटकाकर बैठनेवाली सवारी आदिसे होता है।

कुष्ठरोगके जो पूर्वरूप होते हैं, प्राय: वे ही वातरक्त-रोगके भी होते हैं।[2] इस रोगके होनेपर घुटना, जंघा, ऊरु, कटि, स्कन्ध, हाथ, पैर और संधि-स्थानोंमें खुजली, स्फुरण, सूचिकाभेद, गुरुता और इन्द्रियसुप्तताके दोष होते हैं। ये दोष बार-बार उत्पन्न होकर शान्त हो जाते हैं और पुन: उभर भी जाते हैं।

१-सु०नि०अ० १; वा० नि० १५; च०चि० २८। २-च०चि० २९; सु० चि० १; अ०स० नि०अ० १६।

कभी दोनों पैरोंके मूलभागमें आश्रय लेकर अथवा कभी दोनों हाथोंके मूलमें स्थित होकर, यह कुपित वातरक्त-दोष प्राणीके सम्पूर्ण शरीरको वैसे ही परिव्याप्त कर लेता है, जैसे चूहेका विष कुपित होकर धीरे-धीरे पूरे शरीरमें व्याप्त हो जाता है। वह वातरक्त सर्वप्रथम रोगीके चर्म-भागपर उत्पन्न होकर मांस-भागमें आश्रय ग्रहण करता है। उसके बाद सभी धातुओंको आश्रय बना लेता है। इसे गम्भीर नामक वातरक्त कहते हैं। उत्तान वातरोगमें रोगीके कटि आदि स्थानोंका चर्म, ताम्र या श्यामवर्णका हो जाता है। वहाँपर शोथ तथा ग्रथित पाक उत्पन्न होता है। यह प्रकुपित वायु रोगीकी हड्डियों और मज्जा-भागमें जाकर वहाँ आश्रय लेकर छेदनेके समान पीड़ा करता हुआ चक्रके समान घूमता हुआ शरीरके अङ्गोंको टेढ़ा-मेढ़ा कर देता है। तदनन्तर सब ओरसे शरीरमें प्रवहमान वह वायु अन्तमें रोगीको खञ्ज अथवा लँगड़ा बना देता है।

शरीरमें वाताधिक्य वातरक्त-रोग होनेपर अत्यधिक शूल, फड़कन तथा टूटन-भरी पीड़ाकी अनुभूति होती है। उभरे हुए शोथमें रूक्षता, कृष्ण या श्यामवर्णता आ जाती है। इसमें शोथ कभी बढ़ जाता है और कभी घट जाता है। रोगीकी धमनियों और अँगुलियोंके संधि-स्थानोंमें संकुचन, अङ्गग्रह तथा अत्यन्त वेदनाजन्य कष्ट होता है। इसमें शीतल पदार्थोंसे अरुचि एवं उसके सेवनसे वृद्धि, स्तम्भन, कम्पन और इन्द्रियशून्यताके दोष भी आ जाते हैं।

रक्ताधिक वातरक्त-रोगमें शोथ अत्यन्त पीड़ासे युक्त होता है। इसमें सूचिका-भेदजन्य पीड़ा भी होती है। इसका वर्ण ताँबेके समान होता है। यह चुनचुनाता भी रहता है। इसमें ललाई रहती है तथा खुजली और क्लेद होता है। स्निग्ध पदार्थ लगानेसे या उसे रूक्ष रखनेसे शान्ति नहीं मिलती।

पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह, सम्मोह, स्वेद, मूर्च्छा, मद, तृष्णा, स्पर्श, असहत्व, अत्यधिक पीड़ा, शोथ, पककर फूटनेवाला फोड़ा तथा अत्यन्त ऊष्माके लक्षण दिखायी देते हैं।

कफाधिक वातरक्तमें कठोरता, भारीपन, शून्यता, स्निग्धता, शीतलता, खुजली और मन्द पीड़ा होती है। द्वन्द्वज दोषमें दो तथा त्रिदोषजमें तीनों दोषोंके लक्षण उभरते हैं। इनमें एक दोषजन्य रोग अपेक्षित चिकित्सासे साध्य है। द्वन्द्वज दोष नामक वातरक्त-रोग अथक चिकित्सोपचारके द्वारा रोका जा सकता है। किंतु जो रोग त्रिदोषजन्य है, उसे तो छोड़ देना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये प्रयास करना व्यर्थ है, वह असाध्य होता है। इनमें रक्तपित्तजन्य वातरोग तो बड़ा ही कठिन माना गया है।

प्रकुपित वायु रोगीके शरीरस्थ अङ्ग-विशेषके रक्तको नष्ट करके उसके संधि-स्थानोंमें प्रविष्ट हो जाता है। तदनन्तर परस्पर एक-दूसरेको भली प्रकारसे अवरुद्ध करके तज्जनित वेदनासे वह रोगीके प्राणोंका अपहरण करता है।

प्राण, व्यान, समान, अपान और उदान—इस पञ्चात्मक वायु-समूहके बीच प्राणवायु जब रूक्षता, चञ्चलता, लंघन, अतिशय आहार, अभिघात, मलमूत्रादिक वेगावरोध तथा कृत्रिम वेग-संचालनके प्रयासमें कुपित होकर नेत्रादिक इन्द्रियोंमें उपघात करता है तो उसके कारण पीनस, दाह, तृष्णा, खाँसी और श्वासादिके रोग उत्पन्न होते हैं।

कुपित उदानवायु जत्रु (ठोढ़ी) और मूर्द्धामें आश्रय लेकर कण्ठावरोध, मलभेद, वमन, अरुचि, पीनस तथा गलगण्डादिक दोषोंको जन्म देता है।

अत्यधिक दूरकी यात्रा, स्नान, अतिशय क्रीड़ा, अत्यन्त विषय-भोगकी चेष्टा, स्वास्थ्य-विरुद्ध व्यवहार, रूक्षता, भय, हर्ष तथा विषादके कारण प्राणीके शरीरमें स्थित व्यान नामक वायु दूषित हो उठता है। तदनन्तर वह रोगीके पुंस्त्व (पुरुषत्व), उत्साह और शक्तिका ह्रास कर देता है। उसके चित्तमें शोक तथा विभ्रमकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसे ज्वर, सम्पूर्ण शरीरमें सूचिका-भेदके समान वेदना, रोमाञ्च, स्पर्श-शून्यता, कुष्ठ, विसर्प और सभी अङ्गोंमें पीड़ा होती है।

स्वास्थ्य-विरुद्ध अजीर्णकर, शीतल तथा संकीर्ण दोषसे पूर्ण भोजन, असामयिक शयन और जागरण आदिसे समान नामक वायु दूषित हो जाता है। इसके प्रकुपित होनेसे शूल, गुल्म, ग्रहणी आदि सामान्य यकृत्जन्य तथा कामाश्रित रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

अत्यन्त रूक्ष तथा भारी अन्नके सेवन, मल-मूत्रका वेग रोकने, अतिशय भार ढोने, वाहनकी अधिक सवारी करने,

मदिरापान, अत्यधिक देरतक खड़े होने तथा अधिक घूमने-फिरनेसे अपानवायु कुपित हो जाता है। वह प्रकुपित वायु प्राणीके शरीरमें पक्वाशयसे आश्रित समस्त रोगोंको उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त रोगीके शरीरमें मूत्र, वीर्य, अर्श तथा मलावरोध आदिसे सम्बन्धित बहुतसे रोग प्रकट हो जाते हैं।

तन्द्रा, स्तिमिता, गुरुता, स्निग्धता, अरुचि, आलस्य, शैत्य, शोथ, अग्निमान्द्य, कटु और रूक्ष पदार्थोंकी अभिलाषा आदि लक्षणोंसे युक्त वायुको साम अर्थात् आम-सदृश कहते हैं। जिसमें तन्द्रा आदिके विपरीत लक्षण होते हैं, वह वायु निराम कहलाता है।

साम-निरामके लक्षण बताकर अब वायुके आवरण और भेदोंका वर्णन किया जाता है। पित्तदोषसे आवृत वात-विकार होनेपर दाह, तृष्णा, शूल, भ्रम और आँखोंके आगे अन्धकार छा जाता है। कटु, उष्ण, अम्ल तथा लवणके प्रयोगसे रोगीमें विदाह और शीतकी अभिलाषा बढ़ जाती है। कफावृत वात-विकारमें रोगी शीतल, रूक्ष और उष्ण भोजन करनेका इच्छुक होता है। उसको शीतलता, भारीपन, शूल, लंघन, अग्निदाह, कटु घृतयुक्तमुख तथा अधिक तृष्णाके दोष घेर लेते हैं। इस कफावृत रोगमें अङ्ग-दर्द, उबकाई और अरुचि भी होती है।

रक्तावृत वातरोग होनेपर रोगीके चर्म तथा मांसमें दाह और पीड़ा अधिक होती है। रोगीके शरीरमें लाल वर्णका शोथ हो जाता है और मण्डलाकार चकत्ते पड़ जाते हैं। वायुके मांसाश्रित होनेपर शोथ बड़ा कठोर लगता है। उस रोगीको उबकाई आती है और शरीरमें छोटी-छोटी फुंसियाँ निकलने लगती हैं। ऐसे शोथमें रोमाञ्च भी होता है और शरीर चींटियोंसे व्याप्त हुएके समान प्रतीत होता है। मेदसे आवृत वायु-विकारमें यह शोथ शरीरमें चलायमान, मृदु तथा शीतल होता है और अरुचिकर भी होता है। मेदासे आवृत वात अन्य वातरोगोंकी अपेक्षा अत्यन्त कष्टसाध्य है। इसको आढ्यवातके समान समझना चाहिये। इस रोगके होनेपर उत्पन्न हुआ शोथ स्पर्श तथा आच्छादन करनेसे उष्ण तथा आवरण हटा देनेपर शीतल लगने लगता है।

वायुके मज्जावृत शोथ होनेपर उक्त लक्षणके विपरीत लक्षण दिखायी देते हैं। उसमें फैलाव और कसाव होता है, शूलजनित पीड़ा होती है तथा दोनों हाथोंसे मर्दन करनेपर रोगीको सुख प्राप्त होता है।

शुक्रावृत वात-शोथ होनेपर शुक्रमें अधिक वेग नहीं रह जाता। वायुके अन्नसे आवृत होनेपर भोजन करनेपर रोगीके कुक्षिभागमें पीड़ा होती है और भोजनके पच जानेपर पीड़ा शान्त हो जाती है। मूत्रसे वायुके आवृत हो जानेपर मूत्रका निकलना बंद हो जाता है और वस्ति-स्थानमें वेदना होने लगती है। वायुके द्वारा पुरीषके आवृत होनेपर गुह्यभागमें विशेष प्रकारका विबन्ध हो जाता है। आरेसे काटनेपर होनेवाली पीड़ाके समान रोगीको पीड़ा होती है। ऐसे वातरक्त-दोषके आवरण-रोगमें ज्वरसे पीड़ित रोगी यथाशीघ्र धराशायी होकर मूर्च्छित हो जाता है। विबन्धद्वारा मल पीड़ित होकर सूखा हुआ बड़ी कठिनतासे और बहुत देरमें निकलता है।

वायुद्वारा सभी धातुओंके आवृत होनेपर रोगीके कटि-प्रदेश, वंक्षण और पीठमें पीड़ा होती है। विलोम भावको प्राप्त हुआ वायु रोगीके हृदयको पीड़ित करता है। पित्तज दोषसे प्राणवायुके आवृत होनेपर भ्रम, मूर्च्छा, पीड़ा तथा दाहका उपद्रव रोगीके शरीरमें होता है।

पित्तसे व्यानवायुके आक्रान्त होनेपर पीड़ा, तन्द्रा, स्वरभ्रंश और सम्पूर्ण शरीरमें दाहकी उत्पत्ति होती है। समानवायुके आवृत होनेपर क्रमशः अङ्गचेष्टा, अङ्गभङ्ग, वेदनासहित संताप, तापविनाश, पसीना, रूक्षता और तृष्णाका उपद्रव होता है। अपानवायुके आवृत होनेसे रोगीके शरीरमें दाह होता है और उसके मलका वर्ण हल्दीके समान पीला हो जाता है। स्त्रियोंमें रजवृद्धि (या रोगवृद्धि), ताप, आनाह तथा प्रमेह नामक रोग भी उसके शरीरमें जन्म ग्रहण कर लेते हैं।

श्लेष्मके द्वारा प्राणवायुके आवृत होनेपर नादस्रोतमें अवरोध, खखार, स्वेद, श्वास तथा निःश्वास—इनमें विविधता होती है। उदानवायुके कफसे आवृत होनेपर शरीरमें भारीपन, अरुचि, वाक्रोध, स्वरक्षय, बल और वर्णका नाश होता है। व्यानवायुके कफसे आवृत होनेपर पर्व और अस्थियोंमें जकड़न, सम्पूर्ण शरीरमें भारीपन, अत्यधिक

स्थूलता आ जाती है। समानवायुके कफसे आवृत होनेपर कर्मेन्द्रियोंमें अज्ञानता, शरीरमें पसीनेकी कमी, अग्निमन्दता तथा अपानवायुके कफसे आवृत होनेपर मल-मूत्रकी अधिक प्रवृत्ति होती है।

इस प्रकार वातरक्त-रोग बाईस प्रकारका माना गया है। क्रमशः प्राणादि वायु परस्पर आक्रान्त होनेसे बीस प्रकारके आवरण होते हैं। प्राणवायु जब अपानवायुको आवृत कर लेता है, तब उबकाई, श्वासरोध, प्रतिश्याय, शिरोग्रह, हृदयरोग और मुखशोष—ये उपद्रव होते हैं। उदानवायुके द्वारा प्राणवायुके आवृत होनेपर रोगीकी शक्तिका विनाश होता है। वैद्यको यथोचित विचार करके ही सभी प्रकारके वात-आवरणोंके भेदोंको जानना चाहिये। सभी वात-दोषोंके स्थानोंकी विवेचना करके उसके दुष्ट कर्मोंकी वृद्धि और हानिपर चिन्तन करके भी आवरणोंका विभाग समझना चाहिये।

प्राणादिक पाँचों वायु-समूहोंके (पृथक्-पृथक्) पित्त-दोषजन्य आवरण होते हैं। वातमिश्रित पित्तादिके जिन निवास-स्थानोंकी चर्चा ऊपर की गयी है, वे उन्हीं अपने दोषोंसे मिश्रित हैं। मिश्रित पित्तादिक दोषोंके कारण वे भी अनेक प्रकारके आवरण रोग माने गये हैं। अतः विद्वान् चिकित्सक सचेत होकर अपने लक्षण-ज्ञानके अनुसार उन दोषोंका चिन्तन करे। चिकित्सकके लिये अपेक्षित है कि धीरे-धीरे अपने लक्षणोंके अभ्युदयसे निश्चित एवं दृढ़ हुए उन रोगोंका बार-बार परीक्षण करके ही उपचार करे।

प्राणवायु प्राणीके जीवनका आधार तथा उदानवायु बलका आधार कहा गया है। शरीरमें उन दोनोंके पीड़ित होनेसे प्राणीके आयु और बल दोनोंकी हानि होती है।

आवृत हुए सभी वायु-दोष अपने-अपने लक्षणोंसे शरीरपर स्पष्ट हो गये हों अथवा स्पष्ट न हुए हों या वे स्थानच्युत होनेके कारण समझसे परे हो रहे हों अथवा उपद्रवविहीन हो गये हों, वे असाध्य ही होते हैं। चिकित्सकके द्वारा किये जानेवाले प्रयाससे भी वे कष्ट-साध्य ही होते हैं।

उपर्युक्त उन आवृत वायु-दोषोंकी उपेक्षा करनेसे प्राणियोंके शरीरमें विद्रधि, प्लीहा, हृद्रोग, गुल्म तथा अग्निमन्दता आदिके उपद्रवोंका आविर्भाव होता है।

हे सुश्रुत! सभी रोगोंके ज्ञान एवं मनुष्यादि समस्त प्राणियोंकी आयुवृद्धिके लिये मैंने आत्रेय मुनिद्वारा कथित उनके निदानको भली प्रकारसे बतला दिया है। अतः उसी प्रकारसे सभी रोगोंका विचार करके चिकित्सकको तत्सम्बन्धित रोगकी चिकित्सा करनी चाहिये।

मधु, घृत और गुड़से संयुक्त त्रिफला (हरीतकी, आमलकी और बहेड़ा)-चूर्ण सभी रोगोंका विनाशक है। त्रिफला-चूर्णको यदि केवल जलके साथ नित्य-प्रातः प्रयोगमें लाया जाय, तब भी वह सभी रोगोंका नाश करनेवाला होता है। शतावरी, गुडूची, चित्रक और विडंगके साथ भी प्रयुक्त त्रिफला सभी रोगोंको विनष्ट कर देती है। शतावरी, गुडूची, अग्निमन्थ, चित्रा, सोंठ, मूसली, बला, पुनर्नवा, बृहती, निर्गुण्डी, निम्बपत्र, भृंगराज, आँवला तथा वासक अथवा उसके ही रससे सात बार या एक बार भावित त्रिफला सभी रोगोंका निवारक है। पूर्वोक्त कही गयी औषधियोंकी जैसी प्राप्ति हो, उसी प्रकारसे उनके द्वारा तैयार चूर्ण, मोदक, वटी, घृत, तेल अथवा क्वाथ भी सर्वरोगहर्ता है। उनकी आनुपातिक मात्रा एक पल, आधा पल, एक कर्ष अथवा आधा कर्ष रोगीके लिये उपादेय मानी गयी है। (अध्याय १६७)

वैद्यकशास्त्रकी परिभाषा

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! प्राणियोंके जीवनकी रक्षाके कारणस्वरूप, समस्त रोग-विनाशक, सिद्ध, औषधीय योगसारका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें।

वर्षा-ऋतुमें कसैले, कटु, तिक्त और रूक्षादि गुणोंवाले खाद्य-पदार्थोंके सेवनसे, चिंता, मैथुन, व्यायाम, भय, शोक, रात्रि-जागरण करने तथा उच्च स्वरमें बोलनेसे, अधिक भार-वहन तथा सामर्थ्यसे अधिक शारीरिक शक्तिका प्रयोग करनेसे एवं भोजनके पाचनकालमें और संध्यासमयमें प्राणियोंके शरीरकी वायु कुपित हो जाती है।

ग्रीष्म और वर्षा-ऋतुके मध्याह्नकालमें उष्ण, अम्ल, लवण, क्षार, कटु एवं अजीर्ण भोजन, तेज धूप, अग्नि-संताप, मद्यपान तथा क्रोधावेगका अवरोध करनेसे प्राणियोंका

पित्त प्रकुपित होता है। यह दोष ग्रीष्मकालकी अर्द्ध रात्रियोंमें भी हो सकता है।

वसन्त-ऋतुमें स्वादिष्ट, अम्ल, लवण, स्निग्ध, भारी और शीतल भोजनका अधिक प्रयोग, नवान्न, चिकने पदार्थ तथा दलदलवाले स्थानोंमें विचरण, मांसादि सेवन, सहसा व्यायामसे विरक्ति, दिनमें शयन, शय्या और आसनादिक सुखोपभोग प्राप्त करनेसे और भोजनके अन्तमें प्राणियोंका कफ संक्षुब्ध हो उठता है।

शारीरिक कर्कशता, संकोच, सूचिकाभेद पीड़ा, विष्टम्भ, अनिद्रा, रोमाञ्च, स्तम्भ, शुष्कता, श्यामत्व, अङ्ग-विभ्रंश, बलहानि और परिश्रमजन्य थकान आदिके उपद्रव वात-दोषके लक्षण हैं। अतः उन सभी उपद्रवोंसे समन्वित रोगको वातात्मक रोग कहना चाहिये।

दाह, पैरमें जलन, पसीना, क्रोध, परिश्रम, कटु, अम्ल, शव-समान दुर्गन्ध, स्वेदराहित्य, मूर्च्छा, अत्यन्त तृष्णा, भ्रम, हल्दीके समान पीला और हरा रंग होना—ऐसे लक्षणोंवाला मनुष्य पित्त-दोषसे समन्वित माना जाता है।

शरीरमें स्निग्धता, माधुर्य, बन्धनके समान पीड़ा होना, निश्चेष्टता, तृप्ति, संघात, शोथ, शीतलताकी अनुभूति, भारीपन, मलाधिक्य, खुजली और अधिक निद्रा—ये सब लक्षण कफसे उत्पन्न होते हैं।

कारण, लक्षण और संसर्गसे रोगको पहचानना चाहिये। जो रोग वात, पित्तादि दोषोंमेंसे किन्हीं दो दोषोंसे उत्पन्न हो, वह द्विदोषज रोग कहलाता है और जिस रोगमें सभी वात, पित्त तथा कफजन्य दोषोंके लक्षण व्यक्त हों, उसे त्रिलिंग या संनिपातिक रोग कहा जाता है।

प्राणियोंका यह शरीर दोष, धातु तथा मलका आधार कहा जाता है। उन सभीका शरीरमें समत्व भावसे रहना आरोग्य या निरोगता है। उनमें कमी और वृद्धि रोगका कारण है। वसा, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र—ये सात धातुएँ हैं। वात, पित्त तथा कफ—ये तीन दोष हैं और विष्ठा तथा मूत्र आदि मल कहे जाते हैं।

वायु शीतल, रूक्ष, लघु, सूक्ष्म, स्वरविहीन, स्थिर तथा बली होता है। पित्त अम्ल (खट्टा), कटु (तीक्ष्ण), उष्ण और पङ्किल रोगोंका कारण है। कफ मधुर, लवण, स्निग्ध, भारी तथा अधिक चिकना होता है।

वायु शरीरमें गुदाभाग और कटिप्रदेशका आश्रय लेता है। पित्त पक्वाशयमें स्थित रहता है और कफका आश्रय-स्थान आमाशय, कण्ठ तथा मस्तकका संधि-भाग है।

कटु, तिक्त और कसैले पदार्थोंका सेवन करनेसे वायु प्रकुपित होता है। कटु, अम्ल तथा लवण पित्तको स्वादिष्ट, उष्ण और लवण पदार्थ कफको प्रकुपित करते हैं। अतः इन सभीका विपर्यय शरीरमें उन दोषोंकी शान्तिके लिये ही प्रयुक्त होना चाहिये। यथापेक्षित अपने-अपने स्थानपर प्रयुक्त सुखके कारणभूत पदार्थ रोगियोंके रोगका उपशमन करते हैं।

मधुर भोज्य पदार्थ नेत्रशक्ति, रस और धातुके अभिवर्धक हैं। अम्लमिश्रित होनेपर वे ही मन और हृदयकी संतृप्ति, जठराग्निका उद्दीपन तथा पाचनशक्तिको प्रबल बनाते हैं। तिक्त पदार्थ अग्निके उद्दीपक, ज्वर, तृष्णा-विनाशक, शोधन और शोषण करनेवाले हैं। कषाय पदार्थ पित्तवर्धक, स्तम्भक, कण्ठग्रहादि दोष-विनाशक तथा शरीर-शोषक होते हैं।

जो द्रव्य-पदार्थ प्राणियोंके शरीरमें स्थित रस और वीर्यको विशेष रूपसे परिपक्व करनेका आधार होता है, वह उत्तम माना गया है। रस-परिपाकके मध्य स्थायी रूपसे स्थित वह पदार्थ यथाशीघ्र ही अन्य सभी द्रव्योंका भी आश्रय बन जाता है। शीतलता, उष्णता और लवणताके गुणोंको धारण करनेवाला पदार्थ वीर्य अथवा शक्ति ही है।

रस-परिपाक दो प्रकारका होता है। एक है मधुर और दूसरा है कटु।

वैद्य, औषधि, रोगी तथा परिचारक (रोगीकी सेवा करनेवाला)-की सम्पत्ति—ये चार चिकित्साके अङ्ग हैं। इन चारोंकी उत्तमता होनेपर रोग यथाशीघ्र दूर हो जाता है और इनके विपरीत हो जानेपर तो रोगकी असिद्धि ही होती है।

देश, काल, रोगीकी आयु, शरीरमें अग्निका बलाबल, प्रकृति, त्रिदोषों (कफ-पित्त और वायु)-का साम्य-वैषम्य, रोगीका स्वभाव, औषधि, रोगीके शरीरका सत्त्व, सहनशक्ति तथा रोगका भलीभाँति विवेचन करके ही विद्वान् चिकित्सकोंको चिकित्सा-कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये।

अधिक जलाशय तथा पर्वतोंवाला देश अनूप कहलाता है। यह देश कफ तथा वायुको प्रकुपित करता है। वनाच्छादित अथवा अन्यान्य शिखर तथा शाखाओंवाला देश रक्त-पित्तज दोषोंका जनक है। इन सभी लक्षणोंसे जो देश समन्वित होता है, वह सामान्य देश कहा गया है। मनुष्य सोलह वर्षपर्यन्त बालक, सत्तर वर्षतक मध्यम (युवा एवं प्रौढ़) और सत्तर वर्षके पश्चात् वृद्ध कहा जाता है।

प्राय: कफ, पित्त और वायु जैसा क्रम दिया गया है, वैसे ही शरीरमें ये उद्दीप्त होते हैं। शरीरके शक्तिहीन होनेपर अथवा विशेष वृद्धावस्थाके आ जानेपर रोगी क्षारक्रिया, अग्निचिकित्सा और शल्यकर्म-रहित होता है। कृशकाय रोगीका बृंहण, स्थूल शरीरवाले रोगीका कर्षण और मध्य शरीरवाले रोगीका रक्षण-कार्य करना चाहिये। शरीरके ये ही तीन भेद माने गये हैं। चिकित्सा-कार्यमें इस त्रिविध क्षमताका विवेचन भी अपेक्षित होता है।

स्थिरता, व्यायाम और संतोष-धारण करनेकी प्रवृत्तिसे रोगीके बलको समझना चाहिये। जो मनुष्य विकार-रहित, उत्साह-सम्पन्न तथा महासाहसिक होता है, वह बलवान् माना गया है। जिस प्राणीके खान-पान भी प्रकृतिके विरुद्ध हैं, यदि वे रोगीके शरीरमें आनेवाले कलके सुखकी कल्पनाको साकार करते हैं तो उसको प्रकृतिकी साम्यावस्था कहा जाता है।

कफजन्य पदार्थोंका भक्षण करनेसे गर्भिणी स्त्रीके गर्भसे कफ-रोगसे युक्त संतान ही उत्पन्न होती है। इसी प्रकार वातजनक तथा पित्तोत्पादक पदार्थोंसे भी होता है, किंतु हितैषी भोजन करनेसे समान धातुवाली संतानका जन्म होता है।

कृशकाय, रूक्ष, अल्पकेश, चञ्चलचित्त तथा स्वप्नमें बहुत बोलनेवाला व्यक्ति वात-प्रकृतिवाला होता है। असमयमें ही जिसका बाल सफेद हो गया हो, गौर वर्णवाला, स्वेद एवं क्रोधयुक्त, बुद्धिमान् और स्वप्नमें भी तेज देखनेवाला मनुष्य पित्त-प्रकृतिसे समन्वित कहा गया है। स्थिरचित्त, सूक्ष्मस्वर, प्रसन्न, स्निग्धकेश तथा स्वप्नमें जल और पत्थर देखनेवाला पुरुष कफ-प्रकृतिसे सम्बन्धित होता है। मिश्रित लक्षणोंके होनेपर प्राणीको द्विदोषज तथा त्रिदोषज मानना चाहिये। प्राणीमें उक्त दोषोंका इतर भाव होनेपर जिस दोषके अधिक लक्षण दिखायी देते हों, उसीके अनुसार उसकी प्रकृतिका निर्धारण होता है।

मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम—ये वात-पित्त आदिकी चार अवस्थाएँ हैं। कफ, पित्त तथा वायुकी अधिकता और समतासे जठराग्नि भी भिन्न प्रकारकी हो जाती है। शरीरमें सदैव जठराग्निकी समताकी रक्षा करनी चाहिये। विषम स्थिति आनेपर वातनिग्रह करना चाहिये। तीक्ष्णावस्था होनेपर पित्त-दोषका प्रतीकार और मन्दावस्थामें कफका शोधन आवश्यक माना गया है।

सभी रोगोंकी उत्पत्तिके कारण अजीर्ण और मन्दाग्नि-दोष हैं। आम, अम्ल, रस तथा विष्टम्भ—ये चार उसके लक्षण हैं। आम-दोष होनेपर विषूचिका, हृदयरोग और आलस्यादिके उपद्रव होते हैं। ऐसा विकार होनेपर वच, कटुफल और लवणमिश्रित जलपान कराकर रोगीको वमन कराना चाहिये। अम्ल-दोष होनेपर प्राणीमें शुक्रका अभाव, भ्रम, मूर्च्छा और तृष्णा आदिके दोष जन्म लेते हैं। इस अवस्थामें अग्निपर बिना पकाया हुआ शीतल जल, वायुका सेवन रोगीके लिये अपेक्षित है। रस-दोष होनेपर शरीरभंग, शिरोजाड्य तथा भोजनकी अनिच्छा आदिसे सम्बन्धित उपद्रव होते हैं। इस दोषके होनेपर दिनमें निद्रा और उपवासका परित्याग करना चाहिये। विष्टम्भ-दोष होनेपर शूल, गुल्म, अरुचि और मलमूत्रजनित उपद्रव होते हैं। इस दोषकी वृद्धि होनेपर स्वेदन-क्रिया तथा लवणमिश्रित जलपान करनेका विधान है।

आम, अम्ल और विष्टब्धके लक्षणोंका जन्म क्रमश:—कफ, पित्त तथा वायु-दोषके कारण होता है। विद्वान् व्यक्तिको इन दोषोंके होनेपर हींग, त्रिकटु (शुण्ठी, पिप्पली और मरिच) एवं सेंधा नमकका लेप उदरभागपर करके उसका निवारण करना चाहिये। दिनमें सोनेसे सभी प्रकारके अजीर्ण रोगोंका विनाश होता है। अहितकर अन्नोंका प्रयोग करनेसे शरीरमें उनके रोग-समूहोंकी उत्पत्ति होती है; अतएव अहितकर अन्नका सदैव परित्याग करना चाहिये।

केवल उष्ण जल अथवा मधु (माक्षिकभस्म)-के साथ

उष्ण जलका पान करनेसे रोगीकी पाचन-क्रिया शुद्ध रहती है। बंसांकुर, दही और मछलीसे प्रायः दूधका विरोध होता है। बिल्व, शोणा (स्योनाक), गम्भारी (श्रीपर्णी), पाटला (पाढ़र) और अग्निमान्द्य—इन पाँच वृक्षोंके मूल संग्रहको आयुर्वेदमें 'पञ्चमूल' कहा गया है। ये पञ्चमूल मन्दाग्निको तीव्र करनेवाले, कफ और वातके दोषका विनाश करनेवाले हैं। शालपर्णी (एकाङ्गी नामक औषधि), पृश्निपर्णी (पेठवन), दो प्रकारकी बृहती (भटकटैया) तथा गोक्षुर (गोखरू)—इन पाँचोंको 'लघुपञ्चमूल' कहा जाता है। यह औषधि वात-पित्त-विनाशक तथा ओजवर्धक है। इन दोनों पञ्चमूलोंका संग्रह होनेपर दशमूल औषधिका निर्माण होता है। यह औषधि संनिपातिक ज्वरका विनाश करनेमें समर्थ होती है। खाँसी, श्वास, तन्द्रा और पार्श्वशूल-रोगमें यह अधिक लाभकारी होती है। इन सभी औषधियोंको तेल और घृतमें परिपक्व करके केशरोगका निवारण किया जा सकता है।

क्वाथसे चौगुना पानी पात्रमें भरकर उसको आगपर पकाना चाहिये। जब वह चतुर्थांश पानी रह जाय, तब उस क्वाथके समान मात्रामें स्नेहिल द्रव्य—पदार्थका पाक तैयार करे। यह स्नेहपाक दूधसे भी तैयार किया जाता है। अतः उस क्वाथमें दूधकी मात्रा समान होनी चाहिये। कल्क बनानेके लिये स्नेहकी मात्रासे औषधिकी मात्रा चतुर्थांश ही होती है। पाक समान मात्रामें औषधियोंको लेकर तैयार होता है। वस्ति-पाक और पाय-पाकमें भी जलकी मात्रा और विधि समान ही होती है। अभ्यङ्ग अर्थात् शरीरमें मालिश करनेके लिये तैयार किया गया पाक खर तथा नस्यके लिये मृदु होना अपेक्षित है।

अन्यान्य दोषोंसे सदैव सुरक्षित रखनेके लिये चिन्तनीय स्थूल कर्मेन्द्रियोंके बीच प्राणीकी जो प्रकृति अपनी बलवत्ताके साथ विद्यमान रहती है, उसीको आरोग्य कहते हैं। अतः प्राणीको आयुष्मान् बने रहनेके लिये तत्सम्बन्धित आचरण करना चाहिये। जो मनुष्य अपनी इन्द्रियोंके द्वारा स्वास्थ्य-विपरीत पदार्थोंको ग्रहण करता है, वह मृत्युका पात्र बन जाता है। जो चिकित्सक, मित्र और गुरुके साथ द्वेष करनेवाला तथा शत्रुस्नेही होता है, जिसके गुल्फ, जानु, ललाट, हनु (ठोढ़ी) और गण्डस्थल भ्रष्ट तथा स्थानच्युत हो जाते हैं, वह व्यक्ति कुछ ही कालमें अपने प्राणोंका परित्याग कर देता है।

जिस रोगी मनुष्यकी बायीं आँख बैठ गयी हो, जिह्वाका वर्ण श्याम पड़ गया हो, नासिका-भाग विकारयुक्त हो गया हो, दोनों ओष्ठ स्थानच्युत और कृष्णवर्णके हो गये हों तथा मुख भी कृष्णवर्णका हो गया हो तो चिकित्सकको चाहिये कि उसका परित्याग कर दे; क्योंकि उसकी मृत्यु संनिकट ही होती है। (अध्याय १६८)

पदार्थोंके गुण-दोष और औषधि-सेवनमें अनुपानका महत्त्व

धन्वन्तरिजीने कहा—[हे सुश्रुत!] अब मैं शरीरके लिये हितकारी एवं अहितकारी ज्ञान प्रदान करनेके निमित्त अनुपान-विधिका वर्णन करता हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनिये।

लाल साठी चावल वात-पित्त एवं कफजन्य त्रिदोषोंका विनाशक तथा तृष्णा और मेदाको दूर करनेवाला है। महाशालि अत्यन्त शक्तिशाली होता है। कलम अर्थात् अधिक पानीमें होनेवाला जड़हनी चावल कफ तथा पित्तके दोषका शमन करता है। सफेद साठी चावल प्रायः शीतल,

---

१-आयुर्वेदमें स्नेहपाकके तीन प्रकार बताये गये हैं—मृदु, मध्यम और खर।

तत्र स्नेहौषधिविवेकमात्रं यत्र भेषजं मृदुः। मधूच्छिष्टमिव विशदमविलेपि यत्र भेषजं स मध्यमः।
कृष्णमवसन्नमीषद्विशदं चिक्कणं च यत्र भेषजं स खरः॥

स्नेहपाकोऽथ कल्के स्यान्मृदुरङ्गुलिलेपिनि। न गृह्णात्यङ्गुलिं मध्यः शीर्यमाणः खरः स्मृतः॥

जब स्नेहकार्तमें प्रयुक्त औषधि पकाते-पकाते यह सिद्ध हो जाय कि यह पक गयी है अर्थात् औषधि कलछीसे लगने लगे तो उसको मृदु-पाक कहते हैं। जब वह कल्क मोमके समान कड़ाहीमें फैल जाय और कलछीमें चिपके नहीं, तब वह मध्यम-पाक कहा जाता है। जब कल्क कठिन और कुछ चिकना हो जाता है तो उसको खर-पाक कहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य लोगोंका विचार है कि जब कल्क अँगुलीपर चिपके और उसमें नरमी हो तो वह मृदु-पाक है। जो कल्क अँगुलीपर न चिपके और नरम हो, वह मध्यम तथा जो कल्क पककर कठिन हो जाय, वह खर होता है।

२-च०सू०अ० २७, सु०सू०अ० ४६, अ०सं० सू०अ० ७। १२, च०सू०अ०२५

भारी और वात, पित्त एवं कफ—इन तीनों दोषोंको दूर करता है।

श्यामाक अर्थात् साँवाँ शरीरशोषक, रूक्ष, वातदोषोत्पादक, कफ तथा पित्तजनित दोषका निवारक है। उसी प्रकार प्रियंगु, नीवार और कोदो नामक अन्न भी शरीरके दोषोंको दूर करते हैं। यव (जौ) शीतल, कफ और पित्तज दोषका अपहारक होता है। गेहूँ शक्तिशाली, शीतल, भारी, मधुर और वातनाशक होता है। मूँग कफ, पित्त तथा रक्तको जीतनेवाला, कषाय, मधुर और लघु होता है। उड़द अत्यन्त शक्तिशाली, ओज-वृद्धि करनेवाला, पित्त-कफ-विनाशक तथा भारी होता है। राजमाष अर्थात् राजमा शुक्रनाशक, पित्तश्लेष्मकारक और वायुरोगका अपहारक है।

कुलथी[1] प्राणीके श्वास, हिचकी, शुक्राश्मरी, हृदयस्थ कफ, गुल्म एवं वात-दोषको दूर करनेमें समर्थ होती है। मकुष्ठक अर्थात् मकुनी रक्त, पित्त तथा ज्वरको दूर करनेवाला, शीतल और ग्राह्य है। चना पुरुषत्व, रक्त, कफ और पित्तका अपहर्ता तथा वात-दोषका वर्धक माना जाता है। मसूर मधुर, शीतल, संग्राही और कफ तथा पित्तका निवारक है। मसूर-जैसे ही सभी गुणोंकी अधिकता कलाय (मटर)-में भी होती है—यह अधिक वायुवर्धक होता है। अरहर कफ तथा पित्त-विनाशक और शुक्रवर्धक है। अलसी पित्त-वृद्धिकारक और सरसों कफ तथा वायुके दोषका निवारक है।

तिल[2] क्षार, मधुर और स्निग्ध-गुणसे युक्त होता है। यह बलवर्धक, उष्ण तथा पित्तकारक भी है। अन्य विभिन्न प्रकारके अन्नोंकी जो प्रजातियाँ हैं, वे बलनाशक, रूक्ष और शीतल होती हैं।

चित्रक, इंगुदी (हिंगोट), कमलनाल, पिप्पली, मधु, सहिजन, चव्याचरण (गजपिप्पली), निर्गुण्डी, तर्कारी (जयन्ती), कासमर्दक और बिल्व—ये कफ-पित्त तथा कृमिनाशक, लघु और जठराग्निको उद्दीप्त करते हैं। वर्षाभू (पुनर्नवा) तथा मार्कर (मकरा) वात और कफ-दोषका विनाश करते हैं। एरण्ड तिक्त और रसयुक्त एवं काकमाची (मकोय) त्रिदोषनाशक होता है। चांगेरी कफ और वातविनाशक है। सरसों सभी दोषोंसे युक्त होता है। सरसोंके समान कुसुम्भ (बरें) भी होता है। राजिका (काला सरसों) वात और पित्तको बढ़ानेवाला है। नाडीच कफ-पित्त-विनाशक तथा चुचु (पालककी जातिका एक शाक) मधुर और शीतल होता है। कमल-पत्र सभी दोषोंका हन्ता और त्रिपुट (मटरकी एक जाति) अत्यन्त वातकारक है। वास्तुक अर्थात् बथुआ क्षारयुक्त, अतिशय रुचिकारक और कृमिनाशक होता है। इसमें सभी दोषोंको विनष्ट करनेकी क्षमता होती है।

तण्डुलीय (चौलाई)-का शाक विषनाशक होता है। पालक तथा अन्य इसी प्रकारके शाकोंमें भी यह गुण रहता है। मूलक (मूली) आम-दोषका उत्पादक तथा वात-कफनाशक है। जब यह शाक अग्निपर पक जाता है तो सभी दोषोंको दूर करनेमें समर्थ तथा हृदय और कण्ठको प्रिय होता है। कर्कोटक (ककड़ी), बैंगन, परवल और करैला कुष्ठ, मेह, ज्वर, श्वास, कास, पित्त तथा कफके नाशक हैं। कुम्हड़ा सर्वदोषविनाशक, वस्तिशोधक और स्वादयुक्त होता है। कलिंगा (तरबूज) और अलाबुनी (लौकी) पित्तविनाशिनी और वातकारिणी होती है। त्रपुष (खीरा) तथा उर्वारुक (ककड़ी-फूट) वात और कफ बढ़ानेवाली तथा पित्त-दोषको दूर करनेवाली है।

वृक्षाम्ल (अमलबेंत) और जम्बीर (नीबू) कफ तथा वात-दोष-निवारक हैं। दाडिम वात-दोषका नाशक तथा स्वादिष्ट होता है। नारंगीके फलमें भारीपनका दोष रहता है। केशर और मातुलुंग (बिजौरा नीबू) कफ-वात-विनाशक एवं जठराग्निको प्रदीप्त करते हैं। माष (उड़द) वात और पित्तका नाशक होता है। इसके सेवनसे त्वचाभागमें स्निग्धता आती है और शरीरके अंदर विद्यमान उष्णता तथा वात-दोष विनष्ट हो जाता है। आँवला बलकारी, मधुर, रोचक और अम्लरससे युक्त होता है। हरीतकी (हर्रे) भोजनको भली प्रकारसे पचानेवाली, पुण्यदायिनी अमृतके समान तथा कफ और वात-दोषको दूर करनेमें समर्थ एवं विरेचक है। बहेड़ा भी उसी प्रकारका होता है। इसमें वात, पित्त और कफ—इन तीनों दोषोंपर विजय प्राप्त करनेकी क्षमता होती है। तिन्तिडी[3] (इमली)-फल वात तथा कफका विनाशक, अम्लरससे युक्त और विरेचक होता है।

लकुच अर्थात् बड़हल दोषोत्पादक तथा स्वादयुक्त,

१-अ० हृ० सू० अ० ६। १८। २-अ० हृ० सू० अ० ६। २१। ३-सु० सू० ४६, च० सू० २७।

बकुल कफ-वात-विनाशक, बीजपूरक (बिजौरा नीबू) गुल्म, वात, कफ, श्वास और कासरोगोंका नाशक है। कपित्थ (कैथ) ग्राह्य तथा सभी दोषोंका हरण करनेवाला होता है। पकनेपर यह भारी एवं विषको दूर करनेवाला होता है। पकनेके पूर्व अपने बाल्यकालमें यह कफ और पित्तको उत्पन्न करता है। उसके बाद प्रौढावस्थामें यह पित्तवर्धक है।

पका हुआ आम[1] वात-दोषको उत्पन्न करनेवाला तथा मांस, वीर्य, वर्ण और शक्तिको बढ़ानेवाला होता है। जामुन वात, पित्त और कफका विनाशक तथा विष्टम्भ-दोषका उत्पादक होता है। तिन्दुक कफ-वातका नाशक और बेर वात तथा पित्तदोषको दूर करता है। बिल्व विष्टम्भ-दोषमें वात-दोषको बढ़ानेवाला है। प्रियाल (चिरौंजी) वातज दोषका नाशक है। राजादन (खिरनी), मोच (केला), कटहल और नारियल स्वादयुक्त, स्निग्ध तथा भारी होते हैं। ये सभी वीर्य और मांसके अभिवर्धक कहे जाते हैं।

द्राक्षा (अंगूर), मधूक (महुआ), खर्जूर (खजूर) तथा कुंकुम वात और रक्त-दोषको जीतनेवाले होते हैं। मागधी (पिप्पली) माधुर्य-गुणसे युक्त होती है। यह पकनेपर श्वास तथा पित्त-दोषको दूर करनेमें श्रेष्ठ है। आर्द्रक (अदरक) रोचक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक तथा कफ और वात-विनाशक होता है। सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च कफ तथा वात-दोषको जीतनेवाले माने गये हैं। लाल मिर्च शरीरको पौष्टिक तत्त्व देनेमें असमर्थ होता है, ऐसा वैद्यक-शास्त्रका मत है। हींग गुल्म, शूल तथा मलावरोधको दूर करनेवाली और वात तथा कफकी विनाशिनी है।

यमानी, धनिया और अजाघृत वात तथा कफज दोषको दूर करनेमें विशेष रूपसे गुणकारी हैं। सेंधा नमक नेत्रज्योतिवर्धक, पुष्टिकारक और वात-पित्त तथा कफ—इन तीनों दोषोंका शमन करनेवाला माना गया है। सौवर्चल अर्थात् काला नमक वायु-अवरोधका विनाशक, उष्ण और हृदयशूलका शामक है। विडंग उष्ण, तीक्ष्ण, शूलनाशक तथा वात-दोषका अपहारक है। रोमक लवण वातवर्धक, स्वादिष्ट, रोचक, गलानेवाला और भारी होता है। इसके द्वारा हृदय-रोग, पाण्डु और गलेका दोष दूर हो जाता है। यवक्षार अग्निदीपक है। सर्जिक्षार (रेह) पाचक, अग्निदीपक, तीक्ष्ण और विदारक होता है।

वर्षाका जल तीनों दोषोंका नाशक, लघु, स्वादिष्ट विषापहारक है। नदीका जल वातवर्धक, रूक्ष, सरस, मधुर और लघु होता है। वापीका जल वात-कफ-विनाशक तथा पोखरका जल वातवर्धक माना गया है। झरनेका जल रुचिकर, अग्निदीपक, रूक्ष, कफनाशक और लघु होता है। कुएँका जल अग्निदीपक, पित्तवर्धक तथा उद्भिज (पातालतोड़ कुआँ)-का जल पित्तविनाशक है। यह जल दिनमें सूर्य-किरण और रात्रिमें चन्द्र-किरणसे सम्पृक्त होकर सभी दोषोंसे विमुक्त हो जाता है। इसकी तुलना तो आकाशसे गिरनेवाले जलसे ही की जा सकती है।

गरम जल ज्वर, श्वास, मेदा-दोष तथा वात और कफ-विनाशक है। जलको गर्म करके ठंडा करनेके पश्चात् वह प्राणीके वात-पित्त तथा कफ—इन तीनों दोषोंका विनाश करता है, किंतु बासी हो जानेपर वही जल दोषयुक्त हो जाता है।

गोदुग्ध वात और पित्तका विनाशक, स्निग्ध और गुरुपाकी रसायन है। भैंसका दूध गोदुग्धकी अपेक्षा अत्यधिक भारी, स्निग्ध तथा मन्दाग्नि-दोषका उत्पादक होता है। बकरीका दूध रक्तातिसार, कास, श्वास तथा कफका अपहारक है। स्त्रियोंका दूध नेत्रोंकी ज्योतिको तीव्र करनेवाला, जीवनस्वरूप और रक्त-पित्त-विनाशक है।

दही परम गुणकारी होता है। यह वात-दोषको दूर करनेवाला पौष्टिक तथा पित्त एवं कफका वर्धक है। मट्ठा तीनों दोषोंका नाशक और उसकी मही (छाछ) रक्तादिक स्रोतोंका शोधक होता है। नया निकाला गया नवनीत (मक्खन) ग्रहणी-बवासीर और अर्दित रोगजन्य पीड़ाका अपहारक है। दूधके किलाट (दुग्धविकार विशेष) आदि विकार भारी तथा कुष्ठरोगके कारण हैं। प्राचीन विद्वान् तक्रको ग्रहणी, शोथ, बवासीर, पाण्डुरोग, अतिसार और गुल्मरोगका विनाशक तथा वात-पित्त एवं कफजन्य त्रिदोषका उत्तम शामक मानते हैं।

१-सु० सू० ४६, च० सू० २७ भा०प्र०।

घृत पौष्टिक, मधुर और वात-पित्त तथा कफका अपहारक होता है। गोघृत बुद्धिवर्धक और नेत्रज्योति-प्रदायक है। अग्निपर तप्त करनेके बाद तो यह तीनों दोषोंको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ हो जाता है। संस्कृत घृतसे अपस्मार-रोगमें होनेवाले उन्माद तथा मूर्च्छाजनित दोष दूर हो जाते हैं। बकरी और भेंड़ आदिसे प्राप्त होनेवाला घृत भी गोदुग्धसे तैयार होनेवाले घृतके समान ही गुणकारी होता है। ये घृत कफ तथा वात-विनाशक और मूत्रदोषके अपहर्ता तथा सभी प्रकारके कृमि और विषजनित दोषोंके निवारक हैं।

तिलका तेल बलशाली, केशमें लगाने लायक, वात और कफका विनाशक, पाण्डुत्व, उदररोग, कुष्ठ, अर्श, शोथ, गुल्म तथा प्रमेह-रोगका नाशक होता है। सरसोंका तेल कृमि और पाण्डुरोगको दूर करनेवाला तथा कफ, मेदा और वात-दोषका भी नाशक है। अलसीका तेल नेत्रशक्तिको हानि पहुँचानेवाला तथा वात और पित्तका विनाशक है। बहेड़ेका तेल कफ-पित्तको दूर करनेवाला, केशवर्धक, त्वक् और कर्णदोषका निवारक होता है। इसे त्रिदोषका शमन करनेवाला, मधुर और वातवर्धक कहा जाता है। इसके प्रयोगसे हिचकी, श्वास, कृमि, छर्दि, मेह, तृष्णा और विष-दोष भी दूर हो जाते हैं।

'इक्षुरस' रक्त और पित्त-दोषनाशक, बलप्रद, पौष्टिक तथा कफवर्धक होता है। इस रसका दूध-मिश्रित बना हुआ सिखरन पित्तवर्धक, उसकी मदिरा तीव्र (उत्तेजक) तथा शर्करा मछलीके अंडेके समान श्वेत और हल्की होती है। इसकी खाँड़ पौष्टिक, स्निग्ध, स्वादिष्ठ तथा रक्त-पित्त और वात-दोषपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ होती है। गुड़ वात-पित्तहर्ता, रूक्ष तथा कफवर्धक होता है। यह पित्त-विनाशक तो है ही, जो गुड़ पुराना हो गया है, वह अधिक प्रशस्त और पथ्य है। इसके सेवनसे रक्तकी शुद्धि हो जाती है। गुड़ और शर्करा दोनों रक्त एवं पित्त-दोषके अपहर्ता, पौष्टिक तथा स्नेहयुक्त होते हैं। इसकी मदिरा सब प्रकारसे पित्त-दोषको उत्पन्न करनेवाली तथा अपनी अम्लताके कारण कफ और वात-दोषको दूर करनेवाली है। सौवीर प्रान्तमें प्राप्त होनेवाली सभी प्रकारकी मदिराएँ रक्त-पित्तकारक तथा तीक्ष्ण गुणवाली होती हैं।

माँड़ और भूना हुआ चावल पथ्य है, यह अग्निदीपक और पाचक होता है। तक्रके साथ दाडिम, त्रिकटु, गुड़, मधु तथा पिप्पलीके मिश्रणसे तैयार किया गया पेय पदार्थ वात-दोष-विनाशक, लघु और वस्तिभागका शोधक है, किंतु मनुष्यको इस सुन्दर पेयका परित्याग कर देना चाहिये, जो कास, श्वास और नाड़ी-रोगको बल प्रदान करनेवाला है।

पायस अर्थात् खीर कफोत्पादक तथा बलवर्धक होता है। खिचड़ी वातनाशक है। सुधौत अर्थात् दालका सूप स्निग्ध, उष्ण, लघु और रुचिकर होता है। कन्द, मूल और फलसे तैयार किया गया सूप भारी और पाचक माना गया है। कुछ उष्ण सेवन करनेसे वह सूप हल्का हो जाता है और यथाशीघ्र पच जाता है। शाकको उबालकर उसे निचोड़ना चाहिये। तदनन्तर उसको घृत या तेलसे संस्कारित करके प्रयोग करना हितकारी होता है।

दाडिम तथा आँवलेसे तैयार किया गया सूप हृदयको प्रिय अग्निवर्धक और वात-पित्त-विनाशक होता है। मूलीसे बनाये गये सूपके द्वारा श्वास, कास, प्रतिश्याय तथा कफज दोष दूर हो जाते हैं। यव, कोल और कुलथीका रस सुस्वादु तथा वात-विनाशक होता है। मूँग तथा आँवलेसे तैयार हुआ सूप ग्राह्य है। यह कफ और पित्तका विनाश करनेवाला है।

गुड़मिश्रित दही वातनाशक होता है। सभी प्रकारके सत्तू रूक्ष एवं वातवर्धक होते हैं। पूड़ी पौष्टिक और पाचनमें भारी होती है। मांसयुक्त भोजन बृंहण और भक्ष्यपिष्टक (चावल एवं दाल आदिको पीसकर बनाया पीठा) भारी माना जाता है। तेलमें तलकर तैयार किये गये पिष्टक दृष्टिनाशक हैं। अत्यन्त उष्ण मण्डक पथ्य है। शीतल होनेपर इसे भारी माना जाता है।

उक्त द्रव्य—पदार्थोंके गुणावगुणका विवेचन करके ही मनुष्यको अनुपानकी व्यवस्था करनी चाहिये। अनुपानके साथ औषधका सेवन करनेसे श्रम और तृष्णाका नाश स्वत: ही हो जाता है। यथोचित अन्नपान आदि करनेसे प्राणीमें कोई रोग नहीं होता। वह सभी रोगोंसे विमुक्त हो जाता है।

विष उष्णतारहित तथा मोरके कण्ठके समान नीले

वर्णका होता है। वह प्राणीके नैसर्गिक वर्णको परिवर्तित कर देता है। इसका गन्ध, स्पर्श और रस तीव्र होता है। यह खानेवाले व्यक्तिके मनको व्यथित कर देता है। इसे सूँघनेपर नेत्ररोग उत्पन्न हो जाता है। श्रेष्ठ वैद्योंके द्वारा भी इसका शमन अत्यन्त कठिन है। कम्पन तथा जँभाई आदि इसके लक्षण हैं। (अध्याय १६९)

ज्वर, अतिसार आदि रोगोंका उपचार

धन्वन्तरिजीने पुनः कहा—वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातकफज, पित्तकफज, संनिपातज और आगन्तुज-रूपमें आठ प्रकारका ज्वर माना गया है। मुस्त (मोथा), पर्पटक (पित्तपापड़ा), उशीर (खस), चन्दन तथा उदीच्यनागर (सोंठ)-के सहित जलको पकाकर तैयार किया गया शीतल क्वाथ ज्वर-जनित प्यासकी शान्तिके लिये देना चाहिये।

नागर, देवदारु, धान्यक, बृहतीद्वय और कण्टकारीका क्वाथ ज्वर-रोगीको सबसे पहले देना चाहिये। आरग्वध (अमलतास), अभया (पिप्पलीमूल), मुस्त (मोथा), अतितिक्ता (कुटकी) तथा ग्रन्थिक (हरीतकी)-द्वारा जलमें पकाकर तैयार किया गया क्वाथ उद्वेग, शूल और ज्वरमें हितकारी है। मधुकसार (मधु), सेंधा नमक, वच, काली मिर्च और पिप्पली—इन सभीको समान मात्रामें जलके साथ महीन पीसकर कपड़छान कर लेना चाहिये। इसका नस्य देनेसे ज्वरके प्रभावसे मूर्च्छित हुआ रोगी होशमें आ जाता है। त्रिवृद्विशाला (निसोत-इन्द्रायण), त्रिफला, कटुकी और अमलतासके बने हुए क्वाथमें सेंधा नमक डालकर उसको पीनेसे सभी प्रकारका ज्वर विनष्ट होता है। सोंठ, मोथा, रक्तचन्दन, खस तथा धान्यक (धनिया)-से बने क्वाथमें शर्करा और मधु मिलाना चाहिये। इसका पान करनेसे तृतीयक (तिजरिया)-ज्वर विनष्ट हो जाता है।

रविवारको अपामार्ग (चिचड़े)-की जड़ लाल सूत्रसे बाँधकर कमरमें सात बार घुमाकर बाँधनेसे निश्चित ही इस तिजरिया-ज्वरका नाश होता है। '**गङ्गाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः**'—(गङ्गाके उत्तरी तटपर पुत्रविहीन तपस्वी ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी है।) कहकर उसे तिलोदक देना चाहिये। ऐसा करनेसे एक आह्निक ज्वर रोगीको छोड़ देता है।

गुडूची (गिलोय)-का क्वाथ और कल्क[1], त्रिफला तथा वासक (अडूसा)-का क्वाथ एवं कल्क, द्राक्षा और बला (बरियारा)-का क्वाथ और कल्कसे सिद्ध घृत सभी प्रकारके ज्वरोंका विनाशक है। आँवला, हरीतकी और पिप्पली-चित्ताका क्वाथ सभी प्रकारके ज्वरोंको विनष्ट करनेवाला है।

इसके बाद अब मैं ज्वरातिसारनाशक औषधिका वर्णन करता हूँ।

पृश्निपर्णी (पिठवन लता), बला, बिल्व, सोंठ, कमल, धान्यक, पाठा, इन्द्रयव, भूनिम्ब (चिरायता), मुस्त तथा पर्पटकसे बना हुआ क्वाथ आमातिसार तथा ज्वरको विनष्ट करता है। नागर, अतिविषा (अतसी या अलसी), मुस्त, भूनिम्ब (चिरायता) और अमृतवत्सकसे बना क्वाथ सभी ज्वर तथा सभी अतिसार-रोगोंका नाशक है। मुस्त, पित्तपापड़ा और सोंठ-मिश्रित दूध भी अतिसार-रोगका विनाश करता है। शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारी, बला, गोखरू, बिल्व, पाठा, सोंठ तथा धनियाका क्वाथ सभी प्रकारके अतिसार-रोगोंमें हितकारी होता है। बिल्व और आमकी गुठलीके क्वाथका मिश्री तथा मधुके साथ सेवन अतिसारका नाशक है। अतिसारमें कुटज-वृक्षका छाल भी हितकारी होता है। इन्द्रयव, अलसी, सोंठ और पिप्पलीमूलका क्वाथ प्रयोग करनेसे आमशूलसे युक्त खूनी अतिसारमें लाभ होता है।

अब मैं ग्रहणी-रोगकी चिकित्सा कह रहा हूँ। ग्रहणी जठराग्निको विनष्ट कर देती है। चित्रक अर्थात् चित्ताके द्वारा बने हुए क्वाथ और कल्कके साथ पका हुआ घृत ग्रहणी-रोगका विनाशक है। यह गुल्म, शोथ, उदर, प्लीहा,

१-कूटकर लुगदी बनानेको कल्क कहा जाता है।

शूल तथा अर्शरोगको भी नष्ट कर देता है। इसके सेवनसे पेटकी अग्नि प्रदीप्त हो उठती है। सौवर्च (काला नमक), सैन्धव (सेंधा नमक), विडंग (लवण-विशेष), उद्भिद (रेह) और समुद्र-फेन—इन पाँचों लवणोंके समान भागमें मिश्रित चूर्णका प्रयोग करनेसे लाभ होता है।

शस्त्र, क्षार तथा अग्नि इस त्रिविध चिकित्साके द्वारा अर्श-रोगका विनाश होता है। यदि नया तैयार किया हुआ तक्र हो तो उसको भी अर्श-विनाशक ही मानना चाहिये। घीमें भूनी गुडूची, पिप्पली और हरीतकीका चूर्ण अम्ल तथा लवणके साथ रसोतका चूर्ण खानेसे भी यह रोग दूर हो जाता है। तिल और ईख़के रसका प्रयोग करनेसे अर्श तथा कुष्ठ-रोगका विनाश होता है। पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीता तथा सोंठ)-के साथ काली मिर्च और त्र्यूषण (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च)-का चूर्ण अग्निवर्धक है। सोंठ, गुड़ अथवा सेंधा नमकके साथ हरीतकीका चूर्ण निरन्तर खाना चाहिये; क्योंकि यह अग्निवर्धक होती है। त्रिफला, गिलोय, वासक, चिरायता, नीमकी छाल और नीमकी गिरीका क्वाथ मधुके साथ पान करनेसे कामला तथा पाण्डु-रोग समाप्त हो जाता है। त्रिवृत, त्रिफला, श्यामा, पिप्पली, शर्करा और मधुमिश्रित बना मोदक संनिपात-ज्वरका विनाशक तथा रक्त-पित्तज ज्वरको भी नष्ट करता है।

वासक (अडूसा[1])-का रस उदरभागमें पहुँचनेपर जीवनकी आशा बनी रहती है। ऐसी स्थितिमें रक्त और पित्तका क्षय होता है, तब खाँसीके रोगसे व्यथित प्राणी किसलिये दुखित होता है (अर्थात् वासकके रहते खाँसीके रोगीको जीवनसे निराश नहीं होना चाहिये।) शर्करासे युक्त जंगली अडूसा और मृद्वीका[2] रसका बना क्वाथ पथ्य है। इसको मिश्रीके साथ पान करनेसे कास, निःश्वास और रक्तपित्तज दोष विनष्ट हो जाता है। मिश्री अथवा मधुके साथ अडूसेका रस पान करनेसे रोगी रक्तज दोषपर सफलता प्राप्त कर लेता है। शल्लकी (सलई), बेर, जामुन, प्रियाक, आम, अर्जुन और धव नामक वृक्षकी छालका क्वाथ दूध और मधुके साथ पान करनेसे रक्त-सम्बन्धित रोग दूर हो जाता है। अपने ही रसमें भावित, मूल, फल और पत्रसहित निर्गुण्डीका सिद्ध घृत पान करके क्षय-रोगसे क्षीण हुआ रोगी व्याधिरहित होकर देवताओंके समान कान्तिमान् हो उठता है।

हरीतकी, सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च और गुड़ मिलाकर बनाये गये मोदकको कासनाशक कहा गया है। इसको खानेसे तृष्णा एवं अरुचिका भी नाश होता है। कण्टकारी तथा गुडूचीसे पृथक्-पृथक् निकाले गये तीस-तीस पल रसमें सिद्ध किया गया एक प्रस्थ घृत कासरोगका नाश और अग्निका दीपन करता है। कृष्णा (काली पत्तियोंवाली तुलसी), धात्री (आँवला), श्वेत सोंठका चूर्ण मधुके साथ मिलाकर खाना हिक्का (हिचकी)-रोगका विनाशक बन जाता है। जो प्राणी हिचकी और श्वास-रोगके रोगी हैं, उनको विश्वा अर्थात् सोंठके साथ भार्गी (भारंगी)-का रस गरम जलसे पीना चाहिये।

स्वरभेद होनेपर मुखमें तिलके तेलमें सिद्ध खदिर (कत्थे)-का रस रखना लाभप्रद होता है अथवा सोंठके साथ हरीतकी और पिप्पलीका चूर्ण इस रोगमें लाभकारी है। मधुके साथ विडंग तथा त्रिफलाका चूर्ण वमन-रोगको दूर करता है। आम और जामुनकी छालका क्वाथ मधुके साथ पान करनेसे सभी प्रकारके वमन नष्ट हो जाते हैं। यह तृष्णाको भी समाप्त कर देता है अथवा इस रोगमें मधुके साथ त्रिफलाचूर्णका ही सेवन करना चाहिये। यह औषधि तो भ्रम और मूर्च्छाको भी दूर कर देती है। गायके दूध, दही, घृत, मूत्र और गोमयसे बना पञ्चगव्य हितकारी होता है। इसका अनुपान अपस्मार (मिरगी) और मलग्रहादि रोगोंको नष्ट करता है। कूष्माण्ड (कुम्हड़ा)-का रस ब्रह्मयष्टी तथा घृतके साथ पान करनेसे भी उक्त अपस्मार और मलग्रहादिके रोग दूर होते हैं। ब्राह्मी रस, वचकुष्ठ और शंखपुष्पीके साथ प्रयुक्त पुराना घृत प्राणियोंके लिये सेव्य है, क्योंकि यह उन्माद, ग्रहणी और अपस्मार-रोगोंका विनाशक है।

अश्वगन्ध क्वाथका कल्क बनाकर उसमें चौगुना दूध डालकर पकाना चाहिये। तदनन्तर उस योगमें घृतपाक तैयार करके उसका सेवन करे। यह घृत वातनाशक, बल-

१-वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति॥

२-मृद्वीका—मुनक्का

मांस-वर्धक और पुत्रोत्पादक होता है। नीली[1] और मुण्डीका चूर्ण मधु एवं घृतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे अथवा छिन्ना (गिलोय)-का क्वाथ पान करनेसे वह अत्यन्त असाध्य वात-रक्तको दूर कर देता है। गुड़के सहित हरीतकी आदि पाँच औषधियोंका सेवन कुष्ठ, अर्श तथा वातरोगका विनाशक है। गुडूचीका रस, कल्क, चूर्ण अथवा क्वाथ वात-रक्तरोगका हन्ता है। गुडूची लताके क्वाथसे बने कल्कका उपयोग करनेसे कुष्ठ और व्रणरोगका उपशमन होता है। इस कल्कका प्रयोग गोघृत या गोदुग्धके साथ करना चाहिये।

त्रिफला तथा गुग्गुल वात-रक्त और मूर्च्छाका नाशक है। गोमूत्रके साथ प्रयुक्त गुग्गुल ऊरुस्तम्भ नामक रोगका शमन करता है। सोंठ और गोखरूका क्वाथ सामवात तथा शूलरोगका विनाशक है। दशमूल[2], हरीतकी, एरण्ड, रास्ना, सोंठ और देवदारु नामक औषधियोंसे बना हुआ क्वाथ काली मिर्च एवं गुड़के साथ सेवन करनेपर महाशोथको दूर करता है। कण्टकारी और गुडूचीके पृथक्-पृथक् तीस-तीस पल रसको निकालकर उसमें एक प्रस्थ सिद्ध किया गया घृत कासरोग-विनाशक तथा जठराग्नि-दीपक होता है। काली तुलसी, आँवला, सफेद सोंठ, काली मिर्च और सेंधा नमकसे बना हुआ क्वाथ एरण्ड-तेलके साथ पान करनेपर वह आमदोष तथा प्रबल वायु-विकारको दूर करता है।

बला, पुनर्नवा, एरण्ड, बृहतीद्वय, कण्टकारी और गोखरूका क्वाथ हींग और सेंधा नमक मिलाकर पान करनेसे वातशूल विनष्ट हो जाता है। दाह और शूलरोगकी शान्तिके लिये त्रिफला, निम्ब, मुलेठी, कटुकी तथा अमलतासले बने क्वाथको मधु मिलाकर पान करना चाहिये। जेठी मधुके साथ त्रिफलाका क्वाथ पीनेपर शूलसे होनेवाला दुःख दूर होता है। त्रिफलाचूर्ण गोमूत्र और शुद्ध मण्डूर, मधु तथा घृतके साथ चाटनेपर त्रिदोषजन्य शूलको विनष्ट करता है।

त्रिवृत, काली तुलसी और हरीतकीके चूर्णको क्रमशः दो भाग, चार भाग तथा पाँच भाग गुड़-समन्वित करके उसकी समान गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे मलकाठिन्य-दोष दूर हो जाता है। हरीतकी, यवक्षार, पिप्पली और त्रिवृत अर्थात् निसोथका चूर्ण घृतके साथ पान करनेके योग्य है, क्योंकि यह उदावर्त-रोगका विनाश करता है। त्रिवृत, हरीतकी और काली तुलसीकी पत्तीका मिश्रित चूर्ण स्नुहीक्षीर अर्थात् सेहुँड़के दूधसे भावित करके उससे बनायी गयी वटीका गोमूत्रके साथ पान करनेसे अनाह-रोग नष्ट हो जाता है। त्र्यूषण (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च), त्रिफला (हरीतकी, आँवला तथा बहेड़ा), धनिया, विडंग, चव्य (गजपिप्पली) तथा चित्रक (चित्ता) नामक औषधियोंके चूर्णको कल्कसे सिद्ध घृत वातगुल्म-रोगका विनाशक है।

दुग्धमें प्रयुक्त सोंठके चूर्णका अनुपान हृदयगत पीड़ाका नाश करता है। काला नमक तथा उसका आधा भाग हरीतकी-चूर्ण घृतमें मिलाकर पान करनेसे भी यह रोग दूर हो जाता है। कणा (पिप्पली), पाषाणभेदी (पथरचट्टा)-के रसमें शिलाजीतका चूर्ण मिलाकर उसको चावलके जल और गुड़के साथ पान करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोगी रोग-विमुक्त हो जाता है। गिलोय, सोंठ, आँवला, अश्वगन्धा और त्रिकण्टक (गोखरू)-का अनुपान वातरोगी, शूलग्रस्त तथा मूत्रकृच्छ्रके रोगीको करना चाहिये। शर्करा अथवा मिश्रीके साथ समान भागमें प्रयुक्त यवक्षार सभी प्रकारके कृच्छ्ररोगोंका विनाशक है अथवा मधुके साथ निदिग्धिका (इलायची)-का रस पान करनेसे भी सब प्रकारके कृच्छ्ररोग विनष्ट हो जाते हैं।

त्रिफला-कल्कके साथ प्रयोगमें लाये गये सेंधा नमकको भी मूत्राघातका विनाशक माना गया है। मूत्रमें अवरोध होनेपर कर्पूरका चूर्ण लिंगमें प्रविष्ट करना चाहिये। मधुके साथ प्रयुक्त आँवलेका रस सभी प्रकारके मेहरोगोंको विनष्ट करनेवाला है। त्रिफला, देवदारु, दारुहल्दी और कमलमूलका क्वाथ भी मधुके साथ पान करनेसे वह प्रमेहरोगको दूर करता है।

शरीरकी पुष्टि चाहनेवाले व्यक्तिको अनिद्रा, मैथुन, व्यायाम तथा चिंताका परित्याग कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे शरीर धीरे-धीरे पुष्ट होने लगता है। यव और साँवाँ खानेवाला प्राणी स्थूल हो जाता है। मधुके साथ जल पीनेसे भी प्राणीके शरीरमें स्थूलता आ जाती है। उष्ण अन्न अथवा माँड़युक्त चावलका भोजन करनेसे शरीर कृश हो जाता है। गजपिप्पली, जीरा, त्रिकटु, हींग, काला नमक तथा

१-नीली (नील), २-बिल्व, श्योणाक, गम्भारी, पाटला, गणकारिका, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहतीद्वय, कण्टकारी तथा गोखरू—इन दस वृक्षोंके मूल दशमूल कहलाते हैं।

आँवलाचूर्ण-समन्वित सत्तूको मधुके साथ पान करनेसे मेदा-विकारका नाश और अग्निका उद्दीपन होता है।

चौगुने जल और दोगुने गोमूत्रमें चित्रक नामक औषधिका कल्क पाक करके उसके द्वारा उदररोगीको एक प्रस्थ घृत सिद्ध करना चाहिये। तदनन्तर वह दूधके साथ उस घृतका पान करे। ऐसा करनेसे उसकी जठराग्नि उद्दीप्त हो उठती है। अनुपानमें दूधके साथ क्रमशः एक-एक पिप्पलीकी अभिवृद्धि करते हुए रोगी दस दिनतक उसका सेवन करे, पुनः उसी क्रमसे एक-एक पिप्पलीको घटाते हुए बीसवें दिन मात्र एक पिप्पलीका सेवन करे तो उससे भी उस रोगीकी जठराग्नि प्रबल हो जाती है। पुनर्नवाके क्वाथ एवं कल्कसे सिद्ध किया गया घृत शोथ-रोगका विनाश करनेमें समर्थ होता है। शोथ-रोगीको गोमूत्र या गोदुग्धके साथ पिप्पली अथवा गुड़के साथ समान भागमें हरीतकी या सोंठका सेवन करना चाहिये।

मनुष्य बला नामक औषधिके रसमें सिद्ध दूधके साथ एरण्ड-तैलका पान करके आध्मान तथा शूलजनित पीड़ासे युक्त अन्त्रवृद्धिके रोगपर विजय प्राप्त कर सकता है। अग्निशोधित अरुचक अर्थात् एरण्ड-तैलसे सिद्ध पथ्या (हरीतकी)-का कल्क, काला नमक एवं सेंधा नमकसे समन्वित होकर, अन्त्रवृद्धिरोगका विनाशक श्रेष्ठतम योग है।

निर्गुण्डीकी[1] जड़का नस्य लेनेसे गण्डमालाका रोग नष्ट हो जाता है। स्नुही (सेहुँड़) तथा गण्डारी (कचनार)-वृक्षकी छालका स्वेद अर्बुद-रोगके सभी भेदोंको विनष्ट करनेमें समर्थ होता है। हस्तिकर्ण अर्थात् एरण्ड तथा पलाशपत्रके रसका लेप करनेसे गलगण्ड-रोग नष्ट होता है। धतूर, एरण्ड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सहिजन तथा सरसोंका मिश्रित लेप पुराने एवं अत्यन्त दुःखदायी श्लीपद (पीलपाँव)-रोगको दूर करता है। शोभा (हल्दी), अञ्जनक (सौंहजना)-वृक्षकी छाल समुद्रफेन तथा हींगका योग विद्रधि नामक रोगका विनाशक है।

मधुके साथ शरपुंखा (शरफोंका) नामक औषधि सभी प्रकारके व्रणोंमें लेप करनेके योग्य होती है अथवा नीमकी पत्तीका लेप भी शोथ तथा व्रणोंको सुखा देता है। त्रिफला, खदिर, दारुहल्दी तथा वटवृक्षकी छाल या फलके योगसे बना लेप व्रणशोधक है। यष्टि, मधु (मुलेठी) और घीको गरमकर मधुके साथ व्रणमें लेप करनेसे आगन्तु-व्रण नष्ट हो जाता है।

प्राणीमें पित्त-रक्त-दोषजन्य गरमी होनेपर वैद्यको शीत-क्रिया करनी चाहिये। शरीरके कोष्ठमें रक्त-सञ्चार बाधित होनेपर बाँसके अंकुरकी छाल, एरण्ड-बीज तथा गोखरूका क्वाथ मधु, सेंधा नमक तथा हींग मिलाकर पान करनेसे ठीक हो जाता है। ऐसी विकृति होनेपर उससे मुक्त होनेके लिये यव, काली मिर्च तथा कुलथीके रसका पान अथवा सेंधा नमकके साथ भूना हुआ अन्न या यवागूका पान करना चाहिये।

करञ्ज अरिष्ट (रीठा) तथा निर्गुण्डीका रस व्रणोंके कीटाणुओंको नष्ट कर देता है। त्रिफलाचूर्णसे युक्त गुग्गुलवटी विबन्ध-रोगको दूर करती है। यह व्रणशोषक और शोधक है। दूर्वारस या कम्पिलक (कपीला) अथवा दारुहल्दीके कल्कसे सिद्ध तेल व्रणमें लगानेकी श्रेष्ठ औषधि है।

(अध्याय १७०)

नाडीव्रण, कुष्ठ आदि रोगोंकी चिकित्सा

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब आप नाडीव्रण आदि दोषोंकी चिकित्साका श्रवण करें।

नाडी (नाड़ी)-को शस्त्रसे भलीभाँति काटकर व्रण-चिकित्साके समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। गुग्गुल, त्रिफला तथा त्रिकटुको समान भागमें लेकर सिद्ध किये गये घृतसे नाड़ीमें हुए विकृत व्रण, शूल और भगन्दर नामक रोगपर विजय प्राप्त की जा सकती है। निर्गुण्डीके रससे सिद्ध तेल नाड़ी-दोष तथा व्रणको दूर करता है। पामा नामक रोगके उपभेदोंमें यह औषधि पान, अञ्जन और नस्य-विधिसे प्रयोगमें लानेपर गुणकारी होती है। तीन भाग गुग्गुल, पाँच भाग त्रिफला तथा एक भाग काली तुलसीकी पत्तीसे बनायी गयी गुटिकाएँ शोथ, गुल्म, अर्श और भगन्दर-रोगसे ग्रसित रोगियोंके लिये हितकारिणी होती हैं।

उपदंश-रोगमें शिश्नके मध्यमें रक्तकी शुद्धि-हेतु शिरावेध

[1] १-निर्गुण्डी (मेउड़ी या मेढ़की)

करे तथा शिश्न नष्ट न होवे, अतः उसे पकनेसे प्रयत्नपूर्वक रक्षा करे। गुग्गुल, खदिर, परवल, नीमका फल और गिलोयका क्वाथ पीनेसे उपदंश-दोष समाप्त हो जाता है। एक कड़ाहेमें त्रिफलाको जलाकर स्याही-जैसी राख बनाकर मधुसे प्रयोग करनेपर लाभ होता है। त्रिफला, चिरायता, नीम, कंजा तथा खदिर आदिसे बने कल्क अथवा क्वाथके द्वारा सिद्ध किया गया घृतपाक उपदंशको दूर करता है।

प्राणीको [भागनसे] हताश हुआ जानकर सबसे पहले उसे शीतल जलसे सिंचित करे। तदनन्तर पाकका लेपन तथा कुशकी रस्सीसे भग्न-भागपर बन्धन लगाये। ऐसे भग्न-रोगीको उड़द, मांस, मटरकी दाल, उगा हुआ अन्न, घृत, दूध तथा सूप देना चाहिये।

रसोन (लहसुन), मधु, नासा (अडूसा) तथा घृतका कल्क बनाकर उसको स्थानसे च्युत अथवा टूटी हड्डियोंके जोड़पर लगानेसे बहुत ही शीघ्र सफलता प्राप्त होती है। त्रिफला, त्रिकटु (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च)-को समान भागमें पीसकर उनके साथ बराबर मात्रामें मिलाया गया गुग्गुल टूटे हुए हड्डीके संधि-स्थानको भी जोड़ देता है।

सभी प्रकारके कुष्ठरोगोंमें रोगीके लिये वमन, रेचन तथा रक्तमोक्षणकी क्रिया लाभकारी है। वच, अडूसा, परवल, नीम तथा बहेड़ेकी छालका क्वाथ मधुके साथ पीनेसे वातरोग नष्ट हो जाता है। इस रोगमें निसोत, दन्तीफल (एरण्ड-बीज) तथा त्रिफलाके योगसे विरेचन-क्रिया भी करनी चाहिये।

काली मिर्चके साथ मनःशिल (मैनसिल)-का सिद्ध तेल कुष्ठरोगका विनाशक है। सभी प्रकारके कुष्ठरोगोंमें इस तेलका लेप किया जा सकता है। इस रोगमें पथ्याहार शिव (हरीतकी), पञ्चाम्ल, गुड़ और भात है। कंजा-एल (सुगन्धित वालुका नामक लता), गजपिप्पली तथा कुष्ठ (कूट)-के रसको गोमूत्रके साथ कुष्ठरोगमें प्रलेप करनेसे लाभ होता है। तेलमें करवीर (कनेर)-के मूलका पाकसिद्ध उबटन भी कुष्ठनाशक है। हल्दी, चन्दन, रास्ना, गुडूची, एडगज (तगर), अमलतास और करञ्जका लेप कुष्ठविनाशक श्रेष्ठतम औषधि है। मैनसिल, विडंग, बागुजी (बाकुची), सरसों तथा कंजाको गोमूत्रमें पीसकर तैयार किया गया लेप सूर्यदेवके समान कुष्ठरोगका विनाशी है।

विडंग, एडगज, वच, कुटकी, निशा (दारुहल्दी), समुद्रफेन और सरसोंको गोमूत्र तथा अम्लमें पीसकर तैयार किया गया यह लेप दद्रु नामक कुष्ठरोगको विनष्ट करता है। प्रपुन्नाड (चकवड़)-का बीज, आँवला, सर्जरस (विरोजा या लाख), स्नुही (सेहुँड़) और सौवीर (बेर)-का पिसा हुआ लेप सभी प्रकारके दद्रुरोगोंको दूर करनेवाला श्रेष्ठ औषध है। कांजीके साथ अमलतासकी पत्तियोंका तैयार लेप दद्रु, किट्टिम तथा सिध्म (सेहुवाँ) नामक कुष्ठोंका विनाश करता है। वकुचीका उष्ण क्वाथ सेवन करके दूध पीनेसे भी कुष्ठरोगपर विजय प्राप्त की जा सकती है। तिल, घृत, त्रिफला, क्षौद्र, व्योष (त्रिकटु), भिलावा तथा शर्करा—ये सभी सात ओषधियाँ समान भागमें मिलाकर सेवन करनेसे पुरुषत्वमें वृद्धि होती है। ये पवित्र और कुष्ठरोग-नाशक हैं।

मधुके सहित विडंग, त्रिफला और काली तुलसीके चूर्णका अवलेह कुष्ठ, कृमि, मेह, नाडीव्रण एवं भगन्दर नामक रोगोंका विनाश करता है। जो मनुष्य कुष्ठरोगी हो, उसे हरीतकी, नीम, कुटकी, आँवला तथा दारुहल्दीका सेवन करना चाहिये। औषधि लेनेके बाद प्रायः एक मासपर्यन्त ऐसा व्यक्ति शीघ्र कुष्ठरोगसे विमुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। उष्ण मक्खन, कुम्भ (गुग्गुल), मूलक (अदरक), खदिर (कत्था), अक्ष (बहेड़ा), आँवला तथा चम्पा नामक योगसे भी कुष्ठका विनाश होता है। यह औषधियोंका एक रसायन है।

आँवला, खदिर और वकुचीके क्वाथका पान करके मनुष्य शंख एवं चन्द्रमाके समान श्वेत श्वित्ररोगको शीघ्र ही नष्ट कर देता है, इसमें संदेह नहीं है। भल्लातक (भिलावें)-के सिद्ध तेलको एक मासपर्यन्त पानकर प्राणी इस कुष्ठ-रोगपर विजय प्राप्त कर लेता है। जो खदिरमिश्रित जलका यथाविधि सेवन करता है, उसे कुष्ठरोगपर विजय प्राप्त हो जाती है। मलपू अर्थात् कठूमर नामक वृक्षकी छालसे बने

१-सु० शा० अ० ८

क्वाथके द्वारा छौंके गये सोमराजी (बकुची)-के फलोंका चूर्ण प्रतिदिन एक कर्ष मात्र बहेड़े और अर्जुन नामक वृक्षसे बने क्वाथके साथ लेना चाहिये। किंतु नमक खाना इस कालमें निषिद्ध है। इस औषधिके उपचारसे श्वित्ररोग विनष्ट हो जाता है। रोगीको इस औषधिका पान करते हुए शरीरपर स्थित सफेद चकत्तोंपर अपराजिता (शैफालिका)-की लताका लेप लगाना चाहिये। अडूसा, गुडूची, त्रिफला, परवल, कंजा, नीम, अशन तथा कृष्णवर्णकी वेत्रलताका क्वाथ एवं कल्क-रूपमें पकाकर उससे जो घृतपाक सिद्ध होता है, उसको 'वज्रक घृत' कहते हैं। इसके सेवनसे रोगी रोग-विमुक्त होकर सौ वर्षोंकी आयु प्राप्त करता है।

दूर्वाके रसमें उससे चौगुना तेल पकाकर औषधिरूपमें उसको शरीरमें लगाना चाहिये। इसके मालिशसे कच्छ, विचर्चिका[1] और पामा नामक कुष्ठरोग विनष्ट हो जाते हैं। द्रुम (पारिजात)-की छाल, मन्दार, कुष्ठ, लवण, गोमूत्र, गम्भारी (श्रीपर्णी) तथा चित्रक (एरण्ड) नामक औषधियोंका सिद्ध तेल कुष्ठरोगके व्रण-विकारोंको विनष्ट कर देता है।

आँवला, निमकौरी, गोमूत्र, अडूसा, गुडूची, पित्तपापड़ा, चिरायता, नीम, भृंगराज, त्रिफला, कुलथी और मधुका क्वाथ अम्लपित्त-रोगका विनाशक है। त्रिफला, पटोल और कटुकीका क्वाथ शर्करा तथा जेठी मधुके साथ पान करनेपर ज्वर, छर्दि एवं अम्ल-पित्तजनित अन्य विकार नष्ट हो जाते हैं। वासाघृत, तिक्तघृत और पिप्पलीघृतका प्रयोग अम्लपित्त- विकारमें करना चाहिये। गुड़ और कुम्हड़ा खानेसे भी लाभ होता है।

मधुके साथ पिप्पली अम्लपित्तका विनाश करती है। हरीतकी, पिप्पली तथा गुड़का बना हुआ मोदक श्लेष्म एवं अग्निमन्दताके दोषको दूर करता है। जीरा और धनियाको समान भागमें पीसकर एक प्रस्थ घृतमें उन दोनोंका विपाक बनाना चाहिये। यह पाक कफ, पित्त, अरुचि, मन्दाग्नि तथा वमन नामक दोषोंको दूर करता है।

पिप्पली, गुडूची, चिरायता, अडूसा, कटुकी, पित्तपापड़ा, खैर और लहसुनसे बना क्वाथ विस्फोट (फोड़ा-फुंसी) तथा ज्वररोगका विनाशक है। निसोतके साथ त्रिफलाके रस-मिश्रित घृतका अनुपान आँतोंकी सफाई और विसर्प नामक रोगकी शान्ति कर देता है। खदिर, त्रिफला (हरड़, आँवला, बहेड़ा), कटुकी, परवल, गुडूची और अडूसाके द्वारा बना क्वाथ 'अष्टक क्वाथ'के नामसे प्रसिद्ध है। इसके सेवनसे रोमान्तिक तथा मसूरिका रोग दूर हो जाते हैं।

लहसुनके चूर्णको घिसनेसे कुष्ठ, विसर्प, फोड़ा तथा खुजली आदि चर्मरोगोंका विनाश होता है। इसके द्वारा घिसनेसे शरीरका मस्सा भी नष्ट हो जाता है। चर्मकील, पुराने एवं बढ़े हुए मस्से, तिल तथा अनुपयुक्त बालोंको शस्त्रसे काटकर निकालनेके पश्चात् क्षार अथवा अग्निके द्वारा उक्त रोगके शरीरस्थ भागको दग्ध कर देनेका भी विधान है।

परवल और नीलका लेप जालगर्दभ-रोगको विनष्ट करता है। गुञ्जाफल तथा भृंगराजके रससे सिद्ध तेलके द्वारा कण्ठ-विकार, खुजली, अत्यन्त कष्टदायक कुष्ठ और वातरोगोंका विनाश होता है। धतूर या आमकी गुठली, त्रिफला, नील तथा भृंगराज—इन औषधियोंके योगसे सिद्ध कांजीयुक्त लौहचूर्ण प्राणियोंके पकनेवाले श्वेत बालोंको काला करनेमें समर्थ है। क्षीरी (खिरनी) और शार्कपर्ण (लोध्र)-का रस दो प्रस्थ तथा मधुका (मुलेठी) एक पल लेकर उसमें एक कुडव अर्थात् बारह पसर सिद्ध किया गया तेलका नस्य भी बालोंको पकने नहीं देता।

मुखमें रोग होनेपर त्रिफला-चूर्णका गण्डूष अर्थात् कुल्ला करना चाहिये। घरका धुआँ, घृत या तिलादिके तेलका दीपक जलानेसे एकत्र धुएँमें यवक्षार, पाढ़ा, व्योष (सोंठ, पिप्पली तथा काली मिर्च)-के रसको मिलाकर अञ्जन बनानेका विधान है। इस अञ्जनको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रदोष नहीं होता। यदि तेजोद, त्रिफला, लोध्र और चित्ताका चूर्ण मधुके साथ मुँहमें रखा जाय तो कण्ठ, दाँत और मुँहका रोग दूर हो जाता है। पटोल, नीम, जामुन, मालती तथा आमके नवीन पल्लवोंका क्वाथ मुख धोनेकी श्रेष्ठतम औषधि है।

लहसुन, अदरक, सहिजन, भृंगराज, मूली, रुदन्ती (महामांसी)-का गुनगुना रस कर्ण-रोगको दूर करनेका

१-विचर्चिका (एक्जिमा)।

उत्तम उपचार है। कानमें अत्यन्त तीव्र पीड़ा, शब्द और मैल निकलनेपर सैंधा नमकके सहित बस्त अर्थात् बकरेका मूत्र गरम करके उसमें डालना चाहिये। जातिपत्र अर्थात् जावित्रीके रससे सिद्ध तैलपाक पूतिक (दुर्गन्धयुक्त) कानमें डालना चाहिये। सोंठके चूर्णसे सिद्ध गुनगुना सरसोंका तेल कानमें उठनेवाले शूलका विनाशक है।

पञ्चमूलसिद्ध दूध, चित्रा और हरीतकी, घृत तथा गुड़ एवं षडङ्ग जूसका योग पीनस-रोगकी शान्तिके लिये है। इस रोगमें इन योगोंमेंसे किसी एक योगसिद्ध औषधिका प्रयोग करना चाहिये।

नेत्र-दोष, कुक्षि-विकार, प्रतिश्याय (जुकाम या सर्दी), व्रण तथा ज्वर होनेपर पाँच दिनोंतक लंघन करनेका विधान है। ऐसा करनेसे ये पाँचों रोग शान्त हो जाते हैं। आँवलेका रस नेत्रमें डालनेसे विकार दूर हो जाता है अथवा मधु और सैंधा नमकके सहित शोभाञ्जन नामक सहिजन तथा दारुहल्दीका अञ्जन लगानेसे भी लाभ होता है। हल्दी, देवदारु, सैंधा नमक, हरीतकी तथा गैरिक[1] पीसकर उसका लेप नेत्रोंके बाह्य भागमें लगाना चाहिये। यह नेत्ररोग-विनाशक है। घृतमें भुनी हरीतकी, त्रिफला दूधके साथ लेप करनेके पश्चात् गुनगुनी एवं पिसी सोंठ, नीमकी पत्ती, थोड़ा-सा सैंधा नमक, दूध और त्रिफलाचूर्णको नेत्रोंपर लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे नेत्रोंकी सूजन, खुजलाहट और पीड़ा समाप्त हो जाती है। हरीतकी, बहेड़ा तथा गुडूची नामक औषधियोंको क्रमशः—मात्रामें एक भाग, दो भाग और चार भाग लेकर मधु एवं घृतके साथ सिद्ध किया गया लेह या क्वाथ सभी प्रकारके नेत्र-रोगोंका विनाशक है।

चन्दन, त्रिफला, सुपारी तथा पलाशकी जड़को जलमें पीसकर बनायी गयी बत्तीका प्रयोग आँखोंके समस्त तिमिर-रोगोंको दूर करता है। दहीके साथ अत्यधिक घिसी गयी काली मिर्चका अञ्जन रतौंधी नामक रोगको दूर करता है। त्रिफलाके क्वाथ एवं कल्कसे सिद्ध घृतपाकको गुनगुने दूधके साथ सायंकाल पान करनेसे अन्धदर्शन तथा रतौंधीका विकार यथाशीघ्र विनष्ट हो जाता है। पिप्पली, त्रिफला, द्राक्षा, लौहचूर्ण और सैंधा नमकको भृंगराजके रसमें घिसकर बनाया गया घुटिकाञ्जन अन्धता, त्रिदोषजन्य तिमिरता, धुँधलाहट तथा अन्य सभी प्रकारके नेत्र-सम्बन्धित रोगोंका विनाशक है।

त्रिकटु, त्रिफला, सैंधा नमक, मैनसिल, रुचक[2], शंखनाभि (कचूर), जातीपुष्प (मालती), नीम, रसाञ्जन (रसौत) और भृंगराजको घृत, मधु तथा दुग्धमें पीसकर बनायी गयी वटी समस्त नेत्रविकारोंकी विनाशकारिणी औषधि है।

एरण्डकी जड़को जलाकर कांजीके साथ सिरमें लेप करने अथवा मुचुकुन्द-पुष्पके प्रयोगसे शीघ्र ही सिर-पीड़ा दूर हो जाती है।

शतमूली[3], एरण्डमूल, चक्रा (कुटकी) तथा व्याघ्री (कण्टकारी)-को एक-एक पल एकत्र करके उनसे सिद्ध क्वाथ, तैलपाकका नस्य वात और श्लेष्मजन्य तिमिर तथा ऊर्ध्वरोगका विनाश करता है अथवा नमक, गुड़ और सोंठ या पिप्पली एवं सैंधा नमकका योग भुजस्तम्भ आदि सभी शरीरके ऊर्ध्वभागवाले रोगोंमें लाभकारी होता है। सूर्यावर्त-रोगमें नस्यकर्मका उपचार प्रशस्त माना गया है। ऐसेमें घृत एवं सैंधा नमकसे युक्त दशमूलके क्वाथका नस्य लेना चाहिये। यह अर्द्धभेद, सूर्यावर्त तथा शिरोव्याधिके दुःखोंको दूर करता है।

वातरक्त-दोषसे पीड़ित स्त्रीको दही एवं मधुके साथ काला नमक, जीरा, महुआ और नीलकमल पीसकर पान करना चाहिये। पित्त-विकार होनेपर अड़ूसा अथवा गुडूचीका रस लाभकारी है। मधुके साथ जलमें पकाये गये आँवलेके बीजोंका कल्क, अड़ूसा तथा श्वेत दूर्वाका रस अथवा आँवलेके साथ मधु और कपासकी जड़का रस चावलके धोवनमें पीनेसे पाण्डु एवं प्रदर-रोग शान्त हो जाता है।

तण्डुलीयक मूल अर्थात् चौराई तथा रसौतको पीसकर मधु एवं चावलके धोवनमें पीनेसे सभी प्रकारका रक्तप्रदर-रोग विनष्ट हो जाता है। चावलके जलके साथ पान किया गया कुशका मूल भी रक्तप्रदर-रोगका विनाशक है। (अध्याय १७१)

१-गैरिक (गेरु)। २-रुचक (बिजौरा नीबू)। ३-शतमूली (शतावरी)

स्त्रियोंके रोगोंकी चिकित्सा, ग्रहदोषके उपाय, ऋतुचर्या तथा पथ्यकारक सर्वौषधियाँ

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं स्त्रियोंके रोगोंकी चिकित्साका वर्णन करूँगा। उसे आप सुनें। स्त्रियोंके योनिभागमें होनेवाले रोगोंको दूर करनेके लिये बहुत-से कर्म हैं, किंतु जो कर्म वातदोष-नाशक हैं, उन्हींको प्रशस्त माना जाता है।

वच, उपकुञ्चिका (काला जीरा), जातीफल (जायफल), कृष्णा (काली तुलसी), वासक (अड़ूसा), सैन्धव (सेंधा नमक), अजमोदा (अजवाइन), यवक्षार, चित्रक तथा शर्कराको पीसकर सभीको मिश्रित करके घीमें भूनकर जल या दूधके साथ सेवन किया जाय तो स्त्रियोंकी योनिके पार्श्वभागमें होनेवाला शूल, हृदयरोग, गुल्म और अर्श-विकार दूर हो जाता है। बेरकी पत्तियोंको पीसकर योनिभागमें लेप करनेसे उसकी वेदना शान्त हो जाती है। लोध्र और तुम्बीफलका प्रलेप योनिको दृढ़ एवं संकुचित बनाता है।

पीपल, वट, पाकड़, गूलर और आम—इन पाँचोंके पल्लव और मधुयष्टि तथा मालतीपुष्पका अग्नि या सूर्यकी गर्मीमें सिद्ध घृतपाक रक्तप्रदर एवं योनि-दुर्गन्धका विनाशक है। कांजीमें जपापुष्प (अड़हुलके फूल), ज्योतिष्मती-दल, मालकँगनीकी पत्ती (दूर्वा) और चित्रकको पीसकर शर्कराके साथ पान करनेसे भी योनिरोग दूर हो जाता है।

आँवला, रसौत तथा हरीतकीका चूर्ण जलके साथ पान करनेपर वह स्त्रीके रजोदोषको दूर करता है। ऋतुकालमें लक्ष्मणा (श्वेत कण्टकारी)-की जड़को दुग्धके साथ पान करने या नस्य लेनेसे स्त्रीको पुत्र उत्पन्न होता है। ढाई सेर दुग्ध और सवा सेर घृतमें सिद्ध अश्वगन्धाका रस सेवन करनेसे भी स्त्रीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। घृतके साथ व्योष (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च) तथा केसरके चूर्णका सेवन करके तो वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती बन जाती है।

कुश, काश, एरण्ड और गोखरूकी जड़को पीसकर उनके ही द्वारा सिद्ध गोदुग्ध एवं शर्कराका पान करनेसे गर्भिणी स्त्रीके उदरभागमें होनेवाला शूल शान्त हो जाता है। पाठा (पाढ़ा), लाङ्गलि (कलियारी), सिंहास्य (कचनार), मयूर (चिचड़ा) और कुटज (गिरिमल्लिका या कुरैया)-को अलग-अलग पीसकर नाभि, पेड़ू तथा योनिभागमें लेप करनेसे स्त्रीको सुखपूर्वक प्रसव होता है। मदार या बकुलकी जड़का लेप प्रसूता स्त्रीके हृदय, मस्तक और वस्ति (पेड़ू)-भागमें होनेवाली पीड़ाका हरण करता है। ऐसी स्थितिमें स्त्रीको दही अथवा गुनगुने जलमें यवक्षारको मिलाकर पीना चाहिये। दशमूलके क्वाथसे सिद्ध घृतपाक भी प्रसूता स्त्रीकी पीड़ाका विनाशक है। दुग्धके साथ साठी चावलका चूर्ण सेवन करनेसे प्रसूता स्त्रीको दूध होने लगता है। विदारी, कन्द, सतावर तथा कपासके बीजोंका योग भी प्रसूताके दुग्धवृद्धिमें सहायक है। स्तनशोधनके लिये प्रसूता स्त्रियोंको मूँगका जूस पीना चाहिये।

कूट, वच, हरीतकी, ब्राह्मी, द्राक्षाफल, मधु और घृतका योग रंग, आयु तथा सौन्दर्यवर्धक होता है। इन सभी औषधियोंका लेह बालकको चटाना चाहिये। स्तनजन्य दूधका अभाव होनेपर बकरी अथवा गायका दुग्ध बालकके लिये उचित होता है। बच्चेकी नाभिमें सूजन आ जानेपर उसको अग्निमें गरम की गयी मिट्टीसे सेंकना चाहिये। वमन, खाँसी और ज्वर होनेपर मुस्त (नागरमोथा) तथा विषा (सोंठ)-के चूर्णको मधु आदिके साथ चाटना या क्वाथ बनाकर पीना चाहिये। नागरमोथा, सोंठ, गूलर, बिल्व और कुटज (कुरैया) नामक औषधियोंका रस अतिसाररोगका विनाश करता है।

व्योष (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च), बिजौरा नीबू तथा मधुके योगसे हिचकी और वमनरोग दूर होते हैं। कुष्ठ (कूट), इन्द्रयव, सरसों, हल्दी तथा दूर्वारससे कुष्ठरोगपर सफलता प्राप्त की जा सकती है।

महामुण्डिनिका (महाश्रावणिका) तथा उदीच्य (ह्रीबेर या चोपचीनी)-के क्वाथसे स्नान करनेपर ग्रहका दोष दूर हो जाता है। ग्रहदोष होनेपर शरीरमें सप्तपर्णी, हल्दी और चन्दनका लेप करना चाहिये। शंख, कमलगट्टा, रुद्राक्ष, वच तथा लौह आदि धारण करनेसे भी ग्रह-दोष दूर होता है।

बालकोंपर ग्रह-दोषका प्रभाव होनेपर निम्न मन्त्रसे उसकी शान्तिका प्रयास करना चाहिये—'ॐ कं टं गं गं

वैनतेयाय नमः', 'ॐ ह्रौं ह्रां ह्रः'—इस मन्त्रसे मार्जन करने तथा बलि प्रदान करनेसे अरिष्ट ग्रह शान्त हो जाता है। बलि प्रदान करते समय निम्न मन्त्रका उच्चारण करे—

'ॐ ह्रीं बालग्रहाद् बलिं गृह्णीत बालं मुञ्चत स्वाहा।'

चावलके धोवनमें शिरीष[1]-वृक्षकी जड़ पीसकर पीनेसे विष-दोष दूर हो जाता है। चावलके ही पानीमें मिलाकर पीसे हुए श्वेत फूलवाले वर्षाभू[2] (पुनर्नवा)-का रस सर्पदंशके विषको दूर कर देता है।

दही, घृत, चौराई, गृह-धूम, हल्दी, मधु तथा सेंधा नमकको पीसकर पीना विषनाशक है। घृत-मिश्रित सिंहोरकी जड़का क्वाथ पीनेसे भी विष-दोष दूर हो जाता है।

जो औषधि वृद्धावस्थाको दूर करनेका सामर्थ्य रखती है, उसको रसायन[3] कहा जाता है। रसायनकी अभिलाषा करनेवाले लोगोंको वर्षा आदि ऋतुओंमें यथाक्रम सेंधा नमक, शर्करा, सोंठ, पिप्पली, मधु तथा गुड़के साथ हरीतकी नामक औषधिका प्रयोग करना चाहिये अर्थात् वर्षाकालमें सेंधा नमक, शरत्कालमें शर्करा, हेमन्तकालमें सोंठ, शिशिरकालमें पिप्पली, वसन्तकालमें मधु तथा ग्रीष्मकालमें गुड़के साथ हरीतकीका सेवन प्राणियोंके लिये रसायनका कार्य करता है।

ज्वरकी समाप्तिपर व्यक्ति एक हरीतकी, दो बहेड़ा, चार आँवला, मधु और घृतका सेवन करके सौ वर्षतक जीवित रहता है। दूध तथा घृतके साथ अश्वगन्धा नामक औषधि तो प्राणियोंके शरीरमें होनेवाले सभी रोगोंका विनाश करती है। मण्डूकपर्णी और विदारीकन्दका रस अमृतके समान है। मनुष्य तिल, आँवले और भृंगराजके सेवनसे शतायु बन जाता है। त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, गुडूची, शतावरी, विडंग और लौहचूर्ण मधुके साथ मिलाकर खाना सभी रोगोंका विनाशक बन जाता है। त्रिफला, पिप्पली, सोंठ, गुडूची, शतावरी, विडंग तथा भृंगराज आदिका सिद्ध रस भी सभी रोगोंको विनष्ट करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होता है। एक भाग शतावरी तथा दस भाग दुग्धसे कल्क बनाकर शर्करा, पिप्पली और मधुसे युक्त घृतपाक अत्यन्त पौष्टिक होता है।

चिकित्सामें प्रतिमर्श, अवपीड, नस्य, प्रवपन तथा शिरोविरेचन—ये पाँच कर्म कहे जाते हैं। क्रमशः माघ आदि प्रत्येक दो मासकी एक ऋतु होती है। इस प्रकार एक वर्षमें छः ऋतुएँ[5] होती हैं। इन सभी ऋतुओंमें अग्निसेवन, मधु, दूध और दहीके विवर्त्त आदिका सेवन करना चाहिये। मनुष्यको शिशिर-ऋतुमें स्त्रीके साथ रहना चाहिये। वसन्त-ऋतुमें दिनमें सोना उचित नहीं है। वर्षा-ऋतुमें दिवा-निद्रा तथा शरत्कालमें चन्द्रकिरणोंका सेवन मनुष्यके लिये त्याज्य है।

साठी चावल, मूँगकी दाल, वर्षाका जल, क्वाथ और दूध पथ्य हैं। नीम, अलसी, कुसुम्भ[6], सहिजन, सरसों, ज्योतिष्मती तथा मूलीका तेल भी प्राणीके लिये पथ्य माना गया है। ये कृमि, कुष्ठ, प्रमेह, वात, श्लेष्मज दोष और सिरमें होनेवाली पीड़ाका नाश करते हैं।

अनार, आँवला, बेर, करौंदा, चिरौंजी, नीबू, नारंगी, आमड़ा और कपित्थ नामक फल भी पथ्य हैं। किंतु ये पित्तवर्धक और अग्निविनाशक हैं तथा इनसे कफजनित दोष होता है। जल, नागरमोथा, इक्षुरस और कुटज मल-मूत्रके अवरोधको दूर करनेमें समर्थ होते हैं।

धामार्गव अर्थात् घिया तरोईको सदैव वमनके रोगमें सेवन करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमें वमन करनेके लिये वचके साथ खीर और इन्द्रयवका सेवन लाभप्रद है। पित्तदोष होनेसे प्राणियोंका अन्नादिक कोष्ठ सबल नहीं रह पाता। उनमें एक प्रकारकी मधुरता रहती है। वात और

१-शिरीषोविषघ्नानाम् (चरक सं०)।

२-वर्षाभू या पुनर्नवाका तात्पर्य धमरवरुआ नामकी प्रसिद्ध औषधिसे है। इसका फूल श्वेत होता है। इसकी पत्तियोंकी आकृति पुनर्नवाके समान होती है। इन दोनोंकी पत्तियोंमें अन्तर इतना है कि पुनर्नवाकी पत्तियाँ छोटी और धमरवरुआकी पत्तियाँ बड़ी होती हैं। वर्षाकालमें पुनर्नवाके समान ही यह औषधि भी अधिक पायी जाती है। मूलतः तो यह पुनर्नवाका एक उपभेद ही है।

३-लाभो पायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्। (सु० सं० सू० अ० १)

४-च० चि० १। ५-शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमन्त। ६-कुसुम्भ (बर्रे)।

कफदोषका आश्रय मिलनेसे उसमें दोष अधिक ही आ जाते हैं। वात, पित्त और कफ—इन त्रिदोषोंकी समान स्थिति रहनेपर उन कोष्ठोंकी क्षमता मध्यम रह जाती है। (उस स्थितिमें न तो उनकी कार्य-क्षमतामें शिथिलता रहती है और न उनमें दोषोंकी क्षमताकी अभिवृद्धि। शरीरके अंदर स्थित कोष्ठका कार्य चलता रहता है।) पित्तदोष होनेपर निसोतका सेवन करके विरेचन करना चाहिये। सेंधा नमक, सोंठ, निसोत, हरीतकी तथा विडंगको गोमूत्रसे सिद्धकर शर्करा और मधुके साथ सेवन करनेपर विरेचनमें अधिक लाभ होता है। वातदोषके प्रबल होनेपर उत्पन्न हुए दोषोंमें रोगीको एक भाग एरण्ड तेल और दो भाग त्रिफलाका क्वाथ पान कराकर वमन कराना चाहिये।

छः अंगुल, आठ अंगुल या बारह अंगुल लम्बी बाँस आदिकी नेत्रि अर्थात् पिचकारी बनाकर और उस पिचकारीमें कर्कन्धू (बेर)-फलके समान छिद्र करके रोगीको उत्तान सुलाकर वस्ति-क्रिया करनी चाहिये। निरुहदान या निरुहवस्तिके प्रयोगमें भी यही विधि कही गयी है। इन दोनों विधियोंमें औषधियोंकी मात्रा आधा पल, तीन पल तथा छः पल होनी चाहिये। इसी मात्राको क्रमशः लघु, मध्यम तथा उत्तम कहा जाता है। इस वस्ति-विधिमें शतावरी, गुडूची, भृंगराज तथा सिन्धुवार आदिके रसमें भावित हरीतकी एक भाग, बहेड़ा दो भाग और आँवला चार भाग होना चाहिये। ये औषधियाँ उदररोगकी पीड़ाको समाप्त कर देती हैं। (अध्याय १७२)

मधुर, अम्ल और तिक्त आदि द्रव्योंका वर्ग तथा उनका औषधीय उपयोग

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं रोग-विनाशक मधुर आदि गुणोंसे युक्त द्रव्योंका वर्णन करूँगा।

साठी चावल, गेहूँ, दूध, घृत, रस, मधु, सिंघाड़ेकी गूदी, जौ, कशेरु, फूटनेवाली ककड़ी, गोखरू, गम्भारी, कमलगट्टा, द्राक्षाफल, खजूर, बला, नारियल, इक्षु, सतावर, विदारीकन्द, चिरौंजी, मुलेठी, तालफल और कुम्हड़ा—यह मधुर द्रव्योंका मुख्य वर्ग है।

इन द्रव्योंका यह वर्ग मूर्च्छा और प्रदाह नामक रोगोंका विनाशक तथा जिह्वादि सभी छः इन्द्रियोंका आह्लादक है। इस वर्गके एक भी पदार्थका अत्यधिक सेवन करनेसे प्राणीके शरीरमें कृमि तथा कफजनित रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जब श्वास, खाँसी, मुखव्याधि, माधुर्य-दोष, स्वरघात, अर्बुद, गलगण्ड और श्लीपदका रोग हो तो गुड़से बने लेपादिका प्रयोग करना चाहिये।

अनार, आँवला, आम, कपित्थ, करौंद, बिजौरा नीबू, आमड़ा, बेर, इमली, दही, मट्ठा, कांजी, बड़हल, अम्लवेत, अम्ल, सेंधा नमक, सोंठ तथा जीराका वर्ग जठराग्निका उद्दीपक और पाचक होता है। यह वर्ग स्वेदकारक, वातवर्धक, कामोद्दीपक, विदाहकारक और अनुलोमी है। इस वर्गमें संनिहित रहनेवाले अम्ल-पदार्थका अत्यधिक सेवन करनेसे दाँत सिहरने लगते हैं, शरीरमें शिथिलता आ जाती है तथा कण्ठ, मुख और हृदयमें दाह होता है।

सैंधव, सुवर्चल, यवक्षार तथा छब्बी आदि लवण हैं। लवणकी अधिकतासे यह द्रव्य-वर्ग लावण कहलाता है। यह शरीर-शोधक, पाचक, स्वेदकारक, हाथ-पैरमें बेवाई तथा खुजली आदिका विकारोत्पादक है। इनमेंसे एक नमकका सेवन भी मल-मूत्रादिक मार्गोंमें अवरोध तथा अस्थि-मज्जादिकी शक्तियोंको कोमल कर देता है। लवणजन्य रस शरीरमें खुजलाहट, कोष्ठकोंमें शोथ तथा विवर्णता- जनक है। उसके दुष्प्रभावसे रक्तवातज, पित्तरक्तज, कामोद्दीपन और इन्द्रियजनित पीड़ाके उपद्रवकी उत्पत्ति भी होती है।

व्योष (सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च), सहिजन, मूली, देवदारु, कुष्ठ (कूट), लहसुन, बकुची, नागरमोथा, गुग्गुल, लांगुली आदि औषधियोंका वर्ग कड़ुआ, अग्निदीपक, शरीर-शोधक, कुष्ठ, खुजली, कफ, स्थूलता, आलस्य तथा कृमिदोषका विनाशक एवं शुक्र और मेदका विरोधी है। इस वर्गकी एक भी औषधिका अधिक सेवन करनेसे वह भ्रम एवं विदाह उत्पन्न करता है।

कृतमाल (केवड़ा—सोमालिका), करीर (वंशांकुर), हल्दी, इन्द्रयव, स्वादुकण्टक (भुईंकुम्हड़ा), वेतलता, बृहतीद्वय, शंखिनी (चोरपुष्पी), गुडूची, द्रवन्ती (मूसाकर्णि), त्रिवृत् (निशोत), मण्डूकपर्णी (मंजीठ), कारवेल्ल (करैला), वार्ताकु (बैगन), करवीर (कनेर), वास (अडूसा), रोहिणी

(कंजा), शंखचूर्ण (शंखपुष्पी), कर्कोट (खेखसी), जयन्तिका (वैजयन्ती), जाती (चमेली), वारुणक (वरुण), निम्ब (नीम), ज्योतिष्मती (मालकँगनी) और पुनर्नवा नामक ये सभी औषधियाँ तिक्त रसवाली हैं। इनका रस छेदक, रोचक तथा जठराग्निदीपक है। यह शरीरका अन्तर एवं बाह्य-शोधन करती हैं। इस रसके सेवनसे ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा तथा कण्ठके रोग विनष्ट हो जाते हैं। इस औषधिवर्गमेंसे किसी एक औषधिका अधिक सेवन करनेपर प्राणीमें विष्ठा, मूत्र, स्वेद तथा शरीर-शुष्कताके विकार जन्म लेते हैं। यथोचित सेवन न करनेसे यह रस हनुस्तम्भ, आक्षेपक, पीड़ा, मस्तिष्क-शूल और व्रण आदिके भी उपद्रवोंका कारण बन जाता है।

त्रिफला, सल्लकी (चीड़), जामुन, आमड़ा, बरगद, तिन्दुक (तेंदू), बकुल (मौलसिरी), शाल, पालङ्की (पालकी), मुद्ग (मूँग) और चिल्लक (बथुआ)-का रस कषाय, ग्राही, रोपी, स्तम्भन, स्वेदन तथा शरीर-शोषक होता है। इनमेंसे किसी एकका अत्यधिक सेवन करनेपर वह हृदयमें पीड़ा, मुखशोष-ज्वर, आध्मान तथा स्तम्भादिक रोगोंका कारण भी हो जाता है।

हल्दी, कुष्ठ, सेंधा नमक, मेषशृंगि (मेढ़ासिंगी), बला, अतिबला, कच्छुरा (शूकशिम्बी), सल्लकी (चीड़), पाठा (पाढ़ा), पुनर्नवा, शतावरी, अग्निमन्थ (गनियारी), ब्रह्मदण्डी, श्वदंष्ट्रा (गोखरू), एरण्ड, यव (जौ), कोल (बेर) और कुलत्थ (कुलथी) आदि विशेष औषधियोंका पृथक्-पृथक् रस एवं दशमूलका क्वाथ पान करनेवाला मनुष्य अपने शरीरमें उत्पन्न होनेवाले वातज एवं पित्तज विकारोंको विनष्ट करनेमें सफल रहता है।

शतावरी, विदारी, बालक (मोथा), उशीर (खस), चन्दन, दूर्वा, वट, पिप्पली, बेर, सल्लकी, केला, नीलकमल, लालकमल, गूलर, पटोल (परवल), हल्दी, गुड़ तथा कुष्ठ—इन औषधियोंका वर्ग कफ-विनाशक है।

शतपुष्पी (सोआ), जाती (चमेली), व्योष (सोंठ, पिप्पली, काली मिर्च), आरग्वध (अमलतास), लाङ्गली (कलियारी) और घृत-तेलादिसे सिद्ध होनेवाले अन्य स्नेहपाकोंमें प्रशस्त माना गया है। बुद्धि, स्मृति, मेद तथा अग्निवृद्धिके अभिलाषी जनोंके लिये घृत लाभप्रद है। पैत्तिक विकार होनेपर मात्र घृत और वात-विकार होनेपर उसको सेंधादि नमकके साथ सेवन करना चाहिये। कफकी अत्यधिक विकृति होनेपर रोगीको पिप्पली, सोंठ, काली मिर्च और यवक्षार मिलाकर दिया गया घृत श्रेयस्कर होता है। यह घृत ग्रन्थिदोष, नाड़ी-विकार, कृमि, श्लेष्म, मेदा तथा वात-रोगसे युक्त रोगियोंको भी देना चाहिये।

तैल-पदार्थोंका सेवन शरीरको हल्का और कठोर बनानेके लिये करना चाहिये। यह कठोर कोष्ठकोंवाले प्राणियोंके लिये लाभकारी होता है तथा वायु, धूप, जल, भार, मैथुन और व्यायामके कारण क्षीण हुई धातुओंसे युक्त जनोंके लिये उचित है। शरीरकी रूक्षता, कष्ट, वृद्धावस्था, जठराग्निदीपन तथा वातदोषसे घिरे हुए प्राणियोंको स्नेहयुक्त औषधि एवं क्वाथोंका प्रयोग करना चाहिये।

इसके बाद जब प्राणीके सिरमें रोग हो गया हो तो चिकित्सा-शास्त्रके नियमानुसार सिरकी अपेक्षित शिराओंके समूहको गर्म करके प्राणीको धीरे-धीरे सिरका मर्दन करना चाहिये। स्नेह, क्वाथ और वटिका आदिके रूपमें प्रयुक्त औषधियोंकी उत्तम, मध्यम तथा अधम—ये तीन मात्राएँ मानी गयी हैं, जिनमें उत्तम मात्रा एक पल अर्थात् आठ तोला (९६ ग्राम), मध्यम मात्रा तीन अक्ष अर्थात् छः तोला (७२ ग्राम) और अधम मात्रा अर्ध पल अर्थात् चार तोला (४८ ग्राम) होती है। घृतपाक-सेवनमें गुनगुना तथा तैलपाक-सेवनमें शीतल जलका प्रयोग होना चाहिये। स्नेह (सहरई) पित्तविकार तथा तृष्णाजन्य दोषमें मनुष्यको गुनगुना जल पीना चाहिये।

शरीरमें जठराग्निके प्रबल होनेपर प्राणीको वातानुलोम, स्निग्धभाव होनेपर जठराग्निका दीपन, रूक्षभाववाली स्थितिके होनेपर स्नेहन तथा अत्यधिक स्निग्धताके होनेपर रूक्षता उत्पन्न करनेका प्रयास करना चाहिये। साँवाँ, कोदो आदि रूक्ष अन्न, तक्र, तिलकुट तथा सत्तूके अनपेक्षित प्रयोगसे वात तथा कफ-रोगमें अथवा वात-रोगमें स्वेदन-क्रिया करनी चाहिये। किंतु अत्यन्त स्थूल, रूक्ष, दुर्बल और मूर्च्छित व्यक्तिमें यह स्वेदन-क्रिया नहीं करनी चाहिये।

(अध्याय १७३)

ब्राह्मीघृत आदि स्नेहपाकोंकी निर्माण-विधि तथा विविध रोगोंमें उनका उपचार

धन्वन्तरिजीने कहा—हे सुश्रुत! अब मैं रोगोंको दूर करनेवाले घृत और तैलादि पदार्थोंके विषयमें बताऊँगा, उसे आप सुनें।

शंखपुष्पी, वच, सोमा, ब्राह्मी, ब्रह्मसुवर्चला, अभया (हरीतकी), गुडूची (गिलोय), अटरूषक (अडूसा) तथा वागुजी (वकुची) नामक इन औषधियोंके रसको एक-एक अक्ष अर्थात् दो-दो तोला लेकर उनसे एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर घृतका पाक सिद्ध करना चाहिये। उसमें एक प्रस्थ कण्टकारीका रस, एक ही प्रस्थ दूधका मिश्रण भी करना चाहिये। इस घृतपाकका नाम ब्राह्मीघृत है। यह स्मरण और मेधा-शक्तिका अभिवर्धक होता है।

त्रिफला, चित्रक, बला, निर्गुण्डी (सिन्धुवार), नीम, वासक (अडूसा), पुनर्नवा, गुडूची, बृहती और शतावरी नामक इन औषधियोंके रससे सिद्ध घृतपाक सभी रोगोंका विनाशक है।

बलाके रससे बने हुए क्वाथमें आधा आढक अर्थात् दो सेर तिलका तेल पकाना चाहिये। इस क्वाथपाकके साथ मुलेठी, मजीठ, चन्दन, नीलकमल, लालकमल, छोटी इलायची, पिप्पली, कुष्ठ, दारचीनी, बड़ी एला (कपित्थकी छाल), अगरु, केसर, अश्वगन्धा तथा जीवन्तीका कल्क और एक आढक अर्थात् चार सेर दूध मिलाना चाहिये। इस पाकको अग्निकी धीमी आँचमें सिद्ध करके एक रजत-पात्रमें रखना चाहिये। यह तैलपाक समस्त वात तथा धातुरोगोंका नाशक है। इस तैलपाकके सेवनसे कफजन्य क्षयरोग भी विनष्ट हो जाता है। इसका नाम राजवल्लभ है।

एक प्रस्थ शतावरीका रस, एक प्रस्थ दूध, एक-एक कर्ष शतपुष्पी, देवदारु, जटामांसी, शिलाजीत, बला, चन्दन, तगर, कुष्ठ, मैनसिल और मालकँगनी नामक औषधियोंका रस लेकर एक प्रस्थ घृतको अग्निपर सिद्ध करना चाहिये। इस घृतपाकके प्रयोगसे प्राणियोंका लँगड़ापन, बौनापन, लुंजता, बधिरता, व्यंगदोष और कुब्जरोग विनष्ट हो जाता है। वायुदोषके कारण जिनका शरीर दुर्बल हो गया है, जो मैथुनमें अशक्त हैं, वृद्धावस्थाके कारण जो जर्जर शरीरवाले हो गये हैं, आध्मान नामक रोगके कुप्रभावसे जिनके मुख शुष्क हो गये हैं, उनके उन सभी विकारोंका यह घृत-पदार्थ विनाशक है। जिन प्राणियोंके चर्म, शिरा और स्नायु-तन्त्रिकाओंमें विकृत वायु-समूह प्रविष्ट होकर रोगका रूप धारण कर चुका है, वह सब इस सिद्ध तैलके सेवनसे नष्ट हो जाता है। इस तेलका नाम नारायणतेल है। इस रोगविनाशक तैलकी सिद्धिका विधान स्वयं भगवान् विष्णुने बताया था, इसीलिये इस सिद्ध तेलका नाम उन्हींके नामपर पड़ा है। इन्हीं औषधियोंसे पृथक्-पृथक् अथवा मिश्रण-रूपमें घृत एवं तैलपाक बनाना चाहिये।

शतावरी, गुडूची, चित्रक, बिजौरा नीबूका रस अथवा कण्टकारीके रसादिसे समन्वित निर्गुण्डीका रस या पुनर्नवा और चमेली अथवा त्रिफलाके साथ अडूसा या ब्राह्मी, एरण्ड, भृंगराज, कुष्ठ, मूसली, दशमूल और खदिरकी घिसकर बनायी गयी वटी, वटिका, मोदक या चूर्ण सभी रोगोंको दूर करनेवाला है। घृत, मधु, जल, शर्करा, गुड़, नमक तथा सोंठ, काली मिर्च अथवा पिप्पलीके साथ सेवन करनेसे सभी रोगोंमें यथोचित लाभ होता है। इन औषधियोंका योग सर्व-रोगविनाशक है।

चित्रक, मन्दार और निसोत अथवा अजवाइन तथा कनेर या सुधा (गुडूची), बाला (चमेली), गणिका (गनियारी), सप्तपर्णी (छितवन), सुवर्चिका (पित्तपापड़ा) और ज्योतिष्मती (मालकँगनी) नामकी औषधियोंको एकत्र करके विद्वान्‌को उनका तैल पाक सिद्ध करना चाहिये। इस योगसे सिद्ध तेलका प्रयोग भगंदर-रोगमें करना चाहिये। शोधन, रोपण तथा सर्ववर्णकारक चित्रकादिक जो महातेल हैं, वे सभी प्रकारके रोगोंका निवारण करते हैं।

अजमोदा, सिन्दूर, हरताल, हल्दी, दारुहल्दी, यवक्षार, छब्बी, समुद्रफेन, अदरक, सरलद्रव, इन्द्रायण, अपामार्ग, केला तथा तिन्दुकको समान भागमें लेकर सरसोंका तेल बकरीके मूत्र तथा गोदुग्धको मिलाकर मन्द-मन्द अग्निकी आँचपर पाक करना चाहिये। इस सिद्ध तैल पाकका नाम अजमोदादि-तेल है। यह गण्डमाला नामक रोगको दूर करता है। विद्वान् व्यक्तिको सबसे पहले इस गण्डमाला नामक रोगमें होनेवाली फुंसियोंको पकाना चाहिये। तदनन्तर उनका शोधन करके इसी अजमोदादि तेलसे घावोंको भरते हुए उसमें कोमलता लानेका प्रयास करे। (अध्याय १७४)

ज्वर-चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे शंकर! सभी ज्वरोंमें सबसे पहला कार्य लंघन है। उसके बाद क्वाथ, उदकपान तथा वातशून्य स्थानका सेवन करना चाहिये।

हे ईश्वर! अग्निसे तथा स्वेदनकी क्रियाओंको करनेसे सभी ज्वर विनष्ट हो जाते हैं। गुडूची और मोथेका क्वाथ वातज्वर-विनाशक है। दुरालभा[1] अर्थात् धमासा नामक औषधिके घृतका पान करनेसे पित्त-ज्वर दूर होता है। सोंठ, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, बालक (ह्रीवेर) खस और चन्दनके क्वाथसे सिद्ध, पित्त-ज्वरका विनाश करता है। दुरालभा तथा सोंठसे सिद्ध घृत-मिश्रित क्वाथ कफ-ज्वरका नाशक है। बालक, सोंठ और पित्तपापड़ासे सभी ज्वर विनष्ट हो जाते हैं। चिरायता, एरण्ड, गुडूची, सोंठ, नागरमोथाके क्वाथसे पित्त-ज्वर दूर होता है। ह्रीवेर, खस, पाठा, कण्टकारी और नागरमोथाका क्वाथ ज्वरका विनाश करता है। देवदारुकी छालका क्वाथ भी लाभदायक है।

हे शंकर! मधुसहित धनिया, नीम, नागरमोथा, परवलकी पत्ती, गुडूची और त्रिफलाका क्वाथ समस्त ज्वरोंका विनाशक है। इसके सेवनसे रोगीकी क्षुधा बढ़ने लगती है एवं वायु-विकार दूर हो जाता है।

हरीतकी, पिप्पली, आँवला, चित्रक, धनिया, खस तथा पित्तपापड़ाका चूर्ण और क्वाथ दोनों ज्वरनाशक हैं। मधुके साथ आँवला, गुडूची तथा चन्दनका सेवन सभी ज्वर-रोगोंको दूर करनेवाला है।

अब आप सन्निपातज ज्वरके विनाशक औषधियोंको सुनें।

हल्दी, नीम, त्रिफला, नागरमोथा, देवदारु, अदरक, चन्दन, परवलकी पत्तीका क्वाथ पीनेसे त्रिदोषजन्य अर्थात् संनिपातज ज्वर दूर हो जाता है।

कण्टकारी, सोंठ, गुडूची, कमल तथा नागबला नामक औषधियोंके योगसे बने चूर्णका सेवन करके रोगी श्वास और खाँसी आदिसे विमुक्त हो जाता है। कफ-वातज ज्वरसे ग्रसित रोगीको प्यास लगनेपर गर्म जल देना चाहिये। सोंठ, पित्तपापड़ा, खस, नागरमोथा तथा चन्दनसे सिद्ध क्वाथ शीतल जलके साथ देना चाहिये। यह तृष्णा, वमन, (पित्त) ज्वर और दाहसे ग्रस्त रोगीके लिये हितकारी है। बिल्व आदि पञ्चमूलका क्वाथ वातज ज्वरमें लाभ करता है। पिप्पलीमूल, गुडूची और सोंठका योग पाचक है। वात-ज्वर होनेपर इसका क्वाथ देना चाहिये। यह परम शान्ति देनेवाला है। मधुके सहित पित्तपापड़ा एवं नीमका क्वाथ पित्तज ज्वरका विनाश करता है।

समुचित उपचार करनेपर भी यदि रोगीकी चेतना नहीं लौटती तो उस रोगीके दोनों पैरके तलुओंमें अथवा मस्तक-भागमें लोहेके गर्म शलाकासे दग्ध (गर्म) करना चाहिये। चिरायता, पाढ़ा, पित्तपापड़ा, विशाला (इन्द्रायण), त्रिफला तथा निसोतका क्वाथ दूधके साथ ग्राह्य है। यह मलावरोधका भेदन करनेवाला एवं समस्त ज्वरोंका विनाशक है। (अध्याय १७५)

पलितकेश तथा कर्णशूलके उपचार

श्रीभगवान्‌ने कहा—हाथी-दाँतका भस्म एवं बकरीके दूधमें मिश्रित रसाञ्जन (रसौत)-का लेप सिरपर करनेसे खल्वाट अर्थात् गंजे प्राणीके सिरमें सात रात्रियोंके बीतते-ही-बीतते सुन्दर बाल उग आते हैं। चार भाग भृंगराजरससे सिद्ध गुंजाफलके चूर्णयुक्त तिलका तैल केशराशिका अभिवृद्धिकारक होता है।

इलायची, जटामांसी, मुरा (शल्लकी), शिव (काला धतूरा), गुंजा (घुँघची)-को समभागमें लेकर उनसे बनाया गया लेप सिरमें लगानेसे इन्द्रलुप्त नामक रोग दूर हो जाता है। आमकी गुठलियोंके चूर्णका लेप करनेसे केश सूक्ष्म अर्थात् पतले हो जाते हैं। करंज, आँवला, इलायची और लाहका लेप बालोंकी लालिमाका विनाशक है।

---

[1] १-च०सू० २५, भा०प्र०, च०द०

आमके गुठलीकी मज्जा तथा आँवलाके चूर्णका सिरमें लेप करनेसे केशराशि जड़से मजबूत, सघन, लम्बी, चिकनी तथा टूट-टूटकर न झरनेवाली हो जाती है।

विडंग और गन्धक अथवा चार गुने गोमूत्रसे युक्त मैनसिलके चूर्णसे सिद्ध तैलपाक उत्तम माना गया है। सिरमें इन तेलोंका लेप करनेसे जूँ और लीख समाप्त हो जाते हैं।

हे वृषभध्वज! शंखभस्म और सीसक घिसकर सिरमें लगानेसे केश चिकने और अत्यन्त काले हो जाते हैं। भृंगराज, लौहचूर्ण, त्रिफला, बिजौरा नीबू, नीली, कनेर और गुड़को समान भागमें लेकर अग्निपर सिद्ध किया गया पाक एक महौषधि है। इसके लेपसे पक रहे बालोंको पुन: काला किया जा सकता है। आमकी गुठलियोंकी गूदी, त्रिफला, नीली, भृंगराज, शोधित पुराना लौहचूर्ण तथा कांजीका सिद्ध योग भी बालोंको काला करता है।

चक्रमर्दक (चकवड़)-का बीज एवं कुष्ठ एरण्डमूल तथा अत्यन्त खट्टे कांजीके साथ पीसकर लेप करनेसे मस्तकका रोग दूर हो जाता है।

सेंधा नमक, वच, हींग, कुष्ठ, नागकेशर, शतपुष्पा (सौंफ) तथा देवदारु नामक औषधियोंसे शोधित चार गुने गायके गोबरसे निकाले गये रससे युक्त तिलके तेलको एक कण मात्र भी कानमें डालकर अत्यन्त प्रबल कर्णशूलको विनष्ट किया जा सकता है। हे शिव! भेंड़का मूत्र और सेंधा नमक कानमें डालनेसे पूतिका-दोष अर्थात् बहनेवाला दुर्गन्धपूर्ण पानी और कृमिस्रावादिका विकार विनष्ट हो जाता है। मालती नामक पुष्पकी पत्तियोंका रस या गोमूत्र कानोंमें डालनेसे उनमेंसे बहनेवाला मवाद नष्ट हो जाता है।

कुष्ठ, उड़द, काली मिर्च, तगर, मधु, पिप्पली, अपामार्ग, अश्वगन्धा, बृहती, श्वेत सरसों, यव, तिल और सेंधा नमकका उबटन कल्याणकारी होता है। भल्लातक, बृहती एवं अनारका छिलका तथा कटु तैलके लेपसे या इस उबटनके प्रयोगसे लिंग, बाहु, स्तन और श्रवणशक्तिकी वृद्धि होती है। (अध्याय १७६)

नेत्र, नाक, मुख, गला, अनिद्रा तथा पादरोग और शस्त्राघातादिजनित रोगोंकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे शंकर! मधुके सहित शोभनक वृक्षकी पत्तियोंका रस आँखोंमें डालनेसे निश्चित ही नेत्रका रोग नष्ट हो जाता है। तिल और चमेलीके अस्सी-अस्सी फूल, नीम, आँवला, सोंठ, पीपल तथा चौलाईके शाकको चावलके जलमें पीसकर उनकी वटी बनानी चाहिये। तदनन्तर छायामें सुखाकर मधुके साथ उसका नेत्रोंमें अंजन करना लाभकारी है। ऐसा करनेसे तिमिरादिक रोग नष्ट हो जाते हैं। बहेड़ेके गुठलीकी गूदी, शंखनाभि, मैनसिल, नीमकी पत्ती एवं काली मिर्चको बकरीके मूत्रमें घिसकर अंजन बनाना चाहिये। इस प्रकारका सिद्ध अंजन नेत्रोंमें होनेवाले पुष्प-दोष अर्थात् फुल्ला, रतौंधी, तिमिर-विकार तथा पटलरोगको नष्ट कर देता है।

शंखभस्म चार भाग, मैनसिल दो भाग एवं सेंधा नमक एक भाग जलमें पीसकर बनायी और छायामें सुखायी गयी वटीका नेत्रोंमें अंजन करनेसे तिमिर, पटल तथा सूजन नष्ट हो जाता है। यह नेत्ररोगोंकी महौषधि है। त्रिकटु, त्रिफला, कंजाके फल, सेंधा नमक और दोनों रजनी, हल्दी, दारुहल्दीको भृंगराजके रसमें पीसकर उसका नेत्रोंमें अंजन देनेसे तिमिरादिक सभी रोग दूर हो जाते हैं। जंगली अडूसाकी जड़को कांजीमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रशूल नष्ट होता है। तक्र अर्थात् मट्ठेके साथ बेरकी जड़को पीसकर पीनेसे भी नेत्रोंकी पीड़ा दूर होती है। सेंधा नमक, कड़ुआ तेल, अपामार्गकी जड़, दूध और कांजीको ताम्रपात्रमें घिसकर उसका नेत्रोंमें अंजन करनेसे पिंजट अर्थात् कीचड़ निकलना बंद हो जाता है।

बिल्व और नील-वृक्षकी जड़ पीसकर बनाये गये अंजनको नेत्रोंमें लगाने मात्रसे तिमिरादिक रोग निश्चित ही नष्ट हो जाते हैं। पिप्पली, तगर, हल्दी, आँवला, वच और खदिरद्वारा बनायी गयी बत्तीका अंजन लगानेसे नेत्ररोग नष्ट होता है। जो मनुष्य नित्य प्रात: मुँहमें जल भरकर जलका

ही छींटा देकर नेत्रोंको धोता है, वह नेत्रोंके सभी रोगोंसे मुक्त हो जाता है।

श्वेत एरण्डकी जड़ एवं पत्तियोंके रससे सिद्ध बकरीके दूधके उष्णपाकके सेंकसे आँखोंका वात-विकार दूर हो जाता है। चन्दन, सेंधा नमक, पुराने पलाशका पत्र और हरीतकी पटल, कुसुम, नीलीका अंजन चक्रिका (चकाचौंधी) नामक नेत्ररोगोंका विनाशक है।

बकरीके मूत्रमें घिसी गयी गुंजाकी जड़का अंजन तिमिररोगको दूर करता है। हे रुद्र! चाँदी, ताँबे तथा सोनेकी शलाकाको हाथपर घिसकर नेत्रोंमें उसका लगाया गया उबटन कामला नामक रोगका निवारक है। घोषाफल अर्थात् सौंफको सूँघने और सेवन करनेसे पीलिया नामक रोगका विनाश होता है।

दूर्वा, अनारपुष्प, लोध्र और हरीतकीका रस नासार्श तथा वातरक्तके दोषको दूर करता है। हे वृषध्वज! हे नीललोहित! जाङ्गलिक-मूल अर्थात् केवाँचकी जड़को भली प्रकारसे पीसकर उसका नस्य लेनेसे नासार्श-रोग नष्ट हो जाता है। हे रुद्र! गोघृत, सर्जरस (राल), धनिया, सेंधा नमक, धतूर तथा गैरिकसे सिद्ध सिक्थ अर्थात् मोम तेलमें मिलाकर ओठोंपर लगानेसे ओठोंके घाव तथा ओठ फटनेका रोग दूर हो जाता है। चबाकर सेवन की जानेवाली चमेलीकी पत्तियोंका रस भी मुखरोग-विनाशक है।

केसरके बीजोंको खानेसे हिलनेवाले दाँत दृढ़ हो जाते हैं। मुस्तक (मोथा), कुष्ठ, इलायची, मुलेठी, वालक और धनियाको चबानेसे मुखकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। कषाय द्रव्य या त्रिकटु अथवा तेलयुक्त तिक्त शाकके नित्य भक्षणसे भी मुखकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है। इससे सभी प्रकारके दाँतोंसे सम्बन्धित घाव भी नष्ट हो जाते हैं। हे शिव! तेलमें सिद्ध कांजीका कुल्ला करनेसे अथवा उसको मुखमें रखनेसे ताम्बूलके साथ खाये गये चूनेके प्रभावसे हुए घाव या अन्य व्याधियोंका विनाश हो जाता है।

सोंठको चबानेसे जिस प्रकार प्राणी कफके रोगसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार बिजौरा नीबूके बीज, इलायची, मुलेठी, पिप्पली और चमेलीकी पत्तियोंका चूर्ण (शहदमें) चाटनेसे भी कफ-विकारसे मुक्ति मिल जाती है। शेफालिका (सिन्धुवार) तथा जटामांसीका चूर्ण चबानेसे गलशुण्डि अर्थात् तालुभागकी शोथका विनाश होता है।

गुंजा अर्थात् घुँघचीकी जड़को चबानेसे दाँतमें लगे हुए कीड़ोंका विनाश होता है। हे शिव! मधुसहित काकजंघा (घुँघची), स्नुही (सेंहुड़) और नीलका क्वाथ, दन्ताक्रान्त (दन्ताघात) तथा दाँतके कीट-रोगोंका विनाशक है।

कर्कटपाद (कमलकी जड़)-से सिद्ध घृतपाकका मंजन करनेसे दाँतोंकी कटकटाहट दूर हो जाती है। हे शिव! कर्कटपादका दूधके साथ लेप करनेसे भी इस रोगका विनाश हो जाता है। ज्योतिष्मती (मालकँगनी)-के फलोंको जलमें पीसकर उसके द्वारा तीन सप्ताहतक कुल्ला करनेसे भी इस रोगमें लाभ होता है। विदारीकन्द और हरीतकीके चूर्णका मंजन करनेसे दाँतोंका कालापन विनष्ट होता है।

लोध्र, कुंकुम, मजीठ, अगर, लालचन्दन, यव, चावल तथा मुलेठीको जलमें पीसकर तैयार किया गया मुखलेप स्त्रियोंके मुखको शोभा-सम्पन्न बनाता है। दो प्रस्थ बकरीका दूध, एक प्रस्थ तिलका तेल, एक-एक कर्ष रक्तचन्दन, मंजिष्ठ, लाक्षा-रस, मधुयष्टी और कुंकुमसे सिद्ध लेपपाक एक सप्ताहके अन्तर्गत ही मुखकी शोभाको बढ़ा देता है।

सोंठ, पिप्पली-चूर्ण, गुडूची और कण्टकारीके क्वाथका पान करनेसे जठराग्नि तीव्र हो जाती है। हे महादेव! कंजा, पित्तपापड़ा, बृहती (भटकटैया), अदरक, हरीतकी तथा गोखरूके द्वारा सिद्ध क्वाथ पीनेसे थकान दूर हो जाती है एवं दाह, पित्त-ज्वर, शारीरिक शुष्कता और मूर्च्छा-दोष भी विनष्ट हो जाते हैं।

मधु, घृत, पिप्पली-चूर्ण एवं दूधसे युक्त क्वाथका पान हृदयरोग, खाँसी तथा विषमज्वरका विनाशक होता है।

हे वृषध्वज! सामान्यतः क्वाथ तथा औषधियोंकी अनुपान-मात्रा आधा कर्ष अर्थात् एक तोला है। विशेष रूपसे रोगीकी आयुके अनुसार उसके परिमाणपर विचार करना चाहिये।

गौके गोबरसे रस निकालकर दूधके साथ पान करनेसे विषमज्वर दूर हो जाता है। काकजंघा (घुँघची)-का रस

भी इस ज्वरका नाशक है। सोंठके चूर्णसे युक्त बकरीके दूधका क्वाथ विषम ज्वरको दूर कर देता है।

मुलेठी, खस, सेंधा नमक तथा भटकटैयाका फल पीसकर उसका नस्य देनेसे पुरुषको नींद आने लगती है। हे शिव! काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर मधुका नस्य लेनेसे भी प्राणीको नींद आ जाती है। काकजंघा (कालाहिस्रा)-की जड़ मस्तकपर लेप करके भी निद्राको लाया जा सकता है। कांजी तथा धूना नामक वृक्षके गोंदसे सिद्ध तैलपाकको शीतल जलमें मिलाकर सिरपर लेप करनेसे सिर-संताप दूर हो जाता है। यह रक्तदोषज ज्वर और दाहसे उत्पन्न होनेवाले संतापको भी दूर करता है।

शिलाजीत, शैवाल, मन्था (मेथी), सोंठ, पाषाणभेदी (पथरचट्टा), सहिजन, गोखरू, वरुण और सौभञ्जनकी जड़—इन सबको एकत्र करके बनाया गया जल या क्वाथ हींग तथा यवक्षारके सहित पान करनेसे वातरोगका विनाश होता है।

हे शिव! पिप्पली, पिप्पलीमूल तथा भिलावेका जल या क्वाथ भली प्रकारसे शूलरोगको दूर करनेका श्रेष्ठतम योग है।

अश्वगन्धा तथा मूलीके रससे शोधित बामीकी जो मिट्टी होती है, उसको रगड़नेसे दाद और ऊरुस्तम्भ नामक रोग शान्त हो जाते हैं।

बृहतीमूल अर्थात् भटकटैयाकी जड़को पानीमें पीसकर पीनेसे संघातवात नष्ट होता है। अदरक और तगरकी जड़को पीसकर मट्ठेके साथ पीनेसे झिंझिनी अर्थात् झुंझबाईका रोग वैसे ही नष्ट होता है, जैसे वज्रके प्रभावसे वृक्ष धराशायी हो जाता है।

अस्थिसंहारक हरजोड़ अर्थात् ग्रन्थिमान् नामक लताकी जड़को भातके साथ खानेसे अथवा जटामांसीके रसके साथ पान करनेसे वातरोग तथा अस्थिभंगके दोष विनष्ट हो जाते हैं। बकरीके दूध और घृत-मिश्रित सत्तूका लेप दोनों पैरके तलुओंमें करनेसे जलन समाप्त हो जाती है। मधु, घृत, मोम, गुड़, गैरिक, गुग्गुल और रालका रस पैरोंमें लेप करनेसे उनका फटना तथा जलना बंद हो जाता है।

हे वृषध्वज! सरसोंके तेलको पैरोंमें लेपकर निर्धूम अग्निमें जो मनुष्य सेंकता है, उसका पंकिल—मिट्टी खाया हुआ अर्थात् कीचड़में अधिक देरतक रहनेसे दूषित हुआ या उसके समान अन्य किसी कारणसे विकृत हुआ पैर खुजलाहट आदि विकारोंसे रहित हो जाता है।

सर्जरस, मोम, जीरा और हरीतकीसे शोधित घृतपाकका अभ्यङ्ग करनेसे अग्निमें जलनेसे उत्पन्न हुई पीड़ा शान्त हो जाती है। तिलका तेल अग्निमें जलाकर भस्म किये गये यवको प्रचुर मात्रामें बार-बार मिलाकर लेप करनेसे अग्निमें जलनेके कारण उत्पन्न हुए घाव ठीक हो जाते हैं। भैंसके दूधका मक्खन, अग्निमें भूने गये तिलका चूर्ण और भिलावाका रस मिलाकर तैयार किया गया लेप घावको ठीक करता है। इसका नस्य एवं लेप करनेसे हृदय-शूल भी शान्त हो जाता है।

हे हर! दण्ड-प्रहार आदिके कारण शरीरमें उत्पन्न घाव कर्पूर और गोघृत परस्पर मिलाकर भरनेसे ठीक हो जाता है। हे शिव! शस्त्रोंके प्रहारसे होनेवाले घावपर इस औषधिका प्रयोग करके उसे स्वच्छ सफेद कपड़ेसे बाँध देना चाहिये। हे वृषध्वज! इस प्रकारके घाव जब पक रहे हों या उनमें पीड़ा होती हो तो उन्हें हाथका स्पर्श देना (सहलाना) चाहिये। आम्रकी जड़का रस और घृत भरनेसे भी शस्त्राघातका घाव भर जाता है। शरपुंखा (शरफोंका), लज्जालुका (लाजवन्ती) और पाठा (पाढ़ा) नामक औषधियोंकी जड़को जलमें पीसकर उसका लेप लगानेसे भी शस्त्राघातजनित व्रण ठीक हो जाता है। काकजंघाकी जड़को पीसकर शस्त्राघातके घावमें भरनेसे वह घाव तीन रात्रियोंके बीतते ही सूख जाता है। रोहितक नामक या रोहड़ाकी जड़का लेप भी व्रणको नष्ट कर देता है।

लाठी आदिके प्रहारसे उत्पन्न होनेवाली पीड़ा जल एवं तिलके तेलमें सिद्ध अपामार्गकी जड़का लेप लगानेसे तथा आगपर सेंकनेसे शान्त हो जाती है।

हे शंकर! हरीतकी, सोंठ और सेंधा नमक पीसकर जलके साथ खानेसे अजीर्ण रोगका विनाश होता है।

निम्बमूल अर्थात् नीमकी जड़को कमरमें बाँधनेपर नेत्रोंकी पीड़ा दूर हो जाती है। शण (पटसन)-की जड़

और पानका भस्म इन्द्रियजन्य विकारका विनाशक है। यवादिक अन्न, हल्दी, सफेद सरसोंकी जड़ और बिजौरा नीबूके बीज समान भागमें पीसकर इनका उबटन बनाना चाहिये। सात दिनोंतक शरीरमें इसका प्रयोग करनेसे रंग गोरा हो जाता है।

श्वेत अपराजिताकी पत्ती तथा नीमकी पत्तीका रस निकालकर उसका नस्य देनेसे डाकिनी आदि माताओं और ब्रह्मराक्षसोंकी छायासे मुक्ति हो जाती है। हे वृषध्वज! मधुसार अर्थात् मुलेठीकी जड़का नस्य देनेसे भी उनकी छाया दूर हो जाती है।

हे रुद्र! पिप्पली, लौहचूर्ण, सोंठ, आँवला, सेंधा नमक, मधु तथा शर्कराका समान योग गूलरके फलके बराबरकी मात्रामें एक सप्ताहपर्यन्त सेवन करनेसे पुरुष बलवान् हो जाता है। यदि वह सदैव इसका सेवन करे तो दो सौ वर्षतक जीवित रहता है।

भल्लूकीके दूधसे भावित रोहित मछलीके मांसद्वारा सिद्ध तैलपाकका अभ्यङ्ग करनेसे शरीरमें स्थित समस्त रोग दूर हो जाते हैं।

चन्दनके जलका नस्य लेनेसे शरीरके गिरे हुए रोम पुनः निकल आते हैं।

हस्त नक्षत्रमें लाङ्गलिकाकन्द अर्थात् कलियारी या जलपिप्पलीकी जड़को लेकर जो व्यक्ति उसका लेप शरीरमें लगाता है, वह बुढ़ौतीके दर्पको नष्ट कर देता है अर्थात् शरीरमें वृद्धावस्थाका प्रभाव नहीं पड़ता।

पुष्य नक्षत्रमें सुदर्शना (चक्रांगी या वृषकर्णी) नामक लताकी जड़को लाकर घरके मध्य डाल देनेसे सर्प घरसे भाग जाते हैं। हे शिव! रविवारको लायी गयी मन्दारवृक्ष तथा अग्निज्वलिता (जलपिप्पली)-की जड़को पीसकर बनायी गयी बत्ती, सरसोंके तैलसे जलानेपर मार्गमें दंश-प्रहार करनेवाले सर्पका विनाश करती है।

विफला (केतकी) और अर्जुनके पुष्प, भिलावा, शिरीष, लाक्षारस, राल, विड और गुग्गुल—इन सभीके द्वारा बना धूप मक्खियों तथा मच्छरोंका नाश करता है।

(अध्याय १७७)

गर्भ-सम्बन्धी रोग, दन्त तथा कर्णशूल एवं रोमशमन आदिका उपचार

श्रीहरिने कहा—हे शिव! मुलेठी तथा कण्टकारी नामक औषधियोंको समभागमें लेकर गोदुग्धमें पाक तैयार करके दूधका चौथा भाग शेष रहनेपर उस पाकको गरम जलके साथ पान करनेपर स्त्रीको गर्भ रुक जाता है। बिजौरा नीबूके बीजोंको दूधके साथ भावित करके उसका पान करनेसे स्त्रीको गर्भ रुकता है। पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छुक स्त्रियोंको बिजौरा नीबूके बीज तथा एरण्ड-वृक्षकी जड़को घीके साथ संयोजित करके उसका सेवन करना चाहिये। अश्वगन्धाके क्वाथका दूध एवं घीके साथ सेवन पुत्रकारक है। पलाशके बीजोंको मधुके साथ पीसकर पान करनेसे रजस्वला स्त्री मासिक धर्म तथा गर्भधारणसे रहित हो जाती है।

हरिताल, यवक्षार, पत्राङ्ग (तेजपत्ता), लाल चन्दन, जातिफल (जायफल), हींग तथा लाक्षारसका पाक तैयार करके उसे दाँतोंमें भलीभाँति लगाना चाहिये। किंतु उससे पहले हरीतकीके क्वाथसे दाँतोंको साफ कर ले। ऐसा करनेसे मनुष्यके लाल पड़ गये दाँत भी सफेद हो जाते हैं।

मन्द-मन्द आँचपर मूलीके रसको पकाकर उसको कानमें डालनेसे कर्णस्राव अर्थात् कानका बहना बंद हो जाता है। अर्कके पत्तोंको लेकर मन्द-मन्द आँचपर गरम कर ले। तदनन्तर उसका रस निचोड़कर कानोंमें डाले तो कर्णशूल विनष्ट हो जाता है।

प्रियंगु, मुलेठी, आँवला, कमल, मंजीठ, लोध्र, लाक्षारस और कपित्थ-रससे बने तैलपाकसे स्त्रियोंका योनि-दोष दूर हो जाता है। सूखी मूली तथा सोंठका क्षार और हींग तो इस रोगके लिये महौषधि है। सोया (वनसौंफ), वचा (वच), कूट, हल्दी, सहिजन, रसाञ्जन, काला नमक, यवक्षार, सर्जक (तालवृक्षका रस), सेंधा नमक, पिप्पली, विडंग तथा मोथा—इन सभी औषधियोंको समान भागमें लेकर उनसे चार गुना मधु, बिजौरा नीबू और केलाका रस एकत्र करे। तदनन्तर इन सभी औषधियोंको एकमें मिलाकर उनसे तिलके तैलकी सिद्धि करे। इस प्रकार तैयार किये गये पाकके प्रयोगसे निश्चित ही स्त्रियोंका स्रावादिक रोग दूर हो जाता है, इसमें संदेह नहीं।

सरसोंका तेल कानमें डालनेसे उसके अंदर उत्पन्न हुए

कृमि नष्ट हो जाते हैं। हे रुद्र! हल्दी, नीमकी पत्तियाँ, पिप्पली, काली मिर्च, विडंगभद्र, मोथा और सोंठ—इन सात औषधियोंको गोमूत्रके साथ पीसकर वटी बना लेना चाहिये। इसकी एक वटी अजीर्ण और दो वटी विषूचिका (हैजा) नामक रोगको दूर करती है। मधुके साथ इसको घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे पटोल अर्थात् परवलके समान आयी हुई सूजन दूर हो जाती है। गोमूत्रके साथ प्रयुक्त होनेपर अर्बुद (कैंसर) नामक रोगका नाश करती है। यह शंकरी वटी नेत्रोंके सभी रोग दूर करती है।

वच, जटामांसी, बिल्व, तगर, पद्मकेसर, नागकेसर और प्रियंगुको समान भागमें लेकर उनका चूर्ण बना लेना चाहिये। इस चूर्णका धूप लेनेसे मनुष्य रूप-सौन्दर्यसे समन्वित हो जाता है।

अर्जुन-वृक्षके फूल, भिलावा, विडंग, बला, राल, सौवीर और सरसोंके योगसे तैयार धूप सर्प, जुएँ, मक्खी तथा मच्छरोंको विनष्ट करता है।

श्रीहरिने पुनः कहा—हे शिव! ताम्बूल, घृत, मधु तथा नमकको गोदुग्धके साथ ताम्रपात्रमें घिसकर सिद्ध किया गया अञ्जन नेत्रपीड़ाको दूर करनेका उत्तम योग है। खाँसी, श्वास तथा हिचकीका विकार होनेपर हरीतकी, वच, कूट, त्रिकटु अर्थात् विश्वा, उपकल्या, मरिच, हींग और मैनसिल-चूर्णको मधु तथा घृतमें मिलाकर चाटना चाहिये।

पिप्पली और त्रिफलाके चूर्णको मधुके साथ चाटनेसे भयंकर पीनस, खाँसी और श्वासके विकार नष्ट हो जाते हैं। हे वृषध्वज! मूलसहित चित्रक तथा पिप्पलीके चूर्णको मधुमें मिलाकर चाटना चाहिये। यह श्वास, खाँसी और हिचकीको नष्ट कर देता है।

चावलके जलमें समान भागमें पिसा हुआ नीलकमल, शर्करा, मधु तथा रक्तकमलका योग रक्तविकारको शान्त करता है।

सोंठ, शर्करा और मधु मिलाकर बनायी गयी गुटिका खानेमात्रसे मनुष्यका स्वर कोयलके समान हो जाता है।

हरिताल, शंखचूर्ण, केलेके पत्तेका भस्म—इनका उबटन लगानेसे बाल गिर जाते हैं। लवण, हरिताल, लौकी और लाक्षारससे युक्त उबटन भी रोम गिरानेका उत्तम योग है। सुधा, हरिताल, शंखभस्म तथा मैनसिलको सेंधा नमक एवं बकरेके मूत्रमें मिलाकर पीसकर और उसी क्षण उससे उबटन करनेसे रोम गिर जाते हैं। यह उत्तम औषधि है।

शंख, आँवलेकी पत्तियाँ और धातकीके पुष्पोंको दूधके साथ पीसकर उसे डेढ़ सप्ताहतक मुखमें रखनेसे दाँत चिकने, सफेद तथा स्वच्छ और कान्तिसे युक्त हो जाते हैं। (अध्याय १७८—१८१)

भोज्य पदार्थोंका विहित सेवनकाल, बल-बुद्धिवर्धक औषधियाँ तथा विषदोषशमनके उपाय

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! प्रायः शरद्, ग्रीष्म और वसन्त-ऋतुमें दहीका उपभोग निन्दनीय है तथा हेमन्त, शिशिर एवं वर्षा-ऋतुमें दही प्रशस्त होता है—

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम्।
हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते॥
(१८२।१)

भोजन करनेके पश्चात् नवनीत (मक्खन)-के साथ शर्कराका पान करना बुद्धिकारक होता है। हे शिव! यदि पुरुष एक पल पुराना गुड़ प्रतिदिन (भोजन करनेके पश्चात्) खाता रहे तो वह बलवान् होकर अनेक स्त्रियोंसे सम्पर्क करनेकी क्षमता प्राप्त कर लेता है।

कुष्ठ (कूट)-को भलीभाँति चूर्ण करके घृत और मधुके साथ सोनेके समय खानेसे वलीपलित दूर हो जाता है। अलसी, उड़द, गेहूँ तथा पिप्पलीका चूर्ण घृतके साथ शरीरमें लगानेसे मनुष्य कामदेवके सदृश सौन्दर्यसम्पन्न हो जाता है।

यव, तिल, अश्वगन्धा, मूसली, सरला (काली तुलसी) और गुड़को परस्पर मिलाकर बनायी गयी वटी खानेसे मनुष्य तरुण तथा बलवान् हो जाता है। हींग, काला नमक और सोंठका काढ़ा बनाकर पीनेसे परिणाम नामक शूल और अजीर्ण रोग विनष्ट हो जाता है। धातकी (धवका फूल) तथा सोमराजी (औषधि) गोदुग्धके साथ पीसकर पान करनेसे दुर्बल मनुष्य भी मोटा हो जाता है। शक्ति चाहनेवाले प्राणीको शर्करा तथा मधुके साथ मक्खन खाना चाहिये। क्षयरोगसे पीड़ित व्यक्तिको दुग्धपान पुष्ट तथा बुद्धिको अत्यधिक प्रखर बना सकता है। गोदुग्धके

साथ पान किया गया कुलीरका चूर्ण क्षयरोगको विनष्ट करता है।

भिलावा, विडंग, यवक्षार, सेंधा नमक, मैनसिल तथा शंखचूर्णको तेलमें पकाकर अनपेक्षित रोमसमूहोंको हटानेके लिये उसका प्रयोग करना चाहिये।

मुण्डीत्वक् (गोरखमुण्डी), वच, मोथा, काली मिर्च तथा तगरको एक साथ चबाकर मनुष्य तत्काल ही जिह्वासे अग्निको चाट सकता है। गोरोचन, भृंगराजका चूर्ण एवं घृत समान मात्रामें मिलाकर जलस्तम्भन किया जा सकता है।

हे महेश्वर! यष्टि-मधु (मुलेठी) एक पल, उष्ण जलके साथ पान करनेसे विष्टम्भिका तथा हृदयशूल नामक रोग नष्ट हो जाता है।

हे रुद्र! 'ॐ हूं जः' यह मन्त्र सभी प्रकारके बिच्छुओंका विष नष्ट करता है। पिप्पली, मक्खन, शृंगवेर, सेंधा नमक, कालीमिर्च, दही और कूटका नस्य लेने तथा उसका पान करनेपर वह विषदोषको दूर करता है। हे शिव! त्रिफला, अदरक, कूट और चन्दनको घृतमें मिलाकर पान करने और लेप करनेसे बिच्छूका विष विनष्ट होता है। हे वृषभध्वज! सेंधा नमक और त्रिकटुके चूर्णको दही, मधु तथा घृतमें मिलाकर लेप करनेसे यह बिच्छूके विषको दूर कर देता है।

हे रुद्र! ब्रह्मदण्डी और तिलका क्वाथ बनाकर उसके साथ त्रिकटु (सोंठ, पिप्पली तथा काली मिर्च) का चूर्ण पान करना चाहिये। यह सभी प्रकारके गुल्म एवं ऋतुकालीन अवरुद्ध रक्त-विकारका विनाशक है। मधु मिलाकर दूधका पान करनेसे रक्तस्रावके विकारको दूर किया जा सकता है। जंगली अड़ूसेकी जड़को पीसकर प्रसवकालमें स्त्रीके नाभि एवं गुह्यभागमें लेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है।

हे वृषध्वज! चावलके पानीमें शर्करा और मधु मिलाकर पान करनेसे रक्तातिसार नामक रोग शान्त हो जाता है। (अध्याय १८२)

ग्रहणी, अतिसार, अग्निमान्द्य, छर्दि तथा अर्श आदि रोगोंका उपचार

श्रीहरिने कहा—हे चन्द्रचूड! काली मिर्च, शृंगवेर और कुटजकी छालका पान करनेसे ग्रहणीरोग नष्ट होता है। पिप्पली, पिप्पलीमूल, काली मिर्च, तगर, वच, देवदारुका रस और पाठाको दूधके साथ पीसकर सेवन करनेसे निश्चित ही अतिसाररोग विनष्ट हो जाता है।

काली मिर्च तथा तिलके पुष्पोंका अञ्जन कामलारोगका विनाशक है। हरीतकी और गुड़को बराबर मात्रामें मधुके साथ मिलाकर खाना चाहिये। हे रुद्र! निस्संदेह यह विरेचनकारी होता है। त्रिफला, चित्रक, चित्र, कटुकरोहिणीका योग ऊरुस्तम्भ रोगका अपहारक है और यह विरेचनकी भी उत्तम औषधि है। हरीतकी, शृंगवेर, देवदारु, चन्दन, अपामार्ग (चिचड़ा)-की जड़को बकरीके दूधमें पकाकर पान करके ऊरुस्तम्भका विनाश किया जा सकता है अथवा जयन्ती (विष्णुक्रान्ता)-की जड़का क्वाथ पीनेसे भी यह रोग सात दिनमें दूर हो जाता है।

अनन्ता (धमासा) और शृंगवेरका समान भागमें चूर्ण बनाकर बराबर मात्रामें ही गुग्गुल और गुड़ मिला ले, तदनन्तर उसकी गोलियाँ बनाकर सेवन करनेसे स्नायुगत वायुविकार तथा अग्निमान्द्य रोग विनष्ट हो जाता है।

पुष्य नक्षत्रमें डंठल एवं पत्तियों-सहित शंखपुष्पीको उखाड़कर बकरीके दूधके साथ पीनेसे अपस्मार (मिर्गी)-का रोग दूर होता है। समभागमें अश्वगन्धा तथा हरीतकीके चूर्णको जलके साथ पीनेसे निश्चित ही रक्त-पित्त-विकारका विनाश होता है। हरीतकी और कूटका चूर्ण बनाकर उसको मुखमें रखना चाहिये। पश्चात् शीतल जल पीनेसे सभी प्रकारके छर्दि रोग अर्थात् वमन दूर हो जाते हैं। गुडूची, पद्मकारिष्ट और नीम, धनिया तथा रक्तचन्दन नामक औषधियोंका योग पित्तश्लेष्मक ज्वर, छर्दि, दाह और तृष्णाके विकारका विनाशक एवं अग्निवर्धक है, किंतु इन औषधियोंका प्रयोग 'ॐ हुं नमः' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रण करनेके पश्चात् करना चाहिये—

ॐ जम्भिनी स्तम्भिनी मोहय सर्वव्याधीन् मे वज्रेण ठः ठः सर्वव्याधीन् मे वज्रेण फट्॥ (१८३। १२)

उपर्युक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित शंखपुष्पीको कानमें बाँधनेसे ज्वरको दूर किया जा सकता है। हे रुद्र! इसी मन्त्रसे १०८ बार जप करके अभिमन्त्रित शंखपुष्पीको रोगीके हाथमें रखकर वैद्य उसके नाखूनोंका स्पर्श करे तो चौथिया ज्वर अथवा अन्य सभी प्रकारके ज्वर विनष्ट हो जाते हैं।

जामुनका फल, हल्दी तथा साँपकी केंचुलका धूप

सभी प्रकारके ज्वरोंका विनाशक है। यह धूप तो चौथिया ज्वरका भी विनाश कर देता है।

करवीर (कनेर), भृंगराज, नमक, कूट और कर्कट (काकड़ा सींगी) नामक औषधियोंको समान भागमें लेकर चौगुने गोमूत्रके साथ तैलपाक सिद्ध करना चाहिये। इस तेलका अभ्यङ्ग पामा, विचर्चिका तथा कुष्ठरोगके व्रणोंको दूर कर देता है।

हे रुद्र! पिप्पली और मधुका सेवन करने एवं मधुर भोजन करने तथा सूरणके सेवनसे प्लीहा रोग विनष्ट हो जाता है।

गोमूत्रके साथ पिप्पली और हल्दीका चूर्ण मिलाकर उसको गुदाद्वारमें डालनेसे अर्श रोग दूर किया जा सकता है।

बकरीका दूध और अदरकका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे प्लीहा आदि रोग विनष्ट हो जाते हैं। सेंधा नमक, विडंग, सोमलता, सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, विष और नीमकी पत्तीको गोमूत्रके साथ पीस लेना चाहिये। इसका लेप करनेसे कुष्ठरोगका विनाश होता है। (अध्याय १८३)

सिध्म, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, अजीर्ण तथा गण्डमाला आदि रोगोंकी औषधियाँ

श्रीहरिने कहा—[हे चन्द्रचूड] हल्दी और केलेके क्षारका लेप सिध्मरोगका विनाशक है। एक भाग कूट तथा दो भाग हरीतकीका चूर्ण उष्ण जलके साथ पान करनेसे कमरका शूल रोग दूर हो जाता है। हरीतकी, शर्करा और पिप्पलीका चूर्ण नवनीतके साथ सेवन करनेसे वह अर्श-रोगका विनाश करता है। जंगली अडूसेके पत्तोंको घीमें मन्द-मन्द आँचपर पकाकर उसका लेप करना अर्शरोग दूर करनेकी श्रेष्ठतम औषधि है।

गुग्गुल और त्रिफलाका चूर्ण पानकर भगंदर रोगको विनष्ट किया जा सकता है। जीरा, अदरक, दही तथा चावलके माँड़को अग्निमें पकाकर नमकके साथ सेवन करना चाहिये। इससे मूत्रकृच्छ्र नामक रोग दूर होता है। यवक्षार तथा शर्करा भी मूत्रकृच्छ्र-रोगको दूर करता है।

तिलके तेलमें यवको जलाकर उसकी कज्जली बनानी चाहिये। उसके बाद तिलके ही तेलमें उसको मिलाकर अग्निसे जले हुए स्थानपर लेप करनेसे लाभ होता है। घीके सहित लाजवन्ती तथा शरपुंखाकी पत्तियोंका तैयार किया गया लेप भी अग्निजन्य पीड़ाको दूर करता है। निम्न मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके इस लेपका प्रयोग करना चाहिये—

ॐ नमो भगवते ठ ठ छिन्धि छिन्धि ज्वलनं प्रज्वलितं नाशय नाशय हुं फट्॥ (१८४। ८)

हाथमें निर्गुण्डीकी जड़ बाँधनेसे ज्वर बहुत ही शीघ्र दूर हो जाता है। श्वेत गुञ्जाफलको सात खण्ड बनाकर उसको हाथमें बाँध लेनेसे अर्श रोग निश्चित ही विनष्ट हो जाता है। विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) तथा बकरीके मूत्रका प्रयोग करके चोर और व्याघ्रादि हिंसक जीवोंके प्रहारसे प्राणी अपनी रक्षा कर सकता है। ब्रह्मदण्डीकी जड़ तो सभी कर्मोंमें सिद्धि प्रदान करनेवाली है।

घृतके साथ सिद्ध त्रिफलाका चूर्ण कुष्ठविनाशक है। पुनर्नवा, बिल्व और पिप्पलीके चूर्णसे सिद्ध घृतके द्वारा हिचकी, श्वास तथा खाँसीको दूर किया जा सकता है। इस घृतका पान स्त्रियोंके लिये गर्भकारक होता है।

दूध और घीके साथ वानरी बीज (केवाँच)-को पकाकर घी तथा शर्करामें मिलाकर सेवन करनेसे वीर्य कभी नष्ट नहीं होता।

मधु, घृत तथा दुग्धका पान बलीपलित नामक रोगको दूर करता है।

हे शिव! मधु, घृत, गुड़, करेलेका रस और ताँबेको एक साथ अग्निमें पकानेपर चाँदी बन जाता है। अब आप सोना बनानेकी विधि सुनें।

पीले धतूरका पुष्प और सीसा एक पल तथा लाङ्गलिका (करियारी)-की शाखाको एक साथ मिलाकर अग्निमें पकानेपर सोना बन जाता है।

हे हर! धतूरके बीजोंसे निकाले गये तेलद्वारा प्रज्वलित दीपकके प्रकाशमें समाधिस्थ व्यक्तिको देवता भी नहीं देख पाते।

हे शिव! मनुष्यको मदमस्त हाथीके दोनों नेत्रोंमें अपने हाथसे काजल लगाना चाहिये। ऐसा करनेपर वह व्यक्ति युद्धमें विजय प्राप्त करता है और महाबलवान् भी बन जाता है।

डुण्डुभ नामक सर्पके दाँतको मुखमें रखकर मनुष्य

जलके बीच भी पृथ्वीके समान ही किसी अन्य विकल्पका आश्रय लिये बिना रह सकता है।

लौहचूर्ण और मट्ठा पान करनेसे पाण्डुरोगका शमन हो जाता है। तण्डुलीयक (चौलाई) तथा गोखरूकी जड़को दूधमें मिलाकर पान करनेसे कामला एवं मुखरोगका विनाश होता है। चमेली और बेरकी जड़को मट्ठेके साथ पीनेसे अजीर्ण रोग दूर होता है।

कुशकी जड़, वानरीमूल, बकुची तथा कांजीका मिश्रित योग दाँतोंके रोगका विनाशक है। इन्द्रवारुणीकी जड़को जलके साथ पीनेसे विषादि-दोष नष्ट होते हैं। हे शिव! चम्पाकी जड़को पान करनेसे भी उक्त दोष दूर हो सकते हैं। कांजीके साथ गुञ्जा (घुँघची)-का चूर्ण मस्तकपर लेप करनेसे सिरका रोग विनष्ट हो जाता है।

बला, अतिबला, मधुयष्टि, शर्करा तथा मधुका पान करके वंध्या स्त्री गर्भ-धारण करनेमें समर्थ हो जाती है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

श्वेत अपराजिताकी जड़, पिप्पली और सोंठका पिसा हुआ लेप सिरमें लगानेसे शूल नष्ट हो जाता है। निर्गुण्डीकी फुनगीको पीसकर पान करनेसे गण्डमाला नामक रोग दूर हो जाता है।

केतकीके पत्तोंका क्षार गुड़के साथ अथवा मट्ठेके साथ शरपुंखाका सेवन करनेसे प्लीहा रोग विनष्ट हो जाता है।

बिजौरा नीबूका निर्यास (गोंद), गुड़ और घीके साथ मिलाकर पान करनेसे वात-पित्तजनित शूल दूर होता है। सोंठ, काला नमक तथा हींगका पान हृदयरोगका विनाशक है। (अध्याय १८४)

गणपतिमन्त्रका औषधिक योग तथा शोथ, अजीर्ण, विषूचिका और पीनस आदि विविध रोगोंके उपचार

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! 'ॐ गं गणपतये नमः' भगवान् गणेशका यह मन्त्र धन और विद्या प्रदान करनेवाला है। इस मन्त्रका एक हजार आठ बार जप करनेके बाद अपनी शिखाको बाँधनेवाला व्यक्ति वाद-विवादके व्यवहारमें विजय प्राप्त करता है। एक सौ बार इस मन्त्रका जप करनेवाला प्राणी अन्य लोगोंका प्रिय बन जाता है।

काले तिलोंको घृतमें मिलाकर इस मन्त्रसे एक हजार आठ आहुतियाँ देनेसे मात्र तीन दिनमें राजा वशमें हो जाता है। अष्टमी और चतुर्दशी तिथिको उपवास रखकर मनुष्य यदि विधिवत् विघ्नराज गणेशका पूजन करे और तिल तथा अक्षतको मिलाकर एक हजार आठ बार उन्हें आहुति प्रदान करे तो वह युद्धमें अपराजित होता है और सभी लोग उसकी सेवा करते हैं। उपर्युक्त मन्त्रका एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार जप करके अपनी शिखा बाँधनेवाला प्राणी राजकुल तथा वाद-विवादके व्यवहारमें विजय प्राप्त करता है।

भृंगराज, सहदेवी (सहदेई), वचा (वच) और श्वेत अपराजिता नामक औषधियोंके रसका तिलक करके मनुष्य तीनों लोक वशमें कर सकता है।

काकजंघाका मूल और दूधका मिश्रित पान शोथ रोगका विनाशक है।

अश्वगन्धा, नागबला, गुड़ तथा उड़द मिलाकर खानेवाला पुरुष वैसे ही रूप-सौन्दर्यसे युक्त हो जाता है, जैसे नवयुवकोंका सौन्दर्य होता है।

हे रुद्र! लौहचूर्ण और त्रिफलाचूर्णका मधुके साथ प्रयोग करनेसे परिणाम नामक शूलका विनाश होता है। हे वृषध्वज! हींग, काला नमक और सोंठ—इन औषधियोंके क्वाथका पान सभी प्रकारके शूलोंका अपहारक है। सामुद्रलवणसे युक्त अपामार्गकी जड़का सेवन करनेसे अजीर्ण-शूल नष्ट हो जाता है।

हे रुद्र! बरगदकी जटाओंका अंकुर चावलके जलमें घिसकर मट्ठेके साथ पीनेसे अतिसार रोग दूर होता है। अंकोट (अंकोल)-की जड़को आधा कर्ष लेकर चावलके जलमें पीसकर पान करनेसे सभी प्रकारके अतिसार तथा ग्रहणी नामक रोगोंका विनाश होता है। काली मिर्च एक भाग, सोंठ दो भाग तथा कुटजकी छालका चूर्ण चार भाग गुड़में मिलाकर काढ़ा बनाकर पीनेसे ग्रहणी नामक रोग दूर होता है। हे शिव! श्वेत अपराजिताकी जड़, हल्दी, सिक्थ, चावल, अपामार्ग (चिचड़ा) और त्रिकटु (काली मिर्च, सोंठ एवं पिप्पली) नामक इन औषधियोंको पीसकर वटी बना लेना चाहिये। यह वटी निस्संदेह विषूचिका नामक रोगका विनाश करती है।

हे भूतेश! त्रिफला, अगरु, शिलाजीत और हरीतकीको समान भागमें लेकर इनके मिश्रित चूर्णको मधुके साथ मिलाकर सेवन करनेसे सभी प्रकारके प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं।

मदारका दूध एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर, तिलका तेल एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर, मैनसिल, काली मिर्च तथा सिन्दूर एक-एक पल अर्थात् आठ-आठ तोलेका चूर्ण बनाकर ताँबेके पात्रमें रखकर उसको धूपमें सुखा ले। स्नुही (थूहड़—सेहुँड़)-का दूध और सेंधा नमक मिलाकर इसका सेवन करे तो शूल रोग दूर हो जाता है।

त्रिकटु (काली मिर्च, सोंठ तथा पिप्पली), त्रिफला, नक्त (कंजा), तिलका तेल, मैनसिल, नीमकी पत्ती, चमेलीका पुष्प, बकरीका दूध, बकरीका मूत्र, शंखनाभि और चन्दनको एकमें ही घिसकर बनायी गयी बत्तीसे नेत्रोंमें अञ्जन लगानेसे पटल, काच, पुष्प तथा तिमिर आदि रोग दूर हो जाते हैं।

मधुसे युक्त बहेड़ेका चूर्ण श्वास रोगका विनाशक होता है। मधु तथा सेंधा नमकसे मिश्रित पिप्पली और त्रिफलाका चूर्ण सभी प्रकारके रोगोंसे उत्पन्न होनेवाले ज्वर, श्वास, शोथ तथा पीनसके विकारको दूर करता है।

देवदारु-वृक्षकी छालके चूर्णको इक्कीस बार बकरीके मूत्रसे भावना देकर सिद्ध करना चाहिये। इसका अञ्जन करनेसे रतौंधी, पटलता और रोमपतन नामक रोग दूर हो जाते हैं।

हे रुद्र! पिप्पली, केतकी, हल्दी, आँवला तथा वचा (वच)-को दूधके साथ पीसकर अञ्जन बनाना चाहिये। इस अञ्जनके प्रयोगसे नेत्रोंके सभी रोग विनष्ट हो जाते हैं।

हे शिव! काकजंघा तथा सहिजनकी जड़को मुखमें रखने या चबानेसे दाँतोंमें लगे हुए कीड़ोंका निश्चित ही विनाश होता है। (अध्याय १८५)

प्रमेह, मूत्रनिरोध, शर्करा, गण्डमाला, भगंदर तथा अर्श आदि रोगोंका निदान

श्रीहरिने कहा—हे शिव! मधुके साथ गुडूचीका रस पीनेसे प्रमेह रोग विनष्ट हो जाता है। गोहालिका (जलपिप्पली)-की जड़को तिल, दही तथा घीके साथ पान करनेसे यह वस्तिभागमें अवरुद्ध मूत्रको बाहर करता है। काले नमकके साथ इस जड़का पान करनेसे हिचकी रोग भी दूर हो जाता है। गोरक्ष अर्थात् गोरखमुण्डी तथा कर्कटी (ककड़ी)-की जड़को शीतल जलके साथ पीसकर तीन दिन पीनेसे ही शर्करा नामक रोग नष्ट हो जाता है। ग्रीष्मकालमें मालतीकी जड़को भलीभाँति पीसकर शर्करा और बकरीके दूधमें पीनेसे मूत्रनिरोध, शर्करा-विकार और पाण्डु रोग विनष्ट हो जाता है।

ब्रह्मयष्टी अर्थात् ब्राह्मीकी जड़को चावलके पानीमें घिसकर तैयार किया गया लेप असाध्य गण्डमाला तथा गलगण्डक रोगको दूर करता है। हे रुद्र! करवीर (कनेर)-की जड़का लेप तथा सुपारीका लेप भी पुरुषत्वसे सम्बन्धित विकारको नष्ट करता है। अब मैं अन्य औषधिक योगोंको कहता हूँ।

दन्तीमूल, हल्दी और चित्रकके लेपसे भगंदर रोग विनष्ट होता है। हे उमापते! हे वृषभध्वज! स्नुही (थूहड़—सेहुँड़)-के दूधसे अनेक बार भावित हल्दीकी वटीका लेप अर्श रोगको दूर करता है। घोषाफल और सेंधा नमकको पीसकर बनाया गया लेप अर्श रोगको नष्ट करनेका श्रेष्ठतम योग है। हे शिव! पलाश और क्षारसे बने क्वाथके द्वारा शोधित घृतपाकमें तिगुना मिला हुआ त्रिकटु (काली मिर्च, सोंठ और पिप्पली)-का चूर्ण अर्श रोगको विनष्ट करता है। बेलके फलको भूनकर खानेसे खूनी अर्श विनष्ट होता है। मक्खनके साथ काला तिल खानेसे भी खूनी अर्श रोग नष्ट होता है।

हे वृषभध्वज! प्रातःकाल यवक्षार-मिश्रित सोंठके चूर्णको समान मात्रामें गुड़ मिलाकर खानेसे वह जठराग्निकी वृद्धि करता है। सोंठके चूर्णको काढ़ा बनाकर पान करनेसे भी जठराग्निकी वृद्धि होती है। हे रुद्र! हरीतकी, सेंधा नमक, पिप्पली—इन औषधियोंके चूर्णको गरम जलके साथ मिलाकर पान करनेसे भूख बढ़ती है तथा शूकरकन्दका रस घृतके साथ पान करनेसे अति क्षुधा बढ़ती है। (अध्याय १८६)

आयुर्वृद्धिकरी औषधिके सेवनकी विधि

श्रीहरिने कहा—हे शिव! हे वृषभध्वज! हे रुद्र! यदि मनुष्य हस्तिकर्ण पलाशके पत्तोंका चूर्ण करके सौ पलकी मात्रामें इस चूर्णको दूधके साथ मिलाकर लगातार सात दिनोंतक प्रयोग करे तो वह वेदविद्याविशारद, सिंहके समान पराक्रमी, पद्मरागके समान कान्तियुक्त तथा सौ वर्षकी आयुमें भी सोलह वर्षका नवयुवक बन सकता है, किंतु सतत दुग्धपान करना अत्यावश्यक है।

हे शिव! मधु और घृतसे युक्त दूधका सेवन आयुवर्धक होता है। उक्त हस्तिकर्ण पलाशके चूर्णको मधुके साथ लेनेसे प्राणी दस हजार वर्षकी आयु प्राप्त कर सकता है। यह योग मनुष्यको वेदवेदाङ्गका ज्ञाता और प्रमदा- जनोंका प्रिय बनानेमें समर्थ है। इस चूर्णका सेवन दहीके साथ करनेसे शरीर वज्रके समान शक्तिसम्पन्न हो जाता है। केशरसे युक्त इस चूर्णका प्रयोग करनेसे मनुष्य हजार वर्षकी आयु प्राप्त करता है। यदि मनुष्य इस चूर्णको कांजीके साथ मिलाकर खाता है तो केशोंकी सफेदी और त्वचाकी झुर्रियोंसे रहित होकर सौ वर्षतक वृद्धावस्थासे रहित दिव्य शरीर प्राप्त करता है।

हे वृषभध्वज! त्रिफला चूर्णके साथ मधुका सेवन नेत्रज्योतिको बढ़ाता है। घीके साथ इस चूर्णको खानेसे अंधा व्यक्ति भी देख सकता है। भैंसके दूधमें मिलाकर तैयार किया गया इस चूर्णका लेप प्राणीके श्वेत बालोंको काला बना देता है। खल्वाटके बाल भी इस लेपके प्रयोगसे निकल आते हैं। इस चूर्णको तेलमें मिलाकर शरीरमें लगानेसे बाल पकनेका प्रभाव तथा त्वचाकी झुर्रियोंका प्रकोप समाप्त हो जाता है।

इस चूर्णका मात्र उबटन लगानेसे सभी रोग दूर हो जाते हैं। बकरीके दूधमें मिलाकर इस चूर्णका अञ्जन एक मास-पर्यन्त नेत्रोंमें लगानेसे निर्बल दृष्टि सबल हो जाती है।

श्रावणमासमें छिलकेसे रहित पलाशके बीजोंको लेकर उनका चूर्ण मक्खनके साथ आधे कर्षकी मात्रामें खाना चाहिये। भगवान् हरिको नित्य प्रणाम करके इस चूर्णका सेवन करना चाहिये। हे हर! इसके सेवनके पश्चात् जल पीते हुए पुराने साठी चावलका भात पथ्य है। इस योगका पालन करनेवाला व्यक्ति वृद्धावस्थासे रहित होकर एक हजार वर्षतक जीवित रह सकता है।

पुष्यनक्षत्रमें भृंगराजकी जड़को लाकर उसका चूर्ण बनाना चाहिये। यदि प्राणी कांजीके साथ उस चूर्णका सेवन करे तो मात्र एक मासमें वह बलीपलित रोगसे रहित हो जाता है। इसका बराबर प्रयोग करनेसे मनुष्य पाँच सौ वर्षतक जीवित रह सकता है और वह हाथीके समान शक्तिसम्पन्न हो जाता है। हे रुद्र! पुष्यनक्षत्रमें ही इस औषधिका प्रयोग करनेपर प्राणी श्रुतिधर अर्थात् वेद-वेदाङ्गका ज्ञाता बन जाता है। (अध्याय १८७)

व्रण आदि रोगोंकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! प्रहारसे हुआ घाव और मवादयुक्त फोड़ा घीके प्रयोगसे ठीक हो जाता है। दोनों हाथोंसे अपामार्गकी जड़ मलकर उसके रससे चोटके घावको भरनेपर रक्तस्राव रुक जाता है। हे शंकर! लाङ्गलिका मूल तथा इक्षुदर्भ नामक औषधिको पीसकर उसके लेपसे शल्य-काँटायुक्त व्रणका मुख संलिप्त करनेपर काँटा निकल जाता है तथा बहुत दिनोंका गड़ा हुआ भी काँटा घावसे बाहर हो जाता है।

नाड़ीके घावमें बालमूल (मोथा)-की जड़को अथवा मेषशृङ्गी (मेढ़ासिंगी)-की जड़ जलमें घिसकर उसका लेप लगानेसे पुराना घाव भी सूख जाता है। भैंसके दहीमें कोदोका भात मिलाकर खानेसे और हींगकी जड़का चूर्ण घावमें भरनेसे भी नाड़ीका व्रण सूख जाता है।

ब्राह्मीके फलको जलके साथ पीसकर और रगड़कर लेप करनेसे रक्तदोष शान्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं।

हे शंकर! सहिजनका बीज, अलसी और सफेद सरसोंको अम्लरहित मट्ठेमें पीसकर उसका लेप ग्रन्थिक रोगपर लगानेसे वह रोग निश्चित ही नष्ट हो जाता है। श्वेत अपराजिताकी जड़ चावलकी धोवनमें पीसकर उसका नस्य लेनेसे भूत भाग जाते हैं।

हे शिव! काली मिर्चके साथ अगस्त्य-पुष्पके रसका नस्य शूल रोगका विनाशक है। सौंपकी केंचुल, हींग, नीमकी पत्ती, यव तथा सफेद सरसों लेकर इनका लेप करनेसे भूत-प्रेतकी बाधा दूर हो जाती है। हे शिव! गोरोचन, मरिच,

पिप्पली, सेंधा नमक और मधु—इन सभीका अञ्जन बनाकर आँखमें आँजनेसे प्रेतबाधा दूर हो जाती है। गुग्गुलकी धूप ग्रह-बाधाका नाशक है। काले वस्त्रको ओढ़नेसे चौथिया ज्वर दूर हो जाता है। (अध्याय १८८)

पटल आदि नेत्ररोग, गुल्म, दन्तकृमि, विविध ज्वर तथा विषदोष-शमनके उपाय

श्रीहरिने कहा—हे नीललोहित! श्वेत अपराजिता-पुष्पके रसको नेत्रोंमें डालनेसे पटल नामक नेत्ररोग नष्ट हो जाता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हे सुरासुरविमर्दन शिव! गोखरूकी जड़ चबाकर दाँतोंमें लगे हुए कीटोंकी व्यथाको दूर किया जा सकता है।

यदि ऋतुकालमें उपवासपूर्वक स्त्री गोदुग्धके साथ मन्दारवृक्षकी जड़को पीसकर पान करती है तो उसके शरीरमें होनेवाला गुल्म और शूलविकार विनष्ट हो जाता है।

हे हर! पलाश अथवा अपामार्गकी जड़ हाथमें बाँधनेपर सभी प्रकारके ज्वरोंका विनाश होता है तथा भूत-प्रेत आदिके द्वारा उत्पन्न होनेवाला कष्ट भी नहीं होता। हे परमेश्वर! वृश्चिकमूल अर्थात् बिछिया-वृक्षकी जड़को बासी जलके साथ पीसकर प्रात:काल सेवन करनेसे दाहज्वर दूर किया जा सकता है। इसकी जड़को शिखामें बाँधनेसे एकाहिक आदि जो ज्वर हैं, वे भी विनष्ट हो जाते हैं। उस जड़को बासी जलके साथ पीसकर पीनेसे सभी प्रकारका विषदोष विनष्ट हो जाता है।

जो मनुष्य पाढ़ा (पाठा)-की जड़को पीसकर गोघृतके साथ पान करता है, उसका सभी प्रकारका विषदोष दूर हो जाता है। रक्तवर्णवाले चित्रक वृक्षकी जड़को पीसकर कानोंमें डालनेसे कामला रोग विनष्ट हो जाता है, इसमें शंका नहीं है।

श्वेत कोकिलाक्ष (श्वेत तालमखाना)-की जड़को पीसकर बकरीके दूधमें तीन सप्ताहतक पान करनेसे क्षय रोग विनष्ट हो जाता है। नारियल-वृक्षके पुष्पको बकरीके दूधमें मिलाकर पान करनेसे तीनों प्रकारका रक्तवात-विकार नष्ट हो जाता है।

सुदर्शन-वृक्षकी जड़को मालाके मध्य पिरोकर कण्ठमें धारण करनेसे त्र्याहिक (तिजरिया) आदि ज्वर तथा ग्रह एवं भूतादिक व्याधियाँ विनष्ट हो जाती हैं।

हे रुद्र! श्वेत गुञ्जा-वृक्षके पुष्प तथा मूलको लेकर अपने मुखमें रखनेसे नाना प्रकारके विषोंका विनाश हो जाता है। इस औषधिकी जड़को हाथ और कण्ठमें धारण करनेपर ग्रहादिक दोष दूर होता है। हे नीललोहित! कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको लायी गयी इस औषधिकी जड़को कटिप्रदेशमें बाँधकर सिंह आदि हिंसक पशुओंके भयको दूर किया जा सकता है।

हे ईश! विष्णुक्रान्ता (अपराजिता)-की जड़को रेशमी सूतमें बाँधकर कानमें धारण करनेसे मगरमच्छादिक जन्तुओंका भय नहीं रहता। (अध्याय १८९)

गण्डमाला, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ, दद्रु, सिध्म, पीनस तथा छर्दि आदि विविध रोगोंका उपचार और सुगन्धित द्रव्योंके निर्माणकी विधि

श्रीहरिने कहा— हे ईश्वर! गोमूत्रके साथ अपराजिताकी जड़ पीनेसे गण्डमाला रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। इन्द्रवारुणीकी भी जड़ पीनेसे इस रोगका विनाश होता है। जिङ्गणी (मंजीठ), एरण्ड तथा शूकशिम्बी (केवाँच)-को मिलाकर शीतल जलयुक्त लेप लगानेसे भुजाओंमें होनेवाली व्यथा और गर्दनकी व्यथा दूर हो जाती है।

भैंसका मक्खन, अश्वगन्धा, पिप्पली, वचा (वच) और दोनों प्रकारका कूट एकमें मिलाकर बनाया गया लेप लिङ्गस्रोत तथा स्तनगत दु:खोंका विनाशक है।

कूट और नागबलाके चूर्णको मक्खनमें मिलाकर सिद्ध किया गया लेप युवतियोंके वक्ष:स्थलको सुडौल, ओजगुणसे सम्पन्न तथा सुन्दर बनाता है।

इन्द्रवारुणीकी जड़ उखाड़कर रोगीका नाम लेकर दूरसे ही उसके प्रति फेंक दिया जाय तो रोगीका प्लीहा रोग दूर हो जाता है।

चावलके धोवनमें श्वेत पुनर्नवाकी जड़ पीसकर पीनेसे निश्चित ही विद्रधि रोग नष्ट हो जाता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। केलेका पत्ता और यवक्षार जलमें सिद्ध करके तैयार किया गया पेय पीनेसे उदरजनित समस्त विकार दूर हो जाते हैं। केलेकी जड़ गुड़ और घीमें

मिलाकर, अग्निपर पकाकर खाया जाय तो वह उदरजनित कृमियोंको विनष्ट कर देता है।

प्रतिदिन प्रातःकाल आँवले और नीमकी पत्तियोंका चूर्ण भक्षण करनेसे कुष्ठ रोग दूर हो जाता है। हरीतकी, विडंग, हल्दी, श्वेत सरसों, सोमलताकी जड़, कंजेकी जड़ और सेंधा नमकको गोमूत्रमें पीसकर एक सिद्ध-योग बनाना चाहिये। ये सभी औषधियाँ कुष्ठ रोगको दूर करनेवाली हैं।

एक भाग त्रिफला, दो भाग हरीतकी और सोमलताके बीजोंको खाना चाहिये। इस पथ्यसे दद्रु रोग नष्ट हो जाता है। गोमूत्र और नमकसे युक्त खट्टे मट्ठेका क्वाथ बनाकर उसको काँसेके पात्रमें घिसकर लेप करनेसे कुष्ठ और दद्रु दोनोंका विनाश होता है। हल्दी, हरिताल, दूर्वा, गोमूत्र तथा सेंधा नमक मिलाकर तैयार किया गया लेप दद्रु, पामा और गर नामक रोगको दूर करता है।

हे रुद्र! सोमलताके बीजोंका चूर्ण और मक्खनका मधुके साथ सेवन करना चाहिये। ये औषधियाँ श्वेत कुष्ठ रोगका विनाश करनेवाली हैं। इनके प्रयोगमें मट्ठेके साथ चावल आदिका भोजन पथ्य है। हे हर! श्वेत अपराजिताकी जड़को उसीके रसके साथ पीसकर किया गया उसका लेप एक मासमें श्वेत कुष्ठको विनष्ट कर देता है।

हे वृषभध्वज! पामा और दुर्नामा नामक कुष्ठका विनाश काली मिर्च और सिन्दूरसे युक्त भैंसके मक्खनका लेप लगानेसे होता है।

हे ईश्वर! श्वेत गम्भारी (शतावरी)-की जड़का गोदुग्धके साथ पाक सिद्ध करके उसको खाना चाहिये। यह पाक शुक्लपित्त रोगका विनाशक है। हे रुद्र! मूलीके बीजोंको अपामार्गकी जड़के रसमें मिलाकर लगाये गये लेपसे सिध्म रोग विनष्ट होता है। केलेका क्षार और हल्दीका लेप भी सिध्म रोगका विनाशक है। हे महादेव! केला और अपामार्गका क्षार एरण्ड तैलमें मिलाकर उस लेपका अभ्यङ्ग (मालिश) करनेसे तत्काल सिध्म रोग नष्ट हो जाता है।

हे वृषभध्वज! गोमूत्रसे युक्त कूष्माण्ड (कुम्हड़ा)-के नालका क्षार और जलमें पीसी गयी हल्दीको भैंसके गोबरमें मिलाकर मन्द-मन्द आँचपर सिद्ध करना चाहिये, उसका उबटन लगानेसे शरीरका सौन्दर्य बढ़ जाता है। तिल, सरसों, दारुहल्दी, हल्दी और कूट नामक जो औषधियाँ हैं, उनका उबटन बनाकर जो पुरुष अपने शरीरमें लगाता है, वह दुर्गन्धसे रहित होकर सुगन्धित हो उठता है। दूर्वा, काकजंघा, अर्जुनके पुष्प, जामुनकी पत्तियाँ तथा लोध्र-पुष्प—इन सभीको एकमें मिलाकर पीस लेना चाहिये। इसका प्रतिदिन प्रयोग करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध दूर हो जाती है और वह मनोहर हो जाता है। लोध्र-पुष्प तथा जलमें पीसकर तैयार किया गया धतूरके चूर्णके लेपका उबटन लगानेसे मनुष्यके शरीरमें स्थित ग्रीष्मबाधा दूर हो जाती है। प्रातःकाल गरम दूधकी भापसे शरीर-सेंक करनेपर घर्मदोष (स्वेदाधिक्य) नष्ट हो जाता है। काकजंघाका उबटन शरीरके लिये सुन्दर अनुलेपन द्रव्य है।

मुलेठी, शर्करा, अड़ूसका रस और मधुका सेवन करनेसे रक्त-पित्त, कामला और पाण्डु रोगका विनाश होता है। अड़ूसका रस और मधु पीनेसे रक्त-पित्त-विकार दूर हो जाता है।

प्रातःकाल मात्र जल पीकर भयंकर पीनस रोगको दूर करना चाहिये। हे महेश्वर! बहेड़ा, पिप्पली और सेंधा नमकका चूर्ण, कांजीके साथ पान करनेसे मनुष्यका स्वरभेद दूर हो जाता है। इस दोषके होनेपर मैनसिल, बलामूल, बेरकी पत्ती, गुग्गुल तथा आँवलेका चूर्ण गोदुग्धमें मिलाकर पान करना चाहिये।

हे परमेश्वर! चमेलीकी पत्ती, बेरकी पत्ती और मैनसिल—इनकी बत्ती बनाकर उसे बेरकी अग्निमें सेंककर धूम्रपान करनेसे कास रोग दूर हो जाता है। त्रिफला और पिप्पलीका चूर्ण मधुके साथ खाना चाहिये। भोजन करनेके पूर्व मधुके साथ प्रयुक्त यह औषधिक योग प्यास और ज्वरके दोषको शान्त करता है। बिल्वकी जड़ तथा गुडूचीका क्वाथ मधुके साथ पान करनेसे तीनों प्रकारके छर्दि रोग विनष्ट हो जाते हैं। चावलके धोवनमें दूर्वारसको मिलाकर पीनेसे भी छर्दि रोग दूर हो जाता है। (अध्याय १९०)

सर्प, बिच्छू तथा अन्य विषैले जीव-जन्तुओंके विषकी चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे वृषध्वज! पुष्यनक्षत्रमें पुनर्नवाकी श्वेत जड़ लाकर जलके साथ पीनेसे पीनेवालेके आस-पास और घरोंमें सर्प नहीं आ सकते। जो मनुष्य भालूके दाँतमें तार्क्ष्य (गरुड)-की मूर्ति बनाकर धारण करता है, वह सर्पोंके लिये जीवनपर्यन्त अदृश्य हो जाता है। हे रुद्र! जो मनुष्य पुष्यनक्षत्रमें सेमरकी जड़को जलमें पीसकर पी

लेता है, उसके ऊपर किया गया विषैले सर्पोंके दाँतोंका प्रहार व्यर्थ हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। पुष्यनक्षत्रमें लाजवन्तीकी जड़ हाथमें बाँधनेसे अथवा उसके लेपको लगाकर भी सर्पोंको पकड़ा जा सकता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। पुष्यनक्षत्रमें लायी गयी सफेद मन्दारकी जड़को शीतल जलमें पीसकर पान करनेसे सर्पदंश तथा करवीर आदिका विष नष्ट हो जाता है। कांजीके साथ महाकालकी जड़ पीसकर उसका लेप दंश-भागपर लगानेसे बोड़ (गोनस) तथा डुंडुभ (पनिहा) सर्पोंका विष दूर होता है।

चौलाईके मूलको चावलके धोवनमें पीसकर घीके साथ पान करनेपर सभी प्रकारके विष नष्ट हो जाते हैं। नीली तथा लाजवन्तीकी जड़ पृथक्-पृथक् अथवा संयुक्त-रूपसे चावलके धोवनमें पीसकर पान करनेपर सभी प्रकारके सर्पोंके दंशका विष नष्ट हो जाता है। गुड़, शर्करा तथा दुग्धमिश्रित कूष्माण्डके रसका पान सर्पदंशके विषको दूर कर देता है। कोदोकी जड़ पीसकर पान करनेसे विषकी मूर्च्छा दूर हो जाती है। मुलेठीके चूर्णसे युक्त शर्करा और दूध तीन राततक पीकर चूहेके विषको दूर किया जा सकता है। तीन चुल्लू शीतल जल पीनेसे ताम्बूल खानेके कारण जलनयुक्त मुँहसे बहनेवाली लार बंद हो जाती है। शर्करासे युक्त घृतका पान करनेसे मद्यका मद नहीं होता।

हे महेश्वर! कृष्णा (काली तुलसी) और अंकोलकी जड़के क्वाथको तीन राततक पीनेसे सामान्य अथवा कृत्रिम विषका प्रभाव नष्ट हो जाता है। सेंधा नमकके साथ गरम गोघृतका पान बिच्छूके डंक मारनेसे शरीरमें उत्पन्न विषकी वेदनाको दूर करता है। हे शिव! कुसुम्भ (कुसुम), कुंकुम, हरिताल, मैनसिल, कंजा और मन्दार-वृक्षकी जड़ पीसकर पान करनेसे मनुष्योंमें चढ़ा हुआ सर्प या बिच्छूका विष नष्ट हो जाता है। हे हर! दीपकका तेल लगानेसे सामान्य ततैया आदि कीटोंका विष दूर हो जाता है। इससे कनखजूरेका भी विष नष्ट हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। बिच्छूके डंक लगे हुए स्थानपर सोंठ तथा तगरका लेप लगानेसे विष नष्ट हो जाता है। इसी लेपसे मधुमक्खीके डंकका भी विष दूर किया जा सकता है तथा सोया, सेंधा नमक और घृतका मिश्रित लेप लगानेसे भी वह विष दूर हो जाता है। हे महादेव! शिरीषके बीजोंको गरम दूधमें घिसकर उसका लेप लगानेसे कुत्तेका विष नष्ट हो जाता है। प्रज्वलित अग्नि और उष्ण जलसे सेंकनेपर मेढकका विष दूर हो जाता है। हे चन्द्रचूड! धतूरके रससे मिश्रित दूध, घी और गुड़का पान कुत्तेके विषको नष्ट कर देता है।

बरगद, नीम और शमी वृक्षकी छालके क्वाथसे सेंक करनेपर मुख और दाँतकी विष-वेदना नष्ट हो जाती है। देवदारु और गैरिकके चूर्णका लेप करनेसे भी इस विषको शान्त किया जा सकता है। हे हर! नागेश्वर, दारुहल्दी, हल्दी तथा मजीठके मिश्रित लेपसे लूता (मकड़ी)-के काटनेका विष दूर होता है। कंजेके बीज, वरुण-वृक्षके पत्ते, तिल और सरसोंका पिसा हुआ लेप भी विषको दूर कर देता है, इसमें संदेह नहीं है।

हे हर! नमक और घृतसे युक्त घृतकुमारीके पत्तेका लेप करनेसे घोड़ेके शरीरकी खुजली दस दिनमें दूर हो जाती है। (अध्याय १९१)

विविध स्नेह-पाकोंद्वारा रोगोंका उपचार, स्मरण तथा मेधाशक्तिवर्धक ब्राह्मी-घृतादिके निर्माणकी विधि

श्रीहरिने कहा—[हे हर!] चित्रक आठ भाग, शूरण (सूरन) सोलह भाग, सोंठ चार भाग, काली मिर्च दो भाग, पिप्पलीमूल तीन भाग, विडंग चार भाग, मुशली आठ भाग, और त्रिफला चार भाग लेकर इनके दुगुने गुड़के साथ मोदक बनाना चाहिये। इसके सेवनसे अजीर्ण, पाण्डु, कामला, अतिसार, मन्दाग्नि और प्लीहा नामक रोगोंको दूर किया जा सकता है।

बिल्व (बेल), अग्निमन्थ (गनियारी), श्योनाक (सोना पाढ़ा), पाटला (पाढर), पारिभद्रक (नीम), प्रसारिणी (गन्धप्रसारिणी), अश्वगन्धा, बृहती, कण्टकारी, बला, अतिबला, रास्ना (सर्पसुगन्धा), श्वदंष्ट्रा (गोखरू), पुनर्नवा, एरण्ड, शारिवा (अनन्तमूल), पर्णी (शालपर्णी), गुडूची, कपिकच्छुका (केवाँच) नामक इन औषधियोंको दस-दस पलकी मात्रामें एकत्र करके शुद्ध जलमें पकाना चाहिये। जब उस जलका चौथाई भाग शेष रह जाय तो उससे तेलको सिद्ध करे। यदि बकरीका दूध अथवा गौका दूध हो तो उसको उस तैलपाकमें चौगुना मिलाकर तेलकी मात्राके समान शतावरी और सेंधा नमक भी मिलाये। इस

प्रकार तैलपाकको सिद्ध करनेके पश्चात् उस तेलमें शतपुष्पा (सोया), देवदारु, बला, पर्णी, वचा (वच), अगुरु, कुष्ठ (कूट), जटामांसी, सेंधा नमक और पुनर्नवा एक-एक पल पीसकर मिलाना चाहिये। इस तेलका प्रयोग पीने, नस्य लेने तथा शरीरमें मर्दनके काममें करना चाहिये। इसके प्रयोगसे हृदयगत शूल, पार्श्वशूल, गण्डमाला, अपस्मार और वातरक्त नामक रोग दूर हो जाते हैं तथा शरीर शोभा-सम्पन्न हो जाता है। हे हर! इस तेलके प्रयोगसे खच्चरी भी गर्भ-धारण कर सकती है, स्त्रीके विषयमें तो कहना ही क्या? घोड़ा, हाथी और मनुष्योंमें वात-दोष होनेपर इस तेलका प्रयोग करना चाहिये। इतना ही नहीं सभी वात-विकारसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये इसका प्रयोग लाभप्रद है।

हिंगु (हींग), तुम्बुरु (धनिया) और शुण्ठी (सोंठ)-के द्वारा सरसोंका तेल सिद्ध करना चाहिये। इस तेलको कानमें डालनेसे कर्णशूल शान्त हो जाता है। सूखी मूली तथा सोंठका क्षार, हींग और हल्दीका चूर्ण समभागमें लेकर उसके चौगुने मट्ठेके साथ पूर्ववर्णित सरसोंके तेलमें पकाना चाहिये। इस तेलको कानोंमें डालनेसे उनके अंदर उत्पन्न बहरापन, शूल, मवादका स्राव और कृमिदोष विनष्ट हो जाता है।

सूखी मूली और सोंठका क्षार तथा हींग, हल्दी, सोया, वच, कूट, दारुहल्दी, सहिजन, रसाञ्जन, काला नमक, यवक्षार, समुद्रफेन, सेंधा नमक, ग्रन्थिक, विडंग, नागरमोथा, मधु, चार गुना शुक्तिभस्म, बिजौरा नीबूका रस और केलेका रस लेकर इन्हींसे सरसोंका तेल सिद्ध करना चाहिये। यह सिद्ध तेल कर्णशूल दूर करनेका अत्युत्तम उपाय है। हे हर! कानमें इसको डालनेसे बहरापन, कर्णनाद, पीबस्राव तथा कृमिदोष सद्यः विनष्ट हो जाता है। इसका नाम क्षारतैल है। इस तेलसे मुख तथा दाँतोंकी गंदगी भी दूर हो जाती है।

चन्दन, कुंकुम, जटामांसी, कर्पूर, चमेलीकी पत्ती, चमेलीका फूल, कंकोल, सुपारी, लौंग, अगरु, कस्तूरी, कुष्ठ, तगर, गोरोचन, प्रियंगु, बला, मेंहदी, सरल, सप्तपर्णी, लाक्षा, आँवला और रक्त कमल—इन औषधियोंको एकत्रकर इनसे तेल सिद्ध करना चाहिये। यह पसीनेके कारण शरीरमें उत्पन्न होनेवाले मल, दुर्गन्ध तथा खुजली और कुष्ठको दूर करनेवाला श्रेष्ठतम औषध है। हे रुद्र! इस तेलका प्रयोग करनेसे पुरुष अधिक पुरुषत्व-सम्पन्न हो जाता है और वंध्या स्त्री भी पुत्र प्राप्त कर सकती है।

यदि यवानी (अजवायन), चित्रक, धनिया, त्रिकटु, जीरा, काला नमक, विडंग, पिप्पलीमूल तथा राजिक (राई सरसों) नामक औषधियोंद्वारा आठ प्रस्थ जलसे युक्त एक प्रस्थ घृतका शोधन किया जाय तो यह सिद्ध घृत अर्श, गुल्म तथा शोथ रोगोंका विनाश करता है और जठराग्निको उद्दीप्त करता है।

काली मिर्च, निशोत, कूट, हरिताल, मैनसिल, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, रक्तचन्दन, विशाला (इन्द्रवारुणी), कनेर, मन्दारदुग्ध और गोबरका रस एकत्रकर—इन औषधियोंकी मात्रा एक-एक कर्ष अर्थात् दो-दो तोला हो, किंतु जो औषधियाँ विषैली हैं, उनकी मात्रा आधा पल अपेक्षित है—इन सभी औषधियोंके द्वारा आठ प्रस्थ गोमूत्रके साथ एक प्रस्थ सरसोंका तेल मिट्टीके पात्र अथवा लौहपात्रमें भरकर मन्द-मन्द आँचपर पकाये। जब यह सिद्ध हो जाय तो इस तेलके अभ्यङ्गसे पामा, विचर्चिका, दद्रु, विस्फोटक आदि रोग नष्ट हो जाते हैं और रुग्ण स्थानोंपर शुद्ध एवं कोमल त्वचा आ जाती है। अत्यधिक मात्रामें पहलेसे फैले हुए पुराने श्वेत कुष्ठको भी इस तेलके प्रयोगसे नष्ट किया जा सकता है।

हे शिव! परवलकी पत्ती, कटुकी, मंजीठ, अनन्तमूल, हल्दी, चमेलीकी पत्ती, शमीकी पत्ती, नीमकी पत्ती और मुलेठीके क्वाथसे सिद्ध घृतका लेप करनेसे व्रण पीड़ारहित हो जाता है और उसका बहना भी बंद हो जाता है।

शंखपुष्पी, वचा, सोमलता, ब्राह्मी, काला नमक, हरीतकी, गुडूची, जंगली अडूसा और वकुची नामक औषधियोंको समानरूपसे एक-एक अक्ष (पल)-की मात्रामें एकत्र करके उनसे एक प्रस्थ घृतको यथाविधि सिद्ध करना चाहिये, साथ ही कण्टकारीका रस एक प्रस्थ तथा गोदुग्ध भी एक प्रस्थ मिलाना चाहिये। इस घृतपाकका नाम ब्राह्मीघृत है। यह स्मृति और मेधाशक्तिको बढ़ानेवाला है।

अग्निमन्थ (गनियारी), वचा, वासा (अडूसा), पिप्पली, मधु तथा सेंधा नमक सात रात सेवन करनेसे मनुष्य किन्नरोंके समान मधुर गीत गानेवाला हो जाता है।

समान भागमें गृहीत अपामार्ग, गुडूची, वचा, कूट, शतावरी, शंखपुष्पी, हरीतकी और विडंगके चूर्णको समान भाग घृतके साथ सेवन करनेसे मात्र तीन दिनमें यह मनुष्यको एक सौ आठ ग्रन्थोंको कण्ठस्थ करनेकी क्षमतावाला बना देता है। जल, दूध या घृतके साथ एक

मासपर्यन्त सेवन की गयी वचा तो मनुष्यको श्रुतिधारक विद्वान् बना देती है। चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहणके अवसरपर दूधके साथ एक पल सेवन की गयी वचा मनुष्यको उसी समय श्रेष्ठतम प्रज्ञावान् बना देती है।

चिरायता, नीमकी पत्ती, त्रिफला, पित्तपापड़ा, परवल, मोथा और अडूसासे बने हुए क्वाथका पान विस्फोटक व्रणों और रक्तस्रावको विनष्ट कर सकता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

केतकीका फल, शंखभस्म, सेंधा नमक, त्रिकटु (काली मिर्च, सोंठ तथा पिप्पली), वचा, समुद्रफेन, रसाञ्जन, मधु, विडंग और मैनसिल नामक औषधियोंको एकमें मिलाकर बनायी गयी बत्तीका नेत्रोंमें प्रयोग करनेसे काच, तिमिर तथा पटलदोष नष्ट हो जाते हैं।

दो प्रस्थ अर्थात् आठ सेर उड़द लेकर उससे एक द्रोण अर्थात् सोलह सेर जलमें क्वाथ बनाना चाहिये, चौथाई भाग शेष रहनेपर उस क्वाथके द्वारा एक प्रस्थ अर्थात् चार सेर तेलका पाक करे। तदनन्तर उसमें एक आढक अर्थात् आठ सेर कांजी मिलाकर पिसे हुए पुनर्नवा, गोखरू, सेंधा नमक, त्रिकटु, वचा, काला नमक, देवदारु, मंजीठ और कण्टकारी ओषधियोंका चूर्ण मिश्रित करना चाहिये। हे महेश्वर! इस औषधका नस्य लेनेसे और पान करनेसे भयंकर कर्णशूल नष्ट हो जाता है। इसके अभ्यङ्गसे अर्थात् मालिश करनेसे कानोंका बहरापन एवं अन्य सभी प्रकारके शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं।

दो पल सेंधा नमक, पाँच पल सोंठ और चित्रक, पाँच प्रस्थ कांजी[1] तथा एक प्रस्थ तेलको एकमें पकाना चाहिये। जब यह पाक सिद्ध हो जाय तो इसके नस्य, पान एवं अभ्यङ्गसे असृग्दर (प्रदर), स्वरभंग, प्लीहा और सभी प्रकारके वात रोग विनष्ट हो जाते हैं।

गूलर, बरगद, पाकड़, दोनों प्रकारके जामुन, दोनों प्रकारके अर्जुन, पिप्पली, कदम्ब, पलाश, लोध्र, तिन्दुक, महुआ, आम, राल, बेर, कमल, नागकेशर, शिरीष और बीजङ्कतक—इनको एकमें मिलाकर क्वाथ बनाना चाहिये। तदनन्तर उस क्वाथसे तैलपाक सिद्ध करे। इस सिद्ध तेलका लेप करनेसे अत्यन्त पुराने व्रण नष्ट हो जाते हैं।

(अध्याय १९२)

बुद्धि-शुद्धकर ओषधि, विविध अभ्यङ्गों एवं उपयोगी चूर्णोंके निर्माणकी विधि, विरेचक द्रव्य तथा औषध-सेवनमें भगवान् विष्णुके स्मरणकी महिमा

श्रीहरिने कहा—[हे हर!] प्याज, जीरा, कूट, अश्वगन्धा, अजवायन, वचा, त्रिकटु और सेंधा नमकसे निर्मित श्रेष्ठ चूर्णको ब्राह्मीरससे भावित करके घृत तथा मधुके साथ मात्र एक सप्ताह प्रयुक्त करनेपर यह मनुष्यकी बुद्धिको अत्यन्त निर्मल बना देता है।

सरसों, वचा, हींग, करंज, देवदारु, मंजीठ, त्रिफला, सोंठ, शिरीष, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु, नीम और त्रिकटुको गोमूत्रमें घिसकर नस्य, आलेपन तथा उबटनके रूपमें प्रयुक्त करना हितकारी होता है। यह अपस्मार, विषोन्माद, शोथ तथा ज्वरका विनाशक है। इसके सेवनसे भूत-प्रेतादि-जन्य तथा राजद्वारीय भय विनष्ट हो जाता है।

नीम, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, सहिजन, सरसोंका तेल, देवदारु, परवल और धनियाको मट्ठेमें घिसकर उबटन बना लेना चाहिये। तदनन्तर शरीरमें तेल लगाकर इस उबटनका प्रयोग करे तो निश्चित ही पामा, कुष्ठ, खुजली ठीक हो जाती है।

सामुद्र लवण, समुद्रफेन, यवक्षार राजिका (गौरसर्षप), नमक, विडंग, कटुकी, लौहचूर्ण, निशोथ और सूरन—इन्हें समान भागमें लेकर दही, गोमूत्र तथा दूधके साथ मन्द-मन्द आँचपर पका करके जलसे पान करना चाहिये। यह चूर्ण अग्नि और बलवर्धक है। पुराना अजीर्ण रोग होनेपर इस चूर्णका सेवन जटामांसी आदिसे युक्त घृतके साथ करना चाहिये। यह इस रोगकी उत्तम ओषधि है। यह चूर्ण नाभिशूल, मूत्रशूल, गुल्म और प्लीहाजन्य जो भी शूल हैं, उन सभी शूलोंको विनष्ट करनेवाला है। यह जठराग्निको उद्दीप्त कर देता है। परिणाम नामक शूलमें तो यह परम हितकारी है।

हरीतकी, आँवला, द्राक्षा, पिप्पली, कण्टकारी,

१-एक सेर चावलको हँड़ियामें अच्छी तरह पकाकर ठंडा करे। उसमें चार किलो पानी डालकर मोटे कपड़ेसे मुख बंदकर जमीनमें दबाकर रखे। सात दिन बाद पानी छानकर निकाल ले, शेषको फेंक दे, उसीको 'कांजी' कहते हैं।

काकड़ासिंगी, पुनर्नवा और सोंठके चूर्णको खानेसे कास रोग विनष्ट हो जाता है।

समान भागमें हरीतकी, आँवला, द्राक्षा, पाढ़ा, बहेड़ा तथा शर्कराका चूर्ण खानेसे ज्वर रोग दूर हो जाता है। त्रिफला, बेर, द्राक्षा और पिप्पलीका चूर्ण विरेचक होता है। हरीतकी, गरम जल और नमकका सेवन करनेसे भी विरेचन होता है।

श्रीहरि बोले—हे उमापते! मेरे द्वारा कही गयी ये जितनी भी ओषधियाँ हैं, वे समस्त रोगोंको वैसे ही नष्ट कर देती हैं, जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षको नष्ट कर देता है। भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए ओषधिका सेवन करनेसे रोग नष्ट हो जाता है। उनका ध्यान, पूजन और स्तवन करते हुए ओषधिसेवन करना निश्चित ही लाभदायक होता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। (अध्याय १९३)

व्याधिहर वैष्णव कवच

श्रीहरिने कहा—हे रुद्र! अब मैं समस्त व्याधियोंके विनाशक, कल्याणकारी उस वैष्णव कवचको बताऊँगा, जिसके द्वारा प्राचीन कालमें दैत्योंको विनष्ट करते हुए भगवान् शिवकी रक्षा हुई थी।

अजन्मा, नित्य, अनामय, ईशान, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, जनार्दन, देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके मैं रक्षाके निमित्त अमोघ अप्रतिम वैष्णव कवचको धारण करता हूँ। जो सभी दु:खोंका निवारण करनेवाला और सर्वस्व है, वह कवच इस प्रकार है[1]—

भगवान् विष्णु मेरी आगेसे रक्षा करें। कृष्ण मेरी पीछेसे रक्षा करें। हरि मेरे सिरकी रक्षा करें। जनार्दन हृदयकी रक्षा करें। मेरे मनकी रक्षा हृषीकेश और जिह्वाकी रक्षा केशव करें। वासुदेव दोनों नेत्रोंकी तथा संकर्षण (बलराम) दोनों कानोंकी रक्षा करें। प्रद्युम्न मेरे नाककी, अनिरुद्ध शरीरके चर्मभागकी रक्षा करें। भगवान्‌की वनमाला मेरे कण्ठप्रदेशके नीचे अन्त:करणतक और उनका श्रीवत्स मेरे अधोभागकी रक्षा करे। दैत्योंका निवारण करनेवाला चक्र मेरे वामपार्श्वकी रक्षा करे। समस्त असुरोंका निवारण करनेवाली गदा मेरे दक्षिण पार्श्वकी रक्षा करे। मेरे उदरभागकी रक्षा मुसल और पृष्ठभागकी रक्षा लाङ्गल (हल) करे। मेरे ऊर्ध्वभागकी रक्षा शार्ङ्ग नामक धनुष तथा मेरे दोनों जंघा-प्रदेशोंकी रक्षा नन्दक नामक तलवार करे। मेरे पार्ष्णिभागकी रक्षा शंख और दोनों पैरोंकी रक्षा पद्म करे। गरुड सदैव मेरे सभी कार्योंके अभीष्ट अर्थकी सिद्धिके लिये रक्षा करते रहें। भगवान् वराह जलमें, भगवान् वामन विषम परिस्थितिमें, भगवान् नरसिंह वनमें और भगवान् केशव सब ओरसे मेरी

१-विष्णुर्मामग्रत: पातु कृष्णो रक्षतु पृष्ठत:। हरिर्मे रक्षतु शिरो हृदयं च जनार्दन:॥
मनो मम हृषीकेशो जिह्वां रक्षतु केशव:। पातु नेत्रे वासुदेव: श्रोत्रे सङ्कर्षणो विभु:॥
प्रद्युम्न: पातु मे घ्राणमनिरुद्धस्तु चर्म च। वनमाला गलस्यान्तं श्रीवत्सो रक्षतादध:॥
पार्श्वं रक्षतु मे चक्रं वामं दैत्यनिवारणम्। दक्षिणं तु गदा देवी सर्वासुरनिवारिणी॥
उदरं मुसलं पातु पृष्ठं मे पातु लाङ्गलम्। ऊर्ध्वं रक्षतु मे शार्ङ्गं जङ्घे रक्षतु नन्दक:॥
पार्ष्णी रक्षतु शङ्खश्च पद्मं मे चरणावुभौ। सर्वकार्यार्थसिद्ध्यर्थं पातु मां गरुड: सदा॥
वराहो रक्षतु जले विषमेषु च वामन:। अटव्यां नरसिंहश्च सर्वत: पातु केशव:॥
हिरण्यगर्भो भगवान् हिरण्यं मे प्रयच्छतु। सांख्याचार्यस्तु कपिलो धातुसाम्यं करोतु मे॥
श्वेतद्वीपनिवासी च श्वेतद्वीपं नयत्वज:। सर्वान् सूदयतां शत्रून् मधुकैटभमर्दन:॥
सदाकर्षतु विष्णुश्च किल्बिषं मम विग्रहात्। हंसो मत्स्यस्तथा कूर्म: पातु मां सर्वतो दिशम्॥
त्रिविक्रमस्तु मे देव: सर्वपापानि कृन्ततु। तथा नारायणो देवो बुद्धिं पालयतां मम॥
शेषो मे निर्मलं ज्ञानं करोत्वज्ञाननाशनम्। वडवामुखो नाशयतां कल्मषं यत्कृतं मया॥
पद्भ्यां ददातु परमं सुखं मूर्ध्नि मम प्रभु:। दत्तात्रेय: प्रकुरुतां सपुत्रपशुबान्धवम्॥
सर्वानरीन् नाशयतु राम: परशुना मम। रक्षोघ्नस्तु दाशरथि: पातु नित्यं महाभुज:॥
शत्रून् हलेन मे हन्याद्रामो यादवनन्दन:। प्रलम्बकेशिचाणूरपूतनाकंसनाशन: ।
कृष्णस्य यो बालभाव: स मे कामान् प्रयच्छतु॥

रक्षा करते रहें।

हिरण्यगर्भ भगवान् मुझे हिरण्य अर्थात् स्वर्णकी राशि प्रदान करें। सांख्यदर्शनके आचार्य भगवान् कपिल मुनि मेरे शरीरमें स्थित सभी प्रकारके धातुओंमें समानता बनाये रखें। श्वेतद्वीपमें निवास करनेवाले भगवान् अजन्मा विष्णु मुझको भी श्वेतद्वीपमें ले चलें। मधुकैटभका मर्दन करनेवाले विष्णु मेरे सभी शत्रुओंका विनाश करें। मेरे शरीरमें विद्यमान समस्त पापोंको खींच-खींचकर सदैव भगवान् विष्णु विनष्ट करते रहें। हंसावतार, मत्स्यावतार तथा कूर्मावतार धारण करनेवाले विष्णु सभी दिशाओंमें मेरी रक्षा करें। भगवान् त्रिविक्रमदेव मेरे समस्त पापोंको काट डालें। भगवान् नारायणदेव मेरी बुद्धिका विकास करें। शेषनारायण मेरे ज्ञानको निर्मल बनायें तथा अज्ञानका विनाश करें। मैंने जो कुछ भी पाप किया है, उस समस्त पापको भगवान् वडवामुख हयग्रीव विनष्ट करें।

भगवान् विष्णु मेरे दोनों पैरोंको और सिरको सुख प्रदान करें। भगवान् दत्तात्रेय मुझे पुत्र और बन्धु-बान्धव तथा पशुओंसे सम्पन्न रखें। भगवान् जामदग्न्य—परशुराम अपने परशुसे मेरे सभी शत्रुओंका विनाश करें। राक्षसोंके निहन्ता दशरथसुत आजानुभुज भगवान् श्रीराम मेरी नित्य रक्षा करें। यादवनन्दन बलराम अपने हलसे मेरे शत्रुओंका विनाश करें। प्रलम्ब, केशी, चाणूर, पूतना तथा कंसका संहार करनेवाला जो बालभाव भगवान् कृष्णका है, वही मेरे समस्त मनोरथोंको पूर्ण करे।

हे देव! मैं अन्धकारके समान तमोगुणसे सम्पन्न, हाथमें पाश धारण करनेवाले यमराजके सदृश काले-पीले वर्णवाले भयंकर पुरुषको देख रहा हूँ, उसके भयसे मैं संत्रस्त हो गया हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष भगवान् अच्युत! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आपके इस आश्रयसे मैं धन्य हो उठा हूँ। आपकी शरण ग्रहण करनेसे अब मुझे कोई भय नहीं रह गया है, अतः मैं नित्य निर्भय हो गया हूँ।

समस्त सांसारिक उपद्रवोंको विनष्ट करनेवाले भगवान् नारायणदेवका ध्यान करके वैष्णव कवचसे आबद्ध मैं पृथ्वीतलपर विचरण करता हूँ। इसीके प्रभावसे मैं सभी प्राणियोंके लिये अजेय हो गया हूँ। इतना ही नहीं, सर्वदेवमय भी हो गया हूँ। अपरिमित तेजसे सम्पन्न देवाधिदेव भगवान् विष्णुका स्मरण करनेसे मेरा समस्त मनोरथ नित्य सिद्ध होता रहे।

भगवान् वासुदेवके चक्रमें जो अरे लगे हैं, वे यथाशीघ्र मेरे समस्त पापोंका विनाश करें और मेरी हिंसा करनेवाले शत्रुओंका संहार करें।

राक्षस एवं पिशाचोंसे तथा गहन वन, प्रान्त, विवाद, राजमार्ग, द्यूतक्रीडा, लड़ाई, झगड़ा, नदी पार करनेकी स्थिति, आपत्काल, प्राणोंका संकट-काल, अग्निभय, चौरभय, ग्रहबाधा, विद्युत्-उत्पीडन, सर्पविषका उद्वेग, रोग, विघ्न, संकट आनेपर तथा भयविह्वल होनेपर इसका जप तो करना ही चाहिये, किंतु नित्य इसका जप करना विशेष लाभप्रद है। यह भगवान् विष्णुका मन्त्ररूपी कवच परम श्रेष्ठ तथा सभी पापोंका विनाशक है। (अध्याय १९४)

सर्वकामप्रदा विद्या

श्रीहरिने कहा—हे शिव! अब मैं 'सर्वकामप्रदा विद्या' का वर्णन करता हूँ, उसे सुनें। इसकी उपासना मात्र सात रात करनेसे ही सभी कामनाएँ सफल हो जाती हैं। सर्वकामप्रदा विद्या इस प्रकार है[1]—

हे भगवान् वासुदेव! आपका मैं ध्यान करता हूँ, आपको नमस्कार है। हे प्रद्युम्न! हे अनिरुद्ध! हे संकर्षण! आपको नमस्कार है। हे परमानन्दस्वरूप! आप मात्र अनुभवजन्य हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप आत्माराम एवं शान्तमूर्ति हैं तथा द्वैत-दृष्टिसे परे हैं, आपको मेरा नमस्कार है। यह समस्त चराचर जगत् आपका ही रूप है, आपको बारंबार

अन्धकारतमोघोरं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्। पश्यामि भयसंत्रस्तः पाशहस्तमिवान्तकम्॥
ततोऽहं पुण्डरीकाक्षमच्युतं शरणं गतः। धन्योऽहं निर्भयो नित्यं यस्य मे भगवान् हरिः॥
ध्यात्वा नारायणं देवं सर्वोपद्रवनाशनम्। वैष्णवं कवचं बद्ध्वा विचरामि महीतले॥
अप्रधृष्योऽस्मि भूतानां सर्वदेवमयो ह्यहम्। स्मरणाद्देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः॥ (१९४। ४—२२)

१-सर्वकामप्रदां विद्यां सप्तरात्रेण तां शृणु। नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च। नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये॥

प्रणाम है। हे अनन्तमूर्ति भगवान् हृषीकेश! आप महत्त्वरूपको नमस्कार है। प्रलयकालमें यह सारा जगत् जिस मूर्तिमें प्रविष्ट होकर स्थित रहता है और पुनः प्रलयकालके पश्चात् सृष्टिके प्रारम्भमें सबसे पहले उत्पन्न भी होता है तथा जो इस मृण्मयी पृथ्वीको धारण करता है, उस ब्रह्मदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। जिस देवको स्पर्श करने और पहचाननेमें न मन-बुद्धि समर्थ हैं, न ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राण समर्थ हैं तथा आकाशके समान जो देव समस्त चराचर प्राणियोंके अंदर और बाहर विचरण करते हैं, ऐसे व्योमस्वरूप आप (देव)-को मैं नमस्कार करता हूँ। हे पञ्चभूतोंके स्वामी ऐश्वर्यमूर्ति महापुरुष भगवान् वासुदेव! आपको नमस्कार है। हे परमेष्ठिन्! आपसे सकल सत्त्वोंकी उत्पत्ति होती है तथा आपके चरणारविन्दयुगल मानो शील-समूहरूपी कमलोंकी धर्माख्यविद्यारूप रेणूत्पल हैं, आपको नमस्कार है। चित्रकेतुने इस विद्याके द्वारा विद्याधरत्वको प्राप्त किया था। (अध्याय १९५)

विष्णुधर्माख्यविद्या

श्रीहरिने कहा—हे महेश्वर! जिस 'विष्णुधर्म' नामक विद्याका जप करके देवराज इन्द्रने समस्त शत्रुओंपर विजय प्राप्तकर इन्द्रत्व-पद प्राप्त किया था, उस विद्याको कहता हूँ।

इस विद्याके जपसे पूर्व दोनों पैर, दोनों जानु, दोनों जंघा-प्रदेश, उदर, हृदय, वक्षःस्थल, मुख और शिरोभागमें ॐकारादि वर्णोंसे यथाक्रम न्यास करना चाहिये। '**नमो नारायणाय**' इस मन्त्रद्वारा विपरीत-क्रमसे भी न्यास करे। तदनन्तर द्वादशाक्षर-मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**)-के आदि वर्ण ॐकारसे करन्यास करे। अन्तिम यकारसे अंगुष्ठ आदि अँगुलियोंकी पर्वसंधियोंमें न्यास करके हृदयमें ॐकारका न्यास करना चाहिये। सम्पूर्ण मन्त्रसे मस्तक-भागमें न्यास करे। मूर्धासे प्रारम्भ करके भ्रुवोंके मध्य-भागमें ॐकार-मन्त्रसे न्यास करके शिखा तथा नेत्रादिमें '**ॐ विष्णवे नमः**' इस मन्त्रसे न्यास करना चाहिये। अनन्तर अन्तरात्मामें उन परम शक्तियोंसे सम्पन्न परमात्मा शेषनारायणका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

मम रक्षां हरिः कुर्यान्मत्स्यमूर्तिर्जलेऽवतु॥
त्रिविक्रमस्तथाकाशे स्थले रक्षतु वामनः।
अटव्यां नरसिंहस्तु रामो रक्षतु पर्वते॥
भूमौ रक्षतु वराहो व्योम्नि नारायणोऽवतु।
कर्मबन्धाच्च कपिलो दत्तो रोगाच्च रक्षतु॥
हयग्रीवो देवताभ्यः कुमारो मकरध्वजात्।
नारदोऽन्यार्चनाद्देवः कूर्मो वै नैर्ऋते सदा॥
धन्वन्तरिश्चापथ्याच्च नागः क्रोधवशात् किल।
यज्ञो रोगात् समस्ताच्च व्यासोऽज्ञानाच्च रक्षतु॥
बुद्धः पाषण्डसंघातात् कल्की रक्षतु कल्मषात्।
पायान्मध्यन्दिने विष्णुः प्रातर्नारायणोऽवतु॥
मधुहा चापराह्ने च सायं रक्षतु माधवः।
हृषीकेशः प्रदोषेऽव्यात् प्रत्यूषेऽव्याज्जनार्दनः॥
श्रीधरोऽव्यादर्धरात्रे पद्मनाभो निशीथके।
चक्रकौमोदकीबाणा घ्नन्तु शत्रूंश्च राक्षसान्॥
शंखः पद्मं च शत्रुभ्यः शार्ङ्गं वै गरुडस्तथा।
बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्श्वविभूषणः॥
शेषः सर्पस्वरूपश्च सदा सर्वत्र पातु माम्।
विदिक्षु दिक्षु च सदा नरसिंहश्च रक्षतु॥
एतद्धारयमाणश्च यं यं पश्यति चक्षुषा।
स वशी स्याद्विपाप्मा च रोगमुक्तो दिवं व्रजेत्॥

(१९६। ६—१६)

भगवान् हरि मेरी रक्षा करें। मत्स्यमूर्ति भगवान् जलमें मेरी रक्षा करें। भगवान् त्रिविक्रम आकाशमें और भगवान् वामन स्थलमें मेरी रक्षा करें। वन-प्रान्तमें भगवान्

आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये। त्वद्रूपाणि च सर्वाणि तस्मात् तुभ्यं नमो नमः॥
हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्तमूर्तये। यस्मिन्निदं यतश्चैतत् तिष्ठत्यग्रेऽपि जायते॥
मृण्मयीं वहसि क्षोणीं तस्मै ते ब्रह्मणे नमः। यन्न स्पृशन्ति न विदुः मनोबुद्धीन्द्रियासवः।
अन्तर्बहिस्त्वं चरसि व्योमतुल्यं नमाम्यहम्॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतपतये सकलसत्त्वभाविव्रीडनिकरकमलरेणूत्पलनिभधर्माख्यविद्यया चरणारविन्दयुगल परमेष्ठिन् नमस्ते। अवाप विद्याधरतां चित्रकेतुश्च विद्यया॥ (१९५। १—६)

नरसिंह, पर्वतभागमें जामदग्न्य—परशुराम मेरी रक्षा करें। भूमिपर भगवान् वराह, व्योममें भगवान् नारायण मेरी रक्षा करें। कर्मोंके बन्धनसे भगवान् कपिल तथा रोगोंके प्रकोपसे भगवान् दत्तात्रेय मेरी रक्षा करें। भगवान् हयग्रीव देवताओंसे, कुमार कामदेवसे मेरी रक्षा करें। भगवान् नारद अन्य देवोंकी उपासनासे और भगवान् कूर्मदेव नैर्ऋतमें सदैव मेरी रक्षा करें। भगवान् धन्वन्तरि अपथ्य-सेवनसे, भगवान् शेषनाग क्रोधसे, भगवान् यज्ञदेव समस्त रोग-समुदायसे और भगवान् व्यास अज्ञानसे मेरी रक्षा करें। भगवान् बुद्ध पाखण्ड-समूहसे एवं भगवान् कल्किदेव पापसे मेरी रक्षा करें। भगवान् विष्णु मध्याह्नकालमें मेरी रक्षा करें। भगवान् नारायण प्रात:कालमें मेरी रक्षा करें। भगवान् मधुसूदन अपराह्णकाल और भगवान् माधव सायंकालमें मेरी रक्षा करें। भगवान् हृषीकेश प्रदोषकालमें तथा भगवान् जनार्दन प्रत्यूषकालमें मेरी रक्षा करें। भगवान् श्रीधर अर्धरात्रि तथा भगवान् पद्मनाभ निशीथकालमें मेरी रक्षा करें। हे भगवन्! आपका सुदर्शन, कौमोदकी गदा और बाण मेरे शत्रुओं तथा राक्षसादिका संहार करे। आपका शंख, पद्म, शार्ङ्ग धनुष तथा वाहन गरुड भी शत्रुओंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् वासुदेवके संनिकट स्थित अलंकारस्वरूप सभी पार्षद मेरे बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी रक्षा करें। सर्पका रूप धारण करनेवाले भगवान् शेषनारायण सदैव सर्वत्र मेरी रक्षा करें। भगवान् नरसिंह सदैव सभी दिशाओं और विदिशाओंमें मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार जो व्यक्ति इस विष्णुधर्माख्यविद्याको धारण करता है, वह अपने नेत्रोंसे जिस-जिसको देखता है वह उसीके वशमें हो जाता है और सभी पापोंसे मुक्त तथा रोगरहित होकर वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय १९६)

विषहरी गारुडी विद्या तथा भगवान् गरुडके विराट् स्वरूपका वर्णन

धन्वन्तरिने कहा—अब मैं गरुडके द्वारा कही गयी गारुडी विद्याका वर्णन करता हूँ। इस विद्याको सुमित्रने कश्यपमुनिसे कहा था। यह विद्या सभी प्रकारके विषोंका अपहारक है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व हैं। इन पाँचों तत्त्वोंके पृथक्-पृथक् मण्डल होते हैं तथा उन-उन मण्डलोंके अधिष्ठाता ये पृथ्वी आदि देवता ही माने गये हैं। अन्य देवता भी इन मण्डलोंमें स्थित रहते हैं। इनके पृथक्-पृथक् मन्त्र भी हैं। इन मण्डलाधिपति देवताओंके मन्त्रोंका यथाविधि न्यासपूर्वक जप करनेसे अभीष्ट-सिद्धि होती है और विष-बाधा दूर हो जाती है।

साधकको चाहिये कि वह पृथक्-पृथक् पाँचों मण्डलोंके स्वरूप तथा उनके अधिष्ठातृ देवोंका ध्यान करे। मण्डलोंका स्वरूप इस प्रकार है—पृथ्वीमण्डल चौकोर, फैला हुआ, चारों ओर मुखवाला तथा पीले वर्णका कहा गया है तथा यह मण्डल इन्द्रदेवतापरक है। वरुणमण्डल (जलमण्डल) पद्माकार तथा अर्धचन्द्रयुक्त है। इन्द्रनीलमणिके समान कान्तिवाले, सौम्यस्वरूप, स्वस्तिकसे युक्त, त्रिकोण आकारवाले अग्निमण्डलमें ज्वालामालाओंसे समन्वित अग्निका ध्यान करना चाहिये। विभिन्न ओषधियोंको पीसकर तैयार किये गये सुरमेके समान कान्तिवाले वृत्ताकार बिन्दुयुक्त वायुमण्डलमें वायुका ध्यान करे। आकाशमण्डलका चिन्तन क्षीरसागरमें उठती हुई लहरोंके समान आकारवाले, शुद्ध स्फटिकके सदृश आभावाले तथा सम्पूर्ण संसारको अपनी अमृतमयी रश्मियोंसे आप्लावित करनेवालेके रूपमें करे।

जो अष्ट महानाग कहे गये हैं, उनमेंसे वासुकि और शंखपाल नामक नाग पृथ्वीमण्डलमें स्थित रहते हैं। कर्कोटक तथा पद्मनाभ नामक दो नागोंका वास वरुणमण्डल (जलमण्डल)-में है। कुलिक और तक्षक नामक नाग अग्निमण्डलमें निवास करते हैं। महापद्म तथा पद्म नामक नाग वायुमण्डलमें रहते हैं। साधकको इन नागोंका ध्यान करके पृथ्वी आदि पञ्चभूत-तत्त्वोंका न्यास करना चाहिये। अंगुष्ठसे लेकर कनिष्ठापर्यन्त अंगुलियोंमें अनुलोम और

विलोम-रीतिसे न्यास करना चाहिये। अंगुलियोंकी पर्वसंधियोंमें जया तथा विजया नामक दो शक्तियोंका न्यास करना चाहिये।

पुन: अपने शरीरमें शिवषडङ्गन्यास, पञ्चतत्त्वन्यास तथा व्यापक-न्यास करे। देवताके नामके आदिमें 'प्रणव' तथा अन्तमें 'नम:' प्रयुक्त करे, यह विधि स्थापन एवं पूजनादिक-मन्त्रके रूपमें बतलायी गयी है। देवताके नामके आद्य अक्षर भी मन्त्ररूप होते हैं। आठों नागोंके जो मन्त्र हैं, वे उनके संनिधानको प्राप्त करानेवाले हैं। पञ्चतत्त्वोंके साथ आदिमें 'ॐ' और अन्तमें 'स्वाहा' लगानेसे मन्त्र बन जाते हैं। ऐसा करनेसे ये मन्त्र साक्षात् गरुडके समान साधकके सभी अभीष्ट कर्मोंको सिद्ध करनेवाले हो जाते हैं।

स्वर-वर्णोंसे करन्यास करके पुन: उन्हींसे शरीरके अन्य अङ्गोंमें भी न्यास करना चाहिये। तदनन्तर आत्मशुद्धिकारक उद्दीप्त प्राणशक्तिका चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद साधकको अमृतकी वर्षा करनेवाले बीजका ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार आप्यायन करके साधकको अपने मस्तिष्कमें आत्मतत्त्वका चिन्तन करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वर्णके समान कान्तिवाली, समस्त लोकोंमें फैली हुई तथा लोकपालोंसे समन्वित पृथ्वीका दोनों पैरोंमें न्यास करना चाहिये।

बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि वह भगवती पृथ्वीदेवीका अपने सम्पूर्ण देहमें न्यास करे। इसी प्रकार अपने देहके अङ्गोंमें शेष चार मण्डलों तथा उनमें स्थित देवोंका न्यास करे। इस प्रकार पञ्चभूत-तत्त्वोंका न्यास करके यथाक्रम आठ नागोंका न्यास-ध्यान करना चाहिये।

इसके बाद स्थावर और जंगम प्राणियोंके विष-दोषका विनाश करनेके लिये पक्षिराज गरुडका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—गरुडदेव अपने दोनों पैरों, पंखों तथा चोंचद्वारा पकड़े हुए कृष्णवर्णवाले नागोंसे विभूषित हैं। ग्रह, भूत, पिशाच, डाकिनी, यक्ष, राक्षसका उपद्रव होनेपर विषधर नागोंसे घिरे हुए भगवान् शिवका अपने शरीरमें न्यास करना चाहिये।

यथाविधि ध्यान-पूजन आदि कृत्योंको करके साधकको सभी कर्मोंमें सिद्धि प्राप्त करनेके लिये अभीष्ट रूप धारण करनेवाले, मनपर विजय प्राप्त करनेमें समर्थ, सम्पूर्ण संसारको अपने रसमें आप्लावित करनेवाले एवं सृष्टि तथा संहारके कारण, अपने प्रकाशपुञ्जसे उद्दीप्त और समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त, दस भुजाओं और चार मुखोंवाले, पिङ्गलवर्णके नेत्रवाले, हाथमें शूल धारण करनेवाले, भयंकर दाँतवाले, अत्यन्त उग्र, त्रिनेत्र तथा चन्द्रचूडसे विभूषित और गरुडस्वरूप भैरवका चिन्तन करना चाहिये।

नागोंका विनाश करनेके लिये उन परमतत्त्वने महाभयंकर गरुडका रूप धारण किया है। विराट्-रूप भगवान् गरुडके दोनों पैर पाताललोकमें स्थित हैं और उनके सभी पंख समस्त दिशाओंमें फैले हुए हैं। सातों स्वर्ग उनके वक्ष:स्थलपर विद्यमान हैं। ब्रह्माण्ड उनके कण्ठका आश्रय लेकर अवस्थित है, पूर्वसे लेकर ईशानपर्यन्त आठों दिशाओंको उनका शिरोभाग समझना चाहिये। अपनी तीनों शक्तियोंसे समन्वित सदाशिव इनके शिखामूलमें स्थित हैं। ये तार्क्ष्य (गरुड) साक्षात् परात्पर शिव और समस्त भुवनोंके नायक हैं। त्रिनेत्रधारी, उग्र स्वरूपवाले, नागोंके विषोंके विनाशक, सबको ग्रास बनानेवाले, भीषण मुखवाले, गरुडमन्त्रके मूर्तरूप, कालाग्निके सदृश देदीप्यमान गरुडदेवका अपने समस्त अभीष्ट कर्मोंकी सिद्धिके लिये चिन्तन करना चाहिये। जो मनुष्य न्यास-ध्यानकी विधि सम्पन्न करके इन देवकी पूजा करता है, उसका सब कुछ सिद्ध हो जाता है तथा वह स्वयं गरुडदेवकी शक्तिसे सम्पन्न हो जाता है। भूत, प्रेत, यक्ष, नाग, गन्धर्व तथा राक्षस आदि तो उसके दर्शनमात्रसे ही भाग जाते हैं। चौथिया आदि ज्वर भी विनष्ट हो जाते हैं। (अध्याय १९७)

त्रिपुराभैरवी तथा ज्वालामुखी आदि देवियोंके पूजनकी विधि

भैरवने कहा—इसके बाद मैं भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली त्रिपुरादेवीकी पूजा आदिका वर्णन करूँगा। उसे आप सुनें।

देवीका यथाविधि '**ॐ ह्रीं आगच्छ देवि**'—इस मन्त्रसे आवाहन करके '**ऐं ह्रीं ह्रीं**'—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए रेखा करके '**ॐ ह्रीं क्लेदिनी भं नमः**'—इस मन्त्रसे उन्हें प्रणाम करे तथा उनकी शक्तियोंके साथ महाप्रेतासनपर विराजमान रहनेवाली देवी त्रिपुराभैरवीका पूजन करे। '**ऐं ह्रीं त्रिपुरायै नमः**'—इस मन्त्रसे उन्हें नमस्कार करे। देवीके पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व आदि मुखोंको भी नमस्कार करे। '**ॐ ह्रीं पाशाय नमः**', '**क्रीं अङ्कुशाय नमः**', '**ऐं कपालाय नमः**' इत्यादि मन्त्रोंसे उनके पाश, अंकुश, कपाल आदि आयुधोंको नमस्कार करे। त्रिपुराभैरवीदेवीकी पूजामें आठ भैरवों तथा उनके साथ मातृकाओंकी भी पूजा करनी चाहिये। असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, चण्डभैरव, क्रोधभैरव, उन्मत्तभैरव, कपालिभैरव, भीषणभैरव तथा संहारभैरव—ये आठ भैरव हैं। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा तथा अपराजिता (दुर्गा)—ये आठ मातृकाएँ हैं। पूजकको चाहिये कि वह '**ॐ कामरूपाय असिताङ्गाय भैरवाय नमो ब्रह्माण्यै**'—इस मन्त्रसे पूर्व दिशामें कामरूप असिताङ्गभैरव और देवी ब्रह्माणीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। उसके बाद '**ॐ स्कन्दाय नमः, रुरुभैरवाय नमः, माहेश्वर्यै नमः**' मन्त्रोंद्वारा दक्षिण दिशामें स्कन्ददेव, रुरुभैरव और देवी माहेश्वरीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। '**ॐ चण्डाय नमः, कौमार्यै नमः**' इन मन्त्रोंसे पश्चिम दिशामें चण्डभैरव तथा देवी कौमारीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। तत्पश्चात् '**ॐ उल्काय नमः, ॐ क्रोधाय नमः, ॐ वैष्णव्यै नमः**'—इन मन्त्रोंसे उत्तर दिशामें उल्कादेव, क्रोधभैरव और देवी वैष्णवीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। '**ॐ अघोराय नमः, ॐ उन्मत्तभैरवाय नमः, ॐ वाराह्यै नमः**'—इन मन्त्रोंसे अग्निकोणमें अघोरदेव, उन्मत्तभैरव और देवी वाराहीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर '**ॐ साराय कपालिने भैरवाय नमः, ॐ माहेन्द्र्यै नमः**'—इन मन्त्रोंद्वारा नैर्ऋत्यकोणमें समस्त संसारके सारभूत स्वरूप कपालिभैरव और देवी माहेन्द्रीका आवाहनपूर्वक पूजन करे। उसके बाद साधकको '**ॐ जालन्धराय नमः, ॐ भीषणाय भैरवाय नमः, ॐ चामुण्डायै नमः**'—इन मन्त्रोंसे वायुकोणमें जालन्धर, भीषणभैरव और देवी चामुण्डाका आवाहनपूर्वक पूजन करना चाहिये। तदनन्तर '**ॐ वटुकाय नमः, ॐ संहाराय नमः, ॐ चण्डिकायै नमः**'—इन मन्त्रोंसे ईशानकोणमें वटुकदेव, संहारभैरव तथा देवी चण्डिकाका आवाहन करके उनकी पूजा करनी चाहिये।

इसके बाद साधकको रतिदेवी, प्रीतिदेवी, कामदेव और उनके पञ्चबाणोंकी पूजा भी करनी चाहिये। इस प्रकार सदैव ध्यान, पूजा, जप तथा होम करनेसे देवी सिद्ध हो जाती हैं। नित्यक्लिन्ना, त्रिपुराभैरवी और ज्वालामुखी नामक देवियाँ समस्त व्याधियोंकी विनाशिका हैं। अब मैं ज्वालामुखीदेवीके पूजनका क्रम कहूँगा। पद्मके मध्य देवी ज्वालामुखीकी पूजा करनी चाहिये तथा पद्मके बाह्य दलोंमें क्रमशः—नित्या, अरुणा, मदनातुरा, महामोहा, प्रकृति, महेन्द्राणी, कलनाकर्षिणी, भारती, ब्रह्माणी, माहेशी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, माहेन्द्री, चामुण्डा, अपराजिता, विजया, अजिता, मोहिनी, त्वरिता, स्तम्भिनी, जृम्भिणी तथा देवी कालिकाकी पूजा करनी चाहिये। देवी ज्वालामुखीकी यथाविधि पूजा करनेसे विष आदि दोष दूर हो जाते हैं।

भैरवने पुनः कहा—चूडामणि-यन्त्रके द्वारा प्रश्नकर्ताको शुभ एवं अशुभ समयका परिज्ञान हो जाता है।

(अध्याय १९८-१९९)

वायुजय-निरूपण

भैरवने कहा—हे देवि! अब मैं जय-पराजय तथा विदेश-यात्राके शुभाशुभ मुहूर्तका संकेत देनेवाले 'वायुजय' नामक विद्याका वर्णन करूँगा।

वायु, अग्नि, जल और इन्द्रको माङ्गलिक चतुष्टयके नामसे जाना जाता है। प्राय: प्राणीके शरीरमें वायु अधिकतर वाम और दक्षिणभागकी नाड़ियोंसे प्रवाहित होता है। अग्नि शरीरमें ऊर्ध्वगामी होता है और जल अधोगामी। महेन्द्र तत्त्व शरीरके मध्यभागमें स्थित रहता है, किंतु शुक्लपक्षमें वह वामभाग तथा कृष्णपक्षमें दक्षिण-भागकी नाड़ियोंसे होकर शरीरमें प्रवाहित होता है। प्रत्येक पक्षका प्रारम्भिक तीन-तीन दिन इसका उदयकाल है। अर्थात् शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे लेकर तृतीया तिथितक जो वायु नासिकाके वाम छिद्रसे होकर प्रवहमान रहता है और कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे लेकर तृतीया तिथिपर्यन्त जो वायु नासिकाके दक्षिण छिद्रसे होकर प्रवहमान रहता है, वह उदयकालका वायु माना जाता है। यदि इस नियमके अनुसार वायुका प्रवाह होता है तो अच्छा होता है, किंतु विपरीत होनेपर पतन होता है। यदि प्राणीके शरीरमें वायु सूर्यमार्गमें उदित होकर चन्द्रमार्गमें अस्त हो तो गुणोंमें वृद्धि होती है। इसके विपरीत होनेपर शरीरमें विघ्न होता है।

हे वरानने! दिन और रातमें सोलह संक्रान्तियाँ मानी गयी हैं। आधे-आधे प्रहरके बाद एक-एक संक्रान्तिका परिमाण है। इसी गतिसे शरीरमें प्रवहमान वायुका संक्रमण-काल आता है। जब वायु शरीरके अन्तर्गत आधे प्रहरके बाद ही संक्रान्त होने लगता है, अर्थात् आधे-आधे प्रहरमें वायुका भ्रमण होता है, तो स्वास्थ्यकी हानि अवश्यम्भावी है। भोजन और मैथुनकालमें दाहिने नासापुटसे वायु भ्रमण करे तो हितकर होता है। इस स्थितिमें हाथमें तलवार लेकर योद्धा युद्धमें यथेच्छ शत्रुओंको जीत सकता है। समस्त कार्योंमें यदि वाम नासापुटसे वायुका भ्रमण हो तो प्रश्नकर्ताका प्रश्न शुभकर तथा श्रेष्ठ माना गया है। वायुके महेन्द्र तथा वरुण (जल-तत्त्व)-में प्रवाहित होनेपर कोई भी दोष नहीं होता। दाहिनेसे प्रवाहित होनेपर अनावृष्टिका योग तथा बायेंसे प्रवाहित होनेपर वृष्टिका योग होता है। (अध्याय २००)

उत्तम तथा अधम अश्वोंके लक्षण, अश्वोंके आगन्तुज और त्रिदोषज रोगोंकी चिकित्सा तथा अश्वशान्ति, गजायुर्वेद, गजचिकित्सा और गजशान्ति

धन्वन्तरिने कहा—अब मैं अश्वायुर्वेद और अश्वोंके शुभ-अशुभ लक्षणोंका वर्णन करता हूँ।

जो अश्व कौएके समान नुकीले मुँहवाला, काली जीभवाला, वृक्षके समान फैले मुँहवाला, गरम तालुप्रदेशवाला, दोसे अधिक दन्तपङ्क्तियोंसे युक्त, दाँतरहित, सींगवाला, दाँतोंके मध्य रिक्त स्थानवाला, एक अण्डकोशसे युक्त, अण्डकोशसे रहित, कंचुकी (वक्ष:स्थलपर कंचुकके लक्षणसे समन्वित), दो खुरोंसे सम्पन्न, स्तनयुक्त, बिलौटेके समान पैरोंवाला, व्याघ्रके सदृश रूप एवं वर्णसे समन्वित, कुष्ठ तथा विद्रधि रोगके रोगी पुरुषके समान, जुड़वाँ उत्पन्न होनेवाला, बौना, बिलौटे और बंदरसदृश नेत्रोंवाला हो, वह दोषयुक्त होनेसे त्याज्य है।

उत्तम जातिका घोड़ा तो वह होता है, जो तुरुष्क प्रदेश (तुर्किस्तान, सिन्धु या अरब देश)-में जन्म लेता है। इसकी ऊँचाई सात हाथ होती है। मध्यम कोटिका घोड़ा पाँच हाथ और तृतीय कोटिका घोड़ा तीन हाथ ऊँचा माना गया है। स्वस्थ घोड़े छोटे-छोटे कानवाले, चितकबरे, प्रभावशाली, उत्साहसम्पन्न और दीर्घजीवी होते हैं।

रेवन्त सूर्यदेवके पुत्र हैं। इनकी पूजा, होम तथा 'ब्राह्मण-भोजन' आदिके द्वारा अश्वोंकी रक्षा करनी चाहिये। चीड़-वृक्षका काष्ठ, नीमकी पत्ती, गुग्गुल, सरसों, घृत, तिल, वचा (वच) और हींगको पोटली आदिमें रखकर घोड़ेके गलेमें बाँधनेसे घोड़ेका सदैव कल्याण होता है।

घोड़ेके शरीरमें उत्पन्न होनेवाला मुख्य दोष व्रण (घाव

होना) है। यह दो प्रकारका होता है—एक है आगन्तुज व्रणदोष और दूसरा है वात-पित्त आदि त्रिदोषोंसे उत्पन्न व्रणदोष। वातविकारके कारण उत्पन्न व्रणदोष चिरपाक (देरसे पकनेवाला) होता है और श्लेष्मविकारके कारण उत्पन्न व्रणदोष क्षिप्रपाक (शीघ्र पकनेवाला) होता है। पित्तज दोषके कारण उत्पन्न व्रणदोष घोड़ेके कण्ठ-भागमें दाह और रक्तविकारके कारण उत्पन्न व्रणमें मन्द-मन्द वेदना होती है। आगन्तुज अर्थात् बाहरसे चोट, गिरने या आघात आदिसे उत्पन्न व्रणदोषका शोधन शल्य-चिकित्साके द्वारा करना चाहिये। व्रणकी यह चिकित्सा करके उसमें एरण्डमूल, हल्दी, दारुहल्दी, चित्रक, सोंठ और लहसुन, मट्ठे अथवा काँजीमें पीसकर भर देना चाहिये। तिल, सत्तू, दही, सेंधानमक और नीमकी पत्ती एक साथ पीसकर उस व्रणपर रखनेसे भी घोड़ेको लाभ होता है।

परवल, नीमकी पत्ती, वचा (वच), चित्रक, पिप्पली और अदरकका चूर्ण बनाकर घोड़ेको पिलाना चाहिये। इसके सेवनसे घोड़ेका कृमिदोष, श्लेष्मविकार तथा वायुप्रकोप नष्ट हो जाता है। नीमकी पत्ती, परवल, त्रिफला और खैरका काढ़ा बनाकर यदि घोड़ेको पिलाया जाय तो उसका रक्तस्राव बंद हो जाता है। घोड़ेमें कुष्ठविकार होनेपर तो उसके उपशमनके लिये इसी काढ़ेको तीन दिन देना चाहिये। व्रणयुक्त कुष्ठरोग होनेपर सरसोंका तैल बहुत ही लाभप्रद है। लहसुन आदिका काढ़ा देनेसे उसके खाने-पीनेके दोष दूर हो जाते हैं। बिजौरा नीबूका रस जटामांसीके रसमें मिलाकर नस्य देनेसे तत्काल घोड़ेके वातजनित दोषोंका विनाश होता है।

घोड़ेको प्रथम दिन एक पल औषधीय नस्य देना चाहिये। उसके बाद एक-एक पल प्रतिदिन अधिक बढ़ाते हुए अठारह दिनतक उसका उपयोग करना चाहिये। यह मात्रा उत्तम प्रकारके घोड़ेकी है। मध्यम प्रकारके घोड़ोंकी औषधिकी मात्रा चौदह पल तथा अधम जातिके घोड़ोंकी आठ पल होती है। शरत् और ग्रीष्म ऋतुमें घोड़ोंको ऐसे विकारोंसे मुक्त करनेके लिये किसी भी प्रकारकी औषधिका नस्य-प्रयोग करना उचित नहीं है। घोड़ेके वातजन्य रोगमें शर्करा, घृत तथा दुग्धसे युक्त तैल, श्लैष्मिक रोगमें त्रिकटुसे युक्त कड़ुवा तैल और पित्तविकारमें त्रिफलाचूर्ण-समन्वित जलसे नस्य देना चाहिये। साठी चावल और दुग्ध खाने-पीनेवाला घोड़ा अत्यन्त बलशाली होता है। पके हुए जामुनके समान तथा सोनेके सदृश चमकते हुए वर्णवाला अश्व श्रेष्ठ होता है।

भारवाही घोड़ेको आधे-आधे प्रहरपर गुग्गुलका सेवन कराना चाहिये। जो घोड़ा बहुत ही जल्दी थक जानेके कारण रुक जाता हो, उसको खीर या दूध पिलाना चाहिये। वातजनित विकार होनेपर घोड़ेको भोजनमें साठी चावलका भात और दूध देना चाहिये। पित्तविकार होनेपर उसको एक कर्ष अर्थात् दो तोला जटामांसीका रस, मधु, मूँगका रस और घृतका मिश्रण देनेसे लाभ होता है। कफ-विकार होनेपर मूँग और कुलथी या कड़ुवा तथा तिक्त भोज्य-पदार्थ देना चाहिये। बधिरता या ग्रासजन्य रोगसे ग्रस्त होनेपर अथवा त्रिदोषजन्य विकारोंके उत्पन्न हो जानेसे दुखित घोड़ेको गुग्गुलकी औषधि देनी चाहिये। सभी प्रकारके रोगोंमें घोड़ेको पहले दिन अन्य प्रकारकी घासोंके साथ एक पल दूर्वा घास देना ही अपेक्षित है। उसके बाद इस मात्राको धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिये। एक दिनमें एक कर्ष अर्थात् दो तोला और अधिकतम पाँच पल दिया जा सकता है। सामान्य स्थितिमें घोड़ेके लिये खाने-पीनेके निमित्त अस्सी पल दूर्वाकी मात्रा श्रेष्ठतम मानी गयी है। उसकी मध्यम मात्रा साठ पल और अधम चालीस पल है।

घोड़ेको व्रण-कुष्ठ तथा खञ्ज-विकार (लँगड़ानेका विकार) होनेपर त्रिफलाके क्वाथमें भोजन मिलाकर देना चाहिये। मन्दाग्नि और शोथ-रोग होनेपर उसको गोमूत्रके साथ भोजन देना चाहिये। वात-पित्तजन्य व्रणविकार अथवा अन्य व्याधि होनेपर गोदुग्ध और घृत मिलाकर घोड़ेको भोजन देना लाभकारी है। दुर्बल घोड़ेको मासी नामक औषधिके साथ भोजन देना पुष्टिकारक होता है। शरत् और ग्रीष्म ऋतुमें घोड़ेको पाँच पल गुडूचीका रस घीमें मिलाकर अथवा दूधमें मिलाकर प्रातःकाल पिलाना चाहिये। यह घोड़ेके रोगोंका विनाश करनेवाली, उनको शक्तिसम्पन्न बनानेवाली और उनके तेजको बढ़ानेवाली है। गुडूची-कल्पके साथ शतावरी और अश्वगन्धा नामक औषधियोंके

रसकी मात्रा क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधमरूपमें चार पल, तीन पल तथा एक पल निश्चित की गयी है।

यदि घोड़ोंमें अकस्मात् एक ही प्रकारका रोग उत्पन्न हो जाय और उपचार होनेपर भी घोड़ेकी मृत्यु हो जाय तो उसे उपसर्ग (कोई दैवीप्रकोप या महामारी) समझना चाहिये। उसकी शान्तिके लिये हवन, पूजन, ब्राह्मण-भोजन आदि कराना चाहिये। हरीतकी-कल्पके सेवनसे भी उपसर्गकी शान्ति होती है। गोमूत्र, सरसोंके तैल और सेंधानमकसे युक्त हरीतकीकी मात्रा प्रारम्भमें पाँच मानी गयी है। तत्पश्चात् प्रतिदिन उसकी पाँच-पाँच मात्रा बढ़ाते हुए सौतक की जा सकती है। घोड़ेके लिये एक सौ हरीतकीकी मात्रा उत्तम है। अस्सी तथा साठ मात्राओंका भी परिमाण है जो मध्यम और अधम मात्राएँ मानी गयी हैं।

धन्वन्तरिजीने पुनः कहा—हे सुश्रुत! अब मैं (अश्वायुर्वेदकी भाँति) गजायुर्वेदका वर्णन करने जा रहा हूँ, आप उसे सुनें। अश्वचिकित्सामें बताये गये औषधिक कल्प हाथियोंके लिये भी हितकारी हैं। हाथीके निमित्त उक्त मात्रा चौगुनी होती है। पूर्ववर्णित औषधियोंके द्वारा भी हाथियोंमें पाये जानेवाले रोगोंको दूर किया जा सकता है। हाथियोंकी उपसर्गजनित व्याधियों (दैवीप्रकोप या महामारी आदि)-के उपशमनके लिये गजशान्तिकर्म करना चाहिये। देवताओं और ब्राह्मणोंकी रत्न आदिके द्वारा पूजा करके उन्हें कपिला गौका दान दे। रक्षा-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित वचा (वच) और सरसोंको मालामें पिरोकर हाथीके दोनों दाँतोंमें बाँधना चाहिये। सूर्य आदि नवग्रहोंके तथा शिव, दुर्गा, लक्ष्मी और विष्णुके पूजन आदिसे हाथीकी रक्षा होती है। देवादिकी पूजा करनेके पश्चात् प्राणियोंके लिये अन्नादिकी बलि देकर हाथीको चार घड़ोंके जलसे स्नान कराना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रोंद्वारा अभिमन्त्रित भोजन हाथीको देना चाहिये। हाथीके पूरे शरीरपर भस्म लगाना चाहिये। त्रिफला, पञ्चकोल (पीपर, पीपरामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठ), दशमूल, विडङ्ग, शतावरी, गुडूची, नीम, अडूसा और पलाशके चूर्ण अथवा क्वाथ हाथीके रोगोंको विनष्ट करनेमें समर्थ हैं। (अध्याय २०१)

स्त्रियोंके विविध रोगोंकी चिकित्सा, बालकोंकी रक्षाके उपाय तथा बलवर्धक औषधियाँ

श्रीहरिने कहा—हे शिव! पुनर्नवा अथवा अपामार्ग नामक औषधिकी जड़का गुण अद्वितीय है। इसका यथाविधि प्रयोग करनेसे प्रसव-वेदनाका कष्ट दूर हो जाता है। भुईंकुम्हड़ाकी जड़ अथवा साठी चावलको पीसकर एक सप्ताहपर्यन्त दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियोंके दूधकी वृद्धि होती है। हे रुद्र! इन्द्रवारुणी (इन्द्रायण)-की जड़का लेप करनेसे स्त्रियोंके स्तनोंकी पीड़ा विनष्ट हो जाती है। नीली, परवलकी जड़ तथा तिलको जलमें पीसकर घीके साथ तैयार किया गया लेप ज्वालागर्दभ नामक रोगका नाश करता है। पाढ़ाकी जड़को चावलके जलके साथ पीनेसे पाप-रोग विनष्ट हो जाता है। ऐसे रोगका विनाश कुष्ठ नामक औषधिके पीनेसे भी सम्भव है। हे शिव! बासी जलमें मधु मिलाकर पीनेसे वह पाप-रोगको दूर कर देता है। गोघृत और लाक्षारसको समभागमें लेकर दूधके साथ उसे पीनेसे प्रदररोग दूर हो जाता है। हे हर! द्विजयष्टी (ब्रह्मदण्डी), त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली)-का चूर्ण तिलके काढ़ेमें मिलाकर पीनेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म रोग दूर हो जाता है। हे महेश! लाल कमलका कन्द, तिल तथा शर्कराका औषधिक योग, स्त्रियोंमें गर्भधारणकी क्षमता उत्पन्न कर देता है। शर्कराके साथ इन औषधियोंको पीनेसे स्त्रियोंका गर्भपात रुक जाता है तथा शीतल जलके साथ सेवन करनेसे रक्तस्राव भी बंद हो जाता है। हे रुद्र! शरपोङ्खाकी जड़का क्वाथ और काँजी, हींग तथा सेंधानमक मिलाकर पीनेसे स्त्रियोंको शीघ्र ही प्रसव हो जाता है। बिजौरा नीबूकी जड़को कटिप्रदेशमें बाँधनेसे भी प्रसव यथाशीघ्र हो जाता है। अपामार्गकी जड़ सिरपर धारण करनेपर स्त्रीको गर्भजनित पीड़ा नहीं होती।

हे हर! जिस बालकके मस्तकपर गोरोचनका तिलक रहता है और जो बालक शर्करा तथा कुष्ठ नामक

औषधिका पान करता है वह विष, भूत, ग्रह तथा व्याधिजनित विकारोंसे दूर रहता है। हे रुद्र! शंखनाभि (सुगंधित द्रव्यविशेष), वच, कुष्ठ और लोहा (लोहेकी ताबीज या कड़ुला) बच्चेको सदैव धारण कराना चाहिये। इससे उपसर्गजन्य विपदाओंसे बच्चोंकी रक्षा होती है।

मधुके सहित पलाश, आँवला और विडङ्गका चूर्ण तथा गोघृतका पान करनेसे प्राणी महामति (कुशाग्रबुद्धिवाला) बन जाता है। हे महादेव! एक मासतक इस औषधिका सेवन करनेसे मनुष्य वृद्धावस्थाजन्य मृत्युके भयसे रहित हो जाता है। हे रुद्र! पलाशबीज, तिल, मधु और घृत समान भागमें लेकर एक सप्ताहतक सेवन करनेसे वृद्धावस्था दूर हो जाती है। आँवलेका चूर्ण, मधु, तेल (तिलका) तथा गोघृतके साथ एक मासपर्यन्त सेवन करनेसे मनुष्य युवा हो उठता है और विद्वान् बन जाता है। हे शिव! आँवलेका चूर्ण मधु अथवा जलके साथ प्रातःकाल सेवन करनेपर नासिकाकी शक्ति बढ़ जाती है। जो मनुष्य घी और मधुके साथ कुष्ठचूर्णका सेवन करता है, वह सुन्दर गन्धसे समन्वित देहवाला हो जाता है और एक हजार वर्षतक जीवित रहता है।

(अध्याय २०२)

गो एवं अश्व चिकित्सा

श्रीहरिने कहा—हे शिव! जो गौ अपने बछड़ेसे द्वेष करती है, उसे नमकसे युक्त उसीका दूध पिला देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह अपने बछड़ेसे प्रेम करने लगेगी। कुत्तेकी हड्डीको भैंस और गायके गलेमें बाँधनेसे उनके शरीरमें पड़े हुए कीड़े गिर जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। घुँघुचीकी जड़को खिलानेसे भी गायोंके शरीरमें पड़े हुए कीड़े विनष्ट हो जाते हैं। हे शिव! वरुणफलके रसको हाथसे मथकर उसे घावमें भरनेसे उसके अंदर पड़े हुए चार पैरवाले तथा दो पैरवाले कीड़े नष्ट हो जाते हैं। हे रुद्र! जया नामक औषधिको घावमें भरनेसे वह सूख जाता है। हाथीका मूत्र पिलानेसे गाय और भैंसोंमें फैलनेवाला उपसर्ग रोग (दैवी आपदाजन्य महामारी आदि) नष्ट हो जाता है। मट्ठेमें मसूर और साठी चावलको घिसकर पिलानेसे भी लाभ होता है।

गाय और भैंसके दूधमें तुलनात्मक दृष्टिसे गायका दूध ही पुरुषके लिये विशेष हितकारी होता है। हे शिव! शरपोंखाके पत्तेको नमकके साथ खिलानेसे घोड़े तथा हाथियोंका वारिस्फोट नामक रोग नष्ट हो जाता है। हे हर! घृतकुमारीके पत्तेका नमकके साथ सेवन करानेसे घोड़े आदिकी खुजली दूर हो जाती है। (अध्याय २०३)

औषधियोंके पर्यायवाची नाम

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! भगवान् धन्वन्तरिने इस प्रकार महर्षि सुश्रुतको वैद्यकशास्त्र सुनाया था। अब मैं औषधियोंके पर्यायवाची नाम संक्षिप्त रूपमें आप सभीको सुनाऊँगा।

स्थिरा—विदारीगन्धा, शालपर्णी तथा अंशुमती एक ही औषधिके नाम हैं। लाङ्गली नामक औषधि ही कलसी, क्रोष्टापुच्छा तथा गुहा नामसे कही जाती है। पुनर्नवाको वर्षाभू, कठिल्या और करुणा कहा जाता है। उरुबूक, आम तथा वर्द्धमानक—ये एरण्डके नाम हैं। झषा और नागबलाको एक ही औषधि मानना चाहिये। गोक्षुर अर्थात् गोखरुको श्वदंष्ट्रा कहा गया है। शतावरी नामक औषधि वरा, भीरु, पीवरी, इन्दीवरी तथा वरीके नामसे प्रसिद्ध है।

व्याघ्री, कृष्णा, हंसपादी और मधुस्रवा बृहती नामक औषधिके पर्याय हैं। कण्टकारी या कटेरीको क्षुद्रा, सिंही तथा निदिग्धिका कहा जाता है। वृश्चिका, त्र्यमृता, काली और विषघ्नी सर्पदन्ता नामक औषधिके नाम हैं। मर्कटी, आत्मगुप्ता, आर्षेयी तथा कपिकच्छुका—ये शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं। मुद्गपर्णी और क्षुद्रसहा मूँगके तथा माषपर्णी एवं महासहा उड़दके पर्याय हैं। दण्डयोन्यङ्ग (दण्डिनी)-को त्यजा, परा और महा नामसे स्वीकार किया गया है।

न्यग्रोध और वट बरगदका तथा अश्वत्थ और कपिल

पीपलका वाचक है। प्लक्षको गर्दभाण्ड, पर्कटी तथा कपीतन कहा जाता है। अर्जुन वृक्षका नाम पार्थ, ककुभ और धन्वी है। नन्दीवृक्षको प्ररोही तथा पुष्टिकारी कहते हैं। वंजुल और वेतस एक ही औषधिके वाचक हैं। भल्लातक तथा अरुष्कर भिलावाको कहा जाता है। लोध्र सारवक, धृष्ट और तिरीट नामसे अभिहित है तथा बृहत्फला, महाजम्बु और बालफला एक अर्थके वाचक हैं। जलजम्बु नादेयीका नाम है।

कणा, कृष्णा, उपकुंची, शौण्डी और मागधिका—ये नाम पिप्पलीके हैं। उसके जाननेवाले लोग उस औषधिकी मूलको ग्रन्थिक कहते हैं। ऊषण नामक औषधिको मरिच तथा विश्वा नामक महौषधिको शुण्ठी या सोंठ कहा जाता है। व्योष, कटुत्रय तथा त्र्यूषण इसी औषधिका नाम है। लांगलीको हलिनी और शेयसीको गजपिप्पली कहते हैं। त्रायन्तीका त्रायमाणा तथा उत्साका नाम सुवहा है।

चित्रकका नाम शिखी है। इसको वह्नि तथा अग्नि नामसे भी कहा जाता है। षड्ग्रन्था, उग्रा, श्वेता और हैमवती—ये नाम वचाके हैं। कुटजको शक्र, वत्सक तथा गिरिमल्लिका कहा जाता है। उसके बीजोंका नाम कलिङ्ग, इन्द्रयव और अरिष्ट है। मुस्तक और मेघ नाम मोथाके वाचक हैं। कौन्ती नामक औषधि हरेणुका नामसे कही जाती है। एला और बहुला शब्द बड़ी इलायची तथा सूक्ष्मैला एवं त्रुटि शब्द छोटी इलायचीके वाचक हैं। भार्ङ्गीका नाम पद्मा तथा काँजीका नाम ब्राह्मणयष्टिका है। मूर्वा नामक औषधि मधुरसा और तेजनीका नाम तिक्तवल्लिका है। महानिम्बको बृहन्निम्ब तथा दीप्यकको यवानिका (अजवाइन) कहा जाता है। विडङ्गका नाम क्रिमिशत्रु है। हिंगु अर्थात् हींगको रामठ भी कहते हैं। अजाजी जीरक अर्थात् जीरेका पर्यायवाची शब्द है। उपकुंचिकाको कारवी कहा जाता है। कटुला, तिक्ता तथा कटुरोहिणी—ये तीन कटुकी नामक औषधिके वाचक हैं। तगरका नाम नत और वक्र है। चोच, त्वच तथा वराङ्गक, दारुचीनी नामक औषधि कहलाती है। उदीच्यको बालक (मोथा) तथा ह्रीबेरको अम्बुबालकके नामसे अभिहित किया गया है। पत्रक और दल नाम तेजपत्ताके हैं। आरकको तस्कर कहा जाता है। हेमाभ नामक औषधिका नाम नाग भी है। इसलिये इसको लोग नागकेशर कहते हैं। असृक् तथा काश्मीरबाह्लीक शब्द कुंकुमके वाचक हैं।

पुर, कुटनट, महिषाक्ष तथा पलङ्कषा शब्द गुग्गुलके वाचक हैं। काश्मीरी और कट्फला श्रीपर्णीको कहा जाता है। शल्लकी, गजभक्ष्या, पत्री, सुरभी तथा श्रवा नाम गजारी औषधिके हैं। आँवलाको धात्री और आमलकी तथा अक्ष एवं विभीतक बहेड़ाको कहा जाता है। पथ्या, अभया, पूतना और हरीतकी शब्द हर्रेके पर्यायवाची हैं। इन तीनों फलोंको एकमें मिलाकर त्रिफला कहा जाता है। करंज या कंजा उदकीर्य्य तथा दीर्घवृत्तके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। यष्टी, यष्ट्याह्वय, मधुक और मधुयष्टी—ये जेठी मधुके वाचक हैं। धातकी, ताम्रपर्णी, समङ्गा तथा कुंजरा धातीफूलके नाम माने गये हैं। सित, मलयज, शीत और गोशीर्षको श्वेतचन्दन कहा जाता है। जो चन्दन रक्तके सदृश लाल होता है उसका नाम रक्तचन्दन है। काकोली नामकी औषधिको वीरा, वयस्या और अर्कपुष्पिकाके नामसे भी कहा जाता है। शृंगी नामक औषधि कर्कटशृंगी तथा महाघोषाके नामसे प्रसिद्ध है। वंशलोचनको तुगाक्षीरी, शुभा और वांशीके नामसे भी जाना जाता है। द्राक्षाका नाम मृद्वीका तथा गोस्तनिका है।

उशीर अर्थात् खस नामक औषधिका नाम मृणाल और लामज्जक है। सारको गोपवल्ली, गोपी और भद्रा कहा जाता है। दन्ती नामक औषधिका नाम कटङ्कटेरी भी है। हल्दीको दारु, निशा, हरिद्रा, रजनी, पीतिका और रात्रि कहा गया है। वृक्षादनी, छिन्नरुहा, नीलवल्ली तथा अमृतरसा नामवाली औषधि ही गुडूची है। वसुकोट, वाशिर और काम्पिल्ल नामक औषधि एक ही हैं। पाषाणभेदक, अरिष्ट, अश्मभित् तथा कुट्टभेदक—ये सभी नाम पत्थरचट्टा या पत्थरचूनाके वाचक हैं। घण्टाकको शुष्कक और सूचकको वचा (वच) नामसे अभिहित किया गया है। पीतशालको सुरस तथा बीजक नामसे कहा जाता है। वज्रवृक्षको महावृक्ष, स्नुहीको स्नुक् (थूहड़) और सुधाको गुडा माना गया है। तुलसीको सुरसा तथा उपस्था कहा जाता है। लोग इसीको कुठेरक,

अर्जुनक, पर्णी और सौगन्धिपर्णी भी कहते हैं। नील नामक औषधि सिन्धुवार है और निर्गुण्डीको सुगन्धिका कहा जाता है। सुगन्धिपर्णी नामकी औषधि वासन्ती और कुलजा नामसे जानी जाती है। कालीयक नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द हैं—पीतकाष्ठ तथा कतक। गायत्री नामकी औषधिका नाम खादिर है। कन्दर अर्थात् कत्था उसीका भेद माना गया है। नीलकमलके वाचक इन्दीवर, कुवलय, पद्म तथा नीलोत्पल माने गये हैं। सौगन्धिक, शतदल और अब्ज कमलको कहा जाता है। अजवर्ण, ऊर्ज, वाजिकर्ण तथा अश्वकर्ण एक ही औषधिके नाम हैं। श्लेष्मान्तक, शेलु और बहुवार एक ही अर्थके वाचक हैं।

सुनन्दक, ककुद्भद्र, छत्राकी तथा छत्र रास्ना नामकी औषधिके वाचक हैं। कबरी, कुम्भक, धृष्ट, क्षुद्विधा और धनकृत् एक ही औषधिके नाम हैं। कृष्णार्जक तथा कराल नामक औषधि कालमान या काममान नामसे प्रसिद्ध हैं। वरियारा नामक औषधिको प्राची, बला और नदीक्रान्ता कहा जाता है। काकजंघा नामकी औषधिका पर्यायवाची शब्द वायसी है। मूषिकपर्णी नामक औषधि भ्रमन्ती और आखुपर्णीके नामसे जानी जाती है। विषमुष्टि, द्रावण और केशमुष्टि—ये तीनों एक ही औषधिके वाचक हैं। किंलिही या किणिहीको कटुकी तथा अन्तकको अम्लवेतस कहा जाता है। अश्वत्था और बहुपत्रा एक ही औषधि है इसीको लोग आमलकी भी कहते हैं। अरूष्करका नाम पत्रशूक है। क्षीरीको राजादन नामसे स्वीकार किया गया है। महापत्रका नाम दाडिम है, इसीको करक भी कहा जाता है। मसूरी, विदली, शष्पा तथा कालिन्दी नाम एक ही अर्थके वाचक हैं। कटेरी वृक्षको कण्टका, महाश्यामा और वृक्षपादा कहा जाता है। विद्या, कुन्ती, त्रिभंगी, त्रिपुटी और त्रिवृत्—ये सभी शब्द एक औषधिके वाचक हैं। सप्तला, यवतिक्ता, चर्मा और चर्मकसा—ये सभी नाम समान औषधिके माने गये हैं। अक्षिपीलुको शंखिनी, सुकुमारी और तिक्ताक्षी कहा जाता है। अपराजिता नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द हैं गवाक्षी, अमृता, श्वेता, गिरिकर्णी तथा गवादिनी। काम्पिल्लको रक्ताङ्ग, गुण्डा और रोचनिका कहा जाता है। हेमक्षीरी या स्वर्णक्षीरी नामकी औषधिको पीता, गौरी तथा कालदुग्धिका नामसे स्वीकार किया गया है। गाङ्गेरुकी, नागबला, विशाला और इन्द्रवारुणी अर्थात् इन्द्रायण एक ही औषधिके वाचक हैं। रसांजन नामक औषधिके पर्याय हैं तार्क्ष्य, शैल, नीलवर्ण तथा अंजन। शाल्मली या सेमरवृक्षके निर्यासको मोचरस[1]के नामसे अभिहित किया जाता है। प्रत्यक्पुष्पीको खरी और अपामार्गको मयूरक कहा गया है। जंगली अड़ूसाका नाम है सिंहास्य वृषवासाक तथा आटरूष। जीवशाक नामक औषधिको जीवक और कर्बुरको शटी नामसे भी कहा गया है। कट्फलका नाम सोमवृक्ष तथा अग्निगन्धाका नाम सुगन्धिका भी है। सौंफको शताङ्ग और शतपुष्पा कहा जाता है। मिसिको मधुरिका माना गया है। पुष्करमूलको पुष्कर तथा पुष्कराह्वय नामसे भी स्वीकार करना चाहिये। यास नामक औषधिके पर्यायवाची शब्द हैं धन्वयास, दुष्पर्श और दुरालभा। वाकुची अर्थात् बकुची, सोमराजी और सोमवल्ली एक ही औषधिके नाम हैं। भँगरइयाको मार्कव, केशराज तथा भृंगराज कहा जाता है।

एडगज नामक औषधिको आयुर्वेद एवं वनस्पतियोंके विद्वान् चक्रमर्दक या चकवड़ कहते हैं। काकतुण्डी नामक औषधिके वाचक हैं सुरंगी, तगर, स्नायु, कलनाशा और वायसी। महाकालको बेल तथा तण्डुलीयको घनस्तन कहा जाता है। इक्ष्वाकुको तिक्ततुम्बी और तिक्तालापु कहा जाता है। धामार्गवको कोषातकी तथा यामिनी कहा जाता है। कृतभेद नामक इस कोषातकी औषधिका एक अन्य भेद है। देवताडक नामक वृक्षके पर्याय हैं जीमूतक तथा खुड्डाक। गृध्रादना, गृध्रनखी, हिङ्गु और काकादनी शब्द हींगके वाचक माने जाते हैं। करवीर (कनेर)-का पर्यायवाची शब्द है अश्वारि तथा अश्वमारक।

सेंधानमकको सिन्धु, सैन्धव, सिन्धूत्थ तथा मणिमन्थ कहा जाता है। यवक्षार लवणका नाम है क्षार और यवाग्रज। सज्जी या छज्जी मिट्टीका नाम है सर्जिका एवं सर्जिकाक्षार। काशीशके नाम हैं पुष्पकाशीश, नेत्रभेषज, धातुकाशीश और काशी। यह पुष्प एवं धातुभेदसे दो प्रकारका है। पङ्कपर्पटी

१-सेमलके गोंदको मोचरस कहते हैं।

(गुजराती मिट्टी)-को सौराष्ट्री, मृत्तिकाक्षार तथा काक्षी कहा जाता है। स्वर्णमाक्षिका नामक मिट्टीके पर्याय हैं माक्षिक, ताप्य, ताप्युत्थ और ताप्यसम्भवा। मन:शिला या मैनसिलका नाम है शिला। नेपाली मन:शिलाको कुलटी कहा जाता है। हरितालके लिये आल अथवा मनस्ताल नाम प्रयुक्त होता है। गन्धक, गन्धपाषाण तथा रस पारद या पारा कहलाता है। ताँबेके वाचक हैं ताम्र, औदुम्बर, शुल्ब और म्लेच्छमुख। लोहेको अद्रिसार, अयस्, लोहक तथा तीक्ष्ण भी कहा जाता है।

मधु शब्दके पर्यायवाची हैं माक्षिक, मधु, क्षौद्र और पुष्परस। इसके दो उपभेद हैं—ज्येष्ठी मधु तथा उदकी मधु। काँजीको सुवीरक नामसे अभिहित किया गया है। शर्कराको सिता, सितोपला और मत्स्याण्डीके नामसे कहा जाता है।

त्रिसुगन्धि नामक औषधिका निर्माण दारुचीनी नामक वृक्षकी छाल, इलायची तथा तेजपत्ताको समान मात्रामें मिलानेपर होता है, इसे त्रिजातक कहा जाता है, उसमें नागकेशरका मिश्रण कर देनेपर वह चतुर्जातक कहलाता है। पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और नागरके मिश्रित स्वरूपको पञ्चकोल और कोल कहा जाता है।

प्रियंगुको कंगुका (काकुन) तथा कोद्रव या कोदोको कोरदूषके नामसे जानना चाहिये। त्रिपुटका नाम पुट है और कलापका लङ्क नाम स्वीकार किया गया है। वेणु अर्थात् बाँसको सतीन तथा वर्तुल भी कहा जाता है।

पिचुक, पिचुल, अक्ष और बिडालपदक शब्द तौल-परिमाणमें एक कर्ष (सोलह मासा)-के वाचक हैं। सुवर्ण तथा कवलग्रहका बराबर मान है। पलार्ध अर्थात् आधा पल, एक शुक्ति तथा आठ माषक भारमें समान है। पल, बिल्व और मुट्ठीका परिमाण समान होता है। दो पलकी मात्राको प्रसृति अर्थात् एक पसर कहा गया है। अंजलि और कुडवका मान चार पलके बराबर होता है। आठ पलको अष्टमान कहा जाता है, उसे मान भी कहा गया है। चार कुडवका एक प्रस्थ (एक सेर) और चार प्रस्थका एक आढक अर्थात् एक अढ़ैया होता है। इसीको एक कांशपात्र कहा गया है। चार आढकका एक द्रोण होता है। एक सौ पलका एक तुला और बीस पलका एक भाग माना गया है। विद्वानोंने प्रस्थ आदिकी मात्रामें प्राप्त होनेवाले द्रव्योंका मान तो इस प्रकारसे कहा है, किंतु द्रव-पदार्थोंकी मात्राको उसका दुगुना स्वीकार किया गया है।

भद्रदारु, देवकाष्ठ तथा दारु देवदारुके वाचक हैं। कुष्ठको आमय और मांसीको नलदंश कहा गया है। शंख नामक औषधिका नाम शुक्तिनख है तथा व्याघ्र नामकी औषधि व्याघ्रनखी या व्याघ्रनख शब्दसे कही गयी है। गुग्गुल नामकी औषधिके वाचक पुर, पलङ्कष तथा महिषाक्ष शब्द हैं। रस गन्ध-रसका पर्यायवाची है, इसीको बोल भी कहा जाता है। सर्ज अर्थात् राल सर्जरसका बोधक है। प्रियङ्गु फलिनी, श्यामा, गौरी और कान्ता—इन नामोंसे अभिहित किया जाता है। करंज या कंजेका नाम नक्तमाल, पूतिक तथा चिरबिल्वक है। शिग्रु शोभाञ्जन तथा रोनमान नामसे प्रसिद्ध है। इसे सहिजन भी कहा जाता है। सिन्धुवार नामक औषधिके वाचक हैं—जया, जयन्ती, शरणी और निर्गुण्डी। मोरटा नामक औषधि पीलुपर्णी (मूर्वा) है तथा तुण्डीका नाम तुण्डिकेरी है।

मदन-वृक्षको गालव बोधा, घोटा और घोटी कहा जाता है। चतुरङ्गुल नामक औषधि सम्पाक तथा व्याधिघातक नामसे भी प्रसिद्ध है। आरग्वधका नाम राजवृक्ष और रैवत है। दन्तीको लोग काकेन्दु, तिक्ता, कण्टकी और विकङ्कत कहते हैं। निम्बको अरिष्ट कहा गया है तथा पटोलका एक नाम कोलक (परवल) है। वयस्थाका नाम विशल्या, छिन्ना और छिन्नरुहा है। गुडूचीके पर्यायवाची हैं—वशा, दन्ती तथा अमृता। किराततिक्तका नाम भूनिम्ब और काण्डतिक्त है।

सूतजीने कहा—हे शौनक! ये सभी नाम वनमें उत्पन्न होनेवाली औषधियोंके हैं। इन्हीं वनस्पतियोंका वर्णन भगवान् श्रीहरिने शिवजीसे किया था। अब मैं कुमार अर्थात् भगवान् स्कन्दके द्वारा कहे गये व्याकरणशास्त्रको बतलाऊँगा, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें। (अध्याय २०४)

व्याकरण-निरूपण

कुमारने कहा—हे कात्यायन! अब मैं संक्षेपमें व्याकरणके विषयमें बतला रहा हूँ। यह व्याकरणसे सिद्ध शब्दोंके ज्ञानके लिये तथा बालकोंकी व्युत्पत्ति-प्रक्रिया बढ़ानेके लिये है।

सुबन्त और तिङन्त—ये दो प्रकारके पद होते हैं। सुप् प्रत्यय सात विभक्तियोंमें बँटे हैं। सु , औ, जस्—यह प्रथमा विभक्ति है। प्रथमा विभक्ति प्रातिपदिकार्थमें, सम्बोधन-अर्थमें, लिङ्गादि-बोधक-अर्थमें तथा कर्मके उक्त होनेपर कर्मवाचक-पदसे और कर्ताके उक्त होनेपर कर्तृवाचक-पदसे होती है। धातु और प्रत्ययसे भिन्न अर्थवान् शब्दस्वरूपकी प्रातिपदिक संज्ञा होती है। **अम्, औट्, शस्**—यह द्वितीया विभक्ति है। द्वितीया विभक्ति कर्म-अर्थमें होती है। **अन्तरा, अन्तरेण** पदोंके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है। **टा, भ्याम्, भिस्**—यह तृतीया विभक्ति है। तृतीया विभक्ति करण और कर्ता-अर्थमें होती है। क्रिया (फल)-की सिद्धिमें अत्यन्त उपकारक कारककी करण संज्ञा होती है। क्रियाके प्रधान आश्रयको कर्ता कहते हैं। **ङे, भ्याम्, भ्यस्**—यह चतुर्थी विभक्ति है। चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान कारकके अर्थमें होती है। रुच्यर्थक धातुके योगमें तृप्त होनेवालेकी, ण्यन्त धृ धातुके प्रयोगमें उत्तमर्णकी एवं दानके उद्देश्यकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। **ङसि, भ्याम्, भ्यस्**—यह पञ्चमी विभक्ति है। पञ्चमी विभक्ति अपादान कारकके अर्थमें होती है। जिससे पृथक् हुआ जाता है, जिससे लिया जाता है, जिसके समीपसे लिया जाता है या जो भयका हेतु होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है। **ङस्, ओस्** और **आम्**—यह षष्ठी विभक्ति है। यह विभक्ति मुख्यरूपसे स्व-स्वामिभाव-सम्बन्धमें होती है। वस्तुतः सम्बन्ध सामान्य षष्ठीका अर्थ है। [इस सम्बन्धमें '**एकशतं षष्ठ्यर्थाः**' (षष्ठी विभक्तिके सौ अर्थ होते हैं) यह भाष्य अनुसंधेय है।] **ङि, ओस्, सुप्**—यह सप्तमी विभक्ति है। सप्तमी विभक्ति अधिकरण-अर्थमें हुआ करती है। आधारकी अधिकरण संज्ञा होती है। आधार औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक-भेदसे तीन प्रकारका होता है। वारणार्थक धातुके योगमें ईप्सित और अनीप्सितकी भी अपादान संज्ञा होती है। वारणार्थक धातुके प्रयोगमें जो ईप्सित अभीष्ट हो उसकी अपादान संज्ञा होती है तथा अनीप्सित (अनीच्छित)-की कर्म संज्ञा होती है। कर्मप्रवचनीयसंज्ञक **परि, अप्, आङ्** के योगमें तथा इतर, ऋते (बिना) अन्य-दिक् (दिशा)-वाचक शब्दका योग होनेपर पञ्चमी विभक्ति होती है। प्रत्ययान्तके एन योगमें द्वितीया विभक्ति होती है कर्मप्रवचनीय-संज्ञक पदोंके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है। लक्षण-अर्थमें, इत्थम्भूत तथा आख्यान-अर्थमें और वीप्सा-अर्थमें **प्रति, परि, अनु**की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। हीन-अर्थमें **अनु**की अधिक अर्थमें उप उपसर्गकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। अध्ववाचक-शब्दके कर्ममें और गत्यर्थक धातुके कर्ममें द्वितीया तथा चेष्टा-अर्थमें चतुर्थी विभक्ति होती है। दिवादिगणमें पठित मन् धातुके कर्ममें अनादरके तात्पर्यसे अप्राणिवाचक पदमें द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति होती है।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् और **वषट्**का योग होनेपर तथा तादर्थ्यके योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है। भाववाची तदर्थसे विहित तुमुन् प्रत्ययान्तसे चतुर्थी होती है।

सह शब्दसे युक्त और विकृत-अङ्गवाचक शब्दमें तृतीया विभक्ति होती है। कालार्थक तथा भावार्थक शब्दोंमें सप्तमी विभक्तिके प्रयोगका विधान है, किंतु षष्ठी विभक्तिका भी प्रयोग इन अर्थोंमें किया जाता है। स्वामी, ईश्वर, अधिपति, साक्षी, दायाद, प्रतिभू और प्रसूत—इन शब्दोंके योगमें षष्ठी एवं सप्तमी विभक्ति होती है। निर्धारण-अर्थमें षष्ठी तथा सप्तमी दोनों विभक्ति होती है। हेतुवाचक शब्दके प्रयोगमें हेतुद्योत्य होनेपर मात्र षष्ठी विभक्ति होती है।

स्मरणार्थक धातुके कर्ममें और प्रतियत्नार्थक कृ धातुके कर्ममें तथा शेषत्वकी विवक्षामें षष्ठी विभक्ति ही होती है। हिंसार्थक जास् नि पूर्वक और प्र पूर्वक हन् आदि और नाट् क्राथ् एवं पिष् धातुओंके कर्ममें शेषत्वकी विवक्षामें षष्ठी होती है तथा कृदन्त पदादिके योगमें कर्तृकर्मवाचक-पदसे षष्ठी होती है। निष्ठाप्रत्ययान्तके योगमें

कर्तृकर्मवाचक-पदसे षष्ठी विभक्ति नहीं होती।

प्रातिपदिक नाम और नामधातु—इन दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। भू आदि धातुओंसे लट् आदि दस लकार होते हैं, जिनके स्थानपर तिङ् प्रत्यय हुआ करते हैं। तिप्, तस्, झि प्रथमपुरुष हैं। सिप्, थस्, थ मध्यमपुरुष-संज्ञक प्रत्यय हैं और मिप्, वस्, मस् उत्तमपुरुष-संज्ञक प्रत्यय हैं। इन प्रत्ययोंकी परस्मैपद संज्ञा होती है। आत्मनेपदसंज्ञक प्रत्यय त, आताम्, झ की प्रथमपुरुष संज्ञा तथा थास् आथाम्, ध्वम् की मध्यमपुरुष संज्ञा और इट्, वहिङ्, महिङ्की उत्तमपुरुष संज्ञा होती है। ये परस्मैपद एवं आत्मनेपद प्रत्यय णिच् आदि प्रत्ययोंकी भाँति धातुसे विहित होते हैं।

युष्मद् और अस्मद्से अतिरिक्त क्रियाका कर्ता होनेपर धातुसे प्रथमपुरुष-संज्ञक प्रत्यय होते हैं। कर्ताके रूपमें युष्मद् शब्दका प्रयोग होनेपर मध्यमपुरुष और कर्ताके रूपमें अस्मद् शब्दका प्रयोग होनेपर उत्तमपुरुष होता है। भू आदिकी धातु संज्ञा होती है। सन्, क्यच्, काम्यच् आदि प्रत्यय जिसके अन्तमें हों उनकी भी धातु संज्ञा होती है। लट् लकारका प्रयोग वर्तमान कालके लिये होता है तथा 'स्म'का योग हो जानेपर वही क्रिया भूतकालिक हो जाती है। लिट् भूतकाल (परोक्ष)-के लिये प्रयोज्य है। अनद्यतन भूतके अर्थमें लङ् लकार होता है। आज्ञा तथा आशीर्वादकी क्रियाके निमित्त लोट् आदि लकारोंका प्रयोग होता है। विधि आदि अर्थमें भी लोट्का प्रयोग हो सकता है। विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न तथा प्रार्थनाके अर्थमें जो लिङ् होता है, उसे विधिलिङ् तथा आशीर्वादके अर्थमें जो लिङ् होता है उसे आशिष्लिङ् कहते हैं। भविष्य (सामान्य)-में लृट् लकार होता है और अनद्यतन भविष्यमें लुट् लकार होता है। हेतुहेतुमद्भावके विषयमें क्रियाकी अनिष्पत्ति गम्यमान हो तो भविष्य और भूत-अर्थोंमें लृङ् लकार होता है। लिङ् के अर्थमें लेट् लकार होता है, किंतु इसका प्रयोग केवल वेदमें होता है।

लकार सकर्मक धातुसे कर्ता या कर्म-अर्थमें तथा अकर्मक धातुसे भाव या कर्ता-अर्थमें होते हैं। कृत्संज्ञक प्रत्यय कर्ता अथवा कर्म अथवा भाव-अर्थमें होते हैं। इसी प्रकार तव्यत् आदि कृत्-संज्ञक प्रत्यय तथा अनीयर, तृच् आदि प्रत्यय होते हैं। (अध्याय २०५)

व्याकरणसार

सूतजीने कहा—हे विप्रो! अब मैं संहिता आदिसे युक्त सिद्ध शब्दोंको बतलाने जा रहा हूँ। आप उसे सुनें—सागता, बीदं, सूतमम्, पितृर्षभ, लृकार—इन पदोंमें दीर्घ सन्धि है। लांगलीषा, मनीषा—यहाँ पररूप सन्धि है। इसी प्रकार गंगोदकम् (यहाँ गुण हुआ है।) तवल्कारः (यहाँ गुण), ऋणार्णम्, प्रार्णम्में (वृद्धि), शीतार्तः में (दीर्घ), सैन्द्री-सौकरमें (वृद्धि), बध्वासन, पित्रर्थ, लनुबन्धमें (यण्), नायकः, लवणम्, गावःमें (अयादि), एते (गुण) त ईश्वराःमें (अय् और यलोप) (ये शब्द स्वरसन्धिके उदाहरण हैं।) देवी गृहमथो अत्र अ अवेहि पट्ट इमौ (इनमें प्रकृति भाव है।), अस्वाः षडस्य (जश्त्व), तन्न (अनुनासिक), वाक् (चर्त्व), षड्दलानि (जश्त्व), तच्चरेत् (श्चुत्व-चर्त्व), तच्छुनाति (परसवर्ण), तज्जलम् (श्चुत्व), तच्छ्मशानकम् (छत्व-श्चुत्व), सुगत्रण्णत्र, पचन्नत्र (नुट् आगम), भवांश्छादयति (अनुस्वार सुट्-श्चुत्व), भवाञ्ज्ञनकरः (परसवर्ण), भवांस्तरति, (अनुस्वार-सुट्), भवाँल्लिखति (परसवर्ण), ताञ्चक्रे (श्चुत्व), भवाञ्शेते (श्चुत्व) भवाण्डीनं त्वन्तरसि त्वङ्करोषि (परसवर्ण) (ये व्यञ्जनसंधिके उदाहरण हैं), सदार्चनम् (दीर्घ), कश्चरेत् (श्चुत्व) कृष्टकारेण (ष्टुत्व), कॅ्कुर्यात् कॅ्फले (जिह्वामूलीय विसर्ग) कश्शेते (श्चुत्व), कष्षण्ड: (ष्टुत्व), कस्कः (सत्त्व), क इहात्र क एवाहु—देवा आहुः, भो व्रज (रुत्व, यत्व, यलोप), स्वयम्भूर्विष्णुर्व्रजति (रुत्व) गीष्पतिः (षत्व), धूर्पतिः (रुत्व), कुटीच्छाया (तुक्-श्चुत्व), तथाच्छाया (तुक्-विकल्प)—ये विसर्गसन्धिके उदाहरण हैं।

समास छः प्रकारके होते हैं (द्वन्द्व, द्विगु, तत्पुरुष,

कर्मधारय, बहुव्रीहि, अव्ययीभाव)। **स द्विज: = सद्विज** (कर्मधारय), त्रिवेद (**त्रयाणां वेदानां समाहार: द्विगु**) **तत्कृत: तदर्थ: वृकभीति:, यद्धनम् ज्ञानदक्ष:** (इनमें क्रमश: **तेन कृत:, तस्मै अर्थ:, वृकाद् भीति:, यस्य धनम्, ज्ञानेदक्ष:** इस व्युत्पत्तिसे तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी तथा सप्तमी तत्पुरुष समास है।) तत्त्वज्ञमें बहुव्रीहि तथा अधिमानमें अव्ययीभाव समास है। **देवर्षिमानवा:** में **देवश्च ऋषिश्च मानवश्च** इस व्युत्पत्तिसे द्वन्द्व समास है।

'पाण्डव (**पाण्डो: अपत्यमिति पाण्डव: इत्यर्थे अण्**)', शैव (**शिवो देवताऽस्य इत्यर्थे अण्**)[1], ब्राह्मण्यम् (**ब्राह्मण: भाव: कर्म इत्यर्थे ष्यञ्**)[2], तथा ब्रह्मता (**ब्राह्मण:भाव: इत्यर्थे तल्**)[3], आदि तद्धित प्रत्ययान्त शब्द हैं।

देव, अग्नि, सखि, पति, अंश, क्रोष्टा (सियार), स्वायम्भुव, पितृ, नृ, प्रशस्ता (प्रशंसक), रै (धन), गौ और ग्लौ (चन्द्रमा)— ये अत्यन्त पुँल्लिङ्गके सिद्ध शब्द हैं। अश्वयुक् (घोड़ेसे युक्त), क्ष्माभुक् (पृथ्वीका उपभोग करनेवाला राजा), मरुत् (पवन), क्रव्याद, मृगव्यध (मृगका पीछा करनेवाला शिकारी), आत्मन्, राजन् (राजा), यव, पन्था (मार्ग), पूषन् (सूर्य), ब्रह्महन् (ब्राह्मणको मारनेवाला ब्रह्मघाती), हलिन् (हल धारण करनेवाला मनुष्य), विट् (जार पुरुष), वेधस् (विधाता), उशनस् (उशना-शुक्राचार्य), अनड्वान् (गाड़ी खींचनेवाला बैल), मधुलिट् (शहद चाटनेवाला भौंरा) तथा काष्ठतट् (कठफोर पक्षी या बढ़ई)— ये हलन्त् पुँल्लिङ्गके अन्तर्गत आनेवाले सिद्ध शब्द हैं।

वन (जंगल), वारि (जल), अस्थि (हड्डी), वस्तु (सामग्री), जगत् (संसार), साम्, अह:, कर्म, सर्पिष् (घी), वपुष् (शरीर), तेजस् (ऊर्जा)— ये आदिके चार शब्द अजन्त और शेष हल् प्रत्ययान्त नपुंसकलिङ्गके सिद्ध रूप हैं।

जाया (पत्नी), जरा (वृद्धावस्था), नदी, लक्ष्मी, श्री, स्त्री, भूमि, वधू, भ्रू (भौंह), पुनर्भू (पुनर्जन्म), धेनु (गौ), स्वसा (बहन), मातृ (माता) तथा नौ (नौका)— ये अजन्त स्त्रीलिङ्गमें सिद्ध रूप हैं।

वाक् (वाणी), स्रक् (माला), दिक् (दिशा), मुद् (मुदा-प्रसन्नता), क्रुध् (क्रोध), युवति, ककुभ्, द्यौ (आकाश), दिव् (स्वर्ग), प्रावृट् (वर्षा), सुमना और उष्णिक्— ये हलन्त स्त्रीलिङ्ग सिद्ध रूप हैं।

अब मैं आपको गुण, द्रव्य और क्रियाके योगसे बननेवाले स्त्रीलिङ्गके शब्दोंको भी बता रहा हूँ।

शुक्ल (श्वेत), कीलालक (अमृतके समान पेय पदार्थ), शुचि (पवित्रता), ग्रामणी (गाँवका अधिकारी), सुधी (विद्वान्), पटु (चतुर), कमलभू (कमलसे उत्पन्न ब्रह्मा या पराग), कर्तृ (कर्ता), सुमत (सुन्दर विचारोंवाला पुरुष), सूनु (पुत्र), सत्या, अभक्ष (न खाने योग्य), दीर्घपा, सर्वविश्वा, उभय (दो), उभौ, एक, अन्या (दूसरी) और अन्यतरा (दूसरेमें प्रमुख)— ये सब गुणप्रधान शब्द हैं। जो स्त्रीलिङ्गमें बनते हैं।

इसके बाद डतर (उच्चतर), डतम (उच्चतम), नेम, तु (तो), सम (समान), अथ (तदनन्तर), सिम (प्रत्येक), इतर (अतिरिक्त), पूर्व (प्राचीन), अध: (नीचे), च (और), दक्षिण (दक्षिण दिशा), उत्तर (उत्तर दिशा), अवर (अधम), पर (दूसरे), अन्तर, एतद् (यह), यद्यत् (जो-जो), किं (क्या), अदस् (यह), इदम् (यह), युष्मत् (तुम), अस्मत् (मैं-हम), तत् (वह), प्रथम (पहला), चरम (अन्तिम), अल्पतया (संक्षेप), अर्ध (आधा), तथा (और), कतिपय (कुछ), द्वौ (दो), चेति (और ऐसा), एवं (इस प्रकार)— ये सभी शब्द सर्वनाम हैं। इनको सर्वादिगणमें परिगृहीत किया गया है।

शृणोति (सुनता है), जुहोति (हवन करता है), जहाति (परित्याग करता है), दधाति (धारण करता है), दीप्यति (तेजस्वी बन रहा है), स्तूयति (स्तुति करता है), पुत्रीयति (पुत्रके समान व्यवहार करता है), धनीयति (धनवान् बन रहा है), व्युट्यति, म्रियते (मर रहा है), चिचीषति (संग्रहकी इच्छा कर रहा है) तथा निनीषति (ले जानेकी इच्छा कर रहा है)— ये कतिपय तिङन्तके सिद्ध रूप शब्द हैं।

---

१. शिवादिभ्योऽण् (पा०सू० ४।१।११२)

२. गुणवचनब्राह्मणादिभ्य: कर्मणि च (पा०सू० ५।१।१२४)

३. तस्य भावस्त्वतलौ (पा०सू० ५।१।११९)

'सर्व' शब्दके प्रथमा विभक्तिके बहुवचनमें 'सर्वे', चतुर्थी विभक्तिके एकवचनमें 'सर्वस्मै', पञ्चमी विभक्तिके एकवचनमें 'सर्वस्मात्', षष्ठी विभक्तिके बहुवचनमें 'सर्वेषाम्' रूप बनता है। इसी प्रकार विश्व आदि शब्दोंके रूपोंको भी आप जानें। पहले कहे गये 'पूर्व' शब्दके प्रथमा विभक्तिके बहुवचनमें 'पूर्वे, पूर्वाः' पञ्चमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मात्' और सप्तमी विभक्तिके एकवचनमें 'पूर्वस्मिन्' रूप बनता है।

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! सुबन्त और तिङन्त पदोंके सिद्धरूपका वर्णन नाममात्र ही किया गया है। कुमारसे इस व्याकरणको सुनकर कात्यायनने इसको विस्तारपूर्वक कहा था। (अध्याय २०६)

छन्द-विधान

सूतजीने कहा—अब मैं वासुदेव, गुरु, गणपति, शम्भु और सरस्वतीको नमस्कार करके अल्प बुद्धिवालोंके लिये विशिष्ट बुद्धिकी प्राप्ति-हेतु मात्रा और वर्णके भेदके अनुसार छन्द-विधानको कहता हूँ।

सभी गणोंमें आदि, मध्य और अन्त होता है। इसके अतिरिक्त इनमें गुरु तथा लघु होते हैं। (इन्हीं गुरु तथा लघु वर्णोंसे आठ गणोंकी रचना हुई है, जो यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण और सगण हैं।) लघु (ह्रस्व)-वर्णको ल एवं दीर्घ वर्णको ग कहा गया है। तीन गुरुवर्ण (ऽऽऽ)-को 'मगण', तीन लघुवर्ण (।।।)-को 'नगण', प्रथम गुरु और दो लघु (ऽ।।) होनेपर 'भगण', आदि लघु और इसके बाद दो गुरु (।ऽऽ) होनेपर 'यगण', दो आगे-पीछे लघु और मध्यवर्ण गुरु(।ऽ।)होनेपर 'जगण', मध्यवर्ण लघु और दोनों ओर दो वर्ण गुरु (ऽ।ऽ) होनेपर 'रगण', अन्तवर्ण गुरु और उसके पूर्वके दो वर्ण लघु (।।ऽ) होनेपर 'सगण' तथा अन्तवर्ण लघु और उसके पूर्व दो वर्ण गुरु (ऽऽ।)होनेपर 'तगण'—इस प्रकार तीन-तीन वर्णका एक-एक गण होता है। आर्या छन्द चतुष्कला है, इसके आदि, अन्त तथा मध्य सभी जगह चार-चार गण रहते हैं। व्यञ्जनान्त, विसर्गान्त, अनुस्वारयुक्त, दीर्घ एवं संयुक्त वर्णका पहला वर्ण गुरु होता है। पदके अन्तमें स्थित वर्ण विकल्पसे गुरु होता है। गुरुवर्ण दीर्घ मात्रावाला होता है। श्लोकको श्रवणकी मधुरता आदिके लिये कभी-कभी गुरुवर्ण भी लघुके रूपमें व्यवहृत होता है। छन्दोंको श्लोक तथा आर्यादिके नामोंसे अभिहित किया जाता है। विच्छेद स्थानको यति (विराम) कहा जाता है। इसका नाम विच्छेदन भी है। निर्दिष्ट स्थानमें यति न होनेपर यतिच्छेद या यतिभङ्ग होता है। श्लोकके चतुर्थांशको पाद कहा जाता है। समान अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ पादको युक् कहा जाता है। विषम अर्थात् प्रथम और तृतीय पादको अयुक् कहा जाता है, वृत्त अर्थात् जिसकी अक्षर-संख्या निर्दिष्ट होती है, वे छन्द तीन प्रकारके हैं—समवृत्त, अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त। (अध्याय २०७)

छन्द-विधान (आर्या आदि वृत्तोंके लक्षण)

सूतजीने कहा—आर्या छन्दका लक्षण इस प्रकार है—आर्या छन्दमें आठ गण होते हैं। इसका विषम गण अर्थात् प्रथम, तृतीय, पञ्चम तथा सप्तम सर्वदा जगण (।ऽ।)-रहित होता है। यदि छठे गणमें जगण (।ऽ।) अथवा नगण (।।।) और एक लघु (।) हो तो उस गणके द्वितीय अक्षरमें लघु होनेके कारण सुबन्त या तिङन्त लक्षणवाली 'पद' संज्ञाकी प्रवृत्ति हो सकती है। यदि सातवें गणमें सभी वर्ण ह्रस्व (।।।) हों तो उसके प्रथम अक्षरसे 'पद' संज्ञाकी प्रवृत्ति होती है। यदि आर्याके उत्तरार्द्ध भागमें पाँचवें गणमें सभी वर्ण लघु (।।।) हों तो उसके प्रथम अक्षरसे ही पदका आरम्भ होता है। जिस आर्याके पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें तीन-तीन गणोंके बाद पहले पादका विराम होता है, उसको **पथ्या** नामकी आर्या कहते हैं। जिस आर्याके पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध या दोनोंमें अथवा तीन गणोंपर पादविराम होता है, उसका नाम **विपुला** है। इन तीन विशेषताओंके कारण इसके तीन भेद हो जाते हैं, जिन्हें—१-आदिविपुला, २-अन्त्यविपुला और ३-उभयविपुला कहा गया है। जिस आर्या छन्दके द्वितीय तथा चतुर्थ गण गुरु

अक्षरोंके बीचमें होनेके साथ ही जगण अर्थात् मध्य गुरु (।ऽ।)-से युक्त हों तो उसे **मुखपूर्वादिचपला** नामकी आर्या कहते हैं। जिस आर्याके दूसरे उत्तरार्द्धमें चपलाका ही लक्षण हो तो उसे **सजघना** आर्या कहा जाता है। जहाँ आर्याका 'उत्तरार्द्ध' पूर्वार्द्धके समान ही होता है अर्थात् पूर्वार्द्धकी भाँति ही उसके उत्तरार्द्धमें भी छठा गण मध्य गुरु (।ऽ।) अथवा सर्व लघु (।।।) होता है तो उसे **गीति** की संज्ञासे अभिहित करते हैं। यदि आर्यामें उत्तरार्द्धकी भाँति पूर्वार्द्ध भी हो तो उसको **उपगीति** आर्या कहा जाता है। आर्यामें जब यही क्रम विपरीत हो जाता है तो वह **गीति** न होकर **उद्गीति** छन्द बन जाता है। यदि गीति-जातिवाले छन्दका अन्तिम वर्ण गुरु हो तो वही **आर्या गीति** नामक छन्द हो जाता है।

यदि विषम (प्रथम और तृतीय) पादमें ६-६, सम (द्वितीय तथा चतुर्थ) पादमें ८-८ मात्राएँ हों और उन सभीका प्रत्येक पाद एक रगण, एक लघु तथा एक गुरुसे संयुक्त हो तो वहाँपर **वैतालीय** छन्द होता है। किंतु इसीके प्रत्येक चरणमें एक-एक गुरु और बढ़ जाय तो उसको **औपच्छन्दसिक** छन्द माना गया है।

उपर्युक्त वैतालीय छन्दके प्रत्येक चरणके अन्तमें जो रगण, लघु तथा गुरुकी व्यवस्था मानी गयी है, यदि उनके स्थानपर भगण (ऽ।।) एवं दो गुरुओं (ऽऽ)-को रख दिया जाय तो उसे **आपातलिका** छन्दके नामसे जानना चाहिये। यदि इसी छन्दके प्रत्येक पादमें द्वितीय मात्रा पराश्रित हो तो वह **दक्षिणान्तिका** छन्द होता है।

वैतालीय विषमपादमें उदीच्य और समपादमें प्राच्य वृत्तिका प्रयोग होता है। जब समपाद (द्वितीय तथा चतुर्थ चरण)-में पञ्चम मात्राके साथ चतुर्थ मात्रा संयुक्त होती है तो उसे **प्राच्यवृत्ति** एवं पादसंयोगके कारण जब प्रथम और तृतीय चरणमें दूसरी मात्रा तीसरी मात्राके साथ सम्मिलित हो तो उसे **उदीच्यवृत्ति** नामक वैतालीय छन्द कहते हैं। जब दोनों छन्दोंके लक्षण एक ही छन्दमें प्रयुक्त हों अर्थात् उस छन्दके प्रथम तथा तृतीय चरणमें तृतीय मात्राके साथ द्वितीय मात्रा संयुक्त हो जाय और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणमें पञ्चम मात्राके साथ चतुर्थ मात्रा संयुक्त हो जाय तो वह **प्रवृत्तक** नामक वैतालीय छन्द हो जाता है। जब वैतालीय छन्दमें प्रथम और तृतीय, द्वितीय तथा चतुर्थ चरण विषम-पादोंके ही अनुसार हों अर्थात् प्रत्येक पाद चौदह लकारों (मात्राओं)-से युक्त हो और उनमें द्वितीय मात्रा तृतीयसे संलग्न होती हो तो उसे **चारुहासिनी** वैतालीय छन्द कहते हैं।

वक्त्र जातिके छन्दमें पादके प्रथम वर्णके पश्चात् सगण (।।ऽ) और नगण (।।।)-का प्रयोग नहीं करना चाहिये। इनके अतिरिक्त उनमें अन्य किसी भी गणका प्रयोग हो सकता है, किंतु पादके चतुर्थ अक्षरके बाद भगण (ऽ।।) का प्रयोग उचित है।

जिस वक्त्र जातिके छन्दमें सम (द्वितीय एवं चतुर्थ)-पादके चौथे अक्षरके बाद जगण (।ऽ।)-का प्रयोग हो तो वह **पथ्यावक्त्र** छन्द है, किंतु कुछ लोग इसके विपरीत प्रथम और तृतीय पादमें चौथे अक्षरके बाद जगण (।ऽ।)-का प्रयोग करते हैं। जब विषमपादोंमें चतुर्थ वर्णके बाद नगण (।।।) हो और समपादोंमें चतुर्थ वर्णके बाद यगण (।ऽऽ)-का प्रयोग किया जाय तो वह **विपुला** नामक वक्त्र छन्द है। जब समपादोंमें सातवाँ अक्षर लघु (।) होता है अर्थात् चौथे वर्णके बाद जगण (।ऽ।) हो तो उसको **विपुलावक्त्र** छन्द कहते हैं। आचार्य सैतवका मत है कि विपुलावक्त्रके सम और विषम सभी पादोंमें लघु (।) होना चाहिये। जब प्रथम और तृतीय पादमें चतुर्थ अक्षरके बाद यगण (।ऽऽ)-को बाधित करके विकल्परूपसे भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) एवं तगण (ऽऽ।) आदि हों तो वहाँ **विपुलावक्त्र** छन्द होता है।

जिस छन्दके प्रत्येक पादमें सोलह लकार हों तथा पादके अन्तिम अक्षर गुरु हों, उसे **मात्रासमक** छन्द कहा गया है। इस छन्दमें नवम लकार किसीसे मिला नहीं रहता। जिस मात्रासमकके चारों चरणोंमें पाँचवाँ तथा आठवाँ मात्रा (लकार) लघु होती है, उसका नाम **विश्लोक** है। जिस मात्रासमकके चरणमें बारहवाँ लकार अपने स्वरूपमें ही स्थित रहता है, किसीसे मिलता नहीं, उसका नाम **वानवासिका** है। जिसके चारों चरणोंमें पाँचवाँ, आठवाँ तथा नवाँ मात्रा (लकार) लघु होती है तो उसे **चित्रा** कहा जाता है।

उपर्युक्त सममात्रिक, विश्लोक, वानवासिका, चित्रा तथा उपचित्रा[1] नामके छन्दोंमें जिस किसी भी छन्दके एक-एक

[1] जहाँ नवाँ लकार दसवेंके साथ मिलकर गुरु हो जाता है, वहाँ उपचित्रा नामक छन्द होता है।

चरणको लेकर उससे चार चरणोंवाले अन्य छन्दकी रचना की जाय, उसे **पादाकुलक** छन्द कहते हैं।

यदि इसी सोलह मात्राओंवाले छन्दके प्रत्येक पादमें लघु मात्राओंका प्रयोग हो और वे किसीसे मिलकर दीर्घ न हो गयी हों तो उसे **वृत्तमात्रा** छन्द कहते हैं। जब इन्हीं छन्दोंके अनुसार पूर्वार्द्ध भागमें लघु-ही-लघु और उत्तरार्द्ध भागमें गुरु-ही-गुरु वर्ण या मात्राएँ होती हैं तो उसे **ज्योति** छन्द कहते हैं। जब इस छन्दके विपरीत पूर्वार्द्ध भागमें सब वर्ण या मात्राएँ गुरु हों और उसके उत्तरार्द्ध भागमें सब लघु हों तो उसे **सौम्या** छन्द कहा जाता है।

जिस छन्दके पूर्वार्द्धमें अट्ठाईस लघु तथा एक गुरु और उत्तरार्द्धमें तीस लघु एवं एक गुरु मात्रा हो, उसे **शिखा** कहते हैं। यदि छन्दमें यही क्रम विपरीत होता है, अर्थात् पूर्वार्द्धमें तीस लघु, एक गुरु और उत्तरार्द्धमें अट्ठाईस लघु, एक गुरुकी मात्रा होती है तो उसे **खञ्जा** कहा जाता है। जिस मात्रासमक छन्दके पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्धमें क्रमशः सत्ताईस-सत्ताईस लघु मात्राएँ और एक-एक गुरु मात्रा होती है, उसे **रुचिरा** कहते हैं। (अध्याय २०८)

छन्द-विधान (समवृत्तलक्षण)

श्रीसूतजीने कहा—हे विप्रो! एक गुरु (ऽ) तथा दो गुरु (ऽऽ)-से पृथक्-पृथक् बने हुए छन्दोंको क्रमशः **श्री** या **उक्था स्त्री** या **अत्युक्था** के नामसे अभिहित किया गया है। एक मात्र मगण (ऽऽऽ)-से बने हुए छन्दको 'नारी', एक रगण (ऽ।ऽ)-से बने हुए छन्दको **मध्या** और एक मगण (ऽऽऽ) तथा एक गुरु (ऽ)-से बने हुए छन्दको **कन्या** कहते हैं। ये प्रतिष्ठा छन्दके भेद हैं। भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ)-से युक्त छन्दका नाम **पङ्क्ति** है। यह सुप्रतिष्ठाका भेद है। तगण (ऽऽ।) एवं यगण (।ऽऽ)-से संयुक्त छन्दका नाम **तनुमध्या** है। नगण (।।।) और यगण (।ऽऽ)-से बने हुए छन्दको **बालललिता** कहा जाता है। ये छः वर्णवाले गायत्री छन्दके भेद हैं।

मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ)-से बने हुए छन्दको **मदलेखा** कहते हैं। विद्वानोंने इसे **उष्णिक्** का भेद स्वीकार किया है। जिस छन्दके चारों पादमें दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) हों, वह **चित्रपदा** के नामसे प्रसिद्ध है। जिस छन्दके चारों चरण दो मगण (ऽऽऽ, ऽऽऽ) एवं दो गुरु (ऽऽ)-से संयुक्त होते हैं, वह **विद्युन्माला** नामक छन्द है। जिस छन्दके प्रत्येक पादमें भगण (ऽ।।), तगण (ऽऽ।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ) हो, उसे **माणवक** कहते हैं। जिसके चारों चरणोंमें समान रूपसे मगण (ऽऽऽ) ,नगण (।।।) तथा दो गुरु (ऽऽ) होते हैं, उसे **हंसरुत** नामक छन्द माना गया है। जिसके चारों चरण एक रगण (ऽ।ऽ), एक जगण (।ऽ।), एक गुरु (ऽ) तथा एक लघु (।)-से संयुक्त होते हैं, वह **समानिका** नामका छन्द है और जिसके प्रत्येक चरणमें एक जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है, उसका नाम **प्रमाणिका** है। इन दोनोंसे भिन्न जो छन्द होता है, उसको **वितान** के नामसे जानना चाहिये। ये सब आठ वर्णोंके चरणवाले अनुष्टुप् छन्दके भेद हैं।

रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) और सगण (।।ऽ)-से जिस छन्दका प्रत्येक चरण समन्वित होता है, उसका नाम **हलमुखी** है। जो छन्द प्रत्येक पादमें दो नगण (।।।, ।।।) और एक मगण (ऽऽऽ)-से संयुक्त रहता है, उसे **शिशुभृता** कहते हैं। ये नौ वर्णोंके चरणवाले बृहती छन्दके भेद हैं। जो अपने चारों चरणोंमें समान रूपसे सगण (।।ऽ), मगण (ऽऽऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ)-से युक्त है, उस छन्दको **विराजिता** कहते हैं। प्रत्येक पादमें मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ) और एक गुरु (ऽ)-से पूर्ण छन्दका नाम **पणव** है। **मयूरसारिणी** नामक छन्दके चारों चरणोंमें समान रूपसे एक रगण (ऽ।ऽ), एक जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ) एवं एक गुरु (ऽ) होता है। **रुक्मवती** छन्दके प्रत्येक पादमें एक भगण (ऽ।।), एक मगण (ऽऽऽ) , एक सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ)-का विधान है। जिस छन्दके सभी चरणोंमें मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ) होता है, उसका नाम **मत्ता** है। जिसके प्रत्येक चरणमें नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।) तथा एक गुरु (ऽ) है, उसे **मनोरमा** कहा गया है। ये सभी

दस वर्णोंवाले पङ्क्ति छन्दके भेद हैं।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।), दो गुरु (ऽऽ) होते हैं, उसे **इन्द्रवज्रा** कहते हैं और जिस छन्दमें क्रमशः एक जगण (।ऽ।), एक तगण (ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।) एवं दो गुरु (ऽऽ) हों, उसका नाम **उपेन्द्रवज्रा** है। जब एक ही छन्दमें ये दोनों इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा छन्द सम्मिलित रहते हैं, तो उसे उपजाति कहा जाता है। इनके अनेक भेद हैं। यथा—

सुमुखी नामक छन्दके प्रत्येक चरणमें एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ) होता है। **दोधक** में तीन भगण (ऽ।।, ऽ।।, ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। **शालिनी** नामक जो छन्द है उसके सभी चरणोंमें एक मगण (ऽऽऽ), दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।) एवं दो गुरुओं (ऽऽ) की युति होती है। इसके प्रत्येक चरणमें चौथे तथा सातवें अक्षरपर विराम होता है। **वातोर्मी** छन्दके प्रत्येक चरणमें दो मगण (ऽऽऽ, ऽऽऽ), एक तगण (ऽऽ।) होता है और उसके बाद दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। इसमें भी चार, सातपर विराम होता है।

जो छन्द प्रत्येक चरणमें मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), नगण (।।।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से युक्त हो, उसे **भ्रमरविलासिता** नामक छन्द कहा गया है। **रथोद्धता** छन्द अपने सभी चरणोंमें एक रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), एक लघु (।) एवं एक गुरु (ऽ)-से संयुक्त होता है। **स्वागता** के प्रत्येक पादमें एक रगण (ऽ।ऽ), एक नगण (।।।), एक भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) होते हैं। **वृत्ता** नामक छन्दके प्रत्येक पादमें दो नगण (।।।, ।।।), एक सगण (।।ऽ) और दो गुरु (ऽऽ) सन्निहित होते हैं। **समद्रिका** छन्दमें दो नगण (।।।, ।।।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है। जिस छन्दके प्रत्येक चरण रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ)-से युक्त हों, वह **श्येनिका** नामक छन्द है। जहाँ सभी चारों चरणोंमें एक जगण (।ऽ।), एक सगण (।।ऽ), एक तगण (ऽऽ।), दो गुरु (ऽऽ) हों तो वहाँ **शिखण्डित** छन्द होता है। महात्मा पिङ्गलने इन्हें त्रिष्टुप्-छन्दका भेद बताया है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें एक रगण (ऽ।ऽ), एक नगण (।।।), एक भगण (ऽ।।), एक सगण (।।ऽ) हो, उसका नाम **चन्द्रवर्त्म** और जिसमें एक जगण (।ऽ।), एक तगण (ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ) हो, उसका नाम **वंशस्थ** छन्द है। जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।) हो, उसे **इन्द्रवंशा** और जिसमें चार सगण-ही-सगण (।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ, ।।ऽ) होते हैं, उसे **तोटक** छन्द माना गया है। जिसके प्रत्येक पादमें नगण (।।।), दो भगण (ऽ।।, ऽ।।) और रगण (ऽ।ऽ) हो, उसका नाम **द्रुतविलम्बित** है।

जो छन्द अपने सभी चारों चरणमें दो नगण (।।।, ।।।), एक मगण (ऽऽऽ), एक यगण (।ऽऽ)-से संयुक्त रहता है, उसका नाम **पुट** है। इस छन्दमें आठ और चार वर्णों पर यति होती है। दो नगण (।।।, ।।।) और दो रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)-से समन्वित प्रत्येक चरणवाला जो छन्द है, उसका नाम **मुदितवदना** है। इसमें सात और पाँच वर्णोंपर यति होती है। जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (।।।), यगण (।ऽऽ), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ) हो, उस छन्दको **कुसुमविचित्रा** कहते हैं। जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ)-से युक्त प्रत्येक पादवाले छन्दका नाम **जलोद्धतगति** है। प्रत्येक पादमें चार रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ)-से युक्त छन्द **स्रग्विणी** माना गया है। चार-चार यगणों (।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ)-से जिसके सभी चरण संयुक्त हैं, उसको **भुजङ्गप्रयात** छन्दकी संज्ञा दी गयी है। **प्रियंवदा** छन्द नगण (।।।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ)—इन चार गणोंसे युक्त होता है।

मणिमाला नामक जो छन्द है, उसके प्रत्येक पादमें तगण (ऽऽ।), यगण (।ऽऽ), तगण (ऽऽ।) तथा यगण (।ऽऽ) होता है। जिस छन्दके प्रत्येक पादमें तगण (ऽऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ) हो तो उसका नाम **ललिता** है। इस छन्दमें छठे वर्णपर यति होती है। **प्रमिताक्षरा** वृत्त सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), सगण (।।ऽ)-से युक्त होता है। **उज्ज्वला**

छन्दमें नगण (।।।), नगण (।।।), भगण (ऽ।।) तथा रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। जो छन्द मगण (ऽऽऽ), मगण (ऽऽऽ), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ)-से संयुक्त है, उसका नाम **वैश्वदेवी** है। इसमें पाँच और सात वर्णोंपर यति होती है। जब छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ) और मगण (ऽऽऽ) हो तो उसे **जलधरमाला** कहते हैं। चन्द्रवर्त्म छन्दसे यहाँतक बारह वर्णवाले जगती छन्दके भेद हैं।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (।।।), नगण (।।।), तगण (ऽऽ।), तगण (ऽऽ।) और एक गुरु (ऽ) हो, तो उसका नाम **क्षमावृत्त** है। इसमें सात और छः वर्णोंपर यति होती है। **प्रहर्षिणी** नामक छन्द मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) एवं एक गुरु (ऽ)-से युक्त होता है। इसके प्रत्येक चरणमें तीन और दस वर्णपर यतिका विधान है। जो छन्द जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ)-से सन्निहित होता है, उसको **रुचिरा** कहा गया है। इसमें यति चार तथा नौ वर्णोंपर होती है। **मत्तमयूर** नामक छन्दको मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), यगण (।ऽऽ), सगण (।।ऽ) और एक गुरु (ऽ)-से युक्त माना गया है। इसके प्रत्येक पादमें चार तथा नौ वर्णोंपर यति होती है।

मञ्जुभाषिणी छन्दके प्रत्येक चरणमें सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ) होता है। **सुनन्दिनी** नामक छन्दके प्रत्येक चरणमें सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ) होते ही हैं, किंतु अन्तिम जगणके स्थानपर इसमें मगण (ऽऽऽ) होता है। अन्तमें एक गुरु (ऽ) रहता है और जो छन्द नगण (।।।), नगण (।।।), तगण (ऽऽ।), तगण (ऽऽ।) तथा एक गुरु (ऽ)-से युक्त है, उसका नाम **चन्द्रिका** है। इसमें सात और छः वर्णोंपर यति होती है। ये तेरह वर्णवाले अतिजगती छन्दके अवान्तर भेद हैं।

मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), सगण (।।ऽ) और दो गुरु (ऽ ऽ)-से युक्त छन्दको **असम्बाधा** कहते हैं, इसमें पाँच और नौ वर्णोंपर यति होती है। जिस छन्दमें नगण (।।।), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), सगण (।।ऽ), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ) हो, उसे **अपराजिता** छन्द कहा गया है। इसमें सात-सात वर्णोंपर यति होती है। यदि प्रत्येक चरणमें नगण (।।।), नगण (।।।), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) हो, तो उसे **प्रहरणकलिका** के नामसे जाना जाता है। इसमें भी सात-सात वर्णपर ही यति होती है। **वसन्ततिलका** छन्दमें सभी चरण क्रमशः तगण (ऽऽ।), भगण (ऽ।।), दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।), दो गुरु (ऽऽ)-से युक्त होते हैं। इसीको **सिंहोन्नता** और **उद्धर्षिणी** भी कहते हैं। जिस छन्दके प्रत्येक पादमें भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), नगण (।।।) तथा दो गुरु (ऽऽ) हों उसका नाम **इन्दुवदना** होता है। जिसका प्रत्येक चरण नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से संयुक्त होता है, उसीको **सुकेशी** छन्द कहते हैं। यहाँतक चौदह वर्णोंके चरणवाले शर्करी छन्दके अवान्तर भेदोंका वर्णन प्रतिपादित किया गया।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें चौदह लघु (चार नगण फिर दो लघु वर्ण) और अन्तमें एक गुरु हो, वह **शशिकला** छन्द है। इसी छन्दमें जब यति छः और नौ वर्णोंपर हो तो वह **स्रक्** अर्थात् **माला** नामक छन्द हो जाता है। जब वह यति आठ एवं सात वर्णोंपर हो तो वह **मणिगुणनिकर** नामक छन्द बन जाता है। **मालिनी** छन्द अपने प्रत्येक चरणमें नगण (।।।), नगण (।।।), मगण (ऽऽऽ), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ)-से सन्निहित होता है। इसमें आठ और सात वर्णोंपर यति होती है। **प्रभद्रक** नामक छन्दके प्रत्येक चरणमें नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ) होता है। इसमें सात और आठ वर्णोंपर यति होती है। **एला** नामका छन्द सगण (।।ऽ), यगण (।ऽऽ), नगण (।।।), नगण (।।।) और यगण (।ऽऽ)-से संयुक्त होता है। **चित्रलेखा** छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), मगण (ऽऽऽ), यगण (।ऽऽ) तथा यगण (।ऽऽ) होता है, यति सात और आठ वर्णोंपर होती है।

यहाँतक पंद्रह वर्णोंके चरणवाले अतिशर्करी छन्दके अवान्तर भेदोंका वर्णन बताया गया है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है और जिसमें सात तथा नौ वर्णोंपर यति हो तो उसे **वृषभगजजृम्भित** छन्द कहते हैं। जिसके सभी चरणोंमें नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ) हो, उसका नाम **वाणिनी** छन्द है। यति चरणकी समाप्तिपर होती है। पिङ्गलद्वारा इन दोनों छन्दोंको अष्टि श्रेणीके छन्दके अन्तर्गत स्वीकार किया गया है।

यगण (।ऽऽ), मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), सगण (।।ऽ), भगण (ऽ।।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से संयुक्त चरणवाले छन्दका नाम **शिखरिणी** है। इसमें यति छः तथा ग्यारह वर्णोंपर होती है। पृथ्वी छन्दके प्रत्येक चरणमें जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), यगण (।ऽऽ), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है। इसकी यति आठ और नौ वर्णोंपर होती है। जिस छन्दके चरण भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), नगण (।।।), भगण (ऽ।।), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ)-से संयुक्त होते हैं और जिनमें दस एवं सात वर्णोंपर यति होती है, उसे **वंशपत्रपतित** कहा गया है।

हरिणी छन्द नगण (।।।), सगण (।।ऽ), मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), सगण (।।ऽ), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से संसृष्ट होता है। इसमें यति क्रमशः छः, चार तथा सात वर्णोंपर होती है। मगण (ऽऽऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), तगण (ऽऽ।), तगण (ऽऽ।), दो गुरु (ऽऽ)-से युक्त चरणोंवाले छन्दको **मन्दाक्रान्ता** कहते हैं। इसमें चार, छः और सात वर्णोंपर यति होती है। **नर्दटक** छन्द नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), जगण (।ऽ।), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ)-से संयुक्त होता है। इसमें यति सात और दस वर्णोंपर होती है। यदि यही यति सात, छः और चार वर्णोंपर हो तो छन्दका नाम **कोकिलक** हो जाता है। शिखरिणीसे कोकिलकतक इन छन्दोंको सत्रह वर्णोंवाले अत्यष्टि छन्द-वर्गमें समझना चाहिये।

जिस छन्दमें मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ) होता है और पाँच, छः तथा सात वर्णोंपर यति होती है, उसको **कुसुमितलता** छन्द कहते हैं। इसे अठारह अक्षरोंके चरणवाले धृति छन्दका अवान्तर भेद कहा गया है।

यगण (।ऽऽ), मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), सगण (।।ऽ), रगण (ऽ।ऽ), रगण (ऽ।ऽ) और एक गुरु (ऽ)-से युक्त छन्दका नाम **मेघविस्फूर्जिता** है। इसमें छः, छः और सात वर्णोंपर यति होती है। **शार्दूलविक्रीडित** नामक जो छन्द है, उसके प्रत्येक चरणमें मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है। इसमें बारह और सात वर्णोंपर यतिका विधान है। ये दोनों उन्नीस वर्णोंके चरणवाले अतिधृति छन्द-वर्गके भेद कहे गये हैं।

इसके बाद बीस वर्णोंके चरणवाले कृति नामवाले छन्दोंका निरूपण किया जा रहा है—

जिसके प्रत्येक चरणमें भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ), भगण (ऽ।।), एक लघु (।), एक गुरु (ऽ) होता है और क्रमशः सात, सात तथा छः वर्णोंपर यति होती है, उसे **सुवदना** छन्द कहते हैं। जिसके प्रत्येक पादमें रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), एक लघु (।), एक गुरु (ऽ) हो और पादान्तमें यति होती हो, उसे **वृत्त** छन्द कहते हैं।

जिस छन्दमें मगण (ऽऽऽ), रगण (ऽ।ऽ), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ) हो और प्रत्येक चरणमें सात-सात वर्णोंपर यति होती हो, वह **स्रग्धरा** छन्द है। प्रत्येक चरणमें इक्कीस वर्णोंवाले इस छन्दको प्रकृति वर्गका छन्द माना गया है।

जिसके सभी पाद क्रमशः भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) तथा एक गुरु (ऽ)-से संयुक्त हों और उनमें दस तथा बारह वर्णोंपर यति हो, उसे

सुभद्रक छन्द कहते हैं। यह बाईस वर्णोंवाले आकृति छन्दके अन्तर्गत है।

जो नगण (।।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ)-से युक्त छन्द हो और उसमें ग्यारह तथा बारह वर्णोंपर यति हो, उसका नाम **अश्वललित** है। इसे अन्य ग्रन्थोंमें **अद्रितनया** भी कहा गया है। जिस छन्दमें मगण (ऽऽऽ), मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ) होता है और जिसमें आठ, पाँच तथा दस वर्णोंपर यति होती है, उसको **मत्ताक्रीड** कहा जाता है। ये दोनों छन्द तेईस वर्णोंवाले विकृति छन्द-वर्गके अन्तर्गत हैं।

जिस छन्दका प्रत्येक पाद भगण (ऽ।।), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), सगण (।।ऽ), भगण (ऽ।।), भगण (ऽ।।), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ)-से संयुक्त होता है और उसमें पाँच, सात तथा बारह वर्णोंपर यति होती है, उसको **तन्वी** छन्द कहते हैं। यह तन्वी छन्द चौबीस वर्णोंके चरणवाले संकृति छन्द-वर्गका अवान्तर भेद है।

क्रौञ्चपदा नामका जो छन्द है, उस छन्दमें भगण (ऽ।।), मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), भगण (ऽ।।) एवं नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), एक गुरु (ऽ) होता है और पाँच-पाँच, आठ तथा सात वर्णोंपर यति होती है। यह पच्चीस वर्णोंवाले अतिकृति छन्दके अन्तर्गत है।

अब छब्बीस वर्णोंवाले उत्कृति वर्गके छन्दको कहा जा रहा है, आप उसे सुनें—

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें मगण (ऽऽऽ), मगण (ऽऽऽ), तगण (ऽऽ।), नगण (।।।), नगण (।।।), नगण (।।।), रगण (ऽ।ऽ) तथा सगण (।।ऽ) हों और आठ, ग्यारह एवं सात वर्णोंपर यति होती है, उसे **भुजङ्गविजृम्भित** कहते हैं। यह छब्बीस वर्णवाले उत्कृति छन्द-वर्गका एक भेद है।

जिस छन्दके प्रत्येक चरणमें एक मगण (ऽऽऽ), छः नगण (।।।, ।।।, ।।।, ।।।, ।।।, ।।।,), एक सगण (।।ऽ) और दो गुरु (ऽऽ) हों, साथ ही नौ, छः-छः तथा पाँच वर्णोंपर यति हो तो उसको **अपवाह** कहते हैं। यह उत्कृति वर्गका ही दूसरा भेद है।

जिसके प्रत्येक चरणमें दो नगण (।।।, ।।।) और सात रगण (ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) हों तो उसका नाम **चण्डवृत्तिप्रपात** छन्द है। उसे दण्डक[1] भी कहा जाता है। यदि इस छन्दमें दो नगणको छोड़कर शेष रगण वर्णोंके साथ क्रमशः एक और दो अन्य रगण पदोंकी वृद्धि हो तो उसीसे व्याल और जीमूत आदि नामवाले दण्डक छन्द बनते हैं। (अध्याय २०९)

छन्द-विधान (अर्द्धसमवृत्त लक्षण)

श्रीसूतजीने कहा—यदि छन्दके विषमपादमें तीन सगण (।।ऽ), एक लघु (।) और एक गुरु (ऽ) वर्ण—इस प्रकार ग्यारह अक्षर हों एवं समपादमें तीन भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ) हों तो उसे **उपचित्रक** कहते हैं। जिस छन्दके विषमपादमें तीन भगण (ऽ।।), दो गुरु (ऽऽ) हों और उसके समपादमें एक नगण (।।।), दो जगण (।ऽ।) और एक यगण (।ऽऽ) हो, उसे **द्रुतमध्या** नामक छन्द माना गया है। जिस छन्दके विषम-पादमें तीन सगण (।।ऽ), एक गुरु और समपादमें तीन भगण (ऽ।।) एवं दो गुरु (ऽऽ) होते हैं, उसका नाम **वेगवती** है। जिस छन्दके विषमपादमें एक तगण (ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक गुरु (ऽ), हो और समपादमें एक मगण (ऽऽऽ), एक सगण (।।ऽ), एक जगण (।ऽ।) तथा दो गुरु (ऽऽ)हों, वह **भद्रविराट्** नामक छन्द होता है।

यदि विषमपादमें सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), एक गुरु (ऽ) तथा समपादमें भगण (ऽ।।), रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।) और दो गुरु (ऽऽ) हों तो उस छन्दको **केतुमती** कहा जाता है। जिस छन्दके विषमपादमें दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।)

१. जिन वृत्तोंके प्रत्येक चरणमें सत्ताईस या इससे अधिक वर्ण होते हैं, उनका सामान्य नाम दण्डक है। चण्डवृत्तिप्रपात आदि इसीके भेद हैं।

और दो गुरु (ऽऽ) तथा समपादमें जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) एवं दो गुरु (ऽऽ) होते हैं, उसको **आख्यानिकी** कहते हैं। यदि विषमपादमें जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) और दो गुरु (ऽऽ) तथा समपादमें दो तगण (ऽऽ।, ऽऽ।), एक जगण (।ऽ।) एवं दो गुरु (ऽऽ) हों तो उसे **विपरीताख्यानक** छन्द कहा जाता है। ऐसा पिङ्गल मुनिका अभिमत है।

जब छन्दके विषमपादमें दो नगण (।।।, ।।।), एक रगण (ऽ।ऽ), एक यगण (।ऽऽ) और समपादमें एक नगण (।।।) दो जगण (।ऽ।, ।ऽ।), एक रगण (ऽ।ऽ) तथा एक गुरु (ऽ) होता है तो उसे **पुष्पिताग्रा** कहते हैं। यदि विषमपादमें रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), यगण (।ऽऽ) हो और समपादमें जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) तथा एक गुरु (ऽ) हो तो उस छन्दका नाम **वाङ्मती** है। (अध्याय २१०)

छन्द-विधान (विषमवृत्तलक्षण)

सूतजीने कहा—जिस छन्दके प्रथम पादमें आठ अक्षर, द्वितीय पादमें बारह अक्षर, तृतीय पादमें सोलह अक्षर तथा चतुर्थ पादमें बीस अक्षर होते हैं, वह **पदचतुरूर्ध्व** नामक छन्द है, यह इस छन्दका सामान्य लक्षण है। तात्पर्य यह है कि इस छन्दमें अनुष्टुप् छन्दके प्रथम पादके बाद प्रत्येक पादमें क्रमशः चार-चार अक्षर बढ़ते जाते हैं। इसी छन्दके चारों चरणोंमें जब दो अक्षर गुरु (ऽऽ) हों तो उसे **आपीड** छन्द कहते हैं। अन्तिम अक्षरोंको छोड़कर शेष अक्षर लघु (।) ही होते हैं। **पदचतुरूर्ध्व** नामक छन्दके प्रथम पादका द्वितीय आदि पादोंके साथ परिवर्तन होनेपर अनेक छन्द बनते हैं, यथा—प्रथम पादमें बारह और द्वितीय पादमें अठारह अक्षर होनेसे जो छन्द बनता है, वह **कलिका** (मञ्जरी) कहलाता है। इसमें प्रथम पादके स्थानमें द्वितीय पाद और द्वितीय पादके स्थानमें प्रथम पाद हो जाता है। जब प्रथम पाद (आठ अक्षर)-के स्थानमें तृतीय पाद (सोलह अक्षर) और तृतीय पादके स्थानमें प्रथम पाद हो तो **लवली** नामक छन्द होता है। इसी प्रकार जब प्रथम पाद (आठ अक्षर)-के स्थानपर चतुर्थपाद (बीस अक्षर) और चतुर्थपादके स्थानपर प्रथम पाद हो तो उसे **अमृतधारा** नामक छन्द कहते हैं। यहाँतक पदचतुरूर्ध्व छन्दके अवान्तर भेदोंको बतलाया गया है।

जब प्रथम पादमें सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ) और एक लघु (।)—इस प्रकार दस अक्षर होते हैं, द्वितीय पादमें नगण (।।।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) और एक गुरु (ऽ)—इस प्रकार दस अक्षर होते हैं, तृतीय पादमें भगण (ऽ।।), नगण (।।।), जगण (।ऽ।) एक लघु (।) तथा एक गुरु (ऽ)—ये ग्यारह अक्षर होते हैं और चतुर्थ पादमें सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।) तथा एक गुरु (ऽ)—इस प्रकार तेरह अक्षर होते हैं तो वह **उद्गता** नामक छन्द कहलाता है। इसी उद्गता छन्दके तीसरे चरणमें जब रगण (ऽ।ऽ), नगण (।।।), यगण (।ऽऽ) और एक गुरु (ऽ)—इस प्रकार तेरह अक्षर हों और शेष तीन पाद पूर्ववत् अर्थात् उद्गता छन्दके समान ही हों तो **सौरभक** नामक छन्द होता है। इसी उद्गता छन्दके तीसरे चरणमें जब दो नगण (।।।, ।।।), दो सगण (।।ऽ, ।।ऽ) हों तथा शेष तीनों चरण उद्गताके ही समान हों तो **ललित** नामक छन्द होता है। ये सब उद्गता छन्दके अवान्तर भेद हैं।

जिसके प्रथम पादमें मगण (ऽऽऽ), सगण (।।ऽ), जगण (।ऽ।), भगण (ऽ।।) और दो गुरु (ऽऽ)—इस प्रकार चौदह अक्षर होते हैं, द्वितीय चरणमें सगण (।।ऽ), नगण (।।।), जगण (।ऽ।), रगण (ऽ।ऽ) तथा एक गुरु (ऽ)—इस प्रकार तेरह अक्षर होते हैं, तीसरे चरणमें दो नगण (।।।, ।।।) और एक सगण (।।ऽ)—इस प्रकार नौ अक्षर होते हैं तथा चौथे चरणमें तीन नगण (।।।, ।।।, ।।।), एक जगण (।ऽ।) तथा एक यगण (।ऽऽ)—इस प्रकार पन्द्रह अक्षर होते हैं तो ऐसा छन्द **उपस्थितप्रचुपित** नामवाला छन्द कहलाता है। इसी उपस्थितप्रचुपित छन्दके जब तीन चरण वैसे ही हों, केवल तृतीय चरणमें परिवर्तन हो, अर्थात् उसमें दो नगण (।।।, ।।।), एक सगण (।।ऽ), पुनः दो नगण

(ıı।, ıı।) तथा एक सगण (।।ऽ)—इस प्रकार अठारह अक्षर हों तो वह **वर्धमान** नामक छन्द होता है। उसी उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दके जब तीन पाद (प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ) समान हों, किंतु तृतीय पादमें तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।) और रगण (ऽ।ऽ)—इस प्रकार नौ अक्षर हों तो वह **आर्षभ** नामक छन्द होता है। इसी प्रकार उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दका जब पहला पाद वही हो और शेष तीन पादोंमें तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।), तथा रगण (ऽ।ऽ)—इस प्रकार नौ अक्षर हों तो ऐसा छन्द **शुद्धविराट्** कहलाता है। ये छन्द उपस्थितप्रचुपित नामक छन्दके अवान्तर भेदोंमें आते हैं। (अध्याय २११)

छन्द-विधान (प्रस्तार-निरूपण)

सूतजीने कहा—अब प्रस्तारके[1] विषयमें बतला रहा हूँ। ऊपरके पादमें आदि अक्षर गुरु हो तथा उसके नीचेके पादमें लघु अक्षर हो, वह एकाक्षर प्रस्तार है। उसके बाद इसी क्रमसे वर्णोंकी स्थापना करे अर्थात् पहले गुरु और उसके नीचे लघु अक्षरकी स्थापना करे, यह द्व्यक्षर-प्रस्तार है। प्रस्तारके अनन्तर नष्टका निरूपण इस प्रकार है—नष्ट संख्याको आधी करनेपर जब वह दो भागोंमें बराबर बँट जाय तब एक लघु लिखना चाहिये, यदि आधा करनेपर विषम संख्या प्राप्त हो तो उसमें एक जोड़कर सम बना ले और इस प्रकार पुनः आधा करे। ऐसी अवस्थामें एक गुरु अक्षरकी प्राप्ति होती है, उसे भी अन्यत्र लिख ले। जितने अक्षरवाले छन्दके भेदको जानना हो, उतने अक्षरोंकी पूर्ति होनेतक पूर्वोक्त प्रणालीसे गुरु-लघुका उल्लेख करता रहे।

अब उद्दिष्टके विषयमें बतलाया जा रहा है—उद्दिष्टकी प्रक्रिया जाननेके लिये छन्दके गुरु-लघु क्रमशः एक पंक्तिमें लिखकर उनके ऊपर क्रमशः एकसे लेकर दूने-दूने अङ्क रखता जाय अर्थात् प्रथम अक्षरपर एक, द्वितीयपर दो, तृतीयपर तीन—इस क्रमसे संख्या होगी। बिना प्रस्तारके ही वृत्त-संख्या जाननेके उपायको **संख्या** कहते हैं। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार है—जितने अक्षरके छन्दकी संख्या जाननी हो, उसका आधा भाग निकालनेसे दोकी उपलब्धि होगी। उसे अलग रख ले। विषम संख्यामें एक घटाकर शून्यकी प्राप्ति होगी, उसे दोके नीचे रखकर शून्यके स्थानमें दुगुना करे, इससे प्राप्त हुए अङ्कको ऊपरके अर्धस्थानमें रखे और उतनेसे ही गुणा करे।

एकद्व्यादिलगक्रियाकी सिद्धिके लिये मेरुप्रस्तारको बतलाया जा रहा है। किसी छन्दमें कितने लघु, कितने गुरु तथा एकाक्षरादि छन्दोंके कितने वृत्त होते हैं, इसका ज्ञान मेरुप्रस्तारसे होता है। मेरुप्रस्तारमें नीचेसे ऊपरकी ओर आधा-आधा अंगुल विस्तार कम होता जाता है। छन्दकी संख्याको दूनी करके एक-एक घटा दिया जाय तो उतने ही अंगुलका उसका **अध्वा** (प्रस्तारदेश) होता है। इस प्रकार छन्दःशास्त्रका सार बतलाया गया। (अध्याय २१२)

सदाचार एवं शौचाचारका निरूपण

सूतजीने कहा—हे शौनक! श्रीहरिसे सुनकर ब्रह्माजीने व्याससे सब कुछ देनेवाले ब्राह्मणादि वर्णोंके सदाचारको जैसे कहा है, उसी प्रकार मैं कहता हूँ।

श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र)-का भली प्रकारसे अध्ययन करके श्रुतिप्रतिपादित कर्मका पालन करना चाहिये। (क्योंकि श्रुति ही सब कर्मोंका मूल है।) यदि (उपलब्ध) श्रुतियोंमें कोई कर्म ज्ञात नहीं हो रहा है तो उसको स्मृतिशास्त्रके अनुसार जानकर करना चाहिये (क्योंकि स्मृतिशास्त्र भी श्रुतिमूलक होनेके कारण ही कर्मके बोधमें प्रमाण माने जाते हैं) और स्मार्तधर्मके पालनमें असमर्थ होनेपर विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि वह सदाचारका पालन करे। कर्ममार्गका दर्शन करानेके लिये श्रुति तथा स्मृति—ये नेत्रस्वरूप हैं।

श्रुतिमें कहा गया धर्म परम धर्म है। स्मृति और शास्त्रसे प्रतिपादित धर्म अपर धर्म है। इस प्रकार श्रुति, स्मृति और शिष्टाचारसे प्राप्त धर्म—ये तीन प्रकारके सनातनधर्म हैं।

१- किस छन्दके कितने भेद हो सकते हैं, सामान्यरूपसे इसका ज्ञान करानेवाली प्रणालीको 'प्रस्तार' कहा जाता है। प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकद्व्यादिलगक्रिया, संख्या तथा अध्वयोग — ये छः प्रणालियाँ हैं।

सत्य, दान, दया, निर्लोभता, विद्या, यज्ञ, पूजा और इन्द्रियदमन—ये शिष्टाचारके आठ पवित्र लक्षण कहे गये हैं। पूर्व कालमें लोगोंके शरीर और इन्द्रिय सत्त्वगुणप्रधान एवं तेजोमय होते थे, अतः जिस प्रकार कमलपत्रपर जल नहीं रुकता उसी प्रकारसे उनके शरीर तथा इन्द्रियोंमें पाप नहीं टिक पाते थे।

सत्त्वगुणके विकासके लिये सनातनधर्म (वर्णाश्रम-धर्म, सदाचार आदि)-के पालनका सर्वाधिक महत्त्व है और इनकी प्रमुखता युगविशेष, स्थानविशेष (भारतवर्ष आदि)-की दृष्टिसे निर्धारित होती है, इसी दृष्टिसे यहाँ इतना निरूपण किया जा रहा है। सत्य, यज्ञ, तप तथा दान—ये धर्मके लक्षण हैं। बिना दिये गये द्रव्यको ग्रहण न करना, दान, अध्ययन, जप, विद्या, धन, तपस्या, पवित्रता, श्रेष्ठ कुलमें जन्म, निरोगता और संसारके बन्धनसे मुक्ति आदिके मूलमें धर्मका आचरण ही प्रधान है। धर्मसे सुख तथा तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है और इस तत्त्वज्ञानसे ही मोक्ष प्राप्त होता है।

शास्त्रोंके अनुसार पालन किये जाने योग्य तथा सनातन कालसे चले आ रहे यज्ञ, अध्ययन और दान—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके सामान्य धर्म हैं। यज्ञ कराना, अध्यापन तथा सदाचारवान् विशुद्ध अधिकृत व्यक्तिसे प्रतिग्रह (दान) लेना—ये तीन प्रकारकी वृत्ति (जीविका) मुनियोंने श्रेष्ठ (ब्राह्मण) वर्णके लिये कही है। शस्त्रोपजीवी होना तथा प्राणियोंकी रक्षा करना क्षत्रियवर्णका धर्म है। पशुपालन, कृषिकर्म तथा व्यापार वैश्यवर्णकी वृत्ति कही गयी है। द्विजातिमें भी आनुपूर्वी क्रमसे सेवा करनेका विधान[1] है। शूद्रका तो एकमात्र कर्तव्य है द्विजातिकी सेवा करना।

गुरुके सान्निध्यमें रहना, अग्निकी शुश्रूषा (अग्निहोत्र) करना तथा स्वाध्याय करना—यह ब्रह्मचारीका धर्म है। वह तीनों संध्याओंमें स्नानकर संध्याकालीन व्रतका पालन करे। स्नानकर्मसे निवृत्त होकर भिक्षाचरण करे। तदनन्तर गुरुके प्रति दत्तचित्त रहकर उनकी ही सेवामें आजीवन लगा रहे। वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कटिप्रदेशमें मूँजकी मेखला, सिरपर जटा, हाथमें दण्ड धारण करे। वह जटाओंको धारण न करके सिरका मुण्डन भी करा सकता है, किंतु उसको गुरुके आश्रयमें तो रहना ही चाहिये।

अग्निहोत्र-धर्मका पालन तथा कहे गये अपने विहित कर्मोंके अनुसार जीविकाका पालन, पर्वकी रात्रिको छोड़कर अन्य रात्रियोंमें धर्मपत्नीके साथ रति, (यथाशास्त्र) देवता, पितर तथा अतिथिगणोंकी विधिवत् पूजामें अहर्निश संलग्न रहना और श्रुतियों एवं स्मृतियोंमें कहे गये धर्मोंके अनुसार अर्थोपार्जन करना—यह गृहस्थोंका धर्म है।

जटाधारण, अग्निहोत्रका पालन, पृथ्वीपर शयन, मृगचर्मका धारण, वनमें निवास, दूध, मूल, फल तथा नीवारका भक्षण, निषिद्ध कर्मका परित्याग, तीनों संध्याओंमें स्नान, ब्रह्मचर्यका पालन और देवता तथा अतिथिकी पूजा—यह वानप्रस्थीका धर्म है।

सभी प्रकारके आरम्भोंका परित्याग, भिक्षासे प्राप्त अन्नका भोजन, वृक्षकी छायामें निवास, अपरिग्रह, अद्रोह, सभी प्राणियोंमें समानभाव, प्रिय तथा अप्रियकी प्राप्तिमें एवं सुख और दुःखमें समान स्थिति, शरीरकी बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धता, वाणीमें संयम, परमात्माका ध्यान, सभी इन्द्रियोंका निग्रह, धारणा तथा ध्यानमें तत्परता और भावशुद्धि—ये सभी परिव्राजक अर्थात् संन्यासीके धर्म कहे गये हैं।

अहिंसा, प्रिय और सत्यवचन, पवित्रता, क्षमा तथा दया सभी आश्रमों और वर्णोंका सामान्य धर्म है।[2] जैसा पूर्वमें कहा गया है उसीके अनुसार शास्त्रविहित अपने-अपने धर्मोंका पालन करनेवाले सभी लोग परमगति अर्थात् मोक्षको प्राप्त करते हैं।

हे शौनक! अब मैं प्रातःकाल जागनेसे लेकर रात्रिमें सोनेतक पालन करने योग्य गृहस्थके धर्मका वर्णन करता हूँ। गृहस्थको ब्राह्ममुहूर्तमें निद्राका परित्याग करके धर्म और अर्थका भली प्रकार चिन्तन करना चाहिये तथा

१-इसका आशय यह है—क्षत्रिय ब्राह्मणकी सेवा करे तथा वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रियकी सेवा करे। (वैश्यके द्वारा क्षत्रियकी सेवाकी मर्यादा शास्त्रोंमें निर्धारित है।)

२-अहिंसा सूनृता वाणी सत्यशौचे क्षमा दया। वर्णिनां लिंगिनां चैव सामान्यो धर्म उच्यते॥ (२१३। २२)

शारीरिक कष्ट, उसकी उत्पत्तिके कारण और वेदोंमें कहे गये तत्त्वार्थका भी विचार करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शौचादिक क्रियाओंसे निवृत्त होकर, स्नान करना चाहिये और निरलस भावसे समाहितचित्त होकर संध्योपासन करना चाहिये। दन्तधावन एवं स्नानके अनन्तर ही प्रातःकालिक संध्योपासन करना चाहिये। दिनमें मूत्र और मलका परित्याग उत्तराभिमुख होकर करे। रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर करे। दोनों संध्याकालमें दिनके समान ही उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। रात्रि और दिनमें छाया अथवा अन्धकारके कारण यदि दिशाविशेषका ज्ञान नहीं हो पा रहा है, अथवा कोई ऐसा भय उपस्थित है, जिसके कारण मरणकी सम्भावना है तो अपनी सुविधाके अनुसार जिस किसी भी दिशामें मुख करके मल-मूत्रका त्याग किया जा सकता है। गोमय, अग्निके दहकते अंगार, दीमककी बाँबी, जुते हुए खेत, जल, पवित्र स्थान, मार्ग और मार्गमें विद्यमान विधानयोग्य वृक्षकी छायामें न तो मूत्रका परित्याग करना चाहिये और न तो मलविसर्जन ही।

शौचके पश्चात् मिट्टीसे हाथ-पैर आदि साफ करनेके लिये जलके अन्दरसे, देवगृह, बाँबी, चूहेके बिल, दूसरेके उपयोगमें आयी हुई मिट्टीसे अवशिष्ट तथा श्मशान भूमिकी मिट्टी ग्रहण न करे। लघुशंका करनेपर लिंगमें एक बार, बायें हाथमें दो बार और दोनों हाथोंमें दो बार मिट्टी लगाकर जलसे प्रक्षालन करनेपर ही शुद्धि होती है। मलका परित्याग करनेपर लिंगमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार तथा दोनों हाथोंमें सात बार, पैरोंमें पाँच बार और दायें हाथमें दस बार मिट्टीका लेप करके उन्हें जलसे स्वच्छ करे। प्रथम बार उपयोगमें लायी जानेवाली मिट्टीकी मात्रा आधा पसर होनी चाहिये। दूसरे और तीसरे बार जो मिट्टी उपयोगमें आती है उसकी मात्रा आधे पसरकी आधी हो जाती है। जो मनुष्य अस्वस्थताके कारण विष्ठा और मूत्रका परित्याग बैठकर नहीं कर सकता है, वह अभी बतायी गयी शास्त्रीय शुद्धिका आधा भागमात्र अपना सकता है। दिनमें विहित शुद्धिका आधा या चौथाई भाग रात्रिमें शुद्धिके लिये धर्मसम्मत है।

यह शुद्धिकी प्रक्रिया स्वस्थ व्यक्तिको लक्ष्य करके कही गयी है। जो व्यक्ति अस्वस्थताके कारण आर्त है, उसको यथासामर्थ्य ही शुद्धिकी प्रक्रिया अपनानी चाहिये। वसा, शुक्र, रक्त, मज्जा, लार, विष्ठा, मूत्र, कानका मैल, कफ, आँसू, आँखका मैल (कीचड़) और पसीना—ये मनुष्यके शरीरके बारह मल हैं। जबतक मनमें शुद्धताकी अवधारणा न हो जाय, तबतक इनके कारण अनुभवमें आनेवाली अशुद्धिके निराकरणमें लगे रहना चाहिये। यहाँपर शुद्धिकी संख्याका जो प्रमाण दिया गया है, वह श्रुतियों और स्मृतियोंके आदेशानुसार है।

शुद्धि दो प्रकारकी है—एक बाह्य और दूसरी आभ्यन्तरिक। मिट्टी तथा जलसे की जानेवाली शुद्धि बाह्य और भावोंकी शुद्धि ही आभ्यन्तरिक शुद्धि मानी गयी है। शुद्धिका प्रमुख अङ्ग आचमन है, यह तीन बार करना चाहिये। इसके बाद दो बार जलसे मुखका मार्जन, तदनन्तर अंगुष्ठके मूलसे मुखको धोकर तीन बार मुखका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद अंगुष्ठ और तर्जनीसे नासिकाका स्पर्शकर अंगुष्ठ तथा अनामिकासे नेत्र और कानका स्पर्श करना चाहिये। तत्पश्चात् कनिष्ठा और अंगुष्ठके द्वारा नाभिका स्पर्शकर हथेलीसे हृदयका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद अपनी सभी अंगुलियोंसे सिर और उनके (अंगुलियोंके) अग्रभागसे दोनों बाहुओंका स्पर्श करना चाहिये।

(अब आचमन तथा अंगोंके स्पर्शका फल बताया जाता है।) तीन बार जलका आचमन करके ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनों वेदोंको प्रसन्न करना चाहिये। पहले दो बार मुखका प्रक्षालन करनेसे अथर्वा (वेदविद् ब्राह्मण) और आङ्गिरस (बृहस्पति)-का मुखमें सन्निधान होता है। मुखभागका स्पर्श करनेपर आकाश, नासिका-भागका स्पर्श करनेपर वायु, नेत्रभागका स्पर्श करनेपर सूर्य, कानोंका स्पर्श करनेपर सभी दिशाओंका स्पर्श समझना चाहिये।[१] मुख तथा नासिका आदिका यथाविधि स्पर्श करनेसे इन अङ्गोंमें यथाक्रम इतिहास, पुराण एवं वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) प्रतिष्ठित होते हैं। नाभिप्रदेशका स्पर्शकर प्राणग्रन्थिका और हृदयभागका

१-मुख और नासिका आदिमें यथाक्रम आकाश तथा वायु आदिके अधिष्ठाता देवता सन्निहित हैं।

स्पर्शकर ब्रह्माका स्पर्श समझना चाहिये। मूर्धाके स्पर्शसे रुद्र और शिखाके स्पर्शसे ऋषियोंको प्रसन्न किया जाता है। दोनों बाहुओंको स्पर्श करके यम, इन्द्र, वरुण, कुबेर, पृथिवी तथा अग्निदेवके सान्निध्यका लाभ प्राप्त होता है। अपने दोनों चरणोंमें जलका अभ्युक्षण भगवान् विष्णु और इन्द्र तथा दोनों हाथोंका प्रोक्षण करनेसे भगवान् विष्णुदेवका सांनिध्य प्राप्त होता है।

धार्मिक विधिके अनुसार पृथ्वीका जलसे प्रोक्षण करनेसे वासुकि आदि नाग प्रसन्न होते हैं। धार्मिक विधिके मध्यमें जलका शास्त्रीय उपयोग करते समय उसके बिन्दुओंके गिरनेसे भूतोंके समूह तृप्ति प्राप्तकर प्रसन्न होते हैं। अंगुलियोंके पर्वोंपर अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और पर्वतसमूह निवास करते हैं। द्विजके हाथोंमें जो रेखाएँ होती हैं, उनमें गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ स्थित रहती हैं। हाथके तलभागमें सभी तीर्थोंके साथ सोमका निवास है। इसीलिये हाथको पवित्र माना जाता है।

उषाकाल (सूर्योदयसे पूर्व रात्रिशेष) होनेपर यथाविधि शौच-क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर दन्तधावन (दतुअन) करके स्नान करे। मुखके पर्युषित (बासी) रहनेपर मनुष्य निश्चित ही अपवित्र रहता है। अतः मनुष्यको प्रातःकाल अवश्य ही दन्तधावन करना चाहिये। दन्तधावनके लिये कदम्ब, बिल्व, खैर, कनेर, बरगद, अर्जुन, यूपी, बृहती, जाती, करंज, अर्क, अतिमुक्तक, जामुन, महुआ, अपामार्ग (चिचड़ा—लटजीरा) शिरीष, गूलर, बाण तथा दूधवाले और कँटीले अन्य वृक्ष प्रशस्त होते हैं। कड़ुवे, तीते तथा कसैले काष्ठके जो वृक्ष हैं, उनकी दतुअन धन-धान्य, आरोग्य और सुखसे सम्पन्न करनेवाली होती है। पवित्र स्थानमें मनुष्य ऐसे वृक्षोंकी दतुअनको लेकर सबसे पहले उसको जलसे धो डाले। उसको दाँतोंसे चबा-चबाकर मुख साफ करे और अवशिष्ट दतुअनको किसी एकान्त स्थानमें छोड़ दे। तदनन्तर भली प्रकारसे आचमनकर मुखशोधन करे। अमावास्या, षष्ठी, नवमी, प्रतिपदा तिथि तथा रविवारके दिन दतुअन नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ये सभी दिन इस कार्यके लिये निषिद्ध माने गये हैं। दतुअनके न होनेपर तथा निषिद्ध तिथिके आ जानेपर मनुष्यको बारह कुल्ला जलके द्वारा मुखको पवित्र कर लेना चाहिये।

दृष्ट और अदृष्ट दोनों प्रकारका हित-सम्पादन होनेके कारण प्रातःकालके स्नानकी प्रशंसा की गयी है। जो व्यक्ति शुद्धात्मा है, जो प्रातःकाल स्नान करता है, वह जपादिक समस्त (ऐहिक और पारलौकिक सुख प्रदान करनेवाली) क्रियाओंको सम्पन्न करनेका अधिकारी है। शरीर अत्यन्त मलिन है। उसमें स्थित नवछिद्रोंसे सदैव मल निकलता ही रहता है। अतः प्रातःकालका स्नान शरीरकी शुद्धिका हेतु, मनको प्रसन्न रखनेवाला तथा रूप और सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला है। यह शोक और दुःखका विनाशक है। अतः मनुष्य प्रातःकाल गङ्गास्नानके समान ही स्नानकी क्रिया सम्पन्न करे। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी हस्त नक्षत्रसे युक्त दशमी तिथिमें दस पापोंको हरण करनेकी सामर्थ्य है। इस पुण्यतिथिमें स्नान करनेसे 'दान न देनेका पाप, विरुद्ध आचरण, हिंसा, परदारोपसेवन, कटु और झूठ भाषण, चुगलखोरी, असम्बद्ध प्रलाप, परद्रव्यापहरण और मनसे अनिष्टचिन्तन करनेसे होनेवाला पाप—इन पापोंके विनाशके लिये आज मैं गङ्गा-स्नान कर रहा हूँ'—यह संकल्प लेकर मनुष्य प्रातःकाल स्नान करे। वानप्रस्थी तथा गृहस्थको प्रातःकाल संक्षिप्त स्नान करना चाहिये। संन्यासीके लिये दिनकी तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) संध्याओंमें स्नान करना अपेक्षित है। ब्रह्मचारीको सकृत्[1] स्नान करना चाहिये। आचमन करके, तीर्थोंका आवाहन करके, अव्यय भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये।

शास्त्रोंमें तीन करोड़ मन्देह नामक राक्षस माने गये हैं। वे दुरात्मा राक्षस सदैव प्रातःकाल उदित हो रहे सूर्यदेवको खा जानेकी इच्छा करते हैं। अतः (सूर्योदयसे पूर्व) स्नान करके संध्योपासनकर्म नहीं करना सूर्यदेवका ही घातक है। जो लोग यथाविधि स्नानकर यथाधिकार संध्योपासन करते हैं, वे मन्त्रसे पवित्र किये गये अनलरूपी अर्घ्य (जल)-से उन मन्देह राक्षसोंको जला देते हैं।

१-सकृत् स्नानका तात्पर्य है—दण्डवत् स्नान। अर्थात् जैसे दण्ड जलमें डालकर निकाल लिया जाता है, वैसे ही स्नान करना चाहिये। गृहस्थकी तरह सुखपूर्वक स्नान नहीं करना चाहिये। सायं, प्रातः अवश्य करणीय अग्निहोत्र आदिके लिये दोनों समय (सायं-प्रातः) स्नानका विधान ब्रह्मचारीके लिये है। (मनु० २। १७६ कुल्लूक भट्टकी टीका)

दिन और रात्रिका जो संधिकाल हैं, वही संध्याकाल (४५ मिनट) होता है। यह संध्याकाल सूर्योदयसे पूर्व दो घड़ीपर्यन्त रहता है। संध्या-कर्मके समाप्त हो जानेपर यथाधिकार स्वयं हवन-कार्य करना चाहिये। स्वयं हवन करनेसे जितना फल प्राप्त होता है, उतना अन्य किसीके द्वारा करानेसे नहीं होता। ऋत्विक्, पुत्र, गुरु, भाई, भाँजा और दामादके द्वारा यह कार्य हो सकता है। क्योंकि उन लोगोंके द्वारा किया गया हवन, स्वयंका ही माना गया है।

गार्हपत्य-अग्निको ब्रह्मा, दक्षिणाग्निको शिव और आहवनीय-अग्निको विष्णु तथा कुमार[1]को सत्यस्वरूप कहा जाता है। यथोचित समयपर हवन करके सूर्यमन्त्रका जप करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर सावित्री और प्रणव (ॐकार)-मन्त्रका जप करना चाहिये। प्रणव, सप्त-व्याहृति और त्रिपदा सावित्री मन्त्रका निरन्तर यथासमय नियतरूपसे जप करनेसे संसारमें किसी भी प्रकारका भय नहीं रहता है। जो उपासक प्रातःकाल उठकर नित्य गायत्री-मन्त्रका जप करता है, वह कमलपत्रकी भाँति पापसे संलिप्त नहीं होता। (देवी गायत्रीका स्वरूप इस प्रकार है—)

श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा॥
(२१३।७०)

अर्थात् गायत्रीदेवी श्वेतवर्णवाली हैं, कौशेय (रेशमी)-वस्त्र तथा अक्ष (माला) एवं सूत्र (यज्ञसूत्र—यज्ञोपवीत)-से विभूषित होकर सुन्दर पद्मासनपर विराजमान रहती हैं। इसी रूपमें विधिवत् ध्यान करके **'तेजोऽसि०'**[2] इस यजुर्वेदके मन्त्रसे आवाहनकर गायत्रीदेवीकी उपासना करनी चाहिये। प्राचीनकालमें देववर्ग तथा मन्त्रोंका साक्षात्कार करनेकी इच्छा रखनेवाले ऋषिगण यजुर्वेदके इसी मन्त्रका प्रयोग करते थे। अतः सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान तथा ब्रह्मलोकमें भी निवास करनेवाली देवीका आवाहन करके गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। तत्पश्चात् नमस्कार करके उनका (गायत्रीदेवीका) विसर्जन करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमें देवताओंका पूजन करना चाहिये। भगवान् विष्णुसे बढ़कर अन्य कोई देव नहीं है। अतएव साधकको सदैव उनकी पूजा करनी चाहिये। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीन देवोंके प्रति पृथक्-भाव (भेदबुद्धि) न रखे।

इस संसारमें आठ मङ्गल हैं—ब्राह्मण, गौ, अग्नि, हिरण्य (सोना), घृत, सूर्य, जल और राजा। सदैव इनका दर्शन एवं पूजन करना चाहिये और यथासम्भव इन्हें अपने दाहिने करके ही चलना चाहिये। ब्राह्मण पहले वेदका अध्ययन करे, उसके बाद चिन्तन, अभ्यास तथा जप करके उसका दान शिष्योंको दे, अर्थात् अपने शिष्योंको वेदाध्ययन कराये। वेदाभ्यासका यही पाँच प्रकार है।

वेदार्थ, यज्ञकर्मप्रतिपादक शास्त्र और धर्मशास्त्रकी पुस्तकोंका पारिश्रमिक देकर जो लेखनकार्य कराता है और उसे योग्य अधिकारीको प्रदान करता है, वह वैदिक (वेदमें उक्त) लोकको प्राप्त करता है। जो इतिहास-पुराणके ग्रन्थोंको लिखकर दान देता है, वह ब्रह्म (वेद)-दानसे होनेवाले पुण्यका दुगुना पुण्य प्राप्त करता है।

दिनके तीसरे भागमें अपने पोष्य वर्गके प्रयोजनको पूर्ण करना चाहिये। माता, पिता, गुरु, भ्राता, प्रजा, दीन, दुःखी, आश्रितजन, अभ्यागत[3], अतिथि[4] और अग्नि—ये पोष्य वर्ग कहे गये हैं। पोष्य वर्गका भरण-पोषण करना स्वर्गका प्रशस्त साधन है। अतः मनुष्यको पोष्य वर्गका पालन-पोषण प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें उसी व्यक्तिका जीवन श्रेष्ठ है, जो बहुतोंके जीवनका साधक बनता है। अर्थात् बहुतोंका पालन-पोषण करता है। जो मात्र अपने भरण-पोषणमें लगे रहते हैं, वे जीवित रहते हुए भी मरे हुएके समान हैं; क्योंकि अपना पेटपालन तो कुत्ता भी

१-यहाँ कुमारका अर्थ हवनकर्ता (ब्रह्मचारी)-को समझना चाहिये।

२-तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ (शु०यजु० १९।९)

३-जो अकस्मात् अपने घर आ जाय वह अभ्यागत है।

४-अतिथि उस सन्तको कहते हैं जो तिथि, पर्व, उत्सव आदिका विवेक नहीं करता है और सदा चलता ही रहता है। यहाँ यमका वचन द्रष्टव्य है—तिथि पर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्ता येन महात्मना। सोऽतिथिः सर्वभूतानां शेषानभ्यागतान् विदुः॥

करता है।[१]

व्यवहारमें अर्थका महत्त्व है। जैसे नदियोंके मूल पर्वत हैं, वैसे ही समस्त कार्योंका मूल अर्थ है; इसीलिये अर्थको उत्पन्न करना एवं बढ़ाना आवश्यक होता है। अर्थ उसे ही कहते हैं, जो हमारे सभी कार्योंकी सम्पन्नतामें अनिवार्यरूपसे उपयोगी हो। इसी दृष्टिसे सभी रत्नोंकी निधि पृथ्वी, धान्य, पशु, स्त्रियाँ आदि अर्थ माने जाते हैं। इस तरह अर्थका महत्त्व होनेपर भी इसके अर्जनमें संयम आवश्यक है; अतएव विशेषकर ब्राह्मणको अपनी जीविकाके लिये अर्थार्जन करते समय यह ध्यानमें रखना चाहिये कि यदि आपत्तिकाल नहीं है तो किसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करना पड़े अथवा कम-से-कम द्रोह करना पड़े।

धन तीन प्रकारका माना गया है—शुक्ल, शबल (मिश्रित) और कृष्ण। उस धनके सात विभाग हैं। सभी वर्णोंको प्राप्त होनेवाला धन तीन प्रकारका होता है—१-दायभागके अनुसार वंशपरम्परासे यथाधिकार प्राप्त धन, २-प्रेमके कारण किसीके द्वारा दिया गया धन और ३-यथाविधि विवाहित पत्नीके साथ प्राप्त धन। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणके लिये तीन प्रकारके विशेष धन हैं—याजन (यज्ञ करानेसे प्राप्त), अध्यापनसे प्राप्त तथा विशुद्ध प्रतिग्रह (सत्पात्रसे लिया गया दान)। क्षत्रिय वर्णका विशेष धन भी तीन प्रकारका कहा गया है—करसे प्राप्त धन उसका पहला धन है, दूसरा धन दण्डद्वारा प्राप्त तथा तीसरा धन वह है जो विजयद्वारा प्राप्त हो। वैश्यका भी तीन प्रकारका विशेष धन है—खेतीसे प्राप्त, गोपालनसे प्राप्त तथा व्यापारसे प्राप्त। शूद्रका विशेष धन एक ही प्रकारका है, जो उपर्युक्त वर्णोंकी कृपासे उसको प्राप्त होता है। आपत्तिकालमें ब्राह्मण एवं क्षत्रिय स्वयं ब्याजसे, खेतीसे तथा व्यापारसे धन अर्जित कर सकते हैं, आपत्तिकालमें ऐसा करनेपर पाप नहीं होता है।

ऋषियोंके द्वारा जीवनयापनके लिये बहुत-से उपाय बताये गये हैं, उनमें कुसीद (ब्याज) सभी वर्णोंके लिये बताये गये विशेष उपायोंकी अपेक्षा अधिक है। अनावृष्टि, राजभय तथा चूहा आदि जीव-जन्तुओंके उपद्रवोंसे कृषि आदिमें बाधा आ जाती है, किंतु कुसीद-वृत्तिमें यह बाधा नहीं आती। शुक्लपक्ष हो, कृष्णपक्ष हो, रात्रि हो, दिन हो, गर्मी हो, वर्षा अथवा शीत हो—सभी दशाओंमें कुसीदसे होनेवाली धनवृद्धि रुकती नहीं है। अर्थात् सूदपर दिया गया धन बढ़ता ही रहता है। नाना प्रकारके व्यापारिक कार्योंमें संलग्न वणिक्-जनोंकी जो धनकी अभिवृद्धि दूसरे देशमें जानेसे होती है, वही अभिवृद्धि कुसीद-वृत्ति करनेसे घरमें बैठे-ही-बैठे प्राप्त हो जाती है।

शास्त्रसम्मत विधिसे अर्जित धनके लाभांशसे सभी लोगोंको पितृगण, देवगण तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। ये संतुष्ट होकर धन-अर्जनमें अज्ञानवश हुए दोषको निःसंदेह शान्त कर देते हैं। जो वणिक् ब्याजके द्वारा (धनार्जनके लिये) वस्त्र, गौ तथा स्वर्णादि देता है और जो किसान अन्न, पेय पदार्थ, सवारी, शय्या तथा आसन आदि (ब्याज-वृत्तिमें) देता है, वह (उपार्जित धनका) बीसवाँ भाग और पशु-स्वर्णादिका १००वाँ भाग राजाको देकर शेष बचे हुए धनके चतुर्थांशसे जौ (यव) आदि विभिन्न वस्तुओंका सञ्चय करे। दो-चौथाई अर्थात् आधे धनका उपयोग, अपने भरण-पोषण तथा नित्य-नैमित्तिक कार्यके लिये होना चाहिये। जो एक-चौथाई धन शेष बचे, उसका उपयोग मूलधनकी वृद्धिमें करना चाहिये।

विद्या, शिल्प, वेतन, सेवा, गोरक्षा, व्यापार, कृषि, वृत्ति[२], भिक्षा और ब्याज—ये दस जीवनयापनके साधन हैं। ब्राह्मणको सत्पात्र व्यक्तिसे दानरूपमें प्राप्त धनसे अपना निर्वाह करना चाहिये। क्षत्रिय वर्ण अपने शस्त्रास्त्रोंसे धनार्जन करे। वैश्य वर्ण न्यायोचित ढंगसे धनसंग्रह कर अपना कार्य पूर्ण करे और शूद्र सेवा-भावसे धन अर्जितकर अपने सभी कार्योंको सम्पन्न करे। प्रचुर जलराशिसे परिपूर्ण नदी, शाक, मृत्तिका, समिधा, कुश, पलाश, केला आदिके पत्र, अग्निदेवकी आराधनाके उपकरण और ब्रह्मघोष (स्वाध्याय)—ये ब्राह्मणोंके श्रेष्ठतम धन हैं। यदि अयाचित (स्वतःप्राप्त) धनको ब्राह्मण स्वीकार करे तो दोष नहीं है।

१-माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीनाः समाश्रिताः॥
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्गा उदाहृताः। भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्॥
भरणं पोष्यवर्गस्य तस्माद्यत्नेन कारयेत्। स जीवति वरश्चैको बहुभिर्योपजीव्यति॥
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः। स्वकीयोदरपूर्तिश्च कुक्कुरस्यापि विद्यते॥ (२१३। ७९—८२)

२-वृत्ति—सहायताके रूपमें प्रतिमास दी जानेवाली धनराशि।

देवताओंने ऐसे धनको अमृतके समान कहा है। अतः बिना याचना किये ही आये धनका परित्याग ब्राह्मणको नहीं करना चाहिये।

गुरुके धनका उद्धार करनेकी इच्छासे देवता और अतिथिकी पूजा करते हुए सभीसे प्रतिग्रह लेना चाहिये, पर उसका उपयोग अपनी तुष्टिके लिये नहीं करना चाहिये। साधुसे अथवा असाधुसे भी केवल उसके कल्याणके लिये प्रतिग्रह लेना चाहिये। यदि प्रतिग्रहीता ब्राह्मण (आचारहीन) कर्मनिष्ठ है तो अल्प दोष होगा। यदि निर्गुण है तो दोषमें डूब जायगा। इस प्रकार तस्करवृत्ति (अपने पुण्यको क्षीण करनेवाली वृत्ति)-से अपना भरण करनेके बाद उत्तम द्विजको अपनी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। दिनके चौथे भागमें मिट्टी, तिल, पुष्प तथा कुशादि सामग्री लाकर प्रकृतिप्रदत्त जलमें स्नान करना चाहिये।

नित्य, नैमित्तिक, काम्य, क्रियाङ्ग, मलापकर्षण, मार्जन, आचमन और अवगाहन—ये आठ प्रकारके स्नान बताये गये हैं। बिना स्नान किया पुरुष जप, अग्नि और हवन आदि करनेका अधिकारी नहीं है। प्रातःस्नान पूजा-पाठ आदि धार्मिक कृत्यके लिये करना चाहिये। इसीको नित्य-स्नान कहा गया है। चाण्डाल, शव, विष्ठा तथा रजस्वला आदिका स्पर्श करनेके पश्चात् जो स्नान किया जाता है, वह नैमित्तिक-स्नान कहलाता है। ज्योतिषशास्त्रके अनुसार पुष्य आदि नक्षत्रोंमें जो स्नानादिक कृत्य किया जाता है, उसे काम्य-स्नान कहते हैं। निष्काम व्यक्तिको इस प्रकारका स्नान नहीं करना चाहिये। जप-होमादिक कृत्योंको सम्पन्न करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर अथवा अन्य अनेक पवित्र कृत्य, देवता तथा अतिथि आदिका पूजन करनेकी इच्छासे जो स्नान किया जाता है, उसको क्रियाङ्ग-स्नानके नामसे अभिहित किया गया है। शारीरिक मलको दूर करनेके लिये सरोवर, देवकुण्ड, तीर्थ और नदियोंमें जो स्नान किया जाता है, वह मलापकर्षण-स्नान है। सामान्य जलसे स्नान करनेपर केवल शरीरकी शुद्धि होती है। तीर्थमें स्नान करनेपर विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। मज्जन (स्नान)-के लिये विहित मन्त्रोंसे मार्जन करनेसे मनुष्यका पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाता है। नित्य, नैमित्तिक, क्रियाङ्ग तथा मलापकर्षण नामक जो स्नान बताये गये हैं, उन स्नानोंको तीर्थका अभाव होनेपर उष्ण जल अथवा अन्य किसी प्रकारसे प्राप्त कृत्रिम जलसे सम्पन्न कर लेना चाहिये।

भूमिसे निकला हुआ जल पवित्र होता है। इस जलकी अपेक्षा पर्वतसे निकलनेवाले झरनेका जल पवित्र होता है। इससे भी बढ़कर पवित्र जल सरोवरका है और उसकी अपेक्षा नदीका जल पवित्र है। नदीके जलकी अपेक्षा भी तीर्थका जल पवित्र है। इन सभी जलोंकी अपेक्षा गङ्गाका जल परम पवित्र है। गङ्गाका श्रेष्ठतम जल तो जीवनपर्यन्त किये गये प्राणीके सभी पापोंका विनाश अतिशीघ्र ही कर देता है। गया तथा कुरुक्षेत्र नामक तीर्थोंके जलसे भी बढ़कर पवित्र एवं पुण्यदायक जल गङ्गाजीका है—

भूमिष्ठादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्॥
ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते।
तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यं तु सर्वतः॥
गाङ्गं पयः पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम्।
गयायां च कुरुक्षेत्रे यत्तोयं समुपस्थितम्॥
तस्मात्तु गाङ्गमपरं जानीयात्तोयमुत्तमम्।

(२१३।११६—११९)

पुत्रजन्म, कतिपय विशिष्ट योग, मकर आदि राशियोंपर सूर्यकी संक्रान्ति तथा चन्द्र और सूर्यग्रहण होनेपर ही रात्रिमें स्नान करना प्रशस्त है। अन्यथा रात्रिमें स्नान नहीं करना चाहिये। प्रतिदिन उषःकालमें, संध्याकालमें और सूर्यका उदय होते ही जो स्नान किया जाता है, वह स्नान प्राजापत्य यज्ञकी भाँति महापातकका नाश करनेवाला है। बारह वर्षतक प्राजापत्य यज्ञ करनेपर जो फल प्राप्त होता है, वह फल श्रद्धापूर्वक एक वर्षतक प्रातःकाल स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति सूर्य और चन्द्र नामक श्रेष्ठ ग्रहोंके समान प्रचुर भोगोंको प्राप्त करनेकी इच्छा करता है, वह माघ तथा फाल्गुन—इन दो मासोंमें नित्य प्रातःकाल स्नान करे। जो श्रद्धालु माघमास आनेपर प्रातःकाल स्नान करके हविष्यान्न ग्रहण करता है, वह एक ही मासमें अपने महाघोर और अतिपापोंका विनाश कर देता है। माता, पिता, भ्राता, मित्र अथवा गुरु आदिको उद्देश्य बनाकर जो प्रातःकाल स्नान करता है, उसे शास्त्रनिर्दिष्ट पुण्यका द्वादश गुणित अधिक पुण्य प्राप्त होता है। भगवान् विष्णु एकादशी तिथिको आमलक (आँवला)-के समर्पण एवं दानसे विशेषरूपसे तुष्ट होते हैं। लक्ष्मीकी कामना करनेवाले मनुष्यको सर्वदा आमलकसे स्नान करना चाहिये।

सन्ताप, कीर्ति, अल्पायु, धन, मृत्यु, आरोग्य तथा सभी कामनाओंकी पूर्ति क्रमशः रविवार आदिको तैलका अभ्यङ्ग

करनेसे प्राप्त होती है। अर्थात् रविवारको शरीरमें तैलका अभ्यङ्ग करनेपर सन्ताप, सोमवारको तैल-अभ्यंगसे कीर्ति, मंगलवारको तैल-अभ्यङ्गसे अल्पायु, बुधवारको तैल-अभ्यङ्गसे धन, बृहस्पतिवारको ऐसा करनेसे मृत्यु, शुक्रवारको तैल-अभ्यङ्गसे आरोग्य और शनिवारको तैल- अभ्यङ्ग करनेपर मनुष्यका सम्पूर्ण अभीष्ट पूर्ण होता है। उपवास करनेवाले व्रतीसे तथा नाईके द्वारा क्षौरकर्म करानेके पश्चात् मनुष्यसे तबतक ही लक्ष्मी प्रसन्न रहती हैं, जबतक वह तैलका स्पर्श नहीं करता है। अत: तैलस्पर्श करनेके पश्चात् मनुष्यको तत्काल स्नान कर लेना चाहिये। व्रतके दिन तो तैलस्पर्श नहीं ही करना चाहिये।

स्नान करनेके बाद मनुष्यको यथाविधान पितृगण, देवगण और मनुष्योंका तर्पण करना चाहिये। नाभिपर्यन्त जलमें स्थित होकर एकाग्र मनसे पितरोंका आवाहन करना चाहिये—

आगच्छन्तु मे पितर इमं गृह्णन्त्वपोऽञ्जलिम्॥

हे मेरे पितृगण! आप सब इस तीर्थस्थानपर आकर विराजमान हों और मेरे द्वारा दी जा रही जलाञ्जलिको स्वीकार करें।

इस प्रकार आवाहन करके आकाश और दक्षिण दिशामें स्थित पितृगणोंको तीन-तीन जलाञ्जलि प्रदान करे। यदि जलसे बाहर निकलकर तर्पण करना हो तो तर्पणकी विधि जाननेवाले लोगोंको सूखे और स्वच्छ वस्त्र पहनकर समूल कुशाओंपर तर्पण करना चाहिये। पात्र (बर्तन)-में तर्पण नहीं करना चाहिये।

तर्पण-कृत्यमें रक्षोगण प्रतिबन्ध न कर सकें, इसके लिये तर्पण आरम्भ करते समय बायें हाथमें जल लेकर नैर्ऋत्य कोणमें उसे छोड़ना चाहिये और जल छोड़ते समय निम्नलिखित मन्त्र बोलना चाहिये—

यदपां क्रूरमांसात्तु यदमेध्यं तु किञ्चन॥
अशान्तं मलिनं यच्च तत्सर्वमपगच्छतु।

(२१३। १३१-१३२)

क्रूरमांसके कारण, अपवित्रताके कारण, अथवा तर्पणके जलमें अज्ञानवश विद्यमान अशान्तिजनक किसी तत्त्व या मलिनताके कारण जो कुछ भी प्रतिबन्ध है, वह दूर हो जाय।

अन्तमें तर्पणका संक्षेप (उपसंहार) करते समय तीन जलाञ्जलि निम्नलिखित मन्त्रोंसे देनी चाहिये—

निषिद्धभक्षणाद्यत्तु पापाद्यच्च प्रतिग्रहात्॥
दुष्कृतं यच्च मे किञ्चिद्वाङ्मनःकायकर्मभिः।
पुनातु मे तदिन्द्रस्तु वरुणः सबृहस्पतिः॥
सविता च भगश्चैव मुनयः सनकादयः।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् तृप्यत्विति ब्रुवन्॥

(२१३। १३३—१३५)

निषिद्ध भक्षणसे, जन्मान्तरीय दुष्कर्मोंसे, प्रतिग्रह (दान) लेनेसे और इस जन्ममें शरीर, वाणी एवं कर्मसे जो निषिद्ध आचरण हो गये हैं, उनसे उत्पन्न पापोंके कारण मुझमें जो अपवित्रता है, उसे दूर करके बृहस्पति, इन्द्र तथा वरुण मुझे पवित्र करें। सूर्य, यम (देवताविशेष), सनकादि ऋषि और ब्रह्मासे लेकर स्तम्ब (अति लघु कीट या तृण) समस्त संसार—ये सभी मेरे तर्पणसे तृप्त हों।

इस प्रकार पितृतर्पण करके संयमी व्यक्तिको ईर्ष्या, द्वेष आदिसे रहित होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि अभीष्ट देवोंकी पूजा करनी चाहिये। विभिन्न देवतालिङ्गक ब्राह्म, वैष्णव, रौद्र, सावित्र एवं मैत्रावरुण-मन्त्रोंसे सभी देवताओंको नमस्कारपूर्वक अर्चा करनी चाहिये। तदनन्तर पुनः नमस्कारपूर्वक अर्चित देवोंको पृथक्-पृथक् पुष्पाञ्जलियाँ देनी चाहिये। पुनः सर्वदेवमय भगवान् विष्णु और सूर्यकी पूजा करनेका विधान है। इस पूजामें जो अधिकारी मनुष्य पुरुषसूक्तसे भगवान् विष्णुको पुष्प तथा जल समर्पित करता है, वह सम्पूर्ण चराचर विश्वकी पूजाको सम्पन्न कर लेता है। इन देवोंकी पूजा अन्य तान्त्रिक मन्त्रोंसे भी की जा सकती है। पूजामें सबसे पहले आराध्यदेव जनार्दनको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये और सुगन्धित पदार्थसे उनके विग्रहका विलेपन करना चाहिये। तत्पश्चात् उन्हें पुष्पाञ्जलि, धूप, उपहार और फलका नैवेद्य समर्पित करना चाहिये।

जलके मध्य स्नान, जलके द्वारा मार्जन, आचमन, जलमें तीर्थका अभिमन्त्रण तथा अघमर्षण-सूक्तके द्वारा मार्जन नित्य तीन बार करना चाहिये। महात्माओंको स्नानविधिके विषयमें यही अभीष्ट है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको मन्त्रसहित स्नान करना चाहिये। शूद्रवर्णको मौन होकर नमस्कारपूर्वक स्नान करना चाहिये। अध्यापन

ब्रह्मयज्ञ, तर्पण पितृयज्ञ, होम देवयज्ञ, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ तथा अतिथिका पूजन मनुष्ययज्ञ है। गौओंके गोष्ठमें दस गुना, अग्निशालामें सौ गुना, सिद्धक्षेत्र-तीर्थ तथा देवालयोंमें क्रमशः एक हजार गुना, एक लाख गुना और एक करोड़ गुना फल इन कर्मोंको करनेसे प्राप्त होता है। जब ये ही कर्म भगवान् विष्णुके सान्निध्यमें किये जाते हैं तो इनसे अनन्त गुना फलोंकी प्राप्ति होती है।

दिनका यथायोग्य पाँच विभाग करके पितृगण, देवगणकी अर्चा और मानवके कार्य करने चाहिये। जो मनुष्य अन्नदान करके सर्वप्रथम ब्राह्मणको भोजन कराकर अपने मित्रजनोंके साथ स्वयं भोजन करता है, वह देहत्यागके बाद स्वर्गलोकके सुखका अधिकारी बन जाता है।

मनुष्यको सर्वप्रथम मधुर, मध्यभागमें नमकीन और अम्लसे युक्त पदार्थ, उसके बाद कड़ुवा, तीता तथा कसैला भोजन करना चाहिये। भोजनके अनन्तर दुग्धपान करना चाहिये। रातमें शाक तथा कन्दादिक पदार्थोंको अधिक नहीं खाना चाहिये। एक ही प्रकारके रसमें आसक्ति अच्छी नहीं होती है।

ब्राह्मणका अन्न अमृतके समान, क्षत्रियका अन्न दुग्धके समान, वैश्यका अन्न अन्नके समान और शूद्रका अन्न रक्तके समान होता है। जो अमावास्याका व्रत एक वर्षतक करता है, उसके यहाँ ऐश्वर्य और लक्ष्मीका (अविचलरूपसे) निवास होता है। द्विजातिके उदरभागमें गार्हपत्याग्नि, पृष्ठभागमें दक्षिणाग्नि, मुखमें आहवनीयाग्नि, पूर्वमें सत्याग्नि और मस्तकमें सर्वाग्निका वास रहता है। जो इन पञ्चाग्नियोंको जान लेता है उसको आहिताग्नि कहा जाता है। शरीरको जल, चन्द्र तथा विविध प्रकारके अन्नके द्वारा साध्य माना गया है। इस शरीरका उपभोग करनेवाले प्राण अग्नि और सूर्य हैं। ये तीनों पृथक्-पृथक् तीन रूपोंमें भी अवस्थित रहकर एक ही हैं।

(भोजनके समय यह भावना करनी चाहिये कि) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायुतत्त्वसे युक्त इस मेरे स्थूल शरीरकी पुष्टिके लिये प्रयुक्त अन्न शक्ति-सञ्चयके लिये होता है। शरीरमें पहुँचकर जब यह अन्न भूमि, जल, अग्नि और वायुतत्त्वके रूपमें परिणत हो जाता है तो अप्रतिहत—असीम सुखकी अनुभूति होती है।

इसके (भोजनके) बाद मनुष्यको अपने हाथसे मुख आदि स्वच्छकर ताम्बूल अर्थात् पानका भक्षण करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर इतिहासका श्रवण करना चाहिये। इतिहास और पुराणादिकी कथाओंके द्वारा मनुष्यको दिनके छठे और सातवें भागका समय व्यतीत करना चाहिये। तत्पश्चात् स्नान करके पश्चिम दिशाकी ओर मुख करके सायंकालीन संध्योपासन करना चाहिये।

हे ब्राह्मणदेव! मेरे द्वारा कहे गये इस विधानके अनुसार अपने कर्तव्योंका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य इस सदाचारके अध्यायका पाठ करता है अथवा अपने पुरोहित आदिके द्वारा इसका श्रवण करता है, वह निश्चित ही अपनी मृत्युके पश्चात् स्वर्गलोकको जाता है। हे द्विज! इन सभी सदाचार एवं धर्मका पालन करनेवाला अधिकारी मनुष्य केशव (साक्षात् विष्णु) ही माना गया है।

(अध्याय २१३)

स्नान तथा संक्षेपमें संध्या-तर्पणकी विधि[1]

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं स्नानकी विधि कहता हूँ, क्योंकि सभी क्रियाएँ स्नानमूलक हैं अर्थात् स्नानके बिना कोई भी क्रिया सफल नहीं हो सकती। स्नानार्थी व्यक्तिको स्नानके पूर्व मिट्टी, गोमय, तिल, कुश, सुगन्धित पुष्प— ये सभी द्रव्य एकत्र कर लेना चाहिये। गन्ध आदि स्नानोपयोगी पदार्थोंको जलके समीप स्वच्छ स्थान—भूमिपर रखना चाहिये।

तदनन्तर विद्वान् व्यक्ति एकत्र किये हुए मिट्टी और गोमयको तीन भागोंमें विभक्त करके मिट्टी और जलके द्वारा दोनों पैर तथा दोनों हाथका प्रक्षालन करे। बायें कंधेपर यज्ञोपवीत रखकर शिखाबन्धनपूर्वक मौन होकर आचमन करे। 'ॐ उरुं हि राजा'०[2]' इत्यादि मन्त्रोंसे दक्षिणभागमें

१-इस अध्यायमें मन्त्रोंके प्रतीकमात्र दिये गये हैं। जिज्ञासु विभिन्न मन्त्रसंहिताओंसे मन्त्रोंको जान लें।

२-ॐ उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेत वा उ। प्रतिधाता च वक्तारस्ताहृदयाविधश्चित्। नमोऽग्न्यरुणाया भिष्ठुतोवरुणस्य पाशः। वरुणाय नमः॥ (२१४। ६)

जलको स्थापित करे। फिर '**ॐ ये ते शतं**[1]**०**' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करके उस जलका अभिमन्त्रण करे। '**ॐ सुमित्रिया न आप**[2]**०**' इस मन्त्रसे अञ्जलिमें जल लेकर पहले मार्जन करे, फिर शेष जलको बाहर फेंके। तदनन्तर दोनों चरण, जंघा और कटिप्रदेशमें तीन-तीन बार मिट्टी लगाये। इसके पश्चात् दोनों हाथ धोकर आचमन करके जलको नमस्कार करे। इसके बाद '**ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे०**' का पाठ करके '**ॐ भूः स्वाहा, ॐ भुवः स्वाहा, ॐ स्वः स्वाहा**' इत्यादि महाव्याहृतिमन्त्रसे आचमन और '**ॐ इदं विष्णु०**' आदि मन्त्रसे मिट्टीद्वारा अङ्गोंका मार्जन करे। फिर **सूर्याभिमुख होकर 'ॐ आपो अस्मान्०' इत्यादि मन्त्रसे जलमें** डुबकी लगाये। तदनन्तर शरीरको मल-मलकर स्वच्छ करे और धीरे-धीरे डुबकी लगाते हुए स्नान करे।

इसके बाद '**ॐ मा नस्तोके तनये मा न०**' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करके गोमयके द्वारा अङ्गका लेपन करे। फिर '**ॐ इमं मे वरुण०**' इत्यादि वारुणमन्त्रसे यथाक्रम अपने मस्तक आदिका अभिषेक करे। पूर्वोक्त मन्त्रोंसे विधिवत् आत्माभिषेक करके जलमें डुबकी लगाकर पुनः आचमन करे। '**ॐ आपो हि ष्ठा०**', '**ॐ इदं आपो हविष्मती०**', '**ॐ देवी राप०**', '**ॐ द्रुपदादिव०**' तथा '**ॐ शं नो देवी०**' इत्यादि पावमानी मन्त्रोंसे समाहित होकर मार्जन करे। '**ॐ हिरण्यवर्णा०**', '**ॐ पवमानसूक्तम्०**', '**ॐ तरत्समा:०**' तथा '**ॐ शुद्धवत्य:०**' आदि पवित्र करनेवाले मन्त्रों एवं वारुणमन्त्रोंसे यथाशक्ति जलाभिषेक करे।

ओंकार और व्याहृतिसमन्वित गायत्री-मन्त्रका पाठ करते हुए स्नानके आदि और अन्तमें जलाभिषेक करे। जलके मध्यमें रहकर ही मार्जन करनेका विधान है। जलमें डूबकर अघमर्षण-मन्त्रको तीन बार पढ़ना चाहिये। इसके बाद '**ॐ द्रुपदा०**' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करके '**ॐ आयं गौः०**' इत्यादि तीन ऋचाओंका पाठ करे। तदनन्तर स्मृतियोंमें निर्दिष्ट स्नानाङ्ग-मन्त्रोंका समाहितचित्तसे पाठ करे अथवा महाव्याहृति और प्रणवसे युक्त गायत्रीका जप करे या प्रणवकी आवृत्ति करे अथवा अव्यय विष्णुका स्मरण करे। जल ही विष्णुका आयतन है। विष्णु ही जलके अधिपति कहे गये हैं। जलमें विष्णुका स्मरण करे। '**ॐ तद् विष्णोः परमं पदम्०**' इत्यादि कहकर बार-बार स्नान करे। यह वैष्णवी गायत्री विष्णुके सर्वाङ्ग-स्मरणमें निमित्त है। '**ॐ इदमापः प्रवहत:०**' इत्यादि पवित्र मन्त्रोंसे अपने मलका निवारण करते हुए मार्जन करे और अपनेको निर्मल शरीरवाला बना ले। फिर '**ॐ तद्विष्णोः परमं पदम्०**' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करे।

यथाविधि स्नानक्रियाको सम्पन्नकर धोये हुए अखण्डित पवित्र दो वस्त्रोंको पहनकर मिट्टी और जलके द्वारा हाथ तथा पैरका प्रक्षालन करके संध्या एवं तर्पण करना चाहिये। स्नान और भोजनके आरम्भमें आचमनकर पुनः मन्त्रके द्वारा अन्तमें आचमन करना चाहिये। आचमनके बाद तीन बार '**ॐ द्रुपदादिव०**' इत्यादि मन्त्रका पाठकर जलद्वारा मूर्धाभिषेक तथा अघमर्षण करे। पुनः आचमन और मार्जन तथा तीन बार आचमनकर धीरे-धीरे प्राणायाम करे। इसके बाद अञ्जलिमें जल एवं पुष्प धारण करके सूर्यार्घ्य दे और ऊर्ध्वबाहु होकर समाहितचित्त हो सूर्यका निरीक्षण करते हुए '**ॐ उदु त्यं०**', '**ॐ चित्रं देवानां०**', तथा '**ॐ तच्चक्षुर्देवहितं०**' एवं '**ॐ हꣳसः शुचिषद्०**' इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करते हुए सूर्योपस्थापन करे। इस प्रकार सूर्योपस्थापन करके यथाशक्ति गायत्रीका जप करना चाहिये। इसके पश्चात् '**ॐ विभ्राट्०**' अनुवाक, पुरुषसूक्त, शिवसंकल्पसूक्त, मण्डलब्राह्मण इत्यादि सूर्यके मन्त्रोंका सभी देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यथाशक्ति जप करे अथवा जपकी साङ्गोपाङ्ग पूर्णताके लिये विधिवत् अध्यात्मविद्याका जप करे। तदनन्तर सव्य होकर तीन बार आचमनकर श्री, मेधा, धृति, क्षिति, वाक्, वागीश्वरी, पुष्टि, तुष्टि, उमा, अरुन्धती, शची, मातृगण, जया, विजया, सावित्री, शान्ति, स्वाहा, स्वधा, धृति, श्रेष्ठ अदिति, ऋषिपत्नियों, ऋषिकन्याओं और अन्य काम्य देवताओंका तर्पण करे। इसके बाद समाहितचित्त होकर सभीकी मङ्गलकामनासे सर्वमङ्गलादेवीको तृप्त करे और '**ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् तृप्यत्विति**' इस मन्त्रसे तीन अञ्जलि जल देते हुए तर्पण-क्रियाकी सम्पन्नताकी कामना करे। (अध्याय २१४)

१-ॐ ये ते शतं वरुणये सहस्रं यज्ञिया: पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥ (२१४।७)

२-ॐ सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु। दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः॥ (२१४।७)

तर्पण[१]-विधिका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—इसके बाद तर्पणविधिका वर्णन करता हूँ। इस विधिके अनुसार तर्पण करनेसे देवगण और पितृगण तुष्ट होते हैं। सर्वप्रथम 'ॐ मोदास्तृप्यन्ताम्' इत्यादि मन्त्रोंसे एक-एक अञ्जलि जल प्रदान करे। तर्पणके मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ मोदास्तृप्यन्ताम्। ॐ प्रमोदास्तृप्यन्ताम्। ॐ सुमुखास्तृप्यन्ताम्। ॐ दुर्मुखास्तृप्यन्ताम्। ॐ विघ्नास्तृप्यन्ताम्। ॐ विघ्नकर्तारस्तृप्यन्ताम्। ॐ छन्दांसि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्। ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐ सनातनस्तृप्यताम्। ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ संवत्सरस्सावयवस्तृप्यताम्। ॐ देवास्तृप्यन्ताम्। ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्। ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्। ॐ नागास्तृप्यन्ताम्। ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरिन्मनुष्या यक्षास्तृप्यन्ताम्। ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्। ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानि तृप्यन्ताम्। ॐ भूतग्रामाश्चतुर्विधास्तृप्यन्ताम्। ॐ दक्षस्तृप्यताम्। ॐ प्रचेतास्तृप्यताम्। ॐ मरीचिस्तृप्यताम्। ॐ अत्रिस्तृप्यताम्। ॐ अङ्गिरास्तृप्यताम्। ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम्। ॐ पुलहस्तृप्यताम्। ॐ क्रतुस्तृप्यताम्। ॐ नारदस्तृप्यताम्। ॐ भृगुस्तृप्यताम्। ॐ विश्वामित्रस्तृप्यताम्। ॐ कश्यपस्तृप्यताम्। ॐ जमदग्निस्तृप्यताम्। ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम्। ॐ स्वायम्भुवस्तृप्यताम्। ॐ स्वारोचिषस्तृप्यताम्। ॐ तामसस्तृप्यताम्। ॐ रैवतस्तृप्यताम्। ॐ चाक्षुषस्तृप्यताम्। ॐ महातेजास्तृप्यताम्। ॐ वैवस्वतस्तृप्यताम्। ॐ ध्रुवस्तृप्यताम्। ॐ धवस्तृप्यताम्। ॐ अनिलस्तृप्यताम्। ॐ प्रभासस्तृप्यताम्।

इसके बाद निवीती होकर अर्थात् यज्ञोपवीतको मालाके रूपमें गलेमें धारणकर 'ॐ सनकस्तृप्यताम्' इत्यादि निम्न मन्त्रोंसे तर्पण करे—

ॐ सनकस्तृप्यताम्। ॐ सनन्दनस्तृप्यताम्। ॐ सनातनस्तृप्यताम्। ॐ कपिलस्तृप्यताम्। ॐ आसुरिस्तृप्यताम्। ॐ वोढुस्तृप्यताम्। ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम्। ॐ मनुष्याणां कव्यवाहस्तृप्यताम्। ॐ अनलस्तृप्यताम्। ॐ सोमस्तृप्यताम्। ॐ यमस्तृप्यताम्। ॐ अर्यमा तृप्यताम्।

तदनन्तर प्राचीनावीती होकर अर्थात् दाहिने कंधेपर यज्ञोपवीत धारणकर अधोलिखित मन्त्रोंसे तर्पण करे—

ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। ॐ यमाय नमः। ॐ धर्मराजाय नमः। ॐ मृत्यवे नमः। ॐ अन्तकाय नमः। ॐ वैवस्वताय नमः। ॐ कालाय नमः। ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः। ॐ औदुम्बराय नमः। ॐ दध्नाय नमः। ॐ नीलाय नमः। ॐ परमेष्ठिने नमः। ॐ वृकोदराय नमः। ॐ चित्राय नमः। ॐ चित्रगुप्ताय नमः। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यतु। ॐ पितृभ्यः स्वधा नमः। ॐ पितामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रपितामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ मातृभ्यः स्वधा नमः। ॐ पितामहीभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रपितामहीभ्यः स्वधा नमः। ॐ मातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः:। तृप्यतामिति।

अधोलिखित मन्त्रोंका पारायण पितरोंका ध्यान करते हुए करे—

'ॐ उदीरतामवर०', 'ॐ अग्निरसो नः०', 'ॐ आयन्तु नः०', 'ॐ ऊर्जं०', 'ॐ पितृभ्य०', 'ॐ ये चेह०' तत्पश्चात् 'ॐ मधुवाता०' इसके बाद 'ॐ नमो वः पितरो०' इत्यादि मन्त्रसे ध्यान करते हुए अधोलिखित मन्त्रसे जल दे—

ॐ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः नमः। ॐ पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। ॐ मातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ प्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। ॐ वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। आदि····।

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।
ते तृप्यन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्॥

इस मन्त्रका पाठकर वस्त्रनिष्पीडित जलसे अपने कुलमें उत्पन्न पुत्र-हीनजनोंके लिये तर्पण करे।

(अध्याय २१५)

१-इस अध्यायमें तर्पणकी अवश्यकर्तव्यता एवं उसकी दिशाका संकेतमात्र किया गया है। तर्पणक्रम एवं विधिका ज्ञान अपनी शाखाके ग्रन्थोंसे करना चाहिये। माध्यन्दिन शाखाके लोगोंको 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' (प्रकाशित गीताप्रेस)-से सरलतम प्रामाणिक तर्पणविधि जान लेनी चाहिये।

बलिवैश्वदेवनिरूपण

ब्रह्माजीने कहा—अब मैं वैश्वदेव-बलिविधिका विधान बतलाता हूँ। यह होमका एक प्रारम्भिक उत्तम स्वरूप है। पहले अग्निको जलाकर अग्निका पर्युक्षण करे, तदनन्तर '**ॐ क्रव्यादमग्निं०**' इत्यादि मन्त्रसे अग्निके लिये कुछ हव्यांशका परित्याग करे। इसके बाद '**ॐ पावक वैश्वानर०**' मन्त्रको पढ़कर अग्निका आवाहन करे और **ॐ प्रजापतये स्वाहा। ॐ सोमाय स्वाहा। ॐ बृहस्पतये स्वाहा। ॐ अग्निषोमाभ्यां स्वाहा। ॐ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। ॐ द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ॐ इन्द्राय स्वाहा। ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा। ॐ अद्भ्यः स्वाहा। ॐ ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा। ॐ गृह्याय स्वाहा। ॐ देवदेवताभ्यः स्वाहा। ॐ इन्द्राय स्वाहा। ॐ इन्द्रपुरुषेभ्यः स्वाहा। ॐ यमाय स्वाहा। ॐ यमपुरुषाय स्वाहा। ॐ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्यः स्वाहा। ॐ वसुधापितृभ्यः स्वाहा**—इन मन्त्रोंसे अग्निमें आहुति दे। तदनन्तर '**ॐ ये भूता' प्रचरन्ति०**'का पाठ करते हुए बलि और पुष्टि प्रदान करनेकी प्रार्थना करे। अन्तमें '**ॐ आचाण्डालपतितवायसेभ्यो नमः**' इस मन्त्रसे भी काक आदिको बलि प्रदान करे[1]। (अध्याय २१६)

संध्याविधि[2]

श्रीब्रह्माजीने कहा—अब द्विजातियोंके लिये संध्या-विधिका वर्णन करता हूँ। सर्वप्रथम इस मन्त्रसे बाह्य तथा आभ्यन्तर शुद्धि करे—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

अर्थात् पवित्र हो या अपवित्र किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णुका स्मरण करनेसे बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकारकी शुद्धि हो जाती है।

उपनयन-संस्कारके समय जिस गायत्रीमन्त्रका उपदेश प्राप्त होता है, उसीका जप संध्योपासनमें होता है। उपनयनकालमें गायत्रीमन्त्रका विनियोग इस प्रकार होता है—'**ॐ गायत्री छन्दः, विश्वामित्र ऋषिस्त्रिपात्, समुद्राः कुक्षिः, चन्द्रादित्यौ लोचनौ, अग्निर्मुखम्, विष्णुर्हृदयम्, ब्रह्मरुद्रौ शिरः, रुद्रः शिखा उपनयने विनियोगः**'।

संध्योपासनके समय गायत्रीमन्त्रके जपसे पहले '**ॐ भूः**' से पैरमें, '**ॐ भुवः**'से जानुओंमें, '**ॐ स्वः**' से हृदयमें, '**ॐ महः**'से सिरमें, '**ॐ जनः**'से शिखामें, '**ॐ तपः**' से कण्ठमें और '**ॐ सत्यम्**' से ललाटमें न्यास करना चाहिये। आगेके मन्त्रोंसे हृदय, सिर, शिखा, कवच, अस्त्र आदिमें न्यास करे— **ॐ हृदयाय नमः, ॐ भूः शिरसे स्वाहा, ॐ भुवः शिखायै वौषट्, ॐ स्वः कवचाय हुम्, ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्**। इसके बाद **ॐ भूः, ॐ भुवः** इत्यादि सप्तव्याहृतियोंके साथ गायत्रीके तृतीय पाद '**ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतम् भूर्भुवःस्वरोम्**'का जप करते हुए प्राणायाम करे। प्राणायामके बाद '**ॐ सूर्यश्च०**' इस मन्त्रसे प्रातःकालकी, '**ॐ आपः पुनन्तु०**' इस मन्त्रसे मध्याह्नकालकी तथा '**ॐ अग्निश्च०**'इस मन्त्रसे सायंकालीन संध्यामें आचमन करे। तत्पश्चात् आवाहनपूर्वक भगवती गायत्रीके प्रातः, मध्याह्न तथा सायं-स्वरूपोंका ध्यान करे। फिर '**ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः०**' और '**ॐ सुमित्रिया न आपः०**' एवं '**ॐ द्रुपदादिव०**' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा जलसे मार्जन करे और '**ॐ ऋतं च सत्यं०**' इस मन्त्रसे अघमर्षण करे। तदनन्तर गायत्रीजपसे पूर्व गायत्रीमन्त्रका विनियोग इस प्रकार करे—'**ॐ गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः**'। '**ॐ उदु त्यं जातवेदसं०**', '**ॐ चित्रं देवानां०**', '**ॐ तच्चक्षुः०**'—ये सूर्योपस्थानके मन्त्र हैं। गायत्रीका जप करनेके अनन्तर'**ॐ विश्वतश्चक्षुः०**', '**ॐ देवागातु०**' तथा '**ॐ उत्तरे शिखरे०**'इन मन्त्रोंसे जपसमर्पणपूर्वक गायत्रीदेवीका विसर्जन करे। (अध्याय २१७)

१-ये भूताः प्रचरन्ति दीनाश्च निमिहन्तो भुवनस्य मध्ये। तेभ्यो बलिं पुष्टिकामो ददामि मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु॥ (२१६। २)

२-इस अध्यायमें बलिवैश्वदेवकी विधि अन्य शाखाके अनुसार है। माध्यन्दिन शाखाके लोगोंके लिये 'पारस्करगृह्यसूत्र'के अनुसार संक्षिप्त एवं प्रामाणिक 'बलिवैश्वदेवविधि' गीताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश'में द्रष्टव्य है।

३-इस अध्यायमें संध्याकी विधि अत्यन्त संक्षिप्त दी गयी है। अतः सविधि विस्तारपूर्वक 'संध्योपासनविधि' जाननेके लिये गीताप्रेससे प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश' पुस्तक देखना चाहिये।

पार्वणश्राद्धविधि[1]

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! अब मैं श्राद्धविधिका वर्णन करता हूँ। इस विधिके अनुसार पितरोंका श्राद्ध करनेसे भोग एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है। श्राद्धकर्ता श्राद्धके एक दिन पहले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। ब्रह्मचारीको निमन्त्रित करनेसे विशेष फल होता है।

सव्य होकर देवताओं (विश्वेदेवों)-को एवं अपसव्य होकर पितरोंको निमन्त्रित (आवाहित) करे। श्राद्धकर्ता '**ॐ स्वागतं भवद्भिः**' (**भवद्भिः स्वागतं स्वीक्रियताम्**) आपलोग मेरा स्वागत स्वीकार करें—यह निवेदन विश्वेदेवों एवं पितरोंसे करे। तदनन्तर '**ॐ सुस्वागतम्**' इस प्रकार विश्वेदेवों एवं पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मण बोलें। श्राद्धकर्ता '**ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वाहा**' कहकर देव-ब्राह्मणोंके चरणोंपर देवतीर्थसे समूल कुशोंके सहित जल प्रदान करे। यह कुश द्विगुणभुग्न (पितरोंके कार्यके लिये विहित मोटक)-रूपमें नहीं होना चाहिये। इसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर दाहिने कंधेपर यज्ञोपवीत रखकर (अपसव्य होकर) पिता, पितामहके नाम, गोत्रका उल्लेख करते हुए '**ॐ एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वधा**' इस मन्त्रसे पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंके चरणोंमें पितृतीर्थसे द्विगुण-भुग्न कुश (मोटक) एवं पुष्पसहित जल प्रदान करे।

इसी प्रकार मातामह आदिके लिये उद्दिष्ट ब्राह्मणोंके चरणोंमें पादोदक और अर्घ्य समर्पित करे। इसके बाद '**ॐ एतदाचमनीयं स्वाहा**' कहकर ब्राह्मणके हाथमें जल एवं '**ॐ एष वोऽर्घ्यः**' मन्त्रसे अर्घ्य तथा पुष्प दे। तत्पश्चात् '**ॐ सिद्धमिदमासनम्**' से (**सिद्धमिदमासनं गृह्यताम्**)—आसन सम्पन्न है, कृपया ग्रहण करें—ऐसा निवेदन करे। '**इह सिद्धमिदमासनम्।**' (यहाँ हम लोगोंके लिये आसन सम्पन्न है) ऐसा कहकर प्रतिनिधि ब्राह्मण प्रतिवचन दें।

इसके बाद '**ॐ भूः**', '**ॐ भुवः**' इत्यादि सप्तव्याहृतियोंका पाठकर देव-ब्राह्मणको पूर्वमुख और पितृब्राह्मणको उत्तरमुख बैठाकर निम्नलिखित मन्त्रका तीन बार जप करे—

ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु ते॥
(२१८।६)

तदनन्तर मास, पक्ष, तिथि, देश तथा पिता, पितामहका नाम एवं गोत्रका उच्चारण कर '**विश्वेदेवपूर्वकं श्राद्धं करिष्ये**' यह संकल्प करे तथा '**ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा**' का उच्चारण करे। इसके बाद '**ॐ विश्वेदेवानावाहयिष्ये**' से प्रार्थना करके '**ॐ आवाहय**' के द्वारा ब्राह्मणकी आज्ञा प्राप्त होनेपर '**ॐ विश्वेदेवा०**', '**ॐ ओषधयः०**' एवं—

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः।
ये अत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते॥
(२१८।७)

—इत्यादि मन्त्रोंसे श्राद्धकर्ता विश्वेदेवोंका आवाहन करे तथा '**ॐ अपहतासुरा रक्षा*ꣳ*सि वेदिषदः**'—मन्त्रका तीन बार उच्चारणकर यव बिखेरे। श्राद्धकर्ता '**ॐ पात्रमहं करिष्ये**' इस वाक्यसे अनुज्ञा प्राप्त करे तथा '**ॐ कुरुष्व**' इससे ब्राह्मणोंके द्वारा अनुज्ञात होकर अग्रभागसे युक्त दो कुश ग्रहण करे। एक प्रादेश[2] (लम्बे) कुशके दो पत्रोंको लेकर '**ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ०**' आदि मन्त्रसे दूसरे कुशपत्रके द्वारा उसका छेदन करे। इसके बाद '**ॐ विष्णुर्मनसा पूतेस्थ**' से उन दो कुशपत्रोंका अभ्युक्षण कर दूसरे कुशपत्रके द्वारा त्रिवेष्टनपूर्वक उसे अर्घ्यपात्रमें स्थापित करे। तत्पश्चात् '**ॐ शं नो देवीरभिष्टय०**' से उस पात्रमें जल तथा '**ॐ यवोऽसि०**' इत्यादि मन्त्रसे जौ एवं '**ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां०**' से उसी पात्रमें चन्दन प्रदान करे। फिर '**ॐ या दिव्या आपः पयसा०**' इस मन्त्रके पाठके साथ '**ॐ एषोऽर्घो नमः**' से ब्राह्मणोंके हाथमें अर्घ्यपात्रसे जल दे।

तदनन्तर श्राद्धकर्ता अर्घ्यपात्रस्थ अवशिष्ट संस्रवजल और पवित्रकको ग्रहणकर (अर्घ्यपात्रमें रखकर) ब्राह्मणके

१-श्राद्ध दो प्रकारका होता है—सपात्रकश्राद्ध तथा अपात्रकश्राद्ध। सपात्रकश्राद्धमें विश्वेदेव एवं पितरोंके रूपमें साक्षात् ब्राह्मणोंको ही आसनपर बिठाकर समस्त श्राद्धविधि सम्पन्न की जाती है। यहाँ इसी सपात्रकश्राद्धकी विधिका निर्देश किया गया है। ऐसे श्राद्धके लिये पूर्ण सात्त्विक, जाति, विद्या, तप आदिकी दृष्टिसे अति पवित्र एवं उत्कृष्ट ब्राह्मण ही उपादेय है। कलियुगमें ऐसे ब्राह्मण दुर्लभ हैं। इसीलिये अपात्रक-श्राद्ध ही वर्तमानमें किया जाता है। अपात्रकश्राद्धमें साक्षात् ब्राह्मण आसनपर नहीं बिठाये जाते हैं। विश्वेदेव एवं पितरोंके आसनोंपर उनके प्रतिनिधिरूपमें कुश (दण्ड-विधान त्रिकुश, पटवेल एवं मोटक) ही रखा जाता है।

२-अँगूठे और तर्जनीको पूरा फैलानेपर बीचकी दूरीको प्रादेश कहते हैं।

दक्षिणपार्श्वमें रखे और अर्घ्यपात्रको ऊर्ध्वमुख कुशके ऊपर स्थापित करके उसमें जल तथा पवित्रक भी (जो ब्राह्मणके दक्षिणपार्श्वमें रखा था) रख दे।

तत्पश्चात् '**ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीपवासोयुग्मयज्ञोपवीतानि नमः**' से विश्वेदेवोंको गन्धादि प्रदानकर समर्पित गन्ध आदिकी पूर्णताकी कामना '**गन्धादिदानमच्छिद्रमस्तु**'—कहकर करे। विश्वेदेवोंके प्रतिनिधि ब्राह्मण '**ॐ अस्तु**' से समर्पित चन्दनादिकी परिपूर्णता स्वीकार करे। ऋत्विक् ब्राह्मण '**ॐ अस्तु**'से प्रत्युत्तर दे। श्राद्धकर्ता '**पितृपितामहप्रपितामहानां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानां सपत्नीकानां श्राद्धमहं करिष्ये**'ऐसा कहकर पितरोंके श्राद्धकी अनुज्ञा माँगे। ब्राह्मणोंके द्वारा '**कुरुष्व**'इस वाक्यसे अनुज्ञात होनेपर '**ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च०**'मन्त्रका तीन बार जप करे।

तदनन्तर पित्रादि एवं मातामहादिका नाम, गोत्रका उल्लेख करते हुए '**इदमासनं स्वधा**' पदसे ब्राह्मणोंके वामपार्श्वमें आसन दानकर '**ॐ पितॄन् आवाहयिष्ये**' से ब्राह्मणोंसे अनुज्ञाकी प्रार्थना करे और '**ॐ आवाहय**' इस वाक्यसे ब्राह्मणोंके द्वारा अनुज्ञात होकर '**ॐ उशन्तस्त्वा०**' एवं '**ॐ आयान्तु नः पितरः०**' इत्यादि मन्त्रोंसे पितरोंका आवाहन करे। '**ॐ अपहतासुरा रक्षा:ंसि वेदिषदः**' मन्त्रसे तिलका विकरण करे। पूर्वकी भाँति क्रमसे स्थापित अर्घ्यपात्रमें उदक दे तथा '**ॐ तिलोऽसि सोमदेवत्यो०**' आदि मन्त्रोंसे तिल-दान करे।

इसके बाद दोनों हाथसे गन्ध, पुष्प प्रदानकर पितृपात्रको उठाकर '**ॐ या दिव्या०**' इत्यादि मन्त्रका पाठ करके अन्तमें पित्रादिका गोत्र, नामका उल्लेख कर '**एष तेऽर्घ्यः स्वधा**'से पवित्रीके साथ अर्घ्यपात्रको ग्रहण करनेके बाद वामपार्श्वमें कुशाके ऊपर '**ॐ पितृभ्यः स्थानमसि**' मन्त्रसे अधोमुख अर्घ्यपात्रको स्थापित करे, फिर '**ॐ शुन्धन्तां लोकाः पितृसदनाः०**' का पाठकर उस अधोमुख पात्रका स्पर्श करना चाहिये। इसके बाद पितृतीर्थसे पित्रादिके आसनपर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप वस्त्रयुग्म एवं यज्ञोपवीतादि देकर गोत्रनामोच्चारणपूर्वक सपत्नीक पितृ, पितामह एवं प्रपितामहको '**एतानि गन्धपुष्पधूपदीपवासोयुग्मसोत्तरीययज्ञोपवीतानि वः स्वधा**' इस वाक्यको पढ़कर पितृतीर्थसे जल छोड़े। '**गन्धादिदानम् अक्षय्यम् अस्तु**' ऐसा श्राद्धकर्ताके कहनेपर '**संकल्पसिद्धिरस्तु**' इस प्रकार ब्राह्मण कहे। इसी प्रकार मातामहादिके लिये भी अनुज्ञापनादि कर्म करे। '**ॐ या दिव्या०**' इस मन्त्रसे भूमिका सम्मार्जन करे। तदनन्तर घृतमिश्रित अन्न ग्रहणकर सव्य होकर '**ॐ अग्नौ करणमहं करिष्ये**' द्वारा पितृब्राह्मणकी सेवामें अनुज्ञाकी प्रार्थना करे। '**ॐ कुरुष्व**' इस वाक्यसे ब्राह्मणके द्वारा अनुज्ञात हो, '**ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा**' मन्त्रसे पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मणके हाथमें दो आहुति प्रदान करे। अवशिष्ट अन्न पिण्डार्थ स्थापित करके अन्नका आधाभाग पित्रादिके पात्रमें और मातामहादिके पात्रमें समर्पित करे।

इसके बाद जलपात्र मुद्रादि दक्षिणास्थापनपूर्वक भोजनपात्रके ऊपर कुशदान कर अधोमुख दोनों हाथोंके द्वारा भोजनपात्र स्पर्श करे। '**ॐ पृथिवी ते पात्रं०**' इत्यादि मन्त्रपाठपूर्वक उस पात्रको अभिमन्त्रितकर उसपर अन्न परोसते हुए '**ॐ इदं विष्णुर्वि चक्रमे०**' मन्त्रका पाठ करे। '**विष्णो हव्यं रक्षस्व**' से अन्नके मध्यमें अधोमुख अंगुष्ठसे स्पर्श करके '**ॐ अपहतासुरा रक्षा:ंसि वेदिषदः**' मन्त्रसे तीन बार जौ एवं '**ॐ निहन्मि सर्वं०**' से पीली सरसोंका विकरण करना चाहिये। तदनन्तर '**धूरिलोचनसंज्ञकेभ्यो देवेभ्य एतदन्नं सघृतं सपानीयं सव्यञ्जनं स्वाहा**' कहकर विश्वेदेवोंको अन्न निवेदन करते हुए उसके ऊपर सजल कुशपत्र रखकर श्राद्धकर्ता '**ॐ अन्नमिदम् अक्षय्यम् अस्तु**' ऐसा उच्चारण करे एवं निमन्त्रित ब्राह्मण '**ॐ सङ्कल्पसिद्धिरस्तु**' इस प्रकार कहें।

तत्पश्चात् अपसव्य होकर पित्रादि-पात्रमें व्यञ्जनसहित घी मिले हुए अन्नको परोसकर उसके ऊपर भूमि-संलग्न कुशका स्थापन कर दोनों उत्तान हाथोंसे भोजनपात्र स्पर्श करते हुए '**ॐ पृथिवी ते पात्रं०**'मन्त्रका पाठ करे।'**ॐ इदं विष्णुर्वि चक्रमे०**'एवं '**ॐ विष्णोः कव्यं रक्षस्व**'इन मन्त्रोंसे समर्पित अन्नमें अंगुष्ठका स्पर्श करे। '**ॐ अपहतासुरा रक्षा:ंसि वेदिषदः**'से अन्नके ऊपर तिल फैलाकर पृथ्वीपर बायाँ घुटना टिकाकर '**अमुकगोत्रेभ्यः अस्मत् पितृपितामहेभ्यः सपत्नीकेभ्यः एतदन्नं सघृतं सपानीयं सव्यञ्जनं प्रतिषिद्धवर्जितं स्वधा**'इत्यादि वाक्यसे सपत्नीक पिता-पितामहादिको नाम-गोत्र-उच्चारणपूर्वक अन्नका निवेदन करे। अन्नका संकल्प करके '**ॐ ऊर्जं वहन्तीरमृतं०**' मन्त्रसे दक्षिणमुख होकर जलकी धारा प्रदान करे। '**ॐ श्राद्धमिदमच्छिद्रमस्तु**' एवं

ॐ सङ्कल्पसिद्धिरस्तु'—इन दोनों मन्त्रोंका पाठकर 'ॐ भूर्भुवः स्वः०'—इस व्याहृति-मन्त्रसे युक्त गायत्रीका उच्चारण कर विसर्जन करे। तदनन्तर 'ॐ मधुवाता०' मन्त्रका पाठकर तीन बार 'मधु' शब्दका उच्चारण करना चाहिये।

इसके साथ 'यथासुखं वाग्यता जुषध्वम्' का पाठकर ब्राह्मणोंके भोजन करते समय भक्तिपूर्वक 'सप्तव्याधा०' इत्यादि पितृस्तोत्रका पाठ करे[1]। इसके बाद 'तृप्यस्व' इस वाक्यका उच्चारण कर दक्षिणाभिमुख अपसव्य होकर 'ॐ अग्निदग्धाश्च०[2]' मन्त्रको पढ़कर भूमिमें कुशके ऊपर घीके साथ जलयुक्त अन्नको विकरित करे।

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको मुखप्रक्षालनके लिये जल देकर प्रणवपूर्वक व्याहृतिके साथ गायत्री तथा 'ॐ मधुवाता०' इत्यादि मन्त्रोंका पाठकर मधु शब्दका तीन बार उच्चारण करे। 'ॐ रुचितं भवद्भिः' यह कहकर देव-ब्राह्मणोंसे विनम्रभावपूर्वक भोजनके रुचिपूर्ण (स्वादिष्ट) होनेका प्रश्न करे। देव-ब्राह्मणोंके द्वारा 'सुरुचितम्' यह उत्तर देनेपर 'ॐ शेषमन्नम्' यह विनम्रतासे प्रश्न करनेपर ब्राह्मण 'ॐ इष्टैः सह भोजनम्' अर्थात् इष्टजनोंके साथ आप भी भोजन करें—यह प्रत्युत्तर दें। तदनन्तर वामोपवीती (अपसव्य) होकर पित्रादि ब्राह्मणोंसे 'ॐ तृप्ताः स्थ' यह जिज्ञासा करे और उनके द्वारा 'ॐ तृप्ताः स्मः' इस वाक्यसे अनुज्ञात होकर भूमिका अभ्युक्षण और चतुष्कोण मण्डल बनाकर उसमें तिल विकरित करे। 'ॐ अमुकगोत्र अस्मत्पितः अमुकदेवशर्मन् सपत्नीकः एतत्ते पिण्डासनं स्वधा' ऐसा कहकर पिण्डके लिये आसन दे और रेखाकरण करे। सप्रणव तथा व्याहृतिके साथ गायत्रीमन्त्र और 'ॐ मधुवाता०' आदि मन्त्रका पाठकर तीन बार 'मधु' शब्दका उच्चारण करते हुए घृतयुक्त अन्नसे पिण्डका निर्माण कर 'ॐ अमुकगोत्र अस्मत्पितः०' इत्यादि वाक्यसे कुशोंके ऊपर पिता आदिके लिये पिण्ड प्रदान करे। पुनः रेखामध्यमें पहलेके समान पितामहको पिण्डदान तथा व्याहृतिपूर्वक गायत्री और 'मधुवाता०' का तीन बार जप करके पिण्डके समीपमें शेषान्नका विकरण करके 'ॐ लेपभुजः पितरः प्रीयन्ताम्' इस वाक्यसे (पिण्डाधार कुशमें) हाथका मार्जन करे। प्रक्षालित पिण्डजलसे 'ॐ अमुकगोत्र अस्मत्पितः०' इत्यादि वाक्यसे जलद्वारा पिण्डसेचन कर पिण्डपात्रको अधोमुख करके कृताञ्जलिपूर्वक 'ॐ पितरो मादयध्वं०' मन्त्रका जप करे। तत्पश्चात् जलस्पर्श करते हुए वामावर्तसे उत्तरमुख होकर प्राणवायुका तीन बार संयम करके 'ॐ षड्भ्य ऋतुभ्यो नमः' इस मन्त्रका पाठ करे।

इसके बाद वामावर्तसे दक्षिणमुख होकर भोजनपात्रमें पुष्प तथा 'अक्षतं चारिष्टं चास्तु०' से अक्षत दे। 'अमी मदन्तः पितरो यथाभागमावृषायिषत' इस मन्त्रका पाठ करते हुए वस्त्रको शिथिलकर अञ्जलि बनाकर 'ॐ नमो वः पितरो नमो वः०' इस मन्त्रका पाठ करे। तत्पश्चात् 'गृहान्नः पितरो दत्त' इस मन्त्रसे गृहका निरीक्षण करे। 'सदा वः पितरो द्वेष्मः' इस मन्त्रसे निरीक्षणकर 'एतद्वः पितरो वासः' यह मन्त्र पढ़कर 'अमुकगोत्र पितः एतत्ते वासः स्वधा' वाक्यसे पिण्डपर सूत्रदान करे।

तदनन्तर बायें हाथसे उदकपात्र ग्रहणकर 'ऊर्जं वहन्तीः०' मन्त्रसे पिण्डके ऊपर जलधारा देकर पूर्वमें स्थापित अर्घ्यपात्रके बचे हुए जलसे प्रत्येक पिण्डका सेचन करे। फिर पिण्डावाहनपूर्वक पिण्डोंके ऊपर गन्ध और कुशदानकर 'अक्षन्नमीमदन्त०' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करे। मातामहादिके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंको आचमन कराये। 'ॐ सुप्रोक्षितमस्तु' इस वाक्यसे श्राद्धभूमिका भलीभाँति अभ्युक्षणकर 'अपां मध्ये स्थिता देवा सर्वमप्सु०' का उच्चारण करके 'शिवा आपः सन्तु' कहकर ब्राह्मणोंके हाथमें जल दे। 'लक्ष्मीर्वसति०' आदिका पाठकर 'ॐ सौमनस्यमस्तु' यह मन्त्र पढ़कर ब्राह्मणोंके हाथमें पुष्प समर्पित करे। इसके बाद 'अक्षतं चास्तु०' इत्यादि मन्त्रका पाठकर 'अक्षतं चारिष्टं चास्तु' यह कहते हुए यव और तण्डुल भी ब्राह्मणोंके हाथमें दे। तदनन्तर 'अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां सपत्नीकाना-मिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्तु' इस वाक्यसे पित्रादि ब्राह्मणके हाथमें तिल और जलका दान करे। ब्राह्मण 'अस्तु' कहकर प्रतिवचन बोलें। इसी क्रममें मातामह आदिको अक्षत आदि दानकर उनसे आशीर्वादकी प्रार्थना करे। तत्पश्चात्

---

[1] सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं किमवसीदथ॥ (२१८। २०-२१)

[2] अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु पराङ्गतिम्॥ (२१८। २२)

'ॐ अघोराः पितरः सन्तु', 'गोत्रं नो वर्द्धतां०', 'दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे।

श्राद्धकर्ता 'सौमनस्यमस्तु' इस वाक्यका उच्चारण करे। ब्राह्मण 'अस्तु' यह कहें। तदनन्तर दिये गये पिण्डोंके स्थानमें अर्घ्यपात्रोंमें पवित्रकोंको छोड़ दे। बादमें कुशनिर्मित पवित्रक लेकर उससे पितरोंके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंका स्पर्शकर 'ॐ स्वधां वाचयिष्ये' इस वाक्यसे स्वधावाचनकी आज्ञा प्राप्त करे। ब्राह्मणोंके द्वारा 'ॐ वाच्यताम्' इस वचनसे अनुज्ञात हो श्राद्धकर्ता 'ॐ पितृपितामहेभ्यो यथानामशर्मभ्यः सपत्नीकेभ्यः स्वधा उच्यताम्' ऐसा कहे। तदनन्तर ब्राह्मण 'अस्तु स्वधा' का उच्चारण करें।

श्राद्धकर्ता 'अस्तु स्वधा' इस वाक्यसे अनुज्ञात हो 'ऊर्जं वहन्तीरमृतं०' इस मन्त्रसे पिण्डके ऊपर जलधारा दे। फिर 'ॐ विश्वेदेवा अस्मिन् यज्ञे प्रीयन्ताम्' से देव-ब्राह्मणोंके हाथमें यव और जल प्रदान करे। 'ॐ प्रीयन्ताम्' इस वाक्यसे ब्राह्मणद्वारा अनुज्ञात होकर 'ॐ देवताभ्यः०' मन्त्रका तीन बार जप करे।

अधोमुख होकर पिण्डपात्रको हिलाकर आचमनपूर्वक दक्षिणोपवीती (सव्य) होकर पूर्वाभिमुख 'ॐ अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे०' इत्यादि मन्त्रसे देव-ब्राह्मणको दक्षिणा दे। तत्पश्चात् पितृ-ब्राह्मणोंकी सेवामें 'ॐ पिण्डाः सम्पन्नाः' यह निवेदन करनेपर 'ॐ सुसम्पन्नाः' इस प्रकार ब्राह्मणसे अनुज्ञात हो पिण्डके ऊपर श्राद्धकर्ता दुग्धधारा प्रदान करे। फिर पिण्डको हिलाकर पिण्डके समीप रखे अर्घ्यपात्रको सीधा स्थापित कर दे। इसके बाद 'ॐ वाजे वाजे०' मन्त्रसे पिण्डके अधिष्ठाता पितरोंका विसर्जन करे। 'आमा वाजस्य०' आदि मन्त्रसे देव तथा 'अभिरम्यताम्' से पितृ-ब्राह्मणका विसर्जन करके ब्राह्मणसे अनुज्ञा प्राप्तकर गौ आदिको पिण्ड प्रदान करे। इस प्रकार यहाँ श्राद्धविधि बतलायी गयी। इसका पाठ करनेमात्रसे भी पापका नाश होता है। किसी भी स्थानमें उक्त विधिके अनुसार श्राद्ध करनेपर पितरोंको अक्षय स्वर्ग एवं ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है[1]। (अध्याय २१८)

नित्यश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध एवं एकोद्दिष्टश्राद्धका वर्णन

श्रीब्रह्माजीने कहा—अब मैं नित्यश्राद्धका वर्णन करता हूँ। पूर्वमें जिस तरह श्राद्धविधि कही गयी है, उस विधिके अनुसार ही नित्यश्राद्ध करे। विशेषता यह है कि नित्यश्राद्धमें 'ॐ अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहानाम् अमुकशर्मणां सपत्नीकानां श्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मास्वहं करिष्ये' ऐसा कहकर श्राद्धका संकल्प करना चाहिये। आसन-दानादि सभी कार्य पूर्ववत् करे। इस श्राद्धमें विश्वेदेव वर्जित हैं।

अब मैं वृद्धिश्राद्धका विधान बतलाता हूँ। वृद्धिश्राद्धमें[2] भी श्राद्धकी ही भाँति प्रायः सभी कार्य करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जो विशेष है, उसे कहता हूँ। पैदा हुए पुत्रके मुखको देखनेके पहले वृद्धिश्राद्ध करना चाहिये। यह श्राद्ध पूर्वाभिमुख और दक्षिणोपवीती (सव्य) होकर यव, बेर, कुश, देवतीर्थके द्वारा नमस्कार तथा दक्षिणा आदि उपचारपूर्वक करे।

दक्षिण जानुको[3] ग्रहण कर विश्वेदेवोंका ब्राह्मणोंमें आवाहन करे। आमन्त्रणसे पूर्व ब्राह्मणोंसे अनुज्ञा प्राप्त करनेके लिये इस प्रकार ब्राह्मणोंसे निवेदन करे—अपने कुलके अमुककी उत्पत्तिके शुभ अवसरपर अपने पितृपक्ष एवं मातृपक्षके पितरोंका श्राद्ध करनेके लिये वसु, सत्य नामके विश्वेदेवोंका आप लोगोंमें आवाहन कर सिद्ध अन्नसे उनका श्राद्ध करना चाहता हूँ। ब्राह्मणोंके द्वारा अपनेमें विश्वेदेवोंके आवाहनकी आज्ञा मिलनेपर उन ब्राह्मणोंमें वसु, सत्य नामके विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहिये। (यहाँ मूल ग्रन्थके अनुसार संस्कृतवाक्योंका ही प्रयोग होना चाहिये।) इसी प्रकार अन्य ब्राह्मणोंमें पितरोंका

१-इस अध्यायसे पार्वणश्राद्ध करनेकी प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिये। श्राद्धकी विधि, सम्पूर्ण मन्त्र एवं क्रमका ज्ञान श्राद्धकी पद्धतियोंसे करना चाहिये।

२-इस श्राद्धको माङ्गलिक, आभ्युदयिक तथा नान्दीमुखश्राद्ध भी कहते हैं।

३-जानु जङ्घाको कहते हैं। बायें जङ्घेको मोड़कर और दाहिने जङ्घेको ऊपरकर बैठनेसे दाहिने जङ्घेपर दाहिना हाथ होता है। यहाँ इसी आसनसे तात्पर्य है।

भी आवाहन करना चाहिये। बादमें **'ॐ विश्वेदेवा स आगत०'** इत्यादि मन्त्रसे वसु तथा सत्य नामवाले विश्वेदेवोंका आवाहन कर उन्हें आसन तथा गन्धादि दानकर **'अच्छिद्रावधारण[1]'** का वाचन करे। इसके बाद प्रपितामही आदिका अनुज्ञापन, आसनदान, गन्धादि-दान और अच्छिद्रावधारण-वाचन करना चाहिये।

इसी प्रकार पितामही, माता और प्रपितामहकी अनुज्ञा ग्रहणकर आसन, आवाहन और गन्धादि-दान तथा अच्छिद्रावधारण करके प्रपितामह एवं वृद्धप्रमातामह आदिकी अनुज्ञा ग्रहण कर आसन, आवाहन एवं गन्धादिका दान करे। तदनन्तर **'ॐ वसुसत्यसंज्ञकेभ्यः०'** इत्यादि मन्त्र पढ़कर इसी प्रकार पितामही और मातामह, प्रमातामहके लिये अन्नसंकल्पनादि क्रिया करनी चाहिये।

एकोद्दिष्टश्राद्धमें[2] पूर्वके समान सभी कार्य करना चाहिये। इसमें विशेष यह है कि प्रथम ब्राह्मण-निमन्त्रण, पादप्रक्षालन, आसनदान करके **'अद्य अमुकगोत्रस्य मत्पितुरमुकदेवशर्मणः प्रतिसांवत्सरिकमेकोद्दिष्टश्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मास्वहं करिष्ये'** इस संकल्प-वाक्यसे अनुज्ञाग्रहणपूर्वक आसनदान और गन्धादि तथा पक्वान्न प्रदान करना चाहिये।

इसके बाद रुचिर-स्तवादिका पाठकर तथा यज्ञसूत्र (यज्ञोपवीत) कण्ठमें धारणकर उत्तराभिमुख होकर अतिथिश्राद्ध करे। पितरोंकी तृप्ति जानकर दक्षिणाभिमुख हो वामोपवीती (अपसव्य) होकर कर्मसे उच्छिष्ट अन्नके समीपमें **'अग्निदग्धाश्च०'** इत्यादि मन्त्रसे अन्न विकरण करे। तदनन्तर **'अमुकगोत्र मत्पितः०'** से मण्डलरेखाके ऊपर जलधारा दे। अन्य कार्य पूर्वके समान ही समझना चाहिये। (अध्याय २१९)

सपिण्डीकरणश्राद्धकी विधि

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यासजी! अब मैं सपिण्डीकरण-श्राद्धका वर्णन करता हूँ। मृत्युके सालभर बाद मृत्यु-तिथिपर यह श्राद्ध करना चाहिये। इस श्राद्धको यथासमय विधिवत् करनेसे प्रेतको पितृलोककी प्राप्ति होती है। सपिण्डीकरणश्राद्ध अपराह्नमें करना चाहिये, सभी अनुष्ठान प्रायः अन्य श्राद्धोंके समान करे। (इसमें जो विशेष है वही कहा जा रहा है।) पितामहादिके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर **'ॐ पुरूरवोमाद्रवसंज्ञकेभ्यो०'** से वामपार्श्वमें आसन रखकर पुरूरवा और माद्रव नामके विश्वेदेवोंका आवाहन करना चाहिये। **'पितामहप्रपितामहानां०'** इत्यादि वाक्यसे श्राद्धकी पितामह आदिके प्रतिनिधि ब्राह्मणोंसे अनुज्ञा ग्रहणकर तीन पात्र स्थापित करे। उन पात्रोंके ऊपर कुश रखकर दूसरे पात्रसे उन्हें ढक दे और आवाहन करे। इसके बाद अन्य श्राद्धोंके समान अच्छिद्रावधारणतककी क्रिया करके सपत्नीक पिताको प्रेतपद अन्तमें प्रयुक्तकर उनका नाम उच्चारण करे। श्राद्धकी अनुज्ञा ले ले। तदनन्तर देवपात्राच्छिद्रावधारण करे। यथाविधान कार्योंको सम्पन्नकर पितामह, प्रपितामह, वृद्धप्रपितामहके पात्रोंका क्रमसे संचालन और उद्घाटनकर **'ॐ ये समानाः समनसो०'** इत्यादि मन्त्रोंसे पितृपात्रका जल पितामह और प्रपितामहके पात्रमें छोड़े। वृद्धप्रपितामहके पात्रको छोड़कर पितामह, प्रपितामहके पात्रका जल और पवित्र पितृ-पात्रमें निक्षिप्त करे। तदनन्तर पितृ-ब्राह्मणके हाथमें अर्घ्यपात्रस्थ पवित्रक देकर उसमें स्थित पुष्प ब्राह्मणोंके सिर, हाथ और चरणोंमें समर्पित करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणोंके हाथमें जल देकर दोनों हाथोंसे अर्घ्यपात्र उठाकर **'ॐ या दिव्या०'** इत्यादि मन्त्रका पाठकर **'अमुक गोत्र मत्पितामह०'** इस वाक्यसे पितृ-पात्रसे कुछ अर्घ्योदक पितामहके प्रतिनिधि ब्राह्मणके हाथमें प्रदान करे तथा पवित्रकके सहित अवशिष्ट कुछ जल पिण्डसेचनके लिये रखकर अन्य पात्रसे आच्छादितकर

१-श्राद्धमें समर्पित वस्तुकी पूर्णताका वचन ब्राह्मणोंसे लेना ही 'अच्छिद्रावधारणवचन' है।
२-इस श्राद्धका भी यथोचित क्रम एवं विस्तृत विवरण श्राद्धपद्धतियोंमें देखना चाहिये।
३-पितरोंके उद्देश्यसे की गयी विधिकी पूर्णताकी प्रार्थना ही 'अच्छिद्रावधारण' है।
४-अर्घ्यपात्रके छिद्ररहित होनेका निश्चय करना ही 'देवपात्राच्छिद्रावधारण' है।

पितृ-ब्राह्मणके वामपार्श्वमें दक्षिणाग्रकुशके ऊपर '**पितृभ्यः स्थानमसि**' यह पढ़कर अधोमुख स्थापित करे।

इसके बाद पितामह-प्रपितामह आदिको गन्धादि देकर 'अग्नौकरण'[1] करे तथा अवशिष्ट अन्नको प्रपितामह आदिके पात्रमें डाल दे। इसी प्रकार पितामहादिका पात्राभिमन्त्रणपर्यन्त कर्म सम्पन्नकर ब्राह्मणपात्राभिमन्त्रण, अंगुष्ठनिवेशन, तिल-विकरणपूर्वक '**अमुक गोत्र०**' इत्यादि वाक्य कहकर घृताक्त अन्न आदिका निवेदन करे।

तत्पश्चात् देवादिक्रमसे ब्राह्मणके हाथमें जल प्रदान करे, यही 'अपोशन' विधि है। अतिथिके आनेपर अतिथिश्राद्ध करते हुए इस समय भी विकरणके लिये अन्न प्रदान करना चाहिये। पितामहादि ब्राह्मणसे '**ॐ स्वदितं भवद्भिः**' से सुतृप्तिकी जिज्ञासा कर संतुष्टिका आश्वासन प्राप्त करे। '**अमुक गोत्र०**' इत्यादि वाक्यसे पिण्डदान और '**पिण्डपात्रमच्छिद्रमस्तु**' कहकर सभी कार्योंकी समाप्तिके बाद पिण्डके दो हिस्से कर '**ये समानाः समनसः०**' आदि मन्त्रोंका पाठ करे और पितामह, वृद्धप्रपितामह-पिण्डके साथ पिताका पिण्ड मिला दे। पिण्डके ऊपर गन्धादि रखकर पिण्डचालन करना चाहिये। अतिथि और ब्राह्मणसे स्वदितादि (सुतृप्ति)-का प्रश्न करके ब्राह्मणोंको आचमन एवं ताम्बूल प्रदान करे।

तदनन्तर यजमान '**सुप्रोक्षितमस्तु**', '**शिवा आपः सन्तु**'—इन दो मन्त्रोंका उच्चारण करके वृद्धप्रपितामहादि-क्रमसे ब्राह्मणके हाथमें जल प्रदान करे और '**गोत्रस्याक्षय्यमस्तु**' से पितृ-ब्राह्मणके हाथमें अक्षय्यदान करके '**उपतिष्ठताम्**' आदि वाक्यसे सतिल जल देना चाहिये।

तत्पश्चात् '**अघोराः पितरः सन्तु**' इस वाक्यका उच्चारण करनेपर ब्राह्मण '**अस्तु**' इस वाक्यसे प्रतिवचन प्रदान करें एवं '**स्वधां वाचयिष्ये**' इस पदका उच्चारण करनेपर ब्राह्मण '**ॐ वाच्यताम्**' इस अनुज्ञा-वाक्यसे प्रत्युत्तर दें। '**पितामहादिभ्यः स्वधा उच्यताम्**' इस प्रकार यजमानके कहनेपर '**अस्तु स्वधा**' ऐसा ब्राह्मण बोलें। फिर '**पितृभ्यः स्वधा उच्यताम्**' ऐसा कहकर आज्ञा प्राप्त करे।

तदनन्तर '**ॐ ऊर्जं वहन्ती०**' इत्यादि मन्त्रसे दक्षिणाभिमुख होकर जलधारा दे, पुनः '**ॐ विश्वेदेवा अस्मिन् यज्ञे प्रीयन्ताम्**' यह मन्त्र पढ़कर देवब्राह्मणके हाथमें यव और जल देकर '**ॐ देवताभ्यः०**' इत्यादि मन्त्रका तीन बार पाठ करे। पिण्डपात्रोंको परिचालितकर आचमनपूर्वक पितामहादि-क्रमसे दक्षिणा दे। पितृ-ब्राह्मणसे '**आशिषो मे प्रदीयन्ताम्**' इस वचनसे आशीर्वादकी प्रार्थना करे। ब्राह्मण '**प्रतिगृह्यताम्**' इस वाक्यसे प्रत्युत्तर प्रदान करें। पुनः '**दातारो नोऽभिवर्धन्ताम्०**' आदि मन्त्रका पाठकर अर्घ्यपात्रको ऊर्ध्वमुख कर '**वाजे वाजे०**' इत्यादि मन्त्रसे देवब्राह्मण एवं '**अभिरम्यताम्**' इस मन्त्रसे पितृब्राह्मणका विसर्जन करना चाहिये।

हे व्यास! मैंने आपको सपिण्डीकरणश्राद्धका विधान बताया। श्राद्ध, श्राद्धकर्ता और श्राद्धफल—इन तीनोंको विष्णुरूप जानना चाहिये[2]। (अध्याय २२०)

धर्मसारका कथन

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे शंकर! अब मैं सभी पापोंका विनाश करनेवाले तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले अतिशय सूक्ष्म धर्मसारको संक्षेपमें कहता हूँ, आप सुनें।

शोक शास्त्रीय ज्ञान, धर्म, बल, धैर्य, सुख और उत्साह—इन सबका हरण कर लेता है। अर्थात् शोकके प्रभावसे सभी सात्त्विक वृत्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं। इसीलिये सर्वतोभावसे शोकका परित्याग करना चाहिये।

कर्म ही दारा (स्त्री) है, कर्म ही लोक है, कर्म ही सम्बन्धी है, कर्म ही बान्धव है। (अर्थात् स्त्री, लोक, सम्बन्धी एवं बान्धव आदि कर्मके अनुसार ही मिलते हैं।) कर्म ही सुख-दुःखका मूल कारण है। (अतः उत्तम कर्म करनेके लिये सदा सावधान रहना चाहिये।) दान ही परमधर्म है। दानसे ही पुरुषको सभी अभीष्ट प्राप्त होते हैं। दान ही पुरुषको स्वर्ग और राज्य प्रदान करता है। इसलिये मनुष्यको दान अवश्य करना चाहिये—

दानमेव परो धर्मो दानात्सर्वमवाप्यते।

१-अग्नौकरण—एक विशेष विधि है। इसमें अपसव्य होकर जलमें दो आहुति दी जाती है।

२-सपिण्डीकरणश्राद्धकी विस्तृत विधि श्राद्धपद्धतियोंसे जानना चाहिये। यहाँ संक्षिप्तरूपमें वर्णन है।

दानात्स्वर्गश्च राज्यं च दद्याद्दानं ततो नरः॥ (२२१।४)

विधिपूर्वक प्रशस्त दक्षिणाके साथ दान तथा भयभीत प्राणीकी प्राणरक्षा—ये दोनों समान हैं। यथाविधि तपस्या, ब्रह्मचर्य, विविध यज्ञ एवं स्नानमें जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य भयभीत प्राणीके प्राणोंकी रक्षासे प्राप्त होता है। जो लोग धर्मका नाश करते हैं, वे नरकमें जाते हैं।

जो होम, जप, स्नान, देवतार्चन आदि सत्कार्यमें तत्पर रहकर सत्य, क्षमा, दया आदि सद्गुणोंसे सम्पन्न रहते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं[1]। कोई भी किसीको सुख या दुःख नहीं देता है और न किसीका सुख-दुःख हरण कर सकता है। सभी अपने किये हुए कर्मके अनुसार सुख-दुःखका भोग करते हैं—

न दाता सुखदुःखानां न च हर्तास्ति कश्चन।
भुञ्जते स्वकृतान्येव दुःखानि च सुखानि च॥ (२२१।८)

जो धर्मकी रक्षाके लिये जीवनदान करता है, वह सभी विषम परिस्थितियों (कठिनाइयों)-को पार कर जाता है। जिनका चित्त सदा संतुष्ट रहता है, वे फल, मूल, शाक आदिके द्वारा जीवनधारण करके भी सुखकी अनुभूति करते हैं—

धर्मार्थं जीवितं येषां दुर्गाण्यतितरन्ति ते।
सन्तुष्टः को न शक्नोति फलमूलैश्च वर्तितुम्॥ (२२१।९)

सुखकी लालसामें सभी मनुष्य संकटकी स्थितिमें पड़ते हैं। यह लोभका ही परिणाम है, जो अत्यन्त दुष्कर है।

मनुष्यके चित्तमें लोभ उपस्थित होनेसे ही क्रोध उत्पन्न होता है। लोभके कारण ही मनुष्य हिंसा आदि गर्हित कार्योंमें प्रवृत्त होता है। मोह, माया, अभिमान, मात्सर्य, राग, द्वेष, असत्यभाषण एवं मिथ्याचरण—ये सभी लोभसे उत्पन्न होते हैं। लोभसे ही मनुष्य मोह और मदसे उन्मत्त हो जाता है। (इसलिये लोभका परित्याग करना चाहिये) जो शान्त व्यक्ति लोभका परित्याग करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे रहित होकर परमलोकको प्राप्त करता है[2]।

हे महादेव! देवता, मुनि, नाग, गन्धर्व, गुह्यकगण—ये सभी धार्मिकोंकी पूजा करते हैं, धनाढ्य और कामी व्यक्तिकी अर्चना कोई भी नहीं करता है—

देवता मुनयो नागा गन्धर्वा गुह्यका हर।
धार्मिकं पूजयन्तीह न धनाढ्यं न कामिनम्॥ (२२१।१३)

अनन्त बल, वीर्य, प्रज्ञा और पौरुषके द्वारा किसी दुर्लभ वस्तुको यदि मनुष्य प्राप्त कर लेता है तो इसके कारण किसीको ईर्ष्यावश शोकाकुल या दुःखी नहीं होना चाहिये।

सभी प्राणियोंके प्रति दयाका भाव रखना, सभी इन्द्रियोंका निग्रह करना और सर्वत्र अनित्यबुद्धि रखना यह प्राणियोंके लिये परम श्रेयस्कर है। मृत्यु सामने वर्तमान है, यह समझकर जो व्यक्ति धर्माचरण नहीं करता, उसका जीवन बकरीके गलेमें स्थित स्तनके समान निरर्थक है—

सर्वसत्त्वदयालुत्वं सर्वेन्द्रियविनिग्रहः।
सर्वत्रानित्यबुद्धित्वं श्रेयः परमिदं स्मृतम्॥
पश्यन्निवाग्रतो मृत्युं यो धर्मं नाचरेन्नरः।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥ (२२१।१५-१६)

हे वृषध्वज! इस लोकमें गोदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। जो न्यायोपार्जित धनसे प्राप्त गौका दान करते हैं, वे अपने सम्पूर्ण कुलको तार देते हैं।

हे वृषध्वज! अन्न-दानसे श्रेष्ठ और कुछ भी दान नहीं है; क्योंकि सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्नके द्वारा ही प्रतिष्ठित है[3]। कन्यादान, वृषोत्सर्ग, जप, तीर्थ, सेवा, वेदाध्ययन, हाथी, घोड़ा, रथ आदिका दान, मणिरत्न और पृथ्वीदान—ये सभी दान अन्नदानके सोलहवें अंशकी भी बराबरी नहीं कर सकते हैं। अन्नसे ही प्राणियोंके प्राण, बल, तेज, वीर्य, धृति और स्मृति—ये सभी प्रतिष्ठित रहते हैं। जो कूप, वापी, तडाग और उपवनका निर्माणकर लोगोंकी संतुष्टिके लिये प्रदान करते हैं, वे अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धारकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं[4]।

साधुओंका दर्शन करना अतिशय पुण्यदायक है। यह

१-ये च होमजपस्नानदेवतार्चनतत्पराः। सत्यक्षमादयायुक्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः॥ (२२१।७)

२-लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभाद् द्रोहः प्रवर्तते। लोभान्मोहश्च माया च मानो मत्सर एव च॥
रागद्वेषानृतक्रोधलोभमोहमदोज्झितः। यः स शान्तः परं लोकं याति पापविवर्जितः॥ (२२१।११-१२)

३-न गोदानात्परं दानं किञ्चिदस्तीति मे मतिः। या गौर्न्यायार्जिता दत्ता कृत्स्नं तारयते कुलम्॥
नान्नदानात्परं दानं किञ्चिदस्ति वृषध्वज। अन्नेन धार्यते सर्वं चराचरमिदं जगत्॥ (२२१।१८-१९)

४-कूपवापीतडागादीनारामांश्चैव कारयेत्। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते॥ (२२१।२२)

सभी प्रकारके तीर्थोंसे भी उत्तम है। तीर्थ तो समय आनेपर फल प्रदान करता है, किंतु सज्जनोंका संग उसी क्षण फल प्रदान कर देता है—

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थादपि विशिष्यते।
कालेन तीर्थं फलति सद्यः साधुसमागमः॥

(२२१।२३)

सत्य, दम, तपस्या, शौच, संतोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, शम, दया और दान—इनको सनातनधर्म माना गया है—

सत्यं दमस्तपः शौचं सन्तोषश्च क्षमार्जवम्।
ज्ञानं शमो दया दानमेष धर्मः सनातनः॥

(२२१।२४)

(अध्याय २२१)

प्रायश्चित्तनिरूपण, चान्द्रायणादि विभिन्न व्रतों[1]के लक्षण तथा पञ्चगव्य-विधान

श्रीब्रह्माजीने कहा—अब मैं नारकीय पापोंको विनष्ट करनेवाले प्रायश्चित्त आदि कर्मोंका वर्णन करूँगा।

मक्खी, जलकण, स्त्री, पृथ्वीपर प्राकृतिकरूपसे एकत्र जल, अग्नि, बिल्ली और नेवला—ये सदैव पवित्र माने गये हैं। जो द्विज प्रमादवश शूद्रद्वारा उच्छिष्ट[2] (जूँठ) तथा छुआ हुआ भोजन ग्रहण करता है, वह एक दिन-रात्रिका उपवास करके पञ्चगव्यप्राशनसे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण अन्य किसी ब्राह्मणके द्वारा उच्छिष्ट तथा स्पर्श किया हुआ भोजन करता है तो उसे प्रायश्चित्तके रूपमें स्नान, जप तथा पूरे दिन उपवास करके रात्रिमें भोजन करना चाहिये। मक्खी और केशयुक्त भोजन करनेपर तत्काल 'वमन-क्रिया' करनेसे शुद्धि हो जाती है। जो मनुष्य किसी भोज्य पदार्थको एक हथेलीमें रखकर दूसरे हाथकी एक अंगुली या पूरे हाथसे खाता है और उसके बाद जल नहीं पीता है तो उसे एक दिन और एक रात्रिका उपवास करना चाहिये। एक हथेलीमें रखकर दूसरे हाथसे भोजन कर जल भी पी लिया जाय तो और कठिन प्रायश्चित्त विहित है; क्योंकि ऐसे भोजनमें बिना संकोच पूर्ण संतुष्ट होनेका भाव स्पष्ट है। पीनेसे बचे हुए तथा बाँयें हाथसे ग्रहण किये गये जलका पान करना मदिरापानके समान होता है।

चमड़ेके पात्रमें रखा गया जल अपवित्र होता है, उसे नहीं पीना चाहिये। यदि किसी द्विजके घर अज्ञानवश ही कोई अन्त्यज निवास कर ले तो उस द्विजको शुद्धिके लिये चान्द्रायण अथवा पराकव्रत करना आवश्यक है। ब्राह्मणके घरमें शूद्रका प्रवेश होनेपर तथा बादमें जानकारी होनेपर ब्राह्मणको प्राजापत्यव्रत करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो ब्राह्मण घरमें शूद्रके प्रविष्ट होनेपर पक्वान्नका भोजन करता है, उसे अर्द्धकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। अर्धकृच्छ्रव्रतके योग्य जो अशुचि है उसके घरमें अन्य कोई ब्राह्मण यदि भोजन करता है तो उसको भी एक चौथाई कृच्छ्रव्रतका पालन करना चाहिये।

जो द्विज धोबी, नट एवं बाँस और चमड़ेसे जीविकोपार्जन करनेवालोंके द्वारा अर्जित अन्नका भोजन करता है, उसे चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। चाण्डालके कुएँ अथवा पात्रमें स्थित जलका पान अज्ञानवश भी जो ब्राह्मण कर लेता है, उसे 'सान्तपनव्रत' करना चाहिये। वैश्यके लिये यह प्रायश्चित्त आधा ही माना गया है। यदि कोई शूद्र उक्त निषिद्ध जलका पान करता है तो उसको तत्सम्बन्धित व्रतका एक चौथाई प्रायश्चित्त करना चाहिये। अज्ञानवश ब्राह्मणके घर अन्त्यजके प्रवेश हो जानेपर उस ब्राह्मणको तीन कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। अन्त्यजके घरमें आ जानेमात्रसे उत्पन्न अपवित्रताका निराकरण पराकव्रतके अनुष्ठानसे होता है। अन्त्यजके द्वारा उच्छिष्ट भोजन करनेपर द्विज 'चान्द्रायणव्रत' करनेसे शुद्ध हो जाता है। जब कभी प्रमादवश कोई ब्राह्मण चाण्डालद्वारा दिये गये अन्नका भोजन कर लेता है तो उसे चान्द्रायण (ऐन्दव)-व्रत करना चाहिये। ऐसी ही अपवित्रतामें क्षत्रियको छः दिन और वैश्यको दो दिनका सान्तपनव्रत करना चाहिये। यदि प्रमादवश ब्राह्मण और चाण्डाल एक ही वृक्षके नीचे एक साथ फल खा लेते हैं तो वह ब्राह्मण एक दिन-रातके उपवाससे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण

---

[1] १-इस अध्यायमें जिन व्रतोंकी चर्चा है, संक्षेपमें उनका स्वरूप अध्यायके अन्तमें वर्णित है।

[2] २-उच्छिष्टका अर्थ है—सिद्ध अन्नमेंसे निकालकर शूद्रने पहले भोजन कर लिया है, उसके बादका शेष अन्न। यहाँ घृणाका भाव नहीं है। पवित्रताकी दृष्टिसे यह एक निष्पक्ष व्यवस्था है।

भोजनोपरान्त बिना आचमन इत्यादि किये चाण्डालका स्पर्श कर लेता है तो उसे आठ हजार गायत्री अथवा एक सौ 'द्रुपदादिव०' मन्त्रका जप करना चाहिये। चाण्डाल अथवा श्वपचके द्वारा किये गये विष्ठा और मूत्रके स्पर्श हो जानेपर ब्राह्मणको तीन रातका उपवास करना चाहिये। द्विजको अन्त्यजकी स्त्रीके साथ गमन करनेपर पराकव्रत करना चाहिये। परस्त्रीके साथ बिना कामनाके गमन करनेपर पराकव्रत करना चाहिये।

जो द्विज मद्यादिसे अशुद्ध पात्रमें रखे हुए जलका पान करता है, वह कृच्छ्रपादव्रत तथा पुनः संस्कारसे शुद्ध होता है। जो ब्राह्मण यन्त्र (विद्युत्)-पात अथवा अग्नि, वायुके कारण अकस्मात् उत्पन्न उपद्रवसे ग्रस्त होनेके कारण अपना घर छोड़ने तथा अन्नपानादिको लेकर किसी अन्त्यजके घरमें रहनेके लिये विवश होते हैं तो उन्हें तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायणव्रत करना चाहिये। मुनि वसिष्ठने तो उक्त निषिद्ध कर्म करनेपर ब्राह्मणके लिये पुनः जातकर्मादि संस्कारोंके द्वारा शुद्ध होनेका विधान बताया है। कोई स्वयं उच्छिष्ट (भोजनके बाद मुख एवं हाथका प्रक्षालन नहीं किया) है, उसके उच्छिष्ट (भोजन करनेके बाद शेष अन्न)-का भक्षण करनेपर अथवा कुत्ते या शूद्रसे स्पृष्ट सिद्ध अन्नका भक्षण करनेपर द्विज एक दिन रात्रिपर्यन्त उपवास तथा पञ्चगव्यप्राशनसे शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण किसी वर्णबहिष्कृत व्यक्तिके द्वारा छू लिया जाता है तो उसे पाँच रात्रियोंका उपवास करना चाहिये। अविच्छिन्नगतिसे गिरनेवाली जलधारा, वायुके झोंकोंसे उड़ायी गयी धूलिके कण, स्त्री, बालक और वृद्ध कभी दूषित नहीं होते। स्त्रियोंका मुख, पक्षियोंके द्वारा गिराया गया फल, प्रसवकालमें बछड़ा तथा हरिणका शिकार करते समय कुत्ता सदैव पवित्र रहता है। जलमें रहनेवाली वस्तु जलमें और स्थलमें पायी जानेवाली वस्तु स्थलमें अपवित्र नहीं होती है। धार्मिक कृत्य करते समय पैरका स्पर्श हो जानेपर द्विज आचमनद्वारा शुद्ध हो जाता है।

जिस कांस्यपात्रमें मदिरा नहीं लगी है, यदि वह अन्य किसी कारणसे अपवित्र हो गया हो तो पवित्र भस्मके द्वारा माँजे जानेपर शुद्ध हो जाता है। मूत्र या मदिराके द्वारा अशुद्ध पात्रको अग्निमें डालकर शुद्ध किया जा सकता है। गौके द्वारा सूँघे गये, शूद्रके द्वारा छुए गये तथा कौए और कुत्तेके द्वारा जूँठे किये गये कांस्यपात्र दस बार शुद्ध भस्मसे माँजनेपर शुद्ध होते हैं। जो ब्राह्मण शूद्रके पात्रमें भोजन कर लेता है, वह तीन दिनतक उपवास रखकर पञ्चगव्य-पान करनेसे शुद्ध होता है। जो ब्राह्मण उच्छिष्ट पदार्थ या उच्छिष्ट प्राणीका स्पर्श करता है अथवा कुत्ते या शूद्रका स्पर्श करनेसे अपवित्र हो गया हो, वह भी तीन दिनके उपवास और पञ्चगव्यके पानसे शुद्ध हो जाता है। रजस्वला स्त्रीका स्पर्श करनेपर उपवास करके पञ्चगव्य-पान करनेसे शुद्धि होती है। जलरहित प्रदेश, चोर और हिंसक व्याघ्रादि जीवोंसे परिव्याप्त मार्गमें किसी अशुद्ध होनेयोग्य द्रव्यको हाथमें लिये हुए यदि मल, मूत्रका परित्याग किया जाता है तो वह द्रव्य अशुद्ध नहीं होता है। भूमिपर उस द्रव्यको रखकर शौच कर्म करना चाहिये।

काँजी, दही, दूध, मट्ठा, कृसरान्न शूद्रसे भी ग्राह्य है। मधु अन्त्यजसे भी ग्रहण किया जा सकता है। जो ब्राह्मणादि गुड़की बनी हुई, पीठीकी बनी हुई या महुआकी बनी हुई मदिरा पान करते हैं, उन्हें अग्निके समान संतप्त सुराका पान करके शुद्ध होना चाहिये। जो ब्राह्मण और क्षत्रिय सूतकयुक्त घरके पात्रमें जल अथवा भोजन ग्रहण कर लेते हैं, उन्हें क्रमशः पाँच सौ और एक सौ गायत्री-मन्त्रोंका जप करना चाहिये। (जब घरमें सूतक पड़ जाता है तो उस समय) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमशः—दस दिन, बारह दिन, पंद्रह दिन तथा एक मासके बाद शुद्ध हो जाते हैं। युद्धरत राजाओंकी, यज्ञदीक्षितकी तथा परदेशमें गये हुए लोगोंकी सूतक होनेपर तत्काल स्नानसे शुद्धि हो जाती है। एक मासके बालककी मृत्यु होनेपर भी स्नानसे सद्यः शुद्धिका विधान है। अविवाहित कन्या, यज्ञोपवीत-संस्काररहित द्विज, दाँत निकल आये हुए बालक तथा तीन वर्षीया कन्याकी मृत्यु होनेपर तीन रात्रियोंका अशौच होता है। जननाशौचमें गर्भस्राव होनेपर भी तीन रात्रियोंका अशौच माताके लिये माना गया है। प्रसूता स्त्रियाँ एक मासतक अशुद्ध रहती हैं। रजस्वला स्त्री चौथे दिन शुद्ध हो जाती है।

देशमें दुर्भिक्ष एवं किसी आकस्मिक कारणवश विप्लव होनेकी स्थितिमें जन्म अथवा मृत्युका अशौच होनेपर भी देशहितके लिये दान आदि धर्म यथानियम किये जा सकते

हैं। दीक्षाकालमें, विवाहादिमें, देव-पितृनिमन्त्रणमें, देवताओं तथा ब्राह्मणोंके निमन्त्रित हो जानेपर या पूर्व संकल्पित कार्योंके बीच भी यदि घरके किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जाती है अथवा कोई बच्चा जन्म लेता है तो उस समय अशौच नहीं होता है। द्विज, प्रसूता पत्नीका स्पर्श करनेसे अशौचयुक्त हो जाता है। जहाँ अग्नियोंका आवाहन होता है, जहाँ वेदोंका पठन-पाठन होता है अथवा जहाँ वैश्वदेव, यज्ञ आदि धार्मिक कृत्योंका सम्पादन होता है, वहाँ सूतक-दोष नहीं होता।

अशुद्ध घरमें भोजन करनेपर ब्राह्मण तीन रात्रि उपवासके पश्चात् शुद्ध होता है। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी स्त्री रजस्वला हो जाय और परस्पर एक-दूसरेका स्पर्श करे तो ब्राह्मणी तीन रातमें, क्षत्रियकी स्त्री दो रातमें, वैश्यकी स्त्री एक दिनमें उपवास करनेके पश्चात् शुद्ध होती है। शूद्रकी स्त्री तो सद्यः स्नान करनेके बाद ही शुद्ध हो जाती है।

कुत्ते, सियार और बन्दरको कुएँमें गिरा हुआ देखकर उस कूपका जल पीनेसे ब्राह्मण तीन दिन, क्षत्रिय दो दिन तथा वैश्य एक दिनके उपवासके पश्चात् शुद्ध होता है। यदि कुएँमें हड्डी, चमड़ा, किसी प्रकारका मल या चूहा आदि गिर जाय तो उसे कुएँसे बाहर निकाल कर कुएँका कुछ जल निकाल देना चाहिये तथा पञ्चगव्य डालकर कुएँको शुद्ध करना चाहिये। यदि तडाग या पुष्करिणी आदिका जल दूषित हो गया हो तो उसमें शुद्ध भस्मादि डाल देना चाहिये और छः घड़ा जल उसमेंसे निकालकर पञ्चगव्य डाल देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह शुद्ध हो जाता है। यदि रजस्वला स्त्रीका रजःस्राव कूपजलके मध्य हो जाता है तो उसमेंसे तीस घड़ा जल निकाल देना चाहिये।

अगम्या स्त्रीका गमन, मद्य तथा गोमांसका भक्षण करके ब्राह्मण चान्द्रायणव्रत, क्षत्रिय प्राजापत्यव्रत, वैश्य सान्तपनव्रत करनेसे और शूद्र पाँच दिन उपवासके बाद शुद्ध हो जाता है, किंतु प्रायश्चित्त करनेके बाद ऐसे सभी व्यक्तियोंके लिये अपेक्षित है कि वे गोदान करें और ब्राह्मणभोजन भी करायें। क्रीड़ा तथा शयनादिके समय नील लगा हुआ वस्त्र दूषित नहीं होता। (अन्य कार्योंमें तो) नील लगे हुए वस्त्रोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। ऐसे वस्त्रोंको धारण करनेवाले नरकमें जाते हैं।

जो मनुष्य अवरोध उत्पन्न करनेके लिये पशुके दो पैरोंमें बन्धन लगानेका पाप करता है और उस पशुकी मृत्यु जलाशयके समीप, वनमें अथवा घरमें जलनेसे या कण्ठमें रस्सी बाँधने, घण्टी, घुँघरू आदि आभूषणोंके पहनानेसे हो जाती है तो उस मनुष्यको कृच्छ्रपादव्रत करना चाहिये।

गायके शरीरकी हड्डी तोड़नेपर, सींग तोड़नेपर, चमड़ा भेदन करनेपर तथा पूँछ काटनेपर लगे हुए पापका प्रायश्चित्त आधे मासतक 'यावक पान' करनेसे होता है। हाथी, घोड़े और शस्त्र आदिसे गौकी ऐसी क्षति होनेपर कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। यदि अनजानमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मल, मूत्र, मदिरासे संस्पृष्ट पदार्थका भोजन कर लें तो उन्हें पुनः 'द्विजातीय संस्कार' करना चाहिये। पुनः द्विजातीय संस्कारके समय केशमुण्डन, मेखलाधारण, दण्डग्रहण और भिक्षाचरणादिकी आवश्यकता नहीं है।

अन्त्यजके पात्रमें रखा हुआ कच्चा मांस, घृत, मधु तथा यथासमय उत्पन्न स्निग्ध पदार्थ तैल आदि उसके पात्रसे निकाले जानेके बाद शुद्ध हो जाते हैं।

क्रमशः प्रथम दिन एकभक्तव्रत[1], दूसरे दिन नक्तव्रत[2], तीसरे दिन अयाचितव्रत[3] करते हुए जो उपवास किया जाता है, वह पादकृच्छ्रव्रत है। कृच्छ्रार्धका द्विगुण प्राजापत्यव्रत कहा जाता है। यह सभी पापोंका विनाशक है। सात उपवास करनेसे कृच्छ्रव्रत पूर्ण होता है। इसीको महासान्तपनव्रतके नामसे स्वीकार किया गया है। तीन दिन गरम जलमात्र, उसके बाद तीन दिन गरम दूधमात्र और उसके बाद तीन दिन गरम घृतमात्र पान करते हुए जो व्रत किया जाता है, वह तप्तकृच्छ्रव्रत है। यह समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाला है। बारह दिनोंतक जलमात्र ग्रहण कर उपवास करनेसे एक पराकव्रत सम्पन्न होता है। यह व्रत सभी पापोंका विनाशक है। जिस व्रतमें शुक्लपक्षकी प्रतिपदा तिथिको एक ग्रासमात्र भोजन करके क्रमशः पूर्णिमापर्यन्त

१-एक समय मात्र हविष्यान्न-ग्रहण। २-रात्रिमें उपवास। ३-बिना याचनाके जो प्राप्त हो उसीका ग्रहण।

प्रत्येक तिथिको एक-एक ग्रास भोजनकी वृद्धि की जाती है और उसके बाद कृष्णपक्षकी प्रतिपदा तिथिसे प्रतिदिन अमावास्या तिथितक एक-एक ग्रास भोजनकी मात्रा कम की जाती है, उसे चान्द्रायणव्रत कहते हैं।

सोनेके समान वर्णवाली गायका दूध, श्वेतवर्णवाली गायका गोबर, ताम्रवर्णवाली गायका मूत्र, नीलवर्णवाली गायका घृत तथा कृष्णवर्णवाली गायकी दही प्रशस्त है। इन चारोंके साथ कुशोदक मिलाकर जो पदार्थ तैयार किया जाता है, उसको पञ्चगव्य कहते हैं। इस मिश्रणमें गोमूत्रकी मात्रा आठ माशा, गोबरकी मात्रा चार माशा, दूधकी मात्रा बारह माशा, दहीकी मात्रा दस माशा और घृतकी मात्रा पाँच माशा कही गयी है। इस विधिसे तैयार किया गया पञ्चगव्य सभी मलोंका विनाशक होता है।

(अध्याय २२२)

भगवान् विष्णुकी महिमा, चतुष्पाद-धर्मनिरूपण, पुराणों तथा उपपुराणों और अठारह विद्याओंका परिगणन, चारों युगोंके धर्मोंका कथन एवं कलियुगमें नामसंकीर्तनका माहात्म्य

श्रीब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मुनियोंद्वारा भक्तिपूर्वक आचरण किये गये उन धर्मोंको मैंने कहा, जिनसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। सूर्यादि देवोंकी पूजा, पितृतर्पण, होम तथा संध्यावन्दनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थचतुष्टयकी सिद्धि प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णु स्वयं भक्तोंको प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् विष्णु धर्मस्वरूप ही हैं। पूजा, तर्पण, हवन, संध्या, ध्यान, धारणा आदि जो भी सत्कर्म हैं, वे सब हरि ही हैं।

सूतजीने कहा—हे शौनक! मैं चारों युगोंके धर्मोंका वर्णन करता हूँ, आप सुनें।

चार हजार युगोंका एक कल्प होता है, इसको ब्रह्माका एक दिन माना गया है। कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलि—ये चार युग होते हैं। कृतयुगमें सत्य, दान, तप तथा दया—इन चार पादोंसे धर्म अवस्थित रहता है। धर्मका संरक्षण करनेवाले हरि ही हैं। इस रहस्यको जानकर जो लोग संतुष्ट रहते हैं, वे ही ज्ञानी हैं। सत्ययुग (कृतयुग)-में मनुष्य चार हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। सत्ययुगके अन्तमें धर्मपालनकी दृष्टिसे क्षत्रिय उत्कर्षकी स्थितिमें रहते हैं। शूद्रोंकी अपेक्षा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य धर्मपालनमें उच्च आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सर्वाधिक बलशाली एवं शूर भगवान् विष्णु ही राक्षसोंका विनाश करते हैं।

त्रेतायुगमें धर्म सत्य, दान और दया—इन तीन पादोंपर ही अवस्थित रह जाता है। इस कालके मनुष्य यज्ञपरायण होते हैं। सम्पूर्ण संसार क्षत्रियोंसे सुरक्षित रहता है। रक्तवर्णके भगवान् हरि मनुष्योंद्वारा इस युगमें पूजित होते हैं। मनुष्योंकी आयु एक हजार वर्षकी होती है। इस युगमें विष्णु भीमरथ कहलाते हैं और क्षत्रियोंके द्वारा राक्षसोंका संहार होता है।

द्वापरमें धर्मकी मूर्ति दो पादोंपर अवस्थित रहती है। इस युगमें अच्युत भगवान् विष्णु पीतवर्ण धारण करते हैं। लोगोंकी आयु चार सौ वर्षकी होती है। ब्राह्मण और क्षत्रिय-वर्णसे उत्पन्न प्रजासे पृथिवी व्याप्त रहती है। इस युगके लोगोंकी अल्प बुद्धिको देखकर वेदव्यासका रूप धारण कर भगवान् विष्णुने एक ही रूपमें विद्यमान वेदको चार भागोंमें विभक्त किया और अपने समस्त शिष्योंको उन चारों वेदोंका अध्ययन कराया। भगवान् वेदव्यासने ऋग्वेदकी शिक्षा 'पैल' नामक शिष्यको, सामवेदकी शिक्षा 'जैमिनि' नामक शिष्यको, अथर्ववेदकी शिक्षा 'सुमन्तु' नामक शिष्यको और यजुर्वेदकी शिक्षा 'महामुनि वैशम्पायन' नामक शिष्यको प्रदान की तथा वेदाङ्गों और पुराणोंका अध्ययन सूतजीको कराया। इन पुराणोंके एकमात्र वेद्य हरि ही हैं। ये अठारह पुराणोंके रूपमें विभक्त हैं।

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—ये पुराणके पाँच लक्षण हैं। ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्यत्, नारदीय, स्कन्द, लिङ्ग, वराह, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त, कूर्म, मत्स्य, गरुड, वायु तथा ब्रह्माण्ड नामक अठारह पुराण प्रसिद्ध हैं। मुनियोंने अनेक उपपुराणोंकी भी बात बतायी है। उनमें सबसे पहला उपपुराण सनत्कुमारके द्वारा कथित है। भगवान् नरसिंहके द्वारा उपदिष्ट एक दूसरा उपपुराण है, जो नरसिंहपुराणके नामसे प्रसिद्ध है। तीसरा

उपपुराण स्कन्द है, इसको भगवान् शिवके पुत्र कुमार कार्तिकेयजीने कहा है। चौथा उपपुराण शिवधर्म (शिवधर्मोत्तर) नामक है, जिसे भगवान् नन्दीश्वरने कहा है। महर्षि दुर्वासाद्वारा प्रोक्त आश्चर्य (अद्भुत) पुराण तथा देवर्षि नारदजीद्वारा कथित नारद उपपुराण है। इसी प्रकार कपिल, वामन तथा उशनस् उपपुराण महर्षि कपिल, वामन तथा उशनसद्वारा उपदिष्ट हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिका, माहेश्वर, साम्ब, पराशर, मारीच तथा भार्गव नामक उपपुराण भी हैं। पुराण, धर्मशास्त्र, चारों वेद, शिक्षा कल्पादि, छः वेदाङ्ग, न्याय, मीमांसा, आयुर्वेद, अर्थशास्त्र, गन्धर्वशास्त्र तथा धनुर्वेदशास्त्र—ये अठारह विद्याएँ हैं—

पुराणं धर्मशास्त्रं च वेदास्त्वंगानि यन्मुने।
न्यायः शौनक मीमांसा आयुर्वेदार्थशास्त्रकम्।

(२२३।२१)

द्वापरयुगके अन्तमें भगवान् श्रीहरि, पृथ्वीके भारका हरण करते हैं।

कलियुगमें धर्म एक पादपर अवस्थित रह जाता है। भगवान् अच्युत कृष्णवर्णके होते हैं। उस कालमें लोग दुराचारी और निर्दय होने लगते हैं। मनुष्योंमें सत्त्व, रज तथा तम—ये तीनों गुण दिखायी देते हैं। कालकी प्रेरणासे ये सभी गुण मनमें उत्पन्न होते हैं और परिवर्तित होते रहते हैं।

हे शौनक! जब प्रवृद्ध सत्त्वगुणसे मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ व्याप्त हो जाती हैं और लोगोंकी अनुरक्ति ज्ञानार्जन तथा तपश्चरणमें बढ़ जाती है तब सत्ययुग जानना चाहिये। जब मनुष्योंकी आसक्ति काम्यकर्म और यशमें होती है, उस समय रजोगुणकी प्रवृद्धिसे त्रेतायुग जानना चाहिये और तमोगुणकी प्रबलताके साथ रजोगुणकी वृद्धिके कारण जब लोगोंमें लोभ, असंतोष, मान, दम्भ और मत्सरके भाव प्रबल होते हैं और काम्य कर्मोंमें आसक्ति बढ़ जाती है तब द्वापरयुग समझना चाहिये। जब सदा असत्य बोलने, आलस्य, नींद और हिंसा आदि साधनोंमें ही प्रवृत्ति हो जाती है, शोक, मोह, भय और दीनताका भाव जब बढ़ जाता है, तब तमोगुणको सर्वाधिक प्रबल मानना चाहिये। यही काल कलियुग है[1]।

इसी प्रकार जब लोग कामी हो जाते हैं, सदैव कटुवाणी बोलते हैं, जनपद चोर, डाकुओंसे भर जाते हैं, वेद पाखण्डियोंसे दूषित हो जाते हैं, राजा प्रजाओंका सर्वस्व हरण करते हैं, लोग मैथुन और पेट पालनके कर्मसे स्वतः पराजित होने लगते हैं, ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यव्रतका परित्याग करके अशुचि हो जाते हैं, कुटुम्बी अर्थात् गृहस्थ भिक्षाटन करने लगते हैं, तपस्वी गाँवोंमें रहना प्रारम्भ कर देते हैं, संन्यासी अर्थलोभमें फँस जाते हैं, लोग लघु शरीर होनेपर भी अत्यधिक भोजन करते हैं और जो चोर हैं, उन्हें साधुके रूपमें लोग स्वीकार करने लगते हैं, तब कलियुग ही मानना चाहिये।

इस कलिकालमें भृत्यगण अपने स्वामीका तिरस्कार करते हैं, तपस्वी अपने व्रतोंका परित्याग कर देते हैं, शूद्र प्रतिग्रह लेने लगते हैं, वैश्य ब्राह्मणोंकी सेवाकी उपेक्षा कर स्वयं व्रत-परायण हो जाते हैं, धार्मिक भाव कम होनेसे सभी लोग बेचैन रहते हैं, संतानें धार्मिक शिक्षाका अभाव होनेसे पिशाचके समान बन जाती हैं, अन्यायसे अर्जित भोजनके द्वारा अग्निदेवको आहुति, देवताओंको नैवेद्य तथा द्वारपर आये हुए अतिथि देवकी पूजा होती है, तब कलियुग समझना चाहिये।

हे शौनक! कलियुगके आ जानेपर लोग अपने पितरोंको जलतक नहीं देंगे। सभी प्राणी स्त्रीके वशमें हो जायँगे। सबके कर्म शूद्रवत् होंगे। इस कलिकालमें स्त्रियाँ अत्यधिक संतानोत्पत्ति करनेवाली और दुर्बल भाग्यवाली होंगी तथा बड़ोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन उनका स्वभाव होगा। ऐसा स्वभाव हो जानेपर यदि उनकी निन्दा की जायगी तो वे उसके प्रति गम्भीर न होकर उपेक्षाभाव अपनायेंगी। वे इस उपेक्षाभावको अपना सिर खुजलाकर व्यक्त करेंगी।

कलियुगके मनुष्य भगवान् विष्णुकी पूजा नहीं करेंगे। उन सभीका विश्वास पाखण्डमें बढ़ जायगा। हे ब्राह्मणो!

१-प्रभूतञ्च यदा सत्त्वं मनो बुद्धीन्द्रियाणि च। तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रतिः॥
यदा कर्मसु काम्येषु शक्तिर्यशसि देहिनाम्। तदा त्रेता रजोभूतिरिति जानीहि शौनक॥
यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भश्च मत्सरः। कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः॥
यदा सदानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसादिसाधनम्। शोकमोहौ भयं दैन्यं स कलिस्तमसि स्मृतः॥ (२२३।२४—२७)

यह कलिकाल दोषोंसे भरा हुआ है, किंतु इस दोषपूर्ण युगमें एक महान् गुण भी है। वह गुण है भगवान् श्रीकृष्णका संकीर्तन। उनका संकीर्तन करनेसे ही मनुष्य संसारके महाबन्धन अर्थात् आवागमनके जालसे मुक्त हो जाता है। हे शौनक! कृतयुगमें प्राणीको जो फल भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे प्राप्त होता है, त्रेतायुगमें जो फल उनका जप करनेसे प्राप्त होता है और द्वापरयुगमें जो फल उन विष्णुदेवकी सेवा करनेसे प्राप्त होता है, वही फल कलिकालमें भगवान्‌के गुण, लीला और नाम-संकीर्तनसे ही प्राप्त हो जाता है। इसलिये नित्य ही भगवान् श्रीहरिका ध्यान, पूजन और संकीर्तन करना चाहिये—

> कलेर्दोषनिधेर्विप्र अस्ति ह्येको महागुणः॥
> कीर्तनादेव कृष्णस्य महाबन्धं परित्यजेत्।
> कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां जपतः फलम्॥
> द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।
> तस्माद्ध्येयो हरिर्नित्यं गेयः पूज्यश्च शौनक॥
>
> (२२३। ३५—३७)

(अध्याय २२३)

नैमित्तिक तथा प्राकृतिक प्रलय और भगवान् विष्णुसे पुनः सृष्टिका प्रादुर्भाव

सूतजीने कहा—चार हजार युगोंके बीतनेपर ब्रह्माका नैमित्तिक प्रलयकाल आता है। कल्पके अन्तमें सौ वर्षतक अनावृष्टि होती है। आकाशमण्डलमें प्रचण्ड रूपसे संतप्त करनेवाले भयंकर सात सूर्य उदित हो जाते हैं। वे अपनी प्रखर रश्मियोंसे सम्पूर्ण जलराशिका पानकर तीनों लोकोंको सुखा देते हैं।

भगवान् विष्णु रुद्रस्वरूप धारण करके भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक तथा पाताललोककी समस्त चराचर सृष्टिको जला देते हैं। भगवान् विष्णु तीनों लोकोंको जलानेके बाद संवर्तक नामके मेघोंकी सृष्टि करते हैं। नाना प्रकारके महामेघ सौ वर्षोंतक बरसते हैं। विष्णुरूपमें स्थित वायु अत्यन्त तेजगतिसे सौ वर्षोंतक चलती है। उस जलवृष्टिसे समुद्रके समान उत्ताल तरंगोंवाले संसारके इस प्रलयकालमें स्थावर-जंगमके नष्ट होनेपर ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णु अनन्तशय्यापर शयन करते हैं। एक हजार वर्षतक सोनेके पश्चात् जब वे जागते हैं तो पुनः उन्हींके द्वारा इस जगत्‌की सृष्टि होती है।

हे शौनक! इसके बाद मैं प्राकृतिक प्रलयका वर्णन करता हूँ, उसको आप सुनें। ब्रह्माके एक सौ वर्ष बीत जानेपर भगवान् हरि अपने योगबलसे समस्त सृष्टिको अपनेमें लीन करके ब्रह्माको धारण कर लेते हैं। इस कालमें जो प्राणी ब्रह्मलोकमें स्थित रहते हैं, वे भी भगवान् विष्णुमें लीन हो जाते हैं।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! उस कालमें अनावृष्टि करनेवाले सूर्योंसे सम्पन्न मेघ थे। मेघोंके लगातार सौ वर्षतक बरसते रहनेसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलसे भर उठता है। अंदर प्रविष्ट हुई उस जलराशिसे ब्रह्माण्ड फट जाता है। ब्रह्माकी आयु पूर्ण होते ही सब कुछ जलमें ही लय हो जाता है। संसारमें कुछ भी शेष नहीं रहता। संसारको आधार प्रदान करनेवाली यह पृथ्वी भी उस जलराशिमें डूब जाती है। उस समय जल तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें और आकाश भूतादि महत्तत्त्वमें प्रविष्ट हो जाता है और वह महत्तत्त्व प्रकृतिमें तथा प्रकृति अव्यक्त परमपुरुषमें लीन हो जाती है। वे हरि (अव्यक्त पुरुष) सौ वर्षतक सोते हैं। तदनन्तर (ब्रह्माका) दिन आनेपर अव्यक्तादि क्रमसे पुनः व्यक्तिभूत चराचर जगत्‌की सृष्टि करते हैं। (अध्याय २२४)

कर्मविपाकका कथन

सूतजीने कहा—जगत्सृष्टि और प्रलय आदिकी चक्रगतिको जाननेवाले जो विद्वान् हैं, वे यदि आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—इन तीन सांसारिक तापोंको जानकर ज्ञान और वैराग्यका मार्ग स्वीकार कर लेते हैं तो आत्यन्तिक लय (मोक्ष)-को प्राप्त करते हैं। अब मैं उस संसारचक्रका वर्णन करूँगा, जिसको जाने बिना पुरुषार्थी परमात्मामें लीन नहीं होते।

प्राणके उत्क्रमण कालमें इस शरीरका परित्याग करके मनुष्य दूसरे सूक्ष्म शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। इस मृत्युलोकसे मृत्युके पश्चात् जीवको यमराजके दूत, बारह

दिनकी अवधिमें यमलोकको ले जाते हैं। वहाँपर उस मरे हुए व्यक्तिके बन्धु-बान्धव जो उसके लिये तिलोदक और पिण्डदान देते हैं, वही सब यमलोकके मार्गमें वह खाता-पीता है। पापकर्म करनेके कारण वह नरकलोकमें जाता है और पुण्यकर्म करनेके कारण स्वर्ग। अपने उन पाप- पुण्योंके प्रभावसे नरक तथा स्वर्गमें गया हुआ प्राणी पुनः नरक और स्वर्गसे लौटकर स्त्रियोंके गर्भमें आता है। वहाँ विनष्ट न होकर वह दो बीजोंके आकारको धारण कर लेता है। उसके बाद वह कलल फिर बुद्बुदाकार बन जाता है। तत्पश्चात् उस बुद्बुदाकार रक्तसे मांसपेशीका निर्माण होता है। मांसपेशीसे मांस अण्डाकार बन जाता है। वह एक पल (परिमाण-विशेष)-के समान होता है। उसी अण्डेसे अंकुर बनता है। उस अंकुरसे अंगुली, नेत्र, नाक, मुख और कान आदि अङ्ग-उपाङ्ग पैदा होते हैं। उसके बाद उस विकसित अंकुरमें उत्पादक-शक्तिका सञ्चार होने लगता है। जिससे हाथ-पैरकी अंगुलियोंमें नख आदि निकल आते हैं। शरीरमें त्वचा और रोम तथा बाल निकलने लगते हैं। इस प्रकार गर्भमें विकसित होता हुआ यह जीव नौ मासतक अधोमुख स्थित रहकर दसवें मासमें जन्म लेता है। तदनन्तर संसारको अत्यन्त मोहित करनेवाली भगवान् विष्णुकी वैष्णवी माया उसे आवृत कर लेती है। यह जीव बाल्यावस्था, कौमारावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्थाको प्राप्त करता है। इसके बाद यह पुनः मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार यह जीव इस संसारचक्रमें घटीयन्त्रके समान घूमता रहता है।

जीव नरकभोग करनेके पश्चात् पापयोनिमें जन्म लेता है। पतितसे प्रतिग्रह स्वीकार करनेके कारण विद्वान् भी अधोयोनिमें जन्म ग्रहण करता है। याचक नरकभोग करनेके बाद कृमियोनिको प्राप्त होता हैं। गुरुकी पत्नी अथवा गुरुके धनकी मनसे भी कामना करनेवाला व्यक्ति कुत्ता होता है। मित्रका अपमान करनेवाला गधेकी योनिमें जन्म लेता है। माता-पिताको कष्ट पहुँचानेवाले प्राणीको कछुएकी योनिमें जाना पड़ता है। जो मनुष्य अपने स्वामीका विश्वसनीय बन कर उसको छलकर जीवनयापन करता है; वह मृत्युके बाद व्यामोहमें फँसे हुए वानरकी योनिमें जाता है।

धरोहररूपमें अपने पास रखे हुए पराये धनका अपहरण करनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है। नरकसे निकलनेके पश्चात् वह कृमियोनिमें जन्म लेता है। नरकसे मुक्त होनेपर उस ईर्ष्यालु मनुष्यको राक्षसयोनिमें जाना पड़ता है। जो मनुष्य विश्वासघाती होता है, वह मत्स्ययोनिमें उत्पन्न होता है। यव और धान्यादि अनाजोंकी चोरी करनेवाले व्यक्ति मरनेके पश्चात् चूहेकी योनिमें जन्म लेते हैं। दूसरेकी स्त्रीका अपहरण करनेवाला मनुष्य खूँखार भेड़ियेकी योनिमें जाता है। जो मनुष्य अपने भाईकी स्त्रीके साथ सहवास करता है, वह कोकिलयोनिमें जन्म लेता है। गुरु आदिकी स्त्रियोंके साथ सहवास करनेपर मनुष्य सूअर-योनिको प्राप्त होता है।

यज्ञ, दान तथा विवाह आदिमें विघ्न डालनेवाले मनुष्यको कृमियोनि प्राप्त होती है। देवता, पितर और ब्राह्मणोंको बिना भोजन आदि दिये जो मनुष्य अन्न ग्रहण कर लेता है, वह नरकको जाता है। वहाँसे मुक्त होकर वह पापी काकयोनिको प्राप्त करता है। बड़े भाईका अपमान करनेसे मनुष्यको क्रौञ्च (पक्षिविशेष)-योनिकी प्राप्ति होती है। यदि शूद्र ब्राह्मण-स्त्रीके साथ रमण करता है तो वह कृमियोनिमें जन्म लेता है। उस ब्राह्मणीसे यदि वह संतानोत्पत्ति करता है तो वह लकड़ीमें लगनेवाले घुन नामक कृमिकी योनिको प्राप्त होता है। कृतघ्न व्यक्ति कृमि, कीट, पतङ्ग तथा बिच्छूकी योनियोंमें भ्रमण करता है। जो मनुष्य शस्त्रहीन पुरुषको मारता है, वह दूसरे जन्ममें गधा होता है। स्त्री और बच्चेका वध करनेवालेको कृमियोनि प्राप्त होती है। भोजनकी चोरी करनेवाला मक्खीकी योनिमें जाता है। अन्नकी चोरी करनेवाला बिल्लीकी योनि तथा तिलकी चोरी करनेवाला चूहेकी योनिमें जन्म लेता है। घीकी चोरी करनेवाला मनुष्य नेवला और मद्गुर (मत्स्यविशेष)-के मांसकी चोरी करनेवाला काकयोनिमें जाता है। मधुकी चोरी करनेपर मनुष्य दंशकयोनि[1] तथा अपूप (पुआ)-की चोरी करनेपर चींटीकी

[1]-दंशक—वनमक्षिका (बड़े मच्छर)।

योनिमें जन्म लेता है। जलका अपहरण करनेपर पापी व्यक्ति काकयोनिमें उत्पन्न होता है। लकड़ीकी चोरी करनेपर मनुष्य हारीत (हारिल नामक पक्षी) अथवा कबूतरकी योनिमें जन्म लेता है। जो प्राणी स्वर्ण-पात्रकी चोरी करता है, उसको कृमियोनिमें जन्म लेना पड़ता है। कपाससे बने वस्त्रोंकी चोरी करनेपर क्रौञ्च पक्षी, अग्निकी चोरी करनेपर बगुला, अंगराग आदि रंजकद्रव्य (शरीर-संस्कारकद्रव्य) और शाक-पातकी चोरी करनेपर मनुष्य मयूर होता है। लाल रंगकी वस्तुकी चोरी करनेसे मनुष्य जीवक (पक्षिविशेष), अच्छी गन्धवाली वस्तुओंकी चोरी करनेसे छुछुन्दर तथा खरगोशकी चोरी करनेसे वह खरगोशयोनिको प्राप्त होता है। कलाकी चोरी करनेपर मनुष्य नपुंसक, लकड़ीकी चोरी करनेपर घास-फूसमें रहनेवाला कीट, फूलकी चोरी करनेपर दरिद्र तथा यावक (जौका सत्तू, धान, लाख आदि) चुरानेपर पंगु होता है।

शाक-पातकी चोरी करनेपर हारीत और जलकी चोरी करनेपर चातक पक्षी होता है। जो मनुष्य किसीके घरका अपहरण करता है, वह मृत्युके पश्चात् महाभयानक रौरव आदि नरकलोकोंमें जाकर कष्ट भोगता है। तृण, गुल्म, लता, वल्लरी और वृक्षोंकी छाल चुरानेवाला व्यक्ति वृक्ष-योनिको प्राप्त होता है। यही स्थिति गौ, सुवर्ण आदिकी चोरी करनेवाले मनुष्योंकी भी है। विद्याकी चोरी करनेवाला मनुष्य विभिन्न प्रकारके नरकलोकोंका भोग करनेके पश्चात् गूँगेकी योनिमें जन्म लेता है। समिधारहित अग्निमें आहुति देनेवाला मन्दाग्नि-रोगसे ग्रस्त होता है।

दूसरेकी निन्दा करना, कृतघ्नता, दूसरेकी मर्यादाको नष्ट करना, निष्ठुरता, अत्यन्त घृणित व्यवहारमें अभिरुचि, परस्त्रीके साथ सहवास करना, पराये धनका अपहरण करना, अपवित्र रहना, देवोंकी निन्दा तथा मर्यादाके बन्धनको तोड़कर अशिष्ट व्यवहार करना, कृपणता करना तथा मनुष्योंका हनन करना—नरकभोग करके जन्म लिये हुए मनुष्योंके ये लक्षण हैं—ऐसा सभीको जान लेना चाहिये।

प्राणियोंके प्रति दया, सद्भावपूर्ण वार्तालाप, परलोकके लिये सात्त्विक अनुष्ठान, सत्कार्योंका निष्पादन, सत्यधर्मका पालन, दूसरेका हितचिन्तन, मुक्तिकी साधना, वेदोंमें प्रामाण्यबुद्धि, गुरु, देवर्षि और सिद्धर्षियोंकी सेवा, साधुजनोंद्वारा बताये गये नियमोंका पालन, सत्क्रियाओंका अनुष्ठान तथा प्राणियोंके साथ मैत्रीभाव—ये स्वर्गसे आये हुए मनुष्योंके लक्षण हैं। जो मनुष्य योगशास्त्रद्वारा बताये यम, नियमादिक अष्टाङ्गयोगके साधनसे सद्-ज्ञानको प्राप्त करता है, वह आत्यन्तिक फल अर्थात् मोक्षका अधिकारी बन जाता है।

(अध्याय २२५)

अष्टाङ्गयोग एवं एकाक्षर ब्रह्मका स्वरूप तथा प्रणवजपका माहात्म्य

सूतजीने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं समस्त अङ्गोंसहित महायोगका वर्णन करूँगा। यह महायोग मनुष्योंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेका श्रेष्ठतम साधन है। भक्तिपूर्वक इस महायोगकी विधिका पाठ करनेमात्रसे मनुष्यके सभी पापोंका विनाश हो जाता है, इसे अब आप सुनें।

महामति भगवान् दत्तात्रेयने राजा अलर्कसे कहा था कि हे राजन्! ममता ही दुःखका मूल है और ममताका परित्याग ही दुःखसे निवृत्तिका उपाय है। अहंकार अज्ञानरूपी महातरुका अंकुर है। ममता उसका तना है। घर और क्षेत्र आदि उसकी शाखाएँ हैं। पत्नी उसका पल्लव है तथा धन-धान्य महान् पत्र हैं और पाप ही उसका अत्यन्त दुर्गम मूल है। इस प्रकार पापमूलक आपातरमणीय सुख-शान्तिके लिये यह अज्ञानरूपी महातरु पैदा हुआ है। जो लोग ज्ञानरूपी कुल्हाड़ीसे अज्ञानरूप महावृक्षको काट गिराते हैं, वे ही परमब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। तदनन्तर ब्रह्मरसको प्राप्तकर उसका भलीभाँति निष्कण्टक पान करके प्राज्ञ पुरुष नित्य-सुख एवं परम शान्तिको प्राप्त करते हैं।

समस्त दृश्य-प्रपञ्च एवं इन्द्रियाँ भी उसी (परब्रह्म)-में लीन हो जाती हैं। हे राजन्! वहाँपर न तो 'तुम' रहते हो और न 'मैं' ही रहता हूँ, न शब्दादि तन्मात्राएँ रहती हैं और न अन्तःकरण ही रहता है। हे राजेन्द्र! हम दोनोंके बीच कौन-सा तत्त्व प्रधान है? वास्तवमें हम दोनों निःसार हैं।

हे राजन्! जीव और आत्मामें ऐक्य होनेपर भी पृथक्-भावका बोध होता है। यह पृथक्-भावका बोध ज्ञान (स्वरूपज्ञान)-के तिरोधानसे होता है। यद्यपि ज्ञानका तिरोधान योगी (ब्रह्माभिन्न जीव)-में नहीं होना चाहिये, पर भेदबुद्धि एवं भेदबुद्धिमूलक समस्त प्रपञ्च सबके अनुभवमें आ रहा है; अत: इसकी उपपत्तिके लिये यह मानना पड़ता है कि ज्ञानका तिरोधान अनादिकालसे चला आ रहा है। यह ज्ञानका तिरोधान अज्ञानमूलक है। इसीलिये अज्ञानको ज्ञाननाशकी दशा कहा जाता है। यह ज्ञाननाशकी दशा ज्ञानके वियोगकी दशा है और यह ज्ञानका वियोग ही जीवात्मा एवं आत्मा (ब्रह्म)-का पृथक्-भाव है तथा इस पृथक्-भावके ज्ञानका नाश जीव एवं आत्मा (ब्रह्म)-के ऐक्यज्ञानसे ही होता है। यह ऐक्यज्ञान (ऐक्यका प्रत्यक्षात्मक अनुभव) ही मुक्ति है। अनैक्यका अनुभव तो प्राकृतगुणों (मायिक विस्तार)-के कारण होता है।

प्राणीका जिसमें निवास होता है, वह घर है। जिसके द्वारा उसके जीवनकी रक्षा होती है, वह भोग्य पदार्थ है। जो मुक्तिका हेतु है, वह ज्ञान है और जो बन्धनका हेतु है, वह अज्ञान है। हे राजन्! प्राणियोंके पुण्य और पापका विनाश उसके द्वारा किये जानेवाले (सुख-दु:खात्मक) भोगोंसे होता है और अवश्यकरणीय जो कर्तव्य हैं, उनको न करनेसे पुण्यका क्षय हो जाता है।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। शौच दो प्रकारका बताया गया है—बाह्यशौच और अन्त:शौच। संतोष, तपस्या, शान्ति, नारायणका पूजन और इन्द्रियदमन—ये योगके साधन हैं। आसनोंके पद्म आदि भेद हैं।

शरीरके अन्तर्गत प्रवाहित होनेवाली वायुपर विजय प्राप्त करना 'प्राणायाम' है। प्रत्येक प्राणायाम पूरक, कुम्भक और रेचकके भेदसे तीन प्रकारका होता है। यही तीन प्राणायाम जब दस मात्राओंका होता है तो इसे लघु प्राणायाम तथा इससे दुगुनी मात्राका मध्यम प्राणायाम और तीन गुनी मात्राओंका उत्तम प्राणायाम कहा गया है। जिस प्राणायाममें योगिजन जप और ध्यानसे युक्त होते हैं, उसे 'सगर्भ' प्राणायाम और उसके अतिरिक्त प्राणायाम (अर्थात् जप तथा ध्यानसे रहित होनेपर) 'अगर्भ' नामक प्राणायाम कहलाता है। प्रथम प्राणायामसे योगी स्वप्नपर जय प्राप्त करता है, द्वितीय प्राणायामसे योगी कम्पपर और तृतीय प्राणायामसे विपाक[1]पर जय प्राप्त करता है। इस प्रकार इन तीनों दोषोंको योगी प्राणायामसे जीत लेता है।

योगीको आसन लगाकर 'प्रणव' में चित्त एकाग्र करके ध्यान और जप करना चाहिये। इस स्थितिमें वह अपनी दोनों एड़ियोंसे लिंग और अण्डकोशोंको दबाकर एकाग्र मनसे स्थित रहे। जो योगमार्गसे भलीभाँति परिचित है, उसे अपनी रजोवृत्तिसे तमोवृत्तिको तथा सत्त्ववृत्तिसे रजोवृत्तिको निरुद्ध करके निश्छल-भावसे प्रणवका जप करते हुए ध्यान करना चाहिये। इन्द्रियों, प्राण और मन आदिको उनके विषयोंसे निगृहीत करना चाहिये। इस तरह एक साथ ही प्रत्याहार (विषयोंसे इन्द्रियोंको हटाकर अन्तर्मुख करना)-का उपक्रम करना चाहिये।

विधिवत् अठारह बार किया गया जो प्राणायाम है, उसे योगमें 'धारणा' के नामसे स्वीकार किया जाता है। योगके तत्त्वको जाननेवाले योगिजन ऐसी धारणाकी दो आवृत्तिको ही योग कहते हैं। योगियोंकी पहली धारणा नाड़ीमें, दूसरी हृदयमें, तीसरी वक्ष:स्थलमें, चौथी उदरमें, पाँचवीं कण्ठमें, छठी मुखमें, सातवीं नासाग्रपर, आठवीं नेत्रमें, नवीं दोनों भौंहोंके मध्य और दसवीं मूर्धास्थानमें होती है। इस प्रकार योगमें इस धारणाको दस प्रकारका माना गया है। इन दसों धारणाओंमें सफलता प्राप्त करके योगी अक्षररूपता (ब्रह्मत्व)-को प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार अग्निमें छोड़ी गयी अग्नि एकाकार हो जाती है, उसी प्रकार परमात्माके ध्यानमें लगायी गयी आत्मा तदाकार हो जाती है। ऐसी स्थितिमें योगीको ब्रह्मस्वरूप महापुण्यदायक 'ॐ' इस महामन्त्रका जप करना चाहिये। इस प्रणव-महामन्त्रमें 'अकार, उकार और मकार'—ये तीन अक्षर हैं। इन तीन अक्षरोंके अतिरिक्त इस महामन्त्रमें सत्त्व, रजस् तथा तमस्—इन तीन मात्राओंका योग भी है जो क्रमश: सात्त्विक तथा राजसिक और तामसिक मनोवृत्तिका परिचायक है। ॐकारमें जो चतुर्थ आद्य अर्धमात्रा स्थित है, वह निर्गुण है तथा केवल योगियोंद्वारा ही जानने योग्य

१-विपाक—कर्मफल।

है। गान्धारस्वर (ग)-के आश्रित रहनेवाली इस अर्धमात्राको गान्धारी नामसे जानना चाहिये। यह अक्षर परम ब्रह्म ॐकारके नामसे योगमार्गमें स्वीकृत है। अत: इस महामन्त्रका जप और ध्यान करते हुए अपनी मुक्तिके लिये इस प्रकार अपनेमें ब्रह्मभावनाका निश्चय करना चाहिये—

'मैं स्थूलदेहसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं जरा-मरणसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं इस पृथ्वीके सभी मलोंसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं वायु और आकाशसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं सूक्ष्मदेहसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं समस्त स्थान या अस्थानसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म[1] हूँ। मैं गन्धतन्मात्रासे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं श्रोत्रेन्द्रिय और त्वचा नामक इन्द्रियसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं जिह्वा तथा घ्राणेन्द्रियसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं प्राण तथा अपान वायुसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं व्यान और उदान वायुसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं अज्ञानसे रहित ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण और अहंकारसे रहित तुरीयावस्थामें विद्यमान परमपदस्वरूप, ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ। मैं नित्य-शुद्ध-बुद्ध, मुक्त, आनन्दमय, अद्वैत, ज्ञानस्वरूप, ज्योतिर्मय परमब्रह्म हूँ।'

सूतजीने कहा—हे शौनक! इस प्रकार मैंने मुक्ति देनेवाले अष्टाङ्गयोगका वर्णन कर दिया है। जो लोग मायापाशसे आबद्ध हैं, वे सभी नित्य-नैमित्तिक ही कार्य करते हैं और उसीमें अन्ततक लगे रहते हैं। इस कारण उन्हें परमात्माका ऐक्य प्राप्त नहीं होता, वे पुन: इस संसारमें जन्म लेते हैं। जो अज्ञानसे मोहित हैं, वे ज्ञानयोग प्राप्त करके अज्ञानसे मुक्त हो जाते हैं। उसके बाद वह जीवन्मुक्त योगी न कभी मरता है, न दु:खी होता है; न रोगी होता है और न संसारके किसी बन्धनसे आबद्ध होता है। न वह पापोंसे युक्त होता है, न तो उसे नरकयातनाका ही दु:ख भोगना पड़ता है और न वह गर्भवासमें दु:खी ही होता है। वह स्वयं अव्यय नारायणस्वरूप हो जाता है। इस प्रकारकी अनन्य भक्तिसे वह योगी भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् नारायणको प्राप्त कर लेता है।

ध्यान, पूजा, जप, स्तोत्र, व्रत, यज्ञ और दानके नियमोंका पालन करनेसे मनुष्यके चित्तकी शुद्धि होती है। चित्तशुद्धिसे ज्ञान प्राप्त होता है। प्रणवादि मन्त्रोंका जप करके द्विजोंने मुक्ति प्राप्त की है। इन्द्रने भी इन्द्रासन प्राप्त किया। श्रेष्ठ गन्धर्वों और अप्सराओंने उच्च पद प्राप्त किया। देवताओंने देवत्व और मुनियोंने मुनित्व प्राप्त किया। गन्धर्वोंने गन्धर्वत्व तथा राजाओंने राजत्वको प्राप्त किया। (अध्याय २२६)

भगवद्भक्तिनिरूपण तथा भक्तोंकी महिमा

सूतजीने कहा — अब मैं विष्णुभक्तिका वर्णन करूँगा, जिससे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवान् विष्णु भक्तिसे जितना संतुष्ट होते हैं, उतना अन्य किसी साधनसे नहीं। भगवान् हरिका निरन्तर स्मरण करना मनुष्योंके लिये महान् श्रेयका मूल है। यह पुण्योंकी उत्पत्तिका साधन है और जीवनका मधुर फल है—

> यथा भक्त्या हरिस्तुष्येत् तथा नान्येन केनचित्॥
> महत: श्रेयसो मूलं प्रसव: पुण्यसंतते:।
> जीवितस्य फलं स्वादु नियतं स्मरणं हरे:॥
> (२२७।१-२)

इसलिये विद्वानोंने विष्णुकी सेवाको भक्तिका बहुत बड़ा साधन कहा है। भगवान् त्रिलोकीनाथ विष्णुके नाम तथा कर्मादिके कीर्तनमें तन्मय होकर जो लोग प्रसन्नताके आँसू बहाते हैं और रोमाञ्चित होकर गद्‌गद हो उठते हैं, वे ही उनके भक्त हैं—

> ते भक्ता लोकनाथस्य नामकर्मादिकीर्तने॥
> मुञ्चन्त्यश्रूणि संहर्षाद्ये प्रहृष्टतनूरुहा:।
> (२२७।३-४)

अत: हम सभीको जगत्स्रष्टा देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुके दिव्य उपदेशोंका अनुसरण करना चाहिये। वे ही वैष्णव हैं, जो वेद-शास्त्रोंके अनुसार अवश्यकरणीय नित्य-कर्मोंका पालन करते हुए श्रीविष्णुके प्रति अति स्निग्ध रहते हैं तथा भक्तिप्रवणताके कारण अद्वैतभावसे स्वयंको पृथक्‌कर जिन नामोंका स्मरण स्वयं भगवान् भी करते हैं,

[1] परम व्यापक ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है, उसका कोई आश्रय नहीं है। इसलिये उसके स्थान या स्थानाभावकी कल्पना सर्वथा असम्भव है।

उन मङ्गलमय नामोंका श्रवण-कीर्तन करनेके साथ स्वामि-सेवकभावसे सदा भगवान् श्रीविष्णुको प्रणाम किया करते हैं। वे ही महाभागवत हैं, जो श्रीविष्णुके भक्तजनोंके प्रति वात्सल्यभाव रखते हैं तथा श्रीविष्णुके पूजन एवं उनकी आज्ञाका अनुसरण करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुकी मङ्गलमयी कथाओंके श्रवणमें ही अतिशय प्रीतिपूर्वक सदा लीन रहते हैं तथा अपने नेत्र आदि समस्त अङ्गोंकी समस्त चेष्टाएँ भगवान्की सेवाके लिये ही समर्पित किये रहते हैं। संक्षेपमें यह समझना चाहिये कि जो लोग पूर्ण समर्पणभावसे श्रीविष्णुकी भक्तिमें ही अपने मनको निरन्तर एकाग्र रखते हैं, वे ही परम भागवत हैं। इन परम महाभागवत लोगोंका मुख्य लक्षण यह है कि ये लोग ब्राह्मणोंमें ही श्रीविष्णुका सदा निवास मानकर उनकी सेवामें सदा लगे रहते हैं। ये लोग अपने समस्त साधनोंको भी श्रीविष्णुके चरणोंमें ही समर्पित किये रहते हैं। श्रीविष्णुकी सेवाके लिये ही सांसारिक संगोंसे दूर रहते हैं। श्रीविष्णुको ही अपना एकमात्र आश्रय मानकर उन्हींकी अर्चामें सदा तत्पर रहते हैं।[1]

वैष्णव या महाभागवत जिस श्रीविष्णुभक्तिको अपना सर्वस्व मानते हैं, वह (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य तथा सख्य-भेदसे) आठ प्रकारकी होती है। इसमें म्लेच्छ व्यक्ति भी अधिकारी माना गया है। इस संसारमें तो वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है, वही मुनि है, वही ऐश्वर्यसे सम्पन्न है और वही मोक्षको प्राप्त करता है, जो भगवान् हरिकी भक्तिमें तन्मय रहता है। जो भगवद्भक्त है, उसीको दान देना चाहिये, उसीसे दान लेना चाहिये, उसीकी हरिकी भाँति पूजा करनी चाहिये। भगवद्भक्त द्विजोत्तमका स्मरण कर, उनके साथ भाषण कर, उनका पूजन कर हम अपनेको पवित्र कर लेते हैं। यदि कोई भगवद्भक्त चाण्डालजातिका है तो वह भी अपनी पवित्र भक्तिकी महिमासे हम सबको पवित्र कर देता है।[2]

'हे नाथ! आप मुझपर दया करें, मैं आपकी शरणमें हूँ' ऐसा जो प्राणी कहता है, उसको भगवान् हरि सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देते हैं, किसीसे भी उसको भय नहीं होता, यह भगवान्की प्रतिज्ञा है—

दयां कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत्।
अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रतं हरेः॥
(२२७।११)

मन्त्रका जप करनेवाले हजार जपकर्ताओंकी अपेक्षा सभी वेदान्तदर्शनों, शास्त्रोंमें पारंगत विद्वान् श्रेष्ठ है। सर्ववेदान्तनिष्णात करोड़ों विद्वानोंकी अपेक्षा विष्णुभक्त श्रेष्ठ है। जो लोग भगवान् विष्णुमें ऐकान्तिक भक्ति रखते हैं, वे सशरीर श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त करनेमें सफल हो जाते हैं। श्रीविष्णुभक्तिको ही परम पुरुषार्थ माननेवाले एकान्ती भक्त हैं। इनका चित्त सर्वात्मना भागवत होता है। ऐसे परम भागवत श्रीविष्णुके ही समान हो जाते हैं, किंबहुना, श्रीविष्णु ऐसे परम भागवत भक्तोंके परायण (सर्वथा अभिन्न) रहते हैं। ये परम भागवत भक्त देवदेव श्रीविष्णुके परम प्रिय लोगोंसे भी अधिक सुप्रिय होते हैं। इनकी भक्ति अव्यभिचारिणी (नितान्त सुदृढ़) होती है। इसीलिये कठिन-से-कठिन आपत्कालमें भी यह भक्ति सुस्थिर रहती है। ये परम भागवत भक्त सदा यही प्रार्थना करते रहते हैं—'प्रभो! विष्णो! विषयोंमें जो अधिकाधिक स्थिर प्रीति होती है, वही आपका स्मरण करते हुए मुझमें सदा अविचल-भावसे बनी रहे।' यह विशेष रूपमें ध्यातव्य है कि प्रभु श्रीविष्णुकी ही भक्ति करनी चाहिये। यदि कोई अन्य किसीके प्रति दृढ़ भक्त है, सर्वेश्वर प्रभुका भक्त नहीं है तो वेदादि समस्त शास्त्रोंके अर्थका पारङ्गत होनेपर भी वह वास्तवमें पुरुषाधम ही है। जिसने वेद या अन्य शास्त्रोंका अध्ययन नहीं किया है, जो यज्ञादिक पुण्यकर्मोंको अपने जीवनमें सम्पन्न करनेसे वञ्चित रह गया है, वह भी यदि भगवान् विष्णुमें भक्ति रखता है तो (समझना चाहिये कि) उसने सब कुछ कर लिया है। जो लोग याज्ञिक हैं, अश्वमेध, राजसूयादिक मुख्य यज्ञोंको करनेवाले हैं और

१- प्रणामपूर्वकं भक्त्या यो वदेद्वैष्णवो हि सः। तद्भक्तजनवात्सल्यं पूजनं चानुमोदनम्॥
तत्कथाश्रवणे प्रीतिरश्रुनेत्राङ्गविक्रिया:। येन सर्वात्मना विष्णौ भक्त्या भावो निवेशित:॥
विप्रेभ्यश्च कृतात्मत्वान्महाभागवतो हि सः। विश्वोपकरणं नित्यं तदर्थं सङ्गवर्जनम्।
स्वयमभ्यर्चनं चैव यो विष्णुं चोपजीवति॥ (२२७।६—८)

२- भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छोऽपि वर्तते। स विप्रेन्द्रो मुनि: श्रीमान् स याति परमां गतिम्॥
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरि:। स्मृत: सम्भाषितो वापि पूजितो वा द्विजोत्तम:।
पुनाति भगवद्भक्तश्चण्डालोऽपि यदृच्छया॥ (२२७।९-१०)

वेदोंके पारंगत हैं, वे मुनिसत्तम (मुनिश्रेष्ठ) भी उस परम गतिको प्राप्त नहीं कर पाते, जिस परमगतिको विष्णुभक्त अपनी भक्तिसे प्राप्त कर लेते हैं। इस संसारमें जो मनुष्य निर्दयी हैं, दुष्टात्मा हैं तथा दुराचारमें लगे रहते हैं, वे भी यदि भगवान् विष्णु नारायणकी भक्तिमें संलग्न हों तो उन्हें परम गतिकी प्राप्ति होती है। जब मनुष्यकी भक्ति भगवान् जनार्दनके प्रति अचल और दृढ़ हो जाती है, तब उसके लिये स्वर्गका सुख कितना महत्त्व रखता है! वह भक्ति ही उसके लिये मुक्ति है। हे शौनक! इस संसारके दुर्गम कर्ममार्गमें भ्रमण करते हुए मनुष्योंके लिये भक्ति ही एकमात्र अवलम्ब है, जिसके करनेसे जनार्दन संतुष्ट होते हैं। जो मनुष्य देवाधिदेव विष्णुके दिव्य गुणोंको नहीं सुनता, वह बहरा है और सभी धर्मोंसे बहिष्कृत है। हरिनाम-संकीर्तनसे जिस व्यक्तिका शरीर रोमाञ्चित नहीं हुआ, उसका वह शरीर मृतकके समान है। हे द्विजश्रेष्ठ! जिसके अन्तःकरणमें विष्णुभक्ति विद्यमान रहती है, उसे यथाशीघ्र ही इस संसारके आवागमन-चक्रसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। जिन मनुष्योंका मन हरिभक्तिमें रमा हुआ है, उनके सभी पापोंका विनाश सब प्रकारसे निश्चित है।

हाथमें पाश लेकर खड़े हुए अपने दूतको देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं कि हे दूत! तुम उन लोगोंको छोड़ देना जो मधुसूदन विष्णुके भक्त हैं। मैं तो अन्य दुराचारी और पापियोंका स्वामी हूँ, वैष्णवोंके स्वामी स्वयं हरि हैं। श्रीविष्णुने स्वयं कहा है कि यदि दुराचारी व्यक्ति भी मुझमें अनन्य भक्ति रखता है तो वह साधु ही है; क्योंकि उसने भक्तिका निश्चय कर लिया है कि श्रीविष्णुकी भक्तिके समान अन्य कुछ भी नहीं है। निश्चयपूर्वक भगवान्‌की भक्तिमें अनन्य भावसे लगा हुआ व्यक्ति तुरंत धर्मात्मा हो जाता है और उसको शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है। हे द्विजश्रेष्ठ! आप ऐसा निश्चित ही जान लें कि विष्णुभक्तका कभी विनाश नहीं होता। समस्त संसारके मूल कारण भगवान् हरिमें जिस मनुष्यकी भक्ति स्थिर रहती है, उसके लिये धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गका कोई महत्त्व नहीं है; क्योंकि परम सुखरूप मुक्ति ही उसके हाथमें सदा रहती है। यह जो हरिकी त्रिगुणात्मिका दैवी माया है, उसको वे लोग पार करते हैं जो हरिकी शरणमें जाते हैं। जिनकी बुद्धिमें भगवान् हरि निवास करते हैं, उनके लिये यज्ञाराधन आदिसे क्या लाभ? भक्तिसे ही नारायणकी आराधना होती है। भक्तिके अतिरिक्त उनकी आराधनाके लिये अन्य कोई साधन नहीं है। विभिन्न प्रकारके दान देनेसे, भलीभाँति पुष्प-समर्पणसे अथवा अनेक प्रकारके दिव्य अनुलेपनसे भी परमात्मा जनार्दन विष्णु उतना संतुष्ट नहीं होते जितना भक्तिसे।

इस संसाररूपी विषवृक्षके अमृतके समान दो फल हैं—पहला फल है—भगवान् केशवकी भक्ति और दूसरा फल है, उनके भक्तोंका सत्संग—

संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।
कदाचित्केशवे भक्तिस्तद्भक्तैर्वा समागमः॥
(२२७। ३२)

सनातन पुरुष श्रीविष्णु एकमात्र भक्तिसे सुलभ हैं और यह भक्ति अनायास पत्र, पुष्प, फल अथवा जलका श्रद्धाके साथ श्रीविष्णुके चरणोंमें समर्पणमात्रसे प्राप्य है। ऐसी स्थितिमें अतिकष्टसाध्य मुक्तिके लिये क्यों प्रयत्न किया जाय?

'हमारे कुलमें एक विष्णुभक्तने जन्म लिया है, यह हमारा इस संसार-सागरसे उद्धार करेगा।' यह सोचकर पितृगण ताल ठोकते हैं और पितामह ताली बजा-बजाकर नृत्य करते हैं। अज्ञानी और पापात्मा शिशुपाल तथा सुयोधन आदि भी सुरश्रेष्ठ भगवान्‌की निन्दा-अपमानके व्याजसे, भगवान्‌का स्मरणमात्र करके निष्पाप हो गये और मुक्तिको प्राप्त कर लिये। ऐसी स्थितिमें भगवान्‌में परमभक्ति रखनेवालोंके मुक्तिलाभमें कौन-सा संशय है? वह तो निस्संदेह प्राप्त होगी ही—

अज्ञानिनः सुरवरे समधिक्षिपन्तो
यत्पापिनोऽपि शिशुपालसुयोधनाद्याः।
मुक्तिं गताः स्मरणमात्रविधूतपापाः
कः संशयः परमभक्तिमतां जनानाम्॥
(२२७। ३५)

ध्यानयोगसे रहित होकर भी जो लोग श्रीविष्णुकी शरणमें आ जाते हैं, वे मृत्युका अतिक्रमण करके परम वैष्णवगतिको प्राप्त हो जाते हैं।

हे माधव! इस संसारमें प्राप्त होनेवाले सैकड़ों कष्टोंसे व्यथित और शरीरमें विद्यमान अनेक इन्द्रिय-छिद्ररूप अश्वोंके साथ विषयवासनाओंमें भटकते हुए इस मेरे मनरूपी घोड़ेको आप रोक लें और अपने चरणरूपी खूँटेमें सुदृढ़ भक्तिरूपी बन्धनसे बाँध दें, जिससे यह मेरा मन

आपके चरणकमलका परित्याग कर अन्यत्र न जा सके—

भवोद्भवक्लेशशतैर्हतस्तथा
परिभ्रमन्निन्द्रियरन्ध्रकैर्हयैः ।
नियम्यतां माधव मे मनोहय-
स्त्वदङ्घ्रिशङ्कौ दृढभक्तिबन्धने॥[1]

(२२७।३७)

विष्णु ही परमब्रह्म हैं, वे ही तीन भिन्न रूपोंमें वेद-शास्त्रादिके प्रतिपाद्य हैं। इस तथ्यको उनकी मायासे मोहितजन नहीं जानते और जो लोग इस मायासे परे रहते हैं तथा श्रीविष्णुमें अपनी अचल भक्ति रखते हैं, उन्हें यह भेद नहीं दिखायी देता। उनके लिये तो सब विष्णुमय ही होता है। (अध्याय २२७)

नामसंकीर्तनकी महिमा

सूतजीने कहा—मुक्तिके कारणभूत, अनादि, अनन्त, अज, नित्य, अव्यय और अक्षय भगवान् विष्णुको जो मनुष्य नमन करता है, वह समस्त संसारके लिये नमस्कारके योग्य हो जाता है। मैं आनन्दस्वरूप, अद्वैत, विज्ञानमय, सर्वव्यापक एवं सभीके हृदयमें निवास करनेवाले भगवान् विष्णुको भक्तिभावसे भरे हुए एकाग्र-मनसे सदा प्रणाम करता हूँ। जो ईश्वर अन्तःकरणमें विराजमान रहकर सभीके शुभाशुभ कर्मोंको देखते हैं, उन सर्वसाक्षी परमेश्वर विष्णुको मेरा नमन है।

शरीरमें शक्ति रहते हुए जो मनुष्य भगवान् चक्रपाणि विष्णुको प्रणाम नहीं करता, उससे इस संसारके अति तुच्छ तृण भी उद्विग्न रहते हैं। जलसे परिपूर्ण नूतन-श्यामल मेघों-जैसी सुन्दर कान्तिवाले, लोकनाथ, परमपुरुष तथा अप्रमेय भगवान् कृष्णको भाव-विभोर होकर दृढ़ भक्तिके साथ मात्र एक बार किया गया प्रणाम श्वपच (चाण्डाल)-को भी तत्काल उत्तम गति देनेमें सक्षम है। जो व्यक्ति पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करते हुए भगवान् हरिकी पूजा करता है, उसको वह गति प्राप्त होती है, जो सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे भी सम्भव नहीं है। जंगल एवं समुद्रकी भाँति दुर्गम संसारमें दौड़ते हुए पुरुषोंको कृष्णके लिये उनके द्वारा किया गया एक ही प्रणाम उन्हें मुक्ति प्रदान करके तार देगा। बैठा हो, शयन कर रहा हो अथवा जहाँ कहीं भी रह रहा हो—हर स्थितिमें कल्याणकामी पुरुषको 'नमो नारायणाय' मन्त्रका स्मरण करना चाहिये। 'नारायण' यह शब्द सुलभ है और वागिन्द्रिय मनुष्यके वशमें है, फिर भी मूर्ख मनुष्य नरकमें गिरता है, इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा! यदि कोई चार मुखोंसे युक्त हो जाय अथवा उसके करोड़ों मुख हो जायँ, चाहे कोई विशुद्ध चित्तवाला मनुष्य हो, फिर भी वह देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णुके गुणोंसे सम्बन्धित दस हजारवें भागका भी वर्णन नहीं कर सकता। मधुसूदन (श्रीविष्णु)-की स्तुति करनेवाले व्यास आदि मुनि अपनी बुद्धिकी क्षीणताके कारण श्रीविष्णुके गुण-वर्णनसे विरत होते हैं न कि श्रीविष्णुके गुणोंकी इयत्ताके कारण। सिंहसे डरकर मृग जैसे तत्काल भाग जाते हैं वैसे ही श्रीविष्णुके नामोंका कीर्तन करनेसे अशक्त व्यक्तिके भी सभी पातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं और निष्पाप होनेके कारण वह व्यक्ति अपने पूरे परिवारके साथ मोक्षके लिये संनद्ध हो जाता है।

स्वप्नमें भी भगवान् नारायणका नाम लेनेवाला मनुष्य अपनी अक्षय पापराशिको विनष्ट कर देता है। यदि कोई मनुष्य प्रबोध-दशामें परात्पर विष्णुका नाम लेता है तो फिर उसके विषयमें कहना ही क्या? 'हे कृष्ण! हे अच्युत! हे

---

१. यह श्लोक प्राचीन आप्तपरम्परामें इस प्रकार प्रसिद्ध है—

भवोद्भवक्लेशकशाहताहतः परिभ्रमन्नैन्द्रियकापथान्तरे। निगृह्यतां माधव मे मनोहयस्त्वदङ्घ्रिशङ्कौ दृढभक्तिबन्धनैः॥

इसका अर्थ है—'हे माधव! मेरा मनरूपी अश्व संसारमें उत्पन्न क्लेशरूपी सैकड़ों कोड़ोंसे आहत होकर ऐन्द्रिय (इन्द्रियसम्बन्धी) अनेक कापथ (कुत्सित मार्गों)-में भटक रहा है। कृपया आप अपने भक्तिरूप दृढ़ बन्धनोंसे अपने चरणरूपी शङ्कुमें इसे बाँधकर निगृहीत कर लें।'

[काशीके प्रसिद्ध परम आस्तिक प्रौढ़ विद्वान् श्रीरामयशजी त्रिपाठी (महाशयजी) इसी रूपमें इस श्लोकका प्रतिदिन प्रातः पाठ करते थे और कहा करते थे कि यह गरुडपुराणका श्लोक है। विशेषकर वर्तमान कलिकालमें इस श्लोकका पाठ भगवान्की भक्ति प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह तथ्य महाशयजीके शिष्य स्व० श्री पं० बालचन्द्र दीक्षितजीसे ज्ञात हुआ है।]

अनन्त! हे वासुदेव! आपको नमस्कार है।' ऐसा कहकर जो भक्तिभावसे श्रीविष्णुको प्रणाम करते हैं, वे यमपुरी नहीं जाते। अग्निके प्रज्वलित होनेपर अथवा सूर्यके उदित हो जानेपर जैसे अन्धकार विनष्ट हो जाता है, वैसे ही हरिका नामसंकीर्तन करनेसे प्राणियोंके पाप-समूहका विनाश हो जाता है। नामसंकीर्तनसे जिस नित्य सर्वोत्तम अक्षय सुखका अनुभव होता है, उसके सम्मुख अनित्य क्षयशील स्वर्गसुख सर्वथा नगण्य है। जिनका चित्त श्रीकृष्णचिन्तनमें ही प्रतिक्षण रम रहा है, उनके लिये श्रीकृष्णधामतक पहुँचनेके लंबे मार्गमें श्रीकृष्णनामसंकीर्तन सर्वोत्तम पाथेय (अनुपम अवलम्ब) है। संसाररूपी सर्पके दंशसे व्याप्त विषके भयंकर'उपद्रवको शान्त करनेके लिये एकमात्र औषध 'श्रीकृष्ण' नाम है। इस वैष्णव मन्त्रका जप करके मनुष्य संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है—

पाथेयं पुण्डरीकाक्ष नामसंकीर्तनं हरेः।
संसारसर्पसंदष्टविषचेष्टैकभेषजम् ॥

(२२८।१७)

कृतयुगमें भगवान् हरिका ध्यान करते हुए, त्रेतायुगमें इन्हीं भगवान् हरिके मन्त्रोंका जप करते हुए, द्वापरमें इन्हींकी पूजा करते हुए, जो फल प्राणियोंको प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें मनुष्य उन्हीं भगवान् 'केशव' के स्मरणमात्रसे प्राप्त कर लेता है—

ध्यायन् कृते जपन् मन्त्रैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संस्मृत्य केशवम्॥

(२२८।१८)

जिस व्यक्तिकी जिह्वाके अग्रभागमें 'हरि' ये दो अक्षर विद्यमान होते हैं, वह इस संसारसागरको पार कर विष्णु-पदको प्राप्त करनेमें सफल हो जाता है—

जिह्वाग्रे वर्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्।
संसारसागरं तीर्त्वा स गच्छेद्वैष्णवं पदम्॥

(२२८।१९)

ज्ञानपूर्वक किये गये हजारों पापोंसे परिशुद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिके लिये भगवान्‌का नाम परम कल्याणकारी है। भगवान् नारायणके स्तवन और गुणानुवादसे भरी हुई कथाओंके श्रवणमें निमग्न रहनेवाला व्यक्ति स्वप्नमें भी इस संसारको नहीं देखता—

विज्ञातदुष्कृतिसहस्रसमावृतोऽपि
श्रेयः परं तु परिशुद्धिमभीप्समानः।
स्वप्नान्तरे न हि पुनश्च भवं स पश्ये-
न्नारायणस्तुतिकथापरमो मनुष्यः॥

(२२८।२०)

(अध्याय २२८)

विष्णुपूजामें श्रद्धा-भक्तिकी महिमा

सूतजीने पुनः कहा—हे शौनक! समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् हरिकी आराधना ही सार है। पुरुषसूक्त[1]के द्वारा जो मनुष्य पुष्प और जल आदि उस परात्पर देवको समर्पित करता है, वह सम्पूर्ण चराचर जगत्‌की पूजा कर लेता है। जो विष्णुकी पूजा नहीं करते, उन्हें ब्रह्मघाती समझना चाहिये। जिन भगवान्‌से समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और यह समस्त चराचर जगत् जिनसे व्याप्त है, उन विष्णुका जो ध्यान नहीं करता, वह विष्ठाका कृमि होता है। नरकलोकमें होनेवाले कष्टोंसे संतप्त हो रहे पापी जीवसे यमराज स्वयं पूछते हैं कि क्या तुमने कष्टविनाशक भगवान् विष्णुदेवका पूजन नहीं किया था? द्रव्योंका अभाव होनेपर मात्र जलसे ही पूजा करनेपर जो देव प्रसन्न होकर स्वयं अपने ही लोकको दे देते हैं, क्या तुमने उनकी पूजा नहीं की थी?

श्रद्धापूर्वक की गयी पूजासे संतुष्ट भगवान् हृषीकेश मनुष्यका जो उपकार करते हैं, वह न माता करती है, न पिता करता है और न तो उसका भाई ही करता है। वर्णाश्रम-धर्मका आचरण करनेवाले मनुष्यके द्वारा यदि भगवान् विष्णुकी पूजा होती है तो वे (श्रीविष्णु) उस पूजासे संतुष्ट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है, जो उनको संतुष्ट कर सके। न तो वे प्राणियोंके द्वारा दिये गये विभिन्न प्रकारके दानसे उतना संतुष्ट होते हैं, न तो पुष्पोपहार और भाँति-भाँतिके सुगन्धित पदार्थोंके अनुलेपनसे उतना संतुष्ट होते

१-'सहस्रशीर्षा पुरुषः' आदि १६ मन्त्र 'पुरुषसूक्त'-रूपमें प्रसिद्ध हैं। ये मन्त्र सभी वेदोंकी संहितामें उपलब्ध हैं।

हैं, जितना भक्तिसे। सम्पत्ति, ऐश्वर्य, माहात्म्य, पुत्र-पौत्रादिक संतान तथा अन्यान्य कर्मसम्पादनसे भी भगवान् हरि संतुष्ट नहीं होते। विमुक्तजनोंके लिये भी हरिका ऐक्य श्रीहरिकी आराधनासे ही प्राप्त होता है; क्योंकि श्रीहरिकी आराधना ही ऐक्यभावका मूल है।

(अध्याय २२९)

विष्णुभक्तिका माहात्म्य

सूतजीने कहा—सभी शास्त्रोंका अवलोकन करके तथा पुनः-पुनः विचार करके यह एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्यको सदैव भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये—

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥

(२३०।१)

जो व्यक्ति एकनिष्ठ होकर नित्य उस नारायणका ध्यान करता है, उसके लिये नाना प्रकारके दान, विभिन्न तीर्थोंका परिभ्रमण, तपस्या और यज्ञोंका सम्पादन करनेसे क्या प्रयोजन? अर्थात् श्रीमन्नारायणका ध्यान सर्वोत्कृष्ट है।

छियासठ हजार तीर्थ भगवान् नारायणके प्रणामकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते। समस्त प्रायश्चित्त और जितने भी तप-कर्म हैं, इन सभीमें भगवान् कृष्णका स्मरण ही सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा समझना चाहिये। जिस पुरुषकी अनुरक्ति सदैव पापकर्ममें रहती है, उसके लिये एकमात्र श्रेष्ठतम प्रायश्चित्त भगवान् हरिका स्मरण है।

जो प्राणी एक मुहूर्तभर भी निरालस्य होकर नारायणका ध्यान कर लेता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है, फिर नारायणमें अनन्य-परायण भक्तके विषयमें क्या कहा जाय—

मुहूर्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमतन्द्रितः।
सोऽपि स्वर्गतिमाप्नोति किं पुनस्तत्परायणः॥

(२३०।६)

जो मनुष्य योगपरायण है अथवा योगसिद्ध है, उसकी चित्तवृत्ति जागते, स्वप्न देखते तथा सुषुप्तावस्थामें भगवान् अच्युतके ही आश्रित होती है। उठते, गिरते, रोते, बैठते, खाते, जागते भगवान् गोविन्द माधव विष्णुका स्मरण करना चाहिये।

अपने-अपने कर्ममें संलग्न रहते हुए भगवान् जनार्दन हरिमें ही चित्तको अनुरक्त रखना चाहिये, ऐसा शास्त्रका कथन है। अन्य बहुत-सी बातोंको कहनेसे क्या लाभ—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः कुर्याच्चित्तं जनार्दने।
एषा शास्त्रानुसारोक्तिः किमन्यैर्बहुभाषितैः॥

(२३०।९)

ध्यान ही परम धर्म है, ध्यान ही परम तप है, ध्यान ही परम शुद्धि है, अतः मनुष्यको (भगवद्) ध्यानपरायण होना चाहिये। विष्णुके ध्यानसे बढ़कर अन्य कोई ध्यान नहीं है, उपवाससे बढ़कर अन्य कोई तपस्या नहीं है, अतः भगवान् वासुदेवके चिन्तनको ही अपना प्रधान कर्म मानना चाहिये। इस लोक और परलोकमें प्राणीके लिये जो कुछ दुर्लभ है, जो अपने मनसे भी सोचा नहीं जा सकता, वह सब बिना माँगे ही ध्यानमात्र करनेसे मधुसूदन प्रदान कर देते हैं।

यज्ञ आदि उत्तम कर्म करते समय प्रमादवश स्खलनसे जो न्यूनता होती है, वह विष्णुके स्मरणमात्रसे सम्पूर्णतामें परिवर्तित हो जाती है, ऐसा श्रुतिवचन है—

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥

(२३०।१३)

पापकर्म करनेवालोंकी शुद्धिका ध्यानके समान अन्य कोई साधन नहीं है। यह ध्यान पुनर्जन्म देनेवाले कारणोंको भस्म करनेवाली योगाग्नि है। समाधि (ध्यानयोग)-से सम्पन्न योगी योगाग्निसे तत्काल अपने समस्त कर्मोंको नष्ट करके इसी जन्ममें मुक्ति प्राप्त कर लेता है। वायुके सहयोगसे ऊँचे उठनेवाली ज्वालासे युक्त अग्नि जैसे अपने आश्रय कक्ष (कमरे)-को जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही योगी (ध्यानयोगी)-के चित्तमें स्थित श्रीविष्णु योगीके समस्त पापोंको भस्म कर देते हैं। जैसे अग्निके संयोगसे सोना मलरहित हो जाता है, वैसे ही मनुष्योंका मल भगवान् वासुदेवके सांनिध्यसे विनष्ट हो जाता है।

हजारों बार गङ्गास्नान तथा करोड़ों बार पुष्कर नामक तीर्थमें स्नान करनेसे जो पाप नष्ट होता है, वह हरिका मात्र स्मरण करनेसे नष्ट हो जाता है। हजारों प्राणायाम करनेसे जो पाप नष्ट होता है, वही पाप क्षणमात्र भगवान् हरिका ध्यान करनेसे निश्चित ही नष्ट हो जाता है। जिस मनुष्यके

हृदयमें भगवान् केशव विराजमान हैं, उसके मानसपर उन दुष्ट उक्तियों तथा पाखण्डका प्रभाव नहीं पड़ता, जो कलिके प्रभावसे प्रवृत्त हैं। जिस समय हरिका स्मरण किया जाता है, वही तिथि, वही दिन, वही रात्रि, वही योग, वही चन्द्रबल और वही लग्न सर्वश्रेष्ठ है। जिस मुहूर्त या क्षणमें वासुदेवका चिन्तन नहीं होता, वह मुहूर्त या क्षण हानिका समय है। वह अत्यन्त व्यर्थ है। वह किसी भी प्रकारके लाभसे रहित होनेके कारण मूर्खता एवं मूकता (गूँगेपन)-का समय है।

जिसके हृदयमें भगवान् गोविन्द विद्यमान हैं, उसके लिये कलियुग भी सत्ययुग ही है। इसके विपरीत जिसके हृदयमें अच्युत भगवान् गोविन्दका वास नहीं है, उसके लिये तो सत्ययुग भी कलियुग ही है। जिसका चित्त आगे और पीछे, चलते तथा बैठते, सदैव भगवान् गोविन्दमें रमा हुआ है, वह व्यक्ति सदा ही कृतकृत्य है—

कलौ कृतयुगं तस्य कलिस्तस्य कृते युगे।
हृदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युतः॥
यस्याग्रतस्तथा पृष्ठे गच्छतस्तिष्ठतोऽपि वा।
गोविन्दे नियतं चेतः कृतकृत्यः सदैव सः॥

(२३०।२३-२४)

हे मैत्रेय! जप, होम एवं पूजा आदिके द्वारा जिसका मन वासुदेव श्रीकृष्णकी आराधनामें अनुरक्त है, उसके लिये इन्द्र आदिका पद विघ्नके समान है।

जिन्होंने श्रीकेशवके चरणोंमें अपने मनको अर्पित कर दिया है, वे गृहस्थाश्रमका परित्याग बिना किये ही, कठिन तपश्चर्या बिना किये ही पौरुषी (पुरुषोत्तम परब्रह्मकी शक्ति) मायाके जालको काट डालते हैं।

गोविन्द दामोदरका हृदयमें वास रहनेपर मनुष्य क्रोधियोंके प्रति क्षमा, मूर्खोंके प्रति दया और धर्ममें संलग्न प्राणियोंके प्रति प्रसन्नता प्रकट करते हैं—

क्षमां कुर्वन्ति क्रुद्धेषु दयां मूर्खेषु मानवाः।
मुदं च धर्मशीलेषु गोविन्दे हृदयस्थिते॥

(२३०।२७)

स्नान-दान आदि कर्मोंमें तथा विशेष रूपसे सभी प्रकारके दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त करते समय भगवान् नारायणका ध्यान करना चाहिये।

जिनके हृदयमें नीलकमलके समान सुन्दर श्यामवर्ण भगवान् हरि विराजमान रहते हैं, उन्हींको वास्तविक लाभ और जय प्राप्त होते हैं। उनका पराभव कैसे हो सकता है—

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥

(२३०।२९)

हरिमें समर्पित चित्तवाले कीड़े-मकोड़े, पक्षी आदि जीव-जन्तुओंकी भी ऊर्ध्व (उत्तम) गति होती है। फिर ज्ञानसम्पन्न मनुष्योंकी गतिके विषयमें कहना ही क्या—

कीटपक्षिगणानां च हरौ संन्यस्तचेतसाम्।
ऊर्ध्वा ह्येव गतिश्चास्ति किं पुनर्ज्ञानिनां नृणाम्॥

(२३०।३०)

भगवान् वासुदेवरूपी वृक्षकी छाया न तो अधिक शीतल होती है और न अधिक तापकारक होती है। नरकके द्वारका शमन करनेवाली (नरकमें जानेसे रोकनेवाली) इस छायाका सेवन क्यों नहीं किया जाय—

वासुदेवतरुच्छाया नातिशीतातितापदा।
नरकद्वारशमनी सा किमर्थं न सेव्यते॥

(२३०।३१)

हे मित्र! भगवान् मधुसूदनको अपने हृदयमें अहर्निश प्रतिष्ठित रखनेवाले प्राणीका विनाश करनेमें न तो महाक्रोधी दुर्वासाका शाप समर्थ है और न तो देवराज इन्द्रका शासन ही समर्थ है—

न च दुर्वाससः शापो राज्यं चापि शचीपतेः।
हन्तुं समर्थं हि सखे हृत्कृते मधुसूदने॥

(२३०।३२)

बोलते हुए, रुकते हुए अथवा इच्छानुसार अन्य कार्य करते हुए भी यदि भगवद्विषयक चिन्तन निरन्तर बना रहे तो धारणा (ध्येयपर चित्तकी स्थिरता)-को सिद्ध हुआ मानना चाहिये—

वदतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
नापयाति यदा चिन्ता सिद्धां मन्येत धारणाम्॥

(२३०।३३)

सूर्यमण्डलके मध्य विराजमान रहनेवाले, कमलासनपर सुशोभित, केयूर[1], मकराकृतकुण्डल और मुकुटसे अलंकृत, दिव्य हारसे युक्त, मनोहारिणी सुन्दर स्वर्णिम आभासे युक्त शरीरवाले, शंख-चक्रधारी भगवान् विष्णुका सदैव ध्यान करना चाहिये—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः॥
(२३०।३४)

इस संसारमें भगवान्‌के ध्यानके समान अन्य कोई पवित्र कार्य नहीं है। श्रीविष्णुके ध्यानमें ही सदा निरत रहनेवाला मनुष्य चाण्डालका भी अन्न खाते हुए इस संसारके पापसे संलिप्त नहीं होता, क्योंकि ऐसा मनुष्य अपने स्वत्वको भगवान्‌में लीन कर देनेसे भगवन्मय हो जाता है, अतएव उसकी भेददृष्टि पूरी तरह निर्मूल हो जाती है।

प्राणीका चित्त सदा सांसारिक विषयवासनाओंके भोगमें जिस प्रकार अनुरक्त रहता है, यदि उसी प्रकार नारायणमें ही अनुरक्त हो तो इस संसारके बन्धनसे क्यों नहीं विमुक्त हो सकता—

सदा चित्तं समासक्तं जन्तोर्विषयगोचरे।
यदि नारायणेऽप्येवं को न मुच्येत बन्धनात्॥
(२३०।३६)

सूतजीने फिर कहा—हे शौनक! सर्वदा जिसके चित्तमें भगवान् विष्णुकी भक्ति विद्यमान रहती है, वह प्रतिक्षण श्रीविष्णुको ही नमन करता रहता है। इस स्थितिमें वह हरिकृपासे अपनेको पापके समुद्रसे तार लेता है।

वही ज्ञान है जिस ज्ञानका विषय गोविन्द हों, वही कथा है जिस कथामें केशवकी लीला हो, वही कर्म है जो प्रभुके निमित्त किया जाय; अन्य बहुत-सी बातोंको कहनेसे क्या लाभ? जो जिह्वा हरिकी स्तुति करती है वही जिह्वा है, जो चित्त श्रीहरिको समर्पित है वही चित्त है तथा भगवान्‌की पूजा करनेमें जो हाथ लगे हुए हैं वे ही वास्तविक हाथ हैं—

तज्ज्ञानं यत्र गोविन्दः सा कथा यत्र केशवः।
तत्कर्म यत् तदर्थाय किमन्यैर्बहुभाषितैः॥
सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत् तदर्पितम्।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥
(२३०।३८-३९)

मस्तकका फल है भगवान्‌को नतमस्तक होकर प्रणाम करना, हाथका फल है भगवान्‌की पूजा करना, मनका फल है उनके गुण और कर्मका चिन्तन करना तथा वाणीका फल है गोविन्दके गुणोंका कीर्तन करना—

प्रणाममीशस्य शिरःफलं विदु-
स्तदर्चनं पाणिफलं दिवौकसः।
मनःफलं तद्गुणकर्मचिन्तनं
वचस्तु गोविन्दगुणस्तुतिः फलम्॥
(२३०।४०)

मनुष्यके पापकर्मकी जो राशि सुमेरु और मन्दराचलके समान विशाल हो गयी हो, वह सम्पूर्ण पापराशि भी भगवान् केशवका स्मरणमात्र करनेसे ही विनष्ट हो जाती है—

मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः।
केशवस्मरणादेव तस्य सर्वं विनश्यति॥
(२३०।४१)

श्रीविष्णुपरायण भक्त अनासक्त-भावसे यदि अपने सभी कर्मोंको श्रीविष्णुके चरणोंमें समर्पित करता है तो उसके कर्म साधु हों या असाधु बन्धनकारक नहीं होते। हे प्रभो! सुर, असुर, मनुष्य, तिर्यक्, स्थावर आदि भेदोंमें विभक्त तृणसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त समस्त जगत् आपकी ही मायासे मोहित है।

जिनमें मन लगा देनेसे प्राणी नरकमें नहीं जाता और जिनके चिन्तन-सुखकी तुलनामें स्वर्गकी प्राप्ति विघ्नके समान है तथा ब्रह्मलोककी कामना भी अत्यल्प होनेके कारण किसी भी प्रकार मनमें प्रवेश नहीं पाती, जो अव्यय भगवान् जड बुद्धिवाले मनुष्योंके चित्तमें स्थित होकर उन्हें मुक्ति प्रदान कर देते हैं, उन अच्युतका कीर्तन करनेपर यदि उनमें प्राणीका विलय हो जाता है तो इसमें आश्चर्यकी क्या

१-बाँहके मूलमें पहना जानेवाला आभूषण, इसे अङ्गद, बिजायट, बाजूबंद आदि भी कहते हैं।

बात है[1]?

दुःख-सागरको पार करनेके लिये यज्ञ, जप, स्नान और विष्णुका ध्यान तथा पूजन करना चाहिये।

राष्ट्रका आश्रय राजा, बालकका आश्रय पिता और समस्त प्राणियोंका आश्रय धर्म है; किंतु सभीके आश्रय श्रीहरि ही हैं—

राष्ट्रस्य शरणं राजा पितरो बालकस्य च।
धर्मश्च सर्वमर्त्यानां सर्वस्य शरणं हरिः॥
(२३०।४६)

हे मुनिवर! जो लोग जगत्‌के कारणस्वरूप सनातन भगवान् वासुदेवको नमन करते हैं, उनसे अधिक श्रेष्ठ पुण्यवान् कोई तीर्थ नहीं है। निरालस्य होकर गोविन्दका ध्यान करते हुए उन्हींको समर्पित स्वाध्याय आदि कर्म करना चाहिये। भगवद्भक्त व्यक्ति चाहे शूद्र हो अथवा निषाद हो या चाण्डाल हो, उसे द्विजातियोंके समान ही माननेवाला व्यक्ति नरकमें नहीं जाता। जैसे धनप्राप्तिकी अभिलाषासे धनवान् व्यक्तिकी सदैव सम्मानपूर्वक स्तुति की जाती है, वैसे ही जगत्स्रष्टा श्रीविष्णुकी स्तुति-पूजा आदि की जाय तो क्यों नहीं इस संसारके बन्धनसे मुक्ति हो सकती है?

जिस प्रकार वनमें लगी हुई अग्नि गीले ईंधनको जलाकर राख कर देती है, उसी प्रकार योगियोंके हृदयमें स्थित भगवान् विष्णु उनके समस्त पापोंको विनष्ट कर देते हैं। जैसे चारों ओरसे लगी हुई अग्निकी ज्वालासे घिरे हुए पर्वतका आश्रय मृग आदि पशु एवं पक्षी नहीं लेते, वैसे ही सभी पाप योगाभ्यासमें लगे हुए मनुष्यका आश्रय नहीं ग्रहण करते। उन विष्णुके प्रति जिसका विश्वास जितना अधिक दृढ़ होता है, उसको उतनी ही अधिक सिद्धि प्राप्त होती है।

भगवान् कृष्णके ऐसे प्रभावका आकलन कर शत्रुभावसे उन गोविन्दका स्मरण करता हुआ दमघोषका पुत्र शिशुपाल भगवान्‌में लीन हो गया। यदि कोई मनुष्य भक्तिभावसे विष्णुपरायण है, तो उसके विषयमें क्या कहना? उसकी मुक्ति तो पहलेसे ही सुनिश्चित हो जाती है—

विद्वेषादपि गोविन्दं दमघोषात्मजः स्मरन्।
शिशुपालो गतस्तत्त्वं किं पुनस्तत्परायणः॥
(२३०।५४)

(अध्याय २३०)

नृसिंहस्तोत्र तथा उसकी महिमा

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं भगवान् शिवद्वारा कही गयी नारसिंहस्तुति (नृसिंहस्तोत्र)-का वर्णन करूँगा।

प्राचीन कालकी बात है, एक बार सभी मातृगणोंने भगवान् शंकरसे कहा कि हे भगवन्! हम सब आपकी कृपासे देव, असुर और मनुष्य आदि जो इस संसारमें प्राणी हैं, उन सबको खायेंगे। हम सभीको आप इसके लिये आज्ञा प्रदान करें।

शंकरजीने कहा—हे मातृकाओ! आप सबके द्वारा संसारकी समस्त प्रजाकी रक्षा होनी चाहिये। इसलिये इस महाभयंकर पापसे आप लोग अपने-अपने मनको शीघ्र वापस कर लें।

भगवान् शंकरके द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी मातृकाएँ उनके वचनका अनादर करते हुए त्रिभुवनके समस्त चराचर प्राणियोंको खानेके लिये जुट गयीं। मातृकाओंके द्वारा त्रैलोक्यका भक्षण करते देखकर भगवान् शिवने नृसिंहरूप उन श्रीविष्णुदेवका इस रूपमें ध्यान किया—जो आदि-अन्तसे रहित एवं समस्त चराचर जगत्‌के कारण हैं, विद्युत्‌के समान लपलपाती हुई जिनकी जिह्वा है, जिनके बड़े-बड़े महाभयंकर दाँत हैं, जिनकी ग्रीवा देदीप्यमान केसर[2]से सुशोभित है, जो रत्नजटित अङ्गद एवं मुकुटसे सुशोभित हैं। जिनका शिरोभाग सोनेके समान दिखायी देनेवाली जटाओंसे युक्त है, जिनके कटिप्रदेशमें सोनेकी करधनी है, जो नीलकमलके समान श्यामवर्णके हैं, जो रत्नखचित पायल धारण किये हुए हैं। जिनके तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त है। जिनका शरीर आवर्ताकार रोमसमूहसे युक्त है और जो देव श्रेष्ठतम पुष्पोंसे गूँथी गयी एक विशाल मालाको धारण किये हुए हैं। इस तरह भगवान् रुद्रने

१-यस्मिन् न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने विघ्नो यत्र न वा विशेत् कथमपि ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिं चेतसि संस्थितो जडधियां पुंसां ददात्यव्ययः किं चित्रं यदयं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते॥ (२३०।४४)

२-सिंहकी ग्रीवाके ऊपरी भागके केशसमूहको 'केसर' कहते हैं।

भक्तिपूर्वक जिस रूपमें नारायणका ध्यान किया था, उसी रूपमें ध्यान करनेमात्रसे नृसिंहदेव श्रीविष्णुने उन्हें अपना दर्शन दिया। यह रूप देवताओंके द्वारा भी दुर्निरीक्ष्य था।

शिवने देवेश नृसिंहको प्रणाम करके उन्हें तुष्ट किया और वे इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे। शंकरजीने कहा—

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर।
दैत्येश्वरेन्द्रसंहारिनखशुक्तिविराजित ॥
नखमण्डलसंभिन्नहेमपिङ्गलविग्रह ।
नमोऽस्तु पद्मनाभाय शोभनाय जगद्गुरो।
कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष सूर्यकोटिसमप्रभ ॥
सहस्रयमसंत्रास सहस्रेन्द्रपराक्रम।
सहस्रधनदस्फीत सहस्रचरणात्मक ॥
सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रांशुहरिक्रम।
सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसंस्तुत ॥
सहस्ररुद्रसंजप्त सहस्राक्षनिरीक्षण।
सहस्रजन्ममथन सहस्रबन्धमोचन ॥
सहस्रवायुवेगाक्ष सहस्राज्ञकृपाकर।

(२३१। १२—१६½)

हे समस्त संसारके स्वामी! हे नृसिंहरूपधारिन्! हे दैत्यराज हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले! शुक्तियोंके समान चमकीले नाखूनोंसे सुशोभित देव! आपको नमस्कार है। हे नखमण्डलकी कान्तिसे मिश्रित सुवर्णके समान देदीप्यमान शरीरवाले! हे जगद्वन्द्य! हे शोभासम्पन्न भगवान् पद्मनाभ! प्रलय कालीन मेघके सदृश गर्जना करनेवाले, करोड़ों सूर्यके समान प्रभासम्पन्न देव! आपको नमन है। दुष्ट पापियोंको हजारों यमराजके समान भयभीत करनेवाले! हजारों इन्द्रकी शक्ति अपनेमें संनिहित रखनेवाले! हजारों कुबेरके सदृश धनसम्पन्न! हजारों चरणसे युक्त हे देव! आपको नमस्कार है। हजारों चन्द्रके समान शीतल कान्तिवाले! हजारों सूर्यके सदृश पराक्रमशाली! हजारों रुद्रकी भाँति तेजस्वी! हजारों ब्रह्मासे स्तुत्य हे देव! आपको मेरा नमन है। हजारों रुद्र देवताओंके द्वारा मन्त्ररूपमें जप करने योग्य महामहिम! इन्द्रके हजारों नेत्रोंसे देखे जानेवाले! हजारों जन्मके पाप-पुण्योंका मन्थन करनेवाले! संसारके हजारों जीवोंका बन्धन काटकर उन्हें मुक्त करनेवाले! हजारों वायुदेवोंके समान वेगवान् और हजारों मूर्ख प्राणियोंपर कृपा करनेवाले हे दयानिधान! आपको मेरा नमस्कार है।

इस प्रकार नृसिंहरूपधारी देवदेवेश्वर भगवान् हरिकी स्तुति करके विनम्रतापूर्वक शिवने पुनः उनसे कहा—

हे देवदेवेश्वर! अन्धकासुरका विनाश करनेके लिये जिन मातृकाओंकी सृष्टि मैंने की थी, वे तो मेरे ही वचनकी अवहेलना करके संसारकी विविध प्रजाओंका भक्षण कर रही हैं। मातृकाओंकी सृष्टि करके तो अब स्वयं मैं इनका संहार करनेमें असमर्थ हूँ। पहले इनकी सृष्टि की, अब कैसे इनका विनाश करूँ? यह मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।

रुद्रके ऐसा कहनेपर नृसिंहरूपधारी भगवान् हरिने उसी समय अपनी जिह्वाके अग्रभागसे हजारों देवियोंको उत्पन्न करके उन्हींके द्वारा देवता, असुर और मनुष्य आदिका संहार करनेवाली क्रुद्ध मातृकाओंका विनाश कर संसारका कल्याण किया। तदनन्तर वे हरि अन्तर्धान हो गये।

जो मनुष्य नियमपूर्वक इस नारसिंहस्तोत्रका जितेन्द्रिय होकर पाठ करता है, निश्चित ही भगवान् हरि उसके समस्त मनोरथको वैसे ही पूर्ण करते हैं जैसे उन्होंने शिवके मनोरथको पूर्ण किया था।

मध्याह्नकालीन प्रचण्ड सूर्यके समान तेजस्वी नेत्रोंवाले, श्वेत वर्णके कमलमें स्थित, प्रज्वलित अग्निके सदृश भयंकर, अनादि, मध्य और अन्तसे रहित पुराणपुरुष, परात्पर, जगदाधार भगवान् नृसिंहका ध्यान करना चाहिये—

ध्यायेन्नृसिंहं तरुणार्कनेत्रं
सिताम्बुजातं ज्वलिताग्निवक्त्रम्।
अनादिमध्यान्तमजं पुराणं
परात्परेशं जगतां निधानम्॥

(२३१। २३)

जो मनुष्य इस स्तोत्रका निरन्तर जप करता है, उसके दुःखसमूहको श्रीनृसिंह उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं जिस प्रकार अंशुमाली सूर्य कुहरेकी राशिको अपने सामनेसे हटा देते हैं। जब साधक कल्याणकारी मातृवर्गसे युक्त नृसिंहदेवकी मूर्तिका निर्माण करके उनकी पूजा करता है, तब वह सदैव उन परात्परदेवके समीपमें ही रहता है। त्रिपुरारि शिवने भी तो उन्हीं देवदेवेश्वर नृसिंहमूर्ति भगवान् हरिकी पूजा की थी। उन्हीं देवको प्रसन्न करके श्रीशिवजीने वर प्राप्त किया और मातृकाओंसे संसारकी रक्षा की। (अध्याय २३१)

कुलामृतस्तोत्र

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं उस कुलामृत नामक स्तोत्रका वर्णन करूँगा, जिसका वर्णन देवर्षि नारदके पूछनेपर शिवने किया था। उसे आप सुनें।

नारदजीने कहा—हे त्रिपुरान्तक भगवन्! जो दुर्मतिपूर्ण मनुष्य संसारमें काम-क्रोध और शुभाशुभ द्वन्द्वोंसे तथा शब्दादि विषयोंसे बँधकर सदासे पीड़ित हो रहे हैं, उनकी जन्म-मृत्युरूपी संसार-सागरसे जिस उपायद्वारा क्षणमात्रमें विमुक्ति हो जाय, उसको हम आपसे सुनना चाहते हैं।

इसपर भगवान् शंकर बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! भव-बन्धनको नष्ट करनेवाले और दुःखका विनाश करनेवाले परम गोपनीय रहस्यको मैं कहता हूँ, सुनो—तिनकेसे लेकर ब्रह्मातक चार प्रकारकी चराचर सृष्टि इस जगत्में जिन प्रभुकी मायासे अज्ञानके वशीभूत होकर सदैव सोती रहती है, उन विष्णुकी कृपासे यदि कोई जग जाता है तो वही संसारसे पार होता है। यह संसार देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुस्तर है। भोग और ऐश्वर्यके मदमें उन्मत्त तथा तत्त्वज्ञानसे पराङ्मुख, स्त्री, पुत्र और कुटुम्बियोंके व्यामोहमें भ्रमित होकर सभी प्राणी नाना प्रकारके दुःख झेलते हैं। इस व्यामोहमें फँसे हुए सभी जीवोंकी वैसी ही गति होती है, जैसी गति समुद्रमें स्नान करनेके लिये आये हुए वृद्ध जंगली हाथियोंकी होती है। जो मनुष्य हरिकीर्तन करनेके समय अपने मुखको बंद रखता है अर्थात् हरिकीर्तनसे पराङ्मुख रहता है, वह कोशमें स्थित कीड़ेके समान होता है। उसकी मुक्ति तो करोड़ों जन्म लेनेपर भी सम्भव नहीं है। अतः हे नारद! प्रसन्न-चित्त होकर सदैव देवदेवेश अव्यय भगवान् विष्णुकी प्रसन्नतापूर्वक सम्यक् आराधना करनी चाहिये।

जो विश्वरूप, अनादि, अनन्त, अजन्मा तथा हृदयमें स्थित, अविचल, सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है। शरीररहित, विधाता, सर्वज्ञानसम्पन्न, मनके रमणके अनन्य आश्रय, अचल, सर्वत्र व्याप्त भगवान् विष्णुका सदा ध्यान करनेवाला मुक्त हो जाता है। निर्विकल्प (निर्विशेष), निराभास, निष्प्रपञ्च तथा निर्दोष, वासुदेव, परम गुरु भगवान् विष्णुका ध्यान करनेसे मनुष्य मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। सर्वात्मक एवं प्राणिमात्रके ज्ञानके एकमात्र प्रतिनिधि, शुभ, एकाक्षर (एक अक्षर 'अ' मात्रसे बोध्य) विष्णुका ध्यान करनेसे मुक्ति हो जाती है। वाक्यातीत (किसी भी वाक्यसे अवर्णनीय), तीनों कालोंको जाननेवाले, लोकसाक्षी, विश्वेश्वर तथा सभीसे श्रेष्ठ विष्णुका सदा ध्यान करनेसे मुक्ति हो जाती है। ब्रह्मा आदि देव, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण एवं योगियोंके द्वारा सदा सेवित श्रीविष्णुका ध्यान करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। संसार-बन्धनसे मुक्ति चाहनेवाले सभी लोगोंको वरद श्रीविष्णुकी इसी प्रकार सदा स्तुति करनी चाहिये। यदि कोई भी संसार-बन्धनसे मुक्ति चाहता है तो उसे समाहितचित्त होकर अनन्त, अव्यय, देवाधिदेव, अनन्त ब्रह्माण्डमें सर्वोच्च देवके रूपमें सुप्रतिष्ठित, समस्त जगत्के नियन्ता, अज श्रीविष्णुका सदा ध्यान करना चाहिये।[1]

सूतजीने कहा—प्राचीन कालमें देवर्षि नारदके द्वारा पूछनेपर वृषभध्वज शिवने नारदसे श्रीविष्णुका जैसा वर्णन

१-यस्तु विश्वमनाद्यन्तमजमात्मनि संस्थितम्। सर्वज्ञमचलं विष्णुं सदा ध्यायेत् स मुच्यते॥
देवं गर्भोचितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते। अशरीरं विधातारं सर्वज्ञानमनोरतिम्।
अचलं सर्वगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
निर्विकल्पं निराभासं निष्प्रपञ्चं निरामयम्। वासुदेवं गुरुं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
सर्वात्मकं च वै यावदात्मचैतन्यरूपकम्। शुभमेकाक्षरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
वाक्यातीतं त्रिकालज्ञं विश्वेशं लोकसाक्षिणम्। सर्वस्मादुत्तमं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभिः सिद्धचारणैः। योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
संसारबन्धनान्मुक्तिमिच्छँल्लोको ह्यशेषतः। स्तुत्वैवं वरदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥
संसारबन्धनात् कोऽपि मुक्तिमिच्छन् समाहितः। अनन्तमव्ययं देवं विष्णुं विश्वप्रतिष्ठितम्।
विश्वेश्वरमजं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥ (२३२। ११—१८)

किया था वैसा मैंने आपसे कर दिया है। हे तात! निरन्तर उन अक्षय, निष्कल, सनातन, अव्यय, ब्रह्मस्वरूप विष्णुका ध्यान करते हुए आप निश्चित ही उनके शाश्वत पदको प्राप्त करेंगे। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, वह एकाग्रचित्त होकर विष्णुका क्षणमात्र ध्यान करनेसे प्राप्त होनेवाले फलके सोलहवें भागकी भी समानता करनेमें समर्थ नहीं है।

भगवान् शिवसे विष्णुके इस माहात्म्यको सुनकर सिद्ध देवर्षि नारदने उनकी सम्यक् आराधना करते हुए परम पदको प्राप्त किया। जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक नित्य इस स्तुतिका पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्ममें किये गये पाप नष्ट हो जाते हैं। महादेवके द्वारा कही गयी यह स्तुति बड़ी दिव्य है। जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक इस स्तुतिका नित्य पाठ करता है, वह अमृतत्व अर्थात् परम वैष्णव पदको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २३२)

मृत्य्वष्टकस्तोत्र[1]

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं मार्कण्डेयमुनिके द्वारा कहे गये स्तोत्रको बतलाता हूँ जो इस प्रकार है—

दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
शङ्खचक्रधरं देवं व्यक्तरूपिणमव्ययम्।
अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम्।
माधवं च प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
पुरुषं पुष्करक्षेत्रबीजं पुण्यं जगत्पतिम्।
लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोनिमयोनिजम्।
विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तोत्रं तस्य महात्मनः।
अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैः प्रपीडितः॥
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता।
प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम्॥

(२३३। १—८)

मैं भगवान् दामोदरकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं शंखचक्रधारी, व्यक्त, अव्यय, अधोक्षजकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं वराह, वामन, विष्णु, नृसिंह, जनार्दन, माधवके शरणागत हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं पुराणपुरुष, पुष्करक्षेत्रके (मूलतत्त्व) बीजभूत, (मूल पुरुष) महापुण्य, जगत्पति, लोकनाथकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैं सहस्र सिरवाले, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, महायोगेश्वरकी शरणमें हूँ, मृत्यु मेरा क्या करेगी? मैंने प्राणियोंमें 'आत्मा' स्वरूपसे विद्यमान रहनेवाले, महात्मा, यज्ञयोनि, अयोनिज, विश्वरूप भगवान्‌की शरण ग्रहण कर ली है, अब मृत्यु मेरा क्या करेगी? इस प्रकार उन महात्मा मार्कण्डेयमुनिके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर विष्णु-दूतोंसे संत्रस्त मृत्यु भाग जाती है। इस स्तोत्रका पाठकर बुद्धिमान् श्रीमार्कण्डेयने मृत्युपर विजय प्राप्त कर ली। पुण्डरीकाक्ष श्रीनृसिंह महाविष्णुके प्रसन्न होनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

यह मृत्य्वष्टकस्तोत्र महापुण्यशाली है, मृत्युका विनाश करनेवाला और मङ्गलदायक है। मार्कण्डेयमुनिका कल्याण करनेके लिये भगवान् विष्णुने स्वयं इस स्तोत्रको कहा था। जो मनुष्य नित्य तीनों कालोंमें पवित्रतासे भक्तिपूर्वक इस स्तुतिका नियमपूर्वक पाठ करता है, वह विष्णुभक्त अकालमृत्युसे ग्रस्त नहीं होता। जो योगी अपने हृदयकमलमें पुराणपुरुष, सनातन, अप्रमेय तथा सूर्यसे भी अत्यधिक तेजस्वी नारायणका ध्यान करता है, वह मृत्युपर विजय प्राप्त कर लेता है। (अध्याय २३३)

---

[1] मृत्युका निवारक आठ श्लोकोंका स्तोत्र।

अच्युतस्तोत्र

सूतजीने कहा—हे शौनक! अब मैं अच्युतस्तोत्रका वर्णन करूँगा जो प्राणियोंको सब कुछ प्रदान करनेवाला है। देवर्षि नारदके पूछनेपर ब्रह्माजीने उस सर्वश्रेष्ठ स्तोत्रका जैसा वर्णन किया था, वैसा ही आप मुझसे सुनें।

नारदजीने पूछा—हे ब्रह्मन्! प्रतिदिन पूजाके समय जिस प्रकार अक्षय, अव्यय, वर प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुकी स्तुति मुझे करनी चाहिये, वह बतानेकी कृपा करें। वे सभी प्राणी धन्य हैं, उन सबका जन्म लेना सफल है, वे ही सब प्रकारका सुख प्राप्त करनेवाले हैं, उन्हीं सज्जनोंका जीवन सार्थक है, जो भगवान् अच्युत विष्णुकी सदैव स्तुति करते हैं।

ब्रह्माजीने कहा—हे मुने! मैं भगवान् वासुदेवका वह स्तोत्र जो प्राणियोंको मोक्ष देनेवाला है और जिस स्तोत्रके द्वारा पूजाकालमें सम्यक् स्तुति किये जानेपर भगवान् नारायण प्रसन्न होते हैं, उसे आपको सुनाता हूँ, सुनें। वह स्तोत्र इस प्रकार है—

ॐ नमो [भगवते] वासुदेवाय नमः सर्वाघहारिणे।
नमो विशुद्धदेहाय नमो ज्ञानस्वरूपिणे॥
नमः सर्वसुरेशाय नमः श्रीवत्सधारिणे।
नमश्चर्मासिहस्ताय नमः पङ्कजमालिने॥
नमो विश्वप्रतिष्ठाय नमः पीताम्बराय च।
नमो नृसिंहरूपाय वैकुण्ठाय नमो नमः॥
नमः पङ्कजनाभाय नमः क्षीरोदशायिने।
नमः सहस्रशीर्षाय नमो नागाङ्कशायिने॥
नमः परशुहस्ताय नमः क्षत्रान्तकारिणे।
नमः सत्यप्रतिज्ञाय ह्यजिताय नमो नमः॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय नमश्चक्रधराय च।
नमः शिवाय सूक्ष्माय पुराणाय नमो नमः॥
नमो वामनरूपाय बलिराज्यापहारिणे।
नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमो नमः॥
नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर।
नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक॥
नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम।
नमस्ते विश्वकृद्देव नमस्ते विश्वभावन॥
नमस्ते स्ताद् विश्वनाथ नमस्ते विश्वकारण।
नमस्ते मधुदैत्यघ्न नमस्ते रावणान्तक॥
नमस्ते कंसकेशिघ्न नमस्ते कैटभार्दन।
नमस्ते शतपत्राक्ष नमस्ते गरुडध्वज॥
नमस्ते कालनेमिघ्न नमस्ते गरुडासन।
नमस्ते देवकीपुत्र नमस्ते वृष्णिनन्दन॥
नमस्ते रुक्मिणीकान्त नमस्तेऽदितिनन्दन।
नमस्ते गोकुलावास नमस्ते गोकुलप्रिय॥
जय गोपवपुः कृष्ण जय गोपीजनप्रिय।
जय गोवर्धनाधार जय गोकुलवर्धन॥
जय रावणवीरघ्न जय चाणूरनाशन।
जय वृष्णिकुलोद्योत जय कालीयमर्दन॥
जय सत्य जगत्साक्षिन् जय सर्वार्थसाधक।
जय वेदान्तविद्वेद्य जय सर्वद माधव॥
जय सर्वाश्रयाव्यक्त जय सर्वग माधव।
जय सूक्ष्म चिदानन्द जय चित्तनिरञ्जन॥
जयस्तेऽस्तु निरालम्ब जय शान्त सनातन।
जय नाथ जगत्पुष्ट (पूज्य) जय विष्णो नमोऽस्तु ते॥
त्वं गुरुस्त्वं हरे शिष्यस्त्वं दीक्षामन्त्रमण्डलम्।
त्वं न्यासमुद्रासमयास्त्वं च पुष्पादिसाधनम्॥
त्वमाधारस्त्वं ह्यनन्तस्त्वं कूर्मस्त्वं धराम्बुजम्।
धर्मज्ञानादयस्त्वं हि वेदिमण्डलशक्तयः॥
त्वं प्रभो छलभृद्रामस्त्वं पुनः स खरान्तकः।
त्वं ब्रह्मर्षिश्च देवस्त्वं विष्णुः सत्यपराक्रमः॥
त्वं नृसिंहः परानन्दो वराहस्त्वं धराधरः।
त्वं सुपर्णस्तथा चक्रं त्वं गदा शङ्ख एव च॥
त्वं श्रीः प्रभो त्वं पुष्टिस्त्वं त्वं माला देव शाश्वती।
श्रीवत्सः कौस्तुभस्त्वं हि शार्ङ्गी त्वं च तथेषुधिः॥
त्वं खड्गचर्मणा सार्धं त्वं दिक्पालास्तथा प्रभो।
त्वं वेधास्त्वं विधाता च त्वं यमस्त्वं हुताशनः॥
त्वं धनेशस्त्वमीशानस्त्वमिन्द्रस्त्वमपाम्पतिः।
त्वं रक्षोऽधिपतिः साध्यस्त्वं वायुस्त्वं निशाकरः॥
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ त्वं मरुद्गणाः।
त्वं दैत्या दानवा नागास्त्वं यक्षा राक्षसाः खगाः॥

गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः पितरस्त्वं महामराः।
भूतानि विषयस्त्वं हि त्वमव्यक्तेन्द्रियाणि च॥
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञस्त्वं हृदीश्वरः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः समित्कुशाः॥
त्वं वेदी त्वं हरे दीक्षा त्वं यूपस्त्वं हुताशनः।
त्वं पत्नी त्वं पुरोडाशस्त्वं शाला स्रुक् च त्वं स्रुवः॥
ग्रावाणः सकलं त्वं हि सदस्यस्त्वं सदक्षिणः।
त्वं शूर्पादिस्त्वं च ब्रह्मा मुसलोलूखले ध्रुवम्॥
त्वं होता यजमानस्त्वं त्वं धान्यं पशुयाजकः।
त्वमध्वर्युस्त्वमुद्गाता त्वं यज्ञः पुरुषोत्तमः॥
दिक्पातालमहि व्योम द्यौस्त्वं नक्षत्रकारकः।
देवतिर्यङ्मनुष्येषु जगदेतच्चराचरम्॥
यत्किंचिद् दृश्यते देव ब्रह्माण्डमखिलं जगत्।
तव रूपमिदं सर्वं सृष्ट्यर्थं सम्प्रकाशितम्॥
नाथयन्ते परं ब्रह्म देवैरपि दुरासदम्।
कस्त्वां जानाति विमलं योगगम्यमतीन्द्रियम्॥
अक्षयं पुरुषं नित्यमव्यक्तमजमव्ययम्।
प्रलयोत्पत्तिरहितं सर्वव्यापिनमीश्वरम्॥
सर्वज्ञं निर्गुणं शुद्धमानन्दमजरं परम्।
बोधरूपं ध्रुवं शान्तं पूर्णमद्वैतमक्षरम्॥
अवतारेषु या मूर्तिर्विदूरे देव दृश्यते।
परं भावमजानन्तस्त्वां भजन्ति दिवौकसः॥
कथं त्वामीदृशं सूक्ष्मं शक्नोमि पुरुषोत्तम।
आराधयितुमीशान मनोऽगम्यमगोचरम्॥
इह यन्मण्डले नाथ पूज्यते विधिवत् क्रमैः।
पुष्पधूपादिभिर्यत्र तत्र सर्वा विभूतयः॥
सङ्कर्षणादिभेदेन तव यत्पूजितं मया।
क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वं यत्कृतं न कृतं मया॥
न शक्नोमि विभो सम्यक् कर्तुं पूजां यथोदिताम्।
यत्कृतं जपहोमादि असाध्यं पुरुषोत्तम॥
विनिष्पादयितुं भक्त्या अतस्त्वां क्षमयाम्यहम्।
दिवा रात्रौ च सन्ध्यायां सर्वावस्थासु चेष्टतः॥
अचला तु हरे भक्तिस्तवाङ्घ्रियुगले मम।
शरीरे न (ण) तथा प्रीतिर्न च धर्मादिकेषु च॥
यथा त्वयि जगन्नाथ प्रीतिरात्यन्तिकी मम।
किं तेन न कृतं कर्म स्वर्गमोक्षादिसाधनम्॥
यस्य विष्णौ दृढा भक्तिः सर्वकामफलप्रदे।
पूजां कर्तुं तथा स्तोत्रं कः शक्नोति तवाच्युत॥
स्तुतं च पूजितं मेऽद्य तत् क्षमस्व नमोऽस्तु ते।

(२३४।५—४९ १/२)

मैं उन भगवान् वासुदेवको नमस्कार करता हूँ, जो सभी पापोंको हरण करनेवाले हैं। मैं विशुद्ध देहवाले, ज्ञानस्वरूप, सभी देवताओंके स्वामी, श्रीवत्सधारी[1], ढाल और तलवार धारण करनेवाले, कमलकी माला धारण करनेवाले, जगत्में प्रतिष्ठित, पीताम्बरसे अलंकृत, नृसिंहरूप और वैकुण्ठमूर्ति श्रीविष्णुको बारम्बार नमन करता हूँ।

मेरा उन देवको प्रणाम है, जिनकी नाभिमें कमल है, जो क्षीरसागरमें शयन करनेवाले हैं, जिनके हजारों सिर हैं, जो शेषशय्यापर शयन कर रहे हैं, जिनके हाथमें परशु है, जो क्षत्रियोंके गर्वका अन्त करनेवाले हैं, जो सत्यप्रतिज्ञ हैं, जो अजित हैं, जो त्रिभुवनके एकमात्र स्वामी और चक्रधारी हैं, उन कल्याणमूर्ति, सूक्ष्मस्वरूप और पुराणपुरुषको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। दैत्यराज बलिके राज्यको दानमें ग्रहण करनेके लिये भगवान् वामन तथा पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये यज्ञवराहका अवतार ग्रहण करनेवाले गोविन्द श्रीहरिको मेरा बार-बार प्रणाम है।

हे परमानन्दस्वरूप! हे ज्ञान देनेवाले परम अक्षर ज्ञानस्वरूप! देव! परमाद्वैत! पुरुषोत्तम! विश्वकर्ता! विश्वभावन! विश्वनाथ! विश्वके कारणभूत! मधुदैत्यविनाशक! रावणहन्ता! कंस तथा केशीको मारनेवाले! कैटभ दैत्यको मारनेवाले! आपको नमस्कार है। हे पद्मलोचन! हे गरुडध्वज! कालनेमिके हन्ता! गरुडासन! देवकीपुत्र! वृष्णिनन्दन! रुक्मिणीकान्त! अदितिनन्दन! गोकुलवासी! हे गुरुकुलप्रिय आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है।

हे गोपवपु श्रीकृष्ण, गोपीजनप्रिय, गोवर्धनधारी! हे गोकुलवर्धन! आपकी जय हो। हे दैत्यराज रावणके संहारक! चाणूरदैत्य-विनाशक, वृष्णिवंशके प्रकाशक! कालीयमर्दन! सत्यस्वरूप! संसारके साक्षी! सर्वार्थसाधक!

१-भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलपर विद्यमान चिह्नविशेष।

हे वेदान्तविदोंके वेद्य! सब कुछ देनेवाले! माधव! सबके आश्रय! अव्यक्त, सर्वत्र व्याप्त! लक्ष्मीकान्त (माधव), सूक्ष्म, चिदानन्द! चित्त निरञ्जन, निरालम्ब! हे शान्त! हे सनातन! हे नाथ! हे जगत्पूज्य भगवान् विष्णु! आपकी जय हो, जय हो, जय हो! आपको मेरा नमस्कार है।

हे हरे! आप ही गुरु हैं, आप ही शिष्य हैं। आप ही दीक्षामें प्रयुक्त होनेवाले मन्त्र तथा मण्डल हैं। आप ही न्यास, मुद्रा और दीक्षा हैं। आप ही पूजामें प्रयुक्त होनेवाले पुष्पादिक साधन हैं। आप ही आधारशक्ति, अनन्त, कूर्म, पृथिवी, पद्म, धर्म, ज्ञान, वेदी और पूजामण्डलकी शक्तियोंके स्वरूप हैं।

हे प्रभो! आप ही छलका भेदन करनेवाले हैं। आप ही खर-दूषणका संहार करनेवाले राम हैं।आप ही ब्रह्मर्षि, देव, विष्णु, सत्यपराक्रम, नृसिंह, परानन्द, धराको धारण करनेवाले महावराह हैं।

हे प्रभो! आप ही सुपर्ण, शंख, चक्र, गदा हैं। हे देव! आप ही लक्ष्मी, पुष्टि, शाश्वती माला, श्रीवत्स, कौस्तुभ, शार्ङ्ग[1] तथा तूणीर (तरकस)-रूप हैं।

हे प्रभो! ढाल और खड्गसे युक्त आप इन्द्रादिक दिक्पाल देवता हैं। आप ही विधाता और आप ही ब्रह्मा हैं। आप ही यम, अग्नि, कुबेर, ईशान, इन्द्र, वरुण, राक्षसोंके स्वामी, साध्य, वायु, चन्द्र, सूर्य, वसु, रुद्रगण, अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण हैं। आप ही दैत्य, दानव, नाग, यक्ष, राक्षस, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, पितृजन तथा देवगण हैं। आप ही पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत, शब्दादि विषयस्वरूप और अव्यक्त इन्द्रिय हैं। आप ही मन, बुद्धि एवं अहंकारतत्त्व हैं। आप ही क्षेत्रज्ञ तथा हृदयेश्वर हैं। आपकी जय हो, आपको मैं प्रणाम करता हूँ।

हे हरे! आप ही यज्ञ, वषट्कार, ॐकार (प्रणव), समिधा और कुश हैं। आप ही यज्ञवेदी, यज्ञीय दीक्षा, यज्ञयूप, अग्नि, यजमानपत्नी, पुरोडाश, यज्ञशाला, स्रुक्, स्रुव तथा सोमरस निकालनेके लिये प्रयुक्त पाषाणविशेष हैं। आप सब कुछ हैं। आप ही यज्ञकी सम्पन्नताके लिये दक्षिणायुक्त सदस्य और आप ही यज्ञके सम्पादनके लिये उपयोगी शूर्पादिक उपकरण, ब्रह्मा (विशेष ऋत्विक्), मूसल तथा ओखली हैं। आप ही निश्चितरूपमें होता, यजमान, धान्य, पशु, याजक, अध्वर्यु, उद्गाता, यज्ञ और आप ही पुरुषोत्तम यज्ञभगवान् हैं। आपको मेरा नमस्कार है।

हे देव! आप ही दिशा, पाताल, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग एवं नक्षत्रोंके जन्मदाता हैं। आप ही देव, तिर्यक् तथा मनुष्य आदि हैं। यह चराचर जगत् भी आप ही हैं। यह अखिल ब्रह्माण्ड और जगत् आपका ही स्वरूप है। इन सबको सृष्टिके लिये आपने स्वतः प्रकट किया है। हे परमब्रह्म! यह आपका स्वरूप उन देवताओंके भी ज्ञानसे परे है। इस संसारमें कौन ऐसा प्राणी है, जो निष्कलुष, योगगम्य, इन्द्रियातीत, अक्षय, पुराणपुरुष, नित्य, अव्यक्त, अजन्मा, अव्यय, प्रलय और उत्पत्तिसे रहित, सर्वव्यापक, ईश्वर, सर्वज्ञ, निर्गुण, शुद्ध, परमानन्द, अजर, बोधरूप अटल, शान्त, पूर्ण, अद्वैत तथा अक्षर ब्रह्म आपको जान सकता है। हे देव! अवतारोंमें आपके जिस स्वरूपका दर्शन होता है, उसके परम भावको बिना जाने हुए ही देवता लोग आपका भजन करते हैं। वे भी आपके मूलस्वरूपके दर्शनसे वञ्चित रह जाते हैं। हे पुरुषोत्तम! इस प्रकार आपका मनसे भी अगम्य जो अगोचर सूक्ष्मस्वरूप है, उसकी आराधना करनेमें क्या मैं समर्थ हो सकता हूँ?

हे नाथ! यहाँपर इस पूजामण्डलमें यथाविधि पुष्प-धूप आदिके द्वारा संकर्षण आदि नामभेदोंसे आपकी ही मैंने पूजा की है, ये सभी विभूतियाँ आपकी ही हैं। मैंने आपकी इस पूजामें जो कुछ किया है और जो कुछ नहीं किया है, वह सब आप क्षमा करें। हे विभो! यथोक्त रूपसे मैं आपकी सम्यक् पूजा नहीं कर सकता। जो मैंने जप-होमादि किया है, भक्तिपूर्वक उस कार्यका निष्पादन करना मेरे लिये असाध्य है। इसलिये मैं आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। हे प्रभो! दिन, रात और संध्यामें तथा सभी अवस्थाओंमें मेरी चेष्टा-निष्ठा आपकी सेवाके अनुरूप रहे। हे हरे! आपके चरणयुगलमें मेरी एकनिष्ठ अचल भक्ति हो। हे नाथ! मेरी जैसी प्रीति अपने शरीरसे है, वैसी धर्मादि कार्योंमें नहीं। इसलिये हे जगन्नाथ! आप ऐसी कृपा करें कि आपमें मेरी आत्यन्तिकी प्रीति हो जाय। सभी फल देनेवाले भगवान् विष्णुकी जिसने दृढ़ भक्ति कर ली, उसने स्वर्ग और मोक्ष आदिके साधन किन कर्मोंको नहीं किया है? हे अच्युत! आपके पूजन और स्तुति करनेमें कौन

१. 'शार्ङ्ग' नामका धनुष धारण करनेवाले।

समर्थ हैं? आज मैंने यथासामर्थ्य आपकी जो पूजा और स्तुति की है, उसकी अपूर्णताके लिये मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरा आपको प्रणाम है।

हे मुने! मैंने भली प्रकारसे आपको यह चक्रधर (अच्युत)-स्तोत्र सुना दिया है। यदि आप परम वैष्णव पदकी इच्छा करते हैं तो परात्पर विष्णुकी भक्तिपूर्वक यह स्तुति करें।

पूजाके समय जो मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा जगद्गुरु भगवान् विष्णुकी स्तुति करता है, वह शीघ्र ही संसारके बन्धनको काटकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। हे मुने! अन्य जो कोई भी पवित्र होकर भक्तिपूर्वक प्रतिदिन तीनों संध्याओंमें श्रीविष्णुदेवका इस स्तोत्रके अनुसार भजन करता है, वह अपने समस्त अभीष्टोंकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे पुत्र चाहनेवाला व्यक्ति पुत्र प्राप्त करता है, सांसारिक बन्धनसे मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवाला उससे मुक्त हो जाता है। इस स्तोत्रके पाठसे रोगी रोगसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है, निर्धन व्यक्ति धनवान् बन जाता है और विद्यार्थी विद्या, भाग्य तथा कीर्ति प्राप्त करता है। जातिस्मरत्व (पूर्वजन्मके वृत्तान्तकी स्मृति) तथा और जो कुछ चित्तमें इच्छा रखता है, भक्त उसे प्राप्त कर लेता है।

वह प्राणी धन्य है, सब कुछ जाननेवाला है, बुद्धिमान् है, साधु है, सभी सत्कर्मोंका कर्ता है, सत्यवादी है, पवित्र है और दाता है, जो भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करता है। इस संसारमें वे प्राणी सम्भाषण करने योग्य नहीं हैं और समस्त धर्मोंसे बहिष्कृत हैं, जिनका कोई भी सत्कार्य भगवान् हरिके उद्देश्यसे सम्पन्न नहीं होता। वह व्यक्ति दुरात्मा है, उसका मन और वचन शुद्ध नहीं है, जिसकी सब कुछ प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुमें अचल भक्ति नहीं है।

मनुष्य सब सुख प्रदान करनेवाले भगवान् हरिकी विधिवत् पूजा कर जो कुछ भी कामना करता है उसे प्राप्त कर लेता है। श्रद्धापूर्वक आराधना करनेपर पुरुषोत्तम भगवान् सब कुछ प्रदान करते हैं। समस्त मुनि जिन देवका चिन्तन करते हैं, वे ही शुद्ध ब्रह्म परमब्रह्म हैं। जो सभीके हृदयमें विराजमान रहते हैं, जो सब कुछ जानते हैं और जो सभी कृत्योंके साक्षी हैं, जो भय-मरण-विहीन हैं, नित्य-आनन्दस्वरूप हैं, ऐसे अज, अमृत, ईश वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं समस्त संसारके स्वामी, सुप्रसन्न, शाश्वत, अति विमल, विशुद्ध, निर्गुण, आत्मस्वरूप और समस्त सुखोंके मूल भगवान् नारायणकी भावपुष्पसे पूजा करता हूँ। मेरे हृदयकमलमें सर्वसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् विष्णु सदा विराजमान रहें—

सकलमुनिभिराद्यश्चिन्त्यते यो हि शुद्धो
निखिलहृदि निविष्टो वेत्ति यः सर्वसाक्षी।
तमजममृतमीशं वासुदेवं नतोऽस्मि
भयमरणविहीनं नित्यमानन्दरूपम्॥
निखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं
त्वतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुष्पैः।
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं
विशतु हृदयपद्मे सर्वसाक्षी चिदात्मा॥

(२३४।६०-६१)

इस प्रकार मैंने आदि-अन्तसे रहित, परात्पर ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णुके महा प्रभावका वर्णन किया। इसलिये मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह भलीभाँति परमेश्वरका चिन्तन करे। इस संसारमें कौन ऐसा योगी है जो उन बोधगम्य पुराणपुरुष, सूर्यके समान तेजस्वी, विमल, विशुद्धात्मा, श्रेष्ठ, अद्वितीय विष्णुका चिन्तन करके उनमें तदाकार नहीं हो जाता? जो मनुष्य इस स्तुतिका सदैव पाठ करता है, वह श्रीविष्णुके समान ही प्रशान्तचित्त तथा पापसे रहित हो जाता है। जो व्यक्ति अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थकी कामना करता है अथवा सम्पूर्ण सौख्य चाहता है, वह सब कुछ छोड़कर सर्वश्रेष्ठ पुराणपुरुष, वरण करने योग्य विष्णुकी शरणमें जाता है, इसीलिये उसका प्रभाव सर्वत्र फैल जाता है और वह विष्णुलोकको चला जाता है।

जो प्राणी विभु, सबके स्वामी, विश्वको धारण करनेवाले, विशुद्धात्मा, समस्त संसारके विनाशके हेतु, विमल, भगवान् वासुदेवकी शरणमें अनासक्त-भावसे जाता है, वह मोक्षपदको प्राप्त करता है—

विभुं प्रभुं विश्वधरं विशुद्ध-
मशेषसंसारविनाशहेतुम्।
यो वासुदेवं विमलं प्रपन्नः
स मोक्षमाप्नोति विमुक्तसङ्गः॥

(२३४।६६)

(अध्याय २३४)

ब्रह्मज्ञाननिरूपण तथा षडङ्गयोग

सूतजीने कहा—[हे शौनक!] अब मैं वेदान्त और सांख्यसिद्धान्तके अनुसार ब्रह्मज्ञानका वर्णन करता हूँ।

'मैं ही ज्योतिर्मय परब्रह्मस्वरूप विष्णु हूँ'—ऐसा चिन्तन करते हुए 'सूर्य, हृदयाकाश और वह्निमें एक ही ज्योति तीन रूपमें स्थित है', ऐसा निश्चय करना चाहिये। जैसे गायोंके शरीरमें घृत रहनेपर भी घृत गायको बल प्रदान नहीं करता, परंतु उसी घृतको निकालकर विधिके अनुसार गायोंके निमित्त प्रयोग करनेपर वह घृत महाबलप्रद हो जाता है, वैसे ही विष्णु सभी जीवोंके शरीरमें विद्यमान रहनेपर भी बिना आराधनाके कल्याणकारी नहीं हो सकते। जो योगरूप वृक्षपर चढ़नेके इच्छुक हैं, उनके लिये कर्मज्ञान आवश्यक है, किंतु जो योगरूपी वृक्षपर आरूढ़ हो चुके हैं, उनके लिये त्याग (वैराग्य) एवं ज्ञान ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है। जो शब्दादि विषयोंको जाननेकी इच्छा करता है, उसमें राग-द्वेषादि प्रादुर्भूत हो जाते हैं, इसी कारण मनुष्य लोभ-मोह तथा क्रोधके वशीभूत होकर पापाचार करता है।

जिसके हाथ, उपस्थ[1], उदर और वाक्य—ये चार सुसंयत रहते हैं, वही बुद्धिमानोंके द्वारा विप्र कहा जाता है। जो दूसरेके द्रव्यको ग्रहण नहीं करते, हिंसा नहीं करते, जुएमें अनुरक्त नहीं रहते, वास्तवमें उन्हींके दोनों हाथ सुसंयत रहते हैं। जो दूसरेकी स्त्रीके प्रति कामका भाव नहीं रखता, उसीकी उपस्थेन्द्रिय सुसंयत है। जो लोभरहित होकर परिमित भोजन करते हैं, उन्हींके उदरको संयत कहा जाता है। जो हित-परिमित और सत्य वाक्य बोलता है, उसीकी वाणी संयत कही जाती है।

जिसके हाथ आदि संयत रहते हैं, उसके लिये तपस्या या यज्ञादिका कोई प्रयोजन नहीं है अर्थात् तपस्या, यज्ञ आदि तभी सफल होते हैं, जब हाथ, उपस्थ, उदर एवं वाक्य संयत हों।

मन, बुद्धि और इन्द्रियोंका आत्यन्तिक ऐक्य अर्थात् सदा ध्येयतत्त्वमें लगा रहना, ध्यान कहलाता है। वह ध्यान दो प्रकारका होता है—सबीज[2] तथा निर्बीज[3]।

चिन्तनकी मूल आधार-शक्ति 'बुद्धि' भौंहोंके मध्यमें रहती है। इसे यदि जीव विषयोंमें लगाये रहता है तो यही जाग्रत्-अवस्था होती है। जब जीवकी इन्द्रियाँ शान्त हों, केवल मन चञ्चल हो और इसी कारण बाहरी एवं भीतरी विषयोंको केवल स्वप्नमें जीव देखता रहे तो यही स्वप्नावस्था है। जब मन हृदयमें स्थित हो तथा तमोगुणसे मोहित होनेके कारण कुछ भी स्मरण न कर सके, तब सुषुप्ति-अवस्था समझनी चाहिये।

जो जितेन्द्रिय होता है उसको जाग्रत्-अवस्थामें तन्द्रा, मोह और भ्रम नहीं उत्पन्न होते। वह शब्दार्थादि विषयोंमें आसक्त नहीं होता।

ज्ञानी इन्द्रियों और मनको विषयोंसे खींचकर बुद्धिके द्वारा अहंकारको एवं प्रकृतिके द्वारा बुद्धिको संयत कर और चित्-शक्तिके द्वारा प्रकृतिको भी संयत कर केवल आत्मरूपमें अवस्थित रहता है। इस स्थितिमें ज्ञानी मनसे स्वप्रकाश आत्मा (परमात्मा)-को देख सकता है। आत्मा स्वप्रकाश है, ज्ञेय है, ज्ञाता है और ज्ञानाधिकरण है। चिद्रूप अमृत शुद्ध निष्क्रिय सर्वव्यापी शिवप्रद आत्माको जानकर मनुष्य तुरीय[4]-अवस्थामें आ जाता है, इसमें संशय नहीं है।

जीवका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। यह मुक्ति जीवको तभी प्राप्त होती है, जब वह पुर्यष्टक एवं त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका परित्याग कर देता है। यह पुर्यष्टक एक 'कमल' के रूपमें माना गया है। संसारावस्थामें जीव इसी कमलरूपी पुर्यष्टक की कर्णिकामें स्थित रहता है। तीनों गुणों (सत्त्व, रज एवं तम)-की साम्यावस्थारूप प्रकृति ही पुर्यष्टकरूपी कमलकी कर्णिका है। इस पुर्यष्टकरूप कमलके आठ पत्र (दल) हैं। ये हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सत्त्व, रज तथा तम। इस प्रतीकात्मक वर्णनका निष्कर्ष यह है कि जीवको मुक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रकृतिसे स्वयंको अलग करना अनिवार्य है इसके हेतु शब्द आदि विषयोंके प्रति अनासक्त होना होगा।

प्राणायाम, जप, प्रत्याहार, धारणा, समाधि और ध्यान—ये छः योगके साधन हैं।

इन्द्रियसंयमसे पापक्षय और पापक्षयसे देवप्रीति सुलभ होती है। देवप्रीति मुक्ति एवं मुक्तिसाधनकी ओर उन्मुख

१-मूत्रेन्द्रिय। २-अविद्या आदि क्लेश ही बीज हैं। इनका अनुभव होते रहनेपर सबीज ध्यान कहा जाता है। ३-क्लेश रूप बीजका अनुभव न हो तो निर्बीज ध्यान कहा जाता है। ४-परम शान्त, शिवस्वरूप अद्वैतावस्था।

होनेके लिये भी प्रथम एवं अनिवार्य साधन है। योगका मुख्यतम साधन है प्राणायाम। यह दो प्रकारका है—गर्भ और अगर्भ। जप एवं ध्यानयुक्त जो प्राणायाम है, वही गर्भ प्राणायाम है और इससे अतिरिक्त होनेपर अगर्भ प्राणायाम कहा जाता है। जो प्राणायाम छत्तीस मात्रासे युक्त रहता है वही श्रेष्ठ है, जो चौबीस मात्रासे युक्त रहता है वह मध्यम है और जो प्राणायाम बारह[१] मात्रासे युक्त रहता है वह निम्न है। सदा ॐकारका जप कर प्राणायाम करे। ॐकार परब्रह्मका वाचक है। इस ब्रह्मवाचक ॐकारका परिज्ञान होनेपर वाच्य ब्रह्म प्रसन्न हो जाता है।

'**ॐ नमो विष्णवे**'—इस षडक्षर और द्वादशाक्षर गायत्रीका जप करना चाहिये। सभी इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति सांसारिक विषयोंकी ओर रहती है। मनके द्वारा इन प्रवृत्तियोंकी निवृत्तिको ही प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियोंको अपने विषयोंसे समाहरण कर मनको बुद्धिके साथ प्रत्याहारमें स्थित रखते हुए बारह बार प्राणायाम करनेमें जितना समय लगता है, उतने समयतक ब्रह्ममें मनको निविष्ट करना ही द्वादशधारणात्मक ध्यान है—ऐसा ब्रह्माने कहा है। नियतरूपसे ब्रह्माकारवृत्तिमें जो संतुष्टिका अनुभव होता है, उसीको समाधि कहा जाता है। ध्यान करते-करते यदि मन चञ्चल नहीं होता है, सदा ध्यानमें ही प्रवृत्ति रहती है अर्थात् अभीष्ट प्राप्तितक ध्यानसे निवृत्ति नहीं होती तो इसीका नाम धारणा है। मन यदि ध्येयतत्त्वमें ही आसक्त रहता है अर्थात् ध्येयतत्त्वका ही चिन्तन सदा होता रहता है, अन्य किसी भी पदार्थका भान नहीं होता तो इसीको ध्यान कहा जाता है।

ध्यानपरायण मुनिगण, ध्येय पदार्थका चिन्तन करते-करते जब मन उसी ध्येयमें निश्चल हो जाता है, तो इसे ही परम ध्यान कहते हैं। ध्यान करते-करते जब सर्वत्र ध्येयपदार्थ ही दिखायी देने लगे, ध्याता भी ध्येयमय प्रतीत हो और किसी प्रकारका द्वैतज्ञान नहीं रहे तो इस अवस्थाको समाधि कहा जाता है। जिसका मन संकल्परहित होकर इन्द्रियोंके विषयचिन्तनसे विरत हो जाता है तथा ब्रह्ममें लीन हो जाता है, वही समाधिमें स्थित कहा जाता है। जिस योगीका मन आत्मामें अवस्थित परमात्माका ध्यान करते-करते तन्मय हो जाता है, वह योगी समाधिस्थ कहा जाता है। चित्तकी अस्थिरता, भ्रान्ति, दौर्मनस्य और प्रमाद—ये सभी योगियोंके दोष कहे गये हैं, ये योगमें विघ्नकारक हैं।

मनके स्थिर होनेके लिये प्रथम ध्येयके स्थूलस्वरूपका चिन्तन करे, इसके बाद मनके निश्चल होनेपर तेजःस्वरूप परमात्माके अनुरक्त होकर स्थिर हो जाना चाहिये। जगत्‌में परमात्माके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, वह परमात्मा ही विश्वरूप है—इस प्रकारका निश्चय कर परमात्मासे अतिरिक्त सभी पदार्थोंको असत् मानकर उनका परित्याग कर देना चाहिये। हृदय-पद्ममें स्थित ॐकाररूपी व्यापक परमब्रह्मका ध्यान करना चाहिये। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञसे रहित तीन मात्रासे युक्त ॐकारका जप करना चाहिये। प्रथम अपने हृदयमें ॐकारस्वरूप प्रधान पुरुषका ध्यान करे। इसके बाद उसके ऊपर कृष्णवर्ण, रक्तवर्ण तथा श्वेतवर्णवाले तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके तीन मण्डलोंका ध्यान कर उनमें जीवात्मा पुरुषका ध्यान करे। मण्डलके ऊपर ऐश्वर्य आदि आठ गुणोंसे युक्त अष्टदल कमलकी भावना की जाती है।

इस कमलकी कर्णिका ज्ञान है, केसर विज्ञान है, नाल वैराग्य है एवं इसका कन्द वैष्णव धर्म है। मुक्तिसाधक व्यक्ति इस हृत्पद्मकी कर्णिकामें स्थित प्रणवरूप ब्रह्मका ध्यान, चेतन निश्चल तथा व्यापक रूपमें करे। इस ॐकारस्वरूप ब्रह्मका ध्यान करते-करते यदि कोई प्राणोंका परित्याग कर देता है तो वह ब्रह्मसायुज्य प्राप्त करता है। योगी देहगत पद्मके मध्यमें हरिको बैठाकर भक्तिभावसे उनका ध्यान करे। कुछ लोग ध्यान-रूपी चक्षुसे—आत्मासे आत्मा (परमात्मा)-को देखते हैं। सांख्यदर्शन-वेत्तालोग प्रकृति- पुरुषके विवेकसे तथा योगवेत्ता योगके प्रभावसे आत्मदर्शन करते हैं। आत्मा ज्ञानरूप है। वास्तवमें ज्ञानका ही माहात्म्य है। ज्ञान ही ब्रह्मका प्रकाशक है और ज्ञान ही भवबन्धनको काटनेवाला है। इसीलिये ध्यान-साधनमें एकचित्तता ही प्रधान योग है। यही योग योगियोंको मुक्ति प्रदान करता है, इसमें संशय नहीं है। यह एकचित्तताका योग आत्मदर्शनमें ही पर्यवसित है।

जो इन्द्रियादिको जीत कर ज्ञानसे प्रदीप्त हो जाता है, परमात्मामें अवस्थित इसी योगीको मुक्त कहा जाता है। आसन, स्थान आदिकी विधियाँ योगकी साधक नहीं होतीं,

१-मात्राका विवेक योगसूत्रसे प्राणायामकी प्रक्रिया समझनेमें स्पष्ट होगा।

प्रत्युत ये तो योगसिद्धिमें विलम्ब करनेवाली हैं। ये सब विधियाँ साधनके विस्तार मात्र हैं। शिशुपालने स्मरणाभ्यासके प्रभावसे सिद्धि-लाभ किया था। योगाभ्यास करनेवाले योगीजन आत्मासे आत्माको देखते हैं। योगीजन सभी प्राणियोंमें करुणाभाव, विषयोंके प्रति विद्वेष एवं शिश्न और उदरकी परायणताका परित्याग करते हुए मुक्ति प्राप्त करते हैं। जब योगी मनुष्य इन्द्रियोंसे इन्द्रियोंके विषयका अनुभव नहीं करता, तब काष्ठकी भाँति सुख, दु:खके अनुभवसे अतीत होकर ब्रह्ममें लीन हो जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है।

मेधावी साधक सभी प्रकारके वर्णभेद, सभी प्रकारके ऐश्वर्यभेद एवं सभी अशुभ तथा पापोंको ध्यानाग्निके द्वारा भस्मसात् कर परमगतिको प्राप्त करता है। जैसे काष्ठसे काष्ठमें घर्षण करनेसे अग्निका दर्शन होता है, वैसे ही ध्यानसे परमात्मस्वरूप हरिका दर्शन किया जा सकता है। जब ब्रह्म और परमात्मस्वरूप हरिका दर्शन किया जाता है, जब ब्रह्म और आत्माके एकत्वका ज्ञान होता है तभी योगका उत्कर्ष जानना चाहिये। किसी भी बाह्य उपायसे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती, मुक्तिकी प्राप्ति आभ्यन्तरिक यम-नियम आदि उपायोंके द्वारा ही होती है। सांख्यज्ञान, योगाभ्यास और वेदान्तादिके श्रवणसे जो आत्माका प्रत्यक्ष होता है, उसे मुक्ति कहा जाता है। मुक्ति होनेपर अनात्मामें आत्माका और असत्-पदार्थमें सत्-तत्त्वका दर्शन होता है। (अध्याय २३५)

आत्मज्ञाननिरूपण

श्रीभगवान् बोले—हे नारद! अब मैं आत्मज्ञानका तात्त्विक वर्णन करूँगा, सुनिये।

अद्वैत तत्त्व ही सांख्य है और उसमें एकचित्तता ही योग है। जो अद्वैत तत्त्व-योगसे सम्पन्न हैं, वे भवबन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। अद्वैत तत्त्वका ज्ञान होनेपर अतीत, वर्तमान और भविष्यके सभी कर्म नष्ट हो जाते हैं। ज्ञानी व्यक्ति सद्विचाररूपी कुल्हाड़ीके द्वारा संसाररूपी वृक्षको काटकर ज्ञान-वैराग्यरूपी तीर्थके द्वारा वैष्णव पद प्राप्त करता है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—यह तीन प्रकारकी अवस्था ही माया है जो संसारका मूल है। यह माया जबतक रहती है, तबतक संसार ही सत्यमें अवगत होता है। वास्तवमें शाश्वत अद्वैत तत्त्वमें ही सब कुछ प्रविष्ट है। अद्वैत तत्त्व ही परब्रह्म है। यह परब्रह्म नाम-रूप तथा क्रियासे रहित है। यह ब्रह्म ही इस जगत्की सृष्टि कर स्वयं उसीमें प्रविष्ट हो जाता है।

'मैं मायातीत चित्पुरुषको जानता हूँ और मैं भी आत्मस्वरूप हूँ।' इस प्रकारका ज्ञान ही मुक्तिका मार्ग है। मोक्ष-लाभके लिये इससे अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है।[1] श्रवण, मनन और ध्यान—ये सभी ज्ञानके साधन हैं। यज्ञ, दान, तपस्या, वेदाध्ययन और तीर्थसेवामात्रसे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती है। मुक्ति किसी मतसे दान-ध्यानसे तथा किसीके मतसे पूजादि कर्मोंसे होती है। 'कर्म करो' और 'कर्मका त्याग करो'—ये दोनों वचन वेदमें मिलते हैं। निष्कामभावसे यज्ञादि कर्म मुक्तिके लिये होते हैं, क्योंकि निष्कामभावसे अनुष्ठित यज्ञादि अन्त:करणकी शुद्धिके साधन हैं। ज्ञान प्राप्त होनेपर एक ही जन्ममें मुक्ति प्राप्त हो जाती है। द्वैत (भेद)-भाव रखनेपर तो मुक्ति सम्भव ही नहीं है। कुयोगी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। किसी कारण योगभ्रष्ट होनेपर योगियोंके कुलमें उत्पत्ति हो सकती है। ऐसी स्थितिमें मुक्ति सम्भव है।

कर्मोंसे भवबन्धन और ज्ञान होनेसे जीवकी संसारसे मुक्ति हो जाती है, इसलिये आत्मज्ञानका आश्रय करना चाहिये। जो आत्मज्ञानसे भिन्न ज्ञान हैं, उनको भी अज्ञान कहा जाता है। जब हृदयमें स्थित सभी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब जीव जीवनकालमें ही अमरत्वकी प्राप्ति कर लेता है, इसमें संशय नहीं है—

यदा सर्वे विमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिता:।
तदाऽमृतत्वमाप्नोति जीवन्नेव न संशय:॥

(२३६।१२)

व्यापक होनेसे ब्रह्म कैसे जाता है, कौन जाता है और कहाँ जाता है? ऐसे प्रश्नोंके लिये कोई अवसर ही नहीं है। अनन्त होनेके कारण उसका कोई देश नहीं है; अत: किसी भी रूपमें उसकी गति नहीं हो सकती। परब्रह्म अद्वय है, अत: उससे भिन्न कुछ भी नहीं है। वह

१-वेदाहमेतं पुरुषं चिद्रूपं तमस: परम्। सोऽहमस्मीति मोक्षाय नान्य: पन्था विमुक्तये॥ (२३६।६)

ज्ञानस्वरूप है, अतः उसमें जड़ता कैसे हो सकती है? वस्तुतः ब्रह्म आकाशके समान है, इसलिये उसकी गति, अगति और स्थिति आदिका विचार कैसे हो सकता है? जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्था मायाके द्वारा कल्पित हैं अर्थात् मिथ्या है।

वस्तुमात्रका सार ब्रह्म ही है। तेजोरूप ब्रह्मको एक अखण्ड परम पुण्यरूप समझना चाहिये। जैसे अपनी आत्मा सबको प्रिय है, वैसे ही ब्रह्म सबको प्रिय है क्योंकि आत्मा ही ब्रह्म है। हे महामुने! सभी तत्त्वज्ञ ज्ञानको सर्वोच्च मानते हैं, इसलिये चित्तका आलम्बन बोधस्वरूप आत्मा ही है। यह आत्मविज्ञान है। यह पूर्ण है। शाश्वत है। जागते, सोते तथा सुषुप्तावस्थामें प्राप्त होनेवाला सुख पूर्ण सुखरूप ब्रह्मका ही एक क्षुद्र अंश समझना चाहिये। जैसे एक मृण्मय वस्तुका (ज्ञान होनेपर) समस्त मृण्मय पदार्थ जान लिया जाता है,

सर्वत्र व्याप्त शाश्वत तत्त्व ज्ञानस्वरूप ब्रह्म यदि सदा सर्वत्र सभीके हृदयमें विद्यमान नहीं है तो विस्मृत अर्थका स्मरण नहीं होना चाहिये पर होता है। ऐसी स्थितिमें यह स्मरण किसको होता है, निश्चित ही चेतन तत्त्वको ही होता है। इसे ही आत्मा, ब्रह्म, परमात्मा आदिके रूपमें स्वीकार किया गया है। चेतनतत्त्वकी सत्ता—अणु, अशरीरी अथवा परम व्यापक तत्त्व—किसी भी रूपमें स्वीकार किया जाय, पर स्वीकार करना ही है; अन्यथा प्राणीको सुख-दुःखका अनुभव नहीं हो सकेगा। चेतनतत्त्व प्राणिमात्रके हृदयमें साक्षीरूपसे सदा विद्यमान है, इसीलिये यह उसकी प्रत्येक चेष्टाको जानता रहता है और इस जानकारीका फल यह है कि प्राणीके शुभाशुभ कर्मका फल यथासमय मिलता रहता है। यह ब्रह्मतत्त्व सत्य, ज्ञान एवं आनन्दरूप है तथा अनन्त है। सत्य ज्ञानसे पृथक् नहीं होता, अनन्ततासे पृथक् आनन्द नहीं है। वास्तवमें प्रत्येक जीव सत्य, आनन्द एवं ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही है। स्वयंको ब्रह्मरूपमें जानकर जीव अपने वास्तविक स्वरूप सर्वज्ञताको प्राप्त कर लेता है। जैसे एक हेममणि (पारस)-से अनन्त लौहराशि हेममय हो जाती है, उसी प्रकार ईश (ब्रह्म)-का ज्ञान होनेपर ज्ञानीके द्वारा सकल विश्व जान लिया जाता है, जैसे अन्धकारदोषके कारण रस्सी अपने सत्यस्वरूपमें नहीं दिखायी देती, वैसे ही व्यामोहसे ग्रस्त जीवको आत्माका दर्शन नहीं होता। जिस प्रकार प्रत्यक्ष होनेपर भी द्रव्य दृष्टि-दोषके कारण सही नहीं दिखायी देता है, अपितु वह कुरूप प्रतीत होता है। उसी प्रकार आकाशकी सरूपताके कारण वह आत्मतत्त्व असत्य एवं पृथक् प्रतीत होता है। जैसे रज्जुमें सर्पका और सीपमें रजतका आभास होता है और मृगमरीचिकामें जलका आभास होता है, उसी प्रकार विष्णुमें जगत्की प्रतीति होती है।

जैसे कोई द्विज ग्रहाविष्ट होनेके कारण 'मैं शूद्र हूँ' ऐसा मानता है और ग्रह-बाधा नष्ट होनेके पश्चात् वही व्यक्ति पुनः ध्यान करता हुआ अपनेको ब्राह्मण मानता है, वैसे ही मायासे आच्छन्न जीव यह 'मैं ही हूँ' ऐसा स्वीकार करता है। मायारूपी अज्ञानके समाप्त हो जानेपर पुनः वह अपने स्वरूपमें 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा मान लेता है। जैसे ग्रहके नाश हो जानेपर उसको माननेवाला प्राणी उसे क्रूर ग्रहके रूपमें देखता है, वैसे ही अपने स्वरूपका दर्शन होनेपर मायाके अभावमें उसकी मायिक पदार्थोंसे विरक्ति हो जाती है।

जैसे संसार-चक्र अनादि है, वैसे ही उसके मूल भगवान्‌की माया भी अनादि है। इस मायाके सत् और असत् दो रूप हैं। व्यवहार-कालमें वह सत् और परमार्थतः असत् है। मायाके कारण ही अज परमात्मा भी अपनी मायाके आवेशसे जगत्‌के रूपमें परिणत होता है। मायाकी इच्छासे ही पति-पत्नी आदिके रूपमें यह सम्पूर्ण जगत् कल्पित है। अट्ठाईस तत्त्वोंका यह त्रिगुणात्मक जगत् और चौरासी लाख योनियोंके नर और नारियोंकी आकृति मायाके द्वारा ही रचित है। त्रिगुणात्मक अट्ठाईस तत्त्वोंके रूपमें मायाके द्वारा ही खण्डशः विश्वकी सृष्टि होती है। वस्तुतः नाम, रूप और क्रिया आदि जगत्‌की सत्ता मध्यमें ही है आदि और अन्तमें नहीं। इसलिये व्यवहार-कालमें सत्य प्रतीत होनेपर भी परमार्थतः यह मिथ्या है। जिस प्रकार स्वप्नावस्थामें रथ आदिकी सत्ता प्रतीत होती है, किंतु वहाँ उनका अस्तित्व रहता नहीं है। उसी प्रकार जाग्रत् अवस्थामें भी ये समृद्धियाँ उस प्राणीके पास नहीं रहतीं। परमार्थतः जैसे जाग्रत्-अवस्था और स्वप्न-अवस्थाके पदार्थोंका भावाभाव प्रतीत होता है, वैसे ही मायिक पदार्थ भी व्यवहार और परमार्थमें सत्-असत् हैं। स्वप्न तथा जागृतिकी स्थितिमें ऐसा ही इस परम ब्रह्मका अस्तित्व है, किंतु सुषुप्तावस्थामें प्राणीका चित्त निश्चल होता है। सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियोंके साथ मन उस आत्माके साथ

एकाकारकी स्थितिमें रहता है। अतः उस समय सत्-असत्‌का कुछ भी ज्ञान प्राणीको नहीं होता। इसी निश्चेष्टताको अचल और अद्वैत पद कहते हैं। ऐसा ही उस ब्रह्मका स्वरूप है।

मायाका अस्तित्व अविचारके कारण ही सिद्ध होता है। किंतु विचार करनेपर वह अस्तित्वहीन है। यह ब्रह्मके समान निरन्तर विद्यमान रहती है, ऐसा नहीं है। यह तो मात्र कल्पना है। इस प्रकार उस असत् मायाका आत्मसम्बन्धके कारण सत्यत्व सिद्ध होता है। जो सत्य होता है उसीका अस्तित्व माना जाता है और अस्तित्वके कारण ही पदार्थकी सत्यता स्वीकार की जाती है।

हे नारद! मैं अनन्त हूँ। मेरा ज्ञान भी अनन्त है। मैं अपनेमें पूर्ण हूँ। आत्माके द्वारा अनुभूत अन्तःसुख मैं ही हूँ। सात्त्विक, राजस और तामस गुणसे सम्बन्धित भावोंसे मैं नित्य परे रहता हूँ। मेरी उत्पत्ति अशुद्धतासे नहीं हुई है। मैं शुद्ध हूँ। मैं तो अमृतस्वरूप हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। मैं प्राणियोंके हृदयमें प्रज्वलित वह ज्योति हूँ, जो दीपकके समान उनके अज्ञानरूपी अन्धकारको विनष्ट करती रहती है। यह आत्मज्ञानकी स्थिति है।

(अध्याय २३६)

गीतासार

श्रीभगवान्‌ने कहा—[हे नारद!] अब मैं गीताका सारतत्त्व कहूँगा, जिसे मैंने पूर्वमें अर्जुनको सुनाया था।

अष्टाङ्गयोगयुक्त और वेदान्तपारङ्गत मनुष्योंके लिये आत्म-कल्याण सम्भव है। आत्म-कल्याण ही परम कल्याण है, उस आत्मज्ञानसे उत्कृष्ट और कुछ भी लाभ नहीं है। आत्मा देहरहित, रूप आदिसे हीन, इन्द्रियोंसे अतीत है। मैं आत्मा हूँ, संसारादि सम्बन्धके कारण मुझे किसी प्रकारका दुःख नहीं है। धूमरहित प्रज्वलित अग्निशिखा जैसे प्रकाश प्राप्त करती है, वैसे ही आत्मा स्वयं प्रदीप्त रहता है। जैसे आकाशमें विद्युत्-अग्निका प्रकाश होता है, वैसे ही हृदयमें आत्माके द्वारा आत्मा प्रकाशित होता है। श्रोत्र आदि इन्द्रियोंको किसी प्रकारका ज्ञान नहीं है। वे स्वयंको भी नहीं जान सकती हैं, परंतु सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, क्षेत्रज्ञ आत्मा ही इन्द्रियोंका दर्शन करता है। जब आत्मा उज्ज्वल प्रदीपके समान हृदयपटलपर प्रकाशित होता है, तब पुरुषोंका पापकर्म नष्ट हो जाता है और ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

जैसे दर्पणमें दृष्टि डालनेपर अपने द्वारा अपनेको देख सकते हैं, वैसे ही आत्मामें दृष्टि करनेपर इन्द्रियोंको, इन्द्रियोंके विषयोंको तथा पञ्चमहाभूतोंका दर्शन किया जा सकता है। मन, बुद्धि, अहंकार और अव्यक्त पुरुष—इन सभीके ज्ञानके द्वारा संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाना चाहिये। सभी इन्द्रियोंका मनमें अभिनिवेश कर उस मनको अहंकारमें स्थापित करना चाहिये। उस अहंकारको बुद्धिमें, बुद्धिको प्रकृतिमें, प्रकृतिको पुरुषमें एवं पुरुषको परब्रह्ममें विलीन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे ही 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकारकी ज्ञान-ज्योतिका प्रकाश होता है। इससे वह पुरुष मुक्त हो जाता है। नौ द्वारोंसे युक्त, तीनों गुणोंके आश्रय तथा आकाश आदि पञ्चभूतात्मक और आत्मासे अधिष्ठित इस शरीरको जो ज्ञानी व्यक्ति जान लेता है, वही श्रेष्ठ है और वही क्रान्तदर्शी है। सौ अश्वमेध या हजारों वाजपेय यज्ञ इस ज्ञानयज्ञके सोलहवें अंशके फलको भी प्रदान नहीं कर सकते। (अध्याय २३७)

गीतासार

श्रीभगवान्‌ने पुनः कहा—हे अर्जुन! यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा तथा समाधि—यह अष्टाङ्गयोग मुक्तिके लिये कहा गया है। शरीर, मन और वाणीको सदा सभी प्राणियोंकी हिंसासे निवृत्त रखना चाहिये; क्योंकि अहिंसा ही परम धर्म है और उसीसे परम सुख मिलता है—

> कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा॥
> हिंसाविरामको धर्मो ह्यहिंसा परमं सुखम्।
>
> (२३८। २-३)

सदा सत्य और प्रिय वचन बोलना चाहिये। कभी भी अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये, प्रिय-मिथ्या वचन भी नहीं बोलना चाहिये, यही सनातनधर्म है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥
(२३८।४)

चोरीसे या बलपूर्वक दूसरेके द्रव्यका अपहरण करना स्तेय है। इसके विपरीत आचरण करना अर्थात् कभी भी चोरी न करना अस्तेय है। स्तेय-कार्य (चोरी) कभी भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि अस्तेय (चोरी न करना) ही धर्मका साधन है—

यच्च द्रव्यापहरणं चौर्याद्वाथ बलेन वा।
स्तेयं तस्यानाचरणमस्तेयं धर्मसाधनम्॥
(२३८।५)

सदा और सभी अवस्थामें कर्म, मन और वाणीके द्वारा मैथुनका परित्याग करना चाहिये। इसीको ब्रह्मचर्य कहा जाता है। आपत्तिकालमें भी इच्छापूर्वक द्रव्यका ग्रहण न करना ही अपरिग्रह है। प्रयत्नपूर्वक परिग्रहका परित्याग करना चाहिये। शौच दो प्रकारके हैं—बाह्य और आभ्यन्तर। मृत्तिका और जल आदिके द्वारा बाह्य एवं भाव-शुद्धिके द्वारा आभ्यन्तर शौच होता है। यदृच्छालाभ अर्थात् अनायास-प्राप्तिसे संतुष्ट होना ही संतोष है। यह संतोष ही सभी प्रकारके सुखका साधन है। मन और इन्द्रियोंकी जो एकाग्रता है, वही परम तप है। कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि व्रतोंके द्वारा देहका शोषण भी तपस्या है। पुरुषोंकी सत्त्वशुद्धिके लिये जो वेदान्त, शतरुद्रीयका पाठ और 'ॐ'कार आदिका जप है, पण्डितजन उसे स्वाध्याय कहते हैं।

कर्म, मन और वाणीसे हरिकी स्तुति, नाम-स्मरण, पूजादि कार्य और हरिके प्रति अनिश्चला भक्तिको ही ईश्वरका चिन्तन कहा जाता है। स्वस्तिकासन, पद्मासन और अर्धासन आदि आसन कहे गये हैं। अपने शरीरगत वायुका नाम प्राण है। उस वायुके निरोधको प्राणायाम कहा जाता है। हे पाण्डव! इन्द्रियाँ असद्विषयोंमें विचरण करती हैं। उनको विषयोंसे निवारित करना चाहिये। साधुगण इस प्रकारके इन्द्रिय-निरोधको प्रत्याहार कहते हैं। मूर्त और अमूर्त ब्रह्म-चिन्तनको ध्यान कहा जाता है। योगारम्भके समय मूर्तिमान् और अमूर्तरूपमें हरिका ध्यान करना चाहिये।

तेजोमण्डलके मध्यमें शंख चक्र, गदा तथा पद्मधारी चतुर्भुज—कौस्तुभचिह्नसे विभूषित, वनमाली, वायुस्वरूप जो ब्रह्म अधिष्ठित है 'मैं वही हूँ'। इस प्रकार मनको लय करके श्रीहरिको धारण करना ही धारणा है। 'मैं ही ब्रह्म हूँ' और 'ब्रह्म ही मैं हूँ' इस प्रकार देशालम्बन-रहित अहं और ब्रह्म पदार्थका तादात्म्य रूप ही समाधि है।

(अध्याय २३८)

ब्रह्मगीतासार

ब्रह्माजीने कहा—[हे नारद!] अब मैं ब्रह्मगीतासारका वर्णन करूँगा, जिसे जानकर संसारसे मुक्ति हो जाती है।

'मैं ब्रह्म हूँ' इस वाक्यार्थका ज्ञान होनेसे मनुष्योंको मोक्षकी प्राप्ति होती है। मैं और ब्रह्म—इन दो पदोंके अर्थका ज्ञान होनेपर वाक्यका ज्ञान होता है। विद्वानोंने इन पदोंके अर्थको वाच्य तथा लक्ष्य-रूपमें दो प्रकारका स्वीकार किया है। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थसे मिला-जुला वाक्यार्थ ही शुद्ध वाक्यार्थ है। वेदोंके द्वारा अहं शब्दसे एक प्राणपिण्डात्मक और दूसरा प्रत्यग्-रूप आत्मा गृहीत होता है। अव्ययानन्द चैतन्य परोक्षज्ञानके सहित है और प्राण-पिण्डात्मक चैतन्य उसका दूसरा पक्ष है। अहं पदको लक्षणासे आत्माका अल्पज्ञत्वादि दोषरहित शुद्ध आत्मा अर्थ होता है।

जो प्राणपिण्डात्मक अर्थ है वह उसका दूसरा भाग है। इसमें परोक्ष अर्थात् लक्ष्यार्थको देखनेके पश्चात् जैसे उस अर्थकी स्थिति आती है, वैसे ही लक्ष्यार्थको देखनेके पश्चात् उस अर्थकी स्थिति आती है। वैसे ही ब्रह्म पदसे प्राणपिण्डात्मक अर्थकी प्रतीति होती है। निष्ठा तथा परोक्षता आदि अर्थ-प्रतीतिके जो गुण हैं, उनका परित्याग करके ऐसा अर्थ किया जाता है। अद्वयानन्द चैतन्य इस अर्थकी प्राप्ति तो लक्ष्यार्थ ब्रह्मपदसे ही हो जाती है। अद्वयानन्द चैतन्यको लक्ष्यार्थ रूपमें देखकर 'मैं ब्रह्म हूँ'—इन दोनों पदार्थोंकी सिद्धि 'ब्रह्म मैं हूँ' और 'मैं ब्रह्म हूँ'—इन दो स्थितियोंमें होती है। 'मैं ब्रह्म हूँ' इस वाक्यसे स्वानुभूतिका फलार्थ प्राणीको प्राप्त होता है। ऐक्यज्ञान तो निश्चित ही वेदान्तसे होता है। उससे यह अर्थ परे है। ज्ञानसे अज्ञानकी जो निवृत्ति होती है, उस निवृत्तिके बाद प्राणीके चित्तकी लक्ष्यसे जो ऐक्यकी स्थिति उत्पन्न होती है, वही मुक्ति है।

(अध्याय २३९)

ब्रह्मगीता सार

श्रीभगवान्‌ने कहा—[हे पाण्डव!] यह सिद्ध है कि परमात्मा है । उसी परमात्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल तथा जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है, जो इस जगत्-प्रपञ्चकी जन्मदात्री है। तदनन्तर सत्रह तत्त्व उत्पन्न हुए। वाक्, हाथ, पैर, पायु और उपस्थ—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान नामक पाँच प्रकारकी वायु है। मन और बुद्धिरूप अन्तःकरण है। मन संदेही होता है और बुद्धि निश्चयात्मिका होती है। इसका स्वरूप सूक्ष्म होता है। आत्माके रूपमें भगवान् हिरण्यगर्भ अन्तःकरणमें विद्यमान रहते हैं, वही जीवात्मा है। इस प्रकार प्रपञ्चसे परे उस महाप्राण परमात्माके द्वारा पञ्चमहाभूतोंसे बने शरीरकी उत्पत्ति होती है। उन्हीं पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतोंसे ब्रह्माण्ड अर्थात् इस जगत्‌की सृष्टि हुई थी।

पैर आदिसे युक्त शरीर स्थूल शरीर है, यह तो संसारमें प्रसिद्ध ही है। उसके बाद उनमें पञ्चभूत तत्त्व और उनके कार्योंकी जो स्थिति है, वह स्थूल शरीरसे पूर्वका शरीर है। किंतु उसके शरीरसे जो कुछ उत्पन्न होता है, उसको स्थूल ही कहा जाता है। विद्वान् इस प्रकार परमात्मासे स्थित शरीरको तीन प्रकार मानते हैं। स्वतत्त्वके भेदको बतानेवाले भेदवाक्य '**अहं ब्रह्मास्मि**'के अनुसार उन दोनों पूर्वस्थूल और स्थूल शरीरमें वह ब्रह्म ही प्रविष्ट रहता है। जलमें सूर्यकी छाया और बेरके समान उस समय उसकी आकृति होती है, जीवस्वरूप वह ब्रह्म उसमें प्राणादि इन शारीरिक तत्त्वोंको धारण करता है। जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी अवस्थामें किये जानेवाले कार्योंका जो साक्षी है, वही जीव माना गया है।

जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्तिकी अवस्थाओंसे परे वह ब्रह्म अपने निर्गुण स्वभावमें ही रहता है। उस क्रियाशील शरीरके साथ रहने एवं न रहनेकी स्थितिमें भी वह नित्य शुद्ध स्वभाववाला ही है। उसमें कोई विकृति नहीं आती। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकी जो तीन अवस्थाएँ हैं, इन अवस्थाओंके कारण वह परमात्मा ही तीन प्रकारका मान लिया जाता है। वह अन्तःकरणमें स्थित रहता है और जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिकी स्थितिमें इन्द्रियोंकी क्रियाशीलताको देखता हुआ वह विकारयुक्त हो जाता है।

हे अर्जुन! अब मैं फलयुक्त क्रिया और कारककी जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति-अवस्थाका वर्णन करता हूँ, उसको सुनें। इन्द्रियोंके द्वारा शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध—इन तन्मात्राओंका जब मनुष्यको सत्य-रूपमें ज्ञान होता है, तब उसको मनुष्यकी जाग्रत् अवस्था कहते हैं। उसको विषयासक्त प्राणीके अन्तःकरणमें जागते हुए संस्कारोंका विश्वास भी कहा जा सकता है। स्वप्न एवं सुषुप्तिकी स्थिति तब होती है, जब विषयापेक्षित कार्यमें लगाये जानेवाले साधनकी चिन्तामें बुद्धि एकाग्र हो जाती है। कारण-अवस्थामें ब्रह्मकी स्थिति है। अतः कालके वशमें होनेके कारण वह जीवात्मा बनकर स्वरूप शरीर स्थित रहता है।

यम-नियमादि अष्टाङ्ग मार्गको यथाक्रम पार करते हुए जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति-अवस्थामें विद्यमान वह जीव साक्षी-रूपमें सब कुछ देखता है। अतः मनुष्यको समाधि आरम्भ करनेके पूर्व ही उस परम लक्ष्यकी अवधारणा अपने चित्तमें बना लेनी चाहिये।

इसके बाद मुमुक्षुके अन्तःकरणमें कैवल्य अर्थात् उस परमात्माके साक्षात्कारकी अवस्था आ जाती है। अतः मोक्षार्थीको उस स्थितिमें पाञ्चभौतिक शरीरके अंदर फँसे हुए क्षेत्रज्ञ जीवात्माके विषयमें विचारकर उसको शरीरसे पृथक् समझना चाहिये, क्योंकि आत्मतत्त्वको शरीरसे अतिरिक्त न माननेपर ब्रह्मतत्त्वसे साक्षात्कार करनेमें अनेक बाधाएँ होती हैं, अतः उन बाधाओंको दूर करना अपेक्षित है, जो सांसारिक विषय-वासनाओंके क्षेत्रसे उत्पन्न हैं। उस स्थितिमें तो समस्त क्षेत्रको ही शून्य कर देना आवश्यक होता है। यह पाञ्चभौतिक शरीर घट आदिके समान है, जैसे घटके अंदर

आकाश है, उस समय वह घटाकाश कहा जाता है। किंतु उस भ्रमको दूर कर दिया जाय तो अपने उस समग्र रूपमें वह दिखायी देता है। वैसी ही स्थिति जीवात्माकी है। अतः पाञ्चभौतिक शरीरसे उस मोक्षकी साधनामें जीवात्माको पृथक् समझना चाहिये। जिसमें वह आबद्ध है, उस क्षेत्रको ही भली प्रकारसे शेष करना अनिवार्य है। जिस प्रकार घट मिट्टीसे पृथक् नहीं है, उसमें समवाय सम्बन्ध होता है। उसी प्रकार कुम्भकारके द्वारा प्रयुक्त चक्र, चीवर आदिके कार्योंसे भी वह पृथक् नहीं है, किंतु पञ्चीकृत इन भौतिक तत्त्वोंकी उत्पत्ति अपञ्चीकृत महाभूत परमात्मासे हुई है। अतः कारण अन्तमें वही परमात्मा ही सिद्ध होगा, जो निर्गुण-निराकार अद्वय पञ्चीकृत देहतत्त्वसे परे है। कार्य तो कारणसे पृथक् होता नहीं है। इसलिये कार्य-कारण-सम्बन्धके द्वारा वह बात सिद्ध हो जायगी, जो मुमुक्षुके लिये अपेक्षित है। विद्वज्जन इसी क्रिया-व्यतिरेकके द्वारा सूक्ष्म शरीरकी अवधारणाकी बातको पुष्ट करते हैं।

अपञ्चीकृत महाभूतोंसे सूक्ष्मशरीर पृथक् नहीं है। जैसे आधार पृथ्वीके बिना नहीं होता है, वैसे ही वह पृथ्वी उसके आधारके बिना नहीं रहती है। यह आधार तो तेज अर्थात् अग्नि है, जो वायुके बिना रहता है। वह वायु आकाशके बिना, आकाश उस सत्-मायाच्छिन्न ब्रह्मके बिना और वह मायारहित शुद्ध ब्रह्म आकाशके बिना नहीं रहता है। ध्यानकी ऐसी अवस्थामें पहुँचनेपर ही प्राणीके हृदयमें वह शुद्ध भाव आता है, जो जाग्रत् और स्वप्न आदिकी स्थितिमें उद्भूत नहीं होता, जो प्राप्त हुए आत्मज्ञानके अनुरूप जीवत्वके प्रभावसे मुक्त होता है।

ब्रह्मको नित्य शुद्ध, बुद्ध, सत्य तथा अद्वैत कहा जाता है। वह तत्त्व दो शिष्ट पदोंके बीच स्थित है। उसको ब्रह्मवाचक शब्द 'ॐ'कार कहते हैं। इसमें उकार और अकार दो स्वर एवं मकार एक अनुनासिक व्यञ्जनवर्ण है। इनसे बना हुआ वह पद सामान्य नहीं, अपितु महामन्त्र है, जो अद्वितीय है। 'ब्रह्म मैं हूँ' या 'मैं ब्रह्म हूँ'—ये दोनों वाक्य मनमें ज्ञान और अज्ञान दोनोंको बढ़ानेवाले हैं।

यह आत्मतत्त्व परमज्योतिःस्वरूप है। यह चिदानन्द है। यह सत्य ज्ञान और अनन्त है। यही तत्त्वमसि है। ऐसा वेदोंका भी कथन है। 'मैं ब्रह्म हूँ।' सांसारिक विषयोंसे जो परे रहता है वही मैं निर्लिप्त देव हूँ। जो सर्वत्रगामी परमात्मा है वही मैं हूँ। जो आदित्यस्वरूप देवदेवेश हैं वही मैं हूँ। अरे, मैं तो वही अनादि देवदेवेश्वर परब्रह्म ही हूँ, जिसके आदि और अन्तका ज्ञान किसीको भी नहीं है। यही गीताका सार है। इसीका वर्णन मैंने अर्जुनसे किया था। इसको सुनकर मनुष्य ब्रह्ममें लीन हो सकता है अर्थात् उसको जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

(अध्याय २४०)

गरुडपुराणका माहात्म्य

भगवान् हरिने कहा—हे रुद्र! मैंने 'गरुडपुराण'का वह सारभाग आपको सुना दिया, जो भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यह विद्या, यश, सौन्दर्य, लक्ष्मी, विजय और आरोग्यादिका कारक है। जो मनुष्य इसका पाठ करता है या सुनता है, वह सब कुछ जान जाता है और अन्तमें उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

ब्रह्माजीने कहा—हे व्यास! मैंने मुक्तिप्रदायक ऐसे महापुराणको भगवान् विष्णुसे सुना था।

व्यासजीने कहा—सूतजी! भगवान् विष्णुसे इस महापुण्यदायक गरुडपुराणको सुनकर ब्रह्माजीने दक्षप्रजापति, नारद तथा हम सभीको सुनाया और स्वयं उस परात्पर ब्रह्मका ध्यान करते हुए वे वैष्णव पदको प्राप्त हुए। मैंने भी तुम्हें और तुमने शौनकादिको इस सर्वश्रेष्ठ पुराणको सुनाया, जिसे सुनकर सर्वज्ञ बना व्यक्ति अपने अभीष्टको प्राप्त करके अन्तमें ब्रह्मपदका लाभ लेता है। भगवान् विष्णुने गरुडको सारतमभाग सुनाया था, इसलिये यह गरुडके लिये कथित सारतत्त्व 'गरुडमहापुराण'के नामसे प्रसिद्ध हो गया। यह महासारतत्त्व है। यह प्राणीको धर्म, काम, धन और मोक्षादि सभी फलोंको देनेवाला है।

सूतजीने कहा—हे शौनक! आपको मैंने उस श्रेष्ठतम

गरुडमहापुराणको सुना दिया है, जिस शुभ पुराणको भगवान् व्यासने ब्रह्मासे सुनकर बहुत समय पहले मुझको सुनाया था। व्यासरूप भगवान् हरिने प्रारम्भमें जो मात्र एक वेद था, उसे चार भागोंमें विभाजित किया और अष्टादश महापुराणोंकी रचना की। उन पुराणोंको महाराज शुकदेवजीने मुझे सुनाया। हे शौनक! आपके पूछनेपर इस श्रेष्ठ गरुड-पुराणको मैंने मुनियोंके सहित आपको सुनाया।

जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर इस महापुराणका पाठ करता है, सुनता है अथवा सुनाता है, इसको लिखता है, लिखाता है, ग्रन्थके ही रूपमें इसे अपने पास रखता है तो वह यदि धर्मार्थी है तो उसे धर्मकी प्राप्ति होती है, यदि वह अर्थका अभिलाषी है तो अर्थ प्राप्त करता है। यदि वह कामी है तो उसकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और यदि वह मोक्ष प्राप्त करनेका इच्छुक है तो उसे मोक्ष प्राप्त होता है। मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, वह सब इस गरुडमहापुराणको सुननेसे प्राप्त हो जाता है।

जो मनुष्य इस महापुराणका पाठ करता है, वह अपने समस्त अभीष्टको सिद्ध करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस पुराणके एक श्लोकका एक चरण भी पढ़कर मनुष्य पापरहित हो जाता है। जिस व्यक्तिके घरमें यह महापुराण रहता है, उसको इसी जन्ममें सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जिस मनुष्यके हाथमें यह गरुडमहापुराण विद्यमान है, उसके हाथमें ही नीतियोंका कोश है। जो प्राणी इस पुराणका पाठ करता है या इसको सुनता है वह भोग और मोक्ष दोनोंको प्राप्त कर लेता है।

इस महापुराणको पढ़ने एवं सुननेसे मनुष्यके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि हो जाती है। इस महापुराणका पाठ करके या इसे सुन करके पुत्रार्थी पुत्र, कामार्थी काम, विद्यार्थी विद्या, विजिगीषु विजय प्राप्त कर लेता है तथा ब्रह्महत्यादिसे युक्त पापीका पाप नष्ट हो जाता है, वन्ध्या स्त्री पुत्र, कन्या सज्जन पति, क्षेमार्थी क्षेम तथा भोग चाहनेवाला भोग प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार मङ्गलकी कामनासे प्रेरित व्यक्ति अपना मङ्गल, गुणोंका इच्छुक व्यक्ति उत्तम गुण, काव्य करनेका अभिलाषी मनुष्य कवित्वशक्ति, सारतत्त्व चाहनेवाला सार, ज्ञानार्थी ज्ञान प्राप्त करता है।

पक्षिश्रेष्ठ गरुडके द्वारा कहा गया यह गरुडमहापुराण धन्य है। यह सबका कल्याण करनेवाला है। जो मनुष्य इस महापुराणके एक भी श्लोकका पाठ करता है, उसकी अकालमृत्यु नहीं होती। इसके मात्र आधे श्लोकका पाठ करनेसे निश्चित ही दुष्ट शत्रुका क्षय होता है। नैमिषारण्यमें ऋषियोंके द्वारा आयोजित यज्ञमें सूतजी महाराजसे इस महापुराणको सुन करके स्वयं शौनक मुनिने उन्हीं गरुडध्वज भगवान् विष्णुकी कृपासे मुक्तिका लाभ प्राप्त किया था।

(अध्याय २४१)

[गरुडपुराणान्तर्गत आचारकाण्ड समाप्त]

धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

वैकुण्ठलोकका वर्णन, मरणकालमें और मरणके अनन्तर जीवके कल्याणके लिये विहित विभिन्न कर्तव्योंके बारेमें गरुडजीके द्वारा किये गये प्रश्न, प्रेतकल्पका उपक्रम

श्रीगणेशजीको नमस्कार है। 'ॐ'कारसे युक्त भगवान् वासुदेव हरिको प्रणाम है।

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

भगवान् श्रीनारायण, नरोत्तम नर एवं भगवती श्रीसरस्वती देवीको नमस्कार करके पुराणका वाचन करना चाहिये। जिन भगवान्‌का धर्म ही मूल है, वेद जिनका स्कन्ध है, पुराणरूपी शाखासे जो समृद्ध हैं, यज्ञ जिनके पुष्प हैं, मोक्ष जिनका फल है—ऐसे भगवान् मधुसूदनरूपी कल्पवृक्षकी जय हो।

देवक्षेत्र नैमिषारण्यमें शौनकादिक श्रेष्ठ मुनियोंने सुखपूर्वक विराजमान श्रीसूतजी महाराजसे कहा—

हे श्रीसूतजी! आप श्रीवेदव्यासजीकी कृपासे सब कुछ जानते हैं। अतः आप हम सभीके संदेहका निवारण करें। कुछ लोगोंका कहना है कि जिस प्रकार कोई जोंक तिनकेसे तिनकेका सहारा लेकर आगे बढ़ती है, उसी प्रकार शरीरधारी जीव एक शरीरके बाद दूसरे शरीरका आश्रय ग्रहण करता है। दूसरे विद्वानोंका कहना है कि प्राणी मृत्युके पश्चात् यमराजकी यातनाओंका भोग करता है, तदनन्तर उसको दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है—इन दोनोंमें क्या सत्य है? यह हमें बतानेकी कृपा करें।

सूतजीने कहा—हे महाभाग! आप लोगोंने अच्छा प्रश्न किया है। आप लोगोंको संदेह हो यह असम्भव है। आप लोगोंने तो लोकहितसे प्रेरित होकर ही ऐसा प्रश्न किया है। हे विप्रगणो! मैं आप सबके हृदयमें अवस्थित उस संदेहको भगवान् श्रीकृष्ण और गरुडके बीच हुए संवादके द्वारा दूर करूँगा। सर्वप्रथम मैं उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करता हूँ, जिनका आश्रय लेकर मनुष्य इस भवसागरको एक क्षुद्र नदीकी भाँति अनायास ही पार कर जाते हैं।

हे मुनियो! एक बार विनतापुत्र गरुडके हृदयमें इस ब्रह्माण्डके सभी लोकोंको देखनेकी इच्छा हुई। अतः हरिनामका उच्चारण करते हुए उन्होंने सभी लोकोंका भ्रमण किया। पाताल, पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोकका भ्रमण करते हुए वे पृथ्वीलोकके दुःखसे अत्यन्त दुःखित एवं अशान्तचित्त होकर पुनः वैकुण्ठ लोक वापस आ गये।

वैकुण्ठ लोकमें न रजोगुणकी प्रवृत्ति है, न तमोगुणकी ही प्रवृत्ति है, [मृत्युलोकके समान] रजोगुण तथा तमोगुणसे मिश्रित सत्त्वगुणकी भी प्रवृत्ति वहाँ नहीं है। वहाँ केवल शुद्ध सत्त्वगुण ही अवस्थित रहता है। वहाँ माया भी नहीं है, वहाँ किसीका विनाश नहीं होता। वहाँ राग-द्वेष आदि षड्विकार भी नहीं हैं। वहाँ देव और असुर-वर्गद्वारा पूजित श्यामवर्णकी सुन्दर कान्तिसे सुशोभित राजीवलोचन भगवान् विष्णुके पार्षद विराजमान रहते हैं, जिनके शरीर पीतवसन और मनोहारी आभूषणोंसे विभूषित हैं और मणियुक्त स्वर्णके अलङ्करणोंसे सुशोभित हैं। भगवान्‌के वे सभी पार्षद चार-चार भुजाओंसे युक्त हैं। उनके कानोंमें कुण्डल और सिरपर मुकुट है। उनका वक्षःस्थल सुन्दर पुष्पोंकी

मालासे सुशोभित हैं। मनको मोहित करनेवाली अप्सराओंसे युक्त, महात्माओंके चमकते हुए विमानोंकी पंक्तिकी कान्तिसे वे सभी सदा भास्वरित होते रहते हैं। वहाँ नाना प्रकारके वैभवोंसे समन्वित लक्ष्मी प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिके चरणोंकी पूजा करती रहती हैं।

गरुडजीने वहाँ देखा कि श्रीहरि झूलेपर विराजमान हैं। सखियोंद्वारा स्तुत्य लक्ष्मीजी झूलेमें स्थित भगवान्‌की स्तुति कर रही हैं। अपने लाल-लाल बड़े-बड़े नेत्रोंसे युक्त प्रसन्नमुख देवोंके अधिपति, श्रीपति, जगत्पति और यज्ञपति भगवान् श्रीहरि अपने नन्द, सुनन्द आदि प्रधान पार्षदोंको देख रहे थे। उनके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और वक्षःस्थल श्रीसे सुशोभित था। वे पीताम्बरसे विभूषित थे। उनकी चार भुजाएँ थीं। प्रसन्नमुद्रामें हँसता हुआ उनका मुख था। बहुमूल्य आसनपर विराजमान वे हरि उस समय अपनी अन्यान्य शक्तियोंसे आवृत थे। प्रकृति, पुरुष, महत्, अहंकार, पञ्चकर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, मन, पञ्चमहाभूत तथा पंचतन्मात्राओंसे निर्मित शरीरवाले अपने ही स्वरूपमें रमण करते हुए उन भगवान् हरिका दर्शन करनेसे विनतासुत गरुडका अन्तःकरण आनन्दविभोर हो उठा। उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगी। आनन्दमग्न होकर उन्होंने प्रभुको प्रणाम किया। प्रणाम करते हुए अपने वाहन गरुडको देखकर भगवान् विष्णुने कहा—हे पक्षिन्! आपने इतने दिनोंमें इस जगत्‌की किस भूमिका परिभ्रमण किया है?

गरुडने कहा—भगवन्! आपकी कृपासे मैंने समस्त त्रिलोकीका परिभ्रमण किया है। उनमें स्थित जगत्‌के सभी स्थावर और जङ्गम प्राणियोंको भी देखा। हे प्रभो! यमलोकको छोड़कर पृथ्वीलोकसे सत्यलोकतक सब कुछ मेरे द्वारा देखा जा चुका है। सभी लोकोंकी अपेक्षा भूर्लोक प्राणियोंसे अधिक परिपूर्ण है। सभी योनियोंमें मानवयोनि ही भोग और मोक्षका शुभ आश्रय है। अतः सुकृतियोंके लिये ऐसा लोक न तो अभीतक बना है और न भविष्यमें बनेगा। देवता लोग भी इस लोककी प्रशंसामें गीत गाते हुए कहते हैं—'जो लोग पवित्र भारतकी भूमिमें जन्म लेकर निवास करते हैं, वे धन्य हैं। देवता लोग भी स्वर्ग एवं अपवर्गरूप फलकी प्राप्तिके लिये पुनः भारतभूमिमें मनुष्यरूपमें जन्म लेते हैं'—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
(१।२७)

हे प्रभो! आप यह बतानेकी कृपा करें कि मृत्युको प्राप्त हुआ प्रेत किस कारण पृथ्वीपर डाल दिया जाता है?

उसके मुखमें पञ्चरत्न[1] क्यों डाला जाता है? मरे हुए प्राणीके नीचे लोग कुश किसलिये बिछा देते हैं? उसके दोनों पैर दक्षिण दिशाकी ओर क्यों कर दिये जाते हैं? मरनेके समय मनुष्यके आगे पुत्र-पौत्रादि क्यों खड़े रहते हैं? हे केशव! मृत्युके समय विविध वस्तुओंका दान एवं गोदान किसलिये दिया जाता है? बन्धु-बान्धव, मित्र और शत्रु आदि सभी मिलकर क्यों क्षमा-याचना करते हैं? किससे प्रेरित होकर लोग मृत्युकालमें तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, नमक, सप्तधान्य[2], भूमि और गौका दान देते हैं? प्राणी कैसे मरता है और मरनेके बाद कहाँ जाता है? उस समय वह आतिवाहिक शरीर (निराधार-रूपमें आत्माको वहन करनेवाले शरीर)-को कैसे प्राप्त करता है? अग्नि देनेवाले पुत्र और पौत्र उसे कन्धेपर क्यों ले जाते हैं? शवमें घृतका लेप क्यों किया जाता है? उस समय एक आहुति देनेकी परम्परा कहाँसे चली है? शवको भूमिस्पर्श किसलिये करवाया जाता है? स्त्रियाँ उस मरे हुए व्यक्तिके लिये क्यों विलाप करती हैं? शवके उत्तर दिशामें 'यमसूक्त'का पाठ क्यों

१-सोना, चाँदी, मोती, लाजावर्त (लाजवर्द) तथा मूँगा—ये पाँच पञ्चरत्न कहलाते हैं।
२-जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना तथा साँवा—ये सप्तधान्य कहलाते हैं।

किया जाता है? मरे हुए व्यक्तिको पीनेके लिये जल एक ही वस्त्र धारण करके क्यों दिया जाता है? उस समय सूर्य-बिम्ब-निरीक्षण, पत्थरपर स्थापित यव, सरसों, दूर्वा और नीमकी पत्तियोंका स्पर्श करनेका विधान क्यों है? उस समय स्त्री एवं पुरुष दोनों नीचे-ऊपर एक ही वस्त्र क्यों धारण करते हैं? शवका दाह-संस्कार करनेके पश्चात् उस व्यक्तिको अपने परिजनोंके साथ बैठकर भोजनादि क्यों नहीं करना चाहिये? मरे हुए व्यक्तिके पुत्र दस दिनके पूर्व किसलिये पिण्डोंका दान देते हैं? चबूतरे (वेदी)-पर पके हुए मिट्टीके पात्रमें दूध क्यों रखा जाता है? रस्सीसे बँधे हुए तीन काष्ठ (तिगोड़िया)-के ऊपर रात्रिमें गाँवके चौराहेपर एकान्तमें वर्षपर्यन्त प्रतिदिन दीपक क्यों दिया जाता है? शवका दाह-संस्कार तथा अन्य लोगोंके साथ जल-तर्पणकी क्रिया क्यों की जाती है? हे भगवन्! मृत्युके बाद प्राणी आतिवाहिक शरीरमें चला जाता है, उसके लिये नौ पिण्ड देने चाहिये, इसका क्या प्रयोजन है? किस विधानसे पितरोंको पिण्ड प्रदान करना चाहिये और उस पिण्डको स्वीकार करनेके लिये उनका आवाहन कैसे किया जाय?

हे देव! यदि ये सभी कार्य मरनेके तुरंत बाद सम्पन्न हो जाते हैं तो फिर बादमें पिण्डदान क्यों किया जाता है? पूर्व किये गये पिण्डदानके बाद पुनः पिण्डदान या अन्य क्रियाओंको करनेकी क्या आवश्यकता है? दाह-संस्कारके बाद अस्थि-संचयन और घट फोड़नेका विधान क्यों है? दूसरे दिन और चौथे दिन साग्निक द्विजके स्नानका विधान क्यों है? दसवें दिन सभी परिजनोंके साथ शुद्धिके लिये स्नान क्यों किया जाता है? दसवें दिन तेल एवं उबटनका प्रयोग क्यों किया जाता है। उस तेल और उबटनका प्रयोग भी एक विशाल जलाशयके तटपर होना अपेक्षित है, इसका क्या कारण है? दसवें दिन पिण्डदान क्यों करना चाहिये? एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग आदिके सहित पिण्डदान करनेका क्या प्रयोजन है? पात्र, पादुका, छत्र, वस्त्र तथा अंगूठी आदि वस्तुओंका दान क्यों दिया जाता है? तेरहवें दिन पददान क्यों दिया जाता है। वर्षपर्यन्त सोलह श्राद्ध क्यों किये जाते हैं तथा तीन सौ साठ सान्नोदक घट क्यों दिये जाते हैं। प्रेततृप्तिके लिये प्रतिदिन अन्नसे भरे हुए एक घटका दान क्यों करना चाहिये।

हे प्रभो! मनुष्य अनित्य है और समय आनेपर ही वह मरता है, किंतु मैं उस छिद्रको नहीं देख पाता हूँ, जिससे जीव निकल जाता है? प्राणीके शरीरमें स्थित किस छिद्रसे पृथ्वी, जल, मन, तेज, वायु और आकाश निकल जाते हैं? हे जनार्दन! इसी शरीरमें स्थित जो पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच वायु हैं, वे कहाँसे निकल जाते हैं। लोभ, मोह, तृष्णा, काम और अहंकाररूपी जो पाँच चोर शरीरमें छिपे रहते हैं, वे कहाँसे निकल जाते हैं।

हे माधव! प्राणी अपने जीवनकालमें पुण्य अथवा पाप जो कुछ भी कर्म करता है, नाना प्रकारके दान देता है, वे सब शरीरके नष्ट हो जानेपर उसके साथ कैसे चले जाते हैं। वर्षके समाप्त हो जानेपर भी मरे हुए प्राणीके लिये सपिण्डीकरण क्यों होता है? उस प्रेतकृत्यमें (सपिण्डन) प्रेतपिण्डका मिलन किसके साथ किस विधिसे होना चाहिये, इसे आप बतानेकी कृपा करें।

हे हरे! मूर्च्छासे अथवा पतनसे जिनकी मृत्यु होती है, उनके लिये क्या होना चाहिये। जो पतित मनुष्य जलाये गये अथवा नहीं जलाये गये तथा इस पृथ्वीपर जो अन्य प्राणी हैं, उनके मरनेपर अन्तमें क्या होना चाहिये। जो मनुष्य पापी, दुराचारी अथवा हतबुद्धि हैं, मरनेके बाद वे किस स्थितिको प्राप्त करते हैं? जो पुरुष आत्मघाती, ब्रह्महत्यारा, स्वर्णादिकी चोरी करनेवाला, मित्रादिके साथ विश्वासघात करनेवाला है, उस महापातकीका क्या होता है? हे माधव! जो शूद्र कपिला गौका दूध पीता है अथवा प्रणव महामन्त्रका जप करता है या ब्रह्मसूत्र अर्थात् यज्ञोपवीतको धारण करता है तो मृत्युके बाद उसकी क्या गति होती है? हे संसारके स्वामी! जब कोई शूद्र किसी ब्राह्मणीको पत्नी बना लेता है तो उस पापीसे मैं भी डरता हूँ। आप बतायें कि उस पापीकी क्या दशा होती है? साथ ही उस पापकर्मके फलको बतानेकी भी कृपा करें।

हे विश्वात्मन्! आप मेरी दूसरी बातपर भी ध्यान दें। मैं कौतूहलवश वेगपूर्वक लोकोंको देखता हुआ सम्पूर्ण जगत्में जा चुका हूँ, उसमें रहनेवाले लोगोंको मैंने देखा

है कि वे सभी दु:खमें ही डूब रहे हैं। उनके अत्यन्त कष्टोंको देखकर मेरा अन्त:करण पीड़ासे भर गया है। स्वर्गमें दैत्योंकी शत्रुतासे भय है। पृथ्वीलोकमें मृत्यु और रोगादिसे तथा अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे लोग दु:खित हैं। पातालललोकमें रहनेवाले प्राणियोंको मेरे भयसे दु:ख बना रहता है[1]। हे ईश्वर! आपके इस वैष्णव पद (वैकुण्ठ)-के अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी लोकमें ऐसी निर्भयता नहीं दिखायी देती। कालके वशीभूत इस जगत्‌की स्थिति स्वप्नकी मायाके समान असत्य है। उसमें भी इस भारतवर्षमें रहनेवाले लोग बहुत-से दु:खोंको भोग रहे हैं। मैंने वहाँ देखा है कि उस देशके मनुष्य राग-द्वेष तथा मोह आदिमें आकण्ठ डूबे हुए हैं। उस देशमें कुछ लोग अन्धे हैं, कुछ टेढ़ी दृष्टिवाले हैं, कुछ दुष्ट वाणीवाले हैं, कुछ लूले हैं, कुछ लँगड़े हैं, कुछ काने हैं, कुछ बहरे हैं, कुछ गूँगे हैं, कुछ कोढ़ी हैं, कुछ लोमश (अधिक रोमवाले) हैं, कुछ नाना रोगसे घिरे हैं और कुछ आकाश-कुसुमकी तरह नितान्त मिथ्या अभिमानसे चूर हैं। उनके विचित्र दोषोंको देखकर तथा उनकी मृत्युको देखकर मेरे मनमें जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी है कि यह मृत्यु क्या है? इस भारतवर्षमें यह कैसी विचित्रता है? ऋषियोंसे मैंने पहले ही इस विषयमें सामान्यत: यह सुन रखा है कि जिसकी विधिपूर्वक वार्षिक क्रियाएँ नहीं होती हैं, उसकी दुर्गति होती है। फिर भी हे प्रभो! इसकी विशेष जानकारीके लिये मैं आपसे पूछ रहा हूँ।

हे उपेन्द्र! मनुष्यकी मृत्युके समय उसके कल्याणके लिये क्या करना चाहिये? कैसा दान देना चाहिये। मृत्यु और श्मशान-भूमितक पहुँचनेके बीच कौन-सी विधि अपेक्षित है। चितामें शवको जलानेकी क्या विधि है? तत्काल अथवा विलम्बसे उस जीवको कैसे दूसरी देह प्राप्त होती है, यमलोक (संयमनी नगरी)-को जानेवालेके लिये वर्षपर्यन्त कौन-सी क्रियाएँ करनी चाहिये। दुर्बुद्धि अर्थात् दुराचारी व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उसका प्रायश्चित्त क्या है? पञ्चक आदिमें मृत्यु होनेपर पञ्चकशान्तिके लिये क्या करना चाहिये। हे देव! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों। आप मेरे इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट करनेमें समर्थ हैं। मैंने आपसे यह सब लोकमङ्गलकी कामनासे पूछा है, मुझे बतानेकी कृपा करें। (अध्याय १)

मरणासन्न व्यक्तिके कल्याणके लिये किये जानेवाले कर्म, मृत्युसे पूर्वकी स्थिति तथा कर्मविपाकका वर्णन

श्रीकृष्णने कहा—हे भद्र! आपने मनुष्योंके हितमें बहुत ही अच्छी बात पूछी है। सावधान होकर इस समस्त और्ध्वदैहिक क्रियाको भलीभाँति सुनें।

हे गरुड! जो सम्यक् रूपसे भेदरहित है, जिसका वर्णन श्रुतियों और स्मृतियोंमें हुआ है, जिसको इन्द्रादि देवता, योगीजन और योगमार्गका चिन्तन करनेवाले विद्वान् नहीं देख सके हैं, जो गुह्यातिगुह्य है, ऐसे उस प्रधान तत्त्वको जिसे मैंने अभीतक किसी अन्यसे नहीं कहा है, तुम मेरे भक्त हो, इसलिये मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

हे वैनतेय! इस संसारमें पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं है, उसको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता है। अत: शास्त्रानुसार यथायोग्य उपायसे पुत्र उत्पन्न करना ही चाहिये। यदि मनुष्यको मोक्ष नहीं मिलता है तो पुत्र नरकसे उसका उद्धार कर देता है। पुत्र और पौत्रको मरे हुए प्राणीको कन्धा देना चाहिये तथा उसका यथाविधान अग्निदाह करना चाहिये। शवके नीचे पृथ्वीपर तिलके सहित कुश बिछानेसे शवकी आधारभूत भूमि उस ऋतुमती नारीके समान हो जाती है, जो प्रसवकी योग्यता रखती है। मृतकके मुखमें पञ्चरत्न डालना बीजवपनके समान है, जिससे आगे जीवकी शुभगतिका निश्चय होता है। जैसे पुष्प (ऋतुकालमें स्त्रियोंका रजोदर्शन) न होनेपर गर्भधारण सम्भव नहीं है, वैसे ही शवभूमि भी तिल-कुश आदिके बिना जीवकी शुभ योनिमें कारण नहीं बन पाती। इसीलिये श्रद्धापूर्वक तिल, कुश, पञ्चरत्न आदिका यथाविधान विनियोग आवश्यक है।

१-पातालललोकमें नागोंको गरुडका भय रहता है।

गोबरसे भूमिको सबसे पहले लीपना चाहिये, तदनन्तर उसके ऊपर तिल और कुश बिछाना चाहिये। उसके बाद आतुर व्यक्तिको भूमिपर कुशासनके ऊपर सुला देना चाहिये। ऐसा करनेसे वह प्राणी अपने समस्त पापोंको जला कर पापमुक्त हो जाता है। शवके नीचे बिछाये गये कुशसमूह निश्चित ही मृत्युग्रस्त प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। जहाँ पृथ्वीपर मल-मूत्रादिका लेप (सम्बन्ध) नहीं है वहाँ वह सदा पवित्र है और जहाँ (मल-मूत्रादिका) लेप (सम्बन्ध) है, वहाँ (मल-मूत्रादिका अपसारण करके) गोमयसे लेप करनेपर वह शुद्ध होती है। गोबरसे बिना लिपी हुई भूमिपर सुलाये गये मरणासन्न व्यक्तिमें यक्ष, पिशाच एवं राक्षस-कोटिके क्रूरकर्मी दुष्ट लोग प्रविष्ट हो जाते हैं। मरणासन्नकी मुक्तिके लिये उसे जलसे बनाये गये मण्डलवाली भूमिपर ही सुलाना चाहिये, क्योंकि नित्य-होम, श्राद्ध, पादप्रक्षालन, ब्राह्मणोंकी अर्चा एवं भूमिका मण्डलीकरण मुक्तिके हेतु माने गये हैं। बिना लिपी-पुती मण्डलहीन भूमिपर मरणासन्न व्यक्तिको नहीं सुलाना चाहिये। भूमिपर बनाये गये ऐसे मण्डलमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी तथा अग्नि आदि देवता विराजमान हो जाते हैं, अतः मण्डलका निर्माण अवश्य करना चाहिये। मण्डलविहीन भूमिपर प्राण-त्याग करनेपर वह चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो और चाहे जवान हो, उसको अन्य योनि नहीं प्राप्त होती है। हे तार्क्ष्य! उसकी जीवात्मा वायुके साथ भटकती रहती है। उस प्रकारकी वायुभूत जीवात्माके लिये न तो श्राद्धका विधान है और न तो जलतर्पणकी क्रिया ही बतायी गयी है।

हे गरुड! तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हुए हैं। अतः तिल बहुत ही पवित्र हैं। तिलका प्रयोग करनेपर असुर, दानव और दैत्य भाग जाते हैं। तिल श्वेत, कृष्ण और गोमूत्रवर्णके समान होते हैं। 'वे मेरे शरीरके द्वारा किये गये समस्त पापोंको नष्ट करें।' ऐसी भावना करनी चाहिये। एक ही तिलका दान स्वर्णके बत्तीस सेर तिलके दानके समान है। तर्पण, दान एवं होममें दिया गया तिलका दान अक्षय होता है। कुश मेरे शरीरके रोमोंसे उत्पन्न हुए हैं और तिलकी उत्पत्ति मेरे पसीनेसे हुई है। इसीलिये देवताओंकी तृप्तिके लिये मुख्यरूपसे कुशकी और पितरोंकी तृप्तिके लिये तिलकी आवश्यकता होती है। देवताओं और पितरोंकी तृप्ति विश्वके लिये उपजीव्य (रक्षक) होनेके कारण विश्वकी तृप्तिमें हेतु है। अतः अपसव्य आदि श्राद्धकी जो विधियाँ बतायी गयी हैं, उन्हीं विधियोंके अनुसार मनुष्यको ब्रह्मा, देवदेवेश्वर तथा पितृजनोंको संतृप्त करना चाहिये। अपसव्य आदि होकर [तिलका उपयोग करनेसे] ब्रह्मा, पितर और देवेश्वर तृप्त होते हैं। अपसव्य होकर कर्म करनेसे पितरोंकी संतृप्ति होती है[2]।

कुशके मूलभागमें ब्रह्मा, मध्यभागमें विष्णु तथा अग्रभागमें शिवको जानना चाहिये; ये तीनों देव कुशमें प्रतिष्ठित माने गये हैं। हे पक्षिराज! ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी—ये बार-बार समर्पित होनेपर भी पर्युषित नहीं माने जाते, कभी निर्माल्य अर्थात् बासी नहीं होते। इनका पूजामें बारम्बार प्रयोग किया जा सकता है। हे खगेन्द्र! तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु तथा एकादशीव्रत—ये पाँचों संसारसागरमें डूबते हुए लोगोंको नौकाके समान पार कराते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! विष्णु, एकादशीव्रत, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गौ—ये छः इस असार-संसारमें लोगोंको मुक्ति प्रदान करनेके साधन हैं, यह षट्पदी कहलाती है—

> दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा मध्ये देवो जनार्दनः॥
> दर्भाग्रे शंकरं विद्यात् त्रयो देवाः कुशे स्मृताः।
> विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर॥

१-यहाँ मण्डलका तात्पर्य है—जलसे प्रोक्षणके बाद जलसे गोलाकार रेखा बना देना और चौक आदि पूरना।

२-मम स्वेदसमुद्भूतास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रकाः। असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैस्तथा॥
तिलाः श्वेतास्तिला कृष्णास्तिला गोमूत्रसंनिभाः। दहन्तु ते मे पापानि शरीरेण कृतानि वै॥
एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणतिलैः समः। तर्पणे दानहोमेषु दत्तो भवति चाक्षयः॥
दर्भा रोमसमुद्भूतास्तिलाः स्वेदेषु नान्यथा। देवता दानवास्तृप्ताः श्राद्धेन पितरस्तथा॥
प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं चाप्युपजीवनात्। अपसव्यादितो ब्रह्मा पितरो देवदेवताः॥
तेन ते पितरस्तृप्ता अपसव्ये कृते सति। (२।१६—२१)

नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः।
तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग॥
पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां नृणाम्।
विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः॥
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी।

(२।२१—२५)

जैसे तिलकी पवित्रता अतुलनीय होती है, उसी प्रकार कुश और तुलसी भी अत्यन्त पवित्र होते हैं। ये तीनों पदार्थ मरणासन्न व्यक्तिको दुर्गतिसे उबार लेते हैं[1]। दोनों हाथोंसे कुश उखाड़ना चाहिये और उसे पृथ्वीपर रखकर जलसे प्रोक्षित करना चाहिये तथा मृत्युकालमें मरणासन्नके दोनों हाथोंमें रखना चाहिये। जिसके हाथोंमें कुशाएँ हैं और जो कुशसे परिवेष्टित कर दिया जाता है, वह मन्त्रहीन होनेपर (उसकी समन्त्रक क्रियाएँ न हो पायी हों, तब) भी विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस असार संसारसागरमें भूमिको गोबरसे लीपकर उसपर मृत मनुष्यको सुलानेसे और कुशासनपर स्थित करनेसे तथा विशुद्ध अग्निमें दाह करनेसे उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है।

लवण और उसका रस दिव्य (उत्तम लोकका प्रापक) है, वह प्राणियोंकी समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाला है। लवणके बिना अन्न-रस उत्कट अर्थात् न अभिव्यक्त होते हैं और न सुस्वादु होते हैं। इसीलिये लवण-रस पितरोंको प्रिय होता है और स्वर्गको प्रदान करनेवाला है। यह लवण-रस भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इस बातको जाननेवाले योगीजन, लवणके साथ दान करनेको कहते हैं। इस पृथ्वीपर यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री तथा शूद्र वर्णके आतुर व्यक्तिके प्राण न निकलते हों तो उसके लिये स्वर्गका द्वार खोलनेके लिये लवणका दान देना चाहिये।

हे पक्षीन्द्र! अब मृत्युके स्वरूपको विस्तारपूर्वक सुनें। मृत्यु ही काल है, उसका समय आ जानेपर जीवात्मासे प्राण और देहका वियोग हो जाता है। मृत्यु अपने समयपर आती है। मृत्युकष्टके प्रभावसे प्राणी अपने किये कर्मोंको एकदम भूल जाता है। हे गरुड! जिस प्रकार वायु मेघमण्डलोंको इधर-उधर खींचता है, उसी प्रकार प्राणी कालके वशमें रहता है। सात्त्विक, राजस और तामस—ये सभी भाव कालके वशमें हैं। प्राणियोंमें वे कालके अनुसार अपने-अपने प्रभावका विस्तार करते हैं। हे सर्पहन्ता गरुड! सूर्य, चन्द्र, शिव, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्र, औषधि, आठों वसु, नदी, सागर और भाव-अभाव—ये सभी कालके अनुसार यथासमय उद्भूत होते हैं, बढ़ते हैं, घटते हैं और मृत्युके उपस्थित होनेपर कालके प्रभावसे विनष्ट हो जाते हैं।

हे पक्षिन्! जब मृत्यु आ जाती है तो उसके कुछ समय पूर्व दैवयोगसे कोई रोग प्राणीके शरीरमें उत्पन्न हो जाता है। इन्द्रियाँ विकल हो जाती हैं और बल, ओज तथा वेग शिथिल हो जाता है। हे खग! प्राणियोंको करोड़ों बिच्छुओंके एक साथ काटनेका जो अनुभव होता है, उससे मृत्युजनित पीड़ाका अनुमान करना चाहिये। उसके बाद ही चेतनता समाप्त हो जाती है, जड़ता आ जाती है। तदनन्तर यमदूत उसके समीप आकर खड़े हो जाते हैं और उसके प्राणोंको बलात् अपनी ओर खींचना शुरू कर देते हैं। उस समय प्राण कण्ठमें आ जाते हैं। मृत्युके पूर्व मृतकका रूप बीभत्स हो उठता है। वह फेन उगलने लगता है। उसका मुँह लारसे भर जाता है। उसके बाद शरीरके भीतर विद्यमान रहनेवाला वह अङ्गुष्ठ-परिमाणका पुरुष हाहाकार करता हुआ तथा अपने घरको देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा यमलोक ले जाया जाता है।

मृत्युके समय शरीरमें प्रवाहित वायु प्रकुपित होकर तीव्र गतिको प्राप्त करता है और उसीकी शक्तिसे अग्नितत्त्व भी प्रकुपित हो उठता है। बिना ईंधनके प्रदीप्त ऊष्मा प्राणीके मर्मस्थानोंका भेदन करने लगती है, जिसके कारण प्राणीको अत्यन्त कष्टकी अनुभूति होती है। परंतु भक्तजनों एवं भोगमें अनासक्त जनोंकी अधोगतिका निरोध करनेवाला उदान नामक वायु ऊर्ध्वगतिवाला हो जाता है।

जो लोग झूठ नहीं बोलते, जो प्रीतिका भेदन नहीं करते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, उन्हें सुखपूर्वक मृत्यु प्राप्त होती है। जो काम, ईर्ष्या और द्वेषके कारण स्वधर्मका

१-तिलाः पवित्रमतुलं दर्भाश्चापि तुलस्यथ॥
निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं यान्तमातुरम्॥ (२।२५-२६)

परित्याग न करे, सदाचारी और सौम्य हो, वे सब निश्चित ही सुखपूर्वक मरते हैं।

जो लोग मोह और अज्ञानका उपदेश देते हैं, वे मृत्युके समय महान्धकारमें फँस जाते हैं। जो झूठी गवाही देनेवाले, असत्यभाषी, विश्वासघाती और वेदनिन्दक हैं, वे मूर्च्छारूपी मृत्युको प्राप्त करते हैं। उनको ले जानेके लिये लाठी एवं मुद्गरसे युक्त दुर्गन्धसे भरपूर एवं भयभीत करनेवाले दुरात्मा यमदूत आते हैं। ऐसी भयंकर परिस्थिति

देखकर प्राणीके शरीरमें भयवश कम्पन होने लगता है। उस समय वह अपनी रक्षाके लिये अनवरत माता-पिता और पुत्रको यादकर करुण-क्रन्दन करता है। उस क्षण प्रयास करनेपर भी ऐसे जीवके कण्ठसे एक शब्द भी स्पष्ट नहीं निकलता। भयवश प्राणीकी आँखें नाचने लगती हैं। उसकी साँस बढ़ जाती है और मुँह सूखने लगता है। उसके बाद वेदनासे आविष्ट होकर वह अपने शरीरका परित्याग करता है और उसके बाद ही वह सबके लिये अस्पृश्य एवं घृणायोग्य हो जाता है।

हे गरुड! इस प्रकार मैंने यथाप्रसंग मृत्युका स्वरूप सुना दिया। अब आपके उस दूसरे प्रश्नका उत्तर जो बड़ा ही विचित्र है, उसे सुना रहा हूँ। हे पक्षिराज! पूर्वजन्ममें किये गये भाँति-भाँतिके भोगोंको भोगता हुआ प्राणी यहाँ भ्रमण करता रहता है। देव, असुर और यक्ष आदि योनियाँ भी प्राणीके लिये सुखप्रदायिनी हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियाँ अत्यन्त दुःखदायिनी हैं। हे खगेश्वर! प्राणीको कर्मका फल तारतम्यसे इन योनियोंमें प्राप्त होता है। अब मैं इसी प्रसंगमें आपसे कर्मविपाकका वर्णन भी करूँगा।

हे गरुड! प्राणी अपने सत्कर्म एवं दुष्कर्मके फलोंकी विविधताका अनुभव करनेके लिये इस संसारमें जन्म लेता है। जो महापातकी ब्रह्महत्यादि महापातकजन्य अत्यन्त कष्टकारी रौरवादि नरकलोकोंका भोग भोगकर कर्मक्षयके बाद पुनः इस पृथ्वीपर जिन लक्षणोंसे युक्त होकर जन्म लेते हैं, उन लक्षणोंको आप मुझसे सुनें।

हे खगेन्द्र! ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले महापातकीको मृग, अश्व, सूकर और ऊँटकी योनि प्राप्त होती है। स्वर्णकी चोरी करनेवाला कृमि, कीट और पतंग-योनिमें जाता है, गुरुपत्नीके साथ सहवास करनेवालेका जन्म क्रमशः—तृण, लता और गुल्म-योनिमें होता है। ब्रह्मघाती क्षयरोगका रोगी, मद्यपी विकृतदन्त, स्वर्णचोर कुनखी और गुरुपत्नीगामी चर्मरोगी होता है। जो मनुष्य जिस प्रकारके महापातकियोंका साथ करता है, उसे भी उसी प्रकारका रोग होता है। प्राणी एक वर्षपर्यन्त पतित व्यक्तिका साथ करनेसे स्वयं पतित हो जाता है। परस्पर वार्तालाप करने तथा स्पर्श, निःश्वास, सहयान, सहभोज, सहआसन, याजन, अध्यापन तथा योनि-सम्बन्धसे मनुष्योंके शरीरमें पाप संक्रमित हो जाते हैं[1]। दूसरेकी स्त्रीके साथ सहवास करने और ब्राह्मणका धन चुरानेसे मनुष्यको दूसरे जन्ममें अरण्य तथा निर्जन देशमें रहनेवाले ब्रह्मराक्षसकी योनि प्राप्त होती है। रत्नकी चोरी करनेवाला निकृष्ट योनिमें जन्म लेता है। जो मनुष्य वृक्षके पत्तोंकी और गन्धकी चोरी करता है, उसे छछूंदरकी योनिमें जाना पड़ता है। धान्यकी चोरी करनेवाला चूहा, यान चुरानेवाला ऊँट तथा फलकी चोरी करनेवाला बंदरकी योनिमें जाता है। बिना मन्त्रोच्चारके भोजन करनेपर कौआ, घरका सामान चुरानेवाला गिद्ध, मधुकी चोरी करनेपर मधुमक्खी, फलकी चोरी करनेपर गिद्ध, गायकी चोरी करनेपर गोह और अग्निकी चोरी करनेपर बगुलेकी योनि प्राप्त होती है। स्त्रियोंका वस्त्र चुरानेपर श्वेत कुष्ठ और रसका अपहरण करनेपर भोजन आदिमें अरुचि हो जाती

१-संलापस्पर्शनिःश्वाससहयानाशनासनात्। याजनाध्यापनाद्यौनात् पापं संक्रमते नृणाम्॥ (२।६५)

किये हुए अशुभ कर्मोंका फल

है। काँसेकी चोरी करनेवाला हंस, दूसरेके धनका हरण करनेवाला अपस्मार रोगसे ग्रस्त होता है तथा गुरुहन्ता क्रूरकर्मा बौना और धर्मपत्नीका परित्याग करनेवाला शब्दवेधी होता है। देवता और ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाला, दूसरेका मांस खानेवाला पाण्डुरोगी होता है। भक्ष्य और अभक्ष्यका विचार न रखनेवाला अगले जन्ममें गण्डमाला नामक महारोगसे पीड़ित होता है। जो दूसरेकी धरोहरका अपहरण करता है, वह काना होता है। जो स्त्रीके बलपर इस संसारमें जीवन-यापन करता है, वह दूसरे जन्ममें लँगड़ा होता है। जो मनुष्य पतिपरायणा अपनी पत्नीका परित्याग करता है, वह दूसरे जन्ममें दुर्भाग्यशाली होता है। अकेला मिष्टान्न खानेवाला वातगुल्मका रोगी होता है। कोई व्यक्ति यदि किसी ब्राह्मणपत्नीके साथ सहवास करे तो शृगाल, शय्याका हरण करनेवाला दरिद्र, वस्त्रका हरण करनेवाला पतंग होता है। मात्सर्य-दोषसे युक्त होनेपर प्राणी जन्मान्ध, दीपक चुरानेवाला कपाली होता है। मित्रकी हत्या करनेवाला उल्लू होता है। पिता आदि श्रेष्ठ जनोंकी निन्दा करनेसे प्राणी क्षयका रोगी होता है। असत्यवादी हकला कर बोलनेवाला और झूठी गवाही देनेवाला जलोदर-रोगसे पीड़ित रहता है।

विवाहमें विघ्न पैदा करनेवाला पापी मच्छरकी योनिमें जाता है। यदि कदाचित् उसे पुनः मनुष्यकी योनि प्राप्त भी होती है तो उसका ओठ कटा होता है। जो मनुष्य चतुष्पथपर मल-मूत्रका परित्याग करता है, वह वृषल (अपशूद्र) होता है। कन्याको दूषित करनेवाले प्राणीको मूत्रकृच्छ्र और नपुंसकताका विकार होता है। जो वेद बेचनेका अधर्म करता है, वह व्याघ्र होता है। अयाज्यका यज्ञ करानेवालेको सुअरकी योनि प्राप्त होती है। अभक्ष्य-भक्षण करनेवाला व्यक्ति बिलौटा और वनोंको जलानेवाला खद्योत (जुगनू) होता है। बासी एवं निषिद्ध भोजन करनेवालेको कृमि तथा मात्सर्य-दोषसे युक्त प्राणीको भ्रमरकी योनि मिलती है। घर आदिमें आग लगानेवाला कोढ़ी और अदत्तका आदान करनेसे मनुष्य बैल होता है। गायोंकी चोरी करनेपर सर्प तथा अन्नकी चोरी करनेपर प्राणीको अजीर्ण रोग होता है। जलकी चोरी करनेपर मछली, दूधकी चोरी करनेसे बलाकिका और ब्राह्मणको दानमें बासी भोजन देनेसे कुबड़ेकी योनि प्राप्त होती है। हे पक्षिन्! जो मनुष्य फल चुराता है, उसकी संतति मर जाती है। बिना किसीको दिये अकेले भोजन करनेवाला व्यक्ति दूसरे जन्ममें संतानहीन होता है। संन्यासाश्रमका परित्याग करनेवाला (आरूढ़पतित) पिशाच होता है। जलकी चोरी करनेसे चातक और पुस्तककी चोरी करनेसे प्राणी जन्मान्ध होता है। ब्राह्मणोंको देनेकी प्रतिज्ञा करके जो नहीं देते हैं, उन्हें सियारकी योनि प्राप्त होती है। झूठी निन्दा करनेवाले लोगोंको कछुएकी योनिमें जाना पड़ता है। फल बेचनेवाला दूसरे जन्ममें भाग्यहीन होता है। जो ब्राह्मण शूद्रकन्यासे विवाह कर लेता है, वह भेड़ियेकी योनि प्राप्त करता है। अग्निको पैरसे स्पर्श करनेपर प्राणी बिलौटा और जीवोंका मांस खानेपर रोगी होता है। जो मनुष्य जलके स्रोतको विनष्ट करते हैं, वे मछली होते हैं। जो लोग भगवान् हरिकी कथा और साधुजनोंकी प्रशस्ति नहीं सुनते, उन मनुष्योंको कर्णमूल रोग होता है। जो व्यक्ति परायेके मुँहमें स्थित अन्नका अपहरण करता है, वह मन्दबुद्धि होता है।

जो देवपूजनमें प्रयुक्त होनेवाले पात्रादिक उपकरणोंका अपहारक है, उसे गण्डमाला-रोग होता है। दम्भके वशीभूत होकर जो प्राणी धर्माचरण करता है, उसको गजचर्मका रोग होता है। विश्वासघाती मनुष्यके शरीरमें शिरोऽर्ति-रोग होता है। शिवके धन और निर्माल्यका सेवन करनेवाला व्यक्ति शिश्नपीड़ासे ग्रसित रहता है। स्त्रियाँ पापकी भागिनी होती हैं और उन्हें इन्हीं जन्तुओंकी भार्या होना पड़ता है। उक्त कर्मोंके कुफलसे प्राप्त नरकका भोग करनेके बाद मनुष्य इन्हीं सब योनियोंमें प्रविष्ट होता है, ऐसा निश्चय समझना चाहिये।

हे खगपते! जिस प्रकार इस संसारमें नाना भाँतिके द्रव्य विद्यमान हैं, उसी प्रकार प्राणियोंकी विभिन्न जातियाँ भी हैं। वे सभी अपने-अपने विभिन्न कर्मोंके प्रतिफल-रूपमें सुख-दुःख एवं नाना योनियोंका भोग करते हैं। तात्पर्य यही है कि प्राणीको शुभ कर्म करनेसे शुभ फलकी प्राप्ति और अशुभ कर्म करनेसे अशुभ फलकी प्राप्ति होती है।

(अध्याय २)

१-यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तुको देना नहीं चाहे तब भी उसको उससे ले लेनेवाला अदत्तादान कहा जाता है।

नरकोंका स्वरूप, नरकोंमें प्राप्त होनेवाली विविध यातनाएँ तथा नरकमें गिरानेवाले कर्म एवं जीवकी शुभाशुभ गति

श्रीसूतजीने कहा—पूछे गये अपने प्रश्नोंका सम्यक् उत्तर सुनकर पक्षिराज गरुड अतिशय आह्लादित हो भगवान् विष्णुसे नरकोंके स्वरूपको जाननेकी इच्छा प्रकट की।

गरुडने कहा—हे उपेन्द्र! आप मुझे उन नरकोंका स्वरूप और भेद बतायें, जिनमें जाकर पापीजन अत्यधिक दुःख भोगते हैं।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे अरुणके छोटे भाई गरुड! नरक तो हजारोंकी संख्यामें हैं। सभीको विस्तृत रूपमें बताना सम्भव नहीं है। अतः मैं मुख्य-मुख्य नरकोंको बता रहा हूँ।

हे पक्षिराज! तुम मुझसे यह जान लो कि 'रौरव' नामक नरक अन्य सभीकी अपेक्षा प्रधान है। झूठी गवाही देनेवाला और झूठ बोलनेवाला व्यक्ति रौरव नरकमें जाता है। इसका विस्तार दो हजार योजन है। जाँघभरकी गहराईमें वहाँ दुस्तर गड्ढा है। दहकते हुए अंगारोंसे भरा हुआ वह

गड्ढा पृथ्वीके समान बराबर (समतल भूमि-जैसा) दीखता है। तीव्र अग्निसे वहाँकी भूमि भी तप्ताङ्गार-जैसी है। उसमें यमके दूत पापियोंको डाल देते हैं। उस जलती हुई अग्निसे संतप्त होकर पापी उसीमें इधर-उधर भागता है। उसके पैरमें छाले पड़ जाते हैं, जो फूटकर बहने लगते हैं। रात-दिन वह पापी वहाँ पैर उठा-उठाकर चलता है। इस प्रकार वह जब हजार योजन उस नरकका विस्तार पार कर लेता है, तब उसे पापकी शुद्धिके लिये उसी प्रकारके दूसरे नरकमें भेजा जाता है।

हे पक्षिन्! इस प्रकार मैंने तुम्हें रौरव नामक प्रथम नरककी बात बता दी। अब तुम 'महारौरव' नामक नरककी बात सुनो। यह नरक पाँच हजार योजनमें फैला हुआ है। वहाँकी भूमि ताँबेके समान वर्णवाली है। उसके नीचे अग्नि जलती रहती है। वह भूमि विद्युत्-प्रभाके समान कान्तिमान् है। देखनेमें वह पापीजनोंको महाभयंकर प्रतीत होती है। यमदूत पापी व्यक्तिके हाथ-पैर बाँधकर उसे उसीमें लुढ़का देते हैं और वह लुढ़कता हुआ उसमें चलता है। मार्गमें कौआ,

बगुला, भेड़िया, उलूक, मच्छर और बिच्छू आदि जीव-जन्तु क्रोधातुर होकर उसे खानेके लिये तत्पर रहते हैं। वह उस जलती हुई भूमि एवं भयंकर जीव-जन्तुओंके आक्रमणसे इतना संतप्त हो जाता है कि उसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो जाती है। वह घबड़ाकर चिल्लाने लगता है तथा बार-बार उस कष्टसे बेचैन हो उठता है। उसको वहाँ कहींपर भी शान्ति नहीं प्राप्त होती है। इस प्रकार उस नरकलोकके कष्टको भोगते हुए पापीके जब हजारों वर्ष बीत जाते हैं, तब कहीं जाकर मुक्ति प्राप्त होती है।

इसके बाद जो नरक है उसका नाम 'अतिशीत' है। वह स्वभावतः अत्यन्त शीतल है। महारौरव नरकके समान ही उसका भी विस्तार बहुत लंबा है। वह गहन अन्धकारसे व्याप्त रहता है। असह्य कष्ट देनेवाले यमदूतोंके द्वारा पापीजन लाकर वहाँ बाँध दिये जाते हैं। अतः वे एक दूसरेका आलिंगन करके वहाँकी भयंकर ठंडकसे बचनेका

प्रयास करते हैं। उनके दाँतोंमें कटकटाहट होने लगती है। हे पक्षिराज! उनका शरीर वहाँकी उस ठंडकसे काँपने लगता है। वहाँ भूख-प्यास बहुत अधिक लगती है। इसके अतिरिक्त भी अनेक कष्टोंका सामना उन्हें वहाँ करना पड़ता है। वहाँ हिमखण्डका वहन करनेवाली वायु चलती है, जो शरीरकी हड्डियोंको तोड़ देती है। वहाँके

प्राणी भूखसे त्रस्त होकर मज्जा, रक्त और गल रही हड्डियोंको खाते हैं। परस्पर भेंट होनेपर वे सभी पापी एक-दूसरेका आलिंगन कर भ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार उस तमसावृत्त नरकमें मनुष्यको बहुत-से कष्ट झेलने पड़ते हैं।

हे पक्षिश्रेष्ठ! जो व्यक्ति अन्यान्य असंख्य पाप करता है, वह इस नरकके अतिरिक्त 'निकृन्तन' नामसे प्रसिद्ध

दूसरे नरकमें जाता है। हे खगेन्द्र! वहाँ अनवरत कुम्भकारके चक्रके समान चक्र चलते रहते हैं, जिनके ऊपर पापीजनोंको खड़ा करके यमके अनुचरोंके द्वारा अँगुलिमें स्थित कालसूत्रसे उनके शरीरको पैरसे लेकर शिरोभागतक छेदा जाता है। फिर भी उनका प्राणान्त नहीं होता। इसमें शरीरके सैकड़ों भाग टूट-टूट कर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और पुनः इकट्ठे हो जाते हैं। इस प्रकार यमदूत पापकर्मियोंको वहाँ हजारों वर्षतक चक्कर लगवाते रहते हैं। जब सभी पापोंका विनाश हो जाता है, तब कहीं जाकर उन्हें उस नरकसे मुक्ति प्राप्त होती है।

'अप्रतिष्ठ' नामका एक अन्य नरक है। वहाँ जानेवाले प्राणी असह्य दुःखका भोग भोगते हैं। वहाँ पापकर्मियोंके दुःखके हेतुभूत चक्र और रहट लगे रहते हैं। जबतक हजारों वर्ष पूरे नहीं हो जाते, तबतक वह रुकता नहीं। जो लोग उस चक्रपर बाँधे जाते हैं, वे जलके घटकी भाँति

उसपर घूमते रहते हैं। पुनः रक्तका वमन करते हुए उनकी आँतें मुखकी ओरसे बाहर आ जाती हैं और नेत्र आँतोंमें घुस जाते हैं। प्राणियोंको वहाँ जो दुःख प्राप्त होते हैं, वे बड़े ही कष्टकारी हैं।

हे गरुड! अब 'असिपत्रवन' नामक दूसरे नरकके विषयमें सुनो। यह नरक एक हजार योजनमें फैला हुआ है। इसकी सम्पूर्ण भूमि अग्निसे व्याप्त होनेके कारण अहर्निश जलती रहती है। इस भयंकर नरकमें सात-सात सूर्य अपनी सहस्र-सहस्र रश्मियोंके साथ सदैव तपते रहते हैं, जिनके संतापसे वहाँके पापी हर क्षण जलते ही रहते हैं। इसी नरकके मध्य एक

चौथाई भागमें 'शीतस्निग्धपत्र' नामका वन है। हे पक्षिश्रेष्ठ! उसमें वृक्षोंसे टूटकर गिरे फल और पत्तोंके ढेर लगे रहते हैं। मांसाहारी बलवान् कुत्ते उसमें विचरण करते रहते हैं। वे बड़े-बड़े मुखवाले, बड़े-बड़े दाँतोंवाले तथा व्याघ्रकी तरह महाबलवान् हैं। अत्यन्त शीत एवं छायासे व्याप्त उस नरकको देखकर भूख-प्याससे पीड़ित प्राणी दुःखी होकर करुण क्रन्दन करते हुए वहाँ

जाते हैं। तापसे तपती हुई पृथ्वीकी अग्निसे पापियोंके दोनों पैर जल जाते हैं, अत्यन्त शीतल वायु बहने लगती है, जिसके कारण उन पापियोंके ऊपर तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाले पत्ते गिरते हैं। जलते हुए अग्नि-समूहसे युक्त भूमिमें पापीजन छिन्न-भिन्न होकर गिरते हैं। उसी समय वहाँके रहनेवाले कुत्तोंका आक्रमण भी उन पापियोंपर होने लगता है। शीघ्र ही वे कुत्ते रोते हुए उन पापियोंके शरीरके मांसको खण्ड-खण्ड करके खा जाते हैं।

हे तात! असिपत्रवन नामक नरकके विषयको मैंने बता दिया। अब तुम महाभयानक 'तप्तकुम्भ' नामवाले नरकका वर्णन मुझसे सुनो—इस नरकमें चारों ओर फैले हुए अत्यन्त गरम-गरम घड़े हैं। उनके चारों ओर अग्नि प्रज्वलित रहती है, वे उबलते हुए तेल और लौहके चूर्णसे भरे रहते हैं। पापियोंको ले जाकर उन्हींमें औंधे मुख डाल दिया जाता है। गलती हुई मज्जारूपी जलसे युक्त उसीमें फूटते हुए अङ्गोंवाले पापी काढ़ाके समान बना दिये जाते हैं। तदनन्तर

भयंकर यमदूत नुकीले हथियारोंसे उन पापियोंकी खोपड़ी, आँखों तथा हड्डियोंको छेद-छेदकर नष्ट करते हैं। गिद्ध बड़ी तेजीसे वहाँ आकर उनपर झपट्टा मारते हैं। उन उबलते हुए पापियोंको अपनी चोंचसे खींचते हैं और फिर उसीमें छोड़ देते हैं। उसके बाद यमदूत उन पापियोंके सिर, स्नायु, द्रवीभूत मांस, त्वचा आदिको जल्दी-जल्दी करछुलसे उसी तेलमें घुमाते हुए उन महापापियोंको काढ़ा बना डालते हैं।

हे पक्षिन्! यह तप्तकुम्भ-जैसा है, उस बातको विस्तारपूर्वक मैंने तुम्हें बता दिया। सबसे पहले नरकको रौरव और दूसरे उसके बादवालेको महारौरव नरक कहा जाता है। तीसरे नरकका नाम अतिशीत एवं चौथेका नाम निकृन्तन है। पाँचवाँ नरक अप्रतिष्ठ, छठा असिपत्रवन एवं सातवाँ तप्तकुम्भ है। इस प्रकार ये सात प्रधान नरक हैं। अन्य भी बहुत-से नरक सुने जाते हैं, जिनमें पापी अपने कर्मोंके अनुसार जाते हैं। यथा—रोध, सूकर, ताल, तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शबल, विमोहन, कृमि, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, विषञ्जन, अधःशिर, पूयवह, रुधिरान्ध, विड्भुज, वैतरणी, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, संदंश, अभोजन, तमस्, कालसूत्र, लौहतापी, अभिद, अप्रतिष्ठ तथा अवीचि आदि।

सन्दंश, तप्तसूर्मि, वैतरणी, अन्धकूप, प्राणरोध और वज्रकण्टक-शाल्मली नरक

—ये सभी नरक यमके राज्यमें स्थित हैं। पापीजन पृथक्-पृथक् रूपसे उनमें जाकर गिरते हैं। रौरव आदि सभी नरकोंकी अवस्थिति इस पृथ्वीलोकसे नीचे मानी गयी है। जो मनुष्य गौकी हत्या, भ्रूणहत्या और आग लगानेका दुष्कर्म करता है, वह 'रोध' नामक नरकमें गिरता है। जो ब्रह्मघाती, मद्यपी तथा सोनेकी चोरी करता है, वह 'सूकर' नामके नरकमें गिरता है। क्षत्रिय और वैश्यकी हत्या करनेवाला 'ताल' नामक नरकमें जाता है।

जो मनुष्य ब्रह्महत्या एवं गुरुपत्नी तथा बहनके साथ सहवास करनेकी दुश्चेष्टा करता है, वह 'तप्तकुम्भ' नामक नरकमें जाता है। जो असत्य-सम्भाषण करनेवाले राजपुरुष हैं, उनको भी उक्त नरककी ही प्राप्ति होती है। जो प्राणी निषिद्ध पदार्थोंका विक्रेता, मदिराका व्यापारी है तथा स्वामिभक्त सेवकका परित्याग करता है, वह 'तप्तलौह' नामक नरकको प्राप्त करता है। जो व्यक्ति कन्या या पुत्रवधूके साथ सहवास करनेवाला है, जो वेद-विक्रेता और वेदनिन्दक है, वह अन्तमें 'महाज्वाल' नामक नरकका वासी होता है। जो गुरुका अपमान करता है, शब्दबाणसे उनपर प्रहार करता है तथा अगम्या स्त्रीके साथ मैथुन करता है, वह 'शबल' नामक नरकमें जाता है।

शौर्य-प्रदर्शनमें जो वीर मर्यादाका परित्याग करता है, वह 'विमोहन' नामक नरकमें गिरता है। जो दूसरेका अनिष्ट करता है, उसे 'कृमिभक्ष' नामक नरककी प्राप्ति होती है। देवता और ब्राह्मणसे द्वेष रखनेवाला प्राणी 'लालाभक्ष' नरकमें जाता है। जो परायी धरोहरका अपहर्ता है तथा जो बाग-बगीचोंमें आग लगाता है, उसे 'विषञ्जन' नामक नरककी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य असत्-पात्रसे दान लेता है तथा असत् प्रतिग्रह लेनेवाला, अयाज्ययाजक और जो नक्षत्रसे जीविकोपार्जन करता है, वह मनुष्य 'अधःशिर' नरकमें जाता है। जो मदिरा, मांस आदि पदार्थोंका विक्रेता है, वह 'पूयवह' नामक घोर नरकमें गिरता है। जो कुक्कुट, बिल्ली, सुअर, पक्षी, मृग, भेंडको बाँधता है, वह भी उसी प्रकारके नरकमें जाता है। जो गृहदाही है, जो विषदाता है, जो कुण्डाशी है, जो सोमविक्रेता है, जो मद्यपी है, जो मांसभोजी है तथा जो पशुहन्ता है, वह व्यक्ति 'रुधिरान्ध' नामक नरकमें जाता है, ऐसा विद्वानोंका अभिमत है। एक ही पंक्तिमें बैठे हुए किसी प्राणीको धोखा देकर जो लोग विष खिला देते हैं, उन सभीको 'विड्भुज' नामक घोर नरक प्राप्त होता है। मधु निकालनेवाला मनुष्य 'वैतरणी' और क्रोधी 'मूत्रसंज्ञक' नामक नरकमें जाता है। अपवित्र और क्रोधी व्यक्ति 'असिपत्रवन' नामक नरकमें जाता है। मृगोंका शिकार करनेवाला व्याध 'अग्निज्वाल' नामक नरकमें जाता है, जहाँ उसके शरीरको नोच-नोचकर कौवे खाते हैं।

यज्ञकर्ममें दीक्षित होनेपर जो व्रतका पालन नहीं करता, उसे उस पापसे 'संदंश' नरकमें जाना पड़ता है। यदि स्वप्नमें भी संन्यासी या ब्रह्मचारी स्खलित हो जाते हैं तो वे 'अभोजन' नामक नरकमें जाते हैं। जो लोग क्रोध और हर्षसे भरकर वर्णाश्रम-धर्मके विरुद्ध कर्म करते हैं, उन सबको नरकलोककी प्राप्ति होती है।

सबसे ऊपर भयंकर गर्मीसे संतप्त रौरव नामक नरक है। उसके नीचे अत्यन्त दुःखदायी महारौरव है। उस नरकसे नीचे शीतल और उस नरकके बाद नीचे 'तामस' नरक माना गया है। इसी प्रकार बताये गये क्रमसे अन्य नरक भी नीचे ही हैं।

इन नरकलोकोंके अतिरिक्त भी सैकड़ों नरक हैं, जिनमें पहुँचकर पापी प्रतिदिन पकता है, जलता है, गलता है, विदीर्ण होता है, चूर्ण किया जाता है, गीला होता है, क्वाथ बनाया जाता है, जलाया जाता है और कहीं वायुसे प्रताड़ित किया जाता है—ऐसे नरकोंमें एक दिन सौ वर्षके समान होता है। सभी नरकोंसे भोग भोगनेके बाद पापी तिर्यक्-योनिमें जाता है। तत्पश्चात् उसको कृमि, कीट, पतंग स्थावर तथा एक खुरवाले गधेकी योनि प्राप्त होती है। तदनन्तर मनुष्य जंगली हाथी आदिकी योनियोंमें जाकर गौकी योनिमें पहुँचता है। हे गरुड! गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर मृग, शरभ और चमरी—ये छः योनियाँ एक खुरवाली होती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी पापाचार-योनियाँ भी हैं, जिनमें जीवात्माको कष्ट भोगना पड़ता है। उन सभी योनियोंको पाकर प्राणी मनुष्य-योनिमें आता है और कुबड़ा, कुत्सित, वामन, चाण्डाल और पुल्कश आदि नर-

योनियोंमें जाता है। अवशिष्ट पाप-पुण्यसे समन्वित जीव बार-बार गर्भमें जाते हैं और मृत्युको प्राप्त होता है। उन सभी पापोंके समाप्त हो जानेके बाद प्राणीको शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय आदिको आरोहिणी-योनि प्राप्त होती है। कभी-कभी वह सत्कर्मसे ब्राह्मण, देव और इन्द्रत्वके पदपर भी पहुँच जाता है।

हे गरुड! यमद्वारा निर्दिष्ट योनिमें पुण्यगति प्राप्त करनेमें जो प्राणी सफल हो जाते हैं, वे सुन्दर-सुन्दर गीत गाते, वाद्य बजाते और नृत्यादि करते हुए प्रसन्नचित्त गन्धर्वोंके साथ, अच्छे-से-अच्छे हार, नूपुर आदि नाना प्रकारके आभूषणोंसे युक्त, चन्दन आदिकी दिव्य सुगन्ध

और पुष्पोंके हारसे सुवासित एवं अलंकृत चमचमाते हुए विमानमें स्वर्गलोकको जाते हैं। पुण्य-समाप्तिके पश्चात् जब वे वहाँसे पुन: पृथ्वीपर आते हैं तो राजा अथवा महात्माओंके घरमें जन्म लेकर सदाचारका पालन करते हैं। समस्त भोगोंको प्राप्त करके पुन: स्वर्गको प्राप्त करते हैं अन्यथा पहलेके समान आरोहिणी-योनिमें जन्म लेकर दु:ख भोगते हैं।

मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले प्राणीका मरना तो निश्चित है। पापियोंका जीव अधोमार्गसे निकलता है। तदनन्तर पृथ्वीतत्त्वमें पृथ्वी, जलतत्त्वमें जल, तेजतत्त्वमें तेज, वायुतत्त्वमें वायु, आकाशतत्त्वमें आकाश तथा सर्वव्यापी मन चन्द्रमें जाकर विलीन हो जाता है। हे गरुड! शरीरमें काम, क्रोध एवं पञ्चेन्द्रियाँ हैं। इन सभीको शरीरमें रहनेवाले चोरकी संज्ञा दी गयी है। काम, क्रोध और अहंकार नामक विकार भी उसीमें रहनेवाले चोर हैं। उन सभीका नायक मन है। इस शरीरका संहार करनेवाला काल है, जो पाप और पुण्यसे जुड़ा रहता है। जिस प्रकार घरके जल जानेपर व्यक्ति अन्य घरकी शरण लेता है, उसी प्रकार पञ्चेन्द्रियोंसे युक्त जीव इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंके साथ शरीरका परित्याग कर नये शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। शरीरमें रक्त-मज्जादि सात धातुओंसे युक्त यह षाट्कौशिक शरीर है। सभी प्राण, अपान आदि पञ्च वायु, मल-मूत्र, व्याधियाँ, पित्त, श्लेष्म, मज्जा, मांस, मेदा, अस्थि, शुक्र और स्नायु—ये सभी शरीरके साथ ही अग्निमें जलकर भस्म हो जाते हैं।

हे तार्क्ष्य! प्राणियोंके विनाशको मैंने तुम्हें बता दिया। अब उनके इस शरीरका जन्म पुन: कैसे होता है, उसको मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

यह शरीर नसोंसे आबद्ध, श्रोत्रादिक इन्द्रियोंसे युक्त और नवद्वारोंसे समन्वित है। यह सांसारिक विषय-वासनाओंके प्रभावसे व्याप्त, काम-क्रोधादि विकारसे समन्वित, राग-द्वेषसे परिपूर्ण तथा तृष्णा नामक भयंकर चोरसे युक्त है। यह लोभरूपी जालमें फँसा हुआ और मोहरूपी वस्त्रसे ढका हुआ है। यह मायासे भलीभाँति आबद्ध एवं लोभसे अधिष्ठित पुरके समान है। सभी प्राणियोंका शरीर इनसे व्याप्त है। जो लोग अपनी आत्माको नहीं जानते हैं, वे पशुओंके समान हैं।

हे गरुड! चौरासी लाख योनियाँ हैं और उद्भिज्ज (पृथ्वीमें अंकुरित होनेवाली वनस्पतियाँ), स्वेदज (पसीनेसे जन्म लेनेवाले जुएँ और लीख आदि कीट), अण्डज (पक्षी) तथा जरायुज (मनुष्य)-में यह सम्पूर्ण सृष्टि विभक्त है। (अध्याय ३)

आसन्नमृत्यु-व्यक्तिके निमित्त किये जानेवाले प्रायश्चित्त, दस दान आदि विविध कर्म, मृत्युके बाद किये जानेवाले कर्म, षट्पिण्डदान, दाह-संस्कारसे पूर्व किये जानेवाले कर्म, दाह-संस्कारके बाद अस्थिसंचयनादि कर्म तथा गृहप्रवेशके समयके कर्म, दुर्मृत्युकी गति, नारायण-बलिका विधान, पुत्तलदाहविधि तथा पञ्चक मृत्युके कृत्य

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! जानमें या अनजानमें मनुष्य जो भी पाप करते हैं, उन पापोंकी शुद्धिके लिये उन्हें प्रायश्चित्त करना चाहिये। जो विद्वान् है वह पहले पवित्र करनेवाले भस्म आदि दस स्नान करे और पापोंके प्रायश्चित्तके रूपमें शास्त्रोक्त कृच्छ्रादि व्रत अथवा तत्प्रतिनिधिभूत गोदानादि क्रिया करे। यदि मनुष्य उनमें अक्षमताके कारण सफल न हो रहा हो तो आधा ही सही, यदि आधा भी न हो तो उसका ही आधा सही और नहीं तो उस आधेका भी आधा उसे कुछ-न-कुछ प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये। तत्पश्चात् यथासामर्थ्य दस प्रकारके दान देनेका विधान है, उसको सुनो।

गो, भूमि, तिल, हिरण्य, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड़, रजत और लवण—ये दस दान हैं—

गोभूमितिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडास्तथा ।
रजतं लवणं चैव दानानि दश वै विदुः॥

(४।४)

यमद्वारपर पहुँचनेके लिये जो मार्ग बताये गये हैं, वे अत्यन्त दुर्गन्धदायक मवादादि तथा रक्तादिसे परिव्याप्त हैं। अतः उस मार्गमें स्थित वैतरणी नदीको पार करनेके लिये वैतरणी गौका दान करना चाहिये। जो गौ सर्वाङ्गमें काली हो, जिसके स्तन भी काले हों, उसे वैतरणी गौ माना गया है[1]।

तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, भूमि और गौ—ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रतामें एकसे बढ़कर एक हैं। इन आठ दानोंको महादान कहा जाता है। इनका दान उत्तम प्रकृतिवाले ब्राह्मणको ही देना चाहिये—

तिला लोहं हिरण्यं च कर्पासं लवणं तथा।
सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥
एतान्यष्टौ महादानान्युत्तमाय द्विजातये।

(४।७-८)

अब पददानका वर्णन सुनो। छत्र, जूता, वस्त्र, अंगूठी, कमण्डलु, आसन, पात्र और भोज्यपदार्थ—ये आठ प्रकारके पद हैं—

छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः।
आसनं भाजनं भोज्यं पदं चाष्टविधं स्मृतम्॥

(४।९)

तिलपात्र, घृतपात्र, शय्या, उपस्कर तथा और भी जो कुछ अपनेको इष्ट हो, वह सब देना चाहिये। अश्व, रथ, भैंस, भोजन, वस्त्रका दान ब्राह्मणोंको करना चाहिये। अन्य दान भी अपनी शक्तिके अनुसार देना चाहिये।

हे पक्षिराज! इस पृथ्वीपर जिसने पापका प्रायश्चित्त कर लिया है, वह दस प्रकारके दान भी दे चुका है, वैतरणी गौ एवं अष्टदान कर चुका है, तिलसे भरा पूर्ण पात्र, घीसे भरा हुआ पात्र, शय्यादान और विधिवत् पददान करता है तो वह नरकरूपी गर्भमें नहीं आता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता—

प्रायश्चित्तं कृतं येन दश दानान्यपि क्षितौ॥
दानं गोर्वैतरण्याश्च दानान्यष्टौ तथापि वा।
तिलपात्रं सर्पिःपात्रं शय्यादानं तथैव च॥
पददानं च विधिवन्नासौ निरयगर्भगः।

(४।१२—१४)

पण्डित लोग स्वतन्त्र रूपसे भी लवण दान करनेकी इच्छा रखते हैं, क्योंकि यह लवण-रस विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है, इस पृथ्वीपर मरणासन्न प्राणीके प्राण जब न निकल रहे हों तो उस समय लवण-रसका दान उसके हाथसे दिलवाना चाहिये; क्योंकि यह दान उसके लिये

---

[1] नदीं वैतरणीं तर्तुं दद्याद्वैतरणीं च गाम्। कृष्णस्तनी सकृष्णाङ्गी सा वै वैतरणी स्मृता॥ (४।६)

स्वर्गलोकके द्वार खोल देता है। मनुष्य स्वयं जो कुछ दान देता है, परलोकमें वह सब उसे प्राप्त होता है। वहाँ उसके आगे रखा हुआ मिलता है। हे पक्षिन्! जिसने यथाविधि अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, वही पुरुष है। वही अपने पापोंको भस्मसात् करके स्वर्गलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है।

हे खगराज! गौका दूध अमृत है। इसलिये जो मनुष्य दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमृतत्वको प्राप्त करता है। पहले कहे गये तिलादिक आठ प्रकारके दान देकर प्राणी गन्धर्वलोकमें निवास करता है। यमलोकका मार्ग अत्यधिक भीषण तापसे युक्त है, अतः छत्रदान करना चाहिये। छत्रदान करनेसे मार्गमें सुख प्रदान करनेवाली छाया प्राप्त होती है। जो मनुष्य इस जन्ममें पादुकाओंका दान देता है, वह 'असिपत्रवन'के मार्गको घोड़ेपर सवार होकर सुखपूर्वक पार करता है। भोजन और आसनका दान देनेसे प्राणीको परलोकगमनके मार्गमें सुखका उपभोग प्राप्त होता है। जलसे परिपूर्ण कमण्डलुका दान देनेवाला पुरुष सुखपूर्वक परलोकगमन करता है।

यमराजके दूत महाक्रोधी और महाभयंकर हैं। काले एवं पीले वर्णवाले उन दूतोंको देखनेमात्रसे भय लगने लगता है। उदारतापूर्वक वस्त्र-आभूषणादिका दान करनेसे वे यमदूत प्राणीको कष्ट नहीं देते हैं। तिलसे भरे हुए पात्रका जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है, वह मनुष्यके मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापोंका विनाश कर देता है। मनुष्य घृतपात्रका दान करनेसे रुद्रलोक प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सभी साधनोंसे युक्त शय्याका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें नाना प्रकारकी अप्सराओंसे युक्त विमानमें चढ़कर साठ हजार वर्षतक अमरावतीमें क्रीडा करके इन्द्रलोकके बाद गिरकर पुनः इस पृथ्वीलोकमें आकर राजाका पद प्राप्त करता है। जो मनुष्य काठी आदि उपकरणोंसे सजे-धजे, दोषरहित जवान घोड़ेका दान ब्राह्मणको देता है, उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। हे खगेश! दानमें दिये गये इस घोड़ेके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्ष (कालतक) स्वर्गके लोकोंका भोग दानदाताको प्राप्त होता है। प्राणी ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त चार घोड़ोंवाले रथका दान देकरके राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति सुपात्र ब्राह्मणको दुग्धवती, नवीन मेघके समान वर्णवाली, सुन्दर जघन-प्रदेशसे युक्त और मनमोहक तिलकसे समन्वित भैंसका दान देता है तो वह परलोकमें जाकर अभ्युदयको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तालपत्रसे बने हुए पंखेका दान करनेसे मनुष्यको परलोकगमनके मार्गमें वायुका सुख प्राप्त होता है। वस्त्र-दान करनेसे व्यक्ति परलोकमें शोभासम्पन्न शरीर और उस लोकके वैभवसे सम्पन्न हो जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको रस, अन्न तथा अन्य सामग्रियोंसे युक्त घरका दान देता है, उसके वंशका कभी विनाश नहीं होता है और वह स्वयं स्वर्गका सुख प्राप्त करता है। हे खगेन्द्र! इन बताये गये सभी प्रकारके दानोंमें प्राणीकी श्रद्धा तथा अश्रद्धासे आयी हुई दानकी अधिकता और कमीके कारण उसके फलमें श्रेष्ठता और लघुता आती है।

इस लोकमें जिस व्यक्तिने जल एवं रसका दान किया है, वह आपद्कालमें आह्लादका अनुभव करता है। जिस मनुष्यने श्रद्धापूर्वक इस संसारमें अन्न-दान दिया है, वह परलोकमें अन्न-भक्षणके बिना भी वही तृप्ति प्राप्त करता है, जो उत्तमोत्तम अन्नके भक्षणसे प्राप्त होती है। मृत्युके संनिकट आ जानेपर यदि मनुष्य यथाविधि संन्यासाश्रमको ग्रहण कर लेता है तो वह पुनः इस संसारमें नहीं आता, अपितु उसको मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

यदि मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यको लोग किसी पवित्र तीर्थमें ले जाते हैं और उसकी मृत्यु उसी तीर्थमें हो जाती है तो उसको मुक्ति प्राप्त होती है तथा यदि प्राणी मार्गके बीच ही मर जाता है तो भी मुक्ति प्राप्त करता ही है, साथ ही उसको तीर्थतक ले जानेवाले लोग पग-पगपर यज्ञ करनेके समान फल प्राप्त करते हैं—

आसन्नमरणो मर्त्यश्चेत्तीर्थं प्रतिनीयते।
तीर्थप्राप्तौ भवेन्मुक्तिर्म्रियते यदि मार्गगः।
पदे पदे क्रतुसमं भवेत्तस्य न संशयः॥ (४।३८)

हे द्विज! मृत्युके निकट आ जानेपर जो मनुष्य

विधिवत् उपवास करता है, वह भी मृत्युके पश्चात् पुनः इस संसारमें नहीं लौटता है।

हे खगेश! मृत्युके संनिकट होनेपर कौन-सा दान करना चाहिये। इस प्रश्नका उत्तर मैंने बता दिया है। मृत्यु और दाहके बीच मनुष्यके क्या कर्तव्य हैं? इस प्रश्नका उत्तर अब तुम सुनो।

व्यक्तिको मरा हुआ जानकर उसके पुत्रादिक परिजनोंको चाहिये कि वे सभी शवको शुद्ध जलसे स्नान कराकर नवीन वस्त्रसे आच्छादित करें। तदनन्तर उसके शरीरमें चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंका अनुलेप भी करें। उसके बाद जहाँ मृत्यु हुई है, उसी स्थानपर एकोद्दिष्ट श्राद्ध[1] करना चाहिये। दाहकर्मके पूर्व शवको दाहके योग्य बनानेके लिये ऊपर बताये गये कर्म अनिवार्य हैं। इस एकोद्दिष्ट श्राद्धमें आसन तथा प्रोक्षण क्रिया होनी चाहिये, किंतु आवाहन, अर्चन, पात्रालम्भन और अवगाहन—ये चार क्रियाएँ नहीं करनी चाहिये। उस समय पिण्डदान अनिवार्य है, अन्नदानका संकल्प भी हो सकता है। रेखाकरण, प्रत्यवनेजन नहीं होता और दिये गये पदार्थके अक्षय्यकी कामना करनी चाहिये। अक्षय्योदक दान देना चाहिये। स्वधावाचन, आशीर्वाद और तिलक—ये तीन नहीं होने चाहिये। उड़दसे परिपूर्ण घट और लोहेकी दक्षिणा ब्राह्मणको प्रदान करनेका विधान है। तत्पश्चात् पिण्ड हिलाना चाहिये। किंतु उस समय आच्छादन, विसर्जन तथा स्वस्तिवाचन—ये तीन वर्जित हैं। हे खगेश! मरणस्थान, द्वार, चत्वर, विश्रामस्थान, काष्ठ-चयन और अस्थि-संचयन—ये छः पिण्डदानके स्थान हैं।

प्राणीकी मृत्यु जिस स्थानपर होती है, वहाँपर दिये जानेवाले पिण्डका नाम 'शव' है, उससे भूमिदेवताकी तुष्टि होती है। द्वारपर जो पिण्ड दिया जाता है उसे 'पान्थ' नामक पिण्ड कहते हैं। इस कर्मको करनेसे वास्तुदेवताको प्रसन्नता होती है। चत्वर अर्थात् चौराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डका दान करनेपर भूतादिक, गगनचारी देवतागण प्रसन्न होते हैं। शवके विश्राम भूमिमें 'भूत-संज्ञक' पिण्डका दान करनेसे दसों दिशाओंको संतुष्टि प्राप्त होती है। चितामें 'साधक' नामका और अस्थि-संचयनमें 'प्रेत-संज्ञक' पिण्ड दिया जाता है।

शवयात्राके समय पुत्रादिक परिजन तिल, कुश, घृत और ईंधन लेकर 'यमगाथा' अथवा वेदके 'यमसूक्त'का पाठ करते हुए श्मशानभूमिकी ओर जाते हैं। प्रतिदिन गौ, अश्व, पुरुष और बैल आदि चराचर प्राणियोंको अपनी ओर खींचते हुए यम संतुष्ट नहीं होते हैं, जिस प्रकार कि मद्य पीनेवाला संतुष्ट नहीं होता[2]।

'ॐ अपेतेति०'[3] इस यमसूक्तका अथवा 'यमगाथा' का पाठ शवयात्राके मार्गमें करना चाहिये। सभी बन्धु-बान्धवोंको दक्षिण दिशामें स्थित श्मशानकी वनभूमिमें शवको ले जाना चाहिये। हे पक्षिन्! पूर्वोक्त विधिसे मार्गमें दो श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद श्मशानभूमिमें पहुँचकर धीरेसे शवको पृथ्वीपर उतारते हुए दक्षिण दिशाकी ओर सिर स्थापित कर चिताभूमिमें पूर्वोक्त विधिके अनुसार श्राद्ध करना चाहिये। शव-दाहकी क्रियाके लिये पुत्रादिक परिजनोंको स्वयं तृण, काष्ठ, तिल और घृत आदि ले जाना चाहिये। शूद्रोंके द्वारा श्मशानमें पहुँचायी गयी वस्तुओंसे वहाँ किया गया सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाता है। वहाँपर सभी कर्म अपसव्य और दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिये। हे पक्षिराज! शास्त्रसम्मत विधिके अनुसार एक वेदीका निर्माण करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतवस्त्र अर्थात् कफनको दो भागोंमें फाड़ कर उसके आधे भागसे उस शवको ढक दे और दूसरे भागको श्मशानमें निवास करनेवाले प्राणीके लिये भूमिपर ही छोड़ दे। उसके बाद पूर्वोक्त विधिके अनुसार मरे हुए व्यक्तिके हाथमें पिण्डदान करे। तदनन्तर शवके सम्पूर्ण शरीरमें घृतका लेप करना चाहिये।

हे खगेश! प्राणीकी मृत्यु और दाह-संस्कारके बीच पिण्डदानकी जो विधि है, अब उसे सुनो।

पहले बताये गये मृतस्थान, द्वार, चौराहे, विश्रामस्थान तथा काष्ठसंचयनस्थानमें प्रदत्त पाँच पिण्डोंका दान करनेसे शवमें की आहुति (अग्निदाह)-की योग्यता आ जाती है, अथवा किसी प्रकारके प्रतिबन्धके कारण उपर्युक्त पिण्ड नहीं दिये गये तो शव राक्षसोंके भक्षण योग्य हो जाता है। अतः स्वच्छ भूमिपर बनी हुई वेदीको भलीभाँति मार्जन,

१-यहाँ एकोद्दिष्टका तात्पर्य मरणस्थानपर यथाविधान एक पिण्डके दानसे है।

२-अहरहर्नीयमानो गामश्वं पुरुषं वृषम्। वैवस्वतो न तृप्येत सुरया त्विव दुर्मतिः॥ (४।५३) इसीका नाम यमगाथा है।

३-यजु०अ० ३५ 'यमसूक्त' कहलाता है।

उपलेपनके द्वारा शुद्ध कर उसके ऊपर यथाविधि अग्निको स्थापित करना चाहिये। तदनन्तर पुष्प-अक्षत आदिसे क्रव्याद नामवाले अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके दाह करे। दाहकार्यमें चाण्डालके घरकी अग्नि, चिताकी अग्नि और पापीके घरकी अग्निका प्रयोग नहीं करना चाहिये और निम्नलिखित मंत्रसे अग्निकी प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वं भूतकृज्जगद्योनिस्त्वं लोकपरिपालकः॥
उपसंहर तस्मात्त्वमेनं स्वर्गं नयामृतम्।
(४।६४-६५)

'हे देव! आप भूतकृत् हैं। हे देव! आप इस संसारके योनिस्वरूप और सभीके पालनहार हैं। इसलिये आप इस शवका अपनेमें उपसंहार करके अमृतस्वरूप स्वर्गमें ले जाइये'।

इस प्रकार क्रव्याद देवकी विधिवत् पूजा कर शवको चिताकी अग्निमें जलानेका उपक्रम करना चाहिये। जब शवके शरीरका आधा भाग उस अग्निमें जल जाय तो उस समय क्रिया करनेवाले व्यक्तिको निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः॥
'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा'[१]॥
(४।६६-६७)

अर्थात् हे देव! आप इसीसे उत्पन्न हुए हैं। यह शरीरी पुनः आपसे उत्पन्न हो। अमुक नामवाला यह प्राणी स्वर्गलोकको प्राप्त करे—ऐसा कहकर तिलमिश्रित आज्याहुति चितामें जल रहे शवके ऊपर छोड़े। उसके बाद भावविह्वल होकर उस आत्मीयजनके लिये रोना चाहिये। इस कृत्यको करनेसे उस मृतकको अत्यधिक सुख प्राप्त होता है।

दाह-क्रिया करनेके पश्चात् अस्थि-संचयन क्रिया करनी चाहिये। हे खगराज! दाहकी पीड़ाकी शान्तिके लिये प्रेत-पिण्ड भी प्रदान करे। तत्पश्चात् वहाँपर गये हुए सभी लोग चिताकी प्रदक्षिणा कर कनिष्ठादि क्रमसे सूक्त जपते हुए स्नानके लिये जलाशय आदिपर जायँ। वहाँ पहुँचकर अपने वस्त्रोंका प्रक्षालनकर पुनः उन्हें ही पहनकर मृत व्यक्तिका ध्यान करते हुए उसे जल-दान देनेकी प्रतिज्ञा करें और मृत व्यक्तिने प्रेतरूपमें जल-दान देनेकी आज्ञा दी है—ऐसी भावना करते हुए पुनः जलमें मौन धारणपूर्वक प्रवेश करें और यथाधिकार एक वस्त्र होकर अपनी शिखा खोलकर तथा अपसव्य होकर स्नान करें। यह स्नान दक्षिणाभिमुख होकर 'अपनः शोशुचदघम्'[२] इस वेदमन्त्रका उच्चारण करते हुए करना चाहिये। उस समय स्नान करनेवाले लोगोंको जलका आलोडन नहीं करना चाहिये। तत्पश्चात् किनारे आ करके अपनी शिखाको बाँध ले और सीधे कुशको दक्षिणाग्र करके दोनों हाथोंमें रखकर अञ्जलिसे तिलयुक्त जल लेकर पितृतीर्थसे दक्षिण दिशामें एक बार, तीन बार अथवा दस बार भूमिपर या पत्थरपर जल-दान करे। इस समय तिलाञ्जलि देनेवाले परिजनोंको कहना चाहिये कि 'हे अमुक गोत्रमें उत्पन्न अमुक नामवाले प्रेत! तुम मेरे द्वारा दिये जा रहे इस तिलोदकसे संतृप्त हो। मैं तुम्हें तिलाञ्जलि दे रहा हूँ, अतः इसको ग्रहण करनेके लिये तुम यहाँपर उपस्थित होओ'[३]।'

हे कश्यपपुत्र गरुड! तत्पश्चात् जलसे निकलकर वस्त्र पहनकर स्नान-वस्त्रको एक बार निचोड़कर पवित्र भूमिपर बैठ जायँ। शवदाह तथा तिलाञ्जलि देकर मनुष्यको अश्रुपात नहीं करना चाहिये, क्योंकि उस समय रोते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा आँख और मुँहसे गिराये आँसू एवं कफको मरा हुआ व्यक्ति विवश होकर पान करता है। अतः रोना नहीं चाहिये, अपितु यथाशक्ति क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर कोई पुराणज्ञ संसारकी अनित्यताको बताता हुआ मृतकके परिजनोंको इस प्रकारका उपदेश देकर शोकनिवारण करनेका प्रयत्न करे—'मनुष्यका यह शरीर केलेके वृक्षके समान बड़ा ही सारहीन एवं जलके बुद्बुदेके समान क्षणभंगुर है। इसमें जो सारतत्त्वको खोजता है, वह महामूर्ख है। यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायुतत्त्व—इन पाँच तत्त्वोंसे बना हुआ यह शरीर पुनः अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार उन्हीं पञ्चतत्त्वोंमें जाकर विलीन हो जाता है तो उसके लिये रोना क्या? जब पृथ्वी, समुद्र तथा देवलोक विनष्ट हो जाते हैं तो फेनके समान प्रसिद्ध यह मर्त्यलोक नष्ट नहीं होगा?' इस उपदेशको सुनकर वे सभी परिवारके सदस्य अपने घरको जायँ। पहलेसे घरके

१-यजु० ३५।२२ २-यजु० ३५।६

३-तिलोदककी अञ्जलि इस प्रकार कहकर देनी चाहिये—'अद्येहामुक गोत्रामुकप्रेतचितादाहजनिततापतृषोपशमाय एष तिलकुशतोयाञ्जलिर्मद्दत्तस्तवोपतिष्ठताम्।'

द्वारपर रखी हुई नीमकी पत्तियोंको चबाकर आचमन करें। तदनन्तर अग्नि, जल, गोबर, श्वेत सरसों, दूर्वा, प्रवाल, वृषभ तथा अन्य माङ्गलिक वस्तुओंका हाथसे स्पर्श करके पैरसे पत्थरका भी स्पर्श करें और धीरे-धीरे घरमें प्रवेश करें।

जो व्यक्ति विद्वान् है, वह अपने अग्निहोत्री परिजनकी मृत्यु होनेपर उसका दाह-संस्कार श्रौतकी अग्निके द्वारा ही यथाविधि करे। दो वर्षसे कम आयुवाले छोटे बालककी मृत्यु होनेपर उसको श्मशानभूमिमें गड्ढा खोदकर मिट्टीसे ढक देना चाहिये। उसके लिये उदक-क्रियाका विधान नहीं है। जो स्त्री पतिव्रता है, यदि वह मरे हुए पतिका अनुगमन करना चाहती है तो धर्मविहित नियमोंके अनुसार पतिको प्रणाम करके चितामें प्रवेश करे। जो स्त्री जीवनके व्यामोहसे चितापर चढ़कर पुनः बाहर आ जाती है, उसे 'प्राजापत्यव्रत' करना चाहिये।

मनुष्यके शरीरमें साढ़े तीन करोड़ रोयें होते हैं, जो स्त्री पतिका अनुगमन करती है, उतने कालतक वह स्वर्गमें वास करती है। जिस प्रकार सर्पको पकड़नेवाला सपेरा बिलसे सर्पको बलात् बाहर निकाल लेता है, उसी प्रकार पतिका अनुगमन करनेवाली सती नारी अपने पतिका उद्धार कर उसके साथ स्वर्गमें सुखपूर्वक निवास करती है। अप्सराएँ उसका सम्मान करती हैं तथा वह पतिव्रता नारी तबतक पतिके साथ सुखोपभोग करती है, जबतक चौदह इन्द्रोंकी अवधि पूर्ण नहीं हो जाती है। यदि पति ब्रह्महत्यारा, कृतघ्न या मित्रघाती हो, फिर भी सधवा स्त्री मृत्यु होनेपर पतिके साथ सती होकर उसे पवित्र कर देती है। पतिके मर जानेपर जो स्त्री उसीके साथ अग्निमें अपने शरीरको भेंट कर देती है, वह अरुन्धतीके समान आचरण करती हुई स्वर्गलोकमें जाकर सम्मान प्राप्त करती है।

पतिकी मृत्यु होनेपर जबतक स्त्री अपनेको चिताकी भेंट नहीं चढ़ा देती है, तबतक वह स्त्रीके शरीरसे किसी प्रकार मुक्त नहीं हो सकती है। जो स्त्री अपने पतिके साथ सती हो जाती है, वह पितृकुल, मातृकुल और पतिकुल—इन तीनों कुलोंको पवित्र कर देती है। जो स्त्री पतिके दुःखमें दुःखी, सुखमें सुखी, विदेशगमनमें मलिनवसना, कृशकाय तथा मृत्यु होनेपर चितामें उसीके साथ जलकर मृत्युका संवरण करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता मानना चाहिये। पातिव्रतधर्मका पालन करनेवाली स्त्री पतिकी मृत्यु हो जानेपर पृथक् चितामें समारूढ होकर परलोक-गमनके योग्य नहीं होती। क्षत्रियादि सभी सवर्णा स्त्रियोंको अपने पतिके साथ ही चितामें आरोहणकर परलोकसुख प्राप्त करना चाहिये। ब्राह्मणवर्णकी स्त्रीसे लेकर चाण्डालवर्णकी स्त्रीके लिये पतिके साथ चितामें जलकर सती होनेका विधान एक समान ही है। पतिकी मृत्युके समय जो स्त्रियाँ गर्भसे रहित हैं और जिनके छोटे-छोटे बच्चे नहीं हैं, उन सभीको सतीधर्मका पालन करना चाहिये।

हे पक्षिन्! मनुष्यके दाह-संस्कारकी जो विधि है, उसको सामान्य रूपसे मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब और क्या सुनना चाहते हो?

इसपर गरुडने कहा—हे संसारके स्वामिन्! यदि प्रवासकालमें पतिकी मृत्यु हो जाती है और उसकी अस्थियाँ भी स्त्रीको नहीं प्राप्त होती हैं तो उसका दाह किस प्रकारसे करना चाहिये, यह बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! यदि प्रवासी पतिकी अस्थियाँ नहीं प्राप्त होती हैं तो मैं उसकी भी सद्गतिका विधान तुम्हें सुनाता हूँ। उस परम गोपनीय तत्त्वको तुम सुनो। जो प्राणी भूखसे पीड़ित होनेके कारण मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो व्याघ्रादि हिंसक प्राणियोंके द्वारा मारे जाते हैं, जिनकी मृत्यु गलेमें फाँसीका फन्दा लगानेसे हो जाती है, शरीरकी क्षीणताके कारण जिनकी मृत्यु होती है, जो हाथीके द्वारा मारे जाते हैं, जो विष, अग्नि, बैल और ब्राह्मण-शापसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, जिनकी मृत्यु हैजासे होती है, जो आत्मघाती हैं, जो गिरकर या रस्सी आदिके द्वारा किये गये बन्धन अथवा जलमें डूबनेसे मर जाते हैं, उनकी स्थितिको तुम सुनो।

जो सर्प, व्याघ्र, शृंगधारी पशु, उपसर्ग (चेचक), पत्थर, जल, ब्राह्मण, जंगली हिंसक पशु, वृक्षपात और विद्युत्पातसे और लोहेसे, पर्वतपरसे गिरनेसे अथवा दीवालके गिरनेसे, पहाड़के खड़े कगारसे, खाट या मध्य कक्षमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, ऋतुमती, चाण्डाली, शूद्रा तथा धोबिन आदि त्याज्य स्त्रियोंका संसर्ग, शारीरिक स्पर्श या

अधरोंका पान करते हुए जो लोग मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो शस्त्राघातसे मरते हैं, विषैले कुत्तेके मुखका स्पर्श करनेसे जिनकी मृत्यु हो जाती है, विधि-विहीन रूपमें[1] जो मृत्यु हो जाती है, उसको दुर्मरण समझना चाहिये। उसी पापसे नरकोंको भोगकर वे पुनः प्रेतत्वको प्राप्त होते हैं। ऐसे व्यक्तिका दाह, उदकक्रिया और मरणनिमित्तक अन्य कृत्य तथा और्ध्वदैहिक कर्म नहीं करना चाहिये। इस प्रकारसे अपमृत्यु होनेपर पिण्डदानका कर्म भी वर्जित है। यदि प्रमादवश कोई पिण्डदान करता है तो वह उसे प्राप्त नहीं होता और अन्तरिक्षमें विनष्ट हो जाता है। अतः लोकगर्हासे डरकर उसके शुभेच्छु पुत्र-पौत्र और सगोत्री जनोंको मृतकके लिये 'नारायणबलि' करनी चाहिये। ऐसा करनेपर ही उन्हें शुचिता प्राप्त होती है अन्यथा नहीं; यह यमराजका वचन है।

नारायणबलि किये जानेपर और्ध्वदैहिक कर्मकी योग्यता आ जाती है। अपमृत्यु होनेपर ऐसे प्राणीका शुद्धिकरण इसी कर्म (नारायणबलि)-से सम्भव है अन्यथा नहीं।

नारायणबलि सम्यक् रूपसे तीर्थमें करना चाहिये। ब्राह्मणोंके द्वारा भगवान् कृष्णके समक्ष नारायणबलि करानेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है। पुराण, वेदके ज्ञाता ब्राह्मण सबसे पहले तर्पण करें। सभी प्रकारकी औषधियोंको और अक्षतको जलमें मिलाकर 'पुरुषसूक्त' या 'वैष्णवसूक्त'का उच्चारण करते हुए विष्णुके उद्देश्यसे सम्पन्न करना चाहिये। उसके बाद दक्षिणाभिमुख होकर प्रेत और विष्णुका इस प्रकार स्मरण करे—

अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥
अक्षयः पुण्डरीकाक्ष प्रेतमोक्षप्रदो भव।

(४।११८-११९)

'हे देव! आप अनादि, अजर और अमर हैं। हे देव! आप शंख, चक्र एवं गदासे सुशोभित विष्णु हैं। आप कभी न विनष्ट होनेवाले परमात्मा हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! आप इस प्रेतको मोक्ष प्रदान करनेकी कृपा करें।'

वीतराग, विमत्सर, जितेन्द्रिय, शुचिष्मान् और धर्मतत्पर होकर वहींपर भक्तिपूर्वक एकादश श्राद्ध करे। उसके बाद वह सावधानमनसे विधिवत् जल, अक्षत, यव, गेहूँ और कँगनीका दान दे। उस समय शुभ हविष्यान्न, सुन्दर बनी हुई सोनेकी अंगूठी, छत्र और पगड़ीका दान देना चाहिये। इन वस्तुओंके अतिरिक्त दूध-मधुसे समन्वित सभी प्रकारके अन्न देना चाहिये। वस्त्र और पादुका समन्वित आठ प्रकारका पददान सुपात्रोंको समभावसे दिया जाना चाहिये। पिण्डदान करनेके बाद मन्त्रोच्चारसहित गन्ध, पुष्प और अक्षतसे पूजा करे, तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको सम्मानसहित दान दे। शंख, खड्ग अथवा ताम्रपात्रमें पृथक्-पृथक् तर्पण करना चाहिये। उसके बाद ध्यान-धारणासे संयुक्त होकर दोनों घुटनोंके बल पृथ्वीपर अवस्थित होकर मन्त्रोच्चारपूर्वक उद्दिष्ट देवोंके लिये पृथक्-पृथक् अर्घ्य प्रदान करे। पञ्चरत्नसे युक्त पृथक्-पृथक् पाँच कुम्भोंमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और प्रेत—इन पाँचोंको स्थापित करना चाहिये। इसके अतिरिक्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, मूँग और पददान पृथक्-पृथक् स्थापित करे। यथाविधि उन देवोंके लिये पाँच श्राद्ध करना चाहिये। शंख या ताम्रपात्र न मिलनेपर मृण्मयपात्रमें सर्वौषधिसे युक्त तिलोदक लेकर प्रत्येक पिण्डपर पृथक्-पृथक् जलधारा देनी चाहिये। तिलसे पूर्ण ताम्रपात्र दक्षिणा और स्वर्णसे युक्त तथा पददान मुख्य ब्राह्मणोंको देना चाहिये। यमके निमित्त दक्षिणासहित तिल और लोहेका दान देना चाहिये। विष्णुदेवके लिये यथाशक्ति विधिपूर्वक बलि प्रदान करनेपर मृत व्यक्तिका नरकलोकसे उद्धार हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

जो व्यक्ति सर्पदंशसे मर जाता है, उसके विषयमें विशेष बात मुझसे सुनो—

एक भार सोनेकी नागप्रतिमा बनवाकर गौके सहित विधिवत् उसका दान ब्राह्मणको कर देना चाहिये। ऐसा करके पुत्र अपने पिताके ऋणसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सर्पबलि देकर मनुष्य सर्पदोषके पापसे दूर हो जाता

१-अकस्मात् किसी ऐसी स्थितिमें मरण हो रहा है जब मरणासन्न व्यक्तिके लिये शास्त्रोक्त विधियाँ सम्पन्न नहीं हो पाती हैं, तब ऐसा मरण विधि-विहीन मरण माना जाता है।

है। हे गरुड! उसके बाद सर्वौषधिसे समन्वित पुत्तलका निर्माण करना चाहिये। पुत्तलके निर्माणमें पलाश और वृन्तोंका विभाग सुनो—

काले मृगका चर्म बिछाकर उसके ऊपर कुशसे निर्मित एक पुरुषकी आकृति बनानी चाहिये। तीन सौ साठ वृन्तोंसे मनुष्यकी अस्थियोंका निर्माण होता है। उन वृन्तोंका विन्यास इन अङ्गोंमें पृथक्-पृथक् रूपसे करना चाहिये। चालीस वृन्त शिरोभाग, दस वृन्त ग्रीवा, बीस वृन्त वक्षःस्थल, बीस वृन्त उदर, सौ वृन्त दोनों बाहु, बीस वृन्त कटि, सौ वृन्त दोनों उरुभाग, तीस वृन्त दोनों जंघा प्रदेश, चार वृन्त शिश्न, छः वृन्त दोनों अण्डकोश और दस वृन्त पैरकी अंगुली भागमें स्थापित करनेका विधान है। इसके बाद शिरोभागमें नारियल, तालु प्रदेशमें लौकी, मुखमें पञ्चरत्न, जिह्वामें कदलीफल, आँतोंके स्थानमें कमलनाल, नासिका भागमें बालू, वसाके स्थानमें मिट्टी, हरिताल और मनःशिल, वीर्यके स्थानपर पारद, पुरीषके स्थानपर पीतल, शरीरमें मनःशील, संधिभागोंमें तिलका पाक, मांसके स्थानपर पिसा हुआ यव, रक्तके स्थानपर मधु, केशराशिके स्थानपर जटाजूट, त्वचाके स्थानपर मृगचर्म, दोनों कानके स्थानपर तालपत्र, दोनों स्तनोंके स्थानपर गुञ्जाफल, नासिका भागमें शतपत्र, नाभिमण्डलमें कमल, दोनों अण्डकोशोंके स्थानपर बैंगन, लिङ्गभागमें बढ़िया सुन्दर गाजर, नाभिमें घी, कौपीनके स्थानपर त्रपु अर्थात् लाह, स्तनोंमें मोती, ललाटपर कुंकुमका लेप, कर्पूर एवं अगुरु धूप, सुगन्धित मालाका अलंकरण, पहननेके लिये हृदयमें पट्टसूत्रका विन्यास करना चाहिये। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋद्धि एवं वृद्धि, दोनों नेत्रोंमें कौड़ी, दाँतोंमें अनारके बीज, अँगुलियोंके स्थानमें चम्पाके पुष्प और नेत्रोंके कोण भागमें सिन्दूर भरकर ताम्बूल आदि शोभादायक अन्य पदार्थ भी भेंट करना चाहिये।

इस प्रकार सर्वौषधियुक्त उस प्रेतकी विधिवत् पूजा कर यदि मृत व्यक्ति अग्निहोत्री रहा हो तो उसके अङ्गोंमें यथाक्रम यज्ञ-पात्र स्थापित करे। तदनन्तर 'स्त्रियः पुनन्तु मे शिर०' तथा '**इमं मे वरुणेन च०**' इन मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित शालग्रामशिलायुक्त जलसे उक्त प्रेतको पवित्र करके भगवान् विष्णुको उद्देश्य कर सुशीला, दूध देनेवाली गौका दान देना चाहिये। तत्पश्चात् तिल, लौह, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी तथा गौ, जो एक-से-एक बढ़कर पवित्र बताये गये हैं, उनका भी दान करना चाहिये। उसके बाद तिल-पात्र तथा पददान भी करना चाहिये। तदनन्तर प्रेतकी मुक्तिके लिये वैष्णव श्राद्ध करे। उसके बाद श्राद्धकर्ता हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य सम्पन्न करे।

उक्त विधिसे बनाये गये पुत्तलका विधिपूर्वक दाह करना चाहिये। तत्पश्चात् उसकी शुद्धिके लिये पुत्रादि संस्कर्ता प्रायश्चित्त करें। जिसमें तीन, छः, बारह तथा पंद्रह कृच्छ्रव्रत करनेका विधान है। प्रायश्चित्त कर्ममें असमर्थ होनेपर गाय, सुवर्णादिका दान अथवा तत्प्रतिनिधिभूत द्रव्यका दान करना चाहिये। विद्वान्‌को इस प्रकार अपनी शुद्धि करनी चाहिये। अशुद्ध दाताके द्वारा अशुद्धको उद्देश्य करके जो कुछ श्राद्ध तथा दानादिक किया जाता है, वह सब कुछ अन्तरिक्षमें ही विनष्ट हो जाता है। अतः विधिवत् शुद्ध होकर मनुष्यको दाहादिक और्ध्वदैहिक कर्म करना चाहिये।

हे गरुड! जो प्राणी बिना प्रायश्चित्त किये ही दाहादिक कर्म ज्ञानपूर्वक या अज्ञानपूर्वक करता है, वह वहन, अग्निदान, जलदान, स्नान, स्पर्श, रज्जुछेदन तथा अश्रुपात करके तप्तकृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होता है। जो शवको ले जाता है अथवा दाह-संस्कार करता है, वह कटोदक-क्रिया करके कृच्छ्रसान्तपनव्रत करे। छोटे दोषको दूर करनेके लिये छोटा और बड़े दोषको दूर करनेके लिये बड़ा प्रायश्चित्त करना चाहिये।

गरुडने कहा—हे प्रभो! कृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र तथा सान्तपन—ये जो तीन प्रायश्चित्त व्रत आपने बताये हैं; इन तीनोंके लक्षणोंको भी मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल, तीन दिन अयाचित हविष्यान्नका आहार और तीन दिनका उपवास क्रमशः जिस व्रतमें किया जाता है, वह 'कृच्छ्रव्रत' कहलाता है[1]।

१-त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। उपवासस्त्र्यहश्चैव एष कृच्छ्र उदाहृतः॥ (४।१६३)

जिस व्रतमें क्रमशः एक दिन गरम दूध, दूसरे दिन गरम घी तथा तीसरे दिन गरम जल पानकर चौथे दिन एक रात्रिका उपवास किया जाता है, उसका नाम 'तप्तकृच्छ्र' व्रत है[1]। जब गोमूत्र, गोमय, गोदधि, गोदुग्ध और कुशोदक—इन पाँच पदार्थोंको क्रमशः एक-एक दिन पान करके पुनः कृच्छ्रव्रतका उपवास किया जाता है तो उसको 'सान्तपनव्रत' कहा जाता है[2]।

हे पक्षिन्! पापी व्यक्तिके मरनेपर कौन-सी क्रिया करनी चाहिये, यह मैंने तुम्हें बता दिया है। पुत्तलदाहमें (पुत्तलके हृदयपर रखा) जलता हुआ दीपक जब बुझ जाय तो उस समय उसकी मृत्यु समझनी चाहिये। तदनन्तर अग्निदाह करे और तीन दिनका सूतक करे। दशाह और गर्तपिण्ड करना चाहिये। इस विधिका सम्यक् पालन करनेसे प्रेत मुक्ति प्राप्त करता है। यदि किसीके मरणका भ्रम होनेसे उसकी प्रतिकृतिका दाह-संस्कार हो जाय और वह मनुष्य उसके बाद आ जाय तो उसे ले जाकर घृतकुण्डमें स्नान कराना चाहिये। तदनन्तर जातकर्मादि संस्कार पुनः किये जायँ। ऐसे पुरुषको अपनी विवाहिता पत्नीसे विधिवत् पुनर्विवाह कर लेना चाहिये। हे खग! यदि विदेशमें गये किसी व्यक्तिको पंद्रह अथवा बारह वर्ष बीत गये हों और उसका इस अवधिके बीच कोई समाचार नहीं प्राप्त होता है तो उसकी प्रतिकृति बनाकर उसका दाह-संस्कार कर डालना चाहिये।

हे गरुड! रजस्वला और सूतिका स्त्रीके मरनेपर कौन-सा विशेष कर्म करना धर्मसम्मत है, अब उसको तुम सुनो—सूतिका स्त्रीकी मृत्यु होनेपर याज्ञिकजन कुम्भमें जल और पञ्चगव्य लाकर पुण्यजनित मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित करके उससे स्वयंको शुद्ध करे। उसके बाद सौ शूपजलसे विधिपूर्वक शवको स्नान कराके पुनः उसको पञ्चगव्यसे स्नान कराये। फिर कपड़ेसे बनायी गयी आकृतिके साथ यथाविधि जला देना चाहिये।

पञ्चककालमें मृत्यु होनेपर दाह-संस्कारकी विधि क्या है? उसको मैं कहता हूँ, तुम सुनो—

हे खगेश! मासके प्रारम्भमें धनिष्ठा नक्षत्रके अर्धभागसे लेकर रेवती नक्षत्रतक पञ्चककाल होता है। इसको सदैव दोषपूर्ण एवं अशुभ मानना चाहिये। इस कालमें मरे हुए व्यक्तिका दाह-संस्कार करना उचित नहीं है। यह काल सभी प्राणियोंमें दुःख उत्पन्न करनेवाला है। ऐसे दिनोंमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंको जलतक नहीं देना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे सर्वदा अशुभ होता है। अतः पञ्चककालके समाप्त होनेपर ही मृतकके सभी कर्म करने चाहिये अन्यथा पुत्र और सगोत्रके लिये कष्ट ही होता है। इन नक्षत्रोंमें मृतकका दाह-संस्कार करनेपर घरमें किसी-न-किसी प्रकारकी हानि होती है।

हे गरुड! इन नक्षत्रोंके मध्यमें मनुष्योंका दाह-संस्कार आहुति प्रदान करके विधिपूर्वक किया जा सकता है। सुयोग्य ब्राह्मणोंको वैदिक मन्त्रोंके द्वारा विधिपूर्वक उसका संस्कार करना चाहिये। अतः शवस्थानके समीपमें कुशसे चार पुत्तलक बनाकर नक्षत्र मन्त्रोंसे उनको अभिमन्त्रित करके रख दे। तदनन्तर उन्हीं पुत्तलकोंके साथ मृतकका दाह-संस्कार करे। अशौचके समाप्त हो जानेपर मृतकके पुत्रोंद्वारा शान्ति एवं पौष्टिक कर्म भी होना चाहिये।

जो मनुष्य इन पञ्चक नक्षत्रोंमें मर जाता है, उसको सद्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। अतएव मृतकके पुत्रोंको उसके कल्याणहेतु तिल, गौ, सुवर्ण और घीका दान देना चाहिये। समस्त विघ्नोंका विनाश करनेके लिये ब्राह्मणोंको भोजन, पादुका, छत्र, सुवर्णमुद्रा तथा वस्त्र देना चाहिये। यह दान मृतकके समस्त पापोंका विनाशक है और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये, इससे समस्त पापोंका विनाश होता है। (अध्याय ४)

१-तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत्। एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्र उदाहृतः॥ (४।१६४)

२-गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। जग्ध्वा परेऽह्न्युपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं चरन्॥ (४।१६५)

आशौचमें विहित कृत्य, आशौचकी अवधि, दशगात्रविधि, प्रथमषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशीका विधान, नौ श्राद्धोंका स्वरूप, वार्षिक कृत्य, जीवका यममार्गनिदान, मार्गमें पड़नेवाले षोडश नगरोंमें जीवकी यातनाका स्वरूप, यमपुरीमें पापात्माओं और पुण्यात्माओंको घोर तथा सौम्यरूपमें यमराजके दर्शन

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! इस प्रकार मृत पुरुषका दाह-संस्कार करके स्नान और तिलोदक कर्म कर स्त्रियाँ आगे-आगे तथा पुरुष उनके पीछे-पीछे घर आयें। द्वारपर पहुँचकर वे सभी मृत व्यक्तिका नाम लेकर रोते हुए नीमकी पत्तियोंका प्राशन कर पत्थरके ऊपर खड़े होकर आचमन करें। तदनन्तर सभी पुत्र-पौत्र आदि तथा सगोत्री परिजन घरमें जाकर जो दस रात्रियोंका अशौच-कर्म है, उसको पूरा करें। इस कालमें उन सभीको बाहरसे खरीदकर भोजन करना चाहिये। रात्रिमें वे अलग-अलग आसनपर सोयें। क्षार तथा नमकसे रहित भोजन किया जाय। वे सभी तीन दिनतक शोकमें डूबे रहें। ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करके अमांसभोजी होकर पृथ्वीपर ही सोयें। उन सभीके बीच परस्पर शरीरका स्पर्श न हो। वे इस अशौचकालके अन्तरालमें दान एवं अध्ययन-कर्मसे दूर रहें। दु:खसे मलिन, उत्साहहीन, अधोमुख-कातर एवं भोग-विलाससे दूर होकर वे अङ्गमर्दन और सिर धोना भी छोड़ दें। इस अशौचकी अवधिमें मिट्टीके बने पात्र या पत्तलोंमें भोजन करना चाहिये। एक या तीन दिनतक उपवास करे।

गरुडने कहा—हे प्रभो! अशौचियोंके अशौचके विषयमें आपने कह दिया, पर वह अशौच कितने समयतक रहेगा? उसके लक्षण क्या हैं? उससे संलिप्त लोगोंको उस कालमें कैसा जीवन व्यतीत करना चाहिये? इन सभी बातोंको भी आप बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! यह अशौच तो विधिसम्मत समय और क्रिया आदिके द्वारा शीघ्र ही समाप्त करनेके योग्य होता है, क्योंकि प्राणी इस कालमें पिण्डदान, अध्ययन और अन्य प्रकारके दान-पुण्यादिक सत्कर्मोंसे दूर हो जाता है। सपिण्डियोंमें मरणाशौच दस दिनका माना जाता है। जो लोग भलीभाँति शुद्धि प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं, उनके लिये पुत्रादिके जन्म लेनेपर भी इसी प्रकार अशौच होता है। समानोदकोंके जननाशौचमें तीन रात्रिमें शुद्धि होती है। जो मृतकको जल देनेवाले हैं, वे मरणाशौचमें भी तीन दिनोंके पश्चात् शुद्ध हो जाते हैं। दाँत निकलनेतक मरणाशौच होनेपर वह सद्य: समाप्त हो जाता है। यदि चूडाकरण-संस्कार हो जानेके बाद बालककी मृत्यु हो जाती है तो एक रात्रिका अशौच होता है। उपनयन (जनेऊ)-संस्कार होनेके पूर्वतक तीन दिन और उसके बाद दस दिनका अशौच होता है—

आ दन्तजननात्सद्य आ चौलान्नैशिकी स्मृता।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमत: परम्॥ (५।१२)

हे पक्षिन्! तुम्हें मैंने अशौच बता दिया। अब मैं संक्षेपमें प्रसंगप्राप्त अशौचके विषयमें तुम्हें बताता हूँ। हे काश्यप! सूत्रसे बँधे हुए तीन काष्ठोंकी तिगोड़ियाको रात्रिमें आकाशके नीचे स्थापित करके चौराहेपर खड़ा कर दे और 'अत्र स्नाहि०' एवं 'पिबात्र०'[1] इस मन्त्रोच्चारके साथ उसके ऊपर मिट्टीके पात्रमें जल और दूध रख दे। संस्कर्ता अपने सगोत्रियोंके साथ पहले, तीसरे, सातवें अथवा नवें दिन अस्थि-संचयन करे। जो सगोत्री हैं, वे मृतकके ऊर्ध्वभागकी अस्थियोंका ही स्पर्श कर सकते हैं। समानोदकी भी सभी क्रियाओंके योग्य हैं। प्रेतको पिण्डदान बाहर ही करे। इस क्रियाको करनेके लिये सबसे पहले स्नान करके संयतमना होकर उत्तर दिशामें चरुका निर्माण कर असंस्कृत प्राणीके लिये भूमिपर तथा संस्कार-सम्पन्नके लिये कुशपर नौ दिनोंमें नौ पिण्ड देना चाहिये। उसके बाद दसवें दिन दसवाँ पिण्डदान करे। तदनन्तर चाहे सगोत्री हो अथवा असगोत्री, चाहे स्त्री हो या पुरुष वह रात्रि बीतनेके पश्चात् पवित्र हो जाता है। पहले दिन जो पिण्डदानकी क्रिया

१-श्मशानानलदग्धोऽसि परित्यक्तोऽसि बान्धवै:। इदं नीरं इदं क्षीरं अत्र स्नाहि इदं पिब॥

करता है, उसे ही दसवें दिनतक प्रेतकी अन्य समस्त क्रियाएँ करनी चाहिये। चाहे चावल हो, चाहे सत्तू हो, चाहे शाक हो, पहले दिन जिससे पिण्डदान करे, उससे ही दस दिनतक पिण्डदान करना चाहिये।

हे गरुड! जबतक यह प्रेतजन्य अशौच रहता है तबतक प्रेतको प्रतिदिन एक-एक अञ्जलि बढ़ाते हुए जल-दान देनेका विधान है अथवा जिस दिन यह देना हो उस दिनकी संख्याके अनुसार वर्धमानक्रमसे उतनी अञ्जलि जल-दान करे। इस प्रकार दसवें दिन पचपन अञ्जलि पूर्ण करे। यदि अशौच दो दिन बढ़ जाता है तो पुनः उसी क्रमके अनुसार सौ अञ्जलि जल और देना चाहिये। यदि वह अशौच तीन दिनका ही है तो दस अञ्जलि ही जल देना चाहिये। हे पक्षिन्! इस जलदानका क्रम यह है कि अशौचके पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन अञ्जलि जल देना चाहिये। हे गरुड! जब शताञ्जलि जल-दानकी क्रिया सम्पन्न की जाती है तो उस विधानके अनुसार पहले दिन तीस, दूसरे दिन चालीस तथा तीसरे दिन तीस अञ्जलि जल दिया जाता है।

इस प्रकार दोनों पक्षोंमें जलाञ्जलियोंकी संख्याका निर्धारण करना चाहिये। इन सभी पितृक्रियाओंको सम्पन्न करनेका मुख्य अधिकारी पुत्र ही होता है। इस प्रेतश्राद्धमें दूध या जलसे पिण्डका सेचन तथा पुष्प-धूपादिक पदार्थसे पिण्डका पूजन बिना मन्त्रोच्चार किये ही करना चाहिये। दसवें दिन केश, श्मश्रु, नख और वस्त्रका परित्याग करके गाँवके बाहर स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण जल, क्षत्रिय वाहन, वैश्य प्रतोद (चाबुक) अथवा रश्मि तथा शूद्र छड़ीका स्पर्श करके पवित्र होता है। मृतसे अल्प वयवाले सपिण्डोंको मुण्डन कराना चाहिये।[1]

छः और दस इस प्रकार सोलह पिण्डदान करके षोडशी कर्म सम्पन्न करनेका विधान है। यह मलिनषोडशी मृत दिनसे दस दिनमें पूर्ण होती है। हे पक्षिश्रेष्ठ! पुत्रादि दस दिनोंतक जो पिण्डदान करते हैं, वे प्रतिदिन चार भागोंमें विभाजित हो जाते हैं। उसमें प्रथम दो भागसे आतिवाहिक शरीर, तीसरे भागसे यमदूत और चौथे भागसे वह मृतक स्वयं तृप्त होता है।

नौ दिन और रात्रिमें वह शरीर अपने अंगोंसे युक्त हो जाता है। प्रथम पिण्डदानसे प्रेतके शिरोभागका निर्माण होता है। दूसरे पिण्डदानसे उसके कान-नेत्र और नाककी सृष्टि होती है। तीसरे पिण्डदानसे क्रमशः—कण्ठ, स्कन्ध, बाहु एवं वक्षःस्थल, चौथे पिण्डदानसे नाभि, लिंग और गुदाभाग तथा पाँचवें पिण्डदानसे जानु, जंघा और पैर बनते हैं। इसी प्रकार छठें पिण्डदानसे सभी मर्मस्थल, सातवें पिण्डदानसे नाड़ीसमूह, आठवें पिण्डदानसे दाँत और लोम तथा नवें पिण्डदानसे वीर्य एवं दसवें पिण्डदानसे उस शरीरमें पूर्णता, तृप्ति और भूख-प्यासका उदय होता है—

अहोरात्रैस्तु नवभिर्देहो निष्पत्तिमाप्नुयात्।
शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते तथा॥
द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकं तु समासतः।
गलांसभुजवक्षश्च तृतीयेन तथा क्रमात्॥
चतुर्थेन च पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदं तथा।
जानुजंघं तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा॥
सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाडयः।
दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यन्तु नवमेन च॥
दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः।

(५।३३—३७)

हे वैनतेय! अब मैं मध्यमषोडशी विधिका वर्णन करता हूँ। उसको सुनो।

विष्णुसे आरम्भ करके विष्णुपर्यन्त एकादश श्राद्ध तथा पाँच देवश्राद्ध इस प्रकार षोडश श्राद्ध किये जाते हैं। इन्हींका नाम मध्यमषोडशी है। यदि प्रेतकल्याणके निमित्त 'नारायणबलि' की जाय तो उसको एकादशाहके दिन करना चाहिये और उसी दिन वहींपर वृषोत्सर्ग भी करना चाहिये। जिस जीवका ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग नहीं होता, सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी उस जीवकी प्रेतत्वसे मुक्ति नहीं होती है। वृषोत्सर्ग बिना किये ही जो पिण्डदान किया जाता है, वह पूर्णतया निष्फल होता है। उससे प्रेतका कोई

१-अंत्यकर्मदीपक पृष्ठ ४० की टिप्पणीके अनुसार मृत व्यक्तिसे अवस्थामें जो लोग कनिष्ठ हैं, उन्हें मुण्डन कराना चाहिये—यह कुछ लोगोंका मत है। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि जितने लोग मरणके दुःखका अनुभव करनेवाले हैं, उन सभीको मुण्डन कराना चाहिये। इन दोनों मतोंको अपनी-अपनी परम्पराके अनुसार स्वीकार किया जा सकता है।

उपकार नहीं होता।[1] इस पृथ्वीपर वृषोत्सर्गके बिना कोई अन्य उपाय नहीं है, जो प्रेतका कल्याण करनेमें समर्थ हो। अतः पुत्र, पत्नी, दौहित्र (नाती), पिता अथवा पुत्रीको स्वजनकी मृत्युके पश्चात् निश्चित ही वृषोत्सर्ग करना चाहिये। चार बछियोंसे युक्त, विधानपूर्वक अलंकृत वृष, जिसके निमित्त छोड़ा जाता है उसको प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती। यदि एकादशाहके दिन यथाविधान साँड़ उत्सर्ग करनेके लिये उपलब्ध नहीं है तो विद्वान् ब्राह्मण कुश या चावलके चूर्णसे साँड़का निर्माण करके उसका उत्सर्ग कर सकता है। यदि बादमें भी वृषोत्सर्गके समय किसी प्रकार साँड़ नहीं मिल रहा है तो मिट्टी या कुशसे ही साँड़का निर्माण करके उसका उत्सर्ग करना चाहिये। जीवनकालमें प्राणीको जो भी पदार्थ प्रिय रहा हो उसका भी दान इसी एकादशाह श्राद्धके दिन करना उचित है। इसी दिन मरे हुए स्वजनको उद्देश्य बनाकर शय्या, गौ आदिका दान भी करना चाहिये। इतना ही नहीं उस प्रेतकी क्षुधा-शान्तिके लिये बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये।

हे विनतापुत्र गरुड! अब मैं तृतीय षोडशी (उत्तम-षोडशी)-श्राद्धका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनो।

प्रत्येक बारह मासके बारह पिण्ड, ऊनमासिक (आद्य) त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक एवं ऊनाब्दिक—इन्हें मतभेदसे तृतीय अथवा उत्तमषोडशी भी कहा जाता है।

बारहवें दिन, तीन पक्षमें, छः महीनेमें अथवा वर्षके अन्तमें सपिण्डीकरण करना चाहिये। जिस मृतकके निमित्त इन षोडश श्राद्धोंको सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको दान नहीं दिया जाता है, उस प्रेतके लिये अन्य सौ श्राद्ध करनेपर भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती। हे खगेश! मृतक व्यक्तिके एकादशाह अथवा द्वादशाह तिथिमें आद्यश्राद्ध करनेका विधान माना गया है। प्रतिमासका श्राद्ध मासके आद्यतिथिमें मृत-तिथिपर होना चाहिये। ऊनश्राद्ध (ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक तथा ऊनाब्दिक)-मास, छठें मास और वर्षमें एक, दो अथवा तीन दिन कम रहनेपर करना चाहिये[2]। सपिण्डीकरण वर्ष पूर्ण होनेके बाद अथवा छः महीने बाद करना चाहिये अथवा आभ्युदयिक (विवाहादि मङ्गल-कार्य अनिवार्य रूपसे उपस्थित होनेपर) कार्य आनेपर तीन पक्ष अथवा बारह दिनके बाद करना चाहिये। मनुष्योंके कुलधर्म असंख्य हैं, उनकी आयु भी क्षरणशील है और शरीर अस्थिर है। अतः बारहवें दिन सपिण्डीकरण करना उत्तम है।

हे पक्षिराज! सपिण्डीकरण श्राद्धोंके सम्पादकीय विधि भी मुझसे सुनो।

हे काश्यप! एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार यह कार्य करना चाहिये[3]। तिल, गन्ध और जलसे परिपूर्ण चार पात्रोंकी व्यवस्था करके एक पात्र प्रेतके निमित्त और शेष तीन पात्र पितृगणोंके लिये निश्चित करना चाहिये। तदनन्तर उन तीन पात्रोंमें प्रेतपात्रके जलका सेचन करे। चार पिण्ड बनाये और प्रेत-पिण्डका उन तीन पिण्डोंमें मेलन कर दे। तबसे वह प्रेत पितरके रूपमें हो जाता है। हे खगेश्वर! उस प्रेतमें

१-एकादशाहे प्रेतस्य यस्योत्सृज्येत नो वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥
अकृत्वा यद्वृषोत्सर्गं कृतं वै पिण्डपातनम्। निष्फलं सकलं विद्यात्प्रमीताय न तद्भवेत्॥ (५।४०-४१)

२-(क) एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनोन एव वा। श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः॥
नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिपुष्करे। ऊनश्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधनक्षयात्॥ (गार्ग्य)
द्विपुष्करे च नन्दायां सिनीवाल्यां भृगोर्दिने। चतुर्दश्यां च नो तानि कृत्तिकासु त्रिपुष्करे॥

एक, दो, तीन अथवा दस दिन कम रहनेपर, नन्दा तिथिको, शुक्रवारको, चतुर्दशी तिथि, त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर योग, अमावास्या तिथि, कृत्तिका, रोहिणी तथा मृगशिरा तिथियोंमें ऊनश्राद्ध (ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक, ऊनाब्दिक) नहीं करना चाहिये।

(ख) 'सपिण्डीकरणं चैव' इस वाक्यसे तृतीय षोडशीके अन्तर्गत सपिण्डीमें किये जानेवाले प्रेतश्राद्धकी गणना करनेपर 'शतार्द्धेन तु मेलयेत्' इस वाक्यसे विरोध होता है। सपिण्डीकरणमें किये जानेवाले प्रेतश्राद्धको तृतीय षोडशीके अन्तर्गत कात्यायनने माना है। इसका 'शतार्धेन तु मेलयेत्'से विरोध है।

श्राद्धकल्पलतामें तथा आचार्य गोभिल, लौगाक्षि पैठिनसिके मतमें सपिण्डन श्राद्ध तृतीय षोडशीके बाहर है।

(ग) 'द्वादशप्रतिमास्यानि' इस पदसे प्रथम मासिकका बोध हो जानेके कारण आद्य पदके अर्थमें ऊनमासिक उपलक्षण है। इसी प्रकार 'षाण्मासिक' पदका ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक अर्थमें लाक्षणिक प्रयोग है।

३-सपिण्डीकरणके अन्तर्गत किये जानेवाले केवल प्रेतश्राद्धके उद्देश्यसे एकोद्दिष्ट विधिका उल्लेख है। इस श्राद्धके अन्तर्गत किया जानेवाला प्रेतके पिता आदिका श्राद्ध सदैव पार्वण-विधिसे किया जाना चाहिये।

पितृत्वभावके आ जानेके बाद उस प्रेत तथा अन्य उसके पितृ-पितामह आदि पितरोंका समस्त श्राद्धकृत्य श्राद्धकी सामान्य विधिके अनुसार ही करना चाहिये। मृत पतिके साथ एक ही चितामें प्रवेश और एक ही दिन दोनोंकी मृत्यु होनेपर स्त्रीका सपिण्डीकरण नहीं होता है। उसके पतिके सपिण्डीकरण श्राद्धसे ही स्त्रीका सपिण्डीकरण श्राद्ध सम्पन्न हो जाता है। हे खगेश! पतिके मरनेके बाद स्त्रीकी मृत्यु होनेपर स्त्रीका सपिण्डन पतिके साथ होगा और सहमृत्युकी दशामें दोनोंके श्राद्धके लिये एक पाक, एक समय तथा एक कर्ता होगा। किंतु श्राद्ध पति-पत्नीका पृथक्-पृथक् ही किया जाना चाहिये। यदि स्त्री पतिके साथ चितामें सती न होकर अन्य किसी दिन सती होती है तो उस स्त्रीकी मृत तिथिके आनेपर उसके लिये पृथक् रूपसे पिण्डदान करना चाहिये।

हे गरुड! सहमृत्युकी दशामें प्रत्येक वर्ष नवश्राद्ध एक साथ करना चाहिये। जिस मृतकका वार्षिक श्राद्धसे पूर्व सपिण्डीकरण हो जाता है, उसके लिये भी वर्षभर मासिक श्राद्ध और जलकुम्भ दान करना चाहिये[1]। धनका बँटवारा हो जानेपर भी नव श्राद्ध, सपिण्डन श्राद्ध और षोडश श्राद्ध करनेका अधिकार एक ही व्यक्तिको है।

हे कश्यपपुत्र! अब मैं तुम्हें नवश्राद्ध करनेका काल बताऊँगा। उसको सुनो।

हे पक्षिन्! मृत्युके दिन मृतस्थानपर पहला श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद दूसरा श्राद्ध मार्गमें उस स्थानपर करना चाहिये जहाँपर शव रखा गया था। तदनन्तर तीसरा श्राद्ध अस्थिसंचयनके स्थानपर होता है। इसके बाद पाँचवें, सातवें, आठवें, नवें, दसवें और ग्यारहवें दिन श्राद्ध होता है। इसलिये इन्हें नवश्राद्ध कहा जाता है। ये नव श्राद्ध तृतीया षोडशी कहे जाते हैं। इनको एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार ही करना चाहिये। पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें और ग्यारहवें दिन होनेवाले श्राद्धोंको नवश्राद्ध कहा जाता है। दिनकी संख्या छः ही है पर छः दिनमें ही नव श्राद्ध हो जाते हैं। इस विषयमें ऋषियोंके बीच मतभेद हैं, इसी कारण मैंने उनको भी तुम्हें बता दिया।

श्राद्धोंका जो योग रूढिगत रूपसे है, वही मुझे भी अभीष्ट है। किसीको नव शब्दका यौगिक अर्थ अभीष्ट है। आद्य और द्वितीय श्राद्धमें एक ही पवित्रक देना चाहिये। जब ब्राह्मण भोजन कर चुके हों तो उसके बाद प्रेतको पिण्डदान देना उचित होता है[2]। यहाँपर यजमान और ब्राह्मणके बीच प्रश्नोत्तर भी होना चाहिये। जिसमें यजमान ब्राह्मणसे यह प्रश्न करे कि आप मेरी सेवासे प्रसन्न हैं? उसका उत्तर ब्राह्मण दे कि हाँ हम आपपर प्रसन्न हैं। आपके उस मृत स्वजनको अक्षय लोककी प्राप्ति हो।

हे पक्षिराज! अब तुम मुझसे एकोद्दिष्ट श्राद्धके विषयमें भी सुनो। जिसको वर्षपर्यन्त करना चाहिये।

सपिण्डीकरणके बादमें किये जानेवाले षोडश श्राद्धोंका सम्पादन एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार ही होना चाहिये, किंतु पार्वण-श्राद्धमें उक्त नियमका प्रयोग नहीं होता है। जिस प्रकारसे प्रत्येक वर्षमें होनेवाला प्रत्यब्द श्राद्ध[3] होता है, उसी प्रकार उन षोडश श्राद्धोंको भी करना चाहिये। एकादशाह और द्वादशाहमें जो श्राद्ध किया जाता है उन दिनोंमें स्वयं प्रेत भी भोजन करता है। अतः स्त्री और पुरुषके लिये जो पिण्डदान इन दिनोंमें दिया जाय उसको अमुक प्रेतके निमित्त दिया जा रहा है, ऐसा कहकर पिण्डदान देना चाहिये। सपिण्डीकरण श्राद्ध होनेके पश्चात् प्रेत शब्दका प्रयोग नहीं होता है। एक वर्षतक घरके बाहर प्रतिदिन दीपक जलाना चाहिये। अन्न, दीप, जल, वस्त्र और अन्य जो कुछ भी वस्तुएँ दानमें दी जाती हैं, वे सभी सपिण्डीकरणतक प्रेत शब्दके सम्बोधनसे संकल्पित होनेपर ही प्रेतको तृप्ति प्रदान करती हैं।

हे वैनतेय! संक्षिप्त रूपमें मैंने वार्षिक कृत्य कह दिया। अब तुम विवस्वान् पुत्र यमराजके घर जिस प्रकार जीवका गमन होता है, उसका वर्णन सुनो।

हे अरुणानुज! त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवें दिन श्राद्धकृत्य एवं गरुडपुराणके श्रवणके अनन्तर वह जीव, तुम्हारे द्वारा पकड़े गये सर्पके समान यमदूतोंके द्वारा पकड़ लिया जाता है और पकड़े गये बन्दरके समान अकेला ही उस यमलोकके मार्गमें चलता जाता है। उसके बाद वायुके द्वारा

१-यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत्। मासिकञ्चोदकुम्भञ्च देयं तस्यापि वत्सरम्॥ (५। ६४)

२-यह प्राय: सपाक्षिकश्राद्धकी विधि है।

३-वार्षिक तिथिपर होनेवाला श्राद्ध।

अग्रसारित वह जीव दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है, दूसरे शरीरमें जानेके पूर्वका जो शरीर है वह पिण्डज (दिये गये पिण्डोंसे निर्मित) है। दूसरी योनियोंका शरीर तो पितृसम्भव (माता-पिताके रज-वीर्यसे उत्पन्न होनेवाला) होता है। इन शरीरोंके प्रमाण, वय, अवस्था एवं संस्थान (आकृतिविशेष) आदि श्राद्ध करनेवालेकी श्रद्धा एवं देह प्राप्त करनेवालेके कर्मानुसार होते हैं। प्रमाणतः यम और मर्त्यलोकके बीच छियासी हजार योजनका अन्तराल है। वह जीव प्रतिदिन अधिक-से-अधिक दो सौ सैंतालिस योजन और आधा कोसका मार्ग तय करता है। इस प्रकार उस जीवकी यात्रा तीन सौ अड़तालीस दिनोंमें पूरी होती है। इस यमलोककी यात्रामें जीवको यमदूत खींचते हुए ले जाते हैं। जो प्राणी अपने जीवनभर पापमें अनुरक्त थे, उनको इस मार्गमें जो कष्ट भोगना पड़ता है, उसको विस्तारपूर्वक सुनो—

मृत्युके तेरहवें दिन वह पापी यमदूतोंके कठोर पाशोंमें बाँध लिया जाता है। हाथमें अंकुश लिये हुए क्रोधावेशमें तनी हुई भौंहोंसे युक्त दण्डप्रहार करते हुए यमदूत उसको खींचते हुए दक्षिण दिशामें स्थित अपने लोकको ले जाते हैं। यह मार्ग कुश, काँटों, बाँबियों, कीलों और कठोर पत्थरोंसे परिव्याप्त रहता है। कहीं-कहीं उस मार्गमें अग्नि

जलती रहती है और कहीं-कहीं सैकड़ों दरारोंसे दुर्गम भूमि होती है। प्रचंड सूर्यकी गर्मी और मच्छरोंसे परिव्याप्त उस मार्गमें प्राणी सियारोंके समान वीभत्स चीत्कार करते हुए यमदूतोंके द्वारा खींचे जाते हैं। यमलोकके दारुण मार्गमें पापी जाता है और शरीरके जलनेके कारण अत्यन्त क्षीणताको प्राप्त होता है। अपने कर्मानुसार विभिन्न जंतुओंके द्वारा अङ्गोंके खाये जाने, भेदन एवं छेदन किये जानेके कारण जीव अत्यधिक दारुण दुःख प्राप्त करता है।

हे तार्क्ष्य! जीव अपने कर्मानुसार दूसरे शरीरको प्राप्त करके यमलोकमें नाना प्रकारका कष्ट भोगता है। यमलोकके इस मार्गमें सोलह पुर पड़ते हैं। उनके विषयमें भी सुनो— याम्य, सौरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वपुर, शैलागम, क्रौंच, क्रूरपुर, विचित्रभवन, बह्वापद, दुःखद, नानाक्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्र, पयोवर्षण, शीताढ्य और बहुभीति—ये सोलह पुर हैं, भयंकर होनेसे ये दुर्दर्शन हैं। याम्यपुरके मार्गमें प्रविष्ट होकर जीव 'हे पुत्र! हे पुत्र! मेरी रक्षा करो' ऐसा करुणक्रन्दन करता हुआ अपने द्वारा किये गये पापोंका स्मरण करता है और अठारहवें दिन वह यमराजके उस नगरमें पहुँच जाता है। वहाँ पुष्पभद्रा नामक नदी प्रवाहित होती है। वहाँ देखनेमें अत्यन्त सुन्दर वटवृक्ष है जहाँपर जीव विश्राम करना चाहता है, किंतु यमदूत उसको वहाँ विश्राम नहीं करने देते। उसके पुत्रोंके द्वारा स्नेहपूर्वक अथवा अन्य किसीके द्वारा कृपापूर्वक पृथ्वीपर जो मासिक पिण्डदान दिया जाता है, उसीको वह वहाँपर खाता है।

तदनन्तर वहाँसे उसकी यात्रा सौरिपुरके लिये होती है। चलता हुआ वह मार्गमें यमदूतोंके द्वारा मुद्गरोंसे पीटा जाता है। उस दुःखसे अत्यधिक पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

जलाशयो नैव कृतो मया तदा
मनुष्यतृप्त्यै पशुपक्षितृप्तये।
गोतृप्तिहेतोर्न च गोचरः कृतः
शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(५। १००)

उस जन्ममें मनुष्य और पशु-पक्षियोंकी संतुष्टिके लिये मैंने जलाशय नहीं खुदवाया। गौओंकी क्षुधा-शान्तिके लिये गोचरभूमिका दान भी मैंने नहीं दिया। अतः हे शरीर! जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अब तुम अपना निस्तार करो।

उस सौरिपुरमें कामरूपधारी इच्छानुसार स्थितिशील एवं गतिशील राजा राज्य करता है। उसका दर्शनमात्र करनेसे जीव भयसे काँप उठता है और अपने अनिष्टकी शंकासे ग्रस्त होकर त्रिपक्षमें पुत्रादिक स्वजनोंके द्वारा पृथ्वीपर दिये गये

जलयुक्त पिण्डको खाकर आगे बढ़ता है। वहाँसे वह आगे बढ़ता हुआ मार्गमें यमदूतोंके खड्गप्रहारसे अत्यन्त पीड़ित होकर इस प्रकार प्रलाप करता है—

न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं
पुस्तं च दत्तं न हि वेदशास्त्रयोः।
पुराणदृष्टो न हि सेवितोऽध्वा
शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(५।१०३)

हे शरीर! मैंने जलादिका सदा दान नहीं दिया है, न तो नियमसे प्रतिदिन गायके लिये अपेक्षित गोग्रास आदि कृत्य किया है और न तो वेदशास्त्रकी पुस्तकका ही दान किया है। पुराणमें देखे हुए मार्ग (तीर्थयात्रा आदि)-का मैंने सेवन नहीं किया है, इसलिये जैसा तुमने किया है, उसीमें अपना निस्तार करो।

इसके बाद जीव 'नगेन्द्रनगर'में जाता है। वहाँपर वह अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा दूसरे महीनेमें दिये गये अन्नको खाकर आगेकी ओर प्रस्थान करता है। चलते हुए उसके ऊपर यमदूतोंद्वारा कृपाणकी मुठियोंसे प्रहार किये जानेपर वह इस प्रकार प्रलाप करता है—

पराधीनमभूत् सर्वं मम मूर्खशिरोमणेः॥
महता पुण्ययोगेन मानुष्यं लब्धवानहम्।
(५।१०५-१०६)

बहुत बड़े पुण्योंको करनेके पश्चात् मुझे मनुष्य-योनि प्राप्त हुई थी, किंतु मुझ मूर्खाधिराजका सब कुछ पराधीन हो गया अर्थात् मनुष्ययोनि प्राप्त करके भी मैं कुछ सत्कर्म न कर सका।

इस प्रकार विलाप करता हुआ जीव तीसरे मासके पूरा होते ही गन्धर्वनगरमें पहुँच जाता है। तदनन्तर समर्पित किये गये तृतीय मासिक पिण्डको वहाँ खाकर वह पुनः आगेकी ओर चल देता है। मार्गमें यमदूत उसको कृपाणके अग्रभागसे मारते हैं, जिससे आहत होकर वह पुनः इस प्रकार विलाप करता है—

मया न दत्तं न हुतं हुताशने
तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे।
न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं
शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(५।१०८)

मैंने कोई दान नहीं दिया, अग्निमें आहुति नहीं डाली और न तो हिमालयकी गुफामें जाकर तप ही किया है। अरे! मैं तो इतना नीच हूँ कि गङ्गाके परम पवित्र जलका भी सेवन नहीं किया, इसलिये हे शरीर! जैसा तुमने कर्म किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो।

हे पक्षिन्! चौथे मासमें जीव शैलागमपुर पहुँच जाता है। वहाँ उसके ऊपर निरन्तर पत्थरोंकी वर्षा होती है। पुत्रके द्वारा दिये गये चतुर्थ मासिक श्राद्धको प्राप्तकर वह जीव सरकते हुए चलता है किंतु पत्थरोंके प्रहारसे अत्यन्त पीड़ित होकर वह गिर पड़ता है और रोते हुए यह कहता है—

न ज्ञानमार्गो न च योगमार्गो
न कर्ममार्गो न च भक्तिमार्गः।
न साधुसङ्गात् किमपि श्रुतं मया
शरीर हे निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(५।१११)

मैंने न तो ज्ञानमार्गका सेवन किया न योगमार्गका, न कर्ममार्ग और न ही भक्तिमार्गको अपनाया और न साधु-सन्तोंका साथ करके उनसे कुछ हितैषी बातें ही सुनी हैं। अतः हे शरीर! तब जैसा तुमने किया है, उसीके अनुसार अपना निस्तार करो। मृत्युके पाँचवें मासमें कुछ कम दिनोंमें वह 'क्रौंचपुर' पहुँच जाता है, उस समय पुत्रादिके द्वारा दिये गये ऊनषाण्मासिक श्राद्धके पिण्ड और जलका सेवन करके वहाँ एक घड़ी विश्राम करता है।

हे कश्यपपुत्र! इसके बाद छठे मासमें जीव 'क्रूरपुर'की ओर चल देता है। मार्गमें वह पृथ्वीपर दिये गये पञ्चम मासिक पिण्डको खाकर जलपान करता है। तत्पश्चात् वह क्रूरपुरकी ओर फिर बढ़ता है, किंतु यमदूत मार्गमें उसको पट्टिशों (अस्त्रविशेष)-द्वारा मारते हैं, जिससे वह गिर पड़ता है और इस प्रकार विलाप करता है—

हा मातर्हा पितर्भ्रातः
सुता हा हा मम स्त्रियः॥
युष्माभिर्नोपदिष्टोऽहम-
वस्थां प्राप्त ईदृशीम्।
(५।११३-११४)

हे मेरे माता-पिता और भाई-बन्धु! हे मेरे पुत्र! हे मेरी स्त्रियो! आप लोगोंने मुझे कोई ऐसा उपदेश नहीं दिया,

जिससे मैं उन दुष्कृत्योंसे बच सकता, जिनके कारण मेरी इस प्रकारकी अवस्था हो गयी।

इस प्रकारका विलाप करते हुए उस जीवसे यमदूत कहते हैं—अरे मूर्ख! तेरी कहाँ माता है, कहाँ पिता है, कहाँ स्त्री है, कहाँ पुत्र है और कहाँ मित्र है? तू अकेला ही चलते हुए इस मार्गमें अपने द्वारा किये गये दुष्कृत्योंके फलका उपभोग कर। हे मूर्ख! तू जान ले इस मार्गमें चलनेवाले लोगोंको दूसरेकी शक्तिका आश्रय करना व्यर्थ है। परलोकमें जानेके लिये पराये आश्रयकी आवश्यकता नहीं होती है। वहाँ (स्वकर्मार्जित) पुण्य ही साथ देता है। तुम्हारा तो उसी मार्गसे गमन निश्चित है, जिस मार्गमें किसी क्रय-विक्रयके द्वारा भी अपेक्षित सुख-साधनका संग्रह नहीं किया जा सकता।

इसके बाद वह जीव 'विचित्रनगर'के लिये चल देता है। रास्तेमें यमदूत उसको शूलके प्रहारसे आहत कर देते हैं, जिसके कारण वह दुखित होकर इस प्रकारका विलाप करता है—

कुत्र यामि न हि गामि जीवितं हा मृतस्य मरणं पुनर्न वै।

(५।११९)

हाय! मैं कहाँ चल रहा हूँ, मैं तो निश्चित ही अब जीवित नहीं रहना चाहता, फिर भी जीवित हूँ। मरे हुए प्राणीकी मृत्यु पुनः नहीं होती।

इस प्रकारका विलाप करता हुआ वह जीव यातना-शरीरको धारण करके 'विचित्रनगर'में जाता है। जहाँपर विचित्र नामका राजा राज्य करता है। वहाँपर वह षाण्मासिक पिण्डसे अपनी क्षुधाको शान्त कर आगे आनेवाले नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें यमदूत भालेसे प्रहार करते हैं, जिससे संत्रस्त होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

माता भ्राता पिता पुत्रः कोऽपि मे वर्तते न वा।
यो मामुद्धरते पापं पतन्तं दुःखसागरे॥

(५।१२२)

मेरे माता-पिता, भाई, पुत्र कोई है अथवा नहीं है, जो इस दुःखके सागरमें गिरे हुए मुझ पापीका उद्धार कर सके।

ऐसा विलाप करता हुआ वह जीव मार्गमें चलता रहता है। उसी मार्गमें 'वैतरणी' नामकी एक नदी पड़ती है, जो सौ योजन चौड़ी है और रक्त तथा पीबसे भरी हुई है। जैसे ही मृतक उस नदीके तटपर पहुँचता है, वैसे ही वहाँपर नाववाले—मल्लाह आदि उसको देखकर यह कहते हैं कि यदि तुमने वैतरणी गौका दान दिया है तो इस नावपर सवार हो जाओ और सुखपूर्वक इस नदीको पार कर लो। जिसने वैतरणी नामक गौका दान दिया है, वही सुखपूर्वक इस नदीको पार कर सकता है। जिस व्यक्तिने वैतरणी गौका दान नहीं दिया है, उसको नाविक हाथ पकड़कर घसीटते हुए ले जाते हैं। तेज और नुकीली चोंचसे कौआ, बगुला तथा उलूक नामक पक्षी अपने प्रहारसे उसे अत्यन्त व्यथित करते हैं। हे पक्षिन्! अन्त समय आनेपर मनुष्योंके लिये वैतरणीका दान ही हितकारी है। यदि प्राणी अपने जीवनकालमें वैतरणी नामक गौका दान देता है तो वह गौ समस्त पापोंको विनष्ट कर देती है और उसको यमलोक न ले जाकर विष्णुलोकको पहुँचा देती है।[1]

सातवाँ मास आ जानेपर मृतक 'बह्वापद' नामक पुरमें आ जाता है। वहाँपर सप्तमासिक सोदक पिण्डका सेवन करके आगे बढ़ते हुए परिघके आघातसे पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

न दत्तं न हुतं तप्तं न स्नातं न कृतं हितम्।
यादृशं चरितं कर्म मूढात्मन् भुंक्ष्व तादृशम्॥

(५।१२९)

हे शरीर! मैंने दान, आहुति, तप, तीर्थस्नान तथा परोपकार आदि सत्कृत्य जीवनपर्यन्त नहीं किया है। हे मूर्ख! अब जैसा तुमने कर्म किया है, वैसा ही भोग करो।

हे तार्क्ष्य! इसके बाद वह जीव आठवें मासमें 'दुःखदपुर' पहुँचता है। वहाँ स्वजनोंके द्वारा दिये गये अष्टमासिक पिण्ड और जलका सेवन करके 'नानाक्रन्द' नामक पुरकी ओर प्रस्थान कर देता है। मार्गमें चलते हुए मुसलाघातसे पीड़ित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

क्व जायाचटुलैश्चाटुपटुभिर्वचनैर्मम॥
भोजनं भल्लभल्लीभिर्मुसलैश्च क्व मारणम्।

(५।१३१-१३२)

हाय! कहाँ चंचल नेत्रोंवाली पत्नीके चापलूसी भरे वचनोंके द्वारा किये गये मनोविनोदोंके बीच मेरा भोजन होता था और कहाँ भाला-बर्छियों तथा मुसलोंके द्वारा मुझे मारा जा रहा है!

१-मनुजानां हितं दानमन्ते वैतरणी खग। दत्ता पापं दहेत् सर्वं मम लोकं तु सा नयेत्॥ (५।१२६-१२७)

इस प्रकार विलाप करता हुआ वह जीव नवें मासमें 'नानाक्रन्दपुर' पहुँच जाता है। तदनन्तर नवें मासमें पुत्रद्वारा दिये गये पिण्डका भोजन करके वह नाना प्रकारका विलाप करता है। तत्पश्चात् यमदूत दसवें मासमें उसको 'सुतप्तभवन' ले जाते हैं। मार्गमें वे उसको हलसे मारते-पीटते हैं, जिससे आहत होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

क्व सूनुपेशलकरैः पादसंवाहनं मम॥
क्व दूतवज्रप्रतिमकरैर्मत्पदकर्षणम्।
(५।१३४-१३५)

हाय! कहाँ पुत्रोंके कोमल-कोमल हाथोंसे मेरे पैर दाबे जाते थे और कहाँ आज इन यमदूतोंके वज्रसदृश कठोर हाथोंसे पैर पकड़कर मुझे निर्दयतापूर्वक घसीटा जा रहा है!

दसवें मासमें वहींपर पिण्ड और जलका उपभोग करके वह (जीव) पुनः आगेकी ओर सरकने लगता है। ग्यारहवाँ मास पूर्ण होते ही वह 'रौद्रपुर' पहुँच जाता है। मार्गमें यमदूत जैसे ही उसकी पीठपर प्रहार करते हैं, वह चिल्लाते हुए इस प्रकार विलाप करता है—

क्वाहं सतूलीशयने परिवर्तन् क्षणे क्षणे।
भटहस्तभ्रष्टयष्टिकृष्टपृष्ठः क्व वा पुनः॥
(५।१३७)

कहाँ मैं रूईसे बने हुए अत्यन्त कोमल गद्देपर लेटकर प्रतिक्षण करवटें बदलता था और कहाँ आज यमदूतोंके हाथोंसे निर्दयतापूर्वक मारी जा रही लाठियोंके प्रहारसे कटी पीठसे करवट बदल रहा हूँ!

हे द्विज! इसके पश्चात् वह जीव पृथ्वीपर दिये गये जलसहित पिण्डको खाकर 'पयोवर्षण' नामक नगरकी ओर प्रस्थान करता है। रास्तेमें यमदूत कुल्हाड़ीसे उसके सिरपर प्रहार करते हैं। हताहत होकर वह इस प्रकारका विलाप करता है—

क्व भृत्यकोमलकरैर्गन्धतैलावसेचनम्॥
क्व कीनाशानुगैः क्रोधात्कुठारैः शिरसि व्यथा।
(५।१३९-१४०)

हाय! कहाँ भृत्योंके कोमल-कोमल हाथोंसे मेरे सिरपर सुवासित तेलकी मालिश होती थी और कहाँ आज क्रोधसे परिपूर्ण यमदूतोंके हाथोंसे मेरे इस सिरपर कुल्हाड़ियोंका प्रहार हो रहा है!

इस पयोवर्षण नामक नगरमें वह मृतक ऊनाब्दिक श्राद्धका दुःखपूर्वक उपभोग करता है। तदनन्तर वर्ष बीतते ही वह 'शीताढ्य' नगरकी ओर चल देता है। मार्गमें बढ़ते हुए उस मृतककी जिह्वाको यमदूत छूरीसे काट डालते हैं, जिससे दुःखित होकर वह इस प्रकार विलाप करता है—

प्रियालापैः क्व च रसमधुरत्वस्य वर्णनम्।
उक्तमात्रेऽसिपत्रादिजिह्वाच्छेदः क्व चैव हि॥
(५।१४२)

अरे! कहाँ परस्पर प्रिय वार्तालापोंके द्वारा इस जिह्वाके रसमाधुर्यकी प्रशंसा की जाती थी, कहाँ आज मुँह खोलनेमात्रपर ही तलवारके समान तीक्ष्ण छूरी आदिके द्वारा मेरी उसी जिह्वाको काट दिया जा रहा है!

तदनन्तर उसी नगरमें वह मृतक वार्षिक पिण्डोदक तथा श्राद्धमें दिये गये अन्य पदार्थोंका सेवन कर आगेकी ओर बढ़ता है। पिण्डज शरीरमें प्रविष्ट होकर वह 'बहुभीति' नामक नगरमें जाता है। वह मार्गमें अपने पापका प्रकाशन और स्वयंकी निन्दा करता है। यमपुरीके इस मार्गमें स्त्री भी इसी-इसी प्रकारका विलाप करती है।

इसके बाद वह मृतक अत्यन्त निकट ही स्थित यमपुरीमें जाता है। वह याम्यलोक चौवालीस योजनमें

विस्तृत है। उसमें श्रवण नामक तेरह प्रतीहार हैं। उन प्रतीहारोंको श्रवणकर्म करनेसे प्रसन्नता होती है। अन्यथा वे क्रुद्ध होते हैं। ऐसे लोकमें पहुँचनेके पश्चात् प्राणी मृत्युकाल तथा अन्तक आदिके मध्यमें स्थित क्रोधसे लाल-लाल नेत्रोंवाले काले पहाड़के समान भयंकर आकृतिसे

युक्त यमराजको देखता है। विशाल दाँतोंसे उनका मुखमण्डल बड़ा ही भयानक लगता है। उनकी भ्रू-भंगिमाएँ तनी रहती हैं, जिससे उनकी आकृति भयानक प्रतीत होती है। अत्यन्त विकृत मुखाकृतियोंसे युक्त सैकड़ों व्याधियाँ उनको चारों ओरसे घेरे रहती हैं। उनके एक हाथमें दण्ड और दूसरे हाथमें भैरव-पाश रहता है।

यमलोकमें पहुँचा हुआ जीव यमके द्वारा बतायी गयी शुभाशुभ गतिको प्राप्त करता है। जैसा मैंने तुमसे पहले कहा है, उसी प्रकारकी पापात्मक गति पापी जीवको प्राप्त होती है। जो लोग छत्र, पादुका और घरका दान देते हैं, जो लोग पुण्यकर्म करते हैं, वे वहाँपर पहुँचकर सौम्य स्वरूपवाले, कानोंमें कुण्डल और सिरपर मुकुट धारण किये हुए शोभासम्पन्न यमराजका दर्शन करते हैं।

चूँकि वहाँ जीवको बहुत भूख लगती है, इसलिये एकादशाह, द्वादशाह, षण्मास तथा वार्षिक तिथिपर बहुत-से ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। हे खगश्रेष्ठ! जो व्यक्ति पुत्र, स्त्री तथा अन्य सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा कहे गये उनके स्वार्थको ही जीवनपर्यन्त सिद्ध करता है और अपने परलोकको बनानेके लिये पुण्यकर्म नहीं करता, वही अन्तमें कष्ट प्राप्त करता है।

हे गरुड! मृत्युके पश्चात् संयमनीपुरको जानेवाले प्राणीकी जो गति होती है और वर्षपर्यन्त जो कृत्य किये जाते हैं, उसको मैंने कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ५)

वृषोत्सर्गकी महिमामें राजा वीरवाहनकी कथा, देवर्षि नारदके पूर्वजन्मके इतिहासवर्णनमें सत्संगति और भगवद्भक्तिका माहात्म्य, वृषोत्सर्गके प्रभावसे राजा वीरवाहनको पुण्यलोककी प्राप्ति

गरुडने कहा—हे प्रभो! जो तीर्थ-सेवन और दानमें निरन्तर लगा है तथा अन्य साधनोंसे भी सम्पन्न है, उसे भी वृषोत्सर्ग किये बिना परलोकमें सद्गति नहीं प्राप्त होती। इसलिये मनुष्यको वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये। ऐसा मैंने आपसे सुन लिया। इस वृषोत्सर्गका फल क्या है? प्राचीन समयमें इस यज्ञको किसने किया? इसमें किस प्रकारका वृष होना चाहिये? विशेष रूपसे इस कार्यको किस समय करना चाहिये और इसको करनेकी कौन-सी विधि बतायी गयी है? यह सब बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! मैं उस महापुण्यशाली इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका वर्णन ब्रह्माके पुत्र महर्षि वसिष्ठने राजा वीरवाहनसे किया था।

प्राचीन समयकी बात है, विराधनगरमें वीरवाहन नामक एक धर्मात्मा, सत्यवादी, दानशील और विप्रोंको संतुष्ट करनेवाले राजा रहते थे। किसी समय वे शिकार खेलनेके लिये वनमें गये। कुछ पूछनेकी जिज्ञासासे वे वसिष्ठमुनिके आश्रममें जा पहुँचे। वहाँ आसन ग्रहण कर विनम्रतासे झुके हुए राजाने ऋषियोंकी संसदमें मुनिको नमस्कार करके पूछा।

राजाने कहा—हे मुने! मैंने यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वक अनेक धार्मिक कृत्य किये हैं, फिर भी यमराजके कठोर शासनको सुनकर मैं हृदयमें बहुत ही भयभीत हूँ। हे कृपानिधान! महाभाग! ऋषिवर! मुझे यम, यमदूत और देखनेमें अतिशय भयंकर लगनेवाले नरकलोकोंको न देखना पड़े, ऐसा कोई उपाय बतानेकी कृपा करें।

वसिष्ठने कहा—हे राजन्! शास्त्रवेत्ता अनेक प्रकारके धर्मोंका वर्णन करते हैं, किंतु कर्ममार्गसे विमोहित जन सूक्ष्मतया उनको नहीं जानते। दान, तीर्थ, तपस्या, यज्ञ, संन्यास तथा पितृक्रिया आदि सभी धर्म हैं, उन धर्मोंमें भी वृषोत्सर्गका विशेष महत्त्व है। मनुष्यको बहुत-से पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये। यदि उनमेंसे एक भी पुत्र गया-तीर्थमें जाय, अश्वमेधयज्ञ करे अथवा नील वृषभ यथाविधि छोड़े तो जाने-अनजाने किये गये ब्रह्महत्या आदि पाप भी विनष्ट हो जाते हैं। यह शुद्धि नील वर्णके वृषभका उत्सर्ग अथवा समुद्रमें स्नान करनेसे भी हो सकती है। हे राजेन्द्र! जिसके एकादशाहमें वृषोत्सर्ग नहीं होता, उसका प्रेतत्व स्थिर ही रहता है। मात्र श्राद्ध करनेसे क्या लाभ होगा? जिस-किसी भाँति नगर अथवा तीर्थमें वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये।

हे खगेश! वृष-यज्ञके द्वारा प्रेतत्वसे मुक्ति प्राप्त होती

है, अन्य साधनोंसे नहीं। जो वृषभ शुभ लक्षणोंसे समन्वित युवा तथा कृष्ण गल-कम्बलवाला हो और सदैव जो गायोंके झुंडमें घूमनेवाला हो, उस वृषभको विधि-विधानसे चार अथवा दो या एक बछियाके साथ पहले उसका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर माङ्गलिक द्रव्यों एवं मन्त्रोंके साथ उन सबका उत्सर्ग किया जाय। 'इहरतीति॰' इन छ: मन्त्रोंसे अग्निदेवको आहुति देनी चाहिये। कार्तिक, माघ और वैशाखकी पूर्णिमा, संक्रान्ति, अन्य पुण्यकाल, व्यतिपात तथा तीर्थमें और पिताकी क्षयतिथि वृषोत्सर्गके लिये विशेष रूपसे प्रशस्त मानी जाती है। 'जो वृषभ लाल वर्णका हो और उसका मुँह-पूँछ पाण्डु (श्वेत-पीतमिश्रित) हो, खुर और सींगोंका वर्ण पीत हो, वह नीलवृषभ कहा जाता है'—

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः॥
पीतः खुरविषाणेषु स नीलो वृष उच्यते।

(६।१९-२०)

जो वृषभ श्वेत वर्णका होता है वह ब्राह्मण है, जो लोहित वर्णका है वह क्षत्रिय है, जो पीत वर्णका है वह वैश्य है और जो कृष्ण वर्णका है वह शूद्र है। अत: ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णको अपने वर्णके अनुसार वृषोत्सर्ग करना चाहिये अथवा रक्तवर्णका ही वृषभ सबके लिये कल्याणप्रद है।

पिता, पितामह तथा प्रपितामह पुत्रके उत्पन्न होनेपर यही आशा करते हैं कि यह मेरे लिये वृषोत्सर्ग करेगा। वृषोत्सर्गके समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्ददायकः॥
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे।
गङ्गायमुनयोः पेयमन्तर्वेदि तृणं चर॥
धर्मराजस्य पुरतो वाच्यं मे सुकृतं वृष।

(६।२३—२५)

हे धर्म! आप इस वृषभरूपमें संसारको आनन्द प्रदान करनेवाले देव हैं। आप ही अष्टमूर्ति शिवके अधिष्ठान हैं। अत: मुझे शान्ति प्रदान करें। आप गङ्गा-यमुनाका जल पियें। अन्तर्वेदीमें घास चरें और हे वृष! धर्मराजके सामने मेरे पुण्यकर्मकी चर्चा करें।

इस प्रकारका निवेदन करते हुए संस्कर्ताको चाहिये कि वृषभके दाहिने कन्धेपर त्रिशूल और बायें ऊरुभागमें चक्रका चिह्न अंकित करके गन्ध, पुष्प तथा अक्षत आदिसे बछियाके सहित उस वृषभकी पूजा करके विधिवत् बन्धनमुक्त कर दे।

वसिष्ठजीने कहा—हे राजन्! आप भी विधिवत् वृषोत्सर्ग करें, अन्यथा सभी साधनोंसे सम्पन्न होनेपर भी आपको सद्गति नहीं प्राप्त हो सकती है। राजन्! पहले त्रेतायुगमें विदेहनगरमें धर्मवत्स नामका एक ब्राह्मण था, जो अपने वर्णानुसार कर्ममें अहर्निश निरत, विद्वान्, विष्णुभक्त, अत्यन्त तेजस्वी और यथालाभसे संतुष्ट रहता था। एक बार पितृपर्वके आनेपर वह कुश लेनेके लिये वनमें गया। वहाँ इधर-उधर घूमता हुआ वह कुश और पलाशके पत्तोंको एकत्र करने लगा। एकाएक वहाँपर देखनेमें अत्यन्त सुन्दर चार पुरुष आये और उस ब्राह्मणको पकड़कर आकाशमार्गसे लेकर चले गये। वे चारों पुरुष उस दीन, व्यथित ब्राह्मणको पकड़कर बहुत-से वृक्षोंवाले घनघोर वन, पर्वतोंके दुर्गोंको पार कराते हुए एक वनसे दूसरे वनके मध्य ले गये। हे राजन्! वहाँपर उस ब्राह्मणने एक बहुत बड़ा नगर देखा। वह नगर मुख्यद्वारसे समन्वित तथा अनेक प्रासादोंसे सुशोभित हो रहा था। चबूतरा, बाजार, खरीदी-बेची जानेवाली वस्तुओं और नर-नारीसे युक्त उस नगरमें तुरहियोंकी ध्वनि हो रही थी। वीणा और नगाड़े बज रहे थे। वहाँ कुछ भूखसे पीड़ित, दीन-हीन, पुरुषार्थसे रहित लोगोंको भी उसने देखा। उसके बाद अत्यन्त मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्रोंको पहने हुए लोग दिखायी पड़े। आगे हृष्ट-पुष्ट स्वर्णाभूषणसे अलंकृत सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए कुछ ऐसे लोग थे, जो देवताओंके समान शोभासम्पन्न थे; जिनको देखकर वह विस्मयाभिभूत हो उठा। वह सोचने लगा कि क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? अथवा यह कोई माया है? या मेरे मनका यह विभ्रम है? वह ब्राह्मण इस प्रकारकी शंका कर ही रहा था कि वे चारों पुरुष उसको लेकर राजाके पास गये। स्वर्णजटित उस राजप्रासादके बीच स्थित राजाको वह ब्राह्मण एकटक देखता ही रह गया। वहाँपर एक महादिव्य सिंहासन था, जहाँ छत्र और चँवर डुलाये जा रहे थे। उसके ऊपर

१-ॐ इह रतिः स्वाहा इदमग्नये। ॐ इह रमध्वं स्वाहा इदमग्नये। ॐ इह धृतिः स्वाहा इदमग्नये। ॐ इह स्वधृतिः स्वाहा इदमग्नये। ॐ उपसृजन् धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् स्वाहा इदमग्नये। ॐ रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा इदमग्नये। (यजु॰ ८।५१)

स्वर्णनिर्मित मुकुट धारण किया हुआ महान् शोभा-सम्पन्न राजा बैठा हुआ था। वन्दीजन उसका गुणगान कर रहे थे।

राजा उस ब्राह्मणको देखकर खड़ा हो गया और उसने मधुपर्क तथा आसनादि प्रदान कर उनकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर वह राजा उन विप्रदेवसे इस प्रकार कहने लगा—हे प्रभो! आज आप जैसे धर्मपरायण विष्णुभक्तका दर्शन हुआ है, इससे मेरा जन्म सफल हो गया। मेरा यह कुल भी पवित्र हो उठा। तदनन्तर राजाने उस ब्राह्मणको प्रणाम किया और बहुत प्रकारसे उनको संतुष्ट करके अपने दूतोंसे कहा—हे दूतो! ये ब्राह्मणदेव जहाँसे आये हुए हैं, पुनः तुम सब इन्हें वहीं ले जाकर पहुँचा आओ। ऐसा सुनकर उन ब्राह्मणश्रेष्ठने राजासे पूछा—

हे राजन्! यह कौन-सा देश है? यहाँपर ये उत्तम, मध्यम और अधम चरित्रवाले लोग कहाँसे आये हुए हैं? आप किस पुण्यके प्रभावसे यहाँ इन सबके बीच प्रधान पदपर विराजमान हैं? मुझको यहाँ किसलिये लाया गया और फिर क्यों वापस भेजा जा रहा है? यह सब स्वप्नके समान मुझे अनोखा दिखायी दे रहा है?

इसपर राजाने कहा—हे विप्रदेव! अपने धर्मका पालन करते हुए जो मनुष्य सदैव भगवान् हरिकी भक्तिमें अनुरक्त और इन्द्रियोंके विषयसे परे रहता है, वह मेरे लिये निश्चित ही पूज्य है। नित्य जो प्राणी तीर्थोंकी यात्रा करनेमें ही लगा रहता है, जो वृषोत्सर्गके माहात्म्यको भलीभाँति जानता है और जो सत्य एवं दान-धर्मका पालक है, वह व्यक्ति देवताओंके लिये भी प्रणम्य है। हे परंतप! हे पूजार्ह! आपका दर्शन हम सभी प्राप्त कर सकें, इसलिये आपको यहाँ लाया गया था। हे देव! आप मुझपर प्रसन्न हों और मुझे इस साहसके लिये क्षमा करें। मैं स्वयं अपने सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। इस वृत्तान्तका वर्णन मेरा यह विपश्चित् नामवाला मन्त्री करेगा। राजाका वह मन्त्री सब वेदोंको जाननेवाला विद्वान् व्यक्ति था। अतः अपने स्वामीकी हार्दिक इच्छाको जानकर वह कहने लगा—

हे विप्र! यह राजा पूर्वजन्ममें द्विज और देवताओंसे सुशोभित विराधनगरमें विश्वम्भर नामका एक वैश्य था। ऐसा मैंने सुना है। वैश्य-वृत्तिसे जीवनयापन करते हुए वह अपने परिवारका पालन करता था। नित्य गायोंकी सेवा तथा ब्राह्मणोंकी पूजा भी करता था। सत्पात्रको दान, अतिथिसेवा तथा अग्निहोत्र करना उसका नित्य धर्म था। सत्यमेधा नामकी पत्नीके साथ उसने विधिवत् गृहस्थाश्रमका संचालन किया। उसने स्मार्त कर्मके अनुष्ठानसे सभी लोकों तथा श्रौत कर्मोंसे देवताओंको जीत लिया था।

किसी समय जब वह वैश्य अपने भाइयोंके साथ बहुत-से तीर्थोंकी यात्रा कर अपने घर लौट रहा था, तब मार्गमें ही उसे लोमश ऋषिका दर्शन हो गया। उसने महर्षिके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम किया। हाथ जोड़कर विनयावनत खड़े उस वैश्यसे करुणाके सागर महर्षि लोमशने पूछा—

हे भद्रपुरुष! ब्राह्मणों और अपने भाई-बन्धुओंके साथ आप कहाँसे आ रहे हैं? धर्मप्राण! आपको देखकर मेरा मन आर्द्र हो उठा है।

इसपर विश्वम्भर वैश्यने उत्तर दिया—मुनिवर! यह शरीर नश्वर है। मृत्यु प्राणीके सामने ही खड़ी रहती है—ऐसा जानकर अपनी धर्मपरायणा पत्नीके साथ मैं तीर्थयात्रामें गया था। तीर्थोंका विधिवत् दर्शन एवं प्रचुर धन-दान कर मैं अपने घरकी ओर वापस जा रहा था कि सौभाग्यवश आपका दर्शन हो गया।

लोमशने कहा—इस भारतवर्षकी पावन भूमिमें बहुत-से तीर्थ हैं। आपने जिन तीर्थोंकी यात्रा की है, उनका वर्णन मुझसे करें।

वैश्यने कहा—हे ऋषिवर! जहाँ गङ्गा, यमुना और सरस्वती नामक पवित्रतम नदियाँ एक साथ मिलकर प्रवाहित होती हैं, जहाँ ब्रह्मा तथा देवराज इन्द्रने दशाश्वमेध-यज्ञ किया था उस तीर्थराज प्रयाग; जहाँ करुणानिधान देवदेवेश्वर शिव प्राणियोंके कानमें 'तारकमन्त्र' का उपदेश देते हैं उस मोक्षदायिनी काशी; पुलहाश्रम, फल्गुतीर्थ, गण्डकी, चक्रतीर्थ, नैमिषारण्य, शिवतीर्थ, अनन्तक, गोप्रतारक, नागेश्वर, बिन्दुसरोवर, मोक्षदायक राजीवलोचन भगवान् रामसे सुशोभित अयोध्या; अग्नितीर्थ, वायुतीर्थ, कुबेरतीर्थ, कुमारतीर्थ, सूकरक्षेत्र, भगवान् कृष्णसे अलंकृत मथुरा; पुष्कर, सत्यतीर्थ, ज्वालातीर्थ, दिनेश्वरतीर्थ, इन्द्रतीर्थ, पश्चिमवाहिनी सरस्वती तथा कुरुक्षेत्र जाकर मैंने दर्शन किया। उसके बाद मैं ताप्ती, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, मलय, कृष्णवेणी, गोदावरी, दण्डकवन, ताम्रचूड, सदोदक और द्यावाभूमीश्वर तीर्थको देखकर पर्वतराज श्रीशैल पहुँचा। तदनन्तर महातेजस्वी भगवान् हरि स्वयं जहाँ श्रीरङ्ग नामसे

निवास करते हैं, जहाँ महिषासुरमर्दिनी दुर्गा वेंकटी नामसे पुकारी जाती हैं, उस वेंकटाचलकी यात्रा मेरे द्वारा की गयी। तत्पश्चात् चन्द्रतीर्थ, भद्रवट, कावेरी, कुटिलाचल, अवटोदा, ताम्रपर्णी, त्रिकूट, कोल्लकगिरि, वसिष्ठतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, महोदधि, हृषीकेश, विराज, विशाल और नीलाद्रि (जगन्नाथपुरी), भीमकूट, श्वेतगिरि, रुद्रतीर्थ तथा जहाँ तपस्या करके पार्वतीने भगवान् शिवका पतिरूपमें वरण किया था, उस उमावन तीर्थकी मैंने यात्रा की। साथ ही वरुणतीर्थ, सूर्यतीर्थ, हंसतीर्थ तथा महोदधि तीर्थकी यात्रा हुई, जहाँ स्नान करके काकोला (पहाड़ी कौआ) भी राजहंस बन जाता है, जहाँ स्नान मात्र करके एक राक्षसने देवत्व पद प्राप्त कर लिया था। उसके बाद विश्वरूप, वन्दितीर्थ रत्नेश तथा कुहकाचल तीर्थ गया जहाँ नरनारायणका दर्शन करके मनुष्य करोड़ों पापसे मुक्त हो जाता है। सरस्वती, दृषद्वती और नर्मदा नामक मनुष्योंके लिये कल्याणकारिणी नदियोंकी मैंने यात्रा की। भगवान् नीलकण्ठ, महाकाल, अमरकण्टक, चन्द्रभागा, वेत्रवती, वीरभद्र, गणेश्वर, गोकर्ण, बिल्वतीर्थ, कर्मकुण्ड और सतारक तीर्थोंमें जाकर आपकी कृपासे मैं अन्य तीर्थोंमें भी गया जहाँ मात्र स्नान करके मनुष्य कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है।

हे मुने! साधुजनोंकी जो कृपा है, वह प्राणियोंमें कल्याणकारिणी बुद्धिको जन्म देती है। एक ओर तो सभी तीर्थ हैं और दूसरी ओर करुणापूर्ण साधुजन प्राणियोंके कल्याणका उनपर कृपा करनेका व्रत धारण कर वे इतस्ततः परिभ्रमण करते रहते हैं—

उत्पद्यते शुभा बुद्धिः साधूनां यदनुग्रहः।
एकतः सर्वतीर्थानि करुणाः साधवोऽन्यतः॥
अनुग्रहाय भूतानां चरन्ति चरितव्रताः।

(६।७७-७८)

हे प्रभो! आप सभी वर्णोंके गुरु हैं तथा विद्या एवं वयमें श्रेष्ठ हैं। अतः मैं आपसे उस आधिभौतिक स्वरूपके विषयमें पूछ रहा हूँ, जो चिरंतन कालसे चला आ रहा है। मैं क्या करूँ? किससे पूछूँ? मेरा मन अत्यन्त चञ्चल हो उठा है। यह ब्रह्मके विषयमें तो निस्पृह रहता है, पर विषयोंमें अति लालायित है। यह रंचमात्र भी उस अज्ञानरूपी अन्धकारका विछोह सहन नहीं कर सकता है। हे विप्रदेव! कर्मोंका जो श्रेष्ठतम क्षेत्र है, वह अनेक प्रकारके भावोंसे व्यामोहित है। ज्ञानसम्पन्न व्यक्तिके पास जिस प्रकारसे शान्ति आ जाती है, विवेकवान् श्रेष्ठ मनुष्य जिस प्रकार अन्तर्बाह्य दोनों स्थितियोंमें शुद्धताको प्राप्त कर लेता है वह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

ऋषिने कहा—हे वैश्यवर्य! यह मन अत्यन्त बलवान् है। यह नित्य ही विकारयुक्त स्वभाववाला है। तथापि जैसे पीलवान मतवाले हाथीको भी वशमें कर लेता है वैसे ही सत्संगतिसे, आलस्यरहित होकर साधन करके, तीव्र भक्तियोगसे तथा सद्विचारके द्वारा अपने मनको वशमें कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें तुम्हें विश्वास हो जाय, इसलिये मैं एक इतिहास बता रहा हूँ, जो नारदके पूर्वजन्मके जीवनवृत्तसे जुड़ा हुआ है, जिसको स्वयं उन्होंने ही मुझसे कहा था।

नारदजीने मुझसे कहा—हे मुने! मैं प्राचीनकालमें किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणका दासीपुत्र था। वहींपर मुझे महान् पुण्यात्माओंकी सत्संगति प्राप्त करनेका सुअवसर भी मिला। एक बार वर्षाकालमें भाग्यवश मेरे घर साधुजन ठहरे हुए थे। मेरे द्वारा विनम्रतापूर्वक बराबर की गयी सेवासे अत्यन्त संतुष्ट होकर उन लोगोंने मुझे उपदेश दिया था, जिसके प्रभावसे मेरी बुद्धि निर्मल और हितैषिणी बन गयी, जिससे अब मैं अपनेमें ही सबको विष्णुमय देखता हूँ।

मुनियोंने नारदजीसे कहा—हे वत्स! तुम सुनो। हम सब तुम्हारे हितमें कह रहे हैं, जिसको स्वीकार कर तदनुसार जीवनयापन करनेवाला प्राणी इस लोक और परलोक दोनोंमें सुख प्राप्त करता है। इस संसारमें अनेक प्रकारके देवता, पक्षी तथा मनुष्यादिकी योनियाँ हैं, जो कर्मपाशमें बँधी हुई हैं। वे सदैव पृथक्-पृथक् रूपसे कर्मफलोंका भोग करते हुए सत्त्वगुणसे देवत्व, रजोगुणसे मनुष्यत्व और तमोगुणसे तिर्यक् योनि प्राप्त करते हैं। वासनामें आबद्ध बुद्धिहीन प्राणी माताके गर्भसे बार-बार जन्म लेकर मृत्युका वरण करता है। इस प्रकार उन असंख्य योनियोंमें जाकर वह कभी दैवयोगसे ही मनुष्यकी दुर्लभ योनिको प्राप्त कर, महात्माओंकी कृपासे भगवान् हरिको जानकर तथा अपार भवसागरको रोगरूपी ग्राह और मोहरूपी पाशसे युक्त समझकर मुक्त हो जाता है। इस भवसागरको पार करनेके इच्छुक प्राणीके लिये राम-नाम-स्मरणके अतिरिक्त अन्य कोई साधन हमें दिखायी नहीं देता है। जैसे दहीका मन्थन करनेसे नवनीत और काष्ठका

मन्थन करनेसे अग्नि प्राप्त होती है, वैसे ही आत्ममन्थन कर उस परमात्माको जो प्राणी जान लेता है, वह सुखी हो जाता है।

यह आत्मा नित्य, अव्यय, सत्य, सर्वगामी, सभी प्राणियोंमें अवस्थित और महान् है। यह अप्रमेय है। यह स्वयंमें ज्योतिस्वरूप एवं मनसे भी अग्राह्य है। यह वह तत्त्व है, जो सच्चिदानन्दरूप है और सभी प्राणियोंके हृदयमें विराजमान रहता है। भावोंके विनष्ट हो जानेपर भी कभी विनष्ट नहीं होता है। जिस प्रकार आकाश सभी प्राणियोंमें, तेज जलमें तथा वायु सभी पार्थिव पदार्थोंमें स्थित है, उसी प्रकार आत्मा सर्वत्र व्याप्त और निर्लेप है। भक्तोंपर कृपादृष्टि रखनेवाले भगवान् हरि साधुओंकी रक्षा करनेके लिये अवतरित होते हैं। यद्यपि वे निर्गुण हैं, फिर भी अज्ञानियोंको गुणवान् प्रतीत होते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकारकी ज्ञानवती बुद्धिसे अपने हृदयमें उस परमात्माका चिन्तन करता है, उसके भक्तियोगसे संतुष्ट होकर वे अजन्मा पुरुष परमात्मा उसको अपना दर्शन देते हैं। तत्पश्चात् वह भक्त कृतार्थ हो जाता है और सर्वदा सर्वत्र निष्कामभावसे बना रहता है। अतः बन्धनयुक्त इस शरीरमें अहंकारका परित्याग करके स्वप्नप्राय संसारमें ममता और आसक्तिसे रहित होकर संचरण करे। स्वप्नमें धैर्य कहाँ स्थिर रहता है? इन्द्रजालमें कहाँ सत्यता होती है? शरत्कालके मेघमें कहाँ नित्यता रहती है? वैसे ही शरीरमें सत्यता कहाँ रहती है? यह दृश्यमान समस्त चराचर जगत् अविद्या-कर्मजनित है। ऐसा जानकर तुम्हें आचारवान् योगी बनना चाहिये। उससे तुम सिद्धि प्राप्त कर सकते हो।

इस प्रकारका उपदेश देकर वे सभी दीन-हीन प्राणियोंपर वात्सल्य-भाव रखनेवाले साधु वहाँसे चले गये। तदनन्तर मैं (नारद) उनके द्वारा बताये गये मार्गसे उसी प्रकारका आचरण प्रतिदिन करता रहा। कुछ ही समयके पश्चात् मैंने अपने अन्तःकरणमें यह एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा कि शरत्कालीन चन्द्रमाके समान निर्मल, प्रतिक्षण आनन्द प्रदान करनेवाला अद्भुत प्रकाशपुञ्ज प्रज्वलित हो रहा है। वह महातेज मुझे प्रचुर सुखसे सींचकर (अपने प्रति) अधिक स्पृहायुक्त बनाकर आकाशमें विद्युत्की भाँति अन्तर्हित हो गया। भक्तिपूर्वक मैं उस अनोखे ज्योतिपुञ्जका ध्यान करता हुआ समय आनेपर अपना शरीर छोड़कर विष्णुलोक चला गया।

हे ब्रह्मन्! उन्हीं प्रभुकी इच्छासे पुनः मेरा जन्म ब्रह्मासे हुआ। उन भगवान्‌की कृपासे ही मैं आज अनासक्त रहकर तीनों लोकोंमें बार-बार वीणा बजाते और गीत गाते हुए घूमता रहता हूँ।

अपना ऐसा अनुभव बताकर मुनि नारद मेरे पाससे मनोनुकूल दिशामें चले गये। उनकी उस बातसे मुझको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और बहुत संतोष भी मिला।

अतः सत्संगति तथा भगवद्भक्तिसे तुम्हारा विशुद्ध, निर्मल और शान्त स्वभाववाला मन सुखी हो जायगा। हे धर्मज्ञ! साधुसंगति होनेपर अनेक जन्मोंमें किया गया पाप शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे शरत्कालके आनेपर बरसात समाप्त हो जाती है—

अतस्ते साधुसङ्गत्या भक्त्या च परमात्मनः॥
विशुद्धं निर्मलं शान्तं मनो निर्वृतिमेष्यति।
अनेकजन्मजनितं पातकं साधुसङ्गमे॥
क्षिप्रं नश्यति धर्मज्ञ जलानां शरदो यथा।

(६। १११—११३)

वैश्यने कहा—हे ऋषिराज! आपके इस वाक्यामृत-रसपानसे मेरे अन्तःकरणको शान्ति मिल गयी। आज आपके इस दर्शनसे मेरी समस्त तीर्थयात्राका फल प्रकट हो उठा है।

यह सुनकर लोमशजीने कहा—हे राजेन्द्र! धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गके फलकी इच्छा करनेवाले तुम्हारे हितमें यह मानता हूँ कि वृषोत्सर्गके बिना जो बहुत-से सत्कर्म तुमने किये हैं, वे सब ओसकणोंके रूपमें पृथ्वीपर गिरे हुए जलके समान कुछ भी कल्याण करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते हैं। इस पृथ्वीतलपर वृषोत्सर्गके सदृश हितकारी कोई साधन नहीं है। इस श्रेष्ठकर्मको करनेवाले लोग अनायास पुण्यात्माओंकी सद्गति प्राप्त कर लेते हैं। वृषोत्सर्ग-कर्म जिसने किया है वह व्यक्ति और जो अश्वमेधयज्ञका कर्ता है, मेरी दृष्टिमें दोनों समान हैं। वे दोनों दिव्य शरीर प्राप्त करके इन्द्रदेवका सांनिध्य ग्रहण करते हैं। अतः तुम पुष्करतीर्थमें जाकर वृषोत्सर्ग-कर्मको सम्पन्न करो। हे साधु! उसके बाद ही तुम अपने घर जाओ, जिससे कि इस तीर्थ-यात्राका समस्त कृत्य भलीभाँति पूर्ण हो जाय।

विपश्चित्‌ने कहा—इसके बाद वह वैश्य यज्ञको पूर्ण करनेवाले वराहरूपी भगवान् जहाँ विद्यमान हैं, उस श्रेष्ठ पुष्करतीर्थमें गया और उसने कार्तिक पूर्णिमाके दिन ऋषिश्रेष्ठने

जैसा कहा था, उस वृषोत्सर्ग-कर्मको विधिवत् सम्पन्न किया। इसके बाद लोमश ऋषिकी संगतिसे वह बहुत-से तीर्थोंमें गया। अधिक पुण्य नील (वृष)-विवाहसे उसको प्राप्त हुआ था। श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर दिव्य विषयोंको भोगनेके बाद उसका वीरसेनके राजकुलमें जन्म हुआ। इस जन्ममें उसको वीरपञ्चानन नामकी ख्याति प्राप्त हुई। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस पुरुषार्थ चतुष्टयका एक अद्वितीय साधक था। वृषोत्सर्ग करते समय वहाँ जो नौकर-चाकर उपस्थित थे, वे भी गायकी पूँछके तर्पणके छींटोंका स्पर्श करके दिव्य रूप हो गये। जो दूरसे ही इस कार्यको देख रहे थे, वे लोग हृष्ट-पुष्ट हो गये और उनका स्वरूप कान्तिसे चमक उठा। इसके अतिरिक्त जो लोग इस सत्कर्मके भू-भागसे बहुत दूर थे, वे मलिन दिखायी दे रहे थे। वृषोत्सर्ग न देखते हुए जो लोग उसकी निन्दा करनेवाले थे, वे अभागे, दीन-हीन और व्यवहार आदिमें रूक्ष, कृश और वस्त्रविहीन हो गये। हे द्विज! मैंने भगवान् पराशरसे पूर्वजन्मसे सम्बद्ध इस राजाका अद्भुत और धार्मिक जो वृत्तान्त सुना था, उसका वर्णन आपसे कर दिया। इसलिये आप मेरे ऊपर कृपा करके अब अपने घर लौट जायँ। मन्त्रीके ऐसे वाक्योंको सुनकर वे ब्राह्मण अत्यधिक आश्चर्यचकित हो उठे। तदनन्तर राजसेवकोंके द्वारा उन्हें घरपर पहुँचा दिया गया।

वसिष्ठने कहा—हे राजन्! सभी कर्मोंमें वृषोत्सर्ग-कर्म श्रेष्ठतम है। अतः आप यदि यमराजसे भयभीत हैं तो यथाविधि वृषोत्सर्ग-कर्म ही करें।

हे राजश्रेष्ठ! वृषोत्सर्गके अतिरिक्त अन्य कोई भी ऐसा साधन नहीं है जो मनुष्यको स्वर्ग-प्राप्तिकी सिद्धि प्रदान कर सके—

वृषोत्सर्गसमं किञ्चित् साधनं न दिवः परम्।

(६। १३०)

आपको मैंने धर्मका रहस्य बता दिया है। यदि पति-पुत्रसे युक्त नारी पतिके आगे मर जाती है तो उसके निमित्त वृषोत्सर्ग नहीं करना चाहिये, अपितु दूध देनेवाली गायका दान देना चाहिये[1]।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! महर्षि वसिष्ठके उक्त वचनोंको सुनकर राजा वीरवाहनने मथुरामें जाकर विधिवत् वृषोत्सर्गका अनुष्ठान किया। तदनन्तर अपने घर पहुँचकर उसने अपनेको कृतार्थ माना। समय आनेपर जब उसकी मृत्यु हुई तब यमराजके दूत उसको लेकर कालपुरीकी ओर चले, किंतु उस नगरको पार करके मार्गमें जब वह अधिक दूर निकल गया तो उसने दूतोंसे पूछा कि श्राद्धदेवका नगर कहाँ है? तब दूतोंने उसको बताया कि जहाँ पापी लोग पापशुद्धिके लिये यमदूतोंके द्वारा नरकमें ढकेले जाते हैं, जहाँ धर्माधर्मकी विवेचना करनेवाले धर्मराज विराजमान रहते हैं, वहीं वह श्राद्धदेवपुर है। आप-जैसे पुण्यात्माओंके द्वारा वह नहीं देखा जाता है। उसी समय देव-गन्धर्वोंके सहित दिव्य रूपवाले धर्मराजने उस राजाके समक्ष अपनेको प्रकट किया। अपने सामने उपस्थित धर्मराजको देखकर राजाने बड़े ही आदरके साथ हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नचित्त होकर उसने अनेक प्रकारसे गुण-कीर्तन करते हुए उन्हें संतुष्ट किया। धर्मराजने भी राजाकी प्रशंसा करके यही कहा—हे दूतो! तुम सब, इन्हें उस देवलोकमें ले जाओ, जहाँ प्रचुर भोगके साधन सुलभ हैं। राजा वीरवाहनने उस आदेशको सुनकर सामने ही स्थित धर्मराजसे पूछा—हे देव! मैं यह नहीं जानता हूँ कि आप मुझे किस पुण्यके प्रभावसे स्वर्गलोक ले जा रहे हैं।

धर्मराजने कहा—हे राजन्! तुमने दान-यज्ञादि अनेक पुण्यकार्योंको विधिवत् सम्पन्न किया है। वसिष्ठकी आज्ञा मान करके तुमने मथुरामें वृषोत्सर्ग भी किया है।

हे नरेश! यदि मनुष्य थोड़े भी धर्मका सम्यक्‌रूपसे पालन करता है तो वह ब्राह्मण और देवताओंकी कृपासे अधिकाधिक हो जाता है—

धर्मः स्वल्पोऽपि नृपते यदि सम्यगुपासितः।
द्विजदेवप्रसादेन स याति बहुविस्तरम्॥

(६। १४२)

ऐसा कहकर यमुनाके भ्राता उसी क्षण अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् वीरवाहन स्वर्गमें जाकर देवताओंके साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! मैंने वृषोत्सर्ग नामक यज्ञका माहात्म्य विस्तारपूर्वक तुम्हें सुना दिया है। प्राणियोंके पापकर्मको समाप्त करनेवाले इस आख्यानको सुननेवाला व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है। (अध्याय ६)

---

[1] १-पतिपुत्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि। वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां दद्याच्च पयस्विनीम्॥ (६। १३१)

संतप्तक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथा, सत्संगति तथा भगवत्कृपासे पाँच प्रेतों तथा ब्राह्मणका उद्धार

गरुडने कहा—हे प्रभो! आपने वृषोत्सर्ग नामक यज्ञसे प्राप्त होनेवाले फलसे सम्बन्धित जो आख्यान कहा, उसको मैंने सुन लिया है। अब आप पुनः किसी अन्य कथाका वर्णन करें, जिसमें आपकी अद्भुत महिमा निहित हो।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! अब मैं संतप्तक नामक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथाको बताता हूँ।

हे पक्षिन्! पूर्वकालमें संतप्तक नामक एक ब्राह्मण था। जिसने तपस्याके बलपर अपनेको पापरहित कर लिया था। यह संसार असार है, ऐसा जानकर वह वनोंमें वैखानस मुनियोंके द्वारा आचरित वृत्तिका पालन करते हुए अरण्यमें ही विचरण करता था। किसी समय उस ब्राह्मणने तीर्थ-यात्राको लक्ष्य बनाकर अपनी यात्रा प्रारम्भ की। संसारके प्रति इन्द्रियाँ स्वतः आकृष्ट हो जाती हैं, इस कारणसे उसने अपनी बाह्य चित्तवृत्तियोंको भी रोक लिया था, किंतु पूर्व संस्कारोंके प्रभावसे वह मार्ग भूल गया और चलते-चलते मध्याह्नकाल हो गया, स्नानके लिये जलकी अभिलाषासे वह चारों ओर देखने लगा। उसे उस समय सैकड़ों गुल्म-लता और बाँसके वृक्षोंसे घिरा हुआ, वृक्षोंकी शाखाओंसे व्याप्त, घनघोर एक वन दिखायी पड़ा। वहाँ ताल, तमाल, प्रियाल, कटहल, श्रीपर्णी, शाल, शाखोट (सिहोरका वृक्ष), चन्दन, तिन्दुक, राल, अर्जुन, आमड़ा, लसोड़ा, बहेड़ा, नीम, इमली, बैर और कनैल तथा अन्य बहुत-से वृक्षोंकी सघनताके कारण पक्षियोंके लिये भी मार्ग नहीं दीखता था। फिर मनुष्यके लिये उस वनमें कहाँ मार्ग मिल सकता था? वह वन तो सिंह, व्याघ्र, तरक्षु (एक छोटी जातिका बाघ), नीलगाय, रीछ, महिष, हाथी, कृष्णमृग, नाग और बंदर तथा अन्यान्य प्रकारके हिंसक जीव-जन्तु, राक्षस एवं पिशाचोंसे परिव्याप्त था।

संतप्तक उस प्रकारके घनघोर भयावह वनको देखकर भयाक्रान्त हो उठा। भयभीत वह अब किस दिशामें जाय, इसका निर्णय नहीं कर सका। फिर जो होगा, देखा जायगा—यह सोचकर वह वहाँसे पुनः चल पड़ा। झींगुरोंकी झंकार तथा उल्लुओंकी धूत्कार ध्वनियोंपर कान लगाये वह पाँच ही डग चला था कि सामने बरगदके वृक्षमें बँधा एक शव लटका हुआ उसे दिखायी दिया, जिसे पाँच महाभयंकर प्रेत खा रहे थे। हे खगेश! उन प्रेतोंके शरीरमें मात्र शिराओंसे युक्त हड्डी और चमड़ा ही शेष था। उनका पेट पीठमें धँसा हुआ था। नेत्ररूपी कुओंमें गिरनेके भयसे नासिकाने उनका साथ छोड़ दिया था। वसासे भरे हुए ताजे शवके मस्तिष्क-भागका स्वाद लेकर जो नित्य अपना महोत्सव मनाते थे और हड्डीकी गाँठोंको तोड़नेमें लगे हुए जिनके बड़े-बड़े दाँत किटकिटाते थे, ऐसे प्रेतोंको देखकर घबड़ाये हुए हृदयवाला वह ब्राह्मण वहीं ठिठक गया। उस निर्जन वनमें आ रहे ब्राह्मणको उन प्रेतोंने देख लिया था। अतः 'मैं उसके पास पहले जाऊँगा, मैं उसके पास पहले जाऊँगा'—इस प्रकारकी प्रतिस्पर्धामें वे सभी प्रेत दौड़ पड़े। उनमेंसे दो प्रेतोंने इस ब्राह्मणके दोनों हाथ पकड़ लिये, दो प्रेतोंने दोनों पैर पकड़ लिये। एक प्रेत शेष बचा था, उसने इसका सिर पकड़ लिया। तदनन्तर वे सभी कहने लगे कि 'मैं इसे डकारूँगा, मैं इसे खाऊँगा।' ऐसा कहते हुए वे पाँचों प्रेत ब्राह्मणको खींचने लगे। फिर उसे साथ लेकर वे सहसा आकाशमें चले गये। किंतु उस बरगदपर शवका अभी कितना मांस शेष है और कितना नहीं, इस बातको भी वे सोच रहे थे। उसी समय उन लोगोंने देखा कि दाँतोंके द्वारा नोंचे जानेके कारण वह शव तो अभी फटी हुई आँतसे युक्त है। इसलिये वे आकाशसे नीचे उतर आये और शवको अपने पैरोंसे बाँधकर पुनः आकाशमें ही उड़ गये।

आकाशमें ले जाये जा रहे उस प्रेतरूपमें स्वयंको ही समझकर वह भयार्त ब्राह्मण पूर्ण मनसे मेरी शरणमें आ गया। देवाधिदेव, चिन्मय, सुदर्शनचक्रधारी मुझ हरिको प्रणाम कर वह इस प्रकार स्तुति करने लगा—

जिन भगवान्‌ने अपने चक्रके प्रहारसे ग्राहके मुखको विदीर्णकर उसके दुःखको नष्ट किया था, जो ग्राहके मुखमें फँसे हुए गजराजको मुक्त करानेवाले हैं, वे श्रीहरि मेरे कर्मपाशको काटकर मुझे मुक्त करें। मगधनरेश जरासन्धने निर्दोष राजाओंको बंदी बनाकर कारागारमें डाल दिया था, जिन मुरारि श्रीकृष्णने राजसूययज्ञके लिये पाण्डुपुत्र भीमसेनके द्वारा उस दुष्टको मल्लयुद्धमें मरवाकर राजाओंको मुक्त किया था। वे इस समय मेरे कर्मपाशको

काटकर मेरा दुःख दूर करें।

हे गरुड! उस समय दत्तचित्त होकर जब वह मेरी स्तुतिमें लग गया तो उसे सुनते ही मैं भी उठ खड़ा हुआ और सहसा वहाँ जा पहुँचा, जहाँ प्रेत उसको लेकर जा रहे थे। उन लोगोंके द्वारा ले जाते हुए उस ब्राह्मणको देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। कुछ कालतक बिना पूछे मैं भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा। मेरी संनिधिमात्रसे उस ब्राह्मणको पालकीमें सोये हुए राजाके समान सुख प्राप्त हुआ। इसके बाद मैंने मार्गमें सुमेरु पर्वतपर जा रहे मणिभद्र नामक यक्षराजको देखा। मैंने नेत्रोंके संकेतसे उन्हें अपने पास बुलाया और कहा—हे यक्षराज! तुम इस समय इन प्रेतोंको विनष्ट करनेके लिये प्रतिद्वन्द्वी योद्धा बन जाओ। युद्धमें इन्हें मारकर इस शवको अपने अधिकारमें करो।

ऐसा सुनते ही उस मणिभद्रने प्रेतोंको दुःख पहुँचानेवाले प्रेतरूपको धारण कर लिया। दोनों भुजाओंको फैलाकर ओठोंको जीभसे चाटते हुए और अपनी लम्बी-लम्बी निःश्वासोंसे उन प्रेतोंको दहलाते हुए वह मणिभद्र उनके सम्मुख जाकर डट गया। उसने दोको अपनी दोनों भुजाओंसे, दोको दोनों पैरोंसे और एकको सिरसे पकड़ लिया। उसके बाद अपने शक्तिशाली मुक्केसे उन प्रेतोंपर ऐसा प्रहार किया कि वे सभी विवर्णमुख हो गये। वे उस ब्राह्मण तथा शवको एक हाथ और एक पैरसे पकड़कर युद्ध करने लगे। उन लोगोंने अपने नख-थप्पड़, लात एवं दाँतोंसे उसपर प्रहार किये, पर मणिभद्रने उनके प्रहारको विफल कर उनसे शवको ले लिया। उस यक्षके द्वारा शवको छीन लिये जानेपर पारियात्र पर्वतपर उस ब्राह्मणको छोड़कर वे सभी प्रेत अत्यन्त उत्साहसे भरे हुए पुनः प्रेतरूप मणिभद्रकी ओर दौड़ पड़े। क्षणमात्रमें ही उन लोगोंने वायुके समान द्रुतगामी मणिभद्रको घेर लिया, किंतु वह अदृश्य हो गया। ऐसी स्थिति देखकर हताश होकर वे प्रेत उस ब्राह्मणके पास जा पहुँचे। उस पर्वतपर पहुँचकर उन लोगोंने ब्राह्मणको ज्यों-ही मारना प्रारम्भ किया, त्यों-ही मेरी उपस्थिति और ब्राह्मणके प्रभावसे तत्काल उनमें पूर्वजन्मकी स्मृति जाग्रत् हो उठी। इसके बाद ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करके उन प्रेतोंने ब्राह्मणश्रेष्ठसे कहा—हे विप्रदेव! आप हमें क्षमा करें। उनके दीन वचनोंको सुनकर ब्राह्मणने पूछा—आप लोग कौन हैं? यह क्या कोई माया है? अथवा यह मैं स्वप्न देख रहा हूँ या यह मेरे चित्तका विभ्रम है।

प्रेतोंने कहा—हम सब प्रेत हैं और पूर्वजन्मके दुष्कर्मोंके प्रभावसे इस योनिको प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतो! तुम्हारे क्या नाम हैं? तुम सब क्या करते हो? तुम्हें कैसे इस दशाकी प्राप्ति हुई? पहले मेरे प्रति तुम लोगोंका व्यवहार कैसे अविनयी था और इस समय कैसे विनयी हो गया है।

प्रेतोंने कहा—हे द्विजराज! आप यथाक्रम अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनें। हे योगिराज! हम आपके दर्शनसे निष्पाप हो गये हैं। हमारे नाम क्रमशः पर्युषित, सूचीमुख, शीघ्रग, रोधक और लेखक हैं।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतो! पूर्वकर्मसे उत्पन्न प्रेतोंका नाम कैसे निरर्थक हो सकता है? तुम सब अपने इन विचित्र नामोंके विषयमें विस्तारसे मुझे बताओ।

श्रीकृष्णने कहा—ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कहे जानेपर पृथक्-पृथक् रूपसे प्रेतोंने कहा—

पर्युषितने कहा—किसी समय मैंने श्राद्धके सुअवसरपर ब्राह्मणको निमन्त्रित किया था, वह वृद्ध ब्राह्मण मेरे घर विलम्बसे पहुँचा। बिना श्राद्ध किये ही भूखके कारण मैंने उस पाकको खा लिया। कुछ पर्युषित (बासी) अन्न लाकर मैंने उस ब्राह्मणको दे दिया। मरनेपर मुझे उसी पापके कारण इस दुष्टयोनिकी प्राप्ति हुई। मैंने ब्राह्मणको जो बासी भोजन दिया था, उसीसे मेरा नाम पर्युषित हो गया।

सूचीमुखने कहा—किसी समय कोई ब्राह्मणी तीर्थस्नानके लिये भद्रवट तीर्थमें गयी। उसके साथ उसका पाँच वर्षीय पुत्र भी था, जिसके सहारे वह जीवित थी। मैं उस समय क्षत्रिय था। मैं उसके मार्गका अवरोधक बन गया और निर्जन वनमें मैंने राहजनी की। हे विप्र! उस लड़केके सिरपर मुष्टि-प्रहार कर मैंने दोनोंके वस्त्र और राहमें खाने योग्य सामान छीन लिया। वह लड़का प्याससे व्याकुल हो उठा था। अतः वह माताके पास स्थित जल लेकर पीने लगा। उस पात्रमें उतना ही जल था। मैंने उसको डाँटकर जल पीनेसे रोक दिया और स्वयं उस पात्रका सारा जल पी गया। भयसंत्रस्त, प्याससे व्याकुल उस बालककी वहींपर मृत्यु हो गयी। पुत्रशोकसे व्यथित उसकी माँने भी कुएँमें कूदकर अपना प्राण त्याग दिया। इसी पापसे मुझको यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई है।

पर्वताकार शरीर होनेपर भी इस समय मैं सुईकी नोंकके समान मुखवाला हूँ। यद्यपि खाने योग्य पदार्थ मैं प्राप्त कर लेता हूँ, फिर भी यह मेरा सुईके छिद्रके समान मुख उसको खानेमें असमर्थ है। मैंने क्षुधाग्निसे जलते हुए ब्राह्मणीके बालकका मुँह बंद किया था, उसी पापसे मेरे मुँहका छिद्र भी सुईकी नोंकके समान हो गया है। इसी कारण मैं आज सूचीमुख नामसे प्रसिद्ध हूँ।

शीघ्रगने कहा—हे विप्रवर! मैं पहले एक धनवान् वैश्य था। उस जन्ममें अपने मित्रके साथ व्यापार करनेके लिये मैं एक दूसरे देशमें जा पहुँचा। मेरे मित्रके पास बहुत धन था। अतः उस धनके प्रति मेरे मनमें लोभ आ गया। अदृष्टके विपरीत होनेसे वहाँ मेरा मूल धन समाप्त हो चुका था। हम दोनोंने वहाँसे निकलकर मार्गमें स्थित नदीको नावसे पार करना प्रारम्भ किया। उस समय आकाशमें सूर्य लाल हो गया था। राहकी थकानसे व्याकुल मेरा वह मित्र मेरी गोदमें अपना सिर रखकर सो गया। उस समय लोभवश मेरी बुद्धि अत्यन्त क्रूर हो उठी। अतः सूर्यास्त हो जानेपर गोदमें सोये हुए अपने मित्रको मैंने जल-प्रवाहमें फेंक दिया। मेरे द्वारा नावमें किये गये उस कृत्यको अन्य लोग भी न जान सके। उस व्यक्तिके पास जो कुछ बहुमूल्य हीरे-जवाहरात, मोती तथा सोनेकी वस्तुएँ थीं, वह सब लेकर मैं शीघ्र ही उस देशसे अपने घर लौट आया। घरमें वह सब सामान रखकर मैंने उस मित्रकी पत्नीके पास जाकर कहा कि मार्गमें डाकुओंने मेरे उस मित्रको मारकर सब सामान छीन लिया और मैं भाग आया हूँ। मैंने उससे फिर कहा कि हे पुत्रवती नारी! तुम रोना नहीं। शोकसे व्यथित उस स्त्रीने तत्काल घरके बन्धु-बान्धवोंकी ममताका परित्याग कर अपने प्राणोंकी भेंट अग्निको यथाविधि चढ़ा दिया। उसके बाद निष्कण्टक स्थिति देखकर मैं प्रसन्नचित्त अपने घर चला आया। घर आकर जबतक मेरा जीवन रहा, तबतक उस धनका मैंने उपभोग किया। मित्रको नदीके जल-प्रवाहमें फेंककर मैं शीघ्र ही अपने घर लौट आया था, उसी पापके कारण मुझे प्रेतयोनि मिली और मेरा नाम शीघ्रग हो गया।

रोधकने कहा—हे मुनीश्वर! मैं पूर्व-जन्ममें शूद्र जातिका था। राजभवनसे मुझे जीवन-यापनके लिये उपहारमें बहुत बड़े-बड़े सौ गाँवोंका अधिकार प्राप्त था। मेरे परिवारमें बूढ़े माता-पिता थे और एक छोटा सगा भाई था। लोभवश मैंने शीघ्र ही अपने उस भाईको अलग कर दिया जिसके कारण अन्न-वस्त्रसे रहित उस भाईको अत्यधिक दुःख भोगना पड़ा। उसके दुःखको देखकर मेरे माता-पिता लुक-छिपकर कुछ-न-कुछ उसको दे देते थे। जब मैंने भाईको माता-पिताके द्वारा दी जा रही उस सहायताकी बात विश्वस्त पुरुषोंसे सुनी तो एक सूने घरमें माता-पिताको जंजीरसे रुद्ध कर दिया। कुछ दिनोंके बाद दुःखी उन दोनोंने विष पीकर अपनी जीवन-लीला समाप्त कर ली। हे द्विज! माता-पितासे रहित होकर मेरा भाई भी इधर-उधर भटकने लगा। ग्राम तथा नगरमें भटकता हुआ एक दिन वह भी भूखसे पीड़ित होकर मर गया। हे ब्राह्मण! मरनेके बाद उसी पापके कारण मुझे यह प्रेतयोनि मिली। माता-पिताको मैंने बंदी बनाया था, इसी कारण मेरा नाम रोधक पड़ा।

लेखकने कहा—हे विप्रदेव! मैं पूर्वजन्ममें उज्जैन नगरका ब्राह्मण था। वहाँके राजाने मेरी नियुक्ति देवालयमें पुजारीके पदपर की थी। उस मन्दिरमें विभिन्न नामवाली बहुत-सी मूर्तियाँ थीं। स्वर्णनिर्मित उन प्रतिमाओंके अङ्गोंमें बहुत-सा रत्न भी लगा हुआ था। उनकी पूजा करते हुए मेरी बुद्धि पापासक्त हो गयी। अतः मैंने एक तेज धारवाले लोहेसे उन मूर्तियोंके नेत्रादिसे रत्नोंको निकाल लिया। क्षत-विक्षत और रत्नरहित नेत्रोंको देखकर राजा प्रज्वलित अग्निके समान क्रोधसे तमतमा उठा। उसके बाद राजाने

यह प्रतिज्ञा की कि चोर चाहे श्रेष्ठ ब्राह्मण ही क्यों न हो यदि उसने मूर्तियोंसे रत्न और सोना चुराया होगा तो ज्ञात होनेपर निश्चित ही मेरे द्वारा मारा जायगा। वह सब सुनकर मैंने रात्रिमें तलवार उठायी और राजाके घरमें जाकर उसका पशुकी तरह वध कर दिया। तदनन्तर चुरायी गयी मणियों तथा सोनेको लेकर मैं रात्रिमें ही अन्यत्र जाने लगा, किंतु मार्गमें स्थित घनघोर जंगलमें एक व्याघ्रने मुझे मार डाला। मैंने लोहेसे प्रतिमा-छेदन एवं काटनेका जो कार्य किया था, उस पापसे आज मैं लेखक नामका प्रेत हूँ। नरकभोग करनेके पश्चात् मुझे यही प्रेत-योनि प्राप्त हुई।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतगणो! आप लोगोंने अपनी जैसी दशाएँ बतायी हैं, वैसे ही आप सबके नाम भी हैं। वर्तमान समयमें तुम लोगोंका आचरण और आहार क्या है? उसको भी मुझे बताओ।

प्रेतोंने कहा—हे द्विजराज! जहाँपर वेदमार्गका अनुसरण होता है, जहाँ लज्जा,धर्म, दम, क्षमा, धृति और ज्ञान—ये सब रहते हैं, वहाँ हम सब वास नहीं करते। जिसके घरमें श्राद्ध तथा तर्पणका कार्य नहीं किया जाता, उसके शरीरसे मांस और रक्त बलात् अपहृत करके हम उसे पीड़ा पहुँचाते हैं। मांस खाना और रक्त पीना यही हमारा आचरण है। हे निष्पाप! सभी लोगोंके द्वारा निन्दनीय हमारे आहारको सुनें। कुछ तो आपने देख लिया है और जो आपको मालूम नहीं है, उसको हम बता रहे हैं। हे विप्र! वमन, विष्ठा, कीचड़, कफ, मूत्र और आँसुओंके साथ निकलनेवाला मल, हमारा भक्ष्य और पान है। इसके आगे न पूछें, क्योंकि अपने आहारको बताते हुए हमें बहुत लज्जा आ रही है। हे स्वामिन्! हम सब अज्ञानी, तामसी, मन्दबुद्धि और भयसे भागनेवाले हैं। हे विप्र! हममें पूर्वजन्मकी स्मृति एकाएक आ गयी है। अपने विनय या अविनयके संदर्भमें हम कुछ नहीं जानते हैं।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! प्रेतोंके ऐसा कहने एवं ब्राह्मणके सुननेके समय मैंने उन्हें दर्शन दिया। हृदयमें निवास करनेवाले अन्तर्यामी पुरुषके स्वरूपको सामने देखकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने पृथ्वीपर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और स्तुतियोंसे मुझे संतुष्ट किया। आश्चर्यसे उत्फुल्ल नेत्रवाले उन प्रेतोंने तपस्या की। हे खगराज! प्रेमाधिक्य होनेसे उनकी वाणी रुक गयी। उस समय उनके मुखसे कुछ भी नहीं निकल पा रहा था। स्खलित वाणीमें वह ब्राह्मण कहने लगा—

हे प्रभो! आप कृपा करके रजोगुणके कारण घोर चित्तवाले और तमोगुणसे मूढ चित्तवाले प्राणियोंका उद्धार करते हैं। आपको नमस्कार है।

ब्राह्मणने जैसे ही यह कहा, उसी समय मेरी इच्छासे अत्यन्त तेजस्वी, श्रेष्ठ आकाशचारी गन्धर्व एवं अप्सराओंसे युक्त छः विमान वहाँ आ पहुँचे। उन विमानोंकी प्रभासे वह पर्वत चतुर्दिक् आलोकित हो गया। उन पाँचोंके साथ वह ब्राह्मण विमानपर चढ़कर मेरे लोकको चला गया। (अध्याय ७)

और्ध्वदैहिक क्रियाके अधिकारी तथा जीवित-श्राद्धकी संक्षिप्त विधि

गरुडने कहा—हे स्वामिन्! इस सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक कार्यको सम्पन्न करनेका अधिकारी कौन है? यह क्रिया कितने प्रकारकी है? यह सब मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! [जो मनुष्य मर जाता है, उसका और्ध्वदैहिक कार्य] पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भाईकी संतान अथवा सपिण्ड या जातिके लोग कर सकते हैं। इन सभीके अभावमें समानोदक संतान इस कार्यको करनेका अधिकारी है। यदि दोनों कुलों (मातृकुल एवं पितृकुल)-के पुरुष समाप्त हो गये हों तो स्त्रियाँ इस कार्यको कर सकती हैं। यदि मनुष्यने इच्छापूर्वक अपने सभी सगे-सम्बन्धियोंसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है तो उसका और्ध्वदैहिक कार्य राजाको कराना चाहिये।

यह क्रिया तीन प्रकारकी है, जिनको पूर्व, मध्यम एवं उत्तर क्रियाओंकी संज्ञा दी गयी है। हे पक्षिन्! इस क्रियाको प्रतिसंवत्सर एकोद्दिष्ट-विधानसे करना अपेक्षित है। इस श्राद्ध-क्रियाके फलको तुम मुझसे सुनो।

ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि, वसु, मरुद्गण, विश्वेदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सरीसृप, मातृगण और इनके अतिरिक्त जो भी प्राणी इस संसारमें उत्पन्न हैं, उन सभीको श्रद्धापूर्वक किये जा रहे श्राद्धसे

मनुष्य प्रसन्न कर सकता है। ऐसे श्राद्धसे तो सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हो उठता है। जो लोग अपने सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा किये गये श्राद्धसे संतृप्त हो जाते हैं, वे श्राद्धकर्ताको पुत्र, स्त्री और धन आदिके द्वारा तृप्त करते हैं। हे गरुड! इस प्रकार मैंने संक्षेपमें अधिकार और क्रिया-भेदका निरूपण किया।

गरुडने कहा—हे देवश्रेष्ठ! यदि पहले कहे गये अधिकारियोंमेंसे एक भी न हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये?

श्रीकृष्णने कहा—जब अधिकारी व्यक्ति न हो और न तो किसीके अधिकारका निश्चय ही हो रहा हो तो वैसी स्थितिमें मनुष्यको स्वयं अपने जीवनकालमें ही जीवित-श्राद्ध कर लेना चाहिये। उपवासपूर्वक स्नान करके भगवान् कृष्णके प्रति आसक्त हृदय होकर मनुष्य एकाग्र मनसे उस कर्ता, भोक्ता, सर्वेश्वर विष्णुकी पूजा करे। उसके बाद वह अपने पितृगणोंके लिये तिल एवं दक्षिणाके सहित तीन जलधेनु[1] '**ॐ पितृभ्यः स्वधा**' कहकर निवेदित करे और धेनुदान करते समय '**ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः**' तथा '**ॐ सोमाय त्वा पितृमते स्वधा नमः**' ऐसा स्मरण करता हुआ वह दक्षिणाभिमुख होकर दक्षिणासहित तीसरी जलधेनु देते समय विशेषरूपसे '**यमायाङ्गिरसे स्वधा नमः**' यह स्मरण करता रहे। भगवान् विष्णुके यजन एवं जलधेनुदानके मध्य ही ब्राह्मणोंका आवाहन करके उन्हें भोजन कराना चाहिये। वह पहली जलधेनु उत्तर दिशामें तथा दूसरी जलधेनु दक्षिण दिशामें रखे और उन दोनों धेनुओंके मध्यमें तीसरी धेनु रखकर आवाहन आदि श्राद्धसम्बन्धी कार्य करे। इस आवाहनादि क्रियाके पूर्वमें सर्वप्रथम आवाहनपूर्वक विश्वेदेवोंके प्रतिनिधिभूत ब्राह्मणोंकी भलीभाँति पूजा कर वह यह कहे—

वसुभ्यस्त्वामहं विप्र रुद्रेभ्यस्त्वामहं ततः।
सूर्येभ्यस्त्वामहं विप्र भोजयामीति तान्वदेत्॥

(८।१७)

तदनन्तर आवाहनादिक जो शेष कार्य हैं, उन्हें पितृ-शेष कार्योंकी तरह सम्पादित करे। उसके बाद वह वसुके उद्देश्यसे ब्राह्मणको एक सुशील धेनुका दान दे। तत्पश्चात् आग्नेय कोणमें रुद्रदेव तथा दक्षिण दिशामें सूर्यदेवके निमित्त स्थित ब्राह्मणोंको भी एक-एक गाय देनी चाहिये तथा विश्वेदेवोंके लिये तिलपूर्ण पात्रका निवेदन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको अक्षयोदक दान करना चाहिये एवं ब्राह्मण '**ॐ स्वस्ति**' इस प्रतिवचनसे श्राद्धकृत्यकी सम्पूर्णताका आशीर्वाद दें। इसके बाद अष्टाक्षर-मन्त्रसे भगवान् विष्णुका स्मरण करते हुए उनका विसर्जन करे।

इसके पश्चात् स्वस्थचित्त होकर कुलदेवी, ईशानी, शिव तथा भगवान् नारायणका स्मरण करे। तदनन्तर चतुर्दशी तिथिको सुगमतासे उपलब्ध होनेवाली श्रेष्ठ नदीके तटपर जाय। वहाँ वस्त्र तथा लौहखण्डोंका दान करे एवं '**ॐ जितं ते**' इस मन्त्रका जप करता हुआ स्वयं दक्षिणाभिमुख होकर अग्निको प्रज्वलित करे। तदनन्तर वह पचास कुशोंसे ब्राह्मीप्रतिकृति (पुत्तल) बना करके उसका दाह करे। इसके बाद श्मशानमें विहित होम करके अन्तमें पूर्णाहुतिकी क्रिया सम्पन्न करे। तत्पश्चात् निरग्नि भूमि, यम तथा रुद्रदेवका स्मरण करे। हवन करनेके बाद प्रधान स्थानपर उक्त देवोंका आवाहन करना चाहिये। उसके बाद वह अग्निमें मूँगमिश्रित चरु पकाये। तदनन्तर तिल-तण्डुल-मिश्रित दूसरी चरु पकाये।

'**ॐ पृथिव्यै नमस्तुभ्यं०**'—इस मन्त्रसे प्रथम चरु निवेदित करे। '**ॐ यमाय नमश्च०**' इस मन्त्रसे यमको द्वितीय चरु निवेदित करे। '**ॐ नमश्चाथ रुद्राय श्मशानपतये नमः**'—इस मन्त्रसे श्मशानपति रुद्रको निवेदित करे। उसके बाद श्राद्धकर्ता सात नामवाले यमराजके लिये निम्न मन्त्रोंसे सात जलाञ्जलियाँ छोड़े—'**ॐ यमाय स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ धर्मराजाय स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ मृत्यवे स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ अन्तकाय स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ वैवस्वताय स्वधा तस्मै नमः**', '**ॐ कालाय स्वधा तस्मै नमः**' और '**ॐ सर्वप्राणहराय स्वधा तस्मै नमः।**'

इसके बाद श्राद्धकर्ता तुम सब अमुक-अमुक गोत्रसे सम्बन्धित हो, 'यह तिलोदक तुम्हारे लिये होवे'। ऐसा कहते हुए अर्घ्य-पुष्पसे युक्त दस पिण्ड-दान दे। उसके

१. दानके लिये कृत्रिम धेनुका विधान है। इसे गोदानप्रसंगमें वराहपुराण आदिमें जलधेनुदानविधिके अन्तर्गत देखना चाहिये।

बाद उन्हें धूप, दीप, बलि, गन्ध तथा अक्षय जल प्रदान करे। उक्त दस पिण्डोंका दान देनेके पश्चात् भगवान् विष्णुके सुन्दर सुभग मुखका ध्यान करना चाहिये।

इस कृत्यको करनेके बाद आशौचके अन्तमें प्रतिमास मासिक श्राद्ध और सपिण्डीकरण करना चाहिये। श्राद्ध चाहे अपने लिये हो या दूसरेके लिये यही नियम है। शक्ति, आरोग्य, धन और आयु—ये चारों अस्थिर होते हैं, अतः ऐसा जानकर जीवित-श्राद्ध करना चाहिये। मैंने इस जीवित-श्राद्धके विषयमें तुम्हें सब कुछ बता दिया है। (अध्याय ८)

राजा बभ्रुवाहनकी कथा, राजाद्वारा प्रेतके निमित्त की गयी और्ध्वदैहिकक्रिया एवं वृषोत्सर्गसे प्रेतका उद्धार

गरुडने कहा—हे निष्पाप देव! आपने यह कहा कि जब मनुष्यकी और्ध्वदैहिक क्रियाको करनेवाला कोई न हो तो उस आद्य क्रियाको राजा सम्पन्न कर सकता है। प्राचीनकालमें क्या किसी राजाने किसी ऐसे व्यक्तिकी और्ध्वदैहिक आदि क्रिया सम्पन्न की थी?

श्रीकृष्णने कहा—हे सुपर्ण! तुम सुनो! जिस राजाने इस क्रियाको किया था, मैं उसके विषयमें कहूँगा। कृतयुगमें वंग देशमें बभ्रुवाहन नामका एक राजा था। हे पक्षीन्द्र! वह समुद्रसे चारों ओर घिरी हुई अपनी पृथ्वीकी धर्मानुसार भलीभाँति रक्षा करता था। उसने अपने जीवनकालमें इस सम्पूर्ण पृथ्वीका विधिवत् भोग किया। उसके शासनकालमें कोई भी पापी नहीं था। प्रजाओंको न तो चोरका भय था और न तो दुष्टजनोंके द्वारा किये गये उपद्रवोंका आतंक था। उसके राज्यकालमें किसी भी प्रकारके रोगका भी भय नहीं था। सभी अपने-अपने धर्ममें अनुरक्त थे। वह राजा तेजमें सूर्यकी भाँति, अक्षुब्धता (शान्ति)-में पर्वतके समान और सहिष्णुतामें पृथ्वीके सदृश था। किसी समय उस राजाने एक सौ घुड़सवार सैनिकोंको साथ लेकर मृगयाके लिये एक घने वनकी ओर प्रस्थान किया। उस समय योद्धाओंके सिंहनाद, शङ्ख तथा दुन्दुभियोंकी ध्वनिसे मिलकर निकले किलकिलाहटभरे शब्दोंसे वातावरण गूँज रहा था। वहाँ स्थान-स्थानपर चारों ओर उस राजाकी स्तुति हो रही थी। चलते-चलते उस राजाको नन्दनवनके समान एक वन दिखायी पड़ा। वह वन बिल्व, मंदार, खदिर, कैथ तथा बाँसके वृक्षोंसे परिव्याप्त था। ऊँचे, नीचे पर्वतोंसे चारों ओर घिरा हुआ था। जलरहित तथा निर्जन उस वनका विस्तार कई योजनका था। मृग, सिंह तथा अन्य महाभयंकर हिंसक जीव-जन्तु उसमें भरे हुए थे। अपने सेवक एवं सैनिकोंके साथ नाना प्रकारके मृगोंको मारते हुए उस नरशार्दूलने खेल-ही-खेलमें उस वनको विक्षुब्ध कर दिया।

इसके बाद राजाने किसी एक मृगके कुक्षिभागमें बाणका प्रहार किया। आहत होकर भी वह मृग बड़ी तेजीसे दौड़ पड़ा। राजाने भी उस मृगका पीछा किया। अकेला अत्यधिक दूरी तय करनेके कारण थका हुआ भूख-प्याससे पीड़ित वह राजा उस वनको पार कर एक दूसरे घनघोर वनमें जा पहुँचा। अत्यन्त प्याससे क्षुब्ध होकर वह उस वनमें इधर-उधर जल खोजने लगा। हंस और सारस पक्षियोंके शब्दसे सूचित किये गये पूरचक्र नामक सरोवरपर जा कर उसने अश्वके साथ वहाँ स्नान किया। तदनन्तर उस सरोवरके लाल एवं नीले कमलोंके परागसे सुगन्धित शीतल जलको पीकर वह जलसे बाहर आया। मार्गमें अत्यधिक चलनेके कारण थके हुए राजाने उसी सरोवरके किनारे एक छायादार वटवृक्षको देखकर उसमें अपने घोड़ेको बाँध दिया। तत्पश्चात् आस्तरणको बिछाकर तथा ढालकी तकिया लगाकर क्षणभरमें ही शीतल मन्द वायुके सुखकी अनुभूति करता हुआ वह सो गया।

राजाके सोते ही वहाँ सौ प्रेतोंके साथ घूमता हुआ प्रेतवाहन नामक एक प्रेत आ पहुँचा। उसके शरीरमें मात्र अस्थि, चर्म और शिराएँ ही शेष थीं। वह खाने-पीनेको खोजता हुआ धैर्य नहीं धारण कर पा रहा था। आहट पाकर राजाकी नींद खुल गयी। पहले कभी न देखे गये उस दृश्यको देखकर राजाने शीघ्र ही अपने धनुषपर बाण चढ़ा

लिया। अपने सामने राजाको देखकर वह प्रेत भी स्थाणुके सदृश खड़ा रहा। उसको अवस्थित देखकर राजाके मनमें कौतूहल हो उठा। उन्होंने प्रेतसे पूछा कि तुम कौन हो? यहाँ कहाँसे आये हो? तुम्हें यह विकृत शरीर कैसे प्राप्त हुआ है?

प्रेतने कहा—हे महाबाहो! आपके इस संयोगसे मैंने अपना प्रेतभाव त्याग दिया है। मुझे अब परमगति प्राप्त हो गयी है। मेरे समान धन्य अन्य कोई नहीं है।

बभ्रुवाहनने कहा—यह वन सर्वत्र अत्यन्त भयानक है। इसमें मैं यह क्या देख रहा हूँ? हे पिशाच! यहाँ यह वन भी आँधीके झोंकोंसे ग्रस्त है। यहाँ पतंग, मशक, मधुमक्खी, कबन्ध, शिरी, मत्स्य, कच्छप, गिरगिट, बिच्छू, भ्रमर, सर्प, अधोमुखी हवाएँ चलती हैं, बिजलीकी आग जलती है, वायुके झोंकोंसे इधर-उधर तिनके हिल-डुल रहे हैं। यहाँ नाना प्रकारके जीव-जन्तु, हाथी तथा टिड्डियोंके बहुत प्रकारके शब्द सुनायी पड़ रहे हैं, किंतु कहींपर भी कोई दिखायी नहीं दे रहा है। यह सब विकृत स्थिति देखकर मेरा हृदय काँप रहा है।

प्रेतने कहा—राजन्! जिन प्राणियोंका अग्नि-संस्कार, श्राद्ध, तर्पण, षट्पिण्ड, दशगात्र, सपिण्डीकरण नहीं हुआ है, जो विश्वासघाती, मद्यपी और स्वर्णचोर रहे हैं, जो लोग अपमृत्युसे मरे हैं, जो ईर्ष्या करनेवाले हैं, जो अपने पापोंका प्रायश्चित्त नहीं करते हैं, जो गुरु आदिकी पत्नीके साथ गमन करते हैं, वे सभी प्राणी अपने कर्मोंके कारण भटकते हुए प्रेतरूपमें यहाँपर निवास करते हैं। इनको खान-पान बड़ा दुर्लभ है। ये अत्यधिक पीड़ित रहते हैं। हे राजन्! कृपया आप इनका और्ध्वदैहिक संस्कार करें। जिनके माता-पिता, पुत्र और भाई-बन्धु नहीं हैं, उनका और्ध्वदैहिक संस्कार राजाको स्वयं करना चाहिये। राजा इससे अपने पारलौकिक शुभ कर्मको भी सम्पन्न कर सकता है और वह सभी दु:खोंसे विमुक्त हो जाता है। इस कर्मसे सम्मानित होकर राजा अपनी दुर्गति दूर कर सकता है। इस संसारमें कौन किसका भाई है, कौन किसका पुत्र है और कौन किसकी स्त्री है, सभी स्वार्थके वशीभूत हैं। उनमें मनुष्यको विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह अपने कर्मोंका स्वयं ही भोग करता है। धन घरमें छूट जाता है, भाई-बन्धु श्मशानमें छूट जाते हैं, शरीर काष्ठको सौंप दिया जाता है। जीवके साथ पाप-पुण्य ही जाता है—

गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशाने चैव बान्धवाः॥
शरीरं काष्ठमादत्ते पापं पुण्यं सह व्रजेत्।
(९।३६-३७)

अतः राजन्! अपने कल्याणकी इच्छासे आप इस नश्वर शरीरसे अविलम्ब प्रेतोंका और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्न करें।

राजाने कहा—हे प्रेतराज! कृशकाय भयंकर नेत्रवाले तुम प्रेतके समान दिखायी देते हो। तुम प्रसन्न होकर अपना जैसा वृत्तान्त हो, वैसा सब कुछ मुझसे कहो। इस प्रकार पूछे जानेपर प्रेतने अपना सारा वृत्तान्त राजासे कहा।

प्रेतने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मैं प्रारम्भसे लेकर आजतकका सम्पूर्ण वृत्तान्त आपसे कह रहा हूँ। हे राजन्! सभी सम्पदाओंको सुखपूर्वक वहन करनेवाला, विभिन्न जनपदोंमें उत्पन्न नाना प्रकारके रत्नोंसे परिव्याप्त, अनेकानेक पुष्पोंसे सुशोभित वनप्रान्तवाला तथा विभिन्न पुण्यजनोंसे आवृत विदिशा नामक एक नगर था। सदैव देवाराधनमें अनुरक्त रहता हुआ मैं उसी नगरमें निवास करता था। मैं वैश्यजातिमें उत्पन्न हुआ था, उस जन्ममें सुदेव मेरा नाम था। मेरे द्वारा दिये गये 'हव्य'से देवता और 'कव्य'से पितृगण संतुष्ट रहते थे। मैंने नाना प्रकारके दान देकर ब्राह्मणोंको संतृप्त किया था। मेरा आहार-विहार सुनिश्चित था। दीन-हीन, अनाथ और विशिष्ट सत्पात्रोंको मैंने अनेक प्रकारसे सहायता पहुँचायी थी; किंतु दैवयोगसे वह सब निष्फल हो गया। मेरे न तो कोई संतान हुई, न कोई सगे बन्धु-बान्धव हैं और न वैसा कोई मित्र ही है, जो मेरा और्ध्वदैहिक कर्म कर सके। हे श्रेष्ठ राजन्! उसीसे मेरा यह प्रेतत्व स्थिर हो गया है।

हे भूपते! एकादशाह, त्रिपाक्षिक, षाण्मासिक, वार्षिक तथा जो मासिक श्राद्ध होते हैं, इन सभी श्राद्धोंकी कुल संख्या सोलह है। जिस मृतकके लिये इन श्राद्धोंका अनुष्ठान नहीं किया जाता है, उसका प्रेतत्व अन्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी स्थिर ही रहता है। हे महाराज! ऐसा जानकर

आप मुझे इस प्रेतत्वसे मुक्ति प्रदान करायें। इस संसारमें राजा सभी वर्णोंका बन्धु कहा गया है। इसलिये आप मेरा निस्तार करें। हे राजेन्द्र! मैं आपको यह मणिरत्न दे रहा हूँ। जिस प्रकार मेरा कल्याण हो, मुझपर कृपा करके आप वैसा ही कार्य करें। मेरे निष्ठुर सपिण्डों और सगोत्रियोंने मेरे लिये वृषोत्सर्ग नहीं किया है, उसीसे मैं इस प्रेतयोनिको प्राप्त हुआ हूँ। भूख-प्याससे आक्रान्त मैं खाने-पीनेके लिये कुछ नहीं पा रहा हूँ। उसीसे मेरे शरीरमें यह विकृति आ गयी है। शरीर कृश हो गया है। इसमें मांसतक नहीं रह गया है। भूख-प्याससे उत्पन्न इस महान् दुःखको मैं बार-बार भोग रहा हूँ। वृषोत्सर्ग न करनेके कारण यह कष्टकारी प्रेतत्व मुझे प्राप्त हुआ है। हे राजन्! हे दयासिन्धो! इसीलिये मैं प्रेतत्वनिवृत्तिके निमित्त आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। आप मेरा कल्याण करें।

राजाने कहा—हे प्रेत! मेरे कुलका कोई प्रेत हुआ है, यह मनुष्य कैसे जान सकता है। प्राणी इस प्रेतत्वसे कैसे मुक्त हो सकता है? यह सब तुम मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे राजन्! लिङ्ग (चिह्नविशेष) और पीड़ाके कारण प्रेतयोनिका अनुमान लगाना चाहिये। इस पृथ्वीपर प्रेतद्वारा उत्पन्न की गयी जो पीड़ाएँ हैं, उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ। जब स्त्रियोंका ऋतुकाल निष्फल हो जाता है, वंशवृद्धि नहीं होती है। अल्पायुमें ही किसी परिजनकी मृत्यु हो जाती है तो उसे प्रेतोत्पन्न पीड़ा माननी चाहिये। अकस्मात् जब जीविका छिन जाती है, लोगोंके बीच अपनी प्रतिष्ठा विनष्ट हो जाती है, एकाएक घर जलकर नष्ट हो जाता है तो उसे प्रेतजन्य पीड़ा ही मानें। जब अपने घरमें नित्य कलह हो, मिथ्यापवाद हो, राजयक्ष्मा आदि रोग उत्पन्न हो जायँ तो उसे प्रेतोद्भूत पीड़ा समझे। जब अपने प्राचीन अनिन्दित व्यापार-मार्गमें प्रयत्न करनेपर भी मनुष्यको सफलता नहीं मिलती है, उसमें लाभ नहीं होता है, अपितु हानि ही उठानी पड़ती है तो उस पीड़ाको भी प्रेतजन्य ही मानें। जब अच्छी वर्षा होनेपर भी कृषि विनष्ट हो जाती है, व्यापारमें प्राणीकी जीविका भी चली जाती है, अपनी स्त्री अनुकूल नहीं रह जाती है तो उस पीड़ाको भी प्रेतसमुद्भूत माननी चाहिये। हे राजन्! इसी प्रकारकी अन्य पीड़ाओंसे आप प्रेतत्वका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

हे राजेन्द्र! जब मनुष्य वृषोत्सर्ग करता है, तब जाकर वह प्रेतत्वसे मुक्त होता है। आपका इस कार्यमें अधिकार है, इसलिये कृपया आप मेरे उद्देश्यसे वृषोत्सर्ग करें। आप इस मणिरत्नको ग्रहण करें। इसीके धनसे मेरे लिये वृषोत्सर्ग करें। यह कार्य कार्तिककी पूर्णिमा अथवा आश्विनमासके मध्यकालमें करना चाहिये। हे राजन्! मेरा यह संस्कार रेवती नक्षत्रसे युक्त तिथिमें भी हो सकता है। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करके विधिवत् अग्निस्थापन तथा वेद-मन्त्रोंके द्वारा यथाविधान होम करें। बहुत-से ब्राह्मणोंको बुलाकर इस रत्नसे प्राप्त हुए धनके द्वारा उन्हें भोजन करायें। ऐसा करनेसे मुझे मुक्ति प्राप्त हो सकेगी।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! इसके बाद राजाने उस प्रेतसे 'ऐसा ही होगा', यह कहकर मणि ले ली। जो व्यक्ति धन ले लेता है, वह भी उस दाताकी क्रिया करनेका अधिकारी हो जाता है। प्रेतविषयक इस प्रकारकी वार्ता उन दोनोंके मध्य जिस समय चल रही थी, उसी समय देखते-ही-देखते वहाँ घण्टा और भेरियोंकी ध्वनि करती हुई राजाकी चतुरंगिणी सेना आ गयी। उस सेनाके आते ही प्रेत अदृश्य हो गया। उसके बाद उस वनसे निकलकर राजा अपने नगर चला आया। तदनन्तर उसने कार्तिक-मासकी पूर्णिमा तिथि आनेपर उस प्राप्त हुई मणिके धनसे प्रेतत्वनिवृत्तिके लिये विधिवत् वृषोत्सर्ग किया। हे गरुड! उस संस्कारके पूर्ण होते ही वह प्रेत भी तत्काल सुवर्ण देहसे सुशोभित हो उठा और उसने राजाको प्रणाम किया। तत्पश्चात् उस राजाकी प्रशंसा करते हुए प्रेतने कहा—हे देव! यह सब आपकी महिमा है। इस प्रकार राजाके द्वारा किये गये उपकारके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए वह स्वर्गलोकको चला गया। जिस प्रकार राजाके द्वारा किये गये संस्कारसे वह प्रेत अपने प्रेतत्वसे मुक्त हुआ था, वह सब वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ९)

श्राद्धान्नका पितरोंके पास पहुँचना, दृष्टान्तरूपमें देवी सीताद्वारा भोजन करते हुए ब्राह्मणके शरीरमें महाराज दशरथ आदिका दर्शन करना, मृत्युके अनन्तर दूसरे शरीरकी प्राप्ति, सत्कर्मकी महिमा तथा पिण्डदानसे शरीरका निर्माण

गरुडने कहा—हे प्रभो! सपिण्डीकरण और वार्षिक श्राद्ध करनेके पश्चात् मृत व्यक्ति स्वकर्मानुसार देवत्व, मनुष्यत्व अथवा पक्षित्वको प्राप्त करता है। फिर भिन्न-भिन्न आहारवाले उन लोगोंके लिये किये गये श्राद्ध, ब्राह्मण-भोजन और होमसे उन्हें कैसे संतृप्ति होती है? अपने शुभाशुभ कर्मोंके द्वारा प्राप्त हुई प्रेतयोनिमें स्थित वह प्राणी अपने सम्बन्धियोंसे प्राप्त उस भोज्य पदार्थका उपभोग कैसे करता है? श्राद्धकी आवश्यकता तो मैंने अमावास्यादि तिथियोंमें सुनी है। [यह बतलानेकी कृपा करें।]

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे पक्षिराज! श्राद्ध प्रेतजनोंको जिस प्रकारसे तृप्ति प्रदान करता है, उसे सुनो। मनुष्य अपने कर्मानुसार यदि देवता हो जाता है तो श्राद्धान्न अमृत होकर उसे प्राप्त होता है तथा वही अन्न गन्धर्व-योनिमें भोगरूपसे और पशुयोनिमें तृणरूपमें प्राप्त होता है। वही श्राद्धान्न नागयोनिमें वायुरूपसे, पक्षीकी योनिमें फलरूपसे और राक्षसयोनिमें आमिष बन जाता है। वही श्राद्धान्न दानव-योनिके लिये मांस, प्रेतके लिये रक्त, मनुष्यके लिये अन्न-पानादि तथा बाल्यावस्थामें भोगरस हो जाता है[1]।

गरुडने कहा—हे स्वामिन्! इस लोकमें मनुष्योंके द्वारा दिये गये हव्य-कव्य पदार्थ पितृलोकमें कैसे जाते हैं? उनको प्राप्त करानेवाला कौन है? यदि श्राद्ध मरे हुए प्राणियोंके लिये भी तृप्ति प्रदान करनेवाला है तो बुझे हुए दीपकका तेल भी उसकी लौको बढ़ा सकता है। मरे हुए पुरुष अपने कर्मानुसार गति प्राप्त करते हैं तो अपने पुत्रके द्वारा दिये गये पुण्य कर्मोंके फल वे कैसे प्राप्त कर सकेंगे?

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे तार्क्ष्य! प्रत्यक्षकी अपेक्षा श्रुतिका प्रमाण बलवान् होता है। श्रुतिसे प्राप्त हुए ज्ञानका स्वरूप अमृतादिके समान होता है। श्राद्धमें उच्चरित पितरोंके नाम तथा गोत्र हव्य-कव्यके प्रापक हैं। भक्तिपूर्वक पढ़े गये मन्त्र श्राद्धके प्रापक होते हैं। हे सुपर्ण! ये अचेतन मन्त्र कैसे उस श्राद्धको प्राप्त करा सकते हैं, इस विषयमें तुम्हें संशय नहीं रखना चाहिये। अस्तु, इसे समझनेके लिये मैं तुम्हें दूसरा प्रापक बता रहा हूँ। अग्निष्वात्त आदि पितृगण उन पितरोंके राजपदपर नियुक्त हैं। समय आनेपर विधिवत् प्रतिपादित अन्न, अभीष्ट पितृपात्रमें पहुँच जाता है। जहाँ वह जीव रहता है, वहाँ ये अग्निष्वात्त आदि पितृदेव ही अन्न लेकर जाते हैं। नाम-गोत्र और मन्त्र ही उस दान दिये गये अन्नको ले जाते हैं। शतशः योनियोंमें जो जीव जिस योनिमें स्थित रहता है उस योनिमें उसे नाम-गोत्रके उच्चारणसे तृप्ति प्राप्त होती है। संस्कार करनेवाले व्यक्तिके द्वारा कुशाच्छादित पृथ्वीपर दाहिने कन्धेपर यज्ञोपवीत करके दिये गये तीन पिण्ड उन पितरोंको संतुष्टि प्रदान करते हैं।

पितर जिस योनिमें, जिस आहारवाले होते हैं, उन्हें श्राद्धके द्वारा वहाँ उसी प्रकारका आहार प्राप्त होता है। गायोंका झुंड तितर-बितर हो जानेपर भी बछड़ा अपनी माताको जैसे पहचान लेता है, वैसे ही वह जीव जहाँ जिस योनिमें रहता है, वहाँ पितरोंके निमित्त ब्राह्मणको कराया गया श्राद्धान्न स्वयं उसके पास पहुँच जाता है—

यदाहारा भवन्त्येते पितरो यत्र योनिषु।
तासु तासु तदाहारः श्राद्धान्नेनोपतिष्ठति॥
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथान्नं नयते विप्रो जन्तुर्यत्रावतिष्ठते॥
(१०।१९-२०)

पितृगण सदैव विश्वेदेवोंके साथ श्राद्धान्न ग्रहण करते हैं। ये ही विश्वेदेव श्राद्धका अन्न ग्रहण कर पितरोंको संतृप्त करते हैं। वसु, रुद्र, देवता, पितर तथा श्राद्धदेवता श्राद्धोंमें

---

[1] १-देवो यदपि जातोऽयं मनुष्यः कर्मयोगतः॥
तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुयाति च। गान्धर्व्ये भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्॥
श्राद्धं हि वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति। फलं भवति पक्षित्वे राक्षसेषु तथामिषम्॥
दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरं तथा। मनुष्यत्वेऽन्नपानादि बाल्ये भोगरसो भवेत्॥ (१०।४—७)

संतृप्त होकर श्राद्ध करनेवालोंके पितरोंको प्रसन्न करते हैं। जैसे गर्भिणी स्त्री दोहद (गर्भावस्थामें विशेष भोजनकी अभिलाषा)-के द्वारा स्वयंको और अपने गर्भस्थ जीवको भी आहार पहुँचाकर प्रसन्न करती है, वैसे ही देवता श्राद्धके द्वारा स्वयं संतुष्ट होते हैं और पितरोंको भी संतुष्ट करते हैं—

आत्मानं गुर्विणी गर्भमपि प्रीणाति वै यथा।
दोहदेन तथा देवाः श्राद्धैः स्वांश्च पितॄन् नृणाम्॥

(१०।२३)

'श्राद्धका समय आ गया है'—ऐसा जानकर पितरोंको प्रसन्नता होती है। वे परस्पर ऐसा विचार करके उस श्राद्धमें मनके समान तीव्रगतिसे आ पहुँचते हैं। अन्तरिक्षगामी वे पितृगण उस श्राद्धमें ब्राह्मणोंके साथ ही भोजन करते हैं। वे वायुरूपमें वहाँ आते हैं और भोजन करके परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। हे पक्षिन्! श्राद्धके पूर्व जिन ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया जाता है, पितृगण उन्हींके शरीरमें प्रविष्ट होकर वहाँ भोजन करते हैं और उसके बाद वे पुनः वहाँसे अपने लोकको चले जाते हैं—

निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग।
प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम्॥

(१०।२६)

यदि श्राद्धकर्ता श्राद्धमें एक ही ब्राह्मणको निमन्त्रित करता है तो उस ब्राह्मणके उदरभागमें पिता, वामपार्श्वमें पितामह, दक्षिणपार्श्वमें प्रपितामह और पृष्ठभागमें पिण्डभक्षक पितर रहता है। श्राद्धकालमें यमराज प्रेत तथा पितरोंको यमलोकसे मृत्युलोकके लिये मुक्त कर देते हैं। हे काश्यप! नरक भोगनेवाले भूख-प्याससे पीड़ित पितृजन अपने पूर्वजन्मके किये गये पापका पश्चात्ताप करते हुए अपने पुत्र-पौत्रोंसे मधुमिश्रित पायसकी अभिलाषा करते हैं। अतः विधिपूर्वक पायसके द्वारा उन पितृगणोंको संतृप्त करना चाहिये।

गरुडने कहा—हे स्वामिन्! उस लोकसे आकर इस पृथ्वीपर श्राद्धमें भोजन करते हुए पितरोंको किसीने देखा भी है?

श्रीभगवान्ने कहा—हे गरुत्मन्! सुनो—देवी सीताका उदाहरण है। जिस प्रकार सीताने पुष्करतीर्थमें अपने ससुर आदि तीन पितरोंको श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणके शरीरमें प्रविष्ट हुआ देखा था, उसको मैं कह रहा हूँ।

हे गरुड! पिताकी आज्ञा प्राप्त करके जब श्रीराम वन चले गये तो उसके बाद सीताके साथ श्रीरामने पुष्कर-तीर्थकी यात्रा की। तीर्थमें पहुँचकर उन्होंने श्राद्ध करना प्रारम्भ किया। जानकीने एक पके हुए फलको सिद्ध करके रामके सामने उपस्थित किया। श्राद्धकर्ममें दीक्षित प्रियतम रामकी आज्ञासे स्वयं दीक्षित होकर सीताने उस धर्मका सम्यक् पालन किया। उस समय सूर्य आकाशमण्डलके मध्य पहुँच गये और कुतुपमुहूर्त (दिनका आठवाँ मुहूर्त) आ गया था। श्रीरामने जिन ऋषियोंको निमन्त्रित किया था, वे सभी वहाँपर आ गये थे। आये हुए उन ऋषियोंको देखकर विदेहराजकी पुत्री जानकी रामकी आज्ञासे अन्न परोसनेके लिये वहाँ आयीं; किंतु ब्राह्मणोंके बीच जाकर वे तुरंत वहाँसे दूर चली गयीं और लताओंके मध्य छिपकर बैठ गयीं। सीता एकान्तमें छिप गयी हैं, इस बातको जानकर

श्रीरामने यह विचार किया कि ब्राह्मणोंको बिना भोजन कराये साध्वी सीता लज्जाके कारण कहीं चली गयी होंगी, पहले मैं इन ब्राह्मणोंको भोजन करा लूँ फिर उनका अन्वेषण करूँगा। ऐसा विचारकर श्रीरामने स्वयं उन ब्राह्मणोंको भोजन कराया। भोजनके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके चले जानेपर श्रीरामने अपनी प्रियतमा सीतासे कहा कि ब्राह्मणोंको देखकर तुम लताओंकी ओटमें क्यों छिप गयी? हे तन्वङ्गी! तुम इसका समस्त कारण अविलम्ब मुझे बताओ। श्रीरामके ऐसा कहनेपर सीता मुँहको नीचे कर सामने खड़ी हो गयीं और अपने नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई रामसे बोलीं—

सीताजीने कहा—हे नाथ! मैंने यहाँ जिस प्रकारका आश्चर्य देखा उसे आप सुनें। हे राघव! इस श्राद्धमें उपस्थित ब्राह्मणके अग्रभागमें मैंने आपके पिताका दर्शन किया, जो सभी आभूषणोंसे सुशोभित थे। उसी प्रकारके अन्य दो महापुरुष भी उस समय मुझे दिखायी पड़े। आपके पिताको देखकर मैं बिना बताये एकान्तमें चली आयी थी। हे प्रभो! वल्कल और मृगचर्म धारण किये हुए मैं कैसे राजा (दशरथ)-के सम्मुख जा सकती थी। हे शत्रुपक्षके वीरोंका विनाश करनेवाले प्राणनाथ! मैं आपसे यह सत्य ही कह रही हूँ, अपने हाथसे राजाको मैं वह भोजन कैसे दे सकती थी, जिसके दासोंके भी दास कभी भी वैसा भोजन नहीं करते रहे? तृणपात्रमें उस अन्नको रखकर मैं कैसे उन्हें ले जाकर देती? मैं तो वही हूँ जो पहले सभी प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित रहती थी और राजा मुझे वैसी स्थितिमें देख चुके थे। आज वही मैं कैसे राजाके सामने जा पाती? हे रघुनन्दन! उसीसे मनमें आयी हुई लज्जाके कारण मैं वापस हो गयी।

श्रीभगवान्ने कहा—हे गरुड! अपनी पत्नीके ऐसे वचनोंको सुनकर श्रीरामका मन विस्मित हो उठा। यह तो आश्चर्य है; ऐसा कहकर वे अपने स्थानपर चले आये। सीताने जिस प्रकार अपने पितरोंका दर्शन किया था, उसी प्रकार तुम्हें मैंने सुना दिया। अब मैं संक्षेपमें श्राद्धका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनो—

पितृगण अमावास्याके दिन वायुरूपमें घरके दरवाजेपर उपस्थित रहते हैं और अपने स्वजनोंसे श्राद्धकी अभिलाषा करते हैं। जबतक सूर्यास्त नहीं हो जाता, तबतक वे वहीं भूख-प्याससे व्याकुल होकर खड़े रहते हैं। सूर्यास्त हो जानेके पश्चात् वे निराश होकर दुःखित मनसे अपने वंशजोंकी निन्दा करते हैं और लम्बी-लम्बी साँस खींचते हुए अपने-अपने लोकोंको चले जाते हैं। अतः प्रयत्नपूर्वक अमावास्याके दिन श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। यदि पितृजनोंके पुत्र तथा बन्धु-बान्धव उनका श्राद्ध करते हैं और गया-तीर्थमें जाकर इस कार्यमें प्रवृत्त होते हैं तो वे उन्हीं पितरोंके साथ ब्रह्मलोकमें निवास करनेका अधिकार प्राप्त करते हैं। उन्हें भूख-प्यास कभी नहीं लगती। इसीलिये विद्वान्को प्रयत्नपूर्वक यथाविधि शाक-पातसे भी अपने पितरोंके लिये श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। समयानुसार श्राद्ध करनेसे कुलमें कोई दुःखी नहीं रहता। पितरोंकी पूजा करके मनुष्य आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, श्री, पशु, सुख और धन-धान्य प्राप्त करता है। देवकार्यसे भी पितृकार्यका विशेष महत्त्व है। देवताओंसे पहले पितरोंको प्रसन्न करना अधिक कल्याणकारी है—

कुर्वीत समये श्राद्धं कुले कश्चिन्न सीदति।
आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्॥
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्।
देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते॥
देवताभ्यः पितृणां हि पूर्वमाप्यायनं शुभम्।
(१०।५७—५९)

जो लोग अपने पितृगण, देवगण, ब्राह्मण तथा अग्निकी पूजा करते हैं, वे सभी प्राणियोंकी अन्तरात्मामें समाविष्ट मेरी ही पूजा करते हैं। शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य ब्रह्मपर्यन्त समस्त चराचर जगत्को प्रसन्न कर लेता है।

हे आकाशचारिन् गरुड! मनुष्योंके द्वारा श्राद्धमें पृथ्वीपर जो अन्न बिखेरा जाता है, उससे जो पितर पिशाच-योनिमें उत्पन्न हुए हैं, वे संतृप्त होते हैं। श्राद्धमें स्नान करनेसे भीगे हुए वस्त्रोंद्वारा जो जल पृथ्वीपर गिरता है, उससे वृक्षयोनिको प्राप्त हुए पितरोंकी संतुष्टि होती है। उस समय जो गन्ध तथा जल भूमिपर गिरता है, उससे देवत्व-योनिको प्राप्त पितरोंको सुख प्राप्त होता है। जो पितर अपने कुलसे बहिष्कृत हैं, क्रियाके योग्य नहीं हैं, संस्कारहीन और विपन्न हैं, वे सभी श्राद्धमें विकिरान्न और मार्जनके जलका भक्षण करते हैं। श्राद्धमें भोजन करके ब्राह्मणोंके द्वारा आचमन एवं जलपान करनेके लिये जो जल ग्रहण किया जाता है, उस जलसे उन पितरोंको संतृप्ति प्राप्त होती है। जिन्हें पिशाच, कृमि और कीटकी योनि मिली है तथा जिन पितरोंको मनुष्य-योनि प्राप्त हुई है, वे सभी पृथ्वीपर श्राद्धमें दिये गये पिण्डोंमें प्रयुक्त अन्नकी अभिलाषा करते हैं, उसीसे उन्हें संतृप्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्योंके द्वारा विधिपूर्वक श्राद्ध किये जानेपर जो शुद्ध या अशुद्ध अन्न तथा जल फेंका जाता है, उससे जिन्होंने अन्य जातिमें जाकर जन्म लिया है, उनकी तृप्ति होती है। जो मनुष्य अन्यायपूर्वक अर्जित किये गये पदार्थोंसे श्राद्ध करते हैं, उस श्राद्धसे नीच योनियोंमें जन्म ग्रहण करनेवाले

चाण्डाल पितरोंकी तृप्ति होती है।

हे पक्षिन्! इस संसारमें श्राद्धके निमित्त जो कुछ भी अन्न, धन आदिका दान अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा दिया जाता है, वह सब पितरोंको प्राप्त होता है। अन्न, जल और शाक-पात आदिके द्वारा यथासामर्थ्य जो श्राद्ध किया जाता है, वह सब पितरोंकी तृप्तिका हेतु है। तुमने इस विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। तुम अब जो यह पूछ रहे हो कि मृत्युके बाद प्राणीको तत्काल दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है? अथवा विलम्बसे उसको दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है? वह मैं तुम्हें संक्षेपमें बता रहा हूँ।

हे गरुड! प्राणी मृत्युके पश्चात् दूसरे शरीरमें तुरंत भी प्रविष्ट हो सकता है और विलम्बसे भी। मनुष्य जिस कारण दूसरे शरीरको प्राप्त करता है, उस वैशिष्ट्यको तुम मुझसे सुनो। शरीरके अंदर जो धूमरहित ज्योतिके सदृश प्रधान पुरुष जीवात्मा विद्यमान रहता है, वह मृत्युके बाद तुरंत ही वायवीय शरीर धारण कर लेता है। जिस प्रकार एक तृणका आश्रय लेकर स्थित जोंक दूसरे तृणका आश्रय लेनेके बाद पहलेवाले तृणके आश्रयसे अपने पैरको आगे बढ़ाता है, उसी प्रकार शरीरी पूर्व-शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें जाता है। उस समय भोगके लिये वायवीय शरीर सामने ही उपस्थित रहता है। मरनेवाले शरीरके अंदर विषय ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ उसके निश्चेष्ट (निर्व्यापार) हो जानेपर वायुके साथ चली जाती हैं। वह जिस शरीरको प्राप्त करता है उसको भी छोड़ देता है। जैसे स्त्रीके शरीरमें स्थित गर्भ उसके अन्नादिक कोशसे शक्ति ग्रहण करता है और समय आनेपर उसे छोड़कर वह बाहर आ जाता है, वैसे ही जीव अपना अधिकार लेकर दूसरे शरीरमें प्रवेश करता है। उस एक शरीरमें प्रविष्ट होते हुए प्राणीके कालक्रम, भोजन या गुण-संक्रमणकी जो स्थिति है उसे मूर्ख नहीं, अपितु ज्ञानी व्यक्ति ही देखते हैं।

विद्वान् लोग इसको आतिवाहिक वायवीय शरीर कहते हैं। हे सुपर्ण! भूत-प्रेत और पिशाचोंका शरीर तथा मनुष्योंका पिण्डज शरीर भी ऐसा ही होता है।

हे पक्षीन्द्र! पुत्रादिके द्वारा जो दशगात्रके पिण्डदान दिये जाते हैं, उस पिण्डज शरीरसे वायवीय शरीर एकाकार हो जाता है। यदि पिण्डज देहका साथ नहीं होता है तो वायुज शरीर कष्ट भोगता है। प्राणीके इस शरीरमें जैसे कौमार्य, यौवन और बुढ़ापेकी अवस्थाएँ आती हैं, वैसे ही दूसरे शरीरके प्राप्त होनेपर भी तुम्हें समझना चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रोंका परित्याग कर नये वस्त्रोंको धारण कर लेता है, उसी प्रकार शरीरी पुराने शरीरका परित्याग कर नये शरीरको धारण करता है। इस शरीरीको न शस्त्र छेद सकता है, न अग्नि जला सकती है, न जल आर्द्र कर सकता है और न वायु सुखा सकती है—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिः पक्षीन्द्रेत्यवधारय॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

(१०।८३—८५)

जीव तत्काल वायवीय शरीरमें प्रवेश कर लेता है, यह तो मैंने तुम्हें बता दिया; अब जीवात्माको विलम्बसे जैसे दूसरा शरीर प्राप्त होता है, उसको तुम मुझसे सुनो।

हे गरुड! कोई-कोई जीवात्मा पिण्डज शरीर विलम्बसे प्राप्त करता है; क्योंकि मृत्युके बाद वह स्वकर्मानुसार यमलोकको जाता है। चित्रगुप्तकी आज्ञासे वह वहाँ नरक भोगता है। वहाँकी यातनाओंको झेलनेके पश्चात् उसे पशु-पक्षी आदिकी योनि प्राप्त होती है। मनुष्य जिस शरीरको ग्रहण करता है, उसी शरीरमें मोहवश उसकी ममता हो जाती है। शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगकर मनुष्य इससे मुक्त भी हो जाता है।

गरुडने कहा—हे दयानिधे! बहुत-से पापोंको करनेके बाद भी इस संसारको पार करके प्राणी आपको कैसे प्राप्त कर सकता है? उसे आप मुझे बतायें। हे लक्ष्मीरमण! जिस प्रकार मनुष्यका संसर्ग पुनः दुःखसे न हो उस उपायको बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने कर्ममें रत रहकर संसिद्धि प्राप्त कर लेता है। अपने कर्ममें अनुरक्त रहकर वह उस सिद्धिको जिस प्रकार प्राप्त करता है, उसको तुम मुझसे सुनो—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥

(१०।९२)

हे कश्यपनन्दन! सत्कर्मसे जिसने अपने कालुष्यको नष्ट कर दिया है, वह व्यक्ति वासुदेवके निरन्तर चिन्तनसे विशुद्ध हुई बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे अपना नियमन करके स्थिर रहता है, जो शब्दादि विषयोंका परित्याग कर राग-द्वेषको छोड़कर विरक्त, सेवी और यथाप्राप्त भोजनसे संतुष्ट रहता है, जिसका मन-वाणी-शरीर संयमित है, जो वैराग्य धारणकर नित्य ध्यान-योगमें तत्पर रहता है, जो अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह—इन षड्विकारोंका परित्याग करके निर्भय होकर शान्त हो जाता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसके बाद मनुष्योंके लिये कुछ करना शेष नहीं रह जाता—

कर्मविध्वस्तकालुष्यो वासुदेवानुचिन्तया।
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च॥
शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।
विरक्तसेवी लब्धाशी यतवाक्कायमानसः॥
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्॥
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।
अतः परं नृणां कृत्यं नास्ति कश्यपनन्दन॥

(१०।९३—९६)

(अध्याय १०)

जीवकी ऊर्ध्वगति एवं अधोगतिका वर्णन

गरुडजीने कहा—हे देवश्रेष्ठ! मनुष्ययोनि कैसे प्राप्त होती है? मनुष्य कैसे मृत्युको प्राप्त होता है? शरीरका आश्रय लेकर कौन मरता है? उसकी इन्द्रियाँ कहाँसे कहाँ चली जाती हैं? मनुष्य कैसे अस्पृश्य हो जाता है? यहाँ किये हुए कर्मको कहाँ और कैसे भोगता है और कहाँ कैसे जाता है? यमलोक और विष्णुलोकको मनुष्य कैसे जाता है? हे प्रभो! आप मुझपर प्रसन्न हों। मेरे इस सम्पूर्ण भ्रमको विनष्ट करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे विनतानन्दन! परायी स्त्री और ब्राह्मणके धनका अपहरण करके प्राणी अरण्य एवं निर्जन स्थानमें रहनेवाले ब्रह्मराक्षसकी योनिको प्राप्त करता है। रत्नोंकी चोरी करनेवाला मनुष्य नीच जातिके घर उत्पन्न होता है। मृत्युके समय उसकी जो-जो इच्छाएँ होती हैं, उन्हींके वशीभूत हो वह उन-उन योनियोंमें जाकर जन्म लेता है। इस जीवात्माका छेदन शस्त्र नहीं कर सकता, अग्नि इसको जलानेमें समर्थ नहीं है, जल इसे आर्द्र नहीं कर सकता और वायुके द्वारा इसका शोषण सम्भव नहीं है।

हे पक्षिन्! मुख, नेत्र, नासिका, कान, गुदा और मूत्रनली—ये सभी छिद्र अण्डजादिक जीवोंके शरीरमें विद्यमान रहते हैं। नाभिसे मूर्धापर्यन्त शरीरमें आठ छिद्र हैं। जो सत्कर्म करनेवाले पुण्यात्मा हैं, उनके प्राण शरीरके ऊर्ध्व छिद्रोंसे निकलकर परलोक जाते हैं। मृत्युके दिनसे लेकर एक वर्षतक जैसी विधि पहले बतायी गयी है, उसीके अनुसार सभी और्ध्वदैहिक श्राद्धादि संस्कार निर्धन होनेपर भी यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक करने चाहिये। जीव जिस शरीरमें वास करता है उसी शरीरमें वह अपने शुभाशुभ कर्मफलका भोग करता है। हे पक्षिराज! मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये दोषोंको वह भोगता है। जो [अनासक्तभावसे] सत्कर्ममें रत रहता है, वह मृत्युके बाद सुखी रहता है और सांसारिकताके मायाजालमें नहीं फँसता। जो विकर्ममें निरत रहता है वह मनुष्य पाशबद्ध हो जाता है। (अध्याय ११)

चौरासी लाख योनियोंमें मनुष्यजन्मकी श्रेष्ठता, मनुष्यमात्रका एकमात्र कर्तव्य—धर्माचरण

श्रीकृष्णजीने कहा—हे तार्क्ष्य! मनुष्योंके हित एवं प्रेतत्वकी विमुक्तिके लिये जीवित प्राणीके कर्म-विधानका निर्णय मैंने तुम्हें सुना दिया। इस संसारमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। उनका विभाजन चार प्रकारके जीवोंमें हुआ है। उन्हें अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और जरायुज कहा जाता है। इक्कीस लाख योनियाँ अण्डज मानी गयी हैं। इसी प्रकार क्रमशः स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज योनियोंके विषयमें भी कहा गया है। मनुष्यादि योनियाँ जरायुज कही

जाती हैं। इन सभी प्राणियोंमें मनुष्ययोनि परम दुर्लभ है। पाँच इन्द्रियोंसे युक्त यह योनि प्राणीको बड़े ही पुण्यसे प्राप्त होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं। रजक, चमार, नट, बंसखोर, मछुआरा, मेद तथा भिल्ल—ये सात अन्त्यज जातियाँ मानी गयी हैं। म्लेच्छ और तुम्बु जातिके भेदसे अनेक प्रकारकी जातियाँ हो जाती हैं। जीवोंके हजारों भेद हैं। आहार, मैथुन, निद्रा, भय और क्रोध—ये कर्म सभी प्राणियोंमें पाये जाते हैं, किंतु विवेक सभीमें परम दुर्लभ है। एक पाद, दो पाद आदिके भेदसे शारीरिक संरचनामें भी अनेक भेद प्राप्त होते हैं।

जिस देशमें कृष्णसार नामक मृग रहता है, वह धर्मदेश कहलाता है। सब प्रकारसे ब्रह्मा आदि देवता वहीं निवास करते हैं। पञ्चमहाभूतोंमें प्राणी, प्राणियोंमें बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियोंमें मनुष्य और मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है। स्वर्ग और मोक्षके साधनभूत मनुष्ययोनिको प्राप्त करके जो प्राणी इन दोनोंमेंसे एक भी लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाता, निश्चित ही उसने अपनेको ठग दिया। सौका मालिक एक हजार और एक हजारवाला व्यक्ति लाखकी पूर्तिमें लगा रहता है। जो लक्षाधिपति है वह राज्यकी इच्छा करता है। जो राजा है वह सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमें रखना चाहता है। जो चक्रवर्ती नरेश है वह देवत्वकी इच्छा करता है। देवत्व-पदके प्राप्त होनेपर उसकी अभिलाषा देवराज इन्द्रके पदके लिये होती है और देवराज होनेपर वह ऊर्ध्वगतिकी कामना करता है; फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती। तृष्णासे पराजित व्यक्ति नरकमें जाता है। जो लोग तृष्णासे मुक्त हैं, उन्हें उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।[1]

इस संसारमें जो प्राणी आत्माके अधीन है, वह निश्चित ही सुखी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच विषय हैं, इनकी अधीनतामें रहनेवाला निश्चित ही दुःखी रहता है। मृग, हाथी, पतंग, भ्रमर और मीन—ये पाँचों क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध, रस—ये एक-एक विषयके सेवनसे मारे जाते हैं; फिर जो प्रमादी मनुष्य पाँचों इन्द्रियोंसे इन पाँचों विषयोंका सेवन करता है, वह इनके द्वारा कैसे नहीं मारा जायगा? मनुष्य बाल्यावस्थामें अपने पिता-माताके अधीन होता है। युवावस्था आनेपर वह स्त्रीका हो जाता है और अन्त समय आनेपर पुत्र-पौत्रके व्यामोहमें फँस जाता है। वह मूर्ख कभी किसी अवस्थामें आत्माके अधीन नहीं रहता। लौह और काष्ठके बने हुए पाशसे बँधा हुआ व्यक्ति मुक्त हो जाता है, किंतु पुत्र तथा स्त्री आदिके मोहपाशमें बँधा हुआ प्राणी कभी मुक्त नहीं हो पाता।

पाप एक मनुष्य करता है, किंतु उसके फलका उपभोग बहुत-से लोग करते हैं। भोक्ता तो अलग हो जाते हैं पर कर्ता दोषका भागी होता है। चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो और चाहे युवा हो, कोई भी मृत्युपर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। कोई अधिक सुखी हो अथवा अधिक दुःखी हो, वह बारम्बार आता-जाता है। मृत प्राणी सबके देखते-देखते सब कुछ छोड़कर चला जाता है। इस मर्त्यलोकमें प्राणी अकेला ही पैदा होता है, अकेले ही मरता है और अकेले ही पाप-पुण्यका भोग करता है। 'बन्धु-बान्धव मरे हुए स्वजनके शरीरको पृथ्वीपर लकड़ी और मिट्टीके ढेलेकी भाँति फेंककर पराङ्मुख हो जाते हैं; धर्म ही उसका अनुसरण करता है। प्राणीका धन-वैभव घरमें ही छूट जाता है। मित्र एवं बन्धु-बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं। शरीरको अग्नि ले लेती है। पाप-पुण्य ही उस जीवात्माके साथ जाते हैं।'

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ॥
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।
गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानान्मित्रबान्धवाः॥
शरीरं वह्निरादत्ते सुकृतं दुष्कृतं व्रजेत्।
शरीरं वह्निना दग्धं पुण्यं पापं सह स्थितम्॥

(१२।२४—२६)

'मनुष्यने जो भी शुभ या पाप-कर्म किया है, वह सर्वत्र उसीको भोगता है। हे पक्षिराज! सूर्यास्ततक जिसने याचकोंको अपना धन नहीं दे दिया तो न जाने प्रातः होनेपर उसका वह धन किसका हो जायगा? पूर्वजन्मके पुण्यसे

१-इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते कर्तुम्। लक्षाधिपती राज्यं राजापि सकलां धरां लब्धुम्॥
चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरभावे सकलसुरपतिर्भवितुम्। सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्तते तृष्णा॥
तृष्णया चाभिभूतस्तु नरकं प्रतिपद्यते। तृष्णामुक्तास्तु ये केचित् स्वर्गवासं लभन्ति ते॥ (१२।१३—१५)

जो थोड़ा या बहुत धन प्राप्त हुआ है, उसे यदि परोपकारके कार्यमें नहीं लगाया या श्रेष्ठ द्विजोंको दानमें नहीं दिया तो उसका वह धन यह रटता रहता है कि कौन मेरा भर्ता होगा? ऐसा विचार कर धर्मके कार्यमें अपना धन लगाना चाहिये। मनुष्य श्रद्धापूत शुद्ध मनसे दिये गये धनके द्वारा धर्मको धारण करता है। श्रद्धारहित धर्म इस लोक तथा परलोकमें फलीभूत नहीं होता। धर्मसे ही अर्थ और कामकी भी प्राप्ति होती है। धर्म ही मोक्षका प्रदायक है। अतः मनुष्यको धर्मका सम्यक् आचरण करना चाहिये। धर्मकी सिद्धि श्रद्धासे होती है, प्रचुर धनराशिसे नहीं। अकिंचन अर्थात् धन-वैभवसे रहित श्रद्धावान् मुनियोंको स्वर्गकी प्राप्ति हुई है। श्रद्धारहित होकर किया गया होम, दान तथा तप असत् कहा जाता है। हे पक्षिन्! उसका फल न तो इस लोकमें मिलता है और न परलोकमें ही मिलता है'—

शुभं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः।
यदनस्तमिते सूर्ये न दत्तं धनमर्थिनाम्॥
न जाने तस्य तद्वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति।
रारटीति धनं तस्य को मे भर्ता भविष्यति॥
न दत्तं द्विजमुख्येभ्यः परोपकृतये तथा।
पूर्वजन्मकृतात् पुण्याद्यल्लब्धं बहु चाल्पकम्॥
तदीदृशं परिज्ञाय धर्मार्थे दीयते धनम्।
धनेन धार्यते धर्मः श्रद्धापूतेन चेतसा॥
श्रद्धाविरहितो धर्मो नेहामुत्र च तत्फलम्।
धर्माच्च जायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽपि जायते॥
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत्।
श्रद्धया साध्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः॥
अकिञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः।
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पक्षिन् प्रेत्य चेह न तत्फलम्॥

(१२।२७—३३)

(अध्याय १२)

वृषोत्सर्ग तथा सत्कर्मकी महिमा

श्रीगरुडजीने कहा—हे देवेश! इस भूलोकमें किस कर्मको करनेसे प्राणियोंको प्रेतयोनिकी प्राप्ति नहीं होती? उसे आप मुझे बतायें।

श्रीकृष्णजीने कहा—अब मैं संक्षेपमें क्षयाहसे लेकर आगे की जानेवाली और्ध्वदैहिक क्रियाको कह रहा हूँ, जिसे मोक्ष चाहनेवाले लोगोंको अपने ही हाथोंसे करना चाहिये। स्त्री और विशेषरूपसे पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर उनके प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये वृषोत्सर्ग करना चाहिये। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये वृषोत्सर्गके अतिरिक्त इस पृथ्वीपर अन्य कोई साधन नहीं है। जो मनुष्य जीवित रहते हुए वृषोत्सर्ग करता है अथवा मृत्युके पश्चात् भी जिसकी यह क्रिया सम्पन्न हो जाती है उसे दान, यज्ञ एवं व्रत किये बिना भी प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती।

गरुडने कहा—हे देवश्रेष्ठ मधुसूदन! जीवित रहते हुए अथवा मृत्युके पश्चात् भी किस कालमें यह वृषोत्सर्ग-क्रिया होनी चाहिये? आप इस बातको मुझे बतायें। सोलह श्राद्धोंको करनेसे अन्तमें क्या फल प्राप्त हो सकता है?

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! यदि वृषोत्सर्ग किये बिना ही पिण्डदान दिया जाता है तो उसका श्रेय दाताको नहीं प्राप्त होता। प्रत्युत वह क्रिया प्रेतके लिये निष्फल हो जाती है। जिसके एकादशाहमें वृषोत्सर्ग नहीं होता, सौ श्राद्ध करनेपर भी उसका प्रेतत्व सुस्थिर रहता है।[1]

गरुडने कहा—हे प्रभो! सर्पदंशसे मरे हुए लोगोंकी अग्निदाहादि क्रिया नहीं की जाती है। यदि जलमें, सींगवाले पशु अथवा शस्त्रादिके प्रहारसे कोई मर जाता है, तो इस प्रकार असत् मृत्युको प्राप्त हुए लोगोंकी शुद्धि कैसे हो? हे देव! आप मेरे इस संशयको दूर करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश! उक्त प्रकारसे अपमृत्युको प्राप्त हुआ ब्राह्मण छः मास, क्षत्रिय ढाई मास, वैश्य डेढ़ मास एवं शूद्र एक मासमें शुद्ध हो जाता है। यदि तीर्थमें सभी प्रकारका दान देकर कोई ब्रह्मचारी मर जाता है तो

1. एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥ (१३।८)

वह शुद्ध होकर ऐहिक दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। वृषोत्सर्ग आदि करके यति-धर्मका आचरण करना चाहिये। यदि संन्यास-धर्मका पालन करते हुए किसी प्राणीकी मृत्यु हो जाती है तो वह शाश्वत ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति शिष्टाचाररहित धर्मविरुद्ध कर्म करता है, वह भी वृषोत्सर्ग आदिकी क्रिया करके यमराजके शासनमें नहीं जाता। पुत्र, सहोदर भाई, पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगोत्री अथवा सम्पत्ति लेनेवाला उत्तराधिकारी कोई भी हो, उसको मरे हुए स्वजनके लिये वृषोत्सर्ग अवश्य करना चाहिये। पुत्रके अभावमें पत्नी, दौहित्र (नाती) और दुहिता (पुत्री) भी इस कर्मको कर सकती है। पुत्रोंके रहनेपर वृषोत्सर्ग अन्यसे नहीं कराना चाहिये।

गरुडने कहा—हे सुरेश्वर! चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष जिसके पुत्र नहीं है, उसका संस्कार किस प्रकारसे किया जाय? हे देव! इस विषयमें उत्पन्न हुई मेरी शंकाको आप भली प्रकारसे दूर करें।

श्रीकृष्णने कहा—पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं है, उसके लिये स्वर्गका सुख नहीं है। अतः ऐसे मनुष्यको सदुपायसे पुत्र अवश्य उत्पन्न करना चाहिये। पुरुष स्वयं जो कुछ भी दान देते हैं, परलोकमें वे सभी उसके सामने ही उपस्थित रहते हैं। अपने हाथोंसे जो नाना प्रकारके स्वादिष्ट एवं विविध व्यञ्जन खानेके लिये दिये जाते हैं, वे सभी मृत्युके पश्चात् अक्षय फल प्रदान करते हैं। जो गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, भोजन और पद-दान अपने हाथसे दिये जाते हैं, वे सभी दान जिस-जिस योनिमें जहाँ-जहाँ दानकर्ता जाते हैं, वहाँ-वहाँ उपस्थित रहते हैं[1]।

जबतक प्राणीका शरीर स्वस्थ रहता है, तबतक धर्मका सम्यक् पालन करना चाहिये। अस्वस्थ होनेपर दूसरोंकी प्रेरणासे भी वह कुछ नहीं कर पाता है। यदि अपने जीवनकालमें व्यक्ति और्ध्वदैहिक कर्म नहीं कर लेता अथवा मरनेके बाद अधिकारी पुत्र-पौत्रादिकोंके द्वारा भी यह कर्म नहीं होता है तो वह वायुरूपमें भूख-प्याससे पीड़ित रात-दिन भटकता रहता है। वह कृमि, कीट अथवा पतिंगा होकर बार-बार जन्म लेता है और मर जाता है। वह कभी असत् मार्गसे गर्भमें प्रविष्ट होता है एवं जन्म लेते ही तत्काल विनष्ट हो जाता है।

जबतक यह शरीर स्वस्थ और नीरोग है, जबतक इससे बुढ़ापा दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति किसी भी प्रकारसे क्षीण नहीं हुई है और जबतक आयु नष्ट नहीं हुई है, तबतक अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना चाहिये; क्योंकि घरमें महाभयंकर आगके लग जानेपर कुआँ खोदनेके उद्योगसे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है—

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्
संदीप्ते भवने तु कूपखनने प्रत्युद्यमः कीदृशः॥

(१३।२५)

(अध्याय १३)

और्ध्वदैहिक क्रिया, गोदान एवं वृषोत्सर्गका माहात्म्य

गरुडने कहा—हे विभो! मृत्युको प्राप्त कर रहे दुःखित व्यक्तिके द्वारा जो दान दिया जाता है, उसका क्या फल है? स्वस्थ अवस्थामें और विधिहीन जो दान दिया जाता है, उसका क्या फल है?

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिश्रेष्ठ! स्वस्थ चित्तवाले मनुष्यके द्वारा दानमें दी गयी एक गौ, रोगी पुरुषके द्वारा दानमें दी गयी एक सौ गाय, मर रहे प्राणीके द्वारा दानमें धनको छोड़कर दी गयी हजार गाय तथा व्यक्तिके मर जानेपर विधिवत् पुत्र-पौत्रादिके द्वारा दानमें दी गयी एक लाख गायोंके बराबर होती है। तीर्थ एवं पात्रके समायोगसे यथाविधि एक ही गोदान कर दिया जाय तो वह अकेली गौ दाताको एक लाख गोदानका पुण्य प्रदान करती है।

१–व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च। स्वहस्तेन प्रदत्तानि देहान्ते चाक्षयं फलम्॥
गोभूहिरण्यवासांसि भोजनानि पदानि च। यत्र यत्र वसेज्जन्तुस्तत्रतत्रोपतिष्ठति॥ (१३।२०-२१)

हे खगराज! सत्पात्रको दिया गया दान दिन-दिन बढ़ता है। दाताके दिये हुए दानको यदि ज्ञानी ग्रहण करता है तो उसे पाप नहीं लगता। विष और शीतका अपहरण करनेवाले मन्त्र और अग्नि क्या दोषभाजन होते हैं? अतः प्रतिदिन सत्पात्रको विशेष उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये दान देना चाहिये। अपने कल्याणकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिको अपात्रको कुछ भी नहीं देना चाहिये। यदि कदाचित् अपात्रके लिये गौका दान दिया जाता है तो वह दाताको नरकमें ले जाता है और अपात्र ग्रहीताको इक्कीस पीढ़ियोंके सहित नरकमें ढकेल देता है।

हे खगेश! जिस प्रकारसे अपने हाथसे भूमिमें निवेश किया गया धन मनुष्यके आवश्यकतानुसार वह जब चाहे काममें आ सकता है, उसी प्रकार अपने हाथसे किया गया दान भी देहान्तरमें प्राप्त होता है। निर्धन होनेके बाद भी अपुत्र व्यक्तिको मोक्षकी कामनासे अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया अवश्य कर लेनी चाहिये। थोड़े धनसे भी अपने हाथसे की गयी अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया उसी प्रकारसे अक्षय फल देनेवाली होती है, जिस प्रकार अग्निमें डाली हुई आज्याहुति। दान लेनेके योग्य व्यक्तिको ही शय्या, कन्या एवं गौका दान देना चाहिये और यह भी ध्यान रखना चाहिये कि दो शय्याएँ एकको न दी जायँ, दो कन्याएँ एकको न दी जायँ तथा दो गायें भी एकको न दी जायँ। इसका आशय यह है कि भलीभाँति गोपालनमें समर्थ, गोपालनके प्रति आस्थावान् तथा दान लेने योग्य प्रतिग्रहीताको ही गोदान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी विशेषरूपमें ज्ञातव्य है कि दो दान लेने योग्य व्यक्तियोंको भी एक गौ कदापि न दी जाय; क्योंकि यदि वह किसीके हाथ बेची जाती है अथवा उसका किन्हीं दो या दोसे अधिक लोगोंके बीच विभाजन होता है तो ऐसा करनेवाले मनुष्यको सात पीढ़ियोंके सहित वह दान जला देता है। अतः इस नश्वर जीवनमें समस्त और्ध्वदैहिक कर्म स्वयं सम्पन्न कर लेना चाहिये। पाथेयके रूपमें दिये गये दानादिको प्राप्त करके प्राणी उस महाप्रयाणके मार्गमें सुखपूर्वक जाता है, अन्यथा पाथेयरहित जीवात्मा अनेक प्रकारका कष्ट झेलता है। ऐसा जानकर मनुष्य विधिवत् वृषोत्सर्ग करे। जो पुत्रहीन वृषोत्सर्ग किये बिना ही मर जाता है, उसे मुक्ति नहीं प्राप्त होती है। अतः पुत्रविहीन मनुष्य इस धर्मका पालन विधिवत् करे। ऐसा करनेसे यमके उस महापथमें वह सुखपूर्वक गमन करता है। अग्निहोत्र, विभिन्न प्रकारके यज्ञ और दानादिसे प्राणीको वह सद्गति नहीं प्राप्त होती है, जो गति वृषोत्सर्गसे प्राप्त होती है। समस्त यज्ञोंमें वृषोत्सर्ग यज्ञ श्रेष्ठतम है, इसलिये प्रयास करके मनुष्यको भलीभाँति वृषोत्सर्ग सम्पन्न करना चाहिये।

गरुडने कहा—हे गोविन्द! आप मुझे क्षयाह और और्ध्वदैहिक क्रियाके विषयमें उपदेश दें कि इस क्रियाको किस काल, किस तिथि और किस प्रकारकी विधिसे सम्पन्न करना चाहिये। इसको करके मनुष्य क्या फल प्राप्त करता है, इसे भी आप मुझे बतायें। हे गोविन्द! आपकी कृपासे तो प्राणी मुक्त हो जाता है।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिन्! कार्तिक आदि मासमें सूर्यके दक्षिणायन हो जानेपर शुक्लपक्षकी द्वादशी आदि शुभ तिथियोंमें, शुभ लग्न और मुहूर्तमें तथा पवित्र देशमें समाहितचित्त होकर विधिज्ञ, शुभलक्षणोंसे युक्त सत्पात्र ब्राह्मणको बुलाकर जप, होम तथा दानसे अपने शरीरका सर्वप्रथम शोधन करे। उसके बाद वह अभिजित् नक्षत्रमें ग्रहों और देवताओंकी विधिवत् पूजा करके विभिन्न वैदिक मन्त्रोंसे यथाशक्ति अग्निमें आहुति प्रदान करे। हे खगेश्वर! तदनन्तर ग्रहस्थापन-कार्य करके मातृका-पूजनका कार्य

करना चाहिये। तत्पश्चात् वह वसुधारा हवन सम्पन्न करे। अग्नि-स्थापन करके पूर्णाहुतिका कार्य करे। इसके बाद शालग्रामको स्थापित कर वैष्णव श्राद्ध करे। वस्त्राभूषणोंसे वृषको सुसज्जित करके उसकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पहले चार बछियोंको सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित करे। वस्त्र और अलंकारसे विभूषित कर उन्हें उस यज्ञमें वृषके साथ स्थान दे। उसके बाद उनकी प्रदक्षिणा एवं होम करके अन्तमें विसर्जन करे। तत्पश्चात् उत्तराभिमुख होकर इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

धर्म त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा॥
तवोत्सर्गप्रभावान्मामुद्धरस्व भवार्णवात्।

(१४। २६-२७)

'हे धर्म! पुराकालमें ब्रह्माने आपको वृषके रूपमें निर्मित किया है। आपके उत्सर्गके प्रभावसे मेरा भवसागरसे उद्धार हो।'

इसके बाद पवित्र करनेवाले शुभ मन्त्रोंसे विधिपूर्वक वृषको अभिषिक्त करके **'तेन क्रीडन्ति०'** इस मन्त्रसे वृषोत्सर्ग करे। पुनः रुद्र नामक कुम्भके जलसे उस नील वृषका अभिषेक करना चाहिये। उसके बाद उस नील वृषके नाभिभागमें घटको स्पर्श कराके वह जल अपने सिरपर भी डालना चाहिये। हे पक्षिराज! तदनन्तर अन्नश्राद्ध कर द्विजोत्तमको दान देना चाहिये। इन कार्योंको करके जलाशयपर पहुँचे और वहाँ जलाञ्जलि क्रिया करे। मनुष्यको अपने जीवनमें जो वस्तु प्रिय हो, उसका यथाशक्ति वहाँपर दान करना चाहिये। वृषोत्सर्ग करनेपर न्यूनता पूरी हो जाती है। मृत व्यक्ति इससे भलीभाँति तृप्त होकर यमलोकके कठिन मार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है, इसमें संदेह नहीं है। सदैव दानादिकी क्रियाओंमें अनुरक्त मनुष्य यमलोकका दर्शनतक नहीं करते हैं। जबतक प्राणीका एकादशाह श्राद्ध नहीं किया जाता है, तबतक अपने द्वारा दिया गया दान अथवा दूसरेके हाथसे दिया गया दान न इस लोकमें प्राप्त होता है और न परलोकमें ही।

हे गरुड! श्रद्धाभावपूर्ण प्राणीको क्रमशः तेरह, सात, पाँच तथा तीन पद-दान करना चाहिये। अतः दाता पहले यथाक्रम सात एवं पाँच तिलपात्रोंका दान करे। वह ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें एक गौका दान भी दे। तत्पश्चात् **'वृषं हि शं नो देवी०'** इस वेदमन्त्रसे यथाविधि चार बछियोंके साथ वृषका विवाह करना चाहिये। तदनन्तर उसके शरीरमें बायीं ओर चक्र और दाहिनी ओर त्रिशूलका चिह्न अंकित करके और जिसको वृषदान किया गया है, उसको उसका मूल्य देकर विसर्जन कर दे।

बुद्धिमान् व्यक्तिको एकोद्दिष्ट विधानके अनुसार क्रमशः प्रयत्नपूर्वक एकादशाह तथा द्वादशाह श्राद्ध करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पहले षोडश श्राद्ध सम्पन्न करे। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें पद-दान दे। उसके बाद ताम्रपात्रमें कार्पास (सूती) वस्त्रपर भगवान् विष्णुकी मूर्तिको स्थापित करे और वस्त्रसे आच्छादित करके शुभ फलसे अर्घ्य समर्पित करे। तत्पश्चात् ईखके पेड़ोंसे नौकाका निर्माण करके रेशमी सूत्रसे उसको लपेट दिया जाय। वैतरणीके निमित्त कांस्यपात्रमें घृत रखकर नौकारोहणकी क्रिया हो और भगवान् गरुडध्वजकी पूजा करे। सामर्थ्यके अनुसार किया गया दान अनन्त फलोंको देनेवाला है। भगवान् जनार्दन इस संसार-सागरमें डूब रहे शोक-संतापसे दुःखित तथा धर्मरूपी नौकासे रहित जनोंके उद्धारक हैं।

हे तार्क्ष्य! तिल, लौह, सुवर्ण, कार्पास वस्त्र, लवण, सप्तधान्य, पृथ्वी और गौ एक-से-एक बढ़कर पवित्र माने गये हैं। श्राद्धमें तिलसे परिपूर्ण पात्रोंका दान देकर शय्यादान देना चाहिये। दीन-अनाथ एवं विशिष्टजनोंको सामर्थ्यानुसार दक्षिणा भी प्रदान करे। पुत्रहीन अथवा पुत्रवान् जो भी इसे करता है, उसको वही सिद्धि प्राप्त होती है, जो एक ब्रह्मचारीको प्राप्त होती है। मनुष्य इस पृथ्वीपर जबतक जीवित रहता है, तबतक उसे नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। जो कोई जीवित-श्राद्ध करता है, तीर्थयात्रा, व्रत एवं सांवत्सरिक श्राद्धादि धर्मकार्य करता है, उसका अक्षय फल उसे प्राप्त होता है। देवता, गुरु और माता-पिताके निमित्त पुरुषको प्रयत्नपूर्वक दान करना चाहिये। वह दान प्रतिदिन अभिवृद्धिको प्राप्त होता है।

इस यज्ञमें जिसके द्वारा प्रचुर धन दानमें दिया जाता है, वह सब अक्षय होता है, जिस प्रकार इस संसारमें संन्यासी और ब्रह्मचारी अत्यधिक पूज्य हैं, उसी प्रकार वृषोत्सर्गादि कर्मोंको करनेवाले सभी पुण्यात्मा भी इस संसारमें पूजे जाते हैं। उन पुण्यात्माओंको मैं, चतुर्मुख ब्रह्मा और शिव सदैव वरदान देते हैं। वे सभी परम लोककी गति प्राप्त करते हैं। मेरा यह वचन सत्य है।

छोड़ा गया वृषभ जिस जलाशयमें जलपान करता है अथवा सींगसे जिस भूमिको नित्य खोद-खोदकर प्रसन्न होता है, उससे पितरोंके लिये अन्न और पेय पदार्थ अत्यधिक मात्रामें उत्पन्न होता है।

पूर्णिमा अथवा अमावास्या तिथिमें तिलसे परिपूर्ण पात्रोंका दान देना चाहिये। हजार संक्रान्तियों और सैकड़ों सूर्यग्रहणके पर्वोंपर दान देकर जो पुण्य अर्जित होता है, वह मात्र नील वृषको छोड़कर ही मनुष्य प्राप्त कर सकता है[1]। ब्राह्मणोंको बछिया, पद-दान तथा शिव-भक्तोंको तिलसे पूर्ण पात्रोंका दान देना चाहिये। उस समय उमा-महेश्वरको भी परिधानसे अलंकृत कर दान करना चाहिये। अतसी (तीसी) पुष्पके सदृश कान्तिवाले पीताम्बरधारी भगवान् अच्युतकी प्रतिमाको वस्त्राच्छादित कर प्रदान करना चाहिये। जो लोग भगवान् गोविन्दको नमन करते हैं, उनके लिये भय नहीं रहता है। प्रेतत्वसे मोक्ष चाहनेवाले जो प्राणी इस सत्कर्मको करेंगे, वे श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त करेंगे। मेरा यह कथन सत्य ही है।

हे गरुड! मैंने तुमसे जो सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रिया कही है, इसे सुनकर मनुष्य अपने समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है।

इस प्रकारका अनुपम माहात्म्य सुनकर गरुड अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और उन्होंने मनुष्योंके हितमें पुनः भगवान् केशवसे पूछा। (अध्याय १४)

मरनेके समय तथा मृत्युके अनन्तर किये जानेवाले कर्म, पापात्माओंको रौद्ररूपमें तथा पुण्यात्माओंको सौम्यरूपमें यम-दर्शन, यमदूतोंद्वारा दी जानेवाली यातनाका स्वरूप, शवके निमित्त प्रदत्त छः पिण्डोंका प्रयोजन, शवदाहकी विधि, संक्षेपमें दशाहसे त्रयोदशाहतकके कृत्य, यममार्गमें पड़नेवाले सोलह पुर तथा प्रेतका विलाप

गरुडने कहा—हे भगवन्! जीवात्माके प्रयाण-कालसे लेकर यमलोकके मार्गविस्तारतकका वर्णन एवं माहात्म्य मुझे सुनायें।

श्रीभगवान‍्ने कहा—हे तार्क्ष्य! मैं यथाक्रम यममार्गका और जीवात्माके गमनमार्गमें पड़नेवाले सोलह पुरोंका वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनो।

हे गरुड! प्रमाणतः यमलोक और मृत्युलोकके मध्य छियासी हजार योजनकी दूरी है। हे खगेश! इस संसारमें पूर्वार्जित सुकृत और दुष्कृत कर्मोंका फल भोग कर अपने कर्मके अनुसार ही किसी व्याधिका जन्म होता है और अपने द्वारा किये गये कर्मोंके आधारपर निमित्तमात्र बनकर कोई व्याधि उत्पन्न होती है। जिसकी जिस निमित्तसे मृत्यु निश्चित है, वह निमित्त किये गये कर्मोंके अनुसार उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है।

जीवात्मा कर्मभोगके कारण जब अपने वर्तमान शरीरका परित्याग करता है, तब भूमिको गोबरसे लीपकर उसके ऊपर तिल और कुशासन बिछाकर उसीपर उसे लिटा दे। तदनन्तर उस प्राणीके मुखमें सुवर्ण डाले और उसके समीप तुलसीका वृक्ष एवं शालग्रामकी शिलाको भी लाकर रखे। तत्पश्चात् यथाविधान विभिन्न सूक्तोंका पाठ करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे मनुष्यकी मृत्यु मुक्तिदायक होती है। उसके बाद मरे हुए प्राणीके शरीरगत विभिन्न स्थानोंमें सोनेकी शलाकाओंको रखनेका विधान है, जिसके अनुसार क्रमशः एक शलाका मुख, एक-एक शलाका नाकके दोनों छिद्र, दो-दो शलाकाएँ नेत्र और कान, एक शलाका लिङ्ग तथा एक शलाका उसके ब्रह्माण्डमें रखनी चाहिये। उसके दोनों हाथ एवं कण्ठभागमें तुलसी रखें। उसके शवको दो वस्त्रोंसे आच्छादित करके कुंकुम और अक्षतसे पूजन करना चाहिये। तदनन्तर उसको पुष्पोंकी मालासे विभूषित करके उसे बन्धु-बान्धवों तथा पुत्र, पुरवासियोंके साथ अन्य द्वारसे ले जाय। उस समय अपने बान्धवोंके साथ पुत्रको मरे हुए पिताके शवको कन्धेपर रखकर स्वयं ले जाना चाहिये।

श्मशान देशमें पहुँचकर पुत्र, पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख वहाँकी उस भूमिपर चिताका निर्माण कराये, जो पहलेसे जली न हो। उस चितामें चन्दन, तुलसी और पलाश

१-संक्रान्तीनां सहस्राणि सूर्यपर्वशतानि च। दत्त्वा यत्फलमाप्नोति तद्वै नीलविसर्जने॥ (१४।५४)

आदिकी लकड़ीका प्रयोग करना चाहिये।

जब मरणासन्न व्यक्तिकी इन्द्रियोंका समूह व्याकुल हो उठता है, चेतन शरीर जब जड़ीभूत हो जाता है, उस समय प्राण शरीरको छोड़कर यमराजके दूतोंके साथ चल देते हैं। उस समय मृतकको दिव्य-दृष्टि प्राप्त होती है, जिसके द्वारा वह समस्त संसारको देखता है। जब मृतकके प्राण कण्ठमें आकर अटक जाते हैं, उस कालमें उस आतुर व्यक्तिका रूप बड़ा बीभत्स और कठोर हो जाता है। कोई मरता हुआ प्राणी मुखसे फेन उगलता है, किसीका मुख लाला (लार)-से भर जाता है। उस समय जो प्राणी दुरात्मा होते हैं, उन्हें यमदूत अपने पाशबन्धनोंसे जकड़कर मारते हैं। जो सुकृती हैं, उनको स्वर्गके पार्षद अपने लोकको सुखपूर्वक ले जाते हैं। यमलोकके दुर्गम मार्गमें पापियोंको दु:ख झेलते हुए जाना पड़ता है।

यमराज अपने लोकमें शङ्ख, चक्र तथा गदा आदिसे विभूषित चतुर्भुज रूप धारण कर पुण्यकर्म करनेवाले साधु पुरुषोंके साथ मित्रवत् आचरण करते हैं। वे सभी पापियोंको संनिकट बुलाकर उन्हें अपने दण्डसे तर्जना देते हैं। वह यमराज प्रलयकालीन मेघके समान गर्जना करनेवाला है। अञ्जनगिरिके सदृश उसका कृष्णवर्ण है। वह एक बहुत बड़े भैंसेपर सवार रहता है। अत्यन्त साहस करके ही लोग उसकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। वह विद्युत्के तेजके समान विद्यमान है। उसके शरीरका विस्तार तीन योजन है। वह महाक्रोधी एवं अत्यन्त भयंकर है। भीमकाय दुराकृति यमराज अपने हाथमें लोहेका दण्ड और पाश धारण करता है। उसके मुख तथा नेत्रोंको देखनेसे ही पापियोंके मनमें भय उत्पन्न हो उठता है। इस प्रकारका महाभयानक यमराज जब पापियोंको दिखायी पड़ता है, तब हाहाकार करता हुआ अंगुष्ठमात्रका मृत पुरुष अपने घरकी ओर देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा ले जाया जाता है।

प्राणोंसे मुक्त शरीर चेष्टाहीन हो जाता है। उसको देखनेसे मनमें घृणा उत्पन्न होने लगती है। वह तुरंत अस्पृश्य एवं दुर्गन्धियुक्त और सभी प्रकारसे निन्दित हो जाता है। यह शरीर अन्तमें कीट, विष्ठा या राखमें परिवर्तित हो जाता है। हे तार्क्ष्य! क्षणभरमें विध्वंस होनेवाले इस शरीरपर कौन ऐसा होगा जो गर्व करेगा। इस असत् शरीरसे होनेवाले वित्तका दान, आदरपूर्वक वाणी, कीर्ति, धर्म, आयु और परोपकार यही सारभूत है। यमलोक ले जाते हुए यमदूत प्राणीको बार-बार नरकका तीव्र भय दिखाते हुए डाँटकर यह कहते हैं कि हे दुष्टात्मन्! तू शीघ्र चल। तुझे यमराजके घर जाना है। शीघ्र ही हम सब तुझे 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें ले चलेंगे। उस समय इस प्रकारकी वाणी और बन्धु-बान्धवोंका रुदन सुनकर ऊँचे स्वरमें हा-हा करके विलाप करता हुआ वह मृतक यमदूतोंके द्वारा यमलोक पहुँचाया जाता है।

हे गरुड! एकादशाहके दिन उचित स्थानपर श्राद्ध करना चाहिये। प्राणोत्क्रमणसे लेकर क्रमशः छः पिण्डदान करने चाहिये। उन पिण्डोंका दान यथाक्रम मृतस्थान, द्वार, चत्वर (चौराहा), विश्राम-स्थल, काष्ठचयन (चिता) और अस्थिचयनके स्थानपर करना चाहिये। हे पक्षिन्! इन छः पिण्डोंकी परिकल्पनाका कारण तुम सुनो।

हे तार्क्ष्य! जिस स्थानमें मनुष्य मरता है, उस स्थानपर मृतकके नामसे 'शव'नामका पिण्ड दिया जाता है। उस पिण्डदानको देनेसे गृहके वास्तुदेवता प्रसन्न हो जाते हैं और उससे भूमि तथा भूमिके अधिष्ठातृ देवता प्रसन्न होते हैं। द्वारपर जो दूसरा पिण्डदान दिया जाता है, उसका नाम 'पान्थ' है। उसे देनेसे द्वारस्थ गृहदेवता प्रसन्न होते हैं। चौराहेपर 'खेचर' नामक पिण्डदान होता है। इस पिण्डदानको देनेसे भूत आदि देवयोनियाँ बाधा नहीं करतीं। विश्राम-स्थलपर होनेवाला पिण्डदान 'भूत' संज्ञक है। इसको देनेसे पिशाच, राक्षस और यक्ष आदि जो अन्य दिग्वासी योनियाँ हैं, वे जलाये जाने योग्य उस मृतक शरीरको अयोग्य नहीं बनातीं। हे खगेश्वर! चिता-स्थलपर पिण्डदान देनेसे प्रेतत्वकी उत्पत्ति होती है। एक मतमें चितापर दिये जानेवाले पिण्डदानका नाम साधक है और प्रेतकल्पके विद्वानोंने इस श्राद्धको प्रेतके नामसे अभिहित किया है। चितामें पिण्डदानके बाद ही 'प्रेत' नामसे पिण्डदान देना चाहिये। इस प्रकार इन पाँचों पिण्डोंसे शव आहुतिके योग्य होता है अन्यथा पूर्वोक्त उपघातक होते हैं।

प्राणोत्क्रमणके स्थानपर पहला पिण्डदान देना चाहिये। उसके बाद दूसरा पिण्डदान आधे मार्गमें और तीसरा चितापर देना चाहिये। पहले पिण्डमें विधाता, दूसरेमें

गरुडध्वज तथा तीसरेमें यमदूत—इस प्रकारका प्रयोग कहा गया है। तीसरा पिण्डदान देते ही मृत व्यक्ति शरीरके दोषोंसे मुक्त हो जाता है।

इसके बाद चिता प्रज्वलित करनेके लिये वेदिका निर्माण करके उसका उल्लेखन, उद्धरण और अभ्युक्षण आदि करके विधिपूर्वक अग्नि-स्थापन करके पुष्प और अक्षतसे क्रव्याद नामके अग्निदेवकी पूजा करके यह प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वं भूतकृज्जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः॥
उपसंहारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय।

(१५।४४-४५)

'हे क्रव्याद अग्निदेव! आप महाभूततत्त्वोंसे बने हुए इस जगत्के कारण, पालनहार एवं संहारक हैं। अतः इस मृत व्यक्तिको आप स्वर्ग पहुँचायें।'

इस प्रकार क्रव्याद नामक अग्निदेवकी विधिवत् पूजा करके शवको जलानेका कार्य करे। मृतकका आधा शरीर जल जानेपर घृतकी आहुति देनी चाहिये। **'लोमभ्यः स्वाहा०'** इस मन्त्रसे यथाविधि होम करना चाहिये। चितापर उस प्रेतको रखकर आज्याहुति देनी चाहिये। यम, अन्तक, मृत्यु, ब्रह्मा, जातवेदस्के नामसे आहुति देकर एक आहुति प्रेतके मुखपर दे। सबसे पहले अग्निको ऊपरकी ओर प्रज्वलित करे। तदनन्तर चिताके पूर्वभागको उसी अग्निसे जलाये। इस प्रकार चिताको जलाकर निम्नाङ्कित मन्त्रसे अभिमन्त्रित तिलमिश्रित आज्याहुति पुनः प्रदान करे—

अस्मात् त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलितपावकः॥

(१५।४९)

'हे अग्निदेव! आप इससे उत्पन्न हुए हैं। पुनः आपसे यह उत्पन्न हुआ है। इस मृतककी स्वर्गकामनाके लिये आपके निमित्त यह स्वाहा है।'

इस प्रकार तिलमिश्रित समन्त्रक आज्याहुति देकर पुत्रको दाह करना चाहिये। उस समय उसे तेज रुदन करना चाहिये। ऐसा करनेसे मृतकको सुख प्राप्त होता है। दाह-संस्कारके पश्चात् वहींपर अस्थि-संचयन करना चाहिये। उसके बाद प्रेतके दाहजन्य क्लेशकी शान्तिके लिये पिण्डदान दे।

दाह-संस्कारके पश्चात् मृत व्यक्तिके पुत्रोंको वस्त्रके सहित स्नान करना चाहिये। तदनन्तर नामगोत्रोच्चार करते हुए वे तिलाञ्जलि दें। उसके बाद गाँव या जनपदके सभी लोग ताली बजा-बजाकर विष्णु-नाम-संकीर्तन और मृतकके गुणोंकी चर्चा करें। सभी लोग उस मृत व्यक्तिके घर आकर द्वारके दक्षिण भागमें गोमय और श्वेत सरसोंको रखें। अपने मनमें वरुणदेवका ध्यान कर नीमकी पत्तियोंका भक्षण तथा घीका प्राशन करके वे सभी अपने-अपने घर जायँ।

हे खगेश्वर! कुछ लोग चितास्थानको दूधसे सींचते हैं। मृतकको जलाञ्जलि देते हुए अश्रुपात नहीं करना चाहिये। बन्धु-बान्धवोंके जो उस समय रोते हुए मुँहसे कफ और नेत्रोंसे आँसू गिराया जाता है, उसको ही वह प्रेत विवश होकर खाता है। अतः उन सभीको उस समय रोना नहीं चाहिये, अपनी शक्तिके अनुसार क्रिया करनी चाहिये।

हे ताक्ष्र्य! सूर्यके अस्त हो जानेके बाद घरके बाहर अथवा कहीं एकान्तमें चौराहेपर दाह-क्रियाके दिनसे लेकर तीन दिनतक मिट्टीके पात्रमें दूध और जल देना चाहिये; क्योंकि मरनेके बाद जो मूढ-हृदय जीवात्मा है, वह पुनः उस शरीरको प्राप्त करनेकी इच्छासे यमदूतोंके पीछे-पीछे श्मशान, चौराहा तथा घरका दर्शन करता हुआ यमलोकको जाता है। प्रतिदिन दशाहतक प्रेतके लिये पिण्डदान और जलाञ्जलि देनी चाहिये। जबतक दशाह-संस्कार न हो जाय, तबतक एक जलाञ्जलि प्रतिदिन अधिक बढ़ाना अनिवार्य है। यह और्ध्वदैहिक संस्कार पुत्रके द्वारा अपेक्षित है। उसके अभावमें पत्नीको करना चाहिये। पत्नीके न होनेपर शिष्य, उसके न होनेपर सहोदर भाई कर सकता है। श्मशान अथवा अन्य किसी तीर्थमें मृतकके लिये जल और पिण्डदान देना चाहिये। पहले दिन शाक-मूल और फल, भात या सत्तू आदिमेंसे जिस-किसीद्वारा पिण्डदान दिया जाय, उसीके द्वारा बादके दिनोंमें भी पिण्डदान देना चाहिये।

हे खगेश! दस दिनोंतक प्रेतके उद्देश्यसे पुत्रगण पिण्डदान देते हैं। दिये गये पिण्डका प्रतिदिन चार भाग हो जाता है, उसके दो भागसे मृतकका शरीर बनता है, तीसरा भाग यमदूत ले लेते हैं और चौथा भाग मृतकको खानेके लिये मिलता है। नौ दिन रातमें प्रेत पुनः शरीरयुक्त हो जाता

है। शरीर बन जानेपर दसवें पिण्डसे प्राणीको अत्यधिक भूख लगती है।

दस दिनके पिण्डमें विधि[1], मन्त्र, स्वधा, आवाहन और आशीर्वादका प्रयोग नहीं होता है, केवल नाम तथा गोत्रोच्चारपूर्वक पिण्डदान दिया जाता है। हे पक्षिन्! मृतकका दाह-संस्कार हो जानेके पश्चात् पुन: शरीर उत्पन्न होता है। पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है, उससे मूर्धा, दूसरे दिनके पिण्डदानसे ग्रीवा और दोनों स्कन्ध, तीसरे दिनके पिण्डदानसे हृदय, चौथे दिनके पिण्डदानसे पृष्ठ, पाँचवें दिनके पिण्डदानसे नाभि, छठे दिनके पिण्डदानसे कटिप्रदेश, सातवें दिनके पिण्डदानसे गुह्यभाग, आठवें दिनके पिण्डदानसे ऊरु, नौवें दिनके पिण्डदानसे तालु-पैर और दसवें दिनके पिण्डदानसे क्षुधाकी उत्पत्ति होती है। जीवात्मा शरीर प्राप्त करनेके पश्चात् भूखसे पीड़ित हो करके घरके दरवाजेपर रहता है। दसवें दिन जो पिण्डदान होता है, उसको मृतकके प्रिय भोज्य-पदार्थसे बना करके देना चाहिये, क्योंकि शरीर-निर्माण हो जानेपर मृतकको अत्यधिक भूख लग जाती है, प्रिय भोज्य-पदार्थके अतिरिक्त अन्य किसी अन्नादिक पदार्थोंसे बने हुए पिण्डका दान देनेसे उसकी भूख दूर नहीं होती है।

एकादशाह और द्वादशाहके दिन प्रेत भोजन करता है। मरे हुए स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये प्रेत शब्दका उच्चारण करना चाहिये। उन दिनों दीप, अन्न, जल, वस्त्र जो कुछ भी दिया जाता है, उसको प्रेत शब्दके द्वारा देना चाहिये, क्योंकि वह मृतकके लिये आनन्ददायक होता है[2]।

त्रयोदशाहको पिण्डज शरीर धारण करके भूख-प्याससे पीड़ित वह प्रेत यमदूतोंके द्वारा महापथपर लाया जाता है। जो प्रेत पापी होते हैं, उनका मार्ग शीत, ताप, शंकुके आकारका चुभनेवाला, मांस खानेवाले जन्तु तथा अग्निसे परिव्याप्त रहता है। जो सुकृती हैं उनका मार्ग सब प्रकारसे सौम्य है, उनको उस मार्गमें कोई कष्ट नहीं होता है। असिपत्रवनसे व्याप्त उस मार्गमें इतने दु:ख हैं कि क्षुधा-प्याससे पीड़ित उस प्रेतको नित्य यमदूत अत्यधिक संत्रास देते हैं। प्रतिदिन वह प्रेत दो सौ सैंतालिस योजन चलता है। यमदूतोंके पाशसे बँधा, हा-हा करके विलाप करता हुआ वह प्रेत अपने घरको छोड़कर दिन और रात चलकर यमलोक पहुँचता है। उस महापथमें पड़नेवाले प्रसिद्ध पुरोंके शुभाशुभ भोग प्राप्त करते हुए वह यमलोकको जाता है। इस मार्गमें क्रमश:—याम्यपुर, सौरिपुर, नगेन्द्रभवन, गन्धर्वनगर, शैलागम, क्रौञ्चपुर, क्रूरपुर, विचित्रभवन, बह्वापद, दु:खद, नानाक्रन्दपुर, सुतप्तभवन, रौद्रनगर, पयोवर्षण, शीताढ्य और बहुधर्म-भीतिभवन नामक प्रसिद्ध पुर हैं।

त्रयोदशाह अर्थात् तेरहवींके दिन यमदूत प्रेतको उस मार्गपर उसी प्रकारसे पकड़कर ले जाते हैं, जिस प्रकार मनुष्य बंदरको पकड़कर ले जाता है। उस प्रकारसे बँधा हुआ वह प्रेत चलते हुए नित्य 'हा पुत्र, हा पुत्र'का करुण विलाप करता है। वह कहता है कि मैंने किस प्रकारका कर्म किया है जो ऐसा कष्ट मैं भोग रहा हूँ। वह यह भी कहते हुए चलता है कि यह मनुष्य-योनि कैसे प्राप्त होती है। मैंने इसको व्यर्थमें गँवा दिया है। प्राणी इस मनुष्य-योनिको बहुत बड़े पुण्यसे प्राप्त करता है। उसको पाकर मैंने याचकोंको स्वार्जित धन दानमें नहीं दिया। आज वह भी पराधीन हो गया है। ऐसा कहकर वह गद्गद हो उठता है[3]। जब यमदूत उसको अत्यधिक पीड़ित करते हैं तो वह बार-बार अपने पूर्व-शरीरजन्य कर्मोंका स्मरण करता हुआ इस प्रकार कहता है—

सुख-दु:खका दाता कोई दूसरा नहीं है। जो लोग सुख-दु:खका दाता दूसरेको समझते हैं, वे कुबुद्धि ही हैं। जीवात्मा सदैव पहले किये गये कर्मका भोग करता है। हे देही! तुमने जो कुछ किया है, उसमें निस्तार करो[4]। मैंने न दान दिया है, न अग्निमें आहुति डाली है, न हिमालय पर्वतकी गुफामें जाकर तपस्या ही की है और न तो गङ्गाके

१-पार्वणादि श्राद्धोंमें निर्दिष्ट पिण्डदानविधि।

२-दीपमन्नं जलं वस्त्रं यत्किंचिद्वस्तु दीयते। प्रेतशब्देन तद्देयं मृतस्यानन्ददायकम्॥ (१५।७५)

३-मानुष्यं लभ्यते कस्मादिति ब्रूते प्रसर्पति। महता पुण्ययोगेन मानुष्यं जन्म लभ्यते॥
न तत् प्राप्य प्रदत्तं हि याचकेभ्य: स्वकं धनम्। पराधीनं तदभ्वदिति ब्रूते (रौति) सगद्गद:॥ (१५।८६-८७)

४-सुखस्य दु:खस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
पुरा कृतं कर्म सदैव भुज्यते देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ (१५।८९)

परम पवित्र जलका ही सेवन किया है। हे जीव! तुमने जो कुछ भी किया है, उसीका फल भोग करो। हे देही! पहले तुमने नित्य न दान दिया है, न गोदान किया है, न आह्निक कृत्य किया है, न तो वेदका दान किया, न शास्त्रको देखा और न शास्त्रबोधित मार्गका सेवन किया, इसलिये हे जीव! जैसा तुमने किया है, अब उसीमें अपना निस्तार करो। हे देही! तुमने जलरहित देशमें मनुष्य और पशु-पक्षियोंके लिये जलाशयका निर्माण नहीं करवाया है, न गायोंकी क्षुधा-शान्तिके लिये गोचर-भूमि ही छोड़ी है। हे देही! जो कुछ किया है, अब उसका फल भोग करो।'[1]

हे पक्षिन्! पुरुष प्रेतके द्वारा कहे गये उक्त वचनोंको मैंने सुनाया। अब स्त्रीका शरीर लेकर देही पूर्व किये हुए कर्मोंके सम्बन्धमें जैसा कहता है, उसे सावधान होकर सुनो—'हे देहिन्! मैंने पतिके साथ रहकर उन्हें सुख नहीं दिया है। उनके मरनेपर मैं उनके साथ चितामें भी नहीं प्रविष्ट हुई हूँ और न तो उनके मर जानेपर उस वैधव्य-व्रतका ही पालन किया है, अतएव जो कुछ नहीं किया है उसका फलभोग मैं कर रही हूँ। मैंने मासोपवास अथवा चान्द्रायणव्रतके नियमोंसे इस शरीरका शोधन भी नहीं किया है। हे जीव! स्त्रीका शरीर बहुत-से दुःखोंका पात्र है, पहले किये गये बुरे कर्मोंके अनुसार मैंने इसे प्राप्त किया और इसे भी व्यर्थ ही गँवा दिया। (अध्याय १५)

यममार्गके सोलह पुरोंका वर्णन

श्रीभगवान्ने कहा—हे खगेश! इस प्रकार करुण-क्रन्दन और विलाप करते हुए अत्यधिक दुःखित प्रेतको सत्रह दिनतक अकेले वायुमार्गमें ही यमदूतोंके द्वारा निर्दयतापूर्वक खींचा जाता है। अट्ठारहवाँ दिन-रात पूर्ण होनेपर पहले वह 'याम्यपुर' पहुँचता है। उस रमणीक नगरमें प्रेतोंके महान् गण रहते हैं। वहाँ पुष्पभद्रा नदी तथा देखनेमें सुन्दर लगनेवाला एक वटवृक्ष है। यमदूत वहाँ पहुँचकर उस प्रेतको विश्राम करनेका समय देते हैं। वहाँ प्रेत दुःखित होकर अपनी स्त्री और पुत्रादि सगे-सम्बन्धियोंसे प्राप्त होनेवाले सुखका स्मरण करता है। मार्गमें पड़नेवाले परिश्रमसे थका एवं भूख-प्याससे व्याकुल वह प्रेत वहाँ करुण विलाप करता है। उस समय वह धन, स्त्री, पुत्र, घर, सुख, नौकर और मित्रके विषयमें तथा अन्य सभीके विषयमें सोचता है। उस नगरमें भूख-प्याससे पीड़ित उस प्रेतको देखकर यमदूत कहते हैं।

यमदूतोंने कहा—'हे प्रेत! कहाँ धन है, कहाँ पुत्र है, कहाँ स्त्री है, कहाँ घर है और कहाँ तू इस प्रकारका दुःख झेल रहा है! चिरकालतक अब तू अपने कर्मोंसे अर्जित पापोंका भोग कर और इस महापथपर चल। हे परलोकके पथिक! तुम जानते हो कि राहगीरोंका बल पाथेयके वशमें है। निश्चित ही तुझे उस मार्गसे चलना होगा, जहाँ कुछ क्रय-विक्रय करना भी सम्भव नहीं है।'

हे पक्षिराज! यमदूतोंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेके बाद वह यमदूतोंके द्वारा मुद्गरोंसे मारा जाता है। तत्पश्चात् स्नेहवश अथवा कृपा करके भूलोकमें पुत्रोंके हाथोंसे दिये गये मासिक पिण्डको वह खाता है। उसके बाद वहाँसे वह 'सौरिपुर'के लिये चल देता है। उस नगरमें कालरूपधारी जंगम नामका राजा है। उसको देखकर प्रेत भयभीत हो उठता है और विश्राम करना चाहता है। त्रैपाक्षिक श्राद्धमें दिये गये अन्न और जलका वह उसी नगरमें उपभोग करके दिन और रात चलकर सुन्दर बसे हुए 'नगेन्द्रभवन' नामक नगरकी ओर जाता है। उस महापथपर चलते हुए महाभयंकर वन देखकर वह करुण विलाप करता है। वहाँके कष्टोंसे दुःखित होकर वह बार-बार रोता है। दो मास बितानेके पश्चात् वह उस नगरमें पहुँचता है। यहाँ वह अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा दिये गये अन्न और जलको खाता-पीता है। उसके बाद यमदूत पाशमें बाँधकर उसे दुःख देते हुए पुनः आगेकी ओर ले जाते हैं। तीसरे मासमें वह 'गन्धर्वनगर' पहुँच जाता है। तीसरे मासमें दिये गये श्राद्ध-पिण्डका यहाँ भक्षण करके चौथे मासमें वह 'शैलागम'

[1] मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे। न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेददानं न च शास्त्रपुस्तकम्। पुरा न दृष्टं न च सेवितोऽध्वा देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे। गोतृप्तिहेतोर्न कृतं हि गोचरं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत् त्वया कृतम्॥
(१५।१०—१२)

नामक नगर पहुँचता है। यहाँ प्रेतके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा होती है। वहाँ वह चौथे मासमें दिये गये श्राद्ध-पिण्डको खाकर संतुष्ट होता है। इसके बाद प्रेत पाँचवें मासमें 'क्रौञ्चपुर' जाता है। उस पुरमें पुत्रोंके द्वारा दिये गये पाँचवें मासके श्राद्धके पिण्डको खाता है। तदनन्तर छठे मासमें प्रेत 'क्रूरपुर' नामक नगरकी यात्रा करता है। उस पुरमें छठे मासमें पुत्रोंद्वारा दिये गये श्राद्ध-पिण्डको खाकर उसकी संतृप्ति होती है; किंतु आधे मुहूर्तभर विश्राम करनेके बाद उसका हृदय पुनः दुःखसे काँपने लगता है। यमदूतोंसे तर्जित होकर वह प्रेत उस पुरको लाँघकर 'विचित्रभवन'की ओर प्रस्थान करता है जहाँका राजा विचित्र है। यमराजका छोटा भाई सौरि ही यहाँके राज्यपर शासन करता है।

हे पक्षिराज! पाँच मास और पंद्रह दिनपर ऊनषाण्मासिक श्राद्ध होता है। अतः यमदूतोंके द्वारा संत्रस्त वह प्रेत उसी 'विचित्रभवन'में ऊनषाण्मासिक श्राद्ध-पिण्डका उपभोग करता है। मार्गमें बार-बार उसको भूख पीड़ा पहुँचाती है। अतः यमदूतोंके द्वारा रोके जानेपर भी वह उस मार्गमें विलाप करता है कि क्या कोई पुत्र या बान्धव है? जो मेरे मरनेपर शोक-सागरमें गिरते हुए मुझे सुखी नहीं कर रहा है? इसी समय वहाँपर उसके सामने हजारों मल्लाह आते हैं और कहते हैं कि 'सौ योजन विस्तृत मवाद और रक्तसे पूर्ण नाना प्रकारकी मछलियोंसे व्याप्त, नाना पक्षिगणोंसे आवृत महावैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छा करनेवाले तुम्हें हम लोग सुखपूर्वक तारेंगे। किंतु हे पथिक! यदि उस मर्त्यलोकमें तुम्हारे द्वारा गोदान दिया गया है तो उस नावसे तुम पार जाओ।' मनुष्योंका अन्त समय आनेपर वैतरणी-गोदान ही हितकारी होता है। अतः शरीर स्वस्थ रहनेपर वैतरणी-व्रत करना चाहिये और वैतरणी नदीको पार करनेकी इच्छासे विद्वान् ब्राह्मणको गोदान करना चाहिये। वह पापीके समस्त पापोंको विनष्ट करके उसे विष्णुलोक ले जाता है। जिसने वैतरणी-दान नहीं किया है, वह प्रेत उसी नदीमें जाकर डूबने लगता है। डूबते हुए स्वयं अपनी निन्दा करता हुआ कहता है कि 'मैंने पाथेय-हेतु ब्राह्मणको कुछ भी दान नहीं दिया है। न मैंने दान किया है, न तो मैंने अग्निमें आहुति दी है, न भगवन्नामका जप ही किया है, न तीर्थमें जाकर स्नान ही किया है और न भगवान्की स्तुति ही की है। हे मूर्ख! जैसा कर्म तुमने किया है, अब वैसा ही भोग कर।' ऐसा कहनेके बाद यमदूतोंसे हृदयमें मारा जाता हुआ वह प्रेत उसी समय किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है और वैतरणीके दूसरे तटपर दिये गये षाण्मासिक श्राद्धके घटादिक दान एवं पिण्डका भोजन करके आगेकी ओर बढ़ता है। अतः हे तार्क्ष्य! षाण्मासिक श्राद्धपर सत्पात्र ब्राह्मणको विशेषरूपसे भोजन कराना चाहिये।

हे गरुड! इसके बाद वह प्रेत एक दिन-रातमें दो सौ सैंतालीस योजनकी गतिसे चलता है। सातवाँ मास आनेपर वह 'बह्वापद' नामक पुरमें पहुँचता है। सप्तम मासिक श्राद्धमें जो कुछ दान दिया गया है, उसको खाकर आठवें मासकी समाप्तिपर उसकी यात्रा 'दुःखदपुर' तथा 'नानाक्रन्दनपुर'की ओर होती है। अत्यन्त दारुण क्रन्दन करते हुए नानाक्रन्दगणोंको देखकर वह प्रेत स्वयं शून्यहृदय एवं दुःखित होकर बहुत जोर-जोरसे रोने लगता है। वहाँ आठवें मासके श्राद्धको खाकर वह सुखी होता है। नगरको छोड़कर वह 'तप्तपुर' चला जाता है। 'सुतप्तभवन'में पहुँचकर प्रेत नवें मासके श्राद्धमें पुत्रके द्वारा किये गये पिण्डदान एवं कराये गये ब्राह्मण-भोजनको खाता है। दसवें मासमें वह 'रौद्रनगर' जाता है। वहाँ वह दसवें मासके श्राद्धका भोजन करके आगे स्थित 'पयोवर्षण' नामक पुरके लिये चल देता है। वहाँ पहुँचकर वह ग्यारहवें मासके श्राद्धका भोजन करता है। वहाँ मेघोंकी ऐसी जलवर्षा होती है, जिससे प्रेतको बहुत ही कष्ट होता है। तदनन्तर आगेकी ओर बढ़ता हुआ वह प्रेत अत्यन्त कड़कती हुई धूप और प्याससे व्यथित हो उठता है। बारहवें मासमें पुत्रने श्राद्धमें जो कुछ दान दिया है, उसका ही वह दुःखित प्रेत वहाँपर भोग करता है। इसके बाद वर्ष-समाप्तिके कुछ दिन शेष रहनेपर अथवा ग्यारह मास पंद्रह दिन बीत जानेपर वह 'शीताढ्यपुर' जाता है, जहाँ प्राणियोंको अत्यन्त कष्ट देनेवाली ठंडक पड़ती है। वहाँकी ठंडीसे व्यथित, भूखसे व्याकुल वह प्रेत इस आशाभरी दृष्टिसे दसों दिशाओंको देखने लगता है कि 'क्या मेरा कोई बन्धु-बान्धव है जो मेरे इस दुःखको दूर कर दे?' उस समय यमदूत उस प्रेतसे यह कहते हैं कि 'तेरा पुण्य वैसा कहाँ है, जो इस कष्टमें सहायता कर सके।' उनके उस वचनको सुनकर वह प्रेत 'हाय दैव!' ऐसा कहता

है। निश्चित ही पूर्वजन्ममें किया गया पुण्य दैव है। उसको 'मैंने संचित नहीं किया है', ऐसा मन-ही-मन अनेक प्रकारसे विचार करके वह प्रेत पुनः धैर्यका सहारा लेता है।

इसके बाद वहाँसे चौवालीस योजन परिक्षेत्रमें फैला हुआ गन्धर्व और अप्सराओंसे परिव्याप्त अत्यन्त मनोरम 'बहुधर्मभीतिपुर' पड़ता है, जहाँ चौरासी लाख मूर्त एवं अमूर्त प्राणी निवास करते हैं। इस पुरमें तेरह प्रतीहार हैं। जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं और श्रवण कहलाते हैं। वे प्राणियोंके शुभाशुभकर्मका बार-बार विचार करके उसका वर्णन करते हैं। मनुष्य जो कहते और करते हैं, उन सभी बातोंको ये ही ब्रह्माजीके पुत्र श्रवणदेव चित्रगुप्त तथा यमराजसे बताते हैं। ये दूरसे ही सब कुछ सुनने और देखनेमें समर्थ हैं। इस प्रकारकी चेष्टावाले एवं स्वर्गलोक और भूलोक तथा पातालमें संचरण करनेवाले वे श्रवण आठ हैं। उन्हींके समान उनकी पृथक्-पृथक् श्रवणी नामक उग्र पत्नियाँ हैं। उनकी भी शक्ति वैसी ही है, जैसी उनके पतियोंकी है। वे मर्त्यलोकके अधिकारीके रूपमें हैं। व्रत, दान, स्तुतिसे जो उनकी पूजा करता है, उसके लिये वे सौम्य और सुखद मृत्यु देनेवाले हो जाते हैं।

(अध्याय १६)

समस्त शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी ब्रह्माके पुत्र श्रवणदेवोंका स्वरूप

श्रीगरुडने कहा—हे देव! यह एक संदेह मेरे हृदयको बाधित कर रहा है कि श्रावण किसके पुत्र हैं, यमलोकमें वे किस प्रकारसे रहते हैं? हे प्रभो! किस शक्तिके प्रभावसे वे मानव-कर्मको जान लेते हैं? वे कैसे किसी बातको सुन लेते हैं? उनको यह ज्ञान किससे प्राप्त हुआ है? हे देवेश्वर! उन्हें भोजन कहाँसे प्राप्त होता है? आप प्रसन्न होकर मेरे इस समस्त संदेहको नष्ट करें। पक्षिराज गरुडके इस कथनको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! सभी प्राणियोंको सुख देनेवाले मेरे इस वचनको तुम सुनो। श्रवणसे सम्बन्धित उन समस्त बातोंको तुम्हें मैं बताऊँगा। प्राचीनकालमें जब समस्त स्थावर- जंगमात्मक सृष्टि एकाकार हो गयी थी और मैं समस्त सृष्टिको आत्मलीन करके क्षीरसागरमें सो रहा था। उस समय मेरे नाभिकमलपर स्थित ब्रह्माने बहुत वर्षोंतक तपस्या की। उन्होंने एकाकार उस सृष्टिको चार प्रकारके प्राणियोंमें विभक्त किया। तदनन्तर ब्रह्मासे ही बनी सृष्टिके पालनका भार विष्णुने स्वीकार किया। तत्पश्चात् ब्रह्माके द्वारा संहारमूर्ति रुद्रका निर्माण हुआ। उसके बाद समस्त चराचर जगत्में प्रवाहित होनेवाले वायु, अत्यन्त तेजस्वी सूर्य तथा चित्रगुप्तके साथ धर्मराजकी सृष्टि हुई।

इन सभीकी रचना करके ब्रह्मा पुनः तपस्यामें निमग्न हो गये। विष्णुके नाभिपङ्कजमें तपस्या करते हुए उनको बहुत वर्ष बीत गये। वहींपर लोकसृष्टिमें लगे हुए ब्रह्माने कहा कि जिन लोगोंकी उत्पत्ति पहले हुई है, उन सभीको अपनी योग्यताके अनुसार कर्ममें लग जाना चाहिये। अतः रुद्र, विष्णु तथा धर्म पृथ्वीके शासन-कार्यमें लग गये, किंतु उन लोगोंने कहा कि हम सभी लोगोंको लोक-व्यवहारका कुछ भी ज्ञान नहीं है। इस सम्बन्धमें आप ही कुछ बतायें। इस विषयमें चिन्तित होकर सभी देवताओंने उस समय परस्पर विचार-विमर्श किया। तत्पश्चात् देवताओंने हाथमें पत्र-पुष्प लेकर ब्रह्म-मन्त्रका ध्यान किया। उसके बाद देवताओंकी प्रेरणासे ब्रह्माने अत्यन्त तेजस्वी एवं बड़े-बड़े नेत्रोंवाले तथा अत्यन्त तेजस्वी बारह पुत्रोंको जन्म दिया। इस संसारमें जो कोई जैसा भी शुभ या अशुभ बोलता है, उसे वे अत्यन्त शीघ्र ब्रह्माके कानोंतक पहुँचाते हैं। हे पक्षिन्! दूरसे ही सुनने एवं दूरसे ही देख लेनेका विशेष ज्ञान उन्हें प्राप्त है। चूँकि वे सब कुछ सुन लेते हैं, उसीके कारण उन्हें 'श्रवण' कहा गया है। वे आकाशमें रहकर प्राणियोंकी जो भी चेष्टा होती है, उसको जानकर धर्मराजके सामने मृत्युकालके अवसरपर कहते हैं। उनके द्वारा प्राणियोंके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारोंकी विवेचना उस समय धर्मराजसे की जाती है। हे वैनतेय! संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार मार्ग हैं। जो उत्तम प्रकृतिवाले प्राणी हैं, वे धर्ममार्गसे चलते हैं। जो अर्थ अर्थात् धन-धान्यका दान करनेवाले प्राणी हैं, वे विमानसे परलोक जाते हैं। जो प्राणी अभिलषित याचककी इच्छाको संतुष्ट करनेवाले हैं, वे अश्वोंपर सवार होकर प्रस्थान करते हैं। जो प्राणी मोक्षकी आकाङ्क्षा रखते हैं, वे हंसयुक्त विमानसे परलोकको जाते हैं। इनके अतिरिक्त प्राणी जो

धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयसे हीन है, वह पैदल ही काँटों तथा पत्थरोंके बीचसे कष्ट झेलता हुआ 'असिपत्रवन'में जाता है।

हे पक्षिराज! इस मनुष्यलोकमें जो कोई भी पक्वान्न, वर्धनी और जलपात्रके द्वारा मेरे सहित इन श्रवण देवोंकी पूजा करता है, उसको मैं वह प्रदान करता हूँ, जिसकी प्राप्ति देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। भक्तिपूर्वक शुभ एवं पवित्र ग्यारह ब्राह्मण तथा बारहवें सपत्नीक ब्राह्मणको भोजन कराकर मेरी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। ऐसा मनुष्य सभी देवताओंसे पूजित होकर सुख प्राप्त करता है। उनकी पूजासे मैं और चित्रगुप्तके सहित धर्मराज प्रसन्न होते हैं। उन्हींकी संतुष्टिसे धर्मपरायण लोग मेरे विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं।

हे खगेश्वर! जो प्राणी इन श्रवण देवोंके माहात्म्य, उत्पत्ति और शुभ चेष्टाओंको सुनता है, वह पापसे संलिप्त नहीं होता है। वह इस लोकमें सुख भोगकर स्वर्गमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। (अध्याय १७)

विविध दानादि कर्मोंका फल प्रेतको प्राप्त होना, पददानका माहात्म्य, जीवको अवान्तर-देहकी प्राप्तिका क्रम

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिन्! इन श्रवण देवोंके वचनोंको सुनकर चित्रगुप्त पुनः क्षणभर स्वयं ध्यान करके मनुष्य जो कुछ भी दिन-रात पाप-पुण्य करते हैं, उन्हें धर्मराजसे निवेदन करते हैं।

हे तार्क्ष्य! मनुष्य वाणी, शरीर और मनसे जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, उन सबका वह भोग करता है। इस प्रकार मैंने तुम्हें प्रेतमार्गका निर्णय सुना दिया। मृत्युके पश्चात् प्रेत कहाँ रुकते हैं, उन सभी स्थानोंका भी वर्णन तुमसे कर दिया। जो मनुष्य यह सब समझकर अन्नदान तथा दीपदान करता है, वह उस महामार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है।

जो दीपदान करते हैं, वे कुत्तोंसे परिव्याप्त लक्ष्यहीन मार्गमें पूर्ण प्रकाशके साथ गमन करते हैं। कार्तिकमासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको रात्रिमें किया गया दीपदान प्राणियोंके लिये सुखकारी होता है।

अब मैं संक्षेपमें तुम्हें प्राणियोंके यम-मार्गके निस्तारका उपाय बताऊँगा।

हे गरुड! वृषोत्सर्गके पुण्यसे मनुष्य पितृलोकको जाता है, एकादशाहमें पिण्डदानसे देहशुद्धि होती है। जलसे परिपूर्ण घड़ेका दान करनेसे यमदूत संतुष्ट होते हैं। उस दिन शय्यादान करनेसे मनुष्य विमानपर चढ़कर स्वर्गलोकको जाता है। विशेषतः द्वादशाहके दिन सभी प्रकारका दान देना चाहिये और तेरह पददानके लिये विहित श्रेष्ठ वस्तुओंको द्वादशाहके दिन अथवा जो जीवित रहते हुए अपने कल्याणके निमित्त दान देता है, वह उसीके सहारे महामार्गमें सुखपूर्वक गमन करता है।

हे खगराज! उस यममार्गमें सर्वत्र एक-जैसा ही व्यवहार होता है। उत्तम, मध्यम और अधमरूपमें किसी भी प्रकारका वर्गीकरण वहाँ वर्जित है। जिसका भाग्य जैसा होता है, उसको उस मार्गमें वैसा ही भोग प्राप्त होता है। प्राणी स्वयं अपने लिये स्वस्थचित्तसे श्रद्धापूर्वक जो कुछ दान देता है, उसको वहाँपर प्राप्त करता है। मरनेपर जो बन्धु-बान्धवोंके द्वारा उसके लिये दिया जाता है, उसका आश्रय ले करके वह सुखी होता है।

गरुडने कहा—हे देवेश! तेरह पददान किसलिये करना चाहिये? यह दान किसे देना चाहिये? यह सब यथोचित रूपसे मुझे बतायें।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे पक्षिराज! छत्र, पादुका, वस्त्र,

मुद्रिका, कमण्डलु, आसन और भोजनपात्र—ये सात प्रकारके पद माने गये हैं। पूर्ववर्णित महापथमें जो महाभयंकर 'रौद्र' नामक आतप (धूप) है, उसके द्वारा मनुष्य जलता है। छत्रका दान देनेसे प्रेतको तुष्टि देनेवाली शीतल छाया प्राप्त होती है। पादुका दान देनेसे मृतप्राणी अश्वारूढ़ होकर घोर असिपत्रवनको निश्चित ही पार कर जाते हैं। मृतप्राणीके उद्देश्यसे ब्राह्मणको आसन और भोजन देकर स्वागत करनेपर प्रेत महापथमें धीरे-धीरे चलता हुआ उस दान दिये गये अन्नको सुखपूर्वक ग्रहण करता है। कमण्डलुका दान देनेसे प्राणी उस यमलोकके महापथमें फैले हुए बहुत धूपवाले, वायुरहित और जलहीन मार्गमें निश्चित ही यथेच्छ जल एवं वायु प्राप्तकर सुखपूर्वक गमन करता है। मृतकके उद्देश्यसे जो व्यक्ति जलपूर्ण कमण्डलुका दान करता है, उसको निश्चित ही हजार पौसलोंके दानका फल प्राप्त होता है।

उदारतापूर्वक वस्त्रका दान देनेसे प्रेतात्माको महाक्रोधी काले और पीले वर्णवाले अत्यन्त भयंकर यमदूत कष्ट नहीं देते हैं। मुद्रिका दान देनेसे उस महापथमें अस्त्र-शस्त्रसे युक्त दौड़ते हुए यमदूत दिखायी नहीं देते हैं। पात्र, आसन, कच्चा अन्न, भोजन, घृत तथा यज्ञोपवीतके दानसे पददानकी पूर्णता होती है। यममार्गमें जाता हुआ भूख-प्याससे व्याकुल एवं थका हुआ प्रेत भैंसके दूधका दान करनेसे निश्चित ही सुखका अनुभव करता है।

गरुडने कहा—हे विभो! मृत व्यक्तिके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान अपने घरमें किया जाता है, वह प्रेततक किसके द्वारा पहुँचाया जाता है?

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे पक्षिन्! सर्वप्रथम वरुण दानको ग्रहण करते हैं, उसके बाद वे उस दानको मेरे हाथमें दे देते हैं। मैं सूर्यदेवके हाथोंमें सौंप देता हूँ और सूर्यदेवसे वह प्रेत उस दानको लेकर सुखका अनुभव करता है।[1]

बुरे कर्मके प्रभावसे वंशका विनाश हो जाता है और उस कुलके सभी प्राणियोंको नरकमें तबतक रहना पड़ता है, जबतक पापका क्षय नहीं हो जाता है।

इन नरकोंकी संख्या बहुत है। पर इनमेंसे इक्कीस नरक मुख्यरूपसे उल्लेख्य हैं—तामिस्र, लौहशंकु, महारौरव, शाल्मली, रौरव, कुड्‌मल, कालसूत्र, पूतिमृत्तिका, संघात, लोहतोद, सविष, सम्प्रतापन, महानरक, काकोल, सञ्जीवन, महापथ, अवीचि, अन्धतामिस्र, कुम्भीपाक, असिपत्रवन और पतन नामवाले हैं। घोर यातना भोगते हुए जिनके बहुत-से वर्ष बीत जाते हैं और यदि संतति नहीं है तो वे यमके दूत बन जाते हैं। यमके द्वारा भेजे गये वे दूत मरे हुए मनुष्यके लिये प्रतिदिन बन्धु-बान्धवोंसे दानस्वरूप प्राप्त अन्न और जलका सेवन करते हैं। मार्गके मध्यमें जब वे भूख-प्याससे व्याकुल हो जाते हैं तो मरे हुए प्राणीका हिस्सा ही लूटकर खा-पी जाते हैं। मासके अन्तमें जो भोजन और पिण्डदान देते हैं, जब उसकी प्राप्ति उन्हें हो जाती है तो वे सभी उसको खाकर संतुष्ट हो जाते हैं। इसीसे उन्हें प्रतिदिन वर्षभर तृप्ति मिलती है।

इस प्रकार किये गये पुण्यके प्रभावसे प्रेत 'सौरिपुर'की यात्रा करता है। तदनन्तर एक वर्ष बीतनेपर वह प्रेत, यमराजके भवनके संनिकट स्थित 'बहुभीतिकर' नामक नगरमें पहुँचकर दशगात्रके पिण्डसे निर्मित हस्तमात्र परिमाणके शरीरको छोड़ देता है। जिस प्रकार रामको देखकर परशुरामका तेज उनके शरीरसे निकलकर राममें प्रविष्ट हो गया था, उसी प्रकार कर्मज शरीरका आश्रय लेकर वह पूर्व शरीरका परित्याग कर देता है, अङ्गुष्ठमात्र परिमाणवाला वायुरूप वह शरीर शमीपत्रपर चढ़कर आश्रय लेता है। 'जिस प्रकार मनुष्य चलते हुए एक पैर भूमिपर रखकर दूसरे पैरको आगे बढ़ानेके लिये उठाता है, जैसे तृणजलौका (तृण जोंक) एक पाँवपर स्थिर होकर दूसरे पाँवको आगे बढ़ाती है, वैसे ही जीव भी कर्मानुसार एक देहसे दूसरे देहको धारण करता है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रका परित्याग कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है, उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका त्याग करके नये शरीरको धारण करता है'—

व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।
यथा तृणजलौकेव देही कर्मानुगोऽवशः॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(१८। ४१-४२)

(अध्याय १८)

१-गृह्णाति वरुणो दानं मम हस्ते प्रयच्छति। अहं च भास्करे देवे भास्करात् सोऽश्नुते सुखम्॥ (१८। २७)

जीवका यमपुरीमें प्रवेश, वहाँ शुभाशुभ कर्मोंका फलभोग, कर्मानुसार अन्य देहकी प्राप्ति, मनुष्य-जन्म पाकर धर्माचरण ही मुख्य कर्तव्य

श्रीभगवान्‌ने कहा—वायुरूप होकर भूखसे पीड़ित, कर्मजन्य शरीरका आश्रय लेकर जीव यमके साथ चित्रगुप्तपुरकी ओर जाता है। चित्रगुप्तपुर बीस योजन विस्तृत है। वहाँ रहनेवाले कायस्थ[1] सभी प्राणियोंके पाप-पुण्यका भली प्रकारसे सर्वेक्षण करते हैं। महादान करनेपर वहाँ गया हुआ व्यक्ति सुखका भोग करता है। चौबीस योजन विस्तृत वैवस्वतपुर है। लौह, लवण, कपास और तिलसे पूर्ण पात्रका दान करनेपर इस दानके फलस्वरूप यमपुरमें निवास करनेवाले दाताके पितर लोग संतृप्त होते हैं। वहाँपर धर्मध्वज नामका प्रतीहार सदैव द्वारपर अवस्थित रहता है। सप्तधान्यका दान देनेसे धर्मध्वज प्रसन्न हो जाता है। वहाँ जाकर प्रतीहार प्रेतके शुभाशुभका वर्णन करता है। धर्मराजका जो प्रशस्त एवं सुन्दर स्वरूप है, उस स्वरूपका दर्शन

सज्जन और सुकृतियोंको प्राप्त होता है। जो दुराचारी जन हैं, वे अत्यन्त भयंकर यमके स्वरूपको देखकर भयभीत होकर हाहाकार करते हैं।

जिन मनुष्योंने दान किया है, उनके लिये वहाँपर कहीं भी भय नहीं है। आये हुए सुकृती जनको देखकर यमराज अपने आसनका इसलिये परित्याग कर देते हैं कि यह सुकृती मेरे इस मण्डलका भेदन करके ब्रह्मलोकको जायगा।[2] दानसे धर्म सुलभ हो जाता है और यममार्ग सुखावह हो जाता है। इस यमलोकका मार्ग अत्यन्त विशाल है, इसकी दुर्गमताके कारण इसका अनुगमन कोई नहीं करना चाहता। हे वत्स! बिना दान-पुण्य किये प्राणीका धर्मराजके भवनमें पहुँचना सम्भव नहीं है। उस रौद्र मार्गमें महाभयंकर यमके सेवक रहते हैं। एक-एक पुरके आगे एक-एक हजार सेवकोंकी उपस्थिति रहती है। यातना देनेवाले यमदूत पापीको प्राप्त करके पकाते हैं। वहाँपर यमदूत उसको एक मासतक रखते हैं। उस मासके बीतते ही वह एक चौथाई शेष रह जाता है।

हे कश्यपपुत्र! जिन लोगोंने और्ध्वदैहिक क्रियामें विहित दानोंको नहीं किया है, वे लोग बहुत कष्ट झेलते हुए उस मार्गमें चलते हैं। अतः प्राणीको यथाशक्ति दान देना चाहिये। दान न देनेपर प्राणी पशुके समान यमदूतोंके द्वारा पाशमें बाँधकर ले जाया जाता है। मनुष्य जैसा-जैसा कर्म करता है, उसी प्रकारकी योनिमें उसको जाना पड़ता है। वैसा ही उन योनियोंमें भोग भोगता हुआ वह सभी प्रकारके लोकोंमें विचरण करता है। जब मनुष्य-योनि प्राप्त होती है, तब भी लौकिक सुखोंको अनित्य जानकर प्राणीको धर्माचरण करना चाहिये।

कृमि, भस्म अथवा विष्ठा ही शरीरकी परिणति है। जो मनुष्य-शरीर प्राप्त करके भी धर्माचरण नहीं करता, वह हाथमें दीपक रखता हुआ भी महाभयंकर अन्धकूपमें गिरता है। मनुष्य-जन्म प्राणीको बहुत बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है। जो जीव इस योनिको पाकर धर्मका आचरण करता है, उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। धर्मको व्यर्थ माननेवाला प्राणी दुःखपूर्वक जन्म-मरण प्राप्त करता है। हे पक्षिन्! सैकड़ों बार विभिन्न योनियोंमें जन्म लेनेके बाद प्राणीको मनुष्य-योनि प्राप्त होती है, उसमें भी द्विज होना अत्यन्त दुर्लभ है। जो व्यक्ति

१-कायस्थ नामकी एक देवयोनि विशेष है।
२-प्राप्तं सुकृतिनं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति सूर्यजः। एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥ (१९।९)

द्विज होकर धर्मका पालन करता है और विभिन्न व्रतोंका आदर एवं श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करता है, वह उस धर्मकी ही कृपासे अमरत्व हस्तगत कर लेता है।[1]

(अध्याय १९)

प्रेतबाधाका स्वरूप तथा मुक्तिके उपाय

श्रीगरुडने कहा—हे प्रभो! प्रेतयोनिमें जो कोई भी प्राणी जाते हैं, वे कहाँ वास करते हैं? प्रेतलोकसे निकलकर वे कैसे और किस स्थानमें चले जाते हैं? चौरासी लाख योनियोंसे परिव्याप्त, यम तथा हजारों भूतोंसे रक्षित होनेपर भी प्राणी नरकसे निकलकर कैसे इस संसारमें विचरण करते हैं? इसे आप बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! जहाँ प्रेतगण निवास करते हैं, उसको तुम सुनो। छलसे पराये धन और परायी स्त्रीका अपहरण तथा द्रोहसे मनुष्य निशाचर योनिको प्राप्त होते हैं। जो लोग अपने पुत्रके हितचिन्तनमें ही अनुरक्त रहते हैं तथा सभी प्रकारका पाप करते हैं। वे शरीररहित होकर भूख-प्यासकी अथाह पीड़ाको सहन करते हुए यत्र-तत्र भटकते रहते हैं। वे प्रेत चोरके समान उस महापथके लिये पितृभागमें दिये गये जलका अपहरण करते हैं। तदनन्तर पुनः अपने घरमें आकर वे मित्रके रूपमें प्रविष्ट हो जाते हैं और वहींपर रहते हुए स्वयं रोग-शोक आदिकी पीड़ासे ग्रसित होकर सब कुछ देखते रहते हैं। वे एक दिनका अन्तराल देकर आनेवाले ज्वरका रूप धारण करके अपने सम्बन्धियोंको पीड़ा पहुँचाते हैं अथवा तिजरिया ज्वर बनकर और शीत-वातादिसे उन्हें कष्ट देते हैं। उच्छिष्ट अर्थात् जूठे अपवित्र स्थानोंमें निवास करते हुए उन प्रेतोंके द्वारा सदैव अभिलक्षित प्राणियोंको कष्ट देनेके लिये शिरोवेदना, विषूचिका तथा नाना प्रकारके अन्य बहुत-से रोगोंका रूप धारण कर लिया जाता है। इस प्रकार वे दुष्कर्मी प्रेत नाना दोषोंमें प्रवृत्त होते हैं।

गरुडने कहा—हे प्रभो! वे प्रेत किस रूपसे किसका क्या करते हैं? किस विधिसे उनकी जानकारी प्राप्त की जा सकती है? क्योंकि वे न कुछ कहते हैं, न बोलते हैं? हे हृषीकेश! यदि आप मेरा कल्याण चाहते हों तो मेरे मनके इस व्यामोहको दूर कर दें। इस कलिकालमें प्रायः बहुत-से लोग प्रेतयोनिको ही प्राप्त होते हैं।

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! प्रेत होकर प्राणी अपने ही कुलको पीड़ित करता है, वह दूसरे कुलके व्यक्तिको तो कोई आपराधिक छिद्र प्राप्त होनेपर ही पीड़ा देता है। जीते हुए तो वह प्रेमीकी तरह दिखायी देता है, किंतु मृत्यु होनेपर वही दुष्ट बन जाता है। जो भगवान् श्रीरुद्रके मन्त्रका जप करता है, धर्ममें अनुरक्त रहता है, देवता और अतिथिकी पूजा करता है, सत्य तथा प्रिय बोलनेवाला है, उसको प्रेत पीड़ा नहीं दे पाते हैं। जो व्यक्ति सभी प्रकारकी धार्मिक क्रियाओंसे परिभ्रष्ट हो गया है, नास्तिक है, धर्मकी निन्दा करनेवाला है और सदैव असत्य बोलता है, उसीको प्रेत कष्ट पहुँचाते हैं[2]। हे तार्क्ष्य! कलिकालमें अपवित्र क्रियाओंको करनेवाला प्राणी प्रेतयोनिको प्राप्त होता है। हे काश्यप! इस संसारमें उत्पन्न एक ही माता-पितासे पैदा हुए बहुतसी संतानोंमें एक सुखका उपभोग करता है, एक पाप कर्ममें अनुरक्त रहता है, एक संतानवान् होता है, एक प्रेतसे पीड़ित रहता है और एक पुत्र धनधान्यसे सम्पन्न रहता है, एकका पुत्र मर जाता है, एकके मात्र पुत्रियाँ ही

१-यथा यथा कृतं कर्म तां तां योनिं व्रजेन्नरः। तत्तथैव च भुञ्जानो विचरेत् सर्वलोकगः॥
अशाश्वतं परिज्ञाय सर्वलोकोत्तरं सुखम्। यदा भवति मानुष्यं तदा धर्मं समाचरेत्॥
कृमयो भस्म विष्ठा वा देहानां प्रकृतिः सदा। अन्धकूपे महारौद्रे दीपहस्तः पतेत्तु वै॥
महापुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लभ्यते। यस्तत् प्राप्य चरेद्धर्मं स गच्छेत् परमां गतिम्॥
अपि जानन् वृथा धर्मं दुःखमाप्नोति याति च॥
जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम्।
यस्तत्र पालयति लालयति व्रतानि तस्यामृतं भवति हस्तगतं प्रसादात्॥ (१९।१६—२१)

२-रुद्रजापी धर्मरतो देवतातिथिपूजकः। सत्यवाक् प्रियवादी च न प्रेतैः स हि पीड्यते॥
सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको धर्मनिन्दकः। असत्यवादनिरतो नरः प्रेतैः स पीड्यते॥ (२०।१६-१७)

होती हैं। प्रेतदोषके कारण बन्धु-बान्धवोंके साथ विरोध होता है। प्रेतयोनिके प्रभावसे मनुष्यको संतान नहीं होती है। यदि संतान उत्पन्न भी होती है तो वह मर जाती है। प्रेतबाधाके कारण तो व्यक्ति पशुहीन और धनहीन हो जाता है। उसके कुप्रभावसे उसकी प्रकृतिमें परिवर्तन आ जाता है, वह अपने बन्धु-बान्धवोंसे शत्रुता रखने लगता है। अचानक प्राणीको जो दु:ख प्राप्त होता है, वह प्रेतबाधाके कारण होता है। नास्तिकता, जीवन-वृत्तिकी समाप्ति, अत्यन्त लोभ तथा प्रतिदिन होनेवाले कलह—यह प्रेतसे पैदा होनेवाली पीड़ा है। जो पुरुष माता-पिताकी हत्या करता है, जो देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, उसे हत्याका दोष लगता है। यह पीड़ा प्रेतसे पैदा होती है। नित्य-कर्मसे दूर, जप-होमसे रहित और पराये धनका अपहरण करनेवाला मनुष्य दु:खी रहता है, इन दु:खोंका कारण भी प्रेतबाधा ही है। अच्छी वर्षा होनेपर भी कृषिका नाश होता है, व्यवहार नष्ट हो जाता है, समाजमें कलह उत्पन्न होता है, ये सभी कष्ट प्रेतबाधासे ही होते हैं। हे पक्षिराज! मार्गमें चलते हुए पथिकको जो बवंडरसे पीड़ा होती है, उसको भी तुम्हें प्रेतबाधा समझना चाहिये। यह बात मैं सत्य ही कह रहा हूँ।

प्राणी जो नीच जातिसे सम्बन्ध रखता है, हीन कर्म करता है और अधर्ममें नित्य अनुरक्त रहता है, वह प्रेतसे उत्पन्न पीड़ा है। व्यसनोंसे द्रव्यका नाश हो जाता है, प्राप्तव्यका विनाश हो जाता है। चोर, अग्नि और राजासे जो हानि होती है, यह प्रेतसम्भूत पीड़ा है। शरीरमें महाभयंकर रोगकी उत्पत्ति, बालकोंकी पीड़ा तथा पत्नीका पीड़ित होना—ये सब प्रेतबाधाजनित हैं। वेद, स्मृति-पुराण एवं धर्मशास्त्रके नियमोंका पालन करनेवाले परिवारमें जन्म होनेपर भी धर्मके प्रति प्राणीके अन्त:करणमें प्रेमका न होना प्रेतजनित बाधा ही है। जो मनुष्य प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपसे देवता, तीर्थ और ब्राह्मणकी निन्दा करता है, यह भी प्रेतोत्पन्न पीड़ा है। अपनी जीविकाका अपहरण, प्रतिष्ठा तथा वंशका विनाश भी प्रेतबाधाके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे सम्भव नहीं है। स्त्रियोंका गर्भ विनष्ट हो जाता है, जिनमें रजोदर्शन नहीं होता और बालकोंकी मृत्यु हो जाती है, वहाँ प्रेतजन्य बाधा ही समझनी चाहिये। जो मनुष्य शुद्ध भावसे सांवत्सरादिक श्राद्ध नहीं करता है, वह भी प्रेतबाधा है। तीर्थमें जाकर दूसरेमें आसक्त हुआ प्राणी जब अपने सत्कर्मका परित्याग कर दे तथा धर्मकार्यमें स्वार्जित धनका उपयोग न करे तो उसको भी प्रेतजन्य पीड़ा ही समझना चाहिये। भोजन करनेके समय कोपयुक्त पति-पत्नीके बीच कलह, दूसरोंसे शत्रुता रखनेवाली बुद्धि—यह सब प्रेत-सम्भूत पीड़ा है। जहाँ पुष्प और फल नहीं दिखायी देते तथा पत्नीका विरह होता है। वहाँ भी प्रेतोत्पन्न पीड़ा है।

जिन लोगोंमें सदैव उच्चाटनके अत्यधिक चिह्न दिखायी देते हैं, अपने क्षेत्रमें उसका तेज निष्फल हो जाता है तो उसे प्रेतजनित बाधा ही माननी चाहिये। जो व्यक्ति सगोत्रीका विनाशक है, जो अपने ही पुत्रको शत्रुके समान मार डालता है, जिसके अन्त:करणमें प्रेम और सुखकी अनुभूतियोंका अभाव रहता है, वह दोष उस प्राणीमें प्रेतबाधाके कारण होता है। पिताके आदेशकी अवहेलना, अपनी पत्नीके साथ रहकर भी सुखोपभोग न कर पाना, व्यग्रता और क्रूर बुद्धि भी प्रेतजन्य बाधाके कारण होती है।

हे तार्क्ष्य! निषिद्ध कर्म, दुष्ट-संसर्ग तथा वृषोत्सर्गके न होने और अविधिपूर्वक की गयी और्ध्वदैहिक क्रियासे प्रेत होता है। अकालमृत्यु या दाह-संस्कारसे वञ्चित होनेपर प्रेतयोनि प्राप्त होती है, जिससे प्राणीको दु:ख झेलना पड़ता है। हे पक्षिराज! ऐसा जानकर मनुष्य प्रेत-मुक्तिका सम्यक् आचरण करे। जो व्यक्ति प्रेत योनियोंको नहीं मानता है, वह स्वयं प्रेतयोनिको प्राप्त होता है। जिसके वंशमें प्रेत-दोष रहता है, उसके लिये इस संसारमें सुख नहीं है। प्रेतबाधा होनेपर मनुष्यकी मति, प्रीति, रति, लक्ष्मी और बुद्धि—इन पाँचोंका विनाश होता है। तीसरी या पाँचवीं पीढ़ीमें प्रेतबाधाग्रस्त कुलका विनाश हो जाता है। ऐसे वंशका प्राणी जन्म-जन्मान्तर दरिद्र, निर्धन और पापकर्ममें अनुरक्त रहता है। विकृत मुख तथा नेत्रवाले, क्रुद्ध स्वभाववाले, अपने गोत्र, पुत्र-पुत्री, पिता, भाई, भौजाई अथवा बहूको नहीं माननेवाले लोग भी विधिवश प्रेत-शरीर धारण कर सद्गतिसे रहित हो 'बड़ा कष्ट है', यह चिल्लाते हुए अपने पापको स्मरण करते हैं। (अध्याय २०)

प्रेतबाधाजन्य दीखनेवाले स्वप्न, उनके निराकरणके उपाय तथा नारायणबलिका विधान

श्रीगरुडने कहा—हे भगवन्! प्रेत किस प्रकारसे मुक्त होते हैं? जिनकी मुक्ति होनेपर मनुष्योंको प्रेतजन्य पीड़ा पुनः नहीं होती। हे देव! जिन लक्षणोंसे युक्त बाधाको आपने प्रेतजन्य कहा है, उनकी मुक्ति कब सम्भव है और क्या किया जाय कि प्राणीको प्रेतत्वकी प्राप्ति न हो सके? प्रेतत्व कितने वर्षोंका होता है? चिरकालसे प्रेतयोनिको भोग रहा प्राणी उससे किस प्रकार मुक्त हो सकता है? यह सब आप बतलानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! प्रेत जिस प्रकार प्रेतयोनिसे मुक्त होते हैं, उसे मैं बतला रहा हूँ। जब मनुष्य यह जान ले कि प्रेत मुझको कष्ट दे रहा है तो ज्योतिर्विदोंसे इस विषयमें निवेदन करे। प्रेतग्रस्त प्राणीको बड़े ही अद्भुत स्वप्न दिखायी देते हैं। जब तीर्थ-स्नानकी बुद्धि होती है, चित्त धर्मपरायण हो जाता है और धार्मिक कृत्योंको करनेकी मनुष्यकी प्रवृत्ति होती है तब प्रेतबाधा उपस्थित होती है एवं उन पुण्य कार्योंको नष्ट करनेके लिये चित्त-भंग कर देती है। कल्याणकारी कार्योंमें पग-पगपर बहुत-से विघ्न होते हैं। प्रेत बार-बार अकल्याणकारी मार्गमें प्रवृत्त होनेके लिये प्रेरणा देते हैं। शुभकर्मोंमें प्रवृत्तिका उच्चाटन और क्रूरता—यह सब प्रेतके द्वारा किया जाता है। जब व्यक्ति समस्त विघ्नोंको विधिवत् दूर करके मुक्ति प्राप्त करनेके लिये सम्यक् उपाय करता है तो उसका यह कर्म हितकारी होता है और उसके प्रभावसे शाश्वत प्रेतनिवृत्ति हो जाती है।

हे पक्षिन्! दान देना अत्यन्त श्रेयस्कर है, दान देनेसे प्रेत मुक्त हो जाता है। जिसके उद्देश्यसे दान दिया जाता है, उसको तथा स्वयंको वह दान तृप्त करता है। हे तार्क्ष्य! यह सत्य है कि जो दान देता है वही उसका उपभोग करता है। दानदाता दानसे अपना कल्याण करता है और ऐसा करनेसे प्रेतको भी चिरकालिक संतृप्ति प्राप्त होती है। संतृप्त हुए वे प्रेत सदैव अपने बन्धु-बान्धवोंका कल्याण चाहते हैं। यदि विजातीय दुष्ट प्रेत उसके वंशको पीड़ित करते हैं तो संतृप्त हुए सगोत्री प्रेत अनुग्रहपूर्वक उन्हें रोक देते हैं। उसके बाद समय आनेपर अपने पुत्रसे प्राप्त हुए पिण्डादिक दानके फलसे वे मुक्त हो जाते हैं। हे पक्षिराज! यथोचित दानादिके फलसे संतृप्त प्रेत बन्धु-बान्धवोंको धन्य-धान्यसे समृद्धि प्रदान करते हैं।[1]

जो व्यक्ति स्वप्नमें प्रेत-दर्शन, भाषण, चेष्टा और पीड़ा आदिको देखकर भी श्राद्धादिद्वारा उनकी मुक्तिका उपाय नहीं करता, वह प्रेतोंके द्वारा दिये गये शापसे संलिप्त होता है। ऐसा व्यक्ति जन्म-जन्मान्तरतक निःसन्तान, पशुहीन, दरिद्र, रोगी, जीविकाके साधनसे रहित और निम्नकुलमें उत्पन्न होता है। ऐसा वे प्रेत कहते हैं और पुनः यमलोक जाकर पापकर्मोंका भोगद्वारा नाश हो जानेके अनन्तर अपने समयसे प्रेतत्वकी मुक्ति हो जाती है।

गरुडने कहा—हे देवेश्वर! यदि किसी प्रेतका नाम और गोत्र न ज्ञात हो सके, उसके विषयमें विश्वास न हो रहा हो, कुछ ज्योतिषी पीड़ाको प्रेतजन्य कहते हों, कभी भी मनुष्यको प्रेत स्वप्नमें न दिखायी दे, उसकी कोई चेष्टा न होती हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये? उस उपायको मुझे बतायें।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे खगराज! पृथ्वीके देवता ब्राह्मण जो कुछ भी कहते हैं, उस वचनको हृदयसे सत्य समझकर भक्ति-भावपूर्वक पितृभक्तिनिष्ठ हो पुरश्चरणपूर्वक नारायण-बलि करके जप, होम तथा दानसे देह-शोधन करना चाहिये। उससे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं। यदि वह प्राणी भूत, प्रेत, पिशाच अथवा अन्य किसीसे पीड़ित होता है तो उसको अपने पितरोंके लिये नारायण-बलि करनी चाहिये। ऐसा कर वह सभी प्रकारकी पीड़ाओंसे मुक्त हो जाता है। यह मेरा सत्य वचन है। अतः सभी

१-स भवेत् तेन मुक्तस्तु दत्तं श्रेयस्करं परम्। स्वयं तृप्यति भोः पक्षिन् यस्योद्देश्येन दीयते॥
शृणु सत्यमिदं तार्क्ष्य यद्ददाति भुनक्ति सः। आत्मानं श्रेयसा युञ्ज्यात् प्रेतस्तृप्तिं चिरं व्रजेत्॥
ते तृप्ताः शुभमिच्छन्ति निजबन्धुषु सर्वदा। अज्ञातयस्तु ये दुष्टाः पीडयन्ति स्ववंशजान्॥
निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुकम्पकाः। पश्चात् ते मुक्तिमायान्ति काले प्राप्ते स्वपुत्रतः॥ (२१। १२—१५)

प्रयत्नोंसे पितृभक्तिपरायण होना चाहिये।

नवें या दसवें वर्ष अपने पितरोंके निमित्त प्राणीको दस हजार गायत्री-मन्त्रोंका जप करके दशांश होम करना चाहिये। नारायण-बलि करके वृषोत्सर्गादि क्रियाएँ करनी चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके उपद्रवोंसे रहित हो जाता है, समस्त सुखोंका उपभोग करता है तथा उत्तम लोकको प्राप्त करता है और उसे जाति-प्राधान्य प्राप्त होता है। इस संसारमें माता-पिताके समान श्रेष्ठ अन्य कोई देवता नहीं है। अतः सदैव सम्यक् प्रकारसे अपने माता-पिताकी पूजा करनी चाहिये। हितकर बातोंका उपदेष्टा होनेसे पिता प्रत्यक्ष देवता है। संसारमें जो अन्य देवता हैं वे शरीरधारी नहीं हैं—

पितृमातृसमं लोके नास्त्यन्यद्दैवतं परम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेत् पितरौ सदा॥
हितानामुपदेष्टा हि प्रत्यक्षं दैवतं पिता।
अन्या या देवता लोके न देहप्रभवो हि ताः॥

(२१।२८-२९)

प्राणियोंका शरीर ही स्वर्ग एवं मोक्षका एकमात्र साधन है। ऐसा शरीर जिसके द्वारा प्राप्त हुआ है, उससे बढ़कर पूज्य कौन है?

हे पक्षिन्! ऐसा विचार करके मनुष्य जो-जो दान देता है उसका उपभोग वह स्वयं करता है, ऐसा वेदविद् विद्वानोंका कथन है। पुन्नामका जो नरक है उससे पिताकी रक्षा पुत्र करता है। उसी कारणसे इस लोक और परलोकमें उसे पुत्र कहा जाता है—

पुन्नामनरकाद्यस्मात् पितरं त्रायते सुतः।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्त इह चापि परत्र च॥

(२१।३२)

हे खगराज! किसीके माता-पिताकी अकालमृत्यु हो जाय तो उसे व्रत, तीर्थ, वैवाहिक माङ्गलिक कार्य संवत्सरपर्यन्त नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य प्रेत-लक्षण बतानेवाले इस स्वप्नाध्यायका अध्ययन अथवा श्रवण करता है, वह प्रेतका एक चिह्न नहीं देखता है। (अध्याय २१)

प्रेतयोनि दिलानेवाले निन्दित कर्म, पञ्चप्रेतोपाख्यान तथा प्रेतत्वप्राप्ति न करानेवाले श्रेष्ठ कर्म

श्रीगरुडने कहा—हे प्रभो! प्रेतोंकी उत्पत्ति कैसे होती है? वे कैसे चलते हैं? उनका कैसा रूप और कैसा भोजन होता है? वे किस प्रकार प्रसन्न होते हैं और उनका कहाँ निवास होता है? हे प्रसन्नचित्त देवेश! कृपा कर मेरे इन प्रश्नोंका समाधान करें।

श्रीभगवान्ने कहा—हे पक्षिराज! सुनो। जो पूर्वजन्मसंचित कर्मके अधीन रहकर पापकर्ममें अनुरक्त रहते हैं, वे मृत्युके पश्चात् प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं। जो मनुष्य बावली, कूप, जलाशय, उद्यान, देवालय, प्याऊ, घर, आम्रादिक फलदार वृक्ष, रसोईघर, पितृ-पितामहके धर्मको बेच देता है, वह पापका भागी होता है। ऐसा व्यक्ति मरनेके बाद प्रलयकालतक प्रेतयोनिमें रहता है। जो लोग लोभवश गोचारणकी भूमि, ग्रामकी सीमा, जलाशय, उपवन और गुफाभागको जोत लेते हैं, वे प्रेत होते हैं।[1] पापियोंकी मृत्यु चण्डाल, जल, सर्पदंश, ब्राह्मण-शाप, विद्युत्-निपात, अग्नि, दन्त-प्रहार तथा पशुके आक्रमणसे होती है। जो लोग फाँसी लगानेसे, विषद्वारा और शस्त्रसे मरते हैं, जो आत्मघाती हैं, जिनकी विषूचिका (हैजा) आदि रोगोंसे मृत्यु होती है, जो क्षयादिक महारोग, पापजन्य रोग और चोर-डकैतोंके द्वारा मारे जाते हैं, जिनका मरनेपर संस्कार नहीं हुआ है, विहित आचारसे रहित, वृषोत्सर्गादिसे रहित और मासिक पिण्डदान जिनका लुप्त हो गया है, जिस मरे हुए प्राणीके लिये तृण, काष्ठ, हविष्य तथा अग्नि शूद्र लाता है, पर्वतों अथवा दीवालके ढहनेसे जिनकी मृत्यु हो जाती है, निन्दित दोषोंसे जिनकी मृत्यु होती है, जिनकी मृत्यु भूमिमें नहीं होती, जिनकी मृत्यु अन्तरिक्षमें होती है,

---

१-पापकर्मरता ये वै पूर्वकर्मवशानुगाः। जायन्ते ते मृताः प्रेतास्तान्शृणुष्व वदाम्यहम्॥
वापीकूपतडागांश्च आरामं सुरमन्दिरम्। प्रपां सद्म सुवृक्षांश्च तथा भोजनशालिकाः॥
पितृपैतामहं धर्मं विक्रीणाति स पापभाक्। मृतः प्रेतत्वमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम्॥
गोचरं ग्रामसीमां च तडागारामगह्वरम्। कर्षयन्ति च ये लोभात् प्रेतास्ते वै भवन्ति हि॥ (२२।३—६)

जो भगवान् विष्णुका स्मरण न करते हुए मर जाते हैं, जिनकी मृत्यु सूतक और श्वानादि निकृष्ट योनियोंके संसर्गमें होती है, वे प्रेतयोनिमें जाते हैं।[1] इसी प्रकारके अन्य कारणोंसे जो प्राणी दुर्मृत्युको प्राप्त होते हैं उनको प्रेतयोनिमें मरुस्थल प्रदेशमें भटकना पड़ता है।

हे तार्क्ष्य! जो व्यक्ति निर्दोष माता, बहन, पत्नी, पुत्रवधू तथा कन्याका परित्याग करता है, वह निश्चित ही प्रेत होता है। जो भ्रातृद्रोही, ब्रह्मघाती, गोहन्ता, मद्यपी, गुरुपत्नीके साथ सहवास करनेवाला, स्वर्ण और रेशमका चोर है, वह प्रेतत्वको प्राप्त होता है। घरमें रखी हुई धरोहरका अपहारक, मित्रद्रोही, परस्त्रीरत, विश्वासघाती एवं क्रूर व्यक्ति अवश्य प्रेतयोनिमें जन्म लेता है। जो वंशपरम्परागत धर्मपथका परित्याग करके दूसरे धर्मको स्वीकार करनेवाला है, विद्या और सदाचारसे जो विहीन है, वह भी निस्सन्देह प्रेत ही होता है।[2]

हे सुव्रत! इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास है, जो पितामह भीष्म और युधिष्ठिरके संवादमें कहा गया था। मैं उसीको कहता हूँ, उसे सुन करके मनुष्य सुख प्राप्त करता है।

युधिष्ठिरने कहा—हे पितामह! प्राणी किस कर्मफलसे प्रेत होता है? उसकी कैसे और किस उपायसे मुक्ति होती है? इस बातको आप मुझे बतानेकी कृपा करें, जिसको सुन करके मैं पुनः भ्रमित न हो सकूँ।

भीष्मने कहा—हे वत्स! मनुष्यको जैसे प्रेतयोनि प्राप्त होती है, वह जैसे उस योनिसे मुक्त होता है, जैसे वह दुस्तर घोर नरकमें जाता है, नरकमें जाकर दुःख झेल रहे प्राणियोंको जिसका नाम, गुण, कीर्तन और श्रवण करनेसे मुक्ति प्राप्त होती है, वह सब मैं तुम्हें बता रहा हूँ।

हे पुत्र! ऐसा सुना जाता है कि प्राचीनकालमें एक ख्यातिलब्ध संतप्तक नामक सुव्रत तपस्वी ब्राह्मण वनमें रहता था। दयावान्, योगयुक्त, स्वाध्यायरत, अग्निहोत्री उस द्विजश्रेष्ठका समय सदैव यज्ञादिक धार्मिक कृत्योंमें बीतता था। परलोकका भय उसे बहुत था, अतः ब्रह्मचर्य, सत्य, शौचका पालन करते हुए और निर्मलचित्त होकर वह तपस्यामें संलग्न रहता था। श्रद्धापूर्वक गुरुके उपदेश, अतिथि-पूजन तथा आत्मतत्त्वके चिन्तनमें अनुरक्त वह तपस्वी सांसारिक द्वन्द्वोंसे रहित था। इस संसारको जीतनेकी इच्छासे योगाभ्यासमें सदैव अपनेको वह समर्पित रखता था। इस प्रकारका आचरण करते हुए उस जितेन्द्रिय मुमुक्षु ब्राह्मणको वनमें ही बहुत-से वर्ष बीत गये। एक दिन तपस्वी संतप्तकके मनमें तीर्थाटनकी इच्छा उत्पन्न हुई। उसने मनमें यह संकल्प किया कि अब मैं तीर्थोंके पवित्र जलसे इस शरीरको पवित्र बनाऊँगा, अनन्तर वह स्नान तथा जप-नमस्कारादि कृत्योंको सम्पन्न कर सूर्योदय होनेपर वह तीर्थ-यात्रापर निकल पड़ा।

चलते-चलते वह महातपस्वी ब्राह्मण मार्ग भूल गया। भ्रान्त मार्गमें चलते हुए उसे अत्यन्त भयानक पाँच प्रेत दिखायी पड़े। उस निर्जन वनमें विकृत शरीरवाले भयंकर प्रेतोंको देखकर ब्राह्मणका हृदय कुछ भयभीत हो उठा। अतः वहींपर खड़े होकर वह विस्फारित नेत्रोंसे उसी ओर देखता रहा। तत्पश्चात् ब्राह्मणने अपने भयको दूरकर धैर्यका सहारा लिया और मधुर भाषामें पूछा—'हे विकृत मुखवालो! तुम सब कौन हो? कैसा पापकर्म तुम लोगोंने किया है, जिसके फलस्वरूप तुम्हें यह विकृति प्राप्त हुई है? तुम सब कहाँ जानेका निश्चय कर रहे हो?'

प्रेतराजने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! हम सभीने अपने-अपने कर्मके कारण प्रेतयोनिको प्राप्त किया है। परद्रोहमें रत होनेके कारण हम पाप और मृत्युके वशमें हुए। नित्य

१-असंस्कृतप्रमीता ये विहिताचारवर्जिताः॥
वृषोत्सर्गादिलुप्ताश्च लुप्तमासिकपिण्डकाः। यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणकाष्ठहवींषि सः॥
पतनात् पर्वतानां च भित्तिपातेन ये मृताः। रजस्वलादिदोषैश्च न च भूमौ मृताश्च ये॥
अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवर्जिताः। सूतकैः श्वादिसम्पर्कैः प्रेतभावा इह क्षितौ॥ (२२।९—१२)

२-मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं तथा। अदृष्टदोषां त्यजति स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥
भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। हेमक्षौमहरस्तार्क्ष्य स वै प्रेतत्वमाप्नुयात्॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक् परदाररतस्तथा। विश्वासघाती क्रूरस्तु स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥
कुलमार्गांश्च संत्यज्य परधर्मरतस्तथा। विद्यावृत्तविहीनश्च स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥ (२२।१४—१७)

भूख-प्यासले पीड़ित रहकर यह प्रेत-जीवन बिता रहे हैं। हम लोगोंकी वाणी उसी पापसे विनष्ट हुई है, शरीर कान्तिहीन हो गया है, हम संज्ञाहीन और विकृत चित्तवाले हो गये हैं। हे तात! हमें दिशाओं तथा विदिशाओंका कोई ज्ञान नहीं है। पाप-कर्मसे पिशाच बने हुए हम मूढ़ प्राणी कहाँ जा रहे हैं, इसका भी ज्ञान हमें नहीं है। हम लोगोंके न माता हैं और न पिता हैं। अपने कर्मोंके फलस्वरूप, अत्यन्त दुःखदायी यह प्रेतयोनि हम सभीको प्राप्त हुई है। हे ब्रह्मन्! आपके दर्शनसे हम लोग अत्यधिक प्रसन्न हैं। आप मुहूर्तभर रुकें। आपसे हम अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त प्रारम्भसे कहेंगे। उनमेंसे एक प्रेतने कहा—

हे विप्रदेव! मेरा नाम पर्युषित है, यह दूसरा सूचीमुख है, तीसरा शीघ्रग, चौथा रोधक और पाँचवाँ लेखक है।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेत! प्राणीको कर्मफलानुसार प्रेतयोनि मिलती है यह तो ठीक बात है, पर अपने जो नाम तुम बताते हो, उसके प्राप्त होनेका क्या कारण है?

प्रेतराजने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मैंने सदैव सुस्वादु भोजन किया और ब्राह्मणको बासी अन्न दिया है, इस कारण मेरा नाम पर्युषित (बासी) है। भूखे ब्राह्मणकी याचनाको सुनकर यह शीघ्र ही वहाँसे हट जाता था, इसलिये यह शीघ्रग नामका प्रेत हुआ। अन्नादिकी आकांक्षासे इसने बहुत-से ब्राह्मणोंको पीड़ित किया था, इस कारण यह सूचीमुख नामक प्रेत हो गया। इसने पोष्यवर्ग एवं ब्राह्मणोंको दिये बिना अकेले ही मिष्टान्न खाया था, इसलिये इसको रोधक कहा गया है। यह कुछ माँगनेपर मौन धारण करके पृथ्वी कुरेदने लगता था, अतः उस कर्मफलके अनुसार यह लेखक कहलाया।

हे ब्राह्मण! कर्मभावसे ही प्रेतत्व और इस प्रकारके नामकी प्राप्ति हुई है। यह लेखक मेषमुख, रोधक पर्वताकार मुखवाला, शीघ्रग पशुकी तरह मुखवाला और सूचक सुईके समान मुखवाला है, इसके बेढंगे रूपको देखें। हे नाथ! हम अत्यन्त दुःखित हैं। मायावी रूप बनाकर हम लोग पृथ्वीपर विचरण करते हैं। हम सभी अपने ही कर्मसे विकृत आकारवाले, लम्बे ओठवाले, विकृत मुखवाले और बृहद् शरीरवाले तथा भयावह हो गये हैं। हे विप्र! यह सब मैंने आपसे प्रेतत्वका कारण बता दिया है। आपके दर्शनसे हम सभीमें ज्ञान उत्पन्न हो गया है, आपकी जिस बातको सुननेकी अभिरुचि हो, वह आप पूछें, उसे मैं आपको बतानेके लिये तैयार हूँ।

ब्राह्मणने कहा—हे प्रेतराज! पृथ्वीपर जो भी जीव जीते हैं, वे सब आहारसे ही जीवित रहते हैं। यथार्थरूपमें तुम लोगोंके भी आहारको सुननेकी मेरी इच्छा है।

प्रेतोंने कहा—हे द्विजराज! यदि आपकी श्रद्धा हमारे आहारको जाननेकी है तो सावधान हो करके आप सुनें।

हम सभीका आहार समस्त प्राणियोंके लिये निन्दनीय है, जिसको सुनकर आप बार-बार निन्दा करेंगे। प्राणियोंके शरीरसे निकले हुए कफ, मूत्र और पुरीषादि मल एवं अन्य प्रकारसे उच्छिष्ट भोजन प्रेतोंका आहार है। जो घर अपवित्र रहते हैं, जिनकी घरेलू सामग्रियाँ इधर-उधर बिखरी रहती हैं, जिन घरोंमें प्रसूतादिके कारण मलिनता बनी रहती है, वहींपर प्रेत भोजन करते हैं। जिस घरमें सत्य, शौच और संयम नहीं होता, पतित एवं दस्युजनोंका साथ है, उसी घरमें प्रेत भोजन करते हैं। जो घर भूतादिक बलि, देवमन्त्रोच्चार, अग्निहोत्र, स्वाध्याय तथा व्रतपालनसे हीन है, प्रेत उसमें ही भोजन करते हैं। जो घर लज्जा एवं मर्यादासे रहित है, जिसका स्वामी स्त्रीसे जीत लिया गया है, जहाँ माता-पिता और गुरुजनोंकी पूजा नहीं होती है, प्रेत वहाँ ही भोजन करते हैं। जिस घरमें नित्य लोभ, क्रोध, निद्रा, शोक, भय, मद, आलस्य तथा कलह—ये सब दुर्गुण विद्यमान रहते हैं, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं। हे दृढ़व्रत तपोनिधि विप्रदेव! हम सब इस प्रेतभावसे दुःखित हैं, जिससे प्रेतयोनि प्राप्त न हो वह हमें बतायें। प्राणीकी नित्य मृत्यु हो वह अच्छा है पर उसे कभी भी प्रेतयोनि न प्राप्त हो।

ब्राह्मणने कहा—नित्य उपवास रखकर कृच्छ्र एवं चान्द्रायणव्रतमें लगा हुआ तथा अनेक प्रकारसे अन्य व्रतोंसे पवित्र मनुष्य प्रेत नहीं होता है। जो व्यक्ति जागरणसहित एकादशीव्रत करता है और अन्य सत्कर्मोंसे अपनेको पवित्र रखता है, वह प्रेत नहीं होता है। जो प्राणी अश्वमेधादिक यज्ञोंको सम्पन्न करके नाना प्रकारके दान देता है तथा क्रीड़ा, उद्यान, वापी एवं जलाशयका निर्माता है, ब्राह्मणकी कन्याओंका यथाशक्ति विवाह कराता है, विद्यादान और

अशरणको शरण देनेवाला है, वह प्रेत नहीं होता है।[1]

खाये हुए शूद्रान्नके जठरस्थित रहते हुए जिसकी मृत्यु हो जाती है या जो दुर्मृत्युसे मरता है, वह प्रेत होता है। जो अयाज्यका याजक तथा मद्यपीका साथ करके मदिरा पीनेवाली स्त्रीका संसर्ग करता है और अज्ञानवश भी मांस खाता है, वह प्रेत होता है। जो देवता, ब्राह्मण और गुरुके धनका अपहारक है, जो धन लेकर अपनी कन्या देता है, वह प्रेत होता है। जो माता, भगिनी, स्त्री, पुत्रवधू तथा पुत्रीका बिना कोई दोष देखे परित्याग कर देता है, उसे भी प्रेत होना पड़ता है। जो विश्वासपर रखी हुई परायी धरोहरका अपहर्ता है, मित्रद्रोही है, सदैव परायी स्त्रीमें अनुरक्त रहता है, विश्वासघाती और कपटी है, वह प्रेतयोनिमें जाता है, जो प्राणी भ्रातृद्रोही, ब्रह्महन्ता, गोहन्ता, मद्यपी, गुरुपत्नीगामी, इनका संसर्गी और वंशपरम्पराका परित्याग करके सदा झूठ बोलता रहता है, स्वर्णकी चोरी तथा भूमिका अपहरण करता है, वह प्रेत होता है।[2]

भीष्मने कहा—हे युधिष्ठिर! इस प्रकार ब्राह्मण संतप्तक ऐसा कह ही रहा था कि आकाशमें दुन्दुभि बजने लगी। देवोंने उस ब्राह्मणके ऊपर फूलोंकी वर्षा की। प्रेतोंके लिये वहाँ पाँच देवविमान आ गये। विधिवत् उस ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर वे सभी प्रेत दिव्य विमानोंमें

बैठकर स्वर्ग चले गये। इस प्रकार ब्राह्मणके द्वारा प्राप्त ज्ञान एवं उसके साथ सम्भाषण एवं पुण्य-संकीर्तनके प्रभावसे उन सभी प्रेतोंका पाप विनष्ट हो गया और उन्हें परम पदकी प्राप्ति हुई।

सूतजीने कहा—इस आख्यानको सुनकर गरुडजी पीपल-पत्रके समान काँप उठे। उन्होंने पुनः मनुष्योंके कल्याणके लिये श्रीभगवान् विष्णुसे पूछा।

(अध्याय २२)

प्रेतबाधाजन्य विविध स्वप्न तथा उसका प्रायश्चित्तविधान

श्रीगरुडने कहा—हे देवेश! पिशाचयोनिमें रहनेवाले प्रेत क्या-क्या करते हैं? वे क्या कहते हैं? उसे आप कहिये।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे पक्षिराज! उनका जैसा स्वरूप है, जो उनकी पहचान है और जिस प्रकार वे स्वप्न दिखाते हैं, वह सब मैं तुम्हें सुनाता हूँ। भूख-प्याससे दुःखित वे अपने घरमें प्रवेश करते हैं। उसी वायुरूपी देहमें प्रविष्ट होकर अपने वंशजोंको अपना चिह्न दिखाते हैं। प्रेत अपने

१-उपवासपरो नित्यं कृच्छ्रचान्द्रायणे रतः। व्रतैश्च विविधैः पूतो न प्रेतो जायते नरः॥
एकादश्यां व्रतं कुर्वञ्जागरेण समन्वितम्। अपरैः सुकृतैः पूतो न प्रेतो जायते नरः॥
इष्ट्वा वै चाश्वमेधादीन् दद्याद् दानानि यो नरः। आरामोद्यानवाप्यादेः प्रपायाश्चैव कारकः॥
कुमारीं ब्राह्मणानां तु विवाहयति शक्तितः। विद्यादोऽभयदश्चैव न प्रेतो जायते नरः॥ (२२।६४—६७)

२-देवद्रव्यं च ब्रह्मस्वं गुरुद्रव्यं तथैव च। कन्यां ददाति शुल्केन स प्रेतो जायते नरः॥
मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं तथा। अदृष्टदोषास्त्यजति स प्रेतो जायते नरः॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक्परदाररतः सदा। विश्वासघाती कूटश्च स प्रेतो जायते नरः॥
भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। कुलमार्गं परित्यज्य ह्यनृतोक्तौ सदा रतः।
हर्ता हेम्नश्च भूमेश्च स प्रेतो जायते नरः॥ (२२।७१—७४)

पुत्र, अपनी स्त्री तथा अपने बन्धु-बान्धवोंके पास जाता है और अश्व, हाथी, बैल अथवा मनुष्यका विकृत रूप धारण करके वह स्वप्नमें दिखायी देता है। जो व्यक्ति सोकर उठनेपर अपनेको शय्यापर विपरीत स्थितिमें देखता है, वह अवस्थिति प्रेतयोनिके कारण हुई है, ऐसा मानना चाहिये। यदि स्वप्नमें अपने-आपको जंजीरमें बँधा हुआ देखे और मरा हुआ पूर्वज निन्दनीय वेषमें दिखायी दे, खाते हुए व्यक्तिका अन्न लेकर भाग जाय और प्याससे पीड़ित वह अपना या परायेका जलपान कर ले तो उसे पिशाचयोनिमें गया हुआ मानें।

यदि स्वप्नमें वह बैलकी सवारी करता है, बैलोंके साथ कहीं जाता है, डरकर आकाश या भूखसे व्याकुल होकर तीर्थमें चला जाता है, अपनी वाणीसे गौ, बैल, पक्षी और घोड़ेकी भाषामें बोलता है, उसे हाथी, देव, भूत, प्रेत तथा निशाचरके चिह्न दिखायी देते हैं तो उसे पिशाच योनि प्राप्त हुआ ही मानें।

हे पक्षीन्द्र! प्राणीको स्वप्नमें प्रेतयोनिसे सम्बन्धित बहुत-से चिह्न दिखायी देते हैं। जो स्वप्नमें अपनी जीवित स्त्री, अपने जीवित भाई, पुत्र या पुत्रीको मरा हुआ देखे तो उसे प्रेतदोष समझना चाहिये। प्रेतदोषसे ही व्यक्ति स्वप्नमें भूख-प्याससे व्यथित होकर दूसरेसे याचना करता है तथा तीर्थमें जाकर पिण्डदान करता है। यदि स्वप्नमें घरसे निकलते हुए पुत्र, पिता, भ्राता, पति तथा पशु दिखायी दे तो ऐसा प्रेतदोषसे दिखायी देता है।

हे द्विजराज! स्वप्नमें ऐसे चिह्न दिखायी देनेपर प्रायश्चित्त करनेका विधान बताया गया है। घर या तीर्थमें स्नान करके मनुष्य बेलके वृक्षमें जल-तर्पण करे तथा वेदपारंगत ब्राह्मणकी सम्यक् पूजा करके उन्हें काले धान्यका दान दे, तदनन्तर यथाशक्ति हवन करके गरुडमहापुराणका पाठ करे। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक प्रेतचिह्न बतानेवाले इस अध्यायका पाठ करता है अथवा सुनता है, उसका प्रेतदोष स्वत: ही नष्ट हो जाता है। (अध्याय २३)

अल्पमृत्युके कारण तथा बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका निरूपण

श्रीगरुडने कहा—हे प्रभो! वेदका यह कथन है कि अकालमें किसीकी मृत्यु नहीं होती है तो फिर राजा या श्रोत्रिय ब्राह्मण किस कारणसे अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं। ब्रह्माने जैसा पहले कहा था, वह असत्य दिखायी देता है। हे भगवन्! वेदोंमें यह कहा गया है कि मनुष्य सौ वर्षतक जीवित रहता है। इस भारतवर्षमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यवर्णवाली द्विजातियाँ, शूद्र और म्लेच्छ रहते हैं, किस कारणसे कलिकालमें ये शतायु नहीं देखे जाते। बालक, धनवान्, निर्धन, सुकुमार, मूर्ख, ब्राह्मण, अन्य वर्णवाले, तपस्वी, योगी, महाज्ञानी, सर्वज्ञानरत, लक्ष्मीवान्, धर्मात्मा, अद्वितीय पराक्रमी—जो कोई भी हों इस वसुधातलपर अवश्य मृत्युको प्राप्त करते हैं। इनके गर्भमें आनेके साथ ही इनके पीछे मृत्यु लगी रहती है। इसका क्या कारण है?

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे महाज्ञानी गरुड! तुम्हें साधुवाद है। तुम मेरे प्रिय भक्त हो। अत: प्राणीकी मृत्युसे सम्बन्धित गोपनीय बातको सुनो।

हे पक्षिराज कश्यपपुत्र महातेजस्वी गरुड! विधाताद्वारा निश्चित की गयी मृत्यु प्राणीके पास आती है और शीघ्र ही उसे लेकर यहाँसे चली जाती है। प्राचीनकालसे ही वेदका यह कथन है कि मनुष्य सौ वर्षतक जीवित रहता है, किंतु जो व्यक्ति निन्दित कर्म करता है वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है, जो वेदोंका ज्ञान न होनेके कारण वंशपरम्पराके सदाचारका पालन नहीं करता है, जो आलस्यवश कर्मका परित्याग कर देता है, जो सदैव त्याज्य कर्मको सम्मान देता है, जो जिस-किसीके घरमें भोजन कर लेता है और जो परस्त्रीमें अनुरक्त रहता है, इसी प्रकारके अन्य महादोषोंसे मनुष्यकी आयु क्षीण हो जाती है। श्रद्धाहीन, अपवित्र, नास्तिक, मङ्गलका परित्याग करनेवाले, परद्रोही, असत्यवादी ब्राह्मणको मृत्यु अकालमें ही यमलोक ले जाती है। प्रजाकी रक्षा न करनेवाला, धर्माचरणसे हीन, क्रूर, व्यसनी, मूर्ख, वेदानुशासनसे पृथक् और प्रजापीड़क क्षत्रियको यमका शासन प्राप्त होता है। ऐसे दोषी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय मृत्युके वशीभूत हो जाते हैं और यम-यातनाको प्राप्त करते हैं। जो अपने कर्मोंका परित्याग तथा जितने मुख्य आचरण हैं,

उनका परित्याग करता है और दूसरेके कर्ममें निरत रहता है वह निश्चित ही यमलोक जाता है।[1] जो शूद्र द्विज-सेवाके बिना अन्य कर्म करता है, वह यमलोक जाता है। तदनन्तर वह उत्तम-मध्यम या अधम कोटिवाले यमलोकमें पहुँचकर दुःख भोगता है।

जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय और देवपूजन नहीं होता है, मनुष्योंका वह दिन व्यर्थ ही जाता है—

स्नानं दानं जपो होमो स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥
यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्।

(२४। १७-१८)

रसोद्भूत यह शरीर अनित्य, अध्रुव तथा आधारहीन है। हे पक्षीन्द्र! अब मैं अन्न और जलसे बने हुए इस शरीरके गुणोंका वर्णन करता हूँ।

प्रातःकाल संस्कृत (सुपाचित) अन्न निश्चित ही सायंकाल नष्ट हो जाता है, अतः उस अन्नके रससे पुष्ट शरीरमें नित्यता कैसे आ सकती है[2]? हे गरुड! अपने प्राकृत कर्मोंके अनुसार शरीर तो मिल चुका है, इस तरह यथायोग्य शरीर-निर्माणरूप आधा कार्य तो हो चुका है, पर आगे दुष्कर्मोंसे बचनेके लिये एवं अपनी सुरक्षाके लिये परम औषधका सेवन करना चाहिये। क्या यह शरीर अन्नदाता पिता या जन्म देनेवाली माताका है अथवा उन दोनोंका है? यह राजाका है या बलवान्‌का है, अग्नि अथवा कुत्तेका है? कीटाणु, विष्ठा अथवा भस्मके रूपमें परिणत होनेवाले इस शरीरके लिये श्रेष्ठतम यत्न कौन हो सकता है? पाप-विनाशके निमित्त प्राणीको उत्कृष्ट यत्न करना चाहिये। जीवने अनेक बार इस संसारमें जन्म ग्रहणकर मन, वाणी और शरीरके द्वारा पापकर्म किया है। मनुष्य-जन्म मिलनेपर प्राणीको पूर्व सभी जन्मोंके पापोंका स्मरण करके तपके द्वारा उन्हें विनष्ट करनेका प्रयास करना चाहिये। कर्मके अनुसार प्राप्त होनेवाले गर्भवासके महान् कष्टको देखकर भी जो मनुष्य पुनः गर्भवासमें आता है अर्थात् मानवयोनिमें ही उससे मुक्तिका प्रयास नहीं करता, वह पातकी अण्डजादि योनियोंमें जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ आधियाँ-व्याधियाँ, क्लेश और वृद्धावस्थाजनित रूप परिवर्तन होते रहते हैं।[3]

हे द्विजोत्तम (पक्षिश्रेष्ठ)! गर्भवाससे निकला हुआ प्राणी अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छन्न हो जाता है। बाल्यावस्थामें रहनेके कारण वह सदसत्‌का कुछ भी ज्ञान नहीं रखता है। यौवनान्धकारसे वह अन्धा हो जाता है। इस बातको जो देखता है वह मुक्तिका भागी होता है। प्राणी चाहे बालक हो चाहे युवा हो अथवा वृद्ध हो, वह जन्म लेनेके बाद मृत्युको अवश्य प्राप्त होता है। धनी-निर्धन, सुकुमार, कुरूप, मूर्ख, विद्वान्, ब्राह्मण या अन्य वर्णवाले जनोंकी भी वही स्थिति होती है। मनुष्य चाहे तपस्वी, योगी, परमज्ञानी, दानी, लक्ष्मीवान्, धर्मात्मा, अतुलनीय पराक्रमी कोई भी हो मृत्युसे नहीं बच सकता है। बिना मनुष्यदेहको प्राप्त किये सुख-दुःखका अनुभव नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति प्राकृत कर्मके पाशमें बँधकर मृत्युको प्राप्त करता है। गर्भसे लेकर पाँच वर्षतक मनुष्यके ऊपर पापका अल्प प्रभाव पड़ता है, किंतु उसके बाद वह यथायोग्य पापके न्यूनाधिक प्रभावका भागी होता है। इस प्रकार प्राणीको बार-बार इस संसारमें आना-जाना पड़ता है। इस पृथ्वीपर मरा हुआ

१-विधातृविहितो मृत्युः शीघ्रमादाय गच्छति। ततो वक्ष्यामि पक्षीन्द्र काश्यपेय महाद्युते॥
मानुषः शतजीवीति पुरा वेदेन भाषितम्। विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रं चापि विनश्यति॥
वेदानभ्यसनेनैव कुलाचारं न सेवते। आलस्यात्कर्मणां त्यागो निषिद्धेऽप्यादरः सदा॥
यत्र तत्र गृहेऽश्नाति परक्षेत्ररतस्तथा। एतैरन्यैर्महादोषैर्जायते चायुषः क्षयः॥
अश्रद्दधानमशुचिं नास्तिकं त्यक्तमङ्गलम्। परद्रोहानृतकरं ब्राह्मणं यत (म) मन्दिरम्॥
अरक्षितारं राजानं नित्यं धर्मविवर्जितम्। क्रूरं व्यसनिनं मूर्खं वेदवादबहिष्कृतम्॥ (२४। ९—१४)

२-यत्प्रातः संस्कृतं सायं नूनमन्नं विनश्यति॥ तदीयरससम्पुष्टकाये का नाम नित्यता॥ (२४। १९-२०)

३-कर्तव्यः परमो यत्नः पातकस्य विनाशने। अनेकभवसम्भूतं पातकं तु त्रिधा कृतम्॥
यदा प्राप्नोति मानुष्यं तदा सर्वं तपत्यपि। सर्वजन्मानि संस्मृत्य विषादी कृतचेतनः॥
अवेक्ष्य गर्भवासांश्च कर्मजा गतयस्तथा। मानुषोदरवासी चेत्तदा भवति पातकी॥
अण्डजादिषु भूतेषु यत्र यत्र प्रसर्पति। आधयो व्याधयः क्लेशा जरारूपविपर्ययः॥ (२४। २३—२६)

मनुष्य दानादि सत्कर्मोंके प्रभावसे पुनः जन्म लेकर अधिक दिनोंतक जीवित रहता है।[1]

सूतजीने कहा—भगवान् कृष्णके ऐसे वचनको सुनकर गरुडजीने यह कहा—

गरुडने कहा—हे प्रभो! बालककी मृत्यु हो जानेपर पिण्डदानादि क्रियाओंको कैसे करना चाहिये? यदि विपन्नावस्थामें फँसे हुए भ्रूणकी मृत्यु गर्भमें ही हो जाती है अथवा चूडाकरणके बीच शिशु मर जाता है तो कैसे, किसके द्वारा दान दिया जाना चाहिये? मृत्युके बाद कौन-सी विधि है?

गरुडके ऐसे वाक्यको सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—

हे गरुड! यदि स्त्रीका गर्भपात हो जाय अथवा गर्भस्राव हो जाय तो जितने मासका गर्भ होता है, उतने दिनका अशौच मानना चाहिये। आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको उसके लिये कुछ भी नहीं करना चाहिये। यदि जन्मसे लेकर चूडाकरण-संस्कारके बीच बालककी मृत्यु हो जाती है तो उसके निमित्त यथाशक्ति बालकोंको दूधका भोजन देना चाहिये। यदि चूडाकरण संस्कार होनेके बाद पाँच वर्षतक बालककी मृत्यु होती है तो शरीरदाहका विधान है, उसके लिये दूध देना चाहिये और बालकोंको भोजन कराना चाहिये। पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु होनेपर अपनी जातिके लिये विहित समस्त और्ध्वदैहिक क्रियाओंको सम्पन्न करना अपेक्षित है। ऐसे मृत बालकके कल्याणार्थ जलपूर्ण कुम्भ तथा खीरका दान करना चाहिये; क्योंकि उसका ऋणानुबन्ध हो जाता है।

हे पक्षीन्द्र! जन्म लेनेवालेकी मृत्यु और मृत्युको प्राप्त हुए प्राणीका जन्म निश्चित है। अतः पुनः शरीरका जन्म न हो इसके लिये व्यक्तिको जीवनकालमें जो कुछ अच्छा लगता था, उसीका दान करना चाहिये। ऐसा न करनेपर उस प्राणीका जन्म निर्धनकुलमें होता है। वह स्वल्पायु और निर्धन होकर प्रेम तथा भक्तिसे दूर रहता है। उसे पुनर्जन्म प्राप्त होता है, अतः मृत शिशुके लिये यथेप्सित दान आवश्यक है। ऐसा होनेपर ब्राह्मण-बालकोंको मिष्टान्न-भोजन अवश्य देना चाहिये। पुराणमें इससे सम्बन्धित जिस गाथाका गान हुआ है सब प्रकारसे वह मुझे सत्य प्रतीत होती है। गाथा इस प्रकार है—

भोज्ये भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरस्त्रियः॥
विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्।
दानाद्भोगानवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवनात्।
सुभाषणान्मृतो यस्तु स विद्वान्धर्मवित्तमः॥
अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥

(२४।४४—४६)

भोज्य वस्तु एवं भोजनशक्ति, रतिशक्ति रहनेपर श्रेष्ठ स्त्रीकी प्राप्ति तथा धन-वैभव एवं दानशक्ति—ये तीनों अल्प तपस्याका फल नहीं है ऐसा साथ-साथ होना बड़ा ही दुर्लभ है। दान देनेसे प्राणीको भोगोंकी प्राप्ति होती है। तीर्थसेवनसे सुख मिलता है और सुभाषण करता हुआ जो मरता है, वह विद्वान् धर्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ है। दान न देनेपर प्राणी दरिद्र होता है, दरिद्र होनेपर पाप करता है, पापके प्रभावसे नरकमें जाता है, तदनन्तर बार-बार वह दरिद्र एवं पापी बनता जाता है। (अध्याय २४)

१-गर्भवासाद्विनिर्मुक्तस्त्वज्ञानतिमिरावृतः। न जानाति खगश्रेष्ठ बालभावं समाश्रितः॥
यौवने तिमिरान्धश्च यः पश्यति स मुक्तिभाक्। अधानान्मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा॥
सधनो निर्धनश्चैव सुकुमारः कुरूपवान्। अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणस्त्वितरो जनः॥
तपोरतो योगशीलो महाज्ञानी च यो नरः। महादानरतः श्रीमान् धर्मात्मातुलविक्रमः।
विना मानुषदेहं तु सुखं दुःखं न विन्दति॥
प्राकृतैः कर्मपाशैस्तु मृत्युमाप्नोति मानवः। आधानात्पञ्च वर्षाणि स्वल्पपापैर्विपच्यते॥
पञ्चवर्षाधिको भूत्वा महापापैर्विपच्यते। योनिं पूरयते यस्मान्मृतोऽप्यायाति याति च॥
मृतो दानप्रभावेण जीवन्मर्त्यश्चिरं भुवि। (२४।२७—३३)

बालकोंकी अन्त्येष्टिक्रियाका स्वरूप, सत्पुत्रकी महिमा तथा औरस और क्षेत्रज आदि पुत्रोंद्वारा अन्त्येष्टि करनेका फल

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! इसके बाद अब मैं पुरुष-स्त्रीका निर्णय कहूँगा। बालक जीवित हो अथवा मृत्युको प्राप्त हो गया हो, पाँच वर्षसे अधिक अवस्था हो जानेपर उसमें पुरुषत्व प्रतिष्ठित हो जाता है। वह अपनी समस्त इन्द्रियोंको जान लेता है और रूप तथा कुरूपके विपर्ययको जाननेकी क्षमता भी उसमें आ जाती है। पूर्वजन्मार्जित कर्मफलसे प्राणियोंका वध और बन्धन होता है। पाप ही सभी लोगोंको नष्ट करता है।

हे पक्षिराज! गर्भके नष्ट होनेपर कोई और्ध्वदैहिक क्रिया नहीं है। शिशुकी मृत्यु होनेपर दुग्धका दान देना चाहिये, शैशवके बादकी अवस्थामें बालककी मृत्यु होनेपर पायस तथा खीरका दान देना चाहिये। कुमारकी अवस्थामें मृत्यु होनेपर एकादशाह, द्वादशाह, वृषोत्सर्ग तथा महादानको छोड़कर अन्य सभी और्ध्वदैहिक कृत्य करनेका आदेश किया गया है। मरे हुए कुमार और बालकोंके निमित्त भोजन-वस्त्र तथा वेष्टन देना चाहिये। बाल, वृद्ध अथवा तरुणके मरनेपर घट-बन्धन करना चाहिये।

हे खगश्रेष्ठ! दो माह कम दो वर्षतकके बालककी मृत्यु होनेपर उसको पृथ्वीमें गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिये, इससे अधिक आयुवाले मृत बालकके लिये दाह-संस्कारका ही विधान उत्तम है। सभी शास्त्रोंमें जन्मसे लेकर दाँत निकलनेतककी अवस्थावाले बच्चेको शिशु, चूडाकरण-संस्कारतककी अवस्थावालेको बालक और उपनयन-संस्कारतककी आयुवालेको कुमार कहा गया है।

हे गरुड! उपनयन-संस्कारका विधान न होनेके कारण शूद्रादिका अन्तिम संस्कार कैसे होना चाहिये? यह संशय है। गर्भाधानसे नौ मासतकके कालको छोड़कर सोलह मासतकके बच्चेको शिशु, सत्ताईस मासतकके अवस्थाप्राप्त बच्चेको बालक, पाँच वर्षकी आयुवालेको कुमार, नौ वर्ष-वालेको पौगण्ड, सोलह वर्षवालेको किशोर और उसके बादका यौवन-काल है। पाँच वर्षकी अल्पायुमें मृत कुमार चाहे उसका व्रतबन्ध हुआ हो अथवा न हुआ हो, वह पूर्वकथित विधानके अनुसार दशपिण्ड-कृत्यकी कामना करता है। स्वल्प कर्म, स्वल्प प्रसंग, स्वल्प विषयबन्धन, स्वल्प शरीर तथा स्वल्प वस्त्रके कारण प्राणी स्वल्प क्रियाकी इच्छा करता है।[1] जीव जबतक वृद्धिकी ओर बढ़ रहा हो, जबतक वह सांसारिक विषय-वासनाओंसे घिरा हो, तबतक उसे अपने उस मृत परिजनको वे सभी भोज्य पदार्थ और आवश्यक वस्तुएँ देनी चाहिये, जो उसके लिये उपजीव्य[2] और इच्छित थीं।

हे खगेश! चाहे बालक हों या वृद्ध हों अथवा युवा हों सभी प्राणी घटकी इच्छा करते हैं। सर्वत्रगामी देही जीवात्मा सदैव सुख-दुःखका अनुभव करता है। जिस प्रकार साँप अपनी पुरानी केंचुलका परित्याग कर देता है, उसी प्रकार जीव अपने पुराने शरीरका परित्याग कर अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला होकर तथा वायुभूत हो भूखसे पीड़ित हो जाता है। अतः बालककी भी मृत्यु होनेपर निश्चित ही दान देना चाहिये। जन्मसे लेकर पाँच वर्ष-तककी अवधिमें मरा हुआ प्राणी दानमें दिये गये असंस्कृत[3] भोजनका उपभोग करता है। यदि पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले बालककी मृत्यु हो जाती है तो वृषोत्सर्ग और सपिण्डीकरणको छोड़कर द्वादशाहके आनेपर षोडश श्राद्ध करने चाहिये। उस दिन यथाक्रम पायस (खीर)-से बने पिण्डका दान देना चाहिये। यह पिण्डदान गुड़से भी किया जा सकता है। उसी दिन सान्नोदक कुम्भ और पददान देना चाहिये। ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये और यथाशक्ति महादानादि भी करने चाहिये। पक्षिश्रेष्ठ! दीप-दानादि जो कुछ शेष कर्म हैं उन्हें पाँच वर्षसे अधिक आयुवाले कुमारकी मृत्यु होनेपर करना चाहिये।

हे पक्षिराज! व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) होनेसे पहले जिसका मरण हुआ है उसकी संतृप्तिके लिये पूर्वोक्त कर्म करना चाहिये। यदि मनुष्यके द्वारा सारी क्रिया नहीं की

१-जिस व्यक्तिका मरण हुआ है वह अपनी अवस्थाके अनुसार एवं अपने कर्मोंके अनुसार जिस मात्रामें, जिस रूपमें अन्न, वस्त्र आदिसे तुष्ट होता रहा है उसी मात्रामें उसी रूपमें उसकी और्ध्वदैहिक क्रियामें अन्न, वस्त्र आदि देना चाहिये।

२-पुष्टि एवं तुष्टिके लिये उपयोगी।

३-मन्त्र आदिके बिना दिया हुआ अन्न।

जाती है तो वह जीव पिशाच हो जाता है। व्रतबन्धके पूर्व मृत बालकके लिये पूर्वोक्त सब कर्म करना चाहिये। उसके बाद '**स्वाहा**' शब्दसे समन्वित मन्त्रके द्वारा षोडश एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। ऋजु[1] कुशसे श्वेत तिलके द्वारा अपसव्य होकर समस्त क्रिया करनेसे पितृगण परम गतिको प्राप्त करते हैं और दीर्घायु होकर पुनः अपने ही कुलमें जन्म लेते हैं।

सभी प्रकारके सुखोंको प्रदान करनेवाला पुत्र माता-पिताके प्रेमका अभिवर्धक होता है। जैसे एक आकाश, एक चन्द्र और एक आदित्य आश्रय-भेदसे पृथक्-पृथक् घटादिमें दिखायी देते हैं, वैसे ही पिताका आत्मा सभी पुत्रोंमें सदैव विचरण करता रहता है। जिसकी जो प्रकृति शुक्र-शोणित-संगमके पूर्व होती है, वही पुत्रोंमें आकर संनिहित हो जाती है। वैसे ही वे अपने जीवनमें कर्म करते हैं। किसीका पुत्र पिताका रूप लेकर उत्पन्न होता है, पिताकी अपेक्षा कोई अत्यधिक रूपवान्, गुणवान् तथा दानपरायण होता है। इस संसारमें कोई भी प्राणी एक-समान न हुआ है और न होगा। अन्धेसे अन्धा, गूँगेसे गूँगा, बहिरेसे बहिरा तथा विद्वान्से विद्वान् जन्म नहीं लेता है। इस सृष्टिमें कहीं भी अनुरूपता दिखायी नहीं देती।

गरुडने कहा—औरस और क्षेत्रज आदि दस प्रकारके पुत्र माने गये हैं। जो संगृहीत (कहींसे प्राप्त) तथा दासीसे उत्पन्न हुआ है, उससे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है? मृत्युके वशमें गये हुए प्राणीको उस पुत्रसे कौन-सी गति प्राप्त होती है? जिस व्यक्तिके न पुत्री है और न पुत्र है, न दौहित्र (लड़कीका पुत्र-नाती) है, उसका श्राद्ध किसके द्वारा किस विधिसे होना चाहिये?

श्रीभगवान्ने कहा—हे गरुड! पुत्रके मुखको देख करके मनुष्य पितृऋणसे मुक्त होता है। पौत्रको देखनेसे मनुष्यको तीनों ऋणसे मुक्ति मिल जाती है। पुत्र-पौत्र तथा प्रपौत्रोंके होनेसे व्यक्तिको आनन्त्य लोक और स्वर्गकी प्राप्ति होती है।[2] जो क्षेत्रज पुत्र हैं, वे पिताको मात्र लौकिक सुख प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं। औरस पुत्रको विधिवत् पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। अन्य पुत्र एकोद्दिष्ट श्राद्ध करते हैं, पार्वण नहीं। ब्राह्म-विवाहके नियमोंसे विवाहिता स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र पिताको स्वर्ग ले जाता है। संगृहीत पुत्र प्राणीको अधोगतिमें ले जाता है। यदि वह सांवत्सरिक श्राद्ध करता है तो उससे पिताको नरककी प्राप्ति होती है। अन्नदानके अतिरिक्त वह सब प्रकारका दान अपने पालक पिताके लिये कर सकता है। संगृहीत पुत्रको एकोद्दिष्ट श्राद्ध ही करना चाहिये पार्वण नहीं। माता-पिताके लिये वार्षिक श्राद्ध करके वह पापसे लिप्त नहीं होता। यदि वह एकोद्दिष्ट श्राद्धका परित्याग करके पार्वण श्राद्ध करता है तो अपनेको और पितरोंको यमलोक पहुँचाता है। जो संगृहीत पुत्र और दासीसे उत्पन्न हुए पुत्रादि हैं, उन्हें तीर्थमें जाकर पितृश्राद्ध करना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये।

यदि संगृहीत पुत्र पाक-श्राद्ध[3] करता है तो उसके श्राद्धको वैसे ही वृथा समझना चाहिये, जैसे शूद्रान्नसे द्विजत्व नष्ट हो जाता है। वह श्राद्ध परलोकमें गये हुए पिता-पितामहादि पितरोंको प्रसन्न नहीं कर पाता। हे पक्षिश्रेष्ठ! ऐसा जानकर व्यक्तिको हीन जातिमें उत्पन्न हुए पुत्रोंका परित्याग[4] कर देना चाहिये। [यदि अपरिणीता] ब्राह्मणीके गर्भसे ब्राह्मणके द्वारा पुत्र उत्पन्न किया जाता है तो वह चाण्डालसे भी नीच होता है। जो पुत्र संन्यासीसे जन्म लेता है या शूद्रसे ब्राह्मणीके गर्भमें उत्पन्न होता है तो ऐसे पुत्रोंको तुम चाण्डाल ही समझो। जो सगोत्रा कन्यासे जन्म ग्रहण करता है, वह भी चाण्डाल ही होता है। हे खगेश्वर! यथाविधान विवाहिता स्त्रीसे पुत्र पैदा करके व्यक्ति स्वर्ग जाता है। ऐसे सदाचारी पुत्रोंके आचरणसे मनुष्यको सुखकी प्राप्ति निश्चित है। जो दुराचारी पुत्र है वह अपने कुत्सित आचरणसे पिताको नरकमें ले जाता है। हीन जातिसे उत्पन्न हुआ सदाचारी पुत्र अपने माता-पिताको सुख प्रदान करता है।[5] जो मनुष्य कलिकालके पापसे निर्मुक्त है, सिद्ध जनोंसे पूजित है, देवलोककी अप्सराओंके

१-पवित्रक या मोटक आदिके बिना बनाये ही कुशका उपयोग ऋजु कुश है।

२-मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात्॥
पौत्रस्य दर्शनाज्जन्तुर्मुच्यते च ऋणत्रयात्। लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः॥ (२५। ३३-३४)

३-अन्न पकाकर उसके द्वारा किया गया श्राद्ध पाक-श्राद्ध है।

४-ऐसे पुत्रोंसे यथासम्भव अपना धार्मिक कृत्य नहीं करवाना चाहिये।

५-इसका तात्पर्य सदाचारकी महिमासे है।

द्वारा सम्मानमें डुलाये जा रहे चँवर और पहनायी गयी मालासे सुशोभित है, वह अकेले ही सौ पितरों तथा नरकमें गये हुए बन्धु-बान्धवों, पुत्र-पौत्रों और प्रपौत्रोंका उद्धार कर देता है। (अध्याय २५)

सपिण्डीकरण श्राद्धका महत्त्व, प्रतिवर्ष विहित मासिक श्राद्ध आदिकी अनिवार्यता, पति-पत्नीके सह-मरण आदिकी विशेष परिस्थितिमें पाक एवं पिण्डदान आदिकी विभिन्न व्यवस्थाका निरूपण तथा बभ्रुवाहनकी कथा

गरुडने कहा—हे देवश्रेष्ठ! हे प्रभो! आप मेरे ऊपर कृपा करके यह बतायें कि मरे हुए प्राणियोंका सपिण्डीकर्म किस समय करना चाहिये? सपिण्डीकर्म होनेपर प्रेत कैसी गति प्राप्त करता है और जिस प्रेतका सपिण्डीकर्म नहीं होता, उसकी कैसी गति होती है? स्त्री और पुरुषका किसके साथ सपिण्डीकर्म होना चाहिये। हे सुरेश्वर! स्त्री और पुरुष एक साथ सपिण्डीकर्मके भागीदार बनकर कैसे उत्तम गति प्राप्त कर सकते हैं? पतिके जीवित रहते हुए स्त्रियोंका सपिण्डीकरण कैसे हो सकता है? वे किस प्रकार पतिलोक या स्वर्गको जाती हैं? अग्न्यारोहण हो जानेपर स्त्रियोंका श्राद्ध कैसे होता है? उनका वृषोत्सर्ग किस प्रकारसे किया जाय? हे स्वामिन्! सपिण्डीकरण हो जानेपर मृतकके लिये घट-दान कैसे हो? हे हरे! आप संसारके कल्याणार्थ इसे बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे पक्षिन्! जिस प्रकार सपिण्डीकरण होता है, वैसा ही मैं तुम्हें सुनाऊँगा। हे खगराज! जब मनुष्य मरनेके बाद एक वर्षकी महापथ-यात्रा करता है तो पुत्र-पौत्रादिके द्वारा सपिण्डीकरण हो जानेपर वह पितृलोकमें चला जाता है। इसलिये पुत्रको पिताका सपिण्डीकरण करना चाहिये। वर्षके पूर्ण हो जानेपर पिण्डप्रवेशन अर्थात् सपिण्डीकरण करना चाहिये। हे पक्षियोंके सिंह! वर्षके अन्तमें निश्चित रूपसे प्रेत-पिण्डका मेलन होता है। पितृपिण्डोंके साथ प्रेत-पिण्डका सम्मिलन हो जानेपर वह प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह प्रेत नामका परित्याग करके पितृगण हो जाता है। अपने गोत्र या सापिण्ड्यमें जितने लोगोंको अशौच शास्त्रानुसार होता है उनके यहाँ यदि विवाह या कोई शुभ कार्य होना है तो तीसरे पक्ष या छः मासमें भी सपिण्डीकरण किया जा सकता है।

हे खगेश्वर! गृहस्थके घरमें यदि किसीका मरण हुआ हो तो विवाह आदि शुभ कार्य नहीं करने चाहिये। जबतक सपिण्डीकरण नहीं हो जाता है तबतक भिक्षुक उस घरकी भिक्षाको स्वीकार नहीं करता है। अपने गोत्रमें अशौच तबतक रहता है, जबतक पिण्डका मेलन नहीं हो जाता है। पिण्डमेलन होनेपर 'प्रेत' शब्द निवृत्त हो जाता है। कुल-धर्म अनन्त हैं, पुरुषकी आयु क्षयशील है और शरीर नाशवान् है, इस कारण बारहवाँ दिन ही सपिण्डीकरण-कर्मके लिये प्रशस्त समय होता है। मृत व्यक्ति अग्निहोत्री रहा हो अथवा न रहा हो, उसका सपिण्डीकरण द्वादशाहको ही कर देना चाहिये। तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने बारहवें दिन, तीसरे पक्षमें, छठे मासमें अथवा वर्ष पूर्ण होनेपर सपिण्डीकरणका विधान किया है।

पुत्रवान्‌का सपिण्डीकरणके बाद कभी भी एकोद्दिष्ट नहीं करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पश्चात् जहाँ-जहाँ श्राद्ध किया जाय, पुत्रवान्‌का एकोद्दिष्ट कभी न किया जाय। वहाँ-वहाँ तीन-तीन श्राद्ध (पार्वण श्राद्ध) करने आवश्यक हैं, अन्यथा कर्ता पितृघातक कहलाता है। अशक्त होनेपर भी पार्वण श्राद्ध करना चाहिये।[1] ऐसा मुनियोंने कहा है। यदि दिन और मास न ज्ञात हो तो उनका पार्वण श्राद्ध ही करना उचित है। पितरोंके साथ वह पिता इस लोकमें पुत्रके द्वारा दिये गये दानका फल तबतक नहीं प्राप्त करता, जबतक उसके शरीरकी उत्पत्ति पुनः [दशगात्रके पिण्डसे] नहीं हो जाती। ऐसी स्थितिमें पुत्रद्वारा किये गये इन्हीं सोलह श्राद्धोंसे प्रेत यमपाशके बन्धनसे मुक्त होता है। पुत्ररहित

१-(क) यहाँपर ऊनमासिक आदि तथा सांवत्सरिक [मृत्यु-तिथि आदि] श्राद्ध एकोद्दिष्ट श्राद्धके स्थानपर पार्वण श्राद्धकी विधि कात्यायनके मतसे लिखी गयी है। जो कुछ प्रदेशोंमें भी प्रचलित है। परंतु सामान्यतया ऊनमासिक, सांवत्सरिकादि श्राद्धोंमें शौनकके मतानुसार एकोद्दिष्ट-विधिसे ही श्राद्ध किया जाता है।

(ख) सपिण्डीकरणं कृत्वा गयां गत्वा च धर्मवित्। एकोद्दिष्टं न कुर्वीत साग्निर्वा नाग्निमानपि॥ (दिवोदासप्रकाश)

पुरुषका सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये।[1] पतिके जीवित रहनेपर स्त्रीका भी सपिण्डन नहीं होना चाहिये।

जिस कन्याका विवाह ब्राह्मादि-विवाह-विधिसे हुआ है, उसकी पिण्डोदक-क्रियाएँ पतिके गोत्रसे करनी चाहिये। आसुरादि-विधिसे जिसका विवाह हुआ है, उसकी पिण्डोदक-क्रिया पिताके गोत्रसे करनी चाहिये। पिताका सपिण्डीकरण सदैव पुत्र करे। यदि पुत्र नहीं है तो स्वयं उसकी पत्नी उस क्रियाका निर्वाह करे। उसके भी न रहनेपर सहोदर भाई, भाईका पुत्र अथवा शिष्य सपिण्डीकरण कर सकता है। सपिण्डीकरण करके वह नान्दीमुख श्राद्ध करे। हे खग! पुत्र न रहनेपर ज्येष्ठ भाईका सपिण्डीकरण कनिष्ठ भाई करे। उसके अभावमें भतीजा या पत्नी उस कर्मको सम्पन्न करे। मनुने कहा है कि—यदि सहोदर भाइयोंमेंसे एक भी भाई पुत्रवान् हो जाय तो उसी पुत्रसे अन्य सभी भाई पुत्रवान् हो जाते हैं।[2] यदि सभी भाई पुत्रहीन हैं तो उनका सपिण्डीकरण उनकी पत्नीको करना चाहिये अथवा वह पत्नी स्वयं न करके ऋत्विज्‌से या पुरोहितसे कराये।

चूडाकरण एवं उपनयन-संस्कारसे संस्कृत पुत्र पिताके श्राद्धको करे। जिस पुत्रका उपनयन-संस्कार नहीं हुआ है केवल चूडाकरण-संस्कार हुआ है वह श्राद्धमें स्वधाका उच्चारण तो कर सकता है पर वेदमन्त्रका उच्चारण नहीं कर सकता। स्त्रीका सपिण्डीकरण उसके पति, ससुर तथा परश्वशुरके साथ करना चाहिये। स्त्री-जातिका यह कर्म भतीजा तथा सहोदर छोटा भाई भी कर सकता है। संवत्सरपूर्ण होनेके पहले अथवा वर्षके पूर्ण होनेपर दूसरे वर्षके संधिकालमें जिन प्रेतोंका सपिण्डीकरण होता है, उनकी क्रिया पृथक् नहीं की जाती। हे वत्स! सपिण्डीकरण हो जानेके पश्चात् पृथक् क्रिया करना निन्दनीय माना गया है। जो व्यक्ति अपने पिताको पृथक् पिण्डदान देता है, वह पितृहन्ता होता है। सपिण्डीकरणके बाद पृथक् श्राद्ध उचित नहीं है। यदि कोई पृथक् पिण्डदान करता है तो वह पुनः सपिण्डीकरण करे। जो मनुष्य सपिण्डीकरण करके एकोद्दिष्ट श्राद्ध करता है, वह स्वयंको तथा प्रेतको यमराजके अधीन कर देता है।

हे पक्षिन्! वर्षपर्यन्त प्रेतसे सम्बन्धित जो भी क्रिया की जाय उसके नाम और गोत्रके सहित विद्वान् व्यक्ति करे। सपिण्डीकरण कर देनेपर भोजन और घटादिका दान, पददान तथा अन्य जो दान हैं उन्हें एकको (मृत व्यक्तिको) ही उद्देश्य करके देना चाहिये। वर्षभरके लिये अन्न और जलपूर्ण घटादिकी संख्याका निर्धारण करके ब्राह्मणको प्रदान करे। पिण्डदान देनेके पश्चात् यथाशक्ति वर्षभरके लिये उपयोगी समस्त सामग्री दानमें दे। ऐसा होनेपर मृत व्यक्ति दिव्य देह धारण करके विमानद्वारा सुखपूर्वक यमलोक चला जाता है।[3]

पिताके जीवित रहनेके कारण मृत पुत्रका पिताके साथ सपिण्डीकरण नहीं हो सकता अर्थात् उसका सपिण्डीकरण पितामह आदिके साथ होगा ऐसे ही पतिके जीवित होनेपर स्त्रियोंका सपिण्डीकरण उसकी श्वश्रू आदिके साथ होगा।[4] पतिकी मृत्यु हो जानेके बाद चौथे दिन जो पतिव्रता स्त्री अपने शरीरको अग्निमें समर्पित कर देती है, उसका वृषोत्सर्गादि कर्म पतिकी क्रियाके ही दिन करना चाहिये। पुत्रिका पुत्रोत्पत्तिके पूर्व पतिके गोत्रवाली होती है। पुत्रोत्पत्तिके बाद वह पुनः पिताके गोत्रमें आ जाती है। पुत्रिका उस कन्याको कहते हैं, जिस कन्याका पिता

१-उपर्युक्त श्लोकोंमें 'अपुत्रस्य' यह वाक्य 'पुत्रोत्पादन' की विधिकी प्रशंसामें पर्यवसित है। इसका तात्पर्य अपुत्रवान् पुरुषके सपिण्डन-निषेधमें नहीं है। अन्यथा—

पुत्राभावे स्वयं कुर्युः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्। सपिण्डीकरणं तत्र ततः पार्वणमन्वहम्॥ (श्राद्धकल्पलता पृष्ठ २४३)

'पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् पत्न्यभावे सहोदरः।' (२६।२३)

'सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्यात् सपिण्डनम्।' (२६।२७)

—इन वाक्योंका विरोध हो जायगा। अतः यथाविधि योग्य पुत्र उत्पन्न करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

२-भ्रातॄणामेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान् भवेत्। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥ (२६।२६)

३-अन्नं पानीयसहितं संख्यां कृत्वाब्दिकस्य च। दातव्यं ब्राह्मणे पक्षिञ्जलपूर्णघटादिकम्॥

पिण्डान्ते तस्य सकला वर्षवृत्तिः स्वशक्तितः। दिव्यदेहो विमानस्थः सुखं याति यमालयम्॥ (२६।३५-३६)

४-पिताके जीवित रहनेपर पुत्रके मर जानेसे पुत्रका सपिण्डीकरण पिताके साथ न करके पितामहके साथ करनेका विधान है। इसी प्रकार पतिके जीवित रहनेपर मृत पत्नीका पतिके साथ सपिण्डीकरण न करके उसके श्वश्रू, परश्वश्रू और वृद्ध परश्वश्रू (सास, परसास, वृद्धपरसास)-के

विवाहके समय जामातासे यह तय कर लेता है कि इस कन्यासे जो पुत्र पैदा होगा वह मेरा पुत्र होगा। यदि स्त्री अपने पतिके साथ अग्निमें आरोहण करती है तो उसकी उसके पतिके साथ समस्त और्ध्वदैहिक क्रिया करनी चाहिये, किंतु क्षय-तिथिमें पुत्रको उसका श्राद्ध पृथक्‌रूपमें करना चाहिये। यदि पति-पत्नी पुत्ररहित हैं और वे दोनों एक ही दिन मर जाते हैं तथा उनका दाह-संस्कार एक ही चितापर होता है तो उन दोनोंके श्राद्धोंको पृथक्-पृथक् करना चाहिये, किंतु पत्नीका सपिण्डीकरण पतिके साथ ही होगा। यदि पतिके साथ पत्नीका पिण्डदान पृथक्-पृथक् होता है तो उस पिण्डदानसे वह दम्पति पापलिप्त नहीं होता, यह मेरा सत्य वचन है। यदि पति-पत्नी दोनोंका एक ही चितापर दाह संस्कार होता है तो उन दोनोंके लिये पाक एक ही साथ बनाया जाय, किंतु पिण्डदान पृथक्-पृथक् होना चाहिये। एकादशाहको वृषोत्सर्ग, षोडश प्रेतश्राद्ध, घटादि-दान, पददान और जो महादान हैं उन्हें पति-पत्नीका वर्षपर्यन्त पृथक्-पृथक् ही करना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रेतको चिरकालीन संतृप्ति प्राप्त होती है।

एक गोत्रसे सम्बन्धित एक साथ मरे हुए स्त्री अथवा पुरुषसे सम्बद्ध-कृत्यमें आहुतिकी वेदी एक ही होनी चाहिये। किंतु होम पृथक्-पृथक् होना चाहिये। पति एवं पत्नीका एक साथ मरण होनेपर उनका एकादशाहका श्राद्ध एवं उनके निमित्त पिण्डदान, भोजन आदि पृथक्-पृथक् होगा, पर पाककी व्यवस्था एक ही होगी—यह विधान केवल पति-पत्नीके एक साथ मरणमें ही है अन्य किसीके मरणमें ऐसा विधान गर्हित है। पुत्र माता-पिताके लिये एक ही पाकसे यथाविधान श्राद्ध करता है। विकिरान्नदान एक और पिण्डदान पृथक्-पृथक् करने चाहिये। इसी विधिका पालन तीर्थ, पितृपक्ष अथवा चन्द्र और सूर्य-ग्रहणके अवसरमें भी होना चाहिये।

जब स्त्री अपने मृत पतिके साथ अग्निमें जलती है तो अग्नि उसके शरीरको अवश्य जला देती है, किंतु आत्माको कष्ट नहीं दे पाती है, जिस प्रकार अग्निमें प्रज्वलित धातुओंका मात्र मल ही जलता है, उसी प्रकार अमृतके समान अग्निमें प्रविष्ट हुई नारीका शरीर दग्ध होता है। पुरुष शुद्ध होकर दिव्य देहधारी हो जाता है, जिसके कारण वह खौलते हुए तेल, दहकते हुए लौह तथा अग्निसे कदापि नहीं जलता, इसी प्रकार पतिके साथ चितामें जली हुई स्त्रीको कभी जला हुआ नहीं मानना चाहिये; क्योंकि उसकी अन्तरात्मा मरे हुए पतिकी अन्तरात्मासे मिलकर एक हो जाती है।

यदि स्त्री पतिका साथ छोड़ करके अन्यत्र अपने प्राणोंका परित्याग करती है तो वह पतिलोकमें तबतक नहीं पहुँच पाती, जबतक प्रलय नहीं हो जाता। धन-दौलतसे युक्त माता-पिताको छोड़कर जो स्त्री अपने मरे हुए पतिका अनुगमन करती है, वह चिरकालतक सुखोपभोग करती है। वह पतिसंयुक्ता नारी उस स्वर्गमें साढ़े तीन करोड़ दिव्य वर्षोंतक नक्षत्रोंके साथ स्वर्गमें रहकर अन्तमें महती प्रीति प्राप्त करके ऐश्वर्यसम्पन्न कुलमें उत्पन्न होती है।

धर्मपूर्वक विवाहिता जो स्त्री यदि पति-संगति नहीं करती है, तो जन्म-जन्मान्तरतक दुखी, दुःशीला और अप्रियवादिनी होती है। जो स्त्री अपने पतिको छोड़कर परपुरुषकी अनुगामिनी हो जाती है, वह अन्य जन्मोंमें चमगादड़ी, छिपकली, गोहनी अथवा द्विमुखी सर्पिणी होती है। अतः स्त्रीको मन-वाणी और कर्म—इन सभीके द्वारा प्रयत्नपूर्वक अपने मृत या जीवित पतिकी सेवा करनी चाहिये। पतिके जीवित रहते हुए अथवा उसके मरनेपर जो स्त्री व्यभिचार करती है, वह अनेक जन्मोंतक वैधव्य जीवन प्राप्त करती है और दुर्भाग्य उसका साथ नहीं छोड़ता। देवता और पितरोंको श्रद्धापूर्वक जो कुछ दिया जाता है, उसका समग्र फल उसे पतिकी पूजा करनेसे ही

साथ सपिण्डीकरण करना चाहिये। इसके समर्थनमें ये वाक्य द्रष्टव्य हैं—
अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात् सपिण्डनम् । श्वश्र्वादिभिः सहैवास्याः सपिण्डीकरणं भवेत्॥ (पैठीनसि)
अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात् सपिण्डनम्। श्वश्रूमात्रादिभिः सार्धमेव धर्मेण युज्यते॥ (व्यास)

प्राप्त हो जाता है, इसलिये स्त्रीको पतिकी ही पूजा करनी चाहिये।

हे पक्षिश्रेष्ठ! पातिव्रत्यधर्मरूप सत्कर्मका पालन करनेपर स्त्री चिरकालतक पतिलोकमें निवास करती है। जबतक सूर्य और चन्द्र विद्यमान हैं, तबतक वह स्वर्गमें देवतुल्य बनी रहती है। उसके बाद दीर्घायु प्राप्त करके इस लोकमें वैभवशाली कुलमें जन्म लेती है तथा कभी भी पति-वियोगका दुःख नहीं झेलती।

हे खगराज! मैंने यह सब तुम्हें बता दिया। अब मृत प्राणीको सुख प्रदान करनेवाले विशेष कर्मको बताऊँगा। मृत्युके बाद द्वादशाहके दिन यथाविधि सपिण्डनादि समस्त कार्य करके वर्षपर्यन्त प्रतिदिन जलपूर्ण घट और अन्नका दान एवं मासिक श्राद्ध करना चाहिये। हे पक्षिन्! प्रेतकार्यको छोड़कर अन्य किये हुए कार्यकी **आवृत्ति** नहीं होनी चाहिये[1]। यदि कोई मनुष्य अन्य कर्म करता है तो पूर्वका किया गया कार्य विनष्ट हो जाता है। मृतकके द्वादशाहके दिन विहित कृत्य वर्षपर्यन्त पुनः करने चाहिये, इससे प्रेत अक्षयसुख प्राप्त करता है। प्रतिमास जलसे परिपूर्ण सान्नोदक घटका दान करना चाहिये। हे तार्क्ष्य! वृद्धिश्राद्धके कारण जो पुत्र अपने पिताका सपिण्डीकरण श्राद्ध कर देता है तो भी उसे प्रत्येक मासमें एक पिण्ड, अन्न और जलसे पूर्ण कुम्भका दान करना चाहिये।

तार्क्ष्यने कहा—हे विभो! आपने जिन प्रेतोंका वर्णन किया है, वे इस धरतीपर कैसे निवास करते हैं; उनके रूप किस प्रकारके होते हैं, वे कौन-कौन-से कर्म-फलोंके द्वारा महाप्रेत और पिशाच बन जाते हैं और किस शुभ दानसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है? हे मधुसूदन! समस्त जगत्के कल्याणार्थ मुझको यह सब बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! तुमने मानव-कल्याणके लिये बहुत अच्छी बात पूछी। प्रेतका लक्षण मैं कह रहा हूँ, उसे सावधान होकर सुनो। यह अत्यन्त गुप्त है। जिस-किसीके सामने इसको नहीं कहना चाहिये। तुम मेरे भक्त हो, इसलिये मैं तुम्हारे सामने इसे कह रहा हूँ।

हे पुत्र गरुड! पुराने समयमें बभ्रुवाहन नामका एक राजा था, जो महोदय (कान्यकुब्ज) नामक सुन्दर नगरमें रहता था। वह धर्मनिष्ठ, महापराक्रमी, यज्ञपरायण, दानशील, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणहितकारी, साधुसम्मत, सुशील, सदाचारी तथा दया-दाक्षिण्यादि सद्गुणोंसे संयुत था। वह महाबली राजा सदैव अपनी प्रजाका पालन पुत्रवत् करता तथा क्षत्रिय-धर्मका सम्यक् पालन करते हुए सदैव अपराधियोंको दण्डित किया। कभी विशाल भुजाओंवाले उस राजाने अपनी सेनाके सहित शिकार करनेके लिये नाना प्रकारके वृक्षोंसे भरे हुए सैकड़ों सिंहोंसे परिव्याप्त, विभिन्न प्रकारके पक्षियोंके कलरवसे निनादित एक घनघोर वनमें प्रवेश किया। वनके बीचमें जाकर राजाने दूरसे ही एक मृगको देखा और उसके ऊपर अपने बाणको छोड़ दिया। उसके द्वारा छोड़े गये उस कठिन बाणसे वह मृग अत्यन्त आहत हो उठा और शरीरमें बिंधे हुए उस बाणके सहित वह मृग वहाँसे भागकर वनमें लुप्त हो गया, किंतु उसकी काँखसे बह रहे रक्तके चिह्नोंसे राजाने उसका पीछा किया। इस प्रकार उसके पीछे-पीछे वह राजा दूसरे वनमें जा पहुँचा।

भूख और प्याससे उसका कण्ठ सूख रहा था तथा परिश्रम करनेके कारण अत्यन्त थकानका अनुभव करता हुआ वह मूर्च्छित-सा हो गया था; उसको वहाँ एक जलाशय दिखायी दिया। जलाशय देखकर घोड़ेके सहित उसने वहाँ स्नान किया और कमलपरागसे सुवासित शीतल

१-उत्तम षोडशी आदि जो प्रेतोद्देश्यक कार्य हैं सपिण्डनके बाद भी इनकी पुनरावृत्ति ऊनमासिक आदि श्राद्धके द्वारा वर्षपर्यन्त करना चाहिये। परंतु पितरोंके उद्देश्यसे किये गये कर्मकी पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिये—

द्वादशाहे कृतं सर्वं वर्षं यावत्सपिण्डनम्। पुनः कुर्यात्सदा नित्यं घटान्नं प्रतिमासिकम्॥
कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्यादृते खग। यः करोति नरः **कश्चित्कृतपूर्वं** विनश्यति॥
मृतस्यैव पुनः**कुर्यात्प्रेतोऽक्षय्यमवाप्नुयात्**। प्रतिमासं घटा देया सोदना जलपूरिताः॥
अर्वाक्च वृद्धेः करणाच्च तार्क्ष्य सपिण्डनं यः कुरुते हि पुत्रः। तथापि मासं प्रतिपिण्डमेकमन्नं च कुम्भं सजलं च दद्यात्॥ (२६। ६४—६७)

जलका पान किया। तत्पश्चात् उस जलसे निकलकर राजा बभ्रुवाहन विशाल वटवृक्षकी मनमोहक शीतल छायाके नीचे बैठ गया, जो पक्षियोंके कलरवसे निनादित तथा उस समूचे वनकी पताकाके रूपमें अवस्थित था। इसके बाद उस राजाने वहाँपर भूख-प्याससे व्याकुल इन्द्रियोंवाले एक प्रेतको देखा, जिसके सिरकी केशराशि ऊपरकी ओर खड़ी थी। उसका शरीर मलिन, कुब्जा (रूक्ष), मांसरहित और देखनेमें महाभयंकर लगता था। मात्र शरीरमें शेष स्नायु-तन्त्रिकाओंसे जुड़ी हुई हड्डियोंवाला वह अपने पैरोंसे इधर-उधर दौड़ रहा था और अन्य बहुत-से प्रेत उसको चारों ओरसे घेरे हुए थे।

हे तार्क्ष्य! उस विकृत प्रेतको देखकर बभ्रुवाहन विस्मित हो गया और उस प्रेतको भी महाभयंकर वनमें आये हुए राजाको देखकर कम आश्चर्य नहीं हुआ। प्रसन्नचित्त होकर प्रेतने उस राजाके पास जाकर कहा—

प्रेतने कहा—हे महाबाहो! आज आपके दर्शनका यह संयोग प्राप्त कर मैंने प्रेतभावको त्याग कर परम गति प्राप्त कर ली है। मुझसे बढ़कर धन्य कोई नहीं है।

राजाने कहा—हे प्रेत! तुम मुझे कृष्णवर्णवाले भयंकर प्रेतके समान दिखायी दे रहे हो। तुम्हें इस प्रकारका स्वरूप जैसे प्राप्त हुआ है वैसा मुझे बताओ।

राजाके ऐसा कहनेपर उस प्रेतने अपने सम्पूर्ण जीवनवृत्तको इस प्रकार कहा—

प्रेतने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मैं अपने सम्पूर्ण जीवन-वृत्तका विवरण आपको आदिसे सुना रहा हूँ, मेरे इस प्रेतत्वका कारण सुन करके आप दया अवश्य करेंगे। हे राजन्! नाना रत्नोंसे युक्त तथा अनेक जनपदोंमें व्याप्त समस्त सम्पदाओंसे भरा हुआ, विभिन्न पुण्योंसे प्रख्यात अनेकानेक वृक्षोंसे आच्छादित विदिशा नामका एक नगर है। मैं वहाँपर निरन्तर देवपूजामें अनुरक्त रहकर निवास करता था। उस जन्ममें मेरी जाति वैश्यकी थी और नाम मेरा सुदेव था। मैं उस जन्ममें हव्यसे देवताओंको, कव्यसे पितरोंको तथा नाना प्रकारके दानसे ब्राह्मणोंको सदैव संतृप्त किया करता था। मेरे द्वारा दीन-हीन, अनाथ और विशिष्ट जनोंकी अनेक प्रकारसे सहायता की गयी थी, किंतु दुर्भाग्यवश वह सब कुछ मेरा निष्फल हो गया। मेरे वे पुण्य जिस प्रकारसे विफल हुए, मैं आपको वह सुनाता हूँ।

हे तात! पूर्वजन्ममें न मेरे कोई संतान हुई, न कोई ऐसा बन्धु-बान्धव या मित्र ही रहा जो मेरी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करता। हे नृपोत्तम! उसीके कारण मुझे यह प्रेतयोनि प्राप्त हुई है। हे राजन्! एकादशाह, त्रिपक्ष, षाण्मासिक, सांवत्सरिक, प्रतिमासिक और इसी प्रकारके अन्य जो षोडश श्राद्ध हैं, वे जिस प्रेतके लिये सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, उस प्रेतकी प्रेतयोनि बादमें स्थिरताको प्राप्त कर लेती है, भले ही बादमें क्यों न उसके लिये सैकड़ों श्राद्ध किये जायँ। हे महाराज! ऐसा जानकर आप मेरा इस प्रेतयोनिसे उद्धार करें। राजाको सभी वर्णोंका बन्धु कहा जाता है। मैं आपको एक मणिरत्न दे रहा हूँ। हे राजेन्द्र! इस नरकसे मुझे उबार लें। हे नृपश्रेष्ठ! हे महाबाहो! यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है तो जिस प्रकारसे मुझे शुभ गति प्राप्त हो मेरे लिये वही उपाय करें और आप अपना भी समस्त प्रकारसे और्ध्वदैहिक कार्य करें।

राजाने कहा—हे प्रेत! और्ध्वदैहिक कर्म करनेपर भी प्राणी कैसे प्रेत हो जाते हैं? किन कर्मोंको करनेसे उन्हें पिशाच होना पड़ता है? तुम उसे भी बताओ।

प्रेतने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! जो लोग देवद्रव्य, ब्राह्मण-द्रव्य और स्त्री एवं बालकोंके संचित धनका अपहरण करते हैं, वे प्रेतयोनि प्राप्त करते हैं। जिनके द्वारा तपस्विनी, सगोत्रा एवं अगम्या स्त्रीका भोग किया जाता है, जो कमलपुष्पोंकी चोरी करते हैं, वे महाप्रेत होते हैं। हे राजन्! जो हीरा-मूँगा-सोना और वस्त्रके अपहर्ता हैं, जो युद्धमें पीठ दिखाते हैं, जो कृतघ्न, नास्तिक, क्रूर तथा दुःसाहसी हैं, जो पञ्चयज्ञ नहीं करते, किंतु बहुत बड़े-बड़े दान देनेमें अनुरक्त रहते हैं, जो अपने स्वामीसे वैर करते हैं, जो मित्र और ब्राह्मणद्रोही हैं, जो तीर्थमें जाकर पापकर्म करते हैं, वे प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं। हे महाराज! इस प्रकार इन सभी प्राणियोंका जन्म प्रेतयोनिमें होता है।

राजाने कहा—हे प्रेतराज! इस प्रेतत्वसे तुम्हें और तुम्हारे साथियोंको कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? मैं किस प्रकारसे अपना और्ध्वदैहिक कर्म कर सकता हूँ? वह कार्य किस विधानसे सम्भव है? यह सब कुछ मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे राजेन्द्र! संक्षेपमें नारायणबलिकी विधि सुनें। मैंने सुना है कि सद्ग्रन्थोंका श्रवण, विष्णुका पूजन तथा सज्जनोंका साथ प्रेतयोनिको विनष्ट करनेमें समर्थ

होता है। अतः मैं आपको प्रेतत्वभावको नष्ट करनेवाली विष्णुपूजाका विधान बताऊँगा।

हे राजन्! दो सुवर्ण[1] ले करके उससे भगवान् नारायणकी सभी आभूषणोंसे विभूषित प्रतिमाका निर्माण करवाना चाहिये। मूर्तिको दो पीले वस्त्रोंसे आच्छादित करके चन्दन तथा अगुरुसे सुवासित करे। तदनन्तर नाना तीर्थोंसे लाये गये पवित्र जलके द्वारा सविधि स्नान कराकर तथा अधिवासितकर पूर्वमें भगवान् श्रीधर, दक्षिणमें भगवान् मधुसूदन, पश्चिममें भगवान् वामन, उत्तरमें भगवान् गदाधर, मध्यभागमें पितामह ब्रह्मा और भगवान् महेश्वरकी विधिवत् पूजा गन्ध-पुष्पादिसे पृथक्-पृथक् रूपमें की जाय। तत्पश्चात् उस देवमण्डलकी प्रदक्षिणा करके अग्निमें देवताओंकी संतुष्टिके लिये आहुति दे। घृत, दही और दूधसे विश्वेदेवोंको संतृप्त करे। उसके बाद यजमान फिरसे स्नान करके विनम्रतापूर्वक एकाग्रचित्तसे भगवान् नारायणके सामने विधिवत् अपनी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करे। विनीतभावसे क्रोध एवं लोभरहित होकर कार्य आरम्भ करना चाहिये। इस अवसरपर सभी श्राद्ध और वृषोत्सर्ग करने चाहिये। तेरह ब्राह्मणोंको वस्त्र, छत्र, जूता, मुक्तामणिजटित अँगूठी, पात्र, आसन और भोजन देकर संतुष्ट करे। उसके बाद प्रेतकल्याणके लिये अन्न और जलपूर्ण कुम्भका दान देना चाहिये। शय्यादान करके घटदान भी प्रेतके उद्देश्यसे करे। तदनन्तर 'नारायण' नाम ही सत्य है— ऐसा कहकर सम्पुटमें स्थित भगवान् नारायणकी पूजा करे। ऐसा विधिवत् करनेपर निश्चित ही प्राणीको शुभ फल प्राप्त होता है।

राजाने कहा—हे प्रेत! प्रेतघट कैसा होना चाहिये, उसको प्रदान करनेका क्या विधान है? सभी प्राणियोंपर कृपा करनेके लिये तुम प्रेतके लिये मुक्तिदायक घटके विषयमें मुझे बताओ।

प्रेतने कहा—हे महाराज! आपने बड़ा अच्छा प्रश्न किया है। जिस दानसे प्रेतत्व प्राप्त नहीं होता, उसे मैं कहता हूँ, सुनें।

प्रेतघट नामका दान समस्त अमङ्गलोंका विनाशक है। दुर्गतिको क्षय करनेवाला यह प्रेतघटका दान सभी लोकोंमें दुर्लभ है। संतप्त स्वर्णमय घट बनवाकर उसे घृत और दूधसे परिपूर्ण करके लोकपालोंसहित ब्रह्मा, शिव और केशवको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर ब्राह्मणको दानमें दे। अन्य सैकड़ों दान देनेसे क्या लाभ? इसके मध्यभागमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा पूर्वादिक सभी दिशाओंमें और कण्ठभागमें यथाक्रम लोकपालोंकी विधिवत् पुष्प, धूप एवं चन्दनादिसे पूजा करके उसे दूध और घीसे पूर्ण स्वर्णमय घट दानमें देना चाहिये। यह सभी दानोंसे बढ़कर दान है। इस दानसे सभी महापातकोंका विनाश हो जाता है। प्रेतत्वकी निवृत्तिके लिये श्रद्धापूर्वक यह दान अवश्य करना चाहिये।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे वैनतेय! उस प्रेतके साथ इस प्रकारका वार्तालाप राजाका चल ही रहा था कि उसी समय उनके पदचिह्नोंका अनुगमन करती हुई हाथी, घोड़े तथा रथसे परिव्याप्त उनकी सेना वहाँ आ पहुँची। सेनाके वहाँ आ जानेपर प्रेतने राजाको एक महामणि देकर प्रणाम किया और अपने प्रेतत्व-विमुक्तिकी प्रार्थना करके अदृश्य हो गया। उस वनसे निकलकर राजा भी अपने नगरको चला गया। हे पक्षिन्! नगरमें पहुँचकर राजाने उस प्रेतके द्वारा कही गयी सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रियाको विधि-विधानसे सम्पन्न किया। उसके पुण्यसे वह प्रेत बन्धन-विमुक्त होकर स्वर्ग चला गया।

हे गरुड! पुत्रके द्वारा दिये गये श्राद्धसे पिताको सद्गति प्राप्त होती है, इसमें आश्चर्य क्या है? जो मनुष्य इस पुण्यदायक इतिहासको सुनता है और जो सुनाता है, वह पापाचारसे युक्त होनेपर भी प्रेतत्व-योनिको प्राप्त नहीं होता है।

(अध्याय २६-२७)

प्रेतत्वमुक्तिके उपाय

गरुडजीने कहा—हे मधुसूदन! जिस दान या सत्कर्मसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है, उसे बतानेकी कृपा करें, इसके ज्ञानसे लोगोंका बड़ा कल्याण होगा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! सुनो! मैं तुम्हें समस्त अमङ्गलोंको विनष्ट करनेवाले दानको बता रहा हूँ। शुद्ध स्वर्णका घट बनाकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा लोकपालोंसहित

[1] सुवर्णमाष।

उसकी पूजाकर दुग्ध और घृतसे परिपूर्ण उस घटको सुपात्र ब्राह्मणको दानमें देनेसे प्रेतत्वसे मुक्ति मिल जाती है।

हे गरुड! पुत्रहीन व्यक्तिकी सद्‌गति नहीं होती, अतः यथाविधान पुत्र उत्पन्न करना चाहिये। मृत व्यक्तिको गोबरसे लीपी गयी मण्डलाकार भूमिमें स्थापित करना चाहिये। भूमि गोबरसे लीपनेपर पवित्र हो जाती है तथा मण्डलका निर्माण करनेसे उस स्थानपर देवताओंका वास हो जाता है। ऐसे ही मृत व्यक्तिके नीचे तिल और कुश बिछानेसे जीवको उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है, साथ ही मृत व्यक्तिके मुँहमें पञ्चरत्न डालनेसे जीवको शुभ गति मिलती है।

हे तार्क्ष्य! तिल मेरे पसीनेसे उत्पन्न हैं, इसलिये वे सदा पवित्र हैं—'**मम स्वेदसमुद्भूतास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रकाः।**' (२९। १५)। इसी प्रकार कुशकी उत्पत्ति मेरे रोमसे हुई है '**दर्भा मल्लोमसम्भूताः** (२९। १७)। कुशयुक्त भूमि अपने ऊपर विद्यमान मृत जीवको निःसंदेह स्वर्ग पहुँचा देती है। कुशमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—ये तीनों देव प्रतिष्ठित रहते हैं—'**त्रयो देवाः कुशे स्थिताः।**' हे पक्षिराज! ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि तथा तुलसी—ये बार-बार प्रयोगमें लाये जानेपर भी पर्युषित (बासी) नहीं होते—

विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर।
नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः॥
(२९। २१)

इसी तरह विष्णु, एकादशीव्रत, भगवद्‌गीता, तुलसी, ब्राह्मण तथा गौ—ये छः इस संसारसागरसे मुक्ति दिलानेवाले हैं;—

विष्णुरेकादशीगीतातुलसीविप्रधेनवः।
अपारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी॥
(२९। २४)

इसीलिये हे गरुड! तिल, कुश और तुलसी—ये आतुर व्यक्तिकी दुर्गतिको रोककर उसे सद्‌गति दिलाते हैं। आतुर-कालमें दानकी भी विशेष महिमा है। भगवान् विष्णुकी देहसे लवणका प्रादुर्भाव हुआ है अतः आतुर-कालमें लवण-दान करनेसे भी जीवकी दुर्गति नहीं होती।[1] (अध्याय २८-२९)

दानधर्मकी महिमा, आतुरकालके दानका वैशिष्ट्य, वैतरणी गोदानकी महिमा

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! देवताओंके लिये परम गोपनीय दानोंमें उत्तम और सभी दानोंमें श्रेष्ठ दानको सुनो—

हे गरुड! रुईका दान सभी दानोंमें उत्तम तथा महान् है। उसका दान मनुष्यको अवश्य करना चाहिये, उसके दानसे भूः, भुवः, स्वः अर्थात् पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग—ये तीनों लोक प्रसन्न हो उठते हैं। इस कार्यसे ब्रह्मा आदि सभी देवोंको प्रसन्नता होती है। प्रेतका उद्धार करनेके लिये इस महादानको करना चाहिये। ऐसे महादानका दाता चिरकालतक रुद्रलोकमें रहता है, तदनन्तर इस लोकमें जन्म लेकर रूपसम्पन्न, सौभाग्यशाली, वाक्चतुर, लक्ष्मीवान् और अप्रतिहत-पराक्रमी राजा होता है। अपने सुकृतोंसे यमलोकको जीतकर वह स्वर्गलोकमें जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको गौ, तिल, भूमि तथा स्वर्णका दान देता है, उसके जन्म-जन्मार्जित सभी पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं। तिल और गौका दान महादान है, इसमें महापापोंको नाश करनेकी शक्ति होती है। ये दोनों दान केवल विप्रको देने चाहिये, अन्य वर्णोंको नहीं। दानके रूपमें संकल्पित तिल, गौ तथा पृथ्वी आदि द्रव्य, अपने पोष्य-वर्ग एवं ब्राह्मणेतर वर्णको न दे। पोष्यवर्ग और स्त्री-जातिको असंकल्पित वस्तु दानमें देनी चाहिये। रुग्णावस्थामें अथवा सूर्य एवं चन्द्रग्रहणके अवसरपर दिये गये दान विशेष महत्त्व रखते हैं। रोगीके लिये जो दान दिया जाता है, वह उसके लिये तत्काल यथोचित फल देनेवाला होता है। यदि रोगी दान देनेके बाद रोगमुक्त होकर पुनः जीवन प्राप्त कर लेता है तो उसके निमित्त दिया गया दान निश्चित ही उसे प्राप्त होता है। विकलेन्द्रियकी **विकलाङ्गताको** नष्ट करनेके लिये जो दान दिया जाता है वह दान भी अवश्य ही यथायोग्य फलदायक होता है। जिस दानका पुत्र

१-२८वें तथा २९वें अध्यायका विषय प्रथम तथा द्वितीय अध्यायमें पूर्णरूपसे आ गया है, इसलिये इसे यहाँ संक्षिप्तरूपमें दिया गया है। पूर्ण विवरण प्रथम तथा द्वितीय अध्यायमें देखना चाहिये।

अनुमोदन करता है, उस दानका फल अनन्त होता है। अतः उसके सगे-सम्बन्धी अथवा पुत्रको तबतक दान देना चाहिये, जबतक उसका आतुर सम्बन्धी या पिता जीवित हो; क्योंकि अतिवाहिक प्रेत उसका भोग करता है।

अस्वस्थ-अवस्थामें—आतुरकालमें देहपात हो जानेपर पृथ्वीपर पड़े रहनेकी स्थितिमें दिया गया दान अतिवाहिक शरीरके लिये प्रीतिकारक होता है। लँगड़े, अंधे, काने और अर्धनिमीलित नेत्रवाले रोगीके लिये तिलके ऊपर कुश बिछाकर उसके ऊपर आतुरको लिटाकर दिया गया दान उत्तम और अक्षय होता है।

तिल, लौह, स्वर्ण, रुई, नमक, सप्तधान्य, भूमि तथा गौ—ये एकसे बढ़कर एक पवित्र माने गये हैं। लौह-दानसे यमराज और तिल-दानसे धर्मराज संतुष्ट होते हैं। नमकका दान करनेपर प्राणीको यमराजसे भय नहीं रह जाता। रुईका दान देनेपर भूतयोनिसे भय नहीं रहता। दानमें दी गयी गायें मनुष्यको त्रिविध पापोंसे निर्मुक्त करती हैं। स्वर्ण-दानसे दाताको स्वर्गका सुख प्राप्त होता है। भूमि-दानसे दाता राजा होता है। स्वर्ण और भूमि—इन दोनोंका दान देनेसे प्राणीको नरकमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं होती। यमलोकमें जितने भी यमराजके दूत हैं, वे सभी उसी यमके समान ही महाभयंकर हैं। सप्तधान्यका दान देनेसे वे प्रसन्न होकर दानदाताओंके लिये वरदाता बन जाते हैं।

हे गरुड! भगवान् विष्णुका स्मरणमात्र करनेसे प्राणीको परम गति प्राप्त होती है। मनुष्य जो गति प्राप्त करता है, वह सब मैंने तुम्हें बता दिया। पिताकी आज्ञासे जो पुत्र दान देता है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं। भूमिपर सुलाये गये मरणासन्न पिताके उद्देश्यसे जो पुत्र सभी प्रकारका दान देता है, वह पुत्र कुलनन्दन है। उसके द्वारा दिया गया दान गया-तीर्थमें किये गये श्राद्धसे भी बढ़कर है। वह पुत्र अपने कुलको आनन्दित करनेवाला होता है। जिस समय अपने लोकको छोड़कर बेचैन पिताकी परलोक-यात्राका काल समीप हो, उस समय पुत्रोंको प्रयत्नपूर्वक दान देना चाहिये; क्योंकि वे ही दान पिताको पार करते हैं। पुत्रको पिताकी अन्त्येष्टि-क्रिया अवश्य सम्पन्न करनी चाहिये। इतना करनेमात्रसे अन्य सभी बहुविध दानोंका फल प्राप्त हो जाता है; क्योंकि अश्वमेध-जैसा महायज्ञ भी इस पुण्यके सोलहवें अंशकी क्षमता नहीं रखता। पृथ्वीपर पड़े हुए आतुर पितासे जो धर्मात्मा पुत्र दान दिलाता है, उसकी पूजा देवता भी करते हैं।

लौहका दान करनेवाला दाता महाभयानक आकृतिवाले यमराजके निकट न तो जाता है और न तो नारकीय लोकको ही प्राप्त करता है। पापियोंको भयभीत करनेके लिये यमराजके हाथोंमें कुठार, मूसल, दण्ड, खड्ग और छुरिका रहती है; इसलिये प्राणीको चाहिये कि वह ब्राह्मणको लौह-दान दे। यह दान यमराजके आयुधोंकी संतुष्टिके लिये कहा गया है। गर्भस्थ प्राणी, शिशु, युवा और वृद्ध—ये जो भी हैं, इन दानोंसे अपने समस्त पापोंको जला देते हैं। श्याम एवं शबल वर्णके षण्ड तथा मर्क और गूलरके सदृश मांसल, हाथमें छूरी धारण करनेवाले, काले-चितकबरे यमके दूत लौह-दानसे प्रसन्न होते हैं। यदि पुत्र-पौत्र, बन्धु-बान्धव, सगोत्री और मित्र अपने रोगीके लिये दान नहीं देते तो वे ब्रह्महन्ताके समान ही पापी हैं।

हे पक्षीन्द्र! भूमिपर स्थित प्राणीकी मृत्यु हो जानेपर उसकी क्या गति होती है, इसे सुनो! अतिवाहिक शरीरवाला प्रेत वर्ष समाप्त होनेके पश्चात् पुनः पुण्यका लाभ प्राप्त करता है। इस संसारमें तीन अग्नि, तीन लोक, तीन वेद, तीन देवता, तीन काल, तीन संधियाँ, तीन वर्ण तथा तीन शक्तियाँ मानी गयी हैं। मनुष्यके शरीरमें पैरसे ऊपर कटिप्रान्ततक ब्रह्मा निवास करते हैं। नाभिसे लेकर ग्रीवा-भागतक हरिका वास रहता है और उसके ऊपर मुखसे लेकर मस्तकतक व्यक्त तथा अव्यक्त-स्वरूपवाले महादेव शिवका निवास है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इनका शरीरमें तीन भागोंमें अवस्थान है।

मैं ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्जके शरीरोंमें प्राणरूपसे स्थित रहता हूँ। धर्म-अधर्म, सुख-दुःख तथा कृत-अकृतमें बुद्धिको मैं ही प्रेरित करता हूँ। मैं ही स्वयं प्राणीकी बुद्धिमें बैठकर पूर्व-कर्मके अनुसार उसको फल प्रदान करता हूँ। प्राणियोंको मैं ही कर्ममें प्रेरित करता हूँ। उसीके अनुसार प्राणी निश्चित ही स्वर्ग, नरक और मोक्ष प्राप्त करता है। स्वर्ग अथवा नरकमें गये हुए प्राणीकी तृप्ति श्राद्धके द्वारा होती है, इसलिये विद्वान् व्यक्तिको तीनों प्रकारका श्राद्ध करना चाहिये। मत्स्य, कूर्म, वराह, नारसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि—ये दस नाम सदैव मनीषियोंके लिये स्मरण करने योग्य हैं। इनका स्मरण करनेसे स्वर्गमें गये हुए प्राणी सुखका भोग करते

हैं और स्वर्गसे पुनः इस लोकमें आनेपर सुख और धन-धान्यसे पूर्ण होकर दया-दाक्षिण्य आदि सद्गुणोंसे भरे रहते हैं, वे पुत्र-पौत्रसे युक्त और धनाढ्य होकर सौ वर्षतक जीते हैं। रोगग्रस्त होनेपर मनुष्यके लिये दान देना चाहिये और भगवान् विष्णुकी पूजा करनी या करानी चाहिये। उस समय उसे अष्टाक्षर अथवा द्वादशाक्षर-महामन्त्रका जप करना चाहिये।

श्वेत पुष्पसे, घीमें पकाये गये नैवेद्यसे, गन्ध-धूपसे भगवान् विष्णुकी पूजा करनी चाहिये तथा श्रुतियों और स्मृतियोंमें अभिवर्णित स्तुतियोंसे भगवान् विष्णुकी स्तुति इस प्रकार करनी चाहिये—'विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं, विष्णु ही अपने स्वजन और बान्धव हैं। जहाँपर मैं विष्णुको नहीं देखता हूँ, वहाँ निवास करनेसे मुझे क्या लाभ? विष्णु जलमें हैं, विष्णु स्थलमें हैं, विष्णु पर्वतकी चोटीपर हैं और विष्णु चारों ओरसे मालारूपमें घिरी हुई ज्वालामालासे व्याप्त स्थानमें अवस्थित हैं। यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय है'—

विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवाः।
यत्र विष्णुं न पश्यामि तत्र वासेन किं मम॥
जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥

(३०।४१-४२)

ब्राह्मण, जल, पृथ्वी आदि जितने भी पदार्थ हैं, उन्हें अपना ही स्वरूप समझना चाहिये। इसलिये हे खगेश! किसी भी स्थानपर मनुष्य पूर्वजन्मार्जित पाप-पुण्यके अनुसार जिस कर्मको करता है, उसका फलदाता मैं ही हूँ। मैं ही प्राणीकी बुद्धिको धर्ममें नियुक्त करता हूँ और मुक्ति मैं ही देता हूँ।

हे तार्क्ष्य! अन्त-समय आनेपर मनुष्योंका हित करनेवाली वैतरणी नदी मानी गयी है। उसीके जलसे अपने पाप-समूहको धोकर प्राणी विष्णुलोकको जाता है। बाल्यावस्थाका जो पाप है, कुमारावस्थामें जो पाप हुआ है, यौवनावस्थाका जो पाप है और जन्म-जन्मान्तरमें समस्त अवस्थाओंके बीच भी जो पाप किया गया है, रात्रि-प्रातः, मध्याह्न-अपराह्न तथा दोनों संध्याओंके मध्य मन, वाणी और कर्मसे जो पाप हुआ है, उन सभी पापोंके समूहसे प्राणी अपना उद्धार अन्तिम क्षणमें सर्वकामनाओंको सिद्ध करनेवाली एक भी श्रेष्ठतमा कपिला गौका दान दे करके कर सकता है। [गोदान करते समय परमात्मासे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—परमात्मन्!] 'गायें ही मेरे आगे रहें, गायें ही मेरे पीछे और पार्श्वभागमें रहें, गायें ही मेरे हृदयमें निवास करें, मैं गायोंके बीचमें ही रहूँ। जो सभी प्राणियोंकी लक्ष्मीस्वरूपा हैं, जो देवताओंमें प्रतिष्ठित हैं, वे गौरूपिणी देवी मेरे सभी पापोंको विनष्ट करें—

गावो ममाग्रतः सन्तु पृष्ठतः पार्श्वतस्तथा।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥

(३०।५२-५३)

(अध्याय ३०)

और्ध्वदैहिक क्रियामें विहित पद आदि विविध दानोंका फल तथा जीवको प्राप्त देहके स्वरूपका वर्णन

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! जो मनुष्य पापाचारमें लगे हुए हैं, वे यमलोकको जाते हैं। यदि मुझको साक्षी बनाकर मनुष्यके द्वारा दान दिया जाता है, तो वह अनन्त फलदायी होता है। भूमिदान देनेवाला प्राणी दानमें दी गयी भूमिके रजकणोंकी जितनी संख्या होती है, उतने वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। जो जूतेका दान देते हैं, घोर यममार्गमें वे घोड़ेपर सवार होकर चलते हैं। छत्रदान करनेसे प्रेत यमलोकमें कहींपर भी धूपसे नहीं जलते, वे सुखपूर्वक अपने पथमें चलते चले जाते हैं। जिसके उद्देश्यसे मनुष्य जो अन्न-दान देता है, उससे वह संतृप्त हो जाता है। यमलोकके महापथमें एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ घनघोर अन्धकार है, वहाँ कुछ भी दिखायी नहीं देता, किंतु दीपदान देनेसे मनुष्य उस मार्गमें प्रकाशसे युक्त प्राणीके समान जाते हैं। आश्विन, कार्तिक तथा माघमास, मृत-तिथि और चतुर्दशी तिथिमें दिया गया दान सुखकारक होता है। जबतक वर्ष न पूरा हो जाय, तबतक प्रतिदिन प्रेतको ऊबड़-खाबड़ मार्गमें सुखपूर्वक गमन करानेकी इच्छासे लोगोंको दीपदान करना चाहिये। जो मनुष्य दीपदान करता

है, वह स्वयं प्रकाशमय होकर संसारका पूज्य हो जाता है। वह शुद्धात्मा अपने कुलमें द्योतित होता है और प्रकाशस्वरूपको प्राप्त करता है।

हे खगेश! देवालयमें पूर्वाभिमुख, ब्राह्मणके लिये उत्तराभिमुख तथा प्रेतके निमित्त दक्षिणाभिमुख होकर सुस्थिर दीपकका दान जलसे संकल्पपूर्वक करना चाहिये। इस संसारमें जो सभी प्रकारके उपहारोंसे युक्त तेरह पददान मृत व्यक्तिके लिये तथा जीवित दशामें अपने लिये करता है, वह महान् कष्टोंसे मुक्त होकर महापथकी यात्रा करता है। आसन, पात्र और भोजन जो ब्राह्मणको देता है, वह उसीके पुण्यसे सुखपूर्वक खाता-पीता हुआ महापथको पार करता है। कमण्डलुका दान देनेसे प्यासा प्रेत जल प्राप्त करता है। प्रेतका उद्धार करनेके लिये एकादशाहको पात्र, वस्त्र, पुष्प तथा अँगूठीका दान देना चाहिये। इसी प्रकार प्रेतका शुभेच्छु बनकर जो पुत्र यथाशक्ति तेरह पदोंका दान करता है, उससे प्रेतको प्रसन्नता प्राप्त होती है। भोजन, तिल, जलपूर्ण तेरह घट, अँगूठी तथा उत्तरीय एवं अधोवस्त्रका जो दान देता है, उस दानके पुण्यसे प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है।

जो अश्व, नौका अथवा हाथीका दान ब्राह्मणको देता है वह उसी देय वस्तुकी महिमाके अनुसार उन-उन सुखोंको प्राप्त करता है। जो मनुष्य भैंसका दान देता है, वह नाना प्रकारके लोकोंमें विचरण करता है। यमदूतोंके हर्षवर्धनके लिये ताम्बूल और पुष्पका दान देना चाहिये, इससे संतुष्ट होकर वे दूत उस प्रेतको कष्ट नहीं देते।

प्राणीको यथाशक्ति गौ, भूमि, तिल तथा स्वर्णका दान अवश्य करना चाहिये, ऐसा मनीषियोंने कहा है। जो व्यक्ति मृत प्राणीके लिये जलसे परिपूर्ण मिट्टीका पात्र दान करता है, उसे हजार जलपूर्ण पात्रके दानका फल प्राप्त होता है। यमराजके दूत महाक्रोधी, महाभयंकर आकृतिवाले, काले तथा पीले वर्णके हैं; वे वस्त्र-दान किये जानेपर मृत प्राणीको यमलोकमें कष्ट नहीं देते। तृषा और श्रमसे पीड़ित होकर महापथमें आगे बढ़ता हुआ प्रेत अन्न और जलसे पूर्ण घटका दान देनेसे निश्चित ही सुखी हो जाता है। दक्षिणा, अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र तथा विष्णुकी स्वर्ण-प्रतिमासे युक्त शय्याका दान भी ब्राह्मणको देना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रेतयोनिका परित्यागकर प्राणी स्वर्गमें देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक निवास करता है।

हे तार्क्ष्य! यह अन्त्येष्टि-कर्ममें होनेवाला दान मैंने तुमसे कहा। मृत प्राणी अन्य शरीरमें कैसे प्रवेश करता है, अब मैं उसको कहूँगा।

'हे परंतप! मृत्युलोकमें जन्म लेनेवाले प्राणीकी मृत्यु निश्चित है, इसलिये अपने-अपने धर्मके अनुसार मृत व्यक्तिका श्राद्धादिक कृत्य करना चाहिये। हे खगेश्वर! मरे हुए प्राणियोंके मुखमण्डलसे पहले जीवात्मा वायुका सूक्ष्म रूप धारण करके निकल जाता है। लोगोंके नेत्र आदि नौ द्वार, रोम तथा तालुरन्ध्रसे भी जीवात्मा बाहर हो जाता है; किंतु जो पापी हैं उनका जीवात्मा अपान-मार्गसे शरीर छोड़ता है'—

जातस्य मृत्युलोके वै प्राणिनो मरणं ध्रुवम्।
मृतिः कुर्यात् स्वधर्मेण यास्यतश्च परंतप॥
पूर्वकाले मृतानां च प्राणिनां च खगेश्वर।
सूक्ष्मो भूत्वा त्वसौ वायुर्निर्गच्छत्यास्यमण्डलात्॥
नवद्वारै रोमभिश्च जनानां तालुरन्ध्रके।
पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम्॥
(३१। २५—२७)

प्राणवायुके निकल जानेपर शरीर पृथ्वीपर वैसे ही गिर पड़ता है, जैसे वायुके थपेड़ोंसे आहत होकर निराधार वृक्ष भूमिपर गिर पड़ता है। मृत्युके बाद शरीरमें स्थित पृथ्वीतत्त्व पृथ्वीमें, जलतत्त्व जलमें, तेजस्तत्त्व तेजमें, वायुतत्त्व वायुमें, आकाशतत्त्व आकाशमें तथा सर्वव्यापी आत्मतत्त्व शिवमें लीन हो जाता है।

हे तार्क्ष्य! काम-क्रोध तथा पञ्चेन्द्रियोंका समूह शरीरमें चोरके समान स्थित कहा गया है। देहमें काम-क्रोध तथा अहंकारसहित मन भी रहता है, वही सबका नायक है। पुण्य-पापसे संयुक्त होकर काल उसका संहारक बन जाता है। संसारमें भोगके लिये योग्य शरीरका निर्माण अपने कर्मके अनुसार होता है। मनुष्य अपने सत्कर्म और दुष्कर्मसे दूसरे शरीरमें प्रविष्ट होता है। जिस प्रकार पुराने घरके जल जानेपर गृही नये घरमें जाकर शरण लेता है, उसी प्रकार यह जीव भी विषयोंके साथ पञ्चेन्द्रियोंसे युक्त नौ द्वारवाले एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरमें आश्रय ग्रहण करता है। शरीरमें विद्यमान धातुएँ माता-पितासे ही प्राप्त हैं, इन्हींसे निर्मित यह शरीर

षाट्कौशिक[1] कहलाता है। हे गरुड! शरीरमें सभी प्रकारके वायु रहते हैं, मूत्र-पुरीष तथा उन्हींके योगसे उत्पन्न अन्यान्य व्याधियाँ रहती हैं। अस्थि, शुक्र तथा स्नायु शरीरके साथ ही जल जाते हैं।

हे पक्षिन्! सभी प्राणियोंके शरीरका विनाशक्रम यही है, इसे मैंने कह दिया। प्राणियोंका शरीर कैसा होता है, उसको अब मैं फिरसे कह रहा हूँ।

हे गरुड! पुरुषका शरीर छोटी-बड़ी नसोंसे बँधा हुआ एक स्तम्भ है, जिसको नीचेसे पैररूपी दो अन्य स्तम्भ धारण किये हैं। पञ्चेन्द्रियोंसहित उसमें नौ द्वार हैं। सांसारिक विषयोंसे युक्त एवं काम-क्रोधसे बेचैन जीव इसी शरीरमें रहता है। राग-द्वेषसे व्याप्त यह शरीर तृष्णाका दुस्तर दुर्ग है। नाना प्रकारके लोभोंसे भरे हुए जीवका यह शरीर पुर है। यही स्थिति सभी शरीरोंकी है। इसी शरीरमें सभी देवता और चौदहों लोक स्थित हैं। जो लोग अपनेको नहीं पहचानते, वे पशुके समान माने गये हैं।

हे पक्षिराज! इस प्रकार ऊपर बतायी गयी प्रक्रियासे निर्मित शरीरका वर्णन मैंने किया। सृष्टिमें चौरासी लाख योनियाँ बतायी गयी हैं, जो उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—इन चार मुख्य भागोंमें विभक्त हैं। (अध्याय ३१)

शुक्र-शोणितके संयोगसे जीवका प्रादुर्भाव, गर्भमें जीवका स्वरूप तथा उसकी वृद्धिका क्रम, शरीरके निर्माणमें पञ्चतत्त्वादिका अवदान, षाट्कौशिक शरीर, गर्भसे जीवके बाहर निकलनेपर विष्णुमायाद्वारा मोहित होना, आतुर व्यक्तिके लिये क्रियमाण कर्म तथा उनका फल, पिण्ड और ब्रह्माण्डकी समान स्थिति

तार्क्ष्यने कहा—हे प्रभो! उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, तथा जरायुज—ये चार प्रकारके प्राणी किस प्रकार उत्पन्न होते हैं? त्वचा, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा और अस्थिमें जीव कैसे आता है? दो पैर, दो हाथ, गुह्यभाग, जिह्वा, केश, नख, सिर, संधिमार्ग तथा नाना प्रकारकी बहुत-सी रेखाओंकी उत्पत्ति कैसे होती है? काम, क्रोध, भय, लज्जा, हर्ष, सुख और दुःखका भाव मनमें कैसे आता है? इस शरीरका चित्रण, छिद्रण और विभिन्न प्रकारकी नसोंसे वेष्टन कैसे हुआ है? हे हृषीकेश! इस असार भवसागरमें शारीरिक रचनाको मैं इन्द्रजाल ही मानता हूँ। हे स्वामिन्! नाना दुःखोंसे भरे हुए इस असार सागररूप संसारका कर्ता कौन है?

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! कोशके निर्माणकी परम गोपनीय प्रक्रियाको मैं कहता हूँ, इसके जाननेमात्रसे व्यक्ति सर्वज्ञ हो जाता है। हे वैनतेय! संसारके प्रति दया करते हुए तुमने जीवके कारण-तत्त्वपर अच्छा प्रश्न किया है। एकाग्रचित्त होकर तुम उसे सुनो।

स्त्रियाँ ऋतुकालमें चार दिन त्याज्य होती हैं, क्योंकि प्राचीन कालमें ब्रह्माने वृत्रासुरके मारे जानेपर लगी हुई ब्रह्महत्याको इन्द्रके शरीरसे निकालकर एक चौथाई भाग स्त्रियोंको दे दिया था, उसीके कारण स्त्रियाँ ऋतुकालके आरम्भमें चार दिन अपवित्र मानी जाती हैं और उस समयतक इनका मुख नहीं देखना चाहिये, जबतक वह पाप उनके शरीरमें विद्यमान रहता है। स्त्रीको ऋतुकालके पहले दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन रजकी मानना चाहिये। चौथे दिन वह शुद्ध होती है। एक सप्ताहमें वह देवता और पितरोंके पूजनयोग्य हो जाती है। प्रथम सप्ताहके बीच जो गर्भ स्त्रीमें रुक जाता है, उसकी उत्पत्ति मलिम्लुच्से माननी चाहिये। वीर्यस्थापनके समय माता-पिताके चित्तमें जैसी कल्पना होगी, वैसे ही गर्भका जन्म होगा, इसमें संदेह नहीं है।

युग्म तिथिवाली रात्रियोंमें सहवास करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रियोंमें सहवास करनेसे कन्याका जन्म होता है। अतः ऋतुकालके पहले सप्ताहको छोड़कर दूसरे सप्ताहकी युग्म तिथियोंमें सहवासमें प्रवृत्त होना चाहिये। सामान्यतः स्त्रियोंका ऋतुकाल सोलह रात्रियोंका होता है। यदि चौदहवीं रात्रिमें गर्भाधानकी क्रिया होती है तो उस गर्भसे गुणवान्, भाग्यवान्, धनवान् तथा धर्मनिष्ठ पुत्रका जन्म होता है। हे

१-त्वचा, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा, तथा अस्थि—इन षट् धातुओंसे निर्मित शरीर 'षाट्कौशिक' कहलाता है।

पक्षिराज! वह रात्रि सामान्य लोगोंको प्राप्त होना सम्भव नहीं है। प्राय: स्त्रीमें गर्भोत्पत्ति आठवीं रात्रियोंके मध्यमें ही हो जाती है। ऋतुकालके पाँचवें दिन स्त्रियोंको कटु, क्षार, तीक्ष्ण और उष्ण भोजनका परित्याग करके मधुर भोजन करना चाहिये; क्योंकि उनकी कोख औषधिपात्र है और पुरुषका बीज अमृततुल्य है। उसमें (स्त्रीरूप औषधिपात्रमें) बीज वपन करके मनुष्य सम्यक् फल प्राप्त कर सकता है, इसलिये उसको क्रोधादिकी ज्वालासे बचाकर मधुर भोजन तथा मृदु स्वभावकी शीतलतासे अभिसिंचित करना चाहिये। पुरुषको चाहिये कि वह पहले ताम्बूल और पुष्पोंकी माला तथा चन्दनसे सुवासित होकर स्वच्छ एवं सुन्दर वस्त्र धारण करे। तदनन्तर शुद्ध मनसे स्त्रीकी शय्यापर शयन करनेके लिये जाय। वीर्य-वपनके समय उसके चित्तमें जैसी कल्पना होगी, उसी स्वभाववाली संतान जन्म लेगी। प्रारम्भमें शुक्र और रक्तके संयोगसे जीव पिण्डरूपमें अस्तित्वको प्राप्त करता है और गर्भमें वह उसी प्रकार बढ़ता है, जिस प्रकार आकाशमें चन्द्रमाकी अभिवृद्धि होती है।

शुक्रमें चैतन्य बीजरूपसे स्थित रहता है। जब काम चित्त तथा शुक्र ऐक्यभावको प्राप्त हों, उस समय स्त्रीके गर्भाशयमें जीव एक निश्चित रूप धारण करनेकी पूर्वावस्थामें आता है। रक्ताधिक्य होनेपर कन्या और शुक्राधिक्य होनेपर पुत्र होता है। जब रक्त तथा शुक्र समान होते हैं तो गर्भमें स्थित संतानें नपुंसक होती हैं। शुक्र तथा शोणित पहले दिन और रातमें कलल, पाँचवें दिन बुद्बुद तथा चौदहवें दिन मांस-रूपमें हो जाता है। उसके बाद वह घनीभूत मांस गर्भमें रहता हुआ क्रमश: बीसवें दिनतक पिण्डरूपमें बढ़ता है। तदनन्तर पचीसवें दिन उसमें शक्ति और पुष्टताका संचार होने लगता है। एक मास पूरा होते ही वह पञ्चतत्त्वोंसे युक्त हो जाता है। तत्पश्चात् उस गर्भस्थ जीवके शरीरपर दूसरे मासमें त्वचा और मेदा, तीसरे मासमें मज्जा तथा अस्थि, चौथे मासमें केश एवं अँगुली, पाँचवें मासमें कान, नाक तथा वक्ष:स्थलका निर्माण होता है। उसके बाद छठे मासमें कण्ठ, रन्ध्र और उदर, सातवें मासमें गुह्यादि भाग तथा आठवें मासमें वह सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे पूर्ण हो जाता है। आठवें मासमें ही वह जीव माताके गर्भमें बार-बार चलने लगता है और नवें मासमें उस गर्भस्थ शिशुका ओजगुण परिपक्व हो जाता है। उसके बाद गर्भवासका काल बीतनेपर वह गर्भस्थ शिशु गर्भसे निकलना चाहता है। वह चाहे कन्या हो, चाहे पुत्र, चाहे नपुंसक हो, फिर उसका जन्म होता है।

इस प्रकार जन्म, पुष्टि तथा संहार—इन तीनोंकी शक्तिसे युक्त षट्कोशोंके भीतर विद्यमान पाँच इन्द्रिय, दस नाड़ी, दस प्राण और दस गुणसे समन्वित शरीरको जो जान लेता है, वही योगी है। जीवका पाञ्चभौतिक शरीर मज्जा, अस्थि, शुक्र, मांस, रोम तथा रक्त—इन छ: कोशोंसे निर्मित पिण्ड एक है। नवें या दसवें मासमें इसका पाञ्चभौतिक स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। प्रसवकालीन वायुसे आकृष्ट, तात्कालिक पीड़ासे बेचैन, माताकी सुषुम्णा नाड़ीके द्वारा दी जा रही शक्तिसे पुष्ट वह जीव गर्भसे निकलनेका यथाशीघ्र प्रयास करता है। पृथ्वी, जल, हवि, भोक्ता, वायु तथा आकाश—इन छ: भूतोंसे पीड़ित होता हुआ जीव स्नायु-तन्त्रिकाओंसे आबद्ध रहता है। इन्हींको विद्वानोंने मूलभूत तत्त्व कहा है, ये शरीरमें फैली हुई सात नाड़ियोंके बीचमें रहते हैं। त्वचा, अस्थि, नाड़ी, रोम और मांस—ये पाँच पृथ्वीतत्त्वके कारण-शरीरमें आते हैं।

हे काश्यप! इसी प्रकार लार, मूत्र, शुक्र, मज्जा तथा रक्त—ये पाँच जलतत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। हे तार्क्ष्य! क्षुधा, तृषा, निद्रा, आलस्य एवं कान्ति—ये पाँच तेजस्तत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। ऐसे ही राग, द्वेष, लज्जा, भय और मोह—ये पाँच वायुतत्त्वके कारण-शरीरमें पाये जाते हैं। आकुञ्चन, धावन, लंघन, प्रसारण तथा निरोध—ये भी पाँचों वायुतत्त्वके कारण-शरीरमें ही पाये जाते हैं। हे गरुड! शब्द, चिन्ता, गाम्भीर्य, श्रवण और सत्यसंक्रम (सत्य और असत्यका विवेक)—ये पाँच आकाशतत्त्वके कारण-शरीरमें आते हैं, ऐसा तुम्हें जानना चाहिये।

श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जिह्वा तथा नाक—ये ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, जबकि हाथ, पैर, गुदा, वाणी और गुह्य—ये कर्मेन्द्रियाँ हैं। इडा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, गजजिह्वा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुहू तथा शंखिनी—ये दस नाड़ियाँ मानी गयी हैं। यही प्रधान दस नाड़ियाँ पिण्ड (शरीर)-के मध्य स्थित

रहती है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनञ्जय नामके दस वायु प्राणियोंके शरीरमें विद्यमान रहते हैं। केवल खाया गया अन्न ही देहधारियोंके शरीरको पुष्ट करता है और इस खाये गये अन्नको प्राणवायु ही शरीरमें तथा उसकी सभी संधियोंमें पहुँचाता है। भोजनके रूपमें ग्रहण किया गया आहार वायुके द्वारा दो रूपोंमें विभक्त किया जाता है। इसके अनन्तर यह प्राणवायु ही गुदाभागमें प्रविष्ट होकर अन्न और जलको पृथक्-पृथक् कर देता है तथा यही प्राणवायु अग्निके ऊपर जलको एवं जलके ऊपर अन्नको पहुँचाकर स्वयं अग्निके नीचे रहते हुए अग्निको धीरे-धीरे उद्दीप्त करता है। तत्पश्चात् वायुसे उद्दीप्त किया हुआ अग्नि अन्नके रसभागको अलग और शुष्कभागको अलग कर देता है। यही शुष्कभाग बारह प्रकारके मलोंके रूपमें शरीरसे बाहर आता है। शरीरमें विद्यमान कान, नेत्र, नाक, जिह्वा, दाँत, नाभि, गुदा तथा नख—ये सब मलके आश्रय हैं। ऐसे ही विष्ठा, मूत्र, शुक्र एवं शोणित-रूपसे ये मल अनन्त प्रकारके हैं।

हे विनतासुत! मनुष्यके शरीरमें सामान्यतः साढ़े तीन करोड़ रोम और बत्तीस दाँत होते हैं। सिरमें बालोंकी संख्या सात लाख तथा नख बीस हैं। हे तार्क्ष्य! पुराने लोगोंने सामान्य रूपसे शरीरमें एक हजार पल मांस, सौ पल रक्त, दस पल मेदा, दस पल त्वचा, बारह पल मज्जा, तीन पल महारक्त, दो कुडव (अन्नकी एक माप जो बारह मुट्ठीके बराबर होती है) शुक्र तथा एक कुडव संतानोत्पत्तिके लिये उपयोगी स्त्रीके विद्यमान शोणित (रज)-को माना है। इसी प्रकार मानव-शरीरमें छः प्रकारके कफ, छः प्रकारकी विष्ठा, छः प्रकारके मूत्र और तीन सौ साठसे अधिक अस्थियाँ होती हैं। इस प्रकार पिण्ड (शरीर)-के विषयमें बताया गया। इसे ही शरीरका वैभव कहते हैं। इन सबके अतिरिक्त शरीरमें कुछ नहीं है।

कर्मानुसार ही मनुष्यको सुख-दुःख, भय तथा कल्याण प्राप्त होता है। कर्मका अनुष्ठान शरीरके द्वारा ही सम्भव होनेसे शरीरका महत्त्व है। इस शरीरके द्वारा ही जीव उत्तम-से-उत्तम अथवा अधम-से-अधम गति प्राप्त करता है। इसलिये शरीरकी उत्पत्तिकी प्रक्रिया यहाँ बतायी जा रही है—वायु जीवको गर्भसे बाहर करता है। उस समय उसके दोनों पैर ऊपर और मुख नीचेकी ओर रहता है। ऐसा जीव पहले तो यथाक्रम माँके गर्भमें रहकर ही धीरे-धीरे बढ़ता है। माताके द्वारा ग्रहण किये गये अन्न, फल, दूध, घृत और जलके आहारसे उस जीवके शरीरकी हड्डियाँ पुष्ट होती हैं तथा वह जीवित रहता है। उस जीवके नाभिप्रान्तसे शक्तिवर्धिनी नाड़ी जुड़ी रहती है, जिसको आप्यायनी कहा जाता है। उसका सम्बन्ध स्त्रियोंके आँत-छिद्रसे होता है। उनके द्वारा खाया-पिया गया पदार्थ गर्भमें स्थित प्राणीके पेटमें आप्यायनी नाड़ीके द्वारा पहुँचता है। माँके द्वारा भुक्त पदार्थोंसे पुष्ट देहवाला होकर वह जीव प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होता है। इसी वृद्धिक्रममें संसारकी पूर्वानुभूत अनेक विषयोंकी स्मृतियाँ उसे होती हैं और इन्हीं स्मृतियोंके कारण दुःखित वह प्राणी खिन्न हो जाता है तथा अनेक प्रकारकी पीड़ाका अनुभव कर इधर-उधर गतिमान् होता है एवं 'गर्भसे निकल करके मैं पुनः ऐसा कुछ नहीं करूँगा जिससे मुझे पुनः गर्भकी प्राप्ति हो'—यह सोचकर जीव अपने उन सैकड़ों पूर्वजन्मोंका स्मरण करता है, जिनमें उसको सांसारिक, देवयोनियों और मृत्युलोककी नाना योनियोंके सुख-दुःखका अनुभव प्राप्त हुआ था। उसके बाद समयानुसार वह प्राणी अधोमुख होकर नवें या दसवें मासमें गर्भसे बाहर आता है।

प्राजापत्य वायुके प्रभावसे गर्भ छोड़कर बाहर निकलता हुआ वह जीव दुःखी होता है। उस समय दुःखसे पीड़ित वह प्राणी विलाप करता हुआ बाहर निकलता है। उदरसे बाहर होते हुए उस जीवको असह्य कष्ट देनेवाली मूर्च्छा आ जाती है, किंतु कुछ ही क्षणमें वह जीव पुनः चेतनामें आ जाता है। वायुके स्पर्शसे उसको सुखानुभूति होती है। तत्पश्चात् संसारको मोहित करनेवाली विष्णुकी माया उसके ऊपर अपना प्रभाव जमा लेती है। उस मायाशक्तिसे विमोहित जीवात्माका पूर्व ज्ञान नष्ट हो जाता है। ज्ञान नष्ट होनेके बाद वह जीव बालभावको प्राप्त करता है। तदनन्तर उसे कौमार्य, यौवन और वृद्धावस्था भी प्राप्त होती है। उसके बाद मनुष्य पुनः उसी प्रकार मरता है और जन्म लेता है। इस संसार-चक्रमें वह घड़ा बनानेवाले चक्रयन्त्रके समान घूमता रहता है। प्राणी कभी स्वर्ग प्राप्त करता है और कभी नरकमें जाता है।

स्वर्ग तथा नरक मनुष्यको अपने कर्मानुसार ही प्राप्त होते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! स्वर्ग और नरकमें कर्मफलका भोग करके प्राणी कभी थोड़ेसे शेष पाप-पुण्यका भोग करनेके लिये पृथ्वीपर आ जाता है। जो स्वर्गमें निवास करते हैं, उन लोगोंको यह दिखायी देता है कि नरकलोकोंमें प्राणियोंको बहुत दुःख है। यहाँपर यमराजके दूतोंसे प्रताड़ित वे नरकवासी कभी प्रसन्न नहीं होते हैं, उन्हें तो दुःख-ही-दुःख झेलना पड़ता है। जबसे मनुष्य विमानमें चढ़कर ऊपरकी ओर प्रस्थान करता है तभीसे उसके मनमें यह भाव स्थान बना लेता है कि पुण्यके समाप्त होनेपर मैं स्वर्गसे नीचे आ जाऊँगा। इसलिये स्वर्गमें भी बहुत दुःख है। नरकवासियोंको देख करके जीवको महान् दुःख होता है; क्योंकि मेरी भी इसी प्रकारकी गति होगी—इस चिन्तासे वह रात-दिन मुक्त ही नहीं होता है। गर्भवासमें प्राणीको योनिजन्य बहुत कष्ट होते हैं। योनिसे पैदा होते समय उसे महान् दुःख होता है। उत्पन्न होनेके बाद बालपनमें भी उसे दुःख है और वृद्धावस्थामें भी दुःख है। काम, क्रोध तथा ईर्ष्याका सम्बन्ध होनेसे युवावस्थामें भी उसके लिये असहनीय दुःख है। दुःस्वप्न, वृद्धावस्थामें तथा मरणके समय भी उत्कट दुःख उसे होता है। यमदूतोंके द्वारा खींचकर नरकमें भी ले जाये जा रहे जीवको अधोगति प्राप्त होती है। उसके बाद फिर जीवका गर्भसे जन्म होता है और मृत्यु होती है। ऐसे संसार-चक्रमें प्राणी कुम्भकारके चक्रके समान घूमते रहते हैं। पूर्वजन्ममें किये गये पुण्य-पापसे बँधे जीव बार-बार इसी संसारके आवागमनका दुःख भोगते हैं।

हे पक्षिन्! सैकड़ों प्रकारके दुःखसे व्याप्त इस संसारक्षेत्रमें रञ्चमात्र भी सुख नहीं है। हे विनतासुत! इसलिये मनुष्योंको मुक्तिके लिये प्रयत्न करना चाहिये। जीवकी जैसी स्थिति गर्भमें होती है, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया है। अब मैं पूर्वक्रमसे पूछे गये प्रश्नका ही उत्तर दूँ या इसी अन्तरालमें कुछ अन्य प्रश्न करनेकी तुम्हारी इच्छा है?

गरुडने कहा—हे देवेश! पूछे गये प्रश्नोंमेंसे दो महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंके उत्तर तो मुझे प्राप्त हो गये हैं, अब मुझे तीसरे प्रश्नका उत्तर प्रदान करनेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षीन्द्र! मरणासन्न प्राणीके लिये क्या करना चाहिये? यह तुमने प्रश्न किया है? उसका उत्तर सुनो! मैं संक्षेपमें उसे कह रहा हूँ।

मृत्युको संनिकट जानकर मनुष्यको सबसे पहले गोमूत्र, गोमय, तीर्थोदक और कुशोदकसे स्नान कराये। तदनन्तर स्वच्छ एवं पवित्र वस्त्र पहना दे और गोमयसे लिपी हुई भूमिपर दक्षिणाग्र कुशोंका एवं तिलका आस्तरण करके सुला दे। सुलाते समय उस मरणासन्न प्राणीके सिरको पूर्व अथवा उत्तरकी ओर करके उसके मुखमें सोनेका टुकड़ा डाले। हे खगेश! उसीके संनिकट भगवान् शालग्रामकी मूर्ति और तुलसीका वृक्ष लाकर रख दे। तत्पश्चात् वहींपर घीका एक दीपक जलाये और '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'— इस मन्त्रका जप करे? पूजा-दान तथा नाम-स्मरण आदिमें मन्त्रसे 'ॐ'का योग करे। पुष्प-धूपादिसे भली प्रकार हृषीकेश विष्णुदेवकी पूजा करे। तदनन्तर विनम्रभावसे स्तुति-पाठ करते हुए उनका ध्यान करे। उसके बाद ब्राह्मणों, दीनों और अनाथोंको दान देकर, भगवान् विष्णुके चरणोंको हृदयमें स्थान देते हुए पुत्र, मित्र, स्त्री, खेती-बारी तथा धन-धान्यादिके प्रति अपनी ममताका परित्याग कर दे। उस समय जीवको बहुत ही कष्ट होता है। उसके निवारणके लिये पुत्रादि सभी परिजनोंको मरणासन्न प्राणीके कल्याण-हेतु ऊँचे स्वरमें 'पुरुषसूक्त'का पाठ करना चाहिये।

हे गरुड! मृत्युके आ जानेपर जो कर्म करना चाहिये, वह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब इस समस्त कर्मका फल क्या है? उसको मैं संक्षेपमें कहता हूँ, तुम सुनो।

हे पक्षिराज! स्नान करनेसे प्राणीको स्वच्छता प्राप्त होती है। उससे शरीरकी अपवित्रता दूर होती है। उसके बाद भगवान् विष्णुका स्मरण होता है और उनका स्मरण सभी प्रकारके उत्तम फल प्रदान करता है। कुश और कपास आतुर प्राणीको स्वर्ग ले जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। तिल तथा कुश जलमें डालकर मरणासन्न व्यक्तिको कराया गया स्नान यज्ञमें किये गये अवभृथ-स्नानके समान होता है। ऐसे ही गोमयसे लिपी हुई भूमिपर मण्डल बनाकर उसपर तिल, कुश आदि डालकर यदि मरणासन्न व्यक्तिको सुलाया जाय तो विष्णु आदि देव प्रसन्न होते हैं; क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी और अग्निदेव मण्डलमें रहते हैं। इसीलिये मरणासन्न व्यक्तिको जिस भूमिपर शयन कराना

है, वहाँपर मण्डलका निर्माण करना चाहिये। हे खगेश! पूर्व अथवा उत्तरकी ओर यदि मरणासन्न व्यक्तिका सिर कर दिया जाय, यदि उसके पाप कम हों तो इतनेमात्रसे उसे उत्तम लोक प्राप्त हो सकते हैं। आतुर व्यक्तिके मुखमें पञ्चरत्न डालनेपर उसमें ज्ञानका उदय होता है। हे पक्षिन्! तुलसी, ब्राह्मण, गौ, विष्णु और एकादशीव्रत—ये पाँच संसार-सागरमें डूबते हुए मनुष्योंके लिये नौकाके समान हैं।[1] विष्णु, एकादशी, गीता, तुलसी, ब्राह्मण एवं गौ—यह षट्पदी इस असार और जटिल संसारमें प्राणीको भक्ति प्रदान कराती है। '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस प्रकार भगवान् विष्णुके मन्त्रका जप करता हुआ मनुष्य निस्संदेह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है। पूजा करनेसे भी मेरे (भगवान् विष्णु) लोककी प्राप्ति होती है, मेरी पूजा करनेवाला साक्षात् स्वर्गलोकको जाता है। हे काश्यप! 'पुरुषसूक्त'के पाठसे अपने परिजनोंके व्यामोहमें फँसा हुआ प्राणी बन्धनसे मुक्त हो जाता है। परलोक-प्राप्तिके जितने साधन बताये गये हैं, उनमें जिन साधनोंकी अधिकता होगी, उन्हींका फल मनुष्यको अधिकाधिक प्राप्त होगा। यथाशक्ति ब्राह्मणों, दीनों और अनाथोंको दान देना चाहिये ऐसा करनेसे वह सदैव प्रसन्न रहता है।

हे साधो! स्नानादि करनेपर मनुष्यको प्राप्त होनेवाले समस्त फलोंका विवरण यही है, इसको मैंने कह दिया। अब इस ब्रह्माण्डमें जो गुण विद्यमान हैं, उन्हें तुम सुनो! वे सब तुम्हारे शरीरमें भी हैं। पाताल, पर्वत, लोक, द्वीप, सागर, सूर्यादि सभी ग्रह तुम्हारे शरीरमें ही स्थित हैं। यथा—पैरके नीचे तललोक, पैरके ऊपर वितललोक, दोनों जानुओंमें सुतललोक और सक्थि-प्रदेशमें महातल नामक लोक समझने चाहिये। वैसे ही ऊरु-भागमें तलातललोक तथा गुह्य-स्थानमें रसातललोक स्थित है। ऐसे ही प्राणीके कटिप्रदेशमें पातालोककी स्थिति समझे। नाभिके मध्यमें भूर्लोक, उसके ऊपर भुवर्लोक, हृदयमें स्वर्गलोक, कण्ठदेशमें महर्लोक, मुखमें जनलोक, मस्तकमें तपोलोक एवं महारन्ध्रमें सत्यलोक है। इस प्रकार मनुष्यके इसी शरीरमें चौदह भुवन विद्यमान हैं।

शरीरके त्रिकोणमें मेरु, अधःकोणमें मन्दर, दक्षिणमें कैलास, वामभागमें हिमालय, ऊर्ध्वभागमें निषध, दक्षिणमें गन्धमादन और वामरेखामें मलय—इन सात कुल पर्वतोंकी स्थिति है। इस देहके अस्थिभागमें जम्बूद्वीप, मज्जामें शाकद्वीप, मांसमें कुशद्वीप, शिराओंमें क्रौञ्चद्वीप, त्वचामें शाल्मलिद्वीप, रोम-समूहमें प्लक्षद्वीप और नखोंमें पुष्कर नामका द्वीप है। उसके बाद शरीरमें सागरोंका स्थान है। जैसे मूत्रमें क्षारोदसागर, शरीरके क्षारतत्त्वमें क्षीरसागर, श्लेष्मामें सुरोदधिसागर, मज्जामें घृतसागर, रसमें रसोदधिसागर, रक्तमें दधिसागर, काकुमें लटकते हुए मांसलभागमें स्वादूदक-सागर तथा शुक्रमें गर्भोदकसागर है। नादचक्रमें सूर्य, बिन्दुचक्रमें चन्द्रमा, नेत्रमें मंगल, हृदयमें बुध, विष्णुस्थानमें गुरु, शुक्रमें शुक्र, नाभिस्थानमें शनि, मुखमें राहु और पायुमें केतुको माना गया है। इस प्रकार शरीरमें ग्रहमण्डलकी स्थिति है।

मनुष्यका आपादमस्तक—सम्पूर्ण शरीर इसी सृष्टिके रूपमें विभक्त है। जो लोग इस संसारमें उत्पन्न होते हैं, वे मृत्युको निश्चित ही प्राप्त होते हैं। भूख, प्यास, क्रोध, दाह, मूर्च्छा, बिच्छूके डंक तथा सर्पके दंशसे उत्पन्न कष्ट सब इसी शरीरमें हैं। समयके पूरा हो जानेपर सभी प्राणियोंका विनाश निश्चित है। यमलोकमें गये हुए जीवके आगे-आगे वही लोग दौड़ते हैं, जो पापी हैं, अधम हैं और दया-धर्मसे दूर हैं। यमदूत उनके बाल पकड़कर घसीटते हुए अत्यन्त संतप्त मरुस्थल तथा दहकते हुए अंगारोंके बीचसे ले जाते हैं। अत्यन्त दुःखसे कातर इन पापियोंको यमलोककी एक झोपड़ीमें तबतक रहना पड़ता है, जबतक पुनर्जन्म नहीं होता है।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार जीव कर्मानुसार जन्म लेता है और मृत्युको प्राप्त होता है। इस संसारमें जो उत्पन्न हुए हैं, वे अवश्य ही मरेंगे—इसमें संदेह नहीं है। 'आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँचों गर्भमें प्राणीके रहनेके समय ही निश्चित हो जाते हैं'—

१-पञ्चरत्ने मुखे मुक्ते जीवे ज्ञानं प्ररोहति। तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग॥
पञ्चप्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां नृणाम्। विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः॥
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी भक्तिदायिनी। नमो भगवते वासुदेवायेति जपेन्नरः॥ (३२।९९—१०१)

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च॥
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः।
(३२।१२५-१२६)

जीव कर्मसे ही जन्म लेता है और विनष्ट होता है। सुख-दुःख, भय एवं कल्याण कर्मसे ही प्राप्त होते हैं। नीचेकी ओर मुख तथा ऊपरकी ओर पैर किये हुए प्राणीको गर्भसे वायु ही खींचकर बाहर लाता है। जन्म लेते ही उस देहधारीको सद्यः विष्णुकी माया सम्मोहित कर लेती है। अपने द्वारा किये गये पाप-पुण्यसे सम्बन्धित योनिमें जीवको जन्म प्राप्त होता है।

हे खगेश्वर! उत्तम प्रकृतिवाला व्यक्ति अपने सुकृतसे अच्छे भोग भोगता है, उसका जन्म भी सत्कुलमें होता है। किंतु जैसे-जैसे उसके द्वारा दुष्कृत होता है, वैसे-ही-वैसे उसका जन्म भी नीच कुलमें होने लगता है। वह उसी दुष्कर्मसे दरिद्र, रोगी, मूर्ख और अन्यान्य दुःखोंका पात्र बन जाता है। (अध्याय ३२)

यमलोक, यममार्ग, यमराजके भवन तथा चित्रगुप्तके भवनका वर्णन, यमदूतोंद्वारा पापियोंको पीड़ित करना

गरुडने कहा—हे तात! आपने अपने इस पुत्रको जीवकी उत्पत्तिका सम्पूर्ण लक्षण बता दिया, किंतु सचराचर—इन तीनों लोकोंके बीच यमलोकका कितना परिमाण है? उसका विस्तार मुझे बतायें। उसके मार्गकी कितनी दूरी है? हे देव! किन पापोंके करनेसे अथवा किस शुभ कर्मके प्रभावसे मानवजाति वहाँ जाती है? विशेष रूपसे बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे पक्षिराज! प्रमाणतः यमलोकका विस्तार छियासी हजार योजन है। मनुष्यलोकके बीचसे ही उस लोकका मार्ग है, जो धौंकनीसे दहकाये गये ताँबेके समान प्रज्वलित और दुर्गम महापथ है। पापी तथा मूर्ख व्यक्ति वहाँ जाते हैं। अत्यन्त तेज, देखनेमें महाभयंकर लगनेवाले अनेक प्रकारके काँटे उस महापथमें हैं। उन्हीं काँटोंसे परिव्याप्त, ऊँची-नीची, अग्निके समान दहकती हुई उस महापथकी भूमि है। वहाँ वृक्षोंकी कोई छाया भी नहीं है, जहाँपर ऐसा मनुष्य रुक करके विश्राम कर सके। उस मार्गमें अन्नादिकी भी व्यवस्था नहीं है, जिसके द्वारा प्राणी अपने प्राणोंकी रक्षा कर सके। वहाँ जल भी नहीं दिखायी देता है, जिससे उसकी प्यास बुझ जाती हो। भूख-प्याससे पीड़ित वह पापी उसी महापथमें चलता है। अत्यन्त दुर्गम उस यममार्गमें वह ठंडकसे काँपने लगता है। जिसका जितना और जिस प्रकारका पाप है, उसका उतना वैसा ही मार्ग है। अत्यन्त दीन-हीन-कृपण और मूर्ख तथा दुःखसे व्याप्त प्राणी उसी मार्गको पार करते हैं। आत्मकृत दोषोंसे बारम्बार संतप्त कुछ लोग वहाँके असह्य कष्टसे व्यथित होकर करुण चीत्कार करते हैं, कुछ लोग वहाँकी कुव्यवस्थाके प्रति विद्रोह कर देते हैं।

हे खगेश! उस कठोर मार्गको ऐसा ही जानना चाहिये। जो लोग इस संसारके प्रति किसी प्रकारकी तृष्णा नहीं रखते हैं, वे उस मार्गपर सुखपूर्वक जाते हैं। पृथ्वीपर मनुष्य जिन-जिन वस्तुओंका दान देता है, वे सभी वस्तुएँ यमलोक तथा उस महापथमें उसके सामने उपस्थित रहती हैं। जिस पापीको श्राद्ध और जलाञ्जलि नहीं प्राप्त होती है, वे पाप-कर्म करनेवाले क्षुद्र प्राणी वायु बनकर भटका करते हैं।

हे सुव्रत! मैंने इस प्रकारके उस रौद्र पथको तुम्हें बता दिया है। अब मैं पुनः यममार्गकी स्थिति बताऊँगा।

दक्षिण और नैर्ऋत दिशाके मध्यमें विवस्वत्पुत्र यमराजकी पुरी है। वह सम्पूर्ण नगर वज्रमय तथा दिव्य है। देवता और असुर भी उसका भेदन नहीं कर सकते हैं। वह चौकोर है, उसमें चार द्वार तथा सात चहारदीवारी एवं तोरण हैं। यमराज स्वयं अपने दूतोंके साथ उसीमें निवास करते हैं। प्रमाणतः उसका विस्तार एक हजार योजन है। सभी प्रकारके रत्नोंसे परिव्याप्त, चमकती हुई बिजली तथा सूर्यके तेजस्वी स्वरूपके समान वह पुरी दिव्य है। उस पुरीमें धर्मराजका जो भवन है, वह स्वर्णके समान कान्तिमान् है। उसका विस्तार पाँच सौ योजन ऊँचा है। हजार खंभोंवाले उस भवनको वैदूर्य मणियोंसे सुसज्जित किया गया है। उसके जालमार्ग अर्थात् गवाक्ष मुक्तामणियोंसे बने हैं।

सैकड़ों पताकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। घण्टोंकी सैकड़ों ध्वनियाँ उस भवनमें होती रहती हैं। उसमें सैकड़ों, तोरणद्वार बनाये गये हैं। इसी प्रकारसे वह भवन अन्यान्य आभूषणोंसे विभूषित रहता है।

वहाँ दस योजनमें विस्तृत नीले मेघके समान शोभा-सम्पन्न, सम एवं शुभ आसनपर भगवान् धर्मराज स्थित रहते हैं। ये धर्मज्ञ, धर्मशील, धर्मयुक्त और कल्याणकारी हैं। ये ही पापियोंको भय देनेवाले तथा धार्मिकोंको सुख देनेवाले हैं। यहाँपर शीतल मन्द वायु बहती रहती है, अनेक प्रकारके उत्सव और व्याख्यान होते रहते हैं, सदैव शंख आदि माङ्गलिक वाद्योंकी ध्वनियाँ सुनायी देती हैं। उन्हींके बीच धर्मराजका सम्पूर्ण समय बीतता है।

उस पुरके मध्यभागमें प्रवेश करनेपर चित्रगुप्तका भवन पड़ता है, जिसका विस्तार पचीस योजन है। उसकी ऊँचाई दस योजन है। वह लोहेकी परिखाके द्वारा चारों ओरसे घिरा हुआ एक महादिव्य भवन है। इसमें आने-जानेके लिये सैकड़ों गलियाँ हैं और सैकड़ों पताकाओंसे यह सुशोभित रहता है। सैकड़ों दीपक इस भवनमें प्रज्वलित रहते हैं। बंदीजनोंके द्वारा गाये-बजाये गीत और वाद्य-यन्त्रोंकी ध्वनियोंसे यह भवन गुञ्जायमान रहता है। चित्रगुप्तके इस भवनको सुन्दरतम चित्रोंसे सजाया गया है। इस भवनमें मुक्तामणियोंसे निर्मित, परम विस्मयकारी एक दिव्य आसन है, जिसके ऊपर बैठकर चित्रगुप्त मनुष्यों अथवा अन्य प्राणियोंकी आयु-गणना करते हैं। किसीके पुण्य और पापके प्रति कभी उनमें मोह नहीं होता है। जिसने जबतक जो कुछ अर्जित किया है, वे उसको जानते हैं; वे अठारह दोषोंसे रहित जीवद्वारा किये गये कर्मको लिखते हैं।

चित्रगुप्तके भवनसे पूर्व ज्वरका बहुत बड़ा भवन है। उनके भवनसे दक्षिण शूल और लताविस्फोटकके भवन हैं। पश्चिममें कालपाश, अजीर्ण तथा अरुचिके भवन हैं। मध्य पीठके उत्तरमें विषूचिका, ईशानकोणमें शिरोऽर्ति, आग्नेयकोणमें मूकता, नैर्ऋत्यकोणमें अतिसार, वायव्यकोणमें दाहसंज्ञक रोगका घर है। चित्रगुप्त इन सभीसे नित्य परिवृत रहते हैं।

हे तार्क्ष्य! कोई भी प्राणी जो कुछ कर्म करता है, वह सब कुछ चित्रगुप्त लिखते हैं। धर्मराजके भवनके द्वारपर रात-दिन दूतगण उपस्थित रहते हैं। यमदूतोंके महापाशसे बँधे पापी और नीच व्यक्ति मुद्गरोंसे मार खाते हैं। वहाँ नाना प्रकारके पूर्वकृत पापकर्मोंसे युक्त मनुष्योंको विभिन्न धारदार अस्त्र-शस्त्रों तथा अनेक यन्त्रोंसे मारा जाता है। पापियोंको दहकते हुए अंगारोंके द्वारा घेर दिया जाता है। पूर्वकर्मोंके अनुसार लौह-पिण्डके समान वे उसीमें दग्ध किये जाते हैं। अन्य बहुत-से पापियोंको पृथ्वीपर पटक करके कुल्हाड़ेसे उन्हें काटा जाता है। पूर्वकर्मके फलानुसार वे चिल्लाते हुए दिखायी देते हैं। कुछ पापियोंको गुड़पाक और कुछको तैलपाकमें डालकर पकाया जाता है। इस प्रकार उन यमदूतोंसे पापियोंको अत्यधिक कष्ट भोगना पड़ता है। अन्य पापी उन अत्यन्त निर्दयी दूतोंसे बार-बार क्षमादानकी प्रार्थना करते हैं; पर यमदूत उनकी एक नहीं सुनते हैं।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार पापियोंके लिये कर्मानुसार बहुत-से नरक कहे गये हैं। (अध्याय ३३)

इष्टापूर्तकर्मकी महिमा तथा औध्वंदैहिक कृत्य, दस पिण्डदानसे आतिवाहिक शरीरके निर्माणकी प्रक्रिया, एकादशाहादि श्राद्धका विधान, शय्यादानकी महिमा एवं सपिण्डीकरण-श्राद्धका स्वरूप

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! शास्त्रके अनुसार धर्म और अधर्मका जो लक्षण किया गया है, उसको तुम सुनो।

प्राणियोंके आगे-आगे उनका सत्कर्म और दुष्कर्म दौड़ता है। विद्वानोंने कृत (सत्य)-युगमें तप, त्रेतायुगमें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और दान तथा कलियुगमें एकमात्र दानकी प्रशंसा की है। मनीषियोंने उत्तम प्रकृतिवाले गृहस्थजनोंके लिये इस धर्मको स्वीकार किया है कि वे यथाशक्ति इष्टापूर्तकर्म[1] करें, उसके करनेसे उन्हें पातक नहीं

[1] १-तालाब, कुआँ आदि खुदवाना तथा देवालय, औषधालय आदि बनवाना 'इष्टापूर्तकर्म' है।

होता। जो मनुष्य वृक्षारोपण करता है, गुफा, कुआँ और जलाशय खुदवाता है, उसको यममार्गमें चलते समय अत्यधिक सुखकी प्राप्ति होती है। जो लोग ठंडकसे पीड़ित ब्राह्मणको तापनेके लिये अग्नि प्रदान करते हैं, वे सभी कामनाओंको पूर्ण करके अतिशीतल यमलोकके मार्गमें अग्नि तापते हुए सुखपूर्वक जाते हैं। जिस मनुष्यने पृथ्वीका दान दिया है, उसने मानो स्वर्ण, मणि-मुक्तादि बहुमूल्य रत्न, वस्त्र और आभूषणादिका सम्पूर्ण दान दे दिया। इस पृथ्वीपर मानव जो कुछ दानमें देते हैं, वे सब दिये गये पदार्थ यमलोकके महापथमें उनके समीप उपस्थित रहते हैं। पुत्र विधिपूर्वक अपने मृत पिताके लिये नाना प्रकारके जिन सुन्दर भोज्य-पदार्थोंका दान देता है, वे सभी पिताको प्राप्त होते हैं।

आत्मा (शरीर) ही पुत्रके रूपमें प्रकट होता है। वह पुत्र यमलोकमें पिताका रक्षक है। घोर नरकसे पिताका उद्धार वही करता है, इसलिये उसको पुत्र कहा जाता है। अतः पुत्रको पिताके लिये आजीवन श्राद्ध करना चाहिये, तभी वह अतिवाहात्मक प्रेतरूप पिता, पुत्रद्वारा दानमें दिये गये पदार्थोंके भोगोंसे सुख प्राप्त करता है। दग्ध हुए प्रेतके निमित्त परिजनोंके द्वारा जो जलाञ्जलि दी जाती है, उससे प्रसन्न होकर वह प्रेत यमलोकमें जाता है। प्रेतकी संतृप्तिके लिये तीन दिनतक रात्रिमें एक चौराहेपर रस्सी बाँधकर तीन लकड़ियोंके द्वारा बनायी गयी तिगोड़ियाके ऊपर कच्ची मिट्टीके पात्रमें दूध भरकर रखना चाहिये। हे पक्षिन्! वायुभूत वह प्रेत मृत्युके दिनसे लेकर तीन दिनतक आकाशमें स्थित उस दूधका पान करता है। दाहसे चौथे दिन अस्थि-संचयका कार्य करना चाहिये[१]। उसके बाद जलाञ्जलि प्रदान करे, किंतु इन जलाञ्जलियोंको पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न तथा उनकी संधिकालोंमें न दे, बल्कि दिनके प्रथम प्रहरके बीत जानेपर दे। नदीमें पुत्रके द्वारा जलाञ्जलि दिये जानेके पश्चात् सभी सगोत्री, हितैषी और बन्धु-बान्धव-स्वजातियों तथा परजातियोंके साथ जलदान करें। किसी भी कारण शीघ्रतावश मुख्य अधिकारी पुत्रके जलाञ्जलि देनेके पूर्व ही जलाञ्जलि नहीं देनी चाहिये। जब स्त्रियाँ श्मशानभूमिसे वापस हो जायँ तभी लोकाचार किया जाय।

शूद्रकी मृत्यु हो जानेपर जो ब्राह्मण उसकी चिताके लिये लकड़ी लेकर जाता है अथवा उसके पीछे-पीछे चलता है, वह तीन रात्रियोंतक अशुद्ध रहता है। तीन रात्रियोंके पश्चात् समुद्रमें मिलनेवाली गङ्गा आदि पवित्र नदीके तटपर पहुँचकर वह स्नान करे। तदनन्तर सौ प्राणायाम करके गोघृतका प्राशन करे, तब उसकी शुद्धि होती है। शूद्र सभी वर्णोंके शवोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है, वैश्य तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य)-के शवोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है, क्षत्रिय दो वर्णों (ब्राह्मण और क्षत्रिय)-के शवोंका अनुगमन कर उन्हें जलाञ्जलि दे सकता है और ब्राह्मण केवल अपने ही वर्णके शवका अनुगमन कर उसे जलाञ्जलि दे सकता है।[२] हे काश्यप! जलाञ्जलि देनेके पश्चात् दन्तधावन करना चाहिये। सभी सगोत्री नौ दिनोंतक दन्तधावनका परित्याग कर देते हैं तथा यथाविधान नौ दिनतक जलाञ्जलि देनेके लिये जलाशयपर जाते हैं। विद्वानोंका कहना है कि जो भी मनुष्य जिस स्थान, मार्ग अथवा घरमें मृत्युको प्राप्त करता है, उसको वहाँसे श्मशानभूमिके अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं ले जाना

१-अस्थि-संचयनके विषयमें संवर्त-वचनके अनुसार—

(क) प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसञ्चयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह॥

(ख) अपरेद्युस्तृतीये वा दाहानन्तरमेव वा।

प्रथम दिन, तृतीय, सप्तम अथवा नवम दिन या दाहके पश्चात् ही चिताको जलसे शान्त करके अपने गोत्रवालोंके साथ अस्थि-संचयन करना चाहिये।

२-इसका तात्पर्य यह है कि इस व्यवस्थाके अनुसार शवका अनुगमन करनेमें किसी विशेष प्रकारकी अशुचिता एवं उसकी शुद्धिके लिये किसी विशेष प्रायश्चित्तकी आवश्यकता नहीं होती। किसी तरहके आपत्कालमें अथवा लोकसंग्रहकी दृष्टिसे या अन्य किसी सहायकके अनुपलब्ध होनेपर जिस किसी भी जातिके शवकी अन्त्येष्टिके लिये यथोचित सहयोग सबको ही करना चाहिये और ऐसा करनेपर शास्त्रीय व्यवस्थाके अनुसार अशुचिताके निराकरणके लिये यथाविधान प्रायश्चित्त भी कर लेना चाहिये।

चाहिये। दाह-संस्कारके पश्चात् स्त्रियोंको आगे-आगे चलना चाहिये। उनके पीछे-पीछे अन्य व्यक्तियोंके समूहको चलना चाहिये। वहाँसे आनेके बाद उन सभीको एक पत्थरके ऊपर बैठकर आचमन करना चाहिये। तत्पश्चात् वे पूर्णपात्रमें रखी गयी यव, सरसों और दूर्वाका दर्शन करें, नीमकी पत्तियोंका प्राशन करें तथा तेल लगाकर स्नान करें। सगोत्रियोंमें जिनके यहाँ मृत्यु हुई है, उनका भोजन नहीं करना चाहिये। अपने घरका अन्न नहीं खाना चाहिये और न ही खिलाना चाहिये। भोजन करनेमें मृत्पात्रका प्रयोग करना चाहिये एवं उस उच्छिष्ट पात्रको ऊपर मुख करके ही एकान्त स्थानमें रख देना चाहिये। मृतकके गुणोंका कीर्तन करे, 'यमगाथा' का पाठ करे और पूर्व जन्ममें संचित शुभाशुभका चिन्तन करे।

वह मृत प्राणी वायुरूप धारण करके इधर-उधर भटकता है और वायुरूप होनेसे ऊपरकी ओर जाता है। वह प्राप्त हुए शरीरके द्वारा ही अपने पुण्य और पापके फलोंका भोग करता है। दशाह-कर्म करनेसे मृत मनुष्यके लिये शरीरका निर्माण होता है। नवक एवं षोडश श्राद्ध करनेसे जीव उस शरीरमें प्रवेश करता है। भूमिपर तिल और कुशका निक्षेप करनेपर वह कुटी धातुमयी हो जाती है। मरणासन्न प्राणीके मुखमें पञ्चरत्न डाल देनेसे जीव ऊपरकी ओर चल देता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो जीवको शरीर नहीं मिल पाता अर्थात् वह इधर-उधर भटकता रहता है। इसलिये आदरपूर्वक भूमिपर तिल और दर्भको बिछाना चाहिये।

जीव जहाँ-कहीं भी पशु या स्थावरयोनिमें जन्म लेता है, जहाँ वह रहता है, वहींपर उसके उद्देश्यसे दी गयी श्राद्धीय वस्तु पहुँच जाती है। जिस प्रकार धनुर्धारीके द्वारा लक्ष्यवेधके लिये छोड़ा गया बाण उसी लक्ष्यको प्राप्त करता है, जो उसको अभीष्ट है; उसी प्रकार जिसके निमित्त श्राद्ध किया जाता है, वह उसीके पास पहुँच जाता है। जब-तक मृतकके सूक्ष्म शरीरका निर्माण नहीं होता है, तबतक किये गये श्राद्धोंसे उसकी संतृप्ति नहीं होती है। भूख-प्याससे व्यथित होकर वायुमण्डलमें इधर-उधर चक्कर काटता हुआ वह जीवात्मा, दशाहके श्राद्धसे संतृप्त होता है। जिस मृतकका पिण्डदान नहीं हुआ है, वह आकाशमें भटकता ही रहता है। वह क्रमशः—तीन दिन जल, तीन दिन अग्नि, तीन दिन आकाश और एक दिन (अपने प्रिय जनोंके ममतावश) अपने घरमें निवास करता है। अग्निमें शरीरके भस्म हो जानेपर प्रेतात्माको जलसे ही तृप्त करना चाहिये। इसके बाद जलसे ही उसकी तेल-स्नानकी क्रिया पूर्ण करे तथा घरमें पूआ और कृशर अन्नसे श्राद्ध करे। मृत्युके पहले, तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें अथवा ग्यारहवें दिन जो श्राद्ध होता है, उसको नवक श्राद्ध कहा जाता है। गृहद्वार, श्मशान, तीर्थ या देवालय अथवा जहाँ-कहीं भी प्रथम पिण्डदान दिया जाता है, वहींपर अन्य सभी पिण्डदान करने चाहिये। एकादशाहके दिन जिस श्राद्धको करनेका विधान है, उसको सामान्य श्राद्ध कहा गया है। ब्राह्मणादि चारों वर्णोंकी शरीर-शुद्धिके लिये स्नान ही एकमात्र साधन है। एकादशाह-संस्कारके पूर्ण हो जानेके पश्चात् पुनः स्नान करके शुद्ध होना चाहिये। अनन्तर शय्यादान करना चाहिये, क्योंकि शय्यादानसे प्रेतको मुक्ति मिलती है। यदि प्रेतका कोई सगोत्री न हो तो उसके अन्त्येष्टि कार्यको किसी औरको करना चाहिये अथवा उसकी भार्या करे या किसी ऐसे पुरुषको करना चाहिये, जो मृत व्यक्तिसे तुष्ट अर्थात् उसके सद्व्यवहारसे उपकृत हो। पहले दिन विधिपूर्वक श्राद्धयोग्य जिस अन्नादिसे पिण्डदान दिया जाता है, उसी अन्नादिसे सभी श्राद्ध करने चाहिये।[1] दशाह-श्राद्धका कर्म मन्त्रोंका प्रयोग बिना किये ही नाम-गोत्रोच्चारसे हो जाता है। जिन वस्त्रोंको धारण करके संस्कर्ता श्राद्धकर्म करता है, अशौचका दिन बीतनेके बाद उन्हें त्याग करके ही घरमें प्रविष्ट होना चाहिये। पहले दिन जो और्ध्वदैहिक कर्म आरम्भ करे, उसीको दस दिनतक समस्त श्राद्धकृत्य सम्पन्न करना चाहिये। वह क्रिया करनेवाला चाहे सगोत्री हो या दूसरे गोत्रसे सम्बन्धित हो, स्त्री हो अथवा पुरुष हो।

जिस प्रकार गर्भमें स्थित प्राणीके शरीरका पूर्ण विकास दस मासमें होता है, उसी प्रकार दस दिनतक दिये गये

१-प्रथमेऽहनि यः पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम्। अन्नाद्येन च तेनैव सर्वश्राद्धानि कारयेत्॥ (३४। ४१)

पिण्डदानसे जीवके उस शरीरकी संरचना होती है। जिस शरीरसे उसे यमलोक आदिकी यात्रा करनी है। जबतक घरमें इसका अशौच होता है, तबतक पिण्डोदक-क्रिया करनी चाहिये। यह विधि ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये मानी गयी है। पुत्रके अभावमें जिनके लिये अशौच तीन रातोंका ही माना जाता है, वे पहले दिन तीन, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन तीन पिण्डदान करें। प्रेतके लिये पृथक्-पृथक् मिट्टीके पात्रमें दूध तथा जल और चौथे दिन उसे एकोद्दिष्ट-श्राद्ध करना चाहिये।

हे अण्डज! पहले दिन जो पिण्डदान दिया जाता है, उससे जीवकी मूर्द्धाका निर्माण होता है। दूसरे दिनके पिण्डदानसे आँख, कान और नाककी रचना होती है। तीसरे दिनके पिण्डदानद्वारा दोनों गण्डस्थल, मुख तथा ग्रीवाभाग बनकर तैयार होता है। उसी प्रकार चौथे दिन उसके हृदय, कुक्षिप्रदेश एवं उदरभाग, पाँचवें दिन कटिप्रदेश, पीठ और गुदाका आविर्भाव होता है। तत्पश्चात् छठे दिन उसके दोनों ऊरु, सातवें दिन गुल्फ, आठवें दिन जंघा, नौवें दिन पैर तथा दसवें दिन पिण्डदान देनेसे प्रबल क्षुधाकी उत्पत्ति होती है। एकादशाहमें जो पिण्डदान होता है, उसको पायस आदि मधुर अन्नसहित प्रदान करें। निमन्त्रित ब्राह्मणके दोनों पैर धोकर तथा उन्हें अर्घ्य, धूप, दीपादिसे पूजकर और सिद्धान्न, कृशर, अपूप एवं दूध आदिसे परिपूर्ण भोजन कराकर संतृप्त किया जाय। द्वादश मासिक श्राद्ध तथा ऊनमासिक, त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक तथा ऊनाब्दिक—ये षोडश श्राद्ध कहे जाते हैं। (ग्यारहवें दिन इन श्राद्धोंको करनेकी विधि है।) प्राणीकी जो मृत्यु-तिथि हो, उसी तिथिपर प्रतिमास श्राद्ध करना चाहिये। प्रथम मासिक श्राद्ध मृताहके दिन न करके एकादशाहके दिन करना चाहिये। जिस तिथिको मनुष्य मरता है, वही तिथि (अन्य) मासिक श्राद्धके लिये प्रशस्त होती है। ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक तथा त्रिपाक्षिक—इन श्राद्धोंके लिये मृत्यु-तिथिका विचार नहीं करना चाहिये। उदाहरणार्थ—पूर्णिमा तिथिमें जो व्यक्ति मरता है, उसके लिये अगली चतुर्थी तिथिको ऊनमासिक श्राद्ध करना चाहिये। जिसकी मृत्यु चतुर्थी तिथिको होती है, उसके लिये ऊनमासिक श्राद्ध नवमीको होना चाहिये और जो मनुष्य नवमी तिथिको मरता है, उसके लिये चतुर्दशी ऊनमासिक श्राद्धकी तिथि है। अतः अन्त्येष्टि-कर्मकुशल विद्वान्‌को यह जान लेना चाहिये कि ये सभी तिथियाँ यथाविहित मृत्यु-तिथिके अनुसार रिक्ता ही होंगी।

एकादशाहको जो श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम नवक है। इस दिन चौराहेपर प्रेतके निमित्त भोजन रख करके श्राद्धकर्ता पुनः स्नान करे। एकादशाहसे वर्षपर्यन्त श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन सान्नोदक घटका दान करना चाहिये। मानव-शरीरमें जो अस्थियोंका एक समूह विद्यमान है, जिसमें उनकी कुल संख्या तीन सौ साठ है। जलपूर्ण घटका दान देनेसे उन अस्थियोंको पुष्टि मिलती है। इसलिये जो घट-दान दिया जाता है, उससे प्रेतको प्रसन्नता प्राप्त होती है। जंगल या किसी विषम परिस्थितिमें जीवकी मृत्यु जिस दिन होती है, उस दिनसे घरमें सूतक होता है और उसीके अनुसार दशाहादि क्रियाएँ करनी चाहिये, दाह-संस्कार जब कभी भी हो।

तिलपात्र, अन्नादिक भोज्यपदार्थ, गन्ध, धूपादि एवं पूजन-सामग्रीका जो दान है, उसको एकादशाहमें देना चाहिये। उससे ब्राह्मणकी शुद्धि होती है। मृत्यु और जन्ममें घरमें होनेवाले सूतकसे क्रमशः—क्षत्रिय बारहवें दिन, वैश्य पंद्रहवें दिन तथा शूद्र एक मासमें शुद्ध होता है। मृत्युके तीन मास होनेपर त्रिरात्र, छः मास होनेपर पक्षिणी, संवत्सर पूर्ण होनेसे पूर्व अहोरात्र तथा संवत्सर पूर्ण होनेपर जलदानकी क्रिया करनेसे शुद्धि होती है। इसीके अनुसार सभी वर्णोंकी शुद्धि होती है। कलियुगमें सूतककी समाप्ति दशाहमें ही है। एकादशाहसे लेकर सांवत्सरिक आदि सभी श्राद्धोंके अवसरपर विश्वेदेवोंकी पूजा करके अन्य पिण्डदान करना चाहिये। जैसे सूर्यकी किरणें अपने तेजसे सभी तारागणोंको ढक देती हैं, उसी

१-एकादशाह-श्राद्धके अनन्तर वर्षपर्यन्त किया जानेवाला एकोद्दिष्ट-श्राद्ध तथा प्रति सांवत्सरिक एकोद्दिष्ट-श्राद्ध विश्वेदेवपूजनपूर्वक करनेकी परम्परा नहीं है।

प्रकार प्रेतत्वपर इन क्रियाओंका आच्छादन होनेसे भविष्यमें पुनः प्रेतत्व नहीं मिलता है। अतः सपिण्डनके अनन्तर कहीं 'प्रेत' शब्द प्रयोग नहीं होता।

श्रेष्ठ ब्राह्मण सर्वदा शय्यादानकी प्रशंसा करते हैं। यह जीवन अनित्य है, उसे मृत्युके बाद कौन प्रदान करेगा? जबतक यह जीवन है, तबतक अपने बन्धु-बान्धव हैं और अपने पिता हैं। मृत्यु हो जानेपर यह मर गया है, ऐसा जान करके क्षणभरमें ही वे अपने हृदयसे स्नेहको दूर कर देते हैं। इसलिये आत्मा ही अपना बन्धु है, ऐसा बारम्बार विचार करके जीते हुए ही अपने हितके कार्य कर लेना चाहिये। इस संसारमें मरे हुए प्राणीका कौन पुत्र है, जो विस्तरके सहित शय्याका दान ब्राह्मणको दे सकता है? ऐसा सब कुछ जानते हुए मनुष्यको अपने जीवनकालमें ही अपने हाथोंसे शय्यादानादि सभी दान कर देना चाहिये। अतः अच्छी एवं मजबूत लकड़ीकी सुन्दर शय्या बनवा करके उसे हाथीके दाँत तथा सोनेकी पट्टियोंसे अलंकृत करके उस शय्याके ऊपर लक्ष्मीके सहित विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाको स्थापित करे। उसके बाद उसी शय्याके संनिकट घीसे परिपूर्ण कलश रखे। हे गरुड! वह कलश अपने सुखके लिये ही होता है। विद्वानोंने तो उसको निद्राकलश कहा है। ताम्बूल, केशर, कुंकुम, कपूर, अगुरु, चन्दन, दीपक, पादुका, छत्र, चामर, आसन, पात्र तथा यथाशक्ति सप्तधान्य उसी शय्याके बगलमें स्थापित करे। इन वस्तुओंके अतिरिक्त शयन करनेवालेके लिये जो अन्य उपयोगी वस्तु हो, उसको भी वहीं रखे। सोने-चाँदी या अन्य धातुसे बनी झारी, करक (करवा), दर्पण और पञ्चरंगी चाँदनीसे उस शय्याको संयुक्त करके उसे ब्राह्मणको दान दे दे।

कल्याणके लिये यजमान स्वर्गमें सुख प्रदान करनेवाली शय्याकी विधिवत् रचना करके सपत्नीक द्विज-दम्पतिकी पूजा करके उसका दान करे। कर्णफूल, कण्ठहार, अंगूठी, भुजबंद तथा चित्रकादि आभूषण एवं गौसे युक्त घरेलू उपकरणोंसे परिपूर्ण घर उसको दानमें दे। तदनन्तर पञ्चरत्न, फल और अक्षतसे समन्वित अर्घ्य उस ब्राह्मणको देकर यह प्रार्थना करनी चाहिये—

यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरकन्यया।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥
(३४।८१)

जिस प्रकार समुद्रकी पुत्री लक्ष्मीसे भगवान् विष्णुकी शय्या शून्य नहीं होती है, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरमें मेरी शय्या भी शून्य न हो।

इस प्रकार ब्राह्मणको उस निर्मल शय्याका दान देकर क्षमापन करके उसे विदा करे। यही प्रेतशय्याकी विधि एकादशाह-संस्कारमें बतायी गयी है।

हे गरुड! अपने बान्धवकी मृत्यु होनेपर उनके निमित्त बन्धुजन धर्मार्थ जो दान देते हैं, उसके विषयमें विशेष बात मैं कह रहा हूँ, उसको तुम सुनो।

हे पक्षिराज! अपने घरमें पहलेसे जो कुछ उपयुक्त वस्तु हो, उस मृतकके शरीरसे सम्बन्धित जो वस्त्र, पात्र और वाहन हो, जो कुछ उसको अभीष्ट रहा हो, वह सब एकत्र करे। शय्याके ऊपर भगवान् विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमाको स्थापित करके विद्वान् व्यक्ति उनकी पूजा करे और जैसा पहले कहा गया है, उसीके अनुसार ब्राह्मणको उस मृतशय्याका दान कर दे।

शय्यादानके प्रभावसे प्राणीको प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण सुख, इन्द्र और यमराजके घरमें विद्यमान रहता है। इसके प्रभावसे महाभयंकर मुखवाले यमदूत उसको पीड़ित नहीं करते हैं। वह मनुष्य यमलोकमें कहीं धूप और ठंडकसे कष्ट नहीं पाता है। शय्यादानके प्रभावसे प्रेत बन्धनमुक्त हो जाता है। इस दानसे पापी व्यक्ति भी स्वर्गलोक चला जाता है। जो प्राणी पापसे रहित है, वह अप्सराओंसे सेवित विमानपर चढ़कर प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें रहता है। जो नारी अपने पतिके लिये नवक, षोडश और सांवत्सरिक श्राद्ध तथा शय्यादान करती है, उसको अनन्त फल प्राप्त होता है। मृत पतिका उपकार करनेके लिये जो स्त्री जीवित रहती है, उसके साथ मरती नहीं तो वह सती जीवित रहते हुए भी अपने पतिका उद्धार कर सकती है। स्त्रीको अपने मृत पतिके लिये दधि, अन्न, शयन, अञ्जन, कुंकुम, वस्त्राभूषण तथा शय्यादि सभी प्रकारके दान देना चाहिये। स्त्रियोंके लिये इस लोकमें जो कुछ वस्तुएँ उपकारक हों, जो कुछ

शरीरपर प्रयोग किये जाने योग्य वस्त्राभूषण और भोग्य वस्तुएँ हों, उन सभीको मिला करके प्रेतकी प्रतिमा बनाकर उन्हें यथास्थानपर नियोजित करके लोकपाल, इन्द्रादि देवगण, सूर्यादिक ग्रह, गौरी तथा गणेशकी पूजा करे। उसके बाद श्वेत वस्त्र धारण करके पुष्पाञ्जलि सहित ब्राह्मणके समक्ष इस मन्त्रका उच्चारण करे—

प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकरणैर्युता।
सर्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता॥
आत्मा शम्भुः शिवा गौरी शक्रः सुरगणैः सह।
तस्माच्छय्याप्रदानेन सैष आत्मा प्रसीदतु॥
(३४। ९६-९७)

हे विप्रदेव! प्रेतकी यह प्रतिमा सभी उपकरणों और समस्त रत्नोंसे युक्त है। मैं आपको इसे प्रदान करता हूँ। आत्मा ही शिव है। यही शिवा और गौरी है। यही सभी देवताओंके साथ इन्द्र है। अतः इस शय्यादानसे यह आत्मा प्रसन्न हो।

इसके बाद उस शय्याको परिवारवाले आचार्य ब्राह्मणको प्रदान करे। ब्राह्मण उसको ग्रहण करनेके बाद 'कोऽदात०' इत्यादि मन्त्रका पाठ करे। तत्पश्चात् उस ब्राह्मणकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करे और उन्हें वहाँसे विदा करे।

हे पक्षिन्! इस विधिसे एक शय्याका एक ही ब्राह्मणको दान देना चाहिये। एक गौ, एक गृह, एक शय्या और एक स्त्रीका दान बहुतोंके लिये नहीं होता है। विभाजित करके दिये गये ये दान दाताको पापकी कोटिमें गिरा देते हैं।

हे तार्क्ष्य! इस प्रकार बतायी गयी विधिके अनुसार जो प्राणी शय्यादिका दान करे तो उसे जो फल प्राप्त होता है, उसको तुम सुनो। इस दानसे दाता सौ दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। व्यतीपात योग, कार्तिक पूर्णिमा, मकर तथा कर्ककी संक्रान्तिमें, सूर्य-चन्द्रग्रहणमें, द्वारका, प्रयाग, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, अर्बुद (आबू) पर्वत, गङ्गा, यमुना तथा सिन्धु नदी और सागरके संगम-तटपर जो दान दिया जाता है, यह उससे भी बड़ा दान है। इस शय्यादानके सोलहवें अंशको भी वे सभी दान प्राप्त नहीं कर पाते हैं। वह प्राणी जहाँ जन्म लेता है, वहीं उस पुण्यका फल भोगता है। स्वर्गमें रहने योग्य पुण्यके क्षय होनेके बाद वह सुन्दर स्वरूप धारण करके पृथ्वीपर पुनः जन्म लेता है। वह महाधनी, धर्मज्ञ तथा सर्वशास्त्रोंका निष्णात पण्डित होता है और मृत्यु होनेके बाद वह नरश्रेष्ठ पुनः वैकुण्ठलोक चला जाता है। अद्भुत है! अप्सराओंसे चारों ओर घिरा हुआ वह प्राणी दिव्य विमानपर चढ़कर स्वर्गमें अपने पितरोंके साथ हव्य-कव्य ग्रहण करते हुए प्रसन्न रहता है।

हे तार्क्ष्य! यदि पितर प्रेतत्वको प्राप्त हैं तो सपिण्डीकरणके बिना अष्टका, अमावास्या, मघा नक्षत्र तथा पितृपर्वमें किये गये जो-जो श्राद्ध हैं, वे पितरोंको नहीं प्राप्त होते हैं। सपिण्डीकरणका कार्य वर्ष पूरा हो जानेपर करना चाहिये। इसमें संशय नहीं है। शवकी शुद्धिके लिये आद्य श्राद्ध करके षोडशीका सम्पादन करे। तदनन्तर पितृपंक्तिकी (पितरोंकी पंक्तिमें प्रवेशके लिये) शुद्धिके लिये पचासवें प्रेतपिण्डका अन्य पिण्डोंके साथ मेलन करे। वृद्धि श्राद्धकी सम्भावना होनेपर एक वर्षके पहले ही (छः अथवा तीन माह या डेढ़ माहमें एवं बारहवें दिन सपिण्डीकरण श्राद्ध कर देना चाहिये। शूद्रका श्राद्ध स्वेच्छापूर्वक हो सकता है। अग्निहोत्री ब्राह्मणकी मृत्यु होनेपर द्वादशाहको सपिण्डन-कर्म होना चाहिये। जबतक वह कर्म नहीं किया जाता है, तबतक वह मृत अग्निहोत्री ब्राह्मण प्रेतयोनिमें ही रहता है। अतः अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मणको द्वादशाहमें ही सपिण्डीकरणकी क्रिया कर देनी चाहिये। गङ्गा आदि महानदियोंमें अस्थि-क्षेपण, गयातीर्थ-श्राद्ध, पितृपक्षमें होनेवाले श्राद्ध सपिण्डीकरणके बिना वर्षके मध्यमें नहीं करना चाहिये। यदि बहुत-सी सपत्नियाँ हों और उनमेंसे एक भी स्त्री पुत्रवती हो जाय तो उसी एक पुत्रसे ही वे सभी पुत्रवती होती हैं।

असपिण्ड अग्निहोत्री पुत्रको पितृयज्ञ नहीं करना चाहिये। यदि वह ऐसा आचरण करता है तो पापी होगा और उसे पितृहत्याका भी पाप लगेगा। पतिकी मृत्यु होनेपर जो स्त्री अपने प्राणोंका परित्याग कर देती है तो पतिके साथ ही उसका भी सपिण्डीकरण कर देना चाहिये। पिताकी अनुचित रूपसे लायी गयी विवाहिता वैश्यवर्णा अथवा क्षत्रिया जो भी पत्नियाँ हों, उनका सपिण्डन कोई भी पुत्र

कर सकता है। जब प्रमादवश ब्राह्मण किसी शूद्रा कन्यासे ही विवाह कर लेता है तो मरनेके बाद उसके लिये एकोद्दिष्ट-श्राद्ध बताया गया है और सपिण्डीकरण-श्राद्ध उसीके साथ करना चाहिये। अन्य चारों वर्णोंसे ब्राह्मणके चाहे दसों पुत्र हों, किंतु उन्हें अपनी-अपनी माँके सपिण्डीकरणकी क्रियामें नियुक्त होना चाहिये। अन्वष्टका पौष, माघ और फाल्गुनमासके कृष्णपक्षकी नवमी तिथि (जो साग्नियोंका मातृक श्राद्ध होता है)-को होनेवाला तथा वृद्धिहेतुक श्राद्ध एवं सपिण्डन-श्राद्धमें पितासे पृथक् माताका पिण्ड प्रदान करना चाहिये।[1] हे तार्क्ष्य! पितामहीके साथ माता और पितामहके साथ पिताका सपिण्डन अपेक्षित है, ऐसा मेरा अभिमत है। यदि स्त्री पुत्रहीन ही मर जाती है तो उसका सपिण्डन पति करे। धर्मतः पतिको अपनी माता, पितामही एवं प्रपितामही—इन तीनोंके साथ अपनी पत्नीका सपिण्डन करना चाहिये।

हे गरुड! यदि स्त्रियोंके पुत्र तथा पति दोनों नहीं हैं तो वृद्धिकालके आनेपर स्त्रीका भाई अथवा दायभागका गृहीता या देवर उसका सपिण्डन करें। यदि पति एवं पुत्ररहित स्त्रियोंके न तो कोई सगोत्री हो और न देवर ही हो तो उस समय अन्य व्यक्ति उसके भाइयोंके साथ उसका एकोद्दिष्ट विधानसे श्राद्ध कर सकता है। यदि भूलवश अथवा विघ्नके कारण सपिण्डन-क्रिया किसीकी नहीं हो सकी है तो उसके पुत्र या बन्धु-बान्धवको चाहिये कि वे नवक श्राद्ध, षोडश श्राद्ध तथा आब्दिक श्राद्ध करे।

जिसका दाह नहीं हुआ है, उसके लिये श्राद्ध नहीं करना चाहिये। दर्भका पुत्तल बनाकर अग्निसे उसे जलाकर ही श्राद्ध करना चाहिये। पुत्रके द्वारा पिताका सपिण्डीकरण किया जा सकता है, किंतु पुत्रमें पिताका पिण्डमेलन नहीं किया जा सकता। प्रेमाधिक्यके कारण भी पिताको पुत्रमें सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिये। जब बहुत-से पुत्र हों, तब भी ज्येष्ठ पुत्र ही उस क्रियाको सम्पन्न करे। नवक, सपिण्डन तथा षोडशादि अन्य सभी श्राद्धोंको करनेका अधिकारी वही एक है। धनका बँटवारा न होनेपर भी एक ही पुत्रको पिताके समस्त और्ध्वदैहिक कृत्य करना चाहिये। मुनियोंने भी इस बातको कहा है कि पिताकी अन्त्येष्टि एक ही पुत्र करता है। यदि पुत्रोंमें परस्पर बँटवारा हो गया है तो उन सभी पुत्रोंको पृथक्-पृथक् सांवत्सरादिक क्रिया करनी चाहिये। स्वयं प्रत्येक पुत्रको अपने पिताका श्राद्ध करना चाहिये। जिनके निमित्त ये षोडश प्रेतश्राद्ध सम्पन्न नहीं किये जाते हैं, उनका अन्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी पिशाचत्व स्थिर रहता है।

हे खगेश्वर! पुत्रहीनका सपिण्डीकरण उसके भाई, भतीजे, सपिण्ड अथवा शिष्यको करना चाहिये। सभी पुत्रहीन पुरुषोंका सपिण्डन पत्नी करे अथवा ऋत्विज् या पुरोहितसे उस कार्यको सम्पन्न कराये। पिताकी मृत्यु हो जानेपर वर्षके मध्य जब सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण हों तो पुत्रोंको पार्वणश्राद्ध, नान्दीश्राद्ध नहीं करना चाहिये। माता-पिता और आचार्यकी मृत्यु होनेपर वर्षके मध्यमें तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध तथा अन्य पैतृक श्राद्ध नहीं करना चाहिये। पितृपक्ष, गजच्छाया योग, मन्वादि और युगादि तिथियोंमें सपिण्डीकरणके बिना पिताको पिण्डदान नहीं देना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि वर्षके मध्यमें भी यज्ञपुरुष तथा देवतादिके लिये जो देय है, उसका दान देना चाहिये। पितरोंको भी अर्घ्य और पिण्डसे रहित जो कुछ देय है, वह सब दिया जा सकता है। यही विधि कही गयी है।

देवोंके लिये पितर देवता हैं, पितरोंके पितर ऋषि हैं, ऋषियोंके पितर देवता हैं, इस कारण पिता सर्वश्रेष्ठ है। पितर, देवतागण और मनुष्योंके यज्ञनाथ भगवान् विभु हैं। यज्ञनाथको जो कुछ दिया जाता है, वह समस्त शरीरधारियोंको दिया हुआ माना जाता है। पिताके मरनेपर वर्षके मध्य जो पुत्र अन्य श्राद्ध करता है, निस्संदेह सात जन्मोंमें किये गये अपने धर्मसे हीन हो जाता है। पिण्डोदक क्रियादिसे रहित प्राणी प्रेत हो जाते हैं, वे इसी रूपमें भूख-प्याससे अत्यन्त पीड़ित होकर वायुके साथ चक्कर काटते हैं। यदि पिता प्रेतत्वयोनिमें पहुँच जाता है तो पुत्रके द्वारा की गयी समस्त पैतृकी क्रिया नष्ट हो जाती है। यदि माताकी मृत्यु हो जाती है तो पितृकार्य नष्ट नहीं होता है।

१-अन्वष्टकासु यच्छ्राद्धं यच्छ्राद्धं वृद्धिहेतुकम्। पितुः पृथक् प्रदातव्यं स्त्रियाः पिण्डं सपिण्डने॥ (३४। १२०)

यदि माताकी मृत्यु हो जाय, पिता और पितामही अर्थात् दादी जीवित रहती है तो माताका सपिण्डन प्रपितामहीके साथ ही करना चाहिये। हे गरुड! मेरे इस वचनको सुनो। यह सर्वथा सत्य है। इस पृथ्वीपर जिन मरे हुए मनुष्योंका पिण्डमेलन अर्थात् सपिण्डीकरण नहीं होता है, उनके लिये पुत्रोंके द्वारा अनेक प्रकारसे दिया गया हन्तकार, उपहार, श्राद्ध तथा जलाञ्जलि उन्हें प्राप्त नहीं होती है। (अध्याय ३४)

सपिण्डीकरण-श्राद्धमें प्रेतपिण्डके मेलनका विधान, पितरोंकी प्रसन्नताका फल, पञ्चक-मरण तथा शान्तिविधान, पुत्तलिकादाह, प्रेतश्राद्धमें त्याज्य अठारह पदार्थ, मलिनषोडशी, मध्यमषोडशी तथा उत्तमषोडशी श्राद्ध, शवयात्रा-विधान

तार्क्ष्यने कहा—हे जनार्दन! अब मुझे दूसरा संदेह उत्पन्न हो गया है। यदि किसी भी पुरुषकी माताका देहावसान हो गया है, किंतु उसकी पितामही, प्रपितामही, वृद्धप्रपितामही जीवित है और यदि पिता भी जीवित हो, मातामह, प्रमातामह एवं वृद्धप्रमातामह भी जीवित हों तो उस माताका सपिण्डन किसके साथ किया जायगा? हे प्रभो! इसको बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिन्! पूर्वमें कहे गये सपिण्डीकरणविधानको मैं पुनः कह रहा हूँ। यदि माताके उपर्युक्त सभी सम्बन्धी जीवित हैं तो माताके पिण्डका सम्मेलन उमा, लक्ष्मी तथा सावित्रीके साथ कर देना चाहिये। इस संसारमें तीन पुरुष पिण्डका भोग करनेवाले हैं, तीन पुरुष त्याजक हैं, तीन पुरुष पिण्डानुलेप और दसवाँ पुरुष पंक्तिसंनिध होता है। पिता तथा माताके कुलमें इन्हीं पुरुषोंकी प्रसिद्धि होती है। यजमान अपनेसे पूर्व दस पुरुषों एवं अपनेसे बादके दस पुरुषोंका उद्धार कर सकता है। पहले जो तीन पुरुष बताये गये हैं अर्थात् पिता, पितामह तथा प्रपितामह—ये सपिण्डीकरण करनेपर सपिण्ड माने गये हैं। जो प्रपितामहके पूर्व वृद्धप्रपितामह और उनसे दो पूर्व पुरुष हैं, उन्हें त्याजक रूपमें स्वीकार करना चाहिये। इस अन्तिम त्याजक पुरुषके बाद जो पुरुष होता है, वह प्रथम लेपक होता है, उसके पूर्वमें जो अन्य दो पुरुष होते हैं, उन्हें भी उसी लेपककी कोटिमें समझना चाहिये। इस कोटिके तीसरे पुरुषके पूर्व जो पुरुष होता है, वह पंक्तिसंनिध है। इस प्रकार दस पूर्व पुरुषोंके बाद स्वयं यजमान एक पुरुष है। भविष्यमें जो यथाक्रम दस पुरुष होते हैं, उन सभीको मिलाकर पितरोंकी संख्या इक्कीस होती है।

इस संसारमें विधिपूर्वक जो मनुष्य उक्त श्रेष्ठतम श्राद्ध करता है, उसमें कर्ताकी ओरसे कोई संदेहकी स्थिति नहीं रह जाती है तो उसका जो फल होता है, उसे भी तुम सुनो।

हे खगेश! पिता प्रसन्न होकर पुत्रोंको संतान प्रदान करता है, जिससे उनकी वंश-परम्परा अविच्छिन्न होती है। श्राद्धकर्ताका प्रपितामह प्रसन्न हो करके स्वर्णदाता हो जाता है। वृद्धप्रपितामह प्रसन्न होकर श्राद्धकर्ताको विपुल अन्नादि प्रदान करते हैं। श्राद्धके जो ये फल हैं, ये ही पितरोंके तर्पणसे भी प्राप्त होते हैं। हे पक्षिन्! इस मर्त्यलोकमें जिस पुरुषकी संतान-परम्परा नष्ट हो जाती है, वह मृत्युके बाद उसी प्रकार नरकलोकमें वास करता है, जिस प्रकार कीचड़में फँसा हुआ हाथी होता है। (नरक-भोग प्राप्त करनेके बाद) वह प्राणी वृक्ष अथवा सरीसृप-योनिमें जन्म लेता है। वह उस नरकसे बिना संतानके निश्चित ही मुक्त नहीं होता है। अतः संतानविहीन मरे हुए प्राणीके लिये आचार्य, शिष्य अथवा दूरके सगोत्री (अबान्धव)-को उसके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक 'नारायणबलि' कर देनी चाहिये। उस कृत्यसे पापविमुक्त होकर वह विशुद्धात्मा निश्चित ही नरकसे छुटकारा पा जाता है और स्वर्गमें जाकर वास करता है। इसमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

धनिष्ठासे लेकर रेवतीपर्यन्त जो पाँच नक्षत्र हैं, ये सभी सदैव अशुभ होते हैं। उन नक्षत्रोंमें ब्राह्मण आदि समस्त जातियोंका दाह-संस्कार या बलिकर्म नहीं करना चाहिये। इन नक्षत्रोंमें मृत प्राणीके लिये जल भी प्रदान करना उचित नहीं है, ऐसा करनेसे वह अशुभ हो जाता है। दुःखार्त

१-'विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्वा लोपो वाच्यः'—इस वार्तिकसे 'प्र' शब्दका लोप हो जानेसे मूलमें पितामही पदको 'प्रपितामही' समझना चाहिये।

(मृत) स्वजन हों तो भी इस कालमें लोक (शव)-यात्रा नहीं करनी चाहिये। स्वजनको पञ्चककी शान्तिके बाद ही मृतका सब संस्कार करना चाहिये, अन्यथा पुत्र और सगोत्रियोंको उस अशुभ पञ्चकके कुप्रभावसे दुःख ही झेलना पड़ता है। जो मनुष्य इन नक्षत्रोंमें मृत्यु प्राप्त करता है, उसके घरमें हानि होती है।

इस पञ्चककी अवधिमें जो प्राणी मर जाता है, उसका दाह-संस्कार तत्सम्बन्धित नक्षत्रके मन्त्रसे आहुति प्रदान करके नक्षत्रके मध्यकालमें भी किया जा सकता है। सद्यः की गयी आहुति पुण्यदायिनी होती है; तीर्थमें किया गया दाह उत्तम होता है। ब्राह्मणोंको नियमपूर्वक यह कार्य मन्त्रसहित विधिपूर्वक करना चाहिये। वे यथाविधि अभिमन्त्रित कुशकी चार पुत्तलिकाओंको बना करके शवके समीपमें रख दें। उसके बाद उन पुत्तलिकाओंके सहित उस शवका दाह-संस्कार करें। तदनन्तर सूतकके समाप्त होनेपर पुत्रको शान्तिकर्म भी करना चाहिये।

जो मनुष्य इन धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रोंमें मरता है, उसको उत्तम गति नहीं प्राप्त होती है। अतएव उसके उद्देश्यसे तिल, गौ, सुवर्ण और घृतका दान विप्रोंको देना चाहिये। ऐसा करनेसे सभी प्रकारके उपद्रवोंका विनाश हो जाता है। अशौचके समाप्त होनेपर मृत प्राणी अपने सत्पुत्रोंसे सद्गति प्राप्त करता है। जो पात्र, पादुका, छत्र, स्वर्ण मुद्रा, वस्त्र तथा दक्षिणा ब्राह्मणको दी जाती है, वह सभी पापोंको दूर करनेवाली है। पञ्चकमें मरे हुए बाल, युवा और वृद्ध प्राणियोंका और्ध्वदेहिक संस्कार प्रायश्चित्तपूर्वक जो मनुष्य नहीं करता है, उसके लिये नाना प्रकारका विघ्न जन्म लेता है।

प्रेतश्राद्धमें अठारह वस्तुएँ त्याज्य होती हैं। यथा— आशीर्वाद, द्विगुण कुश (मोटक), प्रणवका उच्चारण, एकसे अधिक पिण्डदान, अग्नौकरण, उच्छिष्ट श्राद्ध, वैश्वदेवार्चन, विकिरदान, स्वधाका उच्चारण और पितृशब्दोच्चार नहीं करना चाहिये[1]। इस श्राद्धमें 'अनु' शब्दका प्रयोग, आवाहन तथा उल्मुख वर्जित है। आसीमान्तगमन, विसर्जन, प्रदक्षिणा, तिल-होम और पूर्णाहुति तथा बलिवैश्वदेव भी नहीं करना चाहिये। यदि कर्ता ऐसा करता है तो उसे अधोगति प्राप्त होती है[3]।

प्रथम षोडशीको मलिन-श्राद्धके नामसे अभिहित किया जाता है। यथा— मृत्युस्थान, द्वार, अर्धमार्ग, चितामें, (श्मशानवासी प्राणियों एवं पड़ोसियोंके उद्देश्यसे) शवके हाथमें तथा छठा श्राद्ध अस्थि-संचय-कालमें होता है। उसके बाद दस पिण्ड-श्राद्ध जो प्रतिदिन एक-एक करके दस दिन किये जाते हैं, वे भी मलिन-श्राद्धकी कोटिमें आते हैं। इस प्रकार इन्हें प्रथम षोडश श्राद्ध कहा गया है। हे तार्क्ष्य! अन्य मध्यम या द्वितीय षोडशीको भी तुम मुझसे सुनो।

इन षोडश श्राद्धोंकी क्रियामें सबसे पहले विधिवत् एकादश श्राद्ध करना चाहिये। उसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और तत्पुरुषके नामसे पाँच श्राद्ध हों, ऐसा तत्त्वचिन्तकोंने कहा है। हे खगेश! इन षोडश श्राद्धोंके बाद प्रतिमास एक श्राद्धके अनुसार बारह श्राद्ध, ग्यारहवें मासमें ऊनाब्दिक श्राद्ध, त्रिपाक्षिक श्राद्ध, ऊनमासिक और ऊनषाण्मासिक श्राद्ध करनेका विधान है। शव-शोधनके लिये आद्य श्राद्ध करके तथा अन्य त्रिषोडश श्राद्ध करके पितृपंक्तिकी विशुद्धिके लिये पचासवें श्राद्धसे मिलाना चाहिये। जिसका पचासवाँ श्राद्ध नहीं किया गया है, वह पितृपंक्तिमें मिलने योग्य नहीं है। उक्त त्रिषोडश अर्थात् अड़तालीस श्राद्धोंसे मृत प्राणीके प्रेतत्वका विनाश होता है। उनचास श्राद्ध हो जानेपर पंक्तिसंनिध (पितृगणोंका सामीप्य) प्राणीको मिल जाता है। पचासवें श्राद्धसे पितृके साथ संधि-मेलन करना चाहिये।

अब शव-विधि बतायी जाती है। शव-यात्रा प्रारम्भ

१-किन्हीं आचार्योंके मतमें मृत व्यक्तिके अनन्तर उनके अनुयायियोंको 'ये च त्वामनुगच्छन्ति तेभ्यश्च०'—ऐसा उच्चारण करके पिण्डशेषात्र पिण्डके समीपमें दिया जाता है, वह प्रेत-श्राद्धमें नहीं करना चाहिये।

२-श्राद्धमें ब्राह्मण-भोजन करानेके अनन्तर ब्राह्मणके पीछे-पीछे गाँवकी सीमातक जाकर उनकी प्रदक्षिणा करके उनका विसर्जन किया जाता है। यह आसीमान्तगमन प्रेत-श्राद्धमें नहीं करना चाहिये।

३-अष्टादशैव वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् । आशिषो द्विगुणान् दर्भान् प्रणवान् नैकपिण्डताम्॥
अग्नौकरणमुच्छिष्टं श्राद्धं वै वैश्वदैविकम् । विकिरं च स्वधाकारं पितृशब्दं न चोच्चरेत्॥
अनुशब्दं न कुर्वीत नावाहनमथोल्मुकम् । आसीमान्तं न कुर्वीत प्रदक्षिणविसर्जनम्॥
न कुर्यात् तिलहोमं च द्विजः पूर्णाहुतिं तथा । न कुर्याद्विश्वदेवं चेत्कर्ता गच्छत्यधोगतिम्॥ (३५ । २९—३२)

करनेके पूर्व बनायी गयी पालकीमें शवके हाथ-पैर बाँध देना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो वह पिशाच-योनियोंके हाथ पहुँच जाता है। शवको अकेला नहीं छोड़ना चाहिये। यदि उसको अकेला छोड़ दिया जाता है तो दुष्ट योनियोंके स्पर्शसे उसकी दुर्गति होती है। गाँवके मध्य शव विद्यमान है—ऐसा सुननेके बाद इच्छानुसार यदि भोजन कर लिया जाता है तो उस अन्न और जलको क्रमशः मांस तथा रक्त समझना चाहिये। गाँवके बीच शवके रहनेपर ताम्बूल-सेवन, दन्तधावन, भोजन, स्त्री-सहवास तथा पिण्डदान त्याज्य हैं। स्नान, दान, जप, होम, तर्पण और देवपूजनका कार्य करना भी व्यर्थ ही हो जाता है।

हे पक्षिराज! बन्धु-बान्धव और सगे-सम्बन्धियोंके लिये मृतकालमें ऐसा ही उपर्युक्त व्यवहार अपेक्षित है। इस धर्मके त्यागनेसे प्रेत पाप-संलिप्त हो जाता है।

(अध्याय ३५)

तीर्थमरण एवं अनशनव्रतका माहात्म्य, आतुरावस्थाके दानका फल, धनकी एकमात्र गति दान तथा दानकी महिमा

तार्क्ष्यने कहा—हे प्रभो! अनशनव्रतका[1] पुण्य किस कारणसे मनुष्यको अक्षय गति प्रदान करनेमें समर्थ है? यदि प्राणी अपने घरको छोड़कर तीर्थमें जाकर मरता है अथवा तीर्थमें न पहुँचकर मार्गमें या घरमें ही मर जाता है अथवा कुटीचर अर्थात् संन्यास-आश्रमके धर्मको स्वीकार करके प्राण छोड़ देता है तो उसे कौन-सी गति प्राप्त हो सकती है? जो व्यक्ति तीर्थ अथवा घरमें भी रहकर संन्यासीका जीवन व्यतीत करता है, उसकी मृत्यु हुई हो या न हुई हो तो पुत्रको क्या करना चाहिये? हे देव! यदि प्राणीका तत्सम्बन्धी नियम-पालनमें उसके चित्तकी एकाग्रता भंग हो जाती है तो ऐसी परिस्थितिमें उसकी सिद्धि कैसे सम्भव है? यदि उस नियमको पूरा किया जाय अथवा नहीं भी किया जाय तो ऐसी दशामें उस व्यक्तिको सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है?

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! यदि जो कोई भी प्राणी अनशनव्रत करके मृत्युका वरण करता है तो वह मानव-शरीर छोड़कर मेरे समान हो जाता है। निराहारव्रत करते हुए वह जितने दिन जीवित रहेगा, उतने दिन उसके लिये समग्र श्रेष्ठ दक्षिणासहित सम्पन्न किये गये यज्ञोंके समान हैं। यदि मनुष्य संन्यास-धर्मको स्वीकार करके तीर्थ अथवा घरमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है तो उस अवधिमें वह प्रतिदिन पूर्वोक्त पुण्यका दुगुना फल प्राप्त करता है। शरीरमें महाभयंकर रोगके हो जानेपर अनशनव्रत करके जो मृत्युको प्राप्त करता है, पुनर्जन्म होनेपर उसके शरीरमें रोगकी उत्पत्ति नहीं होती है। वह देवतुल्य सुशोभित होता है। जो मनुष्य रुग्णावस्थामें संन्यास ग्रहण कर लेता है, वह इस दुःखमय अपार संसार-सागरकी भूमिपर पुनः जन्म नहीं लेता है। प्रतिदिन यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन, तिल-पात्र और दीपकका दान एवं देवपूजनका कर्म करना चाहिये। इस प्रकारका आचरण जो व्यक्ति करता है, उसके छोटे-बड़े सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं। वह मृत्युके बाद सभी महर्षियोंके द्वारा प्राप्त की जानेवाली मुक्तिका संवरण करता है। अतः यह अनशनव्रत मनुष्योंको वैकुण्ठपद प्रदान करनेवाला है। इसलिये प्राणी स्वस्थ हो या न हो, उसे इस मोक्षदायक व्रतका पालन अवश्य करना चाहिये।

जो मनुष्य पुत्र और धन-दौलतका परित्याग करके तीर्थयात्रापर चल देता है, उसके लिये ब्रह्मादि देवगण तुष्टि-पुष्टिदायक बन जाते हैं। जो व्यक्ति तीर्थके सामने उपस्थित होकर अनशनव्रत करता है, वह यदि उसी मध्यावधिमें मृत्युको भी प्राप्त कर ले तो उसका वास सप्तर्षिमण्डलके बीच निश्चित है। यदि अनशनव्रत करके प्राणी अपने घरमें भी मर जाता है तो वह अपने कुलोंको छोड़कर अकेले स्वर्गलोकमें जाकर विचरण करता है। यदि मनुष्य अन्न और जलका त्याग करके विष्णुके चरणोदकका पान करता है तो वह इस पृथ्वीपर पुनर्जन्म नहीं लेता है। अपने प्रयत्नसे तीर्थमें गये हुए उस प्राणीकी रक्षा वनदेवता करते हैं। विशेष बात यह है कि यमदूत और यमलोककी यातनाएँ उसके

---

[1] -मृत्युका निश्चय होनेपर तीन या चार दिन अन्न-जलका सर्वथा परित्याग अनशन है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि यह अनशन आत्महत्या न होकर व्रत है।

संनिकटतक नहीं आ पाती हैं। जो व्यक्ति पापोंसे दूर रहता हुआ तीर्थवास करता है, यदि वह वहाँपर मृत्युको प्राप्त करे और उसका शवदाह हो तो वह उस तीर्थके फलका भागीदार होता है। सदैव तीर्थसेवन करनेपर भी प्राणी यदि किसी दूसरे स्थानपर मरता है तो वह श्रेष्ठ कुल और उत्तम देशमें जन्म लेकर एक विद्वान् वेदज्ञ ब्राह्मण होता है। हे तार्क्ष्य! यदि निराहारव्रत करके भी मनुष्य पुनः जीवित रहता है तो ब्राह्मणोंको बुलाकर जो कुछ उसके पास हो वह सर्वस्व उन्हें दानमें दे दे। ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर वह चान्द्रायणव्रतका पालन करे, सदा सत्य बोले और धर्मका ही आचरण करे।

मृत्युके उद्देश्यसे तीर्थमें जाकर कोई भी मनुष्य पुनः अपने घर वापस आ जाता है तो वह ब्राह्मणोंकी आज्ञा प्राप्त करके प्रायश्चित्त करे। स्वर्ण, गौ, भूमि, हाथी और घोड़ेका दान करके जो मनुष्य मृत्युकालमें तीर्थमें पहुँच जाय, वह भाग्यवान् है। मरण-कालके संनिकट होनेपर घरसे तीर्थके लिये प्रस्थान करनेवाले व्यक्तिको पग-पगपर गोदानका फल प्राप्त होता है, यदि उससे हिंसा न हो। घरमें जो पाप किया गया है, वह तीर्थ-स्नानसे शुद्ध हो जाता है। परंतु यदि प्राणी तीर्थमें पाप करता है तो वह वज्रलेपके समान हो जाता है[1]। जबतक सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र आकाशमें विद्यमान रहते हैं, तबतक वह निस्संदेह कष्ट झेलता है। वहाँपर दिये गये दानोंका फल प्राप्त नहीं होता है। आतुरावस्थामें निर्धन प्राणियोंको विशेष रूपसे गौ, तिल, स्वर्ण तथा सप्तधान्यका दान करना चाहिये।

दान देनेवाले पुरुषको देखकर सभी स्वर्गवासी देवता, ऋषि तथा चित्रगुप्तके साथ धर्मराज प्रसन्न होते हैं। जबतक अपने द्वारा अर्जित धन है, तबतक ब्राह्मणको उसका दान देना चाहिये; क्योंकि मरनेपर वह सब पराधीन ही हो जायगा[2]। वैसी स्थितिमें दयावान् बन करके भला कौन दान देगा? मृत पिताके पारलौकिक सुखके उद्देश्यसे जो पुत्र ब्राह्मणको दान देता है, उससे वह पुत्र-पौत्र और प्रपौत्रोंके साथ धनवान् हो जाता है। पिताके निमित्त दिया गया दान सौ गुना, माताके लिये हजार गुना, बहनके लिये दस हजार गुना, सहोदर भाईके लिये किया गया दान असंख्य गुना पुण्य प्रदान करनेवाला होता है। यदि लोभ, प्रमाद अथवा व्यामोहसे ग्रसित होकर लोग अपने मृतकोंके लिये दान नहीं देते हैं तो सभी मरे हुए प्राणी यह सोचते हैं कि मेरे परिवारके सगे सम्बन्धी कंजूस और पापी हैं। अत्यन्त कष्टसे अर्जित और स्वभावतः चञ्चल धनकी गति मात्र एक ही है और वह है दान। उसकी दूसरी गति तो विपत्ति ही है[3]।

यह मेरा पुत्र है, ऐसा समझकर पुत्रसे प्रेम करनेवाले अपने पतिको देख करके जिस प्रकार दुराचारिणी स्त्री उसका उपहास करती है, उसी प्रकार मृत्यु शरीरके रक्षक और पृथ्वी धनके रक्षकका उपहास करती है। हे तार्क्ष्य! जो मनुष्य उदार, धर्मनिष्ठ तथा सौम्य स्वभावसे युक्त है, वह अपार धन प्राप्त करके भी अपनेको तथा धनको तिलके समान तुच्छ मानता है। ऐसे उदात्त चरित्रवाले श्रेष्ठ पुरुषको अर्थोपद्रव नहीं होता है, उसको किसी प्रकारका मोहजाल अपने चक्करमें नहीं जकड़ पाता है। मृत्युकालमें यमदूतोंके द्वारा उत्पन्न किया गया किसी प्रकारका भय उसके सामने टिकनेमें समर्थ नहीं होता है।

हे काश्यप! धर्मकी रक्षा या किसीके उद्देश्यसे जलमें डूब करके प्राणोत्सर्ग करनेसे सात हजार वर्ष, अग्निमें कूदकर आत्मदाह करनेपर ग्यारह हजार वर्ष, वायुके वेगमें जीवनलीला समाप्त करनेपर सोलह हजार वर्ष, युद्धभूमिमें वीरगति प्राप्त करनेपर साठ हजार वर्ष तथा गोरक्षार्थ मरण होनेपर अस्सी हजार वर्षतक स्वर्गकी प्राप्ति होती है, किंतु निराहारव्रतका पालन करते हुए प्राणोंका परित्याग करनेपर व्यक्तिको अक्षयगतिका लाभ होता है[4]। (अध्याय ३६)

१-गृहात् प्रचलितस्तीर्थं मरणे समुपस्थिते। पदे पदे तु गोदानं यदि हिंसा न जायते॥
गृहे तु यत् कृतं पापं तीर्थस्नानेन शुध्यति। कुरुते तत्र पापं चेद्वज्रलेपसमं हि तत्॥ (३६। २४-२५)

२-आत्मायत्तं धनं यावत् तावद् विप्रे समर्पयेत्। पराधीनं मृते सर्वं कृपया कः प्रदास्यति॥ (३६। २९)

३-पितुः शतगुणं दत्तं सहस्रं मातुरुच्यते। भगिन्या शतसाहस्रं सोदर्ये दत्तमक्षयम्॥
यदि लोभान्न यच्छन्ति प्रमादान्मोहतोऽपि वा। मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्याः पापिनस्त्विति॥
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च। गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः॥ (३६। ३१—३३)

४-समाः सहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ पवने च षोडश। महाहवे षष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशके काश्यप चाक्षया गतिः॥ (३६। ३७)

और्ध्वदैहिककर्ममें उदकुम्भदानका माहात्म्य

तार्क्ष्यने कहा—हे जनार्दन! जिस प्रकारसे जलपूर्ण कुम्भका दान करना चाहिये, उसका वर्णन करें। यह कार्य किस विधिसे करना चाहिये? इसके लक्षण कैसे हैं? इसकी पूर्ति कैसे होती है? इसको किसे देना चाहिये? प्रेतोंको संतुष्टि प्रदान करनेमें समर्थ इन कुम्भोंका दान किस कालमें उचित है? यह बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! जलपूर्ण कुम्भदानके विषयमें पुन: मैं तुम्हें भली प्रकारसे बता रहा हूँ। हे महापक्षिन्! अन्न और जलसे परिपूर्ण कुम्भोंका दान प्रेतके उद्देश्यसे देना चाहिये। यह दान विशेषरूपसे प्रेतके लिये मुक्तिदायक है।

बारहवें दिन, छठे मास, त्रिपक्ष और वार्षिक श्राद्धके दिन विशेषरूपसे जीवको यममार्गमें सुख प्रदान करनेके लिये उदकुम्भ देना चाहिये। गोबरसे भलीभाँति लीपकर स्वच्छ बनायी गयी भूमिपर प्रतिदिन तिल या पक्वान्नसे युक्त जलपूर्ण कुम्भका दान देना चाहिये। उसी स्थानपर प्रेतके निमित्त स्वेच्छासे उस पात्रका दान भी दे देना चाहिये। उससे प्रसन्न होकर प्रेत यमदूतोंके साथ चला जाता है।

प्रेतके द्वादशाह-संस्कारके अवसरपर जलपूरित कुम्भोंका दान विशेष महत्त्व रखता है। यजमान उस दिन बारह जल-भरे घटोंका संकल्प करके दान करे। उसी दिन वह पक्वान्न और फलसे परिपूर्ण एक वर्द्धनी (विशेष प्रकारका जलपात्र) भगवान् विष्णुके लिये संकल्प करके सुयोग्य एवं सच्चरित्र ब्राह्मणको प्रदान करे। तदनन्तर वह एक वर्द्धनी, पक्वान्न तथा फल धर्मराजको समर्पित करे। उससे संतुष्ट होकर धर्मराज उस प्रेतको मोक्ष प्रदान करते हैं। उसी समय एक वर्द्धनी चित्रगुप्तके लिये दानमें देना चाहिये। उसके पुण्यसे प्रेत वहाँ पहुँचकर सुखी रहता है।

अपने मृत पिताके कल्याणार्थ उड़द और जलसे पूर्ण सोलह घटोंका दान दे। उसका विधान यह है कि उत्क्रान्ति श्राद्धसे लेकर षोडश श्राद्धतकके लिये सोलह ब्राह्मणोंको एक-एक घट दानमें दिया जाय। एकादशाहसे लेकर वर्षपर्यन्त प्रतिदिन नियमपूर्वक पक्वान्न एवं जलसे पूर्ण एक घटका दान देय है। हे खगेश्वर! यह बात तो उचित है कि जलपूर्ण पात्र और पक्वान्नपूरित बड़े घटोंका दान नित्य दिया जाय, किंतु वहींपर एक वर्द्धनी (कलश) ऐसी होनी चाहिये जिसके ऊपर बाँस-निर्मित पात्रमें मिष्टान्न रखकर पितृका आह्वान करके कुंकुम, अगुरु आदि सुगन्धित पदार्थोंसे उनका पूजन करे। तत्पश्चात् वस्त्राच्छादन करके विधिवत् संकल्पपूर्वक वैदिक धर्माचरणसे परिपूर्ण कुलीन ब्राह्मणको नित्य ऐसे एक-एक घट दान दे। यह दान विद्या और सदाचारसे युक्त ब्राह्मणको ही देना चाहिये। कभी मूर्खको यह दान न दे, क्योंकि वेदसम्मत आचार-विचारवाला ब्राह्मण यजमान और स्वयंका भी उद्धार करनेमें समर्थ है। (अध्याय ३७) [शेष पृ० ४७४ से]

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

निखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं त्वतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुष्पैः।
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विशतु हृदयपद्मे सर्वसाक्षी चिदात्मा॥

वर्ष ७४

गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०५६, श्रीकृष्ण-सं० ५२२५, फरवरी २०००ई०

संख्या २

पूर्ण संख्या ८७९

धर्मराजको बारम्बार नमस्कार है

धर्मराज नमस्तेऽस्तु यमराज नमोऽस्तु ते।
दक्षिणाशाय ते तुभ्यं नमो महिषवाहन॥
चित्रगुप्त नमस्तुभ्यं विचित्राय नमो नमः।
नरकार्तिप्रशान्त्यर्थं कामान् यच्छ ममेप्सितान्॥

हे धर्मराज! आपको नमस्कार है। यमराज! आपको नमस्कार है। हे दक्षिण दिशाके स्वामी! आपको नमस्कार है। हे महिषवाहन देवता! आपको नमस्कार है। हे चित्रगुप्त! आपको नमस्कार है। नरककी पीड़ा शान्त करनेके लिये 'विचित्र' नामसे प्रसिद्ध आपको नमस्कार है। आप मेरी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण करें।

धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प

[विशेषाङ्क पृ० ४७२ से आगे]

तीर्थमरणकी महिमा, अन्त समयमें भगवन्नामकी महिमा, शालग्रामशिला तथा तुलसीकी सन्निधिमें मरणका फल, मुक्तिदायक तथा स्वर्गदायक प्रशस्त कर्म, इष्टापूर्तकर्म तथा अनाथ प्रेतके संस्कारका माहात्म्य

तार्क्ष्यने कहा—हे प्रभो! दान एवं तीर्थ करनेवालेको स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है। अब आप इसका ज्ञान मुझे करायें। हे स्वामिन्! किस दान और तीर्थ-सेवनसे मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है? किस दान एवं तीर्थके पुण्यसे प्राणी चिरकालतक स्वर्गमें रह सकता है? क्या करनेसे वह स्वर्गलोक एवं सत्यलोकसे तेजोलोकमें जाता है। किस पापसे मनुष्य नाना प्रकारके नरकोंमें डूबता रहता है। हे भक्तोंको मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान् जनार्दन! आप मुझको यह भी बतानेकी कृपा करें कि कहाँपर मृत्यु होनेसे प्राणीको स्वर्ग और मोक्ष भी प्राप्त होता है, जिससे कि पुनर्जन्म नहीं होता।

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! भारतवर्षमें मानवयोनि तेरह जातियोंमें विभक्त है। यदि उसको प्राप्त करके मनुष्य अपने अन्तिम जीवनका उत्सर्ग तीर्थमें करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका और द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं।[1] प्राणोंके कण्ठगत हो जानेपर 'मैं संन्यासी हो गया'—ऐसा जो कह दे तो मरनेपर विष्णुलोक प्राप्त करता है। पुनः पृथ्वीपर उसका जन्म नहीं होता।

जो मनुष्य मृत्युके समय एक बार 'हरि' इस दो अक्षरका उच्चारण कर लेता है, वह मानो मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कटिबद्ध हो गया है। जो मनुष्य प्रतिदिन 'कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण'—यह कहकर मेरा स्मरण करता है, उसको मैं नरकसे उसी प्रकार निकाल देता हूँ जिस प्रकार जलका भेदन कर कमल ऊपर निकल जाता है। जहाँपर शालग्राम शिला है या जहाँपर द्वारवती शिला है किंवा जहाँपर इन दोनों शिलाखण्डोंका संगम है, वहाँ प्राणीको मुक्ति निस्संदेह ही प्राप्त होती है। समस्त पाप एवं दोषोंका विनाश करनेवाली शालग्राम शिला जहाँ विद्यमान है, वहाँ उसके सांनिध्यमें मृत्यु होनेसे जीवको निस्संदेह मोक्ष मिलता है—

मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते क्षितौ।
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्॥
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति।
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः॥
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्।
शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवती शिला॥
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः।
शालग्रामशिला यत्र पापदोषक्षयावहा॥
तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिर्जन्तोः सुनिश्चिता।

(३८।७—११)

हे खग! तुलसीका वृक्ष लगाने, पालन करने, सींचने, ध्यान-स्पर्श और गुणगान करनेसे मनुष्योंके पूर्व जन्मार्जित पाप जलकर विनष्ट हो जाते हैं—

रोपणात् पालनात् सेकाद्ध्यानस्पर्शनकीर्तनात्।
तुलसी दहते पापं नृणां जन्मार्जितं खग॥

(३८।११)

राग-द्वेषरूपी मलको दूर करनेमें समर्थ, ज्ञानरूपी जलाशयके सत्यरूपी जलसे युक्त मानसतीर्थमें जिस मनुष्यने स्नान कर लिया है, वह कभी पापोंसे संलिप्त नहीं होता। देवता कभी काष्ठ और पत्थरकी शिलामें नहीं रहते, वे तो प्राणीके भावमें विराजमान रहते हैं। इसलिये सद्भावसे युक्त भक्तिका सम्यक् आचरण करना चाहिये—

ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकैः॥
न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां कदाचन।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावं समाचरेत्॥

(३८।१२-१३)

मछुआरे प्रतिदिन प्रातःकाल जाकर नर्मदा नदी (पुण्य तीर्थ)-का दर्शन करते हैं; किंतु वे शिवलोक नहीं पहुँच पाते हैं; क्योंकि उनकी चित्तवृत्ति बलवान् होती है। मनुष्योंके चित्तमें जैसा विश्वास होता है, वैसा ही उन्हें अपने कर्मोंका फल प्राप्त होता है। वैसी ही उनकी परलोक-गति होती है।

ब्राह्मण, गौ, स्त्री और बालककी हत्या रोकनेके लिये

---

१. अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका॥ पुरी द्वारवती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः। (३८।५-६)

जो व्यक्ति अपने प्राणोंका बलिदान करनेमें तत्पर रहता है, उसे मोक्ष प्राप्त होता है—

ब्राह्मणार्थे गवार्थे च स्त्रीणां बालवधेषु च।
प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

(३८।१६)

जो निराहार व्रतके द्वारा मृत्यु प्राप्त करता है, उसे भी मुक्ति प्राप्त होती है। वह सभी बन्धनोंसे निर्मुक्त हो जाता है। ब्राह्मणोंको दान देनेसे मनुष्य मोक्षको प्राप्त कर सकता है।

हे गरुड! सभी प्राणियोंके लिये जैसे मोक्षमार्ग हैं, वैसे ही स्वर्गके मार्ग भी हैं। यथा—गोशालामें, देश-विध्वंस होनेपर, युद्धभूमि एवं तीर्थस्थलमें मृत्यु श्रेयस्कर है। प्राणी वहाँ अपने शरीरका परित्याग करके चिरकालतक स्वर्गवासका लाभ ले सकता है। पण्डितको जीवन और मरण इन दो तत्त्वोंपर ही ध्यान देना चाहिये। अतः वे दान तथा भोगसे जीवन धारण करें और युद्धभूमि एवं तीर्थमें मृत्युको प्राप्त करें। जो मनुष्य हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, भृगुक्षेत्र, प्रभास, श्रीशैल, अर्बुद (आबू पर्वत), त्रिपुष्कर तथा शिवक्षेत्रमें मरता है, वह जबतक ब्रह्माका एक दिन पूरा नहीं हो जाता, तबतक स्वर्गमें रहता है। उसके बाद वह पुनः पृथ्वीपर आ जाता है। जो व्यक्ति सच्चरित्र ब्राह्मणको एक वर्षतक जीवन-निर्वाहके लिये अन्न-वस्त्रादिका दान देता है, वह सम्पूर्ण कुलका उद्धार करके स्वर्गलोकमें निवास करता है।

जो अपनी कन्याका विवाह वेदपारंगत ब्राह्मणके साथ करता है, वह अपने कुल-परिवारके सहित इन्द्रलोकमें निवास करता है। महादानोंको देकर भी मनुष्य ऐसा ही फल प्राप्त करता है। वापी, कूप, जलाशय, उद्यान एवं देवालयोंका जीर्णोद्धार करनेवाला पूर्व कर्ताकी भाँति फल प्राप्त करता है अथवा जीर्णोद्धारसे कर्ताका पुण्य दुगुना हो जाता है। जो मनुष्य विद्वान् ब्राह्मणके परिवारकी शीत, वायु और धूपसे रक्षा करनेके लिये घास, फूस और पत्तोंसे बनी झोपड़ीका दान देता है, वह साढ़े तीन करोड़ वर्षतक स्वर्गमें निवास करता है।

जो सवर्णा सती स्त्री अपने मृत पतिका अनुगमन करे, वह मृत्युके बाद शरीरमें रोमोंकी जितनी संख्या है, उतने वर्षोंतक स्वर्गका भोग करती है। पुत्र-पौत्रादिका परित्याग करके जो अपने पतिका अनुगमन करती है, वे दोनों पति-पत्नी दिव्य स्त्रियोंसे अलंकृत होकर स्वर्गका सुख-वैभव प्राप्त करते हैं। सदैव पतिसे द्रोह रखनेवाली स्त्री अनेक प्रकारके पापोंको करके भी जब मरे हुए उस पतिका अनुगमन चितापर चढ़कर करती है तो उन सभी पापोंको धो डालती है। यदि किसी सच्चरित्र नारीका पति महापापोंका आचरण करता हुआ दुष्कर्मी बन जाता है तो वह स्त्री अपने सदाचरणसे उसके सभी पापोंको विनष्ट कर देती है।

जो व्यक्ति नियमपूर्वक प्रतिदिन मात्र एक ग्रास भोजनका दान करता है, वह चार चामरसे युक्त दिव्य विमानपर चढ़कर स्वर्गलोक जाता है। जिस मनुष्यके द्वारा आजीवन पाप-कर्म किया गया है, वह ब्राह्मणको एक वर्षके लिये जीवन-निर्वाहकी वृत्ति देकर उस पापको विनष्ट कर देता है। विप्र-कन्याका विवाह करानेवाला व्यक्ति भूत, भविष्य और वर्तमानके तीनों जन्मके अर्जित पापोंको नष्ट कर देता है।

दस कूपके समान एक बावली होती है। दस बावलीके समान सरोवर होता है और दस सरोवरके समान पुण्य-शालिनी वह प्रपा (पौंसरा) होती है। जो वापी जलरहित वन एवं देशमें बनवायी जाती है और जो दान निर्धन ब्राह्मणको दिया जाता है तथा प्राणियोंपर जो दया की जाती है, उसके पुण्यसे कर्ता स्वर्गलोकका नायक बन जाता है।[1]

इसी प्रकार अन्य बहुत-से सुकृत हैं, जिनको करके मनुष्य स्वर्गलोकका भागी होता है। वह उन सभी पुण्योंके फलको ग्रहण करके परम प्रतिष्ठाको प्राप्त करता है।

व्यर्थके कार्योंको छोड़कर निरन्तर धर्माचरण करना चाहिये। इस पृथ्वीपर दान, दम और दया—ये ही तीन सार हैं। दरिद्र, सज्जन ब्राह्मणको दान, निर्जन प्रदेशमें स्थित शिवलिङ्गका पूजन और अनाथ प्रेतका संस्कार—करोड़ों यज्ञका फल प्रदान करता है—

फल्गु कार्यं परित्यज्य सततं धर्मवान् भवेत्।
दानं दमो दया चेति सारमेतत् त्रयं भुवि॥
दानं साधोर्दरिद्रस्य शून्यलिंगस्य पूजनम्।
अनाथप्रेतसंस्कारः कोटियज्ञफलप्रदः॥

(३८।३९-४०)

(अध्याय ३८)

१-दशकूपसमा वापी दशवापीसमं सरः। सरोभिर्दशभिस्तुल्या या प्रपा निर्जले वने॥
या वापी निर्जले देशे यद्दानं निर्धने द्विजे। प्राणिनां यो दयां धत्ते स भवेन्नाकनायकः॥ (३८।३६-३७)

आशौचकी व्यवस्था

तार्क्ष्यने कहा—हे प्रभो! चित्तमें शुचित्व और अशुचित्वके विवेकके लिये और जनहितार्थ आप मुझपर दया करके सूतक-विधिका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षीन्द्र! मृत्यु तथा जन्म होनेपर चार प्रकारका सूतक होता है, सामान्यतः जो चारों वर्णोंके द्वारा यथाविधि दूर करनेके योग्य है। जननाशौच और मरणाशौच होनेपर दस दिनोंतक उस कुलका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। इस कालमें दान, प्रतिग्रह, होम और स्वाध्याय बंद हो जाता है। देश, काल, आत्मशक्ति, द्रव्य, द्रव्यप्रयोजन, औचित्य तथा वयको जान करके ही अशौच-कर्मके विहित नियमोंका पालन करना चाहिये।

गुफा और अग्निमें प्रवेश तथा देशान्तरमें जाकर मरे हुए परिजनोंका अशौच तत्काल वस्त्रसहित स्नान करनेसे समाप्त हो जाता है। जो प्राणी गर्भस्राव या गर्भसे निकलते ही मर जाते हैं, उनका अग्निदाह, अशौच एवं तिलोदक संस्कार नहीं होता है। शिल्पी, विश्वकर्मा, वैद्य, दासी, दास, राजा और श्रोत्रिय ब्राह्मणोंकी सद्यः शुद्धि बतायी गयी है। याज्ञिक (व्रतपरायण), मन्त्रपूत, अग्निहोत्री तथा राजा सदैव शुद्ध होते हैं। इन्हें अशौच नहीं होता है। राजागण जिसकी इच्छा करते हैं, वह भी पवित्र ही रहता है।

हे द्विज! बच्चेका जन्म होनेपर सपिण्डों और सगोत्रियोंको एक-जैसा अशौच नहीं होता। दस दिनके बाद माता शुद्ध हो जाती है और पिता तत्काल स्नान करके ही स्पर्शादिके लिये पवित्र हो जाता है। मनुने कहा है कि विवाहोत्सव तथा यज्ञके आयोजनमें यदि जन्म या मृत्युका सूतक हो जाता है तो पूर्व मानस संकल्पित धन और पूर्वनिर्मित खाद्यसामग्रीका उपयोग करनेमें दोष नहीं है। सभी वर्णोंके लिये अशौच समानरूपसे माननीय है। माता-पिताको जो सूतक होता है, उसमें माताके लिये तो सूतक होता है और पिता स्नान करके तुरंत शुद्ध हो जाता है। दस दिनके लिये प्रवृत्त जननाशौच और मरणाशौचके अन्तर्गत यदि पुनः जन्म-मरण हो जाता है, तो पूर्वप्रवृत्त अशौचको तीन भागोंमें विभक्त करके यदि पुनर्जन्म-मरण दो भागके अन्तर्गत हुआ है तो पूर्व अशौचकी निवृत्तिके दिनसे उत्तराशौचकी भी निवृत्ति हो जायगी। किंतु यदि पूर्वप्रवृत्त अशौचके तीसरे भागमें पुनराशौच प्रवृत्त हुआ है तो उत्तराशौचमें प्रवृत्तिके समाप्तिपर ही यदि सूतक दशाहके बीच पुनः किसी सगोत्रीका मरण या जन्म होता है तो इस अशौचकी जबतक शुद्धि नहीं होती तबतक अशौच रहता है।[1]

ऋषियोंने कहा है कि मनमें दान देनेकी भावना उत्पन्न हो जानेपर समय जैसा भी हो दीन-दुःखी ब्राह्मणको विनम्रतापूर्वक दान देना चाहिये, उसमें दोष नहीं होता है।

अशौच होनेपर मनुष्य पहले मिट्टीके पात्रसे तिलमिश्रित जलका स्नानकर शरीरपर मिट्टीका लेप करे, तत्पश्चात् स्वच्छ जलसे पुनः स्नान करके शुद्ध हो।

अशौचके बाद दान सभासदको देना चाहिये। सुवर्ण, गौ और वृषका दान ब्राह्मणको देना चाहिये। ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रिय दुगुना, वैश्य तिगुना तथा शूद्र चौगुना धन ब्राह्मणको दान दे। गृह्यसूत्रोक्त संस्कारसे रहित होनेपर सातवें अथवा आठवें वर्षमें मृत्यु हो जाय तो जितने वर्षका वह मृतक व्यक्ति था उतने दिनका अशौच मानना चाहिये। ब्राह्मण और स्त्रीकी रक्षाके लिये जो अपने प्राणोंका परित्याग करते हैं तथा जो लोग गोशाला तथा रणभूमिमें प्राणोंका परित्याग करते हैं, उनका अशौच एक रात्रिका होता है। जो नरश्रेष्ठ अनाथ प्रेतका संस्कार करते हैं, उन ब्राह्मणोंका किसी शुभ कर्ममें कुछ भी अशुभ नहीं होता है। ब्राह्मणके सहयोगसे अन्य वर्णवाले जो इस कर्मको सम्पन्न करते हैं, उनका भी कुछ अशुभ नहीं होता है। स्नान करनेसे उनकी सद्यः शुद्धि हो जाती है।

अशौचसे विधिवत् शुद्ध होकर जब शूद्र जलके मध्य स्नान कर रहे हों तभी ब्राह्मणको उन्हें देखना चाहिये।

(अध्याय ३९)

१-आद्यं भागद्वयं यावत् सूतकस्य तु सूतके। द्वितीये पतिते त्वाद्यात् सूतकाच्छुद्धिरिष्यते॥ (ब्रह्मपुराण)

दुर्मृत्यु होनेपर सद्गतिलाभके लिये नारायण-बलिका विधान

तार्क्ष्यने कहा—भगवन्! किन्हीं ब्राह्मणोंकी अपमृत्यु होती है, उनका पारलौकिक मार्ग कैसा है? उन्हें वहाँ कैसा स्थान प्राप्त होता है? उनकी कौन-सी गति होती है? उनके लिये क्या उचित है और क्या विधान है? हे मधुसूदन! मैं उन सभी बातोंको सुनना चाहता हूँ। कृपया आप उनका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे गरुड! जो ब्राह्मण विकृत मृत्युके कारण प्रेत हो गये हैं, उनके मार्ग, पारलौकिक गति, स्थान और प्रेतकर्म-विधानको मैं कह रहा हूँ। यह परम गोपनीय है, इसे तुम सुनो। जो ब्राह्मण खाई, नदी, नाला लाँघते हुए और सर्प आदिके काटनेसे मर जाते हैं, जिनकी मृत्यु गला दबाने तथा जलमें डुबानेसे होती है, जो दुर्बल ब्राह्मण हाथीकी सूँड़के प्रहारसे, विषपानसे, क्षीण होकर, अग्निदाह, साँड़-प्रहार तथा विषूचिका (हैजा) रोगसे मरते हैं, जिनके द्वारा आत्महत्या कर ली जाती है, जो गिरकर, फाँसी लगाकर और जलमें डूबकर मर जाते हैं, उनकी स्थितिको तुम सुनो।

जो ब्राह्मण म्लेच्छादि जातियोंद्वारा मारे जाते हैं, वे घोर नरक प्राप्त करते हैं। जो कुत्ता, सियारादिके स्पर्श, दाह-संस्काररहित, कीटाणुओंसे परिव्याप्त, वर्णाश्रम-धर्मसे दूर और महारोगोंसे पीड़ित होकर मरते हैं, दोषसिद्ध, व्यङ्ग्यपूर्ण बात, पापियोंके द्वारा प्रदत्त अन्नका सेवन करते हैं, चाण्डाल, जल, सर्प, ब्राह्मण, विद्युत्-निपात, अग्नि, दन्तधारी पशु तथा वृक्षादि पतनके कारण जिनकी अपमृत्यु होती है, जो रजस्वला, प्रसवा, शूद्रा और धोबिनके सहवाससे दोषयुक्त हो गये हैं, वे सभी उस पापसे नरक-भोग करके प्रेतयोनि प्राप्त करते हैं। परिजनोंको उनका दाह-संस्कार, अशौच-निवृत्ति एवं जलक्रियाका कर्म नहीं करना चाहिये। हे तार्क्ष्य! ऐसे पापियोंका नारायणबलिके बिना मृत्युका आद्य कर्म, और्ध्वदैहिक कर्म भी नहीं करना चाहिये।

हे पक्षिराज! सभी प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये पाप और भयको दूर करनेवाली उस नारायणबलिके विधानको सुनो। छः मासकी अवधिमें ब्राह्मण, तीन मासमें क्षत्रिय, डेढ़ मासमें वैश्य तथा शूद्रकी तत्काल दाह (पुत्तलिका-दाह)-क्रिया करनी चाहिये। गङ्गा, यमुना, नैमिष, पुष्कर, जलपूर्ण तालाब, स्वच्छ जलयुक्त गम्भीर जलाशय, बावली, कूप, गोशाला, घर या मन्दिरमें भगवान् विष्णुके सामने ब्राह्मण इस नारायणबलिको सम्पन्न करायें। पौराणिक और वैदिक मन्त्रोंसे प्रेतका तर्पण किया जाय। इसके बाद यजमान सभी औषधियोंसे युक्त जल तथा अक्षत लेकर विष्णुका भी तर्पण पुरुषसूक्त अथवा अन्य वैष्णवमन्त्रोंसे करके दक्षिणाभिमुख होकर प्रेतका विष्णुरूपमें इस मन्त्रसे ध्यान करे—

> अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥
> अव्ययः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत्।
> (४०।१७-१८)

अनादि, अनन्त, शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले अव्ययदेव पुण्डरीकाक्ष भगवान् प्रेतको मोक्ष प्रदान करें।

तर्पण समाप्त हो जानेके पश्चात् रागमुक्त, ईर्ष्या-द्वेष-रहित, जितेन्द्रिय, पवित्र, धर्मपरायण, दानधर्ममें संलग्न, शान्तचित्त, एकाग्रचित्त होकर भगवान् विष्णुको प्रणाम करके तथा वाणीपर संयम रखते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ यजमान शुद्ध हो। उसके बाद भक्तिपूर्वक वहाँ एकादश श्राद्ध करे। समाहित होकर जल, धान, यव, साठी धान, गेहूँ, कंगनी (टाँगुन), शुभ हविष्यान्न, मुद्रा, छत्र, पगड़ी, वस्त्र, सभी प्रकारके धान्य, दूध तथा मधुका दान ब्राह्मणको दे। वस्त्र और पादुकासे युक्त आठ प्रकारके पददान बिना पंक्तिभेद किये (समानरूपसे) सभी ब्राह्मणोंको इस अवसरपर देना चाहिये।

पृथ्वीपर पिण्डदान हो जानेके पश्चात् शङ्खपात्र तथा ताम्रपात्रमें पृथक्-पृथक् गन्ध-अक्षत-पुष्पयुक्त तर्पण करे। ध्यान-धारणासे एकाग्र मन हो, घुटनोंके बल पृथ्वीपर टिक करके, वेद-शास्त्रोंके अनुसार सभी ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्धमें ऋचाओंसे पृथक्-पृथक् अर्घ्य देना चाहिये। उस समय '**आपोदेवीर्मधुमती०**' इत्यादि मन्त्रसे पहले पिण्डपर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। उसके बाद '**उपयाम गृहीतोऽसि०**' इस मन्त्रसे दूसरे, '**येनापावक चक्षुषा०**' मन्त्रसे तीसरे, '**ये देवासः०**' मन्त्रसे चौथे, '**समुद्रं गच्छ०**' मन्त्रसे पाँचवें, '**अग्निर्ज्योति०**' मन्त्रसे छठे, '**हिरण्यगर्भ०**' मन्त्रसे सातवें, '**यमाय०**' मन्त्रसे आठवें, '**यज्जाग्र०**' मन्त्रसे नवें, '**या फलिनी०**' मन्त्रसे दसवें तथा '**भद्रं कर्णेभिः०**' मन्त्रसे ग्यारहवें पिण्डपर अर्घ्य प्रदान करके उनका विसर्जन करे।

एकादशदैवत्य श्राद्ध करके दूसरे दिन श्राद्ध आरम्भ करे। उस दिन चारों वेदके ज्ञाता, विद्याशील और

सद्गुण-सम्पन्न, वर्णाश्रम-धर्मपालक, शीलवान्, श्रेष्ठ, अविकल अङ्गोंवाले प्रशस्त और कभी त्याज्य न होनेयोग्य उत्तम पाँच ब्राह्मणोंका आवाहन करे। तदनन्तर सुवर्णसे विष्णु, ताम्रसे रुद्र, चाँदीसे ब्रह्मा, लोहेसे यम, सीसा अथवा कुशसे प्रेतकी प्रतिमा बनवा करके **'शन्नोदेवी०'** इस मन्त्रसे विष्णुदेवको पश्चिम दिशामें, **'अग्न आयाहि०'** मन्त्रसे रुद्रको उत्तर दिशामें, **'अग्निमीळे'** मन्त्रसे ब्रह्माको पूर्व दिशामें, **'इषेत्वोर्जेत्वा०'** मन्त्रसे यमको दक्षिण दिशामें तथा मध्यमें मण्डल बनाकर कुशमय नर स्थापित करना चाहिये।

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और प्रेत—इन पाँचोंके लिये पञ्चरत्नयुक्त कुम्भ अलग-अलग रखे। इन सभी देवताओंके लिये पृथक्-पृथक् रूपसे वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा मुद्रा प्रदान करे एवं पृथक्-पृथक् तत्तन्मन्त्रोंसे उनका जप करे। उसके बाद यथाविधि देवोंके निमित्त पाँच श्राद्ध करने चाहिये। तत्पश्चात् शङ्ख अथवा ताम्रपात्र या इनके अभावमें मिट्टीके पात्रमें सर्वौषधिसमन्वित तिलोदक लेकर पृथक्-पृथक् पीठपर प्रदान करे। हे खगेश्वर! आसन, पादुका, छत्र, अँगूठी, कमण्डलु, पात्र, भोजन-पदार्थ और वस्त्र—ये आठ पद माने गये हैं, इनके साथ ही स्वर्ण तथा दक्षिणासे युक्त एक तिलपूर्ण ताम्रपात्र विधिपूर्वक मुख्य ब्राह्मणको दान देना चाहिये। ऋग्वेद-पारंगत ब्राह्मणको हरी-भरी फसलसे युक्त भूमि, यजुर्वेद-निष्णात ब्राह्मणको दूध देनेवाली गाय, शिवके उद्देश्यसे सामवेदका गान करनेवाले ब्राह्मणको स्वर्ण, यमके उद्देश्यसे तिल, लौह और दक्षिणा देनी चाहिये।

सर्वौषधिसे समन्वित कुशद्वारा निर्मित पुरुषाकृति पुत्तलकका निर्माण करके कृष्णाजिनको बिछाकर उसे स्थापित करे और पलाशका विभाग करके तीन सौ साठ वृन्तोंसे पुत्तलककी हड्डियोंका निर्माण करे। यथा—शिरोभागमें चालीस वृन्त, ग्रीवामें दस, वक्ष:स्थलमें बीस, उदरमें बीस, दोनों भुजाओंमें सौ, कटिप्रदेशमें बीस, दोनों ऊरुओंमें सौ, दोनों जंघाओंमें तीस, शिश्न-स्थानमें चार, दोनों अण्डकोशोंमें छ: और पैरकी अंगुलियोंमें दस वृन्तोंसे उस कल्पित प्रेतपुरुषकी अस्थियोंका निर्माण करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके शिरोभागपर नारियल, तालुप्रदेशमें लौकी, मुखमें पञ्चरत्न, जिह्वाभागमें केला, आँतोंके स्थानपर कमलनाल, घ्राणभागमें बालू, वसाके स्थानपर मेदक नामक अर्क, मूत्रके स्थानपर गोमूत्र, धातुओंके स्थानमें गन्धक, हरिताल एवं मन:शिला तथा वीर्यस्थानमें पारद, पुरीष (मल)-के स्थानमें पीतल, सम्पूर्ण शरीरमें मन:शिल, संधिभागोंमें तिलकी पीठी, मांसभागमें यवका आटा, मधु और मोम, केशराशिके स्थानमें बरगदकी बरोह, त्वचाभागमें मृगचर्म, दोनों कर्णप्रदेशमें तालपत्र, दोनों स्तनोंके स्थानमें गुंजाफल, नासिकाभागमें कमलपत्र, नाभिप्रदेशमें कमलपुष्प, दोनों अण्डकोशोंके स्थानमें बैंगन, लिंगभागमें सुन्दर गाजर एवं नाभिमें घी भरे। कौपीनके स्थानपर त्रपु, दोनों स्तनोंमें मुक्ताफल, सिरमें कुंकुमका लेप, कर्पूर, अगुरु, धूप तथा सुगन्धित पुष्प-मालाओंका अलंकरण, परिधानके स्थानपर पट्टसूत्र और हृदयभागमें रजत-पत्र रखे। उसकी दोनों भुजाओंमें ऋद्धि तथा वृद्धि इन दोनों सिद्धियोंको संकल्पित करके यजमान दोनों नेत्रोंमें एक-एक कौड़ी भरे। तदनन्तर नेत्रोंके कोणभागमें सिन्दूर भरकर उसको ताम्बूलादि विभिन्न उपहारोंसे सुशोभित करे।

इस प्रकार नाना वस्तुओंसे निर्मित और अलंकृत उस प्रेतको सर्वौषधि प्रदान करके जैसा कहा गया है, उसीके अनुसार उसकी पूजा करनी चाहिये। जो प्रेत अग्निहोत्र करनेवाला हो, उसको यथाविधि यज्ञपात्र भी देना आवश्यक है। उसके बाद **'शिरोमे श्री०'** तथा **'पुनन्तु वरुण०'**—इन मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा शालग्राम शिलाको धोकर यजमान उसीसे प्रेतका पवित्रीकरण करे। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये एक दूध देनेवाली सुशील गौका दान किया जाय। तिल, लौह, स्वर्ण, रूई, नमक, सप्तधान्य, पृथ्वी और गौ एक-से-एक बढ़कर पुण्यदायक होते हैं। अत: गोदान करनेके बाद यजमान तिलपात्र-दान और पद-दान एवं महादान दे। उसके बाद सभी अलंकारोंसे विभूषित वैतरणी धेनुका दान करे।

प्रेतकी मुक्तिके लिये इस अवसरपर आत्मवान्को भगवान् विष्णुके निमित्त श्राद्ध करना चाहिये। तत्पश्चात् हृदयमें भगवान् विष्णुका ध्यान करके प्रेतमोक्षका कार्य करे। अतएव **'ॐ विष्णुरिति०'**—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित उस प्रकल्पित प्रेत-पुतलेकी मृत्यु मानकर उसका दाह-संस्कार करे। तदनन्तर तीन दिन सूतक माने। दशाह कर्म करनेवाला यजमान इस बीच प्रेतमुक्तिके लिये पिण्डदान और सभी वार्षिक क्रियाओंको सम्पन्न करता है तो प्रेत अपनी मुक्तिका अधिकार प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ४०)

वृषोत्सर्गकी संक्षिप्त विधि

श्रीविष्णुने कहा—हे खगेश्वर! कार्तिक आदि महीनोंकी पूर्णमासी तिथिको पड़नेवाले शुभ दिनपर विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग करना चाहिये। नान्दीमुख श्राद्ध करके वत्सतरीके साथ वृषका विवाह और वृषके खुरके पास श्राद्ध करनेके पश्चात् उन दोनोंका उत्सर्ग करे।

वापी और कूपके निर्माणोत्सर्गके समय गोशालामें विधिवत् संस्कारके अनन्तर अग्निकी स्थापना करनी चाहिये।[१] विवाह-विधिके समान ब्रह्मा-वरण करना चाहिये। यज्ञीय पात्रोंकी क्रमिक स्थापना, पायस-खीरका पाक, उपयमन कुशादिका क्रमशः स्थापन करे। यज्ञीय पात्रोंका सिंचन करनेके बाद होम करना चाहिये। प्रथम दो आहुति आघार और उसके बाद दो आज्य-भाग संज्ञक आहुतियाँ हैं। अतः 'प्रथमेऽह्नरिति०'मन्त्रसे यजमानको छः आहुतियाँ देनी चाहिये।

आघार और आज्य-भाग संज्ञक चार आहुतियोंके अनन्तर अङ्गदेवता, अग्नि, रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, शिव, भव, महादेव, ईशान और यमको आहुति दे। तत्पश्चात् 'पूषागा०' इस मन्त्रसे एक पिष्टक होम, चरु तथा पायस दोनोंसे स्विष्टकृत् होम करे। तदनन्तर प्रथम व्याहृति होम, प्रायश्चित्त होम, प्रजापति होम, संस्रव (अवशिष्ट जल) प्राशन करे। इसके बाद प्रणीताका परिमोक्षण करे। पवित्र-प्रतिपत्ति (परित्याग) करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे। षडङ्ग रुद्रसूक्तका पाठ करनेसे प्रेतको मोक्षकी प्राप्ति होती है।

एक रंगके वृष और एक वत्सतरीको स्नान कराकर सभी अलंकारोंसे विभूषित करके उन दोनोंको प्रतिष्ठापित करनेसे प्रेतको मोक्ष प्राप्त होता है। इस कर्मके बाद वृषभकी पूँछसे गिरे हुए जलके द्वारा मन्त्रपूर्वक तर्पण-कार्य करना चाहिये। उसके बाद ब्राह्मणोंको भोजनसे संतृप्त करके दक्षिणासे संतुष्ट करे।

तदनन्तर यथाविधि एकोद्दिष्ट श्राद्ध करनेका विधान है। उसे करके प्रेतके उद्धार-हेतु ब्राह्मणको जल और अन्नका दान दिया जाता है। उसके बाद द्वादशाह श्राद्ध और मासिक श्राद्ध पृथक्-पृथक् करने चाहिये।

इस विधिका सम्यक् पालन करनेवाला प्रेतको उस योनिसे मुक्त कर देता है। (अध्याय ४१)

भूमि तथा गोचर्म भूमि आदि दानोंका माहात्म्य और ब्रह्मस्वहरणका दोष

श्रीविष्णुने कहा—हे गरुड! जिस प्रकार एक वत्स हजार गायोंके बीच स्थित अपनी माताको प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार पूर्वजन्ममें किया गया कर्म अपने कर्ताका अनुगमन करता है—

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥

(४२।१)

भूमिदान करनेवाले प्राणीका अभिनन्दन सूर्य-चन्द्र, वरुण, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु और भगवान् त्रिशूलधारी शिव करते हैं। इस संसारमें भूमिके समान दान नहीं है। भूमिके समान दूसरी निधि नहीं है। सत्यके समान धर्म नहीं है और असत्यके समान पातक नहीं है—

नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति भूमिसमो निधिः।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नानृतात्पातकं परम्॥

(४२।३)

अग्निका प्रथम पुत्र सुवर्ण है, पृथ्वी वैष्णवी कहलाती है तथा गाय सूर्यकी पुत्री है। अतः जो व्यक्ति स्वर्ण, गौ एवं पृथ्वीका दान देता है, उसने मानो त्रैलोक्यका दान कर दिया। गौ, पृथ्वी और विद्या इन तीनोंको अतिदान[२] कहा गया है। जप-पूजन तथा होम करके दिये गये ये तीनों दान नरकसे उद्धार करते हैं। बहुत-से पाप तथा क्रूर कर्म करके भी मनुष्य गोचर्म[३] भूमिका दान करनेसे शुद्ध हो जाता है।

१-काम्य और नैमित्तिक दो प्रकारका वृषोत्सर्ग होता है। काम्यमें गणेशपूजन, नान्दीश्राद्ध आदि करके ही वृषोत्सर्ग किया जाता है। मरणाशौचके ग्यारहवें दिन किया जानेवाला वृषोत्सर्ग नैमित्तिक वृषोत्सर्ग है। इसमें नान्दीश्राद्ध नहीं किया जाता।

२-त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्त्येते जपपूजनहोमतः॥ (४२।५)

३-गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम्। तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्मपरिकीर्तितम्॥ (पराशरस्मृति १२।४३)

अर्थात् जितने स्थानपर एक हजार गौएँ और दस बैल स्वतन्त्ररूपसे घूम-फिर सकते हैं, उतना भूमिभाग गोचर्म कहलाता है।

इस दानमें दी हुई वस्तुको लोभवश हरण करनेवालेको हरण करनेसे रोकना चाहिये। जो उसका परिरक्षण नहीं करता है, वह घोर नरकमें जाता है।

प्राण भले ही कण्ठमें आ जायँ तो भी निषिद्ध कर्म नहीं करना चाहिये, कर्तव्य कर्म ही करना चाहिये ऐसा धर्माचार्योंने कहा है। किसीकी आजीविकाको नष्ट करनेपर हजार गौओंके वधके समान पाप लगता है तथा किसी जीविकारहितको आजीविका प्रदान करनेपर लक्ष धेनुके दानका फल प्राप्त होता है। गो-हत्यारे आदिसे एक गायको छुड़ा लेना श्रेष्ठ है, उसकी तुलनामें सौ गो-दान करना श्रेष्ठ नहीं है। सौ गो-दान करना गो-हत्यारेसे एक गायको बचा लेनेकी समता नहीं कर सकता।[1] जो व्यक्ति स्वयं दान देकर स्वयं ही उसमें बाधक बन जाता है, वह प्रलयकालतक नरकका भोग करता है।

जीविकारहित निर्धन ब्राह्मणकी रक्षा करनेपर जैसा पुण्य मनुष्यको प्राप्त होता है, वैसा पुण्य विधिवत् दक्षिणासहित अश्वमेध-यज्ञ करनेपर भी सम्भव नहीं है। दुर्बल, त्रस्त ब्राह्मणकी रक्षा करनेमें जो पुण्य है, वह वेदाध्ययन और प्रचुर दक्षिणासे युक्त यज्ञ करनेपर नहीं है। बलात् अपहरण किये गये ब्राह्मणोंके धनसे पाले-पोसे तथा समृद्ध बनाये गये वाहन और सैन्य शक्तियाँ युद्धकालमें वैसे ही नष्ट हो जाती हैं जैसे बालूके द्वारा बनाये गये पुल विनष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति स्वयं अथवा दूसरेके द्वारा दी हुई भूमिका अपहरण करता है, वह साठ हजार वर्षतक विष्ठामें कृमि होकर जन्म लेता है। प्रेमसे जो ब्राह्मणका धन खाता है, वह अपने कुलकी सात पीढ़ीको भस्म कर देता है। उसी ब्रह्मस्वका उपयोग यदि चोरी करके किया जाय तो जबतक चन्द्रमा और तारागणोंकी स्थिति रहती है, तबतक उसकी कुल-परम्परा भस्म हो जाती है। पुरुष कदाचित् लोहे और पत्थरके चूर्णको खाकर पचा सके, किंतु तीनों लोकमें कौन ऐसा व्यक्ति है जो ब्राह्मणके धनको पचानेमें समर्थ हो सकेगा?

देव-द्रव्यका विनाश करनेसे, ब्राह्मणके धनका हरण करनेसे और उसकी मर्यादाका उल्लंघन करनेसे प्राणियोंके कुल निर्मूल हो जाते हैं। यदि ब्राह्मण विद्यासे विवर्जित है तो आचार्यत्वादिके लिये वरण करनेके सन्दर्भमें उसका परित्याग करना ब्राह्मणातिक्रमण नहीं है। जलती हुई आगको छोड़कर राखमें हवन नहीं किया जाता है।

संक्रान्तिकालमें जो दान और हव्य-कव्य दिये जाते हैं, वह सब सात कल्पोंतक बार-बार सूर्य दानदाताको प्रदान करता है। प्रतिग्रह, अध्यापन और यज्ञ करवानेके कार्योंमें विद्वान् प्रतिग्रहको ही अपना अभीष्टतम कहते हैं। प्रतिग्रहसे जप-होम और कर्म शुद्ध होते हैं, याजन-कर्मको वेद पवित्र नहीं करते। निरन्तर जप एवं होम करनेवाला तथा इसके द्वारा बनाये गये भोजनको न करनेवाला ब्राह्मण रत्नोंसे परिव्याप्त पृथ्वीका प्रतिग्रह करके भी प्रतिग्रहके दोषसे निर्लिप्त रहता है।[2] (अध्याय ४२)

शुद्धि-विधान

श्रीविष्णुने कहा—जो जल, अग्नि तथा अन्य किसी बन्धनके भयसे धर्मपथसे विचलित हो गये हैं और जो संन्यास-धर्मका परित्याग करके पतित हो चुके हैं, वे गौ और वृषभका दान देकर दो चान्द्रायणव्रतसे शुद्धि प्राप्त करते हैं। बारह वर्षसे कम और चार वर्षसे अधिक आयुके बालकके पापका प्रायश्चित्त माता-पिता अथवा अन्य बान्धवको करना चाहिये। चार वर्षसे कम आयुवाले बालकका न कोई अपराध है और न कोई पाप। उसके लिये न तो राजदण्ड है और न कोई प्रायश्चित्तका विधान ही है।

यदि रजोदर्शन होनेपर स्त्री रोगग्रस्त हो जाय तो वह चौथे दिन वस्त्रादिका परित्याग करके स्नानसे शुद्ध हो सकती है। आतुरकालमें जननाशौचप्रयुक्त स्नान होनेपर कोई जो रुग्ण न हो ऐसा व्यक्ति दस बार स्नान करके प्रत्येक स्नानके बाद यदि उस आतुर व्यक्तिका स्पर्श करता जाय तो वह आतुर शुद्ध हो जाता है। (अध्याय ४३)

१-वरमेकाप्यपहृता न तु दत्तं गवां शतम्। एकां हृत्वा शतं दत्वा न तेन समता भवेत्॥ (४२। १०)

२-सदा जापी सदा होमी परपाकविवर्जितः। रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्यन्न लिप्यते॥ (४२। २२)

दुर्मृत्यु तथा अकालमृत्युपर किये जानेवाले श्राद्धादि कर्म और सर्पदंशसे मृत्युपर विहित क्रिया-विधान

श्रीविष्णुने कहा—हे तार्क्ष्य! जिनकी मृत्यु स्वेच्छासे आत्मघातके द्वारा होती है, जो सींग और दाँतवाले पशु, सरकनेवाले जीव, चाण्डालादि निम्न जातीय पुरुष, आत्मघात—विषादि अहितकर पेय पदार्थ, आघात-प्रतिघात, जल-अग्निपात और वायु तथा निराहारादिके द्वारा जिनकी मृत्यु होती है, उन्हें पापकर्म करनेवाला कहा गया है।[1] जो पाखण्डी, वर्णाश्रमधर्मसे रहित, महापातकी तथा व्यभिचारिणी स्त्रियाँ और आरूढपतित (संन्यासाश्रममें जाकर पतित होनेवाले) हैं, उनका दाहसंस्कार, नव श्राद्ध एवं सपिण्डन नहीं करना चाहिये। श्राद्ध सोलह बताये गये हैं, उनको भी ऐसे पापियोंके लिये न करे। यदि अग्निहोत्र करनेवाला ब्राह्मण ऐसा पापकर्म करता है तो घरवाले मरनेपर उसकी जो जीविकावृत्ति है, उसको जलमें फेंक दें और उसके घरकी अग्निको चौराहेपर ले जाकर डाल दें तथा उसके पात्रोंको अग्निमें जला दें।

हे काश्यप! पूर्वोक्त पापियोंकी मृत्युका एक वर्ष पूर्ण हो जाय तो दयावान् परिजनोंको शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिको गन्ध-अक्षत-पुष्पादिसे विष्णु और यमकी पूजा करके कुशोंके ऊपर मधुयुक्त और घृतमिश्रित दस पिण्ड देना चाहिये।

मौन होकर तिलके सहित विष्णु और यमका ध्यान करते हुए दक्षिणाभिमुख होकर पूर्वोक्त दस पिण्ड प्रदान करे। उन पिण्डोंको उठाकर और एकमें मिलाकर तीर्थके जलमें डालते हुए मृतकके नाम और गोत्रका उच्चारण करना चाहिये।

इसके बाद पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य तथा भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे विष्णु और यमकी पुनः पूजा करे। उस दिन उपवास रहकर कुल, विद्या, तप और शीलसे सम्पन्न यथासामर्थ्य नौ अथवा पाँच साधु ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। उसके दूसरे दिन मध्याह्न कालमें पूर्वदिनके समान पुनः विष्णु एवं यमकी पूजा करके उत्तराभिमुख उन ब्राह्मणोंको आसनपर बैठाये। उसके बाद यज्ञोपवीती कर्ता आवाहन, अर्घ्य तथा दानादिमें विष्णु और यमसे समन्वित प्रेतके नामका कीर्तन करे तथा प्रेत, यम और विष्णुका स्मरण करते हुए श्राद्ध सम्पन्न करे। उस अवसरपर पिण्डदानके लिये अन्य देवोंका भी आवाहन करना चाहिये। उसके बाद उन्हें क्रमशः दस अथवा पाँच पृथक्-पृथक् पिण्ड दे। यथा—पहला पिण्ड विष्णुदेव, दूसरा पिण्ड ब्रह्मा, तीसरा पिण्ड शिव, चौथा पिण्ड भृत्यसहित शिव और पाँचवाँ पिण्ड प्रेतके लिये देय है। प्रेतके नाम एवं गोत्रका स्मरण तथा विष्णु शब्दका उच्चारण करना चाहिये। पिण्डदान होनेके बाद सिर झुकाकर नमस्कार करते हुए पाँचवें पिण्डको कुशोंपर स्थापित करे। तदनन्तर यथाशक्ति गौ-भूमि और पिण्डदानादिके द्वारा उस प्रेतका स्मरण करते हुए कुश तथा तिलसे युक्त उन ब्राह्मणोंके कुशयुक्त हाथोंमें तिल-दान दे।

इसके बाद ब्राह्मणोंको अन्न, ताम्बूल और दक्षिणा देकर श्रेष्ठतम ब्राह्मणकी स्वर्णदानसे पूजा करे। यह दान नाम-गोत्रका स्मरण करते हुए 'विष्णु प्रसन्न हों', ऐसा कहकर देना चाहिये।

तदनन्तर ब्राह्मणोंका अनुगमन करके यजमान दक्षिणाभिमुख होकर प्रेतके नाम-गोत्रका कीर्तन करते हुए '**प्रीतोऽस्तु**' ऐसा कहकर भूमिपर जल गिरा दे। तत्पश्चात् मित्र एवं बन्धु-बान्धवोंके साथ श्राद्धके अवशिष्ट भोजनको संयत वाक् होकर ग्रहण करे।

तदनन्तर प्रतिवर्ष सांवत्सर श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधानसे करना चाहिये। इस प्रकारकी क्रिया करनेसे पापीजन स्वर्ग चले जायँगे। इसके बाद वे सपिण्डीकरण आदिकी क्रियाओंको करनेपर उसे प्राप्त करते हैं।

यदि प्रमादवश किसी मनुष्यकी जल आदिमें डूबकर अपमृत्यु हो जाती है तो उसके पुत्र या सगे-सम्बन्धीको यथाविधि सभी और्ध्वदैहिक कर्म करने आवश्यक हैं।

१-स्वेच्छया तार्क्ष्य मरणं शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः। चाण्डालाद्यात्मघातैश्च विषाद्यैश्चाहितैस्तथा॥
जलाग्निपातवातैश्च निराहारादिभिस्तथा। येषामेव भवेन्मृत्युः प्रोक्तास्ते पापकर्मिणः॥ (४४।१-२)

प्रमादवश अथवा इच्छापूर्वक भी प्राणीको सर्पके सामने कदापि नहीं जाना चाहिये। (ऐसी स्थितिमें सर्प-दंशसे मृत्यु होनेपर) प्रतिमास दोनों पक्षोंकी पञ्चमी तिथिको नागदेवताकी पूजा करे। भूमिपर शालिचूर्णसे नागदेवकी आकृति बनावे। श्वेत पुष्प, सुगंध, धूप, दीप और सफेद अक्षतसे उसकी पूजा करके कच्चा पीसा हुआ अन्न तथा दूध अर्पित करे। उसके बाद उठकर द्रव्य और वस्त्र छोड़ते हुए 'नागराज प्रसन्न हों'—ऐसा कहे।

उस दिन श्राद्ध सम्पन्न करनेके पश्चात् मधुर अन्नका भोजन करे। यथाशक्ति वह उस दिन श्रेष्ठ ब्राह्मणको सुवर्णकी बनी हुई नाग-प्रतिमाका दान दे। तदनन्तर उसे गौका दान देकर पुनः 'नागराज प्रीयताम्'—हे नागराज! आप अब मेरे ऊपर प्रसन्न हों—ऐसा कहे। इसके बाद सामर्थ्यानुसार पूर्ववत् उन कर्मोंको भी निर्देशानुसार करे।

जो मनुष्य अपनी वैदिक शाखाकी विधिके द्वारा ऐसे कर्मको यथावत् करता है, वह उन अपमृत्यु-प्राप्त प्राणियोंको प्रेतत्वसे विमुक्त करके स्वर्गलोकको ले जाता है।

(अध्याय ४४)

पार्वण आदि श्राद्धोंके अधिकारी; एकसे अधिककी मृत्युपर पिण्डदान आदिकी व्यवस्था; मृत्युतिथि-मासके अज्ञात होनेपर तथा प्रवासकालमें मृत्यु होनेपर श्राद्ध आदिकी व्यवस्था; नित्य एवं दैव तथा वृद्धि आदि श्राद्धोंकी कर्तव्यताका प्रतिपादन

श्रीविष्णुने कहा—हे खगेश्वर! अब मैं प्रतिवर्ष होनेवाले पार्वण श्राद्धका वर्णन तुमसे कर रहा हूँ। मृत व्यक्तिके औरस और क्षेत्रज पुत्रको प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। औरस एवं क्षेत्रज पुत्रोंके अतिरिक्त अन्यको एकोद्दिष्ट-विधिसे श्राद्ध करना चाहिये, पार्वण श्राद्ध नहीं।

अग्निहोत्र न करनेवाले मृत ब्राह्मणके क्षेत्रज तथा औरस दोनों पुत्र यदि अग्निहोत्री नहीं हैं तो उन्हें एकोद्दिष्ट श्राद्ध नहीं करना चाहिये। प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। यदि पुत्र अथवा पितामेंसे कोई एक साग्निक हो तो प्रतिवर्ष क्षेत्रज और औरसको पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। किंतु कुछ लोगोंका कहना है कि पुत्र अग्निहोत्री हों या न हों, पितृगण भी अग्निहोत्री रहे हों या न रहे हों, फिर भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध पुत्रोंको अपने पिताकी मृत्यु-तिथिपर करना चाहिये। जिसकी मृत्यु दर्शकाल अथवा प्रेतपक्षमें होती है, उसके सभी पुत्र प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करें।

एकोद्दिष्ट श्राद्ध पुत्रहीन पुरुष और स्त्रीका भी हो सकता है। एकोद्दिष्ट यज्ञकर्ममें समूल कुशका प्रयोग करना चाहिये। बाहरसे कटे हुए अथवा एक बार काटे गये कुश ही श्राद्धमें वृद्धिदायक होते हैं। यदि किये जानेवाले पार्वण श्राद्धके बीच अशौच हो जाता है तो यजमान उस अशौचके समाप्त होनेके बाद श्राद्ध करे। एकोद्दिष्ट श्राद्धका काल आ जानेपर यदि किसी प्रकारका विघ्न आ जाता है तो दूसरे मास उसी तिथिपर वही एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जा सकता है। शूद्र तथा उसकी पत्नी और उसके पुत्रका श्राद्ध मौन अर्थात् मन्त्रोच्चार-रहित होना चाहिये। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—इन तीनों द्विजातियोंकी कन्या और यज्ञोपवीत-संस्कारसे हीन ब्राह्मणका भी श्राद्ध तूष्णी (मौन) होकर ही करना धर्म-विहित है। एक ही समयमें एक ही घरके बहुत-से लोगोंकी अथवा दो व्यक्तियोंकी मृत्यु हो गयी हो तो उनके श्राद्धका पाक एक साथ और श्राद्ध पृथक्-पृथक् करना चाहिये। साथमें मरनेपर विधि इस प्रकार है—पहले पूर्वमृतको, तदनन्तर द्वितीय और तृतीयको क्रमशः पिण्डदान करना चाहिये।

जो आलस्यरहित होकर इस विधानके अनुसार अपने माता-पिताका प्रत्येक वर्ष श्राद्ध करता है, वह उनका उद्धार करके स्वयं भी परम गतिको प्राप्त करता है। यदि किसी प्राणीकी मृत्यु और प्रस्थान-कालका दिन स्मरण नहीं है, किंतु वह मास ज्ञात है तो उसी मासकी अमावास्या- तिथिमें उस मृतककी मृत्यु-तिथि माननी चाहिये। यदि किसीकी मृत्युका मास ज्ञात नहीं है, किंतु दिनकी जानकारी है तो मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा माघमासमें उसी दिन उसका श्राद्ध किया जा सकता है। जब अपने सम्बन्धीकी मृत्युका दिन एवं मास दोनों अज्ञात हों तो श्राद्ध-कर्मके लिये यात्राके दिन और मास ग्रहण करने चाहिये। जब मृतकके

प्रस्थानका भी दिन और मास न ज्ञात हो तो जिस दिन एवं मासमें मृत्युकी बात सुनी गयी हो, उसे ही श्राद्धके लिये उपयुक्त मान ले। बिना प्रवासके भी मृत्यु होनेपर दिन तथा मास दोनों विस्मृत हो गया हो तो पूर्ववत् मृत-तिथिका निर्णय करना चाहिये।

यदि कोई गृहस्थ प्रवासमें है और उसके प्रवासके ही दिनोंमें उसके घरमें किसीकी मृत्यु हुई हो तथा मृत्युके बाद अशौचके दिन बीत चुके हों और अशौचके अनन्तर जो एकादशाह-द्वादशाह आदि श्राद्ध विहित हैं वे चल रहे हों, इसी बीच प्रवासमें रहनेवाला वह गृहस्थ घर आ जाता हो और आनेके बाद ही मृत्युकी जानकारी उसे मिलती हो तो केवल वह गृहस्थ ही अशौचसे ग्रस्त होगा और तत्काल यथाशास्त्र अपनी अशौचकी निवृत्तिके लिये अपेक्षित विधि अपनायेगा। उसके द्रव्यादिपर अशौच नहीं होगा। उसके घर आनेमात्रसे उसकी अशुचिताका प्रभाव श्राद्धके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंपर नहीं पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि यदि श्राद्धका मुख्य अधिकारी सुदूर देशमें है और उसके घर आकर यथाधिकार श्राद्ध करनेकी सम्भावना नहीं बनती है, ऐसी स्थितिमें अन्य अधिकारी पुत्रादिद्वारा यदि श्राद्धकर्म प्रारम्भ कर दिया गया है तो उसे भी श्राद्धप्रक्रिया पूर्ण करनी चाहिये। दाता और भोक्ता दोनोंको जननाशौच अथवा मरणाशौच ज्ञात न हो तो उन दोनोंमें किसीको भी दोष नहीं लगता। जननाशौच और मरणाशौचका ज्ञान भोक्ताको हो जाय और दाताको न हो तो उस समय भोक्ताको ही पाप लगता है, उसमें वह दाता दोषी नहीं होगा।

जिस मृत व्यक्तिकी तिथि ज्ञात नहीं है, उसकी मृत-तिथिका निर्धारण पूर्वोक्त प्रकारसे करके जो श्राद्धादि करता है, वह मृत व्यक्तिको तार देता है।

नित्य-श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंकी सभी पितरोंके साथ भक्तिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य तथा गन्धादिके द्वारा पूजा करके पितरोंके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको यथाविधि भोजन कराना चाहिये। आवाहन, स्वधाकार, पिण्डदान, अग्नौकरण, ब्रह्मचर्यादि नियम और विश्वेदेवकृत्य—ये कर्म नित्य-श्राद्धमें त्याज्य हैं। इस श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन करानेके बाद उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देकर प्रणाम निवेदन करते हुए विदा करे।

विश्वेदेव आदिके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको नित्य-श्राद्धकी भाँति जो भोजन कराया जाता है, वह 'देवश्राद्ध' कहा जाता है।

यदि अग्रिम दिन कोई शुभ कार्य—विवाह अथवा यज्ञोपवीत आदि करने हैं तो उसके पूर्व-दिन मातृश्राद्ध और पितृश्राद्ध एवं मातामहश्राद्ध (श्राद्धत्रय) करने चाहिये। इन तीनों श्राद्धोंके लिये अपेक्षित विश्वेदेव-कार्य एक ही बार करना चाहिये। अर्थात् तीनों श्राद्धोंके लिये तीन बार विश्वेदेव कार्य नहीं करने चाहिये। पहले मातृपितामही तथा प्रपितामहीके लिये, तदनन्तर पितृपितामह और प्रपितामहके लिये, तत्पश्चात् मातामहादिके लिये क्रमशः आसनादिके दानकी क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। यदि मातृश्राद्धमें ब्राह्मणोंका अभाव हो तो श्रेष्ठ परिवारमें उत्पन्न हुई पति-पुत्रसे सम्पन्न सौभाग्यवती आठ साध्वी स्त्रियोंको ही निमन्त्रित किया जा सकता है।

इष्ट और आपूर्त-कृत्योंमें आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। उत्पात आदिकी शान्तिके लिये नित्य-श्राद्धके समान नैमित्तिक श्राद्ध करनेका विधान है।

हे तार्क्ष्य! जैसा मैंने कहा है, उसी प्रकारसे नित्यश्राद्ध, दैवश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध, काम्यश्राद्ध, तथा नैमित्तिक श्राद्ध—इन पाँचों श्राद्धोंको करता हुआ मनुष्य अपने समस्त अभीष्टोंको प्राप्त करता है। इस तरह मैंने सब बता दिया, अब तुम मुझसे और क्या पूछ रहे हो? (अध्याय ४५)

सत्कर्मकी महिमा तथा कर्मविपाकका फल

तार्क्ष्यने कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मनुष्योंको स्वर्ग और नाना प्रकारके भोग तथा सुख एवं रूप, बल-बुद्धि एवं पराक्रम पुण्यके प्रभावसे प्राप्त होते हैं। पूर्वोक्त प्रकारके लौकिक एवं पारलौकिक भोग पुण्यवान् व्यक्तियोंको उनके पुण्यसे ही प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं—ये वेदवाक्य सर्वथा सत्य हैं।

जिस प्रकार धर्मकी ही विजय होती है, अधर्मकी नहीं। सत्यकी ही विजय होती है, असत्यकी नहीं। क्षमाकी ही विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही विजय प्राप्त करते हैं असुर नहीं—

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः॥

(४६।३)

—उसी प्रकार मैंने सत्य-रूपसे यह जाना है कि सुकृतसे ही कल्याण होता है। जिसका पुण्य जितना उत्कृष्टतम है, वह मनुष्य भी उतना ही श्रेष्ठतम है। जिस प्रकार पापी जन्म लेते हैं, जिस कर्मफलके अनुसार जीव जिस भोगका भागी होता है, वह जिन-जिन योनियोंको जिस रूपमें प्राप्त करता है, जैसा उसका रूप होता है वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। हे देव! संक्षेपमें आप मेरी इस इच्छित बातको बतानेकी कृपा करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे कश्यपपुत्र गरुड! शुभाशुभ फलोंके भोगके अनन्तर जिन लक्षणोंसे युक्त होकर मनुष्य इस लोकमें उत्पन्न होते हैं, उनको तुम मुझसे सुनो।

हे पक्षिश्रेष्ठ! इस लोकमें आत्मज्ञानियोंका शासक गुरु है। दुरात्माओंका शासक राजा है और गुप्तरूपसे पाप करनेवाले प्राणियोंका शासक सूर्य-पुत्र यम है—

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥

(४६।८)

अपने पापोंका प्रायश्चित्त न किये जानेपर उन्हें अनेक प्रकारके नरक प्राप्त होते हैं। वहाँकी यातनाओंसे विमुक्त होकर प्राणी मर्त्यलोकमें जन्म लेते हैं। मानवयोनिमें जन्म लेकर वे अपने पूर्व-पापोंके जिन चिह्नोंसे युक्त रहते हैं, मैं उन लक्षणोंको तुम्हें बताऊँगा।

सभी पापी यमराजके घर पहुँचकर नाना प्रकारके कष्ट सहन करते हैं। जब उन यातनाओंसे उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है तो उनके पापोंका भावी शरीरपर चिह्नाङ्कन होता है। उन्हीं चिह्नोंसे संयुक्त होकर वे पुनः इस पृथ्वीलोकमें जन्म ग्रहण करते हैं। यथा—असत्यवादी हकलाकर बोलनेवाला, गायके विषयमें झूठ बोलनेवाला गूँगा, ब्रह्महन्ता कोढ़ी, मद्यपी काले रंगके दाँतोंवाला, स्वर्णचोर कुत्सित एवं विकृत नखोंवाला और गुरुपत्नीगामी चर्मरोगी होता है तथा पापियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला निम्नयोनिमें जन्म लेता है और दान न देनेवाला दरिद्र, अयाज्यका यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण ग्रामसूकर, बहुतोंका यज्ञ करानेवाला गधा और अमन्त्रक भोजन करनेवाला कौआ होता है।

बिना परीक्षण किये हुए भोजनको ग्रहण करनेवाले निर्जन वनमें व्याघ्र होते हैं। अन्य प्राणियोंको बहुत तर्जना देनेवाले पापी बिलार, कक्षको जलानेवाला जुगुनू, पात्रको विद्या न देनेवाला बैल, ब्राह्मणको बासी अन्न देनेवाला कुत्ता, दूसरेसे ईर्ष्या और पुस्तककी चोरी करनेवाला जात्यन्ध और जन्मान्ध होता है।

फलोंकी चोरी करनेसे मनुष्यके संतानकी मृत्यु हो जाती है, इसमें संदेह नहीं है। वह मरनेके बाद बंदरकी योनिमें जाता है। तदनन्तर उसीके समान मुख प्राप्त कर पुनः मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और गण्डमालाके रोगसे ग्रस्त रहता है। जो बिना दिये स्वयं खा लेता है, वह संतानहीन होता है। वस्त्रकी चोरी करनेवाला गोह, विष देनेवाला वायुभक्षी सर्प, संन्यास-मार्गका परित्याग करके पुनः अपने पूर्व आश्रममें प्रविष्ट हो जानेवाला मरुस्थलका पिशाच होता है। जलापहर्ता पापीको चातक, धान्यके अपहरणकर्ताको मूषक और युवावस्थाको न प्राप्त हुई कन्याका संसर्ग करनेवालेको सर्पकी योनि प्राप्त होती है।

गुरुपत्नीगामी निश्चित ही गिरगिट होता है। जो व्यक्ति जलप्रपातके स्थानको तोड़कर नष्ट करता है, वह मत्स्य होता है। न बेचने योग्य वस्तुको जो खरीदता है, वह बगुला तथा गिद्ध होता है। अयोनिग व्यक्ति भेड़िया और खरीदी जा रही वस्तुमें छल करनेवाला उलूककी योनि प्राप्त करता है। जो मृतकके एकादशाहमें भोजन करनेवाला होता है तथा प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणोंको धन नहीं देता, वह सियार होता है। रानीके साथ सम्भोग करके मनुष्य दंष्ट्री होता है। चोरी करनेवाला ग्रामसूकर, फलविक्रेता श्यामलता होता है। वृषलीके साथ गमन करनेवाला वृष होता है। जो पुरुष पैरोंसे अग्निका स्पर्श करता है वह बिलौटा, दूसरेका मांस भक्षण करनेवाला रोगी, रजस्वला स्त्रीसे गमन करनेवाला नपुंसक, सुगन्धित वस्तुओंकी चोरी करनेवाला दुर्गन्धदायक प्राणी होता है। दूसरेका थोड़ा या बहुत जिस-किसी भी प्रकारसे जो कुछ भी मनुष्य अपहरण करता है, वह उस पापसे निश्चित ही तिर्यक् योनिमें जाता है।

हे खगेन्द्र! ऐसे तो पहलेवाले चिह्न हैं ही, किंतु इनके अतिरिक्त भी अन्य बहुत-से चिह्न हैं, जो अपने-अपने कर्मानुसार प्राणियोंके शरीरमें व्याप्त रहते हैं। ऐसा पापी क्रमशः नाना प्रकारके नरकोंका भोग करके अवशिष्ट कर्मफलके अनुसार इन पूर्वकथित योनियोंमें जन्म लेता है। हे काश्यप! उसके बाद मृत्यु होनेपर जबतक शुभ और अशुभ कर्म समाप्त नहीं हो जाते हैं, तबतक सभी योनियोंमें

सैकड़ों बार उसका जन्म होता है; इसमें संदेह नहीं है। जब स्त्री तथा पुरुषके संयोगसे गर्भमें शुक्र और शोणित जाता है तो उसीमें पञ्चभूतोंसे समन्वित होकर यह पाञ्च-भौतिक शरीर जन्म लेता है। तदनन्तर उसमें इन्द्रियाँ, मन, प्राण, ज्ञान, आयु, सुख, धैर्य, धारणा, प्रेरणा, दुःख, मिथ्याहंकार, यत्न, आकृति, वर्ण, राग-द्वेष और उत्पत्ति-विनाश—ये सब उस अनादि आत्माको सादि मानकर पाञ्चभौतिक शरीरके साथ उत्पन्न होते हैं। उसी समयसे वह पाञ्चभौतिक शरीर पूर्वकर्मोंसे आबद्ध होकर गर्भमें बढ़ने लगता है।

हे तार्क्ष्य! मैंने जैसा तुमसे पहले कहा है, वैसा ही जीवका लक्षण है। चार प्रकारके प्राणिसमूहमें इसी प्रकारके परिवर्तनका चक्र घूमता रहता है। उसीमें शरीरधारियोंका उद्भव और विनाश होता है। यथाविहित अपने धर्मका पालन करनेसे प्राणियोंको ऊर्ध्वगति तथा अधर्मकी ओर बढ़नेसे अधोगति प्राप्त होती है। अतः सभी वर्णोंकी सद्गति अपने धर्मपर चलनेसे ही होती है। हे वैनतेय! देव और मानवयोनिमें जो दान तथा भोगादिकी क्रियाएँ दिखायी देती हैं, वे सब कर्मजन्य फल हैं। घोर अकर्मसे और काम-क्रोधके द्वारा अर्जित जो अशुभ पापाचार हैं, उनसे नरक प्राप्त होता है तथा वहाँसे जीवका उद्धार नहीं होता है। (अध्याय ४६)

यममार्गमें स्थित वैतरणी नदीका वर्णन, पापकर्मोंसे घोर वैतरणीमें निवास, वैतरणीसे पार होनेके लिये वैतरणी धेनुदान, भगवान् विष्णु, गङ्गा तथा ब्राह्मणकी महिमा

गरुडने कहा—हे देवदेवेश! महाप्रभो! अब आप परम कृपा करके दान, दानके माहात्म्य और वैतरणीके प्रमाणका वर्णन करें।

श्रीकृष्णने कहा—हे तार्क्ष्य! यमलोकके मार्गमें जो वैतरणी नामकी महानदी है, वह अगाध, दुस्तर और देखनेमात्रसे पापियोंको महाभयभीत करनेवाली है। वह पीब और रक्तरूपी जलसे परिपूर्ण है। मांसके कीचड़से परिव्याप्त एवं तटपर आये हुए पापियोंको देखकर उन्हें नाना प्रकारसे भयाक्रान्त करनेवाले स्वरूपको धारण कर लेती है। पात्रके मध्यमें घीकी भाँति वैतरणीका जल तुरंत खौलने लगता है। उसका जल कीटाणुओं एवं वज्रके समान सूँड़वाले जीवोंसे व्याप्त है। सूँस, घड़ियाल, वज्रदन्त तथा अन्यान्य हिंसक एवं मांसभक्षक जलचरोंसे वह महानदी भरी हुई है। प्रलयके अन्तमें जैसे बारहों सूर्य उदित होकर विनाशलीला करते हैं, वैसे ही वे वहाँपर भी सदैव तपते रहते हैं, जिससे उस महातापमें वे पापी चिल्लाते हुए करुण विलाप करते हैं। उनके मुखसे बार-बार हा भ्रात, हा तात, यही शब्द निकलता है। वे जीव उस महाभयंकर धूपमें इधर-उधर भागते हैं, उस दुर्गन्धपूर्ण जलमें डुबकी लगाते हैं और अपनी आत्मग्लानिसे व्यथित होते हैं। वह महानदी चारों प्रकारके प्राणियोंसे भरी हुई दिखायी देती है। पृथ्वीपर जिन लोगोंने गोदान किया है, उस दानके प्रभावसे वे उसे पार कर जाते हैं अन्यथा जिनके द्वारा यह दान नहीं हुआ है, वे उसीमें डूबते रहते हैं।

जो मूढ़ मेरी, आचार्य, गुरु, माता-पिता एवं अन्य वृद्धजनोंकी अवमानना करते हैं, मरनेके बाद उनका वास उसी महानदीमें होता है। जो मूढ़ अपनी विवाहिता पतिव्रता, सुशीला और धर्मपरायणा पत्नीका परित्याग करते हैं, उनका सदैवके लिये उसी महाघिनौनी नदीके जलमें वास होता है। विश्वासमें आये हुए स्वामी, मित्र, तपस्वी, स्त्री, बालक एवं वृद्धका वध करके जो पापी उस महानदीमें गिरते हैं, वे उसके बीचमें जाकर करुण विलाप करते हुए अत्यन्त कष्ट भोगते हैं। शान्त तथा भूखे ब्राह्मणको विघ्न पहुँचानेके लिये जो उसके पास जाता है, वहाँ प्रलयपर्यन्त कृमि उसका भक्षण करते हैं। जो ब्राह्मणको प्रतिज्ञा करके प्रतिज्ञात वस्तु नहीं देता है अथवा बुलाकर जो 'नहीं है'—ऐसा कहता है, उसका वहाँ वैतरणीमें वास होता है। आग लगानेवाला, विष देनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, मद्य पीनेवाला, यज्ञका विध्वंस करनेवाला, राजपत्नीके साथ गमन करनेवाला, चुगलखोरी करनेवाला, कथामें विघ्न करनेवाला, स्वयं दी हुई वस्तुका अपहरण करनेवाला, खेत (मेड़) और सेतुको तोड़नेवाला, दूसरेकी पत्नीको प्रधर्षित करनेवाला, रस-विक्रेता तथा वृषलीपति ब्राह्मण, प्यासी गायोंकी बावलीको तोड़नेवाला, कन्याके साथ व्यभिचार करनेवाला, दान देकर पश्चात्ताप करनेवाला, कपिलाका दूध पीनेवाला शूद्र तथा मांसभोजी

ब्राह्मण—ये निरन्तर उस वैतरणी नदीमें वास करते हैं। कृपण, नास्तिक और क्षुद्र प्राणी उसमें निवास करते हैं। निरन्तर असहनशील तथा क्रोध करनेवाला, अपनी बातको ही प्रमाण माननेवाला, दूसरेकी बातको खण्डित करनेवाला नित्य वैतरणीमें निवास करता है। अहंकारी, पापी तथा अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाला, कृतघ्न, गर्भपात करनेवाला वैतरणीमें निवास करता है। कदाचित् भाग्ययोगसे यदि उस नदीको पार करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाय तो तारनेका उपाय सुनो।

मकर और कर्ककी संक्रान्तिका पुण्यकाल, व्यतीपात योग, दिनोदय, सूर्य, चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, अमावास्या अथवा अन्य पुण्यकालके आनेपर श्रेष्ठतम दान दिया जाता है। मनमें दान देनेकी श्रद्धा जब कभी उत्पन्न हो जाय, वही दानका काल है; क्योंकि सम्पत्ति अस्थिर है।

शरीर अनित्य है और धन भी सदा रहनेवाला नहीं है। मृत्यु सदा समीप है, इसलिये धर्म-संग्रह करना चाहिये—

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः॥
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।

(४७। २४-२५)

काली अथवा लाल रंगकी शुभ लक्षणोंवाली वैतरणी गायको सोनेकी सींग, चाँदीके खुर, कांस्यपात्रकी दोहनीसे युक्त दो काले रंगके वस्त्रोंसे आच्छादित करके सप्तधान्य-समन्वित करके ब्राह्मणको निवेदित करे। कपाससे बने हुए द्रोणाचलके शिखरपर ताम्रपात्रमें लौहदण्ड लेकर बैठी हुई स्वर्णनिर्मित यमकी प्रतिमा स्थापित करे। सुदृढ़ बन्धनोंसे बाँधकर इक्षुदण्डोंकी एक नौका तैयार करे। उसीसे सूर्यसे उत्पन्न गौको सम्बद्ध कर दे। इसके बाद छत्र, पादुका, अंगूठी और वस्त्रादिसे पूज्य श्रेष्ठ ब्राह्मणको संतुष्ट करके जल तथा कुशके सहित इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए वह वैतरणी गौ उसे दानमें समर्पित करे—

यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम्।
तर्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं नमः॥
गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पार्श्वतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर।
सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः॥

(४७। ३०—३२)

'हे द्विजश्रेष्ठ! महाभयंकर वैतरणी नदीको सुनकर मैं उसको पार करनेकी अभिलाषासे आपको यह वैतरणी दान दे रहा हूँ। हे विप्रदेव! गौएँ मेरे आगे रहें, गौएँ मेरे बगलमें रहें, गौएँ मेरे हृदयमें रहें और मैं उन गायोंके बीचमें रहूँ। हे विष्णुरूप! द्विजवरेण्य! भूदेव! मेरा उद्धार करो। मैं दक्षिणासहित यह वैतरणी गौ आपको दे रहा हूँ। आप मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

इसके बाद सबके स्वामी धर्मराजकी प्रतिमा और वैतरणी नामवाली उस गौकी प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणको दान दे। उस समय वह ब्राह्मणको आगे कर उस वैतरणी गौकी पूँछ हाथमें लेकर यह कहे—

धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये॥
उत्तारणाय देवेशि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते।

(४७। ३४-३५)

'हे गौ! उस महानदीसे मुझे पार उतारनेके लिये आप महाभयकारी यमराजके द्वारपर मेरी प्रतीक्षा करें। हे वैतरणी! देवेश्वरि! आपको मेरा नमस्कार है।'

ऐसा कहकर उस गौको ब्राह्मणके हाथमें देकर उनके पीछे-पीछे उनके घरतक पहुँचाने जाय। हे वैनतेय! ऐसा करनेपर वह नदी दाताके लिये सरलतासे पार करनेके योग्य बन जाती है। जो व्यक्ति इस पृथ्वीपर गौका दान देता है, वह अपने समस्त अभीष्टको सिद्ध कर लेता है।

सुकर्मके प्रभावसे प्राणीको ऐहिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है। स्वस्थ जीवनमें गोदान देनेसे हजार गुना एवं रोगग्रस्त जीवनमें सौ गुना लाभ निश्चित है। मरे हुए प्राणीके कल्याणार्थ जितना दान दिया जाता है, उतना ही उसका पुण्य है। अतः मनुष्यको अपने हाथसे ही दान देना चाहिये। मृत्यु होनेके बाद कौन किसके लिये दान देगा? दान-धर्मसे रहित कृपणतापूर्वक जीवन जीनेसे क्या लाभ? इस नश्वर शरीरसे स्थिर कर्म करना चाहिये। प्राण अतिथिकी तरह अवश्य छोड़कर चले जायँगे।

हे पक्षिराज! इस प्रकार प्राणिवर्गके समस्त दुःखका वर्णन मैंने तुमसे कर दिया है। इसके साथ यह भी बता दिया है कि प्रेतके मोक्ष एवं लोकमङ्गलके लिये उसके और्ध्वदेहिक कर्मको करना चाहिये।

सूतजीने कहा—हे विप्रगण! परम तेजस्वी भगवान् विष्णुके द्वारा दिये गये ऐसे प्रेत-चरितसे सम्बन्धित

उपदेशको सुनकर गरुडको अत्यन्त संतुष्टि प्राप्त हुई।

हे ऋषियो! जीव-जन्तुओंके जन्मादिका यही सब विधान है। यही जन्म, मरण, प्रेतत्व तथा और्ध्वदैहिक कृत्यका नियम है। मैंने सब प्रकारसे उनके मोक्ष आदि कारणका वर्णन कर दिया है।

'जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्यामवर्णवाले भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींको लाभ और विजय प्राप्त होती है। ऐसे प्राणियोंकी पराजय कैसे हो सकती है? धर्मकी जीत होती है, अधर्मकी नहीं। सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। क्षमाकी विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही जीतते हैं, असुर नहीं। विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं और विष्णु ही अपने स्वजन बान्धव हैं; जिनकी बुद्धि इस प्रकार स्थिर हो जाती है, उनकी दुर्गति नहीं होती है। भगवान् विष्णु मङ्गलस्वरूप हैं, गरुडध्वज मङ्गल हैं, भगवान् पुण्डरीकाक्ष मङ्गल हैं एवं हरि मङ्गलके ही आयतन हैं। हरि ही गङ्गा और ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण तथा गङ्गा उन विष्णुके मूर्तरूप हैं। अतः गङ्गा, हरि एवं ब्राह्मण ही इस त्रिलोकके सार हैं'—

मया प्रोक्तं वै ते मुक्त्यै निदानं चैव सर्वशः।
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥
धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुराः॥
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवाः।
येषामेव स्थिरा बुद्धिर्न तेषां दुर्गतिर्भवेत्॥
मङ्गलं भगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः॥
हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः।
भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेतज्जगत्त्रये॥

(४७। ४८—४९)

इस प्रकार सूतजी महाराजके मुखसे निकली हुई, सभी शास्त्रोंके मूल तत्त्वोंसे सुशोभित भगवान् विष्णुकी वाणी-रूपी अमृतका पान करके समस्त ऋषियोंको बहुत संतुष्टि प्राप्त हुई। वे सभी परस्पर उन सर्वार्थद्रष्टा सूतजीकी प्रशंसा करने लगे। शौनक आदि मुनि भी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। 'प्राणी चाहे अपवित्र हो या पवित्र हो, सभी अवस्थाओंमें रहते हुए भी जो पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर और भीतरसे पवित्र हो जाता है'—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

(४७।५२)

(अध्याय ४७)

दुःखी गर्भस्थ जीवका विविध प्रकारका चिन्तन करना, यमयातनाग्रस्त जीवका सदा सुकृत करनेका उपदेश देना

तार्क्ष्यने कहा—हे प्रभो! इस मर्त्यलोकमें अपने पुण्यकी संख्याके अनुसार सभी जातियोंमें जो मनुष्य निवास करते हैं, वे अपना काल आ जानेपर मृत्युको प्राप्त करते हैं—ऐसा लोकमें कहते हैं, इसके विषयमें आप मुझे बतायें। विधाताके द्वारा बनाये गये उस मार्गमें स्थित वे प्राणी अत्यन्त कठिन मार्गसे होकर गुजरते हैं। किस पुण्यसे वे प्रसन्नतापूर्वक जाते हैं और किससे वे वहाँ रहते हैं और कुल, बल तथा आयुका लाभ प्राप्त करते हैं।

सूतजीने कहा—हे ऋषियो! यह सुनकर, जिनके द्वारा इस पृथ्वीका निर्माण हुआ है, जिन्होंने समस्त चराचर जगत्‌की सृष्टि की है और समर्थ यमको अपने विहित कार्यमें नियोजित किया है, उन महाप्रभुने मनुष्यके शरीर, कर्म, भय और रूपका स्मरण करके गरुडसे इस प्रकार कहा—

भगवान्‌ने कहा—हे गरुड! यम-मार्गमें गमन करनेवाले जीवात्माओंका ऐहिक शरीर नहीं, अपितु धर्म, अर्थ, काम तथा चिरकालीन मोक्ष प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनेवाला अंगुष्ठमात्र परिमाणमें स्थित दूसरा शरीर होता है। वह उसी रूपमें अपने पाप-पुण्यके अनुसार लोक एवं निवासगृह प्राप्त करता है। हे द्विज! उस यातना-शरीरमें स्थित होकर यम-पाशसे बँधा हुआ वह जीव पुनः-पुनः रोदन करता है—अत्यन्त पवित्र देशमें द्विजका शरीर प्राप्त करके भी मैंने न भगवान् विष्णुकी पूजा की, न पितरों एवं देवताओंको तृप्त किया, न मैंने याग, दान आदि किया और न योग्य पुत्रादि संतति ही। मुझ यम-मार्गगामीका कोई बन्धु नहीं है। मुझे पुनः द्विजका शरीर प्राप्त हो इस इच्छासे कोई पुण्य

कार्य भी नहीं किया है। अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्व प्राप्त करके वेद और पुराणकी संहिताओंका भी अध्ययन मैंने नहीं किया है। इस प्रकार रुदन करते हुए देहीसे यमदूत कहते हैं कि हे देहिन्! हाथमें आये हुए ब्राह्मणशरीर, पवित्र देश आदि रूपी अनमोल रत्न भी तुमने खो दिये। हे देहिन्! तुम उसीके अनुसार अपना निर्वाह करो, जैसा कि तुमने किया है।'

मनुष्य क्षत्रियवंशका हो अथवा वैश्यवंशका हो, वह शूद्र हो या नीचवर्णका हो, किंतु यदि वह देवता, ब्राह्मण, बालक, स्त्री, वृद्ध, दीन और तपस्वियोंका हन्ता है अथवा इन्हें उपद्रवग्रस्त देखकर (इनके संरक्षणसे) पराङ्मुख हो जाता है तो उसके सभी इष्टदेव उससे विमुख हो जाते हैं। पितृगण उसके द्वारा दिये गये तिलोदकका पान नहीं करते हैं और अग्निदेव उसके द्वारा दिये गये हव्यको भी नहीं स्वीकार करते हैं। हे पक्षीन्द्र! संग्रामके उपस्थित होनेपर शस्त्र लेकर जो क्षत्रिय शत्रु-सेनाके समक्ष द्वेष और भयवश नहीं जाता है तथा बादमें मारा जाता है तो उसका क्षात्रबल मानो व्यर्थ ही हो गया।

जो युद्धमें वीरगति प्राप्त करता है। उसने मानो चन्द्र एवं सूर्यग्रहणके अवसरपर श्रेष्ठ ब्राह्मणको दान दे दिया, श्रेष्ठ तीर्थोंमें जाकर सदा स्नान कर लिया, गयातीर्थमें पहुँचकर सदा पितरोंको पिण्डदान दे दिया। जो क्षत्रिय अपने कर्तव्योंका पालन बिना किये हुए शरीरको छोड़ता है, वह सदा चिंता करता रहता है कि समरभूमिमें मारे गये स्वामीके लिये, बलात् अपहृत गौके लिये, स्त्री-बालककी हत्या रोकनेके लिये तथा मार्गमें लूटे जानेवाले साथियोंके लिये अपने प्राणोंका परित्याग मैंने नहीं किया। यमपाशमें आबद्ध वैश्य अपने किये हुए कर्मोंके विषयमें सोचता है कि मैंने किसी प्रकारका पुण्य-संचय नहीं किया, कुटुम्बके लिये मोहान्ध होकर क्रय-विक्रयमें मैंने सत्यका भी प्रयोग नहीं किया। ऐसे ही शूद्रका शरीर प्राप्त करनेवाला भी अपने कर्तव्यसे विमुख रहते हुए यदि शरीर त्याग करता है तो वह भी यह चिंता करता है कि मैंने ब्राह्मणोंको न तो यशस्कर दान दिया है और न उनकी पूजा की है। मेरे द्वारा इस पृथ्वीपर जलाशयका निर्माण नहीं करवाया गया है। मैंने किसी संस्कारहीन ब्राह्मणश्रेष्ठका संस्कार करानेमें योगदान भी नहीं किया है। शास्त्रविहित अपने कर्मोंका परित्याग करके मदान्ध होकर मैं जीवित रहा। श्रेष्ठ तीर्थमें जाकर अपने शरीरका परित्याग भी नहीं किया। मैंने धर्मार्जन भी नहीं किया है। कभी सद्गति प्राप्त करनेके लिये मैंने देवताओंकी पूजा भी नहीं की है।

समस्त लोकोंमें पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल—ये तीन लोक सारभूत हैं। सभी द्वीपोंमें जम्बूद्वीप, समस्त देशोंमें देवदेश अर्थात् भारतवर्ष और सभी जीवोंमें मनुष्य ही सार है। इस जगत्‌के सभी वर्णोंमें ब्राह्मणादि चार वर्ण तथा उन वर्णोंमें भी धर्मनिष्ठ व्यक्ति श्रेष्ठ हैं। इस लोकयात्राके मार्गमें स्थित जीवात्मा धर्मसे सभी प्रकारका सुख और ज्ञान प्राप्त करता है। हे पक्षिन्! गर्भस्थ जीवको अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान रहता है, वह वहाँ स्मरण करता है कि आयुके समाप्त होनेपर शरीरका परित्याग करके अब मैं मलादिमें रहनेवाले छोटे-छोटे कृमि या कीटाणुओंकी एक विशेष योनिमें स्थित हूँ, मैं सरककर चलनेवाले सर्पादिकी योनिमें पहुँचा, मच्छर हो गया था, चार पैरोंवाला अश्व या वृषभ नामक पशु बन गया था अथवा जंगली सूकरकी योनिमें प्रविष्ट था। इस प्रकार गर्भमें रहते हुए उस जीवात्माको पूर्ण ज्ञान रहता है, किंतु उत्पन्न होते ही वह तत्काल उसे भूल जाता है। गर्भमें पहुँचकर जो जीवात्मा चिन्तन करता है, शरीरधारी वैसा ही जन्म लेकर बालक, युवा और वृद्ध होता है। यदि गर्भमें सोची गयी बात सांसारिक व्यामोहके कारण विस्मृत हो जाती है तो पुनः मृत्युकालमें उसकी याद आ जाती है। यदि शरीरके नष्ट होनेपर वह हृदयमें ही रह गयी है तो पुनः गर्भमें जानेपर उसका स्मरण होना निश्चित है। उसे याद आता है कि मैं दूसरेको छलनेका विचार करता रहा। मैंने शरीरकी रक्षाके लिये धर्मका परित्याग करके द्यूत, छल-कपट और चोरवृत्तिका आश्रय लिया।

अत्यन्त कष्टसे मैंने स्वयं लक्ष्मीको एकत्र किया था, किंतु अभिलषित धनका उपभोग मैं नहीं कर सका। अग्निदेव, अतिथि और बन्धु-बान्धवोंको स्वादिष्ट अन्न, फल, गोरस तथा ताम्बूल दे करके मैं उन्हें संतुष्ट करनेमें असफल रहा। चन्द्रग्रहण हो या मेष-मकर राशियोंपर सूर्यके प्रवेशका पुण्यकाल हो, ऐसे अवसरपर भी श्रेष्ठ तीर्थोंका सेवन मैंने नहीं किया। इसलिये हे देहिन्! तुम मल-मूत्रसे भरे हुए अपने इस कोशको परिपुष्ट करनेमें लगे रहे। अतः तुम्हारा उद्धार कहाँ हो सकता है? इस पृथ्वीपर

स्थित त्रिविक्रम भगवान् विष्णुकी प्रतिमाका दर्शन मैंने नहीं किया, उन्हें प्रणाम नहीं किया और न तो उनकी पूजा की है। प्रभासक्षेत्रमें विराजमान भगवान् सोमनाथकी भक्तिपूर्वक पूजा एवं वन्दना भी मेरे द्वारा नहीं हुई है। जब ऐसी चिंता मृत प्राणी करता है, तब यमदूत उससे कहते हैं कि हे देहधारिन्! जैसा तुमने किया है, उसके अनुसार अपना निस्तार करो। हे देहिन्! पृथ्वीके श्रेष्ठतम तीर्थोंकी संनिधिमें जाकर उनमें स्नानकर तुम्हारे द्वारा विद्वानों, ब्राह्मणों एवं गुरुजनोंके हाथमें कुछ नहीं दिया गया, अतः जैसा तुमने किया है, वैसा भोगो। हे जीव! तुमने चन्दन और नैवेद्यादि पञ्चोपचारसे और चन्दनादियुक्त बलि प्रदान करके मातृकापूजा नहीं की, न तो तुम्हारे द्वारा विष्णु, शिव, गणेश, चण्डी अथवा सूर्यदेव ही पूजे गये हैं। अतः तुमने जो कर्म किया है, उसीमें अपना निर्वाह करो। हे देहिन्! तुम्हें तो देवत्व प्राप्त करने योग्य मानवयोनिकी प्राप्ति हुई थी, किंतु (लौकिक आसक्तिमें) मोहवश यह सब समाप्त हो गया। विमूढ़बुद्धि तुमने अपनी गतिको नहीं देखा, इसलिये जो तुमने किया है, अब उसीमें निस्तार करो।

हे पक्षिन्! धर्म, अर्थ तथा यशको प्रदान करनेवाले, ऐसे पूर्वोक्त परलोकपथके पथिक जीवोंके पश्चात्ताप-वाक्यका विचार करके इस मनुष्यलोकमें जो धर्माचरण करते हुए पुण्य देशमें निवास करते हैं, वे इसी मनुष्यलोकमें जीवन्मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

ऊपर किये हुए वर्णनके अनुसार विलाप करते हुए प्रेतको यमदूत अपने कालस्वरूप मुद्गरोंसे बहुत मारते हैं। वह 'हा दैव! हा दैव!' यह स्मरण करता हुआ अपनेको कोसते हुए कहता है कि तुमने अपनी कमायीसे जो धन अर्जित किया था, उसमेंसे किसीको दान नहीं दिया। पृथ्वीपर रहते हुए तुमने भूमिदान, गोदान, जलदान, वस्त्रदान, फलदान, ताम्बूलदान अथवा गन्धदान भी नहीं किया तो अब भला क्या सोच रहे हो? तुम्हारे पिता और पितामह मर गये, जिसने तुमको अपने गर्भमें धारण किया वह तुम्हारी माता भी मर गयी, तुम्हारे सभी बन्धु भी नहीं रहे, ऐसा तुमने देखा है। तुम्हारा पाञ्चभौतिक शरीर अग्निमें जलकर भस्म हो गया। तुम्हारे द्वारा एकत्र किया गया सम्पूर्ण धन-धान्य पुत्रोंने हस्तगत कर लिया। जो कुछ तुम्हारा सुभाषित है और जो कुछ तुमने धर्मसंचय किया है, वह तुम्हारे साथ है। इस पृथ्वीपर जन्म लेनेवाला राजा हो अथवा संन्यासी या कोई श्रेष्ठतम ब्राह्मण हो, वह मरनेके बाद पुनः आया हुआ नहीं दिखायी देता है। जो भी इस धरातलपर उत्पन्न हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है। हे पक्षीन्द्र! दूतोंके सहित धर्मराजके पार्षद जब प्रेतसे इस प्रकारसे कहते हैं तो दुःखी वह प्रेत उन गणोंकी महान् आश्चर्यपूर्ण बातको सुनकर मनुष्यकी वाणीमें कहने लगता है—

जब दानके प्रभावसे व्यक्ति विमानपर आरूढ़ होता है, उस समय धर्म उसका पिता है, दया उसकी माता है, मधुर एवं अर्थगाम्भीर्ययुक्त वाणी उसकी पत्नी है और सुन्दर तीर्थमें किया गया स्नान उसका हितैषी बन्धु है। जब मनुष्य अपने हाथसे सुकृत करके उसको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित कर देता है, तब उसके लिये स्वर्ग किंकरकी भाँति हो जाता है। जो प्राणी धर्मनिष्ठ है वह अत्यन्त सुख-सुविधाओंको प्राप्त करता है और जो पापी है वह नाना दुःखोंका भोग करता है। जो धर्मशील, मान-सम्मान तथा क्रोधको जीतनेवाला, विद्या-विनयसे युक्त, दूसरेको कष्ट न देनेवाला, अपनी पत्नीमें संतुष्ट और परायी स्त्रीसे दूर रहनेवाला है, वह पृथ्वीपर हमारे लिये वन्दनीय है। जो मिष्टान्नदाता, अग्निहोत्री, वेदान्ती, हजारों चान्द्रायणव्रत करनेवाला, मासपर्यन्त उपवास रखनेमें समर्थ पुरुष तथा पतिव्रता नारी है—ये छः इस जीवलोकमें मेरे लिये वन्दनीय हैं। इस प्रकारका सम्यक् आचरण करते हुए जो मनुष्य वापी, कूप और जलसे पूर्ण तालाब बनवाता है, जो प्याऊ, जलकुण्ड, धर्मशाला तथा देवमन्दिरका निर्माण कराता है, वह उत्तम धर्म करनेवाला है। वेदज्ञ ब्राह्मणको दिया गया वर्षाशन, कन्याका विवाह, ऋणी ब्राह्मणकी ऋणमुक्ति, सुगमतासे बोयी-जोती जानेवाली भूमिका दान तथा प्याससे दुःखी प्राणियोंके लिये उसीके अनुकूल कूप, तडागादिका निर्माण ये ही सब सुकृत हैं।

शुद्ध भावसे जो प्राणी इस सुकृतसाररूप अध्यायको सुनता और पढ़ता भी है वह कुलीन है। वह धर्मनिष्ठ व्यक्ति मृत्युके बाद निश्चित ही उस अनन्त ब्रह्माण्डके एकमात्र आश्रय नारायणको प्राप्त करता है। (अध्याय ४८)

भगवान् विष्णुद्वारा गरुडको दिये गये महत्त्वपूर्ण उपदेश, मनुष्ययोनिप्राप्तिकी दुर्लभताका वर्णन, मनुष्य-शरीर प्राप्तकर आत्मकल्याणके लिये सचेष्ट रहना, संसारकी दुःखरूपता तथा अनित्यता और ईश्वरकी नित्यताका वर्णन, कालके द्वारा सभीके विनाशका प्रतिपादन, सत्संग और विवेकज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति, तत्त्वज्ञानरूपी मोक्षप्राप्तिके उपाय, गरुडपुराणकी वक्तृ-श्रोतृपरम्परा तथा गरुडपुराणका माहात्म्य

गरुडने कहा—हे दयाके सागर! अज्ञानके कारण ही जीवकी उत्पत्ति इस संसारमें होती है, इस बातको मैंने सुन लिया। अब मैं मोक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हूँ। हे देवदेवेश! शरणागतवत्सल! प्रभो! सभी प्रकारके दुःखोंसे मलिन बनाये गये इस दुस्तर असार संसारमें नाना प्रकारके शरीरोंमें प्रविष्ट जीवोंकी अनन्त राशियाँ हैं। वे इसी संसारमें जन्म लेती हैं और इसीमें मर जाती हैं, किंतु उनका अन्त नहीं होता है। वे सदैव दुःखसे व्याकुल ही रहती हैं। यहाँ कहीं कोई भी सुखी नहीं है। हे मोक्षदाता स्वामिन्! वे किस उपायसे मुक्त हो सकते हैं? उसको आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान्‌ने कहा—हे तार्क्ष्य! जो तुम मुझसे पूछ रहे हो, जिसको सुनने मात्रसे ही मनुष्य इस संसारके आवागमनके चक्रसे मुक्त हो जाता है, उसे मैं कह रहा हूँ; तुम सुनो।

हे खगेश! इस जगत्‌से परे परब्रह्मस्वरूप, निरवयव, सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश, निर्मल, अद्वय-तत्त्व, स्वयंप्रकाश, आदि-अन्तसे रहित, विकारशून्य, परात्पर, निर्गुण और सच्चिदानन्द शिव हैं, उसीके अंश ये जीव हैं। जो अनादि अविद्यासे वैसे ही आच्छादित हैं, जैसे अग्निमें उसके अंश विस्फुलिङ्ग स्थित हैं। अनादि कर्मोंके प्रभावसे प्राप्त शरीरादि नाना उपाधियोंमें होनेके कारण परस्पर भिन्न-भिन्न हो गये हैं, सुख-दुःख प्रदान करनेवाले पुण्य और पापोंका उनके ऊपर नियन्त्रण है। उसी कर्मके अनुसार उन्हें जाति, देह, आयु तथा भोगकी प्राप्ति होती है। सूक्ष्म या लिङ्ग शरीरके बने रहनेतक पुनः-पुनः जन्म-मरणकी परम्परा चलती रहती है।

स्थावर, कृमि, पक्षी, पशु, मनुष्य, धार्मिक, देवता और मुमुक्षु यथाक्रम चार प्रकारके शरीरोंको धारण करके हजारों बार उनका परित्याग करते हैं। यदि पुण्य कर्मके प्रभावसे उनमेंसे किसीको मानवयोनि मिल जाय तो उसे ज्ञानी बनकर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। चौरासी लाख योनियोंमें स्थित जीवात्माओंको बिना मानवयोनि मिले तत्त्वज्ञानका लाभ नहीं मिल सकता है। इस मृत्युलोकमें हजार ही नहीं, करोड़ों बार जन्म लेनेपर भी जीवको कदाचित् ही संचित पुण्यके प्रभावसे मानव-योनि मिलती है। यह मानवयोनि मोक्षकी सीढ़ीके समान है। इस दुर्लभ योनिको प्राप्त कर जो प्राणी स्वयं अपना उद्धार नहीं करता है, उससे बढ़कर पापी इस जगत्‌में दूसरा कौन हो सकता है—

> सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम्।
> यस्तारयति नात्मानं तस्मात् पापतरोऽत्र कः॥
> (४९।१५)

अन्य योनियोंसे भिन्न सुन्दर-सुन्दर इन्द्रियोंवाले इस जन्मका लाभ लेकर जो मनुष्य आत्महितका ज्ञान नहीं रखता है, वह ब्रह्मघाती है। किसीका भी पुरुषार्थ शरीरके बिना सम्भव नहीं है। अतः शरीररूपी धनकी रक्षा करते हुए पुण्य कर्म करना चाहिये। आत्मा सभीका पात्र है, इसलिये उसकी रक्षामें मनुष्य सर्वदा संलग्न रहे। जो व्यक्ति आजीवन उस आत्माकी रक्षामें प्रयत्नशील रहता है, वह जीवित रहते हुए ही अपना कल्याण देखता है। मनुष्यको ग्राम, क्षेत्र, धन, घर, शुभाशुभ कर्म और शरीर बार-बार नहीं प्राप्त होता है। विद्वान् लोग सदैव शरीरकी रक्षाके उपायमें लगे रहते हैं। कुष्ठादि महाभयंकर रोगोंसे ग्रस्त होनेपर भी मनुष्य उस शरीरको छोड़ना नहीं चाहता है। शरीरकी रक्षा धर्मके लिये, धर्मकी रक्षा ज्ञानके लिये और ज्ञानकी रक्षा ध्यानयोगके लिये तथा ध्यानयोगकी रक्षा तत्काल मुक्तिप्राप्तिके लिये होती है। यदि आत्मा ही अहितकारी कार्योंसे अपनेको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता है तो अन्य दूसरा कौन ऐसा हितकारी होगा जो आत्माको सुख प्रदान करेगा।

यहीं इसी लोकमें नरकरूपी व्याधिकी चिकित्सा नहीं की गयी तो औषधिविहीन देश (परलोक-)में जाकर रोगी उससे मुक्तिका क्या उपाय करेगा? बुढ़ापा तो बाघिनके समान है। जिस प्रकारसे फूटे हुए घड़ेका जल धीरे-धीरे

बह जाता है, उसी प्रकार आयु भी क्षीण होती रहती है। शरीरमें विद्यमान रोग शत्रुके सदृश कष्ट देते हैं, इसलिये कल्याण इसीमें है कि इन सभीसे मुक्ति प्राप्त करनेका सत्प्रयास किया जाय। जबतक शरीरमें किसी प्रकारका दुःख नहीं होता है, जबतक विपत्तियाँ सामने नहीं आती हैं और जबतक शरीरकी इन्द्रियाँ शिथिल नहीं पड़ती हैं, तबतक ही आत्मकल्याणका प्रयास हो सकता है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, तबतक ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सम्यक् प्रयत्न किया जा सकता है। कोशागारमें आग लग जानेपर मूर्ख कुआँ खोदता है, ऐसे प्रयत्नसे क्या लाभ—

इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः।
गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं करिष्यति॥
व्याघ्रीवास्ते जरा चायुर्याति भिन्नघटाम्बुवत्।
निघ्नन्ति रिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत्॥
यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्ति चापदः।
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समभ्यसेत्॥
यावत् तिष्ठति देहोऽयं तावत् तत्त्वं समभ्यसेत्।
संदीप्तकोशभवने कूपं खनति दुर्मतिः॥

(४९।२३—२६)

मनुष्य नाना प्रकारके सांसारिक कार्योंमें व्यस्त रहनेसे (बीतते हुए) समयको नहीं जान पाता है। वह दुःख-सुख तथा आत्महितको भी नहीं जानता है। पैदा होनेवालोंको, रोगियोंको, मरनेवालेको, आपत्तिग्रस्तको और दुःखी लोगोंको देखकर भी मनुष्य मोहरूपी मदिराको पीकर (जन्म-मरणादि दुःखसे युक्त संसारसे) नहीं डरता। सम्पदाएँ स्वप्नके समान हैं, यौवन पुष्पके सदृश है, आयु चञ्चल बिजलीके तुल्य नष्टप्राय है, ऐसा जानकर भी किसको धैर्य हो सकता है? सौ वर्षका जीवन अत्यल्प है। वह भी निद्रा तथा आलस्यमें आधा चला जाता है। तदनन्तर बाल्यावस्था, रोग, वृद्धावस्था एवं अन्यान्य दुःखोंमें व्यतीत हो गया और जो थोड़ा बचा वह भी निष्फल हो जाता है—

कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्भवैः।
सुखं दुःखं जनो हन्त न वेत्ति हितमात्मनः॥
जातानार्तान् मृतानापद्भ्रष्टान् दृष्ट्वा च दुःखितान्।
लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदाचन॥
सम्पदः स्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम्।
तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः॥
शतं जीवितमत्यल्पं निद्रालस्यैस्तदर्धकम्।
बाल्यरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम्॥

(४९।२७—३०)

जिस कार्यको तुरंत आरम्भ कर देना चाहिये, उसके संदर्भमें जो उद्योगहीन होकर बैठा है, जहाँ जागते रहना चाहिये, वहाँ जो सोता रहे तथा भयके स्थानपर जो आश्वस्त होकर रहता है—ऐसा वह कौन मनुष्य है, जो मारा नहीं जाता? जलके फेनके समान इस शरीरको आक्रमण करके जीव स्थित है, यहाँ जिन प्रिय वस्तुओंके साथ संनिवास है, वे अनित्य हैं। अतः जीव कैसे निर्भय होकर नितान्त अनित्य, शरीर, भोग और पुत्र-कलत्रादिके साथ रहता है। जो अहितमें हित, अनिश्चितमें निश्चित और अनर्थमें अर्थको विशेष रूपसे जाननेवाला है, वह व्यक्ति अपने मुख्य प्रयोजनको नहीं जानता। जो देखते हुए भी गिर जाता है, जो सुनते हुए भी सद्-ज्ञानको नहीं प्राप्त कर पाता है, जो सद्ग्रन्थोंको पढ़ते हुए भी उसे नहीं समझ पाता है, वह देवमायासे विमोहित है—

प्रारब्धव्ये निरुद्योगी जागर्तव्ये प्रसुप्तकः।
विश्वस्तश्च भयस्थाने हा नरः को न हन्यते॥
तोयफेनसमे देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते।
अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः॥
अहिते हितसंज्ञः स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः।
अनर्थे चार्थविज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति सः॥
पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुध्यति।
पठन्नपि न जानाति देवमायाविमोहितः॥

(४९।३१—३४)

कालके इस गहरे महासागरमें यह सम्पूर्ण जगत् डूबता-उतराता रहता है। मृत्यु, रोग और बुढ़ापारूपी ग्राहोंसे जकड़े जानेपर भी किसी व्यक्तिको ज्ञान नहीं हो पाता है। मनुष्यके लिये प्रतिक्षण भय है, समय बीत रहा है, किंतु वह उसी प्रकार दिखायी नहीं देता है, जैसे जलमें पड़ा हुआ कच्चा घड़ा गलता हुआ दिखायी नहीं देता। कदाचित् वायुको बाँधकर रखा जा सकता है, आकाशका खण्डन हो सकता है, तरंगोंको किसी सूत्रादिमें पिरोया जा सकता है; किंतु आयुमें विश्वास नहीं किया जा सकता है। जिसके (प्रलयाग्निके) प्रभावसे पृथ्वी दहकती है, सुमेरु पर्वत विशीर्ण हो जाता है तथा सागरका जल सूख जाता है। फिर

इस शरीरके सम्बन्धमें तो बात ही क्या? पुत्र मेरा है, स्त्री मेरी है, धन मेरा है, बन्धु-बान्धव मेरे हैं। इस प्रकार 'मैं, मैं' चिल्लाते हुए बकरेकी भाँति कालरूपी भेड़िया बलात् मनुष्यको मार डालता है—

तन्निमज्जज्जगदिदं गम्भीरे कालसागरे।
मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चिदपि बुध्यते॥
प्रतिक्षणमयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते।
आमकुम्भ इवाम्भःस्थो विशीर्णो न विभाव्यते॥
युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम्।
ग्रथनञ्च तरंगाणामास्था नायुषि युज्यते॥
पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते।
शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा॥
अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे।
जल्पन्तमिति मर्त्याजं हन्ति कालवृको बलात्॥

(४९। ३५—३९)

यह मैंने किया है, यह मुझे करना है, यह किया गया है या नहीं किया गया है—इस प्रकारकी भावनासे युक्त मनुष्यको मृत्यु अपने वशमें कर लेती है। कल किये जानेवाले कार्यको आज ही कर लेना चाहिये। जो दोपहरके बाद करना है, उसको दोपहरसे पहले ही कर लेना चाहिये, क्योंकि कार्य हो गया है अथवा नहीं हुआ है, इसकी मृत्यु प्रतीक्षा नहीं करती। वृद्धावस्था पथ-प्रदर्शक है, अत्यन्त भयंकर रोग सैनिक है, मृत्यु शत्रु है, ऐसी विषम परिस्थितिमें फँसा हुआ मनुष्य अपने रक्षक भगवान् विष्णुको क्यों नहीं देखता है। तृष्णारूपी सूईसे छिद्रित, विषयरूपी घृतमें डूबे, राग-द्वेषरूपी अग्निकी आँचमें पकाये गये मानवको मृत्यु खा लेती है। बालक, युवा, वृद्ध और गर्भमें स्थित सभी प्राणियोंको मृत्यु अपनेमें समाहित कर लेती है, ऐसा है यह जगत्। यह जीव अपने शरीरको भी छोड़कर यमलोक चला जाता है तो भला स्त्री, माता-पिता और पुत्रादिका जो सम्बन्ध है, वह किस कारणसे प्रेरित होकर बनाया गया है। संसार दुःखका मूल है, वह किसका होकर रहा है अर्थात् इसकी ओर जिसका मन अधिक रम गया है, वही दुःखित है। जिसने इस सांसारिक व्यामोहका परित्याग कर दिया है, वह सुखी है। उसके अतिरिक्त कहींपर भी अन्य कोई दूसरा सुखी नहीं है—

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम्।
एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम्॥
श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाप्यथ वाऽकृतम्॥
जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम्।
अधिष्ठितो मृत्युशत्रुं त्रातारं किं न पश्यति॥
तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सिक्तं विषयसर्पिषा।
रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम्॥
बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान् गर्भगतानपि।
सर्वानाविशते मृत्युरेवम्भूतमिदं जगत्॥
स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम्।
स्त्रीमातृपितृपुत्रादिसम्बन्धः केन हेतुना॥
दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः।
तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित्॥

(४९। ४०—४६)

यह जगत् सभी दुःखोंका जनक, समस्त आपदाओंका घर तथा सब प्रकारके पापोंका आश्रय है। अतः क्षणभरमें ही मनुष्यको इसका त्याग कर देना चाहिये। लौह और काष्ठके जालमें फँसा हुआ पुरुष मुक्त हो सकता है; किंतु पुत्र एवं स्त्रीके मोहजालमें फँसा हुआ वह कभी मुक्त नहीं हो सकता। मनुष्य मनको प्रिय लगनेवाले जितने पदार्थोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता जाता है, उतनी शोककी कीलें उसके हृदयमें चुभती जाती हैं। विषयका आहार करनेवाले देहस्थित तथा सभी प्रकारके अशेष सामर्थ्यसे वञ्चित कर देनेवाले जिन इन्द्रियरूपी चोरोंके द्वारा लोक विनष्ट हो रहे हैं। हाय, यह बड़े कष्टकी बात है। जैसे मांसके लोभमें फँसी हुई मछली बंसीके काँटेको नहीं देखती है, वैसे ही सुखके लालचमें फँसा हुआ शरीरी यमकी बाधाको नहीं देखता है—

प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम्।
आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत् क्षणात्॥
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते।
पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन॥
यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान्।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥
वञ्चिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यं लोको विनाशितः।
हा हन्त विषयाहारैर्देहस्थेन्द्रियतस्करैः॥
मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशंकुं न पश्यति।
सुखलुब्धस्तथा देही यमबाधां न पश्यति॥

(४९। ४७—५१)

हे खगेश! अपने हित-अहितको न जानते हुए जो नित्य कुपथगामी हैं, जिनका लक्ष्य मात्र पेट भरना है, वे मनुष्य नारकीय प्राणी हैं। निद्रा, भय, मैथुन तथा आहारकी अभिलाषा सभी प्राणियोंमें समान रूपसे रहती है; उनमें ज्ञानीको मनुष्य और अज्ञानीको पशु माना गया है। मूर्ख व्यक्ति प्रातःकालमें मल-मूत्र, दोपहरमें भूख-प्यास तथा रातमें मैथुन और निद्रासे पीड़ित रहते हैं। बड़े दुःखकी बात है कि अज्ञानसे मोहित होकर सभी प्राणी अपने शरीर, धन एवं स्त्री आदिमें अनुरक्त होकर जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। अतः व्यक्तिको उनकी ओर बढ़ी हुई अपनी आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। यदि आसक्ति छोड़ी न जा रही हो तो महापुरुषोंके साथ उस आसक्तिको जोड़ देना चाहिये, क्योंकि आसक्ति-रूपी व्याधिकी औषधि सज्जन पुरुष ही हैं—

> हिताहितं न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः।
> कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नरा नारकाः खग॥
> निद्राभीमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः।
> ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः॥
> प्रभाते मलमूत्राभ्यां क्षुत्तृड्भ्यां मध्यगे रवौ।
> रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यन्ते मूढमानवाः॥
> स्वदेहधनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः।
> जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञानमोहिताः॥
> तस्मात् सङ्गः सदा त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।
> महद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम्॥
> (४९।५२—५६)

सत्संग और विवेक—ये दो प्राणीके मलरहित, स्वस्थ दो नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनों नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है। वह कुमार्गपर कैसे नहीं जायगा? अर्थात् वह अवश्य ही कुमार्गगामी होगा—

> सत्सङ्गश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्।
> यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः॥
> (४९।५७)

अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मको माननेवाले सभी मानव दूसरेके धर्मको नहीं जानते हैं, किंतु वे दम्भके वशीभूत हो जायँ तो अपना ही नाश करते हैं। व्रतचर्यादिमें लगे हुए प्रयासरत कुछ लोगोंसे क्या बनेगा? क्योंकि अज्ञानसे स्वयं अपने आत्मतत्त्वको ढके हुए लोग प्रचारक बनकर देश-देशान्तरमें विचरण करते हैं। नाममात्रसे स्वयं संतुष्ट कर्मकाण्डमें लगे हुए मनुष्य तथा मन्त्रोच्चार एवं होमादिसे युक्त याज्ञिक यज्ञविस्तारके द्वारा भ्रमित हैं। मेरी मायासे विमोहित मूढ़ लोग शरीरको सुखा देनेवाले एकभक्त तथा उपवासादि नियमोंसे अपने पुण्यरूप अदृष्टकी कामना करते हैं।

शरीरकी ताड़ना मात्रसे अज्ञानीजन क्या मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं? क्या बामीको पीटनेसे महाविषधारी सर्प मर सकता है? यह कदापि सम्भव नहीं है। जटाओंके भार और मृगचर्मसे युक्त वेष धारण करनेवाले दाम्भिक ज्ञानियोंकी भाँति इस संसारमें भ्रमण करते हैं और लोगोंको भ्रमित करते हैं। लौकिक सुखमें आसक्त 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' ऐसा कहनेवाले, कर्म तथा ब्रह्म—इन दोनोंसे भ्रष्ट, दम्भी एवं ढोंगी व्यक्तिका अन्त्यजके समान परित्याग कर देना चाहिये। घरको वनके समान मानकर निर्वस्त्र और लज्जारहित जो साधु गधे अन्य पशुओंकी भाँति इस जगत्‌में घूमते रहते हैं, क्या वे विरक्त होते हैं? कदापि नहीं। यदि मिट्टी, भस्म तथा धूलका लेप करनेसे मनुष्य मुक्त हो सकता है तो क्या मिट्टी और भस्ममें ही नित्य रहनेवाला कुत्ता मुक्त नहीं हो जायगा? वनवासी तापसजन घास, फूस, पत्ता तथा जलका ही सेवन करते हैं, क्या इन्हींके समान वनमें रहनेवाले सियार, चूहे और मृगादि जीवजन्तु तपस्वी हो सकते हैं? जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त गङ्गा आदि पवित्रतम नदियोंमें रहनेवाले मेढक या मछली आदि प्रमुख जलचर प्राणी योगी हो सकते हैं? कबूतर, शिलाहार और चातक पक्षी कभी भी पृथ्वीका जल नहीं पीते हैं, क्या उनका व्रती होना सम्भव है। अतः ये नित्यादिक कर्म, लोकरञ्जनके कारक हैं। हे खगेश्वर! मोक्षका कारण तो साक्षात् तत्त्वज्ञान है।

हे खगेश्वर! षड्दर्शनरूपी महाकूपमें पशुके समान गिरे हुए मनुष्य पाशसे नियन्त्रित पशुकी भाँति परमार्थको नहीं जानते। वेद-शास्त्रादिके महासमुद्रमें इधर-उधरसे अनुमान लगानेवाले इस षड्दर्शनरूपी तरंगसे ग्रस्त होकर कुतर्की बन जाते हैं। जो वेद-आगम और पुराणका ज्ञाता परमार्थको नहीं जानता है, उस कपटीका सब कथन कौवेका काँव-काँव ही है। यह ज्ञान है, यह जाननेके योग्य है, ऐसी चिन्तासे भलीभाँति बेचैन तथा परमार्थतत्त्वसे दूर प्राणी दिन-रात शास्त्रका अध्ययन करता है। वाक्य ही छन्द है और उस छन्दसे गुम्फित काव्योंमें अलंकार सुशोभित होता है। इस चिन्तासे दुःखित मूर्ख व्यक्ति अत्यधिक व्याकुल हो

जाता है। उस परमतत्त्वका अन्य ही अर्थ है; किंतु लोग उसका दूसरा अर्थ लगाकर दु:खित होते हैं। शास्त्रोंका सद्भाव कुछ और ही है; किंतु वे उसकी व्याख्या उससे भिन्न ही करते हैं। उपदेशादिसे रहित कुछ अहंकारी व्यक्ति उन्मनीभावकी बात कहते हैं, किंतु स्वयं उसका अनुभव नहीं करते हैं। वे वेद-शास्त्रोंको पढ़ते हैं और परस्पर उसको जाननेका प्रयास करते हैं; किंतु जैसे कलछी पाकका रसास्वाद नहीं कर पाती है, वैसे ही वे परमतत्त्वको नहीं जान पाते हैं। सिर पुष्पोंको ढोता है, परंतु उसकी सुगन्धका अनुभव नासिका ही करती है। बहुत-से लोग वेद-शास्त्र पढ़ते हैं; किंतु उनके भावको समझनेवाला दुर्लभ है। अपने ही भीतर विद्यमान उस परमतत्त्वको न पहचान कर मूर्ख प्राणी शास्त्रोंमें वैसे ही व्याकुल रहता है, जैसे कछारमें आये हुए बकरी या भेंडके बच्चेको एक गोप कुएँमें खोजता है। सांसारिक मोहको विनष्ट करनेमें शब्दज्ञान समर्थ नहीं है; क्योंकि दीपककी वार्तासे कभी अन्धकारको दूर नहीं किया जा सकता है। बुद्धिरहित व्यक्तिका पढ़ना वैसे ही है, जैसे अन्धेके हाथमें दर्पण हो। अत: प्रज्ञावान् पुरुषोंके द्वारा अधीत शास्त्र तत्त्वज्ञानका लक्षण है। यह ज्ञान है, यह जाननेके योग्य है, ऐसे विचारोंमें फँसा हुआ मनुष्य सब कुछ जाननेकी इच्छा करता है, किंतु हजार दिव्य वर्षोंतक पढ़नेपर भी वह शास्त्रोंका अन्त नहीं समझ पाता है। शास्त्र तो अनेक हैं, किंतु आयु बहुत ही कम है और उसमें भी करोड़ों विघ्न-बाधाएँ हैं। इसलिये जलमें मिले हुए क्षीरको जैसे हंस ग्रहण कर लेता, है वैसे ही उनके सार-तत्त्वको ग्रहण करना चाहिये—

अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटय:।
तस्मात् सारं विजानीयात् क्षीरं हंस इवाम्भसि॥

(४९।८४)

हे तार्क्ष्य! वेद-शास्त्रोंका अभ्यास करके जो बुद्धिमान् व्यक्ति उस परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसको उन सभीका परित्याग उसी प्रकार करना चाहिये, जिस प्रकार एक धान्यार्थी पुरुष धान ग्रहण कर लेता है और पुआलको फेंक देता है। जैसे अमृतके पानसे संतृप्त प्राणीका भोजनसे कोई सरोकार नहीं रह जाता है, वैसे ही तत्त्वको जाननेवाले विद्वान्का शास्त्रसे कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है। हे विनतात्मज! वेदाध्ययनसे मुक्ति सम्भव नहीं है और न तो शास्त्रोंको पढ़नेसे वह प्राप्त हो सकती है, वह कैवल्य ज्ञानसे ही सुलभ है, किसी अन्य साधनसे नहीं। आश्रम उस मोक्षका कारण नहीं हो सकता है। दर्शन भी उसकी प्राप्तिके कारण नहीं हैं। वैसे ही सभी कर्मोंको उसका कारण नहीं मानना चाहिये। उसका कारण ज्ञान है। मुक्ति देनेवाली गुरुकी एक वाणी है। अन्य सभी विद्याएँ विडम्बना करनेवाली हैं। हजार शास्त्रोंका भार सिरपर होनेपर भी प्राणीको तो संजीवन देनेवाला वह परमतत्त्व अकेला ही है। सभी प्रकारकी क्रियाओंसे रहित वह अद्वैत शिवतत्त्व कहा गया है। उसको गुरुके मुखसे प्राप्त करना चाहिये। वह करोड़ों आगम-शास्त्रोंका अध्ययन करनेसे मिलनेवाला नहीं है।

ज्ञान दो प्रकारका कहा जाता है। एक है शास्त्रकथित ज्ञान और दूसरा है विवेकसे प्राप्त हुआ ज्ञान। इसमें शब्द ही ब्रह्म है, ऐसा आगम-शास्त्र कहते हैं। यह परमतत्त्व ही ब्रह्म है, ऐसा विवेकी जन कहते हैं। कुछ लोग अद्वैतको प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं और कुछ लोग द्वैतको चाहते हैं; किंतु वे सभी यह नहीं जानते हैं कि वह परमतत्त्व समभाववाला है। वह द्वैताद्वैतसे रहित है।

बन्धन और मोक्षके लिये इस संसारमें दो ही पद हैं। एक पद है 'यह मेरा है' और दूसरा पद है 'यह मेरा नहीं है'। 'यह मेरा है' इस ज्ञानसे वह बँध जाता है और 'यह मेरा नहीं है' इस ज्ञानसे वह मुक्त हो जाता है—

द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते॥

(४९।९३)

जो कर्म इस जीवात्माको बन्धनमें नहीं ले जाता है, वही सत्कर्म है। जो प्राणीको मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थवती है, वही विद्या है। इसके अतिरिक्त दूसरा कर्म तो परिश्रम करनेके लिये होता है और दूसरी विद्या कलानैपुण्यको प्रदर्शित करनेके लिये होती है। जबतक प्राणियोंको कर्म अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जबतक उनमें सांसारिक वासना विद्यमान है और जबतक उनकी इन्द्रियोंमें चञ्चलता रहती है, तबतक उन्हें परमतत्त्वका ज्ञान कहाँ हो सकता है—

तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा।
आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥
यावत् कर्माणि दीप्यन्ते यावत् संसारवासना।
यावदिन्द्रियचापल्यं तावत् तत्त्वकथा कुत:॥

(४९।९४-९५)

जबतक व्यक्तिमें शरीरका अभिमान है, जबतक उसमें ममता है, जबतक उस प्राणीमें प्रयत्नकी क्षमता रहती है, जबतक उसमें संकल्प तथा कल्पना करनेकी शक्ति है, जबतक उसके मनमें स्थिरता नहीं है, जबतक वह शास्त्र-चिन्तन नहीं करता है एवं जबतक उसपर गुरुकी दया नहीं होती है, तबतक उसको परमतत्त्व-कथा कहाँसे प्राप्त हो सकती है?

'तभीतक ही तप, व्रत, तीर्थ, जप तथा होमादिक कृत्य एवं वेद-शास्त्र तथा आगमकी कथा है, जबतक व्यक्ति उस परमार्थ-तत्त्वको नहीं जान जाता है। हे तार्क्ष्य! यदि व्यक्ति अपना मोक्ष चाहता हो तो वह सभी अवस्थाओंमें प्रयत्नपूर्वक सदैव तत्त्वनिष्ठ होकर रहे। दैहिक, दैविक और भौतिक—इन तीनों तापोंसे संतप्त प्राणीको धर्म और ज्ञान जिसका पुष्प है, स्वर्ग तथा मोक्ष जिसका फल है, ऐसे मोक्षरूपी वृक्षकी छायाका आश्रय करना चाहिये। अतः श्रीगुरुदेवके मुखसे प्राप्त ज्ञानके द्वारा आत्मतत्त्वको जानना चाहिये। ऐसा करनेसे जीव इस दुर्धर्ष संसारके बन्धनसे सुखपूर्वक मुक्त हो जाता है'—

तावत् तपो व्रतं तीर्थं जपहोमार्चनादिकम्।
वेदशास्त्रागमकथा यावत् तत्त्वं न विन्दति॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा।
तत्त्वनिष्ठो भवेत् तार्क्ष्य यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः॥
धर्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च।
तापत्रयादिसंतप्तश्छायां मोक्षतरोः श्रयेत्॥
तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात्।
सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात्॥

(४९।९८—१०१)

हे गरुड! उस तत्त्वज्ञका अन्तिम कृत्य सुनो, जिसके द्वारा ब्रह्मपद या निर्वाण नामवाला मोक्ष प्राप्त होता है, अब मैं उसे कहूँगा।

अन्त समय आ जानेपर पुरुष भयरहित होकर असंगरूपी शस्त्रसे देहादिकी आसक्तिको काट दे। घरसे संन्यासी बनकर निकला धीरवान् पुरुष पवित्र तीर्थमें जाकर उसके जलमें स्नान करे। तदनन्तर वहींपर एकान्त देशमें किसी स्वच्छ एवं शुद्ध भूमिमें विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय तथा एकाग्रचित्त होकर गायत्री आदि मन्त्रोंके द्वारा उस परम शुद्ध ब्रह्माक्षरका ध्यान करे। ब्रह्मके बीजमन्त्रको बिना भुलाये वह अपनी श्वासको रोककर मनको वशमें करे। मनरूपी घोड़ेको बुद्धिरूपी सारथीद्वारा सांसारिक विषयोंसे उसका नियन्त्रण करे। अन्य कर्मोंसे मनको रोककर बुद्धिके द्वारा शुभकर्ममें मनको लगाये।

मैं ब्रह्म हूँ। मैं परम धाम हूँ। मैं ही ब्रह्म हूँ। परमपद मैं हूँ। इस प्रकारकी समीक्षा करके आत्माको निष्कल आत्मामें प्रविष्ट करना चाहिये। 'जो मनुष्य 'ॐ' इस एकाक्षर ब्रह्मका जप करता है, वह अपने शरीरका परित्याग कर परमपद प्राप्त करता है'—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

(४९।१०८)

जहाँ ज्ञान-वैराग्यसे रहित अहंकारी प्राणी नहीं जाते हैं वहाँ सुधीजन जाते हैं। उनके विषयमें अब तुम्हें बताता हूँ—

मान-मोहसे रहित, आसक्ति-दोषसे परे, नित्य अध्यात्म-चिन्तनमें दत्तचित्त, सांसारिक समस्त कामनाओंसे रहित और सुख-दुःख नामक द्वन्द्वसे मुक्त जो ज्ञानी पुरुष हैं, वे ही उस अव्ययपदको प्राप्त करते हैं—

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

(४९।११०)

'जो व्यक्ति ज्ञानरूपी ह्रदमें राग-द्वेष नामवाले मलको दूर करनेवाले सत्यरूपी जलसे भरे हुए मानसतीर्थमें स्नान करता है, उसीको मोक्ष प्राप्त होता है'—

ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

(४९।१११)

'प्रौढ़ वैराग्यमें स्थित होकर अनन्यभावसे जो मनुष्य मेरा भजन करता है, वह पूर्ण दृष्टिवाला प्रसन्नात्मा व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है'—

प्रौढवैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक्।
पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

(४९।११२)

'घर छोड़कर मरनेकी अभिलाषासे जो तीर्थमें निवास करता है और मुक्ति-क्षेत्रमें मरता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका तथा द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्षप्रदा हैं'—

त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे निवसेन्मरणोत्सुकः।
मुक्तिक्षेत्रेषु म्रियते स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारवती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

(४९।११३-११४)

हे तार्क्ष्य! ज्ञान-वैराग्यसे युक्त यह सनातन मोक्ष-धर्म ऐसा ही है। इसको तुम्हें सुना भी दिया है। दूसरा प्राणी भी ज्ञान-वैराग्यपूर्वक इसको सुनकर मोक्ष प्राप्त करता है।

'तत्त्वज्ञ मोक्ष प्राप्त करते हैं, धर्मनिष्ठ स्वर्ग जाते हैं। पापी नरकमें जाते हैं। पक्षी आदि इसी संसारमें अन्य योनियोंमें प्रविष्ट होकर घूमते रहते हैं'—

मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाः स्वर्गतिं नराः।
पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः॥

(४९।११६)

सूतजीने कहा—हे महर्षियो! अपने प्रश्नके उत्तरके रूपमें भगवान्‌के मुखसे इस प्रकार सिद्धान्तको सुनकर प्रसन्न शरीरवाले गरुडने जगदीश्वरको प्रणाम किया और कहा—प्रभो! आपके इन आह्लादकारी वचनोंसे मेरा बहुत बड़ा संदेह दूर हो गया। ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् विष्णुसे जानेकी आज्ञा ली और वे कश्यपजीके आश्रममें चले गये।

हे ब्राह्मणो! जिस प्रकार प्राणी मृत्युके बाद तत्काल दूसरी योनिमें चला जाता है अथवा जैसे वह विलम्बसे देहान्तरको प्राप्त करता है, इन दोनों बातोंमें परस्पर कोई विरोध नहीं है। हे तात! जैसा मैंने भगवान्‌से सुना है, वैसा ही मैंने आपको सुना दिया है। लक्ष्मीपति भगवान् नारायणके इन वाक्योंको सुनकर मरीचपुत्र कश्यप भी बहुत प्रसन्न हुए। ब्रह्मासे इस महापुराणको सुनकर मैंने आप लोगोंको भी वही सुनाया है। इससे आप सभीका संदेह भी दूर हो गया। गरुडके द्वारा कहा गया यह महापुराण बड़ा ही विचित्र है।

इस महापुराणको गरुडने हरिसे प्राप्त किया था। उसके बाद गरुडसे भृगुको प्राप्त हुआ। तदनन्तर भृगुसे वसिष्ठ, वसिष्ठसे वामदेव, वामदेवसे पराशरमुनि, पराशरमुनिसे व्यास और व्याससे मैंने इसे सुना है। हे ऋषियो! मेरे द्वारा अब आप सबको परम गोपनीय यह वैष्णव पुराण सुनाया गया है। जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जो इसको पढ़े, वह इस लोक और परलोक सभीमें सुख प्राप्त करता है। संयमनी पुरीमें जाते हुए प्रेतको जो दुःख प्राप्त होता है, उसका जैसा निरूपण इस महापुराणमें किया गया है। इसे सुननेसे जो पुण्य होता है, उसके कारण वह प्रेत मुक्त हो जाता है। इस महापुराणमें कहे गये कर्म-विपाकादिको सुननेसे मनुष्यको यहींपर वैराग्य प्राप्त हो जाता है। अतः जिस प्रकारसे हो सके प्राणीको इसे अवश्य सुनना चाहिये।

हे जितेन्द्रिय ऋषियो! आप लोग मुनीश भगवान् श्रीकृष्णका भजन करें, जिनके मुखसे निकली हुई सुधासारकी धाराके मात्र एक वर्णरूपी सीकरको श्रुतिपूरकरूपी चिल्लूसे पीकर परमात्माके साथ ऐक्य प्राप्त हो जाता है।

व्यासजीने कहा—इस प्रकार सूतके मुखसे निकली हुई समस्त शास्त्रोंके अर्थसे सुशोभित भगवान् विष्णुकी वाणीका अमृत पान करके ऋषिगण परम संतुष्ट हुए। परस्पर उन लोगोंके बीच सर्वार्थदर्शी सूतजी महाराजकी प्रशंसा होने लगी। शौनक आदि ऋषियोंको भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सूतजीके द्वारा कही गयी पक्षिराज गरुडके संदेहोंको विनष्ट करनेवाली भगवान् विष्णुकी वाणीको सुनकर जितेन्द्रिय मुनिराज शौनकने मन-ही-मन अपनेको धन्य माना। उस समय अपनी उदार वाणीसे उन मुनियोंने सूतजीको बार-बार धन्य हैं, आप धन्य हैं—कहकर धन्यवाद दिया। तदनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर उन्हें विदाई दी।

'यह गारुडमहापुराण बड़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये'—

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥

(४९।१३२)

इस महापुराणको सुननेके बाद वाचकको शय्यादि सभी प्रकारके विधिवत् दान देनेका विधान है अन्यथा कथा सुननेका लाभ उन्हें नहीं प्राप्त होता। श्रोताको सर्वप्रथम इस महापुराणकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद वस्त्र, अलंकार, गौ तथा दक्षिणा आदिसे वाचककी ससम्मान पूजा करनी चाहिये। अधिक पुण्य-लाभके लिये अधिकाधिक अन्नदान, स्वर्णदान और भूमिदानसे वाचककी पूजा करनी चाहिये। 'जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो, वैसे ही उसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयंकर यातनाओंको तोड़कर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है'—

यश्चेदं शृणुयान्मर्त्यो यश्चापि परिकीर्तयेत्।
विहाय यातनां घोरां धूतपापो दिवं व्रजेत्॥

(४९।१३६)

॥ धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प सम्पूर्ण ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

ब्रह्मकाण्ड[1]

भगवान् श्रीहरिकी महिमा तथा उनके सर्वेश्वरत्वका प्रतिपादन, श्रीहरिको श्रीमद्भागवत, विष्णु तथा गरुड—ये तीन पुराण विशेष प्रिय हैं, इनका निरूपण तथा गरुडपुराणका माहात्म्य

प्राचीन समयकी बात है जगत्के नेत्रस्वरूप उन परमब्रह्म श्रीहरिका स्तवन करते हुए सभी शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ शौनक आदि ब्रह्मवादी ऋषिगण नैमिष नामक महापुण्य-क्षेत्रमें उत्तम तपस्यामें संलग्न थे। वे सभी जितेन्द्रिय, भूख-प्यासको जीत लेनेवाले, सत्यपरायण तथा संत थे। वे विशिष्ट भक्तिके साथ समस्त संसारको ज्ञान प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णुकी निरन्तर पूजा करते थे। वहाँ कोई यज्ञोंके द्वारा यज्ञपतिकी, कोई ज्ञानके द्वारा ज्ञानात्मक परमब्रह्मकी और कुछ ऋषिगण परम भक्तिके द्वारा नारायणकी पूजामें लगे रहते थे।

एक बारकी बात है धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चार पुरुषार्थोंकी प्राप्तिका उपाय जाननेकी इच्छासे वे महाभागगण एक स्थानपर एकत्र हुए। ऊर्ध्वरेता वे मुनिगण संख्यामें छब्बीस हजार थे एवं उनके शिष्य-प्रशिष्योंकी संख्या तो बहुत अधिक थी। संसारपर अनुग्रह करनेवाले, वीतराग एवं मात्सर्यरहित वे महातेजस्वी मुनि आपसमें विचार करने लगे कि इस संसारमें दुःखित प्राणियोंकी भगवान् हरिके प्रति अचल भक्ति कैसे हो सकेगी? और कैसे आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक सम्पूर्ण कर्मोंकी सिद्धि हो सकेगी? उन ऋषियोंकी इस जिज्ञासाको जानकर महामुनि शौनकने हाथ जोड़ते हुए बड़े ही विनयपूर्वक उनसे कहा—

शौनकजीने कहा—हे ऋषियो! पौराणिकोंमें उत्तम सूतजी महाराज इस समय पवित्र सिद्धाश्रममें विराजमान हैं। वे भगवान् वेदव्यासजीके शिष्य हैं और यतियोंके ईश्वर हैं। वे आपकी जिज्ञासाविषयक सभी बातोंको जानते हैं। इसलिये उन्हींके पास चलकर हमलोग पूछें। शौनक मुनिके ऐसा कहनेपर वे सभी उस पुण्य सिद्धाश्रममें गये। नैमिषारण्यवासी उन ऋषियोंने सुखपूर्वक आसनपर बैठे हुए सूतजीसे पूछा—

ऋषियोंने कहा—हे सुव्रत! किस उपायके द्वारा भगवान् विष्णुको प्रसन्न किया जा सकता है? और कैसे इनकी पूजा करनी चाहिये? इसे आप बतायें साथ ही यह भी बतलानेकी कृपा करें कि मुक्तिका साधनभूत तत्त्व क्या है?

इसपर सूतजी महाराजने कहा—हे ऋषिगणो! भगवान् विष्णु, देवी लक्ष्मी, वायु, सरस्वती, शेषनाग, गुरुश्रेष्ठ कृष्णद्वैपायन व्यासजीको नमस्कार कर मैं अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन करता हूँ, आप लोग उन श्रेष्ठ तत्त्वस्वरूप भगवान् हरिके विषयमें सुनें।

ऋषियो! नारायणके समान न कोई है, न हुआ है और न भविष्यमें ही कोई होगा।[2] इस सत्यवाक्यके द्वारा आप सभीके प्रयोजनको सिद्ध कर रहा हूँ।

शौनकजीने पूछा—हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वप्रथम भगवान् विष्णुको क्यों नमस्कार करना चाहिये? हे विद्वन्! हे सुव्रत! यह आप बतानेकी कृपा करें।

सूतजी बोले—हे शौनक! सभी वेदोंके द्वारा एकमात्र वेद्य—जानने योग्य वे हरि ही हैं, वेदादि शास्त्रों तथा इतिहास एवं पुराणोंमें उन्हींकी महिमा गायी गयी है, इसलिये वे विष्णु सर्वप्रथम वन्दनीय हैं, वे विष्णु ही सबमें ज्ञानरूपसे प्रकाशित हैं। इसलिये हरि प्रणामके योग्य हैं। वे सभीमें प्रधान हैं और सबसे बढ़कर हैं, इसलिये भी वे हरि सर्वप्रथम नमस्कार करने योग्य हैं।

१-गरुडपुराणके कई संस्करणोंमें 'पूर्व' और 'उत्तर' केवल दो ही खण्ड दिये गये हैं। 'ब्रह्मकाण्ड' वेंकटेश्वर प्रेसद्वारा प्रकाशित संस्करणमें ही उपलब्ध है। इसका संक्षिप्त सारांश यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

२-नास्ति नारायणसमं न भूतं न भविष्यति। (१।१८)

भगवान् विष्णुके समान न कोई देवता है और न वायुके समान कोई गुरु। विष्णुपदीके समान कोई तीर्थ नहीं है और विष्णुभक्तके समान कोई भक्त नहीं है।

कलियुगमें सभी पुराणोंमें तीन पुराण भगवान् हरिको प्रिय और मुख्य हैं। उनमें भी कलिकालमें मनुष्योंका कल्याण करनेवाला श्रीमद्भागवत महापुराण मुख्य पुराण है। इसमें जिनसे सर्वप्रथम सृष्टि हुई है उन श्रीहरिका प्रतिपादन हुआ है, इसीलिये यह भागवत पुराण श्रेष्ठ माना गया है। इस पुराणमें भगवान् विष्णुसे ही ब्रह्मा और महेश आदिकी सृष्टि बतायी गयी है, हे विप्र! इसी प्रकार इसमें अनेक प्रकारके अर्थोंका तथा तत्त्वज्ञानका निरूपण हुआ है, इन्हीं सब विशेषताओंके कारण यह भागवत श्रेष्ठतम पुराण माना गया है। इसी प्रकार विष्णुपुराण तथा गरुडपुराणको श्रेष्ठ कहा गया है। कलियुगमें ये तीन पुराण मनुष्यके लिये प्रधान बताये गये हैं। उनमें भी गरुडपुराणकी विशेषता कुछ अधिक ही है।

यह गरुडपुराण तीन अंशोंमें विभक्त है। इसके प्रथम अंशको कर्मकाण्ड, द्वितीय अंशको धर्मकाण्ड और तृतीय अंशको ब्रह्मकाण्ड कहा जाता है। उन तीनों काण्डोंमें भी अन्तिम यह ब्रह्मकाण्ड श्रेष्ठ है।

हे विप्रो! इस तृतीयांश अर्थात् ब्रह्मकाण्डके श्रवणसे जो पुण्य होता है उसे भागवत-श्रवणके समान पुण्य फलवाला कहा गया है। इतना ही नहीं इस ब्रह्मखण्डके पारायणसे वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है। इसमें संदेह नहीं है। हे विप्रगणो! इसके पाठ करनेका जो फल कहा गया है वह केवल श्रवण करनेसे भी मिल जाता है। भगवान् हरिने ही व्यासरूपमें अवतरित होकर भागवत, विष्णु, गरुड आदि पुराणोंकी रचना की है। विष्णु-धर्मका प्रतिपादन करनेमें गरुडपुराणके समान कोई भी पुराण नहीं है।[1] जैसे देवोंमें जनार्दन श्रेष्ठ हैं, आयुधोंमें सुदर्शन श्रेष्ठ है, यज्ञोंमें अश्वमेध श्रेष्ठ है, नदियोंमें गङ्गा श्रेष्ठ हैं, जलजोंमें कमल श्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणोंमें यह गरुडपुराण हरिके तत्त्वनिरूपणमें मुख्य कहा गया है। गरुडपुराणमें हरि ही प्रतिपाद्य हैं, इसलिये हरि ही नमस्कार करने योग्य हैं और हरि ही शरण्य हैं तथा वे हरि ही सब प्रकारसे सेवा करने योग्य हैं।[2] (अध्याय १)

गरुडजीको कृष्णद्वारा भगवान् विष्णुकी महिमा बताना तथा प्रलयकालके अन्तमें योगनिद्रामें शयन कर रहे उन भगवान् विष्णुको सृष्टि-हेतु अनेक प्रकारकी स्तुति करते हुए जगाना

सूतजीने पुनः कहा—हे शौनकजी! एक बार गरुडजीने भगवान् विष्णु (कृष्ण)-से किस प्रकार उन्होंने सृष्टिकी रचना की इस विषयमें प्रश्न किया था, तब उन्होंने कहा था कि हे सुव्रत! इस सृष्टिके मूल कारण अव्यय विष्णु हैं और वे व्यापक तत्त्व हैं, वे सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। पूर्ण होनेके कारण वे ही अवतार ग्रहण करते हैं, अनेक रूपोंवाले इस दृश्य जगत्‌को वे एक रूप बनाकर प्रलयकालमें अपनेमें लीन करके शयन करते हैं। उनके गुण, रूप, अवयव तथा वैभवादि ऐश्वर्योंमें भेदरूप दिखायी पड़नेपर भी अभेदरूपमें उनका दर्शन करना चाहिये; क्योंकि भेदरूपमें दर्शन करनेपर शीघ्र ही अन्धकारके गर्तमें पतन हो जाता है।

जिस समय प्रलयकालीन समुद्रमें व्यापक भगवान् सभी जीवोंको अपने उदरमें प्रविष्ट कराकर शयन करते हैं, ब्रह्मा तथा इन्द्र, मरुत् आदि देवोंको, मुक्तोंको तथा मुक्तिके लिये सचेष्ट जनोंको भी वे अपनेमें अवस्थित करके कल्पपर्यन्त स्थित होते हैं, उस समय सर्ववेदात्मिका लक्ष्मी भक्तिसे समन्वित हो भगवान्‌की स्तुति करती हैं। उस समय विष्णु और लक्ष्मीको छोड़कर कुछ भी नहीं रहता। पर्यङ्करूपमें वे ही देवी हो जाती हैं एवं वासरूपसे लक्ष्मीके रूपमें भी विराजमान रहती हैं; वे देवी उस समय बहुत रूपोंमें सुशोभित होती हैं।

हे शौनक! गरुडको पुनः उन परम देवकी महिमाको बताते हुए श्रीकृष्णने कहा—हे विष्णो! आप सभीमें उत्कृष्ट हैं, सभी देवोंमें उत्तम होनेके कारण आप उत्कृष्ट हैं,

१-गारुडेन समं नास्ति विष्णुधर्मप्रदर्शने॥ (१।७१)

२-गारुडाख्यपुराणे तु प्रतिपाद्यो हरिः स्मृतः। अतो हरिर्नमस्कार्यो गम्यो योग्यो हरिः स्मृतः॥ (१।७४)

आपके समान अथवा आपसे अधिक बड़ा और कोई नहीं है। आप ही एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म हैं। आपमें ही ब्रह्म शब्दका मुख्य प्रयोग है। अन्य ब्रह्मा, रुद्रादिमें अमुख्य है। अनन्त गुणोंसे परिपूर्ण होनेके कारण आप हरिको ही ब्रह्म कहा जाता है। गुण आदिकी पूर्णताके अभावसे अन्यको ब्रह्म नहीं कहा जा सकता। गुण और कालसे देशका आनन्त्य होता है, किंतु देश-कालमें गुण या कार्यसे आनन्त्य नहीं होता। हे विष्णो! आपमें गुणोंकी अनन्तता है। आपको न मैं जानता हूँ न ब्रह्मा तथा रुद्रादि देव ही जानते हैं। इन्द्र, अग्नि, यम आदि देव आपके गुणोंको जाननेमें असमर्थ हैं। देवर्षि नारद आदि ऋषि, गन्धर्व आदि कोई भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते; फिर सामान्य लोगोंकी तो बात ही क्या है? आपसे ही देवोंकी सृष्टि हुई है। आपकी ही शक्तिसे ब्रह्मा आदि सृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं। ब्राह्मणोंके द्वारा वेदादिके जितने अक्षरोंका पाठ होता है, वे सभी आप हरिके नाम ही हैं, आपको वे अति प्रिय हैं। मेरे स्वामी भी आप हरि ही हैं, सभीके एकमात्र स्वामी आप ही हैं। वेदोंमें आपकी स्तुतिका गान किया गया है, ऐसा जानकर जो वेदोंका पाठ करता है वह द्विजोंमें उत्तम है। उसे वेदपाठी कहा गया है, इससे विपरीत भाव रखनेवाला वेदवादी कहलाता है।

श्रीकृष्णजीने गरुडजीको विष्णुतत्त्व बतलाते हुए पुनः कहा—हे महात्मन्! संसारमें अज्ञानी जीवद्वारा सैकड़ों-करोड़ों महान्-से-महान् अपराध बनते रहते हैं, पर वे हरि बड़े ही दयालु हैं, कृपालु हैं, उनका तीन बार नाममात्र लेनेसे ही वे उन्हें क्षमा कर देते हैं—

महापराधाः सन्ति लोके महात्मन्
सहस्रशः शतशः कोटिशश्च।
हरिश्च तान् क्षमते सर्वदैव
नामत्रयस्मरणाद्धि कृपालुः॥
(२।६०)

कल्पान्तमें शयन कर रहे उन विष्णुको इस प्रकार स्तुति करते हुए जगाया गया—

वेदोंके द्वारा जानने योग्य यज्ञस्वरूप हे गोविन्द! आप शीघ्र ही प्रसन्न हो जायँ और जगत्‌की रक्षा करें। हे केशव! अब आप अपनी योगनिद्राका परित्याग कर उठें। हे आनन्दस्वरूप! आप सृष्टि और प्रलय करनेमें समर्थ हैं।

हे प्रभो! ब्रह्माको प्रादुर्भूत कर आप उन्हें सृष्टि करनेके लिये प्रेरित करें और रुद्रको सृष्टिके संहारके लिये प्रेरित

करें। हे हरे! हे मुरारे! कल्पादिका अन्त करनेके लिये आप उठें। हे महात्मन्! जो दुःखस्वरूप अन्धकार व्याप्त है उसे दूर करें। हे देव! भक्तोंको दुःखी देखकर आप भी दुःखी हो जाते हैं।

हे नारायण! हे वासुदेव! हे कृष्ण! हे अच्युत! तथा हे माधव! अब आप उठें, हे वैकुण्ठ! हे दयामूर्ते! हे लक्ष्मीपते! आपको बार-बार नमस्कार है।

हे सरस्वतीके ईश! हे रुद्रेश! हे अम्बिकेश! हे चन्द्रेश! हे शचीपते! आप ब्राह्मणों तथा गौओंके स्वामी हैं, आपका नाम शास्त्रप्रिय है। हे ऋग्वेद और यजुर्वेदके प्रिय! हे निदानमूर्ते! हे साम तथा अथर्वप्रिय! हे मुरारे! आप पुराणमूर्ति हैं और स्तुतियाँ आपको प्रिय हैं, इसलिये आप स्तुतिप्रिय कहलाते हैं। हे विचित्रमूर्ते! आप कमला (लक्ष्मी)-के पति हैं, आप शीघ्र ही उठें, इस योगनिद्राका परित्याग कर संसारमें व्याप्त अन्धकारको दूरकर जगत्‌की रक्षा करें।

—इस प्रकार स्तुति करनेपर अजन्मा विष्णु योगनिद्राका परित्याग कर शीघ्र ही जाग गये। (अध्याय २)

नारायणसे सृष्टिका प्रादुर्भाव तथा तत्त्वाभिमानी देवोंका प्राकट्य

श्रीकृष्णने कहा—हे विनतासुत गरुड! योगनिद्रासे जागनेपर भगवान् विष्णुकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई। यद्यपि इच्छाशक्ति उनमें सदा ही विद्यमान रहती है फिर भी उस समय उन्होंने उसी इच्छाशक्तिसे लौकिक स्वरूप धारण किया और अपने उस रूपके द्वारा प्रलयकालीन अन्धकारको नष्ट किया।

महाविष्णुके सभी अवतार पूर्ण कहे गये हैं। उनका परस्वरूप भी पूर्ण है और पूर्णसे ही पूर्ण उत्पन्न हुआ। विष्णुका परत्व और अपरत्व व्यक्तिमात्रसे है। देश और कालके सामर्थ्यसे परत्व और अपरत्व नहीं है। उनका पूर्ण रूप है, उस पूर्णसे पूर्णका ही विस्तार होता है और अन्तमें उस रूपको ग्रहण करके पुनः पूर्ण ही बच जाता है। पृथ्वीके भारका रक्षण आदि जो कार्य है वह उनका लौकिक व्यवहार है। अपनी गुणमयी मायामें भगवान् अपनी शक्तिका आधान करते हैं। वे वीर्यस्वरूपी भगवान् वासुदेव सभी देश तथा सभी कालमें सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। इसी कारण वे पुरुष ईश्वर कहलाते हैं।

हे विनतापुत्र! अपनी मायामें प्रभु हरि स्वयं वीर्यका आधान करते हैं। वीर्यस्वरूप ही भगवान् वासुदेव हैं और सभी कालोंमें सभी अर्थोंसे युक्त हैं।

इनके अचिन्त्यवीर्य और चिन्त्यवीर्यके भेदसे दो रूप हैं, एक स्त्रीरूप है और दूसरा पुरुषरूप। हे खगेन्द्र! दोनों स्वरूप वीर्यवान् हैं; इनमें अभेदका चिन्तन करना चाहिये।

देवी लक्ष्मी परमात्मासे कभी वियुक्त नहीं हैं, वे नित्य उनकी सेवामें अनुरक्त रहती हैं। नारायण नामसे प्रसिद्ध हरि यद्यपि पूर्ण स्वतन्त्र हैं किंतु लक्ष्मीके बिना वे अकेले कैसे रह सकते हैं। मुकुन्द हरिके चरणारविन्दमें परम आदरसे शुश्रूषा करती हुई वे लक्ष्मी सदा विराजमान रहती हैं। हरिके बिना देवी श्री भी किसी देश और कालमें पृथक् नहीं हैं। मायामें वे वीर्यवान् परमात्मा अपनी शक्तिका आधान करते हैं। पुरुष नामक विभु उन हरिने तीनों गुणोंकी सृष्टि की है।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—जिस प्रकार भगवान् हरिने प्रकृतिके तीन गुणोंकी सृष्टि की, उसी प्रकारसे लक्ष्मीने भी तीन रूप धारण किये, जिनका नाम है—श्री, भू और दुर्गा। इनमेंसे सत्त्वाभिमानी रूपको श्रीदेवी, रजोगुणाभिमानी रूपको भूदेवी और तमोऽभिमानी रूपको दुर्गादेवी कहा गया है। तीनों रूपोंमें अन्तर नहीं जानना चाहिये। हे खगेश्वर! गुणोंके सम्बन्धसे ही दुर्गा आदि तीन रूप हैं। इनमें अन्तर नहीं है। इनमें जो अन्तर मानते हैं, वे परम अन्धतमस् नरकमें जाते हैं। साक्षात् परमात्मा पुरुष हरिने भी तीन रूप धारण किये, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहे गये हैं।

लोकोंकी वृद्धि (पालन) करनेके लिये स्वयं साक्षात् हरि सत्त्वगुणसे विष्णु नामवाले कहलाये। सृष्टि करनेके लिये साक्षात् हरिने रजोगुणके आधिक्यसे ब्रह्मामें प्रवेश किया और संहार करनेके लिये वे हरि तमोगुणसे सम्पन्न होकर रुद्रमें प्रविष्ट हुए। वे अव्यय हरि त्रिगुणमें प्रविष्ट होकर जब सृष्टि-कार्योन्मुख होते हैं तो उनमें क्षोभ उत्पन्न होता है, फलस्वरूप तीनों गुणोंसे महत्तत्त्वका प्रादुर्भाव होता है। पुनः उस महान्से ब्रह्मा और वायुका प्राकट्य हुआ। यह महत्तत्त्व रजःप्रधान है। इस सृष्टिको गुणवैषम्य नामक सृष्टि जानना चाहिये।

इस प्रकारके विशिष्ट महत्तत्त्वमें लक्ष्मीके साथ स्वयं हरि प्रविष्ट हुए। हे महाभाग! उसके बाद उन्होंने उस महत्तत्त्वको क्षुब्ध किया। क्षोभके फलस्वरूप उससे ज्ञान-द्रव्य-क्रियात्मक अहम् तत्त्व उत्पन्न हुआ।

इस अहंतत्त्वसे तत्त्वाभिमानी देव शेष उत्पन्न हुए तथा गरुड और हर उत्पन्न हुए। हे खग! इस अहंतत्त्वमें साक्षात् हरि प्रविष्ट हुए। लक्ष्मीके साथ भगवान् हरिने स्वयं उस अहंतत्त्वको संक्षुब्ध किया। वैकारिक, तामस और तैजस-भेदसे अहम् तीन प्रकारका है, उस अहम्के नियामक रुद्र भी तीन प्रकारके हुए। वैकारिक अहम्में स्थित रुद्र वैकारिक कहे गये हैं। तामसमें स्थित रुद्र तामस कहे गये और तैजसमें स्थित रुद्र लोकमें तैजस कहे गये। तैजस अहंतत्त्वमें लक्ष्मीके साथ स्वयं हरिने प्रविष्ट होकर उसे संक्षुब्ध किया। इससे वह दस प्रकारका हुआ जो श्रोत्र, चक्षु, स्पर्श, रसना और घ्राण तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ—इन कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियोंके रूपमें दस प्रकारका कहा जाता है। वैकारिक अहंतत्त्वमें प्रविष्ट होकर हरिने उसे संक्षुब्ध किया। महत्तत्त्वसे एकादश इन्द्रियोंके एकादश अभिमानी देवता प्रकट हुए। प्रथम मनके अभिमानी

इन्द्र और कामदेव उत्पन्न हुए। अनन्तर अन्य इन्द्रियोंके अभिमानी देवोंका प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार अष्ट वसु आदिका भी प्राकट्य हुआ। द्रोण, प्राण, ध्रुव आदि ये आठ वसु देवता हैं।

रुद्रोंकी संख्या दस जाननी चाहिये। मूल रुद्र भव कहे जाते हैं। हे पक्षिश्रेष्ठ! रैवन्तेय, भीम, वामदेव, वृषाकपि, अज, समपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप तथा महान्—ये दस रुद्र कहे गये हैं। हे पक्षीन्द्र! अब आदित्योंको सुनें—उरुक्रम, शक्र, विवस्वान्, वरुण, पर्जन्य, अतिबाहु, सविता, अर्यमा, धाता, पूषा, त्वष्टा तथा भग—ये बारह आदित्य हैं। प्रभव और अतिवह आदि उनचास मरुद्गण कहे गये हैं। हे खगेश्वर! विश्वेदेव दस हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—पुरूरवा, आर्द्रव, धुरि, लोचन, क्रतु, दक्ष, सत्य, वसु, काम तथा काल।

इन्द्रियोंके अभिमानी देवोंके समान ही स्पर्श, रूप, रस आदि तत्त्वोंके अभिमानी अपान, व्यान, उदान आदि वायुदेवोंकी उत्पत्ति हुई। ऐसे ही च्यवनको महर्षि भृगु और उतथ्यको बृहस्पतिका पुत्र कहा गया है। रैवत, चाक्षुष, स्वारोचिष, उत्तम, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि, दक्षसावर्णि तथा धर्मसावर्णि इत्यादि मनु कहे गये हैं। ऐसे ही पितरोंके सात गण भी प्रादुर्भूत हुए और इनसे वरुण आदिकी पत्नीरूपमें गङ्गादिका आविर्भाव हुआ। इस प्रकार परमात्मा श्रीहरिसे सभी देवोंका प्रादुर्भाव हुआ और वे नारायण लक्ष्मीके साथ उनमें प्रविष्ट हुए। (अध्याय ३-५)

देवताओंद्वारा नारायणकी स्तुति

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! अपने-अपने तत्त्वमें स्थित उन-उन तत्त्वोंके अभिमानी देवताओंने नारायण हरिकी अनेक प्रकारसे पृथक्-पृथक् स्तुति की।

सर्वप्रथम श्री (देवी लक्ष्मी)-ने स्तुति प्रारम्भ की, उस समय उन्होंने मनमें सोचा कि प्रभुके तो एक-एक करके अनन्त गुण हैं। उन गुणोंकी स्तुति करनेमें मेरी कहाँ शक्ति है! ऐसा विचार कर वे देवी लज्जासे अवनत होकर इस प्रकार कहने लगीं—

श्रीने कहा—हे नाथ! मैं आपके चरणारविन्दोंपर नतमस्तक हूँ। आपके चरणोंके अलावा अन्य मैं कुछ भी नहीं जानती। हे देवदेव! हे ईश्वर! आपमें अनन्त गुण विद्यमान हैं। हे दामोदर! हे योगेन्द्र! आप अपने शरीरमें स्थान देकर मेरी रक्षा करें। स्तुति करनेके लिये मेरे लिये आपसे अधिक और कोई प्रिय नहीं है।

ब्रह्माजीने कहा—हे लक्ष्मीपते! हे जगदाधारस्वरूप विश्वमूर्ते! कहाँ आप ज्ञानके महासागर और कहाँ मैं अज्ञानी! आपमें असीम शक्ति है। मैं अल्पज्ञ हूँ और मेरी शक्ति भी अल्प है। हे प्रभो! हे मुरारे! आप सदैव मुझको अहंकार और ममताके भावसे दूर ही रखें। हे रमेश! मेरी इन्द्रियाँ सदा असन्मार्गपर प्रवृत्त होती हैं। वे सदा आपके चरणकमलमें अनुरक्त रहें, ऐसी कृपा करें। आपकी स्तुति करनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। इसलिये आप प्रसन्न हों। स्तुतिके अनन्तर विधाता ब्रह्मा हाथ जोड़े उनके सामने खड़े हो गये।

देवदेव ब्रह्माजीके बाद वायुदेव भगवान् नारायणके प्रेमसे विह्वल हो हाथ जोड़ते हुए गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे—

वायुने कहा—हे प्रभो! सभी देवगण आपके सेवक हैं और आपके चरणारविन्दोंका सांनिध्य परम दुर्लभ है। हे रमेश! हे नाथ! लोकमें जो आपकी भक्तिसे विमुख हैं, जो पापकर्म करनेवाले हैं तथा जो अत्यन्त दुःखी हैं ऐसे प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपका अवतरण होता है। हे वासुदेव! आप अपने अवतारोंके द्वारा गौ, ब्राह्मण और देवताओं आदिके क्षेम तथा कल्याणके लिये नाना प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं, आपके अवतारका अन्य दूसरा प्रयोजन नहीं है। हे पुण्यश्रेष्ठ! आपके जो चरितामृत हैं उनका गुणानुवाद करनेसे मेरा मन तृप्त नहीं होता, इसलिये हे मुकुन्द! एक अविचल भक्तिवाले भक्तके समान मुझे भक्ति प्रदान करें ताकि मेरा मन आपके पादारविन्दमें लगा रहे।

हे प्रभो! मेरी निद्रा आपकी वन्दनारूप बन जाय, मेरा सम्पूर्ण आचरण आपकी प्रदक्षिणा हो जाय और मेरा व्यवहार आपकी स्तुति बन जाय, ऐसा समझकर मैं आपके चरणोंमें स्वयंको समर्पित करता हूँ। हे देव! जितने पदार्थ हैं उन्हें देखकर 'यह हरिकी ही प्रतिमा है' ऐसा मानकर हे देवदेव! मैं उसमें स्थित हरि-रूप समझकर आपका

भजन करूँ ऐसी आप कृपा करें। आप हरिके प्रसन्न होनेपर लोकमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ रह जाती है अर्थात् उसे सब प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार स्तुति कर महात्मा वायुदेव हरिके आगे हाथ जोड़कर स्थित हो गये।

सरस्वतीने कहा—हे मुरारे! हे हरे! हे भगवन्! कौन ऐसा रसज्ञ है जो अपनी स्तुति अथवा कीर्तनसे संतुष्ट हो पायेगा अर्थात् कोई नहीं, किसीमें ऐसी बुद्धि नहीं है जो आपकी स्तुति—प्रशंसा कर सके। हे देवदेव! आपके गुणानुवादका कीर्तन ज्यों ही कानमें पहुँचता है वैसे ही वह सांसारिक देहानुरक्तिको नष्ट कर देता है, इतना ही नहीं वरन् जो घर, भार्या, पुत्र, पशु, धन-सम्पत्तिका व्यामोह, आसक्ति रहती है वह भी दूर हो जाती है।

हे अनन्तदेव! वेदोंसे प्रतिपादित जो आपका स्वरूप है उसे लक्ष्मी भी नहीं जानतीं, चतुर्मुख ब्रह्मा भी नहीं जानते हैं, वायुदेव भी नहीं जानते हैं, फिर मुझमें यह शक्ति कहाँ है कि मैं आपकी स्तुति कर सकूँ। इसलिये हे हरे! आप मेरी रक्षा करें।

हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति कर देवी सरस्वती चुप हो गयीं। तदनन्तर भारतीने हरिकी स्तुति करना प्रारम्भ किया।

भारतीने कहा—हे ब्रह्म! हे लक्ष्मीश! हे हरे! हे मुरारे! जो आपके गुणोंमें नित्य श्रद्धा रखता है, वह उन गुणोंका गान करते हुए सांसारिक असत् विषयोंमें प्रवृत्त अपनी बुद्धिमें संसारके प्रति विराग उत्पन्न कर लेता है और उसकी आपमें दृढ़ भक्ति हो जाती है और इस भक्तिके बलपर हे देवदेव! आपकी प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है। हरिके प्रसन्न हो जानेसे भगवान्का भक्तके लिये प्रत्यक्ष दर्शन हो जाता है, इसलिये हे प्रभो! आपके गुणोंके कीर्तनमें मेरी रति बनी रहे, जब ऐसी अनुरक्ति पुरुषमें हो जाती है तो वह प्रीति समस्त सांसारिक दु:खोंको काट डालती है और परमानन्दस्वरूप फलकी प्राप्ति करा देती है। हरिके गुणोंकी जो स्तुति नहीं करते उन्हें पाप लगता है और उनका पुण्य भी क्षीण हो जाता है।

हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति कर भारती मौन हो गयीं। उसके बाद शेषने हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए केशवसे इस प्रकार कहा—

शेषने कहा—हे वासुदेव! मैं आपके चरणोंके प्रभावको नहीं जानता। इसे न रुद्र जानते हैं और न गरुड ही जानते हैं, मैं तो बहुत ही न्यून हूँ। अत: शरण देकर मेरी रक्षा करें।

हे खगेश्वर! इस प्रकार स्तुति करके शेष मौन हो गये। उसके बाद पक्षिराज गरुडने स्तुति करना आरम्भ किया।

गरुडने कहा—हे प्रभो! आपके चरणोंकी स्तुति मैं क्या कर सकता हूँ। मेरा मन तो आपके चरणकमलमें ही समर्पित है। मैं तो पक्षियोनिमें उत्पन्न हूँ। इस मुखसे आपकी स्तुति कैसे सम्भव है? आपके अनन्त गुणोंकी प्रशंसा करनेकी शक्ति भला मुझमें कहाँ है?

इस प्रकार विनयपूर्वक स्तुति कर गरुड मौन हो गये। इसके बाद रुद्र स्तुति करने लगे।

रुद्रने कहा—हे भूमन्! हे भगवन्! आपकी जैसी स्तुति होनी चाहिये वह मैं नहीं जानता। आपके कल्याणकारी चरणोंके मूलमें मेरी भक्ति बनी रहे। ईश! अपनेमें स्थान देकर मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर रुद्रदेव शान्त हो गये। हे पक्षिश्रेष्ठ! तदनन्तर वारुणी, सौपर्णी तथा पार्वती आदि देवियोंने भी उन हरिकी बड़े ही भावभक्तिसे स्तुति कर उनकी शरण ग्रहण की।

श्रीकृष्णने पुन: कहा—हे खगेश्वर! अनन्तर इन्द्रने उनकी स्तुति करते हुए कहा—

हे देवदेव! आपके स्वरूपको हृदयमें जानते हुए भी जो मूढ़ स्तवनके लिये उत्सुक होता है, हे चक्रपाणि! बिना जाने भी तुम्हारी स्तुति करना यह आपका अनादर ही है; क्योंकि आपके यथार्थ स्वरूपको, गुणोंको वाणीके द्वारा व्यक्त करना सम्भव नहीं है, फिर भी आपकी स्तुति करनेमें आपके नामका उच्चारण होगा; अत: यह पुण्य फल तो देनेवाला ही होगा। ऐसा समझकर आपकी स्तुति की ही जाती है। हे प्रभो! जब रुद्रादि देव भी आपकी स्तुति करनेकी शक्ति नहीं रखते तो मुझमें ऐसी सामर्थ्य कहाँ? इस प्रकार देवाधिदेव हरिकी स्तुति कर नतमस्तक हो अंजलि बाँधकर इन्द्र मौन हो गये।

देवी शचीने स्तुति करते हुए कहा—हे देव! वज्र, अंकुश, ध्वज तथा कमलसे चिह्नित आपके चरणकमलोंका मैं सदा चिन्तन करती हूँ। हे ईश! आपके चरणरजका मैं सदा स्मरण करती हूँ। हे कृपालु! हे भक्तवत्सल! आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार शची देवी स्तुतिकर चुप हो गयीं। इसके बाद रतिने स्तुति करना आरम्भ किया।

रतिने कहा—हे नर-रूप धारण करनेवाले हरे! आपने अपने सेवकोंपर अनुकम्पा करनेके लिये यह अवतार

धारण किया है, मैं आपके उस मुखारविन्दका सदा चिन्तन करती हूँ। हे देव! जो कुञ्चित केशराशिसे सुशोभित है तथा ब्रह्मा, रुद्र, लक्ष्मी आदिद्वारा स्तुत्य है, मैं आपके उस श्रीनिकेतन मुखकमलका ध्यान करती हूँ, आप मेरी रक्षा करें। इस प्रकार अतिशय आदरके साथ रति स्तुति कर भगवान्‌के समीप ही स्थित हो गयीं। रतिके बाद दक्षने स्तुति आरम्भ की।

दक्षने कहा—भगवान्‌का चरणोदकरूप जो तीर्थ है, उसका मैं सदा चिन्तन करता हूँ। वह चरणजल ब्रह्माके द्वारा भलीभाँति सेवित है। ब्रह्मा आदि सभी देवोंके द्वारा वन्दनीय है। वही पवित्रतम चरणोदक गङ्गारूपी नदियोंमें श्रेष्ठ तीर्थ हुआ, जिस पवित्र पदरजमिश्रित गङ्गाको अपने जटाकलापमें धारण करनेसे अशिव भी शिव हो गये। हे करुणेश! हे विष्णो! ऐसे कृपावतार आपकी स्तुति करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। हे निदानमूर्ते! आप सभी प्रकारसे मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर दक्ष चुप हो गये। इसके बाद बृहस्पतिने स्तुति करना आरम्भ किया।

बृहस्पतिने कहा—हे ईश! मैं आपके मुखकमलका सतत चिन्तन करता हूँ, आप मुझे सांसारिक विषयोंसे विरक्त करें। स्त्री, पुत्र, मित्र तथा पशु आदि ये सभी नाशवान् हैं, इनके प्रति मेरी जो आसक्ति है उसे आप नष्ट कर दें। हे देव! इस संसारचक्रमें भ्रमण करते हुए मैंने यह अनुभव किया है कि 'यह संसार दुःखसे परिव्याप्त है।' इसीसे मुक्ति पानेके लिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे देवाधिदेव! मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर बृहस्पति मौन हो गये। तदनन्तर अनिरुद्धने स्तुति करना आरम्भ किया।

अनिरुद्धने कहा—हे हरे! आपकी रसमयी कथाके आस्वादका परित्याग करके जो स्त्रियोंके विष्ठा आदिसे परिपूर्ण शरीर-रसके आनन्दमें निमग्न रहता है, वह मन्दबुद्धि सूकरके समान है। हे मुरारे! मज्जा, अस्थि, पित्त, कफ, रक्त तथा मलसे परिव्याप्त और चर्म आदिसे आवेष्टित स्त्री-मुखमें आसक्त व्यक्तिका पतन ही होता है। हे विभो! मुझ-ऐसे पापमतिके लिये आपकी मायाका ही बल है। इस अत्यन्त मात्र दुःखरूप तथा लेशमात्र सुखसे भी रहित संसार-चक्रमें भ्रमण करता हुआ मैं मल-निःसारण करनेवाले नौ छिद्रोंसे युक्त इस शरीरमें आसक्त होता हुआ अत्यन्त मूढबुद्धि हूँ। हे देव! आपके सत्कथामृतको छोड़कर मैं घरमें रहते हुए परिवारके पालनमें अनुरक्त तथा दान आदि शुभ कर्मोंसे विरत हो गया हूँ। हे देव! आपको नमस्कार है। आप मेरे इस संसार-मलको दूर करें और दिव्य कथामृतके पानकी शक्ति दें। मैं आपके सद्गुणोंका स्तवन करनेमें समर्थ नहीं हूँ।

हे खगेश्वर! अनिरुद्ध इस प्रकार स्तुति करके चुप हो गये। इसके बाद स्वायम्भुव मनुने स्तुतिका उपक्रम किया—

स्वायम्भुव मनुने कहा—हे देव! आपकी स्तुति करनेके लिये प्रयत्नशीलमात्र होनेसे गर्भका दुःख नहीं होता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। हे प्रभो! आपकी इसी कृपासे मैंने परम पूज्यपदको प्राप्त किया है।

तदनन्तर स्तुति करते हुए वरुणने कहा—हे प्रभो! आपकी इच्छासे रचित देहरूपी घरमें, पुत्रमें, स्त्रीमें, धनमें, द्रव्यमें 'यह मेरा है' और 'मैं इसका हूँ' इस अल्पबुद्धिके कारण मूर्खजन संसाररूपी दुःखमें निमग्न हो जाते हैं, इसलिये मेरी ऐसी कुबुद्धिका विनाश करें आप अपने चरणोंकी दासता मुझे प्रदान करें। इस प्रकार स्तुति कर वरुण हाथ जोड़कर वहीं स्थित हो गये। इसके बाद देवर्षि नारदने हरिकी स्तुति की।

नारदने कहा—हे विष्णो! मेरे लिये आपके नामके श्रवण तथा कीर्तनके अतिरिक्त अन्य कोई स्वादुयुक्त तत्त्व नहीं है इसलिये आप मुझे पवित्र करें। मेरी जिह्वाके अग्रभागमें आपका नाम सदा विद्यमान रहे। जिसकी जिह्वामें हरिनाम नहीं है वह मनुष्यरूपमें गदहा ही है। हे देव! मैं आपके स्वरूपको नहीं जानता, मुझपर आप कृपा करें। इस प्रकार नारद स्तुति कर देवाधिदेवके सामने स्थित हो गये। अनन्तर महात्मा भृगु स्तुति करने लगे।

भृगुने कहा—गरुड-जैसे आसनपर आसीन होनेवाले हे देव! आपके लिये कौन-सा आसन शेष रह जाता है। कौस्तुभ-जैसा आभूषण धारण करनेवाले आपके लिये और कौन-सा भूषण रह जाता है। लक्ष्मी जिनकी पत्नी हों उनको और क्या प्राप्तव्य रह जाता है। हे वागीश! आप वाणीके ईश हैं फिर आपके विषयमें क्या कहना? इस प्रकार भगवान् हरिकी स्तुति कर भृगु मौन हो गये। इसके बाद अग्निने पुरुषोत्तमकी स्तुति की।

अग्निने कहा—जिसके तेजसे मैं तेजस्वी और आज्यसिक्त हव्यका वहन करता हूँ। जिसके तेजसे मैं उदरमें

प्रविष्ट होकर पूर्णशक्तिसम्पन्न हो अन्नका परिपाक करता हूँ इसलिये मैं आपके सद्गुणोंको कैसे जान सकता हूँ?

प्रसूतिने कहा—जिसके नामके अर्थका विचार करनेमें भी मुनिगण मोहमग्न हो जाते हैं और सदा जिससे देवगण भी भयभीत रहते हैं, मान्धाता, ध्रुव, नारद, भृगु, वैवस्वत आदि जिसकी प्रेमसे स्तुति करते हैं ऐसे हितचिन्तक आप विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

हे खगेश्वर! प्रसूतिने इस प्रकार स्तुति कर मौन धारण कर लिया। तदनन्तर ब्रह्मनन्दन वसिष्ठने विनयसे अवनत होकर स्तुति करना प्रारम्भ किया।

वसिष्ठने कहा—विधाता पुरुषको नमस्कार है, असत्-स्वरूपको नष्ट करनेवाले देवको पुनः-पुनः नमस्कार है। हे नाथ! मैं आपके चरणकमलोंमें सदा नतमस्तक हूँ। हे भगवन्! हे वासुदेव! मेरी सदा रक्षा करें। इस प्रकार स्तुति करके वसिष्ठ मौन हो गये। इसके बाद ब्रह्माके पुत्र महर्षि मरीचि तथा अत्रिने अतिशय भक्तिके साथ स्तुति करते हुए नारायणको प्रसन्न किया।

तदनन्तर स्तवन करते हुए महर्षि अंगिराने कहा—हे नाथ! मैं आपके अनन्त-बाहु, अनन्त-चक्षु और अनन्त मस्तकसम्पन्न विराट् स्वरूपको देखनेमें असमर्थ हूँ। आपका यह स्वरूप हजारों-हजार मुकुटोंसे अलंकृत है। अतिशय मूल्यवान् अनेक अलंकारोंसे सुशोभित ऐसे अनन्तपार-स्वरूपकी स्तुति करनेमें भी मैं असमर्थ हूँ।

हे खगेश्वर! इस प्रकार अंगिराने स्तुति कर मौन धारण किया। इसके बाद पुलस्त्य स्तुति करनेके लिये उद्यत हुए।

पुलस्त्यने कहा—हे भगवन्! आप अपने उपासकोंके लिये जैसा मङ्गलकारी स्वरूप धारण करते हैं, उसी भुवनमङ्गल स्वरूपका दर्शन मुझे भी करायें। ऐसे रूपवाले आपको नमस्कार है। आप नरकसे रक्षा करनेवाले हैं। हे देव! मैं आपके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे भगवन्! मेरी रक्षा करें।

इस प्रकार स्तुति कर पुलस्त्यजी मौन हो गये। इसके अनन्तर पुलह स्तुति करने लगे।

पुलहने कहा—हे भगवन्! महापुरुषोंका कथन है कि निष्काम तथा रूपरहित भगवान्‌को समर्पित स्नान, उत्तम वस्त्र, दूध, फल, पुष्प, भोज्य पदार्थ तथा आराधन आदि सब व्यर्थ ही हैं तो फिर ऐसे निष्काम आपको ये सब अर्पित न करके मैं निष्काम बुद्धिसे आपको प्रणाम समर्पित करता हूँ। हे वैकुण्ठनाथ! आपके स्तवनकी शक्ति मुझमें नहीं है।

इस प्रकार स्तुति कर पुलह मौन हो गये। उसके बाद क्रतु स्तुति करने लगे।

क्रतुने कहा—हे भगवन्! प्राणोंके निकलते समय आपके नाम ही संसारजन्य दुःखके विनाशक हैं। जो अनेक जन्मोंके पापको सहसा विनष्ट कर निर्मल मुक्ति प्रदान करते हैं, मैं उन नामशक्तिकी शरणमें हूँ।

हे विष्णो! जो आपकी भक्ति करनेमें असमर्थ हैं और केवल आपका नाममात्र लेते हैं, वे भी मुक्तिको प्राप्त करते हैं फिर जो भक्तिपूर्वक आपका स्मरण करते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या!

ये भक्त्या विवशा विष्णो नाममात्रैकजल्पकाः।
तेऽपि मुक्तिं प्रयान्त्याशु किमुत ध्यायिनः सदा॥

(७।६४)

इस प्रकार स्तुति करके क्रतु भी मौन हो गये तब वैवस्वत मनुने स्तुतिसे नारायणको प्रसन्न किया।

विश्वामित्रने स्तुति करते हुए कहा—हे भगवन्! मैंने आपके चरणकमलोंका न तो ध्यान किया और न नित्य संध्योपासना ही की। ज्ञानरूपी द्वारके किवाड़को खोलनेमें दक्ष धर्मका उपार्जन भी मैंने नहीं किया। अन्तःकरणमें व्याप्त मलके विनाश करनेमें अत्यन्त कुशल आपकी कथा भी मैंने कानोंसे नहीं सुनी इसलिये हे देव! मुझ अनाथकी आप सदा रक्षा करें—

न ध्याते चरणाम्बुजे भगवतो संध्यापि नानुष्ठिता
ज्ञानद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः।
अन्तर्व्याप्तमलाभिघातकरणे पट्वी श्रुता ते कथा
नो देव श्रवणेन पाहि भगवन् मामत्रितुल्यं सदा॥

(७।७१)

—इस प्रकार स्तुति कर महामुनि विश्वामित्र हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

हे खगेश्वर! क्रतुके बाद मित्रने जगत्‌के कारण नारायणकी स्तुति करना आरम्भ किया।

मित्रने कहा—संसारके बन्धनको विनष्ट करनेवाले हे देव! आप प्राणियोंको संसारसे मुक्ति दिलानेवाले हैं तथा कल्याणके निधान हैं, मैं अज्ञानी हूँ, आपके चरणारविन्दोंको मैं प्रणाम करता हूँ। आप भगवान् वासुदेव ही अपने

विषयमें जानते हैं। आपके यथार्थ स्वरूपको न मैं जानता हूँ न अग्नि तथा न ब्रह्मा-विष्णु-महेश—ये तीनों देवता, न मुनीन्द्र ही जानते हैं; परम भागवत भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते तो अन्यकी बात ही क्या है? हे परात्पर स्वामी! आप मेरी नित्य रक्षा करें।

हे खग! इस प्रकार हरिकी स्तुति कर मित्र मौन हो गये, उसके बाद ताराने स्तुति करना प्रारम्भ किया।

ताराने कहा—हे विष्णो! अनन्य-भावसे जो आपके प्रति दृढ़ भक्ति करते हैं, आपके लिये जो सभी कर्मोंको त्याग देते हैं और अपने स्वजनों तथा बान्धवोंका परित्याग कर देते हैं, आपकी कथाको सुनकर जो दूसरेको सुनाते हैं और कहते हैं, इस प्रकारके ये साधुगण सभीके प्रति आसक्तिसे रहित हो जाते हैं। हे प्रभो! जैसे आप उन साधुगणों—भक्तोंकी रक्षा करते हैं वैसे ही मेरी भी सदा रक्षा करें।

निर्ऋतिने कहा—योगपूर्वक आपके प्रति समर्पित जन भक्तिसे परम गतिको प्राप्त कर लेते हैं। भक्त श्रद्धाभावसे की गयी सेवासे, सांसारिक विषयोंकी अनासक्ति और चित्तका निग्रह करनेसे विष्णुके परमपदको प्राप्त करते हैं, इसलिये हे प्रभो! दयापूर्वक उनके समान मेरी भी रक्षा करें।

तदनन्तर भगवान्‌के पार्षद वायुपुत्र महाभाग विष्वक्सेनने हरिकी स्तुति करना प्रारम्भ किया।

विष्वक्सेनने कहा—पूर्णानन्दस्वरूप भगवान् कृष्ण यदि सदा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं, यदि मेरी अपरोक्ष साधनरूपा परम भक्ति है और गुरुसे लेकर ब्रह्माण्डके साधुओंके प्रति यदि मेरी निष्कपट भक्ति है साथ ही तुलसी आदिके प्रति यदि मेरी प्रीति है और इनका सदा मुझे स्मरण है तो निश्चित ही मुझे आपका आशीर्वाद प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं है।

इस प्रकार स्तुति कर महाभाग विष्वक्सेन चुप हो गये।

हे पक्षिराज! इस प्रकार ब्रह्मा आदि देवों तथा लक्ष्मी आदि देवियोंने भगवान् हरिकी पृथक्-पृथक् स्तुति की और वे अंजलि बाँधकर मौन हो उनके सामने स्थित हो गये।

भगवान्‌ने उन सभीमें प्रविष्ट होकर उन्हें अपने शरीरमें आश्रय प्रदान किया। (अध्याय ६—९)

नारायणसे प्राकृत तथा वैकृत सृष्टिका विस्तार

गरुडजीने कहा—हे प्रभो! देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये गये भगवान् विष्णु उन्हें आश्रय देकर स्वयं उन्हींमें किस प्रकार प्रविष्ट हुए और किस प्रकार सृष्टि हुई? हे कृपालो! आप इसे भलीभाँति बतायें।

श्रीकृष्णने कहा—वे भगवान् महाप्रभु उन सम्बन्धरहित तत्त्वोंमें प्रविष्ट हुए, इससे उनमें क्षोभ उत्पन्न हुआ। सबसे पहले भगवान्‌ने हिरण्मयात्मक ब्रह्माण्डकी सृष्टि की, जो पचास कोटियोजनमें चारों ओर विस्तृत था। उसके ऊपर अवस्थित अत्यन्त सूक्ष्म भाग उतने ही विस्तारमें फैला था, जितनेमें उस हिरण्मय अण्डका विस्तार था। उसके भी ऊपर पचास कोटि भूतल था। वह सात आवरणोंसे चारों ओर परिधिद्वारा घिरा हुआ था। पहले आवरणका नाम कबन्ध है। दूसरा आवरण अग्निदेवका है, तीसरा आवरण महात्मा हरका है, चौथा आवरण आकाशका है, पाँचवाँ आवरण अहंकारका है, छठा आवरण महत्तत्त्वात्मक है और सातवाँ आवरण त्रिगुणात्मक है। इसके अनन्तर अव्याकृत आकाश है; इसके विस्तारकी कोई सीमा नहीं है। इसी मण्डलके मध्यमें अव्यय हरि विराजमान रहते हैं। आठवाँ आवरण आकाशका है। उसके मध्यमें विरजा नदी है। इसकी परिधि पाँच योजन विस्तीर्ण है। यह अतिशय पुण्यवती नदी है। विरजा नदीमें भलीभाँति स्नान करके लिंग-देहका भी परित्याग कर हरिके मोक्षपदकी प्राप्ति होती है। प्रारब्ध कर्मोंका क्षय हो जानेपर ही विरजा नदीमें स्नान करना सम्भव होता है।

हे खगेश्वर! प्रलयमें भी इस विरजा नदीका लय नहीं होता, उसे लक्ष्मीस्वरूपा समझें; क्योंकि वह प्राणियोंके लिंगशरीरका नाश करनेवाली है। विरजा नदीके बाद व्याकृत आकाश है जो निःसीम है, उसकी अभिमानिनी देवता लक्ष्मी हैं। सृष्टिके समय उस ब्रह्माण्डके अभिमानी देवता ब्रह्मा थे, जो विराट् नामसे कहे गये। इस प्रकार ब्रह्माण्ड आदिका सर्जन कर अव्ययात्मा भगवान् हरि उन-उन तत्त्वाभिमानी देवताओंके साथ उस ब्रह्माण्डके ऊपर-नीचे—सर्वत्र व्याप्त होकर नित्य स्थित रहते हैं। हे पक्षिराज! यह प्राकृत सृष्टि है, अव्यक्त आदिसे लेकर पृथ्वीतकके जो भी तत्त्व इस अण्डरूप जगत्‌में बाह्यरूपसे उत्पन्न हुए हैं, वे सभी प्राकृत सृष्ट कहे जाते हैं और ब्रह्माण्ड तथा

ब्रह्माण्डान्तर्वर्ती सृष्टि वैकृत सृष्टि कही जाती है।

हे अण्डज! जिन्हें पुरुष कहा गया है वे हरि तो साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम ही हैं। उन विष्णुने उस हिरण्मय अण्डके मध्य विद्यमान जलराशिमें एक हजार वर्षतक शयन किया था। उस समय लक्ष्मी ही जलरूपमें थीं, शय्यारूपमें विद्या थीं, तरंगरूपमें वायु थे और तम ही निद्रारूपमें था। इसके अतिरिक्त वहाँ और कोई नहीं था। उसी उदकके मध्यमें नारायण योगनिद्रामें स्थित थे। हे पक्षिश्रेष्ठ! उस समय लक्ष्मीने उस जलगर्भमें शयन कर रहे हरिकी स्तुति की। हरिकी प्रकृति उस समय लक्ष्मी तथा धरा (भूदेवी)—इन दो रूपोंको धारण कर लेती है और शेष वेदका रूप धारण करके जलके मध्य सोये हरिकी स्तुति करते हैं। स्तुतिसे प्रसन्न हुए नित्य प्रबुद्ध वे महाविष्णु निद्राका परित्याग कर प्रबुद्ध हो उठे। उस समय उनकी नाभिसे सम्पूर्ण जगत्का आश्रयभूत हिरण्मय पद्म प्रादुर्भूत हुआ। इसे प्राकृत सृष्टिके रूपमें समझना चाहिये। उस सृष्टिकी अभिमानिनी देवता भूदेवी थीं। वह पद्म असंख्य सूर्योंके समान प्रकाशवाला कहा गया है। चिदानन्दमय विष्णु उससे भिन्न हैं, उस पद्मको भगवान्के किरीट आदि आभूषणोंके समान समझना चाहिये।

हरिके किरीट आदि भी दो प्रकारके हैं—एक स्वरूपभूत तथा दूसरे स्वरूपभिन्न। उस पद्मसे सभी लोकोंके विधायक ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई। उस हिरण्मय पद्मसे चतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। किसने मेरी सृष्टि की है, वह प्रभु कौन है? ऐसी जिज्ञासावश ब्रह्मा उस पद्मके नालमें प्रविष्ट हो गये। किंतु अज्ञानवश जब वे नारायणके विषयमें कुछ जान न सके तब उस समय उन्हें 'तप', 'तप' इस प्रकार ये दो शब्द सुनायी दिये। उन शब्दोंके अभिप्रायको ठीक-ठीक समझते हुए विष्णुमें एकमात्र निष्ठा रखनेवाले ब्रह्माने हरिकी प्रीति प्राप्त करनेकी इच्छासे दिव्य हजार वर्षतक तपस्या की। हे खगेन्द्र! तपस्यासे प्रसन्न होकर हरि भक्त-श्रेष्ठ ब्रह्माको दिव्य वर प्रदान करनेके लिये प्रकट हो गये। भगवान् चतुर्भुजधारी थे, कमलके समान उनके नेत्र थे, वक्षःस्थल श्रीवत्ससे सुशोभित था तथा गला कौस्तुभमणिकी मालासे अलंकृत था, वे अत्यन्त प्रसन्न मुद्रामें थे, उनके नेत्र करुणासे आर्द्र थे। ऐसे उन नारायणका ब्रह्माको दर्शन हुआ।

भक्तोंके वशमें रहनेवाले, अत्यन्त दयालु परब्रह्मस्वरूप नारायणको अपने समक्ष देखकर ब्रह्माने बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिसे उनकी पूजा की और उनके पादतीर्थको मस्तकपर धारण किया। तदनन्तर भक्तिमानोंमें श्रेष्ठ तथा महाभागवतोंमें प्रधान ब्रह्माने उन हरिकी अनेक प्रकारसे स्तुति की और उनके सामने वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति किये जानेपर दयाके सागर भगवान् मधुसूदन मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—हे ब्रह्मन्! मेरे प्रसादसे इन देवताओंकी वैसी ही सृष्टि आप करें, जिस प्रकार पूर्वकालमें आपके द्वारा हुई थी। यद्यपि इस सृष्टि-कार्यसे आपका कोई प्रयोजन नहीं है, फिर भी मेरी प्रसन्नताके लिये आप ऐसा करें। हरिके ऐसा कहनेपर ब्रह्माने उन हरिकी स्तुति करके उनकी प्रसन्नताके लिये मनमें सृष्टि करनेका निर्णय लिया। तब महत्तत्त्वात्मक ब्रह्माने सर्वप्रथम जीवके अभिमानी देवता वायुदेवकी सृष्टि की। हे गरुड! वे ही प्रथम सृष्टिके पुरुषात्मा हैं। तदनन्तर ब्रह्माने अपने दाहिने हाथसे ब्रह्माणी तथा भारती नामक दो देवियोंकी सृष्टि की। बायें हाथसे सत्यके पुत्र महत्तत्त्वात्मक अनलको उत्पन्न किया। ब्रह्माके दाहिने हाथसे ही अहंकारात्मक हरकी सृष्टि हुई। इसी प्रकार गरुड, शेष, वायु, गायत्री, वारुणी, सौपर्णी, चन्द्र, इन्द्र, कामदेव, इन्द्रियोंके अभिमानी देवताओं, मनु-शतरूपा, दक्ष, नारदादि ऋषियों, कश्यप, अदितिदेवी, वसिष्ठ आदि ब्रह्मज्ञानी ऋषियों, कुबेर, विष्वक्सेन तथा पर्जन्य आदि देवसृष्टिका उनसे प्रादुर्भाव हुआ। हे खगेश्वर! मेरी कृपासे ही ब्रह्मा इस सृष्टि-कार्यमें समर्थ हो सके। (अध्याय १०—१३)

नारायणकी पूर्णताका वर्णन तथा पदार्थोंके सारासारका निर्णय

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! जो मूलस्वरूप पूर्ण गुणसम्पन्न सर्वथा स्वतन्त्र, पुरातन पूर्ण शरीरवाले आनन्दस्वरूप भगवान् अनन्त हैं उनके समान कोई भी नहीं है। उनके चरण आदि सभी अङ्ग अपनेमें पूर्ण हैं। उनके एक-एक रोममें उतना ही बल है जितना उनका समग्र बल है। इस प्रकार वे सब प्रकारसे पूर्ण हैं। अतः वे ही सबके कर्ता हैं, वे ही सबके हर्ता हैं और वे ही इस सृष्टिके सार अंशके भोक्ता भी हैं।

हे पक्षीन्द्र! वे हरि सारहीन अथवा असार-अंशका भोग नहीं करते, समस्त द्रव्य पदार्थोंके सारभागको ही ग्रहण करते हैं। वे नित्य भक्तोंके प्रति दयालु और भक्तोंके हितचिन्तक हैं। भक्तोंद्वारा निवेदित भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थों तथा उपचारोंके सारभागको वे बड़े ही आदरके साथ ग्रहण करते हैं। समयद्वारा दूषित एवं भावदुष्ट पदार्थोंको नारायण ग्रहण नहीं करते; द्राक्षा आदि जो फल उन्हें समर्पित किये जाते हैं, वे भी काल आदिके प्रभावसे दोषयुक्त हो जाते हैं इसलिये हे पक्षिश्रेष्ठ! अब आप द्रव्योंके सारासारके विषयमें सुनें—

जामुन आदिके फल अतिशय पकनेके बाद चार दिनमें सारहीन हो जाते हैं। एक मासके बाद कटहल असार हो जाता है। छः मासके बाद खजूर तिक्त पदार्थके समान हो जाता है। पवित्र नारिकेल फोड़नेके बाद एक दिन-रातके अनन्तर असार हो जाता है। सूखे नारिकेल और खजूरमें यह दोष नहीं आता।

हे पक्षिराज! एक वर्षके बाद सुपाड़ी, एक घड़ी (२४ मिनट)-के बाद ताम्बूल, तीन घंटेके बाद पके हुए अन्न और सूप आदि असार हो जाते हैं। तीन पक्षके बाद तैलमें पकाया पदार्थ और बारह घंटेके बाद घीमें पकाया हुआ पदार्थ असार हो जाता है। नौ घंटेके बाद शाक निःसार हो जाता है। जम्बीरी नीबू, शृंगवेर, आँवला, कपूर तथा आम एक वर्षके बाद निःसार हो जाते हैं। परंतु हे द्विज! तुलसी सदा सारयुत ही रहती है, एकादशीके दिन गीली हो या सूखी हो अथवा जलके साथ हो वह सदा सारवान् ही बनी रहती है—

तुलसी सर्वदा सारा एकादश्यामपि द्विज।
आर्द्रा वाप्यथवा शुष्का सार्द्रा सारवती स्मृता॥

(१४।२९)

सारयुता तुलसीको ग्रहण करना चाहिये। एकादशीके दिन अन्न निःसार हो जाता है। हे खगेश्वर! एकादशीके दिन मनुष्योंके लिये हरिका तीर्थ (चरणामृत) सार होता है। हे गरुड! आषाढ़ मासमें शाक, भाद्रपद मासमें दही, आश्विन मासमें दूध निःस्सार हो जाता है, इसी प्रकार हरिके नामोच्चारसे विहीन मुख और हरिको नैवेद्यके रूपमें अर्पित किये बिना बना हुआ समस्त भोजन निःसार हो जाता है—

हरिनाम विहीनं तु मुखं निःसारमुच्यते।
हरिनैवेद्यहीनस्तु पाको निःसार उच्यते॥

(१४।३७)

तीन दिनमें अलसीका पुष्प, एक प्रहरमें मल्लिका, आधे पहरके बाद चमेली सारहीन हो जाती है। तीन वर्षतक केसर, दस वर्षतक कस्तूरी तथा एक वर्षतक कपूर सारवान् कहा गया है, परंतु चन्दनको सदा सारवान् ही कहा गया है—

ससारमितिसम्प्रोक्तं चन्दनं सर्वदा स्मृतम्॥

(१४।४१)

(अध्याय १४)

परमात्मा हरि तथा देवी महालक्ष्मीके विभिन्न अवतारोंका वर्णन

हे पक्षिश्रेष्ठ! हरि पूर्णानन्दस्वरूप हैं। उनके समान किसी भी देश अथवा कालमें कोई नहीं है। उन्हीं हरिने लोककल्याणके लिये सम्पूर्ण सद्गुणोंके सागरके रूपमें अवतार ग्रहण किया। वे ही विष्णु समस्त अवतारोंके बीजभूत हैं, वे ही वासुदेव कहलाते हैं, वे वासुदेव ही संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धके रूपमें प्रकट हुए। उन्हीं विष्णुने स्थूल देहसे ब्रह्मादि देवोंकी सृष्टि की। उन्हीं विष्णुने सनत्कुमार आदिके रूपमें शरीर धारण किया और तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा इन्द्रियनिग्रहकी शिक्षा दी। उन्होंने ही पृथ्वीके तथा दैत्यराज हिरण्याक्षके उद्धार हेतु एवं भूमिकी स्थापना और सज्जनोंकी रक्षाके लिये वराहका अवतार धारण किया। पञ्चरात्रकी शिक्षा देनेके लिये भी उन्होंने स्वरूप धारण किया। बदरिकाश्रममें उन्होंने ही नारायण नामसे अवतार लिया। वे ही हरि कपिल मुनिके रूपमें अवतरित हुए और उन्होंने ही कालकवलित चौबीस तत्त्वोंवाले सांख्यशास्त्रका आसुरिके लिये उपदेश किया। वे ही नारायण अत्रिपत्नी देवी अनसूयासे दत्तात्रेयके रूपमें प्रकट हुए और उन्होंने ही राजा अलर्कको आन्वीक्षिकी नामक तर्कविद्याका उपदेश दिया। वे ही सच्चिदानन्द हरि सूर्यके वंशमें आकूतिके गर्भसे प्रादुर्भूत हुए और उन्होंने ही स्वायम्भुव मन्वन्तरमें देवोंके साथ प्रजाका पालन किया। वे ही विष्णु अग्नीध्रपुत्री मेरुदेवीके गर्भसे नाभिके पुत्र-रूपमें उरुक्रम नामसे अवतरित हुए। उन हरिने ही देवता तथा असुरोंद्वारा समुद्रके मन्थनके समय मन्दराचल पर्वतको

अपनी पीठपर धारण करनेके लिये कूर्मरूप धारण किया। पुनः वे ही हरि हरितमणिके समान द्युतिवाले महात्मा धन्वन्तरिके रूपमें हाथमें अमृतकलश धारण किये हुए अपथ्यजनित दोषोंको दूर करनेके लिये अवतरित हुए। विष्णुने ही दितिपुत्र असुरोंको मोहित करनेके लिये मोहिनीका रूप धारण किया तथा पुनः नृसिंहरूपसे अवतरित होकर उन्होंने ही हिरण्यकशिपुको अपने ऊरुओंपर रखकर नखोंसे विदीर्ण कर डाला। अनन्तर अदिति और कश्यपसे वामनरूपमें अवतरित हुए। बलिसे अधिगृहीत सम्पूर्ण त्रैलोक्यके राज्यको पुनः इन्द्रको प्रदान करनेकी इच्छासे तथा बलिकी दानशीलताका विस्तार करनेके लिये उन्होंने यह रूप धारण किया। पुनः वे जमदग्निके पुत्र परशुरामके रूपमें विख्यात हुए और उन्होंने ब्रह्मद्वेषी क्षत्रियोंसे इस पृथ्वीको विहीन कर दिया। तदनन्तर उन हरिने ही सूर्यवंशमें रघुकुलमें देवी कौसल्यासे श्रीरामके रूपमें अवतार धारण किया। समुद्रबन्धन तथा रावण आदिके वध आदि कार्य उन्होंने ही किये। तदनन्तर द्वापरमें उन विष्णुने ही व्यासरूपमें अवतरित होकर वेदसंहिताको चार भागोंमें विभक्त कर अपने पैल, सुमन्तु आदि शिष्योंको ऋगादि वेदोंको पढ़ाया। वे पराशरके द्वारा सत्यवतीमें प्रादुर्भूत हुए थे। तदनन्तर वे ही हरि वसुदेवके पुत्र-रूपमें देवकीसे कृष्णरूपमें अवतरित हुए। उन्होंने ही कंस आदिका वध किया और पाण्डवोंकी रक्षा की। तदनन्तर कलियुगकी प्रवृत्ति होनेपर वे ही असुरोंको मोहित करनेके लिये कीकट देशमें बुद्ध नामसे प्रादुर्भूत हुए। इसके बाद कलियुगकी मध्यसंधिमें वे हरि विष्णुगुप्त (विष्णुयश)-के घर दस्युप्राय राजाओंका वध करनेके लिये कल्कि नामसे अवतीर्ण होंगे।

इस प्रकार संकर्षण आदि ये सभी अवतार हरिके हुए। हरिके असंख्य अवतार हैं, उन्हें स्वयं नारायण ही जानते हैं। इन सभी अवतारोंमें बलकी दृष्टिसे, रूपकी दृष्टिसे और गुणकी दृष्टिसे किसी भी प्रकारका भेद नहीं किया जा सकता। अनन्त नाम-रूपवाले विष्णु अनन्त गुणोंसे सम्पन्न हैं।

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! जिस प्रकार हरिके अनन्त नाम-रूपात्मक अवतार हैं, उसी प्रकार हरिप्रिया भी विभिन्न अवतारोंके रूपमें प्रकट हुई हैं। वे लक्ष्मी ज्ञानस्वरूपा हैं। वे एकमात्र हरिके चरणोंका आश्रय ग्रहण कर नित्य उनके साथ रहती हैं। वे ही पुरुषकी पत्नी और प्रकृतिकी अभिमानिनी देवी हैं। जब ब्रह्माण्डके सृजनकी इच्छा हरिने की थी, उस समय गुणोंकी सृष्टि करनेके लिये ये प्रकृति नामसे प्रादुर्भूत हुई थीं। वासुदेवकी पत्नी माया, संकर्षणकी पत्नी जया, अनिरुद्धकी पत्नी शान्ता तथा प्रद्युम्नकी पत्नी कृतिके रूपमें इन्हींका अवतार हुआ। विष्णुकी पत्नी सत्त्वाभिमानिनी श्रीदेवी, तमोगुणकी अभिमानिनी देवी दुर्गा और रजोगुणकी अभिमानिनी वराहपत्नी देवी भूदेवी तथा भगवान् वेदकी अभिमानिनी देवी अन्नपूर्णा आदि सब इन्हीं देवीके अवतार हैं। साथ ही यज्ञपत्नी दक्षिणा, विदेहराजपुत्री सीता तथा रुक्मिणी, सत्यभामा आदि रूपोंमें भगवती लक्ष्मीका ही प्राकट्य हुआ है। इस प्रकार पृथक्-पृथक् देवी लक्ष्मीके अनन्त अवतार हुए हैं। ऐसे ही पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदी भी शची आदि देवियोंके रूपमें उत्पन्न हुई थीं।

(अध्याय १५—१७)

भगवान् शेष तथा भगवान् रुद्रके विविध अवतार

श्रीकृष्णने कहा—भगवान् शेष अनन्त शक्तिसम्पन्न हैं। इनका आविर्भाव भगवान् हरि तथा रमादेवीके शयनके लिये हुआ है। योगनिद्रामें लक्ष्मीके साथ भगवान् नारायण शेषशय्यापर ही शयन करते हैं। 'मैं सर्वदा हरिका दास बना रहूँ और सदा उनकी पूजा करता रहूँ। मैं प्रत्येक जन्मोंमें हरिको नमस्कार करता रहूँ' इस इच्छासे गरुडने हरिके शयनस्थानके समीपमें आश्रय प्राप्त किया। विनताके पुत्र काल नामक गरुडका भगवान्‌के वाहनके रूपमें प्रादुर्भाव हुआ।

शेष भगवान् नारायणके भक्त हैं। उनमें विष्णु, वायु तथा अनन्त—इन तीन देवोंका अंश सदा विद्यमान रहता है। हे खग! दशरथके पुत्रके रूपमें देवी सुमित्राके अंशसे जिन लक्ष्मणने जन्म लिया, वे शेषके ही अंश हैं, इसलिये शेषावतार कहे जाते हैं। भगवान् श्रीराम तथा देवी सीताकी

सेवा करनेके लिये उनका पृथ्वीपर अवतार हुआ। वे ही शेष वसुदेवके पुत्रके रूपमें देवी रोहिणीसे बलभद्र नामसे अवतरित हुए। गरुडजीका पृथ्वीपर कोई अवतार नहीं हुआ, इसमें भगवान्‌की आज्ञा ही है। भगवान् रुद्रने भी अनेक रूप धारण किये हैं, वामदेव, ईशान, अघोर तथा सद्योजात आदि इनके कई अवतार हैं। इसी प्रकार आवेशावतार दुर्वासा तथा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा आदि भी रुद्रके ही अंशावतार हैं। (अध्याय १८)

श्रीकृष्णपत्नी देवी नीला (नाग्नजिती)-की कथा

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! कृष्णपत्नी नाग्नजिती पूर्वजन्ममें पितरोंमें श्रेष्ठ कव्यवाहकी पुत्री थी। वह कन्या पतिरूपमें भगवान् कृष्णका अनन्यचिन्तन किया करती थी। जब वह विवाहके योग्य हुई तो पिताने उसके विवाहके लिये बहुत प्रयत्न किया, किंतु उस कन्याने कृष्णके अतिरिक्त किसी अन्यको वरण न करनेका अपना निश्चय बताया, तब पिताने उससे कहा—किसी दूसरेको पतिरूपमें क्यों नहीं ग्रहण कर लेती हो? तब उसने अपने पितासे कहा—'हे तात! सर्वगुणसम्पन्न हरिके अतिरिक्त मेरा और कोई पति नहीं हो सकता। हे तात! मुझे ऐसा लगता है कि इस जन्ममें मुझे सौभाग्यकी प्राप्ति है ही नहीं; क्योंकि मेरे तो एकमात्र भर्ता वे भगवान् हरि ही हैं और कोई नहीं। यद्यपि इस संसारमें सभी स्त्रियाँ सदा सौभाग्यवती मानी जाती हैं किंतु उन्हें विधवा ही समझना चाहिये; क्योंकि अनादि, नित्य, सम्पूर्ण संसारके एकमात्र सारस्वरूप, परम सुन्दर, मोक्षदाता तथा सभी इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाले भगवान्‌को जो पतिरूपमें नहीं मानती हैं, वे सदैव विधवाके समान ही हैं। जिन स्त्रियोंके पति विष्णुभक्त हैं, उन स्त्रियोंका जन्म सफल है। अनेक जन्मोंमें संचित किये गये पुण्योंसे ही विष्णुभक्त पति प्राप्त होता है। कलियुगमें विष्णुभक्त दुर्लभ हैं, हरिभक्ति तो सदा ही दुर्लभ रही है। कलियुगमें हरिकी कथा दुर्लभ है। हरिके भक्तोंकी सत्संगति और भी दुर्लभ है। कलियुगमें शेषाचलपर विराजमान रहनेवाले भगवान् विष्णुका दर्शन दुर्लभ है। विष्णुपदी कालिन्दी नदीके तटपर विराजमान रहनेवाले भगवान् रंगनाथका दर्शन करना बड़ा ही दुर्लभ है। काञ्चीक्षेत्रमें जाकर भगवान् वरदराजकी सेवा करना और दर्शन प्राप्त करना भी सुलभ नहीं है। रामसेतुका दर्शन सरल नहीं है। श्रेष्ठ जनोंने कहा है कि भीमा नदीके तटपर रहनेवाले विष्णुका दर्शन प्राप्त करना सुलभ नहीं है और न तो रेवा नदीके तटपर स्थित विष्णुका एवं गयाक्षेत्रमें विष्णुपादका दर्शन ही सुलभ है। मृत्युलोकमें रहनेवाले लोगोंके लिये बदरीवनमें भगवान् विष्णुका दर्शन पाना भी सुलभ नहीं है। श्रीलक्ष्मीनारायणकी निवासभूमि शेषाचलपर रहनेवाले तपस्वी भी दुर्लभ हैं। प्रयाग नामक तीर्थमें नित्य निवास करनेवाले भगवान् माधवका दर्शन करना मनुष्योंके लिये सरल नहीं है। इसीलिये हे तात! कृष्णसे अतिरिक्त किसी दूसरेको पतिरूपमें वरण करनेकी मेरी इच्छा नहीं है।' अपने पितासे ऐसा कहकर वह कुमारी शेषाचल पर्वतकी ओर चली गयी।

कपिल नामक महातीर्थमें पहुँचकर उसने वहाँ विराजमान भगवान् श्रीनिवासका दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया। तीन दिनतक सम्यक् रूपसे उनकी सेवा करके वह पापविनाशन नामक तीर्थमें चली गयी। विवाहकी इच्छासे उस तीर्थमें स्नान करके उस तीर्थके उत्तर दिशामें दो कोसके विस्तारमें फैले हुए गुफारूपी एकान्त स्थानमें जाकर भगवान् नारायणके ध्यानमें-तपश्चर्यामें स्थित हो गयी और उसने अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की।

उस कुमारीने स्तुति करते हुए कहा—'हे देव! आप ही मेरे माता, पिता, पति, सखा, पुत्र, गुरु, श्रेष्ठ स्वजन, मित्र और प्राणवल्लभ हैं। हे प्रभो! ये सभी सांसारिक पिता आदि स्वजन तो निमित्तमात्रसे अपने बने हैं, पर आप तो बिना निमित्त ही सदासे मेरे सब कुछ हैं। इसीलिये हे मुरारे! मैं आपकी ही भार्या होना चाहती हूँ इसी कारण मैंने यह कौमार्यव्रत धारण किया है। हे श्रीनिवास! आपको मेरा नमस्कार है। आप मुझपर प्रसन्न हों।

उसकी पराभक्तिसे प्रसन्न हो करुणासागर भगवान् श्रीनिवासने प्रकट होकर कहा—'हे कुमारिके! हे सुभगे! कृष्णावतारमें मैं तुम्हारा पति होऊँगा।' ऐसा वर देकर भगवान् वहींपर अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर कव्यवाहकी पुत्री वह कुमारी भी यौगिक रीतिसे वहीं अपना शरीर छोड़कर कुम्भकके घरमें नीला नामसे उत्पन्न हुई। हे

पक्षिराज! दितिसे उत्पन्न दैत्योंको मार करके मैंने नीला नामकी लक्ष्मीको प्राप्त किया। तत्पश्चात् नग्नजित् नामक राजाके घरमें उस कुमारीने जन्म लिया। नग्नजित् ही पूर्वमें कव्यवाह थे और उनकी पुत्री कुमारी भी नीला नामसे विख्यात हुई थी। उसके स्वयंवरमें मैंने देवताओं और मनुष्योंके द्वारा न जीते जाने योग्य सात दुर्दान्त बैलोंके साथ अनेक राजाओंको जीतकर बंदी बनायी गयी नीलाको भार्यारूपमें प्राप्त किया। (अध्याय १९)

भद्रा तथा मित्रविन्दाद्वारा श्रीकृष्णकी भार्या बननेकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! पूर्वजन्ममें विष्णुपत्नीने ही नलकी पुत्रीके रूपमें भद्रा नामसे शरीर धारण किया था। जो परम विष्णुभक्त थी, वह सभी प्रकारके भद्र गुणोंसे सम्पन्न थी, इसी कारण उसका भद्रा यह नाम पड़ा था। वह कन्या भगवान् कृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये नित्य उन्हें प्रणाम निवेदन और उनकी प्रदक्षिणा किया करती थी। कन्याभावमें स्थित अपनी भद्रा नामक पुत्रीकी वैसी कठिन तपस्या देखकर पिता नलने कहा कि 'हे नन्दिनी! पुत्री! भद्रे! किसलिये तुम अपने शरीरको कष्ट दे रही हो ऐसा करनेसे तुम्हें कौन-सा फल मिल जायगा, उसे मुझे बताओ।'

भद्रा बोली—हे तात! आप मेरे पिता हैं, भला मैं आपको क्या बता सकती हूँ। भगवान्को नमस्कार आदि क्रियाओंके फलको बतानेमें कौन समर्थ हो सकता है? फिर भी आप सुनें—'हे तात! करुणानिधान भगवान् विष्णु हो सदा मेरे स्वामी रहे हैं। मैं हरिके दासोंकी भी दासी हूँ।' हे विष्णो! मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। मेरी रक्षा करें, ऐसा कहती हुई भद्राने दण्डवत्-रूपमें भूमिपर गिरकर अपने स्वामी नारायणको प्रणाम किया। पुनः भद्रा कहने लगी। हे तात! भगवान् विष्णुको नित्य-निरन्तर प्रणाम करना चाहिये। जिस प्रकार वन्दना करनेसे वे देव प्रसन्न होते हैं, उस प्रकार वे पूजन करनेसे प्रसन्न नहीं होते। हे तात! नामस्मरण अथवा प्रणाम-निवेदन तथा वन्दन करनेसे जिस प्रकारसे पापसे मुक्ति हो जाती है, उस प्रकारसे अन्य साधनोंसे नहीं होती।

हे तात! भगवान् विष्णुको प्रणाम निवेदन किये बिना जो लोग शरीरका पोषण करते हैं, उनका वह शरीर-पोषण व्यर्थ ही है। ऐसे लोगोंको नरकमें महान् दुःख भोगना पड़ता है। जो देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा नहीं करता उसे यमराज अत्यन्त त्रास देते हैं। जिनकी जिह्वा 'हरि', 'कृष्ण' इस प्रकारसे भगवान्के मङ्गलमय नामोंका नित्य कीर्तन नहीं करती है, ज्ञानीजनोंद्वारा उस जिह्वाको व्यर्थ ही कहा गया है।

हे तात! काशीमें निवास करने अथवा प्रयागमें मरनेसे क्या लाभ! अथवा युद्धमें वीरगति प्राप्त करनेसे अथवा यज्ञादिका अनुष्ठान करनेसे क्या लाभ है! समस्त तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे अथवा शास्त्रके अध्ययनसे किस प्रयोजनकी सिद्धि हो सकती है? जिनकी जिह्वाके अग्रभागपर हरिनाम नहीं है, जिनके शरीरसे भगवान् विष्णुको नमन नहीं किया गया है, जिनके पैरोंने भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा नहीं की है, ऐसे लोगोंका सब कुछ करना व्यर्थ ही है? ऐसा महान् लोगोंका कहना है।[1] अतः हे तात! भगवान् विष्णुको नमन करना और उन्हें निरन्तर स्मरण रखना ही प्राणीका वास्तविक कार्य है। निश्चित ही यह मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, किंतु दुर्लभ होनेपर भी वैसे ही नश्वर है, जैसे जलमें स्थित बुलबुला होता है। हे तात! इस नश्वर शरीरका कोई भरोसा नहीं है, अतः जो समय प्राप्त है उसमें भगवान्को नमस्कार, वन्दन आदि करते रहना चाहिये। हे पिताजी! आप भी ऐसा ही करें।

हे पक्षिराज! पुत्रीके ऐसे निर्मल वचनोंको सुनकर श्रद्धासमन्वित हो पिता नलने भगवान् विष्णुको नमस्कार किया और यथाशक्ति उनकी प्रदक्षिणा की। तदनन्तर पुनः वह भद्रा भगवान्को प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्हींके ध्यानमें निमग्न हो गयी, इसीमें उसका नश्वर शरीर भी कब शान्त हो गया, इसका उसे भान ही नहीं रहा।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिश्रेष्ठ! पुनः मेरे पिता वसुदेवकी

१. काशीनिवासेन च किं प्रयोजनं किं वा प्रयागे मरणेन तात॥
किं वा रणाग्रे मरणेन सौख्यं किं वा मखादेः समनुष्ठितेन। समस्ततीर्थेष्वटनेन किं किमधीतशास्त्रेण सुतीक्ष्णबुद्ध्या॥
येषां जिह्वाग्रे हरिनामैव नास्ति येषां गात्रैर्नमनं नापि विष्णोः। येषां पद्भ्यां नास्ति हरेः प्रदक्षिणं तेषां सर्वं व्यर्थमाहुर्महान्तः॥

बहिनके उदरसे कैकेयी इस नामसे उस भद्रा नामवाली कन्याने जन्म लिया। भद्र गुणोंसे युक्त होनेके कारण वह उस जन्ममें भी भद्रा नामसे ही प्रसिद्ध हुई और उसे मैंने प्राप्त किया।

श्रीकृष्णने गरुडसे पुनः कहा—हे गरुड! जिस प्रकार मित्रविन्दाका विवाह हुआ, अब मैं उसे बताता हूँ। मित्रविन्दा हरिकी सदैव प्रिय रही है। पूर्वजन्ममें हरिको मित्ररूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली वह देवी सदा उनके विषयमें चिन्तन करती रहती थी कि किस उपायसे भगवान् विष्णुको प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि उन्हें प्राप्त करनेके बहुत-से उपाय हैं, पर श्रेष्ठतम उपाय कौन हो सकता है वह ऐसा विचार करने लगी। उसने निश्चय किया कि सभी साधनोंमें श्रेष्ठ साधन है 'सात्त्विक पुराणोंमें वर्णित भगवान्‌की कथाओंका श्रवण करना'। जो व्यक्ति भगवान् विष्णुकी कथाका श्रवण नहीं करता उसका जन्म लेना व्यर्थ है जिसने भगवान् विष्णुके गुणानुवादका कीर्तन करनेवाले भागवत पुराणको नहीं सुना, उसका जीवन व्यर्थ है, इसलिये सदा हरिकथाका श्रवण करना चाहिये।

हे तात! जहाँ भगवान् विष्णुसे सम्बन्धित कथारूपी महानदी प्रवाहित नहीं होती तथा जहाँ नारायणके चरणाम्बुजोंका आश्रय नहीं है और जहाँ मुखसे भगवान् विष्णुका नामस्मरण नहीं होता, वहाँ किसी प्रकारसे क्षणमात्र भी नहीं रहना चाहिये। 'जिस गाँवमें भागवतशास्त्रकी चर्चा नहीं होती और न जहाँ भागवतके रसको जाननेवाले ही होते हैं, साथ ही जिस घरमें भगवान् विष्णुके द्वारा कही गयी गीताके अर्थोंका निष्कर्ष जाननेवाले नहीं हैं अथवा जिस ग्राममें भगवान्‌की सहस्रनामावली (विष्णुसहस्रनाम)-की चर्चा नहीं होती अथवा जहाँ उन दोनों (गीता और विष्णुसहस्रनाम)-के रसोंका ज्ञान रखनेवाले नहीं हैं' वहाँ क्षणमात्र भी किसी प्रकारसे नहीं रहना चाहिये अथवा मनुष्यके जीवनमें जिस दिन भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाका श्रवण नहीं होता है, उस दिन उस प्राणीकी आयु व्यर्थ हो जाती है—

यस्मिन् ग्रामे भागवतं न शास्त्रं न वर्तते भागवता रसज्ञाः।
यस्मिन् गृहे नास्ति गीतार्थसारो यस्मिन् ग्रामे नामसहस्रकं वा॥
तयो रसज्ञा यत्र न सन्ति तत्र न संवसेत् क्षणमात्रं कथंचित्।
यस्मिन् दिने दिव्यकथा च विष्णोर्न चास्ति जन्तोस्तस्य चायुर्वृथैव॥

(२०।२९—३०)

रसपारखी विद्वान् स्वर्णादिसे निर्मित आभूषणोंसे विभूषित कानोंको सुन्दर नहीं कहते, भगवान् विष्णुकी मङ्गलमयी कथाओंसे पूरित कानोंको ही सुन्दर बताते हैं। इस कारणसे जो लोग सर्वदा भागवतके अर्थतत्त्वका श्रवण करते हैं और निरन्तर उसका वाचन करते हैं, उन्हींका जन्म सफल है, ऐसा श्रेष्ठ जनोंका कहना है। संसारमें हरि सर्वत्र व्याप्त हैं, वे ही नित्य हैं, अन्तर्यामी हैं ऐसा समझते हुए जिनके द्वारा सदा भलीभाँति प्रभुका चिन्तन किया जाता है, उनके योगक्षेमका वहन वे विष्णु स्वयं ही करते हैं ऐसे भक्तोंका [कभी] अशुभ नहीं होता है।

भगवान् हरि शुभ-अशुभ फल कर्मानुसार ही देते हैं, इसलिये धनप्राप्तिके लिये कोई यत्न नहीं करना चाहिये। प्रयत्न तो हरितत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही करना उचित है।

इसी कारण हे तात! मैं भी सदैव भगवान्‌की सत्कथाओंका श्रवण किया करती हूँ। पूर्वकालमें मैंने भगवान्‌की कथाका श्रवण किया था और फिर शरीरका परित्यागकर आपकी पुत्रीके रूपमें पृथ्वीपर मैंने जन्म लिया है।

श्रीकृष्ण बोले—हे पक्षिन्! उस मित्रविन्दाने पृथ्वीपर रहनेके लिये वसुदेवकी बहिनके उदरमें सुमित्रा नामसे जन्म लिया। भागवतकथाके श्रवणसे ही वह भगवान् विष्णुको मित्रके रूपमें प्राप्त कर सकी है। इसी कारण उसका मित्रविन्दा यह नाम पड़ा है। हे खगराज! स्वयंवरमें अनेक राजाओंके मध्य भामिनी उस मित्रविन्दाने मेरे गलेमें जयमाला डाल दी और मैं समस्त राजाओंको परास्त कर मित्रविन्दाको साथ लेकर अपनी पुरी आ गया। (अध्याय २०)

सूर्यपुत्री कालिन्दीकी कथा

श्रीकृष्णने कहा—हे खगेश्वर! अब मैं कालिन्दीकी उत्पत्तिके विषयमें बता रहा हूँ, आप सुनें—विवस्वान् नामके सूर्यकी कालिन्दी नामवाली एक पुत्री उत्पन्न हुई। हे पक्षिराज! उस कालिन्दीको यमुना तथा यमानुजाके नामसे भी कहा गया है। भगवान् कृष्णकी पत्नी बननेकी इच्छासे उसने विशिष्ट तप किया था। पूर्वजन्ममें अर्जित

पापोंका अनुताप अर्थात् उनका शमन करना तप है। हे पक्षिराज! अब आप अनुतापके विषयमें सुनें—पूर्वजन्ममें जिसने भगवान् मुकुन्दके दिव्य मन्त्रोंका जप नहीं किया, हरिनामामृतका स्मरण नहीं किया, भगवान्‌के पादारविन्दोंकी वन्दना नहीं की, हरिके नैवेद्यको ग्रहण नहीं किया, सुन्दर गन्धसे युक्त पुष्पोंको मुरारिको अर्पित नहीं किया, भगवान्‌की भक्ति नहीं की, ऐसा सोच-सोचकर मनमें जो पश्चात्ताप होता है, दुःख होता है वह कहने लगता है—हे मुकुन्द! मैं इस पुत्र-मित्र-कलत्रादिसे युक्त संसारमें अत्यन्त संतप्त हो रहा हूँ, हे भगवन्! कब मैं आपके मुखारविन्दका दर्शन करूँगा, मुझसे आपकी सेवा-पूजा नहीं हुई है, मेरा उद्धार कैसे होगा? हे हरे! मैं महान् पापी हूँ कब मुझे आपके दर्शन होंगे! हे प्रभो! मैंने अनन्त जन्मोंमें सांसारिक सम्बन्धोंके द्वारा अणुमात्र भी सुख नहीं प्राप्त किया और न तो मैं आपकी सेवा ही कर सका हूँ और न आपके भक्तजनोंकी संगति ही कर सका हूँ, हे मुरारे! मेरा शरीर कष्टसे जल रहा है। ऐसा अगतिक मैं अब आप मुकुन्दकी शरण छोड़कर और किसकी शरणमें जाऊँ? हे भगवन्! मुझपर दया कर मेरी रक्षा करें।'

श्रीकृष्णने पुनः कहा—हे पक्षिराज! इस प्रकारका पश्चात्ताप करना ही अनुताप है। इसका नाम तप भी है। हे पक्षिराज! सूर्यपुत्री उस कालिन्दीने भी इसी प्रकारका अनुताप करते हुए यमुनाके तटपर तपस्या की और श्रीहरिके ध्यानमें वह निमग्न हो गयी।

तत्पश्चात् हे पक्षिराज! एक दिन मैं अर्जुनके साथ यमुनाके तटपर गया। तप करती हुई उसको वहाँ देखकर

मैंने अपने मित्र अर्जुनसे कहा कि हे पार्थ! आप शीघ्र ही उस कन्याके समीपमें जाकर पूछें कि 'वह किस कारणसे तप कर रही है' मेरे ऐसा कहनेपर अर्जुनने वैसा ही किया और कालिन्दीका सब वृत्तान्त भी बता दिया। तत्पश्चात् मैंने शुभ मुहूर्त आनेपर सम्यक् रीतिसे वहाँ जाकर उस कालिन्दीका पाणिग्रहण किया। हे पक्षिश्रेष्ठ! मुझ पूर्णानन्दको किस सुखकी अभिलाषा है? फिर भी उसपर अनुग्रह करनेकी दृष्टिसे ही मैंने उस कालिन्दीका पाणिग्रहण किया है। (अध्याय २१)

लक्ष्मणाद्वारा भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी कथा

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! जो ये लक्ष्मणा हैं, पूर्व-सृष्टिमें वेदोंके पारंगत अग्निदेवकी पुत्री थीं। सभी प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न होनेके कारण सुलक्ष्मणा इस नामसे इनकी प्रसिद्धि हुई। जिस प्रकार लक्ष्मी सभी लक्षणोंसे पूर्ण हैं, जैसे भगवान् विष्णु सभी लक्षणोंसे परिपूर्ण हैं, उसी प्रकार लक्ष्मणा भी सभी गुणोंसे पूर्ण हैं। वह सुलक्ष्मणा श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये नित्य विविध उपचारोंसे उनकी पूजा किया करती थी, एक बार उसने अपने पिताजीसे कहा—हे तात! वे हरि सर्वत्र व्याप्त हैं, सबमें स्थित हैं और सर्वान्तर्यामी हैं। दान आदि जो भी शुभ कर्म किया जाता है उन्हींको उद्देश्य करके करना चाहिये। उनकी संतुष्टिके लिये उन्हें भक्तिपूर्वक विविध उपचारोंको समर्पित करना चाहिये। भक्तिपूर्वक समर्पित किये गये अन्न-पानादि पदार्थोंको वे मुकुन्द निश्चित ही ग्रहण करते हैं।

गृहस्थको चाहिये कि वह सर्वप्रथम भोग्य पदार्थोंका समर्पण भगवान् हरिके लिये अवश्य करे। जो गृहस्थ ऐसा करता है वह गृहस्थ धन्य है। अन्यथा उसका जीवन व्यर्थ है। माधव नामसे अभिहित वे भगवान् हरि इस प्रकारसे हमारे द्वारा समर्पित अन्नादिको ग्रहण करते हैं। ऐसा समझकर उन्हें पदार्थ अर्पित करना चाहिये। इस प्रकारसे दिये गये अन्नादिक नैवेद्यसे भगवान् विष्णु अत्यन्त संतुष्ट

होते हैं। इसके विपरीत भावसे दिये गये पदार्थको वे ग्रहण नहीं करते, उनके लिये वह सब व्यर्थ ही है। हे सुपर्ण! वासुदेव हरि हमारे घरमें नित्य निवास करते हुए प्रसन्न रहते हैं। ऐसा समझकर अपने घरको देवालय मानकर सर्वदा अलंकृत रखना चाहिये। हे तात! अनन्तरूपी ऐसे वे हरि अनन्त रूपोंसे सबमें स्थित रहते हैं।

श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिराज! अपने पितासे इस प्रकार कहकर वह उन भगवान्‌को पतिरूपमें वरण करनेके लिये अनन्य-मनसे उनकी सपर्यामें लग गयी और की जा रही मेरी इस सेवासे भगवान् हरि ही मेरे पति हों ऐसा चिन्तन करती हुई उस लक्ष्मणाने अपने शरीरका परित्याग कर दिया और पुनः मद्रदेशके राजाकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया। हे पक्षिश्रेष्ठ! तदनन्तर उस लक्ष्मणाके स्वयंवरमें लक्ष्यका भेदन करके मैंने ही वहाँ उपस्थित राजाओंका मान-मर्दन कर उसका पाणिग्रहण किया और अपनी पुरीमें आकर उस देवीके साथ मैं निवास करने लगा। (अध्याय २२)

सोमपुत्री जाम्बवतीकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे पक्षिश्रेष्ठ गरुड! इस सृष्टिसे पूर्व-सृष्टिकी बात है। जाम्बवती श्रीसोमकी पुत्री थी। श्रीसोम श्रीविष्णुकी सेवामें लगे रहते थे। उनकी पुत्री जाम्बवती भी पिताका अनुसरण करती थी। वह नित्य पुराण सुनती, प्रतिक्षण भगवान्‌का स्मरण करती, उनके चरणोंकी वन्दना करती और उनकी सेवामें लगी रहती। धीरे-धीरे जाम्बवतीके अन्तःकरणमें संसारकी नश्वरता घर करती चली गयी। वह समझ गयी कि सुख-दुःख मायाके खेल हैं। इनसे ऊपर उठकर वह भगवत्प्रेममें आनन्द-विभोर रहने लगी। उसकी वाणीसे भगवान्‌के नाम और गुणका कथन होता रहता। आँखें प्रभुकी प्रतीक्षामें रत रहतीं, कान उनकी मीठी बातें सुननेके लिये उत्सुक रहते, हाथ अर्चनाके सम्भारमें लगे रहते और पैर उनकी प्रदक्षिणामें व्यस्त रहते। हृदयमें एक ही कामना रह गयी थी कि मैं भगवान्‌के चरणोंकी दासी कैसे बन जाऊँ। वह सारा कार्य भगवान्‌के लिये करती थी और सम्पन्न होनेपर उन्हें भगवान्‌को ही समर्पित कर देती थी। ब्राह्मणों और संतोंकी पूजामें उसे रस मिलता था।

एक दिन श्रीसोमने तीर्थयात्राका विचार किया। इस समाचारसे जाम्बवती फूली न समायी। वह पहलेसे ही उन स्थलोंको देखना चाहती थी, जहाँ भगवान्‌ने अपनी लीलाएँ की हैं और जहाँ वे अदृश्य-रूपसे आज भी विराजते हैं। भगवान् श्रीनिवासमें जाम्बवतीका मधुर भाव था। शेषाचलपर अब प्रियतमके दर्शन हो जायँगे, इस आशासे उसका रोम-रोम खिल उठा। पिताका भी भगवान्‌में पूरा लगाव था। दोनोंकी उत्सुकता अनिर्वचनीय थी। यात्रा प्रारम्भ हो गयी। पिता-पुत्रीके पग बिना बढ़ाये बढ़ रहे थे। धीरे-धीरे कपिल नामक तीर्थ आ गया। सद्गुरु जैगीषव्यकी आज्ञासे पिताने मुण्डन कराया, स्नान किया और तीर्थ-श्राद्ध किया। फिर विविध प्रकारके दान दिये। इसके बाद सद्गुरुने वेंकटाद्रिका महत्त्व सुनाया। इससे उन यात्रियोंके मनमें श्रद्धाका अतिरेक हो गया। वे लोग बहुत प्रेमसे इस पवित्र पर्वतपर चढ़ने लगे।

सद्गुरु जैगीषव्य नारद, प्रह्लाद, पराशर, पुण्डरीक आदि महाभागवतोंकी कथा सुनाते रहे। नामके रसका आस्वादन करते हुए लोग चल रहे थे। सच पूछा जाय तो वे चल नहीं रहे थे, अपितु आनन्द-वापीमें डूब-उतरा रहे थे और तरंगें स्वयं उन्हें आगे पहुँचाती जाती थीं। जाम्बवती तो मानो आनन्द-वारिधिमें उतराती चली जा रही थी।

चढ़ते-चढ़ते एक मनोरम तीर्थ आया। जाम्बवतीने पूछा—'गुरुदेव! यह कौन-सा तीर्थ है? वह कौन भाग्यशाली है, जिसपर भगवान्‌ने यहाँ अनुग्रह किया है।' इस प्रश्नसे जैगीषव्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटी! इस तीर्थका नाम नारसिंह तीर्थ है। भक्तराज प्रह्लाद प्रेमवश भगवान् श्रीनिवासके दर्शनोंके लिये यहाँ पधारे थे। उनके साथ दैत्योंके कुमार भी थे। वे यहाँ भगवान्‌के दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित हो गये थे। उन्होंने प्रह्लादसे कहा था—'मित्र! जब नृसिंह-रूप भगवान् श्रीनिवास कण-कणमें व्याप्त हैं, तब इस जलमें क्यों नहीं दिखायी देते? कृपाकर उनके दर्शन करा दीजिये!'

भक्तराज प्रह्लादने अपने भगवत्प्रेमी मित्रोंको बहुत आदर दिया। इसके बाद उन्होंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'वे सबको दर्शन दे दें।' भगवान्‌ने संतराजकी प्रार्थना स्वीकार की। दैत्यकुमार दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गये और भगवान् 'इस जलमें स्नान करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी'—ऐसा वरदान देकर प्रह्लाद तथा दैत्यकुमारोंके साथ सदाके लिये इस तीर्थमें बस गये। उनका यह वास आज भी वैसे ही है और आगे भी वैसा ही रहेगा। मध्याह्नके बाद आज भी चारों ओर जय-जयके शब्द सुनायी पड़ते हैं।

इस इतिहासको सुनकर सबको रोमाञ्च हो आया।

सभीको भगवान् श्रीनिवासने दर्शन दिया। जाम्बवतीके मधुर भावके अनुरूप भगवान्‌ने हजारों कामदेवके समान अपना कमनीय रूप दिखाया। देखते ही जाम्बवतीका प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो गया, रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे प्रेमके अश्रु ढलने लगे। किसी प्रकार टूटे-फूटे शब्दोंमें जाम्बवतीने कहा—'नाथ! श्रीचरणोंमें रख लो।'

अबतक भगवान्‌ने अपने सौन्दर्य-सुधाका ही पान कराया था, अब उन्होंने अपने वचन-सुधाका पान कराते हुए कहा—'जाम्बवति! मैं तुम्हें वेंकटेश-मन्त्र बताता हूँ। तुम यहीं रहकर इसका जप करो।' जाम्बवतीको लगा कि उसके कानोंमें अमृत उड़ेल दिया गया हो। वह आनन्दसे बेसुध होने लगी। उसे न अपना पता था, न परायेका। जन्मकी साथिन लाज कहाँ चली गयी, इसका भी उसे पता न था। आनन्दावेशमें वह नाचने लगी। जाम्बवतीके उस नृत्यसे सारा ब्रह्माण्ड रस-विभोर हो उठा। स्वर्गसे अप्सराएँ उतर आयीं और जाम्बवतीके अगल-बगलमें नाचने लगीं। देवताओंने दुंदुभी बजायी और आकाशसे पुष्पकी वृष्टि की।

इसी प्रकार भगवान्‌के प्रेममें आह्लादित होते हुए जाम्बवतीकी तीर्थयात्रा चलती रही। गुरु जैगीषव्यने भगवान् वेंकटेशका माहात्म्य उसे सुनाया। स्वामिपुष्करिणी तीर्थ, जहाँ श्रीनिवास सदा विराजमान रहते हैं[1]—का इतिहास बतलाया। जिसे सुनकर वह आनन्दसे भर गयी, श्रीनिवासके प्रति उसका अनुराग बढ़ता ही गया। गुरुद्वारा बताये गये वेंकटाद्रिके सभी तीर्थोंका जाम्बवतीने बड़े ही भावसे सेवन किया। अन्तमें वह ऋषितीर्थ पहुँची। सप्तर्षियोंसे सेवित उस पुण्य-पवित्र ऋषितीर्थमें उसका मन रम गया, वह वहीं रुक गयी। दीर्घ समयतक उसने वहाँ तपका अनुष्ठान किया।

हे पक्षिराज! वह कन्या-जाम्बवती मेरे कृष्णावतार-धारण करनेतक वहाँ तपस्यामें अनुरक्त रही। उसका शरीर अत्यन्त पवित्र हो चुका था। अन्तमें उसने मुझे पतिरूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे योगधारणाद्वारा अपने उस शरीरका परित्याग कर दिया और वह भक्तराज जाम्बवान्‌के घरमें पुनः उत्पन्न हुई। वहाँ उसका नाम भी जाम्बवती ही पड़ा। भक्तिपरायणा जाम्बवती पिताके घरमें धीरे-धीरे बढ़ने लगी, पूर्व-जन्मके समान ही इस जन्ममें भी वह एकमात्र हरिनिष्ठ थी। उसके पिता जाम्बवान् भी महान् भक्त थे। उन्होंने अपनी पुत्री जाम्बवतीको पत्नीरूपमें मुझे समर्पित कर अपनेको धन्य माना।

जाम्बवतीने भगवान् श्रीकृष्णको सदाके लिये अपना पति बना लिया। उसकी भक्ति सफल हो गयी। विश्वके नाथने विधिके साथ जाम्बवतीसे विवाह किया। सब ओर आनन्द-ही-आनन्द छा गया।

जाम्बवतीके विवाहकी पवित्र कथा बताकर श्रीकृष्णने पक्षिराज गरुडको उन कृपालु भगवान् श्रीनिवासकी भक्तिका विस्तारसे माहात्म्य बतलाया और कहा कि हे गरुडजी! भगवान्‌को कभी भूलना नहीं चाहिये, निरन्तर उनके हरि आदि मङ्गलमय नामोंका उच्चारण करते रहना चाहिये—

हरिं हरिं प्रवदेत् सर्वदैव। (२९।६४)

कल्याणकामी मनुष्यको चाहिये कि वह अपने शास्त्रविहित कर्मोंको करते हुए प्रत्येक समय वासुदेव हरिका स्मरण करता रहे—

पूर्तिर्यदा क्रियते कर्मणां च
सम्यक् स्मरेद्वासुदेवं हरिं च॥ (२९।६८)

ऐसा करनेसे नारायण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, इसलिये हे गरुडजी! भगवान् हरिको प्रिय लगनेवाले कार्योंमें ही सदा व्यक्तिको अनुराग रखना चाहिये—

हरिप्रीतिकरे धर्मे प्रीतियुक्तो भवेत् सदा॥ (२९।७०)

(अध्याय २३-२९)

॥ गरुडपुराणान्तर्गत ब्रह्मकाण्ड सम्पूर्ण॥

॥ गरुडपुराण सम्पूर्ण॥

१. स्वामिपुष्करिणीमध्ये श्रीनिवासोऽस्ति सर्वदा॥ (२६।३८)

गरुडपुराण—सिंहावलोकन

[विशेषाङ्क पृष्ठ-संख्या १६ से आगे]

मृत्युका स्वरूप

हे पक्षीन्द्र! अब मृत्युके स्वरूपको सुनो। मृत्यु ही काल है। मृत्युका समय आ जानेपर जीवात्मासे प्राण और देहका वियोग हो जाता है। मृत्यु अपने समयपर आती है। मृत्यु आनेके कुछ समय-पूर्व प्रायः प्राणीके शरीरमें कोई रोग उत्पन्न हो जाता है, इन्द्रियाँ विकल हो जाती हैं, प्राणीको एक साथ करोड़ों बिच्छुओंके काटनेका अनुभव हो तो उससे मृत्युजनित पीड़ाका अनुमान करना चाहिये। उसके बाद ही चेतनता समाप्त हो जाती है, जड़ता आ जाती है। तदनन्तर समीप आकर खड़े यमदूत उसके प्राणोंको बलात् अपनी ओर खींचना शुरू कर देते हैं। उस समय प्राण कण्ठमें आ जाते हैं। उसके बाद शरीरके भीतर विद्यमान रहनेवाला वह अङ्गुष्ठ-परिमाणका पुरुष अपने घरको देखता हुआ यमदूतोंके द्वारा परलोक ले जाया जाता है।

परंतु भक्तजनों एवं भोगमें अनासक्त जनोंकी अधोगतिका निरोध करनेवाला वायु ऊर्ध्वगतिवाला हो जाता है। जो लोग झूठ नहीं बोलते हैं, जो प्रीतिका भेदन नहीं करते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, जो काम, ईर्ष्या और द्वेषके कारण स्वधर्मका परित्याग नहीं करते, सदाचारी और सौम्य होते हैं, वे सब निश्चित ही सुखपूर्वक मरते हैं।

जो झूठी गवाही करनेवाले, असत्यभाषी, विश्वासघाती और वेदनिन्दक हैं, वे मूर्च्छारूपी मृत्युको प्राप्त करते हैं। उनको ले जानेके लिये लाठी एवं मुद्गरसे युक्त, दुर्गन्धसे भरपूर एवं भयभीत करनेवाले दुरात्मा यमदूत आते हैं। उसके बाद वह प्राणी वेदनासे संत्रस्त होकर अपने शरीरका परित्याग करता है और उसके बाद ही वह सबके लिये अस्पृश्य एवं घृणायोग्य हो जाता है। हे गरुड! मैंने यथाप्रसंग मृत्युका स्वरूप सुना दिया।

भगवान् गरुडसे कहते हैं कि पूर्वजन्ममें किये गये विचित्र प्रकारके भोगोंको भोगता हुआ प्राणी इस जगत्‌में विभिन्न योनियोंमें भ्रमण करता है। देव, असुर और यक्ष आदि योनियाँ प्राणीके लिये सुखप्रदायिनी हैं। मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियाँ अत्यन्त दुःखदायिनी हैं। इन योनियोंमें कर्मफलके तारतम्यसे प्राणीका जन्म होता है। इसी प्रसंगमें भगवान्‌ने कर्मविपाकका वर्णन करते हुए प्राणीके विभिन्न पापोंके परिणामस्वरूप जिन-जिन योनियोंमें जन्म होता है, उसका विस्तृत वर्णन किया है।

नरकोंका वर्णन

गरुडके जिज्ञासा करनेपर भगवान्‌ने मुख्य-मुख्य नरकोंका वर्णन किया, जिसमें 'रौरव' नामक नरकको प्रधान बताया। झूठी गवाही देनेवाला और झूठ बोलनेवाला व्यक्ति रौरव नरकमें जाता है। इसके साथ ही महारौरव, अतिशीत, निकृन्तन, अप्रतिष्ठ, असिपत्रवन, तप्तकुम्भ आदि प्रधान नरकोंका भी वर्णन किया। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से नरकोंका वर्णन किया।

ये सभी नरक यमके राज्यमें स्थित हैं। जो मनुष्य गौकी हत्या, भ्रूणहत्या और आग लगानेका दुष्कर्म करता है, वह 'रोध' नामक नरकमें गिरता है। जो ब्रह्मघाती, मद्यपी तथा सोनेकी चोरी करनेवाला है, वह 'सूकर' नामके नरकमें गिरता है। क्षत्रिय और वैश्यकी हत्या करनेवाला 'ताल' नामक नरकमें जाता है।

इन नरकके लोकोंके अतिरिक्त भी सैकड़ों नरक हैं। जिनमें पहुँचकर पापी प्रतिदिन पकता है, जलता है, गलता है, विदीर्ण होता है, चूर्ण किया जाता है, गीला होता है, क्वाथ बनाया जाता है, जलाया जाता है और कहीं वायुसे प्रताड़ित किया जाता है। ऐसे नरकोंमें एक दिन सौ वर्षके समान होता है। इन सभी नरकोंमें भोग भोगनेके बाद पापी तिर्यक्-योनिमें जाता है। तत्पश्चात् उसे कृमि, कीट, पतंग, स्थावर तथा एक खुरवाले गधेकी योनि प्राप्त होती है। तदनन्तर मनुष्य जंगली हाथी आदिकी योनियोंमें जाकर गौकी योनिमें पहुँचता है। गधा, घोड़ा, खच्चर, गौर-मृग, शरभ और चमरी—ये छः योनियाँ एक खुरवाली होती हैं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी पापाचार-योनियाँ भी हैं, जिनमें जीवात्माको कष्ट भोगना पड़ता है। उन सभी योनियोंको पारकर प्राणी मनुष्य-योनिमें आता है और कुबड़ा,

कुत्सित, वामन, चाण्डाल तथा पुल्कस आदि नर-योनियोंमें जाता है। अवशिष्ट पाप-पुण्यसे समन्वित होकर जीव बार-बार गर्भमें जाते हैं और मृत्युको प्राप्त करते हैं। उन सभी पापोंके समाप्त हो जानेके बाद प्राणीको शूद्र, वैश्य तथा क्षत्रिय आदिकी आरोहिणी-योनि प्राप्त होती है। कभी-कभी वह सत्कर्मसे ब्राह्मण, देव और इन्द्रत्वके पदपर भी पहुँच जाता है।

हे गरुड! यमद्वारा निर्दिष्ट योनिमें पुण्य गति प्राप्त करनेमें जो प्राणी सफल हो जाते हैं, वे दिव्य देह धारण करके विमानमें आरोहण कर स्वर्गलोकको जाते हैं। पुण्यकी समाप्तिके पश्चात् जब वे वहाँसे पुनः पृथ्वीपर आते हैं तो वे राजा अथवा महात्माओंके घरमें जन्म लेकर सदाचारका पालन करते हैं तथा समस्त भोगोंको प्राप्त करके पुनः स्वर्गको प्राप्त करते हैं, अन्यथा पहलेके समान आरोहिणी-योनिमें जन्म लेकर दुःख भोगते हैं।

चौरासी लाख योनियाँ हैं। उद्भिज्ज (पृथ्वीमें अंकुरित होनेवाली वनस्पतियाँ), स्वेदज (पसीनेसे जन्म लेनेवाले जुएँ और लीख आदि कीट), अण्डज (पक्षी) तथा जरायुज (मनुष्य)-में यह सम्पूर्ण सृष्टि विभक्त है।

मृत्युके पूर्व तथा बादमें किये जानेवाले कर्म

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे गरुड! जानमें या अनजानमें मनुष्य जो भी पाप करते हैं, उन पापोंसे शुद्धिके लिये उन्हें प्रायश्चित्त करना चाहिये। शास्त्रोंमें दशविध स्नान तथा कृच्छ्र आदि चान्द्रायण व्रत अथवा गोदान आदिकी प्रक्रिया प्रायश्चित्तरूपमें बतायी गयी है। यदि मनुष्य उनमें अक्षमताके कारण सफल न हो रहा हो तो आधा या चौथाई कुछ-न-कुछ प्रायश्चित्त अवश्य करना चाहिये। तत्पश्चात् दस महादान—गौ, भूमि, तिल, हिरण्य (स्वर्ण), घृत, वस्त्र, धान्य, गुड, रजत और लवण—इनका दान करना चाहिये।

यमद्वारपर पहुँचनेके लिये जो मार्ग बताये गये हैं, वे अत्यन्त दुर्गन्धियुक्त मवाद आदि तथा रक्त आदिसे परिव्याप्त हैं। अतः उस मार्गमें स्थित वैतरणी नदीको पार करनेके लिये वैतरणी-गौका दान करना चाहिये। जो गौ सर्वाङ्गमें काली हो, जिसके स्तन भी काले हों उसे वैतरणी-गौ माना गया है।

तिल, लोहा, स्वर्ण, कपास, लवण, सप्तधान्य, भूमि और गौ—ये पापसे शुद्धिके लिये पवित्रतामें एक-से-एक बढ़कर हैं। इन आठ दानोंको महादान कहा जाता है। इनका दान उत्तम प्रकृतिवाले ब्राह्मणको ही देना चाहिये—

तिला लौहं हिरण्यं च कर्पासं लवणं तथा।
सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥
एतान्यष्टौ महादानान्युत्तमाय द्विजातये।
(२।४।७-८)

अब पददानका वर्णन सुनो। छत्र, जूता, वस्त्र, अंगूठी, कमण्डलु, आसन, पात्र और भोज्यपदार्थ—ये आठ प्रकारके पद हैं—

छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः।
आसनं भाजनं भोज्यं पदं चाष्टविधं स्मृतम्॥
(२।४।९)

तिलपात्र, घृतपात्र, शय्या, उपस्कर तथा और भी जो कुछ अपनेको इष्ट हो, वह सब देना चाहिये। अश्व, रथ, भैंस, भोजन, वस्त्रका दान ब्राह्मणोंको करना चाहिये। अन्य दान भी अपनी शक्तिके अनुसार देने चाहिये।

हे पक्षिराज! इस पृथ्वीपर जिसने पापका प्रायश्चित्त कर लिया है, वह दस प्रकारके दान भी दे चुका है, वैतरणी-गौ एवं अष्टदान कर चुका है, जो तिलसे पूर्ण पात्र, घीसे भरा हुआ पात्र, शय्यादान और विधिवत् पददान करता है वह नरकरूपी गर्भमें नहीं आता है। अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता—

प्रायश्चित्तं कृतं येन दश दानान्यपि क्षितौ॥
दानं गोर्वैतरण्याश्च दानान्यष्टौ तथापि वा।
तिलपात्रं सर्पिःपात्रं शय्यादानं तथैव च॥
पददानं च विधिवन्नासौ निरयगर्भगः।
(२।४।१२—१४)

पण्डित लोग स्वतन्त्र रूपसे भी लवण-दान करनेकी इच्छा रखते हैं; क्योंकि यह लवण-रस विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है। इस पृथ्वीपर मरणासन्न प्राणीके प्राण जब न निकल रहे हों तो उस समय लवण-रसका दान उसके हाथसे दिलवाना चाहिये; क्योंकि यह दान उसके लिये स्वर्गलोकके द्वार खोल देता है। मनुष्य स्वयं जो कुछ दान देता है परलोकमें वह सब उसे प्राप्त होता है, वहाँ उसके आगे रखा हुआ मिलता है। हे पक्षिन्! जिसने यथाविधि

अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, वही पुरुष है। वही अपने पापोंको भस्मसात् करके स्वर्गलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है।

हे खगराज! गौका दूध अमृत है। इसलिये जो मनुष्य दूध देनेवाली गौका दान देता है, वह अमृतत्वको प्राप्त करता है। उपर्युक्त तिलादिक आठ प्रकारके दान देकर प्राणी गन्धर्वलोकमें निवास करता है। यमलोकका मार्ग अत्यधिक भीषण तापसे युक्त है, अतः छत्रदान करना चाहिये। छत्रदान करनेसे मार्गमें सुख प्रदान करनेवाली छाया प्राप्त होती है। जो मनुष्य इस जन्ममें पादुकाओंका दान देता है, वह 'असिपत्रवन'के मार्गको घोड़ेपर सवार होकर सुखपूर्वक पार करता है। भोजन और आसनका दान देनेसे प्राणीको परलोकगमनके मार्गमें सुखका उपभोग प्राप्त होता है। जलसे परिपूर्ण कमण्डलुका दान देनेवाला पुरुष सुखपूर्वक परलोकगमन करता है।

यमराजके दूत महाक्रोधी और महाभयंकर हैं। काले एवं पीले वर्णवाले उन दूतोंको देखनेमात्रसे भय लगने लगता है। उदारतापूर्वक वस्त्र-आभूषण आदिका दान करनेसे वे यमदूत प्राणीको कष्ट नहीं देते। तिलसे भरे हुए पात्रका जो दान ब्राह्मणको दिया जाता है, वह मनुष्यके मन, वाणी और शरीरके द्वारा किये गये त्रिविध पापोंका विनाश कर देता है। मनुष्य घृतपात्रका दान करनेसे रुद्रलोकको प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सभी साधनोंसे युक्त शय्याका दान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें नाना प्रकारकी अप्सराओंसे युक्त विमानमें चढ़कर साठ हजार वर्षतक अमरावतीमें क्रीडा करके इन्द्रलोकके भोग भोगनेके बाद पुनः वहाँसे गिरकर इस पृथ्वीलोकमें आकर राजाका पद प्राप्त करता है। जो मनुष्य काठी आदि उपकरणोंसे सजे-धजे, दोषरहित जवान घोड़ेका दान ब्राह्मणको देता है, उसको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। हे खगेश! दानमें दिये गये इस घोड़ेके शरीरमें जितने रोयें होते हैं, उतने वर्ष (कालतक) स्वर्गके लोकोंका भोग दानदाताको प्राप्त होता है। प्राणी ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त चार घोड़ोंवाले रथका दान दे करके राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। यदि कोई व्यक्ति सुपात्र ब्राह्मणको दुग्धवती, नवीन मेघके समान वर्णवाली, सुन्दर जघन-प्रदेशसे युक्त और मनमोहक तिलकसे समन्वित भैंसका दान देता है तो वह परलोकमें जाकर अभ्युदयको प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।

तालपत्रसे बने हुए पंखेका दान करनेसे मनुष्यको परलोकगमनके मार्गमें वायुका सुख प्राप्त होता है। वस्त्र-दान करनेसे व्यक्ति परलोकमें शोभासम्पन्न-शरीर और उस लोकके वैभवसे सम्पन्न हो जाता है। जो प्राणी ब्राह्मणको रस, अन्न तथा अन्य सामग्रियोंसे युक्त घरका दान देता है, उसके वंशका कभी विनाश नहीं होता, वह स्वयं स्वर्गका सुख प्राप्त करता है। हे खगेन्द्र! इन बताये गये सभी प्रकारके दानोंमें प्राणीकी श्रद्धा तथा अश्रद्धासे आयी हुई दानकी अधिकता और कमीके कारण उसके फलमें श्रेष्ठता और लघुता आती है।

यदि मृत्युके समीप पहुँचे हुए मनुष्यको लोग किसी पवित्र तीर्थमें ले जाते हैं और उसकी मृत्यु उसी तीर्थमें हो जाती है तो उसको मुक्ति प्राप्त होती है और यदि प्राणी मार्गके बीच ही मर जाता है तो भी मुक्ति प्राप्त करता ही है, साथ ही उसको तीर्थतक ले जानेवाले लोग पग-पगपर यज्ञ करनेके समान फल प्राप्त करते हैं—

आसन्नमरणो मर्त्यश्चेत् तीर्थं प्रतिनीयते।
तीर्थप्राप्तौ भवेन्मुक्तिर्म्रियते यदि मार्गगः।
पदे पदे क्रतुसमं भवेत् तस्य न संशयः॥

(२।४।३८)

हे द्विज! मृत्युके निकट आ जानेपर जो मनुष्य विधिवत् उपवास करता है, वह भी मृत्युके पश्चात् पुनः इस संसारमें नहीं लौटता।

हे खगेश! मृत्युके संनिकट होनेपर कौन-सा दान करना चाहिये। इस प्रश्नका उत्तर मैंने बता दिया है। मृत्यु और दाहके बीच मनुष्यके क्या कर्तव्य हैं? इस प्रश्नका उत्तर अब तुम सुनो।

व्यक्तिको मरा हुआ जान करके उसके पुत्रादि परिजनोंको चाहिये कि वे सभी स्नान करके शवको शुद्ध जलसे स्नान कराकर नवीन वस्त्रसे आच्छादित करें। तदनन्तर उसके शरीरमें चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थोंका अनुलेप भी करें।

दाह-संस्कारके अन्तर्गत छः पिण्ड देनेकी विधि है। पहला पिण्ड मृत्यु-स्थानपर, दूसरा द्वारपर, तीसरा चौराहेपर,

चौथा विश्रामस्थान, पाँचवाँ काष्ठचयन (चिता) और छठा अस्थि-संचयनके समय—ये छः पिण्डदानके स्थान हैं। सभी बन्धु-बान्धवोंको श्मशानभूमिमें शवको ले जाना चाहिये तथा वहाँ शवको दक्षिण दिशाकी ओर सिर करके स्थापित करना चाहिये। दाहकी क्रियाके लिये पुत्रादि परिजनोंको स्वयं तृण, काष्ठ, तिल और घृत आदि ले जाना चाहिये। शूद्रोंके द्वारा श्मशानमें पहुँचायी गयी वस्तुओंसे वहाँ किया गया सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाता है। वहाँपर सभी कर्म अपसव्य और दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिये। शवदाहके पूर्व पाँच पिण्डदान करनेसे शवमें आहुति (अग्निदाह)-की योग्यता आ जाती है। किसी कारणवश उपर्युक्त पिण्ड नहीं दिये जानेपर शव राक्षसोंके भक्षण-योग्य हो जाता है। दाहकार्यमें चाण्डालके घरकी अग्नि, चिताकी अग्नि और पापीके घरकी अग्निका प्रयोग नहीं करना चाहिये। स्वच्छ भूमिपर अग्नि स्थापित कर क्रव्याददेवकी विधिवत् पूजा करके शवको चितामें जलानेका उपक्रम करना चाहिये। जब शवके शरीरका आधा भाग चितामें जल जाय तो उस समय कर्ता तिलमिश्रित घृतकी आहुति चितामें जल रहे शवके ऊपर छोड़े। उसके बाद भावविह्वल होकर उस आत्मीय जनके लिये रोना चाहिये। इस कृत्यको करनेसे उस मृतकको अत्यधिक सुख प्राप्त होता है।

दाहक्रिया करनेके पश्चात् अस्थि-संचयन क्रिया करनी चाहिये। तदनन्तर किसी जलाशयपर जाकर सभी परिजनोंको सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये तथा दक्षिणाभिमुख होकर मृत प्राणीके लिये तिलयुक्त जलाञ्जलि देनी चाहिये।

शवदाह तथा तिलाञ्जलिके बाद मनुष्यको अश्रुपात नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस समय रोते हुए अपने बन्धु-बान्धवोंके द्वारा आँख और मुँहसे गिराये हुए आँसू और कफका मृतकको पान करना पड़ता है। इसके बाद जीवनकी क्षणभंगुरताकी चर्चा करते हुए घरकी ओर प्रस्थान करे। जिसमें स्त्रियाँ आगे-आगे तथा पुरुष उनके पीछे-पीछे चलें। घरके द्वारपर पहुँचनेपर नीमकी पत्तियोंको दाँतसे काटकर आचमन करे, बादमें घरमें प्रवेश करे।

पुत्र-पौत्रादि तथा सगोत्री परिजन दस रात्रियोंका अशौच मनावें। इस अशौच-कालमें ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। पृथ्वीपर ही सोये। अपना आसन अलग रखना चाहिये तथा किसीको स्पर्श नहीं करना चाहिये। इस कालमें दान, अध्ययन एवं भोग-विलास आदि कर्मोंसे दूर रहना चाहिये। अङ्गमर्दन और सिर धोना भी छोड़ देवे। अशौचकी अवधिमें मिट्टीके बने पात्र या पत्तलमें भोजन करना चाहिये। इसके बाद दशगात्रके अन्तर्गत दस पिण्डदान आदिकी प्रक्रिया बतायी गयी है। दाह-संस्कारके समयके छः पिण्ड तथा दशगात्रके दस पिण्डको मलिनषोडशी कहा गया है, जो मृत-दिनसे दस दिनमें पूर्ण होती है। दशगात्रकी प्रक्रियामें यह बताया गया है कि नौ दिनमें मृत व्यक्तिका शरीर अपने अङ्गोंसे युक्त हो जाता है। दसवें पिण्डदानसे उस शरीरमें पूर्णता, तृप्ति और भूख-प्यासका उदय होता है।

इसके बाद पतिके मरनेपर स्त्रीके कर्तव्यकी बात बतायी गयी है, जिसमें चितापर पतिका अनुगमन करनेपर सतीधर्मको सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। पतिकी मृत्युके समय जो स्त्रियाँ गर्भरहित हैं और जिनके छोटे बच्चे नहीं हैं, उनको सतीधर्मका पालन करना चाहिये।

अपमृत्युका निवारण

यदि कोई प्राणी भूखसे पीड़ित होकर मर जाता है, हिंसक प्राणियोंके द्वारा मारा जाता है, गलेमें फाँसीका फंदा लगानेसे जिसकी मृत्यु हो जाती है, जो विष तथा अग्नि आदिसे मृत्युको प्राप्त होता है, जो आत्मघाती है, जो गिरकर या रस्सी आदिके द्वारा किये गये बन्धन अथवा जलमें डूबनेसे मर जाते हैं, जो सर्प तथा जंगली हिंसक पशु, वृक्षपात, विद्युत्पात, लोहेसे, पर्वतपरसे गिरनेसे, दीवारके गिरनेसे, खाट या मध्य कक्षमें मृत्युको प्राप्त होते हैं, जो शस्त्राघातसे, विषैले कुत्तेके मुखको स्पर्श करनेसे तथा शास्त्रविधिसे रहित जो मृत्यु हो जाती है, उसे दुर्मरण समझना चाहिये। इस स्थितिमें नारायणबलि किये जानेपर ही और्ध्वदैहिक कर्मकी योग्यता आती है। अपमृत्यु होनेपर ऐसे प्राणीका शुद्धीकरण इसी नारायणबलिसे सम्भव है, अन्यथा नहीं। नारायणबलि एकादशाहके दिन करना चाहिये। नारायणबलिकी विधिका यहाँ संक्षेपमें वर्णन किया गया है। नारायणबलिका वर्णन करते हुए कहा गया है कि नारायणबलिसे मृत व्यक्तिका नरकलोकसे उद्धार हो जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

प्रवासमें मृत्यु होनेपर या सर्पदंश आदिसे मृत्यु होनेपर

पुत्तल-दाहकी विधिका निरूपण किया गया है। इसके अनन्तर रजस्वला और सूतिका स्त्रीके मरनेपर कौन-सा विशेष कर्म करना धर्मसम्मत है, यह भी बताया गया है।

पञ्चकमें मृत्यु-प्राप्तके कृत्य

पञ्चकमें मृत्यु होनेपर दाह-संस्कारकी विधि भगवान्‌के द्वारा गरुडजीको बतायी गयी है।

मासके प्रारम्भमें धनिष्ठा नक्षत्रके अर्ध-भागसे लेकर रेवती नक्षत्रतकका समय पञ्चककाल कहलाता है। इसको सदैव दोषपूर्ण और अशुभ माना गया है। इसमें मरे हुए व्यक्तिका दाह-संस्कार करना उचित नहीं है। यह काल सभी प्राणियोंमें दु:ख उत्पन्न करनेवाला है। पञ्चककालके समाप्त होनेपर ही मृतकके सभी कर्म करने चाहिये, अन्यथा पुत्र एवं पारिवारिक जनोंके लिये यह कष्टप्रद होता है। इन नक्षत्रोंमें मृतकका दाह-संस्कार करनेपर घरमें किसी-न-किसी प्रकारकी हानि होती है। पञ्चकमें दाह-संस्कार करना हो तो कुशके मानवाकार चार पुतले बनाकर नक्षत्रमन्त्रोंसे उनको अभिमन्त्रित करके शवपर रख दे। तदनन्तर उन्हीं पुतलोंके साथ मृतकका दाह-संस्कार करना चाहिये। अशौचके समाप्त हो जानेपर मृतकके पुत्रोंद्वारा पञ्चक-शान्ति भी करानी चाहिये। मृतकके पुत्रोंको प्राणीके कल्याण-हेतु तिल, गौ, स्वर्ण और घीका दान देना चाहिये। समस्त विघ्नोंका विनाश करनेके लिये ब्राह्मणोंको भोजन, पादुका, छत्र, स्वर्णमुद्रा और वस्त्र देना चाहिये। यह दान मृतकके समस्त पापोंका विनाशक है।

मलिनषोडशीके बाद मध्यमषोडशीकी विधिका वर्णन किया गया है। विष्णुसे आरम्भ करके विष्णुपर्यन्त एकादश श्राद्ध तथा पाँच देवश्राद्ध—इस प्रकार षोडश श्राद्ध किये जाते हैं। इन्हींका नाम मध्यमषोडशी है। यह कृत्य एकादशाहको किया जाता है। इसी दिन वहींपर वृषोत्सर्ग भी करना चाहिये। जिस जीवका ग्यारहवें दिन वृषोत्सर्ग नहीं होता है, सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी उस जीवकी प्रेतत्वसे मुक्ति नहीं होती। अत: स्वजनकी मृत्युके पश्चात् निश्चित ही वृषोत्सर्ग करना चाहिये। चार बछियोंसे युक्त विधानपूर्वक अलंकृत वृष जिसके निमित्त छोड़ा जाता है, उसको प्रेतत्वकी प्राप्ति नहीं होती। यदि एकादशाहके दिन यथाविधान सांड उत्सर्ग करनेके लिये उपलब्ध नहीं है तो विद्वान् ब्राह्मणको कुश या चावलके चूर्णसे ही सांडका निर्माण करके उसका उत्सर्ग करना चाहिये। जीवनकालमें प्राणीको जो भी पदार्थ प्रिय रहा हो उसका भी दान इसी एकादशाह श्राद्धके दिन करना उचित है। इसी दिन मरे हुए स्वजनको उद्‌देश्य बनाकर शय्या, गौ आदिका दान भी करना चाहिये। इतना ही नहीं, उस प्रेतकी क्षुधा-शान्तिके लिये बहुत-से ब्राह्मणोंको भोजन भी कराना चाहिये।

इसके बाद भगवान् तृतीयषोडशी (उत्तमषोडशी) श्राद्धका वर्णन करते हैं। प्रत्येक बारह मासके बारह पिण्ड, ऊनमासिक (आद्य), त्रिपाक्षिक, ऊनषाण्मासिक एवं ऊनाब्दिक—इन्हें मतभेदसे तृतीय अथवा उत्तमषोडशी कहा जाता है।

गरुडके पूछनेपर भगवान्‌ने कहा—हे खगराज! जब मनुष्य मरनेके बाद एक वर्षकी महापथकी यात्रा करता है तो वह पुत्र-पौत्रादिके द्वारा सपिण्डीकरण हो जानेपर पितृलोकमें चला जाता है। इसलिये पुत्रको पिताका सपिण्डीकरण अवश्य करना चाहिये। वर्षके अन्तमें पितृ-पिण्डोंके साथ प्रेत-पिण्डका सम्मिलन हो जानेके बाद वह प्रेत परम गतिको प्राप्त करता है।

गृहस्थ पिताकी मृत्यु होनेपर यदि सपिण्डीकरण श्राद्ध नहीं हुआ है तो किसीका विवाह-संस्कार नहीं हो सकता। जबतक सपिण्डीकरण नहीं हो जाता तबतक भिक्षुक उस घरकी भिक्षा स्वीकार नहीं करता। अपने गोत्रमें अशौच तबतक रहता है जबतक पिण्डका मेलन नहीं हो जाता। पिण्डमेलन होनेपर 'प्रेत' शब्द निवृत्त हो जाता है। कुलधर्म अनन्त हैं, पुरुषकी आयु नष्टप्राय है और शरीर नाशवान् है। इस कारण द्वादशाह ही इस कर्मके लिये प्रशस्त समय माना गया है। अत: क्रिया करनेवाले पुत्रको द्वादशाहको ही सपिण्डीकरण कर देना चाहिये। तत्त्वद्रष्टा ऋषियोंने सपिण्डीकरणके लिये द्वादशाह, त्रिपक्ष, छठा मास अथवा वार्षिक तिथिको कहा है। सपिण्डीकरणके पूर्व उत्तमषोडशी होनी आवश्यक है; क्योंकि बारहवें दिन ही प्राय: सपिण्डीकरण करना लोकमें प्रसिद्ध है, इसलिये उत्तमषोडशी श्राद्ध एकादशाह या द्वादशाहको कर देना चाहिये। सपिण्डीकरण करनेके बाद भी बारह महीनेतक षोडश श्राद्ध एकोद्दिष्ट-विधिसे नियमानुसार करना चाहिये।

हे खगराज! मृतकका दाह-संस्कार हो जानेके पश्चात्

दशगात्रके पिण्डदानसे पुनः शरीर उत्पन्न होता है। दसवें पिण्डसे शरीर बन जानेपर प्राणीको अत्यधिक भूख लगती है। एकादशाह तथा द्वादशाह—इन दो दिनोंमें प्रेत भोजन करता है। इन दोनों दिन जो कुछ भी प्राणीके निमित्त दिया जाता है, उसे 'प्रेत' शब्दके द्वारा दिया जाना चाहिये; क्योंकि वह मृतकके लिये आनन्ददायक होता है। सपिण्डीकरण कर देनेके बाद जो भी दान किया जाय वह नाम-गोत्रका उच्चारण करके पितृ-निमित्त करना चाहिये। भोजन तथा घटादिका दान, पददान, शय्यादान एवं अन्य जो भी दान हैं, उन्हें मृत प्राणीके निमित्त एकको ही उद्देश्य करके देना चाहिये। पिण्डदानके पश्चात् यथाशक्ति उपयोगी समस्त सामग्री दानमें दे। ऐसा होनेपर वह दिव्य देह धारण करके विमानद्वारा सुखपूर्वक यमलोकको चला जाता है।

प्रेतके द्वादशाह-संस्कारके अवसरपर जलपूरित कुम्भोंका दान विशेष महत्त्व रखता है। यजमान उस दिन जलसे भरे बारह घटोंका संकल्प करके दान करे। उसी दिन वह पक्वान्न और फलसे परिपूर्ण एक वर्धनी (विशेष प्रकारका जलपात्र) भगवान् विष्णुके लिये संकल्प करके सुयोग्य एवं सच्चरित्र ब्राह्मणको प्रदान करे। तदनन्तर वह एक वर्धनी, पक्वान्न तथा फल धर्मराजको समर्पित करे। उससे संतुष्ट होकर धर्मराज उस प्रेतको मोक्ष प्रदान करते हैं। उसी समय एक वर्धनी चित्रगुप्तके लिये दानमें देना चाहिये। उसके पुण्यसे प्रेत वहाँ पहुँचकर सुखी रहता है।

दानमें एक शय्या एक ही ब्राह्मणको देना चाहिये। एक गौ, एक गृह, एक शय्या और एक स्त्रीका दान बहुतोंके लिये नहीं होता। विभाजित करके दिये गये ये दान दाताको पापकी कोटिमें गिरा देते हैं। आत्मा ही पुत्रका नाम है। वही पुत्र यमलोकमें पिताका रक्षक है। घोर नरकसे वही पिताका उद्धार करता है। इसलिये उसे पुत्र कहा जाता है। अतः पुत्रको पिताके लिये आजीवन श्राद्ध करना चाहिये, तभी वह आतिवाहिक प्रेतरूप पिता पुत्रद्वारा दिये गये उन भोगोंका सुख प्राप्त करता है।

शय्यादानकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—यह जीवन अनित्य है। जबतक यह जीवन है तभीतक अपने बन्धु-बान्धव हैं। मृत्यु हो जानेपर 'यह मर गया है' ऐसा जानकर क्षणभरमें ही अपने हृदयसे स्नेहको दूर कर देते हैं। 'आत्मा ही अपना बन्धु है।' ऐसा बारम्बार विचारकर अपने जीते ही हितका कार्य कर लेना चाहिये।

इसके अनन्तर गरुडने प्रेतोंके सम्बन्धमें इस प्रकार जिज्ञासा की—'भगवन्! प्रेतके अनेक रूप किस प्रकार होते हैं? वे कौन-कौनसे कर्मके द्वारा महाप्रेत और पिशाच बन जाते हैं? और किस शुभ दानसे प्राणीकी प्रेतयोनि छूट जाती है?' इन सबका उत्तर देते हुए भगवान्ने कहा—जो पूर्वजन्मसंचित कर्मके अधीन रहकर पापकर्ममें अनुरक्त रहते हैं, वे मृत्युके पश्चात् प्रेतयोनिमें जन्म लेते हैं तथा जो वंशपरम्परागत धर्मपथका परित्याग करके दूसरे धर्मको स्वीकार करता है, विद्या और सदाचारसे जो विहीन है वह भी निःसंदेह प्रेत ही होता है। इसके साथ और भी कई कारण विस्तारसे बताये गये हैं। इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास[1] जो पितामह भीष्म और युधिष्ठिरके संवादमें कहा गया था। प्रेतके लक्षण बताते हुए बभ्रुवाहन नामके एक राजाकी कथा सुनायी। इस राजाको किसी प्रेतका साक्षात्कार हुआ तथा उससे वार्तालाप भी हुआ। राजासे प्रेतने बताया कि मृत्यूपरान्त उसके और्ध्वदैहिक संस्कार तथा श्राद्ध आदि कर्म न होनेके कारण उसे प्रेतयोनि प्राप्त हुई। उसने इस योनिसे मुक्त करानेके लिये राजासे प्रार्थना की। राजाके पूछनेपर उस प्रेतने प्रेतयोनि मिलनेके कारण तथा इस योनिसे मुक्तिका उपाय भी बताया। नगरमें पहुँचकर राजाने उस प्रेतके द्वारा कही गयी सम्पूर्ण और्ध्वदैहिक क्रियाको विधि-विधानसे सम्पन्न किया। उसके पुण्यसे वह प्रेत बन्धनविमुक्त होकर स्वर्गको चला गया।[2]

जीव अपने कर्मानुसार दूसरे शरीरको प्राप्त करके यमलोकमें नाना प्रकारके कष्ट भोगता है। यमलोकके मार्गमें सोलह पुर पड़ते हैं, जिसका विस्तृत वर्णन भगवान् श्रीहरिने किया है।[3] संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार मार्ग हैं। जो उत्तम प्रकृतिवाले प्राणी हैं, वे धर्ममार्गसे

१-पृष्ठ-संख्या ४३७ पर देखिये।

२-स्थानाभावके कारण यह कथा पूरी नहीं दी गयी। विस्तृत कथा पृष्ठ-संख्या ४१० में देखनी चाहिये।

३-यह कथा पृष्ठ-संख्या ४२७ पर देखनी चाहिये।

चलते हैं। जो अर्थ अर्थात् धन-धान्यका दान करनेवाले प्राणी हैं, वे विमानसे परलोक जाते हैं। जो प्राणी अभिलषित याचककी इच्छाको संतुष्ट करनेवाले हैं, वे कन्धोंपर सवार होकर प्रस्थान करते हैं। जो प्राणी मोक्षकी आकांक्षा रखते हैं, वे हंसयुक्त विमानसे परलोकको जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो प्राणी धर्मादि पुरुषार्थचतुष्टयसे हीन है, वह पैदल ही काँटों तथा पत्थरोंके बीचसे कष्ट झेलता हुआ असिपत्रवनमें जाता है।

इसके पश्चात् श्रीकृष्णने एक पुण्यशाली इतिहासका वर्णन किया, जो महर्षि वसिष्ठने राजा वीरवाहनसे कहा था। इसके अन्तर्गत महर्षि वसिष्ठने धर्मवत्स नामक एक ब्राह्मणकी कथा सुनायी तथा उसके पूर्वजन्मका एक शिक्षाप्रद कथानक भी प्रस्तुत किया।[1] जिसमें लोमश ऋषि और वैश्यका संवाद है। ऋषिने कहा—हे वैश्यवर! यह मन अत्यन्त बलवान् है और नित्य ही विकारयुक्त स्वभाववाला है, तथापि जिस प्रकार पीलवान मतवाले हाथीको भी वशमें कर लेते हैं वैसे ही सत्संगतिसे, आलस्यरहित होकर साधन करनेसे, तीव्र भक्तियोगसे तथा सद्विचारके द्वारा अपने मनको वशमें कर लेना चाहिये। इस सम्बन्धमें नारदके पूर्वजन्मके जीवनवृत्तसे जुड़ी हुई कथा भी ऋषिने सुनायी।[2] जिसका आशय यह था कि सत्संगति तथा भगवद्भक्तिसे विशुद्ध निर्मल और शान्त स्वभाववाला मन सुखी हो जाता है। साधुसंगति होनेपर अनेक जन्मोंमें किया हुआ पाप शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जिस प्रकार शरत्कालके आनेपर वर्षा समाप्त हो जाती है।

तदनन्तर श्रीकृष्णने संतप्तक नामक ब्राह्मण तथा पाँच प्रेतोंकी कथा सुनायी, जिसमें सत्संगति तथा भगवत्कृपासे पाँच प्रेतों तथा ब्राह्मणका उद्धार हो गया।

श्राद्ध करनेके अधिकारी

गरुडके पूछनेपर और्ध्वदैहिक क्रियाके अधिकारीका वर्णन भगवान्‌ने प्रस्तुत किया। मृत प्राणीका और्ध्वदैहिक कार्य पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, भाई, भाईकी संतान अथवा सपिण्ड या जातिके लोग कर सकते हैं। इन सभीके अभावमें समानोदक संतान इस कार्यको करनेका अधिकारी है। यदि दोनों कुलों (मातृकुल-पितृकुल)-के पुरुष समाप्त हो गये हों तो स्त्रियाँ इस कार्यको कर सकती हैं। जो लोग अपने सगे-सम्बन्धियोंके द्वारा दिये गये श्राद्धसे संतुष्ट हो जाते हैं, वे श्राद्धकर्ताको पुत्र, स्त्री और धन आदिके द्वारा तृप्त करते हैं।

जीवित-श्राद्धका विधान

गरुडके यह पूछनेपर कि हे देव! यदि उपर्युक्त अधिकारियोंमेंसे एक भी न हो तो उस समय मनुष्यको क्या करना चाहिये?

भगवान्‌ने कहा—यदि कोई अधिकारी व्यक्ति न हो तो ऐसी स्थितिमें मनुष्यको स्वयं अपने जीवनकालमें ही जीवित-श्राद्ध करना चाहिये। जीवित-श्राद्धकी विधि पृष्ठ ४०८ में प्रस्तुत की गयी है। गरुडके जिज्ञासा करनेपर भगवान्‌ने कहा—श्राद्धके द्वारा प्रेतको जिस प्रकार तृप्ति होती है उसे सुनो—

मनुष्य अपने कर्मानुसार यदि देवता हो जाता है तो श्राद्धान्न अमृत होकर उसे प्राप्त हो जाता है। वही अन्न गन्धर्वयोनिमें भोगरूपसे, पशुयोनिमें तृणके रूपमें प्राप्त होता है। वही श्राद्धान्न नागयोनिमें वायुरूपसे, पक्षी होनेपर फलरूपसे और राक्षसयोनिमें आमिषरूपसे बन जाता है। वही श्राद्धान्न दानवकी योनिके लिये मांस, प्रेतके लिये रक्त, मनुष्यके लिये अन्न-पानादि, बाल-योनिके लिये भोगरस हो जाता है। पितर जिन योनियोंमें जिस आहारवाले होते हैं, श्राद्धके द्वारा उन्हें वहाँ उसी प्रकारका आहार प्राप्त होता है।

यदि श्राद्धकर्ता श्राद्धमें एक ही ब्राह्मण आमन्त्रित करता है तो उस ब्राह्मणके उदरभागमें पिता, वामपार्श्वमें पितामह, दक्षिणपार्श्वमें प्रपितामह और पृष्ठभागमें पिण्डभक्षक पितर रहते हैं। श्राद्धकालमें यमराज प्रेत तथा पितरोंको यमलोकसे मृत्युलोकके लिये मुक्त कर देते हैं। नरक भोगनेवाले भूख-प्याससे पीड़ित पितृजन अपने पूर्वजन्ममें किये गये पापका पश्चात्ताप करते हुए अपने पुत्र-पौत्रोंसे मधुमिश्रित पायसकी अभिलाषा करते हैं; अतः विधिपूर्वक पायसके द्वारा उन पितृगणोंको तृप्त करना चाहिये।

गरुडके इस प्रश्नके उत्तरमें कि 'मृत्युके बाद प्राणीको तत्काल दूसरे शरीरकी प्राप्ति हो जाती है अथवा विलम्बसे

१-यह कथा पृष्ठ-संख्या ३९९ पर देखनी चाहिये।
२-यह कथा पृष्ठ-संख्या ४०२ पर देखनी चाहिये।

उसको दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है?'

भगवान्‌ने कहा—हे गरुड! मृत्युके पश्चात् तुरंत और विलम्ब दोनों प्रकारसे दूसरे शरीरमें प्राणी प्रविष्ट होता है।

शरीरके अंदर जो ज्योतिःस्वरूप जीवात्मा विद्यमान रहता है, वह मृत्युके बाद तुरंत ही वायवीय शरीर धारण कर लेता है। भूत-प्रेत और पिशाचोंका शरीर ऐसा ही कहा गया है। पुत्रादिके द्वारा दशगात्रके जो पिण्डदान दिये जाते हैं उससे पिण्डज शरीर बनता है। इस पिण्डज शरीरसे वायवीय शरीर एकाकार हो जाता है। यदि पिण्डज शरीरका साथ नहीं होता है तो वायुज शरीर कष्ट भोगता है।

कोई-कोई जीवात्मा पिण्डज शरीर विलम्बसे प्राप्त करता है; क्योंकि मृत्युके बाद स्वकर्मानुसार वह यमलोकको जाता है। चित्रगुप्तकी आज्ञासे वह वहाँके नरक भोगता है। वहाँकी यातनाओंको झेलनेके पश्चात् उसे पशु-पक्षी, तिर्यक्, कीट-पतंग आदिकी योनि प्राप्त होती है। प्राणी जिस शरीरको ग्रहण करता है उसी शरीरमें मोहवश ममता हो जाती है। शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगकर वह मुक्त हो जाता है।

गरुडके यह पूछनेपर कि बहुत-से पापोंको करनेपर भी इस संसारको पारकर प्राणी आपको कैसे प्राप्त कर सकता है?

भगवान्‌ने कहा—हे पक्षिराज! मनुष्य अपने-अपने कर्ममें रत रहकर संसिद्धि प्राप्त कर लेता है। सत्कर्मसे जिसने अपने कालुष्यको नष्ट कर दिया है वह व्यक्ति वासुदेवके निरन्तर चिन्तनसे विशुद्ध हुई बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे अपना नियमन करके स्थिर रहता है। जो शब्दादि विषयोंका परित्याग कर तथा राग-द्वेषको छोड़कर विरक्तसेवी और यथाप्राप्त भोजनसे संतुष्ट रहता है, जिसका मन, वाणी, शरीर संयमित है, जो वैराग्य धारण करके नित्य ध्यान-योगमें तत्पर रहता है, जो अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह—इन षड्विकारोंका परित्याग करके निर्भय होकर शान्त हो जाता है, वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसके बाद मनुष्योंके लिये कुछ करना शेष नहीं रह जाता।

नाभिसे मूर्धापर्यन्त शरीरमें आठ छिद्र हैं। जो सत्कर्म करनेवाले पुण्यात्मा हैं उनके प्राण शरीरमें ऊर्ध्व छिद्रोंसे निकलकर परलोक जाते हैं। जो अनासक्त भावसे सत्कर्ममें रत रहता है वह मृत्युके बाद सुखी रहता है और सांसारिकताके मायाजालमें नहीं फँसता है। जो विकर्ममें निरत रहता है, वह मनुष्य पाशबद्ध हो जाता है।

इस संसारमें चौरासी लाख योनियाँ हैं। इन सभीमें मनुष्ययोनि परम दुर्लभ है। पाँच (ज्ञान) इन्द्रियोंसे युक्त यह योनि प्राणीको बड़े ही पुण्यसे प्राप्त होती है। स्वर्ग और मोक्षके साधनभूत मनुष्ययोनिको प्राप्त करके जो प्राणी उन दोनोंमेंसे एक भी लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाता है निश्चित ही उसने अपनेको ठग लिया। सौका मालिक एक हजारकी कामना करता है, एक हजारवाला लाखकी, लक्षाधिपति राज्यकी इच्छा करता है, जो राजा है वह सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने वशमें रखना चाहता है, चक्रवर्ती नरेश देवत्वकी इच्छा करता है, देवत्व-पदके प्राप्त होनेपर उसकी अभिलाषा देवराज इन्द्रके पदकी होती है, देवराज होनेपर वह ऊर्ध्वगतिकी कामना करता है, फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नहीं होती। तृष्णासे पराजित व्यक्ति नरकमें जाता है। जो लोग तृष्णासे मुक्त हैं, उन्हें उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

इस संसारमें जो प्राणी आत्माधीन है वह निश्चित ही सुखी है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये जो पाँच विषय हैं, इनकी अधीनतामें रहनेवाला निश्चित ही दुःखी रहता है। लौह और काष्ठसे बने पाशसे बँधा व्यक्ति मुक्त हो जाता है किंतु स्त्री, पुत्र-धन आदिके मोहपाशमें बँधा प्राणी कभी मुक्त नहीं हो पाता।

पाप एक मनुष्य करता है किंतु उसके फलका उपभोग बहुत-से लोग करते हैं। भोक्ता तो अलग हो जाता है, पर कर्ता दोषका भागी होता है। सबके देखते-देखते मृत प्राणी सबको छोड़कर चला जाता है। इस मर्त्यलोकमें प्राणी अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है और अकेला ही पाप-पुण्यका भोग करता है। बन्धु-बान्धव मरे हुए स्वजनके शरीरको पृथ्वीपर लकड़ी और मिट्टीके ढेलेकी भाँति छोड़कर पराङ्मुख हो जाते हैं। धर्म ही उसका अनुसरण करता है। प्राणीका धन-वैभव घरमें ही छूट जाता है, मित्र एवं बन्धु-बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं, शरीरको अग्नि ले लेता है, पाप-पुण्य ही उस जीवात्माके साथ जाते हैं। मनुष्यने जो भी शुभ या अशुभकर्म किया है, वह सर्वत्र उसीको भोगता है।

मनुष्य स्वयं जो कुछ भी सत्कर्म करते हैं अथवा दान देते हैं, परलोकमें वे सभी उसके सामने उपस्थित रहते हैं। दानमें जो गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, भोजन और पददान अपने

हाथसे दिये जाते हैं, वे सभी जिस-जिस योनिमें व्यक्ति जाता है, वहाँ वे दान भी उपस्थित रहते हैं। जबतक प्राणीका शरीर स्वस्थ रहे, तबतक धर्मका सम्यक् पालन करना चाहिये। अस्वस्थ होनेपर दूसरोंकी प्रेरणासे भी वह कुछ नहीं कर पाता। यदि अपने जीवनकालमें व्यक्ति और्ध्वदैहिक कर्म नहीं कर लेता है, अथवा मरनेके बाद अधिकारी पुत्र-पौत्रादिके द्वारा भी वह क्रिया नहीं होती है तो वह वायुरूपमें भूख-प्याससे पीड़ित हो रात-दिन भटकता रहता है। वह कृमि, कीट अथवा पतिंगा होकर बार-बार जन्म लेता है और मर जाता है। वह कभी असत्-मार्गसे गर्भमें प्रविष्ट होता है एवं जन्म लेते ही तत्काल विनष्ट हो जाता है।

वैतरणी नदीका वर्णन करते हुए भगवान् कहते हैं कि यमलोकके मार्गमें वैतरणी नामकी महानदी है, वह अगाध दुस्तर और देखनेमात्रसे पापियोंको महाभयभीत करनेवाली है। पृथ्वीपर जिन लोगोंने गोदान किया है, उस दानके प्रभावसे वे उसे पार कर जाते हैं, अन्यथा जिनके द्वारा यह दान नहीं हुआ है, वे उसीमें डूबते रहते हैं। अहंकारवान्, पापी, अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाला, कृतघ्न, गर्भपात करनेवाला तथा अन्य बहुत-से पापोंके कारण जीव वैतरणीमें निवास करता है। कदाचित् भाग्ययोगसे उस नदीको पार करनेकी इच्छा उत्पन्न हो जाय तो उससे तरनेका उपाय सुनो—

मकर और कर्ककी संक्रान्तिका पुण्यकाल, व्यतीपात योग, दिनोदय, सूर्य-चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, अमावास्या अथवा अन्य पुण्यकालके आनेपर इससे तरनेके लिये श्रेष्ठतम दान दिया जाता है, यों तो मनमें दान देनेकी श्रद्धा जब कभी उत्पन्न हो जाय, वही दानका काल है; क्योंकि सम्पत्ति अस्थिर है।

शरीर अनित्य है और धन भी सदा रहनेवाला नहीं है। मृत्यु सदा समीप है, इसलिये धर्म-संग्रह करना चाहिये।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः॥
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।

(२।४७।२४-२५)

जबतक यह शरीर स्वस्थ और निरोग है, जबतक इस शरीरसे बुढ़ापा दूर है, जबतक इन्द्रियोंकी शक्ति किसी भी प्रकारसे क्षीण नहीं हुई है और जबतक आयु नष्ट नहीं हुई है, तबतक अपने कल्याणके लिये महान् प्रयत्न कर लेना चाहिये; क्योंकि घरमें महाभयंकर आगके लग जानेपर कुआँ खोदनेके उद्देश्यसे मनुष्यको क्या लाभ प्राप्त हो सकता है?—

यावत्स्वस्थं शरीरं हि तावद्धर्मं समाचरेत्।
अस्वस्थः प्रेरितश्चान्यैर्न किंचित् कर्तुमर्हति॥

(२।१३।२२)

भारतवर्षमें मानवयोनि प्राप्त करके मनुष्य अपने जीवनका उत्सर्ग तीर्थमें करता है तो उसका पुनर्जन्म नहीं होता। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती और द्वारका—ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं।

जो मनुष्य मृत्युके समय दो अक्षर 'हरि'का एक बार उच्चारण कर लेता है, वह मरनेपर मानो मोक्ष प्राप्त करनेके लिये कटिबद्ध हो गया है।

राग-द्वेषरूपी मलको दूर करनेमें समर्थ, ज्ञानरूपी जलाशयके सत्यरूपी जलसे युक्त मानसतीर्थमें जिस मनुष्यने स्नान कर लिया है, वह कभी पापोंसे लिप्त नहीं होता। देवता कभी काष्ठ और पत्थरकी शिलामें नहीं रहता वह तो प्राणीके भावमें विराजमान रहता है। इसलिये सद्भावसे युक्त भक्तिका सम्यक् आचरण करना चाहिये—

न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां कदाचन।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावं समाचरेत्॥

(२।३८।१३)

पण्डितको जीवन और मरण—इन दोकी ही शिक्षा लेनी चाहिये। अतः दान और भोगसे जीवन धारण करे और युद्धभूमि एवं तीर्थमें मृत्युको प्राप्त करे। इस पृथ्वीपर दान, दम और दया—यही तीन सत्-तत्त्व हैं। दरिद्र तथा सज्जन ब्राह्मणको दान, निर्जन प्रदेशमें स्थित शिवलिंगका पूजन और अनाथ प्राणीका संस्कार करोड़ों यज्ञका फल प्रदान करता है—

दानं साधोर्दरिद्रस्य शून्यलिङ्गस्य पूजनम्।
अनाथप्रेतसंस्कारः कोटियज्ञफलप्रदः॥

यथाविहित अपने धर्मका पालन करनेसे प्राणियोंको ऊर्ध्वगति तथा अधर्मकी ओर बढ़नेसे अधोगति प्राप्त होती है। अतः सभी वर्णोंकी सद्गति अपने धर्मपर चलनेसे ही

होती है। देव और मानवयोनिमें जो दान तथा भोगादिकी क्रियाएँ दिखायी देती हैं, वे सब कर्मजन्य फल हैं। घोर अकर्मसे और काम-क्रोधके द्वारा अर्जित जो अशुभ पापाचार हैं उनसे नरक प्राप्त होता है तथा वहाँसे जीवका उद्धार नहीं होता। सुकर्मके प्रभावसे प्राणीको ऐहिक और पारलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है।

जिनके हृदयमें नीलकमलके समान श्याम वर्णवाले भगवान् जनार्दन विराजमान हैं, उन्हींको लाभ और विजय प्राप्त होती है। ऐसे प्राणियोंकी पराजय कैसे हो सकती है? धर्मकी जीत होती है, अधर्मकी नहीं। सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। क्षमाकी विजय होती है, क्रोधकी नहीं। विष्णु ही जीतते हैं असुर नहीं। विष्णु ही माता हैं, विष्णु ही पिता हैं और विष्णु ही अपने स्वजन-बान्धव हैं। जिनकी बुद्धि इस प्रकार स्थिर हो जाती है उनकी दुर्गति नहीं होती। भगवान् पुण्डरीकाक्ष मङ्गल करते हैं।

मोक्षप्राप्तिका उपाय

अन्तमें गरुडजी भगवान्‌से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात पूछते हुए कहते हैं—हे दयासागर! अज्ञानके कारण ही जीवकी उत्पत्ति इस संसारमें होती है, इस बातको मैंने सुन लिया। अब मैं मोक्षके सनातन उपायको सुनना चाहता हूँ। इस दुस्तर असार-संसारमें नाना प्रकारके शरीरोंमें प्रविष्ट जीवोंकी अनन्त श्रेणियाँ हैं, वे इसी संसारमें जन्म लेती हैं और इसीमें मर जाती हैं, किंतु उनका अन्त नहीं होता। वे सदैव दुःखमें व्याकुल रहती हैं। यहाँ कहीं कोई भी सुखी नहीं है। वे किस उपायसे सुखी हों, इसे आप बतानेकी कृपा करें। श्रीभगवान् इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—अनेक जन्मोंमें कर्मोंके अनुसार प्राणीको जातीय देह, आयु तथा भुक्ति प्राप्त होती है और सुख-दुःख प्रदान करनेवाले पुण्य और पापोंका उनके ऊपर नियन्त्रण रहता है तथा पुनः-पुनः जन्म-मरणकी प्रथा चलती रहती है।

इस मृत्युलोकमें हजार ही नहीं करोड़ों बार जन्म लेनेपर भी जीवको कदाचित् ही संचित पुण्यके प्रभावसे मानव-योनि मिलती है। यह मानव-योनि मोक्षकी सीढ़ी है। चौरासी लाख योनियोंमें स्थित जीवात्माओंको बिना मानव-योनि मिले तत्त्वका ज्ञान नहीं हो सकता। अतः इस दुर्लभ योनिको प्राप्त करके जो प्राणी स्वयं अपना उद्धार नहीं कर लेता, उससे बढ़कर मूढ़ इस जगत्‌में दूसरा कौन हो सकता है? कोई भी कर्म शरीरके बिना सम्भव नहीं है, अतः शरीररूपी धनकी रक्षा करते हुए पुण्यकर्म करना चाहिये। शरीरकी रक्षा धर्मके लिये, धर्मकी रक्षा ज्ञानके लिये और ज्ञानकी रक्षा ध्यानयोगके लिये तथा ध्यानयोगकी रक्षा तत्काल मुक्ति-प्राप्तिके लिये होती है। यदि स्वयं ही अहितकारी कार्योंसे अपनेको दूर नहीं कर सकते हैं तो अन्य कोई दूसरा कौन हितकारी होगा जो आत्माको सुख प्रदान करेगा? जैसे फूटे हुए घड़ेका जल धीरे-धीरे बह जाता है, उसी प्रकार आयु भी क्षीण होती है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है तबतक ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके लिये सम्यक् प्रयत्न किया जा सकता है। सौ वर्षका जीवन अत्यल्प है। इसमें भी आधा निद्रा तथा आलस्यमें चला जाता है। इसके साथ ही कितना ही समय बाल्यावस्था, रुग्णावस्था, वृद्धावस्था एवं अन्यान्य दुःखोंमें व्यतीत हो जाता है, इसके बाद जो थोड़ा बच जाता वह भी निष्फल हो जाता है। अपने हित-अहितको न जानते हुए जो नित्य कुपथगामी हैं, जिनका लक्ष्य मात्र पेट भरना है वे मनुष्य नारकीय प्राणी हैं। अज्ञानसे मोहित होकर प्राणी अपने शरीर, धन एवं स्त्री आदिमें अनुरक्त होकर जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। अतः व्यक्तिको उनकी बढ़ी हुई अपनी आसक्तिका परित्याग करना चाहिये। यदि आसक्ति न छोड़ी जा रही हो तो महापुरुषोंके साथ उस आसक्तिको जोड़ देना चाहिये, क्योंकि आसक्तिरूपी व्याधिकी औषधि सज्जन पुरुष ही हैं।

सत्संग और विवेक—ये दो प्राणीके मलरहित स्वस्थ दो नेत्र हैं। जिसके पास ये दोनों नहीं हैं, वह मनुष्य अन्धा है। वह कुमार्गपर कैसे नहीं जायगा अर्थात् वह अवश्य ही कुमार्गगामी होगा। जो व्यक्ति दम्भके वशीभूत हो जाता है, वह अपना ही नाश करता है। जटाओंका भार और मृगचर्मसे युक्त साधुका वेश धारण करनेवाले दाम्भिक ज्ञानियोंकी भाँति इस संसारमें भ्रमण करते हैं और लोगोंको भ्रमित करते हैं। लौकिक सुखमें आसक्त 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' ऐसा कहनेवाले, कर्म तथा ब्रह्म दोनोंसे भ्रष्ट, दम्भी और ढोंगी व्यक्तिका अन्त्यजके समान परित्याग कर देना चाहिये।

बन्धन और मोक्षके लिये इस संसारमें दो ही पद हैं—

एक पद है 'यह मेरा नहीं है।' और दूसरा पद है 'यह मेरा है'। 'यह मेरा है' इस ज्ञानसे वह बँध जाता है, और 'यह मेरा नहीं है' इस ज्ञानसे वह मुक्त हो जाता है—

द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते॥

(२। ४९। ९३)

जो कर्म जीवात्माको बन्धनमें नहीं ले जाता वही सत्कर्म है। जो विद्या प्राणीको मुक्ति प्रदान करनेमें समर्थ है, वही विद्या है। जबतक प्राणियोंको कर्म अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, जबतक उनमें सांसारिक वासना विद्यमान है और जबतक उनकी इन्द्रियोंमें चञ्चलता रहती है, तबतक उन्हें परम तत्त्वका ज्ञान कहाँ हो सकता है? जबतक व्यक्तिमें शरीरका अभिमान है, जबतक उसमें ममता है, जबतक उस प्राणीमें प्रयत्नकी क्षमता रहती है, जबतक उसमें संकल्प तथा कल्पना करनेकी शक्ति है, जबतक उसके मनमें स्थिरता नहीं है, जबतक वह शास्त्रचिन्तन नहीं करता है तथा उसपर गुरुकी दया नहीं होती है तबतक उसको परमतत्त्व कहाँसे प्राप्त हो सकता है?

श्रीभगवान् कहते हैं—हे गरुड! उस तत्त्वज्ञका अन्तिम कृत्य सुनो, जिसके द्वारा ब्रह्मपद या निर्वाण नामवाला मोक्ष प्राप्त होता है। अन्त समय आ जानेपर पुरुष भयरहित होकर संयमरूपी शस्त्रसे देहादिकी आसक्तिको काट दे। अनासक्त भावसे धीरवान् पुरुष पवित्र तीर्थमें जाकर उसके जलमें स्नान करे, तदनन्तर वहींपर एकान्त देशमें किसी स्वच्छ एवं शुद्ध भूमिमें विधिवत् आसन लगाकर बैठ जाय तथा एकाग्रचित्त होकर गायत्री आदि मन्त्रोंके द्वारा उस शुद्ध परम ब्रह्माक्षरका ध्यान करे। ब्रह्मके बीजमन्त्रको बिना भुलाये वह अपने श्वासको रोककर मनको वशमें करे तथा अन्य कर्मोंसे मनको रोककर बुद्धिके द्वारा शुभकर्ममें लगाये।

'मैं ब्रह्म हूँ' 'मैं परम धाम हूँ' 'मैं ही ब्रह्म हूँ' 'परम पद मैं हूँ' इस प्रकारकी समीक्षा करके निष्कल आत्मामें मनको प्रविष्ट करना चाहिये। जो मनुष्य 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह अपने शरीरका परित्याग कर परम पदको प्राप्त करता है।

मान-मोहसे रहित, आसक्तिदोषसे परे, नित्य अध्यात्म-चिन्तनमें दत्तचित्त, सांसारिक समस्त कामनाओंसे रहित और सुख-दुःख नामके द्वन्द्वसे मुक्त ज्ञानी पुरुष ही उस अव्यय पदको प्राप्त करते हैं।

प्रौढ वैराग्यमें स्थित हो करके अनन्य भावसे जो व्यक्ति मेरा भजन करता है, वह पूर्णदृष्टिवाला प्रसन्नात्मा व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है।

घर छोड़कर मरनेकी अभिलाषासे जो तीर्थमें निवास करता है और मुक्तिक्षेत्रमें मरता है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है।

हे तार्क्ष्य! ज्ञान तथा वैराग्यसे युक्त यह सनातन मोक्षधर्म ऐसा ही है, उसको तुम्हें सुना भी दिया है।

तत्त्वज्ञ मोक्ष प्राप्त करते हैं। धर्मनिष्ठ स्वर्ग जाते हैं, पापी नरकमें जाते हैं। पक्षी आदि इस संसारमें अन्य योनियोंमें प्रविष्ट होकर घूमते रहते हैं—

मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञा धार्मिकाःस्वर्गतिं नराः।
पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः॥

(२। ४९। ११६)

अपने प्रश्नोंके उत्तरके रूपमें भगवान्‌के मुखसे इस प्रकार सिद्धान्तको सुनकर प्रसन्न शरीरवाले गरुडने जगदीश्वरको प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! आपके इन आह्लादकारी वचनोंसे मेरा बहुत बड़ा संदेह दूर हो गया।' ऐसा कहकर उन्होंने भगवान् विष्णुसे आज्ञा ली और वे कश्यपजीके आश्रममें चले गये।

यह गरुडमहापुराण बड़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये—

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥

(२। ४९। १३२)

जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो वैसे ही इसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयंकर यातनाओंको तोड़कर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है—

यश्चेदं शृणुयान्मर्त्यो यश्चापि परिकीर्तयेत्।
विहाय यातनां घोरां धूतपापो दिवं व्रजेत्॥

(२। ४९। १३६)

—राधेश्याम खेमका

नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें '**संक्षिप्त गरुडपुराणाङ्क**' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। पिछले कई वर्षोंसे कुछ महानुभावोंका यह विशेष आग्रह था कि 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें 'गरुडमहापुराण'का प्रकाशन किया जाय। हम चाहते हुए भी अबतक यह कार्य नहीं कर सके थे। इस वर्ष यह सम्भव हो सका।

अठारह महापुराणोंके अन्तर्गत गरुडमहापुराणका अपना एक विशेष महत्त्व है। इसके द्वारा असार-संसारकी क्षणभङ्गुरता तथा अनित्यताका दिग्दर्शन तो होता ही है; इसके साथ ही इसमें परलोकका वर्णन तथा संसारके आवागमनसे मुक्त होनेकी विधि भी वर्णित है। चतुर्वर्गचिन्तामणि, वीरमित्रोदय, हेमाद्रि, विधानपारिजात आदि सभी प्राचीन निबन्ध-ग्रन्थोंमें अनुष्ठान, व्रत, दान एवं श्राद्ध आदिके प्रकरणमें मूल श्लोकोंका संदर्भ भी प्रायः गरुडपुराणका ही मिलता है। इन सब कारणोंसे इस ग्रन्थकी श्रेष्ठता एवं महत्त्व विशेषरूपसे परिलक्षित होनेपर भी सामान्य जन इसके विषय-वस्तुसे अनभिज्ञ-जैसे ही हैं। अतः स्वाभाविक रूपसे यह प्रेरणा हुई कि गरुडमहापुराणकी कथा-वस्तुको जनता-जनार्दनको दृष्टिमें लानेके लिये इस बार इसी महापुराणका अनुवाद 'विशेषाङ्क'के रूपमें प्रस्तुत किया जाय। इस प्रेरणाके अनुसार ही यह निर्णय कार्यरूपमें परिणत हुआ।

वास्तवमें गरुडमहापुराण एक पवित्र वैष्णव ग्रन्थ है। इसके अधिष्ठातृदेव भगवान् विष्णु हैं। यह महापुराण अधिकतम तीन खण्डोंमें विभक्त है—पूर्वखण्ड (आचारकाण्ड), उत्तरखण्ड (धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प) और ब्रह्मकाण्ड। अधिकांश संस्करणोंमें केवल दो ही खण्ड (पूर्व और उत्तर) दिये गये हैं। जबकि खेमराज श्रीकृष्णदासद्वारा प्रकाशित पुस्तकमें इन दोनों काण्डोंके अतिरिक्त ब्रह्मकाण्ड भी दिया गया है। पूर्वखण्ड (आचारकाण्ड)-में भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार एवं निष्काम कर्मकी महिमा तथा यज्ञ, दान, तप, तीर्थसेवन, देवपूजन, श्राद्ध, तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभ कर्मोंमें जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये अनेक लौकिक एवं पारलौकिक पुण्यप्रद फलादिका वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त इसमें व्याकरण, छन्द, स्वर, ज्योतिष, आयुर्वेद, रत्नसार, नीतिसार आदि अन्यान्य उपयोगी विविध विषयोंका यथाक्रम समावेश हुआ है।

गरुडमहापुराणमें मुख्य रूपसे उत्तरखण्डमें प्रेतकल्पका विवेचन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसमें मृत्युका स्वरूप, मरणासन्न व्यक्तिकी अवस्था और उसके कल्याणके लिये अन्तिम समयमें किये जानेवाले कृत्यों तथा विविध प्रकारके दानोंका निरूपण हुआ है। मृत्युके बाद और्ध्वदैहिक संस्कार, पिण्डदान, श्राद्ध, सपिण्डीकरण, कर्मविपाक, पापोंके प्रायश्चित्तका विधान आदि वर्णित है। इसमें नरकोंका तथा स्वर्ग एवं वैकुण्ठ आदि लोकोंके वर्णनके साथ ही पुरुषार्थचतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको प्राप्त करनेके विविध साधनोंका निरूपण भी हुआ है। इसके अतिरिक्त जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होनेके लिये आत्मज्ञानका प्रतिपादन भी किया गया है।

वास्तवमें गरुडमहापुराणकी समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यह है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र परमात्माकी शरणमें जाना चाहिये। यह लक्ष्यप्राप्ति कर्मयोग और ज्ञान अथवा भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है, इसकी विशद व्याख्या इस महापुराणमें हुई है। यह पुराण भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको सामने रखते हुए साधकोंके लिये उनके ग्रहण करने योग्य विभिन्न अनुभूत सत्य मार्गोंके विघ्नोंका तथा विघ्नोंसे छूटनेके उपायोंका बड़ा ही सुन्दर निरूपण करता है। मनुष्य इस लोकसे जानेके बाद अपने पारलौकिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्ध एवं शान्तिप्रद बना सकता है तथा उसकी मृत्युके बाद उस प्राणीके उद्धारके लिये पुत्र-पौत्रादिक— पारिवारिक जनोंके कर्तव्यका विशद वर्णन भी यहाँ प्राप्त होता है। यह महत्त्वपूर्ण प्रकरण अन्य किसी पुराण या ग्रन्थमें हमें उपलब्ध नहीं होता।

इस गरुडमहापुराणके श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य-लाभ तथा अन्तःकरणकी परिशुद्धि और भगवान्‌में

रति एवं विषयोंसे विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्योंको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें कर्तव्य निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा भी मिलती है। साथ ही, जो जिज्ञासु शास्त्र-मर्यादाके अनुसार अपना जीवनयापन करना चाहते हैं, उन्हें इस पुराणसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन तथा सुन्दर एवं पवित्र जीवनयापनकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त पुत्र-पौत्रादि—पारिवारिक जनोंकी पारमार्थिक आवश्यकता और उनके कर्तव्यबोधका परिज्ञान भी इसमें कराया गया है। इस प्रकार यह महापुराण जिज्ञासु जनोंके लिये अत्यधिक उपादेय, ज्ञानवर्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदय और कल्याणमें पूर्णतया सहायक है।

चूँकि इस पुराणमें विविध विषयोंका समावेश हुआ है। अतः पाठकोंकी सुविधाके लिये गरुडमहापुराणके भावोंका सार-संक्षेप इस 'विशेषाङ्क'के प्रारम्भमें 'सिंहावलोकन'-के रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकनसे गरुडमहापुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य विषय पाठकोंके ध्यानमें आ सकेंगे; यद्यपि जिज्ञासु जनोंको यह 'विशेषाङ्क' आद्योपान्त पूरा पढ़ना चाहिये। यदि पूरा न पढ़ सकें तो कम-से-कम उत्तरखण्ड (धर्मकाण्ड—प्रेतकल्प) तो अवश्य पढ़ना चाहिये, जिससे उन्हें परलोक-सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हो सके।

सामान्यतः संसारके लोगोंमें यह जिज्ञासा होनी स्वाभाविक है कि मृत्युके बाद प्राणी कहाँ जाता है और उसकी क्या गति होती है? संसारमें सुख-दुःखका वैषम्य भी दिखायी पड़ता है। परलोकमें स्वर्ग और नरककी बात भी हम लोग सुनते हैं। इन सब प्रश्नोंका उत्तर इस गरुडमहापुराणमें सविस्तार प्रतिपादित हुआ है।

यद्यपि 'विशेषाङ्क'के प्रकाशनमें कभी-कभी कुछ असुविधाएँ भी आती हैं, परंतु इस बार गरुडपुराणके प्रकाशनमें विशेष कठिनाइयोंकी अनुभूति हुई। संयोगवश इस महापुराणका कोई अनुवाद अथवा टीका उपलब्ध न होनेके कारण मूलरूपसे सम्पूर्ण ग्रन्थका अनुवाद करना पड़ा। उपलब्ध मूल ग्रन्थोंमें भी पाठभेद और अशुद्धियोंके बाहुल्यसे बीच-बीचमें कुछ भ्रमकी स्थिति बन जाती थी। अपने शास्त्रोंमें स्पष्ट निर्देश है—'**पितरो वाक्यमिच्छन्ति भावमिच्छन्ति देवताः**'—पितृगण शुद्ध वाक्य और शुद्ध प्रक्रियाकी अपेक्षा रखते हैं और देवगण शुद्ध वाक्य और प्रक्रियामें त्रुटि होनेपर भी मनुष्यके आन्तरिक शुद्ध भावोंसे भी संतुष्ट हो जाते हैं। गरुडपुराणका मुख्य प्रतिपाद्य विषय श्राद्ध आदि प्रक्रिया-प्रधान होनेके कारण इसके अनुवाद करनेमें विशेष सावधानी बरतनी पड़ी। प्रायः यह प्रयास किया गया कि ग्रन्थके मूल भावोंको सुरक्षित रखते हुए यथासाध्य श्राद्धकी प्रचलित और व्यावहारिक प्रक्रियाओंका सामञ्जस्य बना रहे, जिससे सर्वसाधारणको व्यावहारिक प्रक्रियामें असुविधाका अनुभव न हो, फिर भी कदाचित् द्विविधाकी स्थितिमें मूल श्लोकोंके भावोंको ही प्राथमिकता दी गयी है। भावोंके स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे कुछ आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी गयी हैं। इसके साथ ही कुछ महत्त्वपूर्ण मूल श्लोकोंका भी समायोजन किया गया है।

प्रायः यह प्रयास किया गया है कि इस 'विशेषाङ्क'में गरुडपुराणके सभी श्लोकोंका अनुवाद समायोजित कर दिया जाय, परंतु अपने पुराणमें कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जो सर्वसाधारणके समझकी क्षमताके बाहर हैं, जिनके अवलोकनसे सामान्य जनोंके मस्तिष्कमें संशय-विपर्ययकी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐसे कुछ स्थलोंके अनुवादको संक्षिप्त करना ही हितकर समझा गया। प्रारम्भमें यह विचार था कि गरुडपुराणके मूल श्लोक भी अनुवादके साथ प्रस्तुत किये जायँ, परंतु एक वर्षमें प्रकाशन सम्भव न होनेके कारण सर्वसाधारणके उपयोगकी दृष्टिसे केवल भाषानुवादमें इसे प्रकाशित किया गया है। भगवदिच्छा हुई तो आगे पुस्तकरूपमें मूलके साथ पुनः इसके प्रकाशनका प्रयास किया जा सकता है।

आजकल विशेषरूपसे प्रचलित 'गरुडपुराण सारोद्धार' नामका एक ग्रन्थ उपलब्ध होता है, जो सोलह अध्यायोंमें है तथा इसीको प्रायः श्राद्ध आदि पितृ-कार्योंमें सुनाया जाता है और इसे ही सामान्य लोग गरुडपुराणके रूपमें जानते हैं, परंतु वास्तवमें यह ग्रन्थ मूल गरुडपुराणसे भिन्न है। कुछ समय-पूर्व राजस्थानके विद्वान् पं० नवनिधि शर्माके द्वारा किया गया यह संकलन है। इसमें शंकराचार्यके विवेकचूडामणि, भगवद्गीता, नीतिशतक, वैराग्यशतक एवं अन्य पुराणोंके

साथ गरुडपुराणके श्लोकोंका संग्रह है। कुछ लोगोंमें यह भ्रान्त धारणा बनी है कि गरुडपुराणको घरमें नहीं रखना चाहिये। केवल श्राद्ध आदि प्रेत-कार्योंमें ही इसकी कथा सुनते हैं। यह धारणा अत्यन्त भ्रामक और अन्धविश्वाससे युक्त है; कारण, इस महापुराणमें ही यह बात लिखी है कि 'जो मनुष्य इस महापुराणको सुने या जैसे भी हो वैसे ही इसका पाठ करे तो वह प्राणी यमराजकी भयंकर यातनाओंको तोड़कर निष्पाप होकर स्वर्गको प्राप्त करता है।' यह गरुडमहापुराण बड़ा ही पवित्र और पुण्यदायक है। यह सभी पापोंका विनाशक एवं सुननेवालोंकी समस्त कामनाओंका पूरक है। इसका सदैव श्रवण करना चाहिये—

पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि॥

(२। ४९। १३२)

अतः आस्तिक जनोंको इस प्रकारकी भ्रामक शंका कदापि नहीं रखनी चाहिये।

इस पुराणके अनुवादका संशोधन, परिवर्धन आदि कार्योंको प्रयागराजके श्रीहरीराम संस्कृत महाविद्यालयके पूर्व प्राचार्य आदरणीय पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्रीने पूर्ण मनोयोगसे सम्पन्न किया। यह कार्य भगवत्प्रीत्यर्थ निष्काम भावसे इनके द्वारा सम्पन्न हुआ। इसके साथ ही अग्निहोत्री पं०श्रीजोखनरामजी शास्त्री, संस्कृत विश्वविद्यालयके प्राध्यापक पं० श्रीसुधाकरजी दीक्षित, आदरणीय पं० श्रीविश्वनाथजी शास्त्री दातार तथा पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री आदि महानुभावोंने भी इस कार्यमें कृपापूर्वक पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मैं इन महानुभावोंके चरणोंमें प्रणति निवेदन करता हूँ। गरुडमहापुराणके प्रकाशनके लिये 'सर्व भारतीय काशिराज न्यास'-के अध्यक्ष महाराज काशिराज डॉ० श्रीविभूति-नारायण सिंहजीने हमें प्रेरणा प्रदान की तथा अपने न्यासद्वारा संशोधित आचारकाण्डका मूल पाठ भी उपलब्ध कराया। हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। 'कल्याण'-सम्पादकीय विभागके पं० श्रीजानकीनाथजी शर्माके सहयोगके प्रति भी हम आभारी हैं। इस 'विशेषाङ्क' के सम्पादन, प्रूफ-संशोधन, चित्रनिर्माण तथा मुद्रण आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहृदयता मिली वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते। अनुवादकी आवृत्ति, प्रूफ-संशोधन तथा सम्पादनके कार्योंमें सम्पादकीय विभागके मेरे सहयोगी विद्वानोंने तथा अन्य सभी लोगोंने मनोयोगपूर्वक सहयोग प्रदान किया है। फिर भी अनुवाद, संशोधन, छपाई आदिमें कोई भूल हो तो इसके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है। अतः हम इसके लिये अपने पाठक-पाठिकाओंसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

आस्तिक जन इस गरुडपुराणको पढ़कर लाभ उठावें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्य परमात्मप्रभुको प्राप्त करें, यही प्रार्थना है। मानव-जीवनका लक्ष्य है आत्मोद्धार करना। इस लक्ष्यकी सिद्धि इस पुराणमें वर्णित आचारके श्रद्धापूर्वक सेवनसे प्राप्त हो सकती है। गरुडपुराणके समस्त कथानक एवं उपदेशोंका सार यही है कि हमें आसक्तिका त्यागकर कर्तव्यकर्मोंको करते हुए वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र विश्वस्रष्टा परमात्माकी शरण ग्रहण करना चाहिये। इस लक्ष्यकी प्राप्ति कर्म, ज्ञान और भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है, इसकी विशद व्याख्या भी इस पुराणमें वर्णित हुई है। इसके साथ ही अपने पितृजनोंको परलोकमें सद्गति प्राप्त करानेके लिये पुत्र-पौत्रादिके कर्तव्यका भी निरूपण हुआ है। यदि इस 'विशेषाङ्क'के अध्ययनसे हमारे देशवासियोंको मनुष्य-जीवनके वास्तविक ध्येयको हृदयङ्गम करने तथा उसकी ओर बढ़नेमें कुछ भी सहायता मिली तो यह भगवान्‌की बड़ी कृपा होगी, श्रम सार्थक होगा और हम इसे अपना सौभाग्य मानेंगे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक